वर्ष : १४ अंक : २ फाल्गुन : २०३८ (वि.) फरवरी : १९८२

आदान-प्रदान

अमृता

गुजरातीसे अनूदित इस उपन्यासमें पाश्चात्य अस्तित्ववादी दर्शन और भारतीयतामय नवीन प्रगतिशील समन्वय-परक विचारधारामें से किसी एकके चयनकी समस्याके साथ नारीकी पूर्ण स्वतन्त्रताका प्रश्न उठाया गया है.

उपन्यासकार : रघुवीर चौधरी — समीक्षक : डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'

काव्य-संकलन

दिखती नहीं अपनीही छांह

प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्यकी सूक्ष्म छवियोंका प्राणवान् बिंबांकन, शैलीगत नाट्यात्मक प्रयोग एवं सन्दर्भके अतिरिक्त विलक्षण शब्दसाधना और शब्द-योजनासे परिपूर्ण काव्य-संकलन.

कवि : वसन्त रामकृष्ण देव — समीक्षक : डॉ. रामजी तिवारी

शोध : आलोचना

काव्य तत्त्व विमर्श

परम्परा-बोध, साथही युग तथा जीवनसे संयुक्त होकर स्वकीय प्रातिभ क्षमताके बलपर प्रयोग द्वारा आलोचनाके विकासकी दिशाका निर्देशक ग्रन्थ.

कृतिकार : डॉ. राममूर्त्ति त्रिपाठी — समीक्षक : डॉ. वेदीराम शर्मा

प्रेमचन्द : सृष्टि और दृष्टि

प्रेमचन्दसे संवाद-भावसे जुड़े लेखकोंके विवेचनात्मक निबन्धोंके संकलन द्वारा प्रेमचन्दके कथा संसारके भीतर प्रवेशकर उनके जीवन विषयक महत्त्वपूर्ण अनुभवोंकी अभिव्यक्ति.

सम्पादक : डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर — समीक्षक : डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय

शाखा कार्यालय : ६३ गली राजा केदारनाथ,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

[टेली : २६ १४ ३८

वर्ष : १४
अंक : २

फाल्गुन : २०३८ (वि.)
फनवरी : १९८२

सम्पादक :

वि. सा. विद्यालंकार

वार्षिक मूल्य : २५.०० रु.
प्रति अंक : २.५० रु.

विदेशोंमें (समुद्री डाकसे) ५१.०० रु.
आजीवन सदस्यता ३०१.०० रु.

प्रकर, ए-८/४२, राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०-००७

दूरभाष : ७१ ३७ ६३

इस अंकमें

समाजवादी देश बल्गारियाका इतिहास[1]

गतवर्ष बल्गारियावासियोंने अपने राज्यकी स्थापना की १३०० वीं जयन्ती मनायी। इस अवसरपर बल्गारिया के मूर्धन्य समाजवादी इतिहासकारोंने सम्मिलित रूपसे शासकीय संरक्षणमें और प्रोत्साहनसे अपने देशका इतिहास प्रस्तुत किया। इस इतिहासके अनुसार बल्गारिया यूरोपके प्राचीनतम राज्योंमें से एक है और इसकी सभ्यता की गणना प्राचीनतम सभ्यताओंमें की जा सकती है। एक प्राचीन सभ्यताके केन्द्र स्थल इस भूखण्डको 'बल्गारिया' नाम ६८१ ई. में प्राप्त हुआ।

बल्गारिया राज्यकी इस ऐतिहासिक यात्राका प्रारम्भ थरेशियनों द्वारा आबाद क्षेत्रों, थरेसके राज्य संगठन, राजनीतिक इतिहास, शक्तिके केन्द्रीयकरण, वहांके सांस्कृतिक विकास, कला और साहित्यकी गतिविधिसे किया गया है। इसी प्रसंगमें प्राचीन बल्गारी लिपिके उद्भव और विकासकी चर्चा कर दी गयी है। इसी प्रारम्भिक इतिहास, निवासियोंकी अपनी विशिष्टताकी स्थापना, सांस्कृतिक उत्तराधिकारके साथ मध्यकालीन बल्गारियाका उदय हुआ जिसे निरन्तर सैनिक आक्रमणों का सामना करना पड़ा। स्लाव जाति(भाषा और नृशास्त्र की दृष्टिसे स्लाव भारोपीय परिवारसे संबंधित माने जाते हैं) द्वारा बालकन प्रायद्वीपका विशाल स्तरपर औपनिवेशीकरण तथा विजातीय साम्राज्यपर निश्चित एवं गहरे प्रभावके कारण अपनी संस्कृतिका विकास करनेमें समर्थ हुए। तुर्की अलताई भाषा परिवार तथा जाति वर्ग से संबंधित प्रबल्गारियोंके प्रभाव, उससे विकसित जीवन-यापन पद्धति, अर्थव्यवस्था और संस्कृतिने एक ऐसे समुदायको जन्म दिया जो अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाये रखने को उत्सुक था। इसीका परिणाम ओंगलोसका युद्ध था, जिसमें प्रबल्गारियोंने विजातीय साम्राज्यको पराजित कर स्लाव जातिके साथ बल्गारी राज्यकी स्थापनाका श्रीगणेश किया। सातवीं शतीमें स्थापित बल्गारियाका यह राज्य अपने विस्तार और दृढ़ीकरणके लिए प्रवृत्त हुआ। नवीं शतीके पूर्वार्द्धमें नवबल्गारियन राज्यको स्लाव जातियोंके समावेशसे स्लाविक रूप मिला और शासनमें प्रबल्गारी महत्त्व आपेक्षिक दृष्टिसे कम होता चला गया।

नवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें ईसाई रूपमें धर्म-परिवर्तन की समस्याने इस क्षेत्रको पर्याप्त उद्वेलित रखा। वस्तुतः इस शतीमें रोमन तथा कांस्टेंटिनोपल चर्चमें धर्मगत श्रेष्ठताके लिए जो संघर्ष हुआ, उसमें बल्गारियाके धर्म-परिवर्तनका मुद्दा महत्त्वपूर्ण था और दोनों चर्चों द्वारा धर्म-परिवर्तनसे बल्गारियाको अपने क्षेत्रमें लानेकी प्रतिद्वन्द्विताका परिणाम था। इस धार्मिक परिवर्तनने सांस्कृतिक विकासको प्रभावित किया। इस नयी धार्मिक कट्टरता ने राजनीतिको भी प्रभावित किया। दसवीं शतीमें प्रवेश करते-करते बल्गारिया अपनी सैनिक और राजनीतिक शक्तिकी पराकाष्ठापर पहुंच चुका था। दसवीं शती से बारहवीं शतीतक का इतिहास पारस्परिक विध्वंसक युद्ध और सामाजिक असन्तोष, किएवी रूस और विजातीयों द्वारा पूर्वी बल्गारियापर विजय, स्वतन्त्रता संघर्षका इतिहास है। आन्तरिक असन्तोष, आक्रमण, चर्च द्वारा सत्ता सम्पन्न लोगोंके दैवी अधिकारका समर्थन, मठों और पादरियोंमें व्याप्त भ्रष्टाचारने यहांकी राजनीतिको प्रभावित किया। सातवींसे १२ वीं शतीका काल सामाजिक तथा आर्थिक विकास और राज्य पुनर्गठनका काल है, कला और संस्कृतिके नये रूपोंकी प्रतिष्ठाका युग है।

१२ वीं शतीकी समाप्तिपर स्वतंत्रता आन्दोलन अपनी चरम सीमापर पहुंचा और तेरहवीं शतीके मध्य तक पहुंचते पहुंचते बालकन प्रायद्वीपमें बल्गारियाकी

---

१. बल्गारियाका इतिहास [मूल बल्गारी भाषासे अनूदित]; लेखक-मण्डल : अलेक्जेंडर फॉल, वसिल ग्युज़ेलेव, निकोलई गेंचेव, कांस्तेतिन कोसेव, इलचो दिमित्रोव, आंद्रेह पांतेव, मिलचो लालकोव, कोस्तादिन पेत्रोव; अनुवादक : डॉ. विमलेश कान्ति वर्मा, श्रीमती धीरा वर्मा; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : ३३८; मानचित्र पृष्ठ : १८; डिमा ८१; मूल्य : ७५.०० रु.।

स्थिति सर्वोत्तम हो गयी ! इस सामन्तवादी शासन पद्धति के आन्तरिक बिखरावके कारण कृषक आन्दोलनने जन्म लिया। इससे देश कई सामन्ती राज्योंमें बंट गया। सत्ता संघर्ष प्रारम्भ हुए, १४ वीं शतीकी समाप्तिमे पूर्व देश छिन्न-भिन्न हो गया। इसी कालमें यह क्षेत्र आटोमन शासनके अन्तर्गत चला गया, और यूरोपियन विकास की तुलनामें बल्गारिया पिछड़ गया। बल्गारियापर जबर्दस्ती इस्लाम लाद दिया गया। इस्लामी पद्धतिके कारण आर्थिक ढाँचाभी परिवर्तित हुआ इस्लामी मान्यताओं और आदेशोंके कारण। इस दलित बल्गारियाने शीघ्रही अपने वर्चस्वकी स्थापनाके लिए हथियार उठा लिये। एक व्यापक विद्रोहने जन्म लिया और १६वीं शतीकी समाप्ति तक आटोमन साम्राज्यका वर्चस्व समाप्त हो चला। राष्ट्रीय पुनरुत्थानका युग प्रारम्भ हुआ।

१९ वीं शतीका उत्तरार्द्ध नयी राजनीतिक चेतनाका युग है। राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलनका जन्म हुआ। इसी कालमें भाषामें शिक्षाके अधिकारके लिए संघर्ष शुरू हुआ। इस राजनीतिक चेतना और संघर्षके बावजूद बर्लिन संधिके अन्तर्गत बल्गारिया तीन भागोंमें बांट दिया गया। इससे संघीय आन्दोलनका जन्म हुआ तथा १८८६ की बुखारेस्ट संधिके अंतर्गत एकीकृत बल्गारियाकी स्थापना हो गयी। इसके बाद बल्गारिया पूर्वाभिमुख हो गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि जारकालीन रूसकी भांति यहाँभी मजदूर दलकी स्थापना तथा बल्गारी कृषक समाजका राजनीतिक संगठन तैयार हो गया। प्रथम महायुद्धकी पूर्वकी स्थितिमें बल्गारियाका कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं प्रतीत होता बल्कि वह अपने क्षेत्रकी शक्ति-स्पर्द्धामें एक गौण देशके रूपमें कार्य कर रहा था। परन्तु ऊपर चर्चित बर्लिन संधिको भंगकर १९०८में बल्गारियाने अपनेको पूर्ण स्वतन्त्र देश घोषितकर अपनी स्वतंत्र स्थिति बना ली। बालकन क्षेत्रके तनावोंके परिणामस्वरूप तथा पुस्तक लेखकोंके अनुसार बल्गारियाके शासकोंका रूसके साथ असहयोग एवं बुर्जुआ नीतियोंके कारण संकट के दिन देखने पड़े। प्रथम महायुद्धके समय बल्गारियाने पहले तटस्थ रहनेकी घोषणा की, परन्तु फिर जर्मन पक्ष में युद्धमें उतर गया। इससे बल्गारियाको अपने अनेक क्षेत्र खोने पड़े, और भारी क्षतिपूर्ति करनी पड़ी, जिससे देशकी आन्तरिक आर्थिक व्यवस्था और राजनीतिक स्थिति डगमगा गयी। कृषक संघकी सरकार बनी, परन्तु १९३४ में राजतंत्री फासिस्ट शासनकी स्थापना हो गयी। दूसरे विश्वयुद्धके समय जर्मन सेनाओंने बल्गारिया की तटस्थताको भंग कर दिया। विश्वयुद्धके कारण जैसे-जैसे जर्मनीकी स्थिति डांवाडोल होती गयी, यहाँ कम्युनिस्ट आन्दोलनकारियोंकी स्थिति रूसी सहयोगसे मजबूत होती गयी और १९४९ तक देशपर कम्युनिस्टोंका पूर्ण नियन्त्रण हो गया। इस समय साम्यवादी शासन-पद्धतिकी विचारधाराके अनुकूल समाजवादी ढंगका आर्थिक विकास कार्य चल रहा है। लेखकोंका कहना है कि द्वितीय विश्वयुद्धके बाद देश विकासके ऐसे चरम उत्कर्षपर पहुंचा है जो पिछली कई शतियोंकी लम्बी अवधिमें प्राप्त नहीं किया जा सका।

इस ऐतिहासिक संकलनकी एक विवशता भी है। एक साम्यवादी सरकारके संरक्षण और प्रोत्साहनसे लिखा जानेके कारण प्रत्येक तथ्य और घटनाकी व्याख्या मार्क्सवादी ऐतिहासिक चिन्तनके अन्तर्गत की गयी है। परिणाम यह है जिन परिस्थितियों, प्रारम्भिक जीवन स्थितियों-संघर्षों (प्राकृतिक और सामाजिक) आदि मानसिकताके कारण घटनाओं और स्थितियोंका जन्म हुआ अथवा जीवन-पद्धतिका विकास हुआ, उन्हें मार्क्सवादी ढांचेमें खींच-तानकर बिठाया गया है। इससे ऐतिहासिक तटस्थ दृष्टिकी क्षति हुई है। फिरभी सजग पाठक मूल तथ्योंको इसी ग्रन्थसे ग्रहण करनेमें चूकेगा नहीं। ☐

भारतीय और पाश्चात्य धारणाओं–अवधारणाओंका उपन्यास 'अमृता'[1]

उपन्यासकार : रघुवीर चौधरी **समीक्षक : डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'**

प्रस्तुत उपन्यासके तीन सर्ग हैं -'प्रश्नार्थ', 'प्रतिभाव और 'निरुत्तर'। 'प्रश्नार्थ' ८४ पृष्ठोंका, 'प्रतिभाव' ११६ पृष्ठोंका और 'निरुत्तर' १२६ पृष्ठोंका अध्याय है। 'प्रश्नार्थ' नामक सर्गमें अमृता उदयन और अनिकेतके चरित्रके गुणों, विचारों, दृष्टिकोणों और व्यवहार तथा स्वभावका परिचय देते हुए उदयन और अनिकेतके व्यवहारोंका तुलनात्मक अध्ययन उपस्थित किया गया है। इसी सर्गमें इस बातका भी परिचय मिलता है कि उदयन और अनिकेतके साथ अमृताका उन्मुक्त व्यवहार अमृताके भाइयों और भाभियोंको जो अच्छा नहीं लगा तो अमृताने उनके साथ रहनाभी छोड़ दिया। कथावस्तुकी दृष्टिसे यहभी ज्ञात होता है कि अमृताके अनिकेतकी ओर अधिक झुक जानेके कारण उदयन अपनेको उपेक्षित एवं तिरस्कृत समझता है और नौका-विहारमें अपनेको घायल कर लेता है। स्पर्धाजन्य उसके इस व्यवहारसे खिन्न होकर अनिकेत बम्बई छोड़कर एक योजनाके सिलसिलेमें राजस्थान चला गया, जिसे उदयनने उसकी कायरता समझी। 'प्रश्नार्थ' का तात्पर्य इतनाही है कि अमृता उदयनसे यह पूछती है कि दोनों पुरुषोंकी प्रत्यक्षतः प्रेम-भावना और परोक्षतः पुरुषकी अधिकार-भावनाके प्रति समर्पित हो जानेपर उसकी स्वतन्त्रता कहांतक सुरक्षित रह सकेगी। 'प्रतिभाव' सर्गमें आचार्यश्री प्रसंगके द्वारा उदयनका ढोंगके प्रति आक्रोशपूर्ण, अमर्यादित एवं कटु व्यवहार, एक युवकके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार, छिछले स्वभाववाली युवतीके साथ उपेक्षापूर्ण अपमानजनक व्यवहार, अमृताके साथ चिढ़ानेवाला व्यवहार, अमृताका 'छाया'-त्याग, अनिकेतके उदयन और अमृताके लिए लिखे गये पत्र, उदयन और अमृताका राजस्थान पहुंचना, अमृताके साथ अनिकेतका रोमांटिक व्यवहार और उदयनका अशोभनीय, उद्धत और पागलपनेका व्यवहार, सबके मनोभाव व्यक्त करनेवाला पिकनिक और सरिता-संतरण, उदयन और ट्रेन-यात्राकी लड़कियां, उदयन-प्रेमी युगल, पुलिसकी घटना, उदयन और महिला अध्यापिका, अमृताका 'प्राचीन भारतीय नारी' विषयपर भाषण, अमृता और उसके भतीजेवाला प्रसंग, आदि घटनाएं और इन सबोंके चिन्तनका उल्लेख है। इसमें इन सबके विचारोंके उल्लेखके साथ-साथ अनिकेतका अमृता-निरपेक्ष होनेके प्रयासका प्रवंचनापूर्ण मिथ्या निश्चय, अमृताकी उदयन-विमुखता और अनिकेत-आकर्षण तथा उदयनका प्रेममें उपेक्षित और निराश व्यक्तित्वकी तीखी प्रतिक्रियाएं और आत्मघाती निश्चय (जापान-यात्रा) भी है। अमृताके स्वातन्त्र्य-प्रश्नकी उत्कटताकी प्रतीतिभी इसी अध्यायमें होता है। 'निरुत्तर' सर्गमें अव्यावहारिक उदयन,अमृताकी राजस्थान यात्रा, अमृता सम्बन्धी अनिकेतका स्वप्न, उदयनका अणुबम सम्बन्धी चिन्तन, उदयन और जापानी रोगी, 'अ' और 'उ' वाली कहानी, उदयनका सांघातिक

'अमृता' आधुनिक संवेदनाका उपन्यास है। केवल तीनही चरित्र हैं, जो विशिष्ट रचना-रीतिके द्वारा चक्र-गति पाते हैं। युद्धोत्तर विश्वके मनुष्यकी परिस्थिति तथा मनःस्थिति यहां अस्तित्ववाद तथा भारतीय दर्शनके संदर्भ में व्यक्त हुई है। उपन्यासकारने इस गम्भीर रचनाको धीरेसे पढ़नेके लिए पाठकसे अनुरोध किया है।

---

१ **'अमृता' [गुजरातीसे अनूदित उपन्यास]; लेखक : डॉ. रघुवीर चौधरी; अनुवादक : प्रा. किरण माथुर; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-११०-००१। पृष्ठ : ३४०; डिमा. ८०; मूल्य : ३५.०० रु.।**

रोग, अनिकेतके समझानेपर अमृताका उदयनके प्रति समर्पण, उदयनका शुरू-शुरूमें उसके प्रति उपेक्षा भाव, अमृता द्वारा की जानेवाली परिचर्या, अमृताका दृढ़ निश्चय, उससे प्रभावित होकर उदयनका हृदय-परिवर्तन, उदयनके उपचारमें अनिकेतकी सहायता, अमृताकी विजय, आदि घटनाएं हैं। साथही यहभी है कि अमृताका परिणीता-स्वातंत्र्य संबंधित प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है।

उपन्यासपर और अधिक विचार प्रारम्भ करनेसे पहले मैं इस उपन्यासके प्रमुख पात्र उदयन और उसके विचार एवं कार्यकी स्पष्टताके लिए आवश्यक दर्शन — अस्तित्ववाद—पर थोड़ेमें कुछ लिखना चाहता हूं। संभव है कि इससे कुछ पाठकोंकी जानकारी बढ़ सके। अस्तित्ववाद बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धका एक महत्त्वपूर्ण दर्शन है जिसका प्रारम्भ १९ वीं शताब्दीमें हो चुका था और जिसका एक रूप फ्रांसके सुप्रसिद्ध चिन्तक सार्त्रके विचारोंमें मिलता है। कीर्केगार्द, दोस्तोयवस्की, नीत्से, हेडगर, सार्त्र, काफ्का आदि मनीषियोंके चिन्तन इस दर्शनके आधार हैं।

सार्त्रकी परिकल्पनामें ऐसा समाज आता है जिसमें भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके साथ आदमीकी उदात्त आत्मिक आवश्यकताएं (सुकून, भाईचारा, प्रेम, भावनाओंकी उदात्तता आदि) भी न केवल पूरी होती हों बल्कि उससेभी आगे, उनमें चुनावकी सुविधाभी हो। स्वतन्त्रता किसी व्यक्तिके अस्तित्वके साथ जुड़ी हुई अनिवार्य शर्त है। ईश्वर नामकी कोई चीज़ नहीं है; जो कुछ है व्यक्ति की इच्छा है या उसकी नैतिक अन्तर्दृष्टि है। सार्त्रकी स्वतन्त्रताकी अवधारणाको अपनानेके लिए हर देशका आदमी ललक उठा, उससे प्रभावित हो गया, लेकिन जब उसे जीनेका सवाल आया तो अपने देश, काल, संस्कारके अनुसार दोहरे मापदंडोंमें जीनेके लिए अभिशप्त हो गया। उनके अनुसार व्यक्तित्व 'पारदर्शी' होना चाहिये अर्थात् कोई किसीसे किसीभी प्रकारका भेद न रखे वर्ना संबंधोंमें दरार पड़ जायेगी। "अस्तित्वका मुख्य अर्थ है स्वतन्त्रता अर्थात् मनुष्य मृत्यु पर्यन्त अपनेको, जो वह हो सकता है, बनानेका प्रयत्न करता है···मैं मरनेके लिए स्वतन्त्र नहीं हूं, बल्कि एक स्वतन्त्र व्यक्ति हूं जो मरता है। मृत्यु मेरे लिए एक अबूझ सीमा है, जैसे दूसरोंके अस्तित्वके कारण मेरी स्वतंत्रताकी भी एक सीमा बन जाती है"—ज्यां पाल सार्त्र। सार्त्रके दर्शनकी उदात्तता, टूटे हुए निराश मनको विश्वासकी सघनतासे भर देनेकी क्षमता जो कुछ है उसे भरपूर जीनेकी आकांक्षाके साथ एक आदर्श समाजके निर्माण और उसके विकासके लिए संकल्पशील होनेकी उत्कटता बड़ीही प्रभावी है। व्यक्तित्वकी पारदर्शिताके मार्गमें सबसे बड़ी रुकावट है 'बुराई' अर्थात् विभिन्न सिद्धान्तोंसे प्रेरित और व्यक्तित्ववाले व्यक्तिकी दृष्टिमें अनुचित परिणामवाले कार्य। सार्त्रका विचार है कि वे किसीके भी प्रति प्रशंसाका भाव नहीं रखते हैं और न वे यही चाहते हैं कि कोई उनकी प्रशंसा करे। असमर्थ और अयोग्यके प्रति कटु होना, उनसे झल्ला उटना, उसकी योग्यता और क्षमतापर विश्वास न कर पाना अस्तित्ववादियोंके लिए सामान्य बात है। सार्त्रका विचार है कि मनुष्यको आज़ाद होनेकी यंत्रणा भोगनी ही पड़ती है। सार्त्र अराजकतावादी थे, सत्ताके शाश्वत विरोधी।

मनुष्य समस्त विश्वके केन्द्रमें स्थापित है। वह समस्त सृष्टिका चरम लक्ष्य है। उसका अस्तित्व उसके अपने आपके लिए हैं। यह वास्तविक संसार असंगत (इर्रेशनल), अव्यवस्थित, अवधारित (डिटरमिन्ड) और अज्ञेय है। मनुष्य वह है जो अपने आपको बनाता है। यह उसकी केन्द्रीय भावना है। उसका अस्तित्व उसके अपने लिए है अर्थात् उसका अस्तित्व चेतनाका अस्तित्व है। इसका मुख्य गुण है 'क्रियाशीलता'। इसपर किसीका प्रभाव नहीं पड़ता। वह स्वाभिप्रेत क्रियाओंसे ही प्रभावित रहता है। द्वितीय महायुद्धके बाद मनुष्यके समाजमें विभिन्न स्तरके लोगोंमें इतनी विषमता पैदा हो गयी कि आदमी नितान्त असहाय और भयाक्रांत हो गया। अस्तित्ववादने इस मनुष्यके लिए आशाका एक संदेश दिया। पूंजीवादने मनुष्यको गुलाम बनाकर उसे मशीनका एक पुर्जा मात्र बना दिया था। अस्तित्ववादने घोषित किया कि मनुष्य स्वतन्त्र है और उसकी स्वतन्त्रता इस बातमें निहित है कि वह अनन्त सम्भावनाओंमें से किसी एक सम्भावनाको चुनले। इस प्रकार मनुष्य जो चाहेगा, जो संभावना चुनेगा वैसाही बनेगा। वैसा बननेकी सारी जिम्मेदारी उसीपर है। सार्त्रका कथन है कि जो बुद्धिवादी सामाजिक एवं राजनीतिक बुराइयोंका सक्रिय प्रतिरोध नहीं करते वे बहुत बड़े दोषी हैं। एक दूसरे अस्तित्ववादी कामूने विद्रोहको मानव-जातिका एक आवश्यक 'आयाम' माना है। उसके अनुसार इस बेहूदी दुनियांका कोई अर्थ नहीं। उसका कहना है कि अतीतकी किसीभी चिन्तनात्मक प्रणालीमें मानव-जीवनको कोई निश्चित मार्गदर्शन नहीं प्राप्त होता। विद्रोह दो प्रकारके होते हैं-

(i) मानव अवस्थाके विरुद्ध और (ii) मानव-अन्यायके विरुद्ध। विद्रोही जिन परिस्थितियोंमें रहता है उन्हें स्वीकार करनेसे इन्कार करता है। 'विद्रोह' एक ऐसी सतत प्रक्रिया है जो अन्तर्विरोधोंकी शत्रु है और 'व्यवस्था' अपने गर्भमें उन अन्तर्विरोधोंका पोषण करती है। वास्तविक विद्रोहमें जीवन और समाजकी असंगतियोंके विरुद्ध संघर्ष की प्रक्रिया है जिसका प्रयोजन है 'पूर्णता'। काफ्काने अपनी रचनाओंमें आजके मानवकी भयावह परिस्थिति की अभिव्यक्ति की है। उसकी रचनाका मुख्य विषय है भूलभुलैयामें खोया हुआ मनुष्य, जिसके पास मार्गदर्शक सूत्र कोई नहीं है और ऐसा इसलिए है कि वह उसे चाहता नहीं। इस कारण आजके मनुष्यमें दोष, चिन्ता और इतिहासकी असंगतिकी भावना उत्पन्न हो जाती है। मार्टिन एस्सलिनके शब्दोंमें, "वह मनुष्यकी धार्मिक, आध्यात्मिक और अलौकिक जड़ोंसे विछिन्न रहता है,... मनुष्य खो गया है, उसके समस्त क्रिया-कलाप, ज्ञान-शून्य असंगत और अर्थहीन है।" अमरीकी विश्वकोषके अनुसार मानवकी समस्याओंका ही केन्द्रीय भूतरूपमें स्वीकार करना और यह स्वीकार करना कि मनुष्यके लिए स्वच्छन्दताकी अनिवार्यता है, अस्तित्ववादकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आशाप्रद विशेषता है। प्रसिद्ध धार्मिक विचारक सारेन कीर्केगार्दने पूर्वमान्य सामाजिक मान्यताओं (विधि-निषेधों) तथा धर्मकी नियंत्रणकारी एवं विघटनकारी प्रवृत्तियोंका घोर विरोध किया। कीर्केगार्द हीगेल के आदर्शवादके घोर विरोधी थे। उनको मानवके लिए वैयक्तिक स्वच्छन्दताही काम्य और मान्य थी। मनुष्य (अस्तित्व) विचार (आइडिया) अथवा सार (एं'सेंन्स) से पहले है। सभी विचारों, तत्त्वों, सिद्धान्तों, नियमोंको अस्तित्ववादी, व्यक्ति-विशेषका व्यक्तिगत दृष्टिकोण मानते हैं और इसलिए उनको सर्वांगीण सार्वभौम एवं सार्वजनिक नहीं स्वीकारते। अतः परम्परागत कुछभी हमारे लिए अनिवार्य या मान्य नहीं है। व्यक्तिका अस्तित्व किसी बाह्य सत्ता या अस्तित्वके अधीन नहीं है। मनुष्यही अपने भाग्यका निर्माता और अपने कर्मोंके लिए स्वयं उत्तरदायी है। यह आत्मस्वातंत्र्य और वैयक्तिक स्वच्छन्दता दारुण दुःखकी कीमतपर भी वरेण्य है। धर्म और ईश्वरके सम्बन्धमें अस्तित्वादियोंके दो वर्ग हैं:— आस्थावादी और अनास्थावादी। प्रधानता दूसरे वर्गकी ही है। अस्तित्ववादियोंके लिए ज्ञान-विज्ञान महत्त्वहीन है क्योंकि उससे अस्तित्व-बोधमें सहायता नहीं मिलती।

नारीका शाश्वत प्रश्न है कि पुरुषकी प्रत्यक्षतः प्रेम-भावना और परोक्षतः पुरुषकी अधिकार-भावनाके प्रति समर्पित हो जानेपर उसकी स्वतंत्रता कहांतक सुरक्षित रह सकेगी।

मानव-अस्तित्वके ज्ञानके लिए पूर्व प्रचलित परम्परा, सामाजिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, धार्मिक, विश्वास, नियम-सिद्धान्त आदिके सहारेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है कष्ट और वेदानुभूतिकी क्योंकि मानव-अस्तित्व अनिवार्यतः वेदनामय और दुखद है। सुखकी लालसा निरर्थक है,मिथ्या है। सुख और विकासके लिए किये गये सभी प्रकारके और सभी कोटिके प्रयासोंने मनुष्यकी स्वाधीनता बाधित ही की है। उनसे सन्तोष नहीं मिलता। दुख और मृत्युकी चिन्ता नहीं क्योंकि वे जीवनके अनिवार्य अंग हैं। मृत्युका साहसपूर्वक वरण करना काम्य है। मृत्यु का साहसपूर्वक वरण मानवकी वैक्तिक स्वच्छन्दताका सबल प्रमाण है। उनके अनुसार मनुष्यकी जिंदगी और इस संसारके सभी व्यापार निरर्थक हैं—एक अकारथ श्रम है। निष्कर्षके रूपमें अस्तित्ववादमें निम्नलिखित मुख्य बातें पायी जाती हैं—१. भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति २. आत्मिक आवश्यकताओंकी पूर्ति ३. अपनी इच्छाके अनुकूल चुनावकी सुविधा ४. अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता ५. व्यक्तिकी इच्छाकी प्रधानता ६. ईश्वरका अभाव ७. किसीसे किसीभी प्रकारका भेदभाव न रखना ८. न किसी की प्रशंसा करना और न किसीसे प्रशंसा चाहना ९. असमर्थ और अयोग्यके प्रति कटु होना १०. ऐसोंके विरुद्ध झल्लाना खीझना ११. दूसरोंकी योग्यता और क्षमतापर अविश्वास १२. सत्ताका शाश्वत विरोध १३. मनुष्यके अस्तित्वका उसके अपने-आपके लिए ही होना १४. इस वास्तविक संसारका असंगत, अव्यवस्थित,अवधारित और अज्ञेय होना १५ मनुष्यका मुख्य गुण है क्रियाशीलता १६. सामाजिक और राजनीतिक बुराइयोंका सक्रिय विरोध करना १७. अतीतका विरोध—(i) मानवकी वर्तमान अवस्थाके प्रति (ii) मानव-अन्यायके विरुद्ध (सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक प्रवृत्तियोंका विरोध) १८. आदर्शवादकी अस्वीकृति १९. परम्पराका अस्वीकार २०. दारुण दुखकी कीमतपर भी स्वच्छन्दताका काम्य होना २२. सुख का विरोध २२. मृत्युका साहसपूर्वक मुकाबला करना।

इस 'अमृता' उपन्यासके नायक—उदयन—में अस्तित्ववादके उपयुक्त सभी तत्त्व मूर्त, साक्षात् और

सजीव रूपमें प्राप्य हैं। उसकी जीवन-गाथा, अपने अभिन्न मित्रोंसे उसके सम्बन्धोंका कटु-मधु स्वरूप, उसकी अपनी क्रियाएं, उसके अपने विचार और उसके सम्बन्धमें उसके मित्र (अमृता और अनिकेत) के विचार—ये सभी इसी तथ्यके द्योतक हैं। उदयन कहता है, "मैं तो वर्तमानको मानता हूं—अपूर्ण वर्तमान कालको—जो चल रहा है…और जो मेरे पीछे-पीछे है उसमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं…जो मृत है उसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।" (पृष्ठ-२); "हित-अहित, अच्छा-बुरा ये सब सतही भेद क्या हमें स्वयंसे दूर नहीं ले जाते ?…हम अपने अस्तित्वके प्रति निष्ठावान् रहें यह आवश्यक है"…"मैं ऐसे मानव-मूल्य स्थापित करूंगा, जिसके केन्द्रमें होगा मानवका अस्तित्व। उपरनों और छायाओंसे मुक्त—स्वाधीन अस्तित्व" (पृष्ठ १०); "जो कुछ तोड़ सके हैं—वे ही सच्चे धार्मिक हैं…" (पृष्ठ ११); "अब हमें अपने अस्तित्वको प्रमाणित करना है" (पृष्ठ १२३); "…स्थायित्व तो केवल शून्यमें ही सम्भव है" (पृष्ठ १६८)"… पूर्णाहुति अथवा मृत्यु अन्तिम वास्तविकता है।" (पृष्ठ २४३);पहले मेरा उसमें (ईश्वरमें) विश्वास नहीं था, अब उस विश्वासमें भी विश्वास नहीं रहा। अब मैं नास्तिक या आस्तिक नहीं, संशयात्मा हूं।" (पृष्ठ २५६); "… गुजरातीमें साहित्य है ? क्या पढ़ायें ? एक-एक पुस्तककी धज्जियां उड़ा दूंगा।…इन असाहित्यिक पुस्तकों… महाकवि न्हानालाल……जिस भाषामें ऐसे महाकवि हों उस भाषाके विद्वानोंमें साहित्यकी प्राथमिक समझभी कैसे-हो सकती है ?" (पृष्ठ ६); "…मैं देखूंगा कि कबतक लोग मुझे अस्वीकार करते हैं"। (पृष्ठ १०) "… कैसे कैसे मूर्खोंके साथ वह पत्र-व्यवहार करता है ?" (पृष्ठ ६); वह ताजमहलको एक कब्र मानता है। (पृष्ठ २२); उसे अपनी प्रशंसाभी रुचिकर नहीं क्योंकि इससे अपने सबल व्यक्तित्वपर शंका पैदा होती है। "वास्तवमें 'सुख' शब्दमें भी मुझे अतिशयोक्ति लगती है। लाइफ इज़ गुड बिकाज़ इट इज पेनफुल" (पृष्ठ ३०); "हे तटस्थ दर्शको ! आ जाओ। यह प्रवाह बहा जाता है। इसमें प्रवेश किये बिना जो बहा जा रहा है उसका खयाल नहीं आ सकता।…गतिको देखा नहीं जा सकता, अनुभव करना होता है…तुम लोग जिन्दगीसे बच-बचकर चलना चाहते हो' (पृष्ठ १५३) "…गतिहीनताको मैं बेहद नापसन्द करता हूं" (पृष्ठ २६४); "…दूसरेको मानूं तो फिर मेरी अपनी सत्ताका क्या ?" (पृष्ठ २६६);

"…यह उदयन इतना बुद्धिवादी है कि यह शतांश बुद्धि-हीनताको भी सह नहीं सकता और इसीलिए भावुकता, आस्था, आस्तिकता प्रेम, आदिको भी माननेके लिए तैयार नहीं। यह प्रेम और शरीरको एक मानता है और अमृताके सौन्दर्यको भोगका विषय। यह कहता है, 'मेरा तिरस्कृत अस्तित्व अपने भीतर ज्वालामुखीके विस्फोटकी कामना कर रहा है…तेरे वक्षमें आजतक संगोपित सुधाको मेरी आग एकही क्षणमें कालकूट बना देगी…तेरी संवेदनाओं का कौमार्य इस प्रवाहमें बह जायेगा…(पृष्ठ १५६)"। इसीलिए यह अमृता अनिकेत, ताजमहल, ताश खेलती हल्की छिछली युवतियों, अस्तित्ववादकी अपरिपक्व ज्ञाता महिला, व्यावहारिक आचार्यश्री, गुप्तचर पुलिस के अधिकारियों, थानेदारों और पुलिसमैन, पुरानी पीढ़ी के लेखक, शायर, कवि, आदि सबके प्रति असहिष्णु, आक्रामक, और तीक्ष्णतम रूपसे आलोचक है। यह सदैव ही अपनी इच्छा, अपने विचार और अपने दृष्टिकोणको ही श्रेष्ट मानता है। अमृताकी दृष्टिमें उदयन पैराग्राफ पर पैराग्राफ बोलनेवाला (पृष्ठ १६), साहसी (पृष्ठ १६) निखालस (पृष्ठ १७), आक्रामक (पृ. १७) सच्चा आदमी (पृ. १७) उसके प्रति प्रकट और स्पष्ट रुखवाला (पृ. १७) सहज और स्वामित्व वृत्तिके दूषणसे युक्त (पृ. ८१) उसके नारी रूपके प्रति जागरूक (पृ. ८२), परपीड़क 'राक्षस' (पृ. १००), 'बिखरा हुआ' (पृ. १०६), विजेता बननेका अभिलाषी, प्रतिभाव-युक्त (पृ. १०६), "मत न देनेवाले मौनको भी वह आत्मवंचना मानता है। अन्दर जो कुछ जाग उठता है उसे छिपानेके लिए वह ओठ बन्द नहीं रखता…पीछे मुड़कर देखता नहीं…उसके रवैयेमें अतिरेक है" (पृ. १००), स्वार्थी और कायर (पृ. १३८), 'दूसरोंकी कीमत पर' अन्धकार विदीर्ण करनेकी इच्छावाला (पृ. १३६), निष्ठुर (पृ. २१०), आत्मरत (पृ. १५१), दूसरेको दुःखी किये बगैर अपनेको ठीक तरहसे व्यक्त न कर पानेवाला (पृ. २१०), अविश्वासी, कदम-कदमपर अविश्वासी (पृ. २१०), सबकी अवहेलना करनेवाला (पृ. २११) अपनेको अधिक समझनेवाला (पृ. २११) दूसरोंकी कुछन सुनकर उन्हें सुधारने योग्य समझनेवाला (पृ. २११), स्वयं न सुधरनेवाला अशान्त, अधीर, संघर्षप्रिय (पृ. २१३), अश्रद्धावान् (पृ. २१३) आदि समझती है। उदयनके विषयमें अनिकेतके विचार इस प्रकार हैं, "उदयनकी जिजीविषा मुझसे अधिक प्रबल है। उसकी शक्तियां और

उनका उपयोग करनेका साहसभी उसमें अधिक है। वह इतना सच्चा है कि सामाजिक अन्याय और सार्वजनिक प्रवंचनाके प्रतिकारके लिए अपने सुखोंसे वंचित रह सकता है। अन्यायसे प्राप्त दुःख तो उसके लिए दुःख होता ही नहीं, उसे तो वह पचा गया है।'' (पृ. ७३)। वह उदयनके अन्दर रस नहीं अम्ल मानता है। (पृ. ११९)। 'तुझमें पर-पीड़क वृत्ति है।' (पृ. १२५)। विवेकके अभावमें उदयनकी प्रतिभाका क्षय होने लगा है। (पृ. १४४)। उदयनकी माताजीका विचार यह था कि उसके मनमें सदा प्रतिस्पर्द्धाका ही भाव रहता है। इस उदयनने मृत्यु और रोगका इस असाधारण साहसके साथ सामना किया है कि अपनी मृत्युके आगमनकी एक-एक अवस्थाको अनुभव करता हुआभी वह संतुलित रहा। उसकी जीवनी शक्तिको देखकर डॉक्टरभी आश्चर्यचकित हो गया था। वह अनिकेतसे कहता है, ''रोग सज्जित होकर मेरे सामने आये फिर उसके साथ लड़ सकूंगा।'' (पृ. ३५३)।

'अमृता' उपन्यासमें यदि यह उदयन अस्तित्ववादका प्रतीक है तो अनिकेत और अमृता भारतीय दर्शन और विचारधाराके विभिन्न रूपों एवं पक्षोंके प्रतीक हैं। अनिकेतका स्वरूप इस प्रकार है—''अतीत और भविष्य दोनोंको (मानता हूं)···अतीतके सहारे और अनागतकी प्रतीक्षामें ही जीना होता है। मानवके दो चरण—एक स्मृतिमें, दूसरा श्रद्धाकी ओर।'' (पृ. २) मेरा लक्ष्यभी निष्ठाही है। केवल अपने प्रति नहीं, समग्रके प्रति। बल्कि समग्रका ध्यान रहे तो स्वयंका उसमें समावेश हो जाता है।'' (पृ. ५), 'अनिकेतभी औपचारिकताओंका विरोध करता है फिरभी किसीका सम्मान करनेमें उसे विरोध नहीं। (पृ. ७), वह परम्परा, विरासत, संस्कृति और श्रद्धा को मानता है। (पृ. १०) स्वस्थ और अमृता (आकर्षण) की ओर निस्पृही जैसा व्यवहार (पृ. १०); उसके आनेसे किसीकी आवाज दब जाये, यह उसे पसन्द नहीं, और जब किसीका प्रफुल्लित मन संगीतकी लहरियोंमें आलोड़ित हो रहा हो, तब विघ्नकर्त्ता बनना, यह तो एक अपराध है।'' (पृ. १३); परिचितोंसे पूर्णतः परिचित न होना—दुःख-दर्द न जानना—वह उचित नहीं समझता'' (पृ. १३), ''यह जगत् स्व-अर्थोंसे झुड़ा हुआ है, यह ठोस वास्तविकता है। किंतु आदमी केवल ठोस वास्तविकतासे जी नहीं सकता। आकाश बिना वह रह नहीं सकता।'' (पृ.१४) सबके दृष्टिकोण—टकराहटपर दूसरेके दृष्टिकोण को भी समझनेका आग्रही (पृ. १५) सबके आनन्दित होने

आधुनिक चेतनाके बुद्धिवादीकी मान्यता है : मैं तो वर्तमानको मानता हूं—अपूर्ण वर्तमान कालको जो चल रहा है···जो मेरे पीठ पीछे है उसमें मुझे कोई दिलचस्पी नहीं···जो मृत है उसके साथ मेरा कोई संबंध नहीं। हित-अहित, अच्छा-बुरा ये सब सतही भेद क्या हमें स्वयंसे दूर नहीं ले जाते ?—हम अपने अस्तित्वके प्रति निष्ठावान् रहें यह आवश्यक है···मैं ऐसे मानव-मूल्य स्थापित करुंगा जिसके केन्द्रमें होगा मानवका अस्तित्व·· मुक्त —स्वाधीन अस्तित्व।

पर स्वयंभी आनन्दित (पृ. १५), विज्ञान और साहित्य रसका समन्वयकर्त्ता (पृ. १५), शारीरिक सौन्दर्य, सिमिट्री और ग्रेस (पृ. १५), अल्पभाषी (पृ.१६), मधुरभाषी (पृ. १६) विवेकशील (पृ. १६) व्यवहारमें आभिजात्यका सौन्दर्य (पृ. १६), शालीन (पृ. १६) अनिवार्य और हृद्य (पृ. १६) विदग्ध (पृ. १७) शान्त (पृ. १७) सामनेवालेका अधिक ध्यान रखनेवाला (पृ. १७) गोपनकी रुचि (पृ. १७) विवाद न करनेवाला (पृ. १७) रागात्मक वाणी (पृ. १७) सौन्दर्यसे पूर्णतः अभिभूत होकर कल्पनाशील हो उठनेवाला और उससे प्रेमकर उठनेवाली रागमयी चेतना (पृ. २४), ''समयको लिया या दिया नहीं जा सकता। वह निराकार है···चिरन्तन है···उसका···आदान-प्रदान करना हमारे वशमें नहीं है। हम तो उससे निरपेक्ष रहकर जो अपने अधिकारमें है उसीका आदान-प्रदान कर सकते हैं। (पृ. २३) ''वर्तमान विश्वसे असम्पृक्त रहकर हम कैसे जी सकते हैं···अपने विषयको अन्य विषयोंके सन्दर्भमें जाना जा सके, केवल इसी दृष्टिसे मैं ये सब पत्र-पत्रिकाएं पढ़ता हूं'' (पृ. २४) ''प्रेमीको प्राप्त किये बिनाभी प्रेम प्राप्त हो सकता है'' (पृ. ३२), ''मैं अपना विश्वास तुझसे कह रहा हूं। दुनियांके सब शास्त्र उसकी अवगणना करें या मान्यता दें, इससे उसमें कोई फर्क पड़नेवाला नहीं है। इस समग्रके साथ मेरा सम्बन्ध विश्वासपर आधारित हैं, कारणपर नहीं। मैं विज्ञानको छोड़ विश्वासके पास आया हूं और यह कोई मेरी बाहरी दौड़-धूप नहीं। मेरी अन्तःसृष्टिकी बात है। मेरी सृष्टिमें समग्रको स्थान है और समग्रको नापनेमें विज्ञान अधूरा सिद्ध हो चुका है। जो तर्कातीत और इन्द्रियातीत है उसेभी मैं स्वीकारता हूं'' (पृ. ३२); जिनमें विश्वासका अभाव होगा उन्हेंही भयका अनुभव होगा'' (पृ. ३३), ''विधाताकी ऐसी रचना (अमृता) के

सौहार्दका अनुभव हो उसे मैं अपने जीवनकी धन्यता मानता हूँ। मुझमें उसके प्रति आदर है। परिचित-अपरिचितके आदर-सत्कारको मैं अपना व्यवहार धर्म समझता हूं तो फिर अमृताको कैसे नकार सकता हूँ।'' (पृ. ३३); ''जो आगे जाते हैं उनके पदचिह्न किसी-न-किसीको तो पीछे आनेके लिए प्रेरित करतेही रहते हैं।'' (पृ. ६०) ''कामना वहां-वहां खींच ले जाती हैं।'' (पृ. ६१); ''वास्तविक लगे वही सत् है, यह माना नहीं जा सकता है। उस वास्तव और सत्में अन्तर है।'' (पृ. ६४) ''तुम्हारे सौन्दर्य और सौहार्दके सामने मेरी समस्त वर्जनाएं हतप्रभ हो गयी हैं''। (पृ. ७१); ''अमृता मैं तुम्हें चाहता हूं। कर्तव्य और विवेककी वर्जनाओंसे मैं अपनेको रोक न सका''। (पृ. ७१); ''मैं प्रत्येकके व्यक्तिगत स्वातंत्र्यको स्वीकार करता हूं'' (पृ. ७४); उदार (पृ. ७५); अनिकेत माँगता नहीं, जो दे दिया सो दे दिया।'' (पृ. १०६); वह अमृतासे दूर हटा किन्तु इस बातका ध्यान रखते हुए कि अमृताकी अवहेलना न हो।'' (पृ. १०६); प्रेमकी विजय स्वीकारकर उसने अपने आपको छोटा बनने दिया।' (पृ. १०६); प्रेमके क्षेत्रमें भी प्राप्तिके बिनाही वह प्रसन्न रह सकनेका अभिलाषी है; पर्वत शिखरकी भांति अडिग, स्थिर (पृ. १०७); किसीको भी अपने तप्त खारेपनमें सोखनेका इच्छुक नहीं (पृ. १०६) अस्तित्वकी समग्रताको वह केवल शरीरतक ही सीमित नहीं मानता (पृ. ११०); अमृताका संस्पर्श एवं अमृताकी स्मृति उनके मन और उसकी चेतनाको रागमय, भावमय तरंगित, स्पन्दित और उद्दीप्त करके उसे अवशकर देती है और कामनाओंकी पूर्तिकी कामना करते हुए कह उठता है,'' साहस हो तो रुक जा। जा रहा है यह तो साहस नहीं पलायन है, रुक जा। वे दिन लौटकर नहीं आयेंगे। यौवनकी ऊष्माकी बसन्ती सृष्टिकी शरणमें जा।'' (पृ. १११); मैत्रीमें त्यागका स्थान है'' (पृ. १११); उसकी भावना और कामनापर कर्त्तव्य, विवेक और संयमका शासन है; वह स्पर्द्धावान् ईर्ष्यालु, द्वेषी, संघर्षप्रिय नहीं; एक ओर तो अनिकेत सब कुछ बदल डालनेकी बातें करता है और दूसरी ओर अपने व्यक्तिगत आचरणमें नितान्त स्वच्छन्द रहनेके विरुद्ध, वह कई बार इंगित करता हैं (पृ. १२१-१२२); ''आदमी विश्व में अकेला है, यह तो कुछेक अनुभवोंसे उद्भूत एक संभ्रम है, अन्तिम वास्तविकता नहीं। आदमी अकेला नहीं, वह समग्रके साथ जुड़ा हुआ है। अकेलापन उसका अस्वाभाविक अपरिहार्य है'' (पृ. १०२); वह दूसरोंकी शंकाको मूल से दूर करनेमें भी व्यक्तित्वका विकास मानता है—वह मानता है कि सब-कुछ छोड़कर चले जानेसे अभिमान, अभिमानसे अविचारी कदम, उसके बाद दम्भ, दम्भसे अशोभनीय परिस्थितिजन्य दुःख, फिर दुःख सह लेनेका शौक और उससे नास्तिकता का जन्म होता है'' (पृ. २३); ''जो सामयिक है, तत्कालीन है, वह सम्पूर्ण यथार्थ नहीं'' (पृ. १३१); ''मैं अपने लिए स्वातन्त्र्य मांगता हूं, उसके साथ-साथ समग्र विश्वके स्वातंत्र्यके अधिकारको स्वीकार कर लेता हूं।'' (पृ. १४४); आशावादी; काव्यात्मक; ''नारीके समर्पणमें उन्नयन देखनेवाली बातसे मैं सहमत हूं। किंतु समर्पण किसका? स्वातंत्र्यका या अहम्का? दूसरेकी स्वतंत्रताकी पूर्ण स्वीकृति अर्थात् प्रेम। स्वामी औरस्वामिनी जैसे शब्दोंके अर्थ-संकेत मुझे पसन्द नहीं।'' (पृ. १६२); ''उसके कहने और अनुभव करनेमें भेद है। मांसल सौन्दर्यकी तृषा उसकी आंखोंमें चमक उठी थी।'' (पृ. १६८) ''मैं तेरे संबंधमें निरपेक्ष होनेके लिए संघर्ष करुंगा''। (पृ. २०२); ''निस्तरंग चित्तकी अवस्था कैसे प्राप्त करुं···(पृ. २०४); आवश्यकता पड़नेपर वह परिचित या अपरिचित सबकी सहायता को तत्पर; उदयनके लिए रक्तदान और अमृता-दान भी।

इस प्रकार यदि हम ध्यानसे देखें तो अनिकेत और उदयन दोनों दो संस्कृतियों, दो विचारधाराओं, एवं दो दार्शनिक सिद्धान्तोंके प्रतीक लगते हैं। उनमें से अनिकेत नवीनतम भारतीय जीवन-दृष्टिका प्रतीक है और उदयन नवीनतम पाश्चात्य जीवन-दृष्टि अस्तित्ववादका। अनिकेत या नवीनतम भारतीय दृष्टिमें समग्रता, आदर्शवाद, भावुकता, आस्तिकता, प्राचीन और नवीनमें समन्वय अतीत-भविष्य-वर्तमानका समन्वय, रागात्मकता, सत्यं शिवं-सुन्दरम्के प्रति आग्रह, रचनात्मक प्रवृत्ति, सबके सुख एवं कल्याणकी प्रवृत्ति, सबकी स्वतंत्रताकी रक्षा विज्ञान और साहित्यका समन्वय, भौतिकता और आत्मिकताका समन्वय, धर्मपरायणता, विश्वास, परम्परा पालन, त्याग, उदारता, नारीका स्वस्थ समर्पण, अनाक्रामकता, सत्य और प्रिय संभाषण, अप्रिय सत्यसे विमुखता आदि बातें हैं। उदयन या अस्तित्ववादमें विशुद्धता बुद्धिवाद, आक्रामकता, यथार्थवाद, आत्मरति, 'पर' से परांमुखता, नास्तिकता, इतिहास-भूत और भवि

से पराङ्मुखता, भोगवाद, वर्तमानके प्रति समर्पण, परम्परासे विद्रोह, धर्महीनता, विज्ञानके प्रति समर्पण, अपने अस्तित्व, अपनी स्वतंत्रता और अपने दृष्टिकोणके प्रति आग्रह, अहम्, दूसरोंपर अपनेको बलात् लादना पर-पीड़न, मुखरता, विध्वंस, मृत्यु-परायणता, कटु सत्य-भाषण, व्यंग्य, अतीन्द्रिय सत्यको न माननेका आग्रह आदि तत्त्व हैं। पहला आकर्षक, मृदु, शान्त, सुखद, प्रिय और आत्मवत् है तो दूसरा पीड़क, अनाकर्षक, उग्र, क्रूर, कठोर, अप्रिय, विकर्षक, अशान्त और आत्मघाती है। पहला प्रिय सत्य है तो दूसरा अप्रिय यथार्थ। पहला आकर्षकभी है और उसे अपनानेकी इच्छाभी होती है, दूसरा आकर्षक, तेजस्वी तथा सच्चा तो है, परन्तु उसे अपनानेकी इच्छा नहीं होती। उसके कल्याणकी भावनासे तथा अपनेको निःशेष करनेकी महती भावनाके विना उसके प्रति समर्पणका भाव नहीं जग सकता। पहलेसे हार जानेकी, उसमें खो जानेकी, उसमें लीन हो जानेकी भावना अपने-आप पैदा होती है और उसमें सुखकी अनुभूति होती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आधुनिक भारतीय जीवन-चेतना उपर्युक्त दोनोंमें से किसको अपनाये। मेरा विचार है कि आधुनिक भारतीय चेतनाके प्रतीकके रूपमें अमृता की कल्पना की गयी है। अमृता यानी एक नारी; लेकिन नारी ही क्यों?—पुरुष क्यों नहीं? कारण यह है कि—(i) चेतना स्वयं एक स्त्रीलिंग शब्द है; और (ii) आधुनिक भारतीय चेतना आजभी 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की, सबकी स्वतंत्रताकी, सबका कल्याण करनेकी, विनाशसे सम्पूर्ण मानवताको बचानेकी, संघर्षसे सबको बचानेकी, सबकी सार्वभौमिक अखण्डता (स्वातंत्र्य) की; सबमें समन्वय स्थापित करनेकी, सब विचारधाराओंके श्रेष्ठतम तत्त्वोंको ग्रहण करनेकी, सबको समझनेकी और इसी तरहकी प्रियतर, सुखद और श्रेय-प्रेयकी, प्रिय, सुन्दर, मधुर, कोमल भावों, कल्पनाओं और विचारोंवाली है। वह निर्माण, पोषण और विकासकी द्योतक है। प्रकृति द्वारा निर्मित मादा शरीर-रचनाकी बात छोड़ दें तो 'नारी' अवधारणा या कल्पनाका आधार प्रत्यय (मातृत्व) इन्हीं भावनाओंका समूह है। इन्हीं भावोंकी वाचक संज्ञा 'नारी' है। जब काव्यकारने काव्यका उद्देश्य 'कांतासम्मिततयोपदेशः' माना था तब उसका उद्देश्य यही था। तो इस चेतनाके प्रतीकके रूपमें अमृताकी कल्पना की गयी। भारतीय संस्कृति और अमृतामें अद्भुत साम्य है; एकके जनक-जननीका देहान्त हो गया है और दूसरेकी

आस्थावादी भारतीय चिन्तन परम्पराके पात्रकी विचारणा है : आदमी विश्वमें अकेला है? नहीं, अकेला नहीं, वह समग्रके साथ जुड़ा हुआ है। अनेकपर उसका अवलम्बन अपरिहार्य है।… जो सामयिक है, तत्कालीन है, वह सम्पूर्ण यथार्थ नहीं…मैं अपने लिए स्वातन्त्र्य मांगता हूं, उसके साथ-साथ समग्र विश्वके स्वातन्त्र्यके अधिकारको स्वीकार कर लेता हूं दूसरेकी स्वतन्त्रता की पूर्ण स्वीकृति अर्थात् प्रेम।

जन्मदायिनी परिस्थितियों, वृत्तियों, प्रवृत्तियोंका तथा जनक विधायक-ऋषि-मुनियों, का अभाव है; एकका विशाल भवन और उसके भाई-भाभी आदि हैं, दूसरेको (संस्कृतिको) अपने भीतर सुरक्षित रखनेवाला साहित्य, याद दिलानेवाला इतिहास तथा उसके अनुसार, निर्जीव रूढ़ियों-कर्मकाण्डोंके अनुरूप जीवन व्यतीत करनेवाले पुरातनपन्थी समुदाय अथवा उसके मूलभूत तथ्यों (एक खून) वाली किन्तु अपने वर्तमान बाह्य अस्तित्वमें भिन्न संस्कृतियाँ (इस्लाम, द्रविड़, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन आदि) हैं; अमृता धन-वैभवसे सम्पन्न घरवाली हैं तो नवीन भारतीय चेतनाके पोषक-पालक या आश्रय देने वाले प्राचीन धर्म, प्राचीन सभ्यता आदि असाधारण रूप से विभव-सम्पन्न है; अमृता सुन्दर, सौम्य, आकर्षक, हृदय तत्त्व प्रधान, आस्तिक, सेवा-परायण, समन्वयशीला है तो येही गुण आधुनिक भारतीय चेतनाके भी हैं; अमृता बुद्धि-वैभवसे सम्पन्न है तो आधुनिक भारतीय चेतनामें भी बुद्धि-वैभवकी कमी नहीं (स्वामी दयानन्द, तिलक, रानाडे, जवाहर, लाजपतराय, चितरंजन दास, रमन, बोस, सप्रू, गो. ही. ओझा, मोतीलाल, मालवीय, राधाकृष्णन्, नारलीकर, परांजपे, खुराना, सुनीतिकुमार चटर्जी आदि); अमृताको यदि बुद्धि-प्रधान—परिवारसे बाहरके व्यक्ति उदयनने बौद्धिक उपलब्धियोंमें सहायता दी तो नवीन भारतीय चेतनाकी बौद्धिक उपलब्धियोंके वैभवका श्रेय पाश्चात्य जगत्के बुद्धि-वैभवको है जिसके बिना भारत, अफ़गानिस्तान, ईरान, अरब देश, यूनान, मिस्र आदिकी तरहही रह जाता; अमृता, अनिकेत और उदयन दोनोंकी ओर झुकी है और दोनोंसे सम्पृक्त है तो नवीन भारतीय चेतना पाश्चत्य एवं पूर्वी, दोनों दर्शनोंकी ओर झुकी है और उनसे सम्पृक्त है; अनिकेत और उदयन दोनोंमें कमियाँ हैं तो भौतिक एवं बुद्धिवादी तथा आध्यात्मिक आदर्शवादी दोनों दर्शनोंमें कमियाँ हैं; अमृताके लिए जिस प्रकार

अनिकेत काम्य, स्वीकार्य, आकर्षक, प्रिय तथा अपनी उपस्थितिमें सर्वथा विवश कर देनेवाला (डिस्आर्मिंग) है उसी प्रकार नवीन भारतीय चेतनाके लिए अपनी पुरानी भारतीय संस्कृतिभी है किन्तु जिस प्रकार अमृता उदयन को छोड़ नहीं सकती उसी प्रकार नवीन भारतीय जीवन-दर्शन अस्तित्ववाद या पाश्चात्य दर्शनको छोड़ नहीं सकता; अनिकेत अमृताको उदयनके प्रति समर्पित हो जानेके लिए तैयार कर लेता है तो प्राचीन भारतीय जीवन-दर्शन अस्तित्ववाद जैसे नवीन पाश्चात्य दर्शनकी ओर नवीन भारतीय चेतनाको समर्पित कर लेता हैं। वैयक्तिक,स्थूल, भौतिक स्वार्थ यदि उदयनको अनिकेतका स्पर्द्धी बना देता है तो यही अस्तित्ववादकी भी अब सबसे बड़ी कमज़ोरी है; वैयक्तिक स्वार्थ उदयनकी विवशता है और वैयक्तिक स्वार्थही मानव समस्याओंके अस्तित्ववादी समाधानका सबसे बड़ा कमज़ोर पहलू है और इस प्रकार इसीने अस्तित्ववादको प्राचीन, आदर्शवादी, भावना-प्रधान, भारतीय संस्कृतिकी प्रतिस्पर्द्धामें ला खड़ा किया हैं; विवेकहीन, सन्तुलनहीन, आत्मघाती, मृत्यु और रोगसे न डरनेवाला उदयनभी यदि कार्य-कारणके प्राकृतिक परिणामसे (अमृता के सम्पूर्ण समर्पण और अनिकेतके प्रवासोंके बावजूदभी) बचाया न जा सका तो सभी प्रकारसे युक्तियुक्त अस्तित्ववादभी आज अन्तिम साँसें गिन रहा है। मृत उदयनके एक ओर है अमृता (सेवा-परायण, सर्वगुण सम्पन्न, भावाविष्ट, आदर्शवादी, नवीन भारतीय चेतना) और दूसरी ओर अनिकेत (प्राचीन भारतीय जीवन-दर्शन); यहीं आकर उपन्यासभी समाप्त होता है और यही इस समय हमारे वर्तमान कालका प्रमुख प्रश्न है--'अब क्या हो ?' स्पष्ट है कि जिस प्रकार आधुनिक भारतीय चेतना भावना प्रधान,आदर्श अनुरंजित,सर्वभूत हितरत,सबकी मान-मर्यादा और भावनाका ध्यान रखनेवाली, सुन्दर, मोहक, बुद्धि समन्वित और विवेकशीला है उसी प्रकार ये गुण अमृता में भी हैं। दोनोंमें रूढ़िप्रियताका अभाव है। प्राचीनके मानवोचित, कल्याणकारी एवं श्रेयस्कर तत्त्वोंका स्वीकार्य दोनोंमें है। अमृताका स्वरूप यह है – समयका विभाजन न करना···क्योंकि समय शाश्वत है (पृ. २); आतिथ्य धर्मका ध्यान रखती है (पृ. ४);'दूर होनेसे ··होना शंकास्पद नहीं बन जाता' (पृ. ७) ; उसमें मर्यादित तृष्णा, संयमित भावावेग और ऊर्ध्वचेता वासना है; वह इतनी बुद्धिमती है कि अनिकेत और उदयनकी विवेचना और तुलना करती रहती है; उनके व्यवहार, उनके भाव, उनके विचार, उनके स्वरूप, अपनी प्रतिक्रिया, औचित्य-अनौचित्य, श्रेय-प्रेय आदिपर चिन्तन-मनन करती ही रहती है; 'सब कुछ समशीतोष्ण हो जाये,ऐसा उसे अच्छा नहीं लगता, बाहरकी हवाका भी सम्पर्क बना रहना चाहिये' (पृ. २०); जल्दीबाज़ीमें कही गयी किसीभी बात का उसे बुरा नहीं लगता (पृ. ३०); 'कोई क्या कहेगा इससे डरकर सच बोलना छोड़ा नहीं जा सकता'(पृ. ३६) 'यह प्रामाणिकताका दिखावा ही समाजको कुरूप बना रहा है' (पृ.५५); 'अपने भविष्यका निर्माण मैं अपनी स्वतंत्र इच्छा-शक्तिसे करूंगी। इसमें हस्तक्षेप करनेका किसीको अधिकार नहीं — उदयनको भी नहीं···अनिकेतको भी नहीं' (पृ. ५५); 'मैंने सम्पत्तिको कभी मूल्य नहीं माना' (पृ. ५६); 'कामनाएं न जगती हों ऐसा नहीं है किंतु आजतक मैंने उन्हें रोक रखा हैं' (पृ. ५६); मुझे सम्पत्ति नहीं; स्वतन्त्रता चाहिये (पृ. ५७;) 'पुरुषों में और इसीलिए उदयनमें भी स्वामित्व-वृत्तिके दूषण कुछ कम नहीं हैं' (पृ. ८१); 'मुझे इज़्ज़तसे नही, जागृति और विचारपूर्वक जीनेका सन्तोष चाहिये' (पृ. १०४);'निर्दोष स्त्री-पुरुष साहचर्य' (पृ. १०४) अर्थात् जीवन सम्बन्धी समान समस्याओंके कारण घनिष्टतम साहचर्य फिरभी 'विवेकसे प्राप्त चेतनाके कारण स्वतन्त्र सत्तापर विश्वास'; 'अमृता जो निर्णय करती है, उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता' (पृ. १०५); विचारशीला; उसका अपने नारीत्व में इतना दम, इतना साहस, इतना तेज और इतनी शक्ति है कि उसके मतानुसार उनके सामने उदयनकी क्रूरता, उसकी कायरता और स्वार्थकी द्योतक है और उसकी पर-आक्रान्त किन्तु धैर्यमयी नारी-चेतनाके सामने उदयनका पौरुष पराजित हो जाता है (पृ. १३६); क्षणमात्रके लिए वह प्रतिक्रियामयी और आवेशमयी भी हो सकती है किंतु पुनः पूर्ववत् सन्तुलित; नारीके प्राचीन इतिहासपर विवेचनात्मक, यथार्थ, दृष्टि डालनेवाली महिला है; रोमांटिक भी है; यथार्थके प्रति जागरूक भी है, वह अपनेको देवी न मानकर हाड-मांसकी मानवी मानती है; व्यावहारिक, सेवा-परायण, और समर्पणशीला है।

गम्भीर विषय, गम्भीर विचार और गम्भीर शैली वाली यह 'गम्भीर रचना' बहुतही कठिन एवं नीरस हो जाती यदि उपन्यासकारने इसके प्रतीक पात्रोंमें मानवीय मनोविज्ञान (भावों, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं) का संयोजन न किया होता। अपनी आयुके अनुरूप मनोविज्ञान के अनुसार अमृता करती है···अकेले बैठकर आनन्द

अनुभव करनेमें मज़ा नहीं आयेगा किसी सहेलीके घर जाऊं' (पृ. २२)। वह अपना पूरा श्रृंगार करनेके बाद दर्पणमें अपनेको निहारती है (पृ.२२)। कभी-कभी उसका लजाजाना; उसका अनिकेतके साथ हास-परिहास; उदयनके साथ व्यंग्यपूर्ण, कटु, तीखी, सच्ची परन्तु अप्रिय बातेंभी करना; विवाहके पूर्व उदयनसे व्यवस्थित जीवन बितानेका अनुरोध; अनिकेतकी ओर उसका आकर्षण; अनिकेतके साथ उसका रोमांटिक व्यवहार; पृ. १३४-१३५ पर स्टेशनके पास एक बहानेसे उसका अनिकेतसे लिपट जाना और इसे श्रेयस्कर घटना मानना; धरती और समुद्रपर नारी और एकत्रित पौरुषकी भावनाका आरोप, बृहद् सृष्टिमें रति-कर्मके अनेक रूपक देखना और उस समय स्वयंके अमुक्त अंगोंको बोझ स्वरूप अनुभव करना; प्रेम-वरण-भोगकी चाह; उसका यह सोचना कि चूंकि अनिकेत उसे पाये विनाभी प्रसन्न रह सकता है इसलिए उसकी यह प्रसन्नता ही उसे बेचैन करती है; कभी-कभी उसकी यह इच्छा कि अपने स्त्रीत्वको खतरेमें डालकर उसे चंचल और अस्वस्थ कर दे; अपने नारीत्वके पराजयकी अनुभूति; उदयनके पागलपनके समय उसका तेजोद्दीप्त विजयी नारीत्व; अपने भतीजेको अपनी बगलमें चिपकाकर सुलानेपर उसकी अपने अंदर जागृत वात्सल्यकी इन शब्दोंमें अनुभूति '··· उसमें निहित वात्सल्यसे वह आजतक अनजान कैसे रही ···तो फिर जब वात्सल्य शिशु-रूपमें अवतरित होकर उछंगको भर देता होगा, उन क्षणोंके अनुभवकी उत्कटता में तो नारी मात्र माता बन जाती होगी। कैसी होगी यह वेदना-प्रसूत वत्सलता? और वे प्राप्ति-पूर्वकी संक्रान्त-कालीन अनुभूतियां? और इसके पूर्वका इन्द्रिय तर्पण···' आदि कामनाएं एवं वासनाएं उसे प्रतीक मात्र न रहने देकर हाड़-मांसकी नारी-सी बनाकर प्रिय बना देती हैं। सौन्दर्य और तारुण्यके पड़नेवाले प्रभावकी प्रतिक्रियामें मुखरता, वाचालता, अमृताके लिपट जानेपर उद्दीप्त काम-नाओंकी प्रतिक्रियाके परिणामस्वरूप शारीरिक अनुभाव, भोजन-नाश्ताकी योजना, समुद्रपर नौका-विहारके समय की उसकी प्रतिक्रियाएं, धन-दान, रक्त-दान, सहानुभूति का भाव, उदयनके जीवनके अन्तिम क्षणोंमें विक्षिप्तकी भांति आना और क्षुब्ध होकर एक कदम पीछे हट जाना, आदि अनिकेतको अत्यन्त प्रिय और हमारी अपनी तरह का मानव बना देता है। इसी प्रकार उदयनका अमृताके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार, क्रोधमें की गयी उसकी प्रतार-णाएं, होटलमें नाश्ता, भूखका शमन, सबसे उलझना, झिड़कियां, तुनुकमिजाजी, अमृताके संदर्भमें अनिकेतके साथ ईर्ष्या-द्वेषका भाव, प्रेमास्पद (अमृता) के द्वारा किये गये तिरस्कार-उपेक्षा-अपमानकी अनुभूति और उसकी घाती आत्मघाती प्रतिक्रियाएं (जिसके कारण अन्ततोगत्वा उसकी मृत्युही हो जाती है), रोग-ग्रस्तता, आहत वासना-जनित उद्वेग एवं प्रलाप, अपने मकानको घरमें बदलनेकी अभिलाषा, 'उसके एकाकी जीवनमें जब अमृता अपना सम्पूर्ण जागृत नारीत्व लेकर आयेगी तब वह स्वयं हल्का फूल बनकर अमृताके अंकुरित वक्षकी धड़कनका अनुभव करता उसके आंचलमें ढक जायेगा···', आदि कल्पनाएं, टिकट कलेक्टरके साथ किया गया उसका हंसी-मजाक, प्रबल संवेगके जोरपर अमृताको भोग लेनेकी उसकी इच्छा, प्रायश्चित, प्रेम, आभारकी स्वीकृति आदि उसेभी मानवही सिद्ध करती हैं —भलेही एक असामान्य तीखा, तीव्र प्रतिक्रियाओंवाला झक्की, असाधारण बुद्धिशाली एवं सिद्धान्तप्रिय जीवन बितानेका आकांक्षी मानव-एब्नार्मल सायकालाजी वाला। स्वप्न,दिवास्वप्न,अतृप्त कामनाओंकी प्रतिक्रियाओंवाले स्वप्न आदि अनेक मनोवैज्ञानिक तत्त्वभी उपन्यासमें हैं। लेखकने अपने सभी प्रमुख प्रतीक-पात्रोंको यथासम्भव स्वाभाविक और यथार्थ रूप प्रदान करनेके लिए तो उनकी आयु, मानसिक और बौद्धिक क्षमता एवं प्रकृति के अनुरूप कथन और क्रियाका संयोजन किया ही है, गौण पात्रों और चित्रणोंके साथभी मनोवैज्ञानिक अनुरूपता का ध्यान बराबर रखा है। अमृताके लिए उसके भाइयों और भाभियोंके द्वारा लिखे गये पत्रकी ये पंक्तियां, "दो पुरुषोंके साथ तुम्हारा इस प्रकारका संपर्क अपने परिवार की प्रतिष्ठाके अनुरूप नहीं है। भलेही तुम्हारे अति-आधु-निक मानसको इसमें कुछभी अनुचित न लगता हो, पर इस सम्बन्धमें विचार करोगी तो हमपर उपकार होगा। ऐसा करनेकी प्रार्थना" (पृ. ५५) या भाभियोंका फूहड़ मजाक (पृ. १०३), अबोध भतीजेकी अमृताके साथ बात-चीत (पृ. १६६), आचार्यश्रीका उदयनके साथ होनेवाला 'श्रूड' वार्तालाप (पृ. ८८, ८६, ६०, ६१), एक युवकका उदयनसे वार्तालाप (पृ. ६५, ६६), रेस्ट्रांमें युवती और उदयनका वार्तालाप और व्यवहार (पृ. ६७, ६८), यात्री स्त्रियोंका उदयनके साथभी तथा आपने बीच एक-दूसरेके साथभी छिछला रोमाण्टिक व्यवहार और उदयनकी खीझ (पृ. १४२), अनिकेत और अमृताको एक रिक्शेपर बैठकर जाते हुए देखकर एक मनचलेका रिमार्क, 'हुस्नबानो', और उसपर अमृताका क्रोध और फिर शरमा जाना (पृ. १२८), परमाणु-बमके शिकार एक बलहीन, विवश रोगी

की बातें (पृ. २३९) आदि सब कुछ मानव-मनोविज्ञान के विविध पक्षोंके अनुसारही अंकित हुए हैं। इस प्रकार के कलात्मक चित्रणोंने इस उपन्यासको अत्यन्त प्रिय और आस्वाद्य बना दिया है। इस प्रकारके कलात्मक मनोवैज्ञानिक चित्रणोंके दो-एक उदाहरण औरभी लें—"ऊपर की बर्थपर सोया एक प्रौढ़ मुझे दीखा। वह सो रहा था फिरभी बीच-बीचमें जागकर चुपचाप लड़कियोंकी गिनती कर लेता था…मेरे ताश आफ़र करनेके बाद वे पुराने पत्तोंसे नहीं खेल पायीं…उन्हें पान खानेकी ऐसी आदत थी कि हर स्टेशनपर मंगवाया करती थीं। एक दूसरी आदतभी थी हँसते-हँसते होठ दबाकर एक दूसरेके घुटनेको टक्कर मारना और कभी-कभी तो कमरके पीछे हाथ ले जाकर चिकोटी काटना…" (पृ. १४२)। 'अ' और 'उ' से सम्बन्धित प्रगतिशील लेखककी कहानी और उसपर होनेवाली टीका-टिप्पणीभी इसी प्रकार रोचक, मनोवैज्ञानिक और प्रतीकात्मक है। पृ. २१८ से २२५ तकका अनिकेतका स्वप्न, साँप, और अमृताका स्वरूप-दर्शनभी मनोवैज्ञानिक, रोमाण्टिक और रोचक है।

उपर्युक्त चित्रणोंके अतिरिक्त दृश्य-चित्रणके अवसर परभी इस उपन्यासमें प्रतीक पद्धतिका प्रयोग किया गया है। यदि वायुयानको जीवनका दर्शन, आकाशको महाकाल, धूम्रपटको आदर्शवादी दर्शन, और नाजुक पंखी को मानव चेतनाका प्रतीक मान लें तो इस उपन्यासके पृष्ठ १ के सबसे पहलेके ४ वाक्यही प्रतीक चित्रणके रूपमें उपस्थित होकर अपना प्रतीकार्थ पूर्णत: स्पष्ट कर देते हैं "सप्रमाण धूम्र-पट रचता वायुयान आकाश में अदृश्य हो गया और उदयनकी दृष्टि वापस लौटी। धूम्रपटका आरम्भवाला सिरा आकाशमें निराधार लटका हुआ लग रहा था…उदयनकी आंखोंमें जगी धूम्ररेखाभी फैल गयी। एक नाजुक पंखी अमृताके सामने बैठा पंख फड़फड़ा रहा था"। इसी प्रकार गमलेमें लगा गुलाबका पौधा (कृत्रिम अर्थात् वास्तविक जीवनसे असम्पृक्त विचार-दर्शनपर पला जीवन), उस पौधेके दो गुलाब (अनिकेत और उदयन), दोनोंकी ओर अमृताका आकर्षण, मौन (अनिकेत) और तिर्यक् (उदयन), अनिर्णय की कठिनाई (उन दोनोंमें से किसी एकके वरणमें असमंजस), सिगरेट जैसी कड़वी चीज (कटु आधुनिकदर्शन) सांप या नाग (काम वासना) ३२२ वें पृष्ठकी पत्ती (मानव-अस्तित्व), चूहा (काल) हवा (काल-प्रवाह) झूला (अन्तर्द्वन्द्व), आदि प्रतीक-प्रयोग। "अमृताने चाहा इस तरह एक गुलाब चुन ले (एक व्यक्ति या एक दर्शन अपना ले) कि दूसरा हिले नहीं" (दूसरा व्यथित या आन्दोलित न हो), "पौधेको सँभालकर (शालीनतापूर्वक) एकको चुन ले", नौका-विहार (जीवन-यापन) और लहरें (कामनाएं) आदिभी प्रतीक प्रयोग हैं। "केन्द्रमें बैठी अमृताने देखा दोनोंके साथ समान अन्तर था" (पृष्ठ ३६), "गति। हाथसे छूनेको मन हो रहा था चांदनीसे भरा जल। हवा गति और चांदनी। चांदनी और हवा। चांदनीमें गति। हवामें गति। जलमें गति। इससे चांदनीभी मानो चंचल" (पृष्ठ ३६) आदि वर्णन मोहक प्राकृतिक वर्णन होते हुएभी प्रतीक रूपमें समझे जा सकते हैं। इन प्रतीकोंके प्रयोगके द्वारा उपन्यासकी साहित्यिकतामें मोहक वृद्धि हो जाती है। सब कुछ स्पष्ट न कहकर कुछ-कुछ समझने और कुछ-कुछ सोचनेके लिए विवश करनेवाली शैलीभी साहित्यिक मोहकताकी वृद्धि करती है। यह शैलीभी प्रतीकके आसपासकी लगती है। उदाहरण देखिये :—"समय, स्थल और अमृता। समय स्थलको भुला देता है। अमृता स्थल और समयसे विमुख करा देती है और यह दर्द? समग्रको अमृताको छोड़ शेष समग्रको। परन्तु आज तो अमृताही समग्र बन गयी है। इसलिए समग्रको भूलनेके लिए जूझती है। दर्द और समग्रको आश्रय देकर बैठी हुई अमृताके बीच संघर्ष है। दर्द और अमृता। अमृता और समग्र। स्थल और समय। स्थिति और गति। गति और विरति विरति और विलयन। शून्यसे महाशून्यकी ओर" (पृष्ठ ३२०)। भावोंके अनुकूल भाषा भावोंके अनुकूल शैली, संक्षेपमें विस्तृतको अभिव्यक्त कर देनेकी कला (सामाजिक, वैयक्तिक, पुरुष सम्बन्धी, नारी सम्बंधी, [illegible] सम्बंधी, वर्ग-सम्बंधी) मनोविज्ञान, आदिको ध्यानमें रखनेके कारण लेखकके अनेक वाक्य सूक्ति बन गये हैं जैसे :—"जो रहस्यावृत है वह अधिक सुन्दर लगता है" (पृष्ठ १४); "अत्यानन्दभी अस्वस्थ कर देता है" (पृष्ठ १९); "कोई क्या कहेगा इससे डरकर सच बोलना छोड़ा नहीं जा सकता" (पृष्ठ ३६); "जो सर्जन नहीं कर सकते वे समीक्षा करते हैं" (पृष्ठ ३६); "व्यक्ति प्रामाणिक हो इतनाही पर्याप्त नहीं। उसे प्रामाणिक दिखाई भी देना चाहिये।" (पृष्ठ ५५); विरासतको "माने या न माने, भोगे बिना मुक्ति नहीं" (पृष्ठ ६[illegible]) "व्यंग्यमें भटक जानेके बाद शब्द खिलौना [illegible] जाता है" (पृष्ठ ६३); सुखी होनेके लिए वंचना

खतरा उठाना होगा" (पृष्ठ २३२); "जागृत होनेका मूल्य चुकाना पड़ेगा —एब्जर्डिटी और डेस्पेअर मोल लेकर भी" (पृष्ठ १०७); आदि। अनिकेत और उदयन में से किसी एकको चयन करते समय अमृताको जिस अन्तर्द्वन्द्वके बीच होकर गुज़रना पड़ता है उसका चित्रण लेखकने कई स्थानोंपर किया है। वह चित्रण बुद्धि-प्रधान है और सम्भवतः इसी कारण अमृता संशयमें ही पड़ी रहती है तथा 'मुग्धता'वश अनिकेतकी ओर अधिक झुकती है। जब उसके सामने वास्तविकता और उदार वृत्तिकी माँग (उदयनको अपनाना) आती है तब वह उदयनके प्रति समर्पित हो उठती है (जैसा नवीन भारत कर रहा है)—भलेही वह उसको समग्र समर्पणके बावजूद भी बचा नहीं पाती (यहां प्रतीकार्थकी अपेक्षा अभिधार्थ अधिक मार्मिक और हृदयस्पर्शी है—जैसे 'रो-रोकर सिसक-सिसककर कहता मैं करुणा कहानी; तुम सुमन नोचते फिरते करते जानी अनजानीमें आध्यात्मिककी अपेक्षा लौकिक अर्थ)।

भाषापर विचार करते समय लेखकके इस दृष्टिकोण को ('हिन्दी अनुवादमें थोड़ा-सा गुजरातीपन बचा रहे तो प्रबुद्ध पाठकोंके लिए रसविघ्न नहीं बनेगा')ध्यानमें रखना आवश्यक हो जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि अनुवाद की यह हिंदी सफल साहित्यिक और परिमार्जित हिन्दी भाषाका एक आदर्श उदाहरण है। साहित्यिक गाम्भीर्य और भाषाका आभिजात्य सभी स्थितियों-परिस्थितियों, पात्रों एवं मनोभावोंके अवसरपर सफलतापूर्वक निभाया गया है। मेरा आग्रह और सुझाव है कि वाक्योंमें प्रयुक्त शब्दोंका प्रयोग हिन्दी-व्याकरणको ध्यानमें रखकर ही किया जाये और शब्दोंके रूप ऐसे हों कि उनके अर्थ साधारणतः अप्रयासही समझमें आ जाये। यदि किसी कारण ऐसा सम्भव न हो तब तो उचित यही होगा कि कहीं उनके अर्थ कोष्ठकमें दे दिये जाया करें। वाक्यकी प्रकृति यदि हिन्दी वाक्य-प्रकृतिसे भिन्न हो तबभी शब्दों के व्याकरण-सम्मत होनेके कारण तथा संगति, एवं संदर्भ के प्रभावसे अर्थ बोध अथवा भाव-ग्रहणमें सामान्यतः किसी विशेष कठिनाईके न पड़नेकी ही सम्भावना अधिक रहती है। इसके अभावमें अर्थ-ग्रहण और कभी-कभी तो तात्पर्य ग्रहणभी कठिन और असम्भव हो जाता है। उदाहरणार्थ पृ. ९८ पर एक गुजराती शब्द 'आवजो' का प्रयोग हुआ है। संदर्भ एवं संगतिसे इतना तो समझमें आ ही जाता है कि यह दो अपरिचितोंके कुछ देरकी बातचीतके बाद एक दूसरेसे अलग होते समयका कृतज्ञता-प्रदर्शन या शुभ-चिन्तनका द्योतक कोई शब्द है। अर्थ क्या है, यह जानने का यहाँ कोईभी साधन नहीं है; और, वास्तविक अर्थ जाने बिना साहित्यिक चेतनाको तृप्ति एवं सन्तोष नहीं होता!! 'खरीदी' (पृ. १८७), 'ध्यान' का 'सादा' होना (पृ. ४५), 'रतल' (पृ. ४४), 'झटकेके साथ कार उठी' (पृ. ४५), 'बनेगा वहाँतक घाव पकेगा नहीं' (पृ. ४५), 'घसान' (पृ. २१९), 'क्षतियाँ' (पृ. २११), 'तू सीखा हुआ बल्कि सुना बोलती है' (पृ. २११), 'उपरटल्ली' (पृ. २११), 'आच्छाद' करना (पृ. २१२), 'ज़रूरत लगे' (पृ. २१२), 'यहाँ निपट शान्ति पसरी होती है' (पृ.२२३) 'हुड्ड' (पृ. २४५), 'उन्हें मिलकर जायँ' (पृ. २४७), 'घसेड़ा' (पृ. ३०३), 'आटा-पाटा' (पृ.३०५), 'उसे हुआ कि उसकी आँखोंको क्यों न कुछ हो गया होता' (पृ. ३०६), 'सन्तर्क' (पृ. ३१०), 'उदयन अपनी ओर लक्ष्य नहीं देता', '...शराबकी भट्टी बताने ले गया'(पृ. २२९) मकान ले रखनेके अर्थमें 'मकान उठा रखने' का प्रयोग (पृ. २२९), '...विचार...तुम्हें कहूं....' (पृ. ७३), 'स्त्री-दाक्षिण्य' (पृ. ७७), 'कुर्सी एक तरफ खिसकाकर ज़रा पटकायी' (पृ. ९१), 'हार्द' (पृ ९४) ब्लाउज़की सिलाईका 'प्रयोगात्मक' होना (पृ. ९७), 'अनुभवता' (पृ. ११५) आदि स्थलोंपर चाहे भाषाका गुजरातीपन हो,चाहे अनुवादककी चूक, चाहे प्रेसकी असावधानी, किन्तु यह निश्चित है कि हिन्दीवालोंको ये प्रयोग अभी सहज ग्राह्य, सहज बोधगम्य अथवा स्वाभाविक रूपसे हिन्दीके नहीं लग सकेंगे! मैं प्रान्तीयताका आग्रही अथवा अन्तर्प्रान्तीयताके लिए अनिवार्य रूप-परिवर्तन एवं समन्वय-वृत्तिका विरोधी नहीं हूं किन्तु कहना चाहता हूं कि यदि भाषा की प्रकृति और शब्द-रूपों तथा वाक्योंके गठन एवं प्रयोग की स्वाभाविकताका कुछ औरभी ध्यान रखा जा सकता तो औरभी अधिक अच्छा होता। मैं उर्दू काव्य-साहित्यका ज्ञाता तो नहीं हूं किन्तु लगता है कि मिर्ज़ा गालिबके द्वारा कहे गये एक शेरके इस उद्धृत रूप('वो आये हमारे घरमें खुदाकी कुदरत है, कभी हम उनको कभी अपने घरको देखते हैं') में कहीं कुछ गड़बड़ है। नहीं तो अच्छाही है! वैसे, यह पूछा जा सकता है कि गुजरातीवासी विज्ञानके एक प्रोफ़ेसर द्वारा उद्धृत यह शेर यदि कुछ ऐसा-वैसा हो भी गया हो तो क्या यह स्वाभाविक न होगा। मैं मानता हूं कि उसके लिए यह प्रयोगही स्वाभाविक होगा। यही स्थिति 'पीनेवाले एक-दो होते हैं,

मुफ्त सारा मयकरा बदनाम है' इस शेरकी भी है !

और एक बार फिर !

उपन्यास लेखक श्री रघुवीर चौधरी कहते हैं, 'युद्धोत्तर विश्वके मनुष्यकी परिस्थिति तथा मनःस्थिति यहाँ अस्तित्ववाद तथा भारतीय दर्शनके सन्दर्भमें व्यक्त हुई हैं' ('निवेदन' से)। प्रयास इसी बातका हुआभी है। भारत के उच्च शिक्षा प्राप्त नये लोग और पुराने लोग किस तरह सोचने, रहने और परिवर्तित होने लगे थे—यह सब इस उपन्यासमे मिलता है। तर्कशीलता और विचारशीलता प्रारम्भसे ही हमारी संस्कृतिमें विद्यमान थी। श्रुति-ग्रन्थोंमें 'धी' और 'मेधा' के लिए प्रार्थनाके स्तोत्र मिलते हैं किन्तु भारतीय संस्कृति चिन्तनकी स्वाधीनता देती हुई भी व्यवहार और कर्मको पारम्परिक ढंगसे मर्यादित देखना चाहती है जबकि नवीन ज्ञान और प्रतिभा विद्रोह करके, सब कुछ तोड़-छोड़कर, वैयक्तिक स्वातंत्र्यके दुराग्रहके कारण सुख, सौन्दर्य और सुरक्षाकी सुमन शृंखलाएं तिरस्कृत करके एकाकी रहनेका असफल दुःसाहस कर बैठती है। बुद्धि-प्रधान मनोवृत्ति विश्लेषणात्मक होंकर जीवनके रस-माधुर्यकी विनाशिनी हो रही है जिसके फलस्वरूप मधुमय हो सकनेवाला वैयक्तिक या पारिवारिक जीवन तथा मैत्री एवं सौहार्दका सामाजिक वृत्त भी कटु, तीक्ष्ण, विषाक्त और विनाशोन्मुख हो उठता है। सत्य-पराङ्मुख यथार्थ, व्यावहारिकता रहित सम्बन्ध, भाव-विमुख बुद्धि, हृदय-हीन मस्तिष्क, भावनारहित वासना, स्निग्धता-विहीन विश्लेषण और धर्म-मर्मरहित कर्म विघटन और विनाशके आमंत्रण हो जाते हैं। अन्तके पूर्व उदयनकी समस्त संवेदनाएं और उनके द्वारा निर्मित परिस्थितियाँ एवं अभिव्यक्तियाँ अस्तित्ववादी, बुद्धिवादी, आस्थावादी—पाश्चात्य— हैं। अमृताकी रोमांटिक प्रवृत्ति, इतिहासकी बुद्धिपरक व्याख्या, स्वातन्त्र्य-प्रियता, पैतृक गृह-त्याग, घर के बाहरके दो नवयुवकोंके साथ सम्पर्क, गृहस्थीके कार्यों में ही रमी रहनेवाली स्त्रियोंको हेय दृष्टिसे देखना आदि आधुनिक संवेदनही हैं। अनिकेतके विचार, आदर्श और कार्य भारतीय दर्शनके प्रभाव-क्षेत्रमें आते हैं। अन्ततोगत्वा दोनों 'अ' जीवित रहते हैं, विजयी होते हैं, जबकि 'उ' समाप्त हो जाता है, हार जाता है। प्रतीक रूपमें यहाँतक तो सब उसी प्रकार ठीक हैं जिस प्रकार इड़ा, श्रद्धा, मनु या पद्मिनी, रतनसेन, नागमती, अलाउद्दीन, किन्तु महाकाव्य और उपन्यास दोनोंमें प्रतीक पात्रोंका विस्तारपूर्वक चित्रण उनके प्रतीकत्वको [illegible] बना देता है। इनके दर्शन और तज्जनित विचारोंके अनुरूप उनका मनोविज्ञान बन जाता है। और, अब मैं सोच रहा हूं कि विचारोंके अनुरूप मन या मनोविज्ञान एवं प्रकृतिके अनुरूप विचार?? उपर्युक्त तीनों पात्रोंके शैशव, कैशोर्य तथा तारुण्य और उनके घर-परिवारपर विचार करनेसे मुझे लगता है कि परिस्थितियोंके एक समान होते हुएभी इन तीनोंने अपनी-अपनी प्रकृति और स्वभावके अनुरूपही दर्शन और विचार अपनाये हैं तथा आयु, आधुनिकता और परम्पराका समन्वय किया है। यही कारण है कि व्यापक दृष्टिसे देखनेपर ये पात्र स्वाभाविक ढंगसे जीते-जागते, हाड़माँसके, व्यक्ति लगते हैं—सिद्धान्तोंके रूखे-सूखे गठ्ठर अर्थात् केवल प्रतीक ही नहीं !

आधुनिक परिस्थितियों और वातावरणमें भी वैयक्तिक स्वतन्त्रता या उछृंखलतापर लगाया गया परिवार रूपी बन्धन अन्यथाकर दिये जानेपर वही अशोभनीय परिणाम देता है जिसकी संभावना रोकनेके लिए उनका आविर्भाव हुआ था। दो युवा पुरुष और एक युवा नारी—बिल्कुल स्वच्छन्द!! कोई रोक-टोक सह्य नहीं!! 'छाया' में अपने परिवारके द्वारा रोके जानेपर अमृता जिस संभावनाकी आशंकाको इस रोक-टोकका कारण समझकर उससे इन्कार करती हुई अपने आक्रोशके कारण परिवार का परित्याग कर देती है आयुकी माँगके कारण राजस्थान में अनिकेतके निकेतके अंदर और उसके बाद स्टेशनवाले घटनामें तथा रोगी उदयनकी परिचर्याके दिनोंमें एक रा[illegible] अवसर पाकर उन्हीं संभावनाओंको वास्तविक घटनाका रूप दे देती है ! यह सही हुआ या ग़लत, इसकी विवेचनामें यहाँ मैं नहीं पड़ना चाहता, मैं तो केवल यह कहना चाहता हूं कि हमारी संस्कृतिमें परिवारके बन्धन जिस वजह से नयी उम्रको पूरी आज़ादी या उच्छृंखलता नहीं है वह वजह सही है, शाश्वत है, सार्वदेशिक है, सार्वकालिक है 'अमृता' उपन्यासके अन्तमें अमृताके सामने जो परिस्थिति[illegible] खड़ी हुईहै, वह भारतीय परिवारकी किसीभी सजीव सप्रा[illegible] महिला या कुमारी कन्याके लिए उचित नहीं है, शो[illegible]नीय नहीं है। यह परिस्थिति जिस दर्शन या विचारधाराकी उपज है वह भारतीय संस्कृतिमें पले-रमे मान[illegible] के लिए कभीभी सहज ग्राह्य नहीं हो सकती। आधुनि[illegible] संवेदना भारतीय व्यक्तिको विघटनके मार्गपर इतनी [illegible] तक भी ले जा सकती है, संभवतः इस तथ्यकी ओर उपन्यासकार पाठकोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहता है [illegible] अमृताको [illegible] चाहता है। अनिकेतभी अमृता[illegible]

चाहता है। अमृता उदयनको चाहती है। अमृता अनिकेत को भी चाहती है। संभवत: अमृता दोनोंको और दोनों अमृताको पा भी रहे हैं और नहीं भी पा रहे हैं! अजीब स्थिति है! अजीब द्वन्द्व है! अजीब अन्तर्द्वन्द्व है! और,यह द्वन्द्व दर्शन,अथवा जीवन-दर्शनवाला न होकर व्यक्तिगत विचारोंसे अधिकसंबंधित है। मैं सोचता हूं कि यह तथ्य वहां औरभी अधिक स्पष्ट हो उठता जहाँ अमृता अनिकेतकी अनुभूति और उसके कथनके अन्तरको पहचान लेती है और उदयनभी उसके शब्दाडम्बरपर तीखी टिप्पणी करता है। अनुभूति की दृष्टिसे उदयन और अनिकेत दोनों एकही स्थानपर हैं। अमृताका कथन है,'यह शब्द अपने अनुभवोंसे विच्छिन्न है··· उसके कहने और अनुभव करनेमें भेद है मांसल सौन्दर्यकी तृषा उसकी आँखोंमें चमक उठी थी। उसकी श्वासमें छटपटाती हिंस्र गन्धको मैं न पहचान सकूं,इतनी अबोध हूं! ·· फिरभी कहता रहता है—मुझे सौरभसे सन्तोष है' (पृ. १६८) और दूसरा कहता है,'वेदना माँगता है! वेदना माँग रहा है या अमृता ?···एक अमृताको तो पूर्णत: छोड़ नहीं सकता फिर वेदनाको क्या समझेगा!' (पृ. १४८)। अमृताभी दोनोंकी ओर आकृष्ट है। मुझे यह दर्शनों और जीवन-पद्धतियोंकी ओर जीवन-धाराका आकर्षण कम लगता है;अधिक लगता है तो तन-मनका आकर्षण अर्थात् एक युवतीका युवकोंकी ओर आकर्षण और युवकों का एक युवतीकी ओर आकर्षण। स्वभाव आकर्षण और विकर्षणका द्वन्द्व उपस्थित करता है किन्तु है यह वस्तुत: तन-मनका तन-मनकी ओर आकर्षण। सभी तन-मनकी माँगसे विवश हैं। अनिकेतके विवश भोगेच्छाके साथ मधुर भावनाओंका और उदार विचारोंका तथा काव्यात्मक वाणीका प्रिय लगनेवाला सम्मिश्रण है जबकि उदयनकी भोगेच्छाके साथ 'अपने संवेगकी वंचना-रहित प्रतीति', 'निखालसपन', 'संवेगकी खुली प्रतीति'—'पशु सहज', बुद्धिवादी अभिव्यक्तियाँ और कटु तथ्योंकी अभिव्यक्ति है। एकमें मिठास है; दूसरेमें झकझोरपन। अमृताभी भोगेच्छासे मुक्त नहीं; फिरभी वह अपनी प्रतिक्रियाओंमें कभी मधुर, कभी कटु और प्राय: यथार्थ धरातलपर है। सामान्य नारियोंमें प्राप्त वास्तविकताका ध्यान, परिस्थितियोंका प्रभाव, व्यावहारिकता, मातृत्वके गुण आदि उसके पास हैं। इतना सब होते हुएभी भारतीय जीवन पद्धति एवं परिवार-संयोजनमें प्राप्त मर्यादा-पालनवाली समुचित निषेध-वर्जनाके प्रति या उन्हें स्वीकार करनेका भाव किसीके पास नहीं है। इससे लेखकका आशय यह संकेत करता प्रतीत होता है कि 'आधुनिक संवेदना' का एक पक्ष यहभी है!

उक्त मर्यादाको न पाल सकनेके कारण अमृताके सामने वरण-चयनकी समस्या उत्पन्न होती है। प्रतीकत्व को ध्यानमें रखकर सोचें तो लगता है कि यह समस्या आधुनिक भारतीय संवेदना या चेतनाके सामने उपस्थित युद्धोत्तर-पाश्चात्य बुद्धिप्रधान अस्तित्ववादी दर्शन और भारतीयतामय-नवीन-प्रगतिशील-समन्वयपरक-विचारधारा में किसी एकके चयनवाली समस्या है। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे देखें तो समस्या यह सामने आती है कि नारीसुलभ गुणोंवाले व्यक्तिका वरण करना चाहेगी या पौरुष एवं शक्तिके द्योतक गुणोंवाले पुरुषका अर्थात् उसे कोमल-मधुर-प्रिय-सुखदही पसन्द है या कठोर-कटु-क्रूर-अप्रिय प्रतीत होनेवाला भी; वह अभिरुचिसे ही प्रेरित होकर वरण करना चाहती है या शुष्क-अप्रिय-कटु कर्त्तव्यसे प्रेरित होकर। उसे प्रियकर-प्रशंसात्मक-सरस-काव्यात्मक अभिव्यक्तियां जीत सकती हैं या अप्रिय-कटु-तीखी-बुद्धिवादी-आलोचनापरक उपेक्षासे भरी झिड़कियां! दर्शनकी दृष्टिसे यह समस्या इस प्रकारभी समझी जा सकती है कि आनन्ददायिनी, सुखद, सरस, प्राकृतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों एवं वातावरण और तरह-तरहकी सुन्दरताओंसे सजी-सजायी जीवन-धारा और मानसिक कृतियों वाला आधुनिक भारत शुष्क, बुद्धिवादी, यथार्थवादी, अनीश्वरवादी, अनास्थावादी, विज्ञानवादी दर्शनके प्रति सर्मपित हो या प्राचीन आदर्शवादी दर्शनके प्रति। आधुनिक भारतीय संचेतना या संवेदनाकी माँग है कि पाश्चात्य या भारतीय--किसीभी एक दर्शनको पूर्णत: न अपनाया जाये। किसी एकको अपना लेनेमें भावी सुरक्षा,कल्याण, या श्रेय नहीं है। **आवश्यकता इस बातकी है कि व्यक्ति रूढ़िवादी भारतीय पारिवारिक संकुचित दायरेसे कुछ ऊपर उठ जाये और फिरभी वह परिवार-शून्य होकर व्यापक समाज में अपनेको खो न दे। उसका अस्तित्व स्वतंत्र रहे।** सुख-सुविधा एवं हर प्रकारकी—भौतिक-मानसिक—आवश्यकताओंकी पूर्ति करती हुई भारतीय चेतना—बुद्धिवादी पश्चिम और आदर्शवादी भारतीय—दोनों विचारधाराओंसे ऊपर उठकर अपनी स्वतंत्र सत्ता अक्षुण्ण रखना चाहती है। प्रभाव दोनोंका लेकर भाव अपना रखना चाहती है। भोगके क्षणों एवं उपकरणोंको वह अपनी पराधीनताकी मोहक शृंखला बनाना नहीं चाहती।

अमृता पालन-पोषण-स्नेह-सुरक्षा परायण परिवारसे तो मुक्त हो जाती है (यद्यपि अन्ततोगत्वा मुक्त रह नहीं पाती) किन्तु उसका प्रश्न यह है क्या अनिकेत और उदयनकी स्पर्द्धाके लिए निमित्त बननेसे अधिक उसकी कोई सत्ता नहीं ! वह कहती है, कि वरण करने की स्वतंत्रता जैसा कुछ उसके लिए नहीं है (पृ. ८१); समाजको उदयन आत्मवंचनाकी नींवपर निर्मित कहता है उसमें उसके लिए उदयन और अनिकेत जैसीभी स्वतंत्रता नहीं है (पृ. ८३); वह पूछती है कि उसकी अपनी स्वतंत्रता कहाँ सुरक्षित रह सकेगी (पृ. ८३)। उसकी भावना अनिकेतसे भी स्वातंत्र्य मांगती है (पृ.१९७) और उदयनसे भी। वह उदयनसे पूछती है,'···जिसे प्राप्त करनेसे मैं अमृता न रहूं उसे पानेमें ही क्या' (पृ. ८३)। सुनता हूं कि भारत देशमें कहीं ऐसीभी प्रथा है जिसके अनुसार विवाह के बाद विवाहिताका नामभी बदल दिया जाता है। सम्भवतः यह संकेत उसी ओर है। तो इस उपन्यासका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि नारीके लिए (जीवनके सभी पक्षोंमें) स्वतंत्रता कहाँतक उचित है, वह किस सीमातक स्वतंत्र रह सकती है, और कहाँतक उस स्वतंत्रताको संभाल सकती है। उदयनका इस संबंधमें स्पष्ट किंतु आधा सच्चा उत्तर यह है, 'प्रेममें दूसरेकी स्वतंत्रता खतरेमें पड़ती ही है' (पृ. १३६)। किंतु उदयन अपने अन्तिम दिन बोलकर लिखायी गयी अपनी 'वसीयत' (पृ. ३३१ से पृ. ३३५ तक) में स्वीकार करता है कि अमृताका यह प्रश्न अनुत्तरित रह गया है। सम्भवतः उसने जो उत्तर पहले दिया था वह उसकी दृष्टिमें सही नहीं था। इस प्रश्नको उठातेही उसकी सांस उखड़ने लगती है और बादमें उसकी मृत्यु हो जाती है। नारीकी पूर्ण स्वतंत्रता इस उपन्यासमें भी और आधुनिक संसारमें भी एक प्रश्नचिह्न बनी हुई है। यही समस्या एक दूसरे रूपमें अस्तित्ववादकी भी समस्या है। जब एक व्यक्तिकी 'स्वतंत्रता' दूसरे व्यक्तिकी 'स्वतंत्रता' से टकरायेगी तब जो उलझनें सामने आयेंगी, उनका समाधान 'स्वतंत्रता' के उद्घोषक अस्तित्ववादके पासभी नहीं है। संभवतः इसीलिए अस्तित्ववादी विचारक सार्त्र 'पूर्ण स्वतंत्रता'नाम की चीज़ नहीं मानते। जिस प्रकार अस्तित्ववादके सिद्धांत अव्यावहारिक सिद्ध हुए हैं उसी प्रकार उदयनभी।

अस्तु, गम्भीर, महत्त्वपूर्ण धारणाओं अवधारणाओं-विश्वासों-दार्शनिक प्रपत्तियों, संस्कृत-हिन्दी-उर्दू-अंग्रेजी-गुजरातीके शब्दोंसे सम्पन्न शब्दकोश, साहित्यिक हिंदीमें गुजरातीपनकी चाशनी, साहित्यिक-बौद्धिक-कलात्मक-मोहक आभिजात्य तथा सोचने-समझनेके लिए प्रेरित करने वाली उक्तियों, सूक्तियों तथा चिन्तनसे परिपूर्ण यह 'अमृता' एक सफल उपन्यास है और हिंदीके अनुवाद साहित्यकी बहुमूल्य निधि है। ❑

हम चाकर रघुनाथके

[बंगलासे अनूदित]

लेखक : विमल मित्र; अनुवादक : शंभुनाथ पाड़िया 'पुष्कर'; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ: १०७; क्रा. ८१; मूल्य : १२.०० रु.।

विमल मित्र एक कुशल कथाशिल्पीके रूपमें हिन्दी में भी अपनी पहचान बना चुके हैं, जीवनका छुआ हुआ कथानक और मुकम्मिल क़िस्सागोई — इन दोनोंका सही अनुपातमें मेल उन्हें मुद्दतसे लोकप्रियताके शीर्ष पायदानों पर जमाये हुए है।

अपने ताज़ा उपन्यासमें उन्होंने बंगालके एक निम्न मध्य वित्त परिवारको उभारा है। परिवारमें भी उनकी दृष्टिका केन्द्रबिन्दु है एक छोटा लड़का राजू। संयुक्त परिवारके षड़यन्त्रोंने राजू और उसकी विधवा माँसे सब कुछ छीन लिया है पर ईश्वरपर भरोसा रखनेकी मांकी नसीहतका अक्षरशः पालन करनेके कारण अन्ततः राजू एक बड़ा अफसर बन जाता है और इस प्रकार जो उसके ताऊने उससे छीना हैं, उससे कहीं अधिक वह पुनः जुटा लेता है। यह है 'हम चाकर रघुनाथके'' की संक्षिप्त कथा।

यहां बिमल मित्रका सुपरिचित,झटके देनेवाला,चौंकाने वाला और औत्सुक्यकी सृष्टि करनेवाला कथा विधान नहीं है। सीधे-सीधे कथा कह दी गयी है। कथा गांधीवादी मूल्योंको रेखांकित करती है—कोई हमारा कितना ही अनिष्ट क्यों न करे, हमें उसका हितचिन्तनही करना चाहिये। यहाँतक बात गले उतरती भी है, उतर सकती है। परन्तु इससे भी कई कदम आगे बढ़कर जब कथाकार भगवान्के भरोसे सब-कुछ छुड़वाकर अपने नायकको आश्वस्त, संतुष्ट कर देता है तो मेरी वैचारिक असहमति सर उठाने लगती है। मेरी यह मान्यता है कि आजके छलप्रपंच संकुल युगमें, जो इस उपन्यासमें भी चित्रित है, सब-कुछ भगवान्के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। छलप्रपंचका प्रतिकार न करना कहीं-न-कहीं उसे प्रोत्साहित

करना है। अपने छोटे भाईके परिवारका शोषण करने वाले ताऊको चेचक ग्रस्त करके और उनकी पत्नीको छूत-भयसे त्रस्तकर पीहर भेज औपन्यासिक न्याय तो कर दिया गया है पर उसके निहितार्थोंपर ध्यान देना विमल बाबू भूल गये हैं। आजके युगमें हमारा भला होनाही पर्याप्त नहीं है यहभी आवश्यक हो गया है कि हम बुराईके विरोधमें उठ खड़े हों। उपन्यासका राजू और उसकी माँ किसीभी स्तर पर बुराईका रंचमात्रभी विरोध नहीं करते। वे पूरी तरह भगवानके भरोसे हैं, भगवान् न्याय कर भी देता है और "जैसे उनके दिन फिर" नुमा निष्कर्षके साथ उपन्यास खत्म हो जाता है—बिना किसी सार्थकताकी अनुभूति कराये।

कथा प्रवाह सरलताके बावजूद रोचक है—इसकी विमल मित्रसे उम्मीद थी ही, अनुवादभी बहुत सहज है, पर कथामें कोई सार्थकता मैं नहीं पा सका, यही शिकायत है।

☐ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

टूटा शीशा

[बंगलासे अनूदित दीर्घकथाएं]

लेखिका : आशापूर्णा देवी; अनुवादिका : अलका मुखोपाध्याय; प्रकाशक : साहित्य भवन (प्रा.) लि., ९३ के. पी. कक्कड़ रोड़, इलाहाबाद-२११-००३। पृष्ठ : २३२; डिमा. ८१; मूल्य : ३५.०० रु.।

प्रस्तुत पुस्तकमें 'टूटा शीशा', 'खरीदा हुआ दुख' और 'अपनी कीमत' शीर्षकोंसे तीन दीर्घकथाएं संगृहीत हैं। यों 'टूटा शीशा'को फ्लैपकी टिप्पणीमें उपन्यास बताया गया है। 'टूटा शीशा'में लेखिकाने निम्न वर्गके कुछ ऐसे आकर्षक, मस्त, संघर्षरत मानवीय पात्रोंको विशिष्ट परिवेशके साथ सामने रखा है कि वे पाठकोंको प्रभावित करते हैं। ननी, तुलसी, राजेन, जग्गी सब अपनी विशिष्ट भंगिमाओं और निजी विशेषताओंके कारण एक-दूसरेके बहुत करीब हैं। भयंकरतम स्वार्थभी उनसे एक-दूसरेका अनिष्ट नहीं करा सकता। इन चारों पात्रोंके सूत्र-संचालन तथा कथाके प्राणवान बनानेमें ननीकी प्रमुख भूमिका है। उसकी स्पष्टवादिता, अक्खड़ता, स्वच्छन्द, सहज, सरल, निश्चल व्यवहार, साधिकार किसीसे भी कुछ करा लेनेका कौशल आदि उसके चरित्रके महत्त्वपूर्ण गुण हैं। बाल्य-कैशोर्यके साथी इन पात्रोंका संसारभी अजीब है। तुलसीने बहुत कुछ देखा-सुना और सहा है। घर-घरकी चाकरी की है, अस्पतालकी नौकरी की है, वह स्वावलम्बी है स्वाभिमानिनी है। अपनी जिदों, निर्णयों या विचारोंके लिए वह गलत समझौते नहीं कर सकती। वह कब क्या कह और कर देगी किसीको नहीं पता। एक क्षण वह तीन मित्रोंके समक्ष एक साथ शादी प्रस्ताव रख उनके सूने अँधियारे मनमें एक स्वप्न जगा सकती है (पृ. ७४) तो दूसरे क्षण अपने प्रति उन तीनोंके समान आकर्षणका अनुमानकर बाल-बच्चेदार ननी को जबरन स्वयंसे शादी करनेके लिए तैयार कर लेती है। इन पात्रोंकी संवेदनाएं उस समय अत्यन्त मार्मिक रूप ले लेती है जब वे तुलसी और ननीकी शादीका एक-एक कार्य स्वयं सम्पन्न कराते हैं। तुलसी शादीकी शर्तों तथा ताश और बैठकबाजीके चलते रहनेकी घोषणाके साथ जिस समय सुखेनसे सुख चैनकी भीख मांगती है (पृ. ७४) उस समय उसका चरित्र औरभी अधिक प्रखर व उज्ज्वल हो उठता है।

'खरीदा हुआ सुख' पीयूषकाँति बोस नामक मध्य-वर्गके एक ऐसे पात्रकी कहानी है जो सुखमय भविष्यके चक्करमें तरह-तरहके आर्थिक संकट, अपमान और मानसिक द्वंद्वके दौरसे गुजर रहा है। इस दिशामें उसके द्वारा उठाया गया प्रत्येक कदम उससे उसकी पत्नी और बच्चों को निरन्तर दूर लिये जा रहा है। दोस्त सुधामयकी आज्ञाका पालन अथवा आदर्शोंका अनुकरण उसके परिवारको छिन्न-भिन्न किये दे रहा है, मकान खरीद लेना उसके लिए अभिशाप बन गया है। उस अभिशापसे बचनेकी दिशामें वह फिर एक कदम उठाना चाहता है किन्तु हतप्रभ रह जाता है मकान बेचनेका निर्णय सुनाते समयके अपनी पत्नीके व्यवहारपर। उसे लगता है अब आगे करने को उसके पास कुछ नहीं है। वह बहुत मजबूर है और यह मजबूरी उसने स्वयं पैसोंके मोल खरीदी है (पृ. १६०)। इस क्षण उसका यह भ्रम कि वह जोभी कर रहा था बीवी-बच्चोंके भविष्यके लिए कर रहा था एक सा। टूट जाता है।

'अपनी कीमत' रमला नामकी एक ऐसी विधवा लड़कीके त्याग और सेवाकी कहानी है जो अपने पिता व भाईके सुख-दुःखको अपना मानती है। इस अहसाससे कि घर उसके द्वाराही चल रहा है उसे परम शान्ति मिलती है। पार्थको उसने मां जितना प्यार दिया है। उसके हर क्षणकी वह रक्षिका रही है। नयनाके साथ पार्थके सम्बन्धोंका सिर्फ़ उसने सफल निर्वाहही नहीं कराया अपितु पिताके विरोधको निरन्तर समाप्त कराने में उसने अनेक प्रयत्न किये हैं। पार्थके बदले व्यवहारने

उसकी सेवा, त्यागकी भावनापर प्रश्नचिह्न लगाकर उस में यकायक परिवर्तन ला दिया है। कितने दिन, महीने और साल गुजार दिये रमलाने अपनेको भूलकर इस घरके नामपर, अन्ततः वह छोटा-सा सूटकेस अपने साथ लेकर अपनी चिर-अपरिचित सुसरालकी ओर चल पड़ती है। (पृ. २३१) घर और इस अपरिचित सुसरालके बीचके फासलेको तय करनेकी बात उसके मनमें इतने दिनों बाद पहली और अन्तिम बार आयी थी।

इन तीनों कथाओंमें लेखिका द्वारा मानव मनकी सूक्ष्मतम पर्तोंको धीरे खोले जाने, मानवीय संवेदनाओंको कौशलके साथ उभारने, निजी आत्मीय सम्बन्धोंका अपनी तरहसे मूल्यांकन करने तथा मानवीयताको एक आदर्श मूल्यके रूपमें विभिन्न पात्रोंके माध्यमसे प्रतिष्ठापित करनेके कारण यह कृति सार्थक और मूल्यवान् बन पड़ी है। 'टूटा शीशा' शीर्षक रचना अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करती है—बाँधती है।

☐ डॉ. प्रेमकुमार

हिन्दी उपन्यास

पंखहीन तितली

लेखक : हंसराज रहबर; प्रकाशक : सरस्वती विहार, जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : १११; क्रा. ८०; मूल्य : १४.०० रु.।

प्रस्तुत उपन्यास अत्याधुनिका बननेकी अंधी होड़में संलग्न दिशाहारा भारतीय युवतियोंकी कहानी है जो स्वच्छन्द रहनेके लिए सभी सामाजिक, नैतिक मूल्यों, परंपराओं और संस्कारोंको जड़ एवं वर्जना कहकर एक झटके से तोड़ देती हैं और निर्बन्ध जीवन बितानेके लिए अपने हर गलत-सही कार्यको 'नया प्रयोग' की संज्ञा देती हैं। पाश्चात्य सभ्यताके प्रभावसे उन्मुक्त जीवनकी चाह युवा मानसमें छुतहा रोगकी तरह फैल गयी है। यही कारण है कि आज पूरीकी पूरी पीढ़ी मकड़ीकी तरह अपनेही बने हुए जालमें भ्रमित होकर स्वयं कैद हो गयी है।

कथाकार हंसराज रहबरने आधुनिकताके धुंधमें फंसे चरित्रोंको जीवनकी विभिन्न परिस्थितियोंमें रखकर उनकी मधुप वृत्ति और उन्मुक्तताकी चकाचौंधमें अपनी सही पहचान खोकर स्वयंको भूलभुलैयामें फंसाकर कहीं का न रह जानेकी संवेदनाभरी अन्तहीन कहानी प्रस्तुत की है। विदेशियोंकी सुरा-सुन्दरीवाली विलासितापूर्ण सभ्यताने भारतीय शिक्षित समाजको इस सीमातक मोहजालमें फांसा है, कि वह अपनी सामाजिक पहचानको कच्चे धागेकी तरह वेहिचक अदम्य उत्कण्ठाके साथ तोड़ रहा है। इन सम्बन्धोंको ढपोरशंख समझनेकी मनोवृत्ति उन्हें कहाँ पहुंचा देती है इसका एक टटका उदाहरण है कथा नायिका मीना उर्फ मधु जो अपने नाम और परिचय को बेकारका बोझ मानती है। अपनेको सम्पूर्ण नारी कहने तथा दूसरोंको मूर्ख समझनेमें गर्व महसूस करती है किन्तु उसकी अंतिम परिणतिको कथाकारने अनकहे 'पंखहीन तितली' की संज्ञा दी है। एक ऐसी रूपसी तितली (नायिका) जिसे देखकर सभी मोहित हो जाते हैं, जिसने तीन युवकोंसे विवाह किया और तीनों उसपर अपना अधिकार समझकर न्यायालयमें जाते हैं, किन्तु वह किसी के प्रति समर्पित नहीं है और जीवनकी हर परिस्थितिको नया प्रयोग मानती है। अंतमें यह रहस्य खुलनेपर कि वह लाटरी खुलनेपर तीनोंमें से किसीके साथ जानेके लिए तैयार है बारी-बारी सबके द्वारा तिरस्कृत कर दी जाती है।

कहानीका यह समापन बिन्दु इन आधुनिकाओंके बौद्धिक कांइयापनका चरम बिन्दु है जहां इनकी सारी कलाबाजी धरी रह जाती है और बुद्धिका दिवालियापन

प्रकट होता है; जिसके आगे इनके लिए राह नहीं है। यहाँ आकर ये परकटे पंछीकी तरह बेसहारा और बेकार हो जाती हैं और शुरू होती है इनकी अन्तहीन व्यथाभरी ममर्तान्तिक जीवन-यात्रा। ये वेश्यालयों और होटलोंमें सामानकी तरह प्रयुक्त होती हैं। कथाकारने इस दूसरे जीवनके अंधेरे पक्षको एकदम नहीं उठाया है किन्तु कथा-नायिकाके सारे दाव-पेंचोंकी अंतिम परिणति और सार-गर्भित शीर्षक उसके भावी यातनापूर्ण जीवनके लिए पाठकोंको बहुत बड़ा मौन संकेत है।

इस युवा पीढ़ीके भीतर माता-पिता, पड़ोस, मित्र किसीके प्रति न कोई आकर्षण है और न प्रेम। भौतिक-वादी जीवनने इस समाजको सिर्फ पैसेतक केन्द्रितकर दिया है। डॉ. त्यागराजकी यह व्यथा आजकी हर पुरानी पीढ़ीकी व्यथा है 'हम जिस युगमें जी रहे हैं उसमें पैसा प्रधान है। मनुष्य पैसेके लिए जाने कहां भागा फिरता है। जहांभी उसे अधिक पैसा मिल जाये वहींका होकर रह जाता है' (पृ. ६२)। अपनी अदम्य उत्कण्ठा,कामेच्छा तृप्ति, फैशनमें ये डूबे रहते हैं। आधुनिक कहलानेके लिए हर अटपटे कार्यको करने अथवा उस दौरसे गुजरनेकी भावना और जीवनको अनिर्दिष्ट पथपर ले चलनेको अभिनव प्रयोगकी संज्ञा देते हैं। बिडम्बना यह है कि एक ओर ये अपनी पारिवारिक एवं सामाजिक परम्पराको रूढ़ि कहकर तोड़ रहे हैं दूसरी ओर पश्चिमकी भोगवादी सभ्यतासे सम्बन्धित फैशनपरस्त पुस्तकोंको पढ़कर उन्हींकी नकल (रूढ़ि) पर शारीरिक ढांचा और रहन-सहन अपनाते हैं। कथानायिका मीनाने वर्किंग गर्ल्स होस्टलमें अपनी सहेलियोंके सम्पर्कसे 'श्रीमती हेलिन, वी. इंडेलिन और मार्गिनकी लिखी आकर्षक नारी और सम्पूर्ण नारी पुस्तकें पढ़ीं जिनमें पुरुषोंको लुभाने और वशमें करनेके ढंग बताये गये थे' और उसीके अनुरूप चलकर नरेन्द्रको अपने जालमें फांसा। इस प्रकार यह पीढ़ी अपनी उछल-कूदके चलते एक भिन्न प्रकारकी रूढ़ि की शिकार हो रही है।

कथानायिका मीना उर्फ मधु लखनऊके एक उच्च कायस्थ परिवारके जजकी कन्या है किन्तु स्वभावकी उन्मुक्तताके चलते किशोरावस्थामें पारिवारिक मर्यादाको लात मारकर मुहल्लेके एक मुसलमान युवकके साथ विवाह करती है। उसके द्वारा ठुकरायी जानेपर दिल्लीमें रिसे-प्शनिस्ट बनती है और एक पत्रिका सम्पादकसे विवाह करती है जो उसे छोड़कर रूस चला जाता है। दो युवकों द्वारा ठगी गयी मीना तीसरे चरणमें विस्मृतिका नाटक खड़ाकर मधु नामसे नये परिचयके रूपमें एक कुलीन परिवारके प्रो. डॉ. त्यागराजके सुशील इन्जीनियर बेटे नरेन्द्रको योजनाबद्ध तरीकेसे अपनी ओर आकृष्ट करती है और स्वयंको उस कुलीन परिवारकी बहूके रूपमें स्था-पितकर बादमें उस परिवारको बरबाद करती है। अन्तमें धक्का लगनेपर नरेन्द्र उसका मोह त्याग देता है और उसी क्रममें बारी-बारी शेष दो भी उसे ठुकरा देते हैं।

इन आधुनिकाओंका प्रेम क्षणबोधसे जुड़ा है। इनके लिए 'प्रेम' का व्यक्ति विशेषसे कोई संबन्ध नहीं है, वह किसी क्षण किसीसे किया जा सकता। महत्त्व है तो प्रेम के उन क्षणोंका जो जीवनको आनन्दविभोर बनाते हैं, जिनमें व्यक्ति आन्तरिक सुखकी स्थितिमें पहुंच जाता है। (पृ. ६१)। समानताके रोगसे ये इस तरह ग्रस्त हैं कि प्रकृति प्रदत्त नारी रूपमें रहनाभी उन्हें स्वीकार नहीं है। हनीमूनके समय मधु नरेन्द्रको जबर्दस्ती स्त्री बनाती है 'तुम पुरुषोंने हम स्त्रियोंको हमेशा हीन और तुच्छ समझ कर हमें नीचे रखा है। क्या हमें पुरुष बनकर ऊपर आने का अधिकार नहीं है ?···हमारा यह आधुनिक युग समानताका युग है, इसमें हर तरहकी धांधली खत्म होकर रहेगी।' (पृ. ७१)

इसके अतिरिक्त उपन्यासमें दो अन्य युगीन समस्याओं, पुलिसकी लापरवाही और न्यायालयों द्वारा न्याय मिलनेमें अनावश्यक देरपर लेखकने व्यंग्य किया है। आजकी पुलिस खानापूर्ति करती है न कि सही पता लगाती है जैसा मीनाके केसमें हुआ। यही हालत आजके न्यायालयोंकी है। 'वहाँ जनतापर से जितनी ऊन उतर सके उतारी जाती है।'

उपन्यासका कथानक आजकी ज्वलन्त समस्यासे, जिससे सभी राष्ट्रवादी विचारधाराके लोग चिन्तित हैं, जुड़ा है। रोचकता और औत्सुक्य आद्योपान्त बना है। शीर्षकका चुनाव कथाकारकी पैनी दृष्टिका परिचायक है। 'पंखहीन तितली' शब्द उपन्यासमें कहीं आया नहीं है किन्तु ये दो शब्द मीना उर्फ मधुके सम्पूर्ण क्रियाकलापों और उसकी भावी करुण गाथाको गहरी अर्थवत्ता देते हैं। रहबरजी मीनाकी तरह ही आधुनिकाओंके चरित्रको प्रस्तुत करते समय थोड़ा अतिवादी हो गये हैं। जिस वेगके साथ आज यह पीढ़ी अन्धी दौड़में लगी है रहबर जी का उससे भी कुछ आगे निकल जाना बहुत अटपटा नहीं लगता।

—मान्धाता राय

बुन्देलखण्डका सूरज

लेखिका : इन्द्रा स्वप्न; प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली-११००३५ । पृष्ठ : १६४; क्रा. ८१; मूल्य : २०.०० रु. ।

समीक्ष्य उपन्यास बुन्देलखंडके महान् स्वतन्त्रता सेनानी बुन्देला वीर छत्रसालके जीवनपर आधारित है । छत्रसालके पिता चम्पतराय और मां सारन्धाके बाद ऐसा लगता था जैसे बुन्देलखडमें अंधेरी रात आ गयी हो । औरंगजेबके भयसे छत्रसालके पिताके सम्बन्धियों, मित्रोंने उनका साथ न दिया । परन्तु स्वतंत्रताके लिए जूझनेवाले चम्पतराय और सारन्धाके बलिदानसे छत्रसालके रूपमें बुन्देलखण्डमें स्वतंत्रता-सूर्य उदित हुआ जिसके नेतृत्वमें बुन्देलोंने अपनी खोयी हुई स्वतंत्रता प्राप्त करनेके साथ सांथ इतिहासको गौरवशाली अध्याय प्रदान किया । लेखिकाने इस नामकरणकी दृष्टिसे विशेष सूझ-बूझका परिचय दिया है ।

यदि कथानकका प्रारम्भ छत्रसालसे ही किया गया होता तो मेरे विचारसे प्रारम्भ उतना प्रभावशाली न होता जितना सारन्धा चम्पतरायका बलिदान दिखानेसे हो गया है क्योंकि छत्रसालके विशेष व्यक्तित्वके निर्माण में उस वीरांगना मांकी अप्रत्यक्ष प्रेरणा रही जिसने अपने हाथोंसे अपने गौरव और और स्वाभिमानकी रक्षाके लिए अपने सुहाग तथा निजका बलिदान कर दिया । सारन्धा और चम्पतरायके बलिदानके बाद पाठककी जिज्ञासा-वृत्ति आगेका बहुत कुछ जाननेके लिए तीव्र हो जाती है, लेखिका जिज्ञासा और रोचकताको उपन्यासके अन्ततक बनाये रखनेमें सफल रही है ।

स्वतन्त्रताके युद्धमें छत्रसालके प्रेरणा-स्तम्भ स्वामी प्राणनाथ थे, इसे बहुत कम लोग जानते हैं । लेखिकाने महामतिके मार्गदर्शनको विशेष महत्त्व देते हुए महामतिके व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन स्वतंत्रता-प्रेम संगठन-शक्ति आदि गुणोंकी सफल अभिव्यक्ति की है । सन्तरामकी स्वामी-भक्ति, विजया और बलदीवानका आदर्श प्रेम अनुकरणीय है ।

समीक्ष्य उपन्यास साम्प्रदायिक सौहार्दकी प्रेरणा देता है । छत्रसाल और महामति प्राणनाथका संघर्ष धर्मांध औरंगजेबके विरोधमें था जो धर्मका मर्म बिना समझे मूर्तियां तुड़वाता था, हिन्दुओंपर अत्याचार करता था, वे दोनोंही (छत्रसाल प्राणनाथ) सर्वधर्म ऐक्यके समर्थक थे । यही कारण है कि बहुतसे मुसलमानभी छत्रसालके साथ थे । मंदिरकी रक्षा करनेवाला बर्काखाँ एक ऐसाही पात्र है । औरंगजेबकी बहिन जहांआराभी औरंगजेबका विरोध करती है ।

इस प्रकार यह उपन्यास स्वाधीनता-प्रेम, गुरु-भक्ति, स्वामी-भक्ति, साम्प्रदायिक सौहार्दकी भव्य झांकी प्रस्तुत करता है, इस दृष्टिसे इसकी विषय वस्तु ऐतिहासिक होते हुए भी प्रासंगिक है जो युवा पीढ़ीके लिए मार्गदर्शक बन सकती है ।

परन्तु साथही कुछ बातें विशेष रूपसे खटकती हैं । ऐतिहासिक पात्रोंके साथ जब लेखक काल्पनिक पात्रोंका सृजन करता है और उन्हें विशेष महत्त्व प्रदान करता है तो पूरा विवरण प्रस्तुत करना लेखकका धर्म हो जाता है, तभी वे पात्र सत्य प्रतीत होते हैं । परन्तु समीक्ष्य उपन्यास की लेखिकाने इस बातकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है । यथा विजया जैसा सशक्त पात्रभी पूर्ण परिचयके अभावमें एक आदर्श भावही बना रहता है ।

मुहावरों, कहावतों तथा लोकोक्तियोंका प्रयोग अपने मूल रूपमें भाषाकी प्रेषणीयतामें सहायक होता है, परिवर्तन, परिवर्द्धन करनेसे पेबंद बन जाता है । अतः लोकोक्तियों, मुहावरों आदिके प्रयोगमें विशेष सावधानीकी आवश्यकता होती है । समीक्ष्य उपन्यासमें ऐसी सावधानी न बरतनेके कारण स्थान-स्थानपर पैबंद लग गये हैं । यथा मूल उक्ति है 'बनी-बनीके सब कोई साथी और बिगड़ीको कोई नांय', परन्तु लेखिकाने इसके प्रयोगमें परिवर्तन कर दिया है, 'बनी बनीके सब कोई साथ, बिगड़ी का कोई नहीं ।' (पृ. १४) । 'दाल भातमें मूसलचन्द' ही उचित था, जी लगानेकी आवश्यकता नहीं थी, 'दाल भातमें मूसलचन्दजी बने हुए हैं ।' (पृ. ११६) । मुहावरा है—'खून पसीना एक करना', पर लेखिकाने खून का अनुवाद कर दिया, 'हम लहू पसीना एक करके…' (पृ. ८८) ।

पात्रोंके कार्यकलाप, बातचीतमें जिस प्रकारके भाव आते हैं—भाषाके माध्यमसे उन्हींकी अभिव्यक्ति की जाती है । परन्तु समीक्ष्य उपन्यासके पात्र किसीभी स्थितिमें हों, मुस्कराते हैं । 'मुस्कराना' शब्द इतना अधिक प्रयुक्त हुआ है कि यह सोचना पड़ता है--यह तकिया कलाम है अथवा भावानुकूल भाषा न पानेकी मजबूरी ? एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—'प्रेम तो उस मुगल सम्राट्को अपने

पितासे क्या भाइयोंसे भी नहीं था, वह प्रजासे क्या प्रेम करेगा' विजया मुस्करायी।' (पृ. ९७) 'आत्मविश्वासभी बड़ी शक्ति देता है, बलदीवान। वह दुर्बलसे दुर्बलको साहसी बना देता है।...स्वामी प्राणनाथ मुस्कराये (पृ. ९३)।

'प्रस्तुत उपन्यासमें उस युगके परिवेश व पात्रोंकी गरिमाका इतना सजीव चित्रण हुआ है कि पाठक बरबस उस कालमें सहजही विचरण करने लगता है।' 'पूर्वा' के लेखकसे मैं अंशत: ही सहमत हूं। पात्रोंकी गरिमाका वास्तवमें सजीव चित्रण हुआ है परन्तु युग परिवेशका नहीं। यदि युग परिवेशका सशक्त चित्रण हुआ होता तो निश्चयही समीक्ष्य उपन्यासमें बुन्देलखण्डकी लोकभाषा, संस्कृति और परम्पराओंकी विस्तृत झांकी अभिव्यक्ति पाती। परन्तु उपन्यास पढ़नेपर इस दृष्टिसे निराश होना पड़ता है।

फिरभी इसमें सन्देह नहीं कि उपन्यास पठनीय है और संग्रहणीयभी। भारतीय इतिहासके एक महत्त्वपूर्ण पात्र छत्रसालको केन्द्रबिन्दु बनाकर युवा पीढ़ीके लिए प्रेरणादायी अध्याय प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे लेखिकाका प्रयास सराहनीय है।

□ शम्भु शुक्ल

कहानी संग्रह

बाबूजी

कहानीकार : मिथिलेश्वर; प्रकाशक : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के-१७ कृष्णनगर, दिल्ली-११०-०५१। पृष्ठ : १६०; क्रा. ८०; (द्वितीय संस्करण); मूल्य : १८.०० रु.।

मिथिलेश्वरका नाम उन सजग कहानीकारोंकी प्रथम पंक्तिमें आता है, जिन्होंने हिन्दी कहानीको सामाजिक चेतना और प्रगतिशील चिन्तनके नये आयाम दिये हैं। उनका लेखन, ज़ो सामान्यतया ग्रामीण परिवेशसे सम्पृक्त रहा हैं, उस यथार्थपरक वस्तुजगत्की उपज है, जिसमें न तो प्रकृतिका रूमानी सौन्दर्य है, न ग्रामवासियोंका आरोपित भोलापन; जिसमें न परोपकारकी कृत्रिम मिठास है और न सादगीकी कल्पित मुसकान। इसके विपरीत, वह एक ऐसा संसार है, जहां अज्ञान और अशिक्षा, मँहगाई और बेकारी, अन्याय और भ्रष्टाचार का एकछत्र राज्य है, जहां नौकरशाहीकी छत्रछायामें शोषण पनपता है, जहां पुराने साहूकारोंको वारिस सहकारी सोसाइटियां तथा लेवी और पनीवटवाले आजभी किसानोंके ढोर खोल ले जाते हैं और जहां आधुनिकता के अभिशाप फैशन और व्यभिचार संक्रामक रोग की तरह निरन्तर फैलते जा रहे हैं।...तात्पर्य यह है कि मिथिलेश्वरके गाँव किसी कल्पना लोकके रंगीन गांव नहीं, अपितु यथार्थकी ठोस भूमिपर टिके वास्तविक गांव हैं,...चिर उपेक्षित और समस्याग्रस्त।

'बाबूजी' मिथिलेश्वरके पांच वर्ष पूर्व प्रकाशित कहानी-संग्रहका द्वितीय संस्करण है। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् द्वारा पुरस्कृत तथा विभिन्न विद्वानों और पत्रिकाओं द्वारा प्रशंसित इस संग्रहको साहित्य जगत्में अभीष्ट लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इस बीच लेखकके दो अन्य संग्रह, 'बंद रास्तोंके बीच' तथा 'दूसरा महाभारत' भी प्रकाशित हो चुके हैं। तोभी 'बाबूजी' का परीक्षण-समीक्षण आजभी असामयिक अथवा कालातीत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इन कहानियोंकी समस्याएं आजभी उतनीही विकराल और वेधक हैं, जितनी उस समय थीं।

संग्रहकी प्रथम कहानी 'अनुभवहीन' एक बेरोजगार युवककी कहानी है, जो इस समस्याको एक भिन्न संवेदना

के साथ-जोड़कर प्रस्तुत करती है। वस्तुतः इस देशमें बेरोजगारी अपने आपमें जितनी भयंकर समस्या है, उससे कहीं अधिक भयंकर है वह तरीका, जिससे सार्वजनिक सेवाओंके लिए उम्मीदवारोंका चयन किया जाता है। विज्ञापन, साक्षात्कार और नियुक्तियां सब एक प्रपंच हैं। जहाँ विज्ञापन निकलनेसे पूर्वही नियुक्तियाँ हो जाती हों वहां निष्पक्ष चयनकी कल्पना करनाही निरर्थक है। फिर ऊँची फीस और मंहगी परीक्षाएं सामान्य लोगोंको उन पदोंसे दूर रखती हैं, जिनपर एक वर्ग विशेषका अधिकार है। फिरभी कहानीके नायकका इन विकृतियों को अनदेखाकर 'पब्लिक सर्विस कमीशन' का विज्ञापन पढ़तेही नियुक्तिके स्वप्न देखना और पहली संतानके आनेसे पूर्वही परीक्षाफीस जुटानेके लिए नसबन्दी करा लेना पाठकके मनको एक अजीब-सी करुणासे भर देता है।

'बीच रास्तेमें' की मूल संवेदनाभी इसी प्रश्नसे जुड़ी है। यह बेरोजगारीके शिकार एक ऐसे ग्रामीण परिवार की कहानी है, जो अभाव-ग्रस्तताकी पराकाष्ठातक पहुंच गया है। परिवारके दो जवान बेटोंके पास बाहर पहनकर जाने लायक केवल एक जोड़ी कपड़े है, जिन्हें एक भाई पहनकर चला जाता है, तो दूसरेको फटी लुंगी और बनियान पहने घर बैठे रहना पड़ता है। स्थितियोंकी यह मारकता उस समय चरम बिन्दुतक पहुंच जाती है, जब दोनों को पुलिसकी भरतीके लिए पासके कस्बेमें जाना पड़ता है और छोटा भाई बीच रास्तेमें, ईखके खेतमें छुपा दूसरे भाईके लौटनेकी प्रतीक्षामें सर्पदंशका शिकार हो जाता है। प्रतीकार्थ ग्रहण किया जाये, तो दरअसल बेरोजगारी ही वह सर्पिणी है, जो जीवनके बीच रास्तेमें अनेक युवकोंको डंस लेती है।

'एक और हत्या' भी एक ऐसेही दंशकी कहानी है। यह उन खेतीहर मजदूरोंकी कहानी है, जिनके अस्तित्व को मालिकोके आतंकने एक सर्वग्रासी अजगरकी तरह निगल लिया है, जिन्हें न अपने सुखमें हंसनेका अधिकार है न दुःखमें रोनेका। जो दो सूखी रोटियोंके लिए मालिक की निर्ममता पीढ़ी-दर-पीढ़ी बिना उफ़ किये सहते चले जाते हैं। जगेसरा ऐसीही विवशतामें जी रहा है। मालिक की गालियोंके आतंकने उसकी चेतनाको इस तरह आक्रांत कर लिया है कि पागल कुत्तेद्वारा काट लिये जानेपर भी इलाजके लिए वह अस्पताल जानेकी हिम्मत नहीं जुटा पाता।

'शेष जिन्दगी' एक तरहसे दोहरी संवेदनाकी कहानी है। यह कहानी एक ओर जहां विधवा जीवनकी कटुताओंको व्यक्त करती है, वहां दूसरी ओर ग्राम्य-जीवन विषयक परम्परागत इमेजको भी तोड़ती है। कहानीकी नायिका एक प्रौढ़ विधवा है, जो पतिकी मृत्यु के बाद ग्रामीण जीवनकी काल्पनिक भव्यतासे आकर्षित होकर शहरसे पतिके गाँव चली आयी थी। परन्तु यहां आकर उसने देखा कि यथार्थके गांव पत्र-पत्रिकाओंवाले गांवोंसे कितने भिन्न होते हैं...वह शान्ति और निष्कपटता वह मासूमियत और भोलापन क्या केवल किताबोंकी वस्तु थी ?...यहां तो स्थिति नितान्त भिन्न है। पारस्परिक विद्वेष और कलुषित राजनीतिकी विभीषिका गांवों को बुरी तरह झुलस रही है। पड़ौसमें चोरी होती रहती है, पर कोई नहीं बोलता। गुण्डे खेतों और खलिहानोंसे अनाज उठा ले जाते हैं पर कोई विरोध नहीं करता। जीने के लिए पग-पगपर बुराईयोंसे समझौता करना पड़ता है और न्यायके लिए डाकुओंकी मिन्नतें करनी पड़ती हैं।

'विरासतमें' कहानीमें ग्रामीण अंचलमें व्याप्त घोर अन्धविश्वास और उसके खिलाफ उभरते बौद्धिक संघर्ष को वाणी मिली है। आजके वैज्ञानिक युगमें जबकि बुद्धिवादी दृष्टिकोणने प्राचीन रूढ़ियों और अन्ध परम्पराओं को तोड़ताड़कर फेंक दिया है, सुदूर देहातमें अबभी ओझा और तान्त्रिक मन्त्र-तन्त्रसे असाध्य रोगोंका इलाज करते हैं, झाड-फूंकसे बांझोंको सन्तानका वरदान देते हैं, और मानसिक विकारोंको भूत-प्रेतकी छाया बताकर लोगोंको गुमराह करते हैं। इन विश्वासोंके विरुद्ध एक वैचारिक क्रांतिका उदय हो चुका है। कुछ सजग, निर्भीक और तर्कशील नवयुवक इस दिशामें अग्रसर हो रहे हैं।

रूढ़ियों और परम्पराओंके विरुद्ध उभरते हुए संघर्ष को मूर्त करानेवाली एक अन्य कहानी है, 'पहली घटना', जिसका संघर्ष वैचारिकतातक सीमित न रहकर क्रियात्मक धरातलतक जा पहुंचा है। अतएव कहानीकी नायिका, बाल विधवा मीना घरकी चारदीवारीमें घुटकर दम तोड़नेकी बजाय अपने जीवनका मार्ग अपने आप निश्चित करती है, अपने आपको संघर्षके लिए तैयार करती है और गांवमें रहकर जितना संभव था, पढ़ लिख अपने पैरोंपर खड़ी हो जाती है। एक प्रगतिशील युवक विपिन उसके सपनोंको साकार करता है और सारे विरोधोंसे टकराकर उससे विवाह करनेको उद्यत हो जाता है।

'नपुंसक समझौते' बदलते हुए परिवेशमें नयी पीढ़ी के बहुमुखी पतनके प्रति सजग युवा-मनके विक्षोभकी कहानी है, जो ग्रामीण विकृतियोंके प्रायः हर पहलूको स्पर्श करती है। कहानीकी मूल चेतना मुख्यतः मनमें उभरते हुए विरोधको पीकर अन्यायसे समझौता करनेकी विवशतासे जुड़ी है।

'विग्रह बाबू' रेखाचित्र शैलीमें लिखी हुई एक सशक्त कहानी है, जो निर्धनताके अभिशापको करुणाके रंगोंमें बोरकर प्रस्तुत करती है। गन्दी पोशाकमें, चश्मा पहने, बीड़ीका धुँआ उगलते हुए विग्रहबाबूकी वेशभूषाही किसी भी सहृदयकी संवेदनाको द्रवित करनेके लिए पर्याप्त है। उसपर उनका महीनों बिना दाल-सब्जीके रूखी-सूखी रोटियां निगलना, आंधी पानीके समय टूटे-फूटे कच्चे मकानकी सुरक्षाके लिए रातभर जागकर ईश्वरसे प्रार्थना करना और अन्तमें दहेजकी खातिर लड़कीकी मंगनी टूट जानेपर आत्महत्या अपने पीछे एक कहानी छोड़ जाना अन्तर्मनको कहीं गहरेतक वेध जाता है।

'बाबूजी' और'संगीता बनर्जी' अस्तित्वके लिए मानव के संघर्षको व्यक्त करती हैं। इन कहानियोंका संघर्षभी संस्कारोंके खिलाफ है। दरअसल कुछ परम्परागत संस्कार और मान्यताएं हमारे स्वभाव और व्यवहारमें इतनी गहराईतक पैठ गये हैं कि हम एक खास ढर्रेपर चलनेवाली जिन्दगीही जीना चाहते हैं और दूसरोंको भी बाध्य करते हैं कि वहभी वैसाही जीवन जीये। यदि कोई व्यक्ति हमारे दायरेसे बाहर निकलनेका प्रयास करता है, तो वह हमारे क्रोध और अमर्षका पात्र बन जाता है, फिर चाहे वह 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' की मान्यताको तोड़ने वाली संगीता बनर्जी हो या परिवारसे निकलकर उन्मुक्त जीवन (जिसे हम संस्कारवश उच्छृंखल जीवन कहते हैं) जीनेके आकांक्षी बाबूजी। ये दोनों कहानियां इस तथ्यकी ओरभी संकेत करती है कि हमारे समाजमें व्यक्तिके व्यवहारका सही मूल्यांकन उसकी मृत्युके बादही हो सकता हैं।

कुल मिलाकर मिथिलेश्वरकी कहानियां, जिन्दगीकी सच्चाईके वे दस्तावेज हैं, जो ग्रामीण जीवनकी कटुताओं को अत्यन्त मार्मिकताके साथ व्यक्त करते हैं। लेखक मार्मिक प्रसंगोंकी उद्भावना करनेमें अत्यन्त सिद्धहस्त है। उनके चित्र हमारी संवेदनाओंको उद्वेलित करते हैं, यद्यपि कहीं-कहीं, जैसे 'अनुभवहीन' या 'बीच रास्तेमें' में, उन की परिस्थितियां अतिरंजनाकी स्थितितक भी पहुंच गयी हैं, फिरभी वे विश्वसनीयताकी सीमाको नहीं लांघती।

शैलीकी सरलता अभिनन्दनीय है।

[] तेजपाल चौधरी

अक्षरोंका विद्रोह

सम्पादक : सुशील राजेश; प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, १३८/१६, त्रिनगर; दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : ११६; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।

'बोलते हाशिये' लघुकथा-संग्रहकी भांति 'अक्षरोंका विद्रोह' भी 'हरियाणाकी मिट्टीकी सोंधी महकके नाम' हरियाणा प्रदेशके इकतालीस रचनाकारोंको एकसाथ सामने लानेका सराहनीय प्रयास है।

सबसे पहले शमीम शर्मा 'लघुकथा : अस्तित्वका सवाल'में लघुकथाका सम्बन्ध प्राचीन समयसे जोड़ती हैं। वे इसे किस्सा—हितोपदेश – मनोरंजन – सचके रहस्य के रूपमें स्वीकारती हुई सन् १६०० से लेकर आजतक की विधाओंमें आनेवाले परिवर्तनोंमें लघुकथाको अग्रगामी मानती हैं। अच्छा होता यदि इस विधाके विकासमें सक्रिय भूमिका अदा करनेवाले रचनाकारोंका उल्लेख करती हुई आजकी सशक्त लघुकथाओंमें से कुछका उल्लेख कर जातीं। ऐसा करनेसे पाठकोंको लघुकथा विधामें रुचि लेने और इन्हें पढ़नेमें मदद मिलती। उदाहरणतः ये लघुकथाएं मार्मिक ही नहीं, सोचने-समझनेके लिएभी सहज भावसे प्रोत्साहित करती हैं।

लघुकथाकी अनेक परिभाषाओंमें शमीम शर्माके इन शब्दोंको भी लघुकथाकी एक परिभाषाके रूपमें लिया जा सकता है : वस्तुतः लघुकथा साहित्यकी वह गद्य विधा है, जो सूक्ष्म भावात्मक प्रभावकी एकांगिताका निर्माण करती हुई अपनी एकाग्र दृष्टिसे जीवनकी किसी स्थिति, खण्डित चित्र या मनोभावको रूपायित कर देती है।' (पृ. १०) मेरे विचारमें—'लघुकथा तत्त्वहीन कथा विधा है जिसमें शैलीगत प्रयोगकी अपेक्षा भावपक्षीय कुरेदनकी गुंजाइश ज्यादा है।'

सम्पादक सुशील राजेशने लघुकथा विधाके प्रसंगमें डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कहानी लेखिका मृणाल पांडे और विश्वविद्यालयके रीडर (नाम क्यों नहीं ?,) को कुछ हद तक एकही पैमानेसे परखना चाहा है। जहांतक प्रथम दो व्यक्तियोंका सम्बन्ध है, उनकी वकालत किये बिना यह उत्सुकता अवश्य है कि किस संदर्भ और प्रसंगमें उन्होंने

लघुकथा विधाको नकारा है। अच्छा होता सुशील राजेश चुनी हुई लघुकथाओंका एक नया संकलन तैयार करनेका उपक्रमकर उन्हींके नाम समर्पित करें ताकि वे देख सकें कि लघुकथा केवल चुटकुलेबाजी नहीं गम्भीर विधाके रूप में विकसित हो रही है।

संकलनमें इकहत्तर लघुकथाएं हैं। कुछ रचनाएं सतही और प्रभाव छोड़नेमें असमर्थ हैं। किन्तु इतने बड़े संकलनमें ऐसी कुछ रचनाओंका आ जाना स्वाभाविक है। अपेक्षाकृत उल्लेखनीय रचनाएं हैं 'सूअर' (रमेश बतरा), 'दुःख', 'शिक्षा','अन्तर'(पृथ्वीराज अरोड़ा),'झूठ' (महावीरप्रसाद जैन), 'जेबकतरा' (अशोक जैन),'सबसे अच्छा गेहूं' 'रोटीकी शक्ल' (भगवान प्रियभाषी),'नेतृत्व', 'शेरकी खाल' (मधुकान्त), 'अपने अपने सच' (अशोक भारती), 'अब नहीं', 'घूसखोर' (हरनाम शर्मा), 'इतिहास परिचय', 'गवाह', 'डरके पीछे' (अशोक भाटिया), 'ऐलान-ए-बगावत', 'शासन' (मधुदीप), 'कानून' (कंवल-नयन कपूर), 'दुपट्टा' (विकेश निझावन), 'प्रतिबद्ध' (प्रकाश मनु), 'टॉलरन्स' (रामनिवास मानव), 'लुटे हुए अहसास' (संजीदा), 'एक अपराध और' (ओम्प्रकाश), 'अन्नदाता कौन' (प्रेमसिंह बरनालवी), 'बचत' (सुरेन्द्र गुप्त), अन्धेरा कब होगा' (सुरेन्द्र वर्मा), 'विकलांग वर्ष' (वाचस्पति कुलवन्त), 'दरख्वास्त' (ईश्वरचन्द्र), 'एक अदद गुनाह'(दिनेशकुमार पाठक), 'रमानन्द'(रमेशराज), 'अलगाव' (सुशील राजेश)।

'सूअर' एक अच्छी लघुकथा है। परन्तु इसका कथ्य एक बड़ी कहानीके अनुरूप है। 'दुःख' 'शिक्षा' और'अंतर' तीनों लघुकथाएं गहरेमें कचोटती हैं। 'शिक्षा' बच्चोंके सही दिशामें विकासका आग्रह करती है। 'अंतर' में बीभत्स रसकी मार्मिकता नग्न यथार्थको सामने लानेमें सक्षम है। 'झूठ' में व्यवस्थापर चोट है। 'जेबकतरा' में शिक्षित बेकारकी मनोदशा है। 'सबसे अच्छा गेहूं' में आर्थिक विपन्नतामें चुनावकी गुंजाइशही नहीं है। 'रोटी की शक्ल' कथ्य और शैलीगत विशेषताएं समेटे हुए है। 'नेतृत्व' एक सशक्त व्यंग्य है। 'शेरकी खाल' में भी एक सटीक व्यंग्य है। 'अपने-अपने सच' एक आदर्शपूर्ण रचना है। 'अब नहीं' 'घूसखोर' में सपाट बयानी है, फिरभी रचना प्रकृतवादी तत्त्व लिये झकझोरती है। 'इतिहास परिचय' मार्क्सवादके किसी तत्त्वकी अनजानेमें पुष्टि करते हुए मनकी छू जाती है। 'गवाह' प्रतीकात्मक सशक्त रचना है। 'डरके पीछे' सेक्स सम्बन्धी शिक्षाकी स्वाभाविक अनिवार्यताका सही पक्ष लेती है। 'ऐलान-ए-बगावत' में दृढ़ संकल्पकी जीत दिखायी गयी है। 'शासन' सहज स्वाभाविक और मार्मिक लघुकथा है। 'कानून' चुटकुला नहीं—तीखा व्यंग्य है। 'दुपट्टा'अन्दरकी सोचका जायजा लेती है। 'प्रतिबद्ध' में आम आदमीसे साहित्यकारके जुड़ने की बाहरी और अन्दरूनी प्रक्रियाका मेल न हो पानेकी विवशता है। 'टालरन्स' रोचकही नहीं, किसी सच्चाई को भी उकेरती है। 'लुटे हुए अहसास' एक मार्मिक कथा प्रसंग है। 'एक अपराध और' में कथ्य पुराना होते हुए भी, बात पुरानी नहीं। 'अन्नदाता कौन' में पारिवारिक गृहस्थ जीवनकी गुत्थीको पकड़नेकी सही कोशिश है। 'ट्यूशन' में सपाटबयानी है, परन्तु भीतरी सोचको बाहर लाया गया है। बचतमें घूसके नये-नये ढंगोंका जायजा है। 'गरीब' में रोचकता, व्यंग्य और शैलीगत नवीनता देखनेको मिलती है। 'हिस्सेदार' में आजकी कार्यपद्धति भ्रष्टाचारके नये-नये तरीकोंकी खोजही नहीं उनका पर्दा फाश किया गया है। 'अन्धेरा कब होगा' में गरीबकी मनोदशाका चित्रण है। 'विकलांग वर्ष' में प्राध्यापकी दूषित वृत्तिपर छींटाकशी है। 'दरख्वास्त' में अन्यायग्रस्त गरीबकी आह है। 'रमानन्द', 'ऊब', 'खोज' व्यक्तिगत निराशाकी उपज है। 'एक अदद गुनाह' होठोंपर न आ सकनेवाली सोचका आइना है। 'अलगाव' एक बड़ी कहानीका यथार्थपूर्ण अंश लगता है।

'अक्षरोंका विद्रोह' एक पठनीय और संग्रह करने योग्य सुन्दर संकलन है।

□ यशपाल

मत—अभिमत

यह 'प्रकर' का ऐसा स्तम्भ है, जिसमें किसी समीक्षापर आप अपनी प्रतिक्रिया भेज सकते हैं।

आपकी प्रतिक्रियाएं पुस्तकको अधिक चर्चाका विषय बनाती है। यहभी संभव है कि आपकी प्रतिक्रिया समीक्षक को पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकनकी प्रेरणा दे।

इसलिए अपने विचार अथवा प्रतिक्रियाएं समय-समयपर भेजते रहें।

— सम्पादक

नाटक : एकांकी

सत्ताके आरपार

नाटककार : विष्णु प्रभाकर; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७ कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-११०-००१ । पृष्ठ ६०; क्रा. ८१; मूल्य : ७.५० रु.।

तीर्थंकर ऋषभदेवके प्रतापी पुत्रोंमें सुविख्यात भरत और बाहुबलीकी कथापर आधारित, शीर्षकसे आधुनिक युगके सत्ता-प्राप्तिके षड़यन्त्रोंपर आधारित होनेका आभास करानेवाला विष्णु प्रभाकरका यह नाटक वस्तुतः 'भारतीय ज्ञानपीठ'की ओरसे 'ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्रीका अनुसंधान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्यका निर्माण' करानेके उद्देश्यके अन्तर्गत कर्नाटकके श्रवणबेलगोल तीर्थ स्थित (विंध्याचल पर्वतपर) 'सत्तावन फुट ऊंची भगवान गोम्मटेश्वर बाहु-बलीकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठापनाके सहस्त्राब्दी महोत्सव एवं महामस्तकाभिषेकके अवसरपर २२ फरवरी १९८१ से पहले' लिखित एवं प्रकाशित हुआ है। इस प्रकार यह प्रारम्भमें ही स्पष्ट हो जाता है कि इस नाट्य रचनाका कथानक एवं कथ्य पूर्वनिर्धारित एवं पूर्वनियोजित है, सोद्देश्य तो है ही। यहभी स्पष्ट हो जाता है कि जीवनके घात-प्रतिघात एवं प्रतिक्रियाओंसे उत्पन्न रचनात्मक दबाव और उससे निष्कृति हेतु यह नाटक नहीं रचा गया। इस अन्तरसे रचनाके आंतरिक कलामूल्योंमें अन्तर पड़ता है और यह अन्तर तब और स्पष्ट हो जाता है जब प्रभा-करजीके पूर्वके नाटक किसीके देखे-पढ़े हों।

अहंकारसे मुक्त होकरही तपस्या पूर्ण होती है और तपस्याके चरणोंमें समर्पित होकरही सत्ता पवित्र होती है। इस कथ्यका निरूपण नाटककारने ऋषभदेवके प्रतापी पुत्रों भरत एवं बाहुबलीके बीचके संघर्षके चित्रणके माध्यमसे किया है। ऋषभदेव अपने राज्यको भरत और बाहुबलीके बीच बांटकर 'वीतराग' हो गये। भरतकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ और भरतने चक्रको आगेकर दिग्विजय प्राप्तकर चक्रवर्ती होनेका गौरव पाया। वापस लौटनेपर चक्र अयोध्याके भीतर प्रविष्ट नहीं हुआ तो पंडितोंने व्यवस्था दी कि भरतने अपने भाई बाहुबली का राज्य नहीं जीता इसलिए न वे अभी चक्रवर्ती सम्राट् हुए हैं और न चक्र नगरमें प्रविष्ट हो रहा है। भरतने बाहुबलीको संदेश भेजा। बाहुबली सिद्धान्तके आधारपर भरतके समक्ष झुकनेके लिए तैयार नहीं हुए। युद्ध अवश्यं भावी था पर मन्त्रियोंके कौशलसे यह सेनाओंके बीचका युद्ध न होकर द्वन्द्व-युद्धके रूपमें स्थिर हुआ। नेत्र युद्ध, जल युद्ध, और मल्ल युद्धके तीन चरणोंमें हुए युद्धमें अन्ततः भरत पराजित हुए। आवेशमें भरतने बाहुबली पर चक्र चला दिया पर दिव्यास्त्र कुटुम्बवध नहीं करते--चक्रभी बाहुबलीकी परिक्रमाकर स्थिर हो गया। इस घटनासे भरतके मनमें ग्लानि हुई तो बाहुबलीके मनमें वैराग्य जगा। वे तपस्या करने लगे पर काफी समयतक तपस्या करनेपर भी उन्हें, कैवल्य, मोक्ष या ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ तो सभी कुटुम्बी जन चिंताकुल होकर ऋषभ देवके पास पहुंचे और उनसे वस्तुस्थिति समझकर बाहु-बलीके निकट पहुंचे। बाहुबलीने अपना राज्य भरतको दिया जिससे वे चक्रवर्ती बने इससे भीतरही भीतर भरत के अहंकारको ठेस लगी थी। बाहुबली भरतके साम्राज्य में रहकर तपस्या कर रहे थे। यह ग्लानि बाहुबलीके अहंकारको कचोटती रही। दोनों भाई भीतरसे विचलित और अहंकारसे ग्रस्त थे इसलिए किसीको शान्ति या मुक्ति नहीं मिल रही थी।

तपस्वी बाहुबलीको जब यह ज्ञात हुआ कि अबतक निराहार और अपने दो तलवोंपर खड़े रहकर जो तपस्या उन्होंने की वस्तुतः वह उनकी तपस्या नहीं थी, वह थी उनकी प्रतिक्रिया कि वे भरतकी राज्यसीमामें तपस्या कर रहे हैं और उन्हें भरत साम्राज्यका ही अन्न जल ग्रहण करना पड़ेगा। उधर भरतका चक्रवर्तित्व इसलिए अधूरा

था कि उन्होंने बाहुबलीका राज्य जीता नहीं, वह उन्हें दे दिया गया। चक्रवर्ती पद उन्होंने पाया नहीं, उन्हें दिया गया। नाटकके अन्तिम दृश्यमें भरत अपने अहंकारको तोड़कर बाहुबलीके समक्ष नत होते हैं और बाहुबलीभी अपने अहंकारको पहचानकर उसका त्याग करते हैं। इस प्रकार सत्ता तपस्याके चरणोंमें झुकती है और तपस्या अहंकारसे मुक्त होकर पूर्ण होती है, बाहुबलीको आत्म-ज्ञान, कैवल्यकी प्राप्ति होती है और वे उसका सबको उपदेश करते हैं। दोनोंही स्थितियोंमें शान्ति या मोक्षके लिए सबसे बड़ा अवरोध अहंकार साबित होता है। अहं-कारसे ही प्रतिक्रिया उपजती है और तब लोग क्रियासे परिचालित न होकर प्रतिक्रियासे परिचालित होकर पथभ्रष्ट एवं मर्यादाहीन हो जाते हैं। जितना बड़ा अहं-कार होता है प्रतिक्रियाभी उतनीही बड़ी होती है। भरत और बाहुबलीके उदाहरणसे इसे समझा जा सकता है। प्रभाकरजी इस प्रकार अपने कथ्यतक पहुंचते हैं।

नाटककारने कथ्यके रूपमें एक व्यापक जीवन सत्य का चुनाव किया है और उसे शाश्वत जीवन-मूल्यसे जोड़नेकी कोशिश की है। इस कथ्य-सत्यके निरूपणके लिए उन्होंने 'विशेष प्रेरणा'से पौराणिक प्रसंगका आश्रय लिया है। इतिहास और पुराणकी नाटकोंमें आवृत्ति महत्त्वकी वस्तु नहीं होती अगर उससे किसी महत्तर जीवन-मूल्यका संधान नहीं मिलता। एक पौराणिक कथा का आश्रय लेकर यद्यपि नाटककारने एक शाश्वत जीवन सत्यका दिग्दर्शन कराना चाहा है लेकिन कथ्यको सीधे तौरपर समसामयिक तौरपर जीवन संदर्भसे जोड़नेमें वे पूर्णतः सफल नहीं हुए। आंशिक सफलता इस अर्थमें उन्हें प्राप्त हुई है कि वे आजकी सत्ताको भी तपस्याके समक्ष झुकनेका इंगित करते हैं—पर आजके जीवनकी सबसे विकट समस्या तो यह है कि यहां तपस्या तो है ही नहीं। लेकिन एक दुःखती रग नाटककार के हाथमें यहांभी है कि वह हर आदमीको अपने-अपने अहंकारको टटोलकर देखनेका, आत्मनिरीक्षण करनेका इशारा जरूर कर जाता है और आजके युगमें मूल्यवृद्धिके साथ साथ अगर वृद्धि किसीमें हुई है तो निर्विवाद रूपसे अहंकारके क्षेत्रमें।

शैली शिल्प अथवा कथ्यकी दृष्टिसे नाटक बहुत महत्त्वपूर्ण न होते हुएभी एक अनुभवी और मंजे हुए नाटककारकी रचना होनेके कारण सफल रंगमंचीय नाटक तो है ही। नाट्यवस्तुके संयोजनमें संतुलनका कौशल इस रूपमें देखा जा सकता है कि प्रथम अंक २६ पृष्ठोंका, द्वितीय अंक २० पृष्ठोंका और तृतीय अंक [illegible] पृष्ठोंका है। तृतीय अंक स्पष्टतः कथ्यकी विकृतिके लि[illegible] संयोजित परिशिष्ट अंक-सा प्रतीत होता है, पर प्रदर्श[illegible] क्रममें यह शायद क्षेपक न भी लगे। यह नाटक यह सि[illegible] करनेके लिए पर्याप्त है कि प्रभाकरजी भरसक पारंपरि[illegible] लेखनका संस्कार करनेकी ओर प्रवृत्त हैं।

☐ नर नारायण रा[illegible]

अंधा कुआँ

[मूल नाटकका संक्षिप्तीकरण]

नाटककार : लक्ष्मीनारायण लाल; प्रकाशक [illegible] अम्बर प्रकाशन, ८८८ ईस्ट पार्क रोड, करौलबा[illegible] नयी दिल्ली-११०-००५। पृष्ठ : ८२; डिमा. [illegible] (द्वितीय संक्षिप्त संस्करण); मूल्य : १०.०० रु.।

१९५४ में लिखा गया और १९५५ में प्रथम प्रका[illegible]शित यह नाटक नाटककार ल. ना. लालका प्र[illegible] पूर्णांगी नाटक है। १९८१ में यह नाटक संशोधित रूप[illegible] और संस्कृत रूपमें पुनः प्रकाशित हुआ है। लखनऊ[illegible] साक्षरता निकेतन द्वारा आयोजित एक रंग-कार्यशाल[illegible] प्रशिक्षण शिविरमें प्रशिक्षुओंको प्रशिक्षण देनेके क्रम[illegible] यह नाटक डॉ. लालने अपनेही निर्देशनमें तैयार कराय[illegible] और २९ मार्च १९८० की संध्यामें साक्षरता निकेतन[illegible] खुले मैदानमें तथा ३० मार्च १९८० की संध्यामें रवीन्द्र[illegible]लयके मंचपर प्रस्तुत किया। प्रशिक्षण एवं निर्देशन[illegible] दौरान नाटककारने अपनी रचनामें अनेक छोटे-बड़े प[illegible]वर्तन, संशोधन किये एवं कतिपय नवीन अंश जोड़[illegible] समीक्ष्य कृति अपने उसी रूपमें प्रकाशित की गयी है[illegible] डॉ. लालमें आत्मसंस्कारकी यह प्रवृत्ति पिछले दशक[illegible] विकसित हुई है और यह शुभ संकेत है। अपने ल[illegible] अनुभवके आधारपर इस नाटकमें भी नाटककारने [illegible] परिवर्तन-संशोधन किये हैं उससे नाटकमें कसावट आयी है[illegible] और अब वह प्रभावको और अधिक सघनतासे केन्द्रि[illegible] करता है। 'सूर्यमुख' नाटकमें भी उन्होंने काफी संशोध[illegible] किये हैं। 'संस्कार ध्वज' नाटकको तो फिरसे उन्होंने [illegible] 'पंचपुरुष' नामसे लिखा ही है। 'अन्धाकुंआ' फिर[illegible] लिखा तो नहीं गया है लेकिन इसका संक्षिप्तीकरण ज[illegible] किया गया है। सूत्रधार और नट-नटी शैलीमें कथाका[illegible] एवं गायक वृन्दकी योजनाकर ग्रामीण जीवनपर आधा[illegible]रित इस नाटकमें लोकनाट्यकी शैलीका समावेश कर[illegible]

दिया है। गायन और संगीतके प्रयोगसे रचना पहलेकी अपेक्षा और अधिक रम्य हो गयी है।

चूँकि समीक्ष्य कृति नवीन रचना न होकर नवीन संशोधित संस्करण है इसीलिए समीक्षाका केन्द्र संशोधन परिवर्तनही होना चाहिये। संशोधन-परिवर्तन पूरे नाटक में किया गया है और उन सबोंपर विचार किया जाना यहां संभव नहीं; इसलिए केवल प्रथम अंकके संशोधनों एवं नाटकके मुख्य परिवर्तनोंका उल्लेखही यहां संशोधन की दिशाको समझनेके उद्देश्यसे संक्षेपमें प्रस्तुत किया जा रहा है मूल नाटकके प्रथम अंकमें कुल ३३७ (तीन सौ सैंतीस) संवाद हैं जबकि संशोधित नवीन संस्करणमें केवल (दो सौ तीस) २३० संवाद आते हैं। इन २३० संवादोंमें भी ११ (ग्यारह) संवाद ऐसे हैं जिन्हें संक्षिप्त करके शब्द संख्या घटा दी गयी है। संशोधित नाटकके प्रथम अंकके चार स्थल ऐसे हैं जहां एकही पात्रके क्रमशः बोले जानेवाले दो संवादोंको जोड़ दिया गया है। तीन स्थल ऐसे हैं जहां संवादकी भाषा बदल दी गयी है और उन्हें पहलेसे अधिक सहज बना दिया गया है। उदाहरणके लिए संशोधित नाटक पृ. ४१ पर रामदीनके संवादमें मज-दूरकी जगह 'चिकुरा' नाम लेकर संबोधित करनेवाले प्रसंगको देखा जा सकता है। संक्षिप्तीकरणकी प्रक्रियामें दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नाटककारने यह किया है कि नये आलेखमें चरित्रोंके व्यवहारका संकेत देनेवाले एक-डेढ़ पंक्तियोंके रंग-निर्देश तो मूल आलेखसे ज्योंके त्यों ले लिये पर मूल आलेखमें दिये गये छोटे-बड़े ५५ विस्तृत रंग निर्देशोंकी संख्या घटाकर केवल (बीस) २० कर दी है। इस प्रकार डबल क्राउनके ४५ पृष्ठोंका प्रथम अंक संशो-धित रूपमें केवल १८ डिमाई (आठ पेजी) पृष्ठका होकर रह गया है।

नाटकके द्वितीय अंकमें संक्षिप्तीकरणकी यह प्रक्रिया सर्वाधिक तीव्र है। मूल नाटकके ४२ पृष्ठोंका दूसरा अंक नये संस्करणमें केवल ५ पृष्ठोंका है। २५७ संवादों की जगह केवल ६१ संवाद दिये गये हैं। मूल नाटकके ६ पृष्ठोंके बाद तो नये संस्करणका पहला संवाद शुरू होता है। इस अंकमें कुएमें डूबनेसे बचायी गयी सूकाको पीटे जाने और ईदरका अर्द्ध रात्रिमें उसे छुड़ाने आने भरका प्रसंग एकदम प्रासंगिक रूपसे प्रस्तुत करते हुए शेष समस्त संवाद और प्रतिक्रियाएं छांट दी गयी हैं। ४२ पृष्ठोंका तीसरा अंक नये संस्करणके १६ पृष्ठोंमें और ४२ पृष्ठों का चौथा अंक नये संस्करणके १४ पृष्ठोंमें आ गया है। विस्तारकी दृष्टिसे नाटक मूल रूपका आधा रह गया है पर सभी प्रमुख घटनाएं नाटकमें आ गयी हैं। ज्यादा सफाई विस्तृत संवादोंकी छंटाई और विस्तृत रंग-निर्देशों की तराशमें दिखायी गयी है। नये संस्करणके हर अंकके प्रारम्भमें कथाकार और गायक दल कथानकके अंतरालको भरता चलता है और गायन द्वारा तारतम्य बनाये रखता है। नये संवाद बहुत कम डाले गये हैं। जैसे प्रथम अंकमें कथाकारके प्रारंभिक संबोधनके अलावा पृ. ४० पर राम-दीन द्वारा मूरतको बीड़ी पीनेका निमन्त्रण देनेवाला प्रसंग और संवाद और अंकके अन्तमें पृ. ४४ पर राजी द्वारा बोले जानेवाले दोनों संवाद नये हैं और यह आयो-जन इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि इन दोनों संवादोंसे राजीका सम्पूर्ण चरित्रही बदल जाता है। मूल नाटककी राजी इतनी दबंग नहीं थी। इसी प्रकार दूसरे अंकके संशोधनने नन्दोको महत्त्वपूर्ण चरित्रसे वातावरण निर्माणमें सहायक चरित्र बना दिया गया है यद्यपि इससे उसके चरित्र की रेखाओंमें अन्तर नहीं आया। दूसरे अंकमें नन्दोकी महत्त्वपूर्ण भूमिका छंटकर प्रासंगिक चरित्रके रूपमें सीमित हो गयी है।

संक्षिप्तीकरण, भाषिक संशोधन, संवादकी पुनर्रचना, सूत्रधार शैलीमें कथावाचक योजना, लोकनाट्य रूढ़िके अनुकरणपर गायक मंडलीकी योजना आदिसे नाटकमें चुस्ती, कसावट; सान्द्रता और मंचीय व्याकरणकी दृष्टिसे व्यावहारिकता और नाटकीयता आयी है। यद्यपि नाटक का शिल्प और नाटककी मूल चेतना पूर्ववत् सुरक्षित है पर संक्षिप्त हो जाने और कुछ नवीन तत्त्वोंके प्रविष्ट हो जानेसे रचनामें अब पहलेकी अपेक्षा अधिक आकर्षण आ गया है। एक सजग रचयिताकी यह पहचान है कि वह अनवरत अपनेमें संस्कार भरता और अपनी रचनाओंका संस्कार करता चलता है। जिस दिन परिमार्जनकी आव-श्यकता नाटककारमें समाप्त हो जायेगी, रचयिताकी दृष्टिसे उसके भीतरका कलाकार सूख जायेगा। डॉ. लाल की यह विशेषता उल्लेखनीय है और अनुकरणीयभी। संशोधन द्वारा अपनी रचनाको अधिक सार्थक बना पानेकी नाटककारकी सफलताका श्रेय उनकी इसी प्रवृत्तिको जायेगा।

□ नर नारायणराय

मालकंसी स्वरालियों पर समर्पित

'दिखती नहीं अपनी ही छांह[1]'

कवि : वसन्त रामकृष्ण देव

समीक्षक : डॉ. रामजी तिवारी

श्री वसंतदेवके काव्य-संग्रह 'दिखती नहीं अपनीही छांह' की कविताएँ, काव्यकी प्रवहमान धारामें एक पृथक् व्यक्तित्वकी पहचान कराती हैं। आजके कवियोंके तेज-तर्रार तेवर, व्यवस्थाके प्रति आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रियाएं, आक्रामक विद्रोह, उत्तेजनापूर्ण बड़बोलापन आदिका इन कविताओंमें सर्वथा अभाव है। प्रवहमान धारासे यह अलगाव जहां आस्वादकी नयी भूमि तैयार करता है, वहींपर मूल्यांकन संबंधी कठिनाईभी उपस्थित करता है। वसन्तदेव की यह पृथकता युगबोधका अभाव न होकर उनका अपना चुनाव है, उनकी अपनी रुचि और प्रवृत्तिकी विशिष्टता का परिणाम है। आजके कविकी नियति और परिवेशगत स्थितियोंसे उनका निकट परिचय है। किन्तु समूहगानमें स्वर मिलानेकी अपेक्षा अपनी मालकंसीकी स्वरालियोंपर समर्पित होना उन्हें अधिक प्रिय है।

संग्रहकी पहली कविता 'लगन गंधार' में कवि-जीवन की बहुविध विसंगतियों, यातनाओं, असफलताओं-विषमताओं, चुनौतियों, सीमाओं और संभावनाओंका काव्यात्मक चित्रण करते हुए वस्तुतः कवि-जीवनका घोषणापत्र प्रस्तुत किया गया है। इससे बढ़कर क्या विडम्बना होगी कि 'मुरदार पोस्टरोंकी बहुरूपि ा गुफाओंमें अलसमुबह धँसना, यज्ञोपवीतकी ब्रह्मगांठ हाथमें थाम बैखरी राम नाम, नसाई रैनके बिखरे सपनोंमें पैने बुखारसे दगा देह-चाम ओढ टसकना' कविकी नियति बन गयी है। 'सैलाब में लहूलहरोंके वे साष्टांग डूबते-उतराते' कवि अन्याय गतिरोधोंसे बाधित होते हैं और अथर्वण अर्थोंकी जोंगीड़ा जोंके उनका रक्त चूसती हैं। राजनीतिका पलीता और विदेशी अनुकरण कविको सम्मोहित करता है किन्तु राजनीतिक जुलूसमें पैरों तलेका रास्ता भूल जानेका भय है और विदेशी अनुकरणमें ऐन्द्रिक योगके दारुण परिणामों के साथही गंगा मैयाकी करुणासे भी वंचित होना पड़ता है। फिरभी एक अदृश्य प्रेरणा कविकी अनाहत काव्य ऊर्जाको रचना कर्ममें प्रवृत्त करती है और वह सारी विसंगतियोंसे उपराम होकर अपनी शब्द सामर्थ्यसे गीतों का रोमांचित गंधार रचता रहता है। यह कविता कवि-नियतिके विभिन्न पहलुओंका संकेत करती है। मा-निषाद मर्मर, गंगा मैया, कोदण्डधारी राम, हिरण्मय अम्बर, खेचरी मुद्रा, नान्दी, भरतवाक्य, अमृतानुभव जैसे शब्द प्रयोगोंसे कविकी संस्कारजात सांस्कृतिक निष्ठा प्रमाणित है। साथही कवितामें विलक्षण संदर्भगर्भता और अर्थ-समृद्धि उत्पन्न हुई है। संगीत-बिम्बोंका विधानभी कामदेव की एक विशिष्ट सिद्धि है।

'मृत्यु गंध' शीर्षकके अन्तर्गत 'स्व. बा. सी. मर्ढेकर', 'अक्षयवटकी व्रण रेखाएं' और 'बाईस जनवरी उन्नीस सौ पैंसठ' कविताएं, जीवनकी विसंगतियों और विद्रूपताओंसे आजीवन जूझनेवाले कवियोंके प्रति श्रद्धांजलियां हैं। इनमें 'मुक्तिबोध' को समर्पित कविता निश्चित रूपसे एक सशक्त और सफल कविता है। काव्यगत उपलब्धियों, मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों, वैचारिक सरणियों और जीवन-दर्शनकी मान्यताओंके साक्ष्यपर मुक्तिबोध जैसे जटिल कवि-व्यक्तित्वकी प्रत्ययकारी काव्यात्मक प्रस्तुति एक कठिन कार्य है। मुक्तिबोधकी कविताओंके साक्ष्यपर उनके संघर्षरत 'ओरांगउटांग' व्यक्तित्वके सफल रेखांकनके साथ व्यक्तित्वकी आंतरिकताकी परख, मृत्युके बाद तथा-

१. **दिखती नहीं अपनी ही छांह; कवि : वसन्त रामकृष्ण देव; प्रकाशक : कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर (राजस्थान)। पृष्ठ : ७७; डिमा. ७१; मूल्य : ४.०० रु.।**

कथित मित्रोंकी प्रतिक्रियाओंका खोखलापन, कृतित्वका काव्यात्मक आकलन, प्रभावपूर्ण ढंगसे किया गया है और अंतमें मुक्तिबोधके सत्याग्रही, जुझारू व्यक्तित्वको सगुण साकार करते हुए यह मर्मभेदी उद्गार व्यक्त किया गया है कि 'सत्य सदा नंगा होता है और नंगेको देखनेकी सज़ाएं मिलती हैं और।' व्यक्तित्व और कृतित्वके वस्तुगत मूल्यांकनके साथ कलात्मक निर्वाहकी विशिष्टता कवि वसन्तदेवकी रचनात्मक क्षमताका प्रमाण है। कविता अपनी परिसमाप्तिपर एक ऐसी गहरी करुण सवेदनाकी सृष्टि करती है कि अक्षयवटकी व्रण रेखाएं संवेदनशील पाठकके हृदयपर पत्थरकी लकीर बन जाती है। हिन्दीमें लिखी गयी इस प्रकारकी कविताओंमें यह कविता अपना विशिष्ट स्थान रखती है। शेष दो कविताओंमें चरित्रोंका स्पष्ट चित्रण नहीं हो पाया है। प्रभुत्वपूर्ण शब्दोंकी साधना, विरोधाभासों और अतिशयोक्तियोंके संयोजन, बिंब विधानकी सजगता आदिसे मूल आशयका तिरोभाव हो गया है किन्तु इन कविताओंकी अपनी उपलब्धियां है। वाणीके जूते उतारकर गहन अँधेरेमें प्रवेश, उत्तरहीन उत्तरीय, दक्षिणमें अदक्ष कदम, अर्थीपर शब्दोंके फूलों की सार्थकता, जीवनके गूढार्थवाले सूक्तोंको निरुक्त बने रहनेकी उपादेयता आदि प्रयोगोंसे भारतीय संस्कृति और साहित्यिक परंपराओंके प्रति कविकी दृढ़ आस्था व्यक्त होती है। कवि मानता है कि, 'पर्वतसे बड़ा होता है पत्थर, दिगन्तस्पर्शी व्यथा होती है हर, वह इन्द्रियोंकी इन्द्रायणीपर तिरती है' 'इसी आस्थाके कारण वह व्योपनिषत् लिखनेका निमंत्रण देता है। शब्द संयोजन, नाद-सौन्दर्य और संदर्भ-समृद्धिसे इन कविताओंमें अद्भुत चमत्कृति उत्पन्न हुई है।

'माथेरान : एक पिकनिक' शीर्षककी कविताएं कवि के प्रगाढ़ प्रकृति-प्रेम और प्रकृतिकी नानाविध भंगिमाओं के रूपायन-सामर्थ्यका द्योतन करती हैं। स्थान-स्थानपर विनोदका पुट कविताको नयी दीप्ति और ताजगीसे मंडित करता है। गतिशील बिंबोंकी नाट्यात्मक प्रस्तुतिके लिए मंचीय व्यवस्था प्रदान करना कविकी अपनी विशेषता है। कवि देखता है --'सज उठे हैं वृद्ध तरुवर खोंस करके फूल नीले बैजनी : एक डुबकी रसभरी; पर हांफती है प्यास' कलियोंकी शोख आवाज सुनकर कवि शब्दबेधी बाण बनकर टूटनाही चाहता है कि 'तभी बाँहें फैला बूढ़ी घाटी द्वारपर आ खड़ी होती,' इसमें बिंबोंकी जीवन्तता और संदर्भ-विपर्ययसे निष्फल भावबोधकी स्थिति लक्षित है (ट्र मॅलेट स्प्रिंग)। इसी प्रकार 'तरुओंकी छायाके साँवले अंधेरेमें', 'धरतीकी नाजुक ललौही हथेलीपर' सुनहरे चाँद द्वारा मेंहदीके घने गीतोंकी रचनाका सम्मोहक दृश्य कवि को मुग्ध करता है किन्तु 'जंगलकी आग' 'और शहराती डीठ' के यथार्थका बोध होतेही वह प्रस्थान कर देता है। यही यथार्थबोध वसन्तदेवको छायावादी सौन्दर्य-बोधसे अलग करता है। प्रकृतिकी रमणीयताके साथ उसके रम्य दारुण रूपका चित्रणभी कविने 'ईको पॉइण्ट' कवितामें किया है। वहाँ प्रतिध्वनित होनेवाला स्वर अरेबियन नाइटकी अभिशप्त परीका न होकर, पर्वत-चोटियोंकी नाभिसे निकलनेवाले लहरते नागकी चीख है जिसे शहराती आत्मा सहजतासे झेल नहीं पाती। प्रतीकात्मक स्तरपर यह कविता नागर जीवनकी कृत्रिमता और प्रकृति के यथार्थके बीच पैदा हुए गहरे अन्तरालको इंगित करती है। 'पॅनोरॅमा पॉइण्ट' कवितामें प्रकृतिकी भव्य विराटता और भयानकताके चित्रणके साथ आधुनिक मनुष्यकी अभिशप्त नियतिका संकेतभी बड़ी सफलतासे किया गया है। आजका महत्वाकांक्षी मनुष्य जीवनको चुनौती देने वाले यथार्थकी ऊंचीसे ऊंची चोटीको पदाक्रांत करके जयघोष करनेका संकल्प लेता है किन्तु इस अभियानमें वह अपनी पहचान खोकर आत्मनिर्वासनका दण्ड भोगता है। इसलिए निर्दिष्ट चोटीपर पहुंचनेके बाद वह अनुभव करता है कि 'दीखती नहीं अपनीही छाँह' आमोद-यात्रा से वापस लौटते हुए कविका प्रकृतिप्रेमी मन अनुभव करता है कि 'हर घाटीमें झूल उठी है एक गीतकी कड़ी' जिसकी अनुगूंजसे कविकी गाड़ीका अड़ जाना स्वाभाविकही है।

इन सभी कविताओंमें कविकी कलाकारकी तटस्थता द्रष्टव्य है। सम्मोहनकी भावदशाएं,हास्यकी योजना किसी भी कविके लिए कठिन कार्य है किन्तु वसन्तदेवने अपनी कविताओंको समृद्ध किया है। स्वभावत: प्रकृतिप्रेमी होने पर भी वे आत्मदानकी स्थितिमें नहीं आते, भावुकता उन्हें विचलित नहीं कर पाती, भावुकताके चरम क्षणमें भी उनमें यथार्थबोधकी स्थिति और आत्म-सजगता बनी रहती है। इसके बावजूद दृक्प्रत्यय और दृक्चित्रोंके रूपायनकी अद्भुत क्षमता सम्पूर्ण संग्रहमें भास्वर है। इतना अवश्य है कि निरन्तर बनी रहनेवाली यह तटस्थता प्रकृतिके प्रति कार्यकी रागात्मक ऊष्माको बाधित करती है।

देश, प्रदेश भाषा, धर्म और संस्कृतिकी कृत्रिम दीवारोंको तोड़नेवाली युवा पीढ़ीको वसन्तदेवका आशीर्वाद

प्राप्त है। किन्तु भारतीय संस्कृतिकी उज्ज्वल परम्पराओंमें उनकी निष्ठा असीम और अकम्प है। वे भारतीय संस्कृति की गौरवमयी परंपराओंकी सापेक्षतामें ही संतुलित विकासकी आशा करते हैं। इस संग्रहकी कविता 'एक बौनेकी पदयात्रा' कविकी उदार, प्रगतिशील, अनाग्रही और विवेकशील प्रवृत्तिकी उत्कृष्ट उदाहरण है। यह दीर्घ कविता एक संवेदनशील, महत्त्वाकांक्षी, साहसी और बुद्धिमान भारतीय युवककी बचपनसे लेकर प्रौढ़ावस्थातक की जीवन-यात्राका काव्यात्मक चित्रण है। कवि यह जानता है कि युवा पीढ़ीका विरोध न तो सहज है और न ही संभव। रूढ़ परंपराओंको भेदकर उन्हें तेजस्वी सूर्य की तरह आगे बढ़ना ही चाहिये। विदेशी युवतीके साथ विवाहके समर्थनके साथही उसका विश्वास है कि इसीसे नयी वंशयात्राका शुभारम्भ होगा। नवदम्पतीके पूर्वरागसे लेकर विवाहोपरान्त भारत आगमनतक एवं दैहिक भोग से आत्मिक महामिलनतक का मनोहारी काव्यात्मक चित्रण, जटिल संदर्भोंसे सामाजिक, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक स्थितियोंका उद्घाटन, महत्त्वाकांक्षाओंकी परिणतियोंका संकेत, मातृभूमिकी पावन ममता का विवेचन, स्थितियोंका चिंतनपरक विश्लेषण, अपनी वैयक्तिक धारणाओं और मान्यताओंका प्रतिष्ठापन आदि का काव्यात्मक स्तरपर निर्वाह कविकी असाधारण काव्य ऊर्जाका प्रमाण है। 'विषादभरी निषाद-सी संवादोत्सुक', 'संपातीकी पूर्णाहुति', 'गांधारी', 'अंगूठा चूसते अंगुष्ठमात्र कृष्णके लिए', 'अंकदायिनी वटपत्र-इतनी', 'गंगा-सी उतरेगी', अकलंक जैसे मिथकीय प्रयोग, कदली बकुल अशोक, हरसिंगार, कुंआ, चूहा बटलोई जैसे प्रतीकोंकी योजना, संगीत और प्राकृतिक दृश्य बिंबोंके सफल विधान, सांकेतिक शब्द योजनासे कविताको अद्भुत अर्थ-समृद्धि और संभावना-सम्पन्नता प्रदान की गयी है। यत्र-तत्र दुर्बोधताके बावजूद अपनी बनावट बुनावटसे लेकर फलात्मक परिणतियोंतक यह एक श्रेष्ठ रचना है।

भारतीय संस्कारोंसे पोषित वसन्तदेवका आतिथ्यशील मन, आदरणीय व्यक्तियों और प्रियजनोंके सम्मुख अहंकार शून्य, निर्विकल्प समर्पणमें गौरवका अनुभव करता है। 'हरि व्यास : एक अर्से बाद' कवितामें कविकी अनाग्रही मुक्तता और काव्यानुभवके प्रति समर्पक वृत्तिका सुन्दर परिचय मिलता है। काव्य-बोधको बाधित करनेवाली आजकी अहंकार वृत्तिको व्यक्त करते हुए कवि कहता है—'अस्मिताके मणिको माथेपर धारे मैं कूद पड़ा कविता के रत्नाकरकी मापने गहराइयाँ' और हुआ यह कि कविता के रसमें डूबनेके स्थानपर 'हंसता था अंतरमें, मुड़-मुड़कर देखता मैं, अपनीही सर्पिल परछाइयाँ।' किन्तु यह सच्चे काव्य-प्रेमीका लक्षण नहीं है। काव्यास्वादके अतीन्द्रिय भावलोकमें पहुंचकर 'कर्कोटक गतियां' अपने आप छूट जाती हैं और 'मालकंसी मोहनी स्वरालियों' को सुनकर भीतरका मणिधर सहजही विभोर हो जाता है। काव्यास्वादकी सार्थकता और कृतार्थताकी अभिव्यक्तिके लिए 'आहत मैं क्षण-क्षण अर्थवान् होता' जैसी विरोधाभासी युक्ति ध्यातव्य है। मणिधर और स्वरालियोंके सायुज्यसे भी मिथकीय बोधकी संदर्भ-समृद्धि प्राप्त होती है। काव्यास्वाद और काव्य प्रभावकी प्रक्रियाका इतना काव्यात्मक वर्णन एक उपलब्धि है। अपनी काव्यास्वाद संबंधी मान्यता दुहराते हुए कविने अन्यत्रभी कहा है कि काव्यास्वादकी प्रक्रियामें ग्रहीताको रचनाकारकी भूमिका में उतरना पड़ता है क्योंकि 'जब हम कविता पढ़ते हैं तब हम कविता नहीं पढ़ते हैं। तब हम कविता गढ़ते हैं।' (हम कविता पढ़ते हैं।)

अपने निजी परिवेश, पारिवारिक जीवन और भावात्मक स्थितियोंसे उत्पन्न मानसिक द्वन्द्वसे भी वसन्तदेव सीधे न टकराकर एक तटस्थ पर्यवेक्षककी भूमिका अपनाते हैं और व्यंग्य तथा विडंबनके माध्यमसे पाठकको तनावमुक्त कर देते हैं। 'गुलमुहर' कवितामें कविके पारिवारिक जीवनसे लेकर कालेजके वातावरणतक का काव्यात्मक वर्णन बड़ी सरलतासे किया गया है। वर्तमान संदर्भमें फागुनकी ऋतुका बहु-आयामी प्रभाव और कालेजके वातावरणका व्यंग्यपूर्ण चित्रण, वैयक्तिक घुटन और खीझका विडम्बन, आत्मशोधन और आत्मचिंतनकी बाधाओंका उल्लेख, बिना भावुक हुए अत्यन्त काव्यात्मक ढंगसे किया गया है। किन्तु कवि बाधाके उस रूपको भी नजरअन्दाज नहीं करता जहाँ वह देखता है : 'गुलमुहर धरतीमें उगता है, हवामें झूलता है, फूलता है देहमें फागुन-सा।' इसी प्रकार 'फगुनौटी' के मादक वातावरण, सौन्दर्य और श्रृंगारके आदिगंत विस्तारमें, गद्य और गीतके समारोहमें भी कविको एक सुरमई सिसकी सुनायी दे जाती है और यह तथ्य उपस्थित हो जाता है कि 'प्यास रेत-सी, आस बूंद-सी झूठी कसबिन कसमें।' इस तरहकी कविताओंमें तथ्यात्मक एहसासकी प्रधानता होनेपर भी काव्यात्मक आनन्द सुरक्षित है।

आजके जीवनकी भयावहता और जटिलता वसन्तदेव को व्यथित करती है। यांत्रिक जीवनकी दुखद परिणतियों

और अन्याय कुण्ठाओंसे आक्रांत आजका मनुष्य हर कदम पर अपनी निरर्थकताका बोध कर रहा है। कविकी आंतरिक व्यथा किसी समाधानका संकेत नहीं पाती। क्योंकि 'अगर चूहेके लिए बिल्ली है तो बिल्लीके लिए कुत्ता होता है' किन्तु कुत्तेके लिए कौन होता है? यह प्रश्न अनुत्तरित है। इन भयावह स्थितियोंकी अभिव्यक्तिके लिए भी वसन्तदेवने हास्य-विनोदकी समझौतावादी शैली का अनुसरण किया है। 'चूहा-बिल्ली' कविता में प्रतीकात्मक स्तरपर वासनाजन्य विकृतियों और कुंठाओंका चित्रण अत्यन्त नाट्यात्मक ढंगसे किया गया है। 'ब्लफिंग: एक ताशका खेल' में पूरी जिन्दगीको निरर्थकताके एक नाट्यरूपकके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। 'ममिवैष्यत्य-संशय:' में भीड़भरी गाड़ीकी भयावहतामें नित्य घटित होनेवाले महाभारतका कलात्मक चित्र व्यंग्य और हास्य के मुखौटेमें छिपी कविकी पीड़ाका बोध कराता है जिसमें आजका मनुष्य अपना व्यक्तित्व खोकर यंत्रमात्र बनकर रह गया है। जीवनकी चुनौतियोंसे लड़नेकी अनेक दर्प-स्फीत घोषणाएं की जाती है, सामूहिक क्रांतिके संकल्प लिये जाते हैं किन्तु उसका परिणाम 'सूखी कीचड़की लीकें, धब्बोंमें छितरी पीके' से अधिक नहीं होता। (युगवाणी)। युगवाणीपर तीखे व्यंग्यके बाद कवि इस निष्कर्षपर पहुंचता है कि आजका जीवन पूंछ-कटे चूहे की भांति शक्तिहीन और अशोभन है। (चौरासी लाखकी वार्ता) इस मर्मान्तक पीड़ा-बोधको अपनी शैलीमें व्यक्त करते हुए कहता है :

'तबसे प्यारे एक सिरद्धा एक आसथा
कटी पूंछ लहराए जाओ।
दया धरम-कस्तूरी-डिबिया
नाभिचक्र लहराए जाओ।

इस व्यंग्यके पीछे कविकी व्यथा स्पष्ट दिखायी पड़ती है। इन कविताओंमें कविकी वार्ता शैली, नाट्यात्मकता, संस्कृतकी उक्तियोंका संदर्भ-विपर्यय, प्रतिष्ठित श्लोकोंमें परिवर्तनके साथ नया अर्थबोध, व्यंग्य और हास्यके मुखौटे में गंभीर समस्याओंकी अभिव्यक्ति आदि कविकी प्रयोगधर्मिताको प्रमाणित करते हैं। व्यंग्य और विडंबनकी शैलीमें लिखी गयी कविताओंमें इनका स्थान निश्चयही सराहनीय है।

रावणकी स्वर्णपुरी लंकाकी भांति और मायाविनी बम्बईके जीवनकी अनेक झांकियां कविने प्रस्तुत की हैं जिसमें जीवनके कटु यथार्थ और सौन्दर्यानुभूतिकी भव्यता का सुन्दर समन्वय है। इन कविताओंमें एक ओर जीवन की वह विभीषिका है जिसमें व्यक्ति अपना व्यक्तित्व खोकर यंत्र-मानव बन गया है। मनुष्य-मनुष्य और घर-दफ्तरकी पहचान उसे नहीं है। ('लोग' और 'घर-दफ्तर') उसका आत्मकेन्द्रित मन प्रकृति और सौन्दर्यके प्रति संवेदना-शून्य हो गया है। ('सुबह') दिन-रात जीतोड़ श्रम करनेवाले मजदूरोंका पौरुष निरन्तर शोषित होता है। ('दोपहर')। किन्तु इन सभी स्थितियोंको मूक भाव से स्वीकारकर लेनाही इस वर्गके मनुष्यकी विकल्पहीन नियति है। ('कोजागर')। सड़कपर चीपड़े बननेकी नियति लेकर पैदा हुए बच्चोंकी मर्मांतक व्यथामें कवि अपना साक्षात् मरण देखता है। ('अगस्त')। किन्तु विकृतियों और विद्रूपताओंसे कविकी सौन्दर्य चेतना पराभूत नहीं होती। कविमें यदि वास्तविक सर्जनात्मकता होगी तो वह सीमाओंको अवश्य तोड़ेगा। 'आप दूरतक देख सकते हैं/ भीड़से दूर जाकर भी/ भीड़से पार जाकर भी/ भीड़से पीछे होनेपर भी/ असली बात है कद…' ('कद')। अपनी विशेषताके कारणही कवि अक्तूबरकी धूपमें सड़ककी जलती चिताके साथ गुलमुहर खिलखिलाहट सुन पाता है। ('हीट')। 'गदबदी नटखट्टी' दूब उसे बरबस अपनी ओर खींचती है। समुद्रकी असंख्य 'जल-मुद्राएं' उसके भीतर उदात्त भावोंकी सृष्टि करती हैं। संध्या समय समुद्र-तट बैठे कविके मानस लोकमें 'एक और समुद्र' दहाड़ें मारने लगता है अपेक्षाकृत अधिक गहरा और विशाल है। 'दादर-तट' घर बैठे कविका भावुक मन पुकार उठता है—वे दूरसे/ जो आ रहे हैं श्याम-सियरे बाँसुरीके सुर:/ रुको: इस एक क्षण तो मैं अमर हूं।' प्रकृति प्रेमके संबंध कविकी स्वीकारोक्ति है कि जिस दिन परमा प्रकृति अपनी आकर्षक मुद्राओंसे आमंत्रित करेगी उस दिन 'बम्बइया पौरुष शेयर-मार्किट-सा अर्राकर गिर जायेगा।' ('पौरुष') अनेक तिक्त-मधुर रूपोंके चित्रणके बाद वसन्तदेव बम्बई मातृरूपमें सम्मानित करते हैं, क्योंकि वह हमें 'दूध पिलाती है, रोटी खिलाती है, फुटपाथपर लिटाकर आसमान उढ़ाती है।' फुटपाथके बिछावन और आसमानके ओढ़नके संकेत लक्षणीय है।

वसन्तदेव भारतीय संस्कारोंसे पोषित, सांस्कृतिक निष्ठा से संपन्न अपने व्यक्तित्वके प्रति सचेत और अपने अनुभव-विश्वके प्रति ईमानदार कवि हैं। वे अपनी शक्ति और सीमाओंसे भलीप्रकार परिचित हैं। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक दिशासे मोहमुक्त होकर अपने भीतर

का सर्वोत्कृष्ट प्रदान कर सके। प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्यकी सूक्ष्म छवियोंका प्राणवान् बिंबांकन संपूर्ण संग्रह में भरा पड़ा है। उनकी शब्द-साधना और शब्द-योजना की क्षमता विलक्षण है। संस्कृतके शास्त्रीय और पारिभाषिक शब्दोंसे लेकर ठेठ देशज शब्दोंतक का समान रचनात्मक सार्थकताके साथ प्रयोग कविकी सिद्धि है। नये शब्दोंके निर्माण और पुराने शब्दोंमें नये अर्थबोधसे संप्रेषण में चमत्कृति पैदा हुई हैं। शैलीगत नाट्यात्मक प्रयोग एवं संदर्भ-विपर्ययके अतिरिक्त वसन्तदेवने अनेक स्थलोंपर उदात्त और अतिसामान्यके संयोजनसे चमत्कारिक प्रभाव उत्पन्न किया है। उदाहरणार्थ छायावादी उदात्त शैली और फिल्मी धुनका निम्नलिखित संयोजन दर्शनीय है—

रत्नकांति चिर ज्योतिर्मय अम्बुधि विशाल।
उभरा सहसा अमृत-कुम्भ।
वह तपःपूत, शिवकाम, रुधिर रस, वीतकाल।
ओ लाल लाल गाऽल।

नाद और संगीतके बिंब, हास्य विनोदके पुट, शब्द-क्रीडा और शब्द छलका ऐन्द्रजालिक प्रभाव, संदर्भ बाहुल्य, दृक् चित्रोंका चारुत्व आदि पाठकको सहजही अभिभूत कर लेता है।

किन्तु वस्तुगत दृष्टिसे देखनेपर 'दिखती नहीं अपनी ही छाँह'की कविताओंमें कुछ ऐसे बिन्दुभी हैं जिन्हें नजरअंदाज़ नहीं किया जा सकता। कविकी निरन्तर बनी रहनेवाली स्वचेतनता उसके चारों ओर एक ऐसी परिधि बनाती है जिसका उल्लंघन वह किसीभी स्थितिमें नहीं करता, परिणामस्वरूप ठहरावकी स्थिति आ गयी है। समकालीन जीवनकी प्रवहमान धारासे अलग रहकर ऐकान्तिक कलात्मक साधना तो संभव है किन्तु ज्वलंत समस्याओंसे कतरानेपर दायित्ववान कवि-कर्म पराजित होता है। कवि, 'मुक्तिबोध' और 'मर्ढेकर' जैसे जुझारू व्यक्तित्वसे अत्यन्त प्रभावित है किन्तु कविकी काव्य-प्रणालीपर शैलीगत प्रभावके होनेपर भी आशयगत कोई प्रभाव नहीं दिखायी पड़ता। कोई मनोवैज्ञानिक इस विरोधी स्थितिको क्षतिपूर्तिके सिद्धान्तसे सहजही जोड़ देगा। जीवनकी जटिल और गंभीर समस्याओंको सीधे न झेलकर, हास्य और व्यंग्यका सहारा लेना, वस्तुतः समझौतावादी पलायन है क्योंकि मूल समस्याको नजरअंदाज़ करके उसके समाधानकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। यही कारण है कि ये कविताएं अपनी अन्याय उपलब्धियों के बावजूद एक अच्छे किन्तु ठहरावके कवि-व्यक्तित्वका परिचय कराती है जिसमें विशालताकी संभावना कम दिखायी पड़ती है। शब्दोंकी मितव्ययिताके प्रति अतिरिक्त आग्रह, अनुभूतिकी ऐकान्तिकता, विभावनकी अपूर्णता और कोशीय शब्दावली प्रकृति अथवा प्रियजनोंके साथ भावपूर्ण रागात्मक क्षणोंमें भी तटस्थताकी वृत्तिके कारण आत्मीयताकी ऊष्णाका अभाव दिखायी पड़ता है। सैद्धान्तिक विवेककी तटस्थता और शिल्पकार अथवा फोटोग्राफरकी सजगताके कारण कविकी हार्दिक संवेदना मुखर नहीं हो पाती।

कतिपय अभावोंके होते हुएभी 'दिखती नहीं अपनीही छाँह' की कविताएं, अपनी उपलब्धियोंके साक्ष्यपर वसन्तदेवके समर्थ कवि व्यक्तित्वका परिचय कराती है। अनुभूतिकी मार्मिकता, अभिव्यक्ति-सामर्थ्य और शिल्पगत वैशिष्ट्यके मूलभूत गुणोंके कारण ये रचनाएं काव्यास्वादकी विस्तृत भूमि प्रदान करती हैं। □

इस जंगलमें

कवि : पुरुषोत्तम प्रशान्त; प्रकाशक : राष्ट्रभाषा सेवा समिति, १-४-१११ भोलकपुर, सिकन्दराबाद (आ.प्र.) ५००-००३। पृष्ठ : ३७; डिमा. ८०; मूल्य: ८.०० रु.।

समीक्ष्य कृति छब्बीस कविताओंका संकलन है। ये कविताएं समय-समयपर 'अस्ति', 'आकार', 'संचेतना', 'गवाह', 'समाज विकास', 'वैनगार्ड', 'हैदराबाद समाचार', 'ज्ञानदीप' प्रभृति पत्रिकाओंमें प्रकाशित और आकाशवाणी हैदराबादसे प्रसारित हुई हैं। उनके संकलन द्वारा कविने न केवल यत्र-तत्र बिखरी कविताओंको सहेजा है वरन समस्याओंके जंगलमें पैठकर क्रांतिकी मशाल जलायी है। राष्ट्रभाषा सेवा समिति सिकन्दराबादकी साहित्यिक योजनाके अन्तर्गत इसका प्रकाशन हुआ है। प्रकाशकीय वक्तव्यके अनुसार 'उनकी यात्रा शब्दोंकी यात्रा ही नहीं है, अनास्था-विक्षोभकी यात्रा ही नहीं है, बल्कि जीवन-संघर्षमें अडिग आस्थाओंकी यात्रा है।' इस कथनसे मेरी सहमति है कि कवि प्रशान्त रहकर अपने भीतर अनास्थाओं, मूल्यसंकट, संत्रास, कुण्ठा, चरित्र विघटन, निविड़ अन्धकारके जंगलको भोगता रहा है, पर कहीं हताशा और निराशाकी मनहूस छाया नहीं पसरी है। कविको अपनी दमदार कवितापर इतना भरोसा है कि उसने खुलेआम काव्यारंभके पहले घोषणा की है—'सुलग चुकी है अब जो आग पन्नोंपर/ लोगोंको डरहै दूरतक ये फैले

न जाये कहीं।' कहीं उनकी कविताके शब्द अन्तहीन लंबी-लंबी सड़कोंपर बारूदकी सुरंगें बनकर बिछ जाते हैं ('भूमिकाके बहाने' पृ. १), कहीं उन हवेलियों और खिड़कियोंके रंगीन कांचोंपर गोली बनकर न सही पत्थर बनकर बरसते हैं, जिनके आर पार वे लोग मानवता, संस्कृति और साहित्यके साथ बलात्कार कर रहे हैं ('अंधेरी सुरंगोंमें' पृ. ३), तो कहीं उनका मन कविताके विस्तृत आकाशका तलाशी बन पड़ाव दर-पड़ाव गुजर रहा है। ('इस पड़ावपर' पृ. २०) एक ओर लोकतंत्रमें चमगादड़ोंकी फड़फड़ाहट और फटे इश्तहारोंकी सरसराहट बाकी रह गयी है ('लोकतंत्र' पृ. ३०), तो दूसरी ओर 'हम लड़ाई खोर/ डटे हुए हैं / अपने-अपने मोर्चों पर/ एक और/ लम्बी लड़ाईके इन्तजारमें ('अपने-अपने मोर्चोंपर' पृ. ३३) का दमखमभी है।

काव्य-कृतिकी प्रतिनिधि रचना है'इस जंगलमें',जिसमें आजके शोषण, पूंजीवादी व्यवस्थाके अजदहेकी पोलही नहीं खोली गयी है, वरन् ऐसे गर्जनकी कामनाभी है, जिससे 'जंगलकी खंदकों-खाइयोंमें सोई चेतना जाग उठे (वही कविता पृ. १३)। 'फसल' एक छोटी कविता है। उसमें कलमकी नोंकके हलसे आंगन-आंगनमें रोशनी लाने और उजालेकी फसल काटनेका पक्का मंसूबा दीखता है। अन्य कविताएं भी अच्छी बन पड़ी है। पर एक बात अखरनेवाली है कि बिंब-विधान दुर्बोध हो गया है। कहीं-कहीं बड़ा बेतुका लगता है। पूरे काव्य-संकलनमें बिंबों का ऐसाही जंगल मिलता है और कहीं-कहीं तो सपाट बयानीवाले गद्यभी कविताके कलेवरको लीलनेको आतुर मालूम पड़ते हैं। कविके तलाश और संकल्पकी सराहना की जा सकती है। इन्हें आम आदमीके दुखदर्दोंका साझीदार स्वीकारा ही जा सकता है। मुक्तिदाताके तेवर भी हैं।

☐ मृत्युंजय उपाध्याय

कोई कोई औरत

कवि : डॉ. महेन्द्र भानावत; प्रकाशक : मुक्तक प्रकाशन, ३५२ श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर (राजस्थान)-३१३-००१। पृष्ठ : ६०; डिमा. ८०; मूल्य : ६.०० रु.।

प्रस्तुत संकलन २५ छोटी-छोटी कविताओंका संग्रह है। डॉ. महेन्द्र नगरबोधको जीवनका एक छोटा-सा हिस्सा मानते हैं। उनके विचारमें नगरके बाहर एक पूरी दुनियां फैली हुई है। यही उनकी दुनियां है। वे अपनी इसी दुनियांकी खोजमें निरन्तर प्रयत्नशील हैं। लेकिन उनका यह चिन्तन उनके काव्यमें परिलक्षित नहीं होता। वैसे संकलनकी दो-एक कविताएं अवश्य ध्यान आकर्षित करती हैं। एक है 'रिसर्चर' और दूसरी है 'जवाबमें चांटें।' पहली कवितामें एक शोधकर्ताकी कहानी है कि वे किस तरह शोध करते हैं। दूसरी कवितामें एक सार्वभौम प्रश्नको उठाया गया है। घरमें बच्चा अपने मां-बापसे तरह-तरहके प्रश्न करता है लेकिन उत्तरमें उन्हें क्या मिलता है —एक चांटा। यह निरन्तर जारी है और कवि यह प्रश्न करता है कि

> बच्चा/ कितना सच्चा होता है !
> मगर / न जाने क्यों / हम उसे /
> चांटोंमें चलाये जाते हैं/ ऐसे न जाने/
> कितने सवाल/ सवालोंपर सवाल हैं।
> जो जवाबकी प्रतीक्षामें हैं
> मगर हम हैं/ जो/ पीढ़ी-दर-पीढ़ी/
> इन सवालोंको/ चुपकर / जवाबमें/
> चांटे उछाला करते हैं।

इसी प्रकार 'तुम्हें क्या मालूम' कविताभी एक अच्छी कविता है। लेकिन कुल मिलाकर 'कोई-कोई औरत' एक सामान्य काव्य-संग्रह है।

☐ मदन गुलाटी

डी. एच. लारेंसकी कविताएं

अनुवादक : कृष्ण खुल्लर; प्रकाशक : समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-११००५५। पृष्ठ : ४६; डिमा. ८०; मूल्य : १२.०० रु.।

यह बात सर्वविदित है कि डी. एच. लारेंस एक उपन्यासकारके रूपमें बड़ेही विवादास्पद रहे हैं, लेकिन एक कविके रूपमें वे नितान्त भिन्न हैं। इसीलिए इन कविताओंकी प्रस्तुति अपना विशेष महत्त्व रखती हैं।

एक तो किसीभी विदेशी कविकी कविताको हिन्दीमें अनूदित करना हिन्दीके सर्वतोमुखी विकासमें सहयोग देना है और दूसरी ओर कविताको विश्व कविता मंचपर स्थापित करनेकी दिशामें यह एक अच्छा प्रयत्न है। डी. एच. लारेंसकी कविताओंका अनुवाद एक ओर दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है जैसा कि अनुवादकने कहा है, कि प्रस्तुत संकलनमें केवल उन्हीं कविताओंको रखा गया है जो कहीं-न-कहीं भारतीय चिन्तनके निकट पड़ती है और साथही
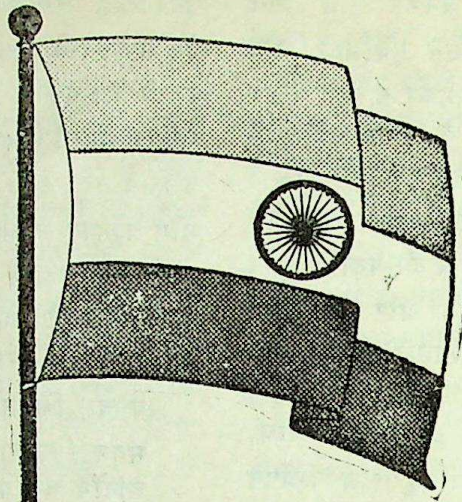
हमें न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था कायम करनी है। इसके लिए जरूरी है कि हमारे उद्देश्य एक हों और हम सहयोग से काम करें
एकता
एक देश
एक प्राण
davp-276

अंग्रेजीके छन्दोंके आग्रहको छोड़कर हिन्दी कवितामें प्रचलित मुक्त छन्दका आश्रय लिया गया है। इस संग्रहमें २१ कविताएं हैं।

जहाँ लारेन्स अपने उपन्यासोंमें यौन-प्रसंगोंका अतिशय चित्रण करते हैं वहाँ कवितामें उनकी मुख्य चिन्ता 'मनुष्य' है। वे मनुष्यको प्रेमयुक्त जीवन जीनेकी सलाह देते हैं—यथा :

जो कुछभी हमारे पास है
जीवन जीनेके दौर
वह जीवन है
और अगर अपने जीवनके दौर तुम न जी सको
तो तुम गोबरका टुकड़ा हो।

इस प्रकार यह छोटी-सी पुस्तक हमें लारेन्सको पढ़ने सोचनेके लिए विवश करती है और वस्तुत: लारेन्सको जाननेकी नये ढंगसे कोशिश होनी चाहिये।

मदन गुलाटी

अश्वत्थामा

कवि : डॉ. रत्नचन्द्र शर्मा; प्रकाशक : डॉ. रत्नचन्द्र शर्मा, ४८ दयालसिंह कालोनी, करनाल-१३२००१। वितरक : मन्थन पब्लिकेशंस, आदर्शनगर, दिल्ली रोड, माडल टाउन, रोहतक (हरियाणा)। पृष्ठ : १३२, डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

आजके इस विचार-प्रधान युगमें भाव विचारोंसे अनुशासित होकर प्रवाहित होते हैं तथा काव्यमें भाव-धारा अपने नैसर्गिक रूपमें उच्छलित होते हुएभी विचारों के तटोंमें आबद्ध होकर बहती है। 'अश्वत्थामा' महाकाव्य में कवि एवं मनीषी डॉ. रत्नचन्द्र शर्माने अभिव्यक्तिके ऐसे ही स्वरूपको अपनाकर अपने कवि-कर्मके दायित्वका निर्वाह किया है क्योंकि कविकी यही मान्यता है कि अतीतको वर्तमान बनाकर भविष्यके रूपमें प्रस्तुत कर देनाही सत्य-कवि-कर्म है। कवि एवं साहित्यकार अपने युगका सर्जक होता है तथा उसके भावाम्बुधि एवं वैचारिक जगत्का निर्माण युगीन परिवेशमें होता है। तदनुकूल ही उसकी सर्जना रूप धारण करती है। उसकी भावधारा एवं चिन्तन-प्रणालीही युगसे प्रचलित नहीं होती अपितु उसकी अभिव्यक्तिका माध्यमभी युग-सापेक्ष होता है तथा परिवर्तित परिवेशके संदर्भमें नया अर्थ-बोधही प्रत्येक युगके जीवन तथा काव्यके स्वरूपको निर्धारित करता है। कवि पुरातन पौराणिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं अथवा पात्रोंको भी अपने युगके सन्दर्भ एवं परिप्रेक्ष्यमें देखता है। उसीके अनुरूप उसकी व्याख्या करता है तथा उन्हें अपने अन्तरकी वाणी देकर मुखरित करता है। यही युगके लिए कविकी सार्थकता भी है।

महाभारतके सौप्तिक-पर्वपर आधारित 'अश्वत्थामा' की पन्द्रह सर्गोंकी कथावस्तुमें भी कवि डॉ. शर्माने पौराणिकता एवं कवि कल्पनाका सुन्दर सामंजस्य, उपर्युक्त विचार-धाराके अन्तर्गत ही किया है। वर्तमान संदर्भमें व्याप्त संघर्षकी भावना एवं भावी-महायुद्धकी विभीषिका से संत्रस्त जन-मानस एवं प्रकृतिकी उदासीका चित्रण कवि ने महाभारतके विनाशकारी युद्धके रूपमें अत्यन्त सजीवतासे किया है।

कविकी मान्यता है कि युद्ध और आतंकपर आधारित साम्राज्य क्रूरताओं एवं षड्यन्त्रोंका प्रतीक होता है। ऐसे राज्याध्यक्षोंसे मानवीय उदात्तता तथा करुणाकी आशा करनाभी व्यर्थ होता है। अत: प्रेम एवं सद्भावसे प्राप्त विजयही चिरस्थायी हो सकतीहै क्योंकि 'जीत सको तो जीतो मनको / और इन्द्रियोंको अपनी / सदा नियन्त्रणमें ही रखो/सारी इच्छाएं अपनी।

अश्वत्थामाको अपने महाकाव्यका नायक बनानेके लिए कविका तर्क यह है कि अश्वत्थामामें महावीरत्व होते हुएभी वह महाभारतमें विशेष चर्चित नहीं हो सका। इसकी महाकवियों, साहित्यकारों द्वारा उपेक्षाने ही कवि को इसे अपने महाकाव्यका नायक बनानेके लिए प्रेरित किया। इससे पूर्वभी कविने शबरी, निषादराज, त्रिजटा आदि रामायणके अल्पचर्चित अथवा उपेक्षित पात्रोंको लेकर सफल महाकाव्योंकी रचना की है।

कविने अश्वत्थामाके पश्चाताप एवं अन्तर्द्वन्द्वका अत्यन्त मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। यहां तक कि अमरताका वरदानभी उसे अभिशाप प्रतीत होने लगता है और वह विचार करता है—'सोच रहे थे अश्वत्थामा/ किसको आज बताऊं / चिरजीवीपन भार बना है/ कैसे यह समझाऊं।' अश्वत्थामाके आक्रोश, व्यथा, विवशता, छटपटाहट आदिका कविने अत्यन्त सफलतासे चित्रण किया है. तत्कालीन समाजमें व्याप्त स्वार्थलिप्सा, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, उत्कोच आदिसे संत्रस्त समाजको इन्हें त्यागने एवं सुखद भविष्यकी कल्पना अश्वत्थामाके माध्यमसे कविने वर्तमान दशाका यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। महाकाव्यके चुस्त, चुटीले एवं संक्षिप्त संवादों ने कथानकको गीत एवं चरित्रोंको उभारनेमें सहायता प्रदान की है। कविका बिम्ब विधान अत्यन्त सशक्त एवं

अर्थपूर्ण है यथा : "रक्त वदन रवि रक्त नयनसे', 'पीत-वर्ण मुख लिये उषा थी' आदि प्रकृतिका मानवीकरण दृश्यकी चारुताको सजीवता प्रदान करते हैं। कवि द्वारा अलंकारोंका प्रयोग मौलिक नवीन है, जिससे सौन्दर्य अर्थवत्ता दोनों प्राप्त होते हैं। छन्दोंके प्रयोगमें कविपर 'कामायनी' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। कविकी भाषा प्रांजल, तत्सम शब्दावलीसे मण्डित एवं कथायुगके वातावरणको प्रस्तुत करनेमें सक्षम है। श्रीकृष्णसे संबंधित कतिपय गीताके श्लोकोंका हिन्दी भावानुवाद सुन्दर है।

☐ वेदप्रकाश जुनेजा

शोध-आलोचना

प्राचीन और नवीन चिन्तनका संगम स्थल

'काव्य तत्त्व विमर्श'[1]

कृतिकार : डॉ. राममूर्त्ति त्रिपाठी

प्रस्तुतकर्त्ता : डॉ. वेदीराम शर्मा

साहित्यकी समीक्षामें यह विशिष्टता रहती है कि सर्जनाके जो तत्त्व ललित साहित्यमें अपेक्षित होते हैं, वे एकान्ततः समीक्षाके लिए उपयुक्त नहीं होते। समीक्षाकी पृष्ठभूमि और आधारभूमि ललित साहित्यसे कुछ भिन्न होती है। कविता आदि ललित साहित्य भावना प्रधान होते हैं, जबकि समीक्षा भावनाकी वशवर्तितासे मुक्त होकर ही अपना नाम सार्थक करती है। समीक्षक मूलतः बुद्धिवादी होता है किन्तु वह भाव-प्रवणताको भी अपने साथ लिये चलता है। बुद्धिप्रधान होते हुएभी वह भाव-तरंगोंके विविध स्पन्दनोंका —जो किसी कृतिकारकी कृति में प्रकट होते हैं—वस्तुपरक निरीक्षण-परीक्षण करता है। अतः समीक्षा, चिन्तन एवं वैचारिक मन्थनसे ही सम्भव हो सकती है। गोस्वामी तुलसीदासके शब्दों इसेही 'पहिचानना'—'संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने'—कहा जा सकता है। पहिचानना केवल 'जानना' नहीं है, अपितु 'जानने' से कुछ अधिक है। इसे डॉ. राममूर्त्ति त्रिपाठीके शब्दोंमें प्रत्यभिज्ञान कहा जा सकता है जो ज्ञान (जानने) के बाद होता है।

आलोच्य पुस्तक —'काव्य तत्त्व-विमर्श'— इसी प्रकार के 'प्रत्यभिज्ञान' से भरपूर पुस्तक है। उसकी मान्यता है कि —'आलोचकका सहज कर्त्तव्य है कि वह 'परम्परा' का बोध करे और युग तथा जीवनसे संयुक्त हो—उसकी धड़कनोंको पहचानने, सर्जनाकी गतिविधियों के सम्पर्कमें रहे, ज्ञान-विज्ञानकी मान्यताओंसे परिचित होता रहे—और इन सबके तथा स्वकीय प्रातिभ-क्षमताके बलपर 'प्रयोग' द्वारा उसका विकास करे।' इस रूपमें पुस्तक नितान्त मौलिक सन्दर्भोंसे आद्यन्त स्पर्शित होती रही है। इस प्रकारके समीक्षात्मक चिन्तनका हिन्दी जगत्में अभाव है। यह पुस्तक इस अभाव-पूर्तिकी दिशा में एक अनुपम पग कहा जा सकता है।

पुस्तकमें सोलह निबन्ध हैं। इन निबन्धोंमें मुख्य विषय साहित्यके स्वरूपका विवेचन और उसकी आत्मा 'रस' के विवेचन और विश्लेषणसे सम्बद्ध रहा है। रसके अतिरिक्त ध्वनि, वक्रोक्ति, अलंकार व अन्य काव्यात्मवादोंपर भी संक्षेप एवं तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया गया है।

प्रथम निबन्ध—'भारतीय काव्यशास्त्रमें साहित्यका स्वरूप'—है। साहित्यके स्वरूपपर विचार-विश्लेषणको सरल एवं अध्ययन सुलभ बनानेके हेतु विद्वान् लेखकने

1. **काव्य तत्त्व विमर्श; कृतिकार : डॉ. राममूर्त्ति त्रिपाठी; प्रकाशक : कोणार्क प्रकाशन, ६१ एफ कमलानगर, दिल्ली-७। पृष्ठ : १८०; डिमा. ८०; मूल्य : ४०.०० रु.।**

इसे दो-तीन धाराओंमें प्रस्तुत किया है। उनका मत है कि—एक धाराके अनुयायी **'विशिष्ट शब्दार्थ'** को काव्य कहते थे तथा दूसरी धाराके अनुयायी **'विशिष्ट शब्द'** को ही काव्यकी संज्ञा देते थे। कुन्तक आदि वक्रोक्तिकारोंका एक तीसरा वर्गभी था जो केवल 'अर्थ' को ही काव्य कहना उपयुक्त समझते थे।

'विशिष्ट शब्दार्थ' को काव्य माननेवाली धारामें आगे चलकर दो शाखाएँ हो गयी। एकका उदय **भरत मुनि**से हुआ और दूसरीका आचार्य **भामह**से। भरत मुनिकी धारा 'उत्कृष्ट या उपादेय काव्य' के स्वरूपपर विचार करती है और भामह द्वारा प्रवर्तित धारामें 'निर्विशेष काव्य' पर विचार हुआ है। काव्य चाहे उत्कृष्ट हो या अनुत्कृष्ट, उपादेय हो या हेय, इन सभी बातोंको ध्यान में रखकर विचार किया गया है।

भरत मुनिकी शाखा कुछ समयके लिए तिरोहित रही किन्तु वामनने (पृष्ठ १६) इसे पुनर्जीवित किया और 'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्' की घोषणाकर स्पष्ट किया कि—'काव्य वह शब्दार्थ है, जिसका संस्कार गुण एवं अलंकार से किया गया हो।

वामनके पश्चात् आचार्य मम्मट (१०५० ई.) ने—'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' (पृ.१६) कहकर काव्यके स्वरूपपर विचार आरम्भ किया। मम्मट के परवर्ती आचार्योंने इस सूत्रका विभिन्न दृष्टियोंसे खण्डनकर काव्यके स्वरूपपर विस्तृत दृष्किोणोंसे विचार किया।

प्रस्तुत पुस्तकमें इन विविध सरणियोंको समझानेके लिए मम्मटाचार्यके सूत्रको दो खण्डोंमें उपस्थित किया है। विशेषण खण्ड जिसके अन्तर्गत 'शब्दार्थौ' अंशको लिया गया है और दूसरे विशेष्यखण्डमें – अदोषौ, सगुणौ, और अनलंकृती—तीन विशेषणोंको लेकर विवेचन किया है। यह विवेचन इतना तर्कसंगत एवं सुबोध है कि काव्य-शास्त्रका विद्यार्थी सहजही इसके सभी पक्षोंको हृदयंगम कर लेता है।

मम्मटकी ही धाराके आचार्योंमें वाग्भट, हेमचन्द्र एवं विद्यानाथ, क्षेमेंद्र, धर्मसूरि, अच्युतराय (पृ. १८) आदिके नाम गिनाये गये हैं और इन सभीकी मान्यताओंको प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य भामहकी सामान्यवादी धारा (पृ. २०) भरत मुनिकी धारासे पृथक् रूपमें प्रस्तुत की गयी है। आचार्य भामहने काव्यके स्वरूपको स्पष्ट करते हुए कहा है कि—'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'—शब्द एवं अर्थ मिल कर काव्य कहे जाते हैं। यह लक्षण अपने आपमें पूर्ण नहीं। किन्तु भट्टनायक और रुय्यकने इस लक्षणको स्पष्ट करते हुए कहा है कि—'वाङ्मयके उस अंशको जहाँ शब्दकी प्रधानता हो **शास्त्र** कहते हैं, जहां अर्थभाग की प्रधानता हो उसे पुराण-आख्यान एव इतिहास कहते हैं तथा जहां (शब्द और अर्थ) दोनों अंशोंकी प्रधानता हो उसे **काव्य** कहते हैं। इस प्रकारकी व्याख्यासे भामह की परिभाषा कुछ अधिक स्पष्ट हुई प्रतीत होने लगती है।

डॉ. त्रिपाठीने साहित्यके स्वरूपपर विचार करते हुए उसे सर्वांगीण रूपमें ही स्पष्ट करनेका यत्न किया है। उनकी धारणा भामह आदि विद्वानोंके ही साथ मेल खाती चलती है। जो विद्वान् काव्यमें 'अभिधा' शक्तिका वैशिष्ट्य लेकर उसके स्वरूपका स्पष्टीकरण करते हैं उनके इस मन्तव्यपर विचार करते हुए वे कहते हैं कि ऐसे विद्वान् काव्यमें अलंकारको ही सर्वस्व मानकर चलते हैं और अलंकारोंको वे अभिधाके ही धर्म मानते हैं। डॉ. त्रिपाठीकी दृष्टिमें अलंकार अभिधाके धर्म नहीं अपितु शब्द और अर्थके धर्म हैं।

महिमभट्टके मन्तव्यको भी शब्दार्थसे सम्बद्धकर बड़े सरल रूपमें स्पष्ट किया किया गया है। महिमभट्टने शास्त्रको तीन प्रकारका [(i) शब्द प्रधान, (ii) अर्थ प्रधान और (iii) उभय प्रधान] माना है (पृ. २१)। शब्द प्रधान वेद हैं, अर्थ प्रधान इतिहास एवं पुराण और उभय प्रधान शास्त्र 'काव्य' है। क्योंकि काव्यका प्राण है 'रस' और रसका प्राण है 'औचित्य' और औचित्यका सम्बन्ध शब्द एवं अर्थ दोनोंसे कहा गया है। यहाँ ध्यातव्य यह है कि 'उद्भट' ने शब्दार्थका वैशिष्ट्य अलंकारके कारण बताया था जबकि आचार्य महिमभट्टने औचित्यके कारण माना। डॉ. त्रिपाठीका कथन है कि भट्टजीकी यह विशेषता है कि जहाँ अन्य लोगोंने वाङ्मयके तीन भेद किये वहाँ इन्होंने शास्त्रके तीन भेद किये हैं। हमारी दृष्टिमें यही मान्यता उपयुक्त और वैज्ञानिक प्रतीत होती है।

रुद्रटने भी 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्' कहकर काव्यके स्वरूपको स्पष्ट करनेकी चेष्टा की है और रुद्रटके टीकाकार नेमिसाधु तथा ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनने भी—'शब्दार्थयोः यथावत्सहभावेन साहित्यम्' कहकर इसकी सम्पुष्टि की है। आनन्दवर्धनकी महत्ता यह है कि वे शब्द और अर्थका जैसा-तैसा सहभावही साहित्य नहीं मानते

बल्कि 'यथावत्'—उचित सहभावही साहित्य है। यह व्याख्या महिमभट्टके समीप और उद्भटसे कुछ दूर है। रुय्यक और विद्याधर जैसे विद्वानोंकी गणनाभी इसी शृंखलामें की जा सकती है।

डॉ. त्रिपाठीने साहित्यके स्वरूपको स्पष्ट करने हेतु जिन विशेषवादी और सामान्यवादी दो धाराओंको अपनाया है, वे साहित्यके स्वरूपको अधिक सुगमतासे प्रस्तुत कर सकी है। यह शैली नवीन और सुरुचिपूर्ण कही जा सकती है।

साहित्यके स्वरूपके उपरान्त प्रस्तुत पुस्तकमें 'रस' से सम्बद्ध सात निबन्ध हैं। इन निबन्धोंमें रसके लगभग प्रत्येक पक्षपर गहन दृष्टिसे विवेचन किया गया है। दूसरे निबन्धमें सौन्दर्य विषयक धारणा (पृ. २४ से ३२ तक) पर विचार हुआ है। इस निबन्धमें डॉ. त्रिपाठीने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि भारतीय साहित्य शास्त्रके प्रत्येक सम्प्रदायका आधार 'सौन्दर्य विषयक धारणाही रहा है। वे अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक आचार्य 'वामन' के इस उद्घोषको —'सौन्दर्य-मलंकार:' को प्रधान आधार मानकर चले हैं और रीति तथा वक्रोक्तिको एक प्रकारसे अलंकार सिद्धान्तका ऋणी मानते हुए उन्हेंभी सौन्दर्य विषयक धारणाका पोषक सिद्धान्तही सिद्ध करते हैं। उनका कथन है कि —'मेरा यह अभिप्राय नहीं कि तीनों (अलंकार, रीति और वक्रोक्ति) में कोई अन्तर नहीं। मैं तो इतनाही चाहता हूं कि रहें ये तीनों पृथक्-पृथक् वैशिष्ट्यसम्पन्न पर एक ही अलंकारवादके अवान्तर-भेदके रूपमें। समानताका एक अतिरिक्त आधार यहभी है कि तीनों अलंकार्य शब्द और अर्थको ही मानते हैं।' (पृ. २५)

इस कथनको प्रमाणित करनेके लिए उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि सौन्दर्यके उपकरण गुण एवं अलंकार हैं और आश्रय शब्द एवं अर्थ। इस रूपमें वे मानते हैं कि सभी अलंकारवादियोंने अलंकार और गुणके स्वरूपको परोक्षतः समक्ष रखते हुए ही उनको सौन्दर्यमूलक माना। वक्रोक्ति जीवितकारभी शब्द और अर्थको अलंकार्य और वक्रोक्तिको उनकी अलंकृति मानते हुए एक रूपमें सौन्दर्य मूलक धारणाको ही पुष्ट कर रहे हैं।

आगे चलकर ध्वनिकार आनन्दवर्धनको भी सौन्दर्य-वादी आचार्योंकी कोटिमें ग्रहण किया है। आनन्दवर्धनने शब्दों एवं अर्थोंकी जो चारुताकी बात कही है उसका एकमात्र उपकरण वे व्यञ्जकताको मानते हैं। (पृ. २८) —व्यञ्जकता वह मूल है जिसके कारण कोईभी अर्थ या शब्द सुन्दर और रसमय अनुभव होने लगता है। अन्तर इतना हो गया कि जहाँ पुराने आलंकारिक शब्दार्थ-धर्मको ही चारुताका उपकरण मानते थे, वहां आनन्दवर्धन आदि ध्वनिवादी आचार्य आरोपित धर्मको भी चारु मानने लगे। जहां उन लोगोंने शरीर (शब्दार्थ) को ही सौन्दर्य का अवयव माना, वहां इन लोगोंने प्रमुख रूपसे आत्मा (रस) को माना। इसके साथही व्यञ्जक सामग्रीको भी वे सौन्दर्य विधायक तत्त्व मानने लगे, चाहे वह शरीर हो या न हो। इस प्रकार जो चारुता या सौन्दर्य पहले दोषा-भाव, गुण एवं अलंकार रूपमें केवल वस्तुगत था, वह व्यंजकताके कारण वस्तु और व्यक्ति दोनोंसे सम्बद्ध हो जानेके कारण उभयगत हो गया।

यदि सौन्दर्यके प्रश्नको दर्शनकी कसौटीपर कसकर देखें तो पता चलेगा कि सौन्दर्यकी स्थिति व्यक्तिगत ही होनी उचित है। यदि व्यक्तिगत होगी तो सुन्दर वस्तु सभीके लिए एक समान सुन्दर अनुभूति करानेमें सक्षम होनी कठिन हो जायेगी। वस्तुतः सौन्दर्यको तीन रूपोंमें अनुभव किया जा सक ा है—(i) पारमार्थिक (ii) व्या-वहारिक और (iii) प्रातीतिक। इसे अन्य प्रकारसे प्रस्तुत करें तो कहा जा सकता है कि सौन्दर्य दो प्रकारका होता है—(i) निरपेक्ष और (ii) संस्कार सापेक्ष। निरपेक्ष सौन्दर्य पारमार्थिककी कोटिमें रखा जा सकता है और संस्कार सापेक्ष व्यावहारिक और प्रतीतिक कोटियोंमें। जैसे एक सौन्दर्यानुभूति गुलाबके फूलको देखकर होती है और दूसरी किसी पिताके हृदयमें अपने कुरूप और घिनौने पुत्रको देखकर। यद्यपि दोनों प्रकारके सौन्दर्य ग्रहणमें संस्कारोंकी अपेक्षा रहती है, किन्तु फिरभी दोनों का अन्तर अनुभूति-सापेक्ष रहता है। ठीक इसी प्रकार काव्यमें भी सौन्दर्य सहृदयोंके हृदयोंमें संस्कारजन्य अनु-भूतिके कारण समान रूपसे ग्रहण हो सकता है।

'रस और सौन्दर्य' निबन्धमें भी लगभग उपर्युक्त तथ्योंके आधारपर रस और सौन्दर्यमें सामीप्यकी अव-धारणाकी पुष्टि की गयी है। जिस प्रकार रस अखण्ड और चिन्मय लोकोत्तर आह्लादका दायक है उसी प्रकार सौन्दर्यभी लीन कर लेनेकी क्षमता रखता है। निबन्धका मुख्य विषय दार्शनिक अधिक है साहित्यिक कम। भौतिक सौन्दर्यको अपूर्ण और अधूरा होनेके कारण खण्ड माना गया है और मानव सदैव अखण्ड सौन्दर्यकी ही कामना करता है। यह विचार आध्यात्मिक विचार है। इ[illegible] विद्वान लेखकने विषयके गहन तलमें जाकर स्पष्ट करने का यत्न किया है। निबन्धके अन्तमें उपसंहार का[illegible]

विषयको स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—'एक सौन्दर्यही जब नाना सौन्दर्य है एवं वह मौलिक नाना सौन्दर्यही जब जगत्‌में भिन्न-भिन्न सौन्दर्योंके रूपमें प्रकाशमान है, तब जगत् सौन्दर्य सार है—यह जाना जा सकता है। सभी वस्तुएं सुन्दर हैं, सभी रसमय हैं—किंतु चित्तमें मेल और चाञ्चल्य रहनेसे देखनेके समय वह अनुभूत नहीं होता है। रस तब सुख और दुःखके रूपमें और सौन्दर्य सुन्दर और कुत्सितके रूपमें विभक्त हो पड़ता है। काल का स्रोत वेगसे बहता हैं एवं हम लोगोंको बहा ले जाता है—तब श्रेय और प्रेयसे विभाग होता है। नियमके जगत्‌में हम उतर पड़ते हैं पाप और पुण्यका अविर्भाव होता है, एवं राग और द्वेषकी सम्भावना फूट उठती है।'

'काव्यकी आत्मा और रस' निबन्धमें लेखकने आरम्भ में गणेश त्र्यंबक देशपाण्डेकी इस स्थापना 'भारतीय काव्य-शास्त्रियोंने एक स्वरसे रसको ही काव्यकी आत्मा स्वीकार किया है'—से मतभेद व्यक्त किया है। लेखकका मत है कि आचार्योंने स्पष्ट कहा है कि—'अलंकार एव काव्ये प्रधानम्', 'रीतिरात्मा', 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः', 'काव्यस्यात्मा स एवार्थः', 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' आदि-आदि। इसलिए एकमात्र रसको ही काव्यकी आत्मा माननेके पक्षमें लेखक नहीं है।

लेखककी धारणा है कि अलंकार, गुण और वक्रोक्ति सभी अपने-अपने स्थानपर ठीक हैं। ये परस्पर एक-दूसरे से भिन्न होते हुएभी 'सौन्दर्य तत्त्व' के निर्देशनमें एकही केन्द्र-बिन्दुपर टिके हुए दिखायी देने लगते हैं।

लेखकके अनुसार काव्यकी आत्माके प्रश्नपर सर्वाधिक निकट आनेवाले दो ही—वक्रोक्तिवाद और रसध्वनिवाद—कहे जा सकते हैं। वस्तुतः काव्यका अस्तित्व यदि व्यापक दृष्टिसे ग्रहण कर लिया जाये, तो काव्यात्माका समाधान शीघ्रही सम्भव हो सकता है। ध्वनि-रसवादी और वक्रोक्तिवादी दोनोंही इस तथ्यसे सहमत हैं कि आह्लादमय दशासे ही काव्य अद्भुत होता है और आह्लादमें ही उसकी परिणति होती है। जो अपने बीज भावमें जैसा होगा, परिणतिमें भी वह वैसाही होगा। एक ने 'वक्रता' के सन्दर्भमें रसका और दूसरेने रसके सन्दर्भमें वक्रताकी उपादेयताकी बात समान बलपूर्वक कही है। कुन्तकने लोकोत्तर आह्लादकारी वैचित्र्यकी सिद्धिमें 'वक्रोक्ति' की और अभिनव गुप्तने काव्योचित सौंदर्य और तज्जन्य आह्लादकी सिद्धिमें स्वभावोक्तिसे भिन्न वक्रोक्तिकी बात कही है। जिस प्रकार कवि व्यापार वक्रताका उत्कृष्ट रूप रसादिमय स्वाभाविक सौंदर्य को सहज उभार देनेमें है—उसी प्रकार आनन्दवर्धनका कवि-कर्मभी विभावादि संयोजनमें है। (पृ. ४५)

इस प्रकार काव्यकी आत्मापर विचार करनेवाले यदि समग्र रूपसे (रसवादी और ध्वनिवादी) दोनोंही लिये जायें तब वक्रोक्तिवादी दोनों चिन्तनधाराओंमें समानता प्रतीत होती है। इस समानताके साथही उनमें अन्तर केवल महत्त्वके तारतम्य-अवधारणमें ही है। रसवादी या ध्वनित रसवादी सहृदय परिणतिको केन्द्रमें रखकर विचार करते हैं और वक्रोक्तिवादी कविगत अंकुरण-प्रक्रियापर अपने आपको केन्द्रितकर विचार करते हैं। वैसे काव्यकी उत्कृष्टतम भूमि रसवत्ताको दोनोंही समान महत्त्व देते हैं। (पृ. ४६)

लेखकका यह विचार उचित प्रतीत होता है कि—'रसकी चर्चा पुरानी और नयी कविताके संदर्भमें की जाये तो कहा जा सकता है कि उसका सम्बन्ध नये-पुरानेकी अपेक्षा अनुरूप मनःस्थितिसे अधिक रहता है।' (पृ. ४७)

'मुक्तक और प्रबन्धगत रस चर्वणा' निबन्धके मूल में यह जिज्ञासा कार्यरत है कि—'उभयविध काव्यरूपोंसे निष्पन्न रसकी प्रतीति एकही प्रकृतिकी है अथवा भिन्न प्रकृतिकी?' प्रायः यह समझा जाता है कि मुक्तक और प्रबन्ध काव्योंकी रस चर्वणाकी प्रकृतिमें अन्तर है। किंतु लेखकका दृष्टिकोण भिन्न है। उनका विचार है कि यदि दोनोंमें अन्तर माना जायेगा तो वह अंतर या तो गुणात्मक होगा अथवा मात्रात्मक। गुणात्मक अन्तर माननेसे रस जैसी एक संज्ञा असंगत हो जाती है और मात्रात्मक माननेसे रसकी शास्त्र स्वीकृत निरतिशयता भंग होती है। (पृ. ४८)। इस निबन्धमें यह देखनेका प्रयास है कि इन दोनों काव्योंकी रस-चर्वणाकी एकता किन वैचारिक आधारोंपर प्रतिष्ठित है। अपने मन्तव्यको लेखकने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दोनों दृष्टियोंसे स्पष्ट किया है।

छठे निबन्धमें रसकी शृंखलामें बौद्धिक रसके औचित्य-अनौचित्यपर विचार है। लेखकके समक्ष आजका यथार्थवादी और प्रयोगवादी काव्य रहा है। आजके काव्यमें रागात्मकताके स्थानपर रागात्मक संबंधको महत्ता दी जा रही है। आजका कवि यह मानकर काव्य रचनामें लीन है कि काव्य सत्यकी उपलब्धिके लिए किया जानेवाला एक

विशिष्ट प्रयोग है इस काव्यमें पाठकको बिना अपने व्यक्तित्वको तोड़े, तटस्थ रहकर ही सत्योपलब्धि हो सकती है। इस प्रकारके सिद्धान्त द्वारा परम्परागत रसात्मक प्रतिमानको तोड़कर केवल बौद्धिकताका आश्रय लेनाही मुख्य रह जाता है । इसीलिए आजकी नयी धारामें व्यक्तित्व विगलन और सामग्रीके साधारणीकरण जैसी बातें छोड़कर बौद्धिक रसमें लीन हो जानेको ही प्रमुखता प्रदान की जा रही है ।

वास्तवमें रसका अर्थ, भाव या स्थायीभावका परिपुष्ट रूपही है—उसे बौद्धिक नहीं कहा जा सकता। बुद्धि प्रत्येक तत्वका विश्लेषण करती है और रस एक भावात्मक मनःस्थिति है इसलिए दोनोंके पृथक्-पृथक् क्षेत्र हैं। यहभी बड़ी हास्यास्पद स्थिति है कि हम बुद्धि को रसात्मक स्थितिमें लाकर उसके फलको 'बौद्धिक-रस' की संज्ञा दे दें । यह तो इसीप्रकार होगा कि जैसे हम कहें कि यह 'ठण्डी-आग' है । इसी आधारपर निबन्ध लेखकने बौद्धिक-रसका अनौचित्य सिद्ध किया है। लेखकके समक्ष डॉ. नगेन्द्र द्वारा लिखित लेख—'आलोचनात्मक कविता और बौद्धिक रस' तथा डॉ. नामवरसिंह द्वारा इस लेखका अनुचित प्रयोग रहा है। उसने इसी संदर्भमें सुन्दर और वैज्ञानिक शैलीमें अपने मन्तव्यकी स्थापना करते हुए डॉ. सिंहके विचारोंको निराधार सिद्ध किया है।

सातवां निबन्ध— 'भोजराजका श्रृंगार रस'--'अहंकार'--स्वरूप-विषयक धारणा"—मौलिक और अपने रूपमें नवीन शोधपरक विषय है। हिन्दी काव्यशास्त्र इस प्रकारके विषयोंसे अबतक अछूताही रहा है। डॉ. त्रिपाठीने इस प्रकारकी विवेचनात्मक चर्चा आरम्भकर एक नयी दिशा की ओर उन्मुख करनेका प्रयास किया है। डॉ. त्रिपाठीने इस निबन्धमें स्पष्ट करना चाहा है कि भोजराजने अपने व्यावहारिक अनुभवकी दृष्टिसे 'रस' पर किस अद्भुत रूपमें विचार किया। उनका कथन है कि भोजराजके मतानुसार रस, अहंकार, अभिमान और शृंगार—ये चारों परस्पर पर्याय ही हैं(सरस्वती कण्ठाभरण पंचम परिच्छेद) ये चारों पयार्यवाची होते हुएभी अपना-अपना भिन्न स्वरूपभी प्रकट करते हैं। भोजराजकी मान्यता है कि वही मूल तत्त्व,जो रस्यमान होनेके कारण 'रस' कहा जाता है, जिसके कारण 'अहं'किया जाता है, जिसके कारण दुःखभी सुखात्मक होता है,और जो(सर्वसाधारणकी वस्तु न होनेके कारण) निरपेक्ष उत्कर्ष या प्रकर्षकी भूमिपर अवस्थित रहता है। (नृसिंहभट्टीय टीका) वह तो व्यवहार-सम्मत रसिकगत्र और अदृष्ट ही होता है । (शृंगार प्रकाश) इसकी स्थिति कुछ सत्त्वात्माओंमें होती है। भोजराजके अनुसार अव्यक्त रूपमें वही तत्त्व 'अहंकार' है, व्यक्तकी अपराभूमिमें वही अंकुरित होकर मानमय विकार या गर्व हो जाता है, मध्यम कोटि आत्मेतर-विषय से युक्त होनेपर विविध भाव या रस दशाएँ बन जाता है (शृंगार प्रकाश) ।

डॉ. त्रिपाठीका कथन है कि शृंगारको परिभाषित करते हुए भोजराजने विभिन्न स्थानोंपर तीन प्रकारके वक्तव्य दिये हैं। (पृ. ५८) कहीं 'आत्मस्थित अहंकार गुण-विशेष', कहीं 'अहंकार विशेष' और कहीं 'अहंकार'। इनकी विवेचनाओंसे प्रतीत होता है कि 'अहंकार विशेषही' उनके मतसे शृंगार रस है। वे स्वयं मानते हैं कि –'जो अहंकार विशेष अपनी विशेषताओंके कारण आस्वाद्य होकर रस कहा जाता है, वह निर्मूल नहीं, वरन् आप्तसम्मत है ।' (शृंगार प्रकाश) यही 'अहंकार' विशिष्ट होकर रस हो जाताहै, यही अंकुरित होकर 'मानमय' विकार बन जाता है…और आनन्दमय समझा जाने लगता है। (पृ. ५९)।

उन्हीं तथ्योंपर विभिन्न विद्वानों—पं. महादेव शास्त्री, प्रेमस्वरूप गुप्त, कान्तिचन्द्र पाण्डेय, शैवमत और मीमांसाकारों एवं सांख्यमतके अभिमत प्रस्तुत अपने मत को तर्कों और विविध सरणियों द्वारा सम्पुष्ट करनेका प्रयास किया गया है। इन्हींको उपसंहारका कारण बना कर 'अहंकार' की विविध उत्कर्ष भूमियां भी बतायी गयी हैं।

समग्रतः डॉ. त्रिपाठीने अपने इस निबन्ध द्वारा भोजराजके शृंगार विषयक मतको बहुपक्षीय रूपसे विवेचित किया है।

आठवें और नवें निबन्धोंमें रस शब्दके विभिन्न अर्थों और काव्यात्मभूत रस, तथा रसाभास, भावाभास : भाव और भावध्वनिपर विचार है। डॉ. त्रिपाठीका विचार है कि 'रस' एवं 'भाव' के प्रयोग, स्वरूप और सीमाका विचार नये रचना सन्दर्भमें किया जाना आवश्यक है। उन्होंने इसी आधारपर कहा है आनन्दवर्धनने रस शब्दका प्रयोग—'चित्तवृत्ति विशेष' के लिए किया है। उनका मत है कि कोईभी वस्तु चाहे वह वस्तु बनी रही अथवा अवस्तु कविकी भावक होकर रसात्मक प्रभाव अवश्य पैदा करेगी—'नास्त्यवस्तु संस्पर्शिता काव्यस्य' की उक्ति इसी आशयको प्रकट करती है कि सामान्य-असामान्य सभी काव्यभूमिमें मध्यभाग होकर भावकपर रसात्मक प्रभाव

डाल देती है। 'रस' शब्दका यह व्यापकतम प्रयोग कहा जायेगा। किंतु पण्डितराज जगन्नाथकी दृष्टिमें तो इससे भी आगे जाकर प्रत्येक रसात्मक शब्दको ही काव्य रूपमें प्रस्तुत करना उचित मानते हैं। यह स्थिति उस समय आ सकती है जब सहृदय लोकोत्तर आह्लादक भाव-भूमिमें पहुंचनेकी स्थितिमें अपने-आपको ले जा सके। इस स्थितिमें कभी-कभी तो कवि स्वयं आश्रय रूपमें उपस्थित है और कभी किसी पात्र विशेषके रूपमें। पहली स्थिति तब आती है जब सहृदय प्रमाताको कि आश्रय समाजानुमोदित विषयके विपरीत मनःस्थितिमें आ गया या कविने जबर्दस्ती ऐसी परिस्थितिमें डाल दिया है। ऐसा कार्य समाजकी दृष्टिमें अनुचितभी माना जा सकता है। किंतु औचित्य-अनौचित्यकी शब्दावली काव्येतर जगत्की है। काव्य तो केवल औचित्य या केवल सुन्दरको ही प्रस्तुत करता है। काव्यमें जिस प्रकार सामान्य-असामान्य सभी का समावेश होता है उसी प्रकार औचित्य-अनौचित्यका समावेशभी हो सकता है। क्योंकि काव्यरूपमें पात्रकी अनुचित चित्तवृत्ति और उचित चित्तवृत्ति दोनोंको ही रस, भाव, रसाभास, और भावाभासके अन्तर्भूत करते हुए 'रस्यमानता' के कारण सभीके अर्थमें 'रस' शब्दका विशिष्ट अर्थ प्राप्त होता है। किन्तु कई विद्वान् 'रसाभास' और 'भावाभास' को 'रस' की कोटिमें नहीं लेते। आचार्य शुक्लने इस विवादके शमन हेतु एक अन्य मार्ग सुझाया है कि जहाँ पूर्ण रस माना जाये वहाँ कवि, पात्र और पाठक-श्रोतामें आलम्बन द्वारा भावकी अनुभूति होनी चाहिये। (पृ. ६७)।

रसाभासके लिए पण्डितराज जगन्नाथने दो पक्ष प्रस्तुत किये हैं। एक मत उसे रस मानता है और दूसरा मत उसे रस नहीं मानता। इस सम्बन्धमें डॉ. त्रिपाठी का मत विचारणीय है। वे कहते है कि—'जो लोग रसाभास या भावाभासको रसके अन्तर्गत मानते हैं, उनका आशय यह है कि ऐसे प्रसंगभी ग्राहकपर कोई प्रभाव डालते हैं, भलेही ग्राहक अनौचित्य-प्रवृत्त, पात्र-गत भाव या रसका ग्रहण न करता हो। क्या रावणगत सीता विषयक-रति रूप मनःस्थितिका या रामालम्बनक क्रोधात्मक मनःस्थितिका कोई असरही नहीं पड़ता—इन स्थितियों या मनःस्थितियोंको देखकर निश्चयही रावणकी दुःशीलताका विचार ग्राहक करने लगता है और कभी-कभी घृणा या क्रोधभी उसे हो आता है। यह प्रभाव-ग्रहण निर्वैयक्तिक हृदय द्वारा गृहीत होता है—फलत 'रस' तो कहाही जायेगा लेकिन यह एक भिन्न प्रकार अवश्य होगा।'—(पृष्ठ ६६)······इसीलिए उसे भाव या रस की कोटिका नहीं कहा जा सकता। जो प्रतीतही नहीं होता, वह रस कैसे ? अत: वह भावाभास या रसाभासही होगा रस नहीं।

काव्यमें औचित्यको विवेचित करते हुए और रससे उसका तुलनात्मक सम्बन्ध खोजते हुए डॉ. त्रिपाठीने ग्यारहवें निबन्धमें आजके नये रचनासंसारके सन्दर्भमें इन्हीं तथ्योंको देखनेका यत्न किया है। साध्यके अनुरूपही साधनका विधान औचित्य कहलाता है। किन्तु आजके नये रचना संसारमें विघटनात्मक जीवन प्रवाहकी वास्तविकता और नियतिको ऐसे ढंगसे उकेरा जा रहा है जिसमें वह मनःस्थितियोंमें निमज्जित होनेके स्थानपर चिन्तनकी दिशामें उत्तेजित किया जा रहा है। मानसिक तनाव आज व्यक्तिगत नहीं, समाजगत होता जा रहा है—फलतः निर्वैयक्तिक स्तरपर सर्जनात्मक अनुभूतिके रूपमें चित्रित यह मनःस्थिति यदि रसात्मक नहीं होती, तो पाठक पढ़नेके लिए क्यों प्रवृत्त होता ? वास्तविक जीवन के प्रवाहसे हटकर कलाजगत्में वेही क्लेशकर भाव, जो वहां विकर्षक होते हैं—यहां आकर्षक बन जाते हैं। शुक्ल जीकी दृष्टिसे यह मध्यम रस दशा है और संस्कृत आचार्योंकी दृष्टिसे भावदशा। (पृष्ठ ८१) लेखकके समक्ष आजके नये रचना प्रवाहमें समाजकी परवाह न कर केवल व्यक्तिगत ग्राह्यताके आधारपर ही रचनाएं आ रही है, ऐसी रचनाएं समाजानुमोदित न होनेसे त्याज्य ही मानी जायेंगी।

दसवें निबन्धमें संकेतग्रह, बिम्बग्रहण और विभावन व्यापार जैसे काव्यशास्त्रीय विषयका विवेचन किया है। वे लिखते हैं कि—'संकेतग्रहण जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा जैसी उपाधियोंमें होता है। पर बिम्ब व्यक्तिका ही गृहीत होता है। साहित्यमें विभावन व्यापारका सामर्थ्य इसी बिम्बमें होता है। मीमांसक संकेतग्रह केवल जातिमें मानते हैं।'—(पृष्ठ ७२)। आचार्य शुक्ल काव्यमें विभावन-व्यापारको प्रमुखता देते हुए, शब्दसे ही अर्थग्रहण मानते हैं। किन्तु काव्यात्मक शब्दकी चरितार्थता बिम्ब ग्रहण करानेमें ही मानते हैं। लेखकने शुक्ल जीकी मान्यताको समक्ष रखते हुए अनेक प्रश्न उठाकर प्रत्येकका समाधान तार्किक और विश्लेषणात्मक शैलीमें किया है। यथा—(i) बिम्ब शब्दार्थ कैसे ? (ii) बिम्ब वास्तवमें क्या है ? (iii) विभावन व्यापार रस व्यञ्जक

सामग्रीका है या केवल विभावका ? (iv) क्या विभावन क्रियाका कर्म हो सकता है ? (v) काव्य शब्दकी चरितार्थता विभावनमें ही है या अन्यत्रभी हो सकती है ? (vi) संकेतग्रह, बिम्बार्थग्रह और विभावन व्यापारकी सम्बद्धता किस प्रकार संगत है ? इन्हीं प्रश्नोंका समाधान इस निबन्धका विषय रहा है।

बारहवां और तेरहवां निबन्ध आनन्दवर्धनसे पूर्व ध्वनि तत्त्व तथा आनन्दवर्धनकालीन ध्वनिवादपर सारगर्भित विचार है।

बारहवें निबन्धका आरम्भ वाक्यपदीयके स्फोट सिद्धान्तसे हुआ जिसमें उपयोगी ध्वनिके दो रूप प्राकृत और वैकृत बताये हैं। मीमांसकोंकी मीमाँसाको दृष्टिमें रखते हुए कहा गया है कि जिस माध्यमसे अर्थ ग्रहण होता है, वह 'शब्द' ध्वनि या नादसे प्रकाश्य है। इस प्रकार यहां 'ध्वनि' और शब्दमें अन्तर माना गया है। वैयाकरणोंने इसी ध्वनि-प्रकाश्य 'शब्द'को 'स्फोट' नाम दिया है।

आनन्दवर्धनसे पूर्व 'भामह'का काव्यालंकार ग्रन्थ सर्वप्रथम आता है। आनन्दवर्धनने यह माना था कि—'विशिष्ट शब्दोंमें जो चारुता यहां-वहां लक्षित होती है, उसका मूल कारण व्यंजकत्व है।"—अर्थात् जहाँ-जहां शब्दमें व्यंजकता होगी, वहीं वहीं काव्योचित सौंदर्यका प्रस्फुटन होगा। भामहने भी इसी दिशामें सोचते हुए कहा कि—'शब्द और अर्थका अभिधाके स्तरसे हटकर वक्र ढंगसे रखा जानेसे ही चारुता उद्भूत हो सकती है।'

'दण्डी'ने भी कहा कि—'विदग्ध जन सपाट अर्थसे नहीं अपितु लोकातिक्रान्त भंगिमामंडित अर्थसे ही संतुष्ट होते हैं और यह समाधि गुण सम्पादनसे आ सकता है।

काव्यालंकार-सार-संग्रहके प्रणेता 'उद्भट'ने भी 'पर्यायोक्ति' अलंकारके प्रसंगमें भंगिमाकी ओर संकेत करते हुए कहा है कि पर्यायोक्तिमें अभिधासे शून्य अवगमनात्मक व्यापार द्वारा कवि अपनी बात कहता है। इनके टीकाकार प्रतीहारेन्दुराजने इसे स्पष्ट करते हुए अवगमनात्मक व्यवहारको ध्वनन व्यापारका पर्यायही बताया है। भाव यह है कि आनन्दवर्धनसे पूर्व सभी काव्यशास्त्रियोंके मनमे यह तत्त्व विराजमान था कि सपाट अर्थमें काव्योचित सौन्दर्य नहीं होता।

तेरहवें निबन्धमें ध्वनिवादपर विचार करते हुए यह स्वीकारा गया है कि ध्वनि सम्प्रदायके आविष्कर्ता और प्रथम व्याख्याता आचार्य आनन्दवर्धनही हैं। अभिनव गुप्त ने भी ऐसाही कहा है। डॉ. त्रिपाठीने अपने इस निबन्धमें ध्वनिवादका विवेचन करनेसे पूर्व 'स्फोट सिद्धान्त' की ऐतिहासिक एवं सैद्धान्तिक चर्चा करते हुए इस सिद्धान्तमें ध्वनि सिद्धान्तके संकेतोंका स्वरूप तलाशनेका प्रयास किया है। उनका कथन है कि जिस प्रकार 'पाणिनीय शिक्षा' में मान्य मध्यमानाद द्वारा ध्वनि स्फोटका व्यञ्जक है—उसी प्रकार ध्वनि सिद्धान्तमें भी वाचक एवं वाच्यार्थ प्रतीयमान अर्थके व्यञ्जक माने गये हैं। यही व्यञ्जक तत्त्व ध्वनि कहा गया है। इसप्रकार आनन्दवर्धनने ध्वनि सिद्धान्तके मूल स्रोतका संकेत वैयाकरणोंके स्फोट-सिद्धान्तमें निहित बताया है। (पृ. ९५-९६)। ध्वनि तत्त्वसे सम्बद्ध कई प्रश्नोंका समाधान करते हुए आनन्दवर्धन एवं अभिनव गुप्त द्वारा ध्वनिके स्वरूपका स्पष्टीकरण बड़ी तार्किक एवं सोदाहरण शैलीमें किया है। डॉ. त्रिपाठीका कथन है कि आनन्दवर्धनने कहा है कि—'वाच्य-वाचक, उनसे ध्वनित अर्थ, ध्वनन व्यापार तथा इनकी समष्टि काव्य ये सभी व्यञ्जन भावसे सम्बद्ध होनेके कारणही ध्वनि कहे गये हैं। अर्थात् व्यञ्जक, व्यंग्य, व्यञ्जन, तथा इनकी काव्यात्मक समष्टि सभीको ध्वनि संज्ञा दी जा सकती है। (पृ. १०१-१०२)। प्रस्तुत निबंध में प्राचीन, अर्वाचीन और पश्चिमी सभी विचारोंको समक्ष रखा गया है।

चौदहवें निबन्धमें वक्रोक्ति सिद्धान्त और पन्द्रहवेंमें अलंकार सिद्धान्तके प्रत्येक पहलूपर विवेचन एवं विश्लेषण है। अलंकारवादकी मूल चेतनाको समक्ष रखकर आजके नवीन चिन्तनपर गहन आलोच्य दृष्टिसे विचार किया गया है। अलंकारवादी और रीतिवादी आचार्योंकी विवेचनामें, डॉ. त्रिपाठीने ध्वनिवादियोंकी रसपरक एवं मौलिक अलंकार सम्बन्धी उद्भावनाका सुस्पष्ट उल्लेख किया है। उनका कथन है कि ध्वनि सिद्धान्तके पूर्व आचार्योंने केवल 'चारुता' की दृष्टिसे ही अलंकारके स्वरूपपर विचार किया था किन्तु ध्वनिवादियोंने 'रसपर्यवसायी चारुता' को केन्द्रमें रखकर अलंकारके स्वरूपपर विचार करना आरम्भ किया···इन आचार्योंने सिद्धान्ततः ही नहीं, अपितु व्यवहारतःभी अलंकारपर विचार किया।' (पृ. १३५, १३६, १३७)। आधुनिककालके नव्यशास्त्रीय चिन्तक एवं विद्वान् आलोचक आचार्य शुक्लजी भी इसी रस पर्यवसायी चारुताके समर्थक रहे हैं। वे अलंकारपर भी इसी दृष्टिसे विचार करते हैं। रसवादी होनेके कारण शुक्लजी मानते हैं कि 'रमणीयता' के अभावमें अलंकारों

का ढेर काव्यका सजीव रूप खड़ा नहीं कर सकता। इससे सभी रमणीय स्थल ढूंढ-ढूंढकर अलंकारके नाम दिये जानेकी स्पर्धा बनती दिखायी देने लगी। मनोविज्ञान ने और स्वच्छन्दतावादी दृष्टिने तो इसे औरभी आगे बढ़ाया तथा 'रसानुभूति' के स्थानपर 'सहानुभूति' और सहानुभूतिको ही अलंकारसे सम्बद्ध करके देखनेका प्रयास हुआ। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्री 'सोशियोएस्थेटिक्स' का माप लेकर आगे बढ़ते गये। इसके संदर्भमें भी अलंकार को देखा गया। इसी प्रकारके नयेसे नये चिंतनोंकी होड़में अलंकारके स्वरूपको विवेचित करनेके प्रयत्न हुए। वस्तुतः अलंकारोंका उद्भव 'उक्ति' को काव्यात्मक रूप देनेके लिए अपेक्षित तत्त्वोंकी खोजके कारणही हुआ था। किन्तु यूरोपमें इसके उद्भव और विकासकी भिन्न परिस्थितियां और भिन्न कारण थे। वहांपर वाग्मिता-शास्त्रके विशेषज्ञोंने अलंकार-निरूपणका प्रयास किया। जिनमें—नेस्टर, मेनेलायस, ओटिस्सेयस, कोरेक्स, सिरावन्यूज आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी प्रवक्ता राजनीतिक योद्धाभी थे। धीरे-धीरे अरस्तूके समयमें आकर वाग्मिता-शास्त्र प्रमुख हो गया तथा अरस्तूके अनन्तर हरमेगोरस, सिसरो, क्विण्टिलियन, हरमोजिनस, लोंग्जाइनस, एफ्थोनियस, आदिने इसे गति प्रदान की। रोमन साम्राज्य में इसे विकास मिला।

आजके नवचिन्तकोंकी यह धारणा है कि वाग्मिता-शास्त्र मुख्यतः गद्य निर्माणसे ही सम्बद्ध है। मूलतः वाग्मिताका अर्थ है—जनभाषण द्वारा लोगोंको अपनी ओर खींचनेकी कला। इसमें चमत्कारोत्पक शक्तिका भी आधिक्य होना आवश्यक रहता है। यही चमत्कारोत्पक शक्ति अलंकारकी 'चारुता' है जो भारतीय काव्यशास्त्रके निकट है। वैसेभी भारतीय आचार्योंने अलंकारका मूल 'वक्रता'को माना है। कुन्तककी 'वक्रता'बहुत व्यापक तत्त्व है।—'प्रसिद्ध शब्दार्थोपत्तिवंधव्यतिरेकता' - ही उनकी वक्रोक्ति है। नयी समीक्षामें अकव्यसे काव्यके व्यावर्तक तत्त्वोंकी बड़ी व्यग्रतासे खोज हो रही थी। इसके दो ध्रुवान्त हैं : १. सर्जनात्मक अनुभूति और २. अभिप्रकाशक (भाषा)। भारतीय आचार्योंने भी इसी अन्तःसार तत्त्वकी खोज की थी। ये सभी वाद इस प्रयत्नका फल हैं।

अलंकार चिंतनका रूप नयी समीक्षासे होता हुआ आजकी नवी तम समीक्षा प्रणाली—'शैली विज्ञान' तक में भी समाविष्ट मिलता है। शैलीविज्ञान भाषाके विचलन द्वारा कृतिको कृतिके माध्यमसे ही विवेचित करनेके पक्षमें है। अलंकारभी कृतिकी वक्रतामें ही अपनी चारुता का स्वरूप निर्माण करता है। अतः कहा जायेगा कि अपने इस निबन्धमें डॉ. त्रिपाठीने प्राचीन अलंकार सिद्धान्तकी चेतनाको नवीनतम समीक्षा प्रणालियोंके सन्दर्भमें रखकर देखनेका सराहनीय कार्य किया है।

अन्तिम निबन्धमें काव्यात्मवादोंका तुलनात्मक अध्ययनभी उनका मौलिक प्रयास कहा जा सकता है। वस्तुतः यह पुस्तक हिन्दी जगत्में प्राचीनको नवीनसे और पूर्वको पश्चिमसे मिलानेका संगम स्थल है। □

प्रेमचंद : सृष्टि और दृष्टि

सम्पादक : डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर; प्रकाशक : महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पो. बा. ७०६, नारायण पेठ, पुणे-४११-०३०। पृष्ठ : १३८; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.:

प्रेमचंद जन्मशतीपर अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं। इनमेंसे अधिकांश औपचारिक हैं और प्रेमचन्दकी समझ को आगे बढ़ानेमें अधिक मदद नहीं देते। लेकिन प्रस्तुत संकलन न तो औपचारिक है न इसमें बड़े-बड़े नामोंको बटोरनेकी प्रवृत्ति है। इसका शायद प्रमुख कारण एक सुलझे हुए विचारवान् लेखक डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर का सम्पादन है। अपने सम्पादकीयमें उन्होंने स्पष्ट कहा है कि पुस्तकके लेखकोंका चुनाव उस पीढ़ीसे किया गया है जो प्रेमचंदसे प्रतिक्रियात्मक ढंगसे नहीं संवाद-भावसे जुड़ी है। पुस्तकका इरादा प्रेमचंदपर लगे आरोपोंकी निष्पक्ष पड़ताल करना है। लेकिन निष्पक्ष पड़तालके लिए, पाठकोंके सामने प्रतिक्रियात्मक ढंगसे जुड़े लेखकों को क्यों नहीं रखना चाहिये? इसके अभावमें पुस्तकके अधिकांश लेख प्रेमचदकी ओरसे खड़े होकर जवाब देने लगते हैं। इसलिए ईमानदार संकल्पके बावजूद आमतौर पर पुस्तकमें एक शमन-भाव है जो एक-सी आवृत्तियां बुनता है। डॉ. बांदिवडेकरने स्वयं अपने निबन्ध 'प्रेमचंद की औपन्यासिक कलाका पुनर्मूल्यांकन' में उनपर लगाये गये आरोपोंका उत्तर दिया है। यहां यह सवाल उठता है कि क्या कथित आरोप हमेशा आरोपित ही होते हैं, उनमें सच्चाई होतीही नहीं? चन्द्रकान्तने कहा है कि 'उपयोगितावादी' लेखक होते हुएभी प्रेमचन्दकी दृष्टि और कलात्मक क्षमता निरन्तर विकसित थी। 'वर्ग-चित्र' के साथही उनमें 'मानसिकता' का भी 'विश्वसनीय' चित्रण है। उनकी नीति-विषयक धारणा व्यापक है। यथार्थकी स्थूलतापर ही नहीं, उसके मर्मपर भी उनकी

दृष्टि है। उनकी चरित्र-दृष्टि 'व्यामिश्र' है। परिस्थितियां और मनुष्यकी टकराहट, दोनों पक्ष उन्होंने समान रूपसे उभारे हैं···आदि। जाहिर हैं कि चन्द्रकान्त अपने निबन्धमें सम्पादकके अभिप्रायको ही ब्यौरेवार रखनेकी कोशिश करते हैं। प्रेमचन्दके सृजन-पक्षको लेकर उनकी यह टिप्पणी वज़नदार है कि उन्होंने कथाके बनावटी ढाँचेको तोड़कर जीवन विषयक महत्त्वपूर्ण अनुभव व्यक्त किये।' अतीत और समकालीन सापेक्षतामें प्रेमचन्दकी उपस्थिति महसूस करनेका यह तर्क प्रेमचंदके अध्ययनको एक दिशा देता है।

पुस्तकमें इसके अलावा ग्यारह निबन्ध हैं। इनमेंसे तीन निबन्ध रेखांकित करने योग्य हैं—प्रेमचंदका सर्जनात्मक गद्य (परमानन्द श्रीवास्तव), कहानीकार प्रेमचंद (मधुरेश) और 'प्रेमचन्द : समग्र रचनाकर्मके संदर्भ में पुर्नविचार' (गंगाप्रसाद विमल)। हालाँकि ये तीनों निबन्धभी मुख्यतः प्रेमचन्दके प्रति अनुकूल दृष्टिसे परिचालित हैं, लेकिन विश्लेषणकी गहराई और विश्वसनीय तर्कोंके कारण अनुकूलताका औचित्य सिद्ध करते हैं।

प्रेमचन्दकी सर्जनात्मक भाषाके जिस चुनौतीभरे सवालको परमानन्द श्रीवास्तवने उठाया है वह भाषाकी उस सादगीके भीतर सर्जनाकी खोज है जो जन-भाषाको सृजन-भाषामें पर्यवसित करती है। डॉ. श्रीवास्तवने प्रेमचन्दके भीतरकी कविता, मनके संगीत और हार्दिकताको भाषाके जरिए, गहराईसे परखनेकी सफल कोशिश की है। खासकर उन्होंने पुष्टिके लिए जो उदाहरण चुने हैं, वे उनकी मार्मिक क्षमता दिखाते हैं। मधुरेशका निबन्ध एक दृष्टि-सम्पन्न निबन्ध है, जिससे वे प्रगतिशील निगाह से प्रेमचन्दकी कहानियोंका बहुत साफ विवेचन करते हैं। वे उनकी विकास-यात्राके विभिन्न पड़ावोंकी ब्यौरेवार आलोचनात्मक चर्चा करते हैं और विकासके दौरमें उनके भटकावोंपर उंगली रखते हैं। गांधीवादी प्रभाव-कालमें लिखी प्रेमचन्दकी कहानियोंके बारेमें मधुरेशने बारीकीसे काम लिया है—'अधिकांश कहानियोंमें हमें पात्र और उनका परिवेश तो यथार्थ दिखायी देता है, लेकिन इन पात्रोंका आचारण और उसे प्रभावित करनेवाली सोच अपने मूल रूपमें इतिहास-विरोधी ही हैं।' वे प्रेमचंदके प्रगतिशील चिन्तनपर प्रश्नचिह्न लगानेवाली कहानियोंका भी स्पष्ट विश्लेषण करते हैं। इस तरह, वास्तवमें, वे प्रेमचंदके भीतर वयस्कता तक पहुंचानेवाली प्रगतिशील यात्राको ही संजीदगी और समझदारीसे परखते हैं और इस तरह प्रकारान्तरसे उन्हें ओढ़ी हुई या समकालीन फैशनसे परिचालित प्रगतिशीलताके पार कमायी हु[ई] प्रगतिशीलताके दायरेमें खड़ा करते हैं। मधुरेश[ने] विश्लेषणके लिए सही कहानियां चुनी हैं और वैचारि[क] विकासका, प्रगतिशील दृष्टिसे किया गया उनका मूल्यांक[न] विवेकसम्मत लगता है।···और सबसे बड़ी बात यह [है] कि उन्होंने पाठकके भीतर हलचल पैदा करनेवाला सो[च] छोड़ा है। मुझे आश्चर्य है कि ये दो मूल्यवान् निब[न्ध] पुस्तकमें अन्तमें जगह पाते हैं! गंगाप्रसाद विमलने अ[पने] निबन्धमें जो बातें उठायी हैं उनमें 'सहज भाषाको लोक[के] अक्समें जाँचने; प्रेमचंदकी आलोचना-दृष्टि, अमानवी[य]करणके प्रति उनके सुलूक और पारम्परिक दृष्टिके आधुनि[क] रूपान्तरण आदिकी समस्याएं हैं। विमलने प्रेमचंदको [...] के सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्यमें समझनेकी भी जरूरी अपील की है।

पुस्तकमें, इनके अलावा ध्यान खीचते हैं ये चा[र] निबन्ध – 'प्रेमचंदका सनातन ग्रामांचल' (विवेकी राय), 'प्रेमचंदकी चिन्तनपरकताके बुनियादी सरोकार' (नि[शि]कान्त ठकार), 'प्रेमचंद : प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासका[र]' (कमलकिशोर गोयनका) और 'प्रेमचंद और परवर्ती हि[न्दी] उपन्यास' (गोपाल)।

विवेकीराय स्वयं ग्रामीण जीवनके सृजनशील क[था]कार हैं। वे प्रेमचन्दकी परम्पराके ही लेखक हैं, इसलिए प्रेमचंदके ग्रामीण परिवेश और समस्याओं[से] उलझते हुए उनका स्वयंसे आमना-सामनाभी होता है। तभी शायद वे कह सके हैं कि 'पाठकीय चित्तमें ती[व्र]गतिक और परिवर्तनशील तत्कालीन और सामाजि[क] जीवनके बीचसे गँवई जीवनके शाश्वत प्रत्ययोंकी लक[ीरों]को गहराईसे प्रत्यक्षीकरण करा देनेमें ही प्रेमचंदकी क[ला]कुशलता निहित है।' सचमुचही यह बात महत्त्वकी है क्योंकि तीव्रगतिक परिवेशके बीच एक मंथर जीवन पाठकके मनमें उतार पाना कम कौशल नहीं है। ग्रा[मीण] जीवनपर लिखनेवाले लेखकका यह भीतरी तनाव है। विवेकीरायने गवई जीवनके कई लेखकोंकी नकली मा[नसि]कतापर टिप्पणी करते हुए प्रेमचंदकी सच्ची त[स्वीर] उभारी है। गांवकी छोटी-छोटी चीजों और प्रत्यय[ों के] माध्यमसे समूचे जीवनके मर्मके उद्घाटनका अनुभव [...] इन्वॉल्व्ड लेखकही कर सकता था। इतने परभी विवे[की]राय आधुनिकतासे ग्राम-जीवनकी तेज टकराहटको अ[पने] निबन्धमें अधिक महत्त्व न दे सके। निशिकान्त ठकार[का] निबन्ध परिश्रमपूर्ण ढंगसे लिखा पुख्ता निबन्ध है, जि[समें] प्रेमचन्दकी विचार प्रक्रिया, आदर्श-यथार्थका द्वन्द्व, [...] चेतना आदिपर पूरे जाब्तेसे बात करनेकी कोशिश [की] गयी है। मैं समझता हूं कि इस निबन्धको मधुरे[श]

निबन्धके साथ पढ़ा जाये तो प्रेमचंद-साहित्यके प्रति आम अकादमिक सोच और दृष्टिप्रेरित सोचके द्वन्द्व प्रकट होंगे। सम्भवतः यह निबन्ध उन खामियोंकी ओरभी इशारा करता है जो दृष्टि-प्रेरित सोचकी है और उस समावेशिताकी ओरभी जो दृष्टिबिंदुके अभावमें विश्लेषण का ध्रुवीकरण नहीं कर पाती। कमलकिशोर गोयनका का आलेख प्रेमचंदको लेकर उसी समस्यासे जूझता प्रतीत होता है जो प्रेमचंदपर आरोपकी तरह चस्पा की जाती है। लेकिन गोयनका मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और उसके तकनीकी पहलुओंमें ज़्यादा उलझे हैं और वर्गीकरणकी प्रवृत्तिसे उन्होंने निबन्धकी छोटी-सी जमीनको भाराक्रांत कर दिया है। इस निबन्धमें यह अच्छी बात है कि उन्होंने समकालीन कथा-सन्दर्भोंमें प्रेमचन्दकी मनोवैज्ञानिकता को परखनेकी कोशिश की है, लेकिन निबन्ध अक्सर आलोचनाओंका बचाव करता है। इसलिए विषयके अनुरूप जो अन्तःप्रवेश जरूरी था, वह उस तरह संभव नहीं हो पाया जिस तरह परमानन्द श्रीवास्तवके आलेखमें हुआ है। गोपालका निबन्ध प्रेमचंदकी परम्पराको, अगली कृतियोंमें परखनेकी दो टूक कोशिश है। लेखककी रायमें 'हिन्दीके परवर्ती उपन्यासकार आलोचनात्मक यथार्थवाद की सीमाओंका अतिक्रमण नहीं कर सके।' लेकिन इतनी बड़ी बात कहनेके लिए जितने और जैसे प्रमाण जरूरी थे, लेखक नहीं दे पाया। उसकी भ्रांतिका आभास निबंध के दौरमें पल्लवित विचार और निष्कर्षके अन्तर्विरोधसे भी मिलता है। फिरभी यह एक अध्ययनपरक निबन्ध है और इसमें कुछ साहसपूर्ण उक्तियाँभी हैं। प्रेमचंदके कथ्य, चरित्र, शिल्प वगैरहको लेकर परवर्ती प्रभावोंके ब्यौरोंमें जाना सम्भव भी नहीं था, इसलिए अगर कुछ प्रमुख मुद्दे लेकर उनकी गहराईमें उतरा जाता तो बेहतर होता। इस लेखनमें ग्राम-जीवनके परिप्रेक्ष्यमें परवर्ती उपन्यासोंके विवेचनमें न उतर पाना, नजरअंदाज करने वाली बात नहीं है।

पुस्तकमें चार और निबन्ध संकलित हैं— प्रेमचन्दके कथा-साहित्यमें प्रेरक भाव' (शशिभूषण सिंहल), 'प्रेमचंदकी नारी सृष्टि : परम्परा और प्रगति' (रामजी तिवारी) 'प्रेमचंद और औपन्यासिक पात्रोंका चरित्र-चित्रण' (रणवीर रांग्रा) और 'प्रेमचंदकी प्रासंगिकता (हरदयाल)।

यद्यपि प्रेमचंदके अधिकांश पक्षोंपर इस पुस्तकमें आलेख हैं। इससे अधिक विस्तृत रूपरेखाकी उम्मीद इस छोटी-सी पुस्तकसे की भी नहीं जा सकती थी। लेकिन प्रेमचंद और हमारे कालके बीच इतना फासला नहीं है कि उनके जीवित सम्पर्क हमारे लिए दुर्लभ हों! सृजनके अंतरंगकी समझमें उनका उपयोग उपेक्षाके योग्य नहीं है।

सादे रंग-ढंगमें छपी, बिना तड़क-भड़कवाली यह परिश्रमपूर्ण और अभिप्राय प्रेरित पुस्तक स्वयं प्रेमचंदकी अंतर्दृष्टि, सहज सर्जनात्मकताको प्रतिकृत करती है।

□ **प्रभाकर श्रोत्रिय**

ग्रामीण समाजशास्त्र : साहित्य-परिप्रेक्ष्यमें

लेखक : डॉ. विश्वंभरदयाल गुप्त; प्रकाशक : सीता प्रकाशन, मोती बाजार, हाथरस-२०४१०१। पृष्ठ : १६१; डिमा. ८०; मूल्य : ५०.०० रु.।

प्रस्तुत कृति आगरा विश्वविद्यालय द्वारा समाजशास्त्र विषयके अन्तर्गत स्वीकृत शोधप्रबन्ध 'आधुनिक हिन्दी साहित्यका समाजशास्त्रीय विश्लेषण' का एक विशिष्ट अंश है। इसमें विद्वान् लेखकने मुख्यतः 'मैला आंचल', 'कब तक पुकारूं,' 'परती परिकथा', 'झूठा सच', 'अमृत और विष', 'आधा गाँव', 'अलग-अलग वैतरणी', 'राग दरबारी' को आधार बनाकर इसमें वर्णित गाँवको भारतीय गाँवोंकी समस्याओं और वहाँ परिवर्तनकी द्रुत गति के संदर्भमें देखा और जाँचा है। इस अध्ययनकी मुख्य चिन्ता यह रही है कि 'सामाजिक पुनर्निर्माणके अभिकरण के रूपमें साहित्यने पुनर्निर्माणकालीन ग्रामीण छवि' का अंकन किस प्रकार किया है? शोधकर्ता इस मान्यताके तहत शोधकार्यमें जुटा है कि साहित्य समाजकी पुनर्सृष्टि है।

प्रथम अध्यायमें शोधकर्ताने अपनी प्राक्कल्पना (हाइपोथीसिस) को इसप्रकार प्रस्तुत किया है— 'ग्रामीण समाजका प्रतिबिम्बन तो साहित्यमें हुआ है, किन्तु नियोजित कार्यक्रमों द्वारा लाये गये सामाजिक-सांस्कृतिक आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तनों एवं पुनर्निर्माणकी छवि का यथार्थ निरूपण साहित्यमें नहीं है।' चर्चित उपन्यासों से गुजरते हुए यह प्राक्कल्पना एक सप्रमाण निष्कर्षका रूप लेती है। इन उपन्यासोंमें ग्रामीण जीवनके चित्रणके पीछे सक्रिय रचनाकारोंकी निराशाको लक्ष्य करते हुए पाया गया है कि अधिकतरने तीस सालकी उपलब्धियोंको नजरअन्दाज कर दिया है। गांव 'नरक' और विकृतियों के पुंजके रूपमें चित्रित किया गया है। यानी कि ये

उपन्यास किसी प्रकारकी नैतिक चेतना जागृत करने या नवीन आशा का संचार करनेमें सफल नहीं हो सके हैं। निश्चयही शोधकर्ताकी मान्यतामें दम हैं। 'रागदरबारी', 'आधा गाँव', 'अलग-अलग वैतरणी' के कथा-चरित्रोंका गाँव छोड़ना इसी दृष्टिका परिणाम है कि गांव पक्का हरामी हो चला है। इसलिए पलायन हर समझदारकी नियति है। लेकिन शोधकर्ताके चयनसे कुछ ऐसी कृतियाँ छूट गयी हैं जो गांवकी गंदगीमें धँसने और गांवको विकृतियोंसे मुक्त करानेका आह्वान करती हैं। 'जल टूटता हुआ', 'लोकऋण', 'सोनभद्रकी राधा' आदि कृतियाँ इस संदर्भमें उल्लेखनीय हैं। 'बाबा बटेसरनाथ', 'धरती धन न अपना', 'हरा समंदर गोपीचंदर' आदि उपन्यासोंमें भी कभी सम्पूर्ण और कहीं आंशिक तौरपर हताशासे ऊपर उठकर 'व्यवस्था' की विसंगतियोंसे जूझने और नयी आशाका संचार करनेकी कोशिश बहुत स्पष्ट है। ऐसी स्थितिमें लेखककी मुख्य स्थापना चुनौतीरहित नहीं कही जा सकती।

द्वितीय अध्याय 'साहित्य पुनर्निर्माण' में यह बात जोर देकर कही गयी है कि पुनर्निर्माण किसीभी समाजकी अनिवार्य आवश्यकता है। सुधारवादी संगठन, परोपकारी संस्थाएं और प्रशासनिक इकाइयां सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रमुख अभिकर्ता हैं। चूंकि साहित्य युगीन हलचलसे भलीभांति प्रभावित होता है, अतः वह पुनर्निर्माणके कार्यक्रमोंके प्रतिबिम्ब और मूल्यांकनका महत्त्वपूर्ण अभिकर्ता है। तीसरे अध्यायमें भारतीय गांवकी मौजूदा स्थितिकी संक्षिप्त चर्चाके बाद उपन्यासोंमें व्यक्त गाँवोंकी क्षेत्रीय स्थिति और उनकी आर्थिक सामाजिक हैसियतके ब्यौरे दिये गये हैं। शोधकर्ताने पाया है कि उपन्यासोंमें वर्णित अधिकतर गाँव नगरके पास स्थित हैं और उत्तरी भारत के गाँवोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। चौथे अध्याय 'ग्रामीण समाज और व्यक्ति' में दिखाया गया है कि किस तरह गांवमें जहालत, गरीबी, स्वार्थपरताकी पर्तोंके नीचे आत्मीयता और आपसी लगावकी भावनाएं दब गयी हैं। कुछ प्रबुद्ध उपन्यासकार इस विसंगतिसे उबरनेका हल गांवके सांस्कृतिक पुनिर्माण' में देखते हैं। अगले तीन अध्यायोंमें क्रमशः ग्रामीण परिवार, विवाह और जातिसे जुड़े मूल्योंके संक्रमणको पढ़ा गया है। बावजूद इसके कि श्रद्धा सम्मान आदि मूल्य संकटमें पड़ गये हैं, ग्रामीणोंके मनमें परिवारके प्रति आस्था बनी हुई है। 'मैला आंचल' आदि कृतियोंमें विवाहको लेकर युवा पीढ़ीके विचार प्रगतिशील हैं। एक ओर वह जातिबंधनोंको कमजोर कर रही है, दूसरी ओर उसमें 'प्रेमविवाह' की प्रवृत्ति बढ़ रही है। जातिगत मर्यादाओंके प्रति उपन्यासका रुख आक्रामक है, लेकिन ग्रामीण जीवन जातिवादकी गुंजलकमें बुरी तरह फंसा हुआ है। ये सभी निष्कर्ष शोधकर्ताके विस्तृत अध्ययन और विषयमें गहरी पैठके साक्षी हैं।

आठवें, नवें और दसवें अध्यायोंमें क्रमशः गांवके आर्थिक जीवन, राजनीतिक परिवेश और धार्मिक मानसिकताका अध्ययन हुआ है। इस अध्ययनका निचोड़ यह है कि प्रगतिके प्रयासोंके बावजूद 'गांव' का औसत आदमी ऋणग्रस्तता, बेकारी और कुपोषणका शिकार है। गांव की राजनीति जमीन और जातिपर आधारित है। धर्मकी पकड़ गांवोंपर आजभी मजबूत है। अगले पाँच अध्यायों में ग्रामीण शिक्षा, ग्रामीण मुसलमानकी स्थिति, गाँवपर नगरवादका दबाव और समस्याओंसे जूझते गांवके पुनर्निर्माणकी समस्याओंपर विचार किया गयाहै। उपन्यासकारों ने ग्रामीणोंमें शिक्षाकी आकांक्षा किन्तु साधनोंके अभावको जिस रूपमें प्रस्तुत किया है, तथ्य उसकी पुष्टि करते हैं। गांवमें स्त्री शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षाका प्रसार कम है। ग्रामीण मुसलमान गाँवके अविच्छिन्न अंग हैं, वहाँ साम्प्रदायिकताका जहर उतना कारगर नहीं हुआ है, जितना नगरोंमें। नगरसे आयातित फैशन, परिवार-नियोजन, बिलंब विवाह, चलचित्रकी ओर रुझान आदि ढेरों अच्छी-बुरी बातें गांवके जीवनको मथ रही हैं। 'गाँवका भविष्य' शीर्षक अध्यायमें रेखांकित किया गया है कि नगरोंके विकासके बावजूद गांवकी अस्मिता सुरक्षित है। 'उपसंहार' में निष्कर्षोंको समेटा गया है। अंतिम धारणा यह बनी है कि हिन्दी उपन्यास गांवके जीवनको विस्तारमें तो देखता है लेकिन वह 'पुर्नानर्माणका महाकाव्य' नहीं बन सका है।

कुल मिलाकर शोध-प्रबन्ध आश्वस्त करता है। उपन्यासोंसे प्राप्त तथ्योंके समानान्तर रखकर उनकी विश्वसनीयताको आंकनेमें डॉ. गुप्तने पर्याप्त श्रम किया है। उनकी शोध प्रविधिमें वैज्ञानिकता है। अच्छा होता कि डॉ. गुप्तने इस बातपर भी विचार किया होता कि किन मुद्दोंपर उपन्यासकारने 'आगामी कल' का चित्रण किया है। 'अलग-अलग वैतरणी' (१९६७) में एक हरिजन कन्याको कुलवधूका अधिकार दिलानेके लिए दलितोंका प्रयास तत्कालीन सच उतना नहीं है, जितना भविष्यका। ऐसे प्रकरणोंमें हिन्दी उपन्यासकार वस्तुस्थितिसे आगे बढ़नेकी गवाही देते हैं। आखिरमें डॉ. राजेश्वरप्रसादकी स्थापनासे सहमत हुआ जा सकता है कि यह ग्रंथ समाजशास्त्रके विद्यार्थीके साथ-साथ हिन्दी साहित्यके अध्येताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा।

☐ वेदप्रकाश अमिताभ

आगामी अंकमें

- भारतमें जातिवाद और हरिजन समस्या [लेखक : जगजीवन राम] ; आज देशमें हरिजन समस्या अपने उग्र रूप में उठ खड़ी हुई है। परिणामस्वरूप वैमनस्यका वातावरण बन गया है। निरन्तर विवाद, आक्रमण, पारस्परिक विरोध, आन्दोलन, हत्या, बलात्कार आदि इसी वैमस्यके विभिन्न रूप हैं। दुर्भाग्य यह है कि जिन अभिकरणों पर इस वातावरणमें सुधारका दायित्व है, वे ही इसे विषाक्त बना रहे हैं। ऐसी स्थितिमें इस ज्वलन्त समस्यापर यद्यपि लेखकने अनेक स्थलोंपर परस्पर-विरोधी विचार व्यक्त किये हैं, और भारतीय इतिहासके उन प्रसंगोंका आश्रय लिया है जिन्हें यूरोपीय इतिहास लेखकोंने भारतीय समाजको छिन्न-भिन्न करने तथा एक पिछड़ा समाज सिद्ध करनेके लिए प्रतिपादित किया है और जो स्वयमें विवावास्पद और अपुष्ट हैं, फिरभी ऐसी मान्यताएं और विचार प्रस्तुत किये गये हैं जिनमें समस्याके मूलको पकड़नेका प्रयास किया गया है। पुस्तककी समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री।**

- **सोजालोबो** [**रिपोर्ताज-संकलन, लेखक : डॉ. ललित शुक्ल**] ; प्रस्तुत कृतिका इस दृष्टिसे महत्त्व है कि इसमें लेखकका लक्ष्य श्रोता या पाठकको किसी भाव स्थितिमें जागृत करना है। भाषा और विषयकी प्रस्तुति मनको आकर्षित करती है। चित्रात्मकता इसका विशिष्ट गुण है। इन रिपोर्ताजोंमें एक साथ पाश्चात्य रंगीनियोंसे सरोबार गोवा, कला-धर्म तथा अध्यात्मसे भरपूर पुरी और कोणार्क तथा भारतीय गांवोंके जीवनकी झाँकियाँ मिलती हैं। यात्रापर आधारित होते हुएभी हैं ये ललित शैलीमें लिखे रिपोर्ताज़। परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं: **डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया।**

- **परम्पराका मूल्यांकन** [**निबन्धकार : डॉ. रामविलास शर्मा**] ; लेखककी मान्यता है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद के लिए जो महत्त्व इतिहासका है, वही आलोचनाके लिए साहित्यकी परम्पराका है। साहित्यकी परम्पराके ज्ञानसे ही प्रगतिशील आलोचनाका विकास होता है। इसी विवेचन और आधारसे हिन्दी जातिके सांस्कृतिक इतिहासकी रूपरेखा' और 'सन्त साहित्यके अध्ययनकी समस्याएं' निबन्ध प्रभावित हैं। यदि प्रेमचन्द सम्बन्धी तथा अन्य कुछ प्रकाशित निबन्धोंकी पुनरावृत्ति की गयी है तो 'हिन्दी शब्दानुशासन' (स्व. आचार्य किशोरीदास वाजपेयी) और 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' (डॉ. शिवप्रसाद सिंह) पर समीक्षात्मक निबन्धभी हैं। शेष निबन्धोंकी विषय-सामग्री हिन्दीके सन्त साहित्यसे लेकर छायावाद युगके जयशंकर प्रसाद तक गद्य-पद्य रचनाओंसे सम्बद्ध है। इन सभी निबन्धोंका सम्बन्ध हिन्दी प्रदेशमें रचित साहित्यसे है और उसीका मूल्यांकन इन निबन्धोंमें है। समीक्षक हैं : **डॉ. प्रेमकान्त टंडन।**

- **राज्याश्रय और साहित्य** [**लेखक : सूर्यप्रसाद दीक्षित**] ; सत्ता और साहित्यके पारस्परिक संबंधोंकी चर्चा प्रायः होती रहती है, कभी शासनके अनावश्यक हस्तक्षेपसे क्षुब्ध होकर, कभी स्वार्थप्रेरित प्रशस्तिके कारण। लेखकने प्रस्तुत कृतिमें साहित्यके आदि कालसे लेकर अबतक के, राज्याश्रयसे लेकर वर्तमान राजकीय संरक्षणतक का ऐतिहासिक एवं स्वरूपात्मक आकलन किया है। दृष्टि तथ्यपरक है और तथ्योंका उद्घाटन समाज-मनोवैज्ञानिक प्रणालीपर होनेसे मनोरंजक तो है, परन्तु सोचनेके लिए मजबूर करनेवाला भी। समीक्षिका हैं : **डॉ. सुषमा।**

पुनश्च : प्रस्तुत अंकमें **भारतीय भाषाएं** (**लेखक: डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया**)की समीक्षा कुछ विवशताओंके कारण प्रकाशित नहीं हो गयी। डॉ प्रशान्त द्वारा लिखित समीक्षा आगामी अंकमें प्रकाशित होगी।

सम्पादक प्रकाशक और मुद्रक विद्यासागर विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली ११०००७ से प्रकाशित।

चैत्र २०३९
मार्च १९८२

वर्ष : १४
अंक : ३

चैत्र : २०३९ (वि.)
मार्च : १९८२

सम्पादक :
वि. सा. विद्यालंकार

वार्षिक मूल्य : २५.०० रु.
प्रति अंक : २.५० रु.

विदेशोंमें (समुद्री डाकसे) ५१.०० रु.
आजीवन सदस्यता ३०१.०० रु.

प्रकर, ए-८/४२, राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०-००७
दूरभाष : ७१ ३७ ६३

इस अंकमें

विजयका प्रतीक नव विक्रम संवत् : २०३९

ख्रिस्तीय वर्षके समाप्त होते-होते मित्रों, स्नेही बन्धुओं और 'प्रकर' के पाठकों एवं प्रशंसकोंसे 'नव वर्ष' के सब प्रकारसे सुखदायी होनेकी शुभ एवं मंगल कामनाएं प्राप्त होनी शुरू हो गयीं। शुभ-मंगल कामनाएं और बधाइयाँ ठिठुरती कायामें उल्लासका ताप नहीं फूंक सकीं; भीतर-बाहर सभी तो परम शीतावस्थामें जड़, निश्चेष्ट, गति-क्रिया-रहित हैं; इस हिमीभूत तन-मनमें उल्लास जागृत करनेका प्रयत्न किया, हिमनिद्रामें लीन प्रकृतिकी सुपुप्त उद्दीपक वृत्तिको भी उल्लासकी प्रेरणा देनेमें असमर्थ पाया। पाया कि किसी अदृष्ट चेतनासे प्रेरित ये मंगल-शुभ कामनाएं अन्तर्मनको असमयही किसी बौद्धिक तापसे भर गयी हैं,जबकि इन्हें अस्वीकारभी तो नहीं किया जा सकता। इन्हेंभी प्रशीतन-कक्षमें भेज प्रकृतिके हिम-शय्या त्यागकर जीवन-स्पंदनके संकेत मिलनेकी प्रतीक्षा करना श्रेयस्कर प्रतीत हुआ जबकि वह उल्लसित और प्रफुल्लित होकर आपके हमारे घर-आँगनमें हरीतिमा और पुष्पहासके साथ नृत्य करने लगेगी और अपने तरल सौरभसे कण-कणको भीतर-बाहरसे सिंचित कर देगी। तन-मनके उस सिंचनका, उल्लास-नृत्यका समय आ गया है, इसलिए चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके साथ प्रारम्भ होनेवाले नव विक्रम संवत्के उपलक्ष्यमें 'प्रकर' की भी मंगल-शुभ-कामनाएं स्वीकार करें, प्रकृतिके उल्लास और आनन्दोत्सवमें सम्मिलत होकर अपने बाह्यान्तरके साथ उत्फुल्लता प्रफुल्लता प्राप्त करें।

हमारी आन्तरिक चेतनाका विकास प्रकृतिकी गोदमें हुआ है, इसी विकाससे हमारे संस्कारोंके आधारका निर्माण हुआ है और विभिन्न उत्सवोंके आयोजनोंकी हमें प्रेरणा मिली है। इन प्रकृति-परक उत्सवोंका प्रारम्भ वसन्तोत्सवसे होता है। परन्तु अब हमने जिस आधुनिक चेतनाको ओढ़ा है, उसमें प्राकृतिक उल्लासका स्थान नियोजित और प्रेरित समारोहोंने ले लिया है, क्योंकि आधुनिक युग-चेतना तो प्रकृतिपर विजयके अभियानके लिए सन्नद्ध है। इसी युगीन चेतनाकी आदेशात्मक मांग है कि उसे अपने अन्तर्तमुमें प्रवेश करने दो। पर युग-युगसे निर्मित जो चेतना पहलेसे भीतर बैठी है, भलेही संस्कार-जड़ित हो, आतंकित होकर विद्रोह करने लगती है। इसी द्वन्द्वमें पुरानी ऐतिहासिक अनुभूतियाँ जागृत होने लगती हैं। चेतनाओंके इस द्वन्द्वका सामना कुषाण या शकवंशीय राजाओंके आक्रमणके समयभी करना पड़ा था, जब शकोंने देशको खण्डितकर एक भागपर अपनी विजयके उपलक्ष्यमें शक-संवत्का समारम्भ किया था, हमारे पराजित तन-मनने हमारी चेतनाको भी अभिभूत कर लिया और सिर झुकाकर इस शक-संवत्को स्वीकार कर लिया, यह उस आक्रामक नवचेतनाकी विजयका इस देशकी अस्मितापर प्रबल प्रहार था। इस प्रकारके प्रहार बार-बार हुए, बार-बार हमारी अस्मिताको कुचला गया, भिन्न-भिन्न नयी-नयी चेतनाएं अपने रौद्र रूपमें आयीं और दाय रूपमें एक नया सन्-संवत् प्रदान कर गयीं। मुस्लिम-विजयका हिजरी सन्,अंग्रेज-विजयका ख्रिस्ती सन् दाय रूपमें पराजित हमारे मनने स्वीकार कर लिया। इसके साथ आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म स्थापनाके विभिन्न प्रयत्नोंकी स्मृति धूमिल पड़ती गयी। स्मृतिके इन अवशेषों को धो-पोंछकर समाप्त करनेके लिए 'अन्तर्राष्ट्रीयता' का विमोह प्रभावकर सिद्ध हुआ है। अब यह विस्मृत अतीत हो गया है कि कभी इस देशके किसी ध्वजधारी शूरसेन द्वारा आक्रमणकारी शकोंकी पताकाओंको रौंदनेके उपलक्ष्यमें, देशमें विजयोल्लासके कारण किसी संवत्का प्रवर्त्तन हुआ था। अन्तर्राष्ट्रीयताके व्यामोहसे उत्पन्न नव-युगीन चेतनामें यह आग्रह असामयिक हो गया है।

परन्तु इतिहासकी प्रकृति इतनी दुर्धर्ष है कि युगीन चेतना, अन्तर्राष्ट्रीयता, मार्क्सवादी व्याख्याएं सभीकी अवहेलना करती है। यही वह ऐतिहासिक परम्परा है जो अवशिष्ट स्मृतियोंको कुरेद-कुरेद ऊपर ले आती है और सुप्त अस्मिताको जागृत कर सिर ऊपर उठानेको विवश करती है। इतिहास जैसे उंगली उठाकर देखनेको विवश करता है कि भलेही ख्रिस्ताब्दने ग्रीक ऑलम्पिया अब्द (ईसू ख्रीस्तके जन्मसे ७७६ वर्ष पूर्व प्रचलित) और रोम शहरकी प्रतिष्ठा (ई. पू. ७५३) की स्मृतिमें प्रवर्तित

अब्दोंको निगल लिया हो, परन्तु इस राष्ट्रका तिथियोंके व्यवहारसे परिचित आजभी वर्ष-प्रति-वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको वर्षारम्भ माननेवाला सामान्य व्यक्ति विक्रम-संवत् प्रारम्भ होनेके दिन त्यौहार मनाता है। लोकगीत-कार 'राजा विकरम' के शौर्य-न्यायकी गाथा सुनाता है। लोक-मानसकी चेतनाको जगाकर सहज भावसे फिरसे अतीतसे जोड़ देता है। तब प्रतीत होता है कि बुद्धिजीवी वर्ग युगीन चेतनाके मोहमें इस देशकी धरतीसे लोकमानस से कहीं दूर जा खड़ा हुआ है, उसकी नव्यताका मद उसे अपने पग स्थिर नहीं करने दे रहा।

यहभी सत्य है कि आधुनिक इतिहास श्रुति-परम्परा से हमारे परिचित मालवराज विक्रमादित्यको विक्रम संवत् के प्रतिष्ठाताके रूपमें मान्यता नहीं देता, वह इस विक्रमादित्यके अस्तित्वके बारेमें संदिग्ध है। इतिहासका प्रस्ताव है कि विक्रम संवत्की अब्द गणना किसी राजाने प्रतिष्ठित नहीं की थी, बल्कि मालवजातिके गणतन्त्रकी नयी स्थापनाकी स्मृतिमें मालव-गण द्वारा प्रतिष्ठित हुई थी, इसलिए इसका एक प्राचीन नाम था 'मालवगण-स्थिति', इस 'मालवगण-स्थिति' का एक अन्य नाम 'कृत' भी प्राचीन लेखोंमें मिलता है। 'कृत' की व्याख्यामें इतिहासकार बताते हैं कि नये 'सत्य-युग' की कल्पनामें इसे 'कृत' कहा गया। इसी मालव जातिने ईसू खीस्तके पूर्व चौथी शती में यवन या ग्रीक सम्राट् अलेक्सन्दरको आगे बढ़नेसे रोक दिया था। इसकी शौर्य-गाथाएं, देशभक्ति और स्वाधीनताप्रियताके उदाहरण यवन लेखोंके ग्रन्थोंमें मिलते हैं। अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए यवन, शक, पार्थव आदि विदेशी जातियोंकी सेनाओंसे अपनेको बचानेके लिए वर्तमान पाकिस्तान, पंजाब, राजस्थान और मध्यप्रदेशके क्षेत्रोंमें फैल गये। खीस्त पूर्व ५८ में आन्ध्र राज गोमती-पुत्रने प्रबल शत्रु पार्थव राजा नहपाणको युद्धमें पराजित कर दिया। यह विजय मालवोंके लिए जीवन-दायिनी थी, मालव जातिके विक्रम या पराक्रमकी भी साक्ष्य थी, इसलिए इसका नाम 'विक्रम' संवत् रखा गया।

आधुनिक इतिहासकी शोधोंका जो परिणाम हो (अभी शोधकी दिशामें इसने कदमही रखा है) पर यह निर्विवाद है कि यह अब्द दो हजार वर्षमें भारतीय इतिहासको प्रकाशमान करता आया है। किसीभी देशकी जनता इतिहासकी तिथियों-तारीखोंसे नहीं जुड़ती, राजाओंकी परम्पराअसे नहीं बंधती। परन्तु इतिहासके कुछ ऐसे सुखद क्षण होते हैं जो उसके अन्तस्तलमें जमकर बैठ जाते हैं। 'भारतीय जनगणोंने अपने राजादर्शसे उज्जयिनी पति नवरत्न-सभाधीश महाराज विक्रमादित्यके व्यक्तित्वको मूर्त्तिमान कर दिया है। यह भारतीय जनके चित्तमें अब तक विराजमान है।' (डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या)। 'विक्रम-संवत्के राजा विक्रम' ने भारतीय जनसमाजके समक्ष जिस प्रजारंजक, गुणी-जन-पोषक, न्यायधर्मी, शूर-वीर, देशरक्षक राजाका, राजधर्मका आदर्श उपस्थित किया है, वैसा उच्च आदर्श राजा श्रीरामचन्द्रको छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलता। यह नाम और इस नामका अब्द प्राचीन भारतीय संस्कृतिका एक सम्पुट बनकर हमारे सामने विद्यमान है। इस अब्दका अस्तित्व हमारे राष्ट्रीय जीवनको शक्ति प्रदान करनेवाला है और आत्मिक दैन्यसे हमारी रक्षा करता है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि आधुनिक युगीन चेतना कालचक्रका अन्तिम लक्ष्य नहीं है। बल्कि यह अपनी सम्पूर्ण वैदेशिक सामर्थ्य और शक्तिका आश्रय लेकरभी कालचक्रकी अबाध और क्रूर गतिके नीचे चूर-चूर हो जायेगी। इसका स्थान लेनेके लिए जो नयी चेतना अथवा अति मानसिक शक्तियां उद्भूत हो रही हैं, उन्हें अभी हम पहचाननेसे इनकारकर रहे हैं, परन्तु यह अवतरित होती नूतन चेतना अभिज्ञानकी इस अस्वीकृति से रुकनेवाली नहीं है। इसकी शक्तिके बारेमें भी हम कोई अनुमान लगानेकी स्थितिमें नहीं है, वह हमें ज्योतिर्मय भविष्यकी ओर ले जायेगी अथवा किसी तमोमय भवितव्यका प्रतीक बनकर आयेगी, यहभी नहीं जानते। वह अतीत और वर्तमानकी रौंदती हुई अपने प्रबल प्रवाह में अपने साथ ले जायेगी। पीढ़ियोंसे जिस भारतीय मनीषाका हमने अर्जन किया है, वह स्पंदित होकर अवश्य संकेत कर रही है कि वर्तमान पराभूत चेतनाका स्थान एक गतिशील, समृद्ध और उच्च चेतना लेनेवाली है और कालचक्रकी निरन्तर गति उसे हमारे निकट ला रही है। आत्मिक दैन्यकी वर्तमान स्थिति प्रबुद्ध जीवन-शक्तिमें परिवर्तित होनेवाली है।

इस भावना और कामनाके साथ हम अतीतके इतिहासकी ओर उन्मुख विक्रम संवत्को स्नेहभरी बिदाई देते हैं क्योंकि हम इसके प्रत्येक क्षणसे बंधे रहे हैं, इसीमें आशा-निराशाके पल व्यतीत किये हैं, सुख-दुःख भोगा है इससे पूर्ण तादात्म्य अनुभव किया है और इसी आशान्वित भावना और कामनाके साथ नव विक्रम संवत्का स्वागत करते हैं, यह शुभ हो, मंगलमय हो और भारतीय अस्मिता को जागृतकर नव चेतनाके अभिज्ञानकी सामर्थ्य प्रदान करे।

भारतमें जातिवाद और हरिजन समस्या[1]

लेखक : बाबू जगजीवनराम **समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री**

अपने देशमें हरिजन और गैर-हरिजनके बीच वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा है उनके बीच कहीं-न-कहीं लगातार होनेवाले छोटे-बड़े विवाद, आक्रमण, एक दूसरे के विरोधमें आन्दोलन, हत्या, बलात्कार आदिकी घटनाओंसे बढ़ते वैमनस्यका ही संकेत मिलता है । दुर्भाग्य यह है कि जिन सामाजिक अभिकरणोंपर इस वातावरणको ठीक करनेका उत्तरदायित्व है, वे इसे ठीक करनेके बजाय और विषाक्त बना रहे हैं । ऐसे माहौलमें इस ज्वलन्त समस्यापर महात्मा गाँधीके अनुयायी, उनके सहयोगी, वरिष्ठ सांसद, केन्द्र सरकारमें हरिजनोंका दीर्घ कालतक प्रतिनिधित्व करनेवाले नेताकी पुस्तकसे यह आशा जगती है कि इसमें संकीर्ण राजनीतिसे ऊपर उठकर राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार किया गया होगा, पर यह आशा पूरी नहीं होती । कचहरीमें वकील अपना पक्ष प्रस्तुत करनेके लिए जिस प्रकारके तथ्यों और तर्कोंका प्रयोग करता है कुछ वैसीही अनुभूति अनेक स्थलोंपर होने लगती है ।

पुस्तक नौ अध्यायोंमें विभक्त है । पहले अध्यायमें लेखकने वर्तमान हरिजन समस्याका 'उद्भव' खोजनेका प्रयास किया है । इसमें आर्योंके आगमन (पृ. ९) से शुरू करके आधुनिक लोकतंत्र (पृ. २०) तक का इतिहास है । लेखककी इतिहास सम्बन्धी यह जानकारी उन पुस्तकों तक सीमित है जो अंग्रेज़ी इतिहासकारोंने भारतीय समाज को कमजोर बनाने और अपने साम्राज्यको मजबूत बनाने की दृष्टिसे लिखी थीं । समीक्ष्य ग्रन्थका प्रारम्भ इन शब्दोंसे होता है, 'वर्ण व्यवस्था—और उसके परिणाम-स्वरूप छूतछातकी प्रथा, भारतकी एक अनूठी सामाजिक वास्तविकता है जिसकी जटिलता आसानीसे समझमें नहीं आती ।' (पृ. ९) शायद इसीलिए लेखक द्वारा प्रस्तुत विवरण जिज्ञासा शान्त करनेके बजाय अनेक प्रश्न उठाता है ।

लेखक मानता है कि जब आर्य बाहरसे आये तो उनका समाज त्रिवर्ण था—पुरोहित, योद्धा और कारीगर (पृ. ९) । उस समाजमें वे कार्य कौन करता था जो 'सबसे घटिया माने जाते थे' (पृ. १०) इसका कोई उत्तर नहीं मिलता । 'आर्य लोग लड़ाकू थे···सिन्धु घाटीके अनार्य अत्यन्त सभ्य और शान्तिप्रिय लोग थे (एक अन्य स्थानपर लेखकने इन्हें 'लड़ाकू नस्ल' का बताया है (पृ. ७४)···आर्योंने इन निरीह भारतीयोंपर आक्रमण किया' (पृ. ९३-९४) और 'पराजित आदिम जातियोंके लोगोंके

जातिवाद और हरिजन समस्या देशकी ज्वलन्त समस्याओंमें से हैं इससे सामाजिक और राजनीतिक सकट पैदा हो गया है । इसके वैज्ञानिक चिन्तन और विश्लेषण और मूलभूत कारणोंका साहसके साथ उन्मूलन करनेकी आवश्यकता है । देशकी स्थितिमें आमूल परिवर्तनके लिए १९वीं शतीके मध्यमें क्रान्तदर्शी स्वामी दयानन्द तथा अन्य सामाजिक सुधारकोंने जो प्रयत्न किये, वे अपने उद्देश्यमें राजनीतिक अवरोधोंके कारण पूरी तरह सफल नहीं हो पाये । फिरभी जिस चेतनाका जन्म हुआ, उसका पूरा लाभभी सामाजिक और राजनीतिक नेताओंने नहीं उठाया । इन असफलताओंने जिस आक्रोशका वातावरण उत्पन्न किया है, लेखकभी उसी प्रवाहमें बह गया है जबकि लेखकके राजनीतिक और सामाजिक अनुभवको ध्यानमें रखते हुए उससे अधिक प्रौढ़ चिन्तन, विश्लेषण और समाधानकी अपेक्षा थी । समस्याके इस नये पहलूकी ओर ध्यान खींचनेके लिए पुस्तक और उसकी समीक्षाको प्राथमिकता दी जा रही है ।

---

१. **भारतमें जातिवाद और हरिजन समस्या;** लेखक : बाबू जगजीवनराम; प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६ । पृष्ठ : १०४; डिमाई ८१; मूल्य : २०.०० रु. ।

सभी अधिकारोंसे वंचित' करके सबसे घटिया काम उन्हें सौंप दिये। ये ही लोग 'आजके अछूतोंके पूर्वज थे'· 'वे हिन्दू जातिमे सम्बद्ध तो थे, परन्तु उसका अंग नहीं थे' (पृ. १०)। प्रश्न यह उठता है कि जिनपर आक्रमण किया गया जिन्हें पराजित किया गया, जिन्हें अधिकारोंसे वंचित किया गया, जिन्हें सबसे घटिया काम सौंपे गये, जिन्हें आक्रान्ताओंने अपनी जातिका अंग भी नहीं बनाया उन्होंने आक्रान्ताओंका धर्म क्यों स्वीकार कर लिया? क्या इसके लिए तलवारका प्रयोग किया गया? वे हिन्दू जातिका अंग कैसे बने? कब बने? इनका कोई उत्तर नहीं मिलता। लेखक मानता है कि 'आर्योंको अपने गोरे रंगपर अभिमान था और वे सांस्कृतिक दृष्टिसे अपनेको ऊँचा समझते थे। ये अपनी नस्लको शुद्ध बनाये रखना चाहते थे' (पृ. १०)। प्रश्न उठता है कि फिर त्रिवर्ण समाज चतुर्वर्ण क्यों बना? पिछलेही पृष्ठपर लेखकने लिखा है कि 'जब आर्य लोग भारत आये तो वे जातिमें ही विवाह करनेकी स्थितिसे आगे बढ़ चुके थे' (पृ. ६)। नस्लकी शुद्धता क्या जातिके बाहर विवाह करके बनायी जाती है? लेखकने आगे लिखा है 'हिन्दुओंके विश्वासों और उनके विशेष सामाजिक संगठनके कारण अधिकतर विदेशी आक्रमणकारियोंको हिन्दुओंकी वर्ण व्यवस्थामें आत्मसात् करनेमें सहायता मिली' (पृ. ११)। 'हिन्दू धर्म में अन्य धर्मावलम्बियोंको हिन्दू बनानेकी प्रथा नहीं है' (पृ. १२)। मनमें शंका उठती है कि जब अन्य धर्मावलम्बियोंको हिन्दू बनानेकी प्रथा नहीं थी तो विदेशी आक्रमणकारियोंको हिन्दुओंकी वर्ण-व्यवस्थामें आत्मसात् कैसे किया गया? इस प्रकारके तमाम प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाते हैं।

दूसरे अध्याय 'सामाजिक संघर्ष और सांस्कृतिक संकट' में सांस्कृतिक संकटको लेखकने 'समाजवादी समाज' की स्थापनाके सन्दर्भमें देखा है। 'हमारा देश आज एक सांस्कृतिक संकटमें से गुजर रहा है। इसके अतिरिक्त जातपात और छुआछूतकी समस्याएं भी हैं।' (पृ. २१) यानी जातपात और छुआछूतकी समस्या सांस्कृतिक संकट का अंग नहीं है। लेखकको यद्यपि 'सामाजिक संकीर्णता किसीभी वेदमें दृष्टिगोचर नहीं होती' (पृ. २३), किसी पुराणमें भी दिखायी नहीं देती। (देखें पृ. ६५-६६), तथापि उसे उस युगके सामाजिक जीवनमें इन उदात्त लक्ष्योंका सर्वथा अभाव' (पृ. २४) मिला है अभाव ही नहीं, वह तो यह कहता है 'इन उदात्त विचारों और विश्वासोंने हमारे समाजके सगठन, उसकी व्यवस्थाओं, उसके व्यवहारों और प्रथाओंमें कोई योगदान नहीं दिया। ···समाजके दो रूप थे—एक व्यावहारिक और एक सैद्धान्तिक, और इन दोनोंमें कोईभी सामंजस्य या मेल नहीं था।' पृ. (२४-२५) कथनी और करनीका जो अन्तर आज नेताओंके, अधिकारियोंके, या जनताके आचरणमें मिलता है, वह लेखकके अनुसार, हमें विरासतमें मिला है।

लेखककी यह स्थापनाभी ध्यान देने योग्य है कि 'हिन्दू श्रुतिकारोंने जब विवाह तथा उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमोंका विधान किया तो उन्होंने धर्मका कोईभी ध्यान नहीं रखा।'

'महात्मा गांधी और सामाजिक परिवर्तन' शीर्षक तीसरे अध्यायमें लेखकने लिखा है 'परम्परागत हिन्दू धर्म पृथकता और अनन्यतापर आधारित है। उसमें विघटन के और विभाजनके बीज छिपे हुए हैं और उसके लिए यह आवश्यक है कि मानवमें समाजके प्रति कृतज्ञताकी भावना हो और साथही वह समताके सिद्धान्तके प्रति कटिबद्ध हो।' (पृ. २६) यह विचारणीय है कि क्या समाजके प्रति कृतज्ञताकी भावना और समताके सिद्धांतके प्रति 'कटिबद्धता' विघटनका कारण बनती है? यदि हाँ, तो जनतन्त्रमें इन 'अवगुणों' के विकासका प्रयास क्यों किया जा रहा है? यदि नहीं, तो लेखकने ये परस्पर विरोधी बातें क्यों लिखी हैं?

इस अध्यायका काफी अंश तो वस्तुतः सांस्कृतिक संकटवाले अध्यायका ही भाग है। शेष अंशमें गांधीजी के इस समस्यासे संबंधित विचार ऐतिहासिक क्रममें दिये हुए हैं। प्रारम्भमें गांधीजीने छुआछूतका विरोध करते हुए भी चतुर्वर्ण व्यवस्थाका समर्थन किया था, इसे मनुष्यकृत नहीं प्रकृतिका अटल नियम माना था बिलकुल वैसे ही जैसे न्यूटनका गुरुत्व कर्षणका नियम (पृ. ३६)। पर बादमें उनका विचार यह बना कि जातिको समाप्त करना ही होगा। इसके लिए उन्होंने यह चाहा कि सवर्ण लड़कियां हरिजनोंसे विवाह करें, न कि हरिजन लड़कियां सवर्णोंसे विवाह करें। इनमेंसे किसीभी तरहके विवाह समाजमें कितने हो रहे हैं, अपनी इस जिज्ञासाका समाधान आप चाहें तो अपने अनुभवसे करें; लेखकपर विश्वास करना चाहें तो उसका कहना है कि गाँधीजीने जिस आन्दोलनका सूत्रपात किया था उससे सार्थक समाज सुधार हुआ।' (पृ. ४२)

अध्याय चारमें लेखकने 'अनुसूचित जातिका समस्या' को न मात्र आर्थिक समस्या माना है, न मात्र सामाजिक, बल्कि सामाजिक-आर्थिक समस्या माना है; और यह बिल्कुल ठीकभी है। पर इसे विडम्बनाही कहेंगे कि आरक्षण और विशेष सुविधाओंकी व्यवस्था वह सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपनके आधारपर नहीं, जातिके आधारपर चाहता है। जातिप्रथाके दोष गिनाते-गिनातेभी जब आरक्षण और विशेष सुविधाओंकी मांग जातिके आधारपर की जाती है तो 'शादीकी प्रथाके झंझटोंसे मुक्ति पानेका सर्वोत्तम मार्ग शादी कर लेना है' वाली स्थिति सामने आ जाती है।

अध्याय पांचमें लेखकने 'वर्गहीन समाजका सपना' देखा है। वर्गहीन यानी जातिवाद और छुआछूत रहित समाज। लेखकने बताया है कि इसके लिए 'कौन-से कार्य करने आवश्यक हैं। छुआछूत जातिके सन्दर्भमें हीहै। यदि जातिका उन्मूलन कर दिया जाता हैं तो छुआछूत अपने आप समाप्त हो जायेगी।' (पृ. ५६) यह काम 'पुनर्जागरण और सुधारकी प्रक्रियाको जो बीचमें अवरुद्ध हो गयी थी', पूरा करके, तथा 'अर्थ व्यवस्थाका पुनर्गठन' करके किया जा सकता है। लेखकने इसकी कोई व्याख्या नहीं दी है. सपना जो ठहरा। इसलिए इस सरलीकृत समीकरणको पढ़कर एक चुटकुला याद आ गया। 'खटमलोंसे छुटकारा पाइये' विज्ञापन पढ़कर एक सज्जनने वी. पी. मंगवा ली। पारसल खोला तो एक छोटी चिमटी, छोटी हथौड़ी और लोहेका टुकड़ा निकला। निर्देश पत्रपर लिखा था—चिमटीसे खटमल पकड़िये, टुकड़ेपर रखिये और हथौड़ीसे मार दीजिये। खटमलोंसे छुटकारा पाइये।'

लेखकने सुझाव दिया है कि 'जब पिछड़ी जातियां परित्राण और आरक्षणकी माँग करती हैं तो केवल इस आधारपर हिन्दुओंको यह नहीं सोच लेना चाहिये कि इससे राष्ट्रीय एकता खतरेमें पड़ जायेगी (शब्दोंपर ध्यान दीजिये। राष्ट्रीय एकताको खतरा लेखक स्वीकार कर रहा है – समीक्षक) बल्कि उन्हें कृपालु संरक्षकोंकी भूमिका निभानी चाहिये जिनका कर्त्तव्य अपने आश्रितोंके लिए विकासकी सुविधाएं प्रदान करना है।' (पृ. ५८-५६)। लेखक संरक्षण केवल अनुसूचित जाति और जनजातिके लिए चाहता है, समस्त पिछड़ी जातियोंके लिए नहीं (पृ. १६-१७), हालांकि शब्द उसने पिछड़ी जाति' ही लिखा है। फिर यह संरक्षण वह अपनी शर्तोंपर चाहता है। यदि संरक्षक अपने आश्रितोंको यह समझाने लगे कि 'मांस मदिरा त्यागो। शुद्ध जीवन व्यतीत करो' तो लेखकको क्रोध आता है, (पृ. ४१)। यदि संरक्षक सामाजिक-आर्थिक दृष्टिसे पिछड़ेपनके आधारपर सुधार और सहायता कार्योंका संचालन करनेकी बात कहें तो लेखककी दृष्टिमें ये संरक्षक या तो अज्ञानी हैं, या धोखेबाज; (पृ. १७) हमारे इन नेताओंने लोकतन्त्रके नामपर जिस शासन पद्धतिका विकास किया है उसे देखते हुए लेखकके इस निष्कर्षपर कि मुस्करानेको मन करता है कि 'यदि राज्य की विनियमनकारी शक्तियोंका प्रयोग लोकतन्त्र विरोधी, मानवता विरोधी और हानिकारक व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिए किया जाता है तो उन्हींके प्रयोगसे एक ऐसी व्यवस्थाका निर्माणभी किया जा सकता है जिसमें सामाजिक आर्थिक या किसी अन्य आधारपर मानव और मानव के बीच कोई दीवार नहीं रहेगी' (पृ ५६)।

छठे अध्याय 'अन्यायके शिकार' में आंकड़ोंके सहारे अबतक किये गये कार्यका लेखा-जोखाभी प्रस्तुत किया गया है और करणीय कार्यभी बताये गये हैं। चूंकि अनुसूचित जातियों और जनजातियोंमें गतिशीलता बहुत कम है (७५ प्रतिशत अपनेही जिलोंमें रोजगार खोजते हैं। अधिकतर आजभी परम्परागत व्यवसायोंमें लगे हैं) अतः लेखकका सुझाव है कि प्रशिक्षार्थियोंको औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओंमें बुलानेके स्थानपर प्रशिक्षण देनेवाले

ब्रिटिश विद्वानोंने अपनी ईसाई पृष्ठभूमिसे प्रभावित होकर मोएं-जो-दडो, हड़प्पा तथा अन्य स्थानोंकी खुदाई के बाद सिन्धु घाटीकी जिस कल्पित अनार्य सभ्यताको वास्तविकताके नामसे प्रचारित किया और आर्यों द्वारा संहार और अनाचारकी कहानियां गढ़ी, वहां उपलब्ध आलेखोंके अबतक पढ़े न जा सकनेपर भी इसी परम्परा के भारतीय विद्वान्भी इन कहानियोंको प्रचारित कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तकके लेखकने इन्हीं कहानियोंका आश्रय लेकर आर्य-अनार्य विभाजन स्वीकारकर हरिजनोंका संबंध अनार्य वर्गसे जोड़ा है। इस कल्पना द्वारा जातिवाद और हरिजन-समस्याको अधिक जटिल बनाकर उसे प्रागैतिहासिक शोषणका रूप देना है जबकि उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणोंके अनुसार जातिवादकी कट्टरता और हरिजन समस्याकी भीषणताका संबंध मुस्लिम कालसे है। लेखककी आक्रोश और सम्मोहपूर्ण भाव-स्थिति समस्याके समाधानमें बाधक सिद्ध हो सकती है।

विशेषज्ञ उनके घर जाकर उन्हें प्रशिक्षण दें (पृ. ६६); इन प्रशिक्षार्थियोंकी न्यूनतम शैक्षणिक योग्यतापर बल देना निरर्थक है (पृ. ६७); और प्रशिक्षण प्राप्त करनेके बाद इन्हें बिना प्रयत्न किये रोजगार मिलना चाहिये, आजकल बहुत समय बाद मिलता है। लेखककी यहभी शिकायत है कि सरकारी नौकरियोंमें इन जातियोंके लिए जो स्थान सुरक्षित किये गये हैं, 'उनका कुल प्रतिशत आजभी उनकी जनसंख्याके अनुपातमें बहुत कम है।' (पृ. ६७)।

एक नयी बात इस पुस्तकसे पता चली। अनुसूचित जातियों और जन-जातियोंके जो लड़के भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवाकी परीक्षाओंमें बैठे और जिन्होंने यह बात प्रमाणित कर दी कि यदि उन्हें अवसर मिले तो वे अन्य परीक्षार्थियोंकी अपे ा घटिया नहीं हैं उन्हें 'मजदूरोंके रूपमें या चपरासियोंके पदोंपर नियुक्त किया' जाता है 'यद्यपि वे इन पदोंके अधिकारी होते हैं।' (पृ. ६७-६८) अन्यायकी हद हो गयी है! लानत है इस व्यवस्थापर! पर नहीं, क्षमा कीजिये। मुझसे भूल हो रही है। लड़के परीक्षामें बैठे' थे, 'पास हुए' ऐसा तो नहीं कहा लेखकने। लो आई. ए. एस.आदि परीक्षाओं में बैठनेसे ही किसीको बढ़िया नौकरी पानेका अधिकार नहीं मिल जाता! और, लेखकने 'इन' (यद्यपि वे इन पदोंके अधिकारी) कहा है, उन' नहीं। 'इन' सर्वनामका प्रयोग निकटस्थ सज्ञाओंके लिए होगा, दूरस्थके लिए नहीं; और निकटस्थ संज्ञाएं हैं मजदूर और चपरासी। फिर तो सारी बात स्पष्ट है। मतिभ्रम‍ लिए क्षमाप्रार्थी हूं।

'आरक्षण' शीर्षक सातवें अध्यायमें आरक्षणके इतिहासकी चर्चा है, उसके कारण उत्पन्न हुए असन्तोषकी भी चर्चा है, पर आरक्षणके औचित्यको सिद्ध करनेका प्रयास बहुत कम है।

आठवें अध्यायमें इस बिन्दुपर विचार किया है कि 'समस्याका हल क्या धर्म-परिवर्तन है?' लेखकका मानना है कि यद्यपि हरिजनोंने सवर्ण हिन्दुओंके हाथों बड़े अत्याचार सहे है। मैं समझता हूं कि हिन्दू धर्मका परित्याग करके ये अपनी समस्याओंको हल नहीं कर सकते।' (पृ. ८७) कारण वह पहलेही बता चुका है। 'कोई हिन्दू अपने धर्मका त्याग कर सकता है, अपनी प्रत्येक वस्तुको तिलांजलि दे सकता है, परन्तु वह अपनी जातिसे छुटकारा नहीं पा सकता। वह जहां जाता है उसकी जाति प्रेतात्मा के समान उसका पीछा करती है।' (पृ. ८४)। हिन्दू समाजकी जातिप्रथाकी बुराइयां मुसलमान, ईसाई, सिख सभीमें जा घुसी हैं। जिन धर्मोंमें छुआछूत धर्मका अभिन्न अंग नहीं है वे भी जातिभेदके दोषसे कलुषित हो चुके हैं।' (पृ. ४८), तो फिर धर्म-परिवर्तन समस्याका समाधान हो ही कैसे सकता है!

अन्तिम अध्यायमें विषयका उपसंहार करते हुए लेखकने इस बातपर अपना असंतोष व्यक्त किया है कि चमड़ेका काम, मत्स्य पालन, हथकरघे आदि उन उद्योगों में, जो परम्परागत रूपसे इन जातियोंके व्यवसाय रहे हैं आज अनेक सवर्ण हिन्दू सहकारिताके आधारपर प्रवेश कर रहे हैं, जबकि 'इन (सवर्ण) लोगोंको कृषि, नौकरी और व्यापार आदि जैसे जीवन-यापनके माध्यम उपलब्ध हैं।' (पृ. १०३)

पुस्तकमें यत्र-तत्र ऐसी बातें भी कही गयी हैं जिनमें समस्याके मूलको पकड़नेका प्रयास किया गया है। "आज हमारे देशमें सभी बच्चोंको शिक्षाके समान अवसर प्राप्त नहीं हैं। किसी बच्चेके परिवारकी आर्थिक स्थिति इस बातका निर्णय करती है कि उसे किस प्रकारकी शिक्षा प्राप्त होगी।" (पृ. ८४-८५)। पब्लिक स्कूलमें या चुनींदे स्कूलमें। घरपर बिजली, पंखा, कूलर, ट्यूटर मिलेंगे या किताबेंभी नहीं मिलेंगी, ढिबरीकी रोशनीमें आंखें फोड़नी होंगी। 'इन सब बातोंके बावजूद इन बच्चोंसे यह आशा की जाती है कि वे अन्य बच्चोंसे प्रतिस्पर्धा करें। क्या इस प्रकारकी प्रतियोगिता न्यायपूर्ण होगी? सभी बच्चोंके लिए शिक्षाकी समान सुविधाएँ उपलब्ध हों तभी न्यायपूर्ण प्रतियोगिता हो सकती है।' (पृ. ८[illegible]

"भारतके प्रत्येक राजनीतिक दलने अपने लाभके लिए हरिजनोंको आकृष्ट करनेकी चेष्टा की है। देखना यह है कि राजनीतिक नेताओंने अपने व्यक्तिगत जीवनमें हरिजनोंके लिए क्या कुछ किया है। क्या उन्होंने अपने बेटे-बेटियोंके विवाह दूसरी जातियोंमें किये है या नहीं? अन्तर्जातीय विवाहको ऊँची जातिके लोगभी (मैं इसके स्थानपर 'ही' कहना चाहूंगा—समीक्षक) प्रोत्साहन दे सकते हैं।" (पृ. १२)

लेखकका यह सोचना बिलकुल ठीक है कि 'यदि हमारी जीवन शैलीमें थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया जाय तो यह (मैला ढोनेका) व्यवसाय समूचे समाजके लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। उसी प्रकार मृतक पशुओंको उठाकर ले जाना या उनकी खाल उतारना ऐसे ढंगसे किया जा सकता है जिससे उसकी बदबू और गंदगीसे बचा जा

सके।' (पृ. ६०)

लेखकने जो बात सन् १९३७ में कही थी, वह आज के संदर्भमें उतनीही संगत है, 'इस आंदोलनकी प्रेरणा मुख्य रूपसे राजनीतिक है और इसका दृष्टिकोणभी राजनीतिक ही है। यदि यह आन्दोलन समाजकी व्यवस्थामें क्रान्तिकारी परिवर्तन लानेका आन्दोलन नहीं बन पायेगा तो हरिजनोंकी प्रेरणा अधिक समयतक जीवित नहीं रहेगी।' (पृ. ४३)

पिछले ३४ सालोंमें हमारी संगठित राजनीतिके नेता, और उनसे मिली हुई दूसरे दर्जेकी सत्ता भोगनेवाले वर्ग, लोग किसीभी प्रकारका संकट उपस्थित होनेपर, फिर चाहे वह भाषा सम्बन्धी हो या साम्प्रदायिकता, बाढ़, अकाल—कुछभी हो, यह कहते आये हैं कि इसका एक तात्कालिक उपाय करेंगे एक दूरगामी, पर इन उपायों से, और उनके क्रियान्वयनसे जनताका संकट दूर नहीं होता। वास्तविकतासे यह पलायन पूरा एक चक्कर लगाकर हमें अब यहां ले आया है जहां हम न कोई व्यावहारिक उपाय सोच पा रहे हैं, न तथाकथित तात्कालिक। दूरगामी उपायोंपर विचार करनेमें श्रद्धा रखते हैं। हरिजन समस्या इसका एक उदाहरण मात्र है। सामाजिक व्यवस्थामें परिवर्तन दूरगामी उपाय मानकर, तात्कालिक उपाय माना गया—आरक्षण। आरक्षणका उद्देश्य था—एक पूरे वर्गका उन्नयन, पर इसने केवल कुछ हरिजनोंको संभ्रान्त बना दिया है; और ये संभ्रान्त हरिजन, निर्धन हरिजनोंसे वैसीही घृणा करते हैं जैसी ग़ैर-हरिजन करते हैं। वर्तमान व्यवस्था ऐसे वर्गोंको जन्म दे रही है जो समाजको वर्ग-संघर्षकी ओर बढ़ा रहे हैं।

लेखकने इस आन्दोलनकी प्रेरणाको मुख्य रूपसे राजनीतिक बताया है। किसी समस्याके राजनीतिक रूप ले लेनेसे उसके नारेबाजी तक सीमित हो जानेका सबसे बड़ा खतरा उत्पन्न हो जाता है। समस्याके समाधानकी अपेक्षा प्रतिशोधकी भावना अधिक उग्र रूपमें उभरकर सामने आ खड़ी होती है। प्रतिशोध केवल विनाश और विध्वंसकी दिशामें चलता है और यही स्थिति आज देशको अराजकता और विघटनकी ओर खींचे लिये जा रही है। लेखकीय आक्रोश संयत न होनेके कारण अराजकता और विघटनकी प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन दे सकता है।

जातिकी टट्टीकी ओट शिकार करनेकी आवश्यकता नहीं। समस्या यह है कि विकासके नामपर शीर्षकी ओर सिमटती जाती सम्भावनाओंको आधारकी ओर विस्तार कैसे दिया जाये। यह समझ लेना जरूरी होगा कि इस समस्याके तात्कालिक और दूरगामी उपाय अलग-अलग नहीं हो सकते। दूरगामी उपायही हैं जो तत्काल करने हैं।

पुस्तकका प्रकाशन और मुद्रण सुरुचिपूर्ण ढंगसे हुआ है। मुखपृष्ठपर बनी मुखाकृतिपर मनमें छिपी वेदना साकार हो उठी है। इसके लिए प्रकाशक, मुद्रक, चित्रकार सभी को बधाई। हरिजन समस्याका समाधान इस पुस्तकमें वर्णित उपायोंसे हो सकेगा या नहीं, यह भलेही विवाद का विषय हो, इस विषयमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि हरिजनोंका पक्ष प्रस्तुत करनेके कारण, और अंग्रेजी मोहको तिलांजलि देकर हिन्दीमें पुस्तक लिखनेके कारण यह पुस्तक विशेष स्वागत योग्य है। ▢

भाषा परिचय

भारतीय भाषाएं

लेखक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १६७; डिमा. ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।

'भारतीय भाषाएं' ग्रन्थ उत्कृष्ट रचना है और इसमें भारतीय भाषाओंका विवेचनात्मक परिचय दिया गया है। भारतीय संविधानकी अष्टम अनुसूचीमें दी गयी १५ भाषाओं का क्षेत्र तथा विस्तार, व्युत्पत्ति, बोलनेवालोंकी संख्या, उद्भव तथा विकास, क्षेत्रीय रूप, लिपि, ध्वनि सम्बन्धी

विशेषताएं, शब्दावली, साहित्यिक भाषा तथा राजभाषा के रूपमें विकास—इन सबका सुन्दर वर्णन है। ग्रियर्सन आदि भाषा वैज्ञानिकोंके ग्रन्थोंके आधारपर लिखी इस पुस्तककी विषय-सामग्रीं व प्रतिपादन शैली साफ-सुथरी है। लेखकने विभिन्न भाषाओंपर हुए स्तरीय कार्योंका उल्लेख करके पुस्तकको बहुतही ज्ञानवर्द्धक बना दिया है। यदि कोई व्यक्ति किसी भाषाके ज्ञानको और अधिक प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए पुस्तकोंकी सूची यहीं उपलब्ध हैं।

प्रथम अध्यायका शीर्षक 'भारतीय भाषाएं' है, इसमें भारतके भाषापरिवारों—आर्य, आस्ट्रोएशियाटिक (मुण्डा), द्रविड़—सभीका संक्षिप्त विवेचन करके भारतीय भाषाओं का एक समग्र चित्र उपस्थित किया गया है। पुस्तकसे हिन्दीभाषी सभी भारतीय भाषाओंकी हिन्दीसे निकटता देखकर उन्हें सीखनेकी प्रेरणा प्राप्त करेगा। इस प्रकार यह पुस्तक भावात्मक एकतामें भी सहायक रहेगी। लेखक ने मलयालमके मूर्द्धन्य कवि शकर कुरुपका एक वाक्य उद्धृत किया है, जो मलयालम भाषा तथा उस राज्यके गौरवका गान है। यदि लेखक चाहता तो प्रत्येक भाषा के अन्तमें उस भाषाके किसी कविका ऐसा वाक्य उद्धृत कर सकता था।

पुस्तकमें १९६१ तथा १९७१ की जनगणनाके आधारपर प्रत्येक भाषाके बोलनेवालोंकी संख्या दी गयी है। यदि इसमें १९८१ के भी आंकड़े आ जाते तो अधिक अच्छा रहता। १९६१ से १९७१ के मध्य भारतवर्षकी जनसंख्यामें लगभग २५ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। इस कालमें बंगलाके ३१.३ प्रतिशत तथा असमियाके ३१.६ प्रतिशत बोलनेवाले बढ़े हैं। इसका कारण स्पष्ट है। इस कालमें बंगला देशसे इन प्रान्तोंमें लोग अवैध रूपसे आये और उन्होंने अपनी जनगणनाभी यहां करवा दी। पंजाबी बोलनेवाले २७ प्रतिशत बढ़े हैं, १९७१ की जनगणनामें केशधारियोंने विशेष प्रयत्न किया था कि पंजाबी लोग हिन्दीके स्थानपर अपनी भाषा पंजाबी लिखायें, चाहे वे लिख और पढ़भी न सकते हों। मलयालम बोलनेवाले २९, कन्नड़ २४, तमिल २३ तथा तेलुगू बोलनेवाले १९ प्रतिशत बढ़े हैं। कश्मीरी बोलनेवाले २१.३ प्रतिशत बढे हैं। आंध्रप्रदेश तथा कश्मीरके मुसलमानोंने अपनी मातृभाषाके स्थानपर उर्दू लिखाना अधिक उचित समझा। उर्दूभाषी लोगोंकी संख्या ४३ प्रतिशत बढ़ी है, जोकि असामान्य परन्तु अविश्वसनीय वृद्धि है। उड़ियाके २६.३, गुजरातीके २६, मराठीके २५.३ प्रतिशत बोलनेवाले बढ़े हैं। सिन्धी किसी प्रदेश विशेषकी भाषा नहीं है, इस कारण इसकी १० प्रतिशत संख्या कम हुई है। हिन्दीभाषी कुल १९.३३ प्रतिशत बढ़े हैं। जनसंख्या वृद्धिके आधारपर यह स्थिति चिन्ताजनक है। संस्कृत बोलनेवाले लोगोंके १९७१ के आंकड़े लेखकको प्राप्त नहीं हो सके। मेरे विचारमें देशमें भारतीय भाषाएं बोलनेवालोंकी संख्या का ठीक अध्ययन तब सम्भव होगा, जब हमारे पास प्रान्तीय भाषाके अतिरिक्त दूसरी या तीसरी भाषाके जानकार लोगोंकी संख्या भी होगी।

लेखकने असम शब्दको मंगोल भाषाका माना है। यह संस्कृत समसे भी व्युत्पन्न माना जा सकता है। इस गम्भीर पुस्तकमें उपहासमें कही बातें—मरके हटा वही मरहटा जैसी व्युत्पत्तियां न उद्धृत की जाती तो अधिक उपयुक्त होता।

उर्दूका परिचय देते हुए लेखक लिखता है—'उर्दूको हिंदीसे भिन्न भाषा मान लेनेपर भी इस बातसे इन्कार नहीं किया जा सकता कि खड़ी बोली हिन्दीसे उसका मेलमिलाप अत्यधिक है।' मेरे विचारमें यह कथन उपयुक्त नहीं है। उर्दूके सम्बन्धमें यह स्पष्ट लिखा जाना चाहिये कि यह खड़ी बोली हिन्दीकी ही एक शैली है। पृष्ठ ८ पर लेखकने इस बातको स्वीकारभी किया है। वे लिखते हैं—अरबी-फ़ारसी शब्दावलीसे युक्त उर्दूभी हिंदी की एक प्रमुख शैली है। इस प्रकार लेखकके दो कथनोंमें विरोध है जो कि मानसिक दुविधाको प्रकट करता है। उर्दूके सम्बन्धमें लेखकका यह कथन अत्यन्त सटीक है कि उर्दूके विकासमें मुसलमानोंके साथ हिन्दुओंने भी पर्याप्त योग दिया है, फिरभी भ्रमवश इसको मुसलमानोंके साथ जोड़ दिया जाता है। किन्तु उर्दूके साहित्यिक भाषाके रूपमें विकास उपशीर्षकमें प्रेमचन्द तथा कृष्णचन्दर जैसे नामोंकी उपेक्षा उचित नहीं। उर्दू जम्मू-कश्मीरमें प्रथम तथा आन्ध्र प्रदेशमें द्वितीय भाषाके रूपमें समादृत है। पुस्तकके प्रकाशित होनेतक वह बिहारमें द्वितीय राजभाषा नहीं बनी थी। यहभी अध्ययनका विषय है कि उर्दूको प्रथम या द्वितीय राजभाषा बनानेमें कहीं राजनीतिक कारण तो नहीं है?

लेखकने सभी भाषाओंकी शब्दावलीका विवरण प्रस्तुत किया है। अधिक अच्छा होता यदि इसमें तत्सम, हिन्दी सदृश, तद्भव एवं विदेशी शब्दोंका प्रतिशत भी दे दिया जाता। इससे यह स्पष्ट हो जाता कि भारतीय

भाषाओंकी प्राण संस्कृत है। संस्कृतके आधारपर प्रत्येक भाषाकी समान पारिभाषिक शब्दावली तैयार करनेसे सभी भाषाएं अधिकाधिक निकट आ सकती हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि लेखकने दक्षिणी भाषाओंकी शब्दावली में तत्सम शब्द संस्कृतके माने हैं, द्रविड़के नहीं। वस्तुत: इन भाषाओंमें भी संस्कृत शब्दही छाये हुए हैं।

हम लेखककी इस धारणासे सहमत नहीं हैं कि तमिल एक ऐसी भाषा है जो संस्कृतके सहारेके बिना हर प्रकारके विचारोंको अभिव्यक्त कर सकनेमें समर्थ है। तमिल साहित्यपर बौद्ध तथा जैन साहित्यका प्रभाव है, रामायण तथा पुराण ग्रन्थभी इसके उपजीव्य रहे हैं। महर्षि अरविन्द अपने 'भारतीय संस्कृतिके आधार' ग्रन्थमें धर्म और आध्यात्मिकता संबंधी अध्यायमें लिखते हैं कि तमिल साहित्यपर रामायण और महाभारतका अत्यधिक प्रभाव है, तमिलने नैषध जैसे काव्योंसे भी कथाएं ग्रहण की हैं। ऐसी अवस्थामें संस्कृतके बिना तमिलकी कल्पना उचित नहीं। वस्तुत: तमिलमें संस्कृत शब्द तद्भव रूपमें हैं। वे पहचान में नहीं आते। तमिलमें वर्गोंमें केवल क्, च्, ट्, प् ध्वनियां ही प्राप्य हैं, इन्हींसे शेष तीन वर्णोंका भी काम चलाया जाता है। यदि प्रत्येक तमिल शब्दका सूक्ष्म अध्ययन करके उसे संस्कृत वर्णमालाके अनुसार लिख दिया जाये तो उनकी संस्कृतकी निकटता स्पष्ट हो जायेगी। इस दृष्टिसे मदुरई विश्वविद्यालयके प्रो. एस. जगदीशम् द्वारा 'इण्टरनेशनल संस्कृत कॉन्फ्रेन्स(१९७२)' में पढ़ा लेख 'इन्फलुएन्स ऑफ संस्कृत ऑन तमिल लैंग्वेज एण्ड लिटरेचर' लेख तथा स्वामी धर्मानन्द सरस्वतीकी 'वैदिक संस्कृत मदर ऑफ ऑल लैंग्वेजिज़' देखने चाहियें। स्वामीजीने २० वर्षोंतक दक्षिण-भारतमें रहकर सभी दक्षिणी भाषाओंका सूक्ष्म अध्ययन किया। उनका निश्चित मत है कि तमिल बिना संस्कृतके निष्प्राण है।

तमिलके प्रसंगमें लेखक द्वारा उद्धृत न. सि. कन्हय्या पिल्लैकी इस स्थापना कि—'हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो की संस्कृति आर्येतर अर्थात् द्रविड़ है'—प्रमाणपुष्ट न होनेके कारण इसपर पुनर्विचारकी आवश्यकता है। डॉ. फतहसिंह आदि विद्वानोंकी नयी खोजसे यह सिद्ध हो गया है कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ोकी संस्कृति आर्य संस्कृति है। यदि हम द्रविड़ संस्कृतिको भी आर्य संस्कृतिसे पृथक् न मानें तो दोनों विचारोंकी संगति बैठ सकती है। सभी भारतीय भाषाओंपर परस्पर तुलनात्मक अध्ययन आरम्भ हुआ है, भारतीय भाषाओंके शब्दोंपर विस्तारसे विचार किया जाना आवश्यक है। अन्य भाषायी तत्त्वोंपर भी गम्भीरतासे अध्ययन होना चाहिये। लेखकने स्वीकार किया है कि दक्षिण भारतमें कुछ ऐसे परिवार हैं जहां संस्कृतका पठन-पाठन उत्तर भारतकी तरहही होता है। यदि दक्षिणके लोग भिन्न संस्कृतिके होते तो उनका संस्कृत से इतना प्रेम प्रकट न होता। संस्कृतके प्रसंगमें लेखकने घोटक आदि शब्द द्रविड़ परिवारके बताये हैं। पर इस तथ्यका आधार क्या है ? यह स्पष्ट नहीं किया। कद् शब्द वेदमें भी है। यदि उसीसे घोटककी व्युत्पत्ति करनी है तो अर्थपरिवर्तन मानकर की जा सकती है। शव शब्द संस्कृतकी गत्यर्थक शव धातुसे निष्पन्न है।

संस्कृतके प्रसंगमें यहभी लिखा है कि संस्कृत यूरोपीय परिवारकी है, उचित नहीं। भाषाओंके पारिवारिक वर्गीकरणमें परिवारका नाम यूरोपीय न होकर भारोपीय है। यूरोपीय कहनेसे लगता है संस्कृत यूरोपसे ही भारत आयी है। जबकि अभीतक संस्कृतके उद्गमके सम्बन्धमें दो विचार स्पष्ट हैं। एक मत उसका उद्गम भारत अथवा तिब्बत मानता है।

लेखकने संस्कृतके प्रसंगमें संस्कृत और वैदिक संस्कृत की शब्दावली और रूपरचनामें भेद माना है, जो उचित नहीं। लौकिक संस्कृत बादकी भाषा है। उसमें यास्कके अनुसार कुछ नये प्रयोग आ गये, कुछ पुराने समाप्त हो गये केवल यही भेद है। पाणिनीने दोनोंका एकही व्याकरण बनाया है। इसी प्रकार यह कहना कि वैदिक संस्कृतमें सुरका विशेष महत्त्व था—ठीक नहीं। सुरके स्थानपर स्वर होना चाहिये। इन दोनों शब्दोंके अर्थोंमें बहुत भेद है।

भाषाओंके परिचयमें संतुलन आवश्यक है। किन्तु इस पुस्तकमें किसी भाषाकी सामग्री कम तथा किसीकी अधिक है। मराठीके परिचयमें उसका साहित्यिक भाषा के रूपमें विकास बहुत कम दिया है। हिन्दीका अत्यधिक विस्तार कर दिया है। हिन्दीकी बोलियां उपशीर्षक सामग्री संक्षेपसे दी जा सकती थी, केवल वही अंश जिनका मानक हिन्दीसे सम्बन्ध है।

हिन्दीके साहित्यिक परिचयमें कालक्रमका ध्यान नहीं रखा गया। राउलवेलका (१४१) का उल्लेख अनिवार्य था, इस रचनाके कुछ उद्धरणभी अपेक्षित थे। शोध संदर्भ ग्रन्थके साथ इस विषयक डॉ. उदयभानु सिंहके ग्रन्थ का उल्लेख आवश्यक था। हिन्दीका स्वरूप तथा हिन्दी

के विकासमें अहिन्दीभाषियोंका प्रयत्न उपशीर्षक भी होने चाहिये थे। प्रत्येक भाषाके साथभी उस भाषाके लेखकों का हिन्दीमें योगदान बताया जा सकता था, जैसाकि लेखकने पंजाबीके प्रसंगमें बताया है।

'अहिन्दीभाषी राज्य' उपशीर्षकमें बताया है कि—अहिन्दीभाषी राज्योंमें स्थित कार्यालयोंको भेजे जानेवाले हिन्दीके पत्रोंके साथ उनका अंग्रेज़ीके स्थानपर उस-उस प्रदेशकी भाषामें अनुवादकी व्यवस्था रहनी चाहिये।

हिन्दीके अबतक राजभाषाके रूपमें स्थान न पा सकने के कारणभी लेखकको देने चाहियें थे। गत ३ वर्षोंसे प्रशासनिक परीक्षाओंमें भारतीय भाषाओंके प्रयोगकी छूट मिली है। उन परीक्षाओंमें भारतीय भाषाओंके माध्यमसे परीक्षा देनेवाले छात्रोंकी संख्याका विवरणभी अपेक्षित था। भारतके किन विश्वविद्यालयोंमें अभीतक भारतीय भाषाएं माध्यम नहीं है या किन-किनमें अभीतक हिन्दी की उच्चस्तरीय शिक्षाकी व्यवस्था नहीं है, विवरणभी अपेक्षित था। परिशिष्टमें उन सरकारी व गैरसरकारी संस्थाओंका उल्लेख आवश्यक था जो भारतीय भाषाओंके विकासमें लगी है, विशेष रूपसे अहिन्दीभाषी प्रदेशोंमें जो हिन्दीका विकास कर रही हैं।

पुस्तकमें कुछ तथ्योंकी पुनरावृत्तिभी हुई है। उर्दू, असमिया, उड़िया तथा बंगलाका जो परिचय प्रथम अध्यायमें दिया है, इन भाषाओंके अध्यायमें भी है। उर्दू का अर्थ व्युत्पत्ति (२५) तथा उद्‌भव (२६) उपशीर्षकोंमें एकही दिया है। पृ. ४९ पर लिखा है गुजरातीकी लिपि देवनागरीका ही भिन्न रूप है, २-४ पंक्तियोंके बाद ध्वनि सम्बन्धी विशेषताओंमें फिर लिखा है गुजराती वर्तमान नागरीके समान है। पृ. ५१ पर लिखा है—जोशीजी आजकल साहित्य अकादमीके अध्यक्ष हैं, २-४ पक्तियोंके बाद फिर लिखा है—आजकल तो साहित्य अकादमीके अध्यक्ष पदपर गुजराती साहित्यकार श्री उमाशंकर जोशी सुशोभित हैं। बंगलाके साहित्यिक परिचयमें राजा राम-मोहन रायकी चर्चा ८६ तथा ८९ दोनों पृष्ठोंपर हुई है। पृ. १२३ तथा १४४ दोनों पृष्ठोंपर अमीर खुसरोका—'तुर्क-इ-हिन्दुस्तानिम' आदि पद उद्‌धृत किया है। हिन्दी के विकासके सम्बन्धमें जो तथ्य १४९ पर दिये गये हैं, वही पृ. १६३ पर भी हैं। १२५ तथा १४९ दोनों पृष्ठों पर गिलक्रिस्त (गिलक्राइस्ट) द्वारा प्रस्तुत खड़ी बोलीके अर्थको स्पष्ट किया है। पुनरावृत्तिसे पुस्तकके कसावमें कमी आती है।

'भारतीय भाषाएं' पुस्तककी गिनती हिन्दीकी स्तरीय पुस्तकोंमें होगी। अत: उसमें वर्तनीकी अशुद्धियां बहुतही खटकती है, उदाहरणार्थ—रजती(७), व्यवस्थित (१९), जर्नादन (२७), लक्ष णग्रन्थ (३२), अभिनय कालिदास (३६), बिल्हण (४०), साहित्य आदमी (४१), चौदहवीं (५४), जिता (७३), कृतिवास (८१), रत्नगिरी (९४), कनारा (४), साहित्य (९८), उपक्षमाणीय (११२) आदि। पृ. ४३ पर शब्दोंकी अधिकता होनाके स्थानपर होनी अपेक्षित है। पृ. ८१ पर भावप्रवणता मिलता है के स्थानपर मिलती है, होना चाहिये। पृ.८२ पर 'कवि नाल्ला' के आगे 'ने' छूट गया है। इसी प्रकार की कुछ अन्य गलतियांभी हैं—पृ. ७८ पर अनावश्यक पूर्णविराम है। पृ. १०३ पर की सर्वाधिक प्रतिशतके स्थानपर के सर्वाधिक प्रतिशत होना चाहिये। सामान्यत: आलोचनामें प्रूफकी गलतियोंकी आलोचना नहीं की जाती। किन्तु हिन्दीकी स्तरीय पुस्तकोंमें एक गलतीपर भी शोर मचना चाहिये। यह प्रकाशकका विशेष दायित्व है। गुजराती तथा मराठीके परिचयमें 'क्षेत्र तथा विस्तार' लिखना छूट गया है। इस पुस्तककी शैलीसे अलग मराठी का परिचय बिना अनुच्छेदके आरम्भ किया है। लेखक का दायित्व यह है कि वह तबतक छपनेका आदेश न दे जबतक प्रत्येक गलती सुधर न जाये।

व्यंजन ध्वनियां हलन्त लिखी जानी चाहियें, वे सारी पुस्तकमें अकारान्त —अक्षर रूपमें लिखी गयी हैं। एक भाषा वैज्ञानिककी पुस्तकमें यह भूल खटकती है। बहुतसे हलन्त शब्द अकारान्त लिख दिये गये है, जैसे विद्वान (२७, २९ ५६, ९३), अर्थात (३९), वरन (८७, ११४, १३५)। इसी पुस्तकमें जगत् (१२८) आदि शब्दोंमें हलन्त है भी। आवाज (५८), जिला(६०),जरूर(१०१) काफी शब्दोंमें यथास्थान बिन्दुका प्रयोग नहीं किया गया। छुटपुटके स्थानपर छिटपुट (४७) तथा रोमांसके स्थान पर रोमान्मका रूपमें लिखा है।

ग्रन्थ राजनीतिकके स्थानपर प्राय: राजनैतिक(१५५) शब्दका प्रयोग किया है। एक स्थानपर राजनीतिकभी लिखा है। जागरितके स्थानपर जाग्रत (११७) मिलता है। कुछ स्थलोंपर गयी या गयेके स्थानपर गई (८१) गए प्रयोग हैं। इसी प्रकार नयोके स्थानपर नई (९०) लिखा है। मलयाळम्को बहुत स्थानोंपर मलयालम कर दिया है। मेरे विचारमें एक शब्दके दो शुद्ध रूपोंमें एक-रूपताकी दृष्टिसे किसी एक रूपका ही प्रयोग होना

चाहिये । जैसे : हिन्दी—हिंदी, सिद्धान्त—सिद्धांत, डॉ.—डा. दोनों प्रयोग वाञ्छनीय नहीं,इस पुस्तकमें दोनोंका प्रयोग है ।

इस पुस्तकमें सबसे अधिक खटकनेवाली बात है—मानचित्रों व तालिकाओंका अभाव । मानचित्रोंसे कौन-सी भाषा या बोली किस-किस क्षेत्रमें फैली हुई है, यह स्पष्ट हो जाता । लिपियोंके भी नमूने दिये जाने चाहियें थे । एकही स्थानपर सभी भाषाओंकी लिपि दे देनेसे लिपि सम्बन्धी एकता व्यक्त होती ।

आलोचनासे यह समझना भूल होगी कि पुस्तक कम महत्त्वपूर्ण है । वास्तविकता यह है कि इस पुस्तकने हिन्दी में एक बड़े अभावकी पूर्ति की है । लेखकने 'अपनी बात' में कहा है कि भारतीय भाषापर १००-१५० पृष्ठोंकी पुस्तक सीरीज़ निकाली जा सकती है । हम यह आशा करेंगे कि इस प्रकारकी प्रत्येक भाषापर पुस्तकें शीघ्रही प्रकाशमें आयेंगी ।

अन्तमें हम इस पुस्तकके लेखकको बधाई तथा प्रकाशकको धन्यवाद देते हैं ।

☐ **डॉ. प्रशान्त वेदालंकार**

भाषा : प्रयोग : व्याकरण

व्यावहारिक हिन्दी

सम्पादक : रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और भोलानाथ तिवारी; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१ एफ, कमला नगर, दिल्ली-११०००७ । पृष्ठ : ९४; डिमाई ८०; मूल्य : १५.०० रु. ।

ऐसा प्रतीत होता है कि दो लेखकोंने अलग-अलग दो पुस्तिकाएं लिखीं और उन्हें एक जिल्दमें बांध दिया गया । पहली पुस्तिकाका विषय है भाषिक संरचना और अशुद्धि-शोधन । प्रारम्भमें भाषाका हेतु समझाया गया है । 'भाषा केवल शब्दोंका जमघट नहीं । वह केवल शब्दोंकी कड़ीभी नहीं । वह तो सार्थक शब्दोंकी एक व्यवस्थित कड़ी है । वाक्य शब्दोंकी कड़ी तो होता है, पर शब्दोंकी हर कड़ी वाक्यका दर्जा नहीं पाती । ...वाक्य, अर्थ और अभिव्यक्तिकी समन्वित इकाई होते हैं....। अर्थात् वाक्य का अर्थ स्पष्ट और असदिग्ध होना चाहिये । 'लड़केने दौड़ते हुए शेरको मारा' का अर्थ संदिग्ध है, क्योंकि इस से यह स्पष्ट नहीं होता कि शेर दौड़ रहा था या लड़का । इसी ढंगका एक वाक्य है : 'मैंने कुर्ता पहने हुए हाथी को देखा ।'

प्रत्येक भाषामें वाक्य-रचनाके कुछ नियम होते हैं । किन्तु प्रत्येक भाषाके किसीभी वाक्यको लेकर दो प्रकारके प्रश्न पूछना स्वाभाविक है : (१) क्या वाक्य व्याकरणकी दृष्टिसे शुद्ध है ? (२) क्या वाक्य दिये गये संदर्भमें मान्य है ? एक वाक्य है : 'घोड़ा पतंग उड़ा रहा है ।' व्याकरण की दृष्टिसे यह वाक्य शुद्ध है क्योंकि इसमें कर्त्ता, कर्म और क्रिया सब यथास्थान बिठाये गये हैं । किंतु जिस संसारके हम निवासी हैं, उसमें सामान्यतः ऐसा क्रिया-कलाप संभव नहीं है । यह बात दूसरी है कि किसी सर्कस में किसी घोड़ेको ऐसा प्रशिक्षण दिया जाये । अतः यह वाक्य संगत नहीं है, इसलिए अमान्य है ।

यदि हम किसी बच्चे अथवा नौकरसे कहें कि 'ले, खाले', तो चल जायेगा, किन्तु किसी बड़ेसे हम इस प्रकार नहीं बोल सकते । हम किसी अतिथिसे कहेंगे कि भोजन कर लीजिये, किन्तु किसी नौकर अथवा अपनी पुत्रीसे इस प्रकारका संबोधन नहीं करेंगे । उक्त प्रसंगमें ऐसा वाक्यभी अस्वीकार्य हो जायेगा ।

किसी वाक्यके द्वारा लेखक क्या संदेशा देना चाहता है, किस बातको अधिक महत्त्व देना चाहता है और उस का क्या अभिप्राय है—इन सब बातोंपर शब्दोंका चयन

और पदक्रम निर्भर होता है। यह बात लेखकने अनेक उदाहरण देकर समझायी है। (१) नल तब काम कर रहा था। (२) नल अब काम नहीं कर रहा। ये दोनों वाक्य बहुत कुछ पर्यायवाची हैं क्योंकि दोनों इस बातका संकेत करते हैं कि नल अब बिगड़ा हुआ है। (१) में इस बात पर बल है कि पहले नल काम कर रहा था, और (२) में इस बातपर कि नल अब काम नहीं कर रहा।

इसके पश्चात् लेखकने प्रयोगोंके मानक रूप और शुद्ध-अशुद्ध प्रयोगोंका विवेचन किया है जो काफी व्याख्यात्मक है। वाक्यमें प्रयुक्त शब्दोंमें क्रम होता है, अनुशासन होता है और उनका मानक रूप होता है। संरचनात्मक इकाईका आधार उसके अंगोंके पारस्परिक सम्बन्धोंका प्रकार्य होता है। लेखकने पाँच संरचनात्मक नियम दिये हैं और संरचनाकी प्रकृतिको समझानेके लिए ये दो वाक्य उदाहरणार्थ दिये हैं: (क) मोहन घर आयेगा, (ख) पत्र घर आयेगा। देखनेमें दोनों वाक्य एक से हैं, किन्तु इनकी संरचनात्मक प्रकृति भिन्न-भिन्न है मोहन स्वयं आयेगा और पत्र कोई दूसरा लायेगा। यह बात इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जायेगी: (१) मोहन जान-बूझकर नहीं आया? (२) पत्र जान-बूझकर नहीं आया? स्पष्ट है कि वाक्य (२) निरर्थक है।

अगले प्रकरणमें अशुद्धियोंका विवेचन है जो तीन भागोंमें बांटी गयी हैं: (१) रूपात्मक अशुद्धियां, (२) बोधात्मक अशुद्धियां, (३) प्रयोगपरक अशुद्धियां।

(१) **रूपात्मक अशुद्धियोंके** अन्तर्गत लेखकने ये दो वाक्य दिये हैं: (क) मांने बेटेको चिट्ठी लिखा, (ख) मांने बेटेको पत्र लिखी। इन वाक्योंमें संज्ञा और क्रियाके अन्वयके नियमोंका पालन नहीं हुआ है। इसलिए ये अशुद्ध हैं।

रूपात्मक अशुद्धियांभी कई प्रकारकी होती हैं:

(अ) वर्ण-लेखन और वर्तनीकी अशुद्धियां: प्रायः लोग यह समझते है कि हिन्दीमें हम जैसा बोलते हैं वैसा ही लिखते हैं। यह तथ्य एक सीमातक ही सही है, क्योंकि हम बोलते हैं: जन्ता, हम्ला, रितु, आविश्कार; परन्तु वर्तनीके नियमसे लिखते हैं: जनता, हमला, ऋतु, आविष्कार।

(आ) शब्द और शब्द-रूपकी अशुद्धियां: इस वर्गके अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण श्रेणी है तिर्यक् शब्द-रूप सम्बन्धी अशुद्धियां, जैसे—(१) कुत्ताने काटा (कुत्ते), (२) मेरेको घर जाना है (मुझे, मुझको), (३) कोईको बुला लो। (किसी)।

इस प्रकरणमें अशुद्धियोंके भिन्न-भिन्न वर्ग-प्रवर्ग विस्तारपूर्वक दिये गये हैं।

(२) **बोधात्मक अशुद्धियाँ**: इन्हेंभी तीन वर्गोंमें बाँटा गया है: (क) तथ्यपरक अशुद्धियां, (ख) तर्कपरक अशुद्धियां, (ग) तात्पर्यपरक अशुद्धियां।

प्रत्येक वर्गके अन्तर्गत उदाहरण दिये गये हैं। वर्ग (क) की अशुद्धियोंका एक रोचक उदाहरण है: 'हिमालय भारतके दक्षिणमें है।' स्पष्ट है कि यह एक मिथ्या कथन है। यों कहना चाहिये कि यह कथन भौगोलिक तथ्यके विपरीत है।

तर्कपरक अशुद्धिके एक उदाहरणपर विचार कीजिये 'उसने वह चित्र फाड़ दिया जिसे वह बनाना चाहता था।' जब चित्र बनायाही नहीं तो फाड़ कैसे दिया? अतएव तर्ककी कसौटीपर यह वाक्य खरा नहीं उतरता।

यदि हम कोई बात स्पष्ट रूपसे न कहकर घुमाफिरा कर कहें तो उसे तात्पर्यपरक अशुद्धि कहेंगे। जैसे क्या पानीका गिलास मेरी ओर बढ़ानेमें आपको कोई कष्ट होगा?' इस ढंगके वाक्योंका प्रयोग सामाजिक शिष्टाचारके कारण किया जाता है। इसी बातको कहनेका सीधा-सादा ढंग होगा: कृपया पानीका गिलास बढ़ाइये।

(३) **प्रयोगपरक अशुद्धियां**: इन अशुद्धियोंका सम्बन्ध सामाजिक बोधके साथ रहता है, जैसे: 'मोहन बाबू नहीं आया था क्या? (आये थे)।'

अशुद्धियोंका वर्गीकरण सामान्यतः तर्कसंगत हुआ है, किन्तु कई उदाहरणोंकी पुनरुक्ति हुई है। यदि प्रत्येक विषयके अन्तर्गत नये उदाहरण दिये जाते तो अच्छा होता। इसके अतिरिक्त, एक पैरा, जो पृष्ठ ११-१२ पर है, ज्यों का त्यों पृष्ठ २३ पर दोहरा दिया गया है।

एक बात खटकनेवाली है। पुस्तकके इस भागमें कर्मवाच्य प्रयोगोंकी भरमार है, जैसे यह कहा जा सकता है, 'यह देखा जा सकता है,' ऐसी भूलें अक्षम्य मानी जानी चाहियें। हम यह नहीं कहते कि ये प्रयोग गलत हैं, किंतु हिन्दीमें ऐसी संरचनाओंका प्रयोग कमही हुआ करता है।

दूसरी पुस्तिकाका विषय है पारिभाषिक शब्दावली। लेखकने इस संदर्भमें शब्दोंको तीन वर्गोंमें विभाजित किया है:

(१) पारिभाषिक शब्द जो विभिन्न विज्ञानों और शास्त्रोंमें ही प्रयुक्त होते हैं, जैसे व्याकरणमें 'प्रविशेषण'

(Artcle), काव्यशास्त्रमें 'लक्षणा' और दर्शनमें द्वैतवाद'।

(२) अर्ध-पारिभाषिक शब्द जो कभी पारिभाषिक क्षेत्रमें प्रयुक्त होते हैं, कभी सामान्य क्षेत्रमें, जैसे क्रिया (व्याकरण), माया (दर्शन) और रस (काव्य)।

(३) सामान्य शब्द जैसे पेड़, सड़क, मकान।

यह वर्गीकरण तो अब अधिकतर लेखक मानने लगे हैं। लेखकके अनुसार पारिभाषिक शब्दोंका वर्गीकरण इन आधारोंपर किया जा सकता है :

(i) **स्रोतके आधारपर** (क) परम्परागत, जैसे रजत, दीर्घ-वृत्त, द्रव्य; (ख) गृहीत, जो दूसरी भाषाओंसे लिये गये हों, जैसे इंजन, ऑक्सीजन, बिल; (ग) नवनिर्मित शब्द, जैसे तकनीक, अकादमी, मानक।

(ii) **रचनाके आधारपर**—मूल और यौगिक शब्द

(iii) **प्रयोगके आधारपर**—पूर्ण पारिभाषिक, अर्ध-पारिभाषिक

(iv) **अर्थके आधारपर**

(v) **शब्दमें पदीय इकाइयोंके आधारपर**

(vi) **विषयके आधारपर**—इस आधारपर हर विज्ञान या शास्त्रके पारिभाषिक शब्दोंको अलग-अलग वर्गोंमें रखा जा सकता है, जैसे रसायनके शब्द, दर्शनके शब्द, गणितके शब्द।

व्यवहारिक दृष्टिसे आधारों (i) और vi) का ही विशेष महत्त्व है। तत्पश्चात् लेखकने पारिभाषिक शब्दों में क्या गुण होने चाहियें, इसका विवेचन किया है : (१) पारिभाषिक शब्द यथासाध्य सरल और छोटा होना चाहिये। यों तो अंग्रेज़ीमें एक रोगका नाम पैंतालिस अक्षरोंका है, किन्तु प्रयत्न यही करना चाहिये कि शब्द छोटा रहे क्योंकि छोटे शब्दमें प्राकृतिक आकर्षण होता हैं और वह जल्दी याद हो जाता है। इस दृष्टिकोणसे equator का सामानार्थी 'भूमध्य रेखा' बढ़िया नहीं है। भाषाशास्त्रके spoonesism के लिए 'अदि शब्दांश विपर्यय' के बदले स्पूनरता क्यों न बनायें। इसी प्रकार welding के लिए नया शब्द 'वेलडन' क्यों न गढ़ लें?

(२) इस देशमें १४ प्रचलित भाषाएं है। प्रयत्न यह करना चाहिये कि किसी संकल्पनाके लिए अधिकतर भाषाओंके लिए एकही पारिभाषिक शब्द निर्धारित हो।

(३) पारिभाषिक शब्दका अर्थ सुनिश्चित और स्पष्ट होना चाहिये। न उसमें अव्याप्ति दोष हो, न अतिव्याप्ति दोष। इससे एक निष्कर्ष यहभी निकला कि प्रत्येक पारिभाषिक शब्द दूसरे पारिभाषिक शब्दोंसे इतना अलग हो कि भ्रमकी कोई गुंजाइश न रहे।

(४) किसीभी विषयमें एक पारिभाषिक शब्दका एकही अर्थ होना चाहिये और किसी एक संकल्पनाके लिए एकही पारिभाषिक शब्द होना चाहिये। भाषा विज्ञानमें अक्षर letter को भी कहते हैं, syllable को भी। इसके विपरीत fricative के लिए हिन्दीमें इतने शब्दोंका प्रयोग होता है : संघर्षी, घर्षक, घर्ष, सप्रवाह, अनवरुद्ध, अव्याहत, विवृत। यह स्थिति कदापि संतोष-जनक नहीं है।

(५) समान श्रेणीके पारिभाषिक शब्दोंमें एकरूपता होनी चाहिये, जैसे भाषाशास्त्रमें Phoneme, morphene, semanteme grapheme के लिए क्रमानुसार स्वनिम, रूपिम, अर्थिम, लेखिम। इसके विपरीत असमान संकल्पनाओंके लिए मिलते-जुलते शब्द नहीं होने चाहियें, अन्यथा भ्रमकी आशंका रहती है। इसी प्रकार सम्बद्ध संकल्पनाओंके लिए सहबद्ध शब्द होने चाहिये। यदि temperature को 'ताप' कहें तो themrometer को 'तापमापी' कहनेमें सुविधा होगी।

(६) पारिभाषिक शब्द ऐसा होना चाहिये कि आवश्यकता पड़नेपर उपसर्ग, प्रत्यय या शब्द आदि जोड़कर उससे अन्य शब्द सरलतासे बनाये जा सकें। जैसे मानव से मानवीय, मानवीयता, मानवीयकरण, मानवता, मानविकी।

पारिभाषिक शब्द कैसे हों, इस विषयमें कई विचार-धाराएँ हैं :

(क) राष्ट्रीयतावादी सम्प्रदाय—इस विचारधाराके प्रमुख प्रतिनिधि डॉ. रघुवीर रहे हैं। इन्होंने समस्त पारिभाषिक शब्द संस्कृतसे बनाये हैं। इस प्रणालीमें सबसे बड़ा दोष यह है कि प्रचलित देशज, विदेशी अथवा तद्भव शब्दोंके बदलेमें दुरूह संस्कृत शब्द बनाये गये हैं, जैसे क्लर्कके लिए लिपिक और cheque के लिए धना-देश। इस बातपर भी ध्यान नहीं दिया है कि ये नये शब्द चल भी पायेंगे या नहीं, जैसे 'दिवालिया' के लिए 'नष्टनिधि'।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीयतावादी सम्प्रदाय—इस विचार-धाराके प्रवर्तक समस्त पारिभाषिक शब्द अंग्रेजीसे ज्यों के त्यों लेना चाहते हैं। ऐसा किसी देशमें नहीं होता, और न यह पद्धति व्यावहारिक है।

(ग) हिन्दुस्तानी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदायके पं.

सुन्दरलाल, डॉ. ज़ाफ़र हुसैन आदिने बहुतही कृत्रिम शब्द बनाये हैं, जैसे accelĕration चाल बढ़ाव, reaction पलटकारी । ये शब्द बिल्कुल अव्यावहारिक हैं क्योंकि इनसे व्युत्पन्न शब्द बन नहीं सकते ।

(घ) लोकवादी सम्प्रदाय - ये लोग प्रचलित शब्दोंके आधारपर पारिभाषिक शब्द बनाते हैं, जैसे

अन्तर्राष्ट्रीयतावादी	राष्ट्रीयतावादी	लोकवादी
maternity home	प्रसूतिगृह	जच्चाघर

यह विचारधारा गलत नहीं है, किन्तु इसके अनुसार थोड़ेसे शब्दही मिल पायेंगे । आज आवश्यकता लाखों पारिभाषिक शब्द बनानेकी है, जो इस प्रणालीसे कदापि नहीं मिल सकते ।

(ङ) समन्वयवादी विचारधारा—अर्थात् उपर्युक्त चारों विचारधाराओंका समन्वय । जहाँभी उपयुक्त शब्द दिखायी दे उसे अपना लेना चाहिये । यदि उक्त शब्द अपनी ध्वनि-व्यवस्थाके अनुकूल न बैठे, तो उसका अनुकूलन कर लेना चाहिये, जैसे comedy कामदी tragedy त्रासदी ।

अगले दो अध्यायोंके शीर्षक हैं : (क) पारिभाषिक शब्द : परिभाषा, विशेषताएँ और प्रकार; (ख) हिन्दीमें पारिभाषिक शब्द-निर्माणकी प्रवृत्तियां । इन दोनों अध्यायोंके अधिकांशमें पिछले अध्यायके विषयोंकी पुनरावृत्ति करके पुस्तिकाका आकार व्यर्थही बढ़ाया गया है ।

अगला अध्याय है : 'पारिभाषिक शब्दोंकी रचना' । इसमें तीन प्रकारके उपसर्ग दिये गये हैं : (क) तत्सम : अ, अति, अधि, अनु, अप, दुः, प्र, प्रति । (ख) तद्भव : दु, नि, पर । (ग) विदेशी : बद, बे, ला, बा ।

लेखकका यह कहना बिल्कुल ठीक मालूम देता है कि पारिभाषिक शब्द बनानेमें प्रायः तत्सम उपसर्गोंका ही प्रयोग किया जाता है ।

लेखकने चार प्रकारके प्रत्ययोंका उल्लेख किया है : (क) तत्सम : ता, अलु, जीवी, इक, अनीक, इमा । (ख) तद्भव : आई, आहट, आइल, एरा । (ग) देशज : अक्कड़, आटा । (घ) विदेशी : आना, इयत, मन्द ।

लेखकने उपसर्गों और प्रत्ययोंसे बने दर्जनों पारिभाषिक शब्दोंकी सूचियां दी है जो बहुत उपयोगी हैं ।

अगले अध्याय 'अशुद्धि और शोधन' में पारिभाषिक शब्दों सम्बन्धी सात प्रकारकी अशुद्धियां गिनायी गयी हैं : (१) संरचना-सम्बन्धी, जैसे आनुभविकके लिए अनुभविक, (२) प्रयोग सम्बन्धी, जैसे जनित्र यंत्रके लिए आता है, जनक व्यक्तिके लिए किन्तु लोग एकके बदले दूसरेका प्रयोग कर जाते हैं । (३) अर्थ-सम्बन्धी, जैसे दाता-देनेवाला, आदाता-रिसीवर, अनुदाता-ग्रांटर । (४) प्रयुक्ति सम्बन्धी जैसे : focus—नाभि (गणित), फ़ोकस (भौतिकी), उद्गम केन्द्र (भूगोल) । (५) रूपान्तर सम्बन्धी, जैसे : विस्तारसे विस्तृत बनता है, न कि विस्तारित । (६) सहप्रयोग सम्बन्धी, जैसे : secular life ऐहिक जीवन, secular politics धर्मनिरपेक्ष राजनीति, secular power लौकिक शक्ति ।

प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि किस क्षेत्रमें कौन-सा पर्याय उपयुक्त होगा ।

पुस्तकके अन्तमें ये पारिभाषिक शब्द-सूचियां दी गयी हैं : (१) भिन्न-भिन्न विषयोंके नाम, (२) प्रशासन, (३) मानविकी, (४) विज्ञान ।

ये सूचियां विद्यार्थियोंके लिए काफी उपयोगी हैं । छापेकी गलतियाँ अपेक्षाकृत कम हैं । यदि मूल्य कुछ कम होता तो अच्छा था । पता नहीं लेखकोंने अध्यायोंका संख्यांकन क्यों नहीं किया ।

□ डॉ. व्रजमोहन

हिंदीका समसामयिक व्याकरण

लेखिका : यमुना काचरू; प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., ४ कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया-१, नयी दिल्ली—२८ । पृष्ठ : १३७; डिमा. ८०; मूल्य : ३२.०० रु. ।

यह हिंदी व्याकरणकी चिरप्रतीक्षित और बहुविज्ञापित पुस्तक है । यह स्वाभाविकभी है क्योंकि इस पुस्तककी लेखिका 'विश्वप्रसिद्ध भाषाविज्ञानी और भाषाविद्' हैं । इसमें हिंदीके शिष्ट रूपों और प्रयोगोंके विवेचनका प्रयास किया गया है । किन्तु लेखिका सब शिष्ट रूपों और प्रयोगोंके विवेचनका दावा नहीं करती । वह मानती है, 'यह व्याकरण आंशिक है, प्रामाणिक हिंदी इसके अध्ययनका विषय है ।' (पृ. २) । यह व्याकरण ग्रन्थ मॉडल सापेक्ष है किन्तु किसी मॉडलका आश्रय नहीं लिया गया है । बल्कि इस दृष्टिसे यह मॉडलोंकी खिचड़ी है । किन्तु इसे लचीलापन कहकर गुणके रूपमें बताया गया है । लेखिकाके ही शब्दोंमें ···पूरा वर्णन रचनान्तरणात्मक व्याकरणपर आधारित नहीं, कुछ अंशोंके लिए कारक सिद्धांत (केस ग्रामर), व्याकरणिक संबंध सिद्धांत (रिलेशनल ग्रामर), प्रजनक अर्थ प्रक्रिया सिद्धांत (जेनरेटिव समेंटिक्स) आदिकी संकल्पनाओंका भी प्रयोग हुआ है । (पृ. ३)

यानी आद्यंत एकही मॉडलके निर्वाहकी जहमत लेखिका ने नहीं स्वीकार की है। विषय प्रतिपादनमें उसने नवीनताका दावा किया है। 'हिंदी क्रियापदों, प्रेरणार्थक वाक्यों, वाच्यों एवं सम्बन्ध परसर्ग युक्त उद्देश्यवाले वाक्यों, विशेषण उपवाक्यों, मिश्र और सयुक्त वाक्योंपर यहाँ जो कुछ कहा है, वह सर्वथा नवीन तो नहीं है, पर इतने स्पष्ट रूपमें पहले कभी कहा गया था, इसमें संदेह है।···संयुक्त क्रियाओं और क्रियाओंका व्याकरण और अर्थकी दृष्टिसे विवेचनभी काफी हदतक नया है' (पृ.३)। किन्तु नया कहते-कहते लेखिका जब देखती है कि बात ठिकाने नहीं लग रही है तो तुरन्त स्वीकार कर लेती है कि 'इसपर अभी शोधकी काफी गुंजाइश है।' यह वाक्य पुस्तकमें इतनी बार आया है कि अनायास याद हो जाता है।

पुस्तकमें कुल आठ अध्याय हैं। अन्तमें एक लघु परिशिष्ट है। लम्बी संदर्भ ग्रंथसूचीके बाद शब्दानुक्रम दिया हुआ है। पहले अध्यायमें विषयकी सीमाका उल्लेख है। संक्षेपमें हिंदी व्याकरणकी परम्परापर प्रकाश डाला गया है। दूसरे अध्यायमें प्रजनक व्याकरणका परिचय दिया गया है। प्रजनक व्याकरणके मूल सिद्धांतोंका उल्लेख किया गया है और इसके स्वरूपपर प्रकाश डाला गया है। पदबन्ध संरचना नियम, रचनान्तरण नियम, मूलाधार संरचना, बाह्य संरचना, अर्थ विवेचनके नियम स्वन-प्रक्रियाके नियम आदि विषयोंकी धारणाको स्पष्ट करनेका प्रयास किया गया है। चॉमस्की १९६५ के मॉडलके सबंध में जो प्रमुख आपत्तियां उठायी गयी हैं, उनमेंसे कुछकी चर्चाभी लेखिकाने की है। तीनसे लेकर छह तक के अध्यायोंमें वाक्यके विभिन्न घटकोंका वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम संज्ञाकी पदबंध संरचनाका वर्णन किया गया है। संज्ञापदके घटक, संज्ञाके अभिलक्षण, सर्वनाम आदि पर विचार किया गया है। यहीं संज्ञा पदबंधके घटकके रूपमें विशेषण उपवाक्यों एवं संज्ञा उपवाक्योंपर कुछ विस्तारसे विचार किया गया है। चौथा अध्याय क्रिया पदबंधका है। क्रियाके लगभग सभी पक्षोंपर विचार किया गया है। वाच्य, अर्थ, पक्ष, काल, प्रेरणा, सहकारी क्रियाएं इन सबपर लेखिकाने विचार किया है। वाच्य और प्रेरणार्थक क्रियाओंपर उसने विस्तारसे लिखा है और नयी सामग्री देनेका प्रयास किया है। प्रकार्य और रूपके आधारपर क्रियाओंका वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। अकर्मक, सकर्मक आदिकी चर्चाके साथ उन क्रियाओंकी भी गणनाकी गयी है जो को-टाइपके वाक्योंको जन्म देती है। नामबोधक क्रियाओंका भी उल्लेख है। अध्याय पाँच और छहमें क्रमशः विशेषण पदबंधकी चर्चा है। सातवें अध्यायमें साधारण वाक्योंपर विचार किया गया है। निश्चयार्थ और आज्ञार्थक साधारण वाक्योंके ये दो भेद करके पुनः निश्चयार्थके भीतर लेखिकाने चार प्रकारके वाक्योंकी गणना की है; निषेधार्थक, प्रश्नार्थक, संबंधवाचक और स्थिर सत्य या साधारण नियम सूचक। रामके एक लड़की है,खानसाहबके पास कई मकान हैं,आदि संबंधवाचक वाक्य हैं। बाघ जंगलमें रहता है, सूरज पूरबमें उगता है, आदि साधारण नियमसूचक वाक्य हैं। वस्तुतः इन दोनों प्रकार के वाक्योंकी चर्चा निश्चयार्थक, प्रश्नार्थक, आज्ञार्थक आदि वाक्योंके साथ करना अस्थानस्थ है। इसी अध्याय में पदक्रमकी भी चर्चा की गयी है। आठवें अध्यायमें जटिल वाक्योंपर विचार किया गया है। मिश्र और संयुक्त वाक्यके भेदोपभेदोंका वर्णन किया गया है। संबंध-सूचक और समुच्चयबोधक शब्दोंकी यथास्थान सूचियां दी गयी हैं। अंतमें प्रत्यक्ष और परोक्ष कथनपर विचार किया गया है। हिंदीपर अंग्रेजीका दुष्प्रभाव देखना हो तो परोक्ष कथनका प्रसग सबसे अधिक उपयुक्त होगा। वाक्य (११४१) और (११४२) से अभिप्रेत अर्थ नहीं निकलता। वाक्य (११४१) के आधारित वाक्यमें 'मैं' की जगह 'तुम' और 'वह' की जगह 'मैं' रखकर पढ़नेसे अभि-प्रेत अर्थ प्राप्त होता है। इसी तरह दूसरे वाक्यमें भी यथेष्ट परिवर्तन करनेसे ही अभीष्ट अर्थ प्राप्त होता है।

पूरी पुस्तकपर एक विहंगम दृष्टि डालनेके बाद अब हम इसके कुछ प्रसंगोंको उठायेंगे और यह दिखानेका प्रयत्न करेंगे कि विषय प्रतिपादन कितना तथ्यात्मक और निर्भ्रांत है। सबसे पहले विशेषण उपवाक्योंपर विचार करें। मर्यादिक(Restrictive)और सामानाधिकृत(appositive) विशेषण उपवाक्योंके अंतरको न पहचानते हुए लेखिकाने दोनों प्रकारके विशेषण उपवाक्योंको मर्यादिक मानकर उनकी संरचनापर विचार किया है। (दे. पृ. २८-३२)। लेखिकाके अनुसार मर्यादक विशेषण उपवाक्य कभी निश्चित संज्ञापदकी व्याप्तिको मर्यादित करता है कभी अनिश्चित संज्ञापदकी व्याप्तिको। जब विशेषण उपवाक्य अनिश्चित संज्ञापदकी व्याप्तिको मर्यादित करता है तब वह मुख्य उपवाक्यका परवर्ती होता है। लेखिका के वाक्योंको हम उन्हीं नम्बरोंके साथ उद्धृत कर रहे हैं।

१२४. कोई/एक लड़का आया था जो रमासे मिलना चाहता था।

१२५. मैं एक ऐसी लड़कीसे मिलना चाहती हूं जो रूसी जानती हो।

१२६. मुझे एक ऐसी किताब चाहिये जिसमें रंगीन तस्वीरें हों।

१२७. उसने कोई/एक गुलदान खरीदना चाहा था जो शायद बड़ा मंहगा था।

१२८. वह शायद किसी ऐसे देशका रहनेवाला है जो महीनों बर्फसे ढका रहता है।

उपर्युक्त वाक्योंमें लेखिकाके अनुसार एकही प्रकार के विशेषण उपवाक्योंका प्रयोग हुआ है। सबको मर्यादक मानती है। किन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं है। वाक्य (१२५) और (१२६) में विशेषण उपवाक्य मर्यादक है और अपदार्थक (non-referential) हैं। रूसी जाननेवाली कोई लड़की हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। इसी तरह रंगीन तस्वीरोंवाली कोई पुस्तक हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती है। इन विशेषण उपवाक्योंकी समापिका क्रियाओंको भी देखिये। दोनोंमें क्रियाएं इच्छार्थक वृत्ति (optative mood) में हैं। शेष वाक्यों (१२४, १२७, १२८) में समानाधिकृत विशेषण उपवाक्य हैं और ये पदार्थक (referential) हैं। लड़का, गुलदान और देश की सत्ता निश्चित है। 'शायद' के अर्थका अन्वय देशकी सत्तासे नहीं है बल्कि बर्फसे ढके रहनेसे है। इन उपवाक्यों में 'जो' सर्वनाम है, सार्वनामिक विशेषण नहीं है और सर्वनामका संज्ञासे पूर्व प्रयोग करना असंगत है। इसलिए समानाधिकृत विशेषण उपवाक्य मुख्य उपवाक्यसे पहले नहीं आते। यही कारण है कि वाक्य (१२९) गलत है।

१२९. जो लड़का रमासे मिलना चाहता था वह कोई/एक आया था।

मर्यादक विशेषण उपवाक्यका 'जो' सार्वनामिक विशेषण है और संज्ञाके साथ-साथ आता है। यदि मर्यादक विशेषण उपवाक्य पूर्ववर्ती है तो 'जो' के साथ संज्ञा दिखायी पड़ती है और यदि वह परवर्ती है तो संज्ञा सामान्तया लुप्त हो जाती है। लोप न करें तो भी कोई विशेष हानि नहीं है। (१२४) में 'जो' के बाद संज्ञाका प्रयोग नहीं होगा जबकि (१२५) और (१२६) में 'जो' के बाद संज्ञाओंका प्रयोग हो सकता है। लेखिका स्वयं वाक्य (१३०) में समानाधिकृत विशेषण उपवाक्य मानती है।

१३०. कोई/एक लड़का, जो रमासे मिलना चाहता था, आया था।

वाक्य (१२४) और(१३०) में क्रमके अंतरको छोड़कर और क्या अंतर है?

लेखिकाने लिखा है कि यदि संज्ञापद अनिश्चित होता हैं तो मर्यादक विशेषण उपवाक्यका परवर्ती होना अनिवार्य है किन्तु नीचेके वाक्योंमें संज्ञापद अनिश्चित हैं फिर भी विशेषण उपवाक्य परवर्ती नहीं है।

१. जो लड़की रूसी जानती हो, मैं उससे मिलना चाहती हूं।

२. जिस पुस्तकमें रंगीन तस्वीरें हों मुझे वह चाहिये।

२. जिस मुहल्लेमें तुम रहोगे, उसी मुहल्लेमें मैं भी रहूगा।

वस्तुतः मर्यादक विशेषण उपवाक्योंमें निश्चित और अनिश्चित संज्ञापदोंको लेकर भेद करनाही गलत है। जहां लेखिका संज्ञापदको निश्चित मान रही है वहां वस्तुतः संज्ञापद निश्चित नहीं है। बल्कि वह समुच्च (set) निश्चित है जिसमें से अभीष्ट संज्ञापदको निश्चित अथवा मर्यादित किया जाता है। जो संज्ञापद पहलेसे निश्चित है, उसे कैसे मर्यादित किया जा सकता है? मर्यादक विशेषण उपवाक्यके पदार्थक (referential) और अपदार्थक(non-referential) ये दो भेद किये जाते हैं जिसकी स्पष्ट धारणा लेखिकाको नहीं है। न ही उसे मर्यादक और समानाधिकृत विशेषण उपवाक्योंकी पहचान है। समानाधिकृत विशेषण उपवाक्योंमें पदार्थक और अपदार्थकका भेद अनावश्यक जान पड़ता है।

इसी अध्यायमें थोड़ा आगे बढ़नेपर संज्ञा उपवाक्यों का वर्णन मिलता है। यह प्रसंगभी उलझा हुआ है। लेखिकाके अनुसार निम्न दोनों वाक्योंकी मूलाधार संरचना एक है, (दे. पृ. ४१)।

४. शीला मानती है कि महिमा उसकी बहन है।

५. शीला महिमाको अपनी बहन मानती है। (वाक्य. २२३)

(५) वाक्यमें महिमा' उत्थापन (raising) द्वारा कर्मके स्थानपर आया है। (४) में उत्थापनका नियम लागू नहीं हुआ है। किन्तु लेखिका निम्न दोनों वाक्योंकी मूलाधार संरचनाको एक नहीं मानती।

६. रावण मानता था कि विभीषण उसका भाई है। (वाक्य २३९)

७. रावण विभीषणको अपना भाई मानता था। (वाक्य २४०) वह (६) के अर्थमें (७) को व्याकरणसम्मतभी नहीं मानती। आखिर (४)-(५) और (६)-(७) इन दोनों युग्मोंमें परस्पर इतना भारी अंतर कैसे हो गया? आगे लेखिका कहती है कि यदि 'देखना' का

संज्ञा उपवाक्य २२६ के अनुरूप हो तो रेजिंगकी प्रक्रिया लागू नहीं होती। उसने यह उदाहरण दिया—

८. (i) मैंने लड़कीको चालाक देखा (वाक्य २३२)
किन्तु इन वाक्योंका क्या होगा?

९. मैंने लड़कीको	उदास चिंतित परेशान	देखा।

वस्तुत: इन सारी असंगतियोंका बीज उत्थापनकी प्रक्रिया है! जिन दो वाक्योंको यह प्रक्रिया जोड़ती है उनकी मूलाधार संरचना एक नहीं है। लेखिकाने इस प्रसंगमें जितने उदाहरण दिये हैं उन सबमें कि उपवाक्य भावात्मक (abstract) और तथ्यात्मक हैं। रेजिंगको लागू करतेही यह बात खत्म हो जाती है। 'समझना' का कर्म (२२९) में भाववाचक है किन्तु रेजिंग द्वारा इसका भाववाचकत्व खतम हो जाता है। इसलिए (२३०) गलत है। 'मानना' का प्रयोग जिस अर्थमें (२३९) में हुआ है, उस अर्थमें (२४०) गलत होगा ही। वास्तवमें समझना, मानना, पाना, देखना आदि क्रियाओंका प्रयोग एकसे अधिक अर्थोंमें होता है। (२३३) और (२३४) में 'देखना' का प्रयोग भिन्न अर्थोंमें हुआ है। आपने क्या देखा? इसके उत्तरमें (२३३) आयेगा।

इसीतरह औरभी बहुतसे प्रसंग हैं, जो चाहे जो हों, निर्भ्रांत नहीं है, जिसका आमुख दावा किया गया है। पृ. २४ पर लेखिका निर्धारकको संज्ञा पदबंधका अनिवार्य घटक बताती है किन्तु अगले पृष्ठके अंतिम अनुच्छेदके आरम्भमें वह कहती है कि निर्धारकको संज्ञा पदबंधका घटक मानना आवश्यक नहीं है। लेखिका अपने मनमें क्या रखकर यह कह रही है इसका अनुमान हम कर रहे हैं। किंतु इसे अनुमानपर नहीं छोड़ना चाहिये था। (+निर्धारक)के अंतर्गतही सभी प्रकारकी संज्ञाओं एवं सर्वनामोंका समावेश हो जाता है फिर [—निर्धारक] का उपयोग कहाँ होगा? पृ. २९ पर यह दिखाया गया है कि रचनांतरण द्वारा संज्ञापद२ के साथ 'ज' जुड़ता है और संज्ञापद१ के साथ 'उ' जुड़ता है। किन्तु अगलेही पृष्ठपर जो रचनांतरण नियम दिये गये हैं, उनमें संज्ञापद१ के साथ 'ज' और संज्ञापद २ के साथ 'उ' दिखाया गया है। पृ. (२९) पर संज्ञापदको नम्बर देते समय उत्तराधरक्रम (hierarchy) मनमें काम कर रहा है और पृ. (३०)पर नम्बर देते समय रैखिक क्रम (linear order) मनमें काम कर रहा है। जबकि रैखिक क्रम दिखानेके लिए अलगसे नम्बर पड़े हुए हैं। पृ. ५८ पर कहा गया है कि हिंदीमें वाक्य संरचनाकी दृष्टिसे प्रेरणार्थक क्रियाओंके चार उपवर्ग माने जा सकते हैं। अभीतक हिन्दी वैयाकरणोंकी दो ही प्रकारकी प्रेरणार्थक क्रियाओंका पता था और उनमेंभी एकपर प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। नीचे क्रियाओंका जो प्रस्तुतीकरण है, वह भी भ्रामक है। पृ. १२० और १२१ पर समुच्चयबोधक अव्ययोंके लक्षण बताये हैं। लक्षण (अ) में बतलाया गया है कि मिश्र वाक्यमें आधायित उपवाक्य मुख्य वाक्यके पहले नहीं आ सकता। इसका क्या मतलब है, समझमें नहीं आता। स्वयं लेखिकाने ऐसे कितने उदाहरण दिये हैं, जहाँ अ धायित वाक्य मुख्य वाक्यके पहले है। तालिकामें लक्षण दिखलाते समय लेखिकाने स्वयं इस बातको स्वीकार कर लिया है। 'पर' वर्गमें 'अ' को(+) दिखानेका क्या अर्थ है? इत्यादि-इत्यादि।

समाप्त करनेसे पहले हम एक और बातकी ओर संकेत करना चाहते हैं। लेखिकाने ऐसे-ऐसे हिंदी शब्दोंके अंग्रेजी पर्याय कोष्ठकमें दिये हैं कि हंसी आती है। कुछ उदाहरण देखिये —वैकल्पिक (आप्शनल),विस्तार (एक्स्पेंशन), शक्तियुक्त (पावरफुल), सरलता (सिंप्लिसिटी), स्वाभाविक प्रक्रिया (नेचुरल प्रासेस), तर्क (आर्ग्यूमेंट), स्रोत (सोर्स), संक्षिप्त (रिड्यूस्ड), काल (टेन्स), अनुच्छेद (पैराग्राफ), क्रम (आर्डर), नयी सूचना (इन्फर्मेशन) इत्यादि। यानी भाव यह है कि बिना अंग्रेजीके सहारेके हिंदी खड़ी नहीं हो सकती।

□ चतुर्भुज सहाय

मत—अभिमत

यह 'प्रकर' का ऐसा स्तम्भ है, जिसमें किसीभी समीक्षापर आप अपनी प्रतिक्रिया भेज सकते हैं।

आपकी प्रतिक्रियाएं पुस्तकको अधिक चर्चाका विषय बनाती है। यहभी संभव है कि आपकी प्रतिक्रिया समीक्षक को पुनर्विचार और पुनर्मूल्यांकनकी प्रेरणा दे।

इसलिए अपने विचार अथवा प्रतिक्रियाएं समय-समयपर भेजते रहें।

—सम्पादक

प्रतिवेदन

सोजालोबो

लेखक : ललित शुक्ल; प्रकाशक : यूनाइटिड बुक हाउस, ४८७२, चान्दनी चौक, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : १०२; क्रा. ८१; मूल्य : १५.००रु.।

यह लेखकका पहला 'रिपोर्ताज' (प्रतिवेदन) संकलन है। 'रिपोर्ताज' हिंदी गद्यकी अपेक्षाकृत नवीन विधा है। यह अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' का समानार्थी फ्रांसीसी शब्द 'रिपोर्ताज' ही है जिसमें किसी स्थान, घटनाका यथा-तथ्य वर्णन किया जाता है। महादेवीजीने इस नयी विधा को समझाते हुए लिखा है, 'रिपोर्ट या विवरणसे सम्बद्ध रिपोर्ताज समाचारपत्र युगकी देन है और उसका जन्म सैनिकोंकी खाईयोंमें हुआ है। समाचारपत्रोंके प्रतिनिधि (रिपोर्टर) युद्ध क्षेत्रमें उपस्थित होकर प्रत्यक्षदर्शीके रूप में जो सैनिक स्थितिका विवरण प्रस्तुत करते थे उसीमें साहित्यिक रिपोर्ताजके अंकुर मिलेंगे। रिपोर्ताजमें प्रत्यक्ष दर्शनके साथ ऐसी तटस्थता आवश्यक हो जाती है जिससे श्रोताको गणितके अंकोंके समान अतर्क्य स्थिति-परिचय मिल सके। साहित्यमें रागात्मक तत्त्वकी उपस्थितिके कारण रिपोर्ताज प्रायः संस्मरणकी रेखा पार कर लेते हैं।' इस दृष्टिसे पाकिस्तानसे हुई पिछली लड़ाईके अवसरपर डॉ. धर्मवीर भारतीके रिपोर्ताज उल्लेखनीय हैं। 'रिपोर्ताज'की विधामें कलात्मक रिपोर्ताज कम ही लिखे गये हैं। ललित शुक्लका प्रस्तुत संकलन इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण माना जायेगा कि इसमें लेखकका 'लक्ष्य श्रोता या पाठकको किसी भाव स्थितिमें जागृत करना है।'

ये रिपोर्ताज समय-समयपर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। लेखकके अनुसार 'इन रचनाओं में रास्ता है, स्थान है, समाज है और प्रकृति है। मनुष्य अपनी संगति-विसंगतिके साथ हर पल यहाँ उपस्थित है। संकलनमें क्रमशः सोजालोबो, रेलिंगपर टिकी हुई दुनियां, चन्द्रमाके फूल, बीता हुआ पर्याय, एक रात जलपाखीकी, क्रासिंगवाली गुमटी, चलते-फिरते चेहरे, लीला रामचंद्र की, मीठा-मीठा डाभ रिपोर्ताज हैं।

शैलीका अपनापन पाठकको हमेशा अपने साथ रखता है। विवरण कथात्मक होते हुएभी कथा नहीं, हो सकता है लेखक द्वारा लिखी गयी डायरीपर आधारित हों, पर डायरी नहीं और सर्वोपरि यात्रा वर्णनपर आधारित होते हुएभी यात्रा-वृत्तान्त नहीं। यात्रावृत्तसे भ्रम हो सकता है पर इनमें बल किसी स्थान विशेषकी तथ्यात्मक एवं कलात्मक रिपोर्टपर होनेके कारण 'रिपोर्ताज' की शैली है।

प्रथम रिपोर्ताज 'सोजालोबो' कलात्मक कृति है। जिसके आधारपर संकलनका नामकरण किया गया है। 'सोजालोबो' गोवाके कलिंगुट कास्बेका एक होटल है। यह पोर्चुगीज भाषाका शब्द है। समुद्रके हाशिएपर तालपत्र और बेंत आदिसे बना यह होटल सैलानियोंका आकर्षण केन्द्र है। इसका विवरण इस प्रकार प्रारम्भ होता है :

'समुद्री रेत लम्बाईमें मीलों तक पसरी है। और चौड़ाई ! ज्यादा नहीं है। बायीं ओर सिर धुनता सागर और दाहिने झाऊकी शक्लके छोटी-छोटी पत्तियोंवाले वृक्ष।' (पृ. ९)

लेखकके वक्तव्यके अनुसार 'प्रकृतिके अनुपम दृश्य भरे पड़े हैं, जिनमेंसे कुछ यहाँ द्रष्टव्य हैं :

'सामने पश्चिमी आसमानको बादलोंने टुकड़ोंमें बाँट दिया है। हल्के बादल हैं इसलिए सिमट नहीं पा रहे हैं। जैसे किसीने अधसूखा ब्रश फेर दिया हो पूरे दिगन्तपर।'

सागर और आसमानकी मिलन-रेखापर सूर्य रख उठा है। रेखा काली-काली, उसके ऊपर चमकता हुआ ताम्रवर्णी सूर्य। अगर अब कुछ क्षण देख नहीं लिया जाता तो गोला सागरमें डूब जायेगा। रोज डूबता है ऐसे।' (पृ.१३)

लेखकने समाजके यथार्थ स्वरूपको पहचाना है और मौका पातेही वह मनोभावोंको प्रकट करता हुआ चोट करता है :—

गरीबी और भूखके सागरसे निकले हुए असंख्य हाथ और उदास-विवश हथेलियाँ शून्यमें खुलीही रह जाती हैं। मानवके कल्पना-प्रभु आधे हाथवाले जगन्नाथ बड़ी-बड़ी

आँखोंसे यह दृश्यभी देखते हैं और प्रतिदिन देखते हैं। (पृ. ३१)

विश्वास और भक्तिकी बैसाखियोंपर सारी पंडा कल्चर टिकी हुई है। (पृ. ३१)

यह कोठियोंकी सफेदी हमारी मेहनत है। ये सब जानते हैं जानबूझकर हमें सताते हैं। (पृ. ४६-४७)

चेहरेपर मेहनतकी छाया है, तकलीफोंकी उदासी है। (पृ. ७५)

जनता बेचारी है, भोली है। उसे छलनेके लिए चोर, उचक्के, बदमाश, अफसर, राजनेता सभी तैयार हैं। तैयारही नहीं हैं छला है।...जनता प्रकृतिके क्रोधके सामने असहाय, असमर्थ और विवश दीखती है। (पृ. ७७)...

बुझा हुआ चेहरा, सूखे बाल,मुलमुलाती छोटी आंखें, ललचायी मनस्थितियां, गन्दे कपड़े सभी मिलकर गांव-गिरांवसे आनेवाले छत्रोंको परिभाषित करते थे। (पृ. ८१)

विकास वह है जिसमें जीवन सांस ले सके। विकास वह है जिसमें लोगोंको पेटभर अन्न मिले, कपड़ा मिले, शिक्षा मिले। (पृ. ८२)...

इनके चेहरे मायूसीकी मूर्तियां हैं, असमर्थताके रूपक हैं और आजाद सरकारके मुंहपर करारा तमाचा हैं। (पृ. ८३)

भाषा और विषयकी प्रस्तुति पाठकके मनको अपनी ओर आकर्षित करती है। दृश्य जगत्का आकलन बहुत आसान नहीं है। इस बहुरंगी दुनियाँमें जहाँ-जहाँ लेखक का मन रमा है वहाँ-वहाँके चित्र उसने अपनी लेखनीसे दिये हैं। चित्रात्मकता विशिष्ट गुण है, जिसके लिए अप्रस्तुत योजनाका सहारा लिया गया है :—

—अब एक सिरेपर पहाड़ और उसकी कमरमें लिपटी बेल्ट (पृ. १०)

— क्या मचर-मचर करता है पम्पिंग मशीन जैसा। (पृ. ३७)

—फेस ऐसा कि जैसे जामुनपर सफेद पाउडर चिपक गया हो। (पृ. ५५)

—गहरी नीली जलराशिपर धवलफेनकी चित्रकारी। (पृ. ५७)

—गाता तो ऐसे कि जैसे गंदा नाला चिल्लाता हो। (पृ. ६१)

—हरसिंगार-सी खिली हुई लड़कियां बसोंमें भरकर आयीं। (पृ. ६५)

एक रेखाचित्र द्रष्टव्य है :—

इकहरे बदनके साथ भारी सिरकी संधि, दाढ़ीके लम्बे विरल बाल, चेहरेपर फीकापन, पर आँखोंमें अनोखी चमक, होठोंपर कत्थे-चूनेके मिश्रणसे घनीभूत लालिमा वाली कायाको जब मैं सीढ़ियोंपर रिसीव करता हूं तो पुलक और आश्चर्यसे दिल भर जाता है।

स्थान-स्थानपर कुछ सूक्तियाँभी हैं :—

विषमता आदमीको मानसिक दृष्टिसे हीन करती जाती है।

कोई दिमाग नहीं होता भीड़के।

बूंद बूंदसे सरोवर भर जाता है।

चलते-चलते नये-पुराने साहित्यकारोंपर छींटाकसी भी हैं 'प्रतिबद्ध लेखनका हिमायती हां में हां मिलाता है।' (पृ. १८), प्रयोगवादी इतने कि हिंदीके प्रयोगवादियोंको मात देनेवाले।' (पृ. १६), अगार रूप संपदा को आँखोंकी मंजूषामें भरवाकर हमारे पुराने कवियोंने संतोषकी सांस ली है।

इन रिपोर्ताजोंमें एकसाथ पाश्चात्य रंगीनियोंसे सरोबार गोवा, कला-धर्म तथा अध्यात्मसे भरपूर पुरी तथा कोणार्क तथा भारतीय गांवोंके जीवनकी झांकियां मिलती हैं। यात्रापर आधारित होते हुएभी ये ललित शैलीमें लिखे ऐसे रिपोर्ताज हैं जिनसे रांगेय राघवके 'तूफानोंके बीच' से प्रारम्भ हुई इस विधाका उज्ज्वल भविष्य परिलक्षित होता है। साफ-सुथरे मुद्रण तथा आकर्षण गेट-अपके लिए प्रकाशकभी बधाईका पात्र है।

□ डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

[२]

रिपोर्ताजके शिल्पमें आधुनिक मनका ग्राफ निहित होता है। इसे इस बीच एक स्वतंत्र साहित्यिक विधाका स्थान प्राप्त हो गया है। यह इसकी लोकप्रियताका प्रमाण है। ऐसे समयमें इस विधाके नये प्रकाशन मूल्यांकनकी मांग करते हैं। डॉ. ललित शुक्लके नौ ताजे रिपोर्ताजों के संकलन 'सोजालोबो' का तटस्थ मूल्यांकन करते समय समीक्षकका ध्यान इस ओर जाता है कि लेखक संकलित रिपोर्ताजोंमें घटना, स्थल, दृश्य, यात्रा, वस्तु व्यक्ति और प्रदेशको, जिसे वह रिपोर्ताजकी पृष्ठभूमि बनाता है, कहींभी वर्णनात्मक स्तरपर नहीं प्रस्तुत करता और न ही मात्र वैचित्र्यको अपनी शैलीका कुल उपजीव्य बनाता है। वास्तवमें वह उक्त विषयोंके माध्यमसे औसत मनुष्य

के सम्बन्ध, सम्वाद और आन्तरिक प्रयोजनको भावात्मक ढंगसे प्रस्तुत करता चलता है। भावात्मकता रिपोर्ताजको साहित्यिक स्वादसे सम्पन्न करती है। संकलनकी प्रथम रचना 'सोजालोबो' में कलिगुट (गोआ) का सोजालोबो नामका एक होटल है। उस होटलमें अपनी उपस्थितिके परिप्रेक्ष्यमें लेखक आधुनिक हिन्दी संस्कृतिकी विकृतियोंसे टकराता है। सागर सौन्दर्य, समुद्रकी रेतीकी छवि और जहाँ 'रोटीकी कहानी नहीं है' ऐसे समाजके सौन्दर्यके बीच अपने आन्तरिक विचार-भाव संघर्षोंको व्यक्त करता चलता है। 'एक रात जल पाखी' में भी गोआ प्रदेशकी ही रूपाभाको पृष्ठभूमि बनाया गया है। प्रगतिशील विचारधाराका व्यक्ति जब प्रकृतिकी सुन्दरता-सुकुमारता में डूबता है तो उसे किस प्रकारकी अनुभूति होती है, रिपोर्ताजमें इसका आभास मिलता है। ऐसा लगता है कि आधुनिक दृष्टि प्रकृतिके आगे नतशिर होनेके लिए बराबर विवश होती हैं।

लेखककी एक रिपोर्ताज रचना 'चन्द्रमाके फूल' में एक सर्वथा नयी स्थितिकी रपट है। पुरीसे भुवनेश्वरकी यात्राके बीच ट्रेनकी गतिको शब्दोंकी गतिमें ढालकर लेखक प्रगतिशील बुद्धिजीवीकी संवेदनाओंका ब्यौरा पेश करता है। ऐसा नहीं कि रिपोर्ताजोंकी ऐसी पृष्ठभूमिका चुनाव किसी विशेष दृष्टिसे हुआ है। चित्र-विचित्र स्थितियों और परि-दृश्योंमें कहीं मनमौज है तो कहीं विवशता है और कहीं इतिहास-भूगोल उपजीव्य हैं तो कहीं जनजीवन। 'लीला रामचन्द्रकी' में लेखकने कस्बेकी रामलीलाकी विसंगतियों को देखा है तो 'चलते फिरते चेहरे' में रानीगंज बाजार को। उसने दूकान, लोग, भीड़ बिक्री और सौदा सबको जीवन्त व्यक्तित्व प्रदानकर प्रस्तुत किया है। बाजारके लोगोंकी पहचानके बहाने अपने मुल्ककी समसामयिक पहचानको उभार पानेमें वह सफल हुआ है। चित्रणकी यथार्थमूलक दृष्टि और शिल्पकी संवेदनीयता दोनोंने मिलकर 'कासिगवाली गुमटी' शीर्षक रिपोर्ताजको बहुत प्रभावशाली बना दिया है। रशीदा प्रतिवेदनमें उभरकर पाठकोंके मनपर छा जाती है। इस प्रकार डॉ. ललित शुक्लने रिपोर्ताज विधाको प्रतिष्ठित करनेमें आलोच्य संग्रहके द्वारा महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

☐ विवेकी रा[illegible]

उपन्यास

गाथा शेखचिल्ली

लेखक : रवीन्द्र वर्मा; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १०३; क्रा. ८१; मूल्य : १६.०० रु.।

श्री रवीन्द्र वर्माने अपने लघु हास्य उपन्यास 'गाथा शेखचिल्ली' में युवक शेखचिल्लीकी सामान्य संघर्ष-कथा को, जो उत्तरार्द्धमें विलास-कथा बनने लगती है, ऊर्जापूर्ण शिल्पके माध्यमसे रोचक बनानेका प्रयास किया है।

श्री शेखचिल्लीने प्रारम्भिक शिक्षा ऐसे विद्यालयमें ली, 'जिसमें फर्शकी जगह धूल थी और जिसके हेडमास्टर की चेचकके दागोंसे भरी खूंखार सूरत उनके मनमें बैठ गयी।' (पृ. १२) घरसे निकलकर जब वे स्कूलके सँकरी गलीसे मुड़ते—जिसमें सुबह धूप नहीं आती थी पेशाबकी गन्ध आती थी—एक दहशत सीनेमें फिर लगती।' (पृ. १२)

ऐसे मुहल्लों, गलियोंसे घिरे स्कूलकी ही वह घटना है 'जिसमें वह (चिल्ली) भावी श्रेष्ठीके साथ गंदा खेल रहा था, ऊपर अटारीमें।' (पृ. १३)

और फिर किशोरवय सरक आयी और उन्हें इलहाम हुआ कि 'घरमें शीतयुद्धकी स्थितिके मूलमें पैसा है गरीबी हटाओ! तो यही तय पाया कि खूब पढ़ो, और चकाचक नौकरी प्राप्त करो और घरके दुख हरो, और

जय जगदीश हरे।' (पृ. १३)

गर्मियोंमें चिल्ली परिवारके साथ गांव गये। दूरकी एक बहिन 'रमा जिया' भी गांव आ गयी। यहीं प्रेम शुरू हुआ और कुछ दिन बादही चिल्लीके इंजीनियर बननेके स्वप्नको भंगकर, वह चली गयी और फिर नजर नहीं आयी।

तत्पश्चात् चिल्ली प्रयाग विश्वविद्यालय गये (पैसेके अभावसे ग्रस्त घर उन्हें वहाँभी कैसे भेज सका?) वहाँ होस्टलके रैगिंग-पर्वमें उन्हें भाग लेना पड़ा।

कपड़े उतरवाकर सीनियर्सने पाया कि चिल्ली रंगीन पट्टेका पायजामा पहने हैं।

'राजा बाबू ऊनीवस्टी माँ पढ़ि हैं... यहां जांघिया सफेद होता है। भूल जा अपना घरेलू बुदेलखण्ड। ऐसे कितने जांघिए हैं तेरे पास?

– तीन

– कल सवेरे तीनोंको संगममें बहा देना जहां गोरी गंगा और सांवली जमुना अपनी छातियोंसे मिलती हैं, समझे। और दो तीन इत्र डालना न भूलना—अंतिम संस्कार पूरा हो जायेगा।' (पृ. २१-२२)

जो लोग इस यंत्रणासे गुजरे हैं जानते होंगे कि यही ऊटपटांग घटता है वहां।

हॉस्टलका रूममेट रामदास चिल्लीको सिगरेट और बियरका स्वाद चखवाता है।

विश्वविद्यालयमें कम्पटीशनके लिए विद्यार्थी कितने जी-जानसे जुटते हैं इसका सटीक उल्लेख : 'आहिस्ता-आहिस्ता शेखचिल्लीने सूंघा कि छात्रावासके हर दूसरे कक्षमें भावी कलक्टर बसता है। सहसा उन्होंने अपनेको इतने बेशुमार हाकिमोंसे घिरा पाया। ये हाकिम लोग अंग्रेजी साहित्यके महान् अध्येता थे, अंग्रेजी पीते थे, अंग्रेजी हंसते थे, अंग्रेजी रोते थे, अंग्रेजी गाते थे। एक चमत्कार बरपा था।' (पृ. २६)

श्री चिल्ली हॉस्टलके सामाजिक सचिवभी चुने गये। जुगत भिड़ाकर वह विश्वविद्यालयकी आला संस्था 'सुनहरी पंछी' के सदस्यभी बन गये, जिसमें विश्वविद्यालयके चोटीके लड़के थे। या तो वे बड़े घरोंके सपूत थे और या परीक्षाओंमें इतने आबदार मोती साबित हो चुके थे कि उनका बड़े घर बनाना निश्चित था। वे झाड़-फानूस सज्जित हालमें लम्बी चमकती मेजपर खूब चबर-चबर अंग्रेजी बोलते और पेस्ट्रियोंके टुकड़े तोड़ते।' (पृ. २६)

'चिल्ली जिस रिक्शामें वहाँ पहुंचे, उसके चालककी पीड़ाओंसे अभिभूत हो उसका ही राग वहाँ अलाप बैठे और अन्यके क्षमा-याचना करनेपर हीं उनकी जान छूटी।

शिक्षा सम्पूर्णकर उन्हें बेकार रहना चाहिये था अतः अब वे बेकार थे और पिताके घर रहते अपना अस्तित्व ही उन्हें भारी पड़ने लगा था। आखिर उनके दिन फिरे और बिस्तर बोरिया बांधकर दिल्ली पहुंचे। ट्रेनमें मुफ्त की मदिरा पी। जिस वाहनसे नियत स्थानपर पहुंचे उसका चालक तिगुने किरायेकी मांगपर अड़ गया। हट्टाकट्टा, चिल्लीसे तीन चार इंच ऊपर। उन्हें लगा आबरू खतरेमें है। 'ले भई नोच ले मुझे, खसोट ले मुझे हरामजादे।' (पृ. ४०) महानगरोंके ऐसे राक्षसोंके समक्ष चिल्ली जैसे जाने कितने पटकी खाते हैं।

चांद सितारे (दिल्ली) में चिल्लीको नौकरी मिल गयी, रामबुनकी तीसरी मंजिलपर एक कोठरी। जिस बससे नौकरीके पहले दिन चले, उसमें भीड़के कारण टिकट नहीं ले सके। मजिस्ट्रेटके समक्ष उपस्थित हुए और भाषण पीकर जुर्माना के १०) रु. देकर ही वहांसे मुक्त हुए।

पुराना हॉस्टलका रूम मेट, फौजमें स्थापित होकर, चिल्ली महाशयको एक हसीन परिचय करानेके लिए उभर आया। मोहिनी अवसरवादी निकली, उनसे सम्बन्ध बनाकर भी, अन्यसे शंटिंग करते देख चिल्ली उसके कूचेसे बेआबरू होकर निकल आये।

अपने परिवेशसे कटे, महत् बननेकी आकांक्षा लिये चिल्लीको मिलते हैं तीन कलाकार, चित्रकार, कवि और कहानीकार। कवि कैसे दिल्ली आया, लेखकके शब्दोंमें यह अधिक प्रभावी बन पड़ा है। 'उसने नौकरीको एक लात मारी, दूसरी लातसे पत्नी और दोनों बच्चोंको पिताके पास जमा किया – और फिर हल्का-हल्का दिल्ली में आ डटा... स्वतंत्र लेखन। रफ्ता-रफ्ता उसकी कविता की भावभूमिभी बदली – देसीपन जाने लगा, उसका मुहावरा राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंसे टकराने लगा। अपनी खांटी जमीन छोड़, वह सीधा युगीन पीड़ाके पीछे हाँफता हुआ भागा। (पृ. ६१)

चिल्ली महाशयको फिर प्रेमकी हाजत हुई और लखनऊमें वह मुस्लिम युवती लैलाके सम्पर्कमें आये और उसके पितापर झूठा रौब डालकर उससे विवाहभी कर डाला। अन्तर्जातीय विवाह और वहभी मुस्लिमसे; परम्परावादी घरमें बवंडर क्यों नहीं उठना चाहिये था? इसका कोई सूत्र पुस्तकसे नहीं मिलता।

बरसातीमें रहते, उच्चवर्गीय जीवनकी आकांक्षा लिये लैला घुटने लगी। 'चांद सितारे' छोड़कर चिल्ली 'सूरज लि.' में आ गये। टी. वी., फ्रिज और डबल बेड; साथही संस्थानने गाड़ीकी सुविधा दे दी। लैलाके सपने पूरे हो गये और चिल्लीकी संघर्ष कथाका अन्तभी। काश! सामान्य लोगोके जीवनमें किस्मतका सूर्य ऐसेही चमक सकता।

ऊँची नौकरीपर लगकर चिल्ली निम्न वर्गोके पक्ष-धर बन उठे। कान्वेंटी बेटे पप्पूके स्कूलमें जलसा। 'मैदानमें चलती हुई चारदीवारी और उसपर चढ़े बैठे भंगीके गंदे बच्चे, रूखड, पीले चेहरे, सूखे, खालमें लिपटी तिरछी हड्डियां', यह अहसास होतेही सब कुछ उनके लिए कुण्ठित होने लगा।

और फिर बम्बई। कलाकार मित्रकी बहन कविता से भेंट। पाँच सितारा होटलके कक्षमें 'वे दोनों परोंसे नर्म पलंगपर नगे चित्त लेटे थे।' (पृ. ९६)

कितने रसिक हैं चिल्ली महाशय कि नारी उनके लिए मात्र भोग्याही बनकर उभरती है।

अन्तमें, घर लौटते हैं चिल्ली। 'दीवारपर चढ़ती अपनी समूची परछाईके रूबरू हुए फिर अचानक उसी छायामें गायब हो गये।' (पृ. १०३)

यही कथा है जिसे मोहक भाषा, पैने शिल्प, हास्य-व्यंग्यके माध्यमसे, उसकी घटनाओं, स्थितियों चरित्रोंको स्पर्शी ढंगसे रूपायित किया गया है। कहनेका ढंग वर्मा जी का अपना है। कथ्यके अनुरूप वे उसे आकर्षक रूपमें ढालते हैं।

'लू सलाकी तरह चल रही थी (पृ. २९)' 'जाड़ेकी धूप शंकरके बे-असर तीसरे नेत्र-सी तिरछी थी (पृ.३२), चोगा उन्होंने ऐसे रखा जैसे शंकरका खण्डित गाण्डीव हो (पृ. ७५) इन प्रयोगोंके साथही फिल्मी गीतोंके टुकड़े, 'मैं तो साला साहब बन गया (पृ. ८७), तुम मेरे साथ होते हो गोया जब दूसरा नहीं होता (पृ. ८०), प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना और हास्यकी स्थितियोंको उभारनेमें सहायक हैं।

इस सबके पार, कहानीमें कुछ विशिष्ट प्रतीत नहीं होता। चिल्लीका संघर्ष बड़े मूल्योंके लिए नहीं, व्यक्तिगत जरूरतोंको पूरा करने तथा मात्र नौकरीके लिए लगता है। नौकरी लगतेही वह मोहिनी, लैलाके प्रेम प्रसंगोंमें घिरते, लैलासे विवाह कर डालते हैं। एक अदद पत्नीके स्वामी होकरभी मित्रकी बहिनसे फाइव-स्टार होटलमें हमबिस्तर होते हैं लेकिन 'बॉस' या 'बड़ा आदमी' कहलानेसे घृणा करते हैं। स्कूलके उत्सवमें फेंसपर बैठे भंगीके बच्चोंके प्रति उनका प्रगतिशील रूख, ओढ़ा हुआ अधिक, जीवनसे सहज रूपमें जुड़ा हुआ कम लगता है।

'गुड टेस्ट' के तहत यदि पृ. ६३ और पृ. ७८ के प्रयोगों जैसे प्रयोगोंसे वह कृतिको बचाये रखते तो कथा की मुख्य धारामें शायद कोई अन्तर न आता।

संक्षेपमें, 'गाथा शेखचिल्ली' विशिष्ट या अविस्मरणीय कृति नहीं ठहरती। परसाई, श्री लाल शुक्ल, शरद जोशीके स्तरतक आनेके लिए लेखकको अभी और श्रम की अपेक्षा है। फिरभी, प्रस्तुति कृति उनके भावी प्रखर लेखनकी आशा जगा देती है।

☐ विनोद कौशिक

मछली बाजार

लेखक : राजेन्द्र अवस्थी; प्रकाशक : राजपाल एंड सन्स, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ १६८; क्रा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

प्रस्तुत उपन्यासका कथा नायक शमशेर अपने घरको ताबूत जैसा मानता है। वह बीमार है, नींदकी गोलियां लेता है। जब उसकी पत्नी इन्दु बड़बड़ाती हुई उसे कुत्ता, हरामी और नामर्द कहती है, भोजनकी व्यवस्थाभी वह उसे कुत्ता जैसा मानकर करती है, तब पता चलता है कि शमशेर बार-बार घरको ताबूत क्यों मानता है या मछली बाजार क्यों समझता है। शमशेरके लिए लड़कियोंके फोन आते हैं, वह लड़कियोंके साथ घूमता है, यह सब इन्दु सह नहीं पाती। वह शमशेरको पुत्री को अपनी सहेलीसे एकान्तमें मिलने नहीं देती। वह बापकी हैसियतसे बेटीको प्यार तक नहीं कर सकता।

पत्नीकी उग्रताके कारण बताये गये हैं। वह एक क्रूर पुलिस अफसरकी बेटी है। जैसे बातावरणमें पली वैसाही उसका स्वभाव बना। शमशेरसे उसका विवाह किशोरावस्थामें ब्राह्मण परम्पराके अनुसार हुआ। किशोरावस्थामें शमशेर अपनी सहपाठिन प्रभासे विवाह न करसकनेके कारण साथ-साथ आत्महत्या करनेके लिए उसे नदीतक ले जाता है, दोनोंही कायरतापूर्वक लौट आते हैं। इन्दुसे विवाह हो जानेके पश्चात् सुहागरातके समय उसे पत्नी पसन्द आ गयी। किसीभी नवविवाहित नवतरुणके समान उसने नववधूके आसपास चक्कर

लगाये। परम्पराकी जकड़ तोड़ और घर छोड़कर वह इन्दुके साथ अलगभी रहने लगा। इन्दु इतनी बुरी तो नहीं थी। वह सुन्दर थी, ब्राह्मण कुलकी मान-मर्यादाको भी मानती थी। वह अकस्मात् इतनी कठोर कैसे हो गयी कि पतिसे तू तड़ाक करती है, गालियाँ देती है, उसकी मृत्युकी कामना करती है। वह विदेशसे लौटता है तो स्वागत करने नहीं जाती, बीमार पड़ता है तो सेवा सुश्रूषा न कर पिक्चर देखने चली जाती है।

उसे अर्ध-विक्षिप्त-सा दिखाया गया है, उसे मनोचिकित्सकको दिखानेकी आवश्यकता है, ऐसा बताया गया है। पतिको शकको नजरोंसे देखना तथा उसके सम्पर्कमें आयी नारियोंको लेकर मानसिक सन्तुलन खो बैठना तो समझमें आता है किन्तु वह पतिके साथ जिस प्रकारका नीच व्यवहार करती है, वह समझमें नहीं आता। गाली-गलौज करनेके लिए वह अर्ध-विक्षिप्त बतायी गयी, पतिको लखटकिया पुरस्कार मिला तो वह बधाई देने आनेवाले अतिथियोंका स्वागत करती है, अर्थात् वह व्यवहार-कुशल लोभी पत्नी है। चोरके डरसे वह पतिके आगे भीरु पत्नीकी तरह समर्पणभी करती है। इन्दुके चरित्रमें आद्यन्त ताल-मेल नहीं है।

शमशेरको नारी स्वातंत्र्यपर अपने स्वतंत्र विचार रखने तथा सुन्दर नारियोंके साथ मुक्त सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए इन्दुको पृष्ठभूमिके रूपमें तो कहीं प्रयुक्त नहीं किया गया? अथवा लेखकने शमशेरके चरित्रकी रक्षाके लिए और उसे सहानुभूतिका पात्र बनानेके लिए कथाके बीचकी कुछ कड़ियाँ तो नहीं छोड़ दीं। कथा नायकके साथ लेखकका पक्षपात तो नहीं है? कहीं शमशेरकी दुर्बलतापर पर्दा तो नहीं डाला गया है?

जिस समय शमशेर घरकी कटुतासे टूट रहा है, उसकी भेंट दूरदर्शन विभागकी एक अधिकारी शुभासे होती हैं। दोनोंही अपने जीवनमें समान कटुता भोग चुके हैं। दोनोंही परस्पर आकृष्ट होते हैं। असम प्रदेशकी यात्राके समय दोनों पूरी तरह मिलभी लेते हैं। यहीं एक खासी जातीय युवती अशरफीसे भेंट होती है। शमशेर और अशरफीका परस्पर आकर्षण शुभा सह नहीं पाती। शमशेरको लगता है शुभाभी इन्दु बनती जा रही है।

शुभाके टेलीफोन कालोंके कारण इन्दु औरभी उत्तेजित हो उठती है।

घरमें शमशेर चाहे जो हो, बाहर वह प्रसिद्ध पत्रकार और विचारक हैं। देश-विदेशमें उसका सम्मान है। वह विक्रमराव जैसे धूर्त्त राजनेताकी पोल खोलता है। विक्रमरावके रूपमें आजके धूर्त्त और प्रभावशाली नेताओं का सत्य चित्र प्रस्तुत किया गया है। नेता आजके समाज का कोढ़ है। इसपर प्रहार युगकी आवश्यकता है। विक्रमराव अपनी प्रेमिका प्राइवेट सिक्रेट्री सुमनके गर्भवती हो जानेपर उसका विवाह अपने बेटेसे कर देता है। सत्य स्थिति जाननेपर बेटा आत्महत्या करता है। सुमनभी नींदकी गोलियां खाकर मर जाती है। विक्रम गेरुवा कपड़े पहननेका ढोंग करता है। जनसेवाके नामपर प्रपंचकर मंत्री बनता है। अशरफी जैसी भोली युवतीको अपने जालमें फँसाकर सत्तर वर्षकी आयुमें उसे पत्नी बना लेता है। बेचारे शमशेरके साथ कैसा मजाक होता है कि जब वह विक्रमकी पोल खोलनेके लिए जानकी परवा न करते हुए तथ्य संग्रहकी चेष्टा करता है, अशरफी विक्रमके लिए अभिनन्दन-ग्रन्थ छपानेके लिए उसकी सहायता मांगती है। शमशेरको विवश होकर सहायता देनी पड़ती है। इस ख्याति-लोभी मंत्री-नेताके लिए एक नकली अभिनन्दन ग्रन्थ बनवाकर उसपर कीमती जिल्द चढ़ाकर विमोचन करा लिया जाता है। विक्रम द्वारा स्थापित सुमन-पुरस्कार-समितिका एक लाख रुपयेका पुरस्कार अशरफीके प्रयाससे शमशेरको देनेकी घोषणा होती है। शमशेर समझ जाता है कि उसे खरीदनेका प्रयास किया जा रहा है। वह पुरस्कार ठुकराये इसके पहले विक्रम घोषणा करा देता है कि शमशेरने यह धनराशि नारी-कल्याण-केन्द्रको अर्पित कर दी है और इस संस्थाकी संचालिका हैं अशरफी।

शमशेरमें प्रतिभा है, वह सरल हृदय हैं। मानवतावादी दृष्टिकोणके कारणही इन्दुसे तलाककी बात तक नहीं सोच पाता और ताबूतके भीतर बन्द छटपटाता रह जाता है।

पुस्तकके फ्लैपपर कथा नायकको 'विभाजित व्यक्तित्व' वाला बताया गया है। कथा नायककी मजबूरी क्या है, उसके दाम्पत्य जीवनमें कटुता क्यों है? सम्भवतः पति-पत्नीकी पारस्परिक अनुकूलताके अभावमें। शमशेर उस पीढ़ीका है, जिसमें पति तो अपनी प्रतिभाका निरन्तर विकास करता रहा, किन्तु पत्नीको यह सुयोग सहज उपलब्ध न था। अतः पतिको अपनी तृषा बुझानेके अन्य साधन खोजने पड़े। वैसे आजकी स्थिति तो यह है कि परस्पर अनुकूल गुण-स्वभाववाले पति-पत्नीभी प्रेमका

ज्वर उतर जानेपर ऊब और विरक्तिका अनुभव करने लगते है। कटुता उनमें भी आ जाती है।

नारी-स्वातन्त्र्यका रूप औरभी स्पष्ट होना चाहिये था। क्या खासी जनजातिकी मातृसत्ताक व्यवस्थाकी अपनी समस्याएँ नहीं हैं।

उपन्यास रोचक है। शिल्पकी कुछ तो नवीनता है ही। पति शमशेरकी अपेक्षा पत्रकार शमशेर अधिक सक्षम है।

□ रमानाथ त्रिपाठी

जिन्दाबाद मुर्दाबाद

लेखक : दयानन्द वर्मा; प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यूबी, बैंग्लो रोड, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : ११६; क्रा. ८१ (द्वितीय संस्करण); मूल्य : १५.०० रु.।

कथ्यगत नवीनताके कारण इस उपन्यासने प्रथम संस्करणके समय पाठकोंको पर्याप्त आकर्षित किया था और यह चर्चित भी हुआ था। प्रशंसा-आलोचनाकी दृष्टि से उपन्यासके बारेमें मतभेद हो सकते हैं किन्तु इसे वस्तु चयनकी दृष्टिसे लीकसे हटा हुआ उपन्यास माना गया। उपन्यासमें प्रमुख पात्रों द्वारा अपनी-अपनी कथा कहलवायी गयी। प्रमुख पात्र आलोक प्रारम्भ और अन्तमें दो बार उपस्थित हुआ है। आलोकके बचपन और यौवन कालकी घटनाएं स्वयं उसके मुखसे तथा अन्य घटनाएं और उसके जीवनसे प्रभावित अन्य पात्रोंकी प्रतिक्रियाएं दूसरे पात्रोंके मुखसे व्यक्त हुई हैं, जैसाकि 'आलोक पुनरुवाच' में स्पष्ट है। उपन्यास मूलतः पुंसत्वहीन व्यक्तिकी मनोग्रन्थियों और मनोवैज्ञानिक क्रिया-व्यापारोंसे सम्बद्ध है। प्रवीणके माध्यमसे उपन्यासका दूसरा पक्षभी उद्घाटित हुआ है जो वस्तुतः राजनीतिक अवसरवादिता, अवांछित नेतागीरी, राजनीतिके छल-प्रपंचसे जुड़ा है। जिन्दाबाद के नारोंके बीच व्यक्ति मन और उसकी सच्चाइयां समाप्त हो जानेके लिए विवश हैं। आलोक जबभी अपने रहस्यको उद्घाटित करना चाहता है तभी जिन्दाबादके नारे, सामाजिक मान-मर्यादा उसके मार्गमें बाधा बन जाती है। बचपनसे विषम परिस्थितियों और विशेष प्रकारके यौनानुभवोंके कारण आलोकने स्वयंको विचित्र-विचित्र परिस्थितियोंमें डाला है। पुंसत्वहीन पुरुषके दाम्पत्य जीवनकी ट्रेजेडीको आलोकके माध्यमसे उपन्यासकारने प्रदर्शित करना चाहा है। आलोक द्वारा स्वयं अपनी पत्नीको प्रवीणके पासतक पहुंचाना या प्रवीणके हाथोंमें उसे सौंप देनेका निर्णय असामान्य होते हुएभी परिस्थितिजन्य होनेके कारण असंभव नहीं लगता। पत्नी के प्रति किये गये छलपूर्ण व्यवहारके लिए आलोकके मन में घुटन है, ग्लानि है किन्तु समाजसे उसे अनेक शिकायतें हैं। इस उपन्यासके माध्यमसे लेखक समाजसे सीधे यह प्रश्न करना चाहता है कि जुकाम-बुखार, तपेदिक, कैंसर के रोगियोंको सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखनेवाला समाज आलोक जैसे रोगियोंकी विवशताजन्य अशक्तिका उपहास क्यों उड़ाता है? ऐसी स्थितिमें आत्महत्या अथवा अपने रोगको गुप्त रखनेके अलावा ऐसे रोगीके सामने और कोई रास्ता नहीं होता। आलोक अपने देखे-सुने और झेले हुएके आधारपर यह धारणा बना लेता है कि प्रेम या घृणाका आधार मात्र इन्द्रिय-सुख नहीं है। इसीलिए तो अलकाको यह विश्वास कि उसका पति उसे तन-सुख दे सकनेमें समर्थ है, सन्तुष्ट, सच्चरित्र और उत्साही बनाये रहा। इस विश्वासके खण्डित होनेके साथही उसने व्यभिचारका मार्ग अपनाना चाहा किन्तु वहांसे मिली निराशा ने उसे पागल बना दिया। उपन्यासमें गम्भीरतापूर्वक यौन रोगके शिकार व्यक्तिकी मानसिक स्थिति, उसके जीवनकी उपयोगितापर विचार किया गया है। भाषा-शिल्प और अपने मन्तव्यमें मिली सफलताकी दृष्टिसे यह उपन्यास पठनीय है।

□ डॉ. प्रेमकुमार

कहानी संग्रह

पालवाली नाव

कहानीकार : ओम्प्रकाश मेहरा; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली। क्रा. ८१; मूल्य : १४.०० रु.।

कथाकार ओम् मेहराके दूसरे कहानी संग्रह 'पाल वाली नाव' में उनकी कुल तेरह कहानियाँ संकलित हैं। संकलनकी भूमिकामें समीक्षक धनंजय वर्माने 'मानवीय जिम्मेदारी, ईमानदारी और सचाईके प्रति रचनात्मक निष्ठा' की चर्चा करते हुए इसे 'जड़ोंकी ओर वापसी' का सबूत कहा है। समीक्षक जड़ोंका उल्लेख किस संदर्भ में करता है, यह स्पष्ट नहीं है। जड़ें तो जमीनमें होती हैं और इस संकलनकी समूची कहानियाँ मध्यवर्गीय आकाशमें टंगी हैं। बेशक मध्यवर्गीय जीवनानुभूतियोंके धनी ओमप्रकाश मेहराने इस वर्गकी प्रकृति और प्रवृत्ति को बहुत सूक्ष्मतासे इस संकलनकी कहानियोंमें उकेरा है। कहानियोंका रचना-संसार यद्यपि सीमित है अर्थात् वह यूनिवर्सिटीकी मैत्री, दफ्तरकी सहकर्मिता और वैयक्तिक प्रेमको ही प्रायः छूता है परन्तु इस सीमित क्षेत्रकी कलात्मक छानबीनमें कथाकारकी तल्लीनता कहींसे आहत नहीं होती है।

संकलनकी पहली शीर्षक कथा डायरीके रूपमें प्रस्तुत है। इसमें सुरेश पति है। यतीन कालेज-जीवनका प्रेमी है। मनोरमा विवाहके बाद अपने शहरमें वापस आयी है तो यतीनमें ऐसी डूबी है कि उसकी हर तड़पन विवाहकी हमारी सामाजिक मान्यताओंपर चोट हो जाती है। लेखककी जानदार भाषा कहानीकी घिसीपिटी थीमको थ्रिलसे भर देती है। नारीके कोणसे उठे विवाहित जीवन के प्रश्न वैयक्तिक दायरोंसे ऊपर उठकर सामाजिक प्रश्न बन जाते हैं। 'दरख्तोंसे उतरती धूप' शीर्षक कहानीमें टूटते सम्बन्धोंकी पीड़ा कसमसाती हुई दृष्टिगोचर होती है। कथाकारने इसमें अनछुई सिहरनों और उमंगोंको पकड़नेकी चेष्टा की है साथही, पुरुष और नारीके संबंधों के नाजुक आयामभी चित्रांकित हैं। वास्तवमें आधुनिक दौरकी हवाने सम्बन्धोंको वैयक्तिक समस्याके शीर्ष बिन्दु पर खड़ा कर दिया है। कथाकार बारम्बार उस बिन्दुको अलग-अलग कोणोंसे छूनेकी चेष्टा करता है। 'पंख' शीर्षक कहानीमें फिर सम्बन्धोंमें पड़नेवाली दरार और उसकी चुभनके चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। अन्तिम कथा 'पतन' में फिर पहली कहानीका 'तीसरा' उपस्थित है। यहाँ पुरुषके 'अहं' का उपद्रव बीस पड़ रहा है। द्वन्द्व, तनाव और संघर्षकी स्थितियाँ उभरती चलती हैं। पुरुषके अहं की चोटसे नारीके आहत होनेकी यह कहानी मर्मस्पर्शिता में बेजोड़ है।

प्रेमके बाद कथाकारका दूसरा क्षेत्र है मैत्री, विशेषकर दफ्तरकी मैत्री। 'आंच' शीर्षक कहानीमें इसी मैत्री पर आंच आनेकी स्थितियां हैं जिनका सर्वेक्षण हुआ है। इसी प्रकार 'मुलाकात' शीर्षक कहानीभी दोस्तीके इर्द-गिर्द घूमती है और असमानताकी दरारोंको प्रस्तुत करती है। शायद यह प्रामाणिक होनेका दबाव है कि कथाकार अपने भोगे हुए सत्यव ले संसारका विशेष रूपसे चयन करता है। इसमें एक विशिष्ट संसार है दफ्तर जिसकी शनैः शनैः एक विशिष्ट आधुनिक संस्कृति बन गयी है। 'पीछे रहिए' शीर्षक कहानीमें एक दफ्तर है। दफ्तरमें आनन्दी डाकू हैं। कोट फटा तो आनेवाले जाड़ेके आतंक की कल्पना करके गर्मीमें ही कोट सिलवाने चले और कोटका कपड़ा उनके क्रमिक टूटन, सिकुड़न और कुंठा का ग्राफ बन जाता है। मित्रोंके सामने, अपने सामने मौत-सी बेइज्जतीके बाद मध्य वर्गका एक नंगा चित्र पाठकोंको अनुरंजित करनेके साथ कंटकितभी कर देता है। 'बैशाखियोंवाला' कहानीमें भी दफ्तरके एक बाबूकी पीड़ा है। मामला पदोन्नतिका है। कौन आगे, कौन पीछे? अजब नहीं लगता है कि स्वार्थान्धताके इस जंगल में कुछ आदर्शवादी मंगल-मूल दिख जाते हैं? किन्तु आम

स्थिति तो भ्रष्टाचारोंकी ही है।

'सूरजमुखी' में कथाकारने दफ्तरके भ्रष्टाचारपर कड़वा व्यंग्य प्रस्तुत किया है। ईमानदारीसे काम करने वालोंके आगे आनेवाली मुसीबतोंका लेखा-जोखाभी घोर कलात्मक यथार्थ है। ऐसा लगता है कि आम जनताके जीवन-संसारके समानान्तर एक और संसार है जहाँ अधिकारी रहते हैं। 'दोनोंके बीच' शीर्षक कहानीमें अकालकी पृष्ठभूमिपर बहुत कुशलतासे लेखकने अफसर और अफसरके बीचकी दूरीके साथ अफसर और जनताके बीचकी दूरीको चित्रांकित किया है। ओमप्रकाश मेहरा अपनी इस प्रकार की कहानियोंमें जब वैयक्तिक सम्बन्धोंका आसमान छोड़ समाज-जीवनके जलते भौतिक धरातलपर उतरते हैं और पग-पगपर यथार्थ-दंशकी उत्पन्न पीड़ाको चिह्नित करते चलते हैं तो वास्तवमें पाठकोंकी आन्तरिक सहानुभूतिको खींच लेते हैं। किन्तु ऐसा लगता है कि समाज-जीवनकी बाह्य परतोंकी अपेक्षा वैयक्तिक जीवनकी अन्तर्वर्ती परतों में उनका प्रवेश अधिक है। जहां दोनोंके सन्तुलनके आयाम घटित होते हैं वहाँ उनकी कहानियोंमें निश्चित रूपसे अद्भुत आकर्षण आ जाता है। कुल मिलाकर 'पालवाली नाव' की समस्त कहानियां पठनीय और अनुरंजनकारी हैं।

❑ विवेकी राय

कतारमें खोया हुआ आदमी

कहानीकार : कुलदीप बग्गा; प्रकाशक : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के-७१, कृष्णनगर दिल्ली-५१। पृष्ठ : ८+८८; क्रा. ८०; मूल्य : १२.०० रु.।

प्रस्तुत संग्रहमें १४ रचनाएं हैं जो ६ और ८ के दो हिस्सोंमें 'हास्य-व्यंग्य' तथा 'कहानियों'के अन्तर्गत प्रस्तुत हैं। इधर हास्य-व्यंग्यकी बढ़ती लोकप्रियताको देखकर आपही मोह होता है कि इस शैलीमें भी लिखा जाये, और इस शैलीमें कलम चलाकर लेखक जहां अपनी पिपासाको तृप्त करता नजर आता है, वहाँ वह इस उक्तिको भी चुनौती देता प्रतीत होता है कि शैलीमें लेखकका व्यक्तित्व झलकता है। फिर व्यक्तित्व है क्या चीज! इसेभी क्या अर्जित नहीं किया जा सकता, ठीक उसी तरह जैसे धन अर्जित किया जाता है। धनसे व्यक्तित्व बनता है तो शैली से क्यों नहीं।

लेकिन धनसे अर्जित टीमटामही बनती है सही व्यक्तित्व नहीं, इसी तरह शैलीसे भी टीमटामही बनती है सही रचना नहीं। हम अर्जनके खिलाफ नहीं हैं। अर्जनके संघर्षके बिना किसी रचनाकारको सफलता मिली है, भला! पर अर्जन लेखकके निजी व्यक्तित्वका, उसके अनुभवोंका होता है। यह अर्जन जितना तीखा-तल्ख या मीठा-मधुर होगा, उसीके अनुरूप वह अभिव्यक्ति पायेगा। 'उसीके अनुरूप' शब्द यहां दर्शनीय हैं। ये शैली तत्त्व और उसमें निहित व्यक्तित्वकी ओर संकेत करते हैं। 'भोगा हुआ यथार्थ' की बात अब काफी पुरानी पड़ गयी है। इसकी खिल्लीभी उड़ायी गयी है। कहा गया है कि कितने हैं जो भुक्तभोगी होकर लिखते हैं। पर भोगा हुआ यथार्थ दैहिक नहीं, मानसिक होता है इसे कितने लोग जानते हैं। 'लेखक भोगता है' से तात्पर्य यह है कि उसका मानस उन सुख-दुखोंसे स्पंदित है जो उसके न होकर भी उसके हैं। यह वह पीड़ा है जो छूतकी बीमारीकी देन है।

खेद है लिखते हुए कि चाहे हास्य-व्यंग्यकी रचनाएं हों, चाहे कहानियां, बग्गाजी इस तरहसे जराभी पीड़ित नजर नहीं आते। हास्य-व्यंग्यकी रचनाओंमें उन्होंने जिन विसंगतियोंको पकड़ा है, वे यथार्थवादी जरूर हैं, पर वे मात्र पकड़ी होनेके कारण इस ढंगसे प्रस्तुत हैं कि उनसे क्षोभ नहीं, भोंडापन पैदा होता है। लेखकसे हमारा निवेदन है कि इस तरहका काम जब हमारे मंचीय कवि कर रहे हैं और पूरी तत्परतासे कर रहे हैं तो गंभीर लेखकों को इस चक्करमें नहीं पड़ना चाहिये। ऐसा करना बेचारे उन मंचीय कवियोंके क्षेत्रका अतिक्रमण है। अतिरंजना (लियाराम), विपरीत कथन (कुछ संशोधित सूक्तियां), हल्की-फुल्की स्थितियोंका प्रस्तुतीकरण (बरकत मुफ्तके मालकी) चटपटी शैली (मेरे शहरकी आवाज) रूपात्मकता (कतारमें खड़ा देश), पैनी कल्पना (गीत एक छूतकी बीमारी) हास्य-व्यंग्यके घटक तत्त्व हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। पर इनमें यदि क्षोभ और कचोट पैदा करनेकी ताकत न हो तो ये मात्र लालित्य और रिझवारके साधन सिद्ध होते हैं। तथापि 'कतारमें खड़ा देश' उत्तम रचना है।

लेखक जब कहानीवाले हिस्सेमें अतिरंजनासे काम लेता है तो उसकी रचना हास्यास्पद बन जाती है जैसे 'मुसीबत' में। बसमें किताब पढ़ते समय आगे बैठी लड़की के बाल बार-बार पन्नोंपर आना और इसका विरोध न करना जबकि और लोगभी देख रहे हों मात्र कथा पैदा करनेकी सिचुएशन लगता है। 'कैदी' में प्रतिपादित

सिद्धान्तही बचकाना हैं। साथ यात्रा कर रही परायी लड़कीके संबंधमें लेखक जिसे उसपर सतत निगाह रखनी होती है सोचता है—जैसे लड़की कैदी है। डाकू तो जुर्म करते हैं सो कहीं ले जाते समय उनपर कड़ी निगाह रखी जाती है, पर इस लड़कीने क्या जुर्म किया है, वह एक स्त्री है, यही न ! लेखक महोदयसे हमारा निवेदन है कि हमारी व्यवस्था स्त्रीको कैदी नहीं 'माल' मानती है जिसके चोरी हो जानेका डर लगा रहता है, सो निगाह रखनेकी आवश्यकता होती है। 'मजबूर आदमी' एक अच्छी कहानी बन सकती थी, पर वह सीधे-सीधे उपदेश करती है कि आजकी व्यवस्थामें यदि इज्जतसे जीना चाहते हो तो शरीर भी बनाओ। 'आदमीका बच्चा, कहानी बहुत कुछ ठीक है। इसकी समस्या है कि अनाथ बच्चेको तो कोईभी स्वीकारनेको तैयार है, पर अनाश्रित औरतको नहीं। 'फैसला'की समस्या है कि पढ़ी-लिखी और फैशनपरस्त औरत शादी लायक नहीं होती। इस कहानीमें लेखक प्रसंगोंकी स्थूलतामें ही रह जाता है जो उपदेशात्मक बन जाती है। वह समस्याकी गहराईमें जाकर विक्षोभ उत्पन्न नहीं कर पाती। इस दृष्टिसे लेखक की 'विद्रोह' एकदम श्रेष्ठ रचना है। कुछ यही बात 'कतारमें खड़ा आदमी' और 'दूसरा एक और' के संबंधमें कही जा सकती है।

कथाकार भाषाकी ओर ध्यान देता नहीं दिखायी देता। कथनोंकी पुनरावृत्ति, वाक्य रचनामें ढीलापन और व्याकरणीय भूलें उसके सामान्य दोष हैं। यथा—

कथनोंकी पुनरावृत्ति : वह पुराने मंजे हुए राजनीति के खिलाड़ी थे। (पृ. १०)··· राजनीतिके वे पुराने खिलाड़ी थे। (पृ. १२,—'सियाराम'में। लोग महंगाईसे हाहाकार करने लगे, पर हमारी गृहस्थीका बजट ठीक चल रहा था। (पृ. २२)··· महंगाईसे हाहाकार करते जमानेमें हमारे बजटपर कोई विशेष असर नहीं पड़ता था। (१० पंक्तियों बाद उसी पृष्ठपर)-- 'बरकत मुफ्त के मालकी'। पता नहीं, क्यों मुझे राजू और नगेश दोनों हमेशा एक जैसे लगे हैं। (पृ. ७२)···वे दोनों मुझे एक सरीखे लगे हैं। (पृष्ठ ७३)···मुझे राजू और नगेश दोनों हमेशा एक जैसे लगे हैं। (पृ. ७६)—'कतारमें खोया हुआ आदमी'।

वाक्योंकी रचनामें ढीलापन : तब यदि भारी ट्रैफिक के कारण यदि उनका वाहन···। (पृ. २५) मुझे पता लगा है कि एक तीन वर्षका बच्चा एक स्त्री छोड़कर भाग गयी है। (पृ. ७१)। नगेशको इसलिएही निमन्त्रण दिया था कि राजूका जन्मदिन था। (पृ. ७३) उसे लगता कि वह ही एक साथ कई भूमिकाएं निभा रहा हैं। (पृ. ६६)। नये चुनाव हो जाते। उन्होंने अपने मुहल्लोमें तो बिजलीके खंभे लगवाये थे। बाबू रामलालकी बात सुनकर आज उनके होठोंपर हंसी आयी थी। (पृ. १२)—यहाँ बीचका वाक्य कैसा अजीब ढंगसे प्रस्तुत है। आगे अब इस वाक्यमें संतुलन नहीं -- पहले विद्युत कमैटीके अध्यक्ष हुए तो बिजली गुल हो गयी अब बने हैं पागल तथा आवारा कुत्तोंको पकड़नेवाली कमैटीके अध्यक्ष। (पृ. १३-१४) संतुलनके अनुरूप अब पागल और आवारा कुत्ते गुल होने चाहियें।

व्याकरणिक भूलें : उसे फिक्र लगा रहता है कि वह (उसकी बहन) किसीके साथ भाग न जाये/(पृ. ५४)। मुझे लगा जैसे मैं एक कैदीको ही पकड़कर लाया हूं और हाकिमको सुपुर्द कर दिया हूं/ (पृ. ५८)। नर्सको बुलानेकी उन्हें होश ही न होती।···(या) मरीजको अभी पूरा होश तो नहीं आयी। (पृ. ६५)। मुझे लगा जैसे उसने तस्वीर देखा ही न हो। (पृ. ८६)

इस तरहकी भूलोंके ये मात्र कतिपय उदाहरण हैं।

हमारा ख्याल है,भाषा लेखककी ताकत होती है। इसे कसरतकर अर्जित करना लेखकका ऐसा कर्त्तव्य है जिसकी ओरसे विमुखता कदापि क्षम्य नहीं।

□ शंकर पुणतांबेकर

प्रकर : पूर्व प्रकाशित विशेषांक

काव्य संकलन

कांचके दरख्तका डर

कवि : रमेश दवे; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१ एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : ६६; डिमा. ८०; मूल्य : २०.०० रु.।

'कांचके दरख्तका डर' युवा कवि रमेश दवेकी कविताओंका पहला संग्रह है परिचित और बेलाग भाषामें लिखी ये कविताएं अपने आसपासकी दुनियांको देखनेकी 'दृष्टि' देती है। यह दृष्टि उस व्यंग्यमें छुपी होती है जो प्रायः कविताके अंतमें चमकता है। दवेकी कविताएं तीर के फलककी तरह आकार लेती हैं। वे सधे हुए अपेक्षाकृत संक्षिप्त और सादे कथनसे शुरू होती हैं और धीरे-धीरे फैलती चली जाती हैं, फिर उनमें कटाव होने लगता है जो अंतमें एक नुकीलेपनमें बेधक शक्तिकी तरह केन्द्रित हो जाता है। एक कविता है 'पेंचकस' :

आओ
उठा लें/पेंचकस/
आदमी/ बहुत ढीला हो गया है;
अंधेरोंसे टकराता/ जिस्म/एक मकान खंडहर होता
शीशे टूटी खिड़कियोंकी तरह / आंखें / सीलनदार
पलस्तरकी तरह/ उखड़ती चमड़ी/ जिस्म/ याने संग्रहालय/स्मृतियोंका/ खांसीसे लड़खड़ाती एक इमारत
कदीम/ आओ/ ईस मकानका हर पुर्जा कसें
आदमी/ आदमी जैसा तो
दिखे।

यह कविता मैंने विशेष तौरपर चुनी है, और इसे कविताके शिल्पके अनुरूप यहाँ प्रस्तुत किया है। क्योंकि यह कविता एकसाथ रमेशकी सामर्थ्य और कमजोरी दोनों को—अधिकांशतः—लक्षित करती है। कवितामें तीन भाग स्पष्ट हैं—जहांसे वह उभरती है,जहाँ वह फैलती है, ब्योरोंमें जाती है, और जहाँ लाक्षणिक व्यंग्यमें समाप्त होती है। कविताकी प्रेरणा और परिणति दोनों रमेशके रचना-मानसमें एकसाथ कौंधते हैं क्योंकि अधिकांश कविताओंमें ये दोनों सिरे बड़े सजग और दीप्त हैं, उनमें एक लयात्मक अन्वितिभी है। लेकिन इन दो छोरोंके बीच रमेश अक्सर उतने चुस्त नहीं है, जिसकी अपेक्षा की जाती है। वे न केवल ब्योरों और भाषाई स्फीतिमें ढीले होते हैं, वरन् तार्किक अन्वितिभी कई बार निभा नहीं पाते। इसी कवितामें हम उम्मीद करते थे कि वह पेंचकससे कसे जानेवाले पुर्ज़ोंके संकेत देंगे, लेकिन वे खंडहर हुए मकानका विवरण देते हैं—जिसे पेंचकससे कसने की कोई तुक नहीं लगती। लेकिन क्योंकि कविताका दूसरा सिरा 'आदमी आदमी जैसा तो दिखे' इतना मर्मस्पर्शी और चटखदार है कि सहसा इस विसंगतिकी ओर ध्यान नहीं जाता और कविता उपकरणात्मक ब्योरोंको निरस्त कर देती है। लेकिन इसके ये मानी नहीं है कि वे उचित हैं। कवितामें 'जिस्म' की आवृत्ति और यानी का निरर्थक प्रयोगभी उसी फैलावके नतीजे हैं। 'खांसीसे लड़खड़ाती इमारत' की सघन सांकेतिक पंक्तिकी तुलना में उपमापर आधारित शेष पंक्तियोंको देखें तो लगेगा कि एक दूसरे स्तरपर भी वह आलोचनात्मक श्रम नहीं हुआ है, जो इस तरहकी संक्षिप्त और संयत कविताके लिए अनिवार्य है! रमेश दवेकी कविताओंसे अक्सर यह शिकायत की जा सकती है कि वह हर पंक्ति और शब्दमें उतनी धारदार क्यों नहीं है ? कविताके अन्ततक पहुंचने का धैर्य क्यों जांचना चाहती है ? कविताका हर शब्द कविता होना चाहिये - अपनी संरचनात्मक या निजी उपस्थितिमें। जिस वैचारिक स्तरपर रमेश कविता लिखते हैं, मनुष्यकी मुक्तिका जो सचेत महाभाव उनके भीतर है, निर्णयका जो माद्दा है - उसके भीतर चाहिये एक तटस्थ दृष्टि और हर क्षण संचेतना। इसकी अपेक्षा उन्हें आदर्शवादी व्याख्यापरकता और रुमानी कल्पनाशीलता विश्लेषणके स्तरपर अपनी गिरफ्तमें ले लेती है जिससे उनकी कविताके भीतरी पुर्जे ढीलेढाले लगते हैं। उन्हें अपनी कविताको कसनेके लिए खुदभी पेंचकसकी

जरूरत है। अगर वे यह कर पाते तो 'एक और जिस्म' 'इण्डीपससे' जैसी बहुत-सी कविताएं अधिक सशक्त हो पातीं। कहीं-कहीं कविताका भाषा-प्रवाह, ब्यौरोंका फैलाव और विस्फोटभी उसकी शक्तिको बढ़ाता है, ऐसी वस्तु और प्रक्रिया रमेशके अनुकूल होनेके कारणही 'द्रौपदी नंगी होगी अबकी बार' जैसी कविता बहुत प्रवाहपूर्ण भी है और प्रभावपूर्णभी। इसके विस्तारका कारण इतिहास के संदर्भ और प्रभावका कारण उनका विश्लेषणपरक विपर्यय है। ये दोनोंही पक्ष दवेमें अन्वित हैं क्योंकि उन्होंने इतिहासमें पारंगता पायी है और उन्हें उसके विपर्ययोंकी कचोट लगी है। जहाँ रमेशको व्याख्या करने, बहस करने, सोच और निर्णयके बीच संवाद कायम करने के लिए सही ज़मीन मिली है, उनकी कविता अपने पूरे उत्साहमें खिली है।

लेकिन इसके मानी नहीं कि कविने आत्म परीक्षण न किया हो, और कविताके घनत्व और संकेत-क्षमताके लिए सफल कोशिश न की हों, यह संघर्ष उसके भीतर जारी है। इसका बड़ा कारण है कि वह अंग्रेज़ीके माध्यम से विश्वके अधुनातन काव्यका भी गहरा अध्येता है और कविताकी व्यंजना शक्ति और बदलावोंसे परिचितभी है। उसकी एक संक्षिप्त और सशक्त कविताका उदाहरण लें :

> आसमानमें/ गोली चली/ मारा कौन जायेगा,/ कह नहीं सकता/ गोली चली है/ काफी है—/ किसी-न-किसीके खिलाफ़/ चली होगी।
>
> (आसमानमें गोली)

इस सीधी-सी लगनेवाली संरचनामें अर्थके दो बहुत सूक्ष्म संकेत हैं। एक तो यह कि आदमी कितना खुदगर्ज और उदास है कि गोली चलने जैसी हिंसक और खूंखार घटनामें उसकी तबतक कोई दिलचस्पी नहीं है, जबतक कि वह उसीपर न चले। रमेश दवेकी कई कविताओंमें आदमीके प्रति आदमीकी अनवरत उदासी, क्रूरता और विश्वासघातकी चिन्ता है। क्योंकि उनकी कविताएं मुख्यतः और मूलतः मनुष्यकी मुक्तिके लिए चिन्तित हैं और यह चिन्ता इसलिए अधिक आत्मदाहक है कि हम-शक्ल, समान-पीड़ित आदमीभी एक दूसरेसे उदासीन, असहिष्णु या परस्परघाती है। लेकिन कविताका दूसरा संकेत अधिक गहरा है कि गोली सत्ताकी हिंसक प्रक्रिया है—सवाल नहीं कि किसपर चली या कौन मरा, प्रश्न यह है कि हिंसा हुई है, जुल्म हुआ है—उसके लिए संबंध खोजनेकी जरूरत नहीं है, यह एक चिन्ताजनक प्रश्न है कि हिंसा हुई है—इसलिए उसका प्रतिरोध बिना आहत या मूलका पता जानेभी, किया जाना चाहिये। 'सिपाही के लिए', 'पेड़', 'चोर', 'माँस', 'फंदे' आदि ऐसीही संक्षिप्त कविताएं हैं, जो स्वयं रमेश दवेको अपनी बुनियादी प्रवृत्तिके प्रतिरोधमें सार्थकताको प्रमाणित करती है।

रमेशकी कवितामें एक औरभी विशेषता है कि वह आम आदमीके उत्पीड़न और आम आदमीके उत्पीड़नकी कविताके बीच एक सेतु है। आमतौरपर साधारण आदमी पर लिखी कविताओंमें वह आदमी बनाया हुआ लगता है। यहाँतक कि उसे कविताके माध्यमसे पहचानना कठिन हो जाता है। रमेश दवेमें यह आदमी स्वयं अपनी पहचान देता है। उनकी एक कविता है—'आजादी एक चपरासीकी'। चपरासी स्वतंत्रता दिवसपर ध्वजारोहण, भाषण आदिकी तैयारी होते देखता है तो कारणके प्रति जिज्ञासु हो उठता है। उसे बताया जाता है कि आजादी का पर्व मनाया जा रहा है। वह पूछता है यह क्या होता है? वह तो जो पहले करता था, वही आजभी करता है—फाइलें ढोनेसे लगाकर साहबके घरका आटा पिसवाने और गाली खानेतक के सारे काम। ऐसी हालतमें उसका यह प्रश्न कविताके अन्तमें और सघन और ट्रेजिक हो जाता है कि 'बताओ ना/ बाबू साहब—/ये आजादी क्या होती है?' कहींभी भाषा या अभिव्यक्तिमें चपरासीके अपने चिह्न मिटाकर कविता बनाने या कवितामें उसे जाननेकी कोशिश नहीं की गयी। वह न 'मोचीराम' की तरह तत्त्व-दर्शन बखानता है न किसी घासीराम या रामगुलामकी तरह बनाया हुआ लगता है। रमेशकी कविताओंमें यह सहजता और निराडम्बर उनकी रचना क्षमताको भी दिखाता है और उनकी सीमाओंकी ओरभी इशारा करता है। क्योंकि उनके पास भाषा वैविध्य और तकनीकी बहुलता नहीं है, हर कहीं यह गुण नहीं हो सकता, बल्कि अधिकतर यह कविताको सपाट और एक सादीभी बनाता है। रमेशकी यह विशेषता है कि वे अपनी क्षमताओंका ही नहीं, अपनी सीमाओंका भी कई जगह अच्छा उपयोग करते हैं।

सम्बोधन-भाव अक्सर दवेका स्थायी भाव है। उनकी व्याख्यान-परकता उनपर अक्सर सवारी गांठे रहती है। अगर वे उससे मुक्त होनेकी कोशिश कर पाते तो उनके शिल्पमें भी, वस्तुकी तरह विविधता दिखायी देती। बात-

चीतभी उनके लिए कई जगह वक्तृत्वका पर्याय हो गयी है, नतीजेमें वे सूक्तियां रचने लगते हैं जबकि कविता सूक्तिको तोड़कर उसमें जीवनकी धड़कनें पैदा करती हैं। 'पुरानी यादें/ और जमी हुई धूल/ आसानीसे/ नहीं हटती/' । यह बात स्वयं कविताकी रचना और कथ्यसे ध्वनित होती तो शायद अधिक काव्यात्मक होती। यद्यपि संकलनकी अधिकांश कविताएं 'मैं' शैलीमें लिखी गयी हैं, लेकिन यह 'मैं' इतना व्यक्तित्ववान् है कि संबोधन और उपदेशका उत्साह उसे घेरे रहता है। यह प्रवृत्ति कविता को निरा वक्तव्य बना देती अगर रमेशमें व्यंग्यकी तीक्ष्णता न होती। व्यंग्यने उन्हें अपनेही विरुद्ध खड़ा किया है, यह विरोध उनकी कविताके लिए वरदान बन गया है। रचना चातुर्यकी कमीको वह अक्सर ढंक लेता है। फिरभी रमेशको अपने काव्य-शिल्पपर दुबारा इसलिए विचार करना होगा कि वाग्मिताके मोहने उनकी 'शब्द-प्रेत' कविताके प्रवाहको डायलूट किया है और 'वक्त, आग और हवा' जैसी बेहतर संभावनाओंवाली कविताको वैचारिक भटकावमें डाल दिया है। असलमें व्याख्यानपरकता एक अलग तरहकी रोमांसिकता है जो शब्द-मोहमें अवश खींचती चली जाती हैं।

रमेशने अपनी सृजन-रूढ़िको न तोड़ना चाहा हो, ऐसा मेरा आरोप नहीं है, वे कहीं-कहीं एक क्रीड़ा-भावसे बड़ी सहजतासे अपनेको अभिव्यक्त करते हैं। 'मेरे आफिसमें' कविता दफ्तरी काहिली और निरर्थक दैनन्दिनीको शब्दों, वाक्योंके खिलवाड़से न केवल एक सही खाका खींचती है, वरन् रचना-चातुर्यभी प्रकट करती है :

> मेरे आफिसमें/ एक अदद साहब/ चार अदद बाबू/ पाँच अदद चपरासी···/ शायद ये सब हैं/ कामभी होगा/ शायद काम है/ इसलिए ये सब हैं/ ये सब होते हैं/ आफिस होता है/ काम होता है/ काम होता है/ फाइलें होती हैं/ ये सब होते हैं/ और इन सबका समय होता है।

शब्दों और वाक्योंकी आवृत्ति स्वयं एक निरर्थक दोहराव को आपोआप व्यंजित कर देती है। इसी सिलसिलेमें 'अदद' और 'शायद' जैसे शब्दोंके प्रयोगकी बारीकीपर भी गौर करना चाहिये। इसी तरहकी कविताएं 'घर' 'पेड़' आदि भी हैं, ये कविताएं भले बहुत गहरी न लगें लेकिन वे रमेशके उस संघर्षकी ओर इशारा करती हैं, जिसके तहत वे अपनेको बार-बार तोड़कर रचनेके सर्जनात्मक प्रयत्नमें जुटे हैं।

रमेशकी भाषा प्रवाहपूर्ण ओजस्वी और अर्थवान् तो है लेकिन बहुत पहचानी और अभ्यस्त रुचिके अनुकूल है। उनकी कवितामें ही वह इतनी एकरूपतामें आयी है कि भाषाके प्रति जो अतिरिक्त विस्मय और ताजगीके भाव जगने चाहियें वे अक्सर इन कविताओंमें नहीं जगते। एक नये कविके लिए भाषा अपने आपमें सर्जनात्मक चुनौती होती है। इस चुनौतीका सामना करना रमेश दवेकी अनुभूति और सजगताको देखते हुए अवश्यंभावी लगता है। भाषाके नये क्षितिजोंको तलाशते हुए कवि नये बिम्बों, प्रतीकों,कथ्योंके आमने-सामने भी होता हैं। और 'कोट' या 'पेड़' या 'दीवार'के बहुत पहचाने-से प्रतीकीकरणमें ही नहीं रुकता। सृजन एक उत्खनन क्रिया भी है और एक संचरणभी है। जिसके बिना न तो बिम्ब-योजना सूक्ष्म हो पाती है न उसे लैंण्डस्केपसे बहुत आगे ले जाया जा सकता है। दृश्य बिम्बभी रमेश दवेके यहां अधिकतर लैण्डस्केपमें बदले हैं जैसा 'सड़कके बारे में' हुआ है या वे प्रतीकीकरणकी उतावलीमें रहते हैं जैसा 'मेरे बेटेकी मुट्ठियां' में हुआ है। रमेश दवेकी मुक्त छन्द योजनाभी प्रायः एकसे प्रवाहमें बंधी है उसमें भी वह वैविध्य नहीं है। छंदका एक-जैसा प्रवाह उसे गद्यमें ठहराता है, क्योंकि वह आत्माका एक व्याकरण रचता है। इसे स्वयं कविताकी गद्य-लयसे भी तोड़ा जाता है। भाषा-प्रयोगके सिलसिलेमें प्रत्यय और उपसर्गोंकी भी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। रमेश इनका बहुत ताजा उपयोग कम कर सके हैं। 'दार' प्रत्यय उन्हें इतना प्रिय है कि वे 'पत्थरदार', 'लकीरदार' सड़ाकेदार जैसे 'दार' बहुल शब्दोंका बेखटके उपयोग करते हैं। ऐसे प्रयोग हर जगह बेहतर नहीं माने जा सकते। भाषाई चिह्नोंके बारेमें भी वे लगभग असावधान हैं। वे काव्य-भाषाके गद्यकी तरह उपकरण नहीं हैं, आन्तरिक संरचना का भाग हैं। विभाजकों, प्रश्नवाचकों, विरामोंका अत्यधिक प्रयोग यह जाहिर करता है कि उन्होंने इस पक्षपर विचार नहीं किया है। एक संकेत पर्याप्त होगा कि प्रश्न अगर भाषामें ही हो तो चिह्नकी आवश्यकता नहीं है। इसी तरह अन्य चिह्नोंके बारेमें भी कहा जा सकता है।

रमेश दवेकी कविताओंको लेकर तकनीकी बारीकियोंमें उतरना इसलिए भी मुझे आवश्यक लगा कि उनका कथ्य विविध है, उनकी मानवीय चिंता सार्थक है

और उनकी दृष्टि साफ है। उन्हें कविताके मर्मका पता है, वे जानते हैं कि कविता कहाँसे उठायी जाती है और प्रभावके किस छोरपर पहुंचायी जा सकती है। वे कविता के किसी मतवाद और गुटसे जुड़े नहीं है और अपने कविको किसी पीढ़ीसे जोड़नेके लिए कोई ऐसा तरीका नहीं अपनाते जिससे वे नये दिखायी दें। अनेक तकनीकी खामियां होनेपर भी अगर उनकी कविता मन को छूती है तो इस कारणसे कि मनुष्यकी वास्तविक पीड़ा और कविताके उत्स एक हैं। असल तो वह भीतरी संपृक्तताही होती है जो कविताको कविता बनाती है और इसी संपृक्ततासे वह शिल्पभी हासिल हो जाता है जो उसे वाणी देता है, यह अलग बात है कि कविकी चिन्ता दोहरी होती है और प्रतिभा और प्रेरणाके साथ ही अभ्यास और सम्प्रेषणकी ताजगीको भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

रमेश दवेके भीतर कविताके मौलिक संवेदन हैं। उनका अनुभव और ज्ञान-संसार विस्तृत हैं और उनमें कारणकी खोज करनेवाली दृष्टि सम्पन्नता है। जब वे छांवदार पेड़को काटकर डण्डोंमें बदलनेका नतीजा दंगों को ठहराते हैं, या माताओं द्वारा युद्ध-सन्धि न करनेको युद्धकी बर्बरताके मूलमें देखते हैं, या सरहदोंके भीतरही संकीर्ण हो जाने और सरहदके बाहर घृणा-भावना रखने को युद्धके मूलमें पाते हैं या नेतृत्वके दोहरेपनको. समाज के तथाकथित श्रेष्ठ जनोंको या नौकरशाहोंकी दास मनोवृत्तिको मनुष्यकी गुलामीमें देखते हैं तो लगता है कि वादोंसे पटरी बिठानेके कारण जो विसंगतियां और वास्तविक बोध खत्म हो जाता है, वैसा रमेशके साथ नहीं हुआ है। उनकी कई कविताएं बहुत मार्मिक हैं और प्रभावित करती हैं। संग्रह इधर प्रकाशित कविताओंमें बहुत महत्त्वपूर्ण है।

☐ प्रभाकर श्रोत्रिय

मनके दीप जले

कवि : कृष्णकुमार विद्यार्थी; प्रकाशक : आलोक प्रकाशन, देवी मण्डप मार्ग, हेसल, रांची-८३४-००५। पृष्ठ : १३५; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

'मनके दीप जले' कवि विद्यार्थीके आन्तरिक भावोच्छ्वासको दृप्त करनेवाली एवं अध्यात्मकी देहरीपर समर्पित अनन्य आस्तिक काव्य-कृति है।

पुस्तककी प्रस्तावनामें कविने अध्यात्मकी प्रौढ़ता या गम्भीरताको बोधगम्य काव्य-पंक्तियोंमें संजोये रखनेका उपक्रम स्वीकार किया है। कविका यह अध्यात्म वस्तुत: मानवीय गरिमा और स्रष्टा कविकी वैयक्तिक आस्थासे प्रेरित एवं उच्चाशयसे गौरवान्वित हुआ है। यह ठीक है कि कुल एक सौ आठ कविताओंको नौ खण्डोंमें विभाजित कर उन्हें माया, वासना, मन, जीवन-कर्मयोग, विज्ञान-भक्ति-विवेक, साधना, समर्पण, ब्रह्म-आत्मा-परमात्मा उपशीर्षकान्तर्गत संजोया गया है। किन्तु यह प्रकरण विभाजन पुस्तकीय सुविधा हेतुही प्रस्तावित किया गया प्रतीत होता है। कविका बृहत्तर भाव-संसार और सुविस्तृत अनुभववृत्त इन कृत्रिम या अनावश्यक विभाजनोंमें नहीं बंधता।

'मनके दीप जले' के छन्द मणिमालाके एकसौ आठ मुक्ताओंकी भांति समर्पणके सुमेरु एवं आस्थाके सूत्रमें पिरोये गये हैं। मुक्तकधर्मी होनेके कारण प्रत्येक छन्द वृत्त अपनी अर्थवत्ता और भाव संभारमें पूर्ण हैं। इन छन्दोंके माध्यमसे कविने दक्ष प्रश्नोंके सम्मुखीन आधुनिक मानव मनके असमंजस, दुरभिसंधिमें पड़ी नियति तथा व्यष्टि और समष्टिके संघातमें फंसी व्यक्तिकी जिजीविषाको परिरेखित एवं मनस्विताको रेखांकित किया है। सायही शाश्वत प्रश्नोंके समानान्तर प्रौढ़ एवं तटस्थ समाधान जुटाना चाहता है। और इस प्रकार सनातन एवं समकालीन ध्रुवोंके मध्य विकसित अन्तरालको शुष्क, प्रबुद्ध या प्रखर चिन्तन द्वारा नहीं, अनन्य समर्पणसे समंजितकर सत्य और यथार्थके साथ-साथ व्यक्ति मन और लोकमानसकी भ्रांतियोंको दूर करनेका आग्रही है। कविने भारतीय मनीषा एवं सांस्कृतिक भाव-यात्राके क्रममें योग भक्ति और प्रेमकी यथास्थान चर्चा तो की ही है; किन्तु कर्म और ज्ञानेन्द्रियोंके यथोचित नियन्त्रण मार्दवके उपरान्त गीताके निष्काम कर्मयोगके सन्देश एवं लययोगको सर्वोपरि माना है—

'तर्क, ज्ञान तो केवल टहनी पत्तेतक जाते हैं
गहन वासनाका ये मूलोच्छेद नहीं कर पाते।
जब निष्काम हृदयमें, साक्षी भाव जन्म लेता है।
लोभ वासनाके सारे सूखे पत्ते झर जाते हैं।'

(पृ: ८१)

\+ × +

इस प्रकार, कवि गीता और मध्यकालीन भक्तिवादी दृष्टिका विशेष आग्रही नहीं, पुनर्प्रस्तावकभी रहा है।

उसका यह प्रस्तावही भाव-संकल्पमें पर्यवसित होता है—

"कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय दोनोंपर अंकुश रखना है ।
और साथही गहन प्रेमकी गंगामें बहना है ।
दमन नहीं आवश्यक है तनका हो या हो मनका
प्राणायाम सहज सीढ़ी है योगनिष्ठ साधनका ।"
(पृ. ११०)

लेकिन कहीं-कहीं यही दृष्टि कदाचित्—समर्पणमूलक नहीं, चिन्तनमूलक प्रतीत होती है—

'सूने वनमें, अपनी छायासे भी भय लगता है
ज्ञानदीनके बिना सदा नूतन संशय जगता है ।
मानवका व्यक्तित्व उसीके चिन्तनका प्रतिफल है,
चाहे तो दानव बन जाये, चाहे देवविमल है ॥
(पृ. ७६)

× × +

"जबतक सुलगाओ नहीं, काष्ठके तनको ।
प्रज्जवलित नहीं होती अन्तरकी ज्वाला ।
आत्माकी सारी शक्ति, व्यर्थ सोती है,
जबतक न ज्ञानका इसको मिले उजाला ॥"
(पृ. १३२)

यहाँ इस बातका उल्लेख करनाभी आवश्यक जान पड़ता है कि कविका दृष्टांतधर्मा उपदेशकस्वरूप भी कहीं-कहीं मुखर हो गया है । यह स्वाभाविक ही है क्योंकि आयुकी प्रौढ़िपर पहुंचकर कविकी स्वच्छन्द, रुमानी या मूल शृंगारिक वृत्ति - वैराग्य और नीतिमें परिणत हुई है । इस अपेक्षित परिवर्तनके साथ यहभी स्वीकारना होगा कि प्रस्तुत काव्यका स्वर या स्वरूप न तो किसी विशिष्ट दार्शनिक मतवाद या भित्तिपर टिका है अथवा निर्वैयक्तिकता या वैयक्तिकताकी जुगाये रखनेके उपक्रमसे प्रणीत है । वस्तुतः कविकी समस्त स्थापनाएं सार्वजनीन, कालजयी या निरपेक्ष सत्यकी आत्म-साक्षीसे संस्तुत है ।

परिष्कृत रुचिके पाठकोंके लिए, प्रस्तुत संकलन एक अपरिहार्य कृति है । जहांतक छन्द या मुक्तक प्रणयनका संबंध एवं चार पंक्तियों या आठ चरणोंमें विभाजित या विन्यस्त अथवा निर्दिष्ट शब्दोंमें भावोंको सीमित करने की विधिका प्रश्न है, वह पाठकीय दृष्टिसे इस प्रकार सुविधा या असुविधाजनक होता है कि कोई पाठक सीमित अपेक्षाके साथही इन्हें पढ़नेको प्रवृत्त होता है । किन्तु क्षमतावान् कवि या रचनाकार सीमाबद्ध मुक्तकोंमें भी असीमित भाव-गाम्भीर्य संजोकर—पाठकको इनमें अवगाहन करनेका निमन्त्रण देता है । इस दृष्टिसे भी प्रस्तुत संकलनके मुक्तक पाठकको अभिभूत करनेमें समर्थ हैं । यथा —

"जीवनके कर्म यज्ञकी निष्ठासे हैं
जो होम सदृश 'स्वाहा'में मिल जाते हैं
कर्तापनका यदि भाव नहीं हो मनमें
सब कर्म स्वतः फूलोंसे खिल जाते हैं ।" (पृ.५२)

+ + +

देवालयमें तो करो, हृदयका अर्पण,
बन जाय तुम्हारा भक्ति भाव ही चन्दन
जड़ चेतन सबमें प्रभुकी माया दीखे
समझो देवालय स्वयं तुम्हारा जीवन ।" (पृ. १२५)

× × ×

प्रस्तुत कृति प्रूफकी अशुद्धियोंसे भरी एवं अनावश्यक रेखाचित्रोंसे मण्डित है । कृति अपनी प्रस्तुति (आवरण एवं बंधाई सहित) में आकर्षक होती तो इसका मूल्य (२० रुपये) पाठकोंको नहीं अखरता । संभवतः कविको प्रकाशककी प्रस्तुति एवं मुद्रण-क्षमताका ज्ञान नहीं रहा होगा । आशा है, दूसरे संस्करणमें, इन अवधानताओं का पालन पाठकोंके हितमें होगा ।

☐ रणजीतकुमार साहा

गाते गुनगुनाते

कवि : सीतेश आलोक; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०-००६ । पृष्ठ: ८०; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु. ।

'गाते गुनगुनाते' सीतेश आलोकके ५८ गीतोंका संग्रह है। गीतकारकी सूचनाके अनुसार "इस संग्रहके लगभग सभी गीत आकाशवाणी कार्यक्रमोंके कई केन्द्रोंसे प्रसारित होते रहे हैं ।" गीत पाँच भागोंमें बांटकर प्रस्तुत किये गये हैं । पहले भागका शीर्षक है 'नील नभके तले' । इस भागके गीत संयोग शृंगारके गीत हैं । दूसरे भागका शीर्षक है 'जीवन तुम्हारे बिना...' इस भागके गीत वियोग शृंगारके गीत हैं । तीसरे भागका शीर्षक है 'मांझी चलते जाना' । इस भागके गीतोंमें विविधता है। अधिकांश गीत जीवनकी गतिशीलताको व्यक्त करते हैं। इस खण्डमें तीन लोरियां भी हैं । चौथे भागका शीर्षक है 'हमपर गमे-जहान है' । इस खण्डमें सीतेश आलोककी ग़ज़लें संगृहीत हैं । पाँचवां खण्ड है 'गूंजे जयगान हमारा' । इस खण्डमें राष्ट्रीयताकी भावनासे ओतप्रोत गीत हैं ।

इन पांचों खण्डोंके गीतोंमें सबसे अधिक प्रभावशाली ग़ज़लें हैं। कारण सीतेश आलोकने भाव, भाषा और शिल्पमें ग़ज़लकी परम्पराका एक सीमातक निर्वाह किया है और इस निर्वाहके कारण इन ग़ज़लोंके प्रति हममें रूढ़ प्रतिक्रिया जाग्रत होती है। नीचे उद्धृत शे'रोंके पढ़ने या सुननेपर हमारे मुंहसे पूर्व-निर्धारित प्रतिक्रियाके रूपमें 'वाह! वाह!' निकल जायेगी—

चिलमनकी ओटमें तो सदियाँ गुजर गयीं
कभी सामनेभी आइये तो बात कुछ बने।
आनेसे जिसके ज़ख़्म हरे हो गये दिलके
कोई कहे वो जाने बहाराँ तो नहीं है।
रहने दो ये फलसफा शेरो-सुख़न
ग़ालिबो-ख़य्यामसे जी भर गया।
कुछभी हो मेरे ग़मसे दुनियांका जी तो बहला
पहले हुए थे चरचे फिर बन गये अफ़साने।

लेकिन पाठक अनुभव करेंगे कि सीतेशकी गजलोंमें कारीगरी सामान्य स्तरसे ऊपर कम उठ पाती है।

आकाशवाणीके सुगम संगीतके रूपमें 'गूंजे जयगान हमारा' खण्ड के गीत कैसेही लगते हों, किन्तु समकालीन साहित्यिक परिदृश्य और राष्ट्रीय यथार्थके सम्बन्धमें वे बीते हुए जमानेकी ऐसी चीजें हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्वभी नहीं है। ये गीत आज बिल्कुल निरर्थक लगते हैं, इसका कारण यहभी है कि इनमें सर्जनात्मकताका सर्वथा अभाव है। सर्जनात्मकताका अभाव अन्य गीतोंमें भी है। इस संग्रहके गीतोंका निर्माण जिन उपकरणोंसे हुआ है, वे सभी अत्यधिक उपभुक्त उपकरण हैं। सीतेश आलोकके सभी गीतोंके भाव, लयाधार, शब्दावली, अलंकरण, बिम्ब एवं प्रतीक ऐसे हैं जो निरन्तर उपयोगमें लाये जानेके कारण इतने घिस गये हैं कि उनमें कोई चमक, कोई वैशिष्ट्य नहीं रह गया है। गीतोंको कृत्रिम ढंगसे मधुर बनानेका प्रयत्न भी किया गया है। नीचे उद्धृत पंक्तियोंमें 'बदरा', 'जियरा', 'पपिहा' 'मोसे', 'नहिं' शब्द-प्रयोग इसी प्रकारकी कृत्रिमताका उदाहरण हैं—

बदरा घिर आये रिमझिम गीत सुनाये
उठे जियरामें मीठी हिलोर रे…
पपिहा पी पी गाये मोसे रहा नहीं जाये
घर आजा सजन चितचोर रे!

अनेक स्थानोंपर सीतेश आलोकके गीतोंमें छन्दोभंग है। गाये जानेपर ये गीत यदि अच्छे लगते हैं तो संगीतके कारण। ये गीत स्वयंमें प्रभावित करनेकी क्षमता नहीं रखते।

☐ डॉ. हरदयाल

जीवन-राग

कवि : रामशिरोमणि 'होरिल'; प्रकाशक : ग्रन्थायन, १०/१८ मार्नसिंह दरवाजा, अलीगढ़-२०२००१। पृष्ठ ८०; क्रा. ८१; मूल्य : ७.५० रु. (पुस्तकालय संस्करण), पेपर बैक ४.०० रु.।

'जीवन-राग'में होरिलजीके ५६ 'मुक्तक', ६ समस्या-पूर्तियां और २४ अन्य सतुकान्त-अतुकान्त गीत तथा मुक्तक रचनाएं हैं। संग्रहके प्रारम्भिक ५६ 'मुक्तक' छन्दोंमें कविकी रोमानी वृत्तिका गहरा रंग उजागर है। पाटल, भ्रमर, कलिका, प्रभात, संध्या, शिशिर, चमन, बुलबुल, मदिरा, चषक, सावन मेघ, सिन्धु लहर, कोयल, घट, मधुबाला, ऋतुराज, ताम्रचूड, मांझी, नौका, चाँद, मैना, मधुपरी, उषा, विहग, मलयानिल, मखमली घास, गागर, पनघट, किसलय, रसपान, मदिर अधर, गुलाबी गाल इत्यादिकी चर्चा करके कविने ऐन्द्रिक प्रणय-भावकी उद्दीपनकारी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है। अनुराग-विरागकी विविध झांकियों तथा झलकियोंके माध्यमसे नश्वर जीवनमें प्रेमके स्वरको ही सर्वोपरि आंका गया है। ख़य्यामकी भाँति एकान्तिक प्रेम-परिचर्या, संयोगके सुखोपभोग, सुरापान एवं संसारकी विस्मृतिमें ही जीवनकी अर्थवत्ताको तलाशनेका प्रयास इन मुक्तकोंमें लक्षित है, यथा—

छोड़कर सारे तर्क-विवाद,
चली तुम आओ मेरे साथ
पिला दो मदिराकी कुछ बूंद,
उठाकर प्याला अपने हाथ!
न कहना कुछ बेमनकी बात,
भरे जब जीवनमें उन्माद
यही दो क्षण, सच कहता प्राण!
रहेंगे अमरपुरीमें याद। (पृ. २३)

कवि-कल्पनाने अनुभूतिके रंगोंको छूकर अनेक बिम्ब प्रस्तुत किये हैं। विविध प्राकृतिक रूप-व्यापारों, उपमानों प्रतीकोंके माध्यमसे प्रिय-सान्निध्यकी तीव्र ललकको मुखरित किया गया है। शैली-शिल्पपर छायावादी छाप है। छन्द गतिमय और भाषा भावानुरूप कोमल-कान्त है; जैसे—

असहाय तथा विकलांगों की नयी आशा

दिल्ली में समाज कल्याण के बढ़ते चरण

आज दिल्ली में जरूरतमंद, उपेक्षित, निराश्रित तथा विकलांग व्यक्तियों के लिए पहले से कहीं अधिक संस्थान एवं सेवाएं उपलब्ध हैं। इस समय दिल्ली प्रशासन द्वारा 60 संस्थान/केन्द्र तथा सेवाएं चलायी जा रही हैं जिनके अन्तर्गत समाज कल्याण से संबंधित हर प्रकार की गतिविधियाँ शामिल हैं। इन से लगभग 3 लाख व्यक्ति लाभान्वित हो रहे हैं। इन संस्थानों में जरूरतमंद बच्चों, महिलाओं, वृद्धों एवं अशक्तों, भिखारियों, कुष्ठ-रोगियों, विकलाँगों तथा मानसिक रूप से अविकसित व्यक्तियों को भोजन एवं आवास के अलावा सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। आत्मनिर्भर बनाने के लिए इन्हें प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

भिक्षा-वृत्ति की रोकथाम के लिए जोरदार अभियान चलाया गया है भिखारियों को पुनर्वास के लिए 9 गृहों में प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

चालू वित्तीय वर्ष में समाज कल्याण गतिविधियों पर योजना-व्यय पिछले वर्ष के 1 करोड़ 10 लाख रु. से बढ़ाकर 2 करोड़ 25 लाख रु. अर्थात् दुगना कर दिया गया है। अगले वर्ष के लिए राज्य क्षेत्र का परिव्यय 3 करोड़ 38 लाख रु. होगा।

प्रशासन ने पिछले वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय विकलाँग वर्ष में चालू की गयी योजनाओं की गति को बनाये रखने के लिए 1982 को भी 'विकलाँग वर्ष' के रूप में मनाने का निश्चय किया है।

इस वर्ष चालू की गयी कुछ योजनाएं इस प्रकार हैं:

- यमुनापार क्षेत्र में मानसिक रूप से अविकसित बच्चों तथा बहरों के लिए अलग-अलग विद्यालयों का समारम्भ।
- नेत्रहीन बाल राजकीय विद्यालय का स्तर बढ़ाकर उच्च विद्यालय में परिवर्तन।
- कालेज जाने वाले नेत्रहीन छात्रों के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के समीप एक छात्रावास का समारम्भ।
- कुष्ठ रोगियों को 96 रिहायशी इकाइयों का आबंटन।
- शाहदरा के ताहिरपुर में कुष्ठ से प्रभावित 800 व्यक्तियों के लिए काम/प्रशिक्षण देने के लिए सुरक्षित कर्मशाला तथा पुनर्वास केन्द्र की स्थापना।
- विकलांगों के लिए आवासीय संस्थान की स्थापना की योजना तैयार।
- समाज सहायता केन्द्र खोलने की योजना।
- शारीरिक रूप से विकलाँगों के पुनर्वास के लिए 178 कियोस्कों तथा स्टालों का आबंटन।
- शारीरिक रूप से विकलाँग लगभग 300 छात्रों को 30 रु. तथा 40 रु. प्रतिमास की दर से छात्रवृत्ति।
- पूरक पोषक आहार कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग 1 लाख बच्चे तथा 20 हजार गर्भवती/दूध पिलाने वाली माताएं लाभान्वित।
- नैतिक एवं अन्य प्रकार से मुसीबत में पड़ी महिलाओं एवं लड़कियों के लिए एक अल्प-अवधि गृह की स्थापना।

दिल्ली प्रशासन 1982 के दौरान भी विकलाँग तथा जरूरतमन्दों की सहायता के लिए कृतसंकल्प है।

सूचना एवं प्रचार निदेशालय दिल्ली प्रशासन द्वारा प्रसारित

सूप्रनि/योजना-३/८२

फेंककर निज सिन्दूरी धूल,
धराको सूरज करता लाल।
बिहँसकर तब अलियोंके पुंज,
चूमते हैं कलियोंके बाल।
रसीली धरतीपर रसधार,
बहा जब देता स्वर्ण विहान।
उमड़ तब चंचल मानस बीच,
थिरकती तेरी मधु-मुस्कान। (पृ. २७)

'समस्या-पूर्ति' के अन्तर्गत --'केहि कारण सुन्दरि हाथ जरी', 'यह प्रेम है प्रेम कहाता नहीं', 'केहि कारण मालिनि रोती रही'— इन तीनकी पूर्तिके छह सवैये हैं जो इस संग्रहकी सर्वाधिक दुर्बल रचनाएं हैं। ये भाव, छन्दकी लयात्मकता तथा शब्द-विन्यास सभी प्रकारसे असफल हैं। छन्दकी गतिहीनता तथा भाषाकी मनमानी मिलावट विशेष खटकती है; यथा—

(१) सुहागकी रात आनन्दकी बात,
कि सो रही थी अलसायी प्रिया।
लेसि कै दीपक देखन लागे,
फटी तब संशयकी रतिया।

× × ×

(२) कल कुन्तल-वेणी उघार पड़ी,
रसिका तब तोपनको हहरगे।
अति पासमें दीपक था जलता,
ललिता थी उतावलत'में परी।
घुमावत हाथ लगीं लपटें,
यहि कारण सुन्दरि हाथ जरी। (पृ. ४३)

× × ×

(३) मुख-मण्डल अश्रुभरा नित देखि,
औ' लेखि तुझे है सुहाता नहीं। (पृ. ४४)

× × ×

(४) तोड़के कंज भरा झोलिया,
करसे गहि पंकज-मूलनको। (पृ. ४५)

संग्रहकी अन्य रचनाओंमें 'नवीन वर्ष आ रहा', 'मधुपसे', 'क्या', 'भोर', 'जिन्दगी', 'इस रंगीली शाममें' 'आया मन भावन सावन', 'गीत बने जिन्दगी', 'गढ़वाली देश' जैसी कविताएं भी प्रायः हल्की और कहीं-कहीं छिछली तथा प्रभावहीन हैं। कुछ शब्द-प्रयोग भरतीके हैं और कुछ व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध हैं—

अंगके उभार बिना यौवनका रंग क्या ?(पृ. ५०)

× ×

बड़ी नशीली नजरें हैं यह, शरबत-सी चितवन।
(पृ. ५१)

× + +

उम्रकी हंसी बनो तुम बहारकी कली,
चांदकी चांदनी बनो, कामकी लली, (पृ. ६२)

+ + +

उठो पुनः मनुष्य रे, बढ़ो नवीन रीतिसे। (पृ. ४६)

× × ×

मतवाले सिखला दो मुझको भी ये अपने नव गीतें।
(पृ. ४८)

संग्रहके अन्य गीतोंमें भी मांसल प्रेमकी गन्ध अधिक है, किन्तु कहीं-कहीं जीवन-यथार्थके कर्म-प्रेरक बिन्दुभी हैं; जैसे—सांझ हो या सवेरा/ धूप हो या अंधेरा/ हर क्षणों को दे चुनौती/गीत गाये जो मधुर तू—/उस सुजनको हेर, साथी।' (पृ. ६४) 'उम्रका भटकाव कैसा', 'दो दिनोंका फेर साथी', 'प्रणयके गीत गाने दो', जीवनके सपने हरियाये', 'तुम और हम', 'बड़ा दुलारा लगता जीवनका सन्देश', 'पाँव धरता भिनुसारा' तथा 'यादोंकी परछाइयाँ' शीर्षक गीत पाठकोंके मनःप्रसादनमें समर्थ हैं। पुराने उपमानोंका प्रयोगभी प्रीतिकर हैं; यथा—'तुम्हारे केश-जालोंमें निशा नव रंग भरयी है।' (पृ. ६६) कहीं-कहीं बिम्बोंकी बुनावटमें भी जीवन्तता है; यथा—'लालसाके खारे सागर/ पर उड़ते पंखियोंके/ डैनों-सी फड़फड़ाती/ यादोंकी परछाइयाँ / विवश अंकुराती है / सिकतामें/ उगती सिवारोंकी तरह।' (पृ. ७३) स्थान-स्थानपर अभिव्यक्तिमें पैनापन है; जैसे - 'दर्दका मनहूस घेरा/ कांटसे लिपटी जुन्हाई—/ अनउगे रविका सवेरा/ धूपकी अंधिल तलहटी-/ छटपटाती छांव जैसा' (पृ.५३)

'सिमटता अंधेरा : उगता भोर' तथा 'सड़क टूटती है' शीर्षक दो कविताएं अतुकान्त हैं और इस संग्रहकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएं हैं जो संकेतों तथा प्रतीकोंकी ताजगी से वर्तमान जीवनके विविध आयामोंको उद्घाटित करती हैं। वर्तमान जीवनकी आपाधापी, कुण्ठा और निराशामें भी आशाकी वह आलोक-रश्मि निश्चयही वरेण्य है जिसके प्रति कविकी व्यंग्य दृष्टि सजग और सचेत है—'आओ, देखें-/वर्दिशोंको तोड़ने/ और नये प्रकरणकी/ ठोस योजनाओंकी लहरकी/ छटपटाहट/ कितने किनारोंको नये/ स्पर्श देती है' (पृ. ७४) ++ 'अब जबकि : अंधेरा/ सिमट गया है। उगते भोरका एक दृश्य/ राष्ट्र को दिखे/ बस'!!' (पृ. ७५) 'सड़क टूटती है' शीर्षक

रचना पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था, शोषण, भ्रष्टाचार, जीवन के दुहरे, दंभी स्वरूप और खोखले आदर्शोंपर गहरा प्रहार करती है। 'बगुला', 'मछली', 'टूटती सड़क' जैसे प्रतीक अभिव्यंजनाकी अभिनव दीप्तिसे संयुक्त हैं। अभिव्यक्तिकी सादगीभी पैनी है; जैसे— 'कई बार / बुद्ध, महावीर, ईसा, गांधीने / सुभाष-लेनिनकी आंधी ने/ उस पेड़को झकझोरा है। जिसपर बगुला अपने पंख संवारता है/ पर, हर बार बगुलेको ही विजय मिली है,/ वह पेड़की सुरक्षाके गुर जानता है।/ सड़क टूट गयी है/ मछली फिर फंसी है···।' (पृ. ७७)

संक्षेपमें भाव, भाषा एवं शिल्पकी दृष्टिसे कुछ कविताएं श्रेष्ठ हैं। सामान्यतः रचना-संग्रह सरस है। पुस्तकालय संस्करणका मूल्य कुछ अधिक है।

☐ उमाशंकर शुक्ल 'शितिकण्ठ'

शोध : आलोचना

परम्पराका मूल्य

लेखक : डॉ. रामविलास शर्मा; प्रकाशन : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : २५३; डिमा. ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।

डॉ. रामविलास शर्मा अपने तेजस्वी प्रगतिशील लेखकीय व्यक्तित्व और विशद अध्ययनके लिए प्रसिद्ध हैं। उनको लिखते हुए अब लगभग ४०-४५ वर्ष हो रहे हैं और इस सुदीर्घ लेखन-कालमें उन्होंने हिन्दी साहित्य भाषा-विज्ञानपर लगभग दो दर्जन प्रसिद्ध ग्रंथोंका प्रणयन किया है। इन ग्रंथोंके माध्यमसे उनकी प्रखर आलोचकीय प्रतिभा और विशिष्ट मार्क्सवादी दृष्टि उद्घाटित एवं प्रतिष्ठित हुई हैं। मूलतः अंग्रेजी साहित्यके विद्वान् डॉ. शर्माने संस्कृत साहित्यका भी गहरा अध्ययन किया है। हिन्दीके अतिरिक्त इन दो अत्यन्त सम्पन्न भाषाओं और साहित्यकी परम्पराओंमें अभिनिवेशके फलस्वरूप डॉ. शर्माका लेखन क्रमशः प्रौढ़ और परिपक्व होता गया है, हालांकि उनकी प्रतिबद्ध दृष्टि कहीं-कहीं क्षतिकारकभी हुई है।

'परम्पराका मूल्यांकन' में डॉ. शर्माके सन् १९४१ से सन् १९७७ तक ३६ वर्षोंके प्रलंब कालखण्डके बीच समय-समयपर लिखे गये २० निबन्ध संकलित हैं। प्रथम दो निबन्ध १. 'परम्पराका मूल्यांकन' और २. 'हिन्दी जातिके सांस्कृतिक इतिहासकी रूपरेखा' जो क्रमशः १९७५ और १९७७ में लिखे गये। प्रस्तुत संकलनमें पहली बार प्रकाशित हो रहे हैं। प्रेमचन्द विषयक निबन्ध की सामग्री सन् १९४१ में प्रकाशित प्रेमचन्दपर लेखक की पहली पुस्तकसे ली गयी है तथा शेष १७ निबन्ध लेखकके 'उन संग्रहोंमें आ चुके हैं जो बहुत दिनोंसे अप्राप्य हैं'। दो निबन्ध 'हिन्दी शब्दानुशासन और भाषा शास्त्रकी परंपरा' तथा 'आचार्य शुक्ल और ब्रजभाषाकी परंपरा' पुस्तक समीक्षाएं हैं जिनमें क्रमशः आचार्य किशोरीदास वाजपेयीकी पुस्तक 'हिन्दी शब्दानुशासन' और डॉ. शिवप्रसाद सिंहकी पुस्तक 'सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' की समीक्षा की गयी है। एक निबन्ध नाटककार भवभूतिपर है, एक रघुपति सहाय फिराककी आलोचनाओं और उनके हिन्दी साहित्य विषयक वक्तव्योंपर। शेष निबन्धोंकी विषय-सामग्री हिन्दीके संत साहित्यसे लेकर छायावाद युगके जयशंकर प्रसाद तक गद्य-पद्य रचनाओंसे सम्बद्ध है। इन सभी निबन्धोंका संबन्ध हिन्दी प्रदेशमें रचित साहित्यसे है और उसीका मूल्यांकन उन निबन्धोंमें किया गया है।

'परंपराका मूल्यांकन' प्रस्तुत संकलनका पहला

निबन्ध है और इसकी स्थिति और स्थापनाके आधार पर संकलनके शेष निबन्धोंमें एकसूत्रताके अनुसंधानकी चेष्टा की गयी है। लेखककी स्थापना है कि 'जो महत्त्व ऐतिहासिक भौतिकवादके लिए इतिहासका है,वही आलोचनाके लिए साहित्यकी परंपराका है। इतिहासके ज्ञानसे ही ऐतिहासिक भौतिकवादका विकास होता है, साहित्य की परंपराके ज्ञानसे ही प्रगतिशील आलोचनाका विकास होता है। (पृ. ९)। इसलिए 'जो लोग साहित्यमें युग-परिवर्तन करना चाहते हैं उनके लिए साहित्यकी परंपराका ज्ञान सबसे आवश्यक है। ××× साहित्यकी परम्पराका मूल्यांकन करते हुए सबसे पहले हम उस साहित्य का मूल्य निर्धारित करते हैं जो शोषक वर्गोंके विरुद्ध श्रमिक जनताके हितोंको प्रतिबिंबित करता है'(पृ. १०) तदनन्तर रूस, यूनान, फ्रांस अमरीका, ईरान आदिका संदर्भ देते हुए प्रतिपादित किया गया है कि भारतकी राष्ट्रीय क्षमता का पूर्ण विकास समाजवादी अवस्थामें ही संभव है।' (पृ. १५)।

इसमें सन्देह नहीं कि उत्कृष्ट साहित्यकी रचना और तदनुसार श्रेष्ठ आलोचनाके लिएभी देशकी साहित्यिक बल्कि सांस्कृतिक परम्पराका ज्ञान आवश्यक है; और ईलियट तो कहते हैं कि उसको प्रयत्नपूर्वक अर्जित करना होता है तथा युगीन संदर्भोंमें उसको नये, सार्थक रूपमें भावित करना होता है, लेकिन इस सबके फलस्वरूप जो उत्कृष्ट साहित्य निर्मित हो वह उस अर्थमें अनिवार्यतः समाजवादी ही हो जिस अर्थमें डॉ. शर्मा प्रतिपादित करते हैं, यह आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त, यहभी आवश्यक नहीं है कि परम्पराके मूल्यांकनके क्रममें सबसे पहले उस साहित्यका मूल्य निर्धारित किया जाये जो शोषक वर्गोंके विरुद्ध श्रमिक जनताके हितोंको प्रतिबिंबित करता है, क्योंकि प्रत्येक देश-कालकी रचनाका आधार 'शोषित जनताका श्रम' नहीं हो सकता और न मूल्यांकनकी यही एकमात्र कसौटी हो सकती है। क्या समस्त रीतिकालीन काव्यको इसी कसौटीपर कसा जा सकता है?—और खरा न उतरनेपर उसे निकृष्ट घोषित किया जा सकता है?

'हिन्दी जातिके सांस्कृतिक इतिहासकी रूपरेखा' शीर्षक दूसरे निबन्धमें लेखककी स्थापना है कि 'किसी जातिके सांस्कृतिक इतिहासको जाननेके लिए गण समाजों के सांस्कृतिक इतिहाससे शुरूआत करनी चाहिये।' (पृ. १६)। प्राचीन भारतमें भरत, कोशल और मगध नामक गणसमाजोंको महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। अतः, इन तीनों गणोंकी प्रकृति और साहित्यिक उपलब्धियोंके उल्लेखके क्रममें रामायण, महाभारत, कालिदास, भवभूति के बाद कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, गालिब, भारतेन्दु महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द और निरालाकी रचनात्मक उपलब्धियों एवं मूल्य-दृष्टिका सिंहावलोकन किया गया है।

'सन्त साहित्यके अध्ययनकी समस्याएं' शीर्षक निबंध में स्त्री-पुरुष, संन्यासी-गृहस्थ, हिन्दू मुसलमान, सगुण और निर्गुणवादी संतोंके साहित्यके अध्ययनकी कुछ समस्याएं उठायी गयी हैं। वास्तवमें ये समस्याएं नहीं हैं, प्रश्न हैं जिनके उत्तरोंके संधानकी चेष्टा की गयी है। उदाहरणके लिए, एक प्रश्न इस प्रकार है: संत साहित्य का सामाजिक आधार क्या है? (पृ. ४५) और इसका उत्तर है 'इसका सामाजिक आधार जुलाहों, कारीगरों, किसानों और व्यापारियोंका भौतिक जीवन है।' (४५) इसी क्रममें आगे बताया गया है कि 'सन्त साहित्यकी अपनी विशेषताएं हैं जो मूलतः किसी प्राचीन धर्मग्रंथपर निर्भर नहीं है' (पृ. ४६)। तुलसी साहित्यके संदर्भमें संभवतः इन स्थापनाओंमें कुछ जोड़ने-घटानेकी गुंजाइश है। अन्य प्रश्न है—संतोंके लोकधर्मका महत्त्व क्या है, सन्त साहित्यके महत्त्वपूर्ण मानव-मूल्य कौन-से हैं, सन्त साहित्यकी सामाजिक विषय-वस्तुका ऐतिहासिक मूल्य क्या है और सन्त-साहित्यका कलात्मक महत्त्व क्या है। इन सभीके उत्तर प्रायः संतुलित और स्वीकार्य हैं। इस दृष्टिसे यह निबन्ध महत्त्वपूर्ण है।

'महादेवी वर्मा और आलोचना साहित्यकी समस्याएं' शीर्षक निबन्ध सर्वप्रथम सन् १९५४ में प्रकाशित हुआ था। तबसे अबतक छायावादपर बहुत काम हो चुका है, कुछ नयी दृष्टियाँभी सामने आयी हैं। लेकिन डॉ. शर्मा को अपने उक्त निबन्धमें लगता है किसी विशेष परिवर्तन की आवश्यकता समझमें नहीं आयी। यह वास्तवमें बहुत रोचक है कि दो शीर्षस्थ आलोचकोंमें एकही रचनाकारके बारेमें इतनी प्रतिकूलता हो कि एकको महादेवीके काव्य में 'छायावादका शुद्ध अमिश्रित रूप' मिले और दूसरेको उनकी रचनाएं 'छायावादकी मुख्य विशेषताओंसे प्रायः एकदम रिक्त' लगें। लेकिन इससे भी अधिक रोचक यह है कि स्वयं डॉ. शर्मा यह नहीं बताते कि फिर महादेवी की काव्य-रचनाएं छायावादी हैं या नहीं। और यदि हैं तो वे छायावादकी क्या विशेषताएं निर्धारित कर रहे हैं। 'अतृप्तिकी भावना', मान लिया कि छायावादकी मूल

प्रेरणा नहीं है। तो क्या 'देशकी स्वाधीनता' छायावादकी मूल प्रेरणा है ? यह कहना गलत है कि 'छायावादी कवियों में सबसे आगे बढ़ी हुई चेतना साम्राज्य विरोधी, सामन्त विरोधी क्रांतिकी ओर उन्मुख है।' छायावादियोंमें निराला सर्वाधिक प्रगतिशील हैं, लेकिन उनकी प्रगतिशीलता छायावादकी प्रतिनिधि और व्यावर्त्तक विशेषता नहीं है। इसके अतिरिक्त, छायावादियोंमें जो आस्थावादी स्वर है उसकी संगति आप कैसे बैठायेंगे और महादेवी की कविताओंमें तो प्रगतिशीलता उस अर्थमें, अर्थात् साम्राज्य-विरोधी, सामन्त-विरोधी क्रांतिके अर्थमें, है ही नहीं। इस प्रकार डॉ. शर्मा छायावादकी जो विशेषताएं निर्धारित कर रहे हैं वे तो कट जाती हैं। 'राष्ट्रीय चेतना' और 'देशकी स्वाधीनता' की भावनाएं छायावाद में हैं अवश्य, परन्तु अपेक्षाकृत 'डिफ्यूज्ड' रूपमें। उनको छायावादी रचना-संसारकी मूल प्रेरणा नहीं माना जा सकता। डॉ. शर्मा कहते हैं कि "महादेवीजी और उनकी कविताका परिचय केवल 'नीर भरी दुःखकी बदली' या 'एकाकिनी बरसात' कहकर नहीं दिया जा सकता।" (पृ. १८२)। यह निबन्ध जब १९५७ में शचीरानी गुर्टू द्वारा सम्पादित 'महादेवी वर्मा' नामक पुस्तकमें प्रकाशित हुआ था तब डॉ. शर्माके उक्त उद्धरणमें 'केवल' शब्द नहीं था। अब बड़े संतोषके साथ कह रहा हूं कि डॉ. शर्माने 'केवल' शब्द जोड़कर बहुत अच्छा किया है। इसका मतलब यह है कि महादेवी और उनकी रचनाओंका कमसे कम आंशिक परिचय तो 'नीर भरी दुःखकी बदली' 'एकाकिनी बरसात' कहकर दिया ही जा सकया है—यह डॉ. शर्मा अब स्वीकार कर लेते हैं। स्वयं जब डॉ. शर्मा महादेवी के बारेमें कहते हैं—'उन्हींके शब्दोंमें उनका परिचय देना हो मैं यह पंक्ति उद्धृत करूंगा—

'रातके उरमें दिवसकी चाहका शर हूं'

इसपर प्रस्तुत समीक्षकका विनम्र निवेदन है कि केवल इस पंक्तिसे भी महादेवी और उनके काव्य-कृतित्व का सही और समग्र परिचय नहीं दिया जा सकता। यह सही है कि रचनाकारका व्यक्तित्व अखण्ड है, उसकी गद्य और पद्य रचनाओंके मूल स्वरमें भिन्नता नहीं होनी चाहिये। लेकिन महादेवीमें है, और शायद इसके कारण भी बताये जा सकते हैं। लेकिन काव्य-रचनाओंमें पीड़ा, दुःख, वेदना, उसपार, असीम-अनन्त प्रिय, साधनाके आयाम, रहस्य मिलन, विरह, सुख-दुःख और उनका समन्वय, अध्यात्मका सतत् अनुसरण आदि अनेक तत्त्व और संवेदनाएं मिलकर महादेवीकी कविताओंमें एक अजब उलझाव और अस्पष्टता उत्पन्न कर देते हैं। प्रश्न है कि रचनाके स्तरपर छायावादका सर्वोच्च मूल्य क्या है ? मैं समझता हूं कि यह मूल्य 'कल्पना' है और महादेवीकी कविताओंमें तो यह एकदम स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में अध्यात्म, पीड़ा-वेदना और कल्पना—इस त्रिकोणके आधारपर ही महादेवीकी कविताओंके बारेमें एक हदतक निश्चयपर पहुंचा जा सकता है।

पुनरुत्थानकी भावना प्रसादमें, विशेषकर उनके ऐतिहासिक नाटकोंमें सर्वाधिक है। और हृदय-परिवर्तनकी समस्याभी उनके नाटकोंमें है। लेकिन हृदय-परिवर्तनके लिए प्रसादने सर्वत्र 'सक्रिय प्रतिरोधका आदर्श' नहीं रखा है (संदर्भ : साहित्यमें लोकजीवनकी प्रतिष्ठा और जयशंकर प्रसाद, पृ. १३७) इस संदर्भमें प्रायः तथागत उपस्थित किये गये हैं। दूसरी बात यह है कि प्रसाद सर्वत्र 'शस्त्र उठाकर आततायियोंके विरोध' का चित्र नहीं खींचते, और कमसे कम उस अर्थमें तो यह नहीं ही होता है जिस अर्थमें डॉ. शर्मा कल्पना करते होंगे। जहां इस प्रकारके चित्र हैं भी वहां उनके तत्काल पूर्वकी पृष्ठभूमि कुछ भिन्न है। उदाहरणके लिए, स्कन्दगुप्त नाटकमें हूण सैनिक जब स्त्रियोंको पकड़कर खींचते हैं तो कालिदास (मातृगुप्त) यह कहते हुए कि 'इन निरीहोंके लिए प्राण-उत्सर्ग करना हमारा धर्म है' तलवारसे बंधन तो काटता है, लेकिन इसके तत्काल पूर्व वह भगवानको पुकार चुका है 'हे प्रभु ! हमें विश्वास दो अपना बना लो।' और इसके भी कुछ पहले मुद्गलको सावधान करते हुए वह कहता है 'असहाय अवस्थामें प्रार्थनाके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं, आओ हम लोग भगवान्से विनती करें।' स्वयं स्कन्दगुप्तभी 'अवलम्बन दो नाथ' की पुकार लगाता है। देवकी कहती है 'इस कठोर समयमें भगवान् की स्निग्ध करुणाका शीतल ध्यान कर।' + + 'विपद्-भंजनकी असीम दया अपना स्निग्ध अंचल सब दुखियोंके आंसू पोंछनेके लिए सदैव हाथमें लिये रहता।' इसके अतिरिक्त, प्रसादके पात्र अबभी यह कहते हैं 'गौ ब्राह्मण और देवताओंकी ओर कोईभी आततायी आँख उठाकर नहीं देखता।' ××× 'राम और कृष्णके समान क्या तुमभी अवतार नहीं ले सकते ?' डॉ. शर्मा इस मध्य-युगीन दृष्टिकी संगति अपनी विचारधारासे कैसे बैठायेंगे और इस आस्थावादी स्वरकी व्याख्या कैसे करेंगे ?

इस प्रकार परम्पराके मूल्यांकनके क्रममें अन्तिम निबंध

'हिन्दी भाषा, साहित्य और फिराक' आ जाता है। यह करीब २५ पृष्ठोंका काफी लम्बा निबन्ध है। यह अतिशय रोचक और अवश्य पठनीय है। इस निबन्धमें डॉ. शर्मा ने फिराक (रघुपति सहाय) के द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्यका मखौल उड़ाते हुए समय-समयपर जो कुछ कहा या लिखा गया उसका बड़ा करारा और मुंहतोड़ किन्तु अत्यन्त तर्कपुष्ट उत्तर दिया है। डॉ. शर्माको बधाई। यह लेख तो डॉ. शर्माने १९४३ में लिखा था। इस सम्बन्धमें यदि वे इधर कुछ लिखते तो उनका वह लेखन शायद और अधिक प्रखर होता, क्योंकि फिराक साहबने इन २५-२८ वर्षोंमें हिन्दी भाषा-साहित्यपर और भी काफी कुछ कृपा की है।

वैसे, 'परम्पराका मूल्यांकन' से हिन्दी भाषा और साहित्यकी छायावाद काल तककी परम्पराका एक सिंहावलोकन तो हो ही जाता है और डॉ. शर्माके प्रखर-तेजस्वी व्यक्तित्वको भी पाठक समाजका परिचय हो जाता है।

☐ डॉ. प्रेमकान्त टण्डन

कटघरेका कवि : 'धूमिल'

लेखक : डॉ. गणेश तुलसीराम अष्टेकर; प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर (राजस्थान)-३०२-००३। पृष्ठ : २१०; डिमा. ७६; मूल्य : ३०.०० रु.।

बहुत कम कविताएं लिखकर बहुत कम उम्रमें दिवंगत हो जानेवाले कवि धूमिलने अपने समकालीन हिन्दी कवियोंकी तुलनामें सबसे अधिक आकर्षण युवा-पीढ़ीके मनमें अपने लिए उत्पन्न कर लिया। यह उनकी कविताकी उस शक्तिके नाते सम्भव हुआ जिसके तेवरको बर्दाश्त करना सुविधाग्रस्त लोगोंके लिए कठिन है। ऊपरसे पॉलिशको ठीकठाक रखकर गन्दगी और सड़ाँध को दबाये रखनेवाले लोगोंके लिए धूमिलकी कविता गालीकी तरह है। ठीक यही वजह है कि धूमिलकी कविताकी समीक्षाभी उस वर्गकी साफ-सुथरी रंगी चुनी शब्दावलीमें नहीं की जा सकती। डॉ. अष्टेकरकी पुस्तक इस चुनौतीकी गम्भीरताको समझकर लिखी गयी है। 'कटघरेका कवि धूमिल' के अध्याय इस प्रकार हैं—(१) अकेला कवि कटघरा होता है। (२) आंक्सीजनका कर्जदार हूं। (३) (चीजों) का सही बोध ही मेरी रचनाका धर्म है। (४) सिर्फ, टोपियां बदल गयी हैं (५) मेरे देशकी संसद मौन है (६) हिजड़ोंने भाषण दिये/ लिंग-बोधपर (७) औरत एक देह है (८) मेरी नजरमें हर आदमी एक जोड़ी जूता है (९) तनो/ अकड़ो जड़ पकड़ो (१०) दुःखी मत हो। यही मेरी नियति है (११) पहला काम कविताको भाषाहीन करना है।

धूमिलकी पंक्तियोंके ये शीर्षक ग्रंथको अलग-अलग बांटते नहीं. उसकी एकताको पुष्टतर करते चलते हैं और धूमिलकी कविताकी दुनियांके अंधेरे कोनोंको उजागर करते चलते हैं।

आरम्भ करते हुए डॉ. अष्टेकर कहते हैं कि अपने समाजकी घिनौनी स्थिति मुझमें भी वही तिलमिलाहट भर रही थी, मगर मैं कवि नहीं था। जो कवि था और समर्थ था, उसने अपनी अभिव्यक्तिमें मेरी पीड़ाका प्रकाशन कर दिया। धूमिलकी कवितामें कुछ प्रयोगोंको अश्लील मानकर नाक-भौं चढ़ानेवालोंके सम्बन्धमें लेखकने एक मजेदार स्थापना की है। उनका कहना है कि पागल आदमी नंगा हो जाता है। उसकी और वीत-रागी परम-पुरुषकी नग्नताको देखकर हमको विचित्र नहीं लगता किन्तु "यदि कोई साधारण व्यक्ति ऐसा करे तो हमें आश्चर्य और विस्मय होता है जो हमारी इस सार्थक आशंकासे (भयसे) उभर आता है कि वह व्यक्ति कहीं हमारी पोल तो नहीं खोल रह है।" (पृ. ५) "स्वयंको नैतिकताकी नकाब चढ़ी झूठी प्रतिष्ठाकी आड़में रक्षित समझनेके" भ्रमको तोड़नेके लिए धूमिलने अपनी कविताएं रची हैं उसकी कविताओंमें उभरती नग्नता न पागलकी है न साधु-पुरुषकी और न ही अकेले कविकी। वह तो हम सभीकी है।" (पृ. ५-६)

बड़ी कुशलतासे अष्टेकर धूमिलको गांवसे अपने समस्त ग्रामीण संस्कारोंके साथ शहरमें आकर शहरी जीवनसे टकरानेवाली युवा पीढ़ीके प्रतिनिधि कविके रूपमें देखते हैं। वे सोदाहरण इंगित करते हैं कि धमिल सबकी कुरूपताको उजागर करनेवाला कवि है जो पारिवारिक दायित्वोंसे दबा है, अंधविश्वासों और रूढ़ियों के खिलाफ खड़ा है, आर्थिक अभावके कारण सामान्य जीवनक्रमको निभा सकनेमें असमर्थ व्यवस्थाविरोधी आक्रोशभरा बुद्धिजीवी है, जो न्यायालयके कटघरेकी वास्तविकताको अच्छी तरह जानता है। काशीनाथ सिंह के संकेतसे प्रेरित होकर डॉ. अष्टेकरने पुस्तकका यह

नाम रखा । इस सम्बन्धमें वे कहते हैं, "मैंने अनुभव किया कि अव्यवस्थाके कटघरेमें कभी अभियुक्त, कभी अभियोक्ता और कभी गवाहकी हैसियतसे खड़ा होकर अपने समकालीन सामाजिक और राजनीतिक कुरूप पक्ष को बेनकाब करनेवाले हलफ़िया बयान देनेका साहसी काम स्व. धूमिलने किया (पृ. १४)

डॉ. अष्टेकर पहले अध्यायको पुस्तककी भूमिकाके रूपमें लेते हुए धूमिलकी कविताके प्रति अपने लगाव, पढ़ाये जानेपर उनकी गति (दुर्गति) और अपनी पुस्तककी प्रकृतिकी सूचना देते हुए लिखते हैं, "परीक्षा तक ही इसकी उपयोगिताको सीमित रखकर इसे टीका होनेसे बचानेका और सैद्धान्तिक समीक्षाके नामपर सैंकड़ों सम्बद्ध-असम्बद्ध उद्धरणोंको उदधृत करने की एकरसतासे इसे पूर्णतः मुक्त रखनेका मेरा संकल्प रहा है ।" (पृ. ११)

अगले अध्यायोंमें डॉ. अष्टेकर अपने संकल्पकी छाया में बड़े बेलौस ढंगसे धूमिलकी कविताकी परतें खोलते चलते हैं । इस समीक्षा-पुस्तककी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें आचार्य.मुद्रा पूरी तरह अनुपस्थित है । बड़ी रोचक शैलीमें एक समझदार भावक धूमिलकी कविता और उसके वर्ण्य विषयके साथ तादात्म्य स्थापित करता हुआ देखा जा सकता है । पठनीयता इस पुस्तकका एक विशेष गुण है जो इधरकी समीक्षामें प्रायः अनुपस्थित है । अष्टेकर गांव-घरमें व्याप्त पचासों कहानियोंके माध्यम से अपनी बात पाठकके सामने रखते हैं । कुछ कहानियां कवितामें वर्णित अथवा व्यंजित विडबंनाको विशेष रूपसे पाठकके सामने मूर्त्त कर देती हैं । 'तनो अकड़ो जड़ पकड़ो' में निरक्षर व्यक्तिको पढ़े-लिखे लोगोंके हाथों किसी तरह अनावश्यक रूपमें पीड़ित प्रताड़ित होना पड़ता है, इस बातको 'धूमिलकी कविताके संकेतके साथ समीक्षक अष्टेकर द्वारा वर्णित निरक्षर मुवक्किलकी करुण कहानी विशेष रूपसे पाठक-ग्राह्‌य बनाती है ।

मोचीराम और पटकथा जैसी लंबी कविताओंको अलग-अलग अध्यायोंमें रखकर धूमिलकी पूरी रचना-शीलताके भीतर झांकनेका प्रयत्न किया गया है । पटकथा की तुलना मुक्तिबोधकी अतिप्रसिद्ध लम्बी कविता 'अंधेरे मे' के साथ करता हुआ समीक्षक बहुत रोचक शैलीमें उसका अर्थ खोलनेका प्रयत्न करता है । इन दोनों कविताओंपर समीक्षक निरालाकृत 'तुलसीदास' का प्रभाव बताते हैं, इस संकेतके साथ कि 'हो सकता है विद्वान् आलोचक मेरे इस मतसे असहमत होंगे ।'

समीक्षक अष्टेकरकी श्रद्धा धूमिलके प्रति इतनी अधिक है कि प्रत्येक पृष्ठपर जितनी बार धूमिलका नाम लिखना होता है वे स्व. धूमिल लिखते हैं । कृती रचना-कारोंके यशःकाय उन्हें लोगोंके बीच सदा उपस्थित रखते हैं । ऐसे लोगोंके लिए स्वर्गीय लिखनेकी जरूरत नहीं होती । स्वयं इसी समीक्षकने अन्य कवियोंका नाम सीधे लिया है । यही स्वीकृत और स्वस्थ परम्परा है । यों श्रद्धाका अतिरेक धूमिलकी कृतिके मूल्यांकनमें बाधक नहीं बनता । प्रायः सर्वत्र वस्तुपरक अध्ययन और निष्कर्ष मिलते हैं । एक स्थलपर अष्टेकर धूमिलपर आरोप लगाते हैं कि "उसने नारीके प्रति अनावश्यक रूप में अनुदारतासे काम लिया है ।" "...जो भी हो स्व. धूमिलकी नारी संबन्धी धारणाएं और यौन-जीवनकी समस्याएं अधूरी और अवास्तविक दिखायी देती हैं ।' (पृ. १४५) यहां केवल इतनी बात स्मरण कर ली जाये कि धूमिलका यह कथन कि 'औरत एक देह है' एक गहरा व्यंग्य है उस व्यवस्थापर जो औरतको देहसे अधिक कुछ माननेको तैयार नहीं है, तो सारी बात साफ हो जाती है । 'औरत एक देह है' को अभिधाके स्तरपर धूमिलका बयान मान लेनेसे ही अनर्थ होता है ।

'कुछ विद्वानों' की रायमें हिन्दी समीक्षाका रुख कविताकी ओर मोड़नेवाले कवि धूमिलकी भाषापर डॉ. अष्टेकरने बहुत अच्छा अध्ययन प्रस्तुत किया है । प्रतीक और बिम्बतक से कविताकी भाषाको मुक्त करनेके क्रम में धूमिल 'पहला काम कविताको भाषाहीन करना चाहते थे । वे मानते थे कि 'इसके लिए आदमीकी जरूरतोंके बीचकी भाषाका चुनाव करना और राजनीतिक हलचलोंके प्रति सजग दृष्टिकोण कायम रखना अत्यन्त आवश्यक है ।" समीक्षकने काव्य भाषाके सम्बन्धमें स्वयं धूमिल और अन्य विद्वान् समीक्षकोंके विचारोंके आलोकमें धूमिलकी सम्पूर्ण सृष्टिका विश्लेषण करते हुए उनकी काव्य-भाषाको निजी व्यक्तित्वकी पहचान करायी है ।

'कटघरेका कवि धूमिल' एक ऐसी दुर्लभ समीक्षा पुस्तक है जिसमें 'कवि बनाम समीक्षक' के स्थानपर 'कवि और समीक्षक' के बीचका एकात्म भाव पाठकको नये तरहका स्वाद देता है ।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय औरंगाबादके हिन्दी विभागने एक अत्यन्त सराहनीय कार्य आरम्भ किया है हिन्दीकी श्रेष्ठ पुस्तकोंको आर्थिक सहायता देकर प्र

शित करानेका। प्रस्तुत पुस्तक उसी योजनाका एक प्रकाशन है। इसके लेखक डॉ. अष्टेकर उसी विभाग में प्राध्यापक हैं। इस प्रकारकी कृतियोंके लिए पूरा विभाग साधुवादका पात्र हो जाता है।

☐ डॉ. रामदेव शुक्ल

कन्हावत

सम्पादक : डॉ. शिवसहाय पाठक; प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि., के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११-००३। पृष्ठ : २५६; डिमा. ८१; मूल्य : ७०.०० रु.।

विद्वानोंने अपनी शोधोंके परिणामस्वरूप अभीतक जायसीकी २४ प्रकाशित कृतियोंके नामोंसे हिन्दी जगत् को परिचित कराया है, परन्तु आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा सम्पादित 'जायसी ग्रन्थावली' द्वारा हिन्दी जगत् काफी दिनोंतक जायसीकी तीन कृतियों (१) पद्मावत (२) अखरावट और (३) 'आखिरी कलाम' से ही परिचित रहा। डॉ. शिवसहाय पाठक २५ वर्षोंसे जायसीपर शोध कार्य कर रहे हैं। उन्होंने तन, मन, धन लगाकर जायसी की कई कृतियों—'चित्ररेखा', 'कहारनामा' की खोज की—इसी कड़ीमें समीक्ष्य ग्रन्थ 'कन्हावत' भी है।

'कन्हावत' की हस्तलिखित प्रतियोंको प्राप्त करने, सम्पादनसे प्रकाशनतक लानेमें सम्पादकको अथक परिश्रम करना पड़ा है। मूल ग्रन्थके सटिप्पण सम्पादनके साथ-साथ ८६ पृष्ठोंकी भूमिका संक्षिप्त पर अत्यन्त संतुलित तथा महत्त्वपूर्ण है। जिसमें काव्यके नाम, मूल प्रतिकी लिपि, छन्द योजना, रचना तिथि, गुरू परम्परा, निवास स्थान, काव्य रूप, हिन्दी सूफी काव्य और जायसी आदि-आदि बातोंपर विचार किया गया है। नवीन तथ्यों तथा प्रमाणोंके प्रकाशमें लेखकने कुछ शोधार्थियों एवं समीक्षकों से असहमति व्यक्त करते हुए अपनी मौलिक स्थापनाएं भी की है। यह स्वाभाविकभी है क्योंकि अभीतक जायसी पर जोभी लिखा गया वह कविके केवल तीन ग्रन्थों (पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम) पर ही आधारित है। 'कन्हावत' जायसीको समझने और परखने के लिए नयी सम्भावनाएं देता है—इस दृष्टिसे कहावत का प्रकाशन मूल्यवान देन है। इसके साथही 'कन्हावत' अवधी कृष्ण काव्य परम्परामें प्रथम महाकाव्य होनेका भी श्रेय प्राप्त करता है। इन सभी दृष्टियोंसे 'कन्हावत' के सम्पादनने जायसीके पुनर्मूल्यांकनका पथ प्रशस्त किया है। इसकी सम्भावनाएं आचार्य शुक्लने बहुत पहले देखी थी, 'जायसी मुसलमान थे, इससे उनकी उपासना निराकारोपासना ही कही जायेगी। पर सूफी मतकी ओर पूरी तरह झुकी होनेके कारण उनकी उपासनामें साकारोपासना की सी ही सहृदयता थी।' (जायसी ग्रन्थावली पृ. १३५) डॉ. सहायने 'कन्हावत' के आधारपर आचार्य शुक्लकी सम्भावनासे पूर्ण सहमति व्यक्त की है, 'जायसीकी अवतारवादपर पूरी आस्था थी— कन्हावत'से यह तथ्य उजागर हो जाता है।'(कन्हावत - भूमिका पृ. ७७)।

अभी हालकी खोजोंके आधारपर यह बातभी सामने आयी है कि सूफी मत इस्लामसे भी पहले था, अतः उसके तत्त्व सभी धर्मोंमें पाये जाते हैं। इस तथ्यके प्रकाशमें सूफी कवि जायसीकी साकारोपासनामें आस्था होना स्वाभाविक लगता है। इसमें सन्देह नहीं डॉ. सहायने 'कन्हावत' की खोजकर हिन्दी साहित्यकी महती सेवा की है, वे अभी भी लगे हैं और उनके इस कथ्यमें पूरा विश्वास झलकता है 'जायसीकी शेष कृतियोंके विषयमें मेरा विश्वास है कि उनमेंसे अनेक कृतियां मिल जायेंगी' (पृ. ७२)। प्राचीन कवियोंके काव्यका उद्धार करनेके लिए ऐसीही साधना और आस्थाकी आवश्यकता है। आशा है 'सारस्वत सुधीजन' इस महत्तम प्रयासका स्वागत करेंगे और साथही समर्पित शोध दृष्टिसे प्राचीन तथा मध्यकालीन साहित्यके उद्धारमें लगेंगे।

मूल ग्रन्थ 'कन्हावत' की सटिप्पण सम्पादनके कारण उपयोगिता बढ़ी है। नयी पीढ़ी और हिन्दीको प्रमुख भाखाओं (उपभाषाएं : ब्रज, अवधी) के बीच समझकी दूरीका ध्यान रखते हुए आजके युगमें यह आवश्यकभी है, क्योंकि अब तो सुधीजन सूरसागरका खड़ी बोलीमें अनुवादका प्रस्तावभी करने लगे हैं (अन्तर्राष्ट्रीय सूर सम्मेलन-दिल्लीमें मॉरीशसके प्रतिनिधिका प्रस्ताव था।) 'कन्हावत' की कथाका मूल-पुराण काव्य तथा लोकजीवन है। जायसीने कृष्णको विष्णुका अवतार माना है। उनके द्वारा कृष्ण-कथाको चुननेका कारण है—प्रेम भावकी दृष्टि मे इतनी अच्छी कथा कविको किसी भाषामें नहीं मिली —

'अइस प्रेम कहानी, दोसर जग महँ नाहिं।
तुरूकी अरबी, फारसी—सब देखेउं अवगाहि।'
(पृ. ५३)

इस प्रकार कविने सूफी प्रेम भावकी अभिव्यक्तिके

भावी नागरिकों का निर्माण

दिल्ली देश का एक महत्त्वपूर्ण शिक्षा केन्द्र है जिसमें १३ लाख १६ हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। दिल्ली प्रशासन प्रतिवर्ष न केवल २५ हजार अतिरिक्त विद्यार्थियोंके लिए शिक्षा की व्यवस्था करता है वरन् शिक्षा के स्तरमें सुधार करने के लिए भी पर्याप्त कदम उठा रहा है, ताकि शिक्षा सुयोग्य नागरिकों के निर्माण में अहम भूमिका अदा कर सके। छठी योजना में ४५ करोड़ ५३ लाख रुपये का परिव्यय प्रस्तावित किया गया है। १९८०-८१ में ११ करोड़ ८४ लाख रुपये व्यय हुआ, जबकि १९८१-८२ में १३ करोड़ ३६ लाख रुपये खर्च होने की आशा है। १९८२-८३ के लिए २० करोड़ ८८ लाख रुपये का परिव्यय अनुमोदित किया जा चुका है।

१९८१-८२ की कुछ प्रमुख उपलब्धियां

अधिक स्कूल :

२५ हजार नये विद्यार्थियों के लिए विद्यमान १४ हजार ५२२ सैक्शनों में २८० की और वृद्धि की गई है। इसके लिए ५ नये मिडिल स्कूल खोले गये, ७ का विभाजन किया गया और १४ स्कूलों के स्तर को ऊंचा किया गया। इस समय १६१ राजकीय सहायता प्राप्त स्कूलों के अतिरिक्त ६९६ राजकीय स्कूल हैं।

निर्धन वर्गों के लिए अनौपचारिक तथा प्रौढ़-शिक्षा :

८—१४ बर्ष आयु वर्ग के जो बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं जा सकते उनके लिए २५ नये अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोले गये हैं। प्रशासन द्वारा संचालित पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से १० हजार विद्यार्थी १२ वीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। १३०० प्रौढ़ शिक्षा साक्षरता केन्द्रों में लगभग ३० हजार प्रौढ़ व्यक्तियों ने शिक्षा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त कामकाजी प्रौढ़ विद्यार्थियों के लिए उच्च विद्यालय स्तर के १२ प्रौढ़ सायंकालीन स्कूल उपलब्ध हैं।

हरिजन/पिछड़े समुदाय के विद्यार्थियों को अधिक सुविधा एवं प्रोत्साहन :

६ हजार विद्यार्थियों को निःशुल्क स्कूली वर्दी एवं ९ हजार को निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें तथा १२०० को विशेष कोचिंग दी गई। देहाती क्षेत्रों की १८०० छात्राओं को निःशुल्क यातायात सुविधा दी गई। सभी हरिजन छात्र-छात्राओं को निःशुल्क शिक्षा तथा अध्ययन एवं खेलों में मेधाबी छात्र-छात्राओं को छात्र-वृत्तियाँ दी गई।

समाजोपयोगी शिक्षा :

कला विज्ञान तथा वाणिज्य के नियमित पाठ्यक्रमोंके अतिरिक्त १६ स्कूलों में व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी चलाये जा रहे हैं। देहाती क्षेत्र के कुछ स्कूलों में कृषि विषय का भी समारम्भ किया गया है। कार्य-अनुभव समस्त विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। प्राथमिक कक्षाओं से ही विज्ञान की शिक्षा दी जा रही है।

शिक्षा स्तर में सुधार :

इन उपायों से शिक्षा स्तर में सुधार आया है : सेवारत अध्यापकों का प्रशिक्षण एवं नवीकरण पाठ्यक्रमों का आयोजन, राज्य शिक्षा अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान तथा ४ विज्ञान केन्द्रों की स्थापना, प्रयोगशाला तथा पुस्तकालय की सुविधाओं के विस्तार, सख्त एवं बेहतर निगरानी आदि।

खेल तथा सांस्कृतिक गतिविधियों में तेजी :

सभी स्कूलों में खेलों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। शारीरिक-शिक्षा अध्यापकों एवं प्रशिक्षकों की नियुक्तियाँ की गई हैं तथा खेल के उपकरण, खेल मैदानों एवं तरणतालों की सुविधा उपलब्ध कराई गई है। तीन बड़े क्रीड़ा-स्थलों का निर्माण कार्य भी अंतिम चरण में है।

आइए हम सभी भावी नागरिकों के निर्माण में साझीदार बनें।

दिप्र

सूचना एवं प्रचार निदेशालय दिल्ली प्रशासन द्वारा प्रसारित

सूप्रनि/योजना-५/८२

लिए बहुत सोच-विचारकर विभिन्न भाषाओंकी प्रेम कहानीका अध्ययन करनेके उपरान्त कृष्ण-कथाका चयन किया। 'पदमावत'की भांति कन्हावत भी मसनवी है तथा खण्डोंमें विभाजित न होकर शृंखलाबद्ध सुगुम्फित कथा है। सम्पादकने भी 'कन्हावत' को शृंखलाबद्ध रूपमें ही सम्पादित किया हैं। 'कन्हावत' की रचनाभी दोहा-चौपाई में हुई है। सात अर्द्धालियोंके बाद एक दोहेका क्रम रखा गया है परन्तु एक दो अपवाद भी हैं। मूल प्रति फारसी लिपिमें थी। फारसी लिपिकी दुरूहताके कारण सम्पादक को हिन्दीमें पाठ उपस्थित करनेमें विशेष कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। डॉ. पाठक हिन्दी-संस्कृत के साथ-साथ अरबी-फारसीके भी विद्वान् हैं। इसी कारण वे इस महान् कार्यको पूर्ण कर सके।

'कन्हावत' की हस्तलिखित प्रतियोंके अन्तिम पृष्ठके चित्र तथा जायसीके चित्रने समीक्ष्य ग्रन्थका आकर्षण बढ़ाया है। प्रस्तुति साफ-सुथरी तथा कलात्मक है। हिन्दी जगत् को डॉ. पाठकसे बड़ी आशाएं हैं। आशा है वे जायसी के अन्य ग्रन्थोंके उद्धारके लिए मरजीवाके रूपमें कार्य करते रहेंगे।

☐ डॉ. शम्भु शुक्ल 'अभीत'

भारतेतर हिन्दी साहित्य : काव्य

शरदः शतम्

रचयिता : प्रो. हरिशंकर आदेश; प्रकाशक : आदेश आश्रम, लोअर औरंगवेज मेन रोड, सांवां, ट्रिनिडाड (वेस्ट इंडीज)। पृष्ठ : १४०।

आज भारतसे बाहर हिन्दीका विकास, प्रचार-प्रसार मात्र भाषा-ज्ञान अथवा साहित्य-परिचय तक ही सीमित नहीं है, अपितु वह साहित्य-सृजन एवं अपनी अभिव्यक्तियोंका सशक्त माध्यमभी बन चुका है। ट्रिनिडाड जिसे वेस्ट-इण्डीज़के नामसे अधिक जाना जाता है, में प्रवासी भारतीयोंकी संख्या मारिशस, फिजी, सूरीनाम, गुयानाकी भांति अधिक है और यहांभी भारतीय खेतोंमें काम करनेके लिए अंग्रेजों द्वारा बहला-फुसलाकर लाये गये। इन्होंने अपने परिश्रम एवं ईमानदारीसे भारतीय अस्मिताकी रक्षा तो की ही, साथही अपनी भाषिक क्षमताको भी अक्षुण्ण बनाये रखा। ट्रिनीडाडमें सन् १८४५ में भारतीय मजदूरोंका प्रथम जत्था पहुंचा था, जिनमें से अधिकांश अनपढ़ एवं भोलेभाले इन्सान थे, जिनके हृदयमें राम और हाथोंमें गीताका कर्मयोग था। फलतः वे अपने भावोंको थकानके परिहारके लिए हिन्दीमें व्यक्त करते रहे जिसके कारण हिन्दी वहाँ आजतक जीवित है।

प्रस्तुत काव्य-संग्रह ट्रिनिडाडमें कई वर्षोंसे रह रहे प्रवासी भारतीयकी ११४ कविताओंका मनोरम संकलन है जिसमें गीत, अगीत, मुक्तक, दोहा, गद्यगीत, मिनी कविता, अतुकान्त कविता और नयी कविताके रंग-बिरंगे पुष्प गुम्फित हैं। कविताओंका रचनाकाल स्वयं कविके शब्दोंमें—"इन रचनाओंमें जिस अन्तर्ज्वारकी अभिव्यक्ति है, वह किसी भय, आतंक अथवा व्यक्तिगत परिवार और प्रणय-संबंधी समस्याकी उत्पत्ति नहीं है। यथार्थमें ये उन क्षणोंकी सुख-दुखमयी स्मृतियां है, जिन्हें मैंने १९७२ से १९७४ ई. की मध्यावधिमें उल्लास और औदास्यके आंचलमें जिया है, केवल समय-यापनके लिए।' (पृ. २ कुछ शब्द)।

पहली कविता 'समर्पण' से प्रतीत होता है कि कवि अपनी प्राणप्रियेको 'शरदःशतम्' काव्य-संग्रह समर्पित कर उसके शरदःशतम् जीनेकी मनोरम कामना करता है।

न खंडित हो तुम्हारा श्वास-क्रम।
जियो तुम प्राणप्रिय! शरदःशतम्।
भेंट सप्रेम तुमको कर रहा,

करो स्वीकार प्रिय ! शरद:शतम् । (पृ. ६)

फिर 'शरद:शतम्' शीर्षककी पहली कविता है जोकि संस्कृतकी अर्द्धालीसे—'त्वं जीव शरद:शतम्' से प्रारम्भ होती है। अधिकांश गीत प्रेम,सत्य और कर्तव्यके त्रिकोण बनाते हैं जिसका शीर्ष प्रेम होता है लेकिन इन प्रेम-गीतों में कवि आशा-निराशा, सुख-दुख, मान-अपमान, संयोग-वियोग, का राग अलापता है। एक स्थलपर प्रेमकी परिभाषा करते हुए कवि कहता है—'प्रेम नहीं प्रियतम परिवर्तन, प्रेम वासनाका न प्रवर्तन। प्रेम त्याग है, तप है, ऋत है, प्रेम नहीं है प्रत्यावर्तन। (पृ. २६)।' प्रेमकी पावनताके साथ कवि आदेश बुद्धके दु:खवादसे प्रभावित प्रतीत होते हैं तभी वे सहर्ष चिल्ला पड़ते हैं—मेरा तो जन्म हुआ जगमें/ केवल दु:खही दु:ख पानेको (पृ. २७)।

सामान्यतया लोग दु:ख और दु:खी व्यक्तिसे कतराते हैं। इस सामाजिक दुर्बलताको कवि पहचानता है—'मैं पापोंका पाथोद, तमिस्राका सागर, मूलोंका महाकाव्य, विषयोंका गहन भंवर, आओ मत मेरे पास, ताप लग जायेगा।' (पृ. ३१)। प्यार व्यापार नहीं है। इसकी अभिव्यक्ति 'परमात्माको' नामक गद्यगीतमें हुई है – प्यार के व्यापारियोंको/ मैं प्यार नहीं कर सकता/ दुलार नहीं कर सकता/ क्योंकि/ इससे व्यापार बढ़ेगा/ व्यभिचार बढ़ेगा/बढ़ेगा अनाचार/और डूब जायेगा संसार एक दिन/ फिर/···और तब/ परमात्माको भी मुंह छिपाना पड़ेगा। (पृ. ७७)।

कवि कभी-कभी प्रसादकी भांति नियतिवादी भी हो जाता है, यथा—चला जा रहा हूं किनारे-किनारे/ सरित ऊर्मियों-सी नियतिके सहारे। (पृ.१२३)। प्रस्तुत संकलन में 'ट्रिनीडाड टुबैको और भारतकी मित्रताकी भी कामना है—जय ट्रिनिडाड, टुबैगोकी जय, जय हिन्दुस्थानकी। (पृ. १२४)। इसी प्रकार एक कविता विश्व पथिक यशपाल जैन (भारत) की षष्टि-पूर्तिपर भी है। 'गणेश-स्तुति' नामक कवितासे कविके साकार उपासनाका भी परिचय सहजही मिल जाता है। इस गीतकी लय स्तुति और आरतीकी चिरपरिचित लयको मुखरित करती है, यथा : जय गणपति ! पार्वती-नन्दन ! शंकर-सुत ! एकदन्त ! जय-जय दु:ख भंजन। (पृ. १२५)।

संकलनके बीच-बीचमें कविने स्फुट दोहों, मुक्तकों एवं पदोंसे उत्तम वचनामृतभी दिये हैं। 'काव्यानन्द' चिदानन्द होता है जोकि गीतके रूपमें झंकरित होता है 'कोई कितनेही सुखका मोल लगाये, मैं अपने गीले गीत नहीं बेचूंगा।' (पृ. १२७)।

कविने अपने मानवीय एवं प्राज्ञिक कर्तव्योंका निर्वाह भी गीतोंके माध्यमसे किया है। दिनचर्या, गद्यगीतमें कवि ने पौराणिक भारतसे लेकर आधुनिक भारत और अध्यात्म से लेकर भौतिकवादको समेटनेका प्रयास किया है। यद्यपि इस प्रयासमें कवि अपनी भाषाकी एकरूपताको संभाल पानेमें असमर्थ रहा है।

समग्र रूपसे काव्य-गीतोंका यह संकलन भारतेतर विश्व हिन्दी साहित्यका सक्षम रूप प्रस्तुत करता है। सागरपार हिन्दीका यह कवि शरद:शतम् जीवित रहनेकी शुभकामना स्वीकार करे।

—डॉ. कामता कमलेश

वन-साहित्य

वे चिंघाड़ते हाथी

लेखक : विराज; प्रकाशक : हेमगंगा प्रकाशन एच-१, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११०-०३२। पृष्ठ : १६० (तथा आठ पृष्ठ आर्ट पेपरपर फोटो;) डिमा. ८२; मूल्य : ३६.०० रु.।

'वे चिंघाड़ते हाथी' को वन्य-जीवन, साहस, तथा यात्रा तीनोंही वर्गोंमें रखा जा सकता है। इसमें वनके पशुओंका, विशेष रूपसे हाथियोंका अध्ययन है। उन्हें देखने और उनके फोटो खींचनेके लिए की गयी साहसपूर्ण यात्राओं और जंगलमें बितायी गयी रातोंका वर्णन है।

एक समय था, जब शिकार-साहित्य बहुत लोकप्रिय था। जंगलमें जाकर हाथी, या सिंह, या बाघको गोलीसे मार डालना साहस कार्य माना जाता था और उसका वर्णन चावसे पढ़ा जाता था। वन-पशुओंकी संख्या तेजी घटनेके कारण राइफलकी गोलीसे शिकारको तो अब हत्या माना जाने लगा है। अतः साहसी लोगोंने एक नया क्षेत्र ढूंढ लिया है—वन-पशुओंका अध्ययन तथा फोटो शिकार। इसमें उससे अधिक साहसकी आवश्यकता होती है, जितनी कि शिकारमें होती है। हत्याकी क्रूरताका अंश इसमें नहीं रहता। इसे शिकार-साहित्यके बजाय वन-साहित्य नाम दिया गया है।

'वे चिंघाड़ते हाथी' वन-पशुओंके अध्ययनके लिए की गयी इसी प्रकारकी वन-यात्राओंका विवरण है। इसमें चार प्रसंग हैं : 'जंगलमें ज्येष्ठ-पूर्णिमा', 'जब हाथी झपट पड़े', 'मुंढालमें हाथियोंकी डारें' और 'हथिनीने धर दबोचा'।

ज्येष्ठ मासमें गर्मी चरम शिखरपर होती है। जंगल में पानी सोत सूख जाते हैं। ज्येष्ठकी पूर्णिमाकी रातमें वन-पशुको जलकुंडपर आना ही होगा, इस आशामें तीन साथी जंगलमें गये। वहां किस प्रकार दिनमें और उसके बाद रातमें हाथियोंके झुंडका साक्षात्कार हुआ, इसका विस्तृत एवं रोचक वर्णन इस कहानीमें है। इसे कहानी कहना शायद उचित न हो, क्योंकि लेखकका दावा है कि इसका एक-एक अक्षर सत्य है और उसमें कल्पना की मिलावट बिल्कुल नहीं की गयी है। जंगलमें रातमें पानीके कुंडपर बैठने, वहां हाथियोंके गल्लेके आने और बाघसे उनकी झपड़के वर्णन विशद और रोमांचकारी हैं। लेखन-शैली ऐसी है कि पाठक स्वयंको घटना-स्थलपर विद्यमान अनुभव करता है।

'जब हाथी झपट पड़े' में दो साथी जंगलमें हाथियों के फोटो खींचनेके इरादेसे जाते हैं। सीधे, भले हाथियों की एक टोली उन्हें मिलती है। उसके फोटो खींचनेके बाद इनका मन बिगुल बजाकर उन्हें डरानेका होता है। परन्तु हाथी भागनेके बजाय इनपर ही धावा बोल देते हैं। जान बचाना मुश्किल हो जाता है।

'मुंढालमें हाथियोंकी डारें' में मुंढालके जंगलमें बितायी गयी दो बरसाती रातोंका वर्णन है। इन दोनों दिनों और रातोंमें हाथी बड़े झुंडोंमें और अकेले-दुकेले भी दिखायी पड़ते रहे। वर्णन बड़े सजीव और मनोहारी हैं। पाठक स्वयंको एक ऐसे वातावरणमें पहुंचा पाता है, जो साहित्यमें अन्यत्र दुर्लभ है।

'हथिनीने धर दबोचा' में हाथियोंके फोटो खींचनेके शौकीन प्रतापसिंहके साथ बीती एक लोमहर्षक घटनाका वर्णन है। नार्मल लैंसके कैमरेसे उसने अपने बच्चेको दूध पिलाती एक हथिनीका फोटो काफी पास जाकर लेनेकी कोशिश की। हथिनी उसपर झपट पड़ी। वह भागा, पर कुछ दूर दौड़नेके बाद गिर पड़ा। हथिनी उसके पास आयी, उसे सूंड़से हिलाया डुलाया, पर वह मृतककी भांति पड़ा रहा। न जाने क्यों हथिनी उसे छोड़कर अपने बच्चेके पास लौट गयी।

'वे चिंघाड़ते हाथी' हिन्दी साहित्यमें एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। यदि लेखकका यह दावा सत्य हो कि ये वर्णन बिलकुल यथार्थ और अतिरंजनासे रहित हैं, तो निश्चयही इस पुस्तकका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। पुस्तकमें आठ पृष्ठोंमें साथियों और हाथियोंके फोटोभी दिये गये हैं, जिनका उद्देश्य इन वर्णनोंको विश्वसनीय बनाना प्रतीत होता है। परन्तु इन चित्रोंके बजाय लेखक की वर्णन-शैली अधिक विश्वासोत्पादक है, हालांकि घटनाएं ऐसी हैं कि उनपर विश्वास करनेका मन न हो। परन्तु इस विशाल संसारमें बहुत अविश्वसनीय भी घटित होता रहता है।

पुस्तक संग्रहणीय है।

☐ डॉ. देवेन्द्रकुमार

फार्म ४

(नियम ८ देखिये)

प्रकाशन स्थान	दिल्ली
प्रकाशन अवधि	मासिक
मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक (नाम, पता)	वि. सा. विद्यालंकार ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७.
स्वामित्व	उपर्युक्त

मैं, वि. सा. विद्यालंकार घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

—वि. सा. विद्यालंकार

कृपया वेतन से सही-सही कर की कटौती सुनिश्चित करें

आय-कर अधिनियम के अधीन वेतन की अदायगी के लिए उत्तरदायी प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की गयी है कि वह स्रोत पर कर की कटौती, निर्धारित दरों पर करेंगे और इस प्रकार कटौती की गई राशि को केन्द्रीय सरकार के खाते में, सरकारी कर्मचारियों के मामले में तुरन्त और अन्य कर्मचारियों के मामले में सात दिवों के भीतर जमा करायेंगे ।

नियोक्ता द्वारा हुई चूक के कारण :

(i) नियोक्ता से कर की समस्त रकम की वसूली;

(ii) ब्याज व जुर्माने,

तथा

(iii) अभियोजन की कार्यवाही भी, जिसके परिणामस्वरूप कठिन कारावास के साथ-साथ अर्थदण्ड भी दिया जा सकता है।

दाण्डिक कार्यवाही से बचें

यह सुनिश्चित करें कि वेतन से कटौती-योग्य कर की रकम सही-सही काटी गई है और उसे विहित समय के भीतर सरकारी खाते में जमा कर दिया गया है।

यदि कटौती कम की गई हो तो फरवरी/मार्च, 1982 में की जाने वाली वेतन अदायगियों में से पूरा करा लें ।

निरीक्षण निदेशक
(गवेषणा, सांख्यिकी और जन-सम्पर्क)
आय-कर विभाग
नई दिल्ली-110001

davp 81/325

शाखा कार्यालय : ६३ गली राजा केदारनाथ,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

[टेली : २६ १४ ३८

आगामी अंकमें

☐ **गोमटेश गाथा [उपन्यासकार : नीरज जैन]**; प्रस्तुत कृतिको सूचनात्मक टिप्पणमें उपन्यास कहा गया है जिसे पर्यटकोंकी मार्गदर्शन (गाइड) शैलीमें प्रस्तुत किया गया है । यह गाइड 'इतिहास-काल' तक पीछे ले जाकर दक्षिणापथ और उत्तरापथका महत्त्व, श्रवणबेलगोलका महत्त्व, चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरिकी विभिन्न संज्ञाएं और उनके अर्थ बतलाता हुआ भद्रबाहु, जैन धर्मके श्वेताम्बर दिगम्बर सम्प्रदायमें विभाजन, बाहुबली गोमटेशकी जीवनगाथा और चरित्र, जैन सिद्धान्तके अनुसार कालचक्र, ऋषभदेव, बाहुबलीका महत्त्व, विंध्यगिरिपर गोमटेश की प्रतिमाके उत्कीर्ण किये जानेकी पावन और प्रेरणाप्रद गाथा आदि बहुत कुछ बताती है । उपन्यासकी सामग्री धरतीके कथ्य, इतिहासके तथ्य, कला-सामग्रियों, जैन धर्म-दर्शन, जैन-साहित्य-शास्त्र-काव्य, जैन कथाओं, जन-प्रवृत्तियोंके परिणामों एवं साहित्यिककी उर्वरा कल्पना शक्तिसे प्राप्त हुई है । समीक्षक हैं : **डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'।**

☐ **हुजूर दरबार [उपन्यासकार : गोविन्द मिश्र]**; स्वतंत्रता-प्राप्तिके पूर्व भारतमें रियासतों और राजाओंका एक और भारत मौजूद था । इस गुलाम भारतमें क्रूर व्यंग्यकी भांति स्वतंत्र राजाओंकी औसत पहचान थी ऐय्याशी, ऐसी ऐय्याशी जिसने सांस्कृतिक रूप ले लिया था । भोली-भाली जनताका प्रत्येक प्रकारका शोषण ये महाराजा लोग अपने छद्म देवोपम अभिजात रूप द्वारा किया करते थे । इनके महलोंका संसार रहस्य, रोमांच और गहरे आतंकका संसार हुआ करता था । इन महलोंसे निकलते ऐश्वर्यकी हर सुगन्धित लहरमें ऐसा घृणित विष हुआ करता था जो एक बार भीतर उतर जानेपर जीवनभर पीछा नहीं छोड़ता था । ऐसी ही रियासतोंके राजा-रानियोंके संसारको उपन्यासकार गोविन्द मिश्रने पृष्ठभूमि बनाया है । इसका विवेचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. विवेकीराय ।**

☐ **अदृश्य हो जायेंगी सूखी पत्तियां [कवि : विजयकुमार]**; आजके तमाम यथार्थके बीच संवेदनशील कवि व्यक्तित्वको सुरक्षित रखते हुए जीनाभी अपने आपमें एक संघर्षशीलताका प्रमाण है और यह संघर्षशीलता चक्रव्यूहमें घुसे हुए अभिमन्युका बोध लेकर सक्रिय है कि लड़ाईका नतीजा हारनेमें ही है । अपनी सक्रियताके बीच अन्तिम हार की रेतकी कनी आत्मामें लेकर जीना एक छटपटाहटका जीना है और उसका साक्ष्य विजयकुमारकी कविता देती है । यह कवि अपनी ही बात कहता है और अपनी इस बातके लिए उसकी कविताके चरित्रसे पता चलता है कि उसने बहुत कुछ कष्ट झेले हैं । यहभी लगता है कि अपनी बात सामाजिक चेतनाके सामने रखनेसे पहले उसकी इष्टानिष्टतासे वह पूरी तरहसे आश्वस्त हो लेता है । इस कविकी कृतिका मूल्यांकन कर रहे हैं : **डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर ।**

☐ **केन्द्र राज्य संबंध [सम्पादक : के. मैथ्यू कुटियन, पी. एन. वर्गीस]**; राज्य सरकारोंको विभिन्न क्षेत्रोंके असमान विकासके पिछड़े कार्यको उपयुक्त स्तरपर लानेके लिए केन्द्रकी कृपादृष्टि पानेका प्रयत्न करना पड़ता है। केन्द्र और राज्योंके इस संबंधमें चलनेवाले निरन्तर विवादोंके मूलमें वे दुविधाएं और तनाव हैं जो आपात्काल और १९७७के चुनावोंके बाद सामने आये । अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य सुनिश्चित करनेके लिए स्थानीय आकांक्षाओं और पहलको राष्ट्रीय आकांक्षाओंसे सम्बद्ध करनेके लिए किसी रूपरेखाकी आवश्यकता है । इस दृष्टि से केन्द्र और राज्य विषयक चर्चाको सांविधानिक, वित्तीय, राजनीतिक और प्रशासनिक, कानून और व्यवस्था संबंधी पक्षोंमें विभाजितकर केन्द्र राज्य संबंधोंपर एक सार्वजनिक बहसका समारम्भ इस पुस्तक द्वारा किया गया है । परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. उमाकान्त तिवारी ।**

सम्पादक प्रकाशक और मुद्रक विद्यासागर विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली ११०००७ से प्रकाशित

अंक : २०१६ (वि.)

पंडित गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार योजना

पुलिस प्रशासन और प्रशिक्षण तथा न्यायिक विज्ञान की मौलिक और अनूदित हिन्दी पुस्तकों के लिए पुरस्कार

भारत सरकार ने पुलिस से सम्बन्धित विषयों पर हिन्दी की मौलिक पुस्तकों अथवा अनूदित पुस्तकों के लिए, पंडित गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार शुरू करने का निश्चय किया है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य इन विषयों पर हिन्दी के प्रकाशनों को प्रोत्साहन देना है।

पुरस्कार—उपर्युक्त विषयों पर हिन्दी में लिखी गई मूल पुस्तकों के लेखकों को प्रति वर्ष निम्नलिखित पुरस्कार दिये जायेंगे—

1. पहला पुरस्कार—10 000/-रु. (दुर्लभ पुस्तकों के अनुवाद उपर्युक्त विषयों पर ख्याति प्राप्त लेखकों से अनुरोध करके मूल हिन्दी पुस्तकें लिखाने पर।)

2. दूसरा पुरस्कार—7,000-रु० (उपर्युक्त विषयों पर उत्कृष्ट हिन्दी पुस्तकों के लिए प्रत्येक पंचांग वर्ष में 5 पुरस्कार।)

3. तीसरा पुरस्कार—3,000/-रु० (इन विषयों पर अन्य भाषाओं में मूल रूप से लिखी प्रामाणिक पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों के लिए प्रतिवर्ष दो पुरस्कार।)

पात्रता : भारत के सभी नागरिक इस योजना में भाग ले सकते हैं। चूंकि यह वर्ष पुरस्कारों का पहला वर्ष है. अत: 31 मार्च 1982 तक प्रकाशित सभी मूल पुस्तकों, पाड़ुलिपियों और प्रामाणिक पुस्तकों के हिन्दी अनुवादों पर पुरस्कारों के लिए विचार किया जायेगा। इस योजना के लिए भेजी जाने वाली पुस्तकें पहले ही पुरस्कृत नहीं होनी चाहियें।

पुस्तकों का चयन : पुरस्कार पाने योग्य पुस्तकों का चयन एक मूल्यांकन समिति द्वारा किया जायेगा। पुरस्कारों के संबंध में इस समिति का निर्णय अन्तिम होगा। यदि मूल्यांकन समिति द्वारा किसी भी पुस्तक को पुरस्कार योग्य नहीं पाया जाता तो सभी पुरस्कार अथवा कोई एक पुरस्कार नहीं दिया जायेगा। प्रविष्टियां प्राप्त करने की अंतिम तारीख 31 अक्तूबर, 1982 है।

पुस्तक का नाम, विषय, लेखक और प्रकाशक का पूरा नाम और पता, प्रकाशन तिथि, कापीराइट रखने वाले का नाम व पता, यदि कोई हो, पुस्तक की कीमत, पृष्ठ संख्या आदि के पूर्ण विवरण के साथ सामग्री की चार प्रतियां इस पते पर भेजी जायें—

निदेशक,
पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो,
बी—1688 कस्तूरबा गांधी मार्ग बैरेक्स,
नई दिल्ली—110001

डी ए वी पी 82/15

वर्ष : १४
अंक : ५

ज्येष्ठ : २०३९ (वि.)
मई : १९८२

सम्पादक
वि. सा. विद्यालंकार

वार्षिक मूल्य : २५.०० रु.
प्रति अंक : २.५० रु.

विदेशोंमें (समुद्री डाकसे) ५१.०० रु.
आजीवन सदस्यता ३०१.०० रु.

प्रकर, ए-८४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७.

इस अंकमें

भाषाकी स्थापना और आन्दोलन

देशकी स्वतन्त्रताकी विडम्बना यह है कि देश और राज्योंकी भाषाओंके प्रयोगका वैधानिक अधिकार स्वीकारकर लिये जानेपर भी व्यावहारिक दृष्टिसे अपना उचित स्थान प्राप्त करनेके लिए इन भाषाओंको संघर्ष करना पड़ रहा है। प्रश्न चाहे केन्द्रीय भाषाके रूपमें हिन्दी का हो अथवा राज्य भाषाके रूपमें कन्नड़का। यह संघर्ष क्या रूप ले सकता है और कितना उग्र हो सकता है यह कर्नाटकके कन्नड़ भाषाको स्थापित करनेके आन्दोलनसे स्पष्ट हो जाता है। संघर्षके रूप और उसकी उग्रताका अनुमान कन्नड़भाषियों और उर्दू समर्थकोंकी मुठभेड़के परिणामस्वरूप चित्रदुर्गमें पुलिस द्वारा गोली चलानेसे दो व्यक्तियोंकी मृत्यु और बेंगलूरमें हुई व्यापक लूट-पाट और आगजनीकी घटनाओंसे लगाया जा सकता है। कन्नड़को प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाका माध्यम बनानेकी मांगने कन्नड़भाषियोंको कितने आन्तरिक रूप से प्रभावित किया है, इसका प्रमाण यह है कि कर्नाटक सरकार द्वारा कुछ शर्तोंके साथ कन्नड़को विद्यालयोंके लिए अनिवार्य भाषा स्वीकार कर लेने और ८२-८३ शिक्षा वर्षसे ही इसे लागू कर देनेकी घोषणाके बादभी यदि आन्दोलनकी तीव्रता कम नहीं हो रही तो इसके मूल कारणोंपर विचार करनेकी आवश्यकता है। इस समस्यापर विचार करते समय यह नहीं भूलना चाहिये कि इस आन्दोलनको जनसाधारणके साथ बुद्धिजीवियों, शिक्षा-शास्त्रियों, लेखकों, कलाकारों आदि विभिन्न वर्गों का सहयोग-समर्थन प्राप्त है। इस वर्गकी भावनाएं इस सीमातक भड़क उठी हैं कि ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता (१९६७) डॉ. कुप्पलि वेंकटप्प गौड़ पुटप्पा ('कुवेंपु' नामसे ख्यात) ने घोषणा की है जो कन्नड़ नहीं सीखना चाहते वे कर्नाटक छोड़कर चले जायें।

इस आन्दोलनकी पृष्ठभूमिको प्रचारित करते हुए अंग्रेजी समाचारपत्रोंने कर्नाटकके शिक्षा क्षेत्रमें प्रयुक्त होनेवाली प्रथम भाषाओंमें से संस्कृतको भी इसलिए विवादमें खींचनेका प्रयत्न किया है क्योंकि छात्र इसकी स्थितिका दुरुपयोगकर सदा लाभ उठानेका प्रयत्न करते रहे। परन्तु विवादके वर्तमान रूपमें संस्कृत कोई पक्ष नहीं है। विवादको अधिक उलझानेके लिए संस्कृतको बीचमें लानेका प्रयत्न किया गया है। संस्कृतके दुरुपयोग को समाप्त करने तथा शिक्षा क्षेत्रमें भाषा सम्बन्धी राजकीय नीतिको एक निश्चित रूप देनेके लिए मुख्य मन्त्री श्री गुण्डुरावने डॉ. वी. के. गोकाककी अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ-समिति नियुक्त की। अध्यक्ष श्री गोकाक भूतपूर्व कुलपति हैं, जीवनभर विश्वविद्यालयमें अंग्रेजीके प्रोफेसर रहे हैं, संस्कृतके विख्यात विद्वान् हैं और कन्नड़ के ख्यातिप्राप्त आधुनिक लेखक। समितिके सातों सदस्य भाषा-शिक्षक और विशेषज्ञ हैं। समाचारपत्रोंकी प्रचारात्मक सूचनाओंके अनुसार समितिके चार सदस्य संस्कृत पक्षपाती हैं। इसी समितिने यह सिफारिश की कि विद्यालयोंमें कन्नड़को प्रथम भाषाके रूपमें मान्यता दी जाये। जनवरी १९८१ में यह रिपोर्ट सरकारको सौंपी गयी। तभी राजनीतिक दलोंने इसे अपनी राजनीतिका मोहरा बनाया। नवम्बर ८१ में मन्त्रीमण्डलकी बैठकके बाद मुख्यमन्त्रीने समितिकी रिपोर्टको पूर्ण रूपसे स्वीकार करनेकी घोषणा की।

तभी भाषाके क्षेत्रमें राजनीतिक विस्फोट किया इन्दिरा कांग्रेसके संसद् सदस्य एफ. एम. खानने। श्री खानने मुस्लिम समुदायको यह कहकर भड़काया कि यह मुसलमानोंके सांविधानिक अधिकारका उल्लंघन है, उन्हें अपनी मातृभाषा पढ़नेके अधिकारसे वंचित किया जा रहा है और उनपर कन्नड़ लादी जा रही है। श्री खान

के नेतृत्व और प्रोत्साहनसे कन्नड़ विरोधी वातावरण बन गया। मुस्लिम नेताओंने 'इस्लाम खतरेमें है' का नारा बुलन्द किया। अर्थात् कन्नड़ भाषाके पढ़नेकी चर्चा मात्रसे ही इस्लाम खतरेमें पड़ गया। इसी प्रसंग में यह चर्चाभी सामने आयी कि श्री खानका और उनके साथियोंका खाड़ी देशोंसे सम्बन्ध है। श्री खानके प्रोत्साहनसे मराठी, तमिल और मलयालम भाषी अल्पसंख्यकभी इस विवादमें कूद पड़े। चाहे जिन अदृश्य सूत्रोंने डोरियां हिलायी हों, महाराष्ट्रके मुख्यमन्त्री श्री बाबा साहेब भोंसलेभी मराठीभाषियोंके हितोंकी रक्षा के लिए मैदानमें कूद पड़े।

कन्नड़-विरोधी आगको भड़कानेमें अंग्रेजी समाचार-पत्रभी अपनी आहुति देनेसे पीछे नहीं रहे। यह स्वीकार करते हुए कि 'यह सही है कि कर्नाटकके छात्रोंको, चाहे वे कन्नड़भाषी हों अथवा अन्यभाषी, राज्यकी मुख्य भाषा अनिवार्य रूपसे पढ़नी चाहिये' टाइम्स आफ इंडिया ने डंक मारा कि वर्तमान आन्दोलनमें विवादका यह विषय नहीं है। मूल कारण यह आग्रह है कि अल्पसंख्यकों की मातृ-भाषाका स्थान कन्नड़ ले, विद्यालयी-शिक्षणके सभी स्तरोंपर वह प्रथम भाषाका स्थान ले, इसी कारण यह संकट पैदा हो गया है। यह व्यवस्था त्रिसूत्री फार्मूले की भावनाके विपरीत है क्योंकि इसमें छात्रकी मातृभाषाको महत्त्व दिया गया है।' एक और सम्पादकीयमें इस पत्रने लिखा कि कन्नड़को छात्रोंके गलेके नीचे उतारना उन्हें अपनी भाषा और संस्कृतिसे विरक्त करना होगा और यह उन सैक्युलर आदर्शोंके साथ विश्वासघात होगा जिनसे यह देश बंधा है।

हमारे देशकी राजनीतिके केन्द्रबिन्दु और सत्ताबिन्दु अल्पसंख्यक हैं। बहुसंख्यक या तो इस देशका नागरिक नहीं हैं, यदि हैं तो द्वितीय श्रेणीका और उसे अपनी भाषा पढ़ने और अपनी संस्कृतिमें विचरणका अधिकार नहीं है। यदि सत्ता-पोषित श्री खानका प्रचार ठीक है तो उर्दूसे एकदम अपरिचित कन्नड़भाषी किसीभी मुसलमानको कन्नड़ भाषा पढ़नेसे इन्कार करनेका अधिकार है, इसे सांविधानिक अधिकारके रूपमें स्वीकार करना होगा। इस प्रकार इस देशके सैक्यूलर आदर्शकी रक्षा हो जायेगी। उर्दू न जाननेवाले कन्नड़भाषी कर्नाटकवासी मुसलमानोंका इस्लामभी खतरेमें पड़नेसे बच जायेगा। यदि अल्पसंख्यक भाषायी वर्गोंका यह दावा स्वीकार कर लिया जाये कि कर्नाटक राज्यमें उर्दू, तमिल, मलयाल्यमभाषी वर्ग २२ प्रतिशत हैं, तो ७८ प्रतिशत कन्नड़भाषी लोगोंको उनकी मातृभाषासे वंचित करने, अल्पसंख्यकों और बहुसंख्यकोंके बीच सम्पर्क-संसर्गके सभी सूत्रोंको अवरुद्ध कर देनेसे क्या समस्याका समाधान हो जायेगा? इस नव-प्रस्तावित सुझावको देशभर पर लागू करनेका क्या प्रभाव होगा? अशांत और उत्तेजनापूर्ण स्थितिका लाभ उठाकर अंग्रेजी लादे रखनेकी भूमिका तो तैयार नहीं की जा रही?

यह सारा विवाद कन्नड़को विद्यालयोंमें अनिवार्य भाषाका स्थान देनेकी सरकारी घोषणासे उत्पन्न हुआ है। कर्नाटक राज्यमें कन्नड़को शिक्षण क्षेत्रमें प्रथम भाषा का स्थान मिले, इसका विरोध हमारी समझसे इसलिए बाहर है क्योंकि छात्रकी मातृभाषाका पूरा महत्त्व है। त्रिभाषा फार्मूला भाषा समस्याको सुलझानेमें असमर्थ हैं और शिक्षण क्षेत्रके लिए सिर दर्द। इस सारे विवाद में किसीने यह जाननेका प्रयत्न नहीं किया कि अखिल भारतीय दृष्टिसे तथा कर्नाटक एवं देशके अन्य भागोंमें सम्पर्ककी दृष्टिसे हिन्दीकी क्या स्थिति होगी? त्रिभाषा-सूत्रसे समस्याको सुलझानेवाले हिन्दीको 'वैकल्पिक भाषा' बनानेका सुझाव दे रहे हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि दक्षिण भारतमें हिन्दीको 'वैकल्पिक भाषा' की स्थिति प्रदान करनेका अर्थ होगा दक्षिणमें हिन्दीकी सदाके लिए समाप्ति।

अंग्रेजीके ये वाक्शूर मेधावी बुद्धिजीवी साम्प्रदायिक तत्त्वोंके सहयोगसे अपने निर्णय कर्नाटक और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूपसे देशपर लादनेके लिए प्रयत्नशील तो हैं, परन्तु वे भूल जाते हैं कि मैकाले पद्धतिमें उन्हें मालिकों की भाषा अपनाने, अपनेको उन्हींका उत्तराधिकारी समझनेकी योग्यता या अहंकार भले ही प्रदान किया गया हो, परन्तु समस्या-गजसे जूझने और निर्णय लेनेकी योग्यता प्रदान नहीं की गयी, वह तो उनके मालिकोंने अपनेही पास रखी है। [पंचतंत्र : शूरोऽसि कृतविद्योऽसि, दर्शनीयोऽसि पुत्रक, यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नः गजस्तत्र न हन्यते।] □□

सत्ताके केन्द्रीकरण और राज्योंकी स्वायत्तता की मांगका अध्ययन

केन्द्र राज्य संबंध[1]

सम्पादक-द्वय : के मैथ्यू कुरियन, पी. एन. वर्गीस **समीक्षक : डॉ. उमाकान्त तिवारी**

१९४७ में ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत-विभाजन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिये जानेके पश्चात् भारतीय संविधान-सभाने संविधानके संघीय स्वरूपमें परिवर्तन करना आवश्यक समझा था। संविधान-सभाके सदस्योंने देशमें आन्तरिक व्यवस्थाकी स्थापना, इसकी एकता तथा अखंडताकी सुरक्षा, आर्थिक तथा सामाजिक प्रगतिकी दृष्टिमें केन्द्रको अधिक शक्तिशाली बनानेका निश्चय किया। १९५० में संविधानके लागू होनेके बाद कई गैर-सांविधानिक कारणोंने भी भारतीय संघमें केन्द्रकी शक्तियोंकी वृद्धिमें सहायता दी। उदाहरणके लिए १९५० से १९६७ तक केन्द्रमें तथा अधिकांश राज्योंमें एकही राजनीतिक दल, कांग्रेसके शासन तथा केन्द्रीय सरकारके अन्तर्गत पंचवर्षीय योजनाओंको लागू किये जानेसे केन्द्रके अधिकार बढ़े। १९६७ के आम चुनावके पश्चात् भारतीय संघके कई राज्योंमें गैर-कांग्रेसी मंत्रीमंडलोंके निर्माणसे केन्द्र-राज्य संबंधोंकी दृष्टिसे नवीन परिस्थितियोंकी शुरुआत हुई। अब राज्य सरकारोंकी ओरसे 'अति-केन्द्रवाद' का विरोध किया जाने लगा तथा राज्योंकी ओरसे अधिक अधिकारोंकी मांग की जाने लगी। प्रस्तुत पुस्तक 'भारतमें केन्द्र और राज्य सरकारोंके बीच समायोजनकी समस्याओं'से संबंधित है। जैसाकि आमुखमें इसके सम्पादकोंने लिखा है 'यह महसूस किया जा रहा है कि राज्य सरकारोंको विशेष रूपसे विभिन्न क्षेत्रोंके असमान विकासके पुराने कार्य (बैकलाग) को सही करनेके लिए केन्द्रकी कृपा-दृष्टि पानेका प्रयत्न करना पड़ता है। लगातार चल रहे केन्द्र-राज्य संबंध विषयक इस बहसकी जड़में इसी तरहकी दुविधाएं तथा तनाव हैं जो आपात् काल और १९७७ के आम चुनावके तुरन्त बाद एकाएक पुनः शुरू हो गयी है।' इनके अनुसार 'विकासके लिए एक अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य सुनिश्चित करनेके लिए स्थानीय पहलको राष्ट्रीय आकांक्षाओं, और महत्त्वपूर्ण संघीय विशेषताओंको निश्चित एकात्मक विशेषताओंके साथ जोड़नेके लिए एक रूपरेखा अभी तैयार की जानी है।' इस दृष्टिसे इस पुस्तकमें केन्द्र-राज्य विषयक चर्चा को 'विभिन्न पक्षोंमें विभाजित किया गया है : सांविधानिक, वित्तीय, राजनीतिक और प्रशासनिक, कानून और व्यवस्था सम्बन्धी।' पुस्तकमें संगृहीत लेखोंका उद्देश्य 'केन्द्र-राज्य संबंधोंपर एक अधिक सुस्पष्ट, जीवन्त तथा खुली सार्वजनिक बहसकी शुरुआत' करना है। इस दृष्टिसे इसका स्वागत किया जाना चाहिये।

किन्तु जैसाकि आमुखमें लिखा है, इस पुस्तकके लेखकों, जो सक्रिय राजनीति, कानून और समाज विज्ञानोंमें अकादमिक शोधके क्षेत्रमें हैं, के 'विविध विचार [illegible] और [illegible] अभिव्यक्त हुए हैं।'

१. **केन्द्र राज्य संबंध**; सम्पादक : के मैथ्यू कुरियन, पी एन वर्गीस; लेखक : चन्द्रप्रकाश भांभरी, इरफान हबीब, के हनुमंतैया, वी आर कृष्ण अय्यर, के मैथ्यू कुरियन, कृष्णकान्त मिश्र, ई एम एस नंबूतिरीपाद, अश्विनीकुमार राय, पी एन वर्गीस, अजीत राय, एच एस वर्मा; अनुवादक : रमेश दीक्षित; प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., ४ कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-१, नयी दिल्ली-११००२८। पृष्ठ : २३६; डिमा ८०; मूल्य : ४०.०० रु.।

अतः स्वाभाविक रूपसे इन 'विविध' विचारोंमें कहीं-कहीं विरोध दिखायी पड़ता है। उदाहरणके लिए एक लेखकके अनुसार भारतमें संघवादकी 'सीमित प्रासंगिकता' भी अनुपस्थित है अतः यहां 'जनतांत्रिक केन्द्रवाद' की स्थापना की जानी चाहिये। किन्तु दूसरे लेखकके अनुसार भारत जैसे देशमें 'केवल संघवादको ही विवेकपूर्ण और व्यावहारिक' माना जा सकता है। एक लेखकने आत्म-निर्णयकी अपेक्षापर बल दिया है किन्तु दूसरेने भारतमें इसकी 'आवश्यकता' को स्वीकार नहीं किया है। इसी प्रकार राज्योंको 'अधिक अधिकार' देनेके सम्बन्धमें भी परस्पर विरोधी विचार मिलते हैं। इससे पुस्तककी एकरूपता प्रभावित होती है।

भारतीय संविधान द्वारा भारतमें संघीय शासनके जिस स्वरूपकी स्थापना की गयी है उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमिपर निष्पक्षतासे विचार किया जाना चाहिये। भारतमें सर्वप्रथम १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत संघीय शासनकी व्यवस्था की गयी थी। इसमें संघीय शासनका मुख्य उद्देश्य भारतकी साम्प्रदायिक समस्याओंको सुलझाना था; राज्योंको स्वायत्तता प्रदान करना नहीं था, वरन् प्रशासनिक तथा मुख्यतः रजवाड़ों को भारतीय संघके अन्तर्गत लानेकी समस्याको सुलझाना था। फलतः इसमें न केवल केन्द्रको अधिक अधिकार दिये गये थे वरन् गवर्नर जनरल एवं गवर्नरोंको भी स्व-विवेक तथा विशेषाधिकारोंसे युक्त किया गया था। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि भारतमें संघ विचार 'भारतीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगके बीच एक तरहका समझौता था' और इसकी शुरुआत इन दोनोंके बीच हुए '१९१६ के लखनऊ समझौते' के द्वारा हुई। वास्तव में भारतीय संघके स्वरूपमें 'तीन दशकों' की बातचीत विभिन्न परिस्थितियों तथा विभिन्न उद्देश्योंसे हुई। अतः इन विभिन्न अवस्थाओंपर एकही प्रकारके निष्कर्षोंको स्थापित नहीं किया जा सकता है। १९३७ में जब निर्वाचित राज्य व्यवस्थापिकाओंके द्वारा मंत्रीमंडलके निर्माणका प्रश्न उठा तब भारतीय कांग्रेसने बहुमतके आधारपर मंत्रीमंडल बनानेका निर्णय किया। फलतः मुस्लिम लीगको अधिकांश राज्योंमें मंत्रीमंडलसे बाहर रहना पड़ा। इससे निराश होकर लीगने पृथक्तावादी नीतिपर बल देना आरम्भ किया जिसकी परिणति १९४० में लाहौरमें भारतके विभाजनकी मांगके रूपमें हुई।

१९३९ में द्वितीय विश्व-युद्धके आरम्भ होनेके बाद ब्रिटिश सरकारकी नीति युद्धमें राजनीतिक दलोंका सहयोग प्राप्त करना था। इसकी अभिव्यक्ति १९४० में गवर्नर जनरलके प्रस्ताव तथा १९४२ की क्रिप्स योजना के रूपमें हुई थी। द्वितीय विश्व-युद्धकी समाप्तिके बाद परिस्थितियोंमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ब्रिटेनके मजदूर दलकी सरकारने यह अनुभव किया कि अब भारत को ब्रिटिश शासनके अन्तर्गत रखना सम्भव न था। इसी नीतिका परिणाम कैबिनेट मिशन था जिसका उद्देश्य एक ऐसे संविधानका निर्माण करना था जिसके अन्तर्गत भारत को स्वतन्त्रता दी जा सके। भारतकी एकताको बनाये रखनेके लिए इस योजनामें भारतीय कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगकी विचारधाराओंमें मध्य मार्ग अपनानेकी भावना थी। इस योजनाके अन्तर्गतही संविधान-सभाका निर्वाचन हुआ तथा संविधान सभाकी प्रारम्भिक समितियोंने अपने कार्य आरम्भ किये। किन्तु बादमें जब मुस्लिम लीगने इसे माननेसे अस्वीकार कर दिया तब विभाजनको आवश्यक माना गया। विभाजनके सिद्धान्तको स्वीकार करनेके बाद फिर परिस्थितियोंमें परिवर्तन आया। जिन विचारोंपर कैबिनेट मिशनकी योजना आधारित थी उनके समाप्त हो जानेसे संविधान सभाने भारतीय संघके प्रति नवीन दृष्टिकोण अपनाया तथा बदली हुई परिस्थितियोंमें एक शक्तिशाली केन्द्रकी आवश्यकतापर बल दिया। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि १९१६ के लखनऊ समझौते, मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतावाली सर्वदलीय समिति, गोलमेज सम्मेलन तथा उनकी बातचीतकी 'परिणति' कैबिनेट मिशनमें हुई। वास्तवमें १९४५-४६ में कैबिनेट मिशन इस 'समस्त बातचीत' के 'परिणाम-स्वरूप' नहीं आया था अपितु द्वितीय विश्व-युद्धके पश्चात् उत्पन्न परिस्थितियोंमें ब्रिटिश सरकारकी नीतियोंमें परिवर्तनके फलस्वरूप आया था।

क्योंकि संविधान-सभाका निर्वाचन वयस्क मताधिकारके आधारपर नहीं हुआ था अतः यह कहा जा सकता है कि यह वयस्क जनसंख्याकी प्रतिनिधि-सभा नहीं थी। जिन परिस्थितियोंमें संविधान-सभाका निर्वाचन हुआ उनमें ऐसा होना सम्भव भी नहीं था। जैसाकि डॉ. अम्बेदकरने संविधान-सभामें इस विषयपर बोलते हुए कहा था तत्कालीन परिस्थितियोंके अन्तर्गत इसकी चेष्टा की गयी थी—कि यथासम्भव समाजके विभिन्न [illegible] प्रतिनिधित्व हो। किन्तु यह नहीं

कहा जा सकता कि संविधान-सभा एक 'अजीबोगरीब जमघट' थी तथा इसके 'सदस्योंके निजी इरादोंके अतिरिक्त एक समूहके रूपमें उनके इरादोंका सही आभास पाना' मुश्किल है। डॉ. अम्बेदकर, जो स्वयं भारतीय कांग्रेसके सदस्य नहीं थे, किन्तु संविधान-सभामें जिनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण थी, ने स्पष्ट शब्दोंमें इसे स्वीकार किया था कि भारतीय कांग्रेसके द्वारा संविधान-सभामें इस प्रकारकी सामूहिक इच्छाके अभावमें संविधान निर्माण का कार्य सम्भव नहीं था। लेकिन इस सत्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि संविधान-सभाके सदस्योंके मध्य जो एक प्रकारका सामंजस्य था और ग्रेनविल ऑस्टिनके विचारमें सविधान निर्माणकी प्रक्रियाकी जो एक मुख्य विशेषता थी, वह मुख्यत: उस सामाजिक वर्गका था जिसका प्रतिनिधित्व भारतीय कांग्रेस कर रही थी। यह स्वाभाविक भी था। जैसाकि चार्ल्स वियर्डने अमरीकी सविधानके निर्माणके सन्दर्भमें लिखा है कोईभी सविधान अपने निर्माताओंकी सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। भारतीय कांग्रेस मुख्यतः मध्यवर्ग का प्रतिनिधि दल रहा है, अतः सविधानमें मुख्यतः इस वर्गकी आकांक्षाओं तथा आदर्शोंकी अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु साथही भारतीय कांग्रेसके कुछ सदस्य जिनका नेतृत्व पं. जवाहरलाल नेहरू कर रहे थे, रूसकी सर्वहारा क्रांति, यूरोपीय समाजवाद, विशेषकर ब्रिटिश समाजवाद से प्रभावित थे। अतः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनमें भारतीय कांग्रेसने समय-समयपर अपने प्रस्तावोंमें उन अधिकारोंका भी समर्थन किया जिनका सम्बन्ध सर्वहारा वर्गसे था। भारतीय सविधान-सभामें भी भारतीय कांग्रेस के सदस्योंके मध्य दो प्रकारके विचार दिखायी पड़ते हैं। फलस्वरूप सविधानमें मध्यवर्गीय आदर्शोंके साथ-साथ कुछ समाजवादी आदर्शोंको भी समाहित करनेकी कोशिश की गयी है। इस दृष्टिसे इसे 'व्यापक संभावनाओंवाले संविधान' की संज्ञा दी जा सकती है।

पुस्तकके अपने लेखमें न्यायमूर्त्ति वी. आर. कृष्ण अय्यरने ठीक ही लिखा है : 'राजनीतिक आग्रहसे मुक्त सभी देशभक्त भारतीय इस बातपर सहमत होंगे कि हमारे संविधान—देशकी कानूनी आधारशिला—को वयस्क मताधिकार, और सांसदीय सरकारके माध्यमसे एक राजनीतिक क्रान्ति, असमानता, विशेषाधिकारों, सामाजिक पिछड़ेपन और 'अल्पसंख्यक' आकांक्षाओंके उन्मूलनके जरिए सामाजिक क्रान्ति, धार्मिक समूहोंके बीच निष्पक्षताके आश्वासन और जातीय तथा सांप्रदायिक बाधाओंके सर्वनाशके प्रयत्न द्वारा धर्मनिरपेक्ष रूपान्तर तथ्य समाजवादी चरित्रवाले राज्यके नीति-निदेशक तत्त्वोंके प्रतिपादन द्वारा एक आर्थिक क्रान्ति करने और उसे आगे बढ़ानेके उपयुक्त बनाया गया है। भारतके संविधानने निस्सन्देह एक प्रगतिशील समाजकी आधारशिला रखी है।'

प्रस्तुत पुस्तकमें भाषापर आधारित राष्ट्रीयताओंके प्रश्नको उठाया गया है तथा भारतीय संघके सन्दर्भमें इसप्रकारकी राष्ट्रीयताओंके विकासकी आवश्यकतापर बल दिया गया है। इसमें सन्देह नहीं है कि भारत अनेक भाषाओंका देश है तथा यहां भाषापर आधारित अनेक राष्ट्रीयताएं हैं। इसमेंभी दो मत नहीं हो सकते हैं—कि इन भाषायी राष्ट्रीयताओंको अपने विकासकी सुविधाएं प्राप्त होनी चाहिये। एक राष्ट्रीयताके द्वारा अन्य राष्ट्रीयताओंका शोषण नहीं होना चाहिये। लेकिन जहांतक इन राष्ट्रीयताओंके 'आत्मनिर्णय' का प्रश्न है उसे भारतीय सन्दर्भमें स्वीकार नहीं किया जा सकता। आत्मनिर्णयके अधिकारका अर्थ अन्ततः 'संघसे अलग होनेके अधिकार' से है। सोवियत रूसके संघमें वहांकी राष्ट्रीयताओंको इस प्रकारके अधिकार दिये गये हैं। [व्यवहारिक रूपमें सोवियत संघमें राजनीतिक और प्रशासनिक नियन्त्रण इतना कठोर है कि वहाँ 'आत्मनिर्णय' के अधिकारके प्रयोगकी संभावना नहीं है। लेनिन के समयमें ही सोवियत संघके एक मध्य एशियायी गणराज्य में जब इस अधिकारके प्रयोगका प्रयत्न किया गया तो पूरी शक्तिके साथ इसे दबा दिया गया —सम्पादक] किन्तु सोवियत रूसकी परिस्थितियाँ भारतीय संघसे सर्वथा भिन्न हैं। सोवियत संघका साम्यवादी दल देशकी एकता को बनाये रखनेमें समर्थ है। वहांकी सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियांभी भिन्न प्रकारकी हैं। भारतमें कई ऐसे क्षेत्रीय राजनीतिक दल हैं जो देशकी एकताकी अपेक्षा क्षेत्रीय आकांक्षाओंपर अधिक निर्भर करते हैं। भारतमें क्षेत्रीय असमानताएं भी हैं। अतः यहां 'आत्मनिर्णय' के अधिकारका परिणाम देशका विभाजन हो सकता है। अत: इसका विरोध किया जाना चाहिये। यह प्रसन्नताकी बात है कि यद्यपि इस पुस्तकके कुछ लेखों में इस अधिकारकी ओर झुकाव दिखायी पड़ता है, इसके सम्पादकोंने इसे स्वीकार किया है कि भारतकी परिस्थितियोंमें 'आत्मनिर्णय' के पक्षे अधिकारकी मांगकी

कोई आवश्यकता अथवा औचित्य नहीं है ।।'

भारत जैसे देशमें जहां अनेक क्षेत्रीय भाषाएं हैं, संघात्मक शासनकी सफलताकी दृष्टिसे न केवल इन भाषाओंके विकास और समृद्धिपर विचार किया जाना चाहिये वरन् इसपर भी विचार किया जाना चाहिये कि संघात्मक स्तरपर प्रशासनिक तथा सम्पर्क भाषाके रूपमें किस भाषाका प्रयोग किया जाना चाहिये। स्वतन्त्रता प्राप्तिके पूर्व यह स्थान अंग्रेजी भाषाको प्राप्त था। संविधान-सभामें तथा स्वतन्त्र भारतमें उत्तरोत्तर क्षेत्रोंने यह अनुभव किया है कि यह स्थान हिन्दीको ही दिया जा सकता है। इस पुस्तकमें भी इस सत्यको स्वीकार किया गया है कि अन्ततः केन्द्रमें प्रशासनिक भाषाके रूप मे 'हिन्दीको ही लिया जा सकता है' क्योंकि हिन्दी जानने वालोंकी संख्या साठ प्रतिशत है तथा अंग्रेजी जाननेवालों की संख्या दो या तीन प्रतिशतसे अधिक नहीं है। फिरभी अंग्रेजीके पक्षमें तर्क दिये जाते रहे हैं। अंग्रेजीके समर्थक मुख्यतः मध्य वर्गके लोग हैं जो अपने निहित स्वार्थोंकी दृष्टिसे इसे अनिश्चित कालके लिए बनाये रखना चाहते हैं। हिन्दीको उसके उचित स्थान देनेका अर्थ अन्य भारतीय भाषाओंकी अवहेलना करना नहीं होना चाहिये। यह स्मरण रखना चाहिये कि कई क्षेत्रीय भाषाओंके साहित्य अत्यन्त विकसित हैं तथा उन्हें संघके स्तरपर मान्यता दी जानी चाहिये। इस दृष्टिसे 'त्रिभाषा सूत्र' की उपयोगिता दिखायी पड़ती है। इस पुस्तकके सम्पादकों ने 'त्रिभाषा सूत्र' को इस आधारपर अस्वीकार कर दिया है कि इससे बच्चोंपर 'अनावश्यक बोझ' पड़ता है। इस समस्यापर उन्होंने सम्भवत: भाषाके सीखनेकी परम्परागत तरीकोंकी दृष्टिसे अपने मत व्यक्त किये हैं। भाषा सीखने के आधुनिक उपायोंने इस कार्यको सरल बना दिया है। अत्याधुनिक तरीकोंसे नयी भाषा ६ महीनोंमें सीखी जा सकती है। यूरोपीय देशोंमें विभिन्न भाषाओंका ज्ञान 'बोझ' नहीं समझा जाता है। अत: इस प्रकारकी व्यवस्था की जा सकती है कि प्राइमरी शिक्षाके पश्चात् भारतीय शिक्षा व्यवस्थामें त्रिभाषा सूत्रको लागू किया जाये। यह न केवल हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को उनका उचित स्थान प्रदान करेगा अपितु इस "बहु-भाषायी भारतीय संघकी जनताके मध्य 'भाईचारे' के सम्बन्धोंकी स्थापनामें भी सहायक होगा।"

इस पुस्तकके विभिन्न लेखोंमें केन्द्र-राज्य सम्बन्धों की दृष्टिसे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाये गये हैं जिनपर 'सार्वजनिक बहस' की आवश्यकता है। इन प्रश्नोंके सम्बन्ध केन्द्र-राज्यके मध्य वित्तीय संबंध, राज्यपालकी स्थिति, अर्ध-सैनिक संगठनोंके उपयोगकी समस्या तथा बढ़ते हुए राजनीतिक विवादोंके सन्दर्भमें न्यायालयकी स्थितिसे है। यद्यपि संविधान-सभामें केन्द्र राज्यके मध्य वित्तीय संबंधोंपर विचार-विमर्शके बाद संविधानमें एक ऐसी व्यवस्था रखनेकी कोशिश की गयी थी जो केन्द्र और राज्य दोनोंकी आवश्यकताओंके अनुरूप हो तथा ऐसी परिस्थितियोंके अनुरूप जिसमें वित्त आयोगकी सहायतासे परिवर्तन किया जा सके, राज्यकी ओरसे इसपर पुन-विचार तथा 'करोंमें भागीदारीके आधारको व्यापक बनाये जाने' की मांगें की जाती रही हैं। चूंकि भारत विकासकी संक्रमणकालीन अवस्थासे गुजर रहा है अतः न केवल संघ अपितु राज्योंपर भी उत्तरोत्तर वित्तीय भार बढ़ रहा है। अत: एक ऐसी व्यवस्थाकी अपेक्षा की जाती रही है जो केन्द्र और राज्योंकी आवश्यकताओंके अनुरूप हो। केन्द्रके प्रति राज्योंकी 'बढ़ती हुई ऋणग्रस्तता' जन-तांत्रिक शासनके विकासमें बाधाही उत्पन्न करेगी। 'कर उगाहनेके सभी कामधेनु स्रोत' केन्द्रके हाथमें होना भी उचित नहीं कहा जा सकता है। इस अपेक्षाको भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है कि भारतीय नियोजन में 'क्षेत्रीय भिन्नताओंपर पर्याप्त' ध्यान दिया जाये। दूसरे, राज्यपालकी स्थिति केन्द्र-राज्य सम्बन्धोंकी दृष्टि से विवादका विषय रहा है। इसका मुख्य कारण यह है कि राज्यपालसे एकही साथ दो प्रकारके कार्योंकी अपेक्षा की जाती है—राज्यके जनतांत्रिक शासनके सांविधानिक प्रधानके रूप तथा केन्द्रीय सरकारके प्रतिनिधि के रूपमें। क्योंकि भारतीय समाज अभी विकासकी अवस्थामें है अत: विभिन्न सामाजिक वर्गोंके मध्य तनाव की स्थिति स्वाभाविक है। जब कभी केन्द्र और राज्यों दो ऐसे विभिन्न दलोंका शासन होगा जो विभिन्न व[illegible] का प्रतिनिधित्व करते हों, राज्यपालका पद विवादका विषय रहेगा। इसपर भी विचार किया जाना चाहिये कि क्या राज्यपालका सांविधानिक पद राज्यकी जनतांत्रिक व्यवस्थाका आवश्यक अंग है ? तीसरे, केन्द्र राज्य संबंध के क्षेत्रमें अर्धसैनिक संगठनोंकी भूमिकाका प्रश्न भी महत्त्वपूर्ण है। केन्द्र-सरकारके द्वारा राज्योंमें केन्द्रीय आरक्षी-पुलिस दल, सीमा सुरक्षा दल और केन्द्रीय सुरक्षा दलके उपयोगकी आलोचना 'संविधानमें चित्रित संघ के सिद्धांत' के 'अतिक्रमण' के रूपमें की गयी है। बार

में इन अर्धसैनिक संगठनोंका प्रयोग कठिन परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिये । उनका अधिक प्रयोग निश्चितही 'जनतांत्रिक वैधता' को प्रभावित करेगा । चौथे, संघात्मक शासनकी सफलताके लिए निष्पक्ष न्यायपालिकाकी आवश्यकता होती है । अतः कोई ऐसा कार्य जो न्यायपालिकाको राजनीतिक विवादोंका भाग बनाता हो उचित नहीं कहा जा सकता है । इस दृष्टिसे 'राजनीतिक मुद्दोंको अदालती क्षेत्रोंसे बाहर' रखनेका प्रश्न महत्त्वपूर्ण है । इसपर विचार किया जाना चाहिये ।

इस पुस्तकमें विद्वान् लेखकोंने भारतीय संघमें केन्द्र-राज्य समस्याओंके निदानकी दृष्टिसे कुछ सुझाव दिये हैं । पहला, स्वस्थ अभिसमयोंका विकास किया जाना चाहिये । विकासमान समाजमें नयी परिस्थितियां उत्पन्न होती रहती हैं तथा इनके अनुरूप सविधानके कार्य करने की दृष्टिसे उचित अभिसमयोंकी स्थापना आवश्यक है । दूसरे, केन्द्र-राज्य समस्याओंको सुलझानेकी दृष्टिसे अन्तर्राज्य परिषदकी स्थापनाका सुझाव दिया गया है । वास्तवमें इस दिशामें क्षेत्रीय परिषदोंकी स्थापनाके द्वारा कदमभी उठाये गये हैं । तीसरे, इस सुझावका भी स्वागत किया जाना चाहिये कि केन्द्र तथा राज्यमें एक दूसरेके प्रति सम्मानकी भावना हो ।

श्री नम्बूतिरीपाद का विचार है कि 'प्रश्न यह नहीं है कि केन्द्रको मजबूत होना चाहिये या नहीं । कोई समझदार आदमी इस बातका खंडन नहीं करेगा । असली प्रश्न यह है कि राज्य कमजोर रहे तो क्या केन्द्र मजबूत हो सकता है ?' किन्तु जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है भारतीय समाज अभी संक्रमणकी अवस्थामें है तथा विकसोन्मुख है । विभिन्न वर्गोंकी दशाओंमें अन्तर होनेके कारण राजनीतिक जीवनमें तनाव स्वाभाविक है । जब तक केन्द्र और राज्योंमें विभिन्न वर्गोंकी प्रतिनिधि सरकारें बनती रहेंगी, इनके मध्य तनावकी स्थिति रहेगी तथा 'सहकारी संघवाद' की स्थापनाके विचार काल्पनिकही रहेंगे । फिरभी, केन्द्र तथा राज्योंके द्वारा सभी ऐसे प्रयत्न किये जाने चाहियें जो देशकी एकता तथा जनतांत्रिक व्यवस्थाके विकासमें सहायक हों । इस दृष्टिसे दो बातों पर विचार आवश्यक प्रतीत होता है । पहला, देशके विभिन्न क्षेत्रोंके आर्थिक विकासपर समान रूपसे ध्यान दिया जाना चाहिये । विभिन्न क्षेत्रोंमें आर्थिक विषमता क्षेत्रीय असन्तोषको जन्म देगी । इससे देशकी एकता प्रभावित होगी । अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इस प्रकारके असंतुलित विकासके विरुद्ध हमारे नियोजकों को ठोस कदम उठाना चाहिये । किसीभी क्षेत्रके अन्तर्गत इस प्रकारकी भावनाको नहीं पनपने देना चाहिये कि उसके साथ न्याय नहीं हो रहा है । दूसरे, राजनीतिक एकताकी स्थापनामें राजनीतिक दलभी सहायक हो सकते हैं । अतः राजनीतिक दलोंका यह दायित्व हो जाता है कि वे समस्त देशको ध्यानमें रखकर अपने संगठनका विस्तार करें तथा उन नीतियोंको कार्यान्वित करनेकी कोशिश करें जो देशकी एकता तथा विकासमें सहायक हों । □ □

इतिहास :
मध्यकाल

मध्यकालीन भारत

सम्पादक : इरफान हबीब; प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., नयी दिल्ली । पृष्ठ : १५२; रायल ८१; मूल्य : २५.०० रु. ।

'मध्यकालीन भारत' इसी नामकी पत्रिकाका पुस्तकाकार रूप है, जिसका प्रकाशन श्री इरफान हबीबके संपादकत्वमें सन् १९८१ के अंक एकके रूपमें इसी प्रकाशन संस्था द्वारा हुआ है । पत्रिकाका उद्देश्य मध्यकालीन भारतीय इतिहासके अध्ययनमें वैज्ञानिक दृष्टिको बढ़ावा देनेका प्रयास हैं । प्रस्तुत अंकमें ८ लेख, २ दस्ता-

वेजोंके रूपमें मूल सामग्री, तथा ४ पुस्तक-समीक्षाएं है। इनमेंसे कुछ तो अंग्रेजीमें पहलेसे ही प्रकाशित लेखोंके अनुवाद मात्र हैं और कुछ सामग्री पहली बार सीधे हिन्दीमें ही प्रकाशित की गयी है। संपादकने आशा व्यक्त की है कि भविष्यमें इसमें मूल हिन्दीमें लिखी सामग्रीको अधिक स्थान मिलेगा।

इस अंकके लेखोंका चयन एक विशेष दृष्टिसे किया गया है। इनमें मात्र राजनीतिक-घटनाओंको स्थान न देकर इतर क्षेत्रोंपर प्रकाश डाला गया है। विद्वान् संपादक ने अपने दृष्टिकोणको स्पष्ट करते हुए लिखा है—'आर्थिक स्थितियों, उत्पादन, प्रौद्योगिकी, सामाजिक ढांचा, राजनीतिक-संगठन, सैनिक तंत्र, वैचारिक विकासक्रम' आदि इन सबका अध्ययन हमारे लिए एक सामान्य ऐतिहासिक प्रक्रियाका हिस्सा है, जिसे इनके पारस्परिक, लेकिन निरंतर परिवर्तनशील संबंधोंके संदर्भमें देखा जाना चाहिये। इसका अर्थ यह नहीं है कि संपादक (या अन्य लेखक भी) परम्परागत पद्धतिके राजनीतिक वर्णनात्मक इतिहास-लेखनको नकारता हैं, अपितु उसके विचारमें ऐसे इतिहास-लेखनसे ऐतिहासिक घटनाओंको अधिक व्यापक संदर्भोंमें रखकर देखनेसे इसमें अतिरिक्त अर्थ एवं महत्त्वका समावेश हो जाता है। विद्वान्, संपादक यह भी चाहता है कि इस पत्रिका द्वारा नये ऐतिहासिक स्रोतोंकी खोज और पूर्वज्ञात स्रोतोंकी विवेचनात्मक व्याख्याके महत्त्वपूर्ण कार्योंको भी बढ़ावा मिले, क्योंकि भारतीय इतिहास-लेखनको आगे बढ़ानेके लिए उसके विचारानुसार यह कार्य अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

इस अंकके संपादक एवं लेखकगण इतिहास जगत्के मान्य लेखकोंमें से हैं। उन्होंने अधिकार और सफलताके साथ अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। उनमें बौद्धिक योग्यता और अध्यवसायके साथ-साथ सहज संवेदना और सहानुभूतिभी है, जो किसी देशके जीवन और इतिहासको समझनेके लिए आवश्यक है। एक विशेष दृष्टिकोणसे प्रस्तुत सामग्री द्वारा (जिसे दूसरे शब्दोंमें प्रगतिशील दृष्टिकोण भी कहा जा सकता है) इतिहास-लेखन में सफलता मिली भी है, फिरभी इसमें सोचने-विचारने की बात तो है ही।

अभीतक भारतीय इतिहासके लेखक प्रायः सामग्रियों-व्यक्तियों, घटनाओं और पदार्थों—का संकलन करते रहे हैं और इतिहासके पुनर्निर्माणकी जो थोड़ी बहुत चेष्टा हुई है, उसका अस्थिपंजर खड़ा करनेसे आगे बहुत कमने साहस किया है। वस्तुतः सामग्रियोंका संग्रह आधारभूत होते हुएभी अपूर्ण तथा प्राणहीन है। घटनाओं और व्यक्तियोंके बीच क्रम, व्यवस्था, पूर्वापर अथवा कार्य-कारण संबंध, प्रभाव आदि को ढूंढे बिना इतिहास-कला केवल यांत्रिक तथा असफल रहती है। अतः इतिहासकारमें घटनाओंका विश्लेषण, उनका विवेचन तथा उनकी व्याख्या करनेकी क्षमता होना नितान्त आवश्यक है।

प्रस्तुत अंकके विद्वान् लेखकोंने यद्यपि विषयात्मक तथ्योंका चयन और उनका संघटन तो सामान्य रूपसे किया है, लेकिन उनकी व्याख्या बड़ी सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण दृष्टिसे की है। इसमें संदेह नहीं कि राजनीतिक घटनाओं के वर्णनसे इतर जिन क्षेत्रोंपर प्रकाश डालनेका उल्लेख संपादक महोदयने अपनी 'संपादककी ओरसे' टिप्पणीमें किया है, उनके अध्ययनका अपना महत्त्व है, किंतु राजनीतिक घटनाओंके अध्ययनकी उपेक्षाभी सम्भव नहीं है, क्योंकि इसप्रकारका अध्ययनही अन्य प्रकारके अध्ययनोंकी पृष्ठभूमि प्रदान करता है, वह उनमें अन्तर्निहित होता है। इस प्रकारके अध्ययन बिना न तो ऐतिहासिक शोधका कार्यही सरलतापूर्वक आगे बढ़ सकता है और न नवीन दृष्टिकोणसे विगत ऐतिहासिक घटनाओं तथा इतर अध्ययनोंमें किसीभी प्रकार का यथार्थ पूर्वापर संबंध स्थापित किया जा सकता है और न ही उनके कारणों और परिणामोंकी ठीक-ठीक व्याख्या संभव हो सकती है।

इतिहास-लेखनके आदर्शभी समयानुसार बदल रहे हैं। देशके सांस्कृतिक विकास एवं सामाजिक प्रगतिके साथही संप्रति सामान्य जन-समाजकी आर्थिक-आदि परिस्थिति एवं उसकी विचारधाराकी ऐतिहासिक परम्परा के अध्ययनकी ओर विशेषरूपेण ध्यान दिया जाने लगा है और ध्यान दिया जाना चाहिये, क्योंकि कोईभी इतिहास अपने समयकी 'देश-काल-परिस्थिति' 'आदिका ही प्रतिफल होता है, किंतु उचित निष्कर्षपर पहुंचनेके लिए यह आवश्यक है कि सभी क्षेत्रोंका समन्वित अध्ययन किया जाये।

इतिहास-लेखनके बदले आदर्शोंके अनुसार भारतके इतिहासके पुनर्लेखनके समय किसीभी इतिहासकारका यह कर्त्तव्य है कि वह इतिहासके पात्रोंकी आकांक्षाओं, भावनाओं तथा क्रिया-कलापोंका यथारूपही चित्रण करे और

यह तभी संभव है, जबकि वह अपनी पूर्व धारणाओं और पूर्वाग्रहोंको एक ओर रखे। इतिहासका सही पुनर्निर्माण इच्छाजनित धारणाओं अथवा मताग्रही सिद्धान्तीकरणसे नहीं हो सकता। ऐतिहासिक तथ्योंकी वैज्ञानिक खोज तथा व्याख्याके द्वारही खुलेपन (तटस्थवृत्ति) के साथ इतिहासका वैज्ञानिक तथा सही पुनर्लेखन किया जा सकता है अर्थात् समाजके समक्ष इतिहासका वास्तविक एवं निष्पक्ष चित्रणही वैज्ञानिक इतिहास-लेखन है।

इतिहास, लोगोंको अपने अतीत, वर्त्तमान, और भावी इतिहासके प्रति जागरूक बनानेमें सफल हो, इसके लिए आवश्यक है कि वह स्रोत-सामग्रीकी अधिकतम व्यापक तथा आलोचनात्मक खोज-बीनपर आधारित जाँच पड़तालके अत्यन्त परिष्कृत परिणामके रूपमें उनतक पहुँचे। शुद्ध आधुनिक दृष्टिकोण और सामयिक उपयोगिताके मापदंडसे मध्यकालीन घटनाओं और व्यक्तियोंका मूल्याँकन नही किया जा सकता। मध्यकालीन परिस्थितियाँ, प्रवृतियाँ, समस्याएं और उनके हल आजसे भिन्न थे तथा उस समयके युग-पुरुषोंने अपने ढंगसे अपने युगका नेतृत्व किया था, क्योंकि वे अपने युगकी भारतीय प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे। परन्तु अतीतके व्यक्तियों और घटनाओंका महत्त्व, परिस्थितियोंके बदल जानेपर भी, वर्तमान-जीवनमें सिद्धान्त रूपसे तो है ही। उदाहरणार्थ 'विदेशी आक्रमण और सत्ताका विरोध' नामक सिद्धान्तको लिया जा सकता है—इस समय यद्यपि भारतपर कोई बाहरी आक्रमण नहीं है और केन्द्र व राज्योंमें अपनी सरकार है,किंतु विदेशी सत्ताके प्रतिरोधका सिद्धान्त भारत के लिए आजभी मान्य है विदेशी आक्रमण किसीभी समय हो सकता है और विदेशीयताका अंत केवल केन्द्र और राज्योंमें भारतीय सरकार स्थापित होनेसे ही नहीं हो जाता। सैनिक और राजनीतिक रूप छोड़कर विदेशी सत्ता अर्थनीति, विचारधारा, भाषा, संस्कृति आदिका चोला धारण कर सकती है। इन नये प्रकारके आक्रमणों का प्रतिरोधभी एक आवश्यक राष्ट्रीय कर्त्तव्य है और इसके लिए पर्याप्त प्रेरणा आजभी विगत इतिहाससे मिल सकती है। विदेशी आक्रमण—सैनिक अथवा बौद्धिक—के परिणामोंमें प्रतिक्रिया और प्रतिषेधके अतिरिक्त आतंक, भय, भुलावा तथा प्रलोभनभी होते हैं। जहाँ स्वाभिमानी, मनस्वी तथा सशक्त व्यक्ति आक्रमणका विरोधकर संघर्ष का मार्ग ग्रहण करते हैं, वहाँ सुख-प्रिय कायर और लोभी व्यक्ति समर्पण, सहयोग और सेवा-वृत्ति अपनाते हैं। इन दूसरे प्रकारके व्यक्तियों द्वारा देशके वास्तविक आदर्शों और स्वार्थोंको किस प्रकार धक्का लगता है, इसके भी उदाहरण भारतीय इतिहासमें मिलते हैं। इतिहासकी यह निषेधात्मक नीति है और इसका भी आधुनिक महत्त्व है।

नवीन अध्ययन क्रमोंके प्रसंगमें यह विचारणीय है कि कोई सिद्धान्त कितना सार्थक, प्रामाणिक एवं प्रासंगिक है और ऐसे अध्ययनसे लाभभी है या नहीं, अथवा मनमानी धारणापर आधारित होनेके कारण कहीं गुमराह करनेवाला तो नहीं है। क्योंकि इतिहासमें घटनाओंके आधारपर ही कोई अनुमान वा सिद्धान्त स्थापित किया जाना चाहिये न कि अपने स्वीकृत सिद्धान्तकी पुष्टिके लिए इतिहासकी शरण लेनी चाहिये। अपनी मनमानी कल्पना और तर्कणा एक चीज है और इतिहासमें अनुसंधान एवं प्रमाणों द्वारा निश्चित किया हुआ सिद्धान्त दूसरी चीज है। सामाजिक-आर्थिक-आदि पक्षोंकी दृष्टिसे विशेष अध्ययन करते समय यहभी ध्यानमें रखना चाहिये कि राज्यकी नीतिसे ही बहुधा जनताकी सामाजिक आर्थिक आदि स्थिति निर्धारित होती रही है। यहभी ध्यान देनेकी बात है कि किसीभी राजनीतिक संघर्षका धरातल सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भौगोलिकभी रहा है। अतएव भारतके इतिहासका राजनीतिक विश्लेषण एवं राजनीति का ऐतिहसिक मूल्यांकन साथ-साथ दोनों पहलूओंसे किया जाना चाहिये, क्योंकि कोईभी ऐतिहासिक चक्र अपने समयकी राजनीति हुआ करती है।

प्रस्तुत अंकके सभी लेख प्रमाण-पुरस्सरताके साथ सफलतापूर्वक लिखे गये हैं। यद्यपि, 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना:'के अनुसार लेखकोंके तथ्य-प्रस्तुतीकरण और विचारोंसे यत्र-तत्र अथवा सर्वत्र मतभेद होना स्वाभाविक है, किंतु उनके श्रम और निष्ठाकी प्रशंसा तो करनीही होगी। यदि लेखोंकी भाषाका स्वरूप जटिल एवं गरिष्ठ न होकर सुस्पष्ट एवं सरल होता तो उपयुक्त होता और समझने-सोचने और विचारनेमें द्रविड़-प्राणायाम न करना पड़ता। संभव है भाषाका यह स्वरूप अनुवादका ही प्रतिफल हो।

प्रथम लेख श्री बी. एन. एस. यादवका 'प्रारंभिक मध्यकालीन व्यवस्थामें भारतीय किसान वर्गकी अगतिशीलता और दासता' है, जिसमें उन्होंने सप्रमाण इस सिद्धान्तकी विचार-सरणीका एक सीमातक निराकरण करते हुए तुलनात्मक एवं समग्रताके साथ तत्कालीन

वास्तविक स्थितिपर प्रकाश डाला है ।

दूसरा लेख स्वयं संपादक श्री इरफान हबीबका 'प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और समाज' है । यह परिवर्तन तेरहवीं एवं चौदहवीं शताब्दीके संदर्भमें परखा गया है । इस प्रकारका अध्ययन क्या उद्घाटित कर सकता है और वह राजनीतिक आर्थिक व सामाजिक स्थिति आदिके विकासपर कैसे प्रकाश डाल सकता है, यह जाननेके लिए उन्होंने चार विभिन्न क्षेत्रों 'वस्त्र उद्योग', 'सिंचाई', लेखन-सामग्री (कागज), 'वैज्ञानिक उपकरण' (कुतुबनुमा, समय-सूचक उपकरण') तथा 'घुडसवार सेना' विषयक प्रमाणोंकी परीक्षा की है और वे इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि इस प्रकारके विकासात्मक प्रौद्योगिक परिवर्तन आपेक्षिक रूपसे महत्त्वपूर्ण थे और ऐसा विकासात्मक अध्ययन इतिहासके अन्य सभी पहलुओंपर प्रकाश डालता है। साथही उन्होंने इस प्रकारके अध्ययनको गंभीरता-पूर्वक और अधिक सूक्ष्म एवं गहन बनानेपर बल दिया है ।

यद्यपि उनका यह अध्ययन उन्हींके कथानुसार प्राथमिक व प्रयोगात्मक स्तरका है और एक प्रकारसे उन्होंने अपनेको उठाये गये प्रश्नतक ही सीमित रखा है, फिरभी इस तरहके अध्ययन अभीतक विवादास्पद स्थितिमें ही हैं और इसीलिए किसी निष्कर्षपर नहीं पहुंचा जा सकता । ऐसे विषयोंके अध्ययन अधिक शोध-सापेक्ष हैं ।

श्री नूरूल हसनके 'मुगलोंके अधीन जमींदार' लेख में मुगल कालमें जमींदारी-व्यवस्थाकी कार्य-प्रणालीके विस्तृत अध्ययनकी आवश्यकताकी ओर ध्यान केन्द्रित करनेका प्रयास किया गया है। इस संबंधमें उपलब्ध प्रमाणोंके एक सीमित अंशके आधारपर कुछ सुझावभी प्रस्तुत किये गये हैं। साथही राजनीतिक, प्रशासनिक एवं अर्थ-व्यवस्थाकी दृष्टिसे जमींदारों और राज्यके बीच तथा जमींदारोंके विभिन्न वर्गोंके बीच आपसी हित-टकरावकी तात्कालिक स्थितिको भी स्पष्ट करनेकी चेष्टा की गयी है ।

श्री इक्तिदार आलमखानके 'बैरमखानके राज्य-संरक्षण-कालमें मुगल दरबारकी राजनीति' में इतिहासके एक महत्त्वपूर्ण दौरका प्रतिनिधित्व करनेवाले बैरमखान के राज्य-संरक्षण (रीजेंसी) कालकी राजनीतिक स्थिति एवं विभिन्न घटनाओंका गंभीरतापूर्वक विवेचन करते हुए एक नया मूल्यांकन प्रस्तुत करनेका प्रयत्न है और इसीके परिप्रेक्ष्यमें बैरमखानके उत्थान-पतनके कारणोंकी व्याख्याकी चेष्टा की गयी है । तात्कालिक राजनीतिक स्थिति एवं घटना-चक्रको समझनेमें (विस्तृत संदर्भ संकेतों के साथ) यह लेख उपादेय है ।

श्री सतीशचन्द्रके 'सत्रहवीं शताब्दीके दौरान भारत में जजिया और राज्य' औरंगजेबकी 'जजिया' लागू करने की नीतिका विभिन्न दृष्टिकोणोंके परिप्रेक्ष्यमें विश्लेषण कर उसके वास्तविक कारणोंको उद्घाटित करनेका प्रयास है । इस सम्बन्धमें प्रचलित कारणोंको युक्ति-युक्त न मानते हुए विद्वान् लेखकका विचार है कि —'राज्यपर निर्भर वृत्तिधारियोंकी बड़ी संख्याके चरित्र, स्थिति और भूमिका, राज्यके स्वरूपसे संबंधित तत्कालीन राजनीतिक और वैचारिक विवाद, हिन्दुओंकी स्थिति तथा उलमा द्वारा राज्यकी आधारभूत नीतियोंके निर्धारणकी सीमा को ध्यानमें रखे बिना इस कार्रवाईको नहीं समझा जा सकता ।' अतः उपर्युक्त विस्तृत धरातल एवं दृष्टिकोण के आधारपर विवेचनोपरान्त उनका मत है कि जजिया के पुनरारोपणका मुख्य कारण पूर्णतया न तो आर्थिक था और न कट्टर हिन्दू-विरोधी नीति थी। लेखकके अनुसार जजियाका पुनरारोपण मुख्य रूपसे दक्खिनकी बिगड़ी हुई स्थितिके कारण गहराते राजनीतिक संकटका सूचक था । साथही इसका एक अन्य कारण था 'धार्मिक तत्त्वों' में बढ़ती हुई बेरोजगारी । और इस प्रकार लेखक की दृष्टिमें जजियाकी पुनर्स्थापना एक अर्थहीन कार्य था, किंतु लेखकका यह निष्कर्ष पूर्णतया उचित नहीं है। यद्यपि जजिया-पुनरारोपणको लेखकने राजनीतिक घटना-चक्रके परिप्रेक्ष्यमें रखकर देखनेकी चेष्टा की है और इसी को उन्होंने मुख्यता प्रदान की है, लेकिन पूर्वोल्लिखित दोनों कारण (धार्मिक एवं आर्थिक) भी प्रत्यक्ष रूपसे इस घटना-चक्रमें विशेष सहायक थे और इन्होंने (विशेष-कर धार्मिक दृष्टिकोणने, क्योंकि आर्थिक दृष्टिकोणभी इसीके अधीन था) एक प्रकारसे उक्त विचारको लागू करनेमें पृष्ठभूमिका कार्य किया । इस संबंधमें लेखकके तर्क विचारणीय तो हैं, किंतु इस विषयपर विचार करते समय यह ध्यान रहे कि जजियाकी पुनर्स्थापनाके कुछ-न-कुछ प्रतिफल तो निकले ही । इसलिए उसकी पुनर्स्थापना को पूर्णतया एक अर्थहीन कार्य नहीं कहा जा सकता ।

श्री ए. जान कैसरके 'मुगल साम्राज्यके मालगुजारी स्रोतोंका अमीरोंमें वितरण' में लेखकने मुगल साम्राज्यके अमीर वर्गकी आय और आर्थिक स्थितिके बारेमें अध्ययन एक प्रकारका सांख्यिकीय अध्ययन है । इससे पूर्व मुगल

साम्राज्यकी मालगुजारी आयके मुगल शासक वर्गके विभिन्न स्तरोंमें वितरणके स्वरूपको आंकड़ों सहित पुनर्निमित करनेका कोई प्रयास नहीं हुआ था, उसी अभाव की पूर्ति-हेतु लेखकका यह प्रयास है। इस प्रकारके वितरणको आंकड़ों सहित प्रस्तुत करनेका यह प्रयास मुगल प्रशासनिक प्रणालीके बारेमें दो-एक मान्यताओंपर आधारित है, जिनकी पुष्टि उपलब्ध लिखित प्रमाणोंसे होती है। लेखकने लगभग सभी आवश्यक प्राप्त आँकड़ों के आधारपर शाहजहांके शासनके बीसवें वर्षका सांख्यिकीय अध्ययन प्रस्तुत किया है। यह अध्ययन यद्यपि प्रारम्भिक प्रयास है, किन्तु महत्त्वपूर्ण है। लेखकने आशा व्यक्त की है कि—यदि यह (लेख) इस महत्त्वपूर्ण-विषय पर ध्यान केन्द्रित करनेमें सहायता और इसके गहरे अध्ययनके लिये प्रोत्साहन देता है, तो मेरा उद्देश्य पूरा हो जायेगा।'

श्री सोमप्रकाश वर्माके 'मुगल चित्रकार विचित्र' में विचित्रका समीक्षात्मक अध्ययन है। प्रस्तुत लेखमें मुगल-शैलीकी चित्रकलाके संदर्भमें चित्रकार विचित्रकी कला-कृतियों (चित्रों) का विस्तृत एवं व्यापक मूल्यांकन किया गया है। विचित्र, जहाँगीर और शाहजहांका दरबारी चित्रकार था उसके चित्रोंमें भावोंके चित्रण और संयोजन में मौलिकताके भाव स्पष्ट हैं, किंतु इनसे किसी विशेष पद्धति अथवा रीतिके योगदानमें सहायता नहीं मिलती और न लाक्षणिक प्रवृत्तियोंके आधारपर विचित्रकी कृतियोंमें मुगल-शैलीसे पृथक्ताका आभास मिलता है, फिरभी चित्रकलाके अध्ययनकी दृष्टिसे उसके चित्रोंका विशिष्ट महत्त्व है। लेख उपयोगी है।

'मुगल साम्राज्यका अंत' में श्री एम. अतहर अली ने मुगल-साम्राज्यके पतनकी व्याख्यामें कुछ नये कारणों को उभारकर सामने रखा है, जिसपर अभीतक ध्यान नहीं दिया गया था। विद्वान् लेखकने पश्चिमके उत्थान एवं विकासके परिप्रेक्ष्यमें इसके प्रभावोंपर विचारकर बतलाया है कि—'यूरोपके व्यापारिक विकास, नये विज्ञान एवं प्रौद्योगिकीका बड़ा गहरा प्रभाव यहांकी अर्थ-प्रक्रियापर पड़ा, जिससे आर्थिक संतुलनका पलड़ा यूरोप के पक्षमें झुक गया था।' इसी संदर्भमें कुछ अन्य तथ्यों पर भी विचार किया गया है, जो मुगल-साम्राज्यके विघटनमें सहायक हुए। लेखकने व्यापक दृष्टिसे इस विषय पर विचार किया है। मुगल-साम्राज्यके विघटनमें किसी एक कारणको निर्णायक कारण नहीं कहा जा सकता। पतनके अनेक कारणोंमें से यहभी 'एक' कारण हो सकता है। हां, इन कारणोंको किसी सीमातक मौलिकताके प्रभावात्मक क्षेत्रमें क्रमबद्ध किया जा सकता है।

प्रस्तुत अंकमें दो दस्तावेजभी प्रकाशित किये गये हैं, जिनमें से एक रसिकदासके नाम 'भूमि मालगुजारी' संबंधी फरमान है। औरंगजेबके शासनके आठवें वर्षमें जारी किया गया यह फरमान कृषिकी तत्कालीन स्थिति पर बहुत प्रकाश डालता है और इस दृष्टिसे औरंगजेबके शासनके दौरान कृषि संबंधी स्थितियोंके विश्लेषणके लिए इसका महत्त्व असंदिग्ध है।

नौ प्रतियोंके आलेखपर संपादित इस फरमानका हिन्दी-अनुवाद टिप्पणी एवं व्याख्याके साथ दिया गया है। श्री यदुनाथ सरकार द्वारा संपादित आलेखके साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर संबंधित त्रुटियों का भी परिहार किया गया है। यह अध्ययन श्री एम. मूसवीने प्रस्तुत किया है।

दूसरे दस्तावेजमें पूर्वी राजस्थानके भूमि संबंधी 'तकसीम' तथा 'मुवाजना-ए-दहसाला' नामक अभिलेखों का प्रकाशन किया गया है। यहभी सांख्यिकीय अध्ययन है और परिशिष्टोंके साथ स्पष्ट समझने-समझानेका प्रयास किया गया है। इस अध्ययनको श्री सत्यप्रकाश गुप्तने प्रस्तुत किया है।

अन्तमें चार ग्रन्थ समीक्षाएं हैं। जे. एफ. रिचर्ड्स कृत 'मुगल ऐडमिनिस्ट्रेशन इन गोलकुंडा' ग्रन्थकी समीक्षा में समीक्षकने ग्रन्थकी विशेषताओंके साथ उसकी त्रुटियों की ओरभी इंगित किया है। वैसे ग्रन्थ उपयोगी है। दूसरी समीक्षा श्री एम. एन. पियर्सनकी कृति 'मर्चेन्ट्स एण्ड रूलर्स इन गुजरात—दि रिस्पांस टु दि पोर्तुगीज इन सिक्सटींथ सेंचुरी' पर है। तीसरी समीक्षा श्री मनोहर सिंह राणावतकी कृति 'शाहजहांके हिन्दू मनसबदार' की है। पुस्तक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। समीक्षिकाने जिन त्रुटियोंकी ओर इंगित किया है, उनका परिहार किया जाना चाहिये और उसे अधिकाधिक पूर्णता प्रदान करनेके लिए ५०० जात से कमवाले मनसब-दारोंको भी सूचीमें शामिल कर लेना ही उचित है। चौथी समीक्षा श्री नफीस अहमद सिद्दीकीकी 'पापुलेशन जियाग्रफी ऑफ-मुस्लिम्स आफ इण्डिया' नामक ग्रंथपर है। पुस्तकमें भारत में मुस्लिम जन-संख्याके वितरणका सांख्यिकीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है और जन सांख्यिकीय परिवर्तनोंके बारेमें विश्लेषणोपरान्त कुछ नवीन तथ्य निर्धारित किये

हैं। भारतमें मुस्लिम जन-संख्याकी बृद्धिके कारणोंके अध्ययनकी दृष्टिसे पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। वह इस बारेमें नये सिरेसे सोचने और विचारनेके लिए विवश करती है। समीक्षकने पुस्तककी कुछ त्रुटियोंकी ओर संकेत करते हुएभी उसके इस क्षेत्रके अध्ययनोंमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण योगदानकी महत्ताको स्वीकार किया है।

समग्र दृष्टिसे प्रस्तुत अंकके लेख विचारोत्तेजक हैं और ऐतिहासिक अध्ययनकी नवीन दिशाको संकेतित करते हैं। इस रूपमें ये भारतके मध्यकालके सबंधमें मनन, चिन्तन एवं पुर्नाविचारकी आवश्यकतापर बल देते हैं।

हिन्दीमें इतिहास-लेखनकी यह विवेचनापरक व्याख्यात्मक शैली स्वागत योग्य है और इस सफल प्रयासके लिए संपादक तथा लेखक धन्यवादके पात्र हैं। यहभी निवेदन है कि अनुवादकी भाषाके सरल और सुबोध बनानेपर ध्यान दिया जाये। साथही इस बातपर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये कि संज्ञा नामोंको सही रूपमें दिया जाये, विकृत रूपमें नहीं—जैसे 'टुकड़ियां' (पृ. ६८) के स्थानपर 'तुकेरिया', 'गौड़'की जगह 'गोठ' (पृ. १४६), 'मेड़ता' की जगह 'मेरथा' (पृ. ७८), 'अब्दुल वकी सर हिन्दी' के स्थानपर 'अब्दुल वकी नहवंडी' (पृ. ६१), आदि दिया गया है! प्रूफकी अशुद्धियांभी यत्र-तत्र रह गयी हैं—जैसे—'उमराके स्थानपर 'बमरा' और 'खुर्रम' के स्थानपर 'शुर्रम' (पृ. १४६) मुद्रित हुआ है।

☐ वेदप्रकाश गर्ग

भारतीय आवश्यकता एवं शिक्षा समस्या

महर्षि दयानन्दकी शिक्षा संबंधी धारणाओंका अध्ययन

लेखक : डॉ. प्रशान्त वेदालंकार **समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री**

हमारे देशकी शिक्षा नीति क्या हो—इसपर विचार करनेकी आवश्यकता तभीसे महसूसकी जाने लगी थी जबसे इस क्षेत्रमें 'कुनीति' घुसने लगी। इसका सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप मिलता है लार्ड मैकालेके १८३५ के घोषणा-पत्रमें जिसमें उसने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा कि हम अंग्रेजी शिक्षाके द्वारा ऐसे लोग तैयार करना चाहते हैं जो रंग, रूप और रक्तमें भारतीय हों, पर रुचियों, विचारों और नैतिकतामें अंग्रेज हों ताकि उन्हें विश्वास पूर्वक सरकारी पद सौंपे जा सकें। जिन प्रबुद्ध भारतीयों ने इस कुनीतिका विरोध किया उनमें शिरोमणि नाम है महर्षि दयानन्द सरस्वतीका। उन्होंने केवल विरोधही नहीं किया, क्या होना चाहिये यहभी बताया। प्रस्तुत ग्रन्थका आधार दयानन्द द्वारा प्रस्तावित वही वैकल्पिक नीति है। यह सत्य है कि हमारी आजकी शिक्षा नीति बिल्कुल वही नहीं हैं जो मैकालेने बनायी थी, पर यहभी सत्य है कि एक तो उसमें जो तथाकथित परिवर्तन किये गये हैं वे पुराने कम्बलमें लगे पैबंदकी भांति हैं, दूसरे वे पैबंद भी पश्चिमी देशोंसे आयातित किये गये हैं। यहांतक कि कोठारी कमीशन (१९६६) द्वारा सुझाया सामान्य विद्यालय (कॉमन स्कूल), या कार्यानुभव (वर्क एक्सपीरिएंस) का सम्प्रत्यय रूससे लिया गया, प्राचीन भारतीय-शिक्षा-प्रणालीसे नहीं। लेखककी यह मान्यता एकदम सही है कि यह शिक्षा हमारी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें इसीलिए असमर्थ रही है कि वह पश्चिमी देशोंकी अंधाधुंध नकलपर आधारित है। भारतीय मनीषियोंमें लेखकको 'महर्षि दयानन्द द्वारा प्रस्तुत शिक्षा-प्रणालीका आधुनिकीकरण' अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ है। यहां आधुनिकीकरणसे लेखकका आशय उसे वर्तमान समयके उपयुक्त बनाना है, यानी लेखकने दयानन्दकी

---

१. **शिक्षा व भाषा नीति**; लेखक : डॉ. प्रशान्त वेदालंकार; प्रकाशक : किताबघर, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१। पृष्ठ : १७६; डिमा. ८१; मूल्य : ३३.०० रु.।

शिक्षा नीतिका जो चित्र प्रस्तुत किया है वह कैमरेकी आंखसे उकेरा हुआ नहीं, कलाकारकी तूलिकासे चित्रित किया हुआ दृश्य है। लेखक गुरुकुल कांगड़ीका स्नातक है (जो कुछ समय पूर्वतक महर्षि दयानन्दके विचारोंपर आधारित संस्था थी) और विगत दो दशकोंसे दिल्ली विश्वविद्यालयके प्रमुख महाविद्यालयोंमें शिक्षण कार्य कर रहा है। इसलिए वह इस स्थितिमें है कि गुरुकुलीय शिक्षा और आधुनिक विश्वविद्यालयोंकी शिक्षापर तुलनात्मक विचार कर सके।

पुस्तक चौदह अध्यायोंमें विभक्त है—१. शिक्षाका आरम्भ २. शिक्षाकी अनिवार्यता और शिक्षा प्राप्त करने की अवधि ३. शिक्षाका स्थान (आश्रम वास) व सह-शिक्षाका विरोध ४. अध्यापक, विद्यार्थी व दण्डनीति ५. विद्याकी परिभाषा, विविध विषय तथा अध्यापन-पद्धति ६. शिक्षाका उद्देश्य : मानवीय गुणोंका विकास ७. शिक्षापर होनेवाला व्यय ८. महर्षि दयानन्द द्वारा शिक्षाके क्षेत्रमें किये गये प्रयत्न ९. वर्तमान शिक्षा प्रणाली : समस्या और समाधान १०. हिन्दी और देवनागरी लिपि ११. संस्कृत भाषाका पुनरुद्धार १२. अंग्रेजी व अरबी फारसी : उदार दृष्टिकोण १३. भारतकी भाषा-समस्या और उसका समाधान १४. भारतकी भाषा-समस्याका समाधान : देवनागरी लिपि। इस प्रकार प्रारम्भके नौ अध्याय शिक्षा नीतिसे संबंधित हैं, और शेष पाँच अध्यायों में भाषा नीतिकी विवेचना है।

सामान्यतया शिक्षाशास्त्री बालककी औपचारिक शिक्षाका प्रारम्भ ५-६ वर्षकी आयुसे, तथा अनौपचारिक शिक्षाका आरम्भ जन्मके पश्चात्से मानते हैं। फ्रायड सरीखे मनोविश्लेषणवादियोंका मानना है कि मांकी गोदी में बच्चा जो संस्कार ग्रहण करता है उनकी छाप अमिट होती है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक वाटसनभी यही मानता था कि शिक्षाका प्रारम्भ जन्मके बाद होता है। तभी तो उसने कहा था कि आप मुझे नवजात शिशु दे दीजिये, और मैं उन्हें डाक्टर, प्रोफेसर, इन्जीनियर या चोर, डाकू, लुटेरा, लफंगा जो चाहूं सो बना सकता हूं। पर दयानन्दकी ऋषि-दृष्टि और आगेतक गयी है। वे शिक्षाका प्रारम्भ गर्भाधानसे ही मानते हैं (पृ. १७-१८)। इसीलिए उन्होंने माता और पिताको गर्भाधानके पूर्व एवं पश्चात् पालन करने योग्य आवश्यक निर्देश अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाशमें उस स्थानपर दिये हैं जहां वे बालक की शिक्षाकी चर्चा कर रहे हैं।

दयानन्द शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्यका जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं। स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम् इति श्रुतेः जैसी कूक्तियोंको मूर्खतापूर्ण बताते हुए उन्होंने अत्यन्त मनोरंजक शैलीमें विद्याका विरोध करनेवालोंका उपहास किया है (पृ. २७-२९)। इतनाही नहीं, वे शिक्षा को अनिवार्य बनानेके भी पक्षमें हैं, 'इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्षसे आगे अपने लड़के और लड़कियोंको घरमें न रख सकें। पाठशालामें अवश्य भेज देवें। जो न भेजे वह दण्डनीय है।' (पृ. २५)। आज तो सभी सभ्य सरकारें इसी दिशामें बढ़ रही हैं, पर लगभग एक शताब्दी पहले शिक्षाको अनिवार्य करनेकी बात सोचना दयानन्दकी ऋषि-दृष्टिका ही प्रमाण है। दयानन्दका यह विचारभी इसी दृष्टिका परिणाम है कि शिक्षाको अनिवार्य करनेमें केवल राजनियम अपर्याप्त हैं, जातिनियमभी आवश्यक है।

आज जब शिक्षकके गुणोंकी चर्चा की जाती है तब यह कहा जाता है कि वह अपने विषयका पंडित हो। यही कारण है कि अध्यापककी नियुक्ति करते समय प्रमाणपत्रोंके माध्यमसे और/या साक्षात्कारके माध्यमसे उसके ज्ञानकी परीक्षा करनेका प्रयास किया जाता है। इस प्रक्रियामें एक अत्यन्त आवश्यक पक्षकी उपेक्षा कर दी जाती है—और वह है अध्यापकका चरित्र। दयानन्द की कल्पनाका अध्यापक दोनों प्रकारकी योग्यताओंसे युक्त होना चाहिये—विषयका पंडितभी, और चरित्रगत मानवीय गुणयुक्त भी (पृ. ४२-४७)।

लेखकका यह विश्लेषण एकदम सही है कि आज जब हाईस्कूल अथवा बी. ए./एम. ए. पास युवक/युवती को अध्यापक बना दिया जाता है तो 'उसके पास पुस्तकीय बातोंके अतिरिक्त देनेके लिए कुछ नहीं होता। पुस्तकीय ज्ञानके साथ जबतक सांसारिक अनुभवका मेल न हो जाये तबतक वह ज्ञान अपूर्ण रहता है।' (पृ.१३६) इस दृष्टिमे ये नवस्नातक अध्यापक बनने योग्य नहीं। एक अन्य कारणसे भी ये इस कार्यके उपयुक्त नहीं। इस आयुमें व्यक्तिमें उच्च वेतन, उच्च पद आदि पानेकी आकांक्षाएं होती हैं। अध्यापकका वेतन ऊंचा होता नहीं, अतः वह आयके दूसरे, (वस्तुतः मुख्य) स्रोतोंकी तलाश करने लगता है। परीक्षामें पास करानेके ठेके सहित ट्यूशन करना, साल भरकी पढ़ाई एक रातमें करानेवाले [illegible] बीड़ी-सिगरेटसे लेकर गांजा

भांग तककी दूकान करना—कुछभी करने लगता है। वास्तविक शिक्षा कार्य अन्धाधुंध पैसे कमानेका साधन न पहले था, न आज है, न आगे होगा, न होना चाहिये। पर पैसा और सुख-सुविधा सामान्यतया हर युवककी सहज आकांक्षा होती है, होनी चाहियेभी। आखिर उसे पारिवारिक और सामाजिक दायित्वोंका निर्वाहभी करना है। देशकी आर्थिक उन्नति इनके ही बलपर होती है। सुदामा सोसाइटीका सदस्य बनकर कोई जीना नहीं चाहता—'धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह-की नाहि सामां।' हर कोई चाहता है कि एक मुट्ठी चावलके बदले एक लोकका राज्य मिल जाये—एक रु. के टिकटके बदले एक लाखकी लाटरी निकल आये। अत: लेखकका यह सुझाव सर्वथा उचित है कि युवावस्थामें व्यक्ति धनोपार्जनके लिए ऐसे व्यवसाय अपनाये जो उसकी आकांक्षाओंको पूरा कर सकें। शिक्षाके क्षेत्रमें व्यक्तिको ५०-५५ वर्षकी आयुके बाद आना चाहिये (पृ. ४३, ४४, १३५, १३६), जब वह पारिवारिक दायित्वोंसे मुक्त हो चुका हो, और उसे मात्र जीवन निर्वाहके लिए धनकी आवश्यकता हो, जब वह व्यावहारिक अनुभवसे युक्त हो। इस व्यवस्थामें उन प्रतिभाशाली लोगोंका भी लाभ शिक्षा जगत्‌को मिल सकेगा जो आज धनपदके आकर्षणके कारण आई. ए. एस., आई. एफ. एस., या व्यापार आदि में चले जाते हैं। यह व्यवस्था गुरुकुल-शिक्षा-प्रणालीके भी अनुरूप है (पृ. ४३) जिसकी संस्तुति दयानन्दने की है। दयानन्दकी विशेषता यह है कि उन्होंने मानव जीवन को उसकी समग्रतामें देखा है, खंड-खंड करके नहीं। कारण है कि उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा-प्रणाली संपूर्ण सामाजिक जीवनको प्रभावित करती है। इससे केवल अध्यापक विद्यार्थीही नहीं, समाजका प्रत्येक सदस्य, उसकी प्रत्येक गतिविधि, जीवनकी सम्पूर्ण व्यवस्था प्रभावित होती हैं। वर्तमान शिक्षा-प्रणालीमें जहां शिक्षा प्राप्त करनेका अर्थ कुछ सूचनाएं इकट्ठी करना है, येन-केन-प्रकारण बोर्ड/यूनिवर्सिटीकी उपाधियां जुटाना है, वहां दयानन्दकी शिक्षा-प्रणाली एक जीवन-पद्धति है जो व्यक्तिकी बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक, व्यावसायिक, नैतिक, आध्यात्मिक—सभी प्रकारकी उन्नति करती है।

भाषाके संबंधमें महर्षि दयानन्दके विचार विशेष ध्यान देने योग्य हैं। गुजरातीभाषी होते हुएभी दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दीको सम्पूर्ण देशकी भाषा बनानेका क्रियात्मक प्रयत्न किया। वे संस्कृतके विद्वान् थे, उसीमें भाषण देते थे, उसीमें ग्रन्थ लिखते थे। उस जमानेमें संस्कृतको वही सम्मान और स्थान प्राप्त था जो आज शिक्षित वर्गमें अंग्रेजीको प्राप्त है। सन् १८७३ में ब्रह्मसमाजके नेता (बंगालीभाषी) आचार्य केशवचन्द्र सेनने सुझाव दिया कि यदि आप अपनी बात आम जनता तक पहुंचाना चाहते हैं तो हिन्दीमें व्याख्यान दिया कीजिये। विचार करनेपर दयानन्दको बात ठीक जंची। सत्यके ग्रहण करने और असत्यके त्यागनेको सर्वदा उद्यत रहना चाहिये—यह उनके जीवनका मूलमंत्र था। उस आयुमें उन्होंने हिन्दी सीखी, और फिर अपना जीवन हिन्दी प्रचारको समर्पित कर दिया। हिन्दीको आर्यभाषा का नाम दिया। बम्बईमें आर्यसमाजका संगठन करते समय हिन्दीका पुस्तकालय स्थापित करना, और हिन्दीमें समाचार-पत्र निकालना समाजके लिए आवश्यक बताया। लाहौरके संगठन संस्कारमें सब आर्योंके लिए हिन्दी सीखना आवश्यक कर दिया क्योंकि उनका दृढ़ मत था कि हिन्दी द्वारा समस्त विशृंखलित भारतको एकताके सूत्रमें पिरोया जा सकता है। (पृ. १४०-१४१)। आगे चलकर सभी राष्ट्रवादी लोगोंने इसी नीतिका अनुसरण किया, पर जबसे क्षुद्र लोग अपने क्षुद्र स्वार्थोंके लिए राजनीतिका प्रयोग करने लगे तबसे स्थिति बिगड़ती चली गई। दुर्भाग्यसे इनकी संख्या बढ़ती ही गयी। परिणाम यह है कि भाषा समस्या आजभी मुंह बाए खड़ी है। मेरा विश्वास है कि यदि आज केवल राजनीतिक दल तथा समाज-सुधारके संगठनही अपने सदस्योंके लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दें तो स्थितिमें गुणात्मक अन्तर आ सकता है।

प्राय: यह मान लिया जाता है कि संस्कृतके अद्वितीय विद्वान् होनेके कारण दयानन्द संस्कृतनिष्ठ यानी क्लिष्ट हिन्दीके पक्षधर हैं, पर लेखकने १० वें, ११ वें अध्यायमें इस भ्रान्तिका, तथा इसी प्रकारकी अन्य भ्रान्तियोंका निराकरण किया है। दयानन्द भाषाको क्लिष्ट बनानेके समर्थक नहीं थे। उनका मानना था कि भाषाका ऐसा रूप काममें लेना चाहिये जो सबकी समझ में आ सके। लोक प्रचलित शब्द, फिर वह किसीभी भाषाका क्यों न हो, ग्रहण करनेमें उन्हें तनिकभी संकोच नहीं होता था। पुस्तकका पृ. १४० से १६५ तकका भाग इस दृष्टिसे विशेष रूपसे पठनीय है।

अंतिम दो अध्यायोंमें लेखकने देशकी वर्तमान भाषा समस्याका संक्षेपमें विश्लेषण करके उसके समाधानके

लिए उपाय सुझाये हैं । [illegible] भाषियोंके लिए लेखकने देवनागरी लिपिको अतिरिक्त लिपिके रूपमें अपनानेकी सिफारिश की है। इसमें यथावश्यकता कुछ नये लिपि-चिह्न अपनानेका भी सुझाव दिया है। यूरोपमें सर्वत्र रोमन लिपि होनेसे बाजारोंमें नामपट्ट आदि पढ़नेमें सुविधा होती है, यद्यपि यूरोपीय भाषाओंमें शब्दावली की बहुत समानता नहीं है। भारतीय भाषाओंमें तो ५० प्रतिशतसे लेकर ९६ प्रतिशत तक शब्द संस्कृतके हैं। इस कथनकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेके लिए लेखकने भारतमें बोली जानेवाली सभी भाषाओंसे उदाहरण दिये हैं। (पृ. १७३-१७६) इतनी निकटता और समानताके बावजूद केवल लिपि भेदके कारण अपरिचयकी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जो देशकी एकतामें अवरोध उत्पन्न कर रही है। अत: लिपिकी समानता देशकी भाषा समस्याके समाधानमें बहुत सहायक होगी, इसमें रंचमात्र सन्देह नहीं है।

पुस्तकका कलेवर बहुत बड़ा नहीं है, पर उसका फलक बहुत व्यापक है। यह देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती है कि लेखकने विषयवस्तुका संयोजन अत्यन्त परिश्रमपूर्वक और सावधानीपूर्वक किया है। प्रत्येक बिंदु को प्रामाणिक तथ्यों और तर्कोंसे पुष्ट किया है। दयानन्द द्वारा लिखे समस्त साहित्य, तथा अन्य सम्बद्ध साहित्यका श्रमपूर्वक मंचन करके नवनीत प्रस्तुत किया है। पुस्तक का स्तर किसीभी उच्चकोटिके शोधप्रबन्धसे कम नहीं। ऐसा ग्रन्थ प्रस्तुत करनेके लिए लेखकको हार्दिक बधाई। प्रकाशकने सुरुचिपूर्ण ढंगसे पुस्तकका प्रकाशन किया है इसके लिए उसेभी बधाई।

विषय-सामग्रीको देखते हुए पुस्तकका शीर्षक थोड़ा भ्रामक लगता है। लेखकने महर्षि दयानन्दके विचारोंका संकलन किया है। कहीं-कहीं अपने सुझावभी दिये हैं जिन्हें उसने महर्षि दयानन्दके विचारोंके आधुनिकीकरण की संज्ञा दी है। इस दृष्टिसे अधिक बेहतर शीर्षक, कुछ इस प्रकार होता – 'महर्षि दयानन्दकी शिक्षा व भाषा नीति : एक अध्ययन' या समीक्षात्मक अध्ययन।

लेखकने जिस प्रश्नको उठाया है वह राष्ट्र-निर्माणकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वका है। लेखकके विचारों और सुझावोंसे सबकी सहमति हो यह न संभव है, न काम्य। आवश्यकता है इस विषयपर राष्ट्रीय बहस छेड़नेकी, और उन लोगोंको 'शिक्षित' करनेकी जो देशके भाग्य विधाता हैं, नीति नियोजक हैं। लेखकने पुस्तक लिखकर इस बहसका श्रीगणेश किया है। इसे आगे बढ़ानेका उत्तरदायित्व हर उस व्यक्तिका है जिसे देशकी कुछभी चिंता है। लेखक तो 'पाठकोंके साथ विचारविमर्श करने' (पृ. ११) को उत्सुक है। शिक्षामें रुचि रखनेवाले प्रत्येक जिज्ञासुको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। □

दैनंदिनी

क्या खोया क्या पाया ?

लेखक : स्व. श्री रामेश्वर टाँटिया; प्रकाशक : विश्व-विद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी। पृष्ठ : ६०८; डिमा. १९८१; मूल्य : अनिर्दिष्ट।

हिन्दी साहित्य-जगत्‌में श्री रामेश्वर टाँटियाका नाम अपरिचित नहीं है। विभिन्न विषयों और विधाओंमें लिखी उनकी लगभग एक दर्जन कृतियाँ पाठकोंमें चर्चित रही हैं। डायरी-लेखनभी एक प्रभावशाली साहित्यिक-विधा है, जिसका सर्जनात्मक-लेखक बराबर प्रयोग करते रहे हैं। समीक्ष्य-कृति स्पष्टत: एक डायरी है, जिसे लेखक ने साहित्यिक-विधाके रूपमें नहीं लिखा है। यह बात दूसरी है कि इससे, इस सतर्कताके बावजूद, इसके साहित्यिक मूल्यमें किसी तरहका अभाव नहीं हुआ है, बल्कि लेखककी मानसिकताको समझनेकी दिशामें इसका साहित्यिक मूल्य बढ़ा ही है। इस डायरीको छपानेका लेखकका कोई उद्देश्य नहीं था। उनके परिवारके कुछ सदस्योंको छोड़कर शायद कोई जानताभी नहीं था कि श्री टाँटिया नियमि[illegible]

रूपसे डायरी लिखा करते थे । उनकी मृत्युके बादही उनकी डायरियाँ खोजी गयीं और सन् १९४१ से लगाकर ९ मई १९७७ तक अर्थात् मृत्युसे दो माह पूर्वतक उनकी डायरियाँ मिली हैं । सन् १९३२ की डायरीभी मिली है, इससे प्रमाणित है कि सन् १९३३ से १९४० तक की अवधिमें भी डायरियाँ उन्होंने अवश्य लिखी होंगी, किन्तु वे मिल नहीं पायी हैं । लेखकका उद्देश्य इससे अवश्य प्रकट हो जाता है, इन डायरियोंको उन्होंने आत्म-प्रकाशन के लिए नहीं लिखा, लिखा है केवल आत्म-विश्लेषण और आत्मालोचनके लिए । उनके सुपुत्र श्री नन्दलाल टाँटिया तथा श्री रामेश्वर टाँटियाके अन्य मित्र जिनके परिश्रम और प्रेरणासे ये डायरियाँ इस रूपमें प्रकाशमें आयीं हैं, प्रशंसा और हिन्दी पाठकोके साधुवादके पात्र हैं ।

चूंकि इन डायरियोंका लेखन-काल सुदीर्घ ४५ वर्ष की अवधिमें फैला हुआ है, अतः स्वाभाविक रूपसे शैली में उत्तरोत्तर कसावट और मँजावट आयी है, सजावटका तो प्रश्नही नहीं उठता, वह एकदम निरलंकृत, निरायास व्यावहारिक,अथच लेखककी मातृभाषा राजस्थानीका यत्र-तत्र पुट लिये हुए हैं,जिससे उसका सादगीभरा तेवर प्रवाह-पूर्ण और प्रभावहपूर्ण बन गया है । ग्रन्थके प्रारम्भमें श्री टाँटियाके घनिष्ठ मित्र और देशके प्रतिष्ठित उद्योगपति श्री घनश्यामदास बिड़ला, लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध साहित्य-कार श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी एवं प्रतिष्ठित साहित्या-नुरागी भू. पू. संसत्सदस्य श्री गंगाशरण सिंहके उद्‌गार श्री टाँटियाके जीवन-चरित्र और व्यक्तित्वकी गरिमापर अच्छा प्रकाश डालते हैं ।

स्व. श्री टाँटिया एक बहुमुखी प्रतिभाके व्यक्ति थे । साहित्यके अतिरिक्त समाजसेवा, राजनीति और व्यवसाय के क्षेत्रमें उन्होंने विशिष्ट ख्याति और सफलता अर्जित की थी । उनकी कर्मठताका प्रमाण है कि १५ वर्षकी अल्पायुमें एक साधारण हैसियतसे काम प्रारम्भ करने वाला किशोर बत्तीस वर्षकी अवधिमें ही बीस हजार रुपये मासिक आयका अधिकारी बन जाये और इन बीस हजार रुपयोंका आजसे पच्चीस वर्ष पूर्व क्या मूल्य था, यह शायद कहनेकी आवश्यकता नहीं है । साम्पत्तिक-समृद्धिकी इस चकाचौंधमें उनकी मानसिक स्थिति कैसी थी यह २१ दिसम्बर १९४७ की डायरीकी प्रविष्टिसे प्रकट होगा, 'मुझे कुछ व्यापारी लोग जानते होंगे परन्तु विद्वान्‌को तो गांव-गांवके बच्चेभी जानते हैं, इज्जत करते हैं ।—मेरे मनमें आता है, मैं भी कुछ लिखूं, कौन मुझे याद रखेगा ? —डायरीके आजवाले पन्नेपर लिखा है 'विदुष पुजै सर्वत्र' बात सही है ! —मुझे थोड़ा समय लिखने-पढ़नेमें देना चाहिये ।'

१० मार्च १९५७ को लोक-सभाके सदस्य चुने जानेकी घोषणाके उपरान्त ११ मार्चको वे लिखते हैं, रातमें नींद नहीं आयी । सुबह एक अवसाद-सा था, मालूम नहीं क्यों ?' १० मार्चकी प्रविष्टिभी केवल यह बताती है, जी. डी. बिड़लासे मिला । बातचीत हुई । मेरी जीत बतला रहे हैं ।' कहींपर भी जीतकी छलकती हुई खुशी या बाद की तिथियोंमें किसी उफनते या झलकते हुए अवसरोचित और साधनोचित समारोहका उल्लेख नहीं है । विजयकी खुशी उन्हें अवश्य हुई होगी, समारोहभी शायद मनाया ही गया हो, किन्तु वह सब अवश्य औपचारिकही रहा होगा, अन्तर्तममें यदि कुछ स्पृहा होती तो वह डायरीमें अवश्य आभासित होती ।

इस सभ्य-जगत्‌के विविध सम्पर्कों और सन्दर्भोंमें व्यक्तिको कई प्रकारकी भूमिकाएं निभानी पड़ती है। अपने परिवारकी सीमामें ही वह किसीका पुत्र-पुत्री, किसीका पिता-माता, किसीका भाई-बहन, किसीका पति-पत्नी होता है, और इन सन्दर्भोंमें उसे इच्छा या अनिच्छा अपने व्यवहार और आचरणके तौर-तरीके बदलनेही पड़ते हैं । समाजके विस्तृत-क्षेत्रमें इन भूमिकाओंका वैवि-ध्य औरभी बढ़ जाता है, और कई बार तो ये भूमिकाएं परस्पर विरोधीभी हो उठती हैं, यहाँतक कि व्यक्तिको अपने मूल-स्वभावका ही मूल्य चुकाना पड़ जा सकता है। यदि इन अवस्थाओंमें व्यक्ति अपने अन्तरके प्रति सजग सतर्क न रहे तो इन आरोपित भूमिकाओंके मिथ्या-भ्रममें अपने-आपसे ही अपरिचित अथच बेगाना हो जाता है। आधुनिक-सभ्यताका तो मूल-मन्त्रही है कि अपने आपको छिपाओं; जितने मुखौटे अपने ऊपर लाद सकोगे उतनेही तुम सभ्य गिने जाओगे और सफलभी हो सकोगे । किन्तु जहां यह कृत्रिम और सचिन्त्य बाह्य-प्रदर्शन और सज्जा, व्यक्तिको बाहरी समाजमें प्रतिष्ठा और प्रेयता दे सकती है, वहीं उसे अपने अन्तस्‌की स्वाभाविक ऋजुता और श्रेयतासे वंचितभी कर सकती है । इस भगदड़-भरे माहौल में व्यक्ति बाहरही रहनेके लिए इतना विवश है कि उसे अपने अन्तस्‌के प्रति सजगताका अवकाशभी नहीं मिलता। बाहरके मिथ्या-प्रदर्शनोंमें उतरकर वह न केवल अपने मनका स्वास्थ्य, शान्ति और आत्मतोषही, बल्कि तनका

स्वास्थ्य और सुहृदोंके विश्वास तथा हार्दिकताको भी खो देता है। यदि व्यक्तिमें प्रतिभा हुई तो इन बाह्य-प्रभावों के अत्याग्रहसे वह अपने अन्तस्‌का सन्तुलन खोकर विक्षिप्त (मैनिएक) भी हो जा सकता है। इतिहासमें ऐसे उदाहरणोंका अभाव नहीं है। दैनिक व्यवहारके इन विविध और विरोधी प्रसंगोंमें श्री टाँटियाकी ये डायरियां ही शायद उनकी पहरेदारी करती रहीं, और उनके आंतरिक सन्तुलनके साथही उनके स्वभावका निर्मालय, शुचिता और अनासक्तिको बनाये रख सकी हैं। उनके जीवनकी हर क्षेत्रमें सफलताका भी यही रहस्य है।

प्रत्येक व्यक्तिके अन्तरमें उसका निजका एक प्रतिरूप होता है जो उसके वातावरणमें सदैव जूझता रहता है। यदि व्यक्ति अपने अन्तस्‌की आवाज़को अनसुनी न करे तो वह इस प्रतिरूपको पहचाने बिना नहीं रहता। अपने इस प्रतिरूपके अनुकूल रहकर ही वह अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि और गरिमा प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकारसे अपने व्यक्तिनिष्ठ-चरित्रका सृजन मनुष्यका कर्तव्य है। अपने प्रतिरूपको पहचाननेके लिए श्री टाँटिया बड़ीही निर्ममतासे अपने व्यवहार और आचरणको परखते हैं, अपनी दुर्बलताओंको स्पष्ट करते हैं और उनपर सफल न होकरभी, प्रहार करनेसे विरत नहीं होते। २३ अगस्त १९४३ को वे लिखते हैं 'अच्छे लोगोंको सब याद करते हैं। मेरे मनमें विचार आता है कि मैं भी कुछ बनूं, कुछ करूं। मगर कुछ होता नहीं। मनमें रुपया कमानेकी धुन रहती है। सब भूल जाता हूं।' कहीं वे लिखते हैं, 'मेरा कोईभी काम नियमित नहीं रहता, यह बहुत बड़ी कमजोरी है।' (पृ. ४३)। अपने शौक और आदतोंके बारेमें भी वे अत्यन्त सजग हैं। लिखते हैं, सिनेमा बेसी देखना अच्छा नहीं रहता। दिमागपर असर पड़ता है। अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ना इससे कहीं अच्छा। रुपया और पैसा बरबाद नहीं होता। कुछ सीखनेको ही मिलता रहता है।' या 'आज दिनमें बहुत झूठ-सच हंसीमें बोला। यह आदत बहुत बुरी है। हंसीमें भी झूठ क्यों बोलूं? परन्तु उस समय मुझे नशा-सा आ जाता है। पुरानी बीमारी है, प्रेतके माफिक चढ़ जाती है' (पृ. ४३) फाटके या सट्टेके प्रति उनके मनमें बड़ी आसक्ति थी। इसके लिए अपने आपको उन्होंने कभी माफ नहीं किया। डायरियोंमें इसके लिए उन्होंने अपनी बराबर भर्त्सना की है। 'नहीं मालूम, फाटका क्यों करता हूं। मुझे क्या फायदा? पर मनुष्यके कुछ-न-कुछ ऐब होनाही पड़ता है। परन्तु इसेभी मनके जोरसे दूर किया जा सकता है। मैं इस मामलेमें बहुत कमजोर हूं। न जाने क्या भूत-सा सवार हो जाता है!' या जून १९४५, ३० तारीख तक एकदम सौदा नहीं करूंगा। यह प्रतिज्ञा ली, किन्तु प्रतिज्ञा नहीं निभी। लिखते हैं, 'जानता हूं, बराबर प्रतिज्ञा करता हूं फिरभी लालचके वश मूर्ख बनता हूं। नुक्सान होता है पर मन नहीं मानता।' (पृ. ४६-४८)

अन्य कई प्रकारके शौकोंमें श्री टांटियाका पुस्तक-प्रेम शायद जन्म-जातही रहा है और शायद इसीलिए बहुत अधिक औपचारिक शिक्षा-दीक्षा न होनेपर भी वे कृतिविद्य लेखक, कुशाग्र-बुद्धि, बहुज्ञ और राजनीतिके क्षेत्रमें एक सफल नेताभी बन गये। उनके जीवनकी सफलता और सार्थकताका यह एक अवश्यही बहुत बड़ा कारण था। जीवनकी सार्थकताके प्रति वे कितने सतर्क थे यह तारीख ६ मई १९७७ की डायरीकी उनकी अंतिम प्रविष्टिसे स्पष्ट होता है। वे लिखते हैं, 'डायलेसिसपर १० से ४ बजेतक। शरीरपर जो बीतता है वह अलग, मनमें काफी तकलीफ होती है। उम्रभर का रोग लग गया। इस जीवनसे छुटकारा मिल जाये तो अच्छा। मनुष्य आखिर काम करनेके लिए जिन्दा रहता है। जब कामही नहीं कर सकता तो उसकी क्या जरूरत? घरवालोंपर १०,००० रुपया महीना खर्च डालनेसे क्या फायदा?' —मेरेपर तो भगवानकी कृपा है, परन्तु दूसरे गरीब तो मर जाते है।' 'क्या खोया क्या पाया?' श्री टांटियाके हृदयका एक ऐसा निर्मल दर्पण है, जिसमें पाठक अनायास अपने किये हुए जाने-अनजाने कर्मोंकी झलक पा सकता है।

श्री टांटियाका जीवन बहुमुखी था। अन्य प्रवासी मारवाड़ियोंकी तरह एक सामान्य व्यवसायीके रूपमें प्रारम्भ होकर वे न केवल एक प्रसिद्ध उद्योगपतिके रूप में परिणत हुए, बल्कि वे समाजसेवामें अग्रणी रहे, और इस तरह देशके शीर्षस्थ राजनीतिज्ञोंके सम्पर्कमें आकर राजनीतिके क्षेत्रमें भी लोकसभाके दस वर्षतक सदस्य रहे। राजनीतिसे पृथक् होकर उन्होंने कानपुरके प्रसिद्ध उद्योग-समूह ब्रिटिश इंडिया कार्पोरेशनकी अध्यक्षता और प्रबन्ध-निर्देशनका दायित्वभी बड़ी कुशलतासे सम्हाला। वे कानपुर नगरके मेयर भी निर्वाचित हुए। किन्तु इन शीर्ष पदोंपर बने रहकर भी उन्होंने अपने हृदयकी निश्छलता, सरलता और सबके प्रति सवेदना बनाये रखी। अपनी प्रस्तावनामें श्री गंगाशरण सिंह

कहते हैं, 'कहा जा सकता है कि उनका जीवन सफल रहा। देखनेसे लगता है कि उन्होंने जो चाहा, वह पाया। किन्तु डायरियांही बता सकती हैं, रामेश्वरजीने क्या चाहा, क्या चाहते रहे! इन्हींमें उनका वास्तविक स्वरूप और व्यक्तित्व उभरा है। सब कुछ पाकरभी उस व्यक्तिका अन्तर्मन बराबर यही कहता है कि वह खोता जा रहा है। निजी भौतिक समृद्धि उसका लक्ष्य नहीं था वह सबको सुखी देखना चाहता था। समृद्धिके बीच वह दीन-सा रहता था ताकि उसे लोग अपनेमें से एक समझें, निकट अनुभव करें और बीचमें कोई अन्तराल न रहे।' आगे वे कहते हैं, 'टाँटियाजी न महामानव थे, न योगी या संन्यासी। हाँ, योग और भोग के तत्त्वको उन्होंने समझा। ये उपलब्धियां कम नहीं। इनकी क्या प्रतिक्रियाएं होती रहीं, डायरियाँ बताती हैं।' श्री गंगाशरण सिंहका यह विश्लेषण उनकी गहरी अन्तर्दृष्टि सहृदयता तथा श्री टांटियाँके प्रति गहरे प्रेमके परिचायक हैं।

अपनी जैविक और रासायनिक सीमाओंमें मनुष्य अन्य प्राणियोंकी तरहही नियतिवादी होता है। आनुवंशिक सीमाएं ही नहीं, सामाजिक सीमाएंभी मानव-जीवन को एक ढर्रेका जीवन बना देती हैं। भारतवर्षमें तो एक सामान्य व्यक्तिके जीवनके लिए पूर्व-योजनाबद्ध जीवन का प्रायः प्रश्नही नहीं उठता किन्तु सच्चे मानवकी कसौटी ही यह है कि वह इन नियतिवादी सीमाओंका अतिक्रमण करे और इस जैविक-सामाजिक व्यक्तित्वको निपट उदासीनताके साथ स्वीकार करनेके बजाय, स्वतन्त्र-चेतनासे अपने विशिष्ट प्रतिरूपात्मक-व्यक्तित्वका चुनाव और निर्माण करे। आत्म-निर्माणके लिए स्वेच्छासे निर्णय लेनाही सच्चा पुरुषार्थ हैं। कर्मकी यह स्वतन्त्रता मनुष्य की चरम और परम उपलब्धि है। श्री टाँटियाकी इन डायरियोंसे स्पष्ट हो जाता है कि वे प्रत्येक क्षण अपने अन्तस्के उस प्रतिरूपके लिए सजग रहकर, विमर्शमें भी उचित निर्णय लेते रहे, जिससे कि उनका कर्मण्य-जीवन सार्थक रहा। आशा है, सहृदय पाठकों में यह ग्रन्थ न केवल लोकप्रिय किन्तु प्रेरणादायक भी होगा।

□ सन्हैयालाल ओझा

पुदिय उरै नडै

[तमिलकी नवीन गद्य-शैलीका अध्ययन]

लेखक : डॉ. मा. रामलिंगम्

समीक्षक : एम. शेषन्

प्रस्तुत पुस्तक साहित्य अकादमी द्वारा इस वर्ष पुरस्कृत तमिल ग्रन्थ है। आलोच्य पुस्तकमें लेखकने तमिल भाषाकी आधुनिक गद्य-शैलीका विवेचन किया है। तमिल भाषा एवं उसका साहित्य प्राचीन है। उसका साहित्य, संस्कृत के समानही समृद्ध एवं विपुल है। इसका काव्य-साहित्य उन्नत गंभीर है। इसकी तुलनामें इसका गद्य-साहित्य न तो विपुल कहा जा सकता है, और न समृद्ध। अर्वाचीन गद्य साहित्य जो कि अब निर्माणावस्थामें है, विकासशील है। काव्योचित गुण, स्तर एवं समृद्धिकी दृष्टिसे बहुत उन्नत न होते हुए भी अपना विशेष महत्त्व रखता है, गौरवमयभी है। भारतीय भाषाओंमें काव्यको जो शास्त्रीय गौरव प्राप्त है, वह गद्य-साहित्यको अबतक उपलब्ध नहीं है। संभवतः इसका कारण काव्यकी भांति गद्यके लिए प्राचीन परम्पराका न होना है।

पुस्तक दो खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम खण्डमें गद्य शैलीका रूपाकार, शब्द, वाक्य, अनुच्छेद, सामान्य एवं विशिष्ट शैली, सरलता, आलंकारिकता आदि विषयोंपर सैद्धान्तिक रूपसे परन्तु संक्षेपमें विचार हुआ है। द्वितीय खण्डमें गद्यमें प्रयुक्त विभिन्न शैलियोंपर वर्णनात्मक, विवरणात्मक, नाटकीय, व्याख्यात्मक आदि भेदोंको समझाते हुए आधुनिक तमिल गद्य लेखकोंकी रचनाओंसे उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

'शब्द' नामक परिच्छेदमें शब्दोंके विभिन्न प्रयोग, जैसे, बोलचालके शब्द, साहित्य-स्तरीय शब्द, स्थानीय शब्द-प्रयोग, ग्रामीण शब्द, विदेशी शब्द, तकनीकी शब्दों आदिके प्रयोगोंकी ओर इंगित [illegible] में भाषामें प्रयुक्त नयी शब्दावलियोंके प्रयोगोंकी आवश्यकतापर बल दिया है। लेखकके मतानुसार गद्य-लेखक को शब्द-शक्ति और उसके महत्त्वको समझकर उनके आधारपर नये शब्दोंको ग्रहण करना उत्तम होगा।

'वाक्य' नामक प्रकरणमें यह कहा गया है कि गद्य-लेखककी मनोदशा तथा व्यक्तित्वकी विशेषताके अनुरूप उनकी रचनाके कई भेद माने जा सकते हैं। अनुच्छेदमें लेखक अपने विचारोंको खण्ड-खण्ड करके समझाता है और विचारोंकी क्रमबद्ध अभिव्यक्तिमें अनुच्छेदोंका अपना विशिष्ट स्थान है। नवीन गद्यलेखकोंके ग्रंथोंसे पर्याप्त उदाहरण देकर इसे स्पष्ट करनेका लेखकने प्रयास किया है।

गद्य शैलीमें ध्वनि या स्वर-मधुरताका अपना स्थान है। साधारण और विशिष्ट गद्य-रचनामें भेद करनेके लिए शब्दोंकी स्वर मधुरतापर बल दिया है। लेखकका यह कथन कि 'संगीतमें, चित्रकलामें, गीतमें स्वरका जो महत्त्व है, वही गद्य-शैलीमें भी माना जाना चाहिये', काफी प्रभावशाली और संगतभी लगता है। यहीं, लेखक ने भाषण शैली और लेखन-शैलीके मोटे भेदोंपर भी संक्षेपमें विचार किया है। परन्तु इतना सूक्ष्म विश्लेषण क्या गद्य शैलीके लिए आवश्यकभी है या नहीं, यह विचारणीय है।

वैयक्तिक शैली तथा सामान्य शैलीका भेद स्पष्ट किया गया है। सामान्य शैली अभ्यासगत है जबकि वैयक्तिक शैली लेखकके आन्तरिक भावों, विचारोंके अनुरूप प्रकट होती है। लेखकके व्यक्तित्व एवं विचारोंकी [illegible] शैलीभी बनती जायेगी।

आत्मगुणकी अभिव्यक्तिही इसकी प्रमुख विशेषता है। अभिप्रेत विषयकी गंभीरता, सुन्दरताके अनुकूल शैलीमें आलंकारिकता, सुन्दरता एवं नयी चमक आ जाती है। शैलीकी उत्तमताका परिचय इस बातसे मिलता है कि वह विषयके साथ संलग्न होकर चले। लेखकका यह कथन कि 'तमिल गद्य-शैली अपनी आलंकारिकता, बाह्य चमक-दमक तथा आडम्बरको त्यागकर सरलताकी ओर अग्रसर हो रही है' ध्यातव्य है। काव्यमें प्रयुक्त उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, श्लेष, वक्रोक्ति आदि विभिन्न अलंकारोंका प्रयोग आधुनिक तमिल गद्य शैलीके प्रयोगों में भी पाया जाता है।

पुस्तकके दूसरे खण्डमें वर्णनात्मक, विवरणात्म, व्याख्यात्मक या विश्लेषणात्मक गद्य शैलियोंके विभिन्न प्रयोगों के लिए कई आधुनिक तमिल गद्य-लेखकोंकी रचनाओंसे कतिपय उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है। कुल मिलाकर इस विषयकी यह पहली तमिल रचना है और परिचयात्मक होनेपर भी लेखकका प्रयास स्तुत्य है। तमिल में इस विषयपर भी गम्भीर शोध करनेके लिए यह ग्रंथ प्रेरक साबित होगा ऐसा विश्वास है। ग्रन्थ लेखकने अंग्रेजी गद्य शैलीकी रचनाओंसे पर्याप्त सहायता ली है, यह ग्रन्थके विषय-प्रतिपादनसे स्पष्ट है। तमिल आलोचकों एवं विद्वानोंमें इसका स्वागत होगा, इसमें सन्देह नहीं। □

आदान प्रदान

दुःख भरा राग

[अनूदित कन्नड़ उपन्यास]

उपन्यासकार : श्रीकृष्ण आलनहल्ली; अनुवादक : भालचन्द्र जयशेट्टी; प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १८०; क्रा. ८०; मूल्य : २२.०० रु.।

हिन्दीके अतिरिक्त दूसरी भारतीय भाषाओंमें लेखन की जो परम्परा चल रही है, उससे परिचित हुए बिना 'भारतीय साहित्य' की कल्पना नहीं की जा सकती। अनुवादोंके माध्यमसे ही विभिन्न भाषाओंके लेखनसे परिचित हुआ जा सकता है। 'दुखभरा राग' उपन्यास मैसूरके निकट आलनहल्ली गाँवमें उत्पन्न, अनेक विधाओं (कविता, कहानी, उपन्यास, समीक्षा) के लेखक श्रीकृष्ण आलनहल्लीकी रचना 'परसंगदा गेंडेतिम्म' का हिन्दी अनुवाद है। यह उपन्यास छब्बीस परिच्छेदोंमें विभक्त है। गेंडेतिम्म इसका नायक है। सालुंडी, उलिमाऊ और गोव्वल्ली नामके तीन गांव इस उपन्यासके मुख्य घटना-केन्द्र हैं। लेखकने इन गांवोंके माध्यमसे ग्रामीण परिवेशका यथार्थ चित्रण विश्वसनीय ढंगसे किया है। रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, मनौतियों, टोटकों, तीज-त्यौहारों और प्रथाओंकी दृष्टिसे थोड़ी-बहुत विभिन्नता भले ही हो, अपनी मानसिकतामें भारतके गांव एकसे ही हैं। अकृत्रिम शिल्पके साथ ग्रामीण मानसिकताका स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण इस उपन्यासकी विशेषता है।

लेकिन केवल यही नहीं। गेंडेतिम्म और मरंकीके रूपमें लेखकने मार्मिक चरित्र-सृष्टि की है। गेंडेतिम्म एक साधारण खोमचेवाला है जो रोजमर्राकी छोटी-मोटी वस्तुएं गांव-गांव बेचकर अपनी आजीविका कमाता है। विवाहके बाद मरंकीके रूपमें पत्नीका आगमन उसके जीवनकी दिशा बदल देता है। घर बंटता है और मरंकी की व्यावहारिक बुद्धि गेंडेतिम्मके 'व्यापार' को कई गुना कर देती है। गोव्वल्ली गांवकी बहुएं स्नो, पाउडर, तेल, साबुन मंगाकर अपने जीवनको सफल बनाती है। लेकिन यह धंधाही गेंडेतिम्मके अपमानका कारण बन जाता है। गांवकी पंचायत उसे पारिवारिक कलहोंका कारण

मानकर दंडित करती है। अपमानित गंडेतिम्म खिन्न होकर अपने गांव सालुंडी लौट पड़ता है। अपने घरसे पटेल शिवण्णाको मुंह छिपाकर निकलते देख गेंडेतिम्मकी ग्लानि उसे आत्म-हत्याके लिए प्रेरित करती है। मरंकी को गेंडेतिम्मकी मृत्युसे असहनीय आघात लगता है और पश्चात्ताप आत्महत्याके लिए उसे विवश करता है। नायक-नायिकाकी दुखद जीवन-कथा मार्मिक प्रभाव छोड़कर समाप्त होती है।

मरंकी नये-नये प्रलोभनों और इच्छाओंके आगे विवश है। उसे अपनी सूझ-बूझका अहंकार है। झूठी सामाजिक प्रतिष्ठाके लिए नैतिक मूल्योंकी अवहेलना करनेमें उसे झिझक नहीं होती। अपने मामाके बेटे महादेव नायकसे शारीरिक सम्बन्धके सुख-भोगके पीछे तो उसकी काम-लिप्साही है लेकिन पटेल शिवण्णाको शरीर सौंपनेमें यह सन्तुष्टिभी है कि वह ऊंची जाति और खानदानवाले 'बड़े आदमी' के सम्पर्कमें आ रही है।

वर्णन-शैलीमें उत्तेजक प्रसंगोंको प्रस्तुत करनेका मोह लेखकको अवश्य है लेकिन वह वर्णन वैसा नहीं है जैसा इधर हिन्दीके कई उपन्यासोंमें हुआ है। गेंडेतिम्म के विवाहके बाद समधियोंके भोजके अवसरपर ताड़ी मांसकी दावत खाकर नशेमें अस्तव्यस्त हो नग्नदेह सोती हुई मरंकीकी मांका दर्शन करके गेंडेतिम्मकी मनःस्थिति का चित्रण लेखकने मनोवैज्ञानिक आधारपर किया है। महादेव नायकके साथ सहवास (पृष्ठ ४६) और शिवण्णा के साथ विलास-प्रसंग (पृष्ठ ११३) का वर्णन सामान्य है। हां, एक-दो अवसरोंपर अभद्र और अश्लील गालियों का प्रयोग करके लेखकने स्वाभाविकताकी रक्षा भलेही की हो, शालीनताका उल्लंघन किया है। स्वाभाविक तो औरभी बहुत कुछ होता है। क्या सभी कुछ साहित्यमें आ जाना चाहिये—ज्योंका त्यों? पृष्ठ ५१ पर 'शिवण्णा' की जगह दो बार 'शिपण्ण।' का मुद्रण छापेकी गलती है।

भाषाओंके बीच आदान-प्रदानको महत्त्वपूर्ण समझते हुए श्रीकृष्ण आलनहल्लीका यह उपन्यास पठनीय है। एक बात अवश्य है कि पुस्तकोंका और विशेष रूपसे भाषाई संपर्क स्थापित करनेकी दृष्टिसे प्रकाशित पुस्तकों का—मूल्य इतना अधिक नहीं होना चाहिये कि पाठक खरीदकर न पढ़ सकें और सदैव लाइब्रेरियोंकी ओरही देखते रहें।

□ डॉ. सुरेश [illegible]

दो नम्बर

[अनूदित बंगला उपन्यास]

उपन्यासकार : बुद्धदेव गुह; प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, जीरो रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ : १४७; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।

बंगला उपन्यासकार बुद्धदेव गुहने समीक्ष्य उपन्यासमें समकालीन जीवनके एक लोकप्रिय विशेषणके इर्द-गिर्द कथा जाल बुना है। आज जीवनमें प्रत्येक चीज 'दो नम्बर' की होने लगी है। 'एक नम्बर होता है सच्चा, चमकीला और सबको नजर आनेवाला, इसीलिए वह शायद प्रकट करने योग्य होता है और दो नम्बरका मतलबही होता है छिपा हुआ। प्रेम, रुपया, सब कुछ। इसीलिए वह छिपाने लायक होता है।' (पृ. १०४-१०५)। इस विशेषणको प्रस्तुत उपन्यासमें भी अनेक अर्थोंमें प्रयुक्त किया है। दो नम्बरका पैसा, दो नम्बरके खाते, दो नम्बरके मशीनी पुर्जे, दो नम्बरके शीतल पेय, दो नम्बर की दवाइयां-इन्जेक्शन, दो नम्बरका अफसर, वकील, प्रेमी, दो नम्बरका प्रेम—बड़ी लम्बी सूची है।

गांधी विवेकानन्दको अपना आदर्श माननेवाले नगेन बाबू अपने एक नम्बरी बोध और मान्यताओंको लेकर दो नम्बरियोंकी भीड़से जूझ रहे हैं, टूट रहे हैं। उनकी पीड़ा है—'यह देश अब मनुष्यका देश नहीं रहा। देश स्वतन्त्र होनेके बाद इतने बांध बने, इतने रास्ते बने, एटम बम बनाये गये, लेकिन मनुष्य अमानुष हो गया। (पृ. ५१-५२)। एक योग्य वकील नगेन बाबूकी टूटन देख शिवेन बाबूके मनमें प्रश्न उठता है—'क्या हर सफल आदमीका इतिहासही विश्वासघातका इतिहास है?' (पृ. ४३)। नगेन बाबूकी असफलता उनके बेटे सानूपर भी अपना दुष्प्रभाव डालती है। उसकी मानसिकताभी विकृत हो जाती है।

उपन्यासमें अनेक प्रसंगोंके माध्यमसे ईमानदार आदमीके त्रास और उसकी टूटनको चित्रित किया गया है! पूरा उपन्यास समकालीन भ्रष्ट समाजकी एक भयावह तस्वीर हमारे सामने उभारता है! यह समाज यों हमें डरावना नहीं लगता क्योंकि हम धीरे-धीरे इसके अभ्यस्त हो चले हैं पर एक ईमानदार आदमीकी निगाहों से देखनेपर यह अपनी पूरी विरूपताके साथ जब हमारे सामने आ खड़ा होता है तो हम कांप जाते हैं।

उपन्यासका अन्त प्रतीकात्मक है—'बस स्टेण्डकी

ओर देखा, तो हठात् शिवेन बाबूको लगा कि बस स्टेण्ड पर सभी आदमी जैसे दो नम्बर बसकी प्रतीक्षामें खड़े हों।' (पृ. १४७)। या यह हमारे समयपर एक अत्यन्त तल्ख टिप्पणी नहीं है कि हममें से हरेक दो नम्बरकी प्रतीक्षामें हैं। आज हम ईमानदार इसलिए नहीं हैं कि हम ईमानदार होना चाहते हैं, बल्कि इसलिए हैं कि हम बेईमान नहीं हो पाये हैं। मौका मिलतेही हो जाना चाहते हैं।

उपन्यासके अनुवादकका नाम प्रकाशकने देना आवश्यक नहीं समझा है पर मैं उनके श्रमकी सराहना करना चाहूंगा! वैसे यहभी दो नम्बरी व्यवस्थाकी ही देन है कि श्रम करनेवालेको उनके श्रेयतक से वंचितकर दिया जाये।

□ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

(क) रंग भारत (ख) स्वर्गके तीन द्वार (ग) शोक-चक्र

[अनूदित कन्नड़ नाटक]

नाटककार : आद्य रंगाचार्य; अनुवादक : बी. आर. नारायण; प्रकाशक : शब्दकार, २२०३, गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ क्रमशः ७०; ६०; ८६; क्रा. ८१; मूल्य : प्रत्येक १०.०० रु.।

आजका साहित्यकार नवजागरणकी चेतना और समसामयिक समस्याओंसे जूझ रहा है। उसके बीचमें आयी हुई बाधाओंके प्रति वह क्षोभ, आक्रोश, कुण्ठा, क्रोध व्यक्त करता है। कृतिकारकी कृतिका आधार सामाजिक हो या पौराणिक, ऐतिहासिक हो या काल्पनिक—सबमें प्रासंगिकताकी खोजकी अकुलाहट दीख पड़ती है। आजका नाटककारभी इसीके मध्य साँस ले रहा है, जी रहा है और उसेही अपने नाटकोंमें उकेरनेका प्रयास कर रहा है। इस दृष्टिसे आद्य रंगाचार्यके विवेच्य तीनों नाटक, जो कन्नड़से हिन्दीमें श्री बी. आर. नारायण द्वारा अनूदित किये गये हैं, देखे जायेंगे। इन तीनों नाटकोंकी कथा पौराणिक, काल्पनिक एवं ऐतिहासिक हैं। 'रंग भारत' महाभारतके कुछ अंशोंको लेकर, 'स्वर्ग के तीन द्वार' काल्पनिकताको लेकर और 'शोक-चक्र' १५ अगस्त १९४७ से ३० जनवरी ४८ तकके कुछ अंशों को लेकर प्रासंगिताके साथ उसका सफल सामंजस्य स्थापित किया गया है।

'रंग भारत' के भूमिका भागमें स्वीकार किया गया है 'महाभारतकी कथा तो केवल पृष्ठभूमि है। नाटकका विषय, विवेचन और वातावरण सभी कुछ आधुनिक है।' सच तो यह है कि पौराणिक नाटककारका दुहरा उत्तरदायित्व होता है। एक ओर वह पुराण-कथाको ग्रहण करता है और दूसरी ओर वह उस कथाके ऊपर आधुनिक रंगका मुलम्मा चढ़ाकर विश्वसनीय बनाता है। समीक्ष्य कृतिकी कथा ऐसीही है। नाटककारने भूमिका भागमें स्वीकारा है। 'आजकी परिस्थितियोंमें जीवनका मूल्यांकन करनेका यत्नभर है।'

प्रस्तुत नाटक धृतराष्ट्र और संजयके वार्तालापसे आरम्भ होता है। धृतराष्ट्र संजयसे कहानी कहनेका आग्रह करता है। संजय कहानी न कहकर नाटक दिखलाने लगता है। यह मनोवृत्ति कहानीसे नाटकको अधिक उपादेय साबित करती है। संजय इसके लिए महाभारतके कुछ अंशोंको लेता है, वे हैं—श्रीकृष्णके शयन-कालमें युद्धमें उनकी सहायताकी इच्छासे अर्जुन+दुर्योधनका आकर क्रमशः पाँव और सिरके समीप बैठना, जुएमें युधिष्ठिर द्वारा पत्नी सहित सबकुछ हार जाना, द्रौपदी को सभा मध्य लाना, दुर्योधनको अर्जुन द्वारा गंधर्वसे मुक्त कराना, संधि प्रस्ताव, युद्धकी सूचना इसकी संघटना सुगठित है।

इसके धृतराष्ट्रही नहीं, बल्कि सभी पात्र आजकी भोगी हुई अनुभूतियोंके प्रतीक है। महाभारतकालीन धृतराष्ट्र अंधे राजाके प्रतीक हैं और आज अंधी प्रजाके। जिस प्रकार अंधा राजा दुशासनको जन्म देता है, उसी प्रकार अंधी प्रजाभी दुशासनको जन्म देती है। महाभारतकालीन दुशासन मरा नहीं, बल्कि वह आजभी बहुशरीरी होकर जिन्दा है। अंधी प्रजा अंधी राजनीति, अंधे समाज, और अंधी परम्पराको जन्म देती है तथा अन्याय-अत्याचारको शह देती है। महाभारतकालीन दुर्योधन मरा नहीं, वह आजभी जीवित है। दुर्योधनके कुविचारको महाभारतकालीन अर्जुन-भीमका विद्रोह न विचलित कर पाता है, न युधिष्ठिरका सत्यपथ और न द्रौपदीका करुण-क्रन्दनही। दुर्योधनकी आज्ञापर दुशासन आजभी भरी सभामें निरपराधिनी कुल-ललनाको निरवस्त्र करनेमें दत्तचित्त है। भीष्म-विदुरकी आवाज अवरुद्ध हो गयी है। उनके कंठसे वाणी नहीं निकल पाती। कर्ण दुशासनको शह देनेवाला चापलूस है। श्रीकृष्ण समझौतेके लिए तत्पर हैं अवश्य,

पर वेभी विफल हैं। इस विसंगतिके मूलमें है—जनताका अन्धत्व। इस प्रकार समीक्ष्य कृति जनमानसीय साक्षात्कार है।

संवाद, शिल्प, वातावरणकी दृष्टिसे भी यह श्रेष्ठ कृति है। यद्यपि इसे एकही अंकमें एकही मंचपर प्रकाश-विधानके सहारे मंचित करानेका निर्देश है तथापि इसे दृश्य परिवर्तनके साथभी मंचित किया जा सकता है। यों, 'मूविंग स्टेज' इसके लिए सर्वथा अनुकूल होगा।

अनुवादकी भाषा साफ-सुथरी एव मौलिक रचनाके अनुकूल है।

(ख) स्वर्गके तीन द्वार

विवेच्य नाटक धार्मिक, शासकीय एवं राजनीतिक विसंगतियोंको उजागर करनेवाला तीन द्वार है, जिसमें धार्मिक व्यवस्था, शासकीय व्यवस्था एवं राजनीतिक व्यवस्थापर तीखा व्यंग्य सर्वत्र विद्यमान है। इसमें तीन काल्पनिक, किन्तु सामाजिक विश्वसनीयताके साथ कथाएं रखी गयीं, जो समाजके तीन बिम्ब प्रस्तुत करते हैं—यही उसकी समग्रता, सम्पूर्णता है।

पहला द्वार पाखण्डी, लोभी, स्वार्थी, स्त्रीलोलुप अर्चकके माध्यमसे धार्मिक विकृतियोंको, दूसरा द्वार क्रूर, शोषक राजाकी दुर्व्यवस्थाको और तीसरा द्वार राजनीतिक नेताकी विसंगतियोंको चित्रित करनेवाले हैं।

गांवकी जनता भोली-भाली एवं धर्मके प्रति अन्ध-विश्वासी होती है। उसे धर्मके ठेकेदार अर्चक अनेक प्रकारसे शोषित करते हैं। अनावृष्टिसे संत्रस्त जनता उपाय-हेतु महामाया-मंदिरके अर्चकके पास जाती है। अर्चक अनेकविधसे उस भोली-भाली जनता के अन्दर यह विश्वास पैदा करनेमें सफल हो जाता है कि महामाया जबतक अक्षत कुमारीकी बलि नहीं लेगी, तबतक वह तुष्ट नहीं हो सकती है और न वर्षा हो सकती है। बूढ़ा अपनी पोतीको अर्चकके पास भेज देता है। वह लड़की जाती है अवश्य, पर माता-पिता-प्रदत्त छुरेको 'मान रक्षा के लिए' (३५) अपने पल्लेमें छुपाकर। अन्तमें पाखण्डी अर्चककी हत्याकर वह युवती अपनी 'मान-रक्षा' करती है।

दूसरा द्वार शोषक, क्रूर, स्वार्थी शासक-वर्गके बिम्ब को उपस्थित करता है। राजाके या शासक वर्गके चापलूस पहले भी थे और आजभी है। वे शासककी हर बातका समर्थन करते हैं। उससे सभी सहमे रहते हैं, क्योंकि 'आजके जमानेमें नौकरीका बने रहना मुश्किल है।' (पृ. ४१) इसीलिए युद्धमें गये राजाके प्रति सब सहानुभूति रखते हैं। ऐसे लोगोंकी मान्यता है 'हमारा राजा बचकर आ जाये। हमारा खाना-पहनना, जिन्दा रहना सब उसीकी कृपासे हैं।' (४१)।

जब जनतामें असन्तोष, संत्रास, क्षोभकी चरमसीमा आ जाती है तब वह उग्रवादी हो जाती है, वह विद्रोह कर देती है। प्रस्तुत कृतिमें ऐसी स्थितिका प्रतिनिधित्व स्त्री और उग्रवादी जनता करती है। अन्तमें वह राजा की हत्या कर देती है।

तीसरे द्वारमें राजनीतिक विसंगतियोंके ऊपर तीखा व्यंग्य है। नायककी शिला-मूर्ति खड़ा करनेकी तैयारी, मंचका निर्माण होता है। मंचको बनानेवाले मजदूर-वर्ग में से एक यथार्थवादी दृष्टिकोणको सामने रखते हुए बोलता है 'क्या उस पत्थरसे भी गयी-बीती है मेरी हैसियत?' (पृ. ७०)। 'नायक भगवान हैं' (पृ. ७०) की स्थापनापर तीखा व्यंग्य स्पष्ट है। मजदूरोंके लिए नायक की सार्थकता इसीमें हैं कि वह प्रतिदिन कहीं-न-कहीं भाषण करता है और मजदूर वर्गको मंच बनानेके लिए काम मिलता रहता है, पेट भरता रहता है। मालिन फूलोंकी माला बेचती है। उसकी भोगी अनुभूति है 'हार पहनतेही पहननेवाले उतारकर रख देते हैं। वे हार मेरे पास पहुंच जाते हैं। मैं उसके लिए दस-दस पैसे देती हूं। बादमें आनेवालोंके लिए फिरसे उसीको मैं एक रुपये में बेचती हूं × × × ईमानदारीसे चलनेसे कोई एक कौड़ीतक नहीं देता। (पृ. ७७)' मालिनकी टोकरीमें बम मिलता है, जिसे किसी व्यक्तिने रख दिया था और वह संभ्रान्त व्यक्ति पकड़ा जाता है, जिसपर मालिन क्षोभ प्रकट करती है। नेताका आना बन्द हो जाता है।

जिस प्रकार 'भगवानको बड़ा कहलाना है, तो राक्षसों की कल्पना' सार्थक है, उसी प्रकार नेताको बड़ा कहलाने के लिए बम इत्यादिकी व्यवस्था करनी पड़ती है। इस तथ्यसे मुख नहीं मोड़ा जा सकता।

इन तीनों कथाओंको एक सूत्रमें बांधनेवाला सर्वाधिक सशक्त अनुभवी, नीतिकुशल, सदाचारी, आधुनिक रंगमें रंगा हुआ अंधा भिखारी है। वह प्रत्येक घटनाका प्रत्यक्षदर्शी है, जो आंख न रहनेपर भी सब कुछ देख सकता है और आंखवाले आँख रहते हुएभी कुछ नहीं देख पाते हैं।

आधुनिक समस्याओंके प्रस्तुतीकरणके लिए कन्नड़ साहित्यके प्रमुख हस्ताक्षर, बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न आद्य

रंगाचार्यने तीन स्थान चुने हैं, वे हैं—महामायाका मन्दिर, राजमहल एवं सभामंच, पर सब एकही स्थानपर विद्यमान है। जहां कभी मंदिर था, वहाँ राजमहल बना और कालान्तरमें वहीं सभामंचका निर्माण होता है। ये तीनों अनाचार-दुराचारके ही अड्डे हैं।

समीक्ष्य नाटकके तीन द्वार तीन अंकके रूपमें देखे जा सकते हैं, जो आधुनिक विसंगतियोंके सूत्रसे बधे हुए हैं और उनको समग्रतामें महसूसा जा सकता है। इन तीनों कथाओंमें समयका अन्तराल आभास मात्र है। वस्तुतः पाखण्ड-युग, क्रूर-शोषक शासक-युग तथा वर्तमान नायक का स्वार्थिक युगके रूपमें संगति बैठानेपर उक्त अन्तराल समाप्तप्राय हो जाता है और कथानककी संघटनाभी बैठ जाती है।

(ग) शोक-चक्र

आजकी राजनीति विषैली बनती जा रही है। पार्टीबन्दीका कैंसर दिन प्रतिदिन अधिक दर्दीला होता जा रहा है। लोक सभा, विधान सभाके चुनावोंमें प्रत्येक उम्मीदवार लाखों रुपये खर्च करता है, मानों इनका सदस्य होना टकसालका मालिक होना है। आजकी राजनीतिके ठेकेदार नोटके बलपर वोट एकत्र करते हैं और जनताको अनेक झूठे प्रलोभनों, आश्वासनोंसे मानवीय मूल्यको खरीद लेते हैं। ईमानदार, कर्मठ, सत्यनिष्ठ सच्चा जनसेवक उनके कुचक्रोंमें पड़कर पीसा जाता है। इस तथ्यको समेटनेवाला 'शोक-चक्र' ३० जनवरी १९४८ की दुखद घटनापर आधारित है। इसका प्रारम्भ १५ अगस्त १९४७ से होता है और अन्त ३० जनवरी '४८ को। इसमें तीन अंक हैं। प्रथम और तृतीय अंक दृश्य-विहीन हैं, पर द्वितीय अकमें दो दृश्य हैं।

प्रस्तुत कृतिका कथानक तीन घटनास्थलोंसे अनुस्यूत है, वे हैं—(१) १५ अगस्त १९४७, (२) २० जनवरी १९४८ और ३० जनवरी १९४८। इन घटनाओंमें तारतम्य है, सम्बद्धता है।

जयराय सर्वाधिक सशक्त चरित नायक है, जो सच्चा जनसेवक है और पार्टीमें विश्वास न कर काममें विश्वास करता है। ईमानदारी उसके रग-रगमें है और आदर्श ग्राम-निर्माणके प्रति वह सत्यनिष्ठ है किन्तु वह अपने साथियोंके कुचक्रमें फँस जाता है। यही कारण है कि 'पार्टी बनानेवालोंके लिए अशोक-चक्र है। गांधीके पीछे जानेवालोंके लिए शोक-चक्र है।' (पृ. ५०)। और गांधीके पथपर चलनेवाला जयराय शोकचक्रसे घिर जाता है। उसके साथियोंकी मान्यता आज सर्वोपरि सिद्धान्त हैं। उनके सिद्धान्त वाक्य हैं 'डेमोक्रेसीकी यही खूबी है, धोखा।' (पृ. ४४)। 'आजके जमानेमें ईमानदारीकी उपयोगिता केवल ठगीकी पताका ऊंची करनेमें है।' (पृ. ५५)

नाटककी विज्ञप्तिमें ठीकही कहा गया है कि नाटकका प्रतिपाद्य विषय है—'स्वराज्य तो आ गया पर सुराज्य अर्थात् राम-राज्य नहीं आया।' यह उक्ति आज पूर्णतः सार्थक है, पर नाटकीय कथानकके परिप्रेक्ष्यमें अधूरी, क्योंकि नाटकमें जो अवधि ली गयी है—वह अस्थिरताका युग है, दिशा-निर्धारणका युग है। उन दिनों भविष्यकी परिकल्पना इतनी विभीषिका नहीं बनी थी, जितनी आज दिखलायी पड़ रही है। नाटककारने आजकी सामाजिक, राजनीतिक अस्थिरता, स्वार्थपरता, लोलुपता एवं तज्जन्य निराश को प्रस्तुत करनेके लिए जिस आधारको चुना है, वह बहुत ठोस नहीं प्रतीत होता है।

पृष्ठ ७१ पर ३० जनवरी '४८ की घटनाका चित्रण हैं। जाड़ेकी रातके १२ बजे हैं और रंगम्मा 'पल्लूसे माथेका पसीना पोंछती है।' गमगीन वातावरण होनेपर अस्वाभाविकताको बचा नहीं पाता।

इतना होते हुएभी संवाद, शैली और अभिनेयताकी दृष्टिसे यह एक सफल नाटक माना जायेगा।

नाटककारका व्यक्तित्व नाटकसे सम्बद्ध रहे या असम्बद्ध—यह विवादका विषय होते हुएभी उसका नाटकसे जुड़ा रहनाही श्रेयस्कर है। आद्य रंगाचार्यभी अपने नाटकोंमें किसी-न-किसी पात्रके साथ जुड़े हुए हैं। 'रंग भारत' में संजयके साथ, 'स्वर्गके तीन द्वार' में अंधे भिक्षुकके साथ और 'शोक-चक्र' में जयरायके साथ नाटककार जुड़ा हुआ है। यदि यह स्वीकार किया जाये कि नाटककार इन पात्रोंके माध्यमसे स्वयं उपस्थित है तो अनौचित्य नहीं होगा।

□ धर्मदेव शास्त्री

जेडर दासिमय्याके वचन

[कन्नड़ वचन हिन्दी रूपान्तर सहित]

सम्पादक एवं रूपान्तरकार : भालचन्द्र जयशेट्टी; प्रकाशक : वीरशैव अध्ययन संस्था, श्री जगद्गुरु तोंटदार्य संस्थान मठ, डंबळ-गदग (जि. धारवाड़), कर्नाटक। पृष्ठ : १३९; डिमा. ७९; मूल्य : ६.५० रु.।

हिन्दी साहित्यके पाठक कबीर-वाणी आदि अनेक वाणियोंसे परिचित हैं। इस वाणी-साहित्यका अध्ययन और मूल्यांकनभी हिन्दी साहित्यमें पर्याप्त हुआ है। 'वाणी' के अर्थमें ही कन्नड़में 'वचन' का प्रयोग होता है। कन्नड़ साहित्यका 'वचन-वाङ्मय' बहुत समृद्ध है। इसके परिचायक आलेखमें सम्पादकने बताया है कि 'कन्नड़की इस साहित्य-विधाको केवल शिव-शरणोंकी वाणी मात्र न समझकर उनके अनुभवोंकी प्रमाणबद्ध अभिव्यक्ति कहना अधिक उपयुक्त होगा। शिव-शरणोंने अपनी साधनासे जो अनुभूति प्राप्त की, जिस चिरन्तन सत्यका साक्षात्कार किया वही वचन-वाङ्मय है।' ये शिव-शरण वीर शैव सन्त थे।

इस वाङ्मयके परिचयमें बताया गया है कि यह दर्शनके क्षेत्रमें 'वीर शैव-दर्शन', साहित्यके क्षेत्रमें जन-साहित्य, साहित्येतिहासमें स्वतन्त्र युगका साहित्य तथा शास्त्र के क्षेत्रमें 'वीरशैवोपनिषद्' कहलाया। प्रस्तुत वचनोंके आधारपर यह स्वीकार करनाही पड़ता है कि इनमें जन-जीवन प्रतिबिम्बित है और जन-साधारणकी मानसिकताको प्रभावित करनेमें सफल रहा है। इस सफलताका कारण वचनोंकी भाषाको बताया गया हैं। इस काल—ग्यारहवीं-बारहवीं सदी—के अन्य कवियोंकी तुलना में प्रचलित साहित्यमें सामान्य जनताकी देशी-शैली, देशीलय लोकगीतोंके रूपमें प्रचलित थी, इन्हीं लोकगीतोंका अन्तःसत्व लेकर वचन-विधा सामने आयी और इसने पण्डित तथा पामर दोनों वर्गोंको आकर्षित किया। वचन-वाङ्मयका मूल उद्देश्य धर्म प्रचार था, अतः इस प्रयोजन से आध्यात्मिक गहन विचारोंके प्रचारके लिए बोधगम्य, यथासाध्य जनताकी सुपरिचित भाषा-शैली अपनायी गयी।

दक्षिणमें अनेक शैव सम्प्रदायोंका चलन था और रहा है। इनके मठ-मन्दिर वामाचारके केन्द्र रहे हैं। वचनकारोंने वामाचारकी भर्त्सनाकर जन-मानसमें आत्म-विश्वासकी भावना जगायी, बहुदेवोपासनाके स्थानपर एकेश्वरवादपर बल दिया। शास्त्र-पुराण-आगमकी प्रामाणिकताके स्थानपर स्वानुभूतिको प्राथमिकता दी। दया को धर्मका मूल माना, अहिंसाको मान्यता दी, प्राणी-हिंसाको महापाप बताया। स्त्रीको नरक ले जानेवाली नहीं, सहधर्मचारिणी माना, परस्त्रीके प्रति गौरव भाव की स्थापना की। उसे पार्वतीके समान पूजनीय कहा। जाति-भेद और वर्ण-व्यवस्थाके प्रति विद्रोह किया, केवल दो ही जातियाँ मानीं—शिव-निष्ठासे हीन बद्धजीवी : भवी, तथा शिव-निष्ठासंपन्न सिद्धजीवी : भक्त।

वचनकारोंकी एक उल्लेखनीय देन है—श्रमकी प्रतिष्ठा। कायक (वृत्ति, परिश्रम) को ही कैलास घोषित कर स्वावलम्बनका सूत्र अनिवार्य कर दिया। वृत्तियोंमें ऊंच नीचका भेदभाव नहीं बरता। शिव-शरणोंने इस स्तर-भेदको मिटाकर वृत्तिमें व्यक्तिगत लाभ-हानिकी अपेक्षा लोकमंगलकी भावनाको प्रतिष्ठित किया और उसे धार्मिक स्वरूप दे दिया। वृत्ति इनके लिए साधनामें सहकारी थी, न कि जीवन निर्वाहके लिए अनिवार्य मार्ग। वृत्तिसे अर्जित साधन-सामग्रियोंका उन्होंने शिवार्पण भावसे उपभोग करनेका विधान किया।

परतत्त्वकी सिद्धिके लिए ऐहिक जीवनकी अनिवार्यता का उन्होंने समर्थन किया। ऐहिक जीवनकी विवशताओं को स्वीकार करते हुए घर-गृहस्थीके साथ आध्यात्मिक साधनाकी कठिनाई, मनपर संयम रखते हुएभी जीवनकी न्यूनतम आवश्यकताओंके कारण भटकावकी सम्भावनासे वचनकार परिचित थे। ऐहिक जीवनकी इस चुभनसे क्षुब्ध होकर दासिमय्याने भगवानको ललकारकर कहा : "मेरी भांति तुमभी, रामनाथ,/ पेट पालकर देखो इक बार।" (वचन : ९९)। दैनिक आचार, व्यवहार, सदाचार, निन्दा-स्तुति, शुद्धि-अशुद्धिके बारेमें दासिमय्याके सरल, सुलभ-ग्राह्य तथा सुलभ-साध्य उक्तियोंकी यह संहिता है। ये उक्तियां नीतिपरक हैं, बोधपरक हैं।

कन्नड़ शरण-साहित्यकी इस परम्परामें जेडर दासिमय्याके वचन इस पुस्तकमें संकलित हैं। 'जेड' जुलाहों की एक जाति है, इस जातिसे संबद्ध होनेके कारण वे 'जेडर' कहलाते हैं। ये वीर शैव होनेपर भी अपने गांव के रामलिंगके बड़े भक्त थे। वीर शैवोंमें स्थावरलिंग पूजाका विरोध है। इनके वचनोंमें इसी आराध्यदेव 'राम नाम' का संकेत है। दासिमय्याके जीवनके साथ अनेक किंवदन्तियां जुड़ी हैं। इन किंवदन्तियोंकी तुलनामें दासिमय्याके जीवनकी उदात्तता, सात्त्विकता और वचन-प्रभविष्णुता अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

कबीर-वाणी झकझोरकर रख देती है, क्योंकि उसकी भाषा प्रहारक है और हम लोगोंके लिए बोधगम्य है। दासिमय्याके वचनभी प्रहारक हैं और अपनी मूल भाषा मे कितने प्रभावित होंगे इसका कुछ अनुमान हम प्रस्तुत हिन्दी रूपान्तरसे लगा सकते हैं। 'चन्दन लेपनकर सूकर/ क्या बन जायेगा कुंजर ?/ नर्तन करते देख मयूर/ जैसे

कुकरी खोलेपर,/ रुद्राक्ष-भूतिका आडम्बर/ कर्मोकी भी भक्ति दुष्कर।' (वचन ३६)। 'मारीकी पूजा करते,/ मरघटमें कब्र बनाते/ छेरीपर छूरा चलता/उसका आमिष नर खाता।' (वचन ९०)। दासिमय्याको जाति व्यवस्थासे काफी जूझना पड़ा था। वचनोंमें स्थान-स्थानपर यह विरोध अथवा व्यंग्यके रूपमें व्यक्त हुआ है। एक वचनमें वे कहते हैं: 'नीच बिना है कभी न दुहती, रे, गैया।' (वचन १२५) वर्ण-व्यवस्थाका समर्थन करनेवालों से वे तुनककर पूछते हैं कि अन्त्यजके प्राणोंने कैसी लाठी धारण की है। सदाचारी सद्भक्त बनकर अन्त्यज कहलाने वालाभी क्यों नहीं मोक्षका अधिकारी बन सकता? रूपान्तरकी भाषा, शैली और कथ्यमें चमत्कारके अभाव के कारण मूलका प्रभाव समाप्त हो गया है।

फिरभी वचनोंकी मूल भावनाको हृदयंगम करानेके लिए वचनकारोंके दर्शन, वचनोंमें निहित वीरशैव सिद्धान्तोंका परिचय और वीरशैवकी पूर्वपीठिकाभी प्रस्तुत की गयी है। इससे वचनोंको आमूल समझनेमें सहायता मिलती है। इस प्रयोजनसे वचनोंमें प्रयुक्त विशिष्ट शब्दोंपर संदर्भोचित टिप्पणियांभी दी गयी हैं।

'वीरशैवकी पूर्वपीठिका' में ऐतिहासिक क्रमकी दृष्टिसे वेद, आर्य तथा अनार्य संस्कृतियोंकी चर्चा की गयी है, वह सम्पादक अथवा रूपान्तरकारके अनुसंधानपरक चिन्तनका आभास नहीं देती। यह प्रतीत होता है कि उसने यूरोपीय ईसाई विद्वानों और उनके अनुकरणपर पुनर्लेखन करनेवाले भारतीय विद्वानोंकी मान्यताओंको ज्योंका त्यों अपना लिया है। अच्छा होता यदि इस प्रकारके लेखनसे पूर्व सम्पादक स्वयं मूल भारतीय ग्रन्थोंका अध्ययन कर लेते (अंग्रेजी अनुवादोंका अध्ययन नहीं) और इस अध्ययनसे प्राप्त निष्कर्षोंके आधारपर लिखते। ऐतिहासिक दृष्टिसे स्थिति वह नहीं है जो इस परिशिष्टमें प्रस्तुत की गयी है। भारतीय धर्मोंके विकास की दृष्टिसे तो अभी बहुत कम अध्ययन हुआ है, यद्यपि यह अपने आपमें यह अध्ययन बहुत रोचक सिद्ध हो सकता है। वर्तमान प्रस्तुतिको ध्यानमें रखकर शैव सम्प्रदाय विशेषतः वीरशैव सम्प्रदायके प्रति उत्साहकी प्रशंसाही की जा सकती है।

□ माधव पण्डित

काव्य संकलन

हजार-हजार बाहोंवाली

कवि : नागार्जुन; प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अन्सारी रोड, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १८६; डिमा. १९८१; मूल्य : ३५.०० रु.।

इधर हिन्दीमें कविता-प्रकाशनमें अभूतपूर्व तीव्रता आयी है। इसका लाभ जिन कवियोंको मिला है, उनमेंसे एक नाम नागार्जुनका है। पिछले दो-तीन वर्षोंमें उनके कई कविता-संग्रह प्रकाशित हो गये हैं। उनके नये कविता-संग्रह 'हजार-हजार बाहोंवाली' को देखकर लगता है, जैसे उनके पास कविताओंकी कमी हो गयी है, अथवा वे उन सारी नयी पुरानी कविताओंको पुस्तक रूपमें ले आना चाहते हैं जो लम्बे अर्सेसे उनके पास पड़ी हुई हैं। यदि ऐसा न होता तो समीक्ष्य-संग्रहमें १९३६ से लेकर १९८० के बीच लिखी गयी विविध विषयक कविताएं एक साथ न प्रस्तुत करते। प्रकाशनकी जो सुविधा उन्हें सुलभ हो गयी है, उसका लाभ उठाकर उन्हें अपनी कवितावली या तो कालानुक्रमसे या विषयानुक्रमसे विभिन्न खण्डोंमें प्रकाशित करवानी चाहिये थी।

नागार्जुनके अन्य कविता-संग्रहोंके समान 'हजार-हजार बाहोंवाली' में भी अधिकांश कविताएं राजनीतिक हैं। इन राजनीतिक कविताओंमें से सबसे अधिक संख्या

उन कविताओंकी है जिनमें कांग्रेस, उसके केन्द्रीय एवं प्रांतीय नेताओं, उनकी नीतियों, पुलिस, अमरीका और उसके कुछ नेताओंकी आलोचना एवं निन्दा की गयी है और उनपर व्यंग्य किया गया है। १९५१ की एक कविता में कांग्रेस और उसकी नीतियोंके सम्बन्धमें नागार्जुनने लिखा था—

'पेड़ उगाओ/ उपज बढ़ाओ/ सोमवारको सब्जी खाओ/ जलते हुए पेटपर गीली मिट्टीकी पट्टी डलवाओ/ कांग्रेसकी सड़ी लाशपर याकूती रोगन मलवाओ /···· डेमोक्रेसीकी कोसीमें बाढ़ आ गयी/ गुटबन्दीकी खाईको चौड़ा बना गयी/ जात-पाँतकी रेतीपर फिर घास छा गयी/ खद्दरधारी घड़ियालोंकी पल्टन तिनरंगा चबा गयी। सत्य-अहिंसाकी प्रतिमाको दीघाकी मेंढकी खा गयी'···(पृ. ६३)।

जिन कांग्रेसी नेताओंपर नागार्जुन विशेष रूपसे कुपित हैं, उनमें नेहरूजी और मोरारजी देसाई प्रमुख हैं। एकाध स्थलपर उन्होंने नेहरूजीकी प्रशंसाभी की है। १९५४ में बिहारमें घटित एक घटनाके सन्दर्भमें नागार्जुनने लिखा—

'विश्व-शान्तिके लिए दे रहे नेहरू कैसे जान !/ नकली दांतोंवाले मुंहकी देखो तो मुस्कान !/लो गौतम का, लो अशोकका, लो गांधीका नाम/दिल बदला, शैतान करेंगे सोशलिज्मका नाम/···सारी जनता बेवकूफ है, समझदार तुम एक/मुल्क जहन्नुममें जाये, पर निभे पुलिस की टेक।' (पृ. ८५)।

विनोबा और उनके सर्वोदयको लेकर नागार्जुनके मनमें पूर्ण निन्दाकी भावना है। गांधीजीको लेकर वे द्विधाग्रस्त हैं। वे गांधीजीकी निन्दाभी करते हैं, किन्तु अधिकांशतः उनके मनमें गांधीजीके प्रति प्रशंसा और आदरकी भावना ही है। यह बात समीक्ष्य संग्रहकी अनेक कविताओंसे सिद्ध होती है। इस संग्रहमें अनेक कविताएं ऐसी हैं, जिनमें हिन्दीके कुछ साहित्यकारों—जैसे, पन्त, अज्ञेय, जैनेन्द्र इत्यादि—को व्यंग्यका लक्ष्य बनाया गया है। 'महाकवि निराला' शीर्षक कवितामें उन्होंने निरालाके प्रति अपना आदर व्यक्त किया है। विदेशियोंमें यदि आईजनहावर और रजनी पामदत्तपर कटाक्ष किया है तो स्टालिन, रोजनबर्ग दम्पती, गोर्की, लेनिन, जोमो केन्याता, बुलगानिन, ख्रुश्चेव, और मार्टिन लूथर किंग आदिकी प्रशंसा की है।

देशी और विदेशी व्यक्तियोंकी यह निन्दा-प्रशंसा नागार्जुनकी साम्यवादी प्रतिबद्धताको सामने लाती है। 'हजार-हजार बाँहोंवाली' संग्रहकी अनेक कविताएं कवि के साम्यवादी दृष्टिकोणको स्पष्टता और बलके साथ सामने लाती हैं। १९४७ में भारतको जो स्वाधीनता मिली, कवि उसे सच्ची स्वाधीनता नहीं मानता। इसी लिए वह पूरी आजादीका संकल्प दुहराता है (पृ. ५०)। १९४८ की कविता 'लाल भवानी' में उसने क्रान्तिमें अपने विश्वासको व्यक्त किया है। उस समय वह अनुभव करता था कि,

'होशियार कुछ देर नहीं है लाल सवेरा आनेमें, लाल भवानी प्रकट हुई है, सुना कि तैलंगानेमें।' (पृ. ४८)।

१९६० में उसकी सहानुभूति न तो तिब्बतसे भागकर आनेवाले शरणार्थियोंके साथ थी न भारतके साथ, कम्युनिस्ट होनेके कारण उसकी सहानुभूति चीनके साथ थी ···

'जाने क्या-क्या बकवाता है सेठोंका अनुराग/भले-भले मुख उगल रहे हैं चीन-विरोधी आग/धुआँ बना है आज हिमालयके झरनोंका झाग/दूध पिलाओ, तिब्बतसे भागे हैं सौ-सौ नाग/निर्वाचनमें जैसे-तैसे हासिल करो कमाल कौन कहेगा आजादीके बीते तेरह साल ?' (पृ. १२१)

किन्तु जब चीनने भारतपर आक्रमण किया तब नागार्जुनके दृष्टिकोणमें परिवर्तन आया। उनकी सहानुभूति भारत के साथ हो गयी। १९६३ की अपनी 'फिलहाल' शीर्षक कवितामें लिखा—

फिलहाल/सूझता है दुश्मन-ही-दुश्मन/ लड़नेको समूचा देश है तैयार !/फिलहाल/ हो गये हैं एक/ लहरा रहा है शिव संकल्पका पारावार !' (पृ. १३९)।

नागार्जुनके दृष्टिकोण और सहानुभूतिमें यह पक्ष-परिवर्तन प्रायः होता रहा है, इसे उनके काव्यके पाठक अच्छी तरह जानते हैं। इसे नागार्जुनभी स्वयं जानते हैं और अपनी इस दुर्बलताके कारणोंपर अनेक बार उन्होंने प्रकाश डाला है किन्तु सामान्यतः उनकी सहानुभूति किसानों, मजदूरों, विद्यार्थियों तथा इसी श्रेणीके अन्य आन्दोलन कर्त्ताओंके साथ रही है। वे घटनाएं जिनमें ये तत्व सम्मिलित हों, नागार्जुनमें तुरन्त प्रतिक्रिया जगाती हैं। 'हजार-हजार बाँहोंवाली' संग्रहकी अनेक कविताएं विशिष्ट घटनाओं और उन घटनाओंसे सम्बद्ध व्यक्तियोंको लेकर लिखी गयीं हैं। इन कविताओंको ठीक-ठीक समझने और उनके पूर्ण आस्वादनके लिए सम्बद्ध घटनाओं और

व्यक्तियोंसे परिचित होना आवश्यक है। इस परिचयके बिना नागार्जुनकी अनेक कविताएं अधूरी और अस्पष्ट लगती हैं। उदाहरणके लिए 'मैं हूं सबके साथ', 'खड़ी है ट्रेन', 'लीडर अपोजीशनका (कांग्रेसी)', 'मैं उसे छोड़ूंगा नहीं' इत्यादि कविताओंको सामने रखा जा सकता है।

नागार्जुनकी कविताओंमें उनका व्यक्तित्व बड़ी तीव्रताके साथ अभिव्यक्ति पाता है, कविताका विषय चाहे जो हो। इस व्यक्तित्वकी एक विशेषता स्वयं कवि ने बतायी है—

'नफरतकी अपनी भट्टीमें/तुम्हें गलानेकी कोशिशही/मेरे अन्दर बार-बार ताकत भरती है/प्रतिहिंसाही स्थायी-भाव है अपने ऋषिका/···प्रतिहिंसाही स्थायीभाव है मेरे कविका/जन-जनमें जो ऊर्जा भरदे, मैं उद्गाता हूं उस रविका। (पृ. ११)।

नागार्जुनके व्यक्तित्वका यह पक्ष उनकी राजनीतिक कविताओंमें अभिव्यक्ति पाता है, किन्तु उनके व्यक्तित्व का एक और पक्ष है—वह है प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रेमी कविका। नागार्जुनमें निहित यह सौन्दर्य-प्रेमी कवि उदय होते हुए सूर्यको देखकर मुग्ध हो जाता है ('पछाड़ दिया मेरे आस्तिकने')। कविके इस पक्षने प्रकृतिके कुछ अत्यन्त मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं। उदाहरणके लिए एक चित्र यह है—

उड़ी जा रही नील गगनमें
पवन-पंखपर विमल बलाका
मानो विस्तृत कालिन्दीके
श्याम सलिलमें अविरल गतिसे
बहती चली जा रही कोई
श्वेत सहस्र पत्र-पद्मोंकी
बनी बनायी लम्बी माला
पावसकी आगमन सूचना
देने आयी प्रकृति सुन्दरी
फहरा-फहराकर धवल-पताका
उड़ी जा रही नील गगनमें
पवन-पंखपर विमल बलाका ! (पृ. ९८)

प्रकृतिमें नागार्जुनकी सर्वाधिक प्रिय ऋतु बरसात है। बादलोंका सौन्दर्य उन्हें बहुत अधिक आकर्षित करता है। उनके प्रकृति-चित्रणमें सांस्कृतिक अनुसंगभी रहते हैं और रूमानी मनोभावभी।

'हजार-हजार बांहोंवाली' संग्रहकी अधिसंख्यक कविताएं नियमित छन्दोंमें लिखी गयी हैं। जो कविताएं मुक्त छंदमें हैं, उनमें भी लयात्मकता बराबर विद्यमान है। छन्दोंपर नागार्जुनका पूर्ण अधिकार है। लेकिन वे छन्द के संगीतकी एकरसताको वर्णन तथा स्थानीय शब्दोंके अनूठे प्रयोगके द्वारा तोड़ते हैं। इन विशेषताओंके उदाहरणके लिए 'मास्टर !' शीर्षक कविता देखी जा सकती है। नागार्जुनकी काव्य-शैलीकी सबसे अधिक आकर्षक विशेषता उनका फक्कड़पन है, जिसकी अभिव्यक्ति व्यंग्यमें भी होती है और अलंकरणमें भी। 'मुरार जी' पर लिखी गयी कविताके नीचे उद्धृत अंशमें इन विशेषताओंको देखा जा सकता है—

लम्बे-लम्बे कान तुम्हारे भूरी-भूरी आँखें
नर्म-नर्म पलकें ज्यों देशी सोशलिज्मकी पाँखें
तेज ओजसे लक्-दक् मुखड़ा, नक्श नुकीली नाक
मनन तुम्हारा अर्थशास्त्र है, भोजन है शुचि शाक
बात-बातमें बापूकी सुमिरन है दिव्य जुगाली
निशि-दिन श्रीमन्तोंके सुखोंकी करते हो रखवाली
तुम्हें मुबारक टैक्सोंकी भरमार जी !
भाई भले मुरारजी ! (पृ. १२६)

अपनी उपर्युक्त विशेषताओंके कारण 'हजार-हजार बांहोंवाली' संग्रह नागार्जुनके कवि-व्यक्तित्वको समझनेमें निश्चयही सहायक होगा।

□ डॉ. हरदयाल

बयान

कवयित्री : कमल कुमार; प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यूबी बंग्लो रोड, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८१; २०.०० रु.।

'बयान' श्रीमती कमल कुमारका प्रथम काव्य संग्रह है जिसमें सन् १९७० से १९८० तक की कविताएं संकलित हैं। कमलके निकट कविताकी रचना भीतरके धधकते लावेको बाहर उंडेलनाही नहीं है। वे कविताकी वृत्तिभी कैक्टसी मानती है क्योंकि अन्ततः कैक्टसी कविताही गहरी चोट करनेमें सफल होती है। इस संग्रहकी कविताएं जीवनके सभी आयामोंमें पायी जानेवाली विसंगतियोंको उघाड़ती हैं, व्यक्तिके बाहर और भीतरकी सच्चाईके परस्पर द्वन्द्वको अभिव्यक्त करती हैं, पर मूलतः इन कविताओंमें नारी जीवनकी विडम्बनाओंको उकेरा गया है।

संस्कारोंसे व्यक्ति सहज छुटकारा नहीं पा सकता।

समयके साथ-साथ उसके विचार बदल जाते हैं। संस्कार नहीं बदलते। उन संस्कारोंको वह विरासतकी भांति सहेजे रहता है। आजकी नारी एक ओर तो समयके साथ आधुनिक कहलाना चाहती है, दूसरी ओर भारतीय नारी की वर्षोंकी संस्कारितासे भी बंधी रहना चाहती है। इस प्रकार, वह न तो सही अर्थोंमें आधुनिक बन पाती है और न रूढ़ संस्कारोंसे मुक्त ही हो पाती है। प्राचीनता और नवीनताके इन दो पाटोंके बीच वह निरन्तर पिसती रहती है। शिक्षाने आजकी नारीको स्वतन्त्र विकासके अनेक आयाम प्रदान किये हैं। अपने स्वतन्त्र विकासके लिए यदि उसे पुरुषके संरक्षणसे मुक्त होना है तो अपने मार्गमें आनेवाले 'कौआते कौओंके झुण्ड' के आक्रमणसे स्वयंको बचानेके लिए अपने भीतर क्षमता उत्पन्न करनी होगी। पानेके लिए कुछ तो खोनाही पड़ता है। इसीकी साक्षी है 'उत्तराधिकार' कविताकी ये पंक्तियां—

'अपनी विरासतको / संभालने और सहेजनेकी कोशिशमें/ औरतसे हटकर/ गाय-बकरी-फूल या पत्ती/ सभी तो बनी।/'''झूलेकी पेंग बढ़ाकर/ डोर काट दी गयी/ बरसों बाद पिंजरेका दरवाजा खोल/ बतियानेवाली मैनाको/ आसमानमें खुला छोड़ दिया/ कौआते कौओंका झुण्ड/ उसी ओर उड़ चला।'—(उत्तराधिकार)

झूठ, फरेब और छलसे भरी इस दुनियामें वही जी सकता है जो स्वयंभी उसी प्रकारके रास्तोंको अपना ले। आदर्शों और सिद्धान्तोंसे चिपके रहनेवाले व्यक्तिके सपने टूट जाते हैं और मनकी आकांक्षाएं अधूरी ही रह जाती हैं। यथार्थ और आदर्शकी टकराहटमें उसकी अस्मिता खण्ड-खण्ड हो जाती है। जो अपने सिद्धान्तोंपर अडिग रहनेकी ठान ले, उसे अकेलेपनकी नियतिको भी स्वीकारना होगा। अपनी लड़ाई उसे खुदही लड़नी होगी और अकेलेही जीवनकी कठिनाइयोंसे जूझना होगा।

'मिथ्या आदर्शवादिताके टकरावसे/ खण्ड-खण्ड हो टूटी अस्मिता—/गहरा कटाव—/ पराजित व खण्डित-सा/ अकेला सुनसान—/ किसी गहरी झीलके किनारेपर उगे अकेले पड़-सा/ मैं '''। —(मैं)

गृहस्थीपर बढ़ता हुआ आर्थिक बोझ, स्वतन्त्रताकी कामना और महानगरीय जीवनकी चकाचौंधसे आकर्षित हो नारी नौकरीके लिए घरसे बाहर निकलती है। घरेलू जिम्मेदारियोंके साथ-साथ एक अतिरिक्त दायित्व उसे और निभाना पड़ता है। घर और बाहर दोनोंही जगह उसे सहना पड़ता है जिससे उसकी व्यस्तता और व्यथा दोनोंही बढ़ जाती है। दफ्तरसे थके-हारे लौटनेपर घरेलू जीवनके अनेक छोटे-बड़े काम उसके सामने मुंह बाये खड़े रहते हैं, उसे अकेलेही उनसे निपटना होता है—

'अनचाहे मेहमान—/घरकी बेतरतीब चीजें/ हुए अधहुए सैंकड़ों फुटकल काम / ये क्रमहीन क्रम—/सीसेकी तरह पिघला करते हैं/ मेरे भीतर'''।'—(अन्तराल)। 'वह औरत/ सांझको/ दफ्तरसे लौटी थी—/ अभी-अभी/ एक थैलेमें बदल गयी है।/'''गिद्धोंके हुजूम/ जंगलसे उड़कर/ घरकी दीवारपर आ बैठे हैं।' —(थैला)

नारी जीवनकी यथार्थता मानकर इन सभी संघर्षोंसे जूझती रहती है। घर और बाहर कुशलताके साथ वह अपनी जिम्मेदारियोंको निभानेकी चेष्टा करती है। पति को वह हर प्रकारका सहयोग देनेको तैयार रहती है। उसे सब कुछ समर्पितभी कर देती है, सिवाय अपने अस्तित्वके। अपनी अस्मिताको वह किसीभी कीमतपर खोना नहीं चाहती। अपनी इयत्ता बनाये रखनेमें वह सतत प्रयत्नशील है। 'समर्पण' इस दृष्टिसे सशक्त कविता है—

'समर्पित/ तुम्हें/ पति परमेश्वरको।/लोक और परलोक/ अर्जित पुण्य/ चारो धाम।/ तन/ मन/ धन/ यह जीवन/ और आत्माभी।/सिवा—/मेरी खोपड़ीके।'

—(समर्पण)

नारी जीवनकी विडम्बनाओंके अतिरिक्त इन कविताओंमें वर्तमान सभ्यताकी अवसरवादितापर भी करारा व्यंग्य किया गया है। राजनीतिज्ञ किस प्रकार मतदाताओं से अपना उल्लू सीधा करवाता है, इसका चित्रण 'अवसर नहीं मिला' कवितामें है। चुनावोंके समय हर नेता जनता के सामने वायदोंका अंबार लगा देता है। आश्वासनपर आश्वासन देता चला जाता है। नेता आते हैं और चले जाते हैं, रह जाते हैं केवल वायदे। पर वायदोंसे कब किसीका पेट भरा है। 'उसका कहना था—/वह आयेगा/ तो मेरी आटेकी चक्कीके लिए/ पावर कनेक्शन लायेगा/ पब्लिकका नल और लैट्रिन बनवायेगा/ बच्चोंको मुफ्त शिक्षा देगा/ और पत्नीको मुफ्त गर्भ-निरोध।'

—(अवसर नहीं मिला)

इसी संदर्भमें इस संग्रहकी एक सशक्त प्रतिनिधि कविता 'बयान' की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—'नेता लाशोंके नारोंपर/ जय-जयका झण्डा फहराता है'''/आश्वासनोंकी बैसाखियोंपर घिसटता सवेरा/ अंधेरेके कीचड़में धंस गया है।/ चीखती चिल्लाती जिन्दगीमें/ सब कुछ जातिवाचक सर्वनाममें/ बदल गया है।' (बयान)

पर [illegible] और लतियाये जानेपर भी

आम आदमीकी चेतना मरती नहीं है वह हर बार इनके विरोधमें आवाज उठाता है।

'सैकड़ों बार मरा/ पर जी उठा/ हर बार—/ रक्त-बीज-सा।' (रक्तबीज)

महानगरके निवासी दोहरा जीवन जीते हैं। उनके चेहरोंपर सभ्यताके मुखौटे जड़े रहते हैं, पर भीतरही भीतर एक दूसरेको काटने या नापनेकी कैक्टसी वृत्ति पनपती रहती है। आधुनिक सभ्यताका प्रतीक कैक्टसका पौधा इनके ड्राइंग रूमकी शोभा बढ़ाता है। इन्हीं लोगोंपर करारी चोट की गयी है 'कैक्टस और कविता' में—

'तुम्हारे समाजमें मेरा रुतबा है,/ सम्मान है/ क्योंकि मैं वही हूं जो तुम हो/ जो तुम हो—/वे सब हैं,/ पर सब इसे स्वीकारते कहाँ है ?' —(कैक्टस और कविता)

'प्यार', 'उपहार', 'सांझ', 'अधिकार', 'कविता', 'उधार' आदि कविताएं छोटी होनेपर भी प्रभावमें बेजोड़ है। 'मानव कुटुम्ब', 'प्यार', 'तो भी' आदि लम्बी कविताओंमें बिखराव अधिक मिलता है और अन्विति कम। एकसूत्रताके अभावमें कहीं-कहीं सम्प्रेषण रुक जाता है। पर कुल मिलाकर ये कविताएं आधुनिक जीवनकी विसंगतियोंसे जूझनेके कविके दृढ़ संकल्पकी परिचायक है।

☐ **प्रतिभा रांग्रा**

आंगनकी नागफनी

कवि : सियाराम मिश्र; प्रकाशक : साहित्यानन्द परिषद्, गोला गोकर्णनाथ (खीरी)। पृष्ठ : १३२; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

तुकबंदीसे दूर हटते हुए अपनी काव्य-यात्राके विकास में रचनाकारने मुक्त छन्द अपनाया है और नयी कविता से जुड़नेकी 'अपनी बात' कही है। कविकी रायमें ये कविताएं चिंतनका भावात्मक परिणाम है क्योंकि 'कविता हृदयके द्वारा की गयी विवेकपूर्ण प्रार्थना है।' इस परिप्रेक्ष्यमें रचनाओंको देखनेपर कहना होगा कि पर्याप्त विविधताके साथ इनमें जीवन और जगत्‌को देखने-समझनेका कोशिश की गयी है। फिरभी, शब्दोंकी मितव्ययता और मुक्त छन्दकी आंतरिक लयात्मकतासे ये कविताएं सम्पन्न नहीं हैं। भोगा हुआ यथार्थ बहुत कुछ उपदेशपरक बन गया है क्योंकि आदर्शोंकी निर्मिति रचनाकारका पीछा नहीं छोड़ती। जैसे : 'किनारेपर बैठे/ थके फेफड़ों वाले गोताखोरो !/ पारके रहस्यसे भयाक्रांत मत करो/ प्राकृतिक हवाओंको शांत मत करो/ गोपनीयता अभिशाप बन सकती है/ तीन डगकी दूरी/ पृथ्वीकी नाप बन सकती हैं।

आजकी स्वार्थपूर्ण मनःस्थितियों, कामके जंगलकी अभिरुचियों, जीभ लपलपाते सांपों आदिकी बात संवेदनाओंको उकेरती हैं। कई कविताएं प्रयोगवादी उपमानों के सांचेमें शिथिल टुकड़ोंको साथ-साथ विन्यस्त करती प्रतीत होती हैं। 'कंचन मृग' जैसी छोटी आख्यानक कविता कंचनके अनुरागसे दूर रहनेकी बात जरूर कहती है लेकिन द्विवेदीयुगीन काव्य-सौष्ठवसे दूर नहीं है। कवि की दृष्टि हर छोटेसे छोटे व्यक्ति, वस्तु और जीव-जन्तु पर गयी है—ट्रक चालक, पगली, सुअर, चींटे, चमगादड़, फांसी, सांड़, और इन सभीपर उसने कविताएं करते हुए नूतन उद्‌भावनाओंकी क्षमताका परिचय दिया है।

कुछ पंक्तियां तो सुन्दर बन पड़ी हैं और कविके भावी रचना कर्मकी आशा बंधाती हैं—जैसे विकास तो बौनेपनका अनावरण है। पोस्टकार्डपर नमस्तेकी भांति दुनियां जवाबी हो गयी है। पेट्रोलसे बुझायी गयी आग/ किंतु संयमहीन होकर सिद्धभी कुख्यात होता—आदि।

कविने अनवरत श्रम, आस्था और सात्विक जीवन की बातें दुहरायी हैं, लेकिन आधुनिक संवेदनाओंकी जटिलताओं, भयावह जिन्दगीकी आतंकपूर्ण त्रासदियोंको सूक्ष्म अभिव्यक्ति मिलनी चाहिये है। यहभी कि अलग-अलग टुकड़ोंमें आयी पंक्तियां अवश्य प्रभावित करती हैं परन्तु समग्रतामें ठोस प्रभाव लानेके लिए अधिक प्रयत्न की अपेक्षा रखती हैं।

☐ **संतोषकुमार तिवारी**

दर्दकी फसलें

कवि : छन्दराज; प्रकाशक : भारतीय साहित्य परिषद्, वैद्यनाथ-देवघर (बिहार)। पृष्ठ : ६४; डिमा. ८१; मूल्य : ५.०० रु.।

ग़ज़लकी एक अपनी परम्परा हिन्दीमें विकसित हो रही है। उस परम्परामें छोटे-बड़े ग़ज़लकारका अपना-अपना योगदान है। छन्दराजका प्रस्तुत संग्रह 'दर्दकी फस्लें' भी उसी परम्पराके विकासका एक सक्षम बिन्दु है। कविने अपनी ग़ज़ल-यात्राको अन्तर्मनके विकाससे बाह्यपरक जमीनपर लानेकी जीतोड़ कोशिश की है।

अपनी शैलीके विकसित स्वरूपमें अभी कविको एक राह खोजनी है। व्यक्तिसे समाजतक आ जाना तो आसान होता है, मगर समाजसे कहाँ पहुंचा जाये ? यही प्रश्न समकालीन रचनाकारको बहुत परेशान कर रहा है। काश ! व्यक्ति अपनी उन्नत अवस्थाको ही पा सकता।

रचनाकार पुरातनसे छुटकारा नहीं पा सकता। इसी द्वन्द्वमें वह बहुत कुछ खोता चला जाता है और पानेके नामपर सिर्फ उफान मिलता है। काव्यगत इसी उफान को जल्दबाजीमें दिया गया फतवाभी कहा जाता है और यही छन्दराज कहता है—

'साथ बैसा ही है कुछ हमारा
पाट हों जिस तरह दो नदीके' (पृ. १४)

कवि आस-पाससे अप्रभावित नहीं है। कहीं-कहीं वह बोझिल तुकोंके चुभते प्रयोगभी करता है। और वह पौराणिक सन्दर्भोंको भी ग़ज़लमें जीता है। राम और लक्ष्मणकी परम्परागत देनको वह अपने विरोधोंमें चुपचाप पी जाता है। कविताके संदर्भभी वह ग़ज़लमें प्रस्तुत करता है। अपनी जीवन्त सभ्यतासे उसे चिढ़ है। क्या कारण है कि कविको जमाना एक खतरनाक मंजिल लगता है ? अपनी आधुनिक सभ्यताकी जटिलताओंको वह पौराणिक प्रतीकोंमें सच पाता है। ग़ज़ल कहनेका कविका अपना एक अलग अन्दाज है :

'बात अब सोच-समझके करियो
जनता सब कुछ समझके देखे है' (पृ. ६३)

और कविका चिन्तनभी सही है :

'समूचे दशकमें घुन इस तरहसे लग गयी है
सृजन पल काठ निस्सठ हो गये कठुआ गये हैं'(पृ.१७)

कविको अपना मुहावरा पकड़ पानेमें अभी और यत्न करना होगा। फिरभी अभी कविके पहले संग्रहपर क्या निर्णय दिया जा सकता है ?

☐ विजय

उपन्यास

लोग

लेखक : गिरिराज किशोर, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि.; ८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २०८; का. ८१ (तृ. सं.); मूल्य : २२.०० रु.।

स्वतन्त्रताके बाद भारतीय भाषाओंके साहित्यमें स्वतन्त्रतासे पूर्वकी विविध और व्यापक स्थितियोंका अंकन हुआ है। हिन्दीमें इस कालकी परिस्थितियों और घटनाओंको समेटे हुए उपन्यासोंकी सुदीर्घ और समृद्ध परम्परा रही है। स्वयं गिरिराज किशोरने 'जुगलबन्दी' उपन्यासके विस्तृत कैनवासपर स्वतन्त्रतासे पूर्वके सामाजिक-राजनीतिक परिवेशको अभिव्यक्ति दी है। गिरिराज किशोरके अनुभवकी मानसिकता एवं रचना-प्रक्रियाके विकासको समझनेमें 'लोग' का महत्त्व सामान्यसे अधिक है। इसी क्रममें देखनेपर जहाँ 'लोग' की विशिष्टताको समझा जा सकता है, वहाँ लेखककी खूबियों-खामियोंको सही संदर्भमें देखा जा सकता है। क्योंकि 'लोग' की अनुभव सम्पदाही 'जुगलबन्दी' मे ज्यादा परिपक्व और विविध-व्यापक परिप्रेक्ष्य ग्रहण करती है।

भारतका स्वतन्त्रता आन्दोलन पर्याप्त जटिल स्तरों-प्रक्रियाओंसे जुड़ा हुआ है। तत्कालीन राजनीतिक घटकोंकी वास्तविक भूमिकाको समझनेके लिए गहरी अन्तर्दृष्टि की जरूरत है, इसके बिना आन्दोलनकी जटिलता सरलीकरणों-सामान्य निष्कर्षोंके सतही और चालू तरीकोंमें बदलकर गलत नतीजोंपर पहुंच सकती है। 'लोग' उपन्यास द्वितीय विश्वयुद्धके बाद स्वतन्त्रता प्राप्तिके पूर्वतककी देशकी सामाजिक-राजनीतिक पृष्ठभूमिसे सीधे जुड़ा है, जिसकी जड़ें बहुत पीछेतक मौजूद हैं। इसलिए तत्कालीन हलचलों, परिवर्तनों और प्रतिक्रियाओंकी अनुगूंज इसमें व्याप्त है। भलेही यह स्थिति उतनी व्यापकता और समग्रताके साथ अभिव्यक्ति न पा सकी हो। अपनी

सीमाओंमें यह उपन्यास तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं की तरफ बहुत स्पष्ट संकेत करता है।

अंग्रेजोंने शासनकी पकड़को मजबूत करनेके लिए भारतीयोंके प्रभावशाली वर्गोंको अपना वफादार बना लिया था। पदोन्नति, पदवियों तथा पुरस्कारोंके प्रलोभनसे इन वर्गोंके प्रमुख लोग अंग्रेजोंकी चाटुकारीमें लगे रहकर अपने देशके संघर्षशील साथियोंका मनोबल तोड़ देनेमें प्रमुख भूमिका निभाते थे। गाँधीजीके नेतृत्वमें भारतका बहुत बड़ा स्वतन्त्रताकामी वर्ग गुलामीको उखाड़ फेंकनेके लिए प्रयत्नशील था, लेकिन इसके कार्यक्रमोंको अंग्रेजोने अहिंसा और असहयोगकी सीमातक ही स्वीकार किया। यही कारण रहा कि हिंसा या क्रान्तिके माध्यमसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियों-गुटोंको गाँधीका—कांग्रेसका समर्थन नहीं मिल पाता था। द्वितीय विश्व-युद्धके बाद बादेके मुताबिक भारतका स्वतंत्र होना लगभग तय था। इस समयमें स्वतंत्रताके लिए होनेवाले आन्दोलनोंका यह निर्णायक दौर था। स्थितियोंकी नाजुकताको पहचान कर अंग्रेजोंने हिन्दू-मुस्लिम या भारत-पाकिस्तानकी मांग को बढ़ावा देकर अपने-आपको तथा भावी हितोंको पूरी तरह सुरक्षित कर लिया था। संक्रमणके इस कालमें अंग्रेजोंके पुराने वफादार, खैरख्वाहोंने हवाका रुख देखकर कांग्रेसका साथ पकड़ लिया था, क्योंकि इसीमें उनके हित और भविष्यकी सुरक्षा थी। हुकूमतके इन वफादारोंमें से कुछ अंग्रेजोंसे इस कदर जुड़े हुए थे कि उनके यहाँसे जानेका तय हो जानेके बादतक, बल्कि अबतक देशकी आजादीकी वास्तविकताको स्वीकार नहीं कर पाते। देश में 'नयी सामाजिक प्रवृत्तियां और शक्तियां अपना स्थान बना रही थीं। उस समयका अभिजात वर्ग अपने-आपको डूबता हुआ महसूस करने लगा, आर्थिक स्तरपर ही नहीं, सामाजिक एवं मान्यताओंके स्तरपर भी। उस वर्गसे सम्बद्ध हर एक वर्गके 'लोग' अपने-आपको 'छूट गया' हुआ-सा महसूस कर रहे थे। उन लोगोंके मनमें इस नये परिवर्तनके प्रति अरक्षा, मूल्यहीनता, संस्कारहीनता, उच्छृंखलता, विघटन आदि सब प्रकारकी आशंकाएं थीं। 'अंग्रेजोंका जाना उस पूरे वर्गके व्यक्तिहीन हो जानेकी सूचना थी।' (भूमिका, पृ. ७) 'लोग' उपन्यासमें इसी तरहके लोगोंकी विविध स्थितियोंकी यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। देशकी जटिल-संक्रमणशील परिस्थितियोंमें विभिन्न प्रकारके लोगों, उनकी भूमिका तथा महत्त्व इस उपन्यासमें पूरी प्रामाणिकताके साथ मौजूद है। तत्कालीन संयुक्त प्रान्तके पश्चिमी जिलेके एक भागसे सम्बन्धित यह उपन्यास 'लोग' अप्रत्यक्ष रूपसे समूचे देशमें घटित स्थितियोंका संकेत करता है। रावतपुरके रायसाहब यशवन्तराय जिन परिस्थितियोंसे गुजर रहे थे, ठीक वैसीही स्थिति हर रायसाहबकी थी, भलेही वह देशके किसी भागका क्यों न हो। यह बात अलग है कि उनमेंसे अधिकांशने अपनी सुरक्षाके लिए कांग्रेसको अपना लिया था, जबकि यशवन्तराय आखिरतक अंग्रेजोंके प्रति वफादार बने रहे, उन्हींके द्वारा अपमानित किये जानेके बावजूद। अन्ततक उनकी यह आस्था बनी रहती है कि 'अंग्रेज जैसी समझदार कौम दुनियांमें कोई नहीं।' (पृ. १२८)

'लोग' ऐतिहासिक दृष्टिसे द्वितीय विश्व-युद्धके बाद से लेकर स्वतन्त्रता पूर्वतक के संक्षिप्त लेकिन महत्त्वपूर्ण समयसे सम्बन्धित उपन्यास है। लेकिन इसमें अभिव्यक्त सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं-व्यक्तियोंका सम्बन्ध सूत्र पीछेतक के इतिहाससे जुड़ा हुआ है, इसी तरह इनका प्रभाव स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक-विकासपर भी देखा जा सकता है। इसीलिए 'लोग' को समूचे परिवेश के संदर्भोंसे काटकर नहीं देखा जा सकता। इसमें ब्रिटिश शासन, उसके वफादार वर्ग, कांग्रेस तथा अन्य घटकोंकी गतिविधियोंको समयके साथ बदलते-विकसित होते देखा जा सकता है। यह सब किसी आरोपित-एकांगी दृष्टिसे न देखा जाकर यथार्थकी पैनी दृष्टिसे देखा गया है, अतः प्रामाणिक और विश्वसनीय बन पड़ा है। द्वितीय विश्व-युद्धमें इंग्लैण्डकी जीतकी खुशीका उत्सव रायसाहब यशवन्तरायके यहाँ जिस तरह मनाया जाता है, वह उनकी सरकार-भक्तिके अनुरूपही है। रात्रिमें क्लबमें जीतकी खुशीमें आयोजित दावतमें कलईके गिलासमें शर्बत पीने वाले रायसाहबको शराब पिलाकर उनका धर्म खत्म कर देनेकी बातसे ही इस प्रसन्नतामें दरार पड़ जाती है। अंग्रेज मेमोंके प्रति रायसाहबके हल्केसे मजाकको कप्तान मिस्टर स्मिथ अपना अपमान समझता है, लेकिन क्रोधको दबा जाता है। रूलिंग क्लासका कॉम्प्लेक्स मिस्टर स्मिथ को हिन्दुस्तानी आदमीको बराबरीका दर्जा नहीं देने देता, फिर वह हिन्दुस्तानी अंग्रेजोंका कितनाही बड़ा वफादार क्यों न हो। स्मिथ रायसाहबकी गाड़ीको ब्राउनकी कोठी में न घुसने देकर बलपूर्वक घुसा दिये जानेपर घोड़ियोंकी पीटकर भगा देता है। इस दुर्घटनामें रायसाहबका पोता घायल हो जाता है। अपने इस अपमानसे बौखलाकर रायसाहब स्मिथपर रिवाल्वर तान लेते हैं, लेकिन ब्राउन

द्वारा बीच-बचावसे मामला शान्त हो जाता है। बादमें स्मिथ रायसाहबकी जमींदारीमें रहनेवाले लोगोंको परेशान करके उनका सिरदर्द बना रहता है । रायसाहब अपने विश्वस्त साथियोंको लेकर कमिश्नरसे स्मिथके दुर्व्यवहारकी शिकायत करने जाते हैं । बादमें एक दावतमें कमिश्नर दोनोंके हाथ मिलवाकर शत्रुताको समाप्त करा देते हैं।

भारतकी स्वतन्त्रताका निश्चय होतेही अंग्रेजोंको वफादारोंकी उतनी जरूरत नहीं रह गयी थी। उन्होंने रायसाहब वर्गसे अलग उभरती हुई कांग्रेस तथा मुस्लिम लीगके प्रति उदार रवैया अपनाकर इन्हें अपेक्षित कर दिया था। दूसरी तरफ जनताभी अब इनकी उपेक्षा, यहाँ तक प्रत्यक्ष अपमान करनेमें चूकती नहीं थी। इस अन्तविरोधी स्थितिमें यह वर्ग तय नहीं कर पा रहा था कि किधर जाये ? बीस वर्षसे म्युनिसिपैलिटीके चेयरमैन पद पर आधिपत्य जमाये रखनेवाले यशवन्तरायको, स्थानीय राजनीतिका रुख बदल जानेके कारण चुनावमें हारका सामना करना पड़ता है। रायबहादुर जगदीशशरण, खानबहादुर इकरामुल हक और उमरासिहकी संगठित शक्तिका सामना करनेके लिए रायसाहबका पुत्र तथा हितैषी शराबसे लेकर वेश्यावृत्तितक का सहारा लेते हैं, लेकिन सब व्यर्थ जाता है। 'नाईटहुड' के लिए अपने साथ इकरामुल हकका नाम भेजे जानेपर रायसाहबको दुःख होता है। कर्जसे लदे होनेपर भी वह और कर्ज लेकर गवर्नरतक से मिलने जाते हैं, लेकिन उन्हें सब तरफसे निराशाही हाथ लगती है। परिवार तथा परिचितोंपर छा जानेवाला रायसाहबका व्यक्तित्व ढीला पड़ने लगता है। इन अप्रत्याशित परिस्थितियोंकी खीझ वे नौकरों, परिचितोंपर उतारते हैं। हर तरफ उन्हें अपने खिलाफ षडयन्त्र नजर आने लगता है। अंग्रेजोंके रौब और रुतबे की आड़में पलनेवाले रायसाहब उनका साया हटतेही असहायसे रह जाते हैं। दूसरे अवसरवादी लोग कांग्रेस की आड़में अपनी स्थिति बनाये रखकर व्यावहारिकताका परिचय देते हैं, जबकि रायसाहब उसे स्वीकार नहीं कर पाते।

गिरिराज किशोरने विभिन्न प्रकारके चरित्रोंके माध्यमसे घटनाओंके घात-प्रतिघात तथा प्रतिक्रियाओं द्वारा परिवेशकी समग्र विशेषताओंको उभारनेकी कोशिश की है। क्लबके बाहर साईसों-ड्राइवरोंके वार्तालाप, टाउन पार्कमें बैठे लोगोंकी तात्कालिक [illegible] ज्यादा सहज-स्वाभाविक तथा सघन हो उठा है। रायसाहब तो समूची घटनाओंके केन्द्रबिन्दु हैं ही, उनके साथ लाला चतरसिंह, कुंवर किशोरीरमण, रायबहादुर जगदीशशरण, राय नीलमणिकांत, राधिकानाथ चतुर्वेदी, जोशीजी, देवा, काका साहब, देवाकी पत्नी तथा नौकरों के माध्यमसे स्थानीय तथा राष्ट्रीय स्तरकी सामाजिक-राजनीतिक घटनाओंका वास्तविक तथा जटिल स्वरूप उभरा है। ये सारी स्थितियाँ रायसाहबके साथ छायाकी तरह लगे रहनेवाले दस-बारह वर्षके पोतेकी स्मृतियोंके रूपमें व्यक्त हुई हैं। नैरेटरके रूपमें यह लड़का परिवेशकी प्रत्येक सूक्ष्मताके प्रति सजग है। माँकी मृत्यु हो जानेके कारण इसे रायसाहबका विशेष स्नेह प्राप्त है। प्रायः अधिकांश घटनाओंका प्रत्यक्ष द्रष्टा होनेके कारण, जानकारियोंकी प्रामाणिकताके बावजूद अपरिपक्व नैरेटरकी यह असाधारण परिपक्व दृष्टि अस्वाभाविक लगने लगती है। पढ़ने-लिखनेके बजाय बड़ोंकी बातोंमें बैठा रहनेवाला यह असमय परिपक्व लड़का प्रत्येक पात्रके चेहरेपर घटनाओंकी सूक्ष्म प्रतिक्रियाओंको आसानीसे पहचान लेता है। रायसाहबके आन्तरिक बाह्य जीवनकी छोटीसे छोटी घटनाओंके सूत्र कैसे न कैसे उसे मिलही जाते हैं। यही वजह है कि उपन्यासमें इतने सजीव और प्रत्यक्ष चित्र मौजूद हैं। नैरेटरकी बड़ोंकी बराबरीकी भावना तथा मान-अपमानकी तीव्र अनुभूति, कहीं-कहीं अतिरिक्त चतुरता दिखाये जानेके स्थल बचकाने और हास्यास्पद हो गये हैं।

समकालीन राजनीतिक घटनाओंके प्रति रायसाहब तथा अन्य लोगोंके विचार तथा दृष्टिकोणोंसे भारतीय समाजके विभिन्न वर्गके लोगोंकी प्रतिक्रियाओंको जाना समझा जा सकता है। स्वतन्त्रताके पूर्वकी उभरती जनशक्तिके संकेतोंको उमरासिह, इकरामुल हक, डा. चन्द्रा, जैसे लोगोंके क्रिया-कलापोंमें देखा जा सकता है। उमरासिहके चमार होनेके कारण उसे कुचलनेकी कोशिश भी कम नहीं की जाती। इसी धारामें राय नीलमणिकान्त और चतरसिह जैसे लोगभी शामिल हो जाते हैं। स्वतन्त्रतासे पहले देशमें गांधीजीके प्रयासोंको निरर्थक मानकर उनकी आलोचना करनेवाले अंग्रेज और अंग्रेज-परस्त लोगोंका बहुत बड़ा वर्ग था। इनमें रायसाहबोंके साथ जनसामान्यभी थे। यशवन्तराय और हवलदार अमरसिह जैसे लोग आजभी मौजूद हैं, जो अंग्रेजी शासन [illegible] ते। इस दृष्टिसे रायसाहबके

गांधीजी तथा उनके मध्यमार्गीय आन्दोलनके बारेमें व्यक्त विचारोंकी जानकारी दिलचस्प हो सकती है। वे गांधीजीके सत्याग्रहके बारेमें कहते हैं कि 'महात्माका बाना पहनकर सियासतकी लड़ाई लड़ना बेईमानी है··· हिन्दुस्तान ऐसा देश है किसीके सामने महात्माके आ जानेका मतलब उसकी मजबूरी होती है,' या 'अगर महात्माजीकी इस जनाना धमकीके सामने सरकार घुटने टेक गयी तो मेरी नजरोंसे वह भी गिर जायेगी।' (पृ. ६८) या 'गांधी अपनेको होशियार समझते हैं। सियासतमें अंग्रेजोंके सामने अभी बच्चे हैं। डंडे खाकर, जेलोंमें सड़कर गांधी, गांधी बने···।' (पृ. १२८) या 'अंग्रेजोंका अपने-आप मुल्क छोड़कर चले जाना गांधीकी जीत है? किस मुंहसे गांधी उसे जीत मानेंगे···।···शिकारके बाद शेरको लौटते देखकर अगर जंगलके जानवर ये समझें, शेर हमारे डरसे लौटकर जा रहा है, इसमें शेरका क्या कसूर।' (पृ. १२६) इस पूरे नजरियेके पीछे अंग्रेज-भक्ति है, भविष्यके प्रति असुरक्षाभी है। इसीलिए रायसाहब, नीदरसोलको, आन्दोलनको ताकतसे दबा देनेकी सलाह देना नहीं भूलते। नीदरसोल द्वारा कांग्रेस ज्वाइन करनेकी बात कहनेपर भी वह इस कटु यथार्थकी अनदेखी कर जाते हैं। उन्हें सबसे अधिक चिन्ता इसकी है कि 'जमींदारोंकी क्या स्थिति होगी···हम लोगभी हाथोंमें थैले लटकाये सड़कोंपर घूमा करेंगे। नौकरोंके सौ-सौ साल पुराने घरोंसे कहना होगा, आप लोग अपना इन्तजाम करें।' (पृ १३०) इसका आभास उन्हें अपनी बिगड़ती आर्थिक स्थितिसे ही हो जाता है। गवर्नरसे मुलाकातके बाद पड़े प्रभावके कारण उन्हें मानना पड़ता है कि 'सिक्का बदल गया। हमें अपनी-अपनी दूकान समेट लेनी चाहिये।' (पृ. १७८) लेकिन अन्तमें वे धारामें एक द्वीप बनकर रह जाते हैं।

यह उपन्यास विशिष्ट लोगोंसे सम्बन्धित होते हुए भी जनसामान्यके जीवनको अपनेमें समेटता है। टाउन-हाल पार्कमें लोगोंकी बातचीत, महतरानियोंके झगड़ेका स्थल इस दृष्टिसे उल्लेखनीय हैं। यह बात 'लोग' के तीसरे संस्करणको पढ़करभी कही जा सकती है कि—नैरेटरको शिल्पका अनिवार्य अंग बना देनेके कारण कृतिमें थोड़ी ढील आ गयी है, अन्यथा उपन्यास बड़ा सुगठित है। पृ. ४१ पर 'इसलिए तो मैं दीनाके कहनेपर' वाक्य में दीनाकी जगह 'वजीर' शब्द आयेगा। पृ. ७६ पर 'कमिश्नर साहब और···थैंक्यू वेरी मच'··· [illegible] वाक्य अस्पष्ट है। पृ. ११७ पर 'दीनाने बाबासे कहा था' के बजाय 'बाबाने दीनासे कहा था' होगा। स्वतन्त्रतासे पूर्वकी जटिल स्थितियोंसे परिचयके लिए 'लोग' महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, अपनी सीमाओंके बावजूद···।

—मूलचन्द गौतम

जुहीगंध

लेखक : देवप्रकाश; प्रकाशक : समानान्तर प्रकाशन, ७/८ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। मूल्य : २०.०० रु.।

कवि, लेखक और चित्रकार देवप्रकाशकी प्रस्तुत रचना 'जुहीगंध' मरणोपरान्त प्रकाशित हुई है। दो सौ से ऊपर पृष्ठोंका यह उपन्यास भाव-जगत् और यथार्थ जगत्के संघर्षकी अद्भुत रोमांचक गाथा है। जीवनकी चाह, क्षमता, पकड़ और असीम संवेदनशीलता लेकर कथाकार सर्वथा एकहरी और सपाट वर्णनात्मक कथामें अद्भुत आकर्षण पैदा कर देता है। उसकी असाधारणता का परिचय पूरी कहानीसे अधिक एक-एक पृष्ठमें मिलता चलता है। कथा संसारको समेटकर वेगसे चलता हुआ कथाकार स्थितियोंसे बराबर टकराता है और कथानायक टकरा-टकराकर टूटता और टूट-टूटकर जुड़ता चलता है। उसके भीतर जिजीविषाकी भयानक आग है और यह कभी ठण्डी नहीं होती है। आधुनिकताकी विविध शोभा-चरिताओं, कुंठाचित्रावलियों और दस्तावेजी साहस-गाथाओं आदिसे परे 'जुहीगंध' वास्तवमें सर्वथा नये स्तरकी सृष्टि है जिसमें प्राणोंकी धड़कन साफ-साफ सुनायी पड़ती है। उसका प्राणवान् नायक अर्थात् 'मैं' एक साक्षात् रोमांच है और यह रोमांच पूरी पुस्तकमें कहींभी बुझता नहीं है। वैयक्तिक जीवनके क्रांतिकारी गुरिल्लाकी भांति वह भीतर नाना स्तरपर बराबर लड़ाई जारी रखता है। ऐसी लड़ाईके लिए कलाके अन्तःधर्म को जिस सीमातक प्रगतिशील होना चाहिये वह सीमाभी इस कृतिमें साफ-साफ उभारी गयी है।

गहरी भावात्मकताके साथ मानवी और देवनकी प्रेम-कहानी आरम्भ होती है। ट्रेनका परिचय प्रेममें परिवर्तित हो जाता है। प्रगाढ़-प्रेम होनेपर भी विवाह न हो सकनेकी विवशताका चित्रण असाधारण है। देवेन अर्थात् पत्रकार साहित्यकार देव-नन्दन और मानवी एक दूसरेसे जुड़कर भी नहीं जुड़े तो नियति-चक्रने उन्हें पृथक्-पृथक्कर अपने दुर्भाग्य चक्रोंको पूरा करनेके लिए अलग-अलग फेंक दिया। प्रस्तुत उप-

न्यासमें इन्हीं दो अभिशप्त चक्रोंकी कहानी है। मानवी को अपने पतिको छलना पड़ा, प्रेमी और पुत्रसे पृथक् होना पड़ा, वेश्या बनना पड़ा; देवेनको विवाह करना पड़ा, विवाहकी आगमें स्वयं जलकर फिर पत्नीकी असली चिता में आग देनी पड़ी, उसका स्मृति-दंश लिये विधुर जीवनको कहां-कहां भटकाना पड़ा, इस भटकावमें हत्यारा बन अदालतमें जुर्म स्वीकारकर आजीवन कारावासकी मंजिलतक पहुंचना पड़ा। अभिशाप-चक्रके पूरे होनेपर मानवी-देवेन मिले तो बीचका अन्तराल बिन्दु देवेश जुदा हो गया और अन्तके कई पृष्ठोंमें कहानीकी ठण्डी आग जीवनका एक मार्मिक दर्शन बन पाठकोंको उलझाये-उलझाये बुझ जाती है। इस प्रकार जबलपुर, वाराणसी और कलकत्ताके बीच एकतान कसी कहानीमें प्रेम, पारिवारिकता, मैत्री, मानवता, घुमक्कड़ी और गहरी भावात्मकताके साथ यथार्थ जीवनकी कड़ुवाहटका अद्भुत स्वाद घुला मिला है। मनुष्य और मनुष्यके बीच जो मुहब्बतका रिश्ता है उसकी अभिव्यक्ति इस कृतिमें बहुत मार्मिक ढंगसे हुई है। कृति क्या है, पात्रों और घटनाओं का एक छोटा-सा जंगल है किन्तु इस जंगलमें एक साहित्यकार और पत्रकारके प्रेमी जीवनका वह निश्छल स्वर है जो पाठकोंको कहींभी भटकने नहीं देता है और नाना प्रकारकी सनसनियोंके बीच साहित्यिक यात्राका रोमांच बन कृतिको पठनीय बनाता है।

☐ विवेकी राय

सूरजके आनेतक

लेखक : डॉ. भगवतीशरण मिश्र; प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-०००६। पृष्ठ : १६८; का. ८१; मूल्य १८.०० रु.।

आजादीके इतने वर्ष बीतनेके बादभी गांवमें अंधविश्वास, कुरीतियां, उत्पीड़न, शोषण, असामनता, भेद-भाव आदि विद्यमान हैं। शासनकी तमाम विकास योजनाएं भी इन कुसंस्कारोंको नष्ट नहीं कर पायीं। समाजोत्थान और विकासके कार्यक्रमोंको वहां जड़ जमाये बैठी सामाजिक कुरीतियां और अन्धविश्वास पनपने-फैलने ही नहीं देते। दूसरी ओर सरकारी तंत्रभी भ्रष्टाचारका शिकार है। यदि हमें भारतीय समाजको ऊपर उठाना है तो इन कुरीतियों और भ्रष्टाचारोंको समाप्त करना होगा। इसके लिए शासन द्वारा परिचालित प्रौढ़ शिक्षा जैसी विकास योजनाओंका लाभ उठाकर उन्हें अपने जीवनमें अपनाना होगा। इस सबके लिए नूनू बाबा और शतंरूपा बुआ जैसा धवल और उदार चरित्र आवश्यक है। बिना चरित्र और सद्भावके कोईभी कानून समाजको नहीं बदल सकता। उपन्यासका यही प्रमुख प्रतिपाद्य है।

बाजीतपुर और बेनसागर सदियों पुराने दो पड़ोसी गांवोंमें अन्धविश्वास, जाति-पांति, ऊंच-नीच, अशिक्षा-अज्ञान और शोषण आदिकी प्रवृत्तियां कुण्डली मारकर बैठी हैं। यद्यपि नूनू बाबा जैसे उदार-साधक लोगोंको परिवर्तन और सुधारके लिए प्रेरित तथा संगठित करते हैं किन्तु गोवर्धन जैसे पोंगा पण्डित सामान्य लोगोंकी भावनाओंको उभारकर सब कुछ मटियामेट कर देते हैं। कुसंस्कारग्रस्त अन्धविश्वासी ग्रामीण भावावेशमें अपना ही अनर्थ कर डालते हैं क्योंकि उनमें वह ज्ञानही नहीं है।

इन्हीं दो गांवोंके बीच लगाये गये प्रौढ़-शिक्षा शिविर में भी वे एक साथ मिलकर बैठनेको तैयार नहीं हैं। लेकिन नूनू बाबाकी समझाइश काम करती है और तमाम लोग शिविरके काममें जुट जाते हैं। शिविरके प्रभावके कारण पतिका पियाजी नाम होनेके कारण प्याजका उच्चारण करनेमें संकोच करनेवाली रूपा जैसी महिलाएं समाज-सेवामें आगे आने लगती हैं। तभी जाति और धर्मके नामपर गोवर्धन लोगोंको भड़काकर प्रौढ़ शिक्षाके कार्यकर्ताओंपर गांववालोंसे प्राणघातक आक्रमण करवा देता है। किंतु लालमोहर जैसे लोगोंके वहां समयपर पहुंच जानेसे परियोजना अधिकारी राधा आदि सभी लोगों प्राण बच जाते हैं। लालमोहर स्वयं गम्भीर रूपसे घायल होता है और उसे तुरन्त अस्पतालमें भरती किया जाता है जहां राधा पूर्ण मनसे उसकी सेवा करती है। उधर परियोजना अधिकारीकी रिपोर्टपर गोवर्धनको गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया जिससे गांववाले उत्तेजित हो जाते हैं। उन्हें यहभी भ्रम हो जाता है कि इस सबमें नूनू बाबाका हाथ है। फलत: वे नूनू बाबाका बहिष्कार कर देते हैं। नारायण जैसे एक दो लोगही छुपकर बाबा से सम्पर्क बनाते हैं। मंदिर सूना हो जाता है। परन्तु गांवके सभी सम्प्रदायोंके प्रयत्नसे हरिजन कमला द्वारा तैयार भोजनसे भगवानका भोग लगाया जाता है और सब लोग उसी भोजनको ग्रहण करते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि सभी लोग ईश्वरकी ही सन्तानें हैं।

अस्पतालमें मरणासन्न लालमोहरकी राधा द्वारा जी-जानसे सेवा और खून देनेसे वह बच जाता है। दोनों परस्पर विवाहका संकल्प लेते हैं। नूनू बाबा तथा राधा आदि सभीके समझानेपर स्थितियोंको अनुकूल बनाने तथा ग्रामीणजनोंके हृदय बदलनेके लिए परियोजना अधिकारीने अपनी रिपोर्ट वापस लेकर गोवर्धनको जेलसे छुड़वा दिया । जेलमें गोवर्धनको विवश होकर मेहतर आदि सभीके हाथोंका खाना-पानी ग्रहण करना पड़ा। अतः जेलसे लौटनेपर उसका हृदय पूर्णतः परिवर्तित हो चुका था। उसे अनुभव हुआ कि ऊंचनीच और छुआछूत जैसी बातें निरर्थक है हैं। गोवर्धनके बतानेपर उनके सारे भ्रम दूर हो जानेपर बाजीतपुर तथा बेनसागरके सरपंच आदि सभी लोग नूनू बाबा सेअपने कार्यों के लिए क्षमा मांगते हैं। वहीं राधा और लालमोहर का विवाह होता है। बाबा अपनी सारी जायदाद राधाको देकर मन्दिरसे भगवान उठाकर सेवाकेन्द्र खोलनेके लिए दे देते हैं और स्वयं शतरूपा बुआके साथ राधाकृष्ण सहित शिवशरण शास्त्रीके साथ ब्रजको रवाना हो जाते हैं। उसी समय गोवर्धन अपने बी. एस-सी. पुत्रका विवाह हरिजन कमलाके साथ करनेकी घोषणा करके सभीको आश्चर्यचकित कर देता है और इस प्रकार उपन्यासकी सुखद समाप्ति होती है।

गांवोंमें परिवर्तनका उपन्यासका लक्ष्य समझमें आता है और यहभी कि परिवर्तनके लिए चारित्रिक और भावगत परिवर्तनही प्रभावशाली हो सकता है, कोई कानून नहीं। किन्तु हर बातपर ईश्वरीय प्रसंग और भाग्यवादी विश्वासको जोड़नेकी बात कुछ अजीब-सी लगती है। ऐसा लगता है जैसे लेखक सामाजिक अन्धविश्वाससे हटा कर कथाको धार्मिक अंधविश्वासके निकट ले जा रहा है। जब गांवमें इतना तनाव और दुखद गम्भीर वातावरण हो तब गांव और जेलको छोड़कर नारायण सहित वाराणसी जाकर गंगा स्नान करनेका कोई औचित्य समझमें नहीं आता। उपन्यासमें गाँधीवादी प्रभाव स्पष्ट है।

भाषा और शिल्पकी दृष्टिसे उपन्यास सामान्य है। कथा रुकती-बिरमती चलती है । कहीं-कहीं भावोंकी पुनरावृत्ति भी है किन्तु कथासूत्र छूटते नहीं हैं। उत्सुकता भी बनी रहती है।

कुल मिलाकर यह उपन्यास किसी नवीनताका दावा नहीं करता। वह तो आजादीके इतने वर्ष बादभी भारतीय गांवोंकी दशाकी झलक हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

☐ गंगाप्रसाद गुप्त

कहानी संग्रह

दो समानान्तर

कहानीकार : रघुवीर सिन्हा; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१-एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : ११२; क्रा. ८०; मूल्य : १५.०० रु.।

'दो समानान्तर' 'एक विरासत और' के बाद रघुवीर सिन्हाका दूसरा कहानी संग्रह है, जिसमें उनकी ग्यारह कहानियां संगृहीत हैं । सिन्हाजी हिन्दीके उन कतिपय समर्थ कथाकारोंमें हैं, जिनकी चुम्बकीय प्रतिभा प्रथम परिचयमें ही पाठकको बांध लेती है । लेखकका केनवास यद्यपि बहुत विस्तृत नहीं है, किन्तु जिस विषय को लेकर चले हैं, उसी अथाह गहराइयोंको दूर-दूरतक माप आये हैं। अतएव विषयवस्तुकी एकरूपताके होते हुएभी ये कहानियां ग्राह्य बन पड़ी हैं।

रघुवीर सिन्हाका कथासंसार प्रमुख रूपसे मानव सम्बन्धोंका संसार है। उसमें कहीं अकेलेपनकी पीड़ा है, तो कहीं नगण्यताबोधकी छटपटाहट; कहीं अतीतसे मुक्त होकर वर्तमानसे न जुड़ पानेकी व्या-

कुलता; कहीं प्रतीक्षाकी विवश वेदना है, तो कहीं आगत के प्रति सशंक चौकन्नापन, तात्पर्य कि ये कहानियां टूटते-बनते रिश्तोंको विभिन्न कोणोंसे देखने-समझनेका प्रयास करती हैं। दरअसल हुआ यह है कि वर्तमान युग की व्यावहारिक चेतनाने सम्बन्धोंकी तरलताको बुरी तरह सोख लिया है और हमारे स्वार्थ-पोषित समाजमें उनकी स्थिरता उपयोगिताके मानदण्डपर टिककर रह गयी है। फलस्वरूप भावुकताके नाजुक रेशोंसे बने संबंध-सूत्र किसीभी क्षण झटका खाकर टूट जाते हैं और मनुष्यको छोड़ जाते हैं नितान्त अकेला और असहाय ! मध्यवर्गीय मानवकी, खास तौरपर नारीकी, यह विवश वेदना अपनी सम्पूर्ण जीवन्तताके साथ इस संग्रह की कहानियोंमें व्यक्त हुई है।

'एक और अध्याय', 'राजीवके नामपर' तथा 'अनाम आवाजें' दाम्पत्य सम्बन्धोंके विघटनकी कहानियां हैं। 'एक और अध्याय' एक समर्पित पत्नीकी व्यथा-कथा है, जो पतिकी विदेशी 'फैलोशिप' मिल जानेपर असीम आनन्द और आत्म गौरवका अनुभव करती है। बड़े गर्व से सबके सामने इस उपलब्धिका बयान करती है, अपने स्टाफके साथ जशन मनाती है तथा तैयारीके लिए पति को अपने प्रोविडेन्ट फण्डसे तीन हजार रुपये निकालकर दे देती है; किन्तु बदलेमें पाती है एक अन्तहीन प्रतीक्षा जिसकी परिणति 'रौंचिंग विद मेरी' में होती है।

'राजीवके नामपर' की सुमिधाकी पीड़ाभी लगभग इसी स्तरकी है। अक्सर सरकारी दौरोंपर रहनेवाला राजीव एक बार जब लम्बे अन्तरालके बाद घर लौटता है, तो सुमिधाको लगता है कि वह अपने आपको कहीं छोड़ आया है। जैसे-जैसे दौरोंकी संख्या और अवधि बढ़ती जाती है, दूरीका एक अहसास तीव्रतर होता जाता है और एक दिन शब्दोंका रूप धारणकर एक विकराल दैत्यकी तरह सुमिधाके सामने खड़ा हो जाता है।

'अनाम आवाजें' भी दाम्पत्य सम्बन्धोंके बीच बढ़ती जाती दरारोंकी कहानी है, जो पत्नीके प्रति पतिकी निर्मम उपेक्षा और बेलाग निःसंगताकी वेदनाको मार्मिक अभिव्यक्ति देती है। कई बार पतिकी इस तरहकी उदासीनता केवल व्यावसायिक उलझनों और व्यस्तताओंसे नहीं उपजती, अपितु एक मनोवैज्ञानिक ऊबका परिणाम होती है, जो समयांन्तरमें पुरुषके स्वभावका एक अंग बन जाती है। इस तथ्यका सुन्दर उद्घाटन इस कहानीमें हुआ है।

'निःशेष कथा', 'सुखका एक टुकड़ा', 'संशयकी शाम' और 'सुनो दिनेश' मानव व्यवहारकी छानबीन करने वाली कुछ अन्य कहानियां हैं, जो पुरुष-नारी सम्बन्धोंके कई आयाम प्रस्तुत करती हैं। 'निःशेष कथा' उन सहज उन्मुक्त सम्बन्धोंकी कहानी है, जिन्हें कोई नाम नहीं दिया जा सकता, किन्तु जो लम्बे समयतक अपने कोमल बन्धनोंमें मनको बांधे रखते हैं। क्या पुरुष और नारीके बीच उसी स्तरका आदान-प्रदान नहीं हो सकता, जैसा दो मित्रों या दो सहेलियोंमें होता है ? कहानी हमें इस प्रश्नके सामने लाकर खड़ा कर देती है।

'सुखका एक टुकड़ा' अंकुरित होते-कुम्हलाते प्रणय सम्बन्धोंकी कहानी है। प्रतिमाका कोमल हृदय, परिचय की सीमा लांघकर कुमार साहबको लेकर जो सुनहले सपने संजो लेता है, वे यथार्थकी क्रूर चट्टानसे टकराकर चकनाचूर हो जाते हैं। प्रतिमा देखती है कि उसकी छोटी बहिन विनीता उसे पीछे छोड़कर बहुत आगे निकल गयी है, तो वह अपनी तमसावृत्त दुनियांमें पुनः लौट जाती है।

'संशयकी शाम' अतीतसे कटकर वर्तमानको स्वीकारनेके कसकते हुए प्रयासकी कहानी है। मनुष्य विशिष्ट स्थितिमें अतीतका एक झटकेके साथ तोड़कर चल देता है, पर ऐसा केवल ऊपरसे हो पाता है। अन्दरसे वह कहीं गहरेतक अतीतसे जुड़ा रहता है और जैसेही वर्तमान की पकड़ ढीली होने लगती है, कोई अज्ञात शक्ति उसे अतीतके सामने लाकर खड़ा कर देती है।

'सुनो दिनेश' भी अतीतसे जुड़ी संवेदनाओंकी ही कहानी है। दिनेश और मनीषा अपने-अपने अतीतसे इस कदर आक्रान्त हैं कि उससे मुक्त होकर नूतन वर्तमानको स्वीकार करनेका साहस नहीं जुटा पाते। फलस्वरूप दोनों के बीच अंकुरित होते प्रणय सम्बन्ध मित्रताकी देहलीपर आकर ठहर जाते हैं।

विवेच्य संग्रहकी कहानियोंका एक अन्य पहलूभी है, जो 'चिर स्थगित' 'सूरजसे पहले' तथा 'दो समानान्तर' प्रभृति कहानियोंमें परिलक्षित होता है। इन कहानियों की संवेदना सीधे युगीन समस्याओंसे सम्पृक्त है। सामाजिक एवंआर्थिक प्रश्नोंके बीच टूटते-कसमसाते मध्यवर्गीय मानवकी विवशताका बहुत सुन्दर अंकन इन कहानियों में हुआ है। 'चिर स्थगित' अन्यान्य कारणोंसे इण्टरव्यूके बार-बार स्थगित होनेकी वेदनाको भोगनेवाले एक प्रतीक्षारत बुद्धिजीवीकी बेवसीका चित्रण करती है, तो 'सूरजसे पहले' सरकारी दफ्तरोंकी आन्तरिक विद्रूपता के शिकार एककर्मचारीके आक्रोशका, जिसका केस निशाचर वृत्ति 'इत्यादि तत्त्व' के कारण अन्वितिके छोरतक आते-आते [illegible] बिखर जाता है।

सामाजिक संवेदनाकी इन कहानियोंमें 'दो समानान्तर' का विशिष्ट स्थान है। यह एक ऐसी मध्यवर्गीय नारीकी घुटनकी कहानी है, जिसका सारा व्यक्तित्व अभावग्रस्तताकी आगमें विगलित होकर बह गया है और जो वर्तमानकी कटुताओंसे घबराकर एकान्त क्षणोंमें अतीतमें विचरण करने लगती है।

'प्रश्नोंसे भरे वे दिन' एक भिन्न चेतनाकी कहनी है, जो इस तथ्यका निरूपण करती है कि प्रश्नाकुल जीवनका भी अपना आकर्षण है। धैर्य और सन्तोष ऐसी स्थितिमें अवलम्बन बनते हैं तथा चुनौती और संघर्ष आगे बढ़नेकी प्रेरणा देते हैं।

रघुवीर सिन्हाकी ये कहानियां युगीन यथार्थके विभिन्न आयामोंका स्पर्श करती हैं और विसंगतियोंकी भयावहताको मूर्तकर पाठकको चेतनाको आन्दोलित करती वैचारिकताके इस युगमें यथार्थका दामन छोड़े बगैर पाठकों को संवेदनात्मकताके रससे सराबोर करनेवाली इन कहानियोंका महत्त्व अक्षुण्ण है।

शिल्पके स्तरपर भी ये कहानियां सुन्दर बन पड़ी हैं। मानसिक संघर्षकी अभिव्यक्तिके लिए ज्वार-भाटा (पृ. ८९) तथा हार्दिक आघातके लिए शीशेका तड़तड़ाकर टूट जाना (पृ. ९३) आदि प्रतीक, पुराने होते हुएभी, प्रेषणीयतामें सहायक हुए हैं। किन्तु 'उसकी एक क्लास-फेलो किसीके प्यारमें थी', जैसे अंग्रेजी शैलीके वाक्य अखरते हैं।

□ डॉ. तेजपाल चौधरी

रजत-जयन्ती

लेखक : प्रो. हरिशंकर आदेश, जीवन ज्योति प्रकाशन, आदेश आश्रम, औरंगजेब मेन रोड, सांवां, त्रिनिडाड (वेस्ट इंडीज)। पृ. ७० : ६०।

प्रवासी भारतीय द्वीपोंमें त्रिनिडाड (वेस्ट इंडीज) का अपना अलगही महत्त्व है। इस द्वीपमें हिन्दी भाषाका पठन-पाठन भारतीय संस्कृति और धर्मके लिए तो होता ही है, पर अब यहां साहित्य-सृजनकी भी बेल लहलहा उठी है। प्रस्तुत कहानी संकलन 'रजत जयन्ती' उसी बेलका सुन्दर पुष्प है। कहानीकार आदेशकी सात कहानियोंका यह संग्रह है। इसके पहले 'मर्यादा' तथा 'निशा की बाहें' कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कहानी-रचना के उद्देश्यके बारेमें स्वयं कहानीकार कहता है—'जिस साहित्यका उद्देश्य जीव-मात्रका हित नहीं होता, उसे साहित्यकी कोटिमें नहीं रखा जा सकता। इसीलिए साहित्य-मनीषियोंने साहित्यमें सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् का समन्वय अनिवार्य माना है। साहित्य जीवनकी प्रतिकृति होता है, विशेषतया कथा-साहित्य। जो कहानी जीवन की कहानी कहनेमें असमर्थ रहे, उसे एक सफल कहानी का विशेषण नहीं दिया जा सकता। (पृ. २, प्राक्कथन)

संकलनकी सात कहानियां क्रमशः लहूकी पहाड़ियां, कोलाहल, जीत, वन्दना, नन्हीं जान, कीचड़ और रजत जयन्ती हैं। प्रथम कहानी 'लहूकी पहाड़ियां' कश्मीर क्षेत्र से सम्बन्धित है तथा युद्धके वातावरणमें लिखी गयी है। कर्तव्य और प्रेम दोनोंमें संघर्ष है। बसन्तीके प्रेम-प्रवाह से अणुसिंह शत्रुओंकी सेनाको परास्त करता हुआ पहाड़ियोंको लहूसे भर देता है। रोमांच' साहस और धैर्यके प्रतीकके रूपमें प्रस्तुत कहानी एक सफल युद्ध-कहानी है। 'कोलाहल' में आजके समाचारपत्रोंकी असावधानीको केन्द्रित करके एक विद्यार्थीके परीक्षाफलके अघोषित होने पर उसके द्वारा सामाजिक भयसे त्राण पानेकी छटपटाहट के फलस्वरूप आत्महत्या इस कहानीका दुखान्त पहलू है। जबकि वह विद्यार्थी कक्षाका सर्वश्रेष्ठ छात्र था।

वेस्ट इंडीज अपने क्रिकेट खेलके लिए विश्वप्रसिद्ध है। इसी परिप्रेक्ष्यमें लिखी गयी कानपुरके दो महाविद्यालयोंके मध्य खेले गये क्रिकेट मैचको केन्द्र मानकर'जीत' कहानीकी संरचना हुई है। खेलका उत्साह, अनुत्साह, आशा-निराशा और कौतूहलसे संपृक्त कहानी एक ऐसे खिलाड़ीकी कथा प्रस्तुत करती है जोकि अपने समयका सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी था पर किसी कारणवश वह खेलसे संन्यास ले लेता है। पर जब महाविद्यालयकी प्रतिष्ठाका प्रश्न उठता है तो वह स्वयं खेलनेको तैयार हो जाता है तथा जीतकर पुरस्कार एवं यशकी जय-ध्वनिभी नहीं सुनता।

'वन्दना' पत्रात्मक शैलीकी कहानी है। इस प्रकार की कहानियां एकांगी होती हैं पर उनमें व्यक्तिगत अभिव्यक्तिही अधिक होती है। 'नन्हीं जान' समाजके शोषित और उसकी घृणित एवं अनाचारी प्रवृत्तिका पर्दाफाश करती हैं। वेश्याओंका मुजरा, नृत्य और फिर उनकी अदाएं ही कामी और अतृप्त व्यक्तियोंको अपनी ओर हाठात् खींच लेती हैं। किन्तु कहानीकारने संगीतको लक्ष्यकर कहानी को रागात्मक स्वर-लहरीसे भर दिया है। साथही समाज में व्याप्त कुकृत्य और कदाचारको सामने लानेमें नहीं

चूका ।

'कीचड़' महाभारतके प्रसंगसे ओत-प्रोत है । कुरुक्षेत्र की रणभूमिमें कर्ण और पाण्डवोंमें जिस न्याय और अन्यायका संघर्ष होता है उसमें अर्जुन और कर्णके पक्षको तर्ककी कसौटीपर कसते हुए कहानीकारने रोचक ढंगसे इस समस्याका समाधान किया है । इस पौराणिक आख्यानको जन-जीवनका आख्यान बनानेका प्रयास कहानीकारकी अपनी सूझ है । समाजमें न्याय और अन्याय के बीच सदा संघर्ष होता है अतः न्यायका पक्ष लेनाही चाहिये, भलेही उसके लिए कीमत क्यों न चुकानी पड़े ।

अन्तिम और ग्रन्थ-शीर्षककी कहानी 'रजत जयन्ती' है जो प्रणय-कथा है, परिणयकी पच्चीसवीं वर्ष गाँठपर लिखी गयी है । प्रेमी अपनी प्रेयसीको सदा सुन्दर एवं आकर्षक मानता है क्योंकि कहानीकार आदेशकी दृष्टिसे प्रेममें बासीपन वर्जित है । वह शाश्वत एवं एकरूप होना चाहिये ।

समग्र रूपसे कहानियाँ सामाजिक जन-जीवनको मुखरित करनेमें सक्षम हैं । भाव, भाषा-शैलीकी दृष्टिसे भी किसीभी प्रकार भारतमें लिखी जा रही सामाजिक कहानीसे उन्नीस नहीं हैं ।

☐ डॉ. कामता कमलेश

लोक संस्कृति : एक साक्षात्कार

संस्कृतिसे सरोकार

लेखिका : मालती शर्मा; प्रकाशक : भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर । पृष्ठ : १०२; डिमा ८१; मूल्य : १५.०० रु. ।

समीक्ष्य पुस्तक नौ निबन्धोंका संकलन है । ये हैं— लोक मानसमें यौन अवधारणा, गारियोंकी गीत गंगा, सूत-माठकी लोकभूमिका, बधाये : गृहिणीकी उद्गीथियां, ब्रजकी लोरियां और जाड़ा, लोकजीवनमें आशिष, गर्भ एवं जन्म सम्बन्धी लोक विश्वास, ब्रज जनपदकी दूध व्यवसाय शब्दावली, भात : भायप लोककी कस्तूरी गंध ।

प्रकाशकीयमें कहा गया है, 'इस प्रकाशनमें ब्रज और महाराष्ट्रकी लोकगंधी संस्कृति मुख्यतः प्रतिध्वनित है । ये दोनोंही क्षेत्र मालतीजीके पीहर-ससुराल हैं । पुस्तकमें संकलित लेखोंमें लेखिकाने लोकानुभूति और लोकतांत्रिक दृष्टिसे विषयका जिस ढंगसे प्रतिपादन किया है वह उनके अन्तर्मनकी गहरी आंख, अध्ययनकी तीक्ष्ण ऊर्जा और चिंतनकी चित्तवृत्तिका वैशिष्ट्य लिये है ।'

प्रकाशकीय इसलिए आश्वस्त करता है कि इससे पूर्व लोककला मण्डलके विभिन्न प्रकाशनोंमें संकलित मालतीजीके कई लेखोंमें अध्ययनकी तीक्ष्ण ऊर्जा स्पष्ट है । संस्कृतिसे मानव मनका सरोकार अटूट है । इन सरोकारों की गणना सरबा भरी राई गिननेसे कम कठिन नहीं । (लेखिकाय) । और उन्ही सरोकारोंके कुछ उदाहरण हमारे सामने है । जिनमें सर्वप्रथम है 'लोकमानसमें यौन अवधारणा ।'लोकमानस बच्चेके जन्म और यौन क्रियाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं जोड़ पाता, उसका विश्वास है कि बच्चे भगवानकी देन हैं । यही कारण है कि लोक जीवनमें योगीकी भभूत, खीर खाने, खूंटेपर बैठनेसे गर्भ रह जाता है । सन्तान रहित होना—लोक जीवनमें बहुत बड़ा अभिशाप है ।...आदि आदि बातोंपर विचार करते हुए लेखिकाने इस सम्भावनाका सहारा लिया है—हो सकता है कि सामाजिक लांछनासे बचने और कुटुम्बकी मर्यादासे बचानेके लिए लोक मानसने सन्तानोत्पत्तिमें दैवी शक्तियों, तन्त्र मन्त्र तथा अनेक अन्धविश्वासोंका सहारा लिया हो । इस संभावनामें काफी बल है परन्तु इसे निष्कर्ष नहीं माना जा सकता क्योंकि आज वैज्ञानिक दृष्टिसे भी सन्तानोत्पत्तिके लिए पुरुष तत्त्व और स्त्री

तत्त्वका सम्मेलन ही यथेष्ट माना जा रहा है—भलेही यह प्राकृतिक यौन कर्म द्वारा हो अथवा कृत्रिम विधिसे।

'गारियोंकी गीत गंगा' पर लेखनी उठाना साहसका काम है और वास्तवमें लोकवार्ताके शोधकर्ता इस दिशा में कार्य करनेका साहस नहीं जुटा पाये। इस दृष्टिसे लेखिकाने शोधार्थियोंका दिशा निर्देश किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गारियां लोक मानसके विभिन्न संस्कारोंसे इस प्रकार जुड़ी हैं कि उन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता। लेखिकाने गारी गीतोंके विभिन्न—सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलुओंपर संक्षिप्त किन्तु संतुलित ढगसे विचार किया है। आशा है लोक साहित्य और संस्कृतिके शोधार्थी इस दिशाको आगे बढ़ायेंगे।

'सूत-गांठकी लोक भूमिका' में विभिन्न प्रकारकी गांठोंकी अभिव्यक्ति हुई है जिनमें विशेष महत्त्वकी है—राखीकी गांठ जिसने भाई-बहनके प्रेमको पवित्रता प्रदान की। 'बधाये-गृहिणीकी उद्गीथियां' में बधायेकी परम्परा खोजते हुए बधायेसे बंधे विभिन्न सामाजिक तथा पारिवारिक सम्बन्धोंकी रसभरी चर्चा है। 'ब्रजकी लोरियां और जाड़ा' में महत्त्वपूर्ण बात हैं—लोरियोंका जाड़ेसे सम्बन्ध। जाड़ेकी मांने जाड़ेको पैदाकर गरीब बच्चोंको बहुत दुःख दिया है। इस प्रकार लोरियोंमें आर्थिक वैषम्यका मार्मिक चित्र मिलता है। 'लोक जीवन में आशिष' का विशेष महत्त्व है और उसकी विविध रीतियां हैं। लेखिकाने आशिषके विभिन्न पहलुओंका उद्घाटन किया है। 'ब्रज जनपदकी दूध व्यवसाय शब्दावली' में केवल सर्वेक्षण और सूचनाएं हैं परन्तु ये लोक शब्दावलीके संग्रहकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं। 'गर्भ एवं जन्म सम्बन्धी विश्वास' लेखमें लोक-जीवनके कुछ गर्भ एवं जन्म सम्बन्धी विश्वासोंकी झांकी प्रस्तुत की गयी है। लेखिकाके अनुसार उन्हें अटकलबाजी कहकर नहीं टाला जा सकता। अतः 'आज इनके वैज्ञानिक परीक्षण, विश्लेषण और वस्तुपरक तथ्योंके आकलनकी जरूरतसे इन्कार नहीं किया जा सकता।' (पृ. ७८)

'भात : मायप लोककी कस्तूरी गंध' है। भात गीत लोक-संस्कृतिके अभिन्न अंग हैं। इनमें भाई-बहिनके अनूठे प्रेमकी अभिव्यक्ति हुई है परन्तु आजके प्रदर्शनके युगमें अभावोंसे पीड़ित भाईके लिए भात गीतोंकी मिठास फीकी होती जा रही है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सरोकारोंकी गणना सरवा भरी राई गिननेसे कम कठिन नहीं, फिरभी समीक्ष्य निबन्धोंमें लेखिकाने महत्त्वपूर्ण सामग्री जुटायी है और कुछ पक्ष तो एकदम अछूते तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण (यथा राखीकी गांठ, गारियां) हैं। इसके साथही उन पक्षोंका सूक्ष्म विवेचन करते हुए उन्हें युग संदर्भमें भी देखनेकी चेष्टा की गयी है। लेखिकाके कुछ शब्द प्रयोगभी लोक-भाषासे गन्धित हैं। यथा : गवती (पृ. २५), गबते (पृ. ४५) आदि परन्तु—'महसूसना' (पृ. ५३), 'महसूसती' (पृ. ५१) का प्रयोग खटकता है। प्रस्तुति कला मण्डलके अन्य प्रकाशनोंकी भांति साफ-सुथरी है। आशा है समीक्ष्य कृतिका आदर होगा क्योंकि इसमें बहुत कुछ मौलिक तथा दिशा देनेवाला है।

☐ डॉ. शंभु शुक्ल

बाल साहित्य

चोरके हीरे

लेखिका : सुमिता पंत; प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद। पृष्ठ : ३२; क्रा. दु. ८१; मूल्य : ४.५० रु.।

नन्हा चूजा चुनचुन

लेखक : विष्णुकांत पांडेय; प्रकाशक : मिश्रा ब्रदर्स, अजमेर। पृष्ठ : ३६; क्रा. दु. ७६; मूल्य : ४.०० रु.।

रूसकी लोक कथाएं

लेखक : सुरेश सलिल; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज, दिल्ली। पृष्ठ ४०; क्रा. डु. ८१; मूल्य : ६.०० रु.।

एक दुनियां बच्चोंकी

सम्पादिका : पुष्पा भारती; प्रकाशक : सुरजीत प्रकाशन, बीकानेर। पृष्ठ : ८४; क्रा. डु. ८१; मूल्य : ७.०० रु.।

सच्चे प्रसंग सच्ची कहानियां

लेखक : राजेश शर्मा; प्रकाशक : साहित्यकार प्रकाशन, दिल्ली-५१। पृष्ठ : ५४; क्रा. ८०; मूल्य : ४.०० रु.।

मामा भांजा और जातक कथाएं

सम्पादक : गुलशनराय; प्रकाशक : डायमंड कामिक्स, दिल्ली-२। पृष्ठ ४८; क्रा. डु.; मूल्य : २.५० रु.।

ताऊजी और जादूगर साम्भा

सम्पादक : गुलशन राय, प्रकाशक : डायमंड कामिक्स, दिल्ली-२। पृष्ठ : ४८, क्रा. डु.; मूल्य : ३.०० रु.।

परिमाणात्मक दृष्टिसे तो हिन्दी बाल-साहित्य समृद्ध है, लेकिन गुणात्मक स्तरपर उसी अनुपातमें नहीं। अधिकतर पुनर्लेखन हो रहा है या उधारका और उड़ाया हुआ माल देखनेमें आता है। नवीनताका आभास देनेके लिए केवल नाम घटनाएं आदि बदलकर रचना खड़ी कर दी जाती है। परिणामतः इसमें प्रायः विश्वसनीयता और स्वाभाविकताके तत्व कम पाये जाते हैं और आश्वस्तिको आघात पहुंचता है। कभी कोई अच्छी रचना प्रकाशित होती है तो प्रसन्नता होती है, जैसे सात वर्षीय कुमारी समिता पन्तकी प्रस्तुत रचना 'चोरके हीरे' को देख-पढ़कर होती है। बच्चोंके लिए एक बच्ची द्वारा लिखित यह छोटा-सा उपन्यास अपनी कोमलता, कल्पना और भावनाओंके सहज प्रस्फुटनमें बालमनको अवश्य गुदगुदाकर प्रभावित करनेकी क्षमतासे समन्वित है एक चोरको एक पीपलके पेड़के गड़े हुए हीरे मिल जाते हैं, वह चोरी करना छोड़ स्वयंभी हीरों जैसा चमकनेका संकल्प लेता है और घूम-घूमकर गरीबोंकी धनसे सहायता करता है, लोगोंके आंखोंसे आंसू पोंछता है, दुःखियोंका दुःख बांटता है, यहांतक कि पशु-पक्षीभी उसकी मित्रता और परदुखकातरताका लाभ प्राप्त करते हैं। अंततः उसके पास एकभी हीरा नहीं रहता और वह घर पहुंचकर बढ़ईगीरी करने लगता है। उससे अपना खर्च चलाता है, जो कुछ बच जाता है उससे गरीबोंकी मदद करता है। सचमुच सुख देनेमें ही है। सेवाही सुखका आधार है। इसी सत्यको यहां एक नन्हें मनने अपने ढंग से रेखांकित करनेकी सराहनीय कोशिश की है।

'नन्हा चूजा चुनचुन' में भी दो कल्पनाशील, कवितामयी कहानियाँ हैं। पहली कहानी 'नन्हीं तितली' में परसेवाके द्वारा आत्मविस्तार और उससे उपजे सच्चे सुख की अनुभूतिको ही कहानीका विषय बनाया गया है। भीषण गर्मीसे फूल-पत्ते, पेड़-पौधे, किसान, पशु-पक्षी सब त्राहि-त्राहि कर उठे। अकालकी विकराल छाया धरती पर मँडराने लगी। रंगोंकी रानी नन्हीं तितलीसे यह सब नहीं देखा गया। वह सब तरहके कष्ट उठाती हुई बादलों के गांव जाती है, वहाँ बादलोंके बच्चोंसे दोस्ती करती है और उनके माता-पिताको धरतीपर जल-वर्षाके लिए राजी करती है। पानी गिरतेही फिर धरतीपर गीत फूट पड़ते हैं, खुशीकी लहर सर्वत्र दौड़ जाती है और सब तितलीके प्रति कृतज्ञतासे भर उठते हैं। शीर्षक कहानीमें एक नन्हा चूजा चुनचुन प्रातः सैरको निकलता है और मार्गमें बत्तखके बच्चे टपटप, कूकू कोयल, चटपट खरगोश को अपने साथ लेता हुआ नदी किनारे पहुंचता है, वहां टर्र टर्र टों भाई मेंढ़कसे दोस्ती करता है और कूकू कपि बन्दर उधोरामको भी अपने साथ कर लेता है। वहींपर इसी बीच हिंसक सियार हुआउं आ धमकता है लेकिन वे सब तबतक सुरक्षित मेंढ़ककी नावमें सवार होकर नदी की बीच धारामें चले जाते हैं। तभी कुत्ते वहां आ जाते हैं और प्राण बचानेके व्यर्थ प्रयत्नमें सियार छपाकसे नदी में गिर जाता है। पशु-पक्षियोंको उनकी बोलीके आधार पर नाम देकर तथा उन्हें मानवीय भावनाओंसे संपृक्त कर एक बालक सुलभ रम्य और अद्भुत वातावरण यहां खड़ा किया है।

लोक कथाएं विशिष्ट परिवेश और जनजीवनकी उपज होते हुएभी अपनी सहजधर्मिताके कारण सार्वजनीन होती है। बच्चोंके लिए इनमें एक विशेष आकर्षण रहता है क्योंकि इनमें आंचलिक ताजगी और लोकभाषाकी सरलता, सरसताके साथ कहीं कोई मनको रमानेवाला

रंगीन वातावरण होता है, कहीं यथार्थके धरातलपर रोचक उपदेश और शिक्षा होती है तो कहीं बालकल्पना को पंख लगा देनेवाली छोटी-छोटी कहानियां। 'रूसकी लोककथाएं' में सात कहानियां संगृहीत हैं। इनमें विविधताके साथ-साथ रोचकताभी है। पहली कहानी 'मजेदार फैसला' में एक रिश्वतखोर जज एक अपराधीके पक्षमें इसलिए फैसला करता है क्योंकि वह उस अपराधीके हाथ की पोटलीमें लिपटे पत्थरको सोना समझ लेता है। अपराधीने वह पत्थर रास्तेमें से इस आशयसे उठा लिया था कि मरनेसे पहले वह उस जजको पत्थर मारकर मौतकी सजा देनेका बदला ले लेगा। अन्तमें जब सत्यका पता लगता है तो जज यह जानकर खुश होता है कि चलो जान तो बची। 'मेहनतका धन' में परिश्रमी बाप मरते-मरते एक युक्तिसे अपने काहिल और निकम्मे बेटोंको मेहनतका पाठ सिखा ही जाता है। 'घमण्डी जमींदार और बुद्धिमान मजदूर' में एक गरीब किंतु अक्लमंद मजदूर घमंडी जमींदारके साथ भोजन करके अपने मित्रोंसे शर्तमें तीन बोरे गेहूं और दो बैल जीतही लेता है। 'बदला' भी इसी तरहकी रचना है जिसमें एक बुद्धिमान भाई एक कंजूस और धनी व्यापारीसे अपने दोनों बड़े भाइयोंके अपमानका बदला लेता है। 'बिना विचारे जो करे' में एक कुत्तेके माध्यमसे अविचारित कार्यके दुष्परिणामको रेखांकित किया गया है।

राजस्थान सरकार द्वारा संचालित शिक्षक दिवस प्रकाशन योजनाके अन्तर्गत प्रकाशित 'एक दुनियां बच्चोंकी' में वहींके सर्जनधर्मी शिक्षकोंकी बच्चोंके लिए लिखी गयी रचनाएं-कहानियां, कविताएं, नाटक और पहेलियां संकलित हैं। कुछ कहानियाँ, जैसे 'अपना-अपना भाग्य' (हुकुम चंद 'कान्त'), 'बीस लाखका थाली लोटा' (अजीज आजाद) और कुछ कविताएं, जैसे 'तकली रानी' (मोती 'विमल') 'बिजली बड़े साबकी बीबी' (इन्दर आउवा), 'मूंगफली' (अर्जुन अरविंद) सराहनीय बन पड़ी हैं। पहेली बूझना बच्चे पसंद करते है। संग्रहमें कुछ पहेलियांभी हैं। बाल-मनोविनोदकी दृष्टिसे ये अच्छी हैं और लोक-जीवन के अनुभवोंसे गृहीत हैं।

'सच्चे प्रसंग सच्ची कहानियां' में बाबा आप्टे, बंगला नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल राय, शाहजहां, सुकरात, चीनी यात्री ह्वेनसांग, गांधीजी आदिके जीवनसे कुछ सच्चे प्रसग लेकर कहानियां दी गयी हैं, किन्तु इनमें सहज रोचकताका अभाव है। विवरणात्मकता और गद्यात्मकता इनकी अन्य सीमाएं हैं। लेखक स्रष्टाके बजाय उपदेष्टा बना रहता है। उदाहरणार्थ 'गांधीकी मां' कहानीमें गांधीजीके नमक आन्दोलन (सन् १९३०) को लेकर खींचतान द्वारा लेखक जो समीकरण बिठाना चाहता है वह अस्पष्ट तो है ही असफलभी है। कहीं-कहीं वाक्य लम्बे भी हो गये हैं, जैसे 'यद्यपि हेमूने बड़ी गुप्त रीतिसे रेलको गिरानेकी योजना तैयार की थी, फिरभी पुलिसके अधिकारियोंको उनकी योजनाकी गंध मिल गयी थी, पुलिसके अधिकारी पहलेसे ही बड़ी सावधानीके साथ झाड़ियोंमें छिपकर बैठे हुए थे।' कुल मिलाकर यह एक सामान्य रचना है।

बच्चोंमें कॉमिक्स, कार्टून्स, एडवेंचर-साहित्य और पिक्चर बुक्स बड़ी लोकप्रिय होती जा रही हैं। इस संदर्भ में डायमंड कॉमिक्स' की 'मामा भांजा और जातक कथाएं' तथा 'ताऊजी और जादूगर' इस ओर एक सुन्दर प्रयास है। पहली पुस्तकमें पशु-पक्षियोंके माध्यमसे कही गयी कुछ रोचक एवं शिक्षाप्रद कहानियोंका चित्रांकन किया गया है। मामा अपने भांजेके जन्मदिनपर ये कहानियां बच्चोंको सुना रहा है और बच्चे बड़े मजेसे इन्हें सुनकर शिक्षा ग्रहण करते हैं। दूसरी पुस्तकमें साहस, जादू और रहस्य रोमांचको लेकर एक कहानी चित्रोंके माध्यमसे कही गयी है। एक चालाक और खतरनाक तस्कर अपने जादूके बलसे कस्टम अधिकारियोंको सम्मोहितकर अपना तस्करीका धंधा चलाता है, लेकिन एक ताऊजी और एक लड़का जिम्बो अपने जादू और साहससे इन लोगोंसे कैसे निपटते हैं, यही कथाका आधार है। पुस्तकके मुखपृष्ठपर 'साम्मा' दिया गया है और अन्दर सब जगह 'साम्बा' यह नहीं होना चाहिये था। चित्रोंमें कुछ परिष्कारकी आवश्यकता साफ महसूस होती है।

☐ डॉ. ब्रजराज किशोर

पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।

मत अभिमत

□ प्रतिक्रिया

'साहित्य अकादमी और अकादमी पुरस्कार' (प्रकर-अप्रैल'८२ अंक) पर आपकी टिप्पणी और सुझाव पढ़नेको मिले। टिप्पणी संतुलित और सुझाव समयोचित है। परन्तु इसमें एक मौलिक प्रश्न छूट गया है और वह है—आजके लेखनका। लगता है आपभी यह मानकर चल रहे हैं कि आज जो कुछभी लिखा जा रहा है वह 'साहित्य' है, अतः पुरस्कृत होनेका अधिकारी है। आपकी इस धारणाके प्रति अपनी असहमति प्रगट करते हुए सविनय निवेदन करना चाहता हूं कि साहित्यके नामपर किया जानेवाला अधिकांश लेखन भावनात्मक भ्रष्टाचार है। दूसरे शब्दोंमें इसे 'वाग्विलास' या 'वाग्व्यवसाय' कहा जा सकता है। आजके साहित्यकी तुलना प्लास्टिकके उन पुष्पोंसे की जा सकती हैं जिसमें कहनेके लिए तो पुष्पके सारे लक्षण होते हैं परन्तु वह गंध नहीं होती जो पुष्पका प्राण है। इससे आप अपना घर सजा सकते हैं, बेचकर धन कमा सकते हैं, पुरस्कृत होकर श्रेष्ठ कलाकार होनेका दम्भ पाल सकते हैं, परन्तु इससे वह 'आनन्द' लाभ नहीं कर सकते जो नैसर्गिक-प्रकृति प्रदत्त फूलोंसे मिलता है। कारण स्पष्ट है—बनावटी वस्तुएं चाहे जितनीभी सुन्दर हों बेजान होती हैं, बनावटी होनेके कारणही आजका लेखन बेजान हैं। इसे साहित्यका नाम देकर पुरस्कारोंके औचित्यपर विचार करना समय और साधन दोनोंका अपव्यय होता है। विचार करनाही है तो साहित्यके स्तरपर चिन्तन कीजिये, उसके सिद्धान्त पक्षको भी देखिये। लेकिन जीवनपर उसके प्रभावकी गहराईकी भी माप कीजिये। बहुत-सी बातें अपने-आप स्पष्ट हो जायेंगी। पता चल जायेगा, आजके अधिकांश लेखनमें इच्छा, क्रिया, ज्ञानके उस त्रिकोणका जिससे आनन्दका जन्म होता है, जो चित्तवृत्तियोंका संस्कार करके मानव-मनमें सोये हुए देवत्वको जगाता है—उतनाही अभाव है जितना राजनीतिमें निष्ठा और ईमानदारीका।

आजके लेखक मानवीय बोध, कल्पना, आशा-आकांक्षा, आवेग-संवेगोंको वनवास देकर 'रीजन' के सहारे 'जो है वही अंतिम और अमर सत्य है' की घोषणा करके, मानवको अवस्था एवं व्यवस्था द्वारा पूर्ण निर्धारित 'वस्तुके रूपमें चित्रित कर रहे हैं। इसीलिए आजके साहित्यमें, नूतन चेतना, नया बोध नये मूल्य, किसीकी भी छाप नहीं दिखायी पड़ रही है। मिल रही है तो केवल एक भूख जो सर्वग्रास करके भी अतृप्त है। यह कलमुंही दोमुंही है। एक मुंहसे सत्य खाती है, दूसरेसे असत्य उगलती है। आजकी कला इसी दूसरे मुंहकी देन है। जबतक यह बनी रहती है, लौकिक जीवनमें आदमी कभी भी उच्चतर सत्यकी ओर हाथ नहीं बढ़ाता। बढ़ाता भी है तो कुछ हाथ नहीं आता असत्यके सिवाय। इस असत्यको चाहे जिस स्तरपर पुरस्कृत किया जाये अन्याय है। पाखण्ड, कपट, लोक-वंचना है। सत्यका पुरस्कार त्याग है और त्यागका तप। अधिक कुछ नहीं कहूंगा। आप जानते ही हैं—ऋत और सत्य तपसे पैदा हुए हैं। अतः जहां तप होता है, तापभी वहीं मिलता है। मुझे लगता है, आजका साहित्य निस्ताप है। इसीलिए निष्प्राण है। आपको इसमें कहीं जीवन मिले तो मुझेभी दिखाइयेगा। प्रतीक्षा रहेगी। तबतक इतनाही अनुरोध करूंगा—कुत्तेको कोई हीरोंके हारसे सजाये या फूलोंकी मालासे, कुत्तेको कुत्तेके रूपमें देखिये। हारपर नहीं, उसीपर विचार कीजिये। क्योंकि दद्दा गुप्तजी कह गये हैं—'स्वर्णकी जंजीर बांधे स्वान फिरभी स्वान है।' तब चाहे वह पुरस्कृत हो या तिरस्कृत क्या अन्तर आता है।

—विजय द्विवेदी, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
महाराजा पूर्णचन्द्र कालेज, बारीपदा (उड़ीसा)

□ लेखकीय प्रतिक्रिया

महाश्वेता देवीकी 'घहराती घटाएं' की प्रकरके दिसम्बर '८१ के अंकमें प्रकाशित डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

समीक्षापर निम्न टिप्पणी भेजी है :

—'प्रकर' में जो आपने लिखा है उसके बारेमें मैं क्या कहूं ? मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई यह जानकर कि मैंने उन लोगोंकी तरफ आपका ध्यान आकृष्ट किया जिनके बारेमें मैं लिखती हूं। सभी कहानियां सत्य घटनाओं और तथ्योंपर आधारित हैं। देखिये इनका जीवन कितना क्रूर है। मैं आपके दृष्टिकोणकी सराहना करती हूं। आपका यह समीक्षा कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। अन्य हिन्दीके पाठक मेरे लेखनके विषयमें क्या सोचते हैं ? मुझे लगता है कि मेरे बंगाली पाठकोंसे मेरे हिन्दी पाठक अच्छे हैं। कृपया मेरा स्नेह स्वीकार करें।

—महाश्वेता देवी, सूट नं. ५, १८२५ बालीगंज, स्टेशन रोड, कलकत्ता

□ दो नम्बर

'प्रकर' अप्रैल अंकमें देखा कि मई अंकमें 'दो नम्बर' (ले. बुद्धदेव गुह) की समीक्षा आ रही है। उक्त पुस्तक में अनुवादकका नाम न रहनेपर आपकी 'दो नम्बरकी व्यवस्थामें लुप्त' टिप्पणी बहुत उपयुक्त है। निवेदन है कि इस पुस्तकका अनुवादक मैं हूं और मेरे विरोधपर प्रकाशकने उसका आवरण-पृष्ठ पुनः छपाया है। यदि आप उचित समझें तो मई अंकमें अनुवादकके रूपमें मेरा नाम छाप सकते हैं।

—विमल मिश्र, १८ ए शाहनगर रोड, कलकत्ता-७०००२६

□ 'अमृता'

गुजरातीसे अनूदित उपन्यास 'अमृता' (डॉ. रघुवीर चौधरी) पर डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर' की समीक्षा ('प्रकर' फरवरी ८२) बहुत लम्बी है। शायद उपन्यास उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

— डॉ. मूलचन्द गौतम, गोलागंज, चन्दौसी (मुरादाबाद)-२०२-४१२

यदि मैं कहूं कि 'अमृता' उपन्यास अज्ञेयजीके 'नदीके द्वीप' की प्रतिस्पर्धामें लिखा गया है तो इसे अन्यथा नहीं लिया जायेगा। परन्तु यह अज्ञेयजीके उपन्यासके स्तरको नहीं छू सका।

— डॉ. रामलखन शुक्ल, रीडर हिन्दी विभाग, म. प्र. विश्वविद्यालय बड़ौदा (गुजरात)

□ आजका ईसा

मेरे कथा-संग्रह 'आजका ईसा' की १४ कहानियोंमें से अधिकांशके प्रति समीक्षकके नजरिएका स्पष्टतः ('प्रकर' नवम्बर ८१) पता नहीं चलता कि उसकी व्यक्तिगत राय क्या है ? किन्तु दो-तीन रचनाओंपर जो राय समीक्षकने दी है—(राय/अनुभव या प्रतिक्रिया आदि) वह बहुत अविश्वसनीय है। ये कहानियां हैं - १. 'आधुनिक यशोदा' २. 'झुनझुना हुई जिन्दगी'। 'आधुनिक यशोदा' शीर्षकसे ही पता चलता है कि बात माताकी ममताके आधुनिक परिप्रेक्ष्यकी है। इसी आशयके आस-पासका ही चित्रण रचनामें किया है। संक्षेपमें, एक किशोर है जो एक घरेलू औरतका उसके काम-काजमें खटते रहना नहीं सह पाता। वह उससे संवेदनात्मक स्तरपर भीतरसे जुड़ जाता है, और शुभचिन्तक होनेके नाते वह जो कर सकता है—करता है। किन्तु दुर्भाग्यवश वह औरत समयके कुछ अंतरालके गुजरने व कुछ शैक्षणिक प्रगतिकर लेनेपर अपने आत्मीय व्यवहारको खो बैठती है। उसके व्यवहारमें एक सतही औपचारिकता तथा उथलापन आ जाता है। जिस आत्मीयताको तलाशता हुआ वह किशोर उसके पास आ जाता है—और वैसा नहीं पाता, तो उसे वह सह नहीं पाता, लौट जाता है !

समीक्षकने लेखकपर (या नायकपर) दकियानूसी होनेका आरोप लगाया है। यह बहुत सहज मानसिकता की कहानी है—पर इस आरोपका कोई तार्किक आधार मुझे नहीं दिखायी देता। इसका अर्थ तो यह हुआ कि जो व्यक्ति प्रगति करे उसे नैतिक रूपसे कुछभी सोचने-समझने/व्यवहार करनेकी छूट होनी चाहिये। व्यक्ति अपने अन्दरकी सुन्दरताको नष्ट करके ऊपरसे कुछभी मुखौटे लगाले, यह उसके पक्षमें भी नहीं है।

'झुनझुना हुई जिन्दगी' कहानी अप्रैल ८० के नवनीतमें प्रकाशित हुई थी। तबसे अबतक अनेकों अभिमत मुझे मिले हैं, आपभी इन दो रचनाओंको अवश्य पढ़ें और अनुभवकी सत्यताके भेदको समझें। लेखक और समीक्षकके आरोपों और उसके तार्किक-विश्लेषणके लिए आपका बीचमें आना शायद जरूरी है। संक्षेपमें; एक साधारण बैण्डमास्टर है जो आजादीके पूर्वसे आजतकके तमाम अनुभवोंको अपने अन्दर महसूसता है। कहानीमें पात्र जोभी अनुभव करता है उसके मुंहसे मैंने ज्योंके त्यों भाव-विचार रखे हैं ! क्या यह सत्य नहीं है कि आमे दिन

घरोंमें हमारे बड़े-बूढ़े सस्ते जमानेकी याद करते, उसकी प्रशंसा करते कितने भाव-विभोर हो उठते हैं। आज हम तुलनात्मक रूपसे शिक्षित हो गये हैं—विकासशील देशके अर्थतन्त्र व राजनीतिके आर्थिक दुष्चक्रोंको समझते हैं—और एक विद्रोहके भावसे भर आते है। किन्तु जो लोग अशिक्षाके कारण इन षड्यंत्रोंको समझ नहीं पाते—मात्र महसूस कर पाते हैं—वे उस समयको क्यों नहीं याद करेंगे, जब उनका बड़कपन अपने मासूम बच्चों और अपने अधीनोंके सामने लाचार नहीं था। मैंने पात्रको उसके परिवेशमें पूरी स्वतन्त्रताके साथ चित्रित किया है—कहीं कोई जोड़ा नहीं है। लेकिन जाने कैसे समीक्षक ने जबर्दस्ती लेखकको उसमें आवेष्टित कर लिया है।

समीक्षक लिखते हैं—लेखकका 'अंग्रेजी शासनके प्रति झुकाव ठीक नहीं,'। आज कोईभी व्यक्ति ऐसी बात करना तो क्या सोचनाभी पसन्द नहीं करेगा!! मैंने तो मात्र, पात्रके अनुभवोंकी तीव्रताके आधारपर समकालीन समाजकी धड़कनको ज्योंका त्यों रखा है! किन्तु लगता है समीक्षक अतिशय प्रगतिवादी हैं!!

भाषा व शिल्पके प्रति समीक्षकने लेखकको लापरवाह बताया है। भाषा-शिल्प एक ऐसा बिन्दु है जो विवादका विषय नहीं बनाया जा सकता। भाषाको लेकर बड़ी सापेक्षिकता होती है: उसका रूप कैसाभी हो—पर पढ़नेवालेको यदि न रुचा तो व्यर्थही है। समीक्षकको सिर्फ एक सच्चाईका पता है कि यह लेखककी पहली कृति है! किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम कि यह पुस्तक म. प्र. शासनके पुरस्कारके सहयोगसे प्रकाशित हुई है! बहुत जल्दीमें युवा-लेखककी पहली कृतिकी योजनाके अन्तर्गत इसकी पांडुलिपि आमन्त्रित की! फिर, रिजल्ट निकलनेके दो माहके अन्दर पुस्तक प्रकाशित करानेकी बंदिश लगायी—अन्यथा पुरस्कार राशि नहीं दी जाती! जल्दबाजीमें एक नये लेखकके लिए दिल्लीका प्रकाशक तैयार करना कितना मुश्किल होता है—यह सभी जानते हैं। अतः सारी पुस्तकको कतई संवार नहीं पाया। इस दृष्टि से कृतिको संवार न पानेकी बात एक हदतक सही है।

—गोपाल चोरसिया, राक्सी टाकीजके सामने कम्पू रोड, ग्वालियर-४७४-००१

☐ 'प्रकर': आपकी दृष्टिमें

नववर्षकी शुभकामनाएं। 'हिन्दी समीक्षा' की यह 'जरूरी पत्रिका' अपने साहित्यके मूल्यांकन, पड़ोसी साहित्यकी परख (आदान-प्रदान) और समालोचनाके मानदण्डोंसे घनिष्ट परिचयके लिए कितनी अनिवार्य है, यह उसका पाठक उसे पढ़करही अनुभव कर सकता है। यह प्राध्यापकीय समीक्षाही नहीं, आम आदमीके 'पाठक मंच' का अखिल भारतीय 'पत्र-व्यवहार पाठ्यक्रम' है। ऐसा मैं अनुभव करता हूं। यदि गत वर्षके समीक्षित श्रेष्ठ साहित्यकी विभिन्न विधाओंकी पुस्तकोंकी सूची आगामी अंकमें दे सकें तो उपयोगी होगी।

—डॉ. रमेशचन्द्र खरे, प्रसादी वार्ड नं. २, दमोह (मध्य प्रदेश)

'प्रकर' का नवीनतम चत्रांक देखा। पूरा अंक देख गया हूं। अंक महत्त्वपूर्ण सामग्रीसे युक्त एवं सन्तोषप्रद है। पुस्तक-समीक्षाके इस मासिकके माध्यमसे हिन्दी समीक्षा और साहित्यकी सेवामें आप जो योगदान दे रहे हैं, वह आज भलेही उपेक्षित रहे, पर भविष्य उसकी अनदेखी नहीं कर पायेगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है।

—डॉ. त्रिभुवन राय, हिन्दी विभाग, खालसा कालेज, मुम्बई-४००-१९

'प्रकर' के माध्यमसे आप हिन्दी भाषा और साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान आदि क्षेत्रोंमें जो कार्य कर रहे हैं, वह वस्तुतः सराहनीय है। बहुत कम ऐसी पत्रिकाएं होंगी जो इतने विषयोंकी सामग्री अपनेमें संजोकर पाठकोंके लिए मानसिक भोजन प्रदान करती हों। मैं अनुभव करता हूं कि समीक्षाएं तथा परिचय निष्पक्ष और पाठकोपयोगी होते हैं।…पत्रिकाका अन्तरंग और बहिरंग दोनोंही श्लाघ्य हैं। हिन्दी भाषियों एवं साहित्यानुरागियोंका कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपना सहयोग प्रदानकर ऐसी पत्रिकाको चिरायु रखें।

—रामकुमार गुप्त, निकट मंगलादेवी मन्दिर, गोला गोकर्णनाथ (खीरी) उ. प्र.-२६२-८०२

समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाओंका स्वागत है।
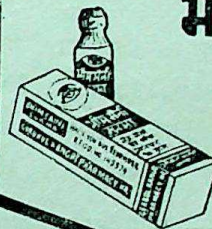
आगामी अंकमें

☐ **गदरके फूल [उपन्यासकार : अमृतलाल नागर];** भारतका इतिहास जिस रूपमें प्रस्तुत हुआ है, उसका... तथ्य यह है कि यह शासक वर्गकी इतिहास-दृष्टिका प्रतिबिम्ब है। इस ऐतिहासिक विकृतिको चुनौती देने... सशक्त साहित्यिक अनुष्ठान नागरजीने अपनी नयी कृति 'गदरके फूल' के माध्यमसे किया है, वह... वर्तमान विलायती शासकोंको अधिक क्षुब्ध करेगा। लेखकने अवधके महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर जाकर लोगोंसे... कर पिताओंसे पुत्रोंको मिली स्मृतियोंकी विरासतको एकत्रकर अनेक स्थापित और प्रचलित ऐतिहासिक... णाओंको चुनौती दी है। समीक्षककी धारणा है कि नागरजीने इस अनुसंधानात्मक कार्यमें व्यक्तिगत पूर्वा... अलग होकर एक-एक तथ्यकी छानबीनकर उसे वैज्ञानिक और वस्तुपरक ढंगसे देखा है। समीक्षक... **डॉ. मूलचन्द गौतम।**

☐ **नदीकी बांकपर छाया [कवि : अज्ञेय];** इस काव्य-संकलनके परिचयमें कहा गया है कि गत पाँच वर्षोंमें... की अनुभूति और अभिव्यक्तिको एक नया झुकाव और आयाम मिला है एवं गहराई बढ़ी है। वयके नि... विस्तृत हो रहे आंगनसे गुज़रते हुए वे अनुभूतियों के नये-नये द्वार खोलते प्रतीत होते हैं, जहाँ उनकी प्रति... दर्शनीय हैं। इस संकलनकी युवा समीक्षिकाका विचार है कि वर्तमान आधुनिक चिन्तन तथा साहित्यिक... णाओंमें परिवर्तनके परिणामस्वरूप कविकी सौन्दर्य चेतनामें नये आयामभी विकसित होते गये। यह... चेतना न मात्र ऐन्द्रिय अनुभूति है न आध्यात्मिक। वह अज्ञेयके प्रमाणसे ही उसे विशिष्ट अनुभूतियोंका... मेल स्वीकार करती है और नव रहस्यवादका प्रवाह। समीक्षिका हैं : **डॉ. (श्रीमती) कमल कुमार।**

☐ **अवकाशिकळ [उत्तराधिकारी—मलयालम उपन्यास; उपन्यासकार : विलासिनी]** साहित्य अकादमीसे पु... यह उपन्यास मलयालमकी सबसे बृहदाकार कृति है। उपन्यासकारका वास्तविक नाम है एम. कृष्णन... मेनोन। ग्रन्थके आकारकी तुलनामें इसकी कथावस्तु संक्षिप्त है, परन्तु इसकी शक्ति इसके कलात्मक प्रस्तु... समूचा वातावरण त्रासपूर्ण है। सभी प्रमुख पात्र नारी संबंधोंकी दृष्टिसे कुण्ठित और असफल हैं।... परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर।**

☐ **आदान-प्रदान :** 'भारतीय साहित्य' की सम्पूर्ण कल्पना और उसमें प्रवाहित होनेवाली एकही अखिल भा... चेतनाकी अवधारणाके लिए हिन्दीतर भारतीय भाषाओंके लेखनसे परिचित होना आवश्यक है। यह प... अनुवादके माध्यमसे चल रहे आदान-प्रदानके कार्य द्वारा प्राप्त हो जाता है। इसी दृष्टिसे निम्न कृतियोंका... चय प्रस्तुत किया जा रहा है :

चिराग (तमिल उपन्यासकार : पु. वरदराजन्); अनुवादक हैं : क. त. अ. कलैवाणन्; समीक्षक... सन्हैयालाल ओझा।

अनोखा छात्र (बंगला कहानी संग्रह; कहानीकार : कणा सेन); अनुवादक : व्रजगोपाल दास अग्रवाल; समी... डॉ. प्रशान्तकुमार।

भटकाव (बंगला उपन्यासकार : महाश्वेता देवी); अनुवादक : जगत् शंखधर; समीक्षक डॉ. सुरेशचन्द्र ...

सम्पादक प्रकाशक और मुद्रक विद्यासागर विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस गांधीनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित
ए८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली ११०००७ से प्रकाशित।

आषाढ : २०३९ (वि.)
जून : १९८२

इस अंकमें

साहित्यिक विधाओं में नेत्रहीना निष्ठा

भारतीय समाजके कमजोर वर्गोंको जिन आतंकपूर्ण स्थितियों और परिवेशमें जीवन-यापन करना पड़ता है और जो यातनाएं सहनी पड़ती हैं, हिन्दी सहित सम्पूर्ण भारतीय साहित्यमें उनका सशक्त और यथार्थ चित्रण उपलब्ध है। इस सारे साहित्यका रूप आन्दोलनात्मक है। भावनात्मक स्तरपर यह आक्रोश जगाकर, अनेक बार विद्वेष भड़काकर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रान्तिके स्वप्न लिये जाते है। साहित्यकी यह क्रान्ति-ध्वनि काम्य हो या अकाम्य, इसमें सतत संग्राम और विनाश के बीज विद्यमान हैं, निर्माणके नहीं। यदि क्रान्ति केवल विनाशोन्मुख है, तो उसके अप्रतिहत पदाघातसे क्रान्तिके अपने बचावकी केवल कामना कर सकते हैं। यदि क्रान्तिको नवनिर्माणका रूप ग्रहण करना है तो साहित्य को भी अपनी सीमाओंका विस्तारकर नवनिर्वाणका आधार और पृष्ठभूमि तैयार करनी होगी।

आज जिन विधाओंको साहित्यकी संज्ञा दी जाती है, वे बहिर्मुखी रूप त्याग, सूक्ष्म संवेदनाओंके अंकन एवं वैचारिक तत्त्वके समाहित होनेपर भी निर्माणका आधार प्रस्तुत करनेकी दृष्टिसे भाव-क्षेत्रकी सीमासे बंधी होती हैं। इसलिए वे किसी आकांक्षाको जागृत करने, आकांक्षा को कार्य रूप देनेकी प्रवल प्रेरणा दे सकती हैं, परन्तु कार्य रूप प्रदान नहीं कर सकतीं। परन्तु भाव-क्षेत्रके ही सर्जनको साहित्यमें प्रतिष्ठा प्राप्त होनेसे अन्य क्षेत्रोंके सर्जनकी स्थिति उपेक्षणीय हो गयी है और इसे साहित्येतर श्रेणीमें स्थापित कर दिया गया है तथा भारतीय भाषाओंमें उसकी स्थिति 'द्वितीय श्रेणीके नागरिक' की हो गयी है।

यह स्थिति कुछ अधिक स्पष्टीकरण चाहती है। प्रसादजीको अपनी इतिहास-दृष्टिके विकासके लिए तथा वृन्दावनलाल वर्माको ऐतिहासिक उपन्यासोंकी पृष्ठभूमिके लिए साहित्येतर क्षेत्रके इतिहासका आश्रय लेना पड़ा। इससे इतिहासमें पाठकीय रुचि जागृत हुई। हजारीप्रसाद द्विवेदीकी कृतियोंमें पुरातन भारतीय साहित्य, परम्परा और शैली अवतरित हुई अपनी मौलिकता और आधुनिक संवेदनशीलताके साथ। प्रगतिशील और मार्क्सवादी लेखन में मार्क्सके सिद्धान्तोंका प्रतिफलन हुआ। साहित्यिक विधाओंमें वैचारिक तत्त्वके सामंजस्यका प्रश्नभी उठाया जाता है। भारतीय भाषाओंमें विरल रूपसे उपलब्ध वैज्ञानिक उपन्यासोंमें विज्ञानकी रोचक परिकल्पनाओं संकल्पनाओंके दर्शन हो जाते हैं। परन्तु भारतीय साहित्य क्षेत्र का तह इतिहास-बोध या इतिहास-दृष्टि, पुरातन भारतीय साहित्यकी अवधारणा, मार्क्सवादके आकर्षक नाद-घोष, दार्शनिक चिन्तन और वैज्ञानिक अनुसंधानोंका परिचय अभीतक नवनिर्वाणकी पृष्ठभूमि तैयार नहीं कर सका। नवनिर्माणके लिए भाव जगत्से हटकर यथार्थकी ठोस भूमि एवं नितान्त भौतिकवादी धरातलपर खड़े होकर सोचनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

रोचक तथ्य यह है कि अभाव-पीड़ित समाजको उसके पैरोंपर खड़ा करनेके लिए आर्थिक उपायों और चिन्तनोंका अधिक आश्रय लेनेकी आवश्यकता है। आर्थिक विवशताओंके कारण मानवताके बहुत बड़े भागको यातनाएं भोगनी पड़ती हैं और साहित्य उनका परिवर्धनकर उन्हें प्रस्तुत करता है। भाव जगत्का आश्रय लेकर ही भौतिक समस्याका समाधान करनेको हम क्यों प्रेरित होते हैं? भारतीय समाजके विराट् व्यक्तित्वमें किस अंश की कमी है जो उसे अपनी आर्थिक समस्याओंसे जूझनेके अपने परिवेश, वातावरण, लोक-वृत्ति, परम्परा, विश्वास, शक्ति, बुद्धि, कर्मशीलतासे परिचित होते हुएभी मौलिक रूपसे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अर्थशास्त्रीय साहित्य के सृजनके लिए प्रेरित नहीं करता। इस दिशामें प्रयत्नशील शोधकर्ताओंको क्यों भारतीय भाषाओंके क्षेत्रसे दूर रखा जाता है, भारतीय भाषाओंमें विशिष्टताके साथ

मौलिक लेखन करनेवालोंको क्या गौण स्थान प्रदान किया जाता है ? अर्थशास्त्रीय साहित्यका प्रसंग यहां इसलिए उठाया गया है क्योंकि भारतीय साहित्यकी विभिन्न विधाओंमें जिस पीड़ित मानवताकी आवाज उठायी गयी है, उसका कारण भारतीय दृष्टिसे आर्थिक चिन्तन और लेखनका अभाव है। वैसे इंडियन इंग्लिशके लोग इस देशमें उत्पन्न होनेके कारण अपनेको भारतीय चिन्तनका प्रतिनिधि मानते हैं, परन्तु वे जिस पाश्चात्य चिन्तनकी पुनरावृत्ति करते हुए शासन और सत्ताके सहयोगसे साहित्य तैयार करते और इस चिन्तनको व्यावहारिक रूप देते हैं, उससे उत्पन्न एवं वर्ष-प्रति-वर्ष प्रवर्द्धमान अभावों और पीड़ाओंको भारतीय साहित्य प्रतिबिम्बित अवश्य करता है। इन प्रवर्द्धित रूपोंको प्रतिक्षिप्त करने अथवा उनके 'यथार्थ अंकन' से जन-साधारणकी स्थितिमें अन्तर नहीं आता, इंडियन इंग्लिशका चिन्तक उससे प्रभावित नहीं होता, भारतीय भाषाओंका लेखक-चिन्तक अपनी उपेक्षित स्थितिके कारण इस ओर प्रवृत्त नहीं होता। वस्तुतः इस वर्गके लेखक-चिन्तकको आगे लाने, उन्हें प्रतिष्ठा प्रदान करने, उनके चिन्तनोंको व्यावहारिक रूप देकर उन्हें प्रोत्साहन देनेकी जरूरत है न कि उन्हें धकेलकर इंडियन इंग्लिश लेखक वर्गमें बिठानेकी।

यही स्थिति अन्य विषयोंकी भी है। जब हम वैचारिक तत्त्वका प्रश्न उठाते हैं और काव्य या अन्य विधाओं में इसकी चर्चा करते हैं तो यह चर्चा करना भूल जाते हैं कि विचार-चिन्तन-साहित्य भारतीय भाषाओंमें कितना उपलब्ध है। सामान्यतः दार्शनिक चिन्तन पद्धतिकी हमारी अपनी परम्परा है, वह समृद्धभी है, परन्तु यह परम्परा अवरुद्ध है। जिन क्षेत्रोंमें भारतीय भाषाएं शिक्षणका माध्यम हैं, वहाँभी पाठ्य पुस्तकोंके रूपमें केवल पाश्चात्य दर्शन और चिन्तन पढ़ाया जाता है जबकि इनसे प्रभावित शिक्षित वर्ग जन-मानससे बिल्कुल कट जाता है क्योंकि जन-मानस अबभी परम्परागत चिन्तन पद्धतिसे जुड़ा है। यह स्थिति लोक-साहित्य, (कथा, वार्ता, गीत) से तो उभरती ही है, सामान्य चर्चा और बातचीतमें भी उसका चिन्तन भारतीय दर्शनसे, रहस्य और आध्यात्मिकतासे ओतप्रोत होता है।

भारतीय भाषाओंमें इतिहास-साहित्य लगभग अनुपलब्ध होनेपर भी साहित्यके आलोचक जब इतिहास-बोध की चर्चा करते हैं तो सम्भवतः वे अंग्रेजीमें उपलब्ध इतिहास-साहित्यकी चर्चा कर रहे होते हैं। हिन्दीमें मौलिक रूपसे जिन दो-एक लेखकोंको कुछ इतिहास ग्रन्थ प्रकाशित करानेका अवसर मिला है, उन्हें हिन्दी साहित्य के आलोचकोंने कोई प्रतिष्ठा प्रदान नहीं की। वे भूले-बिसरे लेखकोंमें हैं। यही स्थिति विज्ञानकी विभिन्न शाखाओंकी है। प्रतिष्ठा और सम्मानके अभावके कारण विज्ञानके स्तरीय साहित्यका प्रकाशन नहीं हो पाता, यद्यपि वैज्ञानिक अनुसंधानशालाओंके अनेक वैज्ञानिक अपनी भाषाओंमें विज्ञान-लेखनके लिए तत्पर हैं। इस वैज्ञानिक साहित्यका अभाव ही भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक उपन्यासोंकी विरलताका मुख्य कारण है। साहित्यिक आवश्यकताके अतिरिक्तभी भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक साहित्यकी गंभीर कमीको पूरा करनेकी जरूरत है और स्वयं देशमें वैज्ञानिक स्तरको ऊंचा उठानेके लिए भारतीय भाषाओंको माध्यम बनानेकी और बौद्धिक स्तर को ऊँचा उठानेकी जरूरत है। आज स्वतंत्रता-प्राप्तिके पैंतीस वर्ष बादभी टैक्नालाजी बड़े पैमानेपर आयात करनी पड़ रही है। राजनीति, मनोविज्ञान, कानून आदि विभिन्न विषयोंकी स्थिति इससे भिन्न है क्या?

साहित्यकी विभिन्न विधाओं और साहित्येतर घोषित विषयोंमें पारस्परिक सम्पर्कका यह अभाव, सर्जनमें असंतुलन जो स्थिति उत्पन्न कर रहा है, वह हमारे चिन्तन को तो प्रभावित करही रहा है, साहित्यके स्तरको भी प्रभावित कर रहा है क्योंकि नींव और आधारभूमि दृढ़ नहीं है। यह उपेक्षा तथा साहित्येतर क्षेत्रोंके प्रति अवमाना साहित्यकी स्थितिको भी कमजोर बना रही है और हमारे सर्जनशील लेखक कुछ क्षोभके साथ हमसे दूर हट रहे हैं। इस प्रसंगमें यह उद्धरण हमारा ध्यान खींचनेमें सहायक होगा : "हिन्दीभाषी होनेके बादभी मुझे अपनी बात पहले एक विदेशी भाषाके माध्यमसे कहनी पड़ी, यह मेरे दुर्भाग्य तथा हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं व प्रकाशकों की साहित्येतर विषयोंके प्रति व्यावसायिक उदासीनताका परिचायक है। आशा है हिन्दीके हिमायती अपने सारे प्रयासोंके बावजूद हिन्दीका जनाजा निकालनेमें सफल नहीं होंगे। कुछ क्षेत्र अबभी हिन्दीके ठेकेदारोंके प्रभाव क्षेत्रके बाहर हैं।" [प्रभा दीक्षित : 'साम्प्रदायिकताका ऐतिहासिक संदर्भ' के आमुखमें]। ▭ ▭

इतिहासकी सही दृष्टिकी खोजमें

'गदरके फूल'[1]

लेखक : अमृतलाल नागर **समीक्षक : डॉ. मूलचन्द गौतम**

सत्तावनके स्वाधीनता संग्रामके प्रति अंग्रेज और अंग्रेजीपरस्त तथा विशुद्ध भारतीय दृष्टिकोणके अन्तरसे, शासक और शासित वर्गकी इतिहास-दृष्टिके अन्तरको भलीभाँति समझा जा सकता है। इस दृष्टिसे इतिहासका अध्ययन रोचक औद दिलचस्पही नहीं, ऐतिहासिक तथ्यों पर पुनर्विचार करनेके लिए भी वाध्य कर सकता है। प्रत्येक युगमें शासक वर्गने हर तरहकी कोशिश करके इतिहासको अपने पक्षमें करनेका प्रयास किया है। यह कार्य चाहे इतिहासकारोंको दरवारसे जोड़कर किया गया हो, या उन्हें पुरस्कार, सम्मान या आर्थिक सहायताके रूपमें अपने अधीन करके। यही कारण है कि इतिहासकी अधिकांश मान्यताओं-धारणाओंपर शासक वर्गकी आकांक्षाओंकी स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। शासित वर्गके शक्तिशाली होने तथा सत्तामें आनेके वाद उनके द्वारा भी इतिहासको अपने पक्षमें करनेके प्रयास किये जाते हैं। विश्वका अधिकांश इतिहास शासक और शासित वर्गकी इस विकृतिका शिकार रहा है। इसलिए इतिहासके इस आभासके पीछे छिपे सत्य और वास्तविक तथ्योंको जानने के लिए इतिहासकारकी सापेक्षता-निरपेक्षताको जानना जरूरी हो जाता है। दोनों वर्गोंके अतिवादके पीछेकी वास्तविकताका कुछ पता लोकमें प्रचलित मान्यताओं, किम्वदंतियोंसे भी चल सकता है। इस रूपमें इतिहास एक वहुत नाजुक मामला है, जो तनिक-सी असावधानी, पक्षपात या अन्य किसी दवावसे लिखा जानेपर, अनेक पीढ़ियोंके दिमागपर अपनी विकृतियोंकी छाप छोड़ता है और इसके परिणाम वहुत भयंकर होते हैं। इसलिए इतिहासके साथ प्रयोग करनेकी मनमानी नहीं चल सकती। ऐसा होनेपर इतिहास अवैज्ञानिक तथा विशिष्ट संकीर्ण राजनीतिक उद्देश्योंके लिए इस्तेमाल किया जाने लगता है, जो नितांत गलत है। सही इतिहास-दृष्टिके लिए इतिहासके इस पहलूको समझना जरूरी हो जाता है। इतिहासमें यह विकृति कई वार अवैज्ञानिक अंध-राष्ट्रीयताके पूर्वाग्रहके कारण उत्पन्न हो जाती हैं। भगवतशरण उपाध्यायके अनुसार 'जहाँपर इतिहासकार राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे इतिहासका प्रणयन करता है, वहाँ वह उसकी घटनाओं और व्यक्तियोंसे राग-द्वेष करने लगता है। उसके सामने वास्तवमें इतिहास नहीं, राष्ट्र और राष्ट्रीय उपादेयताको दृष्टिमें रख वह इतिहासकी घटनाओंको रूप-रंग देता रहता है।' (भा. स. का ऐति. विश्लेषण, पृ. २६०, तृ. सं.) पूर्वाग्रहसे विकृत इस प्रकारके इतिहासोंमें वास्तविक घटनाओं और तथ्योंके प्रति उपेक्षा तथा अवास्तविक तथ्योंकी प्रशंसाकी असंगति आद्यन्त मौजूद रहती है। इस प्रकार राष्ट्रकी सुविधाओंके लिए राजनीतिक संकलनके रूपमें प्रस्तुत किया गया यह इतिहास सही अर्थोंमें इतिहास होताही नहीं। इसमें व्याप्त अतिशयोक्ति और अतिरंजनाओंको वचाकर तथ्यों एवं घटनाओंका उपयोग इतिहासकी सही दृष्टिके लिए किया जा सकता है।

'गदरके फूल' में नागरजीने अवधके सत्तावनी क्रान्तिके इतिहास तथा लोकमें ऐतिहासिक घटनाओं, तथ्यों और व्यक्तियोंसे सम्वन्धित स्मृतियों और किंवदन्तियोंको संजोनेका प्रयास किया है। उन्होंने अवधके सभी महत्वपूर्ण स्थानोंपर जाकर, लोगोंसे मिलकर पिताओंसे, पुत्रोंको मिली स्मृतियोंकी विरासतको एकत्र करके अनेक स्थापित और प्रचलित ऐतिहासिक धारणाओंको चुनौती देकर पुनर्विचार करनेके लिए वाध्य कर दिया है। इस श्रम-साध्य कार्यकी प्रक्रियामें नागरजी अंग्रेजी और अंग्रेज-परस्त इतिहास ग्रन्थोंके साथ तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकारोंके ग्रन्थों, गजेटियरों, पत्रों, लोकगीतों, जनश्रुतियों, अखवारी लेखों-सूचनाओंसे गुजरे हैं। 'सत्तानवी क्रान्तिके सम्वन्धमें भारतीय दृष्टिकोणसे लिखे गये इतिहासके अभावमें जनश्रुतियोंके सहारेही इतिहासकी गैल' को

1. **गदरके फूल** ; लेखक : अमृतलाल नागर; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६ : पृष्ठ : २४३, डिमा. ८१; मूल्य : ३६.०० रु.।

पहचाननेका, नागरजीका प्रयास कई दृष्टियोंसे महत्वपूर्ण और सार्थक है। एक साहित्यकार द्वारा इतिहासके क्षेत्रमें किया गया यह अनुसंधानात्मक कार्य जोखिमभरा और अनधिकार चेष्टा समझी जा सकती है, किन्तु नागरजी इस प्रक्रियामें व्यक्तिगत पूर्वाग्रहोंसे अलग होकर एक-एक तथ्यकी छानबीन करके उसे वैज्ञानिक और वास्तुपरक ढंग से देखते हैं, यह इतिहासकारोंके लिएभी अनुकरणीय है। प्रसादजी पहले साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्यमें गम्भीर इतिहास-दृष्टिका परिचय दिया, सहमति-असहमति की बात अलग है। इसी परम्परामें नागरजी अपने उपन्यास-कहानियोंके संदर्भमें, जिस तरह सूक्ष्म अन्वेषण द्वारा उनकी सामग्रीके चयनमें श्रम करते हैं, हिन्दीमें अब यह स्थिति विरल होती जा रही है। राहुलजी, राँगेय राघव हजारीप्रसाद द्विवेदी, भगवतशरण उपाध्याय, वृन्दावन-लाल वर्मा और अब कृष्णा सोवतीने अपनी कृतियोंमें गम्भीर इतिहास-दृष्टिका समावेश करके भारतीय साहित्य और इतिहासमें बहुत कुछ जोड़नेका प्रयास किया है। नागरजीने भी 'सत्तानवी क्रान्ति सम्बन्धी अपने उपन्यासके लिए ऐतिहासिक सामग्री एकत्र करते हुए' 'गदरके फूल' के रूपमें इतिहासकी सही दृष्टिकी तलाश की है। इसका यह मतलब कतई नहीं है कि इस दृष्टिकी अपनी सीमाएं और कमियां नहीं हैं। इस ऐतिहासिक सामग्रीको नागर-जीके उपन्यासों—शतरंजके मोहरे, एकदा नैमिषारण्येके संदर्भमें देखनेपर उनकी वस्तु और प्रेरणास्रोतोंकी प्रामाणिक जानकारी मिल सकती है। 'गदरके फूल' का यह दोहरा महत्त्व नागरजीकी रचना प्रक्रियाको समझनेमें तथा अधूरे और आगामी उपन्यासोंके संदर्भमें स्पष्ट होगा।

अंग्रेज इतिहासकारों तथा सेनानायकोंने सत्तानवी क्रान्तिको 'सिपाही विद्रोह' की संज्ञा देकर विद्रोहकी इस देशव्यापी चेतनाको सीमित, तुच्छ और बौना सिद्ध करने की कोशिश की। अंग्रेजपरस्त लोग उनकी इस मान्यता को ज्योंका त्यों दोहराते रहे। यहांपर गौर करने लायक तथ्य है कि अंग्रेजोंने जिन भारतीय शूरवीरोंकी वीरता समझ-बूझ और रणकौशलकी अत्यधिक प्रशंसा की है, वहाँ इन अंग्रेजपरस्त भारतीयोंने उनके कार्योंकी या तो उपेक्षा की है या उन्हें जघन्य मानव-संहारका दोषी बताकर निकृष्ट सिद्ध किया है। इतिहास और उससे अलग तथ्योंसे अब यह प्रमाणित हो चुका है कि सत्तावनी क्रान्ति कुछ सिरफिरोंके दिमागकी उपज न होकर बहुतही योजनाबद्ध तरीकेसे कार्यान्वित की गयी कार्रवाई थी, यह अलग है कि सुनियोजित और सुनिश्चित होते हुएभी यह विद्रोह असफल हो गया। नागरजीने परम्परागत रूढ़ शक्तियोंकी इस असफलताके मूलमें आपसी फूटपरस्ती, स्वार्थ, अवसरवादिता और भोग-विलासके प्रति बढ़ती आसक्तिको माना है। उनकी दृष्टि इस गदरकी कमियों-कमजोरियोंको सचेत-सतर्क रूपसे रेखांकित करते हुए, इसकी उपलब्धियोंको भी सामने लानेमें समर्थ हो सकी है। चर्बी-वाले कारतूसोंको ही गदरका कारण मानकर चलनेवाले भोले लोगोंके सामने अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि इसका कारण और लक्ष्य बहुत व्यापक था, बहाना भलेही यह रहा हो। यह सिपाही विद्रोह अंग्रेजी शासनके खिलाफ था, जिसमें जनता और सामन्तवर्गने भी सक्रिय भूमिका निभायी थी। इन्हीं अर्थोंमें सत्तावनी क्रान्ति जनक्रान्ति थी। नागरजीने इस क्रान्तिमें भाग लेने वाले प्रगतिशील-क्रान्तिकारी तत्त्वोंकी परम्पराका सम्बन्ध गदरके बाद भारतको नया गतिशील और शक्तिशाली रूप देनेवाली उभरती हुई जनशक्तिसे मानकर इसे सही संदर्भ में देखा है।

इतिहासकी मान्यताओं, तथ्यों और किंवदंतियोंके जंगलमें दृष्टिहीन-नासमझ व्यक्तिके भटकनेका डर निरन्तर बना रहता है। सचेत, सक्रिय, सतर्क और जागरूक दृष्टि सृजनात्मक शक्तिसे युक्त होकर वास्तविकताके निकट पहुंचनेमें समर्थ हो सकती है। लम्बे समयके बाद किंवदंतियोंमें अतिरंजनाका तत्त्व सत्यको धूमिल कर देता है। इसलिए इन्हें ऐतिहासिक सत्य और तथ्यके रूपमें प्रयुक्त करनेके लिए बहुत सावधानी और सतर्कताकी जरूरत है। दरियाबादके बाबा रामसनेहीकी समाधि, प्रतापबलीकी देवी द्वारा रक्षा, राजा लोनेसिंहके गदरमें भाग लेनेकी गलतफहमी, बेगमकी यात्राके मार्ग तथा नाना पेशवाके सम्बन्धमें प्रचलित किंवदंतियोंके प्रति नागरजीने अनेक गलतफहमियोंको दूर किया है। हजरत महल और वाजिदअली शाहके व्यक्तित्वको भी उन्होंने अनेक अतिरंजनाओंसे बचाकर सामान्य मनुष्यके रूपमें देखा है, जिसकी अपनी कुछ मानवीय कमजोरियां हो सकती हैं। इतिहास बहुत निर्मम होता है और नागरजीने इस रूपमें किसीको कोई अतिरिक्त सहानुभूति नहीं प्रदान की है, जिससे वे बहुत विश्वसनीय तरीकेसे तथ्योंको प्रस्तुत कर सके हैं। परम्पराके समृद्ध ज्ञान, पुरातत्त्वके प्रति गहरी रुचिके कारण वे अनेक ऐतिहासिक तथ्योंके

प्रति न्याय कर सके हैं। उनकी सर्जनात्मक दृष्टिने इतिहासको रिपोर्ताज-संस्मरण और कल्पनासे जोड़कर ज्यादा जीवन्त बना दिया है। समयके परिवर्तन और भविष्यके प्रति उत्सुक लेखक इतिहासको किस तरह प्रासंगिक बना सकता है, 'गदरके फूल' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रमाणके अभावमें संकेतोंके सहारे सत्य को पहचाननेकी अपनी सीमाएँ हैं। आज ऐसे व्यक्तियों की जरूरत है जो परम्पराओंके अंधनिष्ठ पुजारी भारतीय जनकी नेत्रहीना निष्ठाको प्राचीन और सही इतिहासके नेत्र प्रदान करके आजके वैज्ञानिक युगकी प्रगतिके महत्त्व को समझा सकें। 'गदरके फूल' में नागरजी इस अंधश्रद्धा से बचकर परम्पराकी कमजोरियोंको साफ-साफ देख सके हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि 'मैं कोरी व्यक्तिपूजा या विगत वैभवकी रोमांटिक परिपाटीका पुजारी नहीं। परम्पराओं को इसलिए पहचानना चाहता हूं कि उनमें कौन-सी ऐसी सशक्त हैं जो हमें आजभी अपने समय और परिस्थितियों से जूझनेके लिए नया रूप धारणकर प्रेरणा दे सकती हैं।' (पृ. ३४) वे अनायासही किसी बातपर विश्वास नहीं कर लेते और मानते हैं कि 'गदरमें जिनकी जायदादें जब्त हुई हैं उन सबको ही हीरो मानकर नमन करूं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। उनके प्रति सहानुभूति बरती जा सकती है, मगर सहानुभूतिकी भी एक सीमा है।' (पृ. १७२) इसी संतुलित और सही दृष्टिकोणके कारण वे राजा-रजवाड़ोंसे अलग जनसाधारणके शहीदोंको अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'गदरके नायकोंमें अनेक ऐसे हैं जो मुझे नकली लगते हैं और जिनका ढिंढोरा पीटना अब बन्द हो जाना चाहिये और बहुत-से ऐसे नायक हैं जो अबतक छिपे पड़े हैं या दुर्भाग्य-वश गलत मूल्यांकनके शिकार हो गये हैं।' (पृ. ३४) यही वजह है कि उन्होंने कमजोरीके लिए बड़े-से बड़े नायकको नहीं बख्शा हैं। वे वेश्यावर्गकी बेगम हजरतमहलकी सूझ-बूझ, बुद्धिमत्ता और कौशलकी प्रशंसा करके उसके व्यक्तित्वको ऊँचे-ऊँचे खानदानवाले मर्द-नामर्दों और बड़े आबरूदारोंकी बुजदिल विलासी बेटियोंसे कहीं ऊँचा मानते हुएभी, गदरका भार सिपाहियोंपर डालकर दिये गये उनके बयानके कारण उनके चरित्रको गिरा हुआ मानते हैं। (पृ. २२७) यही वजह है कि अपने देशके योग, दर्शन, साहित्य, शिल्पकी महान् परम्पराओंसे गौरवान्वित होनेवाले नागरजी इस महान् साँस्कृतिक देशके घोर अधार्मिक, अत्यन्त अमानुषिक रूप और असांस्कृतिक परम्पराओंकी ओरसे आँख नहीं

मींच पाते। (पृ. १३६) और अनेक स्थलोंपर ब्राह्मणों, बौद्धोंकी आलोचना करनेसे नहीं चूकते (पृ. १४१, १४६, १७६)। लेकिन वे रमेशचन्द्र मजूमदारकी तरह अंग्रेजों और और क्लर्क क्लासके बंगालियोंकी डायरियोंके सहारे गदरवालोंकी क्रूरता, नृशंसता, जघन्यता और पैशाचिकता को खोजकर लज्जासे मस्तक झुका नहीं बैठ जाते, वरन् यह देखना चाहते हैं कि किन कारणोंकी वजहसे महान् भारतीय संस्कृतिकी परम्पराएं कमजोर पड़ीं। नागरजी ने इस पुस्तकमें पृ. ६, ४३, ४४, ४८, ४६ और पृ. ६४-६५ पर मजूमदारजीकी पूर्वाग्रहयुक्त, अवैज्ञानिक धारणाओंकी तर्कयुक्त आलोचना करके उनकी कमियोंको स्पष्ट किया है। इतिहासके प्रति इस अंग्रेजपरस्त दृष्टिकी आलोचनाके बावजूद वे मानते हैं कि 'मैं राष्ट्रकी कमजोरियों पर पर्दा डालनेके पक्षमें नहीं हूं, गदरके गौरवको लेकर अपनेको बहलाना या धोखा देनाभी नहीं चाहता, परन्तु दोषोंपर चौदह आनेभर वजन गुणोंकी ओरसे आँखें मींच कर अपने जनको दिग्भ्रमित, हतोत्साहित और कुण्ठितभी नहीं करना चाहता।' (पृ. ६५) इतिहासके प्रति यह दृष्टिकोण पूरी पुस्तकमें आद्यन्त मौजूद है। नागरजीने सर होम ग्राण्टकी 'सिपाय वार', विलियम रसलकी 'माई डायरी इन इंडिया', सुरेन्द्रनाथ सेनकी 'एट्टीन फिफ्टी सेवन', ईनिसकी 'लखनऊ एण्ड अवध इन दि म्यूटिनी', नाइटनकी 'प्राइवेट लाइफ आफ एन ओरियण्टल कुइन', रेनाल्डसनकी 'व्हाइट साहेब्स इन इंडिया' जैसी अनेक प्रामाणिक इतिहास पुस्तकोंके अलावा 'दि गोल्डेन बुक आफ इंडिया', 'बेगमाते अवधके खुतूत', 'कैसरउत्तवारीख', 'सवाहनात-ए-सलातीन-ए-अवध', 'तारीखे अवध', 'हुज्ने अख्तर', 'भारतमें अंग्रेजी राज', 'कनपुरिया क्षत्रिय वंश परिचय', 'संघर्षकालीन नेताओंकी जीवनियां', 'अवधके गदरका इतिहास', 'अन्धकारयुगीन भारत', 'जंगनामा', 'बेनीमाधव बावनी', दैनिक स्वतंत्र भारतमें छपे लेखों, फरमानों, लोकगीतों, कर्नल स्लीमैनके विवरणों तथा गजेटियरोंसे उपयुक्त तथ्यों व घटनाओंका 'गदरके फूल' में उपयोग करके उन्हें प्रामाणिक आधारपर स्थापित किया है। इन तथ्योंको, उन्होंने सम्बन्धित स्थानोंपर जाकर लोगों की गदर सम्बन्धी बातोंसे तुलना करके और अधिक पुष्ट किया है। इस दोहरी प्रक्रियामें पाये गये अन्तर्विरोधों तथा असमानताओंके प्रति उन्होंने पूरी छानबीन करके विवेकपूर्ण निर्णय लिया है। जहाँ कहीं वे ऐसा निर्णय [illegible] वहाँ इसे स्पष्टभी कर दिया है,

जिससे कि गलतफहमीकी कोई गुंजाइश न रह जाये। उन्होंने व्यक्तियोंसे किये गये वार्तालापको ज्योंका त्यों लिपिबद्ध किया है, अतः कहीं-कहीं तथ्योंमें अन्तर्विरोध मौजूद रह गये हैं। पृ. ११४ व १२४ पर बिरजीस कदर की गदरकालीन उम्र तथा पृ. १२६ पर राजा लोनेसिंह की सन्ततिके बारेमें दो विरोधी वक्तव्य हैं, जिनपर नागर जीने विचार नहीं किया है।

नागरजीने ऐतिहासिक तथ्योंके संग्रह और उनकी पुष्टि हेतु अवधके बाराबंकी-भयारा, जहाँगीराबाद, कुर्सी, महादेवा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, गोंडा, बहराइच-बौंडी, इकौना, रेहुआ, ढोंढ़ेगांव, दुविधापुर, सीतापुर-मितौली, मनवाका कोट, खैराबाद, नैमिषारण्य, राय-बरेली-डलमऊ, भीरा गोविन्दपुर, शंकरपुर, परशुरामपुर, हरचन्दपुर ओर कठवारा, सैंमरी और गढ़ी बैहार, हरदोई, उन्नाव और लखनऊके गदर सम्बन्धी सभी स्थानोंकी यात्रा करके वहां लोगोंसे मिलकर समस्त विवरणोंको 'गदरके फूल' में संगृहीत किया। उनके इस विस्तृत और गंभीर कार्यसे सत्तावनी क्रांतिकी रूपरेखा-योजना और संघर्षका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इस प्रक्रियामें सत्तावनी क्रान्ति के वीरोंके व्यक्तित्व तथा कार्योंपर पूरा प्रकाश पड़ता है, बल्कि जहां कुछ नकली नायकोंका पता चलता है, वहां अनेकका छिपा हुआ रूप स्पष्ट हो जाता है। चहलारीके बलभद्रसिंह, देवीबख्श, बेणीमाधव बख्श, मौलवी अहमदुल्ला शाह और बेगम हजरतमहलके वीरतापूर्ण कार्यों, संगठन क्षमता, रणकौशलकी जानकारी नये सिरेसे प्राप्त होती है। रज्जाक बख्श, अच्छन खां, मानसिंह, बाबा रामचरण दास, अमीरअली, राजा लोनेसिंह, जगन्नाथसिंह, राव रामबख्श, इत्यादि लोगोंके व्यक्तित्वका वास्तविक रूप 'गदरके फूल' में देखनेको मिलता है। नागरजीने अंग्रेजोंके साथ युद्धमें भारतीयोंकी हारके कारणोंपर भी विचार किया है। इससे वाजिदअली शाहके समयकी बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियां स्पष्ट हो जाती हैं।

भारतीय इतिहासके इस महत्त्वपूर्ण मोड़पर अंग्रेजोंके खिलाफ हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताके तथ्यभी स्पष्ट होते हैं कि कैसे राणा बेणीमाधव बक्श और मौलवी अहमदुल्ला शाह तथा बाबा रामचरणदास और अमीरअली संगठित होकर अंग्रेज कूटनीतिको विफल बना रहे थे। यही एकता स्वातंत्र्य संग्रामकी मुख्य राष्ट्रीय धारा थी, जो ठीक स्वतंत्रतासे पहले छिन्न-भिन्न होकर पुनः पारस्परिक घृणा में बदल गयी थी। इस रूपमें यह पुस्तक सत्तावनी क्रान्ति

के विविध, व्यापक और जटिल अनुभवको इतिहासकी सही दृष्टिसे समझनेके लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। नागर जीने इसके प्रथम संस्करणमें छूटी सूचनाओंको पूरा करने का प्रयास दूसरे संस्करणमें किया होता (बादेके मुताबिक, पृ. १९१) तो यह कार्य और अधिक पूर्ण हो पाता, लेकिन अपने वर्तमान स्वरूपमें भी यह कम महत्त्वका नहीं है। इसमें स्थान-स्थानपर दिये गये सुझावों—स्वतंत्रता-सेनानियोंकी पेंशनके बारेमें (पृ. ८१), ऐतिहासिक-सांस्कृतिक स्थलोंकी सुरक्षा और खुदाईके बारेमें (पृ. ६८-८६) कलाकारोंके अर्द्ध सरकारी संगठनके निर्माण—का अपना अलग महत्त्व है। इसी तरह पृ. ६१ पर हजरते शीशमें शेषनागकी खोज तथा पृ. ६३ पर भटोंके महत्त्वके साथ बहराइचके 'इच' की शाब्दिक खिलवाड़का अपना रंग है। डलमऊके साथ निरालाजी, (पृ. १६२) गोंडाके साथ जी. पी. श्रीवास्तव और अम्बरपुरके साथ 'पढ़ीस' जी(पृ. ९०-१३०) के संस्मरण तथा भेंटके विवरणका विशेष महत्त्व हैं। पूरी पुस्तकपर नागरजीके गंभीर इतिहासकार-साहित्यकार और हल्के-फुल्के हास्य-व्यंग्यमय सर्जनात्मक व्यक्तित्वकी छाप हैं। सत्तावनी क्रान्तिके इतिहासकी सम्यक् जानकारीके लिए यह पुस्तक संग्रहणीय और विशेष महत्त्व की है।

बोधिवृक्षकी छायामें

लेखक : आचार्य चतुरसेन; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : २६६; क्रा. ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।

यह एक बृहत् ऐतिहासिक उपन्यास है। जैसाकि नामसे ही स्पष्ट है बुद्धके काल, उनके धर्मके विकासके अन्तर्गत मौर्य सम्राट् अशोकका धर्म प्रचार, महेद्र, संघमित्राका लंका निष्क्रमण, अशोकके हाथोंसे स्खलित होती सत्ता, तिष्यरक्षिता द्वारा कुणालका अंधा बनाया जाना आदि घटनाओंका तानाबाना उपन्यासके कलेवरका निर्णय करता है।

ऐतिहासिक तथ्यही प्रायः कथानकका आधार बनते हैं, किन्तु सम्राट् अशोकद्वारा कलिंग-विजयके बाद पश्चातापकी भावनाके अन्तर्गत अशोकका कलिंगके राजकुमार से यह संवाद द्रष्टव्य है, 'प्रिय राजकुमार, तुम्हारे पिता का राज्य तो मैं तुम्हें लौटाता ही हूं, इसके अतिरिक्त औरभी जो मांगो मैं दूंगा।' (पृ. १७७) प्रमाणोंके आधार पर कलिंग-विजयके बाद तेरहवें शिलालेखमें वर्णित युद्धसे उत्पन्न अनुशोचनके बादभी कलिंगको अशोकने कभी स्वतंत्र नहीं किया। (रोमिला थापर : अशोक एण्ड दि डिक्लाइन आफ दि मौर्यज, पृ. २०३)

उपन्यासमें एक अन्य उल्लेख आता है, "ब्राह्मण एवं आर्य होते हुएभी चाणक्यने अनार्य चन्द्रगुप्तको प्रश्रय दिया।" (पृ. १३१) ब्राह्मण ग्रन्थोंके आधारपर हरप्रसाद शास्त्री सरीखे विद्वानोंने चन्द्रगुप्तको अनार्य व शूद्र माना था। यूनानी-रोमन लेखक तथा बौद्ध-जैन ग्रन्थ चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय बताते हैं। प्रायः यही मत आधुनिक विद्वानों को मान्य है। स्वयं चाणक्य अर्थशास्त्रमें कहता है, "जनता दुर्बल राजाका भी आदर करती है, यदि वह अभिजात वंशका हो। परन्तु वह अनभिजात (निम्न जातीय) राजाका आदर नहीं करती, चाहे वह बलवान्ही क्यों न हो। ["दुर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, बलवतश्चानभिजातस्योपजातं विसंवादयन्ति।"]

उपन्यासमें वर्णित कुछ निष्कर्ष ऐतिहासिक रूपसे अतिरंजनाका पुट लिये हुए प्रतीत होते हैं, जैसे "आठवीं शताब्दीसे बारहवीं शताब्दीतक पांच सौ वर्षोंमें वज्रयान ने एक प्रकारसे सारीही भारतीय जनताको कामी, व्यसनी, शराबी और अंधविश्वासी बना दिया था।" (पृ. ११६)

इसके अतिरिक्त, पुस्तकमें वर्णित चरित्र, घटनाएं कथानकमें गहरे संयोजित नहीं हैं, अतः आगेकी घटनाओं के लिए कोई जिज्ञासा नहीं उभरती। कोई कथाप्रसंग कहींभी छोड़कर अगला असम्बद्ध-सा कथा प्रसंग शुरू कर दिया गया है, जैसे १२१ पृष्ठपर महावीर स्वामीके जन्म, कुल, वंशका उल्लेख। यह शायद लेखकके मूडकी बात अधिक लगती है कि वह कोई भी प्रसंग कहींभी उठा ले।

प्राचीन भारतीय इतिहासके विद्यार्थीको जो कुछ अपनी पाठ्यपुस्तकमें मिलता है वही प्रायः उपन्यासमें भी क्रमशः उल्लिखित है, उदाहरणार्थ शैक्षिक जीवनके अन्तर्गत इस प्रकारका वर्णन : "ब्राह्मण वैदिक ग्रन्थों जिनमें आयुर्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद सम्मिलित थे। चारों वेद, जिनमें लगभग एक लाख छंद थे, मौखिक परम्परासे पढ़े जाते थे। (पृ. ११८) [उपन्यासकार इस ऐतिहासिक तथ्यसे अपरिचित है कि 'आयुर्वेद' नामसे कोई वेद नहीं है। वस्तुतः यहां 'ऋग्वेद' होना चाहिये। सामान्यतः वेदके मन्त्रोंकी चर्चा होती है, छन्दोंकी नहीं और चारों वेदोंमें कुल मिलाकर बीस हजार चार सौ चौदह मन्त्र हैं - सम्पादक]

प्रस्तुत पुस्तकमें वर्णित बौद्ध धर्मसे जुड़ी घटनाओं, शिक्षा संस्थाओं, बौद्ध धर्मके ह्रासकी क्रमिक अवस्थाओं, शैव, पाशुपत, वैष्णव सम्प्रदायोंके उल्लेख उपन्यास नहीं, किसी इतिहासकी पुस्तक पढ़नेका भ्रम उत्पन्न करते हैं। साथही ये सब अंश उपन्यासकी मुख्य धारासे अलग-अलग पड़े प्रतीत होते हैं। जानी-पढ़ी बातोंका नीरस गद्य के रूपमें किसी औपन्यासिक कृतिमें उल्लेख निश्चयही रसोद्रेकमें बाधक बनता है।

[illegible] अनेक ऐतिहासिक चरित्र, बुद्ध,

महावीर, बिम्बसार, कौटिल्य, अशोक, तिष्यरक्षिता आम्रपाली, कुणाल आदि कृतिकी शोभा बढ़ाते हैं, किन्तु अनेकानेक सूचनाओं, उल्लेखों, विवरणों तथा कथानककी विस्तारात्मकताके कारण पात्रोंकी मानसिकता, उनके अन्तःसंघर्ष, घात-प्रतिघात आदिका अंकन मात्र ऊपरी स्तरपर ही होकर रह गया लगता है। कमही पात्रोंमें गहराईके दर्शन होते हैं, शायद कोईभी अमिट छाप नहीं छोड़ पाता।

फिरभी, कुछ प्रसंग निश्चयही मार्मिक बन पड़े हैं तथा कथ्यके अनुरूप शिल्प और भाषा प्रभावी है :

बुद्धका संवेदनशील मानस मानवकी दुःखपूर्ण नियति से आलोड़ित है। वे देर गये राततक चिंतनसे आच्छन्न रहते हैं तभी यशोधरा कहती है…

'अच्छा आर्यपुत्र, इस अंधकारमें जागृत रहकर किस सौभाग्यकी आशा करते हैं? इस अंधकारमें तो जागृत पुरुषकी अपेक्षा सुख-से सोये पुरुषही अधिक भाग्यशाली हैं।'

सिद्धार्थं उत्तेजित हो उठे, 'किन्तु उनका कभी प्रभात न हो तो? उस निद्राका कभी अवसान न हो तो?'

यशोधरा निरुत्तर होकर सिद्धार्थका मुंह देखने लगी।

'प्रिये, यदि मैं अपने प्रकाशकी रेखासे इस अंधकार को छिन्न-भिन्न कर सकूं, जागृत होकर मानव समाज सुन्दर आलोक देख सके तो गोपा, क्या हमारा जीवन धन्य न होगा?'

'अवश्य।'

'तब इसके लिए हृदय विदीर्ण करना होगा।'

'विदीर्ण?' वह भयभीत होकर शय्यापर गिर पड़ी और रोने लगी। (पृ. ३०)

ऐसाही अन्य स्पर्शी प्रसंग है: नवप्रसूता पत्नी यशोधराके कक्षमें सिद्धार्थका प्रवेश।

'पतिकी आहट पाकर यशोधराकी आँख खुल गयी।'

सिद्धार्थने कहा, 'गोपा, जादूगरनी यह क्या किया?'

अप्रतिम उल्लाससे यशोधराके प्राण नेत्रोंमें आ गये। उसने शिशुको उठाकर पतिकी गोदमें दिया, और स्वयं उठकर उनका चरण चुम्बन किया। उसने कहा, 'आर्य-पुत्र, आपके ही जैसे इसके नेत्र हैं, आपके ही समान इसकी मुखप्रतिमा है।'

सिद्धार्थने मधुर हास्यसे पुत्रको निहारते हुए पूछा, 'कहीं मैंने ही तो जन्म नहीं लिया?'

यशोधरा भावविभोर हो पतिके चरणोंमें लिपट गयी। (पृ. ३४)

एक अन्य प्रसंग : अंधे बने कुणाल रानी तिष्यरक्षिता के आवासकी ओर बढ़ चले। दोनोंके मध्य सटीक संवाद देरतक मनपर छाया रहता है।

'रानीने चौंककर पीछे देखा, 'कौन? कुमार विवर्धन?'

'भिक्षु कुणाल हूं आर्ये।'

'तो यहाँ किसलिए आये हो?'

'भिक्षाके लिए आर्ये!'

'कैसी भिक्षा?'

'कामकी भिक्षा, क्रोधकी भिक्षा, लोभ मत्सरकी भिक्षा, ईर्ष्याकी भिक्षा। यह सब इस भिक्षापात्रमें डाल कर निष्पाप हो जाओ देवी!'

'मैं पापिन हूं, यह तुमसे किसने कहा विवर्धन।'

'किसीने भी नहीं।'

'क्या तुम्हें मुझपर सन्देह है?'

'नहीं, पूर्ण विश्वास है देवी!'

'कैसा विश्वास?'

'कि माता भिक्षा देगी! मैं आपका पुत्र कुणाल भिक्षु हूं, आर्ये!'

यह सुन तिष्यरक्षिताके मनमें कम्पन हुआ।

'वह आहत स्वरमें बोली : चले जाओ, चले जाओ कुमार!' (पृ. २८२)

बौद्ध दर्शन और चिंतनसे पगे उल्लेख/संवाद युगके चिंतनको कहीं गहरे रेखांकित करने लगते हैं।

'आचार्य उपगुप्त आसनपर बैठे। सामने सम्राट् बद्धांजलि बैठ गये।'

उपगुप्तने कहा, 'सम्राट्, मैं अब कृषक हूं। मेरे पास श्रद्धाका बीज है। उसपर तपश्चर्याकी वृष्टि होती है। प्रज्ञा मेरा हल है। ह्रीका हरिस, मनकी ज्योति और स्मृति के कालसे मैं अपने खेत (जीवन क्षेत्र) जोतता हूँ। सत्य मेरा खुरपा है। उत्साह मेरा बैल है और योगक्षेम मेरा अधिवाहन है। मैं नित्य अपना हल निर्वाणकी ओर चलाता हूँ। इस प्रकार अब मैं अमृतकी खेती करता हूँ। अमृतकी संपदासे सम्पन्न होकर अब मैं सब दुःखोंसे मुक्त आनंदित हूं।' (पृ. १७४)

स्थितियोंके अनुकूल चित्रणमें लेखकको सफलता मिली है। आम्रपालीके यहाँ बुद्धका आगमन इसी तथ्य को उजागर करता है। (पृ. ८०)

इस प्रकार ऐतिहासिक [illegible] परम्पराका निर्वाह करते हुए यद्यपि कोई नयी जमीन लेखकने नहीं तोड़ी है, फिरभी इतने विस्तृत कालखण्ड का औपन्यासिक चित्रण, उसकी प्रतिभाका कायल अवश्य कर देता है। काश, लेखकने कथानकको और अधिक व्यवस्थित और कसावपूर्ण बनानेमें समय लिया होता तो कृति प्रभावी बन सकनेकी सम्भावनासे पूर्ण होती, किन्तु अब यह उबर नहीं सकी है।

☐ **डॉ. विनोदकुमार कौशिक**

शोक संवाद

लेखक : **मुद्राराक्षस**; प्रकाशक : **वाणी प्रकाशन, ६१ एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०-००७।** पृष्ठ : ११६; क्रा. ८०; मूल्य : १५.०० रु.।

'शोक संवाद' मुद्राराक्षसका हलका-फुलका मनोरंजक लघु-उपन्यास है। इस उपन्यासमें वस्तुसे अधिक शिल्पकी प्रधानता है। अत्यन्त सामान्य और बिखरे कथानकको रचनाकार अपने शिल्प-कौशलके बलपर पठनीय बना देता है। किन्तु पठनीय वह इस अर्थमें नहीं है कि उससे जिये जाते हुए जीवन-संघर्षकी कुछ दिशाओंका बोध होता है, अथवा नये पुराने जीवन-मूल्यकी प्रतिष्ठा होती है अथवा विद्रोहधर्मी जैसे किसी युग-बोधका संचार होता है। वास्तवमें जीवनसे सम्पृक्त युगीन विसंगतियोंसे ऊबे हुए आधुनिक मनको कृतिसे विराममात्र मिलता है। कथाकार के शब्द, वाक्य, अर्थ, व्यंग्य, कल्पना-प्रयोग, कथा-संगठन और घटनात्मक मोड़ सबमें एक विशिष्ट 'कला' है और ऐसी कला है जिसमें गांभीर्य वर्जित है। सब कुछ एक साहित्यिक मसखरेपनके साथ होता है। निस्सन्देह उपन्यासके पात्र वे लोग हैं जो दुःखी हैं, अति सामान्य और हीन नियतिवाले हैं। उनके जीवनके दुखकी गहराईको देखते उसे उसी गहराईके साथ उपस्थित करना शायद आजकी स्थितिमें बेमानी हो गया है। इसीलिए अभावग्रस्त हतभाग्य लोगोंके भद्दे जीवनको कथाकार इस कोण से उपस्थित करता है कि उनका विद्रूप अनुरंजनकारी बन पाठकोंको खींचता चलता है। यहां दुःख चरम सीमा पर पहुंचकर कलात्मक सुख बन उपस्थित हो रहा है। पूरी कृतिमें दुःखी लोगोंके चार दायरे हैं। एकमें नारायण और उससे सम्बन्धित जन हैं। दूसरेमें वकीलका परिवार है, तीसरा दायरा नौटंकीवालोंका है और चौथेमें पुरो[illegible] है। ये चारों दायरे स्वतंत्र हैं और कृतिमें अनिवार्य रूपसे सभी एक दूसरेको काटते हुए या उन्हें प्रभावित करते हुए चित्रांकित नहीं हुए हैं। कथाकार उनके प्रवाहको स्वयं कहीं नहीं छेड़ता है या मोड़ता है। सहज रूपमें कोई कहीं स्वयं किसी दूसरे दायरेको प्रभावित करने लगता है तो लेखक बिना उपन्यासके शिल्प-बिखरावकी परवाह किये वैसा सब कुछ हो जाने देता है। यही कारण है कि उपन्यासका अन्तभी कहीं कुछ नहीं होता है। नौटंकीके बाल-कलाकारकी मौतपर राजनीतिक नौटंकीकी शुरुआत हो जाती है और उपन्यासका पाठक जिस हलकेपनके साथ उपन्यासको शुरू करता है उसी हलकेपनके साथ खतमकर चैनकी सांस लेता है। आधुनिकताके नामपर नाना प्रकारके अपठनीय गंभीर या व्यर्थ-बोझिल हिन्दी उपन्यासोंको देखते स्वस्थ-शिष्ट अनुरंजनसे लिए मुद्राराक्षसका **'शोक सवाद'** उपयोगी है।

☐ **विवेकीराय**

फिर महकेंगे कदम्ब

उपन्यासकार : शकुन्तला पाण्डेय; प्रकाशक : प्रचारक बुक क्लब, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाच-मोचन, वाराणसी। पृष्ठ : ३१२; **क्रा.** ८०; **मूल्य : १०.०० रु.।**

'फिर महकेंगे कदम्ब' परिस्थितियोंके वात्याचक्रमें उलझी एक अत्यन्त रूपसी युवती 'शाहजादी' की मार्मिक, करुण एवं प्रभावशाली कथा तो है ही, विभाजनके दिनोंमें देशमें व्याप्त साम्प्रदायिक तनाव तथा तज्जन्य त्रासद स्थितियोंका भी हृदयस्पर्शी दस्तावेज है। श्रीमती शकुन्तला पाण्डेय (जन्म : १९२०) पहले अंग्रेजी में लिखती रही हैं, इधर ८-१० वर्षोंसे हिन्दीमें लिखने लगी हैं पुस्तकमें दी हुई इन परिचयात्मक पंक्तियोंपर विश्वास नहीं होता। जैसा पारदर्शी, तरल, रसपूर्ण, भावोद्वेगमय, सहज गद्य इस उपन्यासमें प्रयुक्त हुआ है, वह ८-१० वर्षोंके लेखनकी उपलब्धि नहीं हो सकता। मैं यह लिखकर भी अपनी कृपणतापर कुपित ही रहूंगा कि हिन्दीके किसीभी गद्यकारके पास ऐसा गद्य नहीं है। कथा प्रेम-प्रधान है, कथाका घटनास्थल प्रायः कश्मीर रहा है और कथानायक एक चित्रकार व साहित्यकार है। इन सभी कारणोंसे भाषाको भावुकतापूर्ण होनाही था। लेखिकाने जैसे अपने दिलकी स्याहीमें कलम डुबोकर इस

उपन्यासकी रचना की है। एक-एक शब्द एकदम मौजू, एक-एक वाक्य सांचेमें ढला, एक-एक वर्णन भाषाका नायाब नमूना :

"शहरके गली कूचोंसे लेकर पीर पंजालकी आसमानों से होड़ लगानेवाली बलन्दियों तक बर्फही बर्फ फैली है। पेड़ोंकी सूनी डालियों और टहनियोंने बर्फका रेशमी झालरदार लिबास पहना है। ताजी बर्फ पैरोंके नीचे ऐसी लगती है, जैसे बेशकमीती सफेद कालीन बिछा हो। जब बादामके फूलोंकी नन्हीं-नन्हीं पंखुड़ियों जैसी बर्फ गिरती है तो धरती और आकाश एक गहरी निस्तब्ध खामोशीमें डूब जाते हैं, मानो मानसरोवरका सफेद हंस अपने मुलायम डैनोंको फैलाकर सो गया हो। या फिर मेरी कल्पनामें एक तस्वीर उभरी, धुंधली-धुंधली-सी, मिटी-मिटी सी···जिसकी नाजुक रेखाएं नजरकी पकड़में नहीं आ रही थी।" (पृ. १६४) या "तुमने यह झील देखी है। देखो तो इसके पानीपर कैसी झिलमिलाती रूपहली सड़क बिछी है, इस छोरसे दूर उस धुंधले छोरतक। देख रही हो इसपर चन्द्रकिरणें कैसे नाजुक-नाजुक कदमोंसे रक्स कर रही हैं, और उनके जगमग झीने आंचल हवामें लहरा रहे हैं, नाचते हुए उनके झूमरोंके मोती टूटकर कमलोंके दामनपर बिखर जाते हैं," (पृ. २३६) और इस गद्यमें केवल रूमानी भावुकताही नहीं है समृद्धि वैचारिक तत्त्वभी है—"सोचता हूं, समय कैसा निष्ठुर है, बस हाथीकी चालसे झूमता चला जाता है, एक विराट् हाथी जिसकी सूंड मानो कह-कशाओंतक फैली हुई है जिसके पैरोंके नीचे सारी कायनात बौनी-सी पड़ी है, लिलिपुटके बौनोंसे भी छोटी। और इन्सान है कि कभी असहाय, बेबस, ठगा-सा, इस हाथीको जाते देखता रहता है, कभी शेख-चिल्लियोंकी तरह दौड़कर उसे पकड़ना चाहता है, कभी उसके कदमके साथ कदम मिलानेकी जीतोड़ कोशिश करता है, लेकिर हाथी है कि चला जा रहा है, और बौना इन्सान थकथकाकर धूलमें पड़ा रह जाता है। ये सारी दुनियांमें फैले सभ्यताओंके खण्डहर, ये जमींदोज प्राचीन बस्तियोंके अवशेष, ये इतिहासकी तमाम भारी भरकम बेशुमार पोथियां समयकी विराटता और इन्सानके बौने-पनकी कहानी बार-बार दुहरा रहे हैं।" (पृ. २८५)

यों, उपन्यासकी कथा बहुत सहज-सपाट है। गरीब बापकी १६ वर्षीय बेटी ४६ वर्षीय राजाको ब्याह दी जाती हैं। वहांसे राजाका एक युवा कर्मचारी लालसिंह आगे बेच देनेके इरादेसे छलसे उसे भगा ले जाता है पर बेच नहीं पाता है। वेरीनागके डाकबंगलेमें ठहरे नसीम साहबको रानीसे सहानुभूति हो जाती है और विभिन्न रोमांचक परिस्थितियोंसे गुजरते हुए अन्ततः उनका विवाहभी होता है। पर यहीं कथा एक मोड़ लेती है। कश्मीरमें साम्प्रदायिक तत्त्व एक हिन्दू लड़कीको मुसलमानके यहां पा उत्तेजना फैला देते हैं। ब्रिटिश सरकार भी न्याय करनेकी बजाय टालना बेहतर समझती है। लम्बे समय तक श्रीमती नसीमको अनाथालय—उमा आश्रममें यातनापूर्ण अलगाव सहना पड़ता है। अन्तमें दोनोंका मिलन होता है। कथाको बहुआयामी बनानेके लिए नसीमके मित्र मेजर, जेबुन्निसा, डेविड, युसुफ आदि के भावपूर्ण, रोचक प्रसंगभी हैं और वे कथाको सहयोग भी देते हैं। मानवीय चरित्रकी लेखिकाकी पकड़ अचूक है। मेजरकी मृत्युपर उसके भाईके स्वार्थपूर्ण रवैये तथा नसीमके धर्म-परिवर्तनके प्रस्तावपर उसके मुस्लिम मित्रों की प्रतिक्रियाओंके अंकनमें उसने अपनी इस क्षमताका अच्छा परिचय दिया है। युसुफके रूपमें एक पुरमजाक, जिन्दादिल दोस्त और डेविडके रूपमें एक अत्यन्त करुण स्वरभी इस उपन्यासकी अविस्मरणीय चरित्र सृजनाएं हैं।

उपन्यासका केन्द्रीय भाव इन पंक्तियोंमें व्यक्त हुआ है : 'अगर सोचा जाये तो कितनी आश्चर्यकी बात है कि हमारे जीवनका सुख दुःख न जाने किस प्रकार अदृश्य धागोंसे बंधा तकदीरके एक जरासे इशारेसे, किन्हीं अनजान अपरिचित लोगोंके हाथमें पहुंच जाता है, ऐसे बेदर्द मतलबपरस्त निष्ठुर हाथोंमें जो हमें बेजान कठपुतलियां समझकर हमारे दिलोंसे, हमारे जज्बातोंसे, हमारी जिन्दगियोंसे खेलते हैं और हमें तोड़फोड़कर, बरबादकर, धूलमें मिलातर, यूं चल देते हैं जैसे कुछ हुआ हीं न हो।' (पृ. २६६)

उपन्यास न तो यथार्थवादी है न प्रयोगवादी। किसी विचारधारा विशेषके प्रचारका माध्यमभी इसे नहीं बनाया गया है। निश्चयही कथा कोई सन्देश-उपदेशभी नहीं देती है। पर हर रचनासे यह उम्मीदभी क्यों की जाये? अत्यन्त ललित भाषामें, ३१२ पृष्ठोंमें फैली इस नितान्त भावपूर्ण, रसपूर्ण कथाको पढ़नाही एक ऐसी उपलब्धि है कि उसके बाद किसी और बातकी आवश्यकताही नहीं रह जाती है। लेखिका तो इस अत्यन्त सफल रचनाके लिए बधाईकी पात्र है ही, प्रकाशक भी इतने कम मूल्य में यह 'कृति उपलब्ध करानेके लिए बधाई व आभारके हकदार हैं। हां, एक बात बतौर शिकायत। इतने अच्छे

उपन्यासमें ग़ालिबके शेर—'तेरे वादेपर जिये हम तो ये जान झूठ जाना, कि खुशीसे मर न जाते अगर एतबार होता' को 'तेरे वादेपर सितमगर अभी और सब्र करते, अगर अपनी ज़िंदगीका हमें एतबार होता' (पृ. १५५) पढ़कर यों लगा जैसे किसीने चायमें नमक डाल दिया हो।

☐ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

क्योंकि

लेखिका : शशिप्रभा शास्त्री; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२ । पृष्ठ : १०८; क्रा. ८०; मूल्य : १५.०० रु.।

इस उपन्यासमें आधुनिक शिक्षित पीढ़ीके मनमें कतिपय रूढ़ियोंके प्रति जुड़े व्यामोहका चित्रण है। तेजीसे बदल रहे जीवन-मूल्यों और पुरानी कुरीतियोंके प्रति व्याप्त क्षोभ एवं विष्तृणाके बावजूद उसकी बलवती चाहना हमारी मानसिकतामें कहीं गहराईसे जुड़ी है जो हमें अनजाने उसी ओर घसीट ले जाती है। कथा लेखिकाने इस जकड़बन्दीपर उपन्यासमें कई स्थानोंपर चोट की है और उसकी उपहासास्पद परिणति दिखाकर सांकेतिक रूपसे उसके प्रति अपना अस्वीकार भाव व्यक्त किया है।

आज आभूषण और दहेजको लेकर बड़ी उथल-पुथल मची है। विशेष रूपसे स्त्रियां इसकी शिकार हो रही हैं। किन्तु पुरानी और आधुनिक दोनों पीढ़ीकी स्त्रियों में गहनेके प्रति ललक और दहेजकी प्रबल आकांक्षा कहीं-न-कहीं दबी पड़ी है। श्रीमती ध्यानी आभा द्वारा आदर्श विवाहकी बात उठानेपर कहती हैं—'आप आदर्श शादीमें क्या नहीं करेंगी?···बहूके लिए कपड़े नहीं ले जायेंगी आप।···आप बहूके लिए जेवर नहीं ले जायेंगी।···भाई हम बहुत नहीं कर सकते, थोड़ा-थोड़ा करके मन भर लें; सो मैं तो इन लड़कियोंकी कमाईका तो खरीदती हूं सोना और लॉकरमें रख देती हूं।' उपन्यासमें शकुन्तला तायल एक क्वारी लड़की है जो दहेजसे नफरत करती है। वह दहेज न दिये जा सकनेके कारण अविवाहित है और ऐसे युवकसे शादी करनेकी बात कहती है जो दहेज न ले। आभासे कहती है 'शकल सूरतमें टॉलरेबिल होनेपर भी मेरी शादी क्यों नहीं हो पायी - आज तो सिर्फ इतना ही जान लो कि पैसेकी कमीके कारणही शादी होना मुश्किल हो गया।···सो मैंने निश्चय कर लिया कि मैं शादी तभी करूंगी, जब कोई मेरी खासियतोंको पहचाननेवाला खुद आगे बढ़कर सामने आयेगा। पर लगता नहीं इस तरहके इन्सानने इस मुल्कमें जन्म ले लिया है।'

उपन्यासका आरम्भ गहना प्रकरणसे हुआ है। कथा नायिका आभा अपनी सहेली श्यामाको विवाहके दिन गहनोंसे लदी देखती है। बादमें पता चलता है कि सारा गहना ससुरालवालोंने रोक लिया। यही नहीं गहना देनेकी शर्त स्वयं लड़केने रखीथी जिसके चलते उसकी माँको घर बेचना पड़ा। बीचमें कथानक घरेलू नौकरकी समस्याके साथ नयी पीढ़ीकी उच्छृंखलताकी ओर मुड़ जाता है किन्तु अन्तिम परिणति गहनेके प्रति लोभ और नवयुवकों द्वारा शिक्षित दम्पतीको ठगीका शिकार बनाये जानेकी संयुक्त घटनासे हुआ है। उपन्यास भटकी हुई गुमनाम पीढ़ीके नाम समर्पित है। चार घटनाक्रम इससे सम्बन्धित हैं। आभाका घरेलू नौकर बीरू जो दूध कम लेकर उसमें पानी मिलाकर चोरी करता है और पकड़े जानेपर उल्टे लड़ पड़ता है। यही नहीं मालिक दम्पतीको अपमानित भी करता है। दूसरी घटना उसी दिन बस स्टैण्डपर घटती है। आभाके समक्ष एक छोटा लड़का हाथ पसारकर भीख मांगता है और न देनेपर थूककर गाली देता हुआ आगे बढ़ जाता है। तीसरी घटना फ्लैश बैक द्वारा दिखायी गयी है जब वह ट्रेनमें लखनऊसे लौट रही थी। ट्रेनमें बेटिकट यात्रा करनेवाले लड़के गाली-गलौज और मार-पीटकी ही बातें करते हैं। उनके मुंहसे माँ-बापके लिए भी वही शब्दावली निकलती है। घरसे इनका सम्बन्ध खाने, पैसा लेने और सोनेभरसे है। इसी क्रममें चौथी घटना उन दो लड़कोंकी है जो स्वयंको अनाथालयसे जुड़ा बताते हैं और जिनके लोभका शिकार होकर आभा और दीपक अपनी जमा पूंजी गंवा बैठते हैं।

इस प्रकार कथानकका ताना-बाना इन दो उद्देश्योंके बीच तैयार हुआ है। अन्तिम घटनामें, जिसे अनावश्यक विस्तार दिया गया है, लेखिकाने दोनों उद्देश्योंको जोड़नेकी कोशिश की है किन्तु वह पैबन्दकी तरह हो गया है। यही कारण है कि घटनाचक्र निरुद्देश्य भटकता हुआ लम्बा खिंच गया है। लगता है लेखिकाने दहेज प्रथाके अभिशापकी युगीन समस्याको लेकर उपन्यास लिखनेका संकल्प किया किन्तु कुछही दूर बढ़नेके पश्चात् उन्हें लगा कि उपन्यास बोझिल हो रहा है और उसने प्रासंगिक

कथाके रूपमें नयी पीढ़ीकी उच्छृंखलतासे संबंधित घटनाक्रमको भी कथानायिकाके साथ जोड़ दिया। बीरू, बस स्टैण्डके भिखमंगे लड़के और ट्रेनके युवकोंका दहेजसे कोई संबंध नहीं है। यहीं जाने-अनजाने कथानक लेखिका की पकड़से बाहर हो गया है और पूरा उपन्यास इन दो बिन्दुओंके बीच गड्डमड्ड हो गया है। उत्तरार्धका लगभग आधा हिस्सा दो किशोर युवकों द्वारा कथानायिका एवं उसके पतिको स्वर्णाभूषणके नामपर पीतल का गहना देने सम्बन्धी ठगीके दास्तानमें लग गया है। कहना अनुचित न होगा कि इस घटनाका भी मूल उद्देश्य दहेजसे कोई सम्बन्ध नहीं है। बीरूके साथ बरती गयी सख्ती और ईमानदारीका संकल्प इस अन्तिम अंशमें बालू की दीवारकी तरह ध्वस्त हो जाता है। यही कारण है कि लेखिकाने दम्पतीकी चालाकीको बेनकाब कर उनको उपहासका पात्र बनाया है।

घटनाक्रम रोचक और भाषा सुलझी एवं सरल है। दहेज, गहनेके प्रति आकर्षण और नयी पीढ़ीकी उच्छृंखलता तीनों बिन्दुओंसे सम्बन्धित घटनाक्रम उठाये जाने के कारण दहेज प्रथा सम्बन्धी अंश दब गये हैं। इस ओर स्पष्ट संकेत मात्र शकुन्तला तायलके माध्यमसे व्यक्त हुआ है। कहानीके अंततक उसका अविवाहित रहना इस ओर संकेत है कि अभी ऐसे नवयुवक समाजमें नहीं पैदा हुए हैं। लेखिकाने आजभी शिक्षित युवतियोंका आदर्श शकुन्तला तायलको दिखाया है। प्रश्न है आज कितनी शिक्षित लड़कियां शकुन्तला तायल बननेके लिए तैयार हैं?

☐ मान्धाता राय

काव्य-संकलन

अनुभूति और अभिव्यक्तिका नया आयाम

नदीकी बांकपर छाया

कवि : अज्ञेय

समीक्षिका : डॉ. (श्रीमती) कमलकुमार

आधुनिक चिन्तन तथा साहित्यिक धारणाओंमें परिवर्तनके फलस्वरूप अज्ञेयकी सौन्दर्य-चेतनामें नये-नये आयाम विकसित हुए हैं। यह सौन्दर्य-चेतना न तो मात्र ऐन्द्रिय अनुभूति है और न ही आध्यात्मिक। अज्ञेय के अनुसार सौन्दर्य विशिष्ट अनुभूतियोंका समरस मेल है। छायावादी सौन्दर्य दृष्टि भाववादी थी। आज कवि सौन्दर्य को नये सौन्दर्यों व नये परिवेशमें सहेजता है। अज्ञेयके लिए सौन्दर्यानुभूति बुद्धिका व्यापार है। इसलिए एक सचेष्ट अनुभूति है। कविने सापेक्ष व आत्मगत तथा अनुभूति-प्रवण सौन्दर्यकी स्थापना की। उन्हें निरपेक्ष, निष्क्रिय व निर्जन प्रकृति पसन्द नहीं। अज्ञेयने जहांभी प्रकृतिका वैयक्तिककरण किया, प्रकृति चित्रोंको एक नयी रागात्मक प्रामाणिकता मिली। व्यक्तिगत दर्शन तथा खरी अनुभूति द्वारा देखे गये बिम्ब व दृश्य अधिक प्राणवान व जीवन्त हैं। अज्ञेयकी प्रकृति वर्डसवर्थकी तरह सुरक्षितभी नहीं है। प्रकृतिके निर्लिप्त व तटस्थ सौन्दर्यांकनकी अपेक्षा उसे विविध भावनाओंसे संयुक्त करके देखा। इसी से 'अमराई महक उठी/ हियकी गहराईमें/ पहचानें लहक उठीं / तितलीके पंख खुले/ यादोंके देवलके/ उढ़के द्वार खुले।' (टप्पे—पृ.६१) अथवा 'वसन्त आया है/पतियया-सा

१. **नदीकी बांकपर छाया** अज्ञेय; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : ७६; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

सभी पर छाया है/ हर जगह रंग लाया है / पर यह देख कर/ कि कीकरभी/ पियराया है/ मेरा मन एकाएक/ डब-डबा आया है।'—(धूसर वसन्त; पृ. ५४)।

गतियुक्त व लययुक्त सौन्दर्यके प्रति अज्ञेय विशेष रूपसे आकर्षित होते हैं। एक ओर अज्ञेयने छायावादी प्रकृति-सौन्दर्य चित्रणके सभी ऐन्द्रिय बोधों, सूक्ष्मताओं व संवेदनशील उपलब्धियोंको ग्रहण किया और साथही छायावादी संवेदन विजड़ित प्रकृति-चित्रणसे ऊपर उठकर प्रकृतिके नये सौन्दर्य-बोधको विकिसित किया। 'पर्वत, पेड़, नदी, किनारे, चिड़ियाको नयी आंखोंसे देखा'—(आज मैंने—पृ. ४६) अज्ञेय सौन्दर्यके प्रति समर्पित नहीं होते वरन् उसका उपभोग करते हैं 'भोर/ एक चुम्बन/ लाल। –(भोर लाली—पृ. ७२) उपभोगकी प्रवृत्ति कवि की वैज्ञानिक दृष्टिका परिणाम है।

अज्ञेयकी सत्य, चिन्तन, निरीक्षण व परीक्षणकी प्रकृतिने उनके सौन्दर्य-बोधके स्तरोंको भी प्रभावित किया। प्रकृति सौन्दर्यको उस अखण्ड सौन्दर्यके साथ एकाकारकर के देखा—द्रष्टव्य हैं कविताएं 'पत्ता एक झरा', 'स्वर-शर', 'वासन्ती' (पृ. ६५, ७५, ७६)। प्रकृति द्वाराही विराट् तत्त्व,आत्मबोध तथा जीवनबोधकी अभिव्यक्ति की। जीवनके उत्कट आत्मलीन तथा मूल्यवान् क्षणोंमें वे अपने को प्रकृतिके परिपार्श्वमें ही पाते हैं। जीवनके मार्मिक सत्योंका उद्घाटन करते हैं। प्रकृति दर्शन बन जाती है। छायाबादके औपचारिक अन्तके बाद, छायावादी रहस्य-वादी भावधाराको अज्ञेयने ही नवरहस्यवादके रूपमें प्रवा-हित किया हैं। इसका कारण है अज्ञेयके अभिजात संस्कार तथा उनकी रोमांटिक चेतनाका अधिक आत्मकेंद्रित व अन्तर्मुखी रूप। यह रहस्यानुभूति भारतीय दर्शन व संस्कृति की पृष्ठभूमिपर आधारित है, तोभी उदार, विज्ञान व बुद्धिवादसे प्रभावित। यह रहस्यवाद अज्ञेयके भावुक परंतु चिन्तनशील, उद्रेकशील व विकासशील, व्यक्तित्वकी स्वाभाविक परिणति है। अज्ञेयका व्यक्तिवादी रहस्यवाद अव्यक्त, अगोचर सत्ताके साथ-साथ अपने भीतर समाहित जीवन-ज्योतिको खोजनेमें रत है। द्रष्टव्य है कविता—'खुल तो गया द्वार' (पृ. ३८)। तोभी कवि 'सागरके किनारे खड़ा अपनी छोटी-सी नाव सँतारता' तो है पर वह 'जानता है' कि रहस्यका प्रकाश, किनारेसे नही, 'डूब कर ही होता है उसे पाना।' इसलिए 'उस खींचको अगो-रता हूं/ आये, आये वह तन्मय क्षण। जब ओ छिपे स्रोत! तू मुझे धर ले—/मैं पाऊ कि मैं अपनेको वारता हूं। वारता हूं...।' (सागरके किनारे, पृ. ४७) अज्ञेयकी रहस्यानुभूतिकी प्राथमिकता,प्रकृति व जीवनके प्रति रागा-त्मक आकर्षण,आत्मान्वेषणका प्रयत्न, स्वतंत्र व्यक्तित्वकी मान्यता आदि तथ्य अज्ञेयको जड़वादी चिन्तनसे अलगाते हैं।

समर्पण अज्ञेयके लिए आत्मदान है। परन्तु अज्ञेयके लिए आत्मदान आत्मग्रहणभी है। अज्ञेय मानते हैं – 'समर्पण व्यक्ति चेतनाको बांधता नहीं न अपनेको बद्ध अनुभव करता है, केवल एक व्यापक कृतज्ञता मनमें भर जाती है कि तुम हो, कि मैं हूं।' (भवन्ती पृ. ७६) व्यक्ति वैशिष्ट्यके साथ समर्पणका भाव अज्ञेय की रहस्यानुभूतिकी विशिष्टता है।

अज्ञेय अहंको स्वीकारते हैं। अहं प्रकृति है, इसलिए कि वह अपने अस्तित्वका समर्थन है। अज्ञेय अहंका संबंध कलाकी सम्पूर्णतासे जोड़ते हैं।'कला व्यक्तिकी अपनेको सिद्ध प्रमाणित करनेकी चेष्टा है, अर्थात् अन्ततः एक प्रकारका आत्मदान है, जिसके द्वारा व्यक्तिका अहं अपनेको अक्षुण्ण रखना चाहता है।' (त्रिशंकु, पृ. २८)। रूढ़ व्यवस्था व्यक्तित्वको कुण्ठित करती है और अहं व्यक्ति-चेतनाको प्रदीप्त करता है, जिससे व्यक्तिकी निजताकी सुरक्षा होती है। इसीसे अज्ञेय संस्कृतिकी सुरक्षाभी मानते हैं। अज्ञेय अहंको सृजनशील तत्त्व मानते हैं। द्रष्टव्य हैं कविताएं 'मैंने जाना', 'यही हवा', 'आज ऐसा हुआ है',(क्रमशः पृ. २५, पृ. ५२)।

अज्ञेय मुक्तावस्थाको उत्सर्ग व विदाईके क्षणमें मानते हैं। जीवनका अर्थभी इसलिए मुक्तिके ही क्षणमें दीखता है। 'अहर्निश निरवधि उत्सर्गही मुक्ति है, मुक्तिसे सम्यक् दृष्टि मिलती है, सम्यक् दृष्टिसे हम वास्तविकताके सत्ताका अर्थ पहचानते हैं।'—(भवन्ती, पृ. १३३)। द्रष्टव्य हैं कविताएं 'जरा व्याध'(पृ. २०),पीली पत्ती : चौथी स्थिति' (पृ. ४६).

इस तरह अज्ञेयका रहस्यवाद संसारके संबंधोंकी खोज तथा सत्यका अनुसंधान हैं। परमात्माके संबंधको कवि आत्माका संबंध तथा कवि व काव्यका सम्बन्धभी मानता है। मानवीय व्यक्तित्वकी असीम संभावनामें विश्वास तथा उसकी सृजन शक्तिमें समूची सृष्टि सारे ज्ञान-विज्ञान और समग्र कलाकाका रहस्य अज्ञेय मानते हैं। मानवीय अस्तित्व तथा उसकी सार्थकतामें अटूट विश्वास। वे इस अनुभूति व व्यक्तित्वका क्षरण नहीं चाहते। यदि मनुष्य व प्रकृति तथा यन्त्रके बीच उचित अनुपात स्थापितकर सका है। समग्र विश्व... जीवनानुभूतिकी प्रखरतामें

भोग सका है। उपनिषदोंके दार्शनिक चिन्तनसे प्रेरित हो कवि आहूत, प्रत्यक्ष व अप्रतिमको, स्वयं प्रतिष्ठितको संकल्प सुनाता है। समर्पण व आत्मदानकी गरिमाके साथ पुनर्जन्मकी प्रक्रियाको स्वीकारता है। जीवनकी नश्वरता का बोध और मृत्युबोध कविमें अवसाद नहीं भरता—वर्तमान भरेपूरे जीवनको जीना सार्थक है। मौनकी गरिमा को कवि स्वीकारता है। बाहरी मौन भीतरी क्रियाशीलताका द्योतक है। मौन अभिव्यक्तिका भी प्रभावकारी साधन है। सत्यकी खोजमें शब्द व्यवधान बनते हैं। शब्द सत्यको ढकते हैं या कई सत्योंकी अनुभूति कराते हैं। कवि दोनोंके बीच सेंध लगाकर सत्यकी अनुभूति कराता है। 'अबोली चुप' (उमस, पृ. ५७) 'घना मौन' (बाँहोंमें लो—पृ. ५६), 'सन्नाटेमें' जब-तब चिनगीकी चटकन', (अलाप, पृ. ७१) 'मौन/ आवाहे वही आलोक/ धीरज का/ परम निर्भ्रान्ति ? (कालोऽयं समागतः, पृ. ७४) में इसी ओर संकेत है। दुःख और मृत्युकी व्याख्या अज्ञेय एक विशिष्ट सिद्धान्तके रूपमें करते हैं। दर्द कविका राग-सत्य व आत्मसत्य दोनों हैं। 'जीवनमें दर्द या दुःखकी स्थिति ग्लानिजनक नहीं है। दुःख तो जीवनको निखारने का माध्यम है, जो दीप्ति है। दर्द अपनेमें दर्शन है, चेतना है।' (अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ. १५१) अज्ञेयने दुःख का 'फिलॉसॉफीकरण' किया। अज्ञेयकी दुःख संबंधी धारणाएं, वेदना व पराजयका ग्लोरीफिकेशन पश्चिमी अस्तित्ववादी विचारकोंकी दुःख व मृत्यु संबंधी स्थापनाओंसे अलग हैं तथा बुद्ध व ईसाके दुःख-दर्शनसे प्रभावित है। बुद्धने सांसारिक जीवनमें दुःखकी अनिवार्यताको प्रतिपादित किया था। दुःखके परिष्कारकी यह भावना बौद्ध दर्शनमें समस्त अनन्त करुणा और विश्व मानवीयता के रूपमें परिणत विशिष्ट चिन्तन है। द्रष्टव्य है इस संग्रहकी शीर्षक कविता 'नदीकी बाँकपर छाया'(पृ. ३६) 'दर्दसे कोई/ नहीं है ओट/ जीवनको/व्यर्थ है यों/ बांधना मनको/ पुरानी लेखनी/ जो आँकती है / आंक जाने दो/ किन्हीं सूने पपोटोंको/ अन्धेरे विवरमें/ चुप झाँक जाने दो/ पढ़ी जाती नहीं लिपि/ दर्दही/ फिर फिर उमड़ता है / अन्धेरेमें बाढ़/ लेती/ मुझे घेरेमें/ दिया तुमको गया/ मेरीही इयत्तासे/ बनी ओ घनी छाया/ दर्द फिर मुझको/ अकेला/ यहां लाया—/ नदीकी बाँकपर / छाया···'—(पृ. ३६-३७)। 'मेघ एक भटका-सा'-(पृ. ४४)में भी दर्द का ही दर्शन है—जहाँ 'मेघ एक भटका-सा/दो बूंद टपका जाता है' और 'ऐसेही टुकड़ोंमें सहसा/ गूँथ जाते हैं यहाँ

काव्य/व्याकुल प्रेत-व्यथा/सब कुछसे सब-कुछकी बिछुड़न की/एक आह हीरकमें शिलीभूत।' (पृ.४४)वैसेभी कवि मानता है कि अमृत और हलाहल/ दोनोंही अमोघ हैं/ दोनोंको एक साथ भोगते हम/अमर और सतत मरणशील/ सागरके साथ फिर-फिर/ मथे जाते हैं।'(स्वरस विनाशी, पृ. ५३).

अज्ञेयकी रहस्यवादी संवेदनाएं आध्यत्मिक होकर भी विशिष्ट दार्शनिक पद्धतिमें बद्ध नहीं। ये धारणाएं मानवीय अस्तित्वको ही गरिमा देनेवाली हैं। व्यक्ति-निष्ठता तथा आत्मान्वेषण द्वारा कविने—अज्ञेयने आन्तरिक व्यक्तित्वके उद्घाटनका ही प्रयास किया है। कवि विशिष्ट व्यक्तित्व व व्यापक जीवनसे उसके अनवरत सम्बन्धको व्यक्त करता है तथा विशिष्टका विराट्के साथ जोड़ना चाहता है। इस संग्रहमें कुछ कविताएं 'इतिहास बोध' तथा 'कालबोध' को लेकर हैं जिनके संदर्भ अलग-अलग हैं। 'कहनेकी बातें'— (पृ. ६७) 'तथा मैंने जाना, यही हवामें'—(पृ. २५) 'मैंने जाना/ यही हवा है काल:/ समयकी लिखत/ अहंकी छाप/मिटाती जाती है···' 'हवा कालकी / कितने इतिहास मिटा जाती है।' (पृ. २६) 'इतिहास बोधमें' में कविने इतिहासबोधके नामपर भूत और भविष्यकी चिन्तामें वर्तमानकी उपेक्षा करनेवालोंकी स्थितिपर व्यंग्य किया है 'दान्तेके लिए यह स्थिति/ एक विशेष नरक था/ पर ये इसे/ अपना इतिहास बोध कहते हैं !'—(पृ. ३४) 'कालोऽयं समागत:' में 'काल समागत है' —'वही हो :/ उसीमें यह जन/ नमनको/ बांहें समेटे/ उसीमें/ पाहुन समागत / अंक भेंटे/जायें मिल/ लय-ताल / —समागत है काल।' (पृ. ७४)

अज्ञेय स्वीकारते हैं कि 'हर किसीके भीतर/ एक गीत सोता है/ जो इसीका प्रतीक्षमान होता है / कि कोई कोई उसे छूकर जगा दे / जमीं परतें पिघला दे /(प्रतीक्षा गीत, पृ. ४८)

खरी धातुकी चमककी तरह भीतरकी खरी सुलगन सनातन है। (नृतत्त्व संग्राहलयमें, (पृ. १३)। यह 'सुलगन सुन्दर है/दबीभी। (मुलाकात पृ. ६३) इसलिए कवि चाहता है कि 'अंगार स्याहपोश न हो, सुलगे तबभी... मेरे बाद।' (न सही, याद; पृ. ६८) 'यह सुलगन' ही प्रकाश है, सृजनका आधार है और कविताकी सच्ची शर्त है।

इन सभी कविताओंमें भाव और विचारकी सहयात्रा ··· अवश्य होती है परन्तु बढ़ती

विचारके साथ है। विचार द्वाराही अनुभवको दिशा प्राप्त होती है। विचारही भावको दृष्टि देता है, अनुभवको नया आयाम देता है। आजकी जटिल जिन्दगीमें मानवीय प्रतिक्रियाएं बेहद जटिल हैं। बदली स्थितियोंमें भावात्मकता की बजाए बौद्धिकता कविताकी सच्चाई बन गयी है। अन्तर्मुखी व चिंतनशील कलाकार अज्ञेयके काव्यमें आध्यात्मिकताका प्रकाशभी इसी हेतु है। इस संग्रहमें भी प्रणयबोध की कुछ कविताएं हैं। 'प्यारके तरीके', 'बांहोंमें ले लो', 'रातभर', 'सहारे', 'न सही याद', 'प्यार अकेले हो जाने' इत्यादि। आजके बदले संदर्भमें जब कि प्रेममें भी आत्मीयता क्षीण हुई है, तनाव बढ़ा है तथा प्रेम-प्रसंगोंमें अन्तर आया है। आजका प्रणय रूमानी, भावुक या संकोचसे भरा नहीं हो सकता। तब, प्रेम प्रसंगोंमें स्वाभाविकता व जीवंतता आयी है। अज्ञेयने पूर्वके संग्रहोंमें कामनाओं, लालसाओं व वासनाओंके सहज प्रकाशनसे प्रकृत प्रेमका स्वरूप उद्घाटित किया था। प्रेमको नैतिक, धार्मिक, सामाजिक बंधनोंसे मुक्त करके यथार्थके प्रकृत धरातलपर प्रतिष्ठित किया था। प्रेमके निर्बन्ध स्वरूपकी स्थापना की थी। परन्तु बादके काव्य-संग्रहोंमें प्रेमकी उत्कटता व ताप घटता गया…। प्रेमभी ठंडा व रहस्यके कुहासेमें धुंधलाता गया। प्रेम कविताओंमें मानसिक स्मृतियों व भाव संवेदनोंकी अधिकता आयी। 'प्यारके तरीके तो औरभी होते हैं/ पर मेरे सपनेमें मेरा हाथ/ चुपचाप/ तुम्हारे हाथ को सहलाता रहा/ सपनेकी रातभर··।' (पृ. ५६); अथवा 'रात सावनकी / कोयलभी बोली/ पपीहाभी बोला/ मैंने नहीं सुनी/ तुम्हारी कोयलकी पुकार/तुमने पहचानी क्या/ मेरे पपीहेकी गुहार ?/रात सावनकी/ मन भावनकी/ पिय आवनकी/ कुहू-कुहू···/ मैं कहां···तुम कहां···पी कहां !' (पृ. ५८); अथवा 'उमसती साँझ/ हिनाकी गन्ध/ किसी की याद/ कैसे-कैसे प्राणलेवा/सहारे हैं/जीनेके ?/(पृ.६२); 'प्यार अकेले हो जानेका एक नाम है/ यह तो बहुत लोग जानते हैं / पर प्यार/ अकेले छोड़नाभी होता है इसे/ जो/ वह कभी नहीं भूली/ उसे/ जिसे मैं कभी नहीं भूला···' (पृ. ६६)। अज्ञेयके प्रेमके निर्बन्ध स्वरूपकी स्थापना तो होती है। प्रेममें स्वतंत्र अस्तित्वका महत्त्वभी प्रतिष्ठित होता है। प्रेममें विरहानुभूतिकी मानसिकता तथा प्रेममें उनकी निर्वैयक्तीकरणकी धारणाभी स्पष्ट होती है। परन्तु आजके समयमें स्त्री-पुरुष संबंधोंमें उत्पन्न तनावों को, जटिलताओं व अन्तर्विरोधोंको वास्तविक धरातलपर कतई प्रस्तुत नहीं करती। इनमें विस्मृतियोंकी सहज स्मृति है। प्रेमकी अनुभूति फीकी-सी है। प्रेम अनुभूतियोंका ठण्डापन, ताजगी, उत्साह, ललक या उद्वेग धूमिल है। प्रेम भी सार्वभौमकी दार्शनिक धारणामें पगकर आध्यात्मिक मुद्राओंका संसार रह गया है·· 'तू तो/ सपनेमें/ झलक दिखाकर/ चला गया/ मैं/ रात-रातभर/ यादोंको सहलाता/ बलखाता/ पड़ा रहा।' (रातभर, पृ.६०), 'लो··· हो गयी मुलाकात :/ अब तुम्हारी राह इधर/मेरी इधर:/ न हुई सही बात.../ पर यह तो जान लिया/ कि जलते जा रहे हैं अविराम.../ और यों चलतेही जा रहे हैं। नातमाम···। (मुलाकात, पृ. ६३)। इस दृष्टिसे अज्ञेय का प्रेम संसार अप्रासंगिक ठहरता है।

अज्ञेयका सामाजिक यथार्थ उनके काव्यमें उनके व्यक्तित्वमें से छनकर सम्प्रेषित हुआ है। अज्ञेयने प्रगतिशीलताका आत्मचेता स्वरूप सामने रखा। समाज व लोक-सम्पृक्तिका प्रयत्न निरन्तर उनकी कविताओंमें हुआ है। अज्ञेयने 'साँचे ढले समष्टिवादकी अपेक्षा 'कुंठा-रहित इकाई' का महत्त्व प्रतिपादित किया है क्योंकि वही समाजकी दायित्वपूर्ण, जागरूक व जीवन्त इकाई है। अज्ञेयका कवि आत्मचेता व समाजचेता दोनों है। 'संसारकी अनुभूतियां और घटनाएं साहित्यकारके लिए मिट्टी हैं, जिनसे वह प्रतिमा बनाता है। वह निरी सामग्री है, उपकरण है। वह कलाकारको बाँध नहीं सकती···' (त्रिशंकु, पृ. ७२)। अज्ञेय समाजके प्रति प्रतिबद्ध हैं। 'देशवासियोंके जीवनकी वास्तविकताको 'मेरे देशकी आँखें' (पृ. ११) कवितामें दर्शाया है। कवि जानता है शोषित वर्गके प्रति निरी सहानुभूति निरर्थक है। उनके लिए सार्थक सहयोगकी अपेक्षा है। उसकी पीड़ा कविकी पीड़ा है। पर वह जानता है कि 'उसके पैरोंकी फटनमें/ मैंने मोम लगाकर भरी/ उसकी जमीनमें/ मैं अपना हृदय गला कर भरता हूं/ भरता आया हूं/ पर जानता हूं कि उसे पानी चाहिये/ जो मैं ला नहीं सकता' (उसके पैरोंमें बिवाइयाँ, पृ. १६)। 'परती तोड़नेवालोंका गीत' में कविने मानव होनेकी विडम्बनाको साकार किया है—'न हमें पशुओं-सा मरना मिला,/ न हमें पशुओं-सा जीना,/ न मिला देवताओं-सा अमरतामें/ सोमरस पीना !/ हम उन तीनोंको/ जिलाते रहे, मिलाते रहे,/ वह बड़ा वृत्त बनाते रहे,/ जिसकी धुरीसे हम/ लौट-लौट आते रहे···।' (पृ. १६)। 'खून' कवितामें शोषणके सदियोंसे चले आते क्रम को व्यक्त किया—'उसके बापका खून/ तुम्हारे बापने

चूसा है । उसके बापके बापका/तुम्हारे बापके बापने,/और यों सदियोंसे होता चला आया है ।' (पृ. २८) शोषकको इसकी अनुभूति तक नहीं होती । कारण सामाजिक व्यवस्था है—'हो सकता है तुम्हारे बापने/अभी तुम्हें यह नहीं बताया है/ और निश्चयही/ रूप-रक्षाके नुस्खोंवाली तुम्हारी/रंगीली पत्रिकाने यह तुम्हें नहीं पढ़ाया है ।' (पृ. २८) । लोक तत्त्वका रंग लिये कविताएं हैं : 'भैंस की पीठपर' (पृ. २७), 'आये नचनिये' (पृ. ३१) । अज्ञेयकी सामाजिकता उदार है, अन्ततः वे मानवताके कल्याणके आकांक्षी हैं । बृहत्तर समाज-सम्पृक्तिकी भावना है । परन्तु अज्ञेयके ये अनुभव प्रामाणिक नहीं हैं । इनमें हिस्सेदारीकी भावना कम और दर्शककी तटस्थ दृष्टि अधिक है। सामाजिक सत्योंकी व्यंजना कविताको विविधता तो देती है पर विश्वसनीयता नहीं ।

अज्ञेयने नयी भाषाके निर्माणकी अनिवार्यताकी मांग व्यंजनाके पुराने साधनोंके अपर्याप्त होनेके कारण की थी । अज्ञेय भाषाका सम्बन्ध कवि व्यक्तित्व और कवि अस्तित्व दोनोंसे मानते हैं । अज्ञेयने काव्य भाषाका पुनः सृजन किया । भाषाकी खोजको शब्दकी खोज माना । अज्ञेयके अनुसार कवि शब्द लिखता है भाषा नहीं और कविताभी भाषामें नहीं शब्दोंमें होती है । अज्ञेयने तत्सम, संस्कृतके परिष्कृत, सुरुचिपूर्ण व अभिजात शब्दोंका प्रयोग किया । पर इनकी भाषामें विविधता है । तद्भव, देशज व ग्राम्य शब्दभी आये हैं । विशिष्ट व बोलचालके सार्थक शब्दोंका प्रयोग किया । भाषाको कविने समाज-सम्पृक्तिका साधन माना । 'भाषा माध्यम' व 'भाषा पहचान' कविताएं इसी भाषा-बोधकी अभिव्यक्ति हैं । 'हम सभी भिखारी हैं / भाषाकी शक्ति/ यह नहीं कि उसके सहारे/ सम्प्रेषण होता है/ शक्ति इसमें है कि उसके सहारे/ पहचानका वह सम्बन्ध बनता है जिसमें/ सम्प्रेषण सार्थक होता है ।' (पृ. ४३) । अज्ञेयने परम्परागत, नये व कुछ वैयक्तिक प्रतीकोंका प्रयोग किया । पौराणिक व दार्शनिक प्रतीक कविके आशावाद, गतिशीलता व बौद्धिकताके गुणों से युक्त होकर संस्कृतिबोध व इतिहास-बोध द्वारा आधुनिक भावबोधकी अभिव्यक्ति करते हैं । द्रष्टव्य हैं इस संग्रहकी कविताएं : 'जरा व्याध' (पृ. २३),'वासुदेव प्याला', (पृ. ३५), 'कदम्ब-कालिन्दी' (पृ. ३९) । इन कविताओंमें 'कृष्ण' 'वासुदेव वंशी' इत्यादिके पौराणिक प्रतीक नयी ध्वनियोंको ध्वनित करते हैं । इन प्रतीकोंके प्रयोगसे कविताओंमें संक्षिप्तता व कसाव आया है ।

की विभिन्न छायाएं विकसित हुई हैं ।

अन्तमें इस संग्रहकी पहली कविता 'परतीका गीत' अज्ञेयके रचनाकारका समाज-बोध व सम्प्रेषणकी अनिवार्यताको व्यक्त करती है । कवि परम्परासे हटकर नये प्रयोग करता है । ऐसे जोखिम उठानेका अपना सुख है। वह उसकाभी 'साझा' करना चाहता है । परन्तु इसके लिए समाजको भी पुरातनता त्यागकर आगे आना होगा । कवि की रचना उन सभीकी अभिव्यक्ति है जिनके भीतर सृजन की 'अहल्या-प्रतीक्षा-शिलित सोती' हैं । जिसे कविके भीतर का राम जगाता है ।' (पृ. ९) यह संग्रहभी कविके 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं' और 'महावृक्षके नीचे' के भावबोध को ही आगे बढ़ाता है । □

घंटाघर

कवि : मनोज सोनकर; प्रकाशक : विभूति प्रकाशन, के. १४, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२ । पृष्ठ : ९६; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु. ।

मनोज सोनकरकी 'धतूरा' और 'कच्चा चिट्ठा' की कविताओंको पढ़कर मैंने उनका शीर्षक दिया था—'विद्रोह से क्रान्तितक फैलती कविता' । इसी बीच मुझे उनका अगला संकलन मिला 'ओस धुंआ' जो 'गजल' और 'नव-गीत'का संकलन था । मुझे हैरानी हुई और अपने लिखेपर पश्चात्तापभी । मुझे लगा सोनकर युद्धको जाते मार्गमें किसी मनोरंजन-गृहमें बैठ गया हो । लेकिन ज्योंही उनका 'घंटाघर' काव्य संकलन मिला तो सबसे पहले मुझे इस बातकी खुशी हुई कि वे अपनी पुरानी दुनियामें वापिस लौट आये हैं और यही दुनियां उनकी असली दुनियां है । इतनाही नहीं 'घंटाघर' की कविताओंको देखने पर सबसे अधिक खुशी इस बातकी हुई कि उन्होंने शिल्प के तमाम लबादोंको एक तरफ फेंक दिया है और साहस-पूर्वक अपने समयको अभिव्यक्त किया है ।

भाषाका तिलमिलाने और झकझोरनेवाला जो रूप इस कविता संकलनमें उभरकर आया है वह कवितामें भाषाके साथ नये सलूकका एक बहुत बड़ा प्रश्न हमारे सामने खड़ा कर देता है । मनोज सोनकरने कवितामें वस्तु और शिल्पके धरातलपर एकदम नये प्रयोग किये हैं । इस संग्रहमें उनकी भाषाका आभिजात्य टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया है । वे सड़ककी भाषापर उतर आये हैं । तमाम ऐसे शब्द और मुहावरे जिन्हें सातवें और आठवें दशकमें

भी प्रयोग करते हुए कुछ [illegible] भी उन्हें बड़े साहसके साथ प्रयोग किया गया है।

इस दृष्टिसे उनकी कुछ कविताएं देखी जा सकती हैं। जैसे 'बंद', 'आग,' 'नक्सलीकी मृत्युपर', फागुन विशेषांक, सुबह और चेहरे आदि। एक-दो उदाहरण देखें—'···केलनमें.·· कुंजनमें···कछारनमें छायो है वसन्त/उद्धरण रटकर/ परीक्षा तो फर्स्ट क्लासमें पास कर ली/ लेकिन/ जब इन्टरव्यूमें गया/ तो पूछा गया—/धर्म ? जाति ? प्रांत ? भाषा और सम्प्रदाय ? और मैं झुंझलाया/···खुद तो पाते थे इनाममें राजाकी दया / मोहर, अशरफी और गांव/ और मुझे थमा गये घंटा।' (फागुन विशेषांक, पृ. ४४)। एक युवक चीखा—हम बेकार हैं, भूखे हैं, नंगे हैं/ और तुम लोग हग-मूत रहे हो ! (पेशावी राज्य, पृ. ७४) मैंने एक शहीदका चेहरा देखा/ तो वह बोला/ ···तुम तो जीते-जी मुर्दा हो ! / कमसे कम ढंगसे जीनेके लिए/मरनेकी एक कोशिश तो करो। (सुबह और चेहरे, पृ. ६५)।

इस प्रकार सोनकरकी अनेक कविताओंमें भाषाका यह बेबाकी, आक्रामक, बेहद तीखा और बोल्ड रूप देखनेको मिलेगा। मैं समझता हूं 'घंटाघर' की एकमात्र उपलब्धि है भाषाके आभिजात्यकी समाप्ति और भाषाके क्षेत्रमें तमाम वर्जनाओंकी अस्वीकृति।

सोनकरकी कुछ कविताओंकी भाषा प्रतीक और बिंब को लिये हैं। शेर और गुदड़ी, भैंसा, पेशावी राज्य, रुस्तमे-हिन्द, कुत्ते, ऐसीही कविताएं हैं यहाँ प्रतीकोंके माध्यम से अर्थ-प्रसार हुआ है। लेकिन यहाँभी भाषाको तोड़ने, अस्त-व्यस्त करने या अव्यवस्थित करनेकी प्रवृत्ति है।

'शेर और गुदड़ी' में गुदड़ी एक आम नागरिक है और वह अपने-आपको सरकारी देखरेखमें पिंजरेमें बन्द छटपटाते शेरकी तरह पाता है।'भैंसा' नेताका पर्यायवाची है। 'रुस्तम-ए-हिन्द' एक भारतीयही है जो कभी जाति, कभी धर्म, कभी भाषा, कभी प्रान्तके नामपर हमेशाही चारों खाने चित्त गिरता रहा है। लेकिन सोनकरकी भाषा प्रतीकात्मक या बिम्बात्मक अधिक नहीं है। वह व्यंग्यात्मकही अधिक है। हां, अगर उसके किसी खास गुणकी ओर संकेत करना है तो वह यह है कि वह 'बोल्ड' है। वह अनिवार्य रूपसे उपमान-निर्भर अधिक है। उसकी मुद्रामें मरदानापन है। भाषाके सन्दर्भमें ये कविताएं एक अलग और विशिष्ट पहचान कराती है जोकि कविकी नितांत निजी और विशिष्ट बोल्ड भाषासे बनी है। बल्कि कहा जा सकता है कि 'घंटाघर' की अनेक कविताएं भाषाका भरपूर मजा लेनेके लिए हैं। उसकी काव्यात्मकता या तो बोल्डपन है या व्यंग्यात्मक है। यह निस्संदेह बहुत लाजवाब भी है। देखिये :—

गांधी आधा नंगा था
तुम पूरे नंगे हो !
गांधीसे ज्यादा महान् हो !
सपनोंके हिन्दुस्तान हो !
वंदेमातरम् ! जय हिन्द ! (बन्द, पृ. ६५)

लेकिन प्रश्न पैदा होता है कि कोई कवि कब सूक्ष्म, अमूर्त, वायवी, सभ्य और आभिजात्य भाषा त्यागकर ऐसी रूखी खुरदरी और बेहद तीखी भाषापर उतर आता है ? क्या तब आता है जब उसके पास अपना शब्द भंडार चुक जाता है ? अथवा तब जब वह यह समझता है कि उसकी सुसंस्कृत, सभ्य, दैवी, एवं आभिजात्य भाषा कारगर सिद्ध नहीं हो पा रही ? आम अनुभव है कि जीवनमें बहुत बार हमारे पास बहुत-से शब्द होते हैं लेकिन कुछ खास परिस्थितियोंमें कारगर सिद्ध नहीं होते हैं और बहुत बार ऐसे अनायासही परिस्थिति अनुकूल भाषाका जन्म हो जाता है और उसके प्रयोगकी मजबूरी होती है। इस मुहावरेसे असहमत हुआ जा सकता है लेकिन इसके वैशिष्ट्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। 'घंटाघर' की कविताओं की भाषा एवं आक्रमक तेवर दोनों अपनी चरमको छूते हैं। सोनकरका यह आक्रामक तेवर कहीं व्यवस्थाको सम्बोधित है, कहीं राजनीतिक क्षेत्रके प्रति और कहीं वह अपनी सामाजिक व्यवस्थाको झकझोरनेवाला होता है।

कवि अन्धे अतीतको बेदर्दीके साथ काट देता है क्योंकि उसे अपने निरर्थक अतीतका पता चल गया है। परम्परा, सभ्यता, संस्कृतिपर निष्ठा और धर्मके ढोंगमें वह जिन्दा नहीं रहना चाहता, प्राचीन मानवीय मूल्योंको रोग समझकर उसे वह त्याग देना चाहता है। इस संदर्भमें 'घंटाघर' की पहली कविता 'तलाश' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

इस मुल्कका इतिहास—शोषणका इतिहास है
इस मुल्ककी परम्परा—शोषणकी परम्परा है
इस मुल्ककी सभ्यता—शोषणकी सभ्यता है
इस मुल्ककी संस्कृति—शोषणकी संस्कृति है
इस मुल्कको विदेशियोंने लूटा था
इस मुल्कको विद्यार्थियोंने लूटा था

इस मुल्कको नगाड़ा बजाकर स्वदेशी लूट रहे हैं।

० ० ०

पता नहीं इकबालने किस मूडमें आकर
इसे गुलिस्तां बतलाया था
(सारे जहांसे अच्छा…गुलिस्तां हमारा।)
वास्तवमें यह मुल्क दहकता हुआ जंगल है
धधकता रेगिस्तान है। छाती फटा सूखा है

० ० ०

अगर यह मुल्क मेरा होता
तो मुझे नंगा न रखता
मुझे भूखा न रखता
मुझे लावारिस न रखता
मुझे अपमानित न करता
मुझे दुखोंकी दवा—सत्यनारायणकी पूजा न बतलाता
मुझे 'कल्पतरु' और 'कामधेनु' के झांसे न देता
मुझे अपने मुल्ककी तलाश है।

—(तलाश, पृ. ९-१०)

देखना यह है कि सोनकरकी कवितामें परम्परा, अतीत, धर्मनिष्ठा, मानवीय मूल्यों और देशका निषेध रचनात्मक है या ध्वंसपरक? कहीं ऐसा तो नहीं कि यह आक्रामक तेवर एक भावमुद्राके आस्फालनके रूपमें व्यक्त हुआ हो? प्रायः उनकी कविताएं ध्वंस, अस्वीकार और निषेधके द्वारा समकालीन स्थितियोंमें एक साझेदारी का एहसास कराती है और फिर धीरे-धीरे मानव-नियति से इनका सम्बन्ध गहराता जाता है। इस देशके जड़ मनुष्यको स्पंदित करती चलती है। सोनकरकी कविताओं में परम्परा और अतीतका विरोध केवल तेवर न होकर उसे मानव स्थितिसे जोड़नेका प्रयत्न किया गया है। वे उनका विरोध केवल विरोधके लिए नहीं करते। यथा: 'अपने आपको कबीर मत घोषित कर देना! / कबीर मूंछ के बाल थे/ और तुम पूंछके बाल हो/ कबीरने/ अपना घर खुद फूंका था/ और तुम्हारा फूंका गया है।' (मठाधीश, पृ. ८३)

वस्तुतः भ्रष्ट परिवेशके प्रति सोनकरका तीव्र आक्रोश व्यक्ति-मनके स्तरपर व्यक्त न होकर एक ठोस सामाजिक बदलावके लिए व्यक्त हुआ है। उन्हें अपने समाज,संस्कृति और इतिहासके प्रति घृणाका भाव इसी कारण है कि वे इसे एक सामाजिक क्रान्तिसे जोड़ना चाहते हैं। इस दृष्टि से 'जूता' कविता द्रष्टव्य है —

'बहुत दिनोंतक तुम चाटा किये/ साहब्बोंका जूता/ इस उम्मीदमें कि तुम्हारे नंगे पैरोंमें/आ जायेगा जूता/… अब अगर उबरना चाहते हो/ तो पैरोंमें नहीं/ हाथोंमें पहनो जूता।' (जूता, पृ. ७१-७२)।…'सुझाया जा रहा है/तीन बार 'जयहिन्द' बोलो और जोरसे बोलो/मैं चीखा था और चीख रहा हूं/ एकको देख लूंगा। एक-एक…/ आगोंसे घिरी हुई/ अब/एक आग हूं मैं।' (आग, पृ. ८७)

वर्तमान स्थितिका भयावह रूप कविको एक नियोजित लड़ाईके लिए प्रेरित करता है। शायद इसीलिए कवितामें वह मोर्चाबन्दी करता है—'पत्थर' कविता इसका उदाहरण है—'सर्दियोंमें/ बड़ा सर्द हो जाता है पत्थर/ गर्मियोंमें/ बड़ा गर्म हो जाता है पत्थर/ यह एक फुटपाथिया महसूस रहा है/…उसके बच्चे/यह न महसूसें/ इसलिए/ हाथोंमें उठाना जरूरी हो गया है पत्थर।' (पत्थर, पृ. २४-२५)

कविको अपने गुस्सेको गुस्सा साबित करनेके लिए नया रास्ता मिला है कि 'हाथोंमें उठाना जरूरी हो गया है पत्थर।' जिस देशकी सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक हालत इस कद्र बिगड़ गयी हो कि जहाँ 'चायका बिलभी बोझ कहलाता है।' (चाय) जहांके नेतागण पूरे 'भैंसा' हो गये हैं (भैंसा) जहां वही साहित्य बिकता है जिसमें हेमा-धर्मेन्द्रका रोमांस हो या नाभि, योनि, लिंग-दर्शनका चांस हो। (बंद)। जहां पुलिस काला बाजारियोंकी दोस्त है। (नक्सलीकी मृत्युपर) वहां सिवाय इसके क्या रास्ता है कि कवि यह कहे 'हाथोंमें उठाना जरूरी हो गया पत्थर।'

निस्संदेह मनोज सोनकर साठोत्तरी कविताके एक समर्थ कविके रूपमें उभर रहे हैं और उनकी कवितामें मनुष्यके प्रति एक गहरी आत्मीयता है। शिल्पके धरातलपर यह कविता संग्रह एक नयी शुरुआतका संकेत करता है।

□ डा. मदन गुलाटी

वैश्वानर

[खण्ड काव्य]

कवि : मृत्युंजय उपाध्याय; प्रकाशक : बंगीय हिन्दी परिषद्, १५ बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-७०० ००१। पृष्ठ : ६६; डिमा. ८०; मूल्य : २०.०० रु.।

"वैश्वानर" पौराणिक कथानकपर आधारित एक खण्ड काव्य है। काव्य-कथाका सार यह है कि विश्वामित्र

के समयमें एक बार ऐसा भयंकर अकाल पड़ा कि मनुष्य भक्ष्याभक्ष्यका अन्तर भूल मात्र अपनी प्राण-रक्षाको आतुर हो उठे। ऐसी स्थितिमें अपने परिवारको छोड़ विश्वामित्र चाण्डालोंकी एक बस्तीमें गये। वे इतने कमजोर हो गये थे कि एक द्वारके समक्ष गिर पड़े। इसी मरणासन्न स्थितिमें कुत्तेकी जांघके मांसका एक टुकड़ा चुरानेका विश्वामित्रने प्रयत्न किया तो चाण्डालने देख लिया और विश्वामित्रको ललकारा। इसके उत्तरमें विश्वामित्रने जो कुछ कहा यह कृति उसीपर आधारित है। इसमें केवल विश्वामित्रका कथन और चिन्तन है, इन्हींसे प्रश्नभी स्वतः स्पष्ट हो जाते हैं। वे कहते हैं, 'तू उस अचिन्त्यकर्मा, अभिनव विश्वकर्मा दुर्द्धर्ष तपस्वी को भूल जा जो हजारों वर्ष श्वास रोककर निश्चल, निराहार, निर्जल रह सकता था, जिसका योगबल असीम था, तू मुझे पहचाननेका प्रयत्नकर। अभी तो इतनाही समझ कि मैं कोई नहीं, क्योंकि मैं निर्लज्ज, निराश्रित, पराजित, शून्य, निर्वीर्य तथा निस्तेज हो गया हूं। मैं क्या करूँ, मेरा कोई अपना नहीं रहा, मैं किससे कहूं कि मुझे बचाओ। यह न पूछ कि मैं कहाँसे, क्यों और कैसे आया हूँ, क्योंकि वहाँ सर्वस्व श्रीहीन हो गया है और केवल 'आग' शेष हैं। परस्पर रिश्ते-नाते समाप्त हो चुके हैं और भूखके कारण मुझे अपने समक्ष मृत्यु खड़ी हुई दिखायी दे रही है। अब तू मुझसे घृणा न कर। मैंने कोई अपराध नहीं किया, फिरभी मैं और मेरा 'सम्पूर्ण-युग' दण्डित हो रहा है। चहुंदिश अकालके प्रहारको देखने एवं भोगनेको मुझे बाध्य होना पड़ रहा है। अपनी प्रणयिनी, बच्चों तथा शिष्योंको भी छोड़ना पड़ रहा है। मैं घृणाओं, कुण्ठाओंका पात्र होनेके कारण वैतरणीके क्षुद्र कीटके समान हो गया हूँ। क्या अबभी मेरे पुत्र और शिष्य मेरा, एक भूखे और चोरका सम्मान करेंगे। मैं जानता हूँ कि बिना पूछे किसीके घरमें घुसना तथा धन-धान्यका हरण करना घृणित कर्म है, किन्तु जीवित रहनेका कोई और रास्ताभी तो नहीं। मैं सब कुछ जानता हूं किन्तु इस समय मेरा सर्वस्व मेरे उदरसे सम्बद्ध है। तू मेरा विश्वास कर कि मैं जिसे कलतक आदर्श मानता था, कल फिर मानूंगा। लेकिन इस समय मेरे समक्ष मेरा नहीं युगका आदर्श है। इस समय तेरे तर्क मुझे, मेरे 'स्व' को समाप्त करनेके षड्यन्त्रके अतिरिक्त कुछ नहीं लगते। मुझे किसीभी तरह जीवित रहना है। मरणोत्तर स्वर्ग-नरक केवल मूर्खोंके भ्रम हैं। इस देहके अभाव में आत्मा प्रजा तथा प्राणोंकी स्थितिभी तो सम्भव नहीं। मेरे इस आचरणकी निन्दा केवल मूर्ख करेंगे। क्या तेरा मुझे शिक्षा देना मेरे भूखे होने तथा तेरा पेट भरा होने का ही परिणाम नहीं है। क्या तू जानता है भूखा अन्न तथा मांसमें अन्तर नहीं देखता। उसके लिए सब कुछ धर्म है। कुत्तेके इस मांसको खाकर मैं जीवित रह सकूंगा और वसुन्धराके पुनर्विकसित सौन्दर्यको देख सकूंगा। अतः तू मुझे यह मांस खा लेने दे।'

'वैश्वानर' के माध्यमसे मृत्युंजय उपाध्यायने युगकी अनेक ज्वलन्त समस्याओंको प्रस्तुत करते हुए अपने युगके वर्तमानको प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत कृतिमें से यदि पौराणिक सन्दर्भोंको पृथक् करके कृतिकारके 'संकेत' को न रखा गया होता तो यह काव्य द्वापरयुगीन विश्वामित्रकी कहानी न होकर वर्तमानका रिपोर्ताज हुआ होता। मैं नहीं कहता कि :

'भूलसे भी कभी/दिखायी नहीं देता कुहासा/मंडराते नहीं बादल/छोड़ा है नदियोंने बहना/भूली हैं बावड़ियां हँसना/सूखे हैं सरोवर और कुएँ/श्रीहीन हुए हैं झरने/दूर-दूरतक/कछुवेकी पीठ-सी/फटी हुई धरती/तपती हुई रेत' (पृष्ठ १८)

जीवन एक संघर्ष है, किन्तु अस्मिताके खतरेमें पड़ने पर चरम संघर्षकी स्थिति पैदा हो जाती है। नायक मृत्यु से जूझ रहा है, यमदूतोंको ललकार रहा है, चाण्डालसे कुत्तेके मांसके लिए याचना कर रहा है—केवल जीवित रहनेके लिए। इस बाह्य संघर्षके साथ उसमें आन्तरिक संघर्षका भी अभाव नहीं—भक्ष्याभक्ष्य कर्त्तव्याकर्त्तव्य तथा कर्माकर्मका उसे पूरा बोध है जो उसके जीवित रहने में अचड़न बने हैं। 'मन-एवं आत्मा' के इस संघर्षका चित्रण है :

'…कहां है दोष/मैत्रीमें/प्राणोंकी रक्षामें/कहां है दोष/दोष है/समयके सत्यकी उपेक्षा/दोष है/मिथ्या धर्म कर्म अहम्की रक्षा/दोष है संशयका जीवन स्वयंको झुठलाना/आत्माको जुठलाना (पृष्ठ ६२)…होंगे प्रसन्न/…इन्द्र-यम रुद्र/बना रहूँगा पवित्र' (पृष्ठ ६३) हमारे पारिवारिक सम्बन्ध नाते-रिश्ते केवल तभीतक हैं जबतक कि हमारी अस्मितापर आंच नहीं आती, हमारा अस्तित्व सुरक्षित है। अस्तित्वकी सुरक्षाको खतरा हुआ नहीं कि—

'कोई नहीं किसीकी/मां बहन पत्नी/कोई नहीं किसी का/पिता पुत्र भाई/सभीके सभी अन्न आहार/सभीका

सभीपर प्रहार' (पृष्ठ २०) 'वे ही/बस वे ही/ओढ़कर मरे हुए धर्मकी खाल/लगाकर चिथे हुए नियमकी लंगोटी/करेंगे मेरे आचरणकी निन्दा' (पृष्ठ ४९) तुलसीने भी तो कहा है : 'भूखे भजन न होई गोपाला ।' वस्तुतः वैश्वानर एक प्रतीक है सृष्टिके आदि दरिद्र-दलित-भूखेका । वह कहता है : 'मैं भूखा/शताब्दियोंसे/कल्प-कल्पान्तरोंसे/' (पृष्ठ ६८) जब कवि कहता है कि 'मुझे खाने दे/पचाने दे/ कव्य-सभ्यता व्यवस्था संस्कृति/वातापि-ज्ञान-विज्ञान यति' (पृष्ठ ६९) तो यह स्पष्ट संकेत है कि सभ्यता आदि तभी सम्भव है जब उदरपूर्ति हो गयी हो । फिर भी व्यक्तिके संस्कार ढीले नहीं पड़ते । तभी विवश-सा कवि कहलाता है : 'पर/यदि मैं बच गया/किसी तरह बच गया/उसे कुछभी हो नाम/करूंगा कुछ ऐसा यज्ञ जप तप स्वाध्याय/कर्म सेवा पुरुषार्थ । धुलेंगे सारे कलंक/जलेंगे/सारे अभिशाप' (पृष्ठ ५०) ।

इस काव्यके प्रसंगमें यह अवश्य विचारणीय है कि संकटापन्न ब्राह्मणका कल्पित रूप याचक और चोरका ही क्यों ? अपनी तेजस्विता ज्ञान बुद्धिकी सम्पन्नता और निर्माणपटुतासे शून्य क्यों ? त्रिशंकु-लोककी सृष्टि करने वाला इतना असहाय क्यों ? यह कृतिकारकी कल्पना-शीलतापर एक टिप्पणी है, ऐतिहासिक चरित्रपर नहीं । ऐसाही कल्पना-सृष्ट पात्र आत्मग्लानि अनुभव कर सकता है : 'वे ज्ञानी, स्वाभिमानी, सुनेंगे जब मेरे अधःपतनकी कहानी / कैसे छुएंगे मेरे चरण /स्वीकारेंगे मुझे पिता/ (पृ. ३९) । कहीं-कहीं अवश्य कवि ब्रह्म-तेजका स्मरण करते हुए आक्रोशके साथ जूझनेकी इच्छा व्यक्त करता है : 'लगा दे/ तीनों लोकोंमें आग/ उठें / लपटें / उठें/ धुआँ छुटे' (पृ. ५८) । 'देख लेना/ मेरे वीर्यसे जन्मेगा ब्रह्म / मेरे वीर्यसे जन्मेगा विष्णु/ मेरे वीर्यसे जन्मेगा रुद्र (पृ. ६७) ।'

वस्तुतः इस व्यक्तित्व-सम्पन्न ब्रह्मर्षिके देश-काल-पात्रके संदर्भमें आजके युगको देखने-परखनेका प्रयत्न कवि ने किया है : 'आज इस अंधेरेमें/ अभावोंके जंगलमें / बुभुक्षाके चंगुलमें/ यदि नहीं है । नहीं है कोई/ चोर ठग या डाकू तो अनुचित है / शत प्रतिशत अनुचित है ।'

खण्ड-काव्यमें जो गुण होने चाहियें, नाटकीयता, तनाव, विषयका विस्तार और व्यापकता, वे प्रायः सभी इसमें हैं । सम्पूर्ण काव्य विश्वामित्रके आत्म-कथ्यके रूपमें है । श्रोता है चाण्डाल ।

महकते शूल दहकते फूल

कवि : अनन्तराम पुरवार; प्रकाशक : श्रीकृष्ण मुद्रण संस्थान, १८, नरवासा-इटावा । पृष्ठ : ७३; मूल्य : १५.०० रु. ।

विविधा, निर्झरिणी, सोपान,पीड़ित हिन्दुस्थान और निनादके पश्चात् 'महकते शूल दहकते फूल' अनन्तराम पुरवारका सद्यःप्रकाशित छठा काव्य संकलन है । शीर्षक की अभिव्यक्ति करते हुए मुखपृष्ठका चित्रांकन आकर्षक है । ग्रन्थमें कवि-कथ्यके सहित उसका परिचय एवं सम्मतियाँ भी प्रस्तुत की गयी हैं । संकलन गीत, मुक्तक एवं गद्य-काव्य तीन वर्गोंमें विभक्त है, जिसमें विविध विषयोंपर २९ रचनाएँ हैं ।

कविका स्वीकरण है—'संयोगकी बात कि मुझे मूर्तियाँ जीवन्त लगने लगीं और मुझे उनमें अभूतपूर्व सौन्दर्य दिखायी देने लगा । उनके सान्निध्यमें होते ही (मैं) मस्तीमें भर जाता और तन्मय होकर लिखने लगता । इस परिप्रेक्ष्यमें प्रारम्भिक ४ गीत कविकी दार्शनिक मनःस्थितिके परिचायक हैं यथा :

सन्ध्या तो होगी अवश्यही,
अभी समुज्जवल रवि प्रकाश है
रीतेगी हर छलकी गागर ।
जग नश्वर जग जीवन नश्वर ॥

मिलन और विछोहको व्यंजित करनेवाले गीत 'कौन साथी' में कविकी उत्कट जिजीविषा और अन्ततः प्रिय मिलनकी आशा व्यक्त की गयी है और यहीं भावविह्वल हो उसने अपने जीवनका एक लक्ष्य उजागर किया है—

'सब तरह शृंगार जगका मन लगा मैंने किया है
की नहीं कविता, मगर हां,काव्यमय जीवन जिया है॥

दिगन्त व्यापी गहन तिमिरमें प्रबल प्रभंजनोंके मध्य अवसाद एवं उन्मादकी वर्तिका बनाये, उरमें स्नेह संजोये कविका दीप जल रहा है और वहभी अकेला । गीत संख्या १४ में 'मानवताका शील प्रदर्शन इसे याचना स्वर न समझना' लिखते हुए कविका पौरुष ईश्वरसे दो-दो बातें करता है :

'है आबाद हमींसे देखो, सतरंगी संसार तुम्हारा
और अगर संसार न होता, क्या होता शृंगार तुम्हारा ?

संकलनमें कतिपय सामयिक विषयोंपर मुक्तकों का समावेश किया गया है जिसमें सूखा,राजनीतिक उथल

पुथल एवं गांधी जयन्ती प्रमुख हैं। कुछेक मुक्तक अच्छे बन पड़े हैं यथा—

'भयंकर शीत थी अबतक अभी कुछ धूप गरमायी
जमाना रंग बदलता है, नयी सरकार है आयी
पुराने पात झरते हैं, नये किसलय उभरते हैं
जहाँसे कल उठी अर्थी, वहीं सुन आज शहनाई।

यहीं कवि अपने व्यंग्य-शरोंका भी संधान करता है—
'हम बापूके परम भक्त हैं, किन्तु पेटकी मजबूरी है
अतः हमारी उनसे दिन दिन, बढ़ती ही जाती दूरी है
उनके आदर्शोंपर चलकर,हम न आज जीवित रह सकते
युगके साथ हमें चलना है, श्रद्धा बापूमें पूरी है।'

एकान्त काव्य-साधनारत ७५ वसन्तोंको हियेकी आंखोंसे देखनेवाले कविने अपने गद्य काव्यकी एक रचना 'कवि'में आजके विशेषतः शृंगारी कवियोंकी उस रचना-धर्मिताकी भर्त्सना की है जिसमें नारीका मनचीता स्वरूप चित्रित किया जाता है, अतः वह स्वयंको सम्बोधित करते हुए कहता है—

'कवि गाओ अवश्य गाओ
किन्तु कवि बनकर गाओ
(अनन्तकी भांति तुक्कड़ बनकर न गाओ)
साधना करो, आराधना करो।'...आदि आदि

इस वर्गकी कुछ रचनाएँ लम्बी अवश्य हो गयी हैं। 'अटल नियम' रचनामें कविके आर्थिक चिन्तनका स्वरूप सामने आता है जिसमें पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकोंके शोषण के प्रति प्रतिकार प्रकट किया गया है। यहां कविने नये अंदाजमें एक बात कही है।

'देशकी सारी सम्पत्ति तो तुम निगल जाते हो
किन्तु अपनी गगनचुम्बी चिमनियोंसे
केवल धुआंही उगलते हो।'

इसी प्रकार 'आजका विद्यार्थी'नामक रचनामें शिक्षक और शिक्षार्थी दोनोंकी कटु आलोचना की गयी है। यहीं 'कुत्तोंकी मौत मरोगे' वाक्यांश पाठकको तिलमिला देने वाला है।

संकलनमें मूलतः सामाजिक असन्तुलन, राजनीतिक स्वार्थान्धता एवं ह्रासोन्मुख मानवीय मूल्योंके प्रति क्षोभ तो प्रकट किया ही गया है कहीं-कहीं कवि घोर निराशा के धरातलका भी स्पर्श करता है। इस व्यूह-भेदन हेतु वह क्रान्तिका शंख फूंकता है किन्तु कहीं उसका अहिंसा एवं सुधारवादी स्वरूप झलक उठता है।

काव्यकी कलाबाजियां न लगाकर कविने सीधी-सच्ची बात कही है। शायद इसीलिए कुछेक स्थलोंपर प्रवाह शिथिल हो गया है। अवधी गीतमें प्रयुक्त कुछ शब्द खटकते हैं जैसे--मशीनीकरन, अभियन्ता, उद्यान आदि। यत्र तत्र मुद्रणकी असावधानियां तो हैं ही वर्तनीकी त्रुटियांभी रह गयी हैं। हर नयी रचना यदि नये पृष्ठसे होती तो अच्छा होता। पुस्तकका आवरण छोटा रह गया है और १५ रुपये मूल्य आम पाठकके लिए अधिक है।

☐ रामकुमार गुप्त

नाटक :
एकांकी

मालवकुमार भोज

नाटककार : डॉ. रामकुमार बर्मा; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संज, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : ७८; क्रा. ७६; मूल्य : १२.०० रु.।

'मालवकुमार भोज' डॉ. रामकुमार वर्माका नवीनतम ऐतिहासिक नाटक है। यह नाटक इतिहास प्रसिद्ध भोजराजके आरम्भिक जीवनसे संबंधित है। महाराजा भोजका आविर्भाव सन् ९८० के लगभग माना जाता है। भोज मालवाके परमार नरेश श्रीहर्षके पौत्र थे। इनके

पिताका नाम सिन्धुल था। लेकिन श्रीहर्षने अपना उत्तराधिकार सिन्धुलको न देकर, अपने पोष्य पुत्र मुंजको दिया। एक बार एक ज्योतिषीने कुमार भोजकी जन्म-कुण्डली देखकर भविष्यवाणी की कि यह बालक गौड़ देशपर ही नहीं, सारे दक्षिणी देशपर विजय प्राप्त कर मालवाके सिंहासनपर पचपन वर्ष सात महीने नौ दिन शासन करेगा। मुंज यह सुनकर जल उठा। उसे यह आशंका हुई कि यह बालक मेरे वंशको निर्मूल करके ही शासक बन सकेगा। मुंजने कुमार भोजका वध करानेकी योजना बनायी। उसने अपने एक विश्वस्त सामन्तके साथ भोजको भुवनेश्वरीके वन-प्रान्तका प्रकृति-सौन्दर्य देखनेके लिए भेजा, और वहीं भोजका वध करा देनेका आदेश दिया।

वन-प्रान्तमें जब भोजको वधके षड्यन्त्रका पता चला तो उन्होंने अपने रक्तसे मुंजको एक पत्र लिखा। पत्र एक श्लोकके रूपमें था, जिसका मूल भाव यह था कि यह वसुन्धरा सतयुगके अलंकार मान्धाताके साथ, रावणको मारनेवाले रामके साथ, महाभारत जीतनेवाले युधिष्ठिरके साथ नहीं गयी पर लगता है, आपके साथ चली जायेगी। भोजकी निरीहता, सुकुमारता और प्रतिभासे सामन्त बड़ा प्रभावित हुआ। उसने भोजका वध नहीं कराया। मुंजको विश्वास दिलानेके लिए सामन्तने एक हिरणका वध कराया और उसीके रक्तसे भोजके वस्त्रोंको सिंचित किया गया तथा हिरणकी आंखें निकालकर, भोजकी आंखोंके रूपमें, उन्हें पिटारीमें रखा गया। जब मुंजने भोजका पत्र पढ़ा तो उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ, और वह आत्म-हत्या करनेके लिए तत्पर हो गया। अन्तमें सामन्तने भोजके जीवित होनेका रहस्य बताया। प्रस्तुत नाटकमें इसी घटनाको कलात्मक ढंगसे संजोया गया है। भोजराजकी इस घटनापर साहित्यमें अनेक काव्य लिखे जा चुके हैं, और यह घटना जन-जनमें प्रचारित हो चुकी है। नाटक लिखनेके उद्देश्यपर प्रकाश डालते हुए, डॉ. रामकुमार बर्मा लिखते हैं…'गतवर्ष धारा नगरीमें भ्रमण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वहांके सुधी नागरिकोंने भोजकुमारपर एक नाटक लिखनेका आग्रह किया था। उसी आग्रहकी पूर्तिके लिए यह छोटा-सा नाटक उनकी सेवामें भेंट कर रहा हूं।'

'मालवकुमार भोज' तीन अंकोंका नाटक है। इसका प्रत्येक अंक एक दृश्यके रूपमें संयोजित है। पहला अंक भुवनेश्वरीके वन-प्रान्तका है। दूसरा महाराज मुंजकी रंगशालाका और तीसरा राजभवनके बाहरी कक्षसे संबंधित है। पहले अंकके प्रारम्भमें राजकर्मचारी पूर्णपाल और अपराजित भोजके वधके पक्ष-विपक्षमें तर्क करते हैं। इसके बाद सामन्त वत्सराज भोजके वधकी रूप-रेखा बनाते हैं और अन्तमें भोजके पत्र-लेखन और उनका वध न करनेका दृश्य है। कुमार भोजकी सामन्तके पुत्र देवराजसे गहरी दोस्ती है। देवराजको जब यह पता चलता है कि भोजका वध कराया जा रहा है तो वह अपने पिताके पास जाता है, और कहता है 'यदि भोजकुमारका वध हुआ तो मैं उसी क्षण आत्महत्या कर लूंगा।' सामन्त वत्सराज अपने एक मात्र पुत्रके आग्रहपर विवश हो जाते हैं और भोजके वधका विचार त्याग देते हैं। कथा-सूत्रकी इस योजनामे वर्माजीकी अपनी मौलिक उद्भावना सन्निहित है! इससे कथ्यको विशेष बल मिला है। दूसरे अंकमें मुंज अपनी कर्नाट-विजयपर प्रसन्नता ज्ञापित करते हैं और सैनिकोंको उपहार प्रदान करते हैं। इसीके बाद वत्सराज कुमार भोजके वधकी सूचना देते हैं, और प्रमाणके रूपमें रक्तसे भीगे हुए वस्त्र और भोजके नेत्र प्रस्तुत करते हैं! लेकिन जब मुंज, रक्तसे लिखा हुआ भोजका पत्र पढ़ते हैं तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप होता है। यह अंक मुंजके पश्चात्तापके साथही समाप्त होता है। तीसरे अंकमें महारानी कुसुमवती और उनकी सहचरी कनकलेखा महाराज मुंजकी वर्तमान मनःस्थितिपर प्रकाश डालती हैं। इसके बाद मुंज मंचपर आते हैं। वे अपनेको वधिक समझ रहे हैं और उनका पश्चात्ताप बढ़ता ही जाता है। अंतमें वत्सराज भोजको पुनः जीवित करनेकी योजना बनाते हैं। भोजको जिलानेके लिए एक तांत्रिककी अवतारणा होती है। जब मुंजका पश्चात्ताप अपनी चरम-सीमापर पहुंचता है तब भोजके जीवित होनेका रहस्य खुलता है और भोज मंचपर आते हैं। इस प्रकार नाटक सुखान्त बन जाता है।

डॉ. रामकुमार वर्मा 'प्रसाद-स्कूल' के नाटककार हैं। प्रसादजी की-सी कलात्मकता, चिन्तन और आदर्श यदि हिन्दीके किसी नाटककारमें विधिवत् प्रतिफलित हुए हैं तो वे डॉ. रामकुमार वर्मामें। डॉ. वर्मा प्रारम्भसे लेकर अबतक अपने नाट्य आदर्शोंपर पूरी तरह अडिग हैं। वे प्रयोगोंकी उधेड़बुनमें नहीं पड़ते। यद्यपि डॉ. वर्माके नाटकोंमें मंचीयताकी अपेक्षा, पाठ्य गुण अधिक हैं। इसीलिए उनके नाटक जितने मंचित नहीं किये जा सके उससे कहीं अधिक पाठ्य-पुस्तकोंके रूपमें स्वीकृत होते

है। 'मालवकुमार भोज' भी डॉ. वर्माके आदर्शोंका नाटक है। इसका कथ्य ऐतिहासिक अवश्य है पर इसकी कलात्मकतामें डॉ. वर्माकी मौलिकता है। उन्होंने ऐतिहासिक कथ्यमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया। लेकिन नाटकके संवाद कसे हुए और परिमार्जित हैं। प्रसंगके अनुसार वे अपने संवादोंमें चिंतन भरते चलते हैं। उदाहरणके लिए कुछ अंश द्रष्टव्य है

'यह राजसेवा भी ऐसी बंजरभूमि है जिसमें मानवता के बीजभी नष्ट हो जाते हैं। कठोरता और निर्ममता के कुश-कंटकोंके बीच सहानुभूतिके अंकुरभी नहीं निकल सकते।'

'शत्रुका व्यूह-भेदन करते हुए हमने उसके राज्यमें उसी तरह प्रवेश किया जिस तरह श्याम घन-मंडल में विद्युतकी आभा प्रवेश कर जाती है। हमने अपनी शक्तिके प्रबल झंझावातमें शत्रुकी सैन्यशक्ति सूखे वट-वृक्षकी भांति उखाड़ कर फेंक दी है। हमारे बाणों और भालोंकी वर्षासे जब उसके सैनिक धराशायी हुए तो लगा जैसे कर्नाट राज्य शिशिर ऋतु के उस वन-प्रान्तकी भांति हो गया है जिसका एक-एक पल्लव भूमिपर बिखर गया हो।'

कहीं-कहीं डॉ. वर्मा अपने वैचारिक-विश्लेषणमें नाट्य-सीमाका अतिक्रमण कर जाते हैं। उदाहरणके लिए कलिकेश्वरके एक संवादमें उनकी दार्शनिक विवेचना देखिये—'आज्ञा-चक्रका संबध नेत्रों और उनकी दृष्टिसे है। यही त्राटक होता है। यह चक्र भौंहोंके मध्यमें मेरुदण्डके भीतर ब्रह्म नाड़ीमें स्थित है। यह कमल नेत्रोंके रंगके समान श्वेत है। यह नेत्रोंके समानही दो दलोंवाला है। प्राणायामसे इन दलोंके झंकृत होनेसे 'ह' ओर 'क्ष' की ध्वनि उत्पन्न होती है। यह चक्र महत् तत्त्वका स्थान है। इनका बीज प्रणव 'नाद ओम्' है।

नाटक मंचीय विधा है। अतः इसमें कलात्मकता ओर चिन्तन यदि मंचीय सीमामें रहें तो अधिक उचित है। प्रस्तुत नाटकमें सूच्य घटनाएं भी यत्रतत्र हैं जिनमें विवरणात्मकता अधिक है। दूसरे अंकके प्रारम्भमें, कर्नाट-विजयका पूरा अंश सूच्य है। इसमें कार्य-व्यापारका अभाव है। हाँ, सैनिकोंको पुरस्कार प्रदान करनेके दृश्य में, आधुनिकताका बोध अवश्य होता है। मुंज कहता है—हमने अपने सैनिकोंकी सहायतासे कर्नाटकी विपुल रत्न-राशि प्राप्त की है। इस विजयके उपलक्ष्यमें हम अपने वीरोंको पुरस्कृत करना चाहते हैं। ...सेनापति ! तुमने युद्धमें जो रण-कौशल दिखलाया है उसके उपलक्ष्य में तुम्हें यह रत्नजटित त्रिशूल उपहारमें दिया जाता है।'

डॉ. रामकुमार वर्मा सिद्धहस्त नाटककार हैं। उन्होंने अपनी कला एवं चिन्तनसे प्रस्तुत नाटकको मार्मिक और स्तरीय बना दिया है। यह नाटक मालवकुमार भोजके जीवनकी आरम्भिक, पर महत्वपूर्ण घटनाको बड़े प्रभावी ढंगसे स्थापित करता है। आकारकी दृष्टिसे नाटक डेढ़ घंटेकी अवधिका है, और नाटकमें मंचनकी भी काफी कुछ सम्भावनाएं निहित हैं।

□ डॉ. चन्द्र

अतः किम्

नाटककार : डॉ. राधाकृष्ण सहाय; प्रकाशक : लोक भारती प्रकाशन, ए-१५, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-२११००१। पृष्ठ : ७३; क्रा. ८१; मूल्य : ६.०० रु.।

डॉ. राधाकृष्ण सहाय पिछले तीन दशकोंसे शौकिया तौरपर रंगमंचसे जुड़े हुए हैं इस रूपमें एक सक्रिय रंग धर्मी भी कहे जा सकते हैं कि उन्होंने कुछ कथानकोंको नाट्यरूप भी प्रदान किया है। रंगयोगकी दृष्टि उनके लिए रंगमंचकी समझतक सीमित है, और इसीलिए उन्होंने 'अतः किम्' नाटकमें किसी स्थानीय कस्बे या ज्यादासे ज्यादा छोटेसे शहरकी मध्यवर्गीय मानसिकताको वर्तमान भारतीय परिवेशमें देखने परखनेका एक नाटकीय उपयोग है।

उक्त नाटक लगभग बीस साल पुरानी नाट्य रचना 'मरीचिका' का ही नाट्य-पाठ है और इन वर्षों में रंगकर्मियोंमें जो रंग-परिपक्वता आयी है, उससे यह नाटक अलग-अलग प्रतीत होता है। तथापि इस नाटककी विशेषतामें कागजी फ्लैपपर जो विज्ञापित पंक्तियां हैं, उसमें यह उल्लेख है कि उक्त लघु नाटक लोकनाट्य रूप तथा साहित्यिक नाट्य रूपोंकी सीमा-रेखाको तोड़ हिन्दी नाटकका एक ऐसा ढांचा तैयार करता है, जो प्रेक्षक और अभिनेताके बीचकी दूरीको मिटाकर दोनोंको एक कर देता है।

इसतरहके हवाई वक्तव्योंके लिए यहां डॉ. लक्ष्मी नारायण लालभी याद किये जा सकते हैं। यह बात यहाँ तकतो सार्थक लगती है कि आजका हिन्दी नाटक—बल्कि हिन्दी रंगमंच पाश्चात्य एवं पूर्वी नाट्य-रूपोंके बीच

स्वतंत्र नाट्य रूप स्थिर करनेको प्रयत्नशील हैं। लेकिन 'अतः किम्' नाटकके संदर्भमें ऐसे रंग-वक्तव्यका कोई औचित्य नहीं। क्योंकि यह नाटक न तो किसी लोक-नाट्य रूपके और न किसी पाश्चात्य रंगशैलीके अनुरूप ही निर्मित हुआ है और न ही भारतीय नाटकके किसी विवादास्पद/प्रयोगशील रंगप्रयोगके समकक्ष।

किसीभी आलेखकी रंग-प्रस्तुति, निर्देशककी रंग-धर्मितासे सम्पूर्ण या आंशिक सम्पन्न होती है। इस दृष्टिसे इस नाटकमें विचार-योग्य कोई विशेष मुद्दा नहीं। आलेखको आधार बनाकर ही इसका विवेचन संभव है। प्रस्तुत समीक्षकने इस नाटककी आरम्भिक प्रस्तुतिको देखा था और जब इस नाटकपर टेलीविजन फिल्म बनायी जा रही थी तो उस समय सक्रिय रूपसे जुड़ा रहा था। यह नाट्यालेख मूलतः एक ऐसी सरल कहानी और विरल योजना है, जिसमें यथापात्र लेखकीय बयानबाजी की गयी है। नाटकके नायक मनोहर बाबू और उनकी पत्नी रत्ना निम्न मध्यवर्गीय परिवारकी प्रतिनिधि मानसिकताको अपनी दैनंदिन चर्याके माध्यमसे उजागर करते हैं। इस तरहके माहौल और मन्तव्यको आजका हिन्दी पाठक या रंगमंच-प्रेक्षक अच्छी तरह देखता-समझता है। मूल्योंके सन्दर्भ जीवित पीढ़ियोंके आपसी मानदण्डोंसे किस प्रकार निर्धारित या संशोधित हो सकते हैं, इस प्रयोजन हेतु मनोहर बाबूके सत्तर वर्षीय शिक्षक तथा उनके चचेरे भाई वीरेनको नाटकीय प्रतिनिधित्वभी दिया गया है। निम्न मध्यवर्गीय गृहस्थीमें आर्थिक असन्तोष एक शाश्वत सन्दर्भ है। लेखकने इस असन्तोषको जहां मनोहर बाबूके स्वभावसे जोड़कर सहज बनाये रखा है, वहीं उनकी पत्नी रत्नाके द्वारा इस असन्तोषको कई स्थानोंपर मुखर बनानेकी कोशिशभी की है। अन्तमें, इस कहानीको एक नाटकीय मोड़ बल्कि एक फिल्मी मोड़ देनेका कृत्रिम उपक्रम तब होता है, जब मनोहर बाबूका वीरेन अपनी ब्रीफकेसमें तस्करी सोनेकी बिस्किटें लाकर रत्ना भाभीको छुपाकर रखनेको देता है।

यह एक ऐसा प्रस्ताव है जहां आर्थिक संक्रमणमें जी रही किसी निम्न मध्यवर्गीय महिलाकी विपन्न गृहस्थी बड़े आरामसे सज-संवर सकती थी। लेकिन लेखकने नैतिक · संक्रमण या धर्माधर्मभीरुताका हवाला देकर रत्नाकी पात्रताको बहुतही ऊँचा उठा दिया है। लेखकने उस वीरेनको—जो जीवनको पिस्तौलकी बुलेटकी तरह पारिभाषित करता है, अपने मूल्य-विवेकके समर्थन द्वारा न्यस्त या खारिज कर दिया है। नैतिक और आर्थिक संक्रमणपर जो बहस उठायी गयी है, उसके तीन नमूने द्रष्टव्य है—

मनोहर—'ईश्वरके नामपर पत्थरका टुकड़ा, मिट्टी की मूर्ति, दीवाल या कागजपर खींचा गया चित्र, एक पक्षी, एक मछली, एक सांप, ईश्वरसे बड़ा झूठ और कुछ नहीं रत्ना।' (पृष्ठ ७२)

रत्ना—'नहीं। सब झूठ। न सच तुम। न सच मैं। सच कुछभी नहीं। न सच ईश्वर है न सच हम तुम। अगर कुछ सच है तो यही कि सच और झूठके मेलसे बने हम तुम·· हम सभी। सच एक छोर है तो झूठ दूसरा छोर।' (पृष्ठ ७२)

वीरेन—'हमारे देशमें, मुश्किल यह है कि तीनों (शरीरकी मांग, मनकी इच्छा और आत्मा की पुकार) को मान लिया गया। नैतिकताके साथ जोड़कर सबको एक साथ गड्डमड्ड कर दिया गया। मसलन भौतिक बलके अभावमें शरीर और मन बराबर कातर रहेंगे, यह हमने भुला दिया है। आदमीको अपनी इच्छाओंको फलवती बनाना होता है, इच्छाएं अपने आप फल नहीं देती। वीरभोग्या वसुन्धरा···नो रिस्क···नो गेन···।' (पृष्ठ ६५)

मनोहर—'सारे खानदानको जुटाकर सबकी खातिर बातमें आधी शक्ति और पैसेका अपव्यय कहांकी बुद्धिमानी है। हमें बाहरवालोंसे भी तो कुछ सीखना चाहिये। देखो, विदेशोंमें अँगूठीकी अदला-बदली कर ली, किस्सा खतम।' (पृष्ठ ५६)

वीरेन—'अपने देशमें, इस देशमें हड़ताल···बस एक दिन। बस एक दिन। इससे अधिक चल नहीं सकती हड़ताल। कलही सारी दूकानें खुल जायगी।' (पृ० ७५)

नाटककारके शब्दोंमें, रोजमर्राकी जीवन-घटनाओं तथा रोजमर्राके परिचित पात्रोंके माध्यमसे आजके मध्यवित्तीय भारतीय समाजमें फैले आर्थिक संकटसे उत्पन्न नैतिक संत्रासको, हमारे युगीन जीवनकी त्रासद गाथाको यह लघु नाटक व्यक्त करता है और सम्भवतः

इसीलिए अन्ततोगत्वा विलीन हो जाता है, प्रेक्षकोंके बीच, क्योंकि नाटककारके पास इसका न कोई उत्तर है न कोई समाधान।

नाटककार हर स्थितिको बेमानी करार देनेके पहले आधुनिक मानव-मनकी प्रश्नाकुल छटपटाहटको स्वर देता है—

'सुनो, मुझे फिलासफी नहीं चाहिये। हर जीव मूलतः कायर होता है, मैं भी हूं। अब जब मेरे संकल्पमें तुमने बाधा डाल दी है, तब वहभी मेरे लिए संभव नहीं रहा।'

इस नाटकमें तर्क हैं, प्रश्न है लेकिन नाटककार पहले यह घोषित कर चुका हैं, युगीन जीवनकी त्रासद गाथाका उत्तर, समस्याका निदान, द्वन्द्वका निराकरण या कोई दूसरा विकल्प…ढूंढ़ पाना सम्भव नहीं। यह नाटक भी अंततोगत्वा यवनिकामें खो जाता है।

इस नाटककी एकाधिक प्रस्तुतियां कुछ रंगपीठों द्वारा प्रस्तुत की जा चुकी हैं। स्थिर एवं संयत आलेखके कारण यह नाटक किसी ग्रुपमें उद्दीपना या उत्तेजना जगा पायेगा, ऐसा नहीं लगता। एक संभावना अवश्य जगती है कि जिस तरह आजकल कई उपन्यासों या कहानियोंकी नाट्य प्रस्तुतियां हो रही हैं, उक्त नाटकको उपन्यास या कथा रूपमें परिणत करनेपर संभवतः अधिक वांछित परिणाम सामने आये।

□ रणजीतकुमार साहा

आखिरी पन्ने

कृतिकार : आनन्दम; प्रकाशक : साक्षर प्रकाशन, ४०२, अम्बफला, जम्मू-१८०-००५। पृष्ठ : १२८; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

'आखिरी पन्ने' शीर्षकके अन्तर्गत सुतीक्ष्णकुमार शर्मा 'आनन्दम' के तीन एकांकी संकलित हैं : पागल, आखिरी पन्ने तथा एक मुट्ठी धूप। पागल रंगमंचीय एकांकी है और शेष दोनों रेडियो नाटक। पागलका १९७६ में मंचन और शेष दोनों रेडियो नाटकोंका आकाशवाणी जम्मू द्वारा १९७६-७७ में प्रसारण हो चुका है। एकांकी संग्रहकी भूमिका 'दो शब्द' प्रसिद्ध नाटककार विष्णुप्रभाकर द्वारा लिखी गयी है।

'पागल' एकांकीमें वैसे व्यक्तिको पागल बताया गया है जिसने लौकिक जीवन सत्योंकी सत्ता पारकर जीवनके चरम सत्यको जान लिया है। दुनियां लौकिक सत्योंसे ही उलझी रहती है। इसलिए लोकोत्तर चर्चा करनेवाला व्यक्ति सनकी या पागल करार दिया जाता है। चरम सत्यका ज्ञान करानेवाले सभी महापुरुषोंको पागल और समाज विरोधी बताकर मृत्युका वरण करनेके लिए विवश किया जाता रहा है। 'पागल' एकांकीके पागलको भी ऐसेही मरना पड़ता है। पर बादमें लोग उसके महत्त्वको समझते हैं—उसे खोजते हैं—उसे फिरसे पाना चाहते हैं। 'कलब' 'पागल' 'भिक्षुणी' आदिको प्रतीकार्थ देकर नाटकके अर्थमें विस्तार लानेकी कोशिश की गयी है। यह मंचपर सरलतासे प्रस्तुत किया जा सकनेवाला नाटक है।

'आखिरी पन्ने' और 'एक मुट्ठी धूप' आदर्शोन्मुख एकांकी हैं। 'आखिरी पन्ने' का उद्देश्य है नैतिकताके मूल्योंके आदर्श स्वरूपका निरूपण प्रस्तुत करना और 'एक मुट्ठी धूप' का उद्देश्य है शोषण एवं भ्रष्टाचारके प्रति विद्रोहका स्वर उठाना। ये दोनों एकांकी घटनाओंके सायास गुंफन एवं भावुकताके चित्रणसे जहां तत्क्षण प्रभावित करते हैं वहीं सरकारी नीतिके कटघरेमें खड़े हो सोद्देश्य रचना प्रस्तुत करनेके कारण कोई कलामूल्य स्थापित नहीं कर पाते।

शैली शिल्प और कथ्यकी दृष्टिसे एकांकी संग्रहमें विशेष उल्लेखनीय कुछभी नहीं लेकिन विष्णु प्रभाकरजीके शब्दोंमें : 'ये तीनों नाटक लेखककी क्षमताको अंकित करते हैं और उसके भविष्यके प्रति आश्वस्त करते हैं। समाजमें मूल्योंकी फिरसे स्थापनाकी प्रक्रियामें ये नाटक निश्चयही सहायक हो सकते हैं। अहिन्दीभाषी प्रदेशके इस समर्थ हिन्दी लेखकका यह प्रयास अभिनन्दनीय है।'

□ नरनारायण राय

मत-अभिमत

इस स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कर सकती है, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

कहानी संग्रह

कच्चे मकान

लेखिका : निरुपमा सेवती; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ११८; क्रा. ७६; मूल्य : १२.५० रु.।

प्रस्तुत संग्रहकी सभी कहानियोंके केन्द्रमें महानगरीय आधुनिका नारीका तन, मन और जीवन विद्यमान है। नारी जीवनकी परिस्थितियों, विसंगतियों और विडम्बनाओंका एक तलस्पर्शी चित्रण हुआ हैं, इन कहानियोंमें, लेखिकाने इन कहानियोंके माध्यमसे आधुनिक महानगरीय नारीकी निजी अस्मिता, अहं और व्यक्ति स्वातंत्र्यकी तलाश करनेकी कोशिश की है।

अपने स्वतंत्र व्यक्तित्वको सर्वोपरि माननेवाली, 'तलाश' की 'मीनल' अठ्ठाईस वर्षतक आते-आते जब अपने दिमागी विकासकी एक लम्बी मंजिल तय कर लेती है और अपने ढंगकी जिंदगी बनानेकी तलाश करते हुए— पहले अमितेशके साथ, फिर सुनितके साथ और अन्तमें धीरेन नामक एक स्वच्छन्द कलाकारके साथ स्थिर होने का आभास पाती है, तो अचानक एक दिन धीरेन पिछली रातसे नहीं लोटता। उसकी प्रतीक्षा करते-करते अपने मन की जिन्दगी बनानेवाली इस आधुनिकाको जब तमाम अहसास, कल्पनाएं और अतीत वार्त्ताएं आ घेरते हैं तो उसे अनुभव होता है कि भलेही उसके पास एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है, किंतु फिरभी वह भारतीय नारीके (उसे अपनी अभाव पीड़ित मांका उत्साहपूर्ण चेहरा याद आता है जो भारतीय नारीके आत्म-विश्वासका प्रतीक कहा जा सकता है) अदम्य आत्म-विश्वाससे रिक्त है। लेकिन प्रश्न यह है कि पश्चिमके नितान्त भौतिकवादी जीवनके अन्धे अनुकरणसे क्या कभीभी भारतीय नारी अपने पूर्ण व्यक्तित्व और अखण्ड एवं अदम्य आत्म-विश्वासको पा सकेगी?

पुरुष और नारीके सनातन आकर्षणके अन्तर्गत व्यवस्था और व्यक्ति-स्वातंत्र्यकी यातनाभरी टकराहटको व्यक्त किया गया है 'चुनौती और स्वीकृति' में। निर्बन्ध रतिको ही प्रेम समझनेवाले निकृष्ट स्वार्थी युवक (अविनाश) के प्रति युवती (शिल्पी) द्वारा लिखा गया यह वाक्य —'और सोचना कि इंसान अपने नरक खुदही कैसे बनाता रहता है।'—उन तमाम तथाकथित आधुनिक युवक-युवतियोंके लिए विचारणीय है जो रतिदानको प्रेम समझते हैं और स्वच्छंद कामाचारको किसी प्रकार की नैतिकतासे ऊपर मानते हैं।

'चालाक' एक ऐसी कहानी है जिसमें तथाकथित एक ऊँचे 'सोशल स्टेटस' वाली फैमिलीकी कथित सुपीरियर कल्चरके दोगलेपनका पर्दाफास किया गया है। किस प्रकार ये ऊँचे लोग अपनी जरा-सी झकके लिए अपनी सुविधा के मुताबिक दूसरोंको इस्तेमाल करनेके चालाक ढंग अपनाते हैं। कहानीकी नायिका मीरा (नीना) का उस वैभव के अन्दर पनपनेवाले पाखण्डके प्रति विद्रोह करनाही एक उचित कदम लगता है।

'अपनी रसोईकी आग जलानेके लिए दूसरोंके घरोंमें किस प्रकार आग लगायी जाती है', मनुष्यकी इस निकृष्ट स्वार्थवृत्तिका उद्‌घाटन हुआ है, शिकंजे नामक कहानीमें। भौतिक उपलब्धियोंके लिए नैतिकताको ताकमें रखकर एक संपादिका (मिसेज नौटियाल) किस प्रकार रिपोर्टरों (बल्ली उर्फ बलबीर)पर अपने स्वार्थी शिकंजे कसती है। एक निहायत शरीफ युवती (गीता वर्मा) के चरित्रको लेकर मजेदार चटपटी खबर छापकर उसकी आत्महत्याका कारण बन जाती है। किन्तु उसे इस बातकी चिन्ता नहीं।

दंशितमें कुण्ठित मनोवृत्तिको बड़ेही कलात्मक ढंगसे प्रदर्शित किया गया है। मांके प्रति पिताके दुर्व्यवहारसे संतान (मीना) कुण्ठित अथवा एबनार्मल बन जाती है। अपने मंगेतरकी बांहपर तिल देखकर मीनाको अपने पिता की उस बांहका तिल याद आ जाता है जिससे उसकी मा

तड़ाक-तड़ाक पिटती थी और वेरहमीसे घसीटी तथा पटकी जाती थी। वस मीनाके मनमें पुरुषके (पति या पिता) द्वारा दंशित-दर्द जागृत हो जाता है और वह अपने मंगेतर आर. डी. सक्सेनाको दो टूक जवाब दे देती है, 'हमारी शादी नहीं हो सकती।' इसी प्रकार'कत्ल' कहानी में महानगरीय निम्न मध्यवर्गीय जीवनकी संस्कारिता एवं आर्थिक विषमताकी परस्पर उलझनसे उत्पन्न कुण्ठाजनित भयको चित्रित किया गया है। इस वर्गके नौकरीपेशा पुरुषोंकी पत्नियोंकी आर्थिक विवशता और फिर चरित्रके साथ समझौतेसे उत्पन्न भयकी मानसिकताका प्रभावशाली चित्रण है।

वृद्ध असहाय सास (दमयंती) और ससुर (हरिदास) के साथ महानगरके एक छोटेसे कमरेमें एक विधवा युवती (गीता) के अन्धेरे जीवनमें, अपनेसे पांच-छः वर्ष छोटे युवक शेखरके साथ दबे-छिपे संबंधोंकी झांकती 'किवाड़ भर रोशनी' को उकेरा गया है इस कहानीमें। युवा नारी के तन-मनकी आवश्यकता और वेसहारा वृद्ध मनके संस्कारों व परिस्थितियोंकी टकराहट और उलझनभरी कसमकस व पीड़ाको बड़े मार्मिक व सूक्ष्म ढंगसे चित्रित किया है इस 'किवाड़भर रोशनी' में।

'कच्चे मकान' की नायिका है एक विधवा संगीत-कार 'रेवा'। समृद्धिकी चरम सीमाको प्राप्तकर लेनेवाले अपने बहू-बेटे (कुन्ती और नरेश भाई) के बंगलेमें इस वृद्धा कला-साधिकाको उपेक्षा, अपमान और चारित्रिक लांछन झेलना पड़ता है और अन्तमें उसे वह पक्का मकान (कच्चा ?) छोड़कर सहेलीके सड़ियल (संगीन) मकानमें शरण ग्रहण करनी पड़ती है। बहू बेटेको अपनी गानेवाली वृद्धा मांको रखकर अपने संभ्रान्तपनमें धब्बा लगनेकी लाज लगती है। कहानीके अन्तिम भागमें रेवाका यह कथन पाठकको अनायासही सोचनेको बाध्य कर देता है कि, 'जहाँ एक छत वहीं महल। फिर मेरे लिए क्या सोचना। अपन तो शुरूसे ही ऐसे हैं। बहुत कीमती पक्की दीवारें कभी आस-पास रहीं ही नहीं जिनके ढहनेका डर डरपोक बना दे या इज्जतका भूत मुझे अपनेसे अलग कर दे···यहाँ पक्काही कुछ नहीं तो ढहनेका भी कोई डर नहीं ' कथनकी व्यंजकता स्पष्टही है।

संकलनकी अन्तिम कहानी 'कच्चे मकान' को पुस्तक का नाम दिया गया है जो उचितही है। वैसे संकलनकी अन्य कहानियोंमें 'दंशित', 'किवाड़भर रोशनी' और 'चालाक' बहुत अच्छी कहानियां हैं। उसमें कोई शक नहीं कि निरुपमाजीकी लेखन कला अपने आपमें वैशिष्ट्यपूर्ण है। भाषामें स्वाभाविकताके साथ-साथ सांकेतिकता और प्रतीकात्मकताके कारण और फ्लैश बैकके उचित प्रयोगके कारण कथ्यके विस्तृत आयामोंको सम्प्रेषित करनेमें लेखिका कमालकी कला प्रस्तुत करती हैं।

□ डॉ. केशव

भीगी पांखें और सवेरा

लेखिका : चन्द्रलेखा शर्मा; प्रकाशक : कादम्बरी प्रकाशन ए-५५/१, सुदर्शन पार्क, नयी दिल्ली-११०-०१५। पृष्ठ : ८०; क्रा. ८१; मूल्य : १२.०० रु.।

प्रस्तुत संग्रहमें कुल दस कहानियां हैं। पहली कहानी 'भीगी पाँखें और सवेरा' तीन भाई बहनोंकी कहानी है जिनके सिरसे अल्पायुमें ही मां-बापका साया उठ गया है। लेकिन बड़े भाईका अथाह प्यार छोटोंको यह सोच पाने का अवसर नहीं देता कि उनके मां-बाप नहीं हैं। भाईपर वे अपना एकाधिकार समझने लगते हैं। भाईके विवाहके बाद अपने प्यारको बँटता देखकर उनके मन ईर्ष्यासे भर जाते हैं। भाभीके आजानेपर अपने प्यारको बँटता देख कर मणिके खुशीसे चमकते चेहरेपर ईर्ष्या पुत जाती है— 'इन्होंने तो उस दुःख-दर्दको खरोंच डाला है। क्या ये घाव भर पायेंगे, नहीं कभी नहीं।' (पृ. ९) इस कहानी का सर्वाधिक जीवंत पात्र ८। वर्षका बबलू है, जो बड़ी बहन मणिके चेहरेको देखकर स्थितिका अनुमान लगाता है और तद्नुसार प्यार और उपेक्षाका भेदकर व्यवहार करता है—'बबलूने आँखें खोलकर मणिको खड़े देखा तो उठ खड़ा हुआ। उसकी दीदीने ही तो उसे प्यार और उपेक्षाका भाव सिखाया था। वह मणिके पीछे ड्राइंनिंग रूमकी ओर चुपचाप बढ़ गया।' (पृ. १०) 'मणिने आँखें बबलूपर टिकायीं तो पाया वह कुछही मिनटोंमें कई वर्ष आगे बढ़ गया है—गम्भीर चिंतनमें डूबा हुआ।' (पृ.१०) लेकिन इस अच्छी कहानीका अंत अस्वाभाविक ढंगसे हुआ है।

'निशांत' सामाजिक संदर्भोंसे जुड़ी, एक छोटेसे मध्य-वर्गीय परिवारकी कहानी है, जिसमें विभिन्न सामाजिक समस्याओं, दहेज, लड़कियोंको पढ़ाना-लिखाना और उनका नौकरी करना आदिका विश्लेषण है। नायिका नीलापर प्रत्यक्ष रूपमें अपाहिज पिता, माँ और बाहरसे उच्छृखल दिखती छोटी बहनकी जिम्मेदारी है। किंतु नीला इस

तथ्यसे अनभिज्ञ है कि जो त्याग और बलिदान वह कर रही है उससे कहीं अधिक उसकी बहन सीमा कर रही है। पग-पगपर गलतफहमियोंका शिकार होती नीला भीतर ही भीतर कुण्ठित रहती है। कहानीका सर्वाधिक प्रबल पक्ष वह है कि नीलाकी घुटनको कहानीके अन्ततक बहुतही रोचक ढंगसे बरकरार रखा गया है। जिस दिन नीलाके समक्ष सत्य उजागर होता है उसका एकाभिमान चकनाचूर हो जाता है—'नीला हम सबको प्रसन्न रखनेकी जी जान से कोशिश करती है। नीलाने सीमाको कभी नहीं समझा, लेकिन सीमाने अवसरही कब दिया। अब देखो, जबसे नीला लखनऊ गयी, सीमाने कॉलेज छोड़ दिया, प्राइवेट पढ़ती रही और एक प्राइवेट स्कूलमें नौकरी करती रही। नीलाको तनख्वाहका एक पैसाभी खर्च करने नहीं देती, बल्कि ट्यूशन करके नीलाके लिए साड़ी या ऐसीही दूसरी चीजें जुटाती रहती हैं। लेकिन नीलाको इन सब बातोंका उसने कभी पता नहीं चलने दिया।' (पृ. २६) नायिका प्रधान इस कहानीमें नायकका चरित्र गौण रूपमें प्रस्तुत किया गया है, जोकि एक आदर्श नवयुवक है।

'सौतेली' इस संकलनकी एक और सशक्त कहानी हैं। इसमें लेखिकाने सौतेले शब्दकी हो रही दुर्दशाका अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है। कहानीकी नायिका रानी सौतेले मांके व्यवहारकी पुरानी कहानीको भुला देने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ होकर दो बच्चोंके पिता रमेशसे विवाह करती है, किन्तु ऐसा न हो सका। वह जितना अपने पति की पूर्व पत्नीसे उत्पन्न बच्चोंको प्यार करती है उतनाही उसकी सास बच्चोंको उससे दूर हटाती है और न चाहते हुएभी रानी 'सौतली' शब्दका शिकार होती है। वस्तुतः सासने बच्चोंको नयी मांके प्रति इतना भयातुर कर दिया कि वे उसके नाम मात्रसे ही काँपते हैं—'खबरदार, जो कभी उसके पास गये तो, तुम्हें पता नहीं कि वह तुम्हारी सौतेली मां है।' (पृ. ३२) बच्चे उससे इतने अधिक भयभीत रहते हैं कि उसे देखतेही बाहर खेलने भाग जाते हैं, यदि वह खाना बना रही होती तो पानी पीनेतक को नहीं घुसते। धीरे-धीरे वह महसूस करने लगती है कि वह सौतेले शब्दके उस समुद्रमें पहुंच गयी है जहांसे निकल पाना संभव नहीं बल्कि उसेभी औरोंकी भांति उसमें डूब जाना होगा। उसकी इस शंकाकी पुष्टि उस समय होती है जब दोमें से एक बच्चे, रामूकी मृत्युकी जिम्मेदार वही ठहरा दी जाती है। रानीकी सासका चरित्र परम्परागत है। वह अपने अधिकारोंपर किसीका दखल स्वीकार नहीं करती और नहीं उसे परायी लड़कीपर विश्वास होता है। उसे सदैव यह भय लगा रहता कि लड़का यदि बहूकी इच्छासे चलेगा तो बहू उसे रोटीके लिए तरसायेगी, फिर वह कहां जायेगी। उसके इसी व्यवहारके कारण रमेशकी पूर्व पत्नीने कपड़ोंमें आग लगाकर आत्महत्या कर ली थी और रानी आवेशमें वेसुध हो दौड़ी तो ठोकर खाकर गिर गयी तथा फिर कभी नहीं उठी।

'द्वन्द्व' युवा मनकी विभिन्न मानसिकताओंको उकेरने वाली एक साधारण कहानी है जिसकी नायिका चाहते हुएभी पिताके समक्ष जबान खोलनेकी हिम्मत नहीं कर पाती और प्रतिपल गलतफहमियोंका शिकार होती रहती है।

'अपना-अपना भाग्य' दो विभिन्न मानसिकताओंवाले युवा दम्पतीकी कहानी है। पढ़े-लिखे नवयुवक कान्त और उसकी अनपढ़ पत्नी शकुन्तलामें पग-पगपर टकराहट होती है, बात-बातपर लड़ाई-झगड़ा होता है। कान्त पत्नीको आधुनिकाके रूपमें देखना चाहता है, जबकि गाँवकी लड़की शकुन्तला पुराने खयालोंकी है। उसके संस्कार उसे आधुनिका नहीं बनने देते। यद्यपि कान्तकी अपनी पत्नीके साथ पूर्ण सहानुभूति है, लेकिन जब सामने-सामने समाजमें उसका मजाक उड़ाया जाता है तब वह सहन नहीं कर पाता—'देखो, यह सुन्दर ग्रेट व्यक्तित्ववाला लड़का और उसकी यह फूहड़-सी बीबी।' (पृ. ५२) ऐसी स्थितिमें उसे पत्नी असभ्य और मूर्ख दिखायी पड़ती है। विदेशी प्रभावसे देशी खानेको भी विदेशी ढंगसे खानेके ढंगपर लेखिकाने करारा व्यंग्य किया है। कुल मिलाकर कहानी साधारण है, लेकिन है रोचक।

'बोझ और बोझ' एक एम. ए. पास बेरोजगार नवयुवककी कहानी है, जो नौकरीकी तलाशमें यहांसे वहां भटकता है और जब घर पहुंचता है तो सुननेको मिलती हैं रिटायर्ड पिताकी व्यंग्यात्मक और उपेक्षापूर्ण बातें... 'लोगोंसे मिलते हुए डरता है। जरा-सा किसीसे काम नहीं निकाल सकता, चापलूसी शब्दसे ऐसा चिढ़ता है जैसे संसारके सारे आदर्शवादका ठेका इसीने ले रखा है। झूठ बोलनेसे स्वाभिमानपर चोट लगेगी, क्योंकि कॉलेजमें सचाईके कारण कई-कई मैडल जीते हैं, सारा स्टाफ और विद्यार्थी अबतक इसे याद करते हैं। तो खाये उसी सचाई और प्रशंसाको। मेरे सिरपर क्यों बोझ बना हुआ है?' (पृ. ५६) कहानीमें इस बातका स्पष्ट संकेत दिया गया

है कि केवल पढ़ाई लिखाईके बूतेपर नौकरी पाना आज असम्भव है। अब नौकरी वही पा सकता है जिसकी पहुंच हो, सिफारिश हो, जो चापलूसी करनेमें सिद्धहस्त हो और पूर्णतया स्वार्थी हो। इन परिस्थितियोंमें नायक अपने-आपको एकदम अकेला, उद्देश्यहीन और आधार-विहीन समझता है।

'प्यारका अन्त' का सलिल उच्चवर्गका प्रतिनिधित्व करता है। सलिल विवाहित है लेकिन कई वर्ष पूर्व जन्म-दिनपर कल्पना द्वारा बनाये गये उपहारको लेकर उसपर आसक्त है। कल्पनाके लिए सलिलके जन्म-दिनपर बनाया गया वह उपहार साधारण-सी बात थी। बहुत दिन बाद मिलने आये सलिलके स्वार्थको वह भाँप जाती है···'कितने स्वार्थी और ढोंगी होते हैं पुरुष। शादी किसीसे करेंगे और प्यारका नाटक किसीसे। पैसेके अभिमानमें मध्यवर्ग की लड़कियाँ जैसे इनके लिए महज एक खिलौना हैं। सोचते हैं उनसे एक बार प्रेमकर आजीवन उनके प्रेमके नाटकका पात्र बनी रहें।' (पृ. ६६)

'अभिनय' एक मित्र द्वारा दूसरे मित्रसे किये गये गम्भीर मजाकके ताने-बानेमें बुनी मनोरंजक कहानी है। एक आदर्श दम्पतीके मध्य टकराहट प्रारम्भ होती है, पति-पत्नीके बीच 'वो' के आ जानेसे। वस्तुतः यह 'वो' कोई है नहीं। लेकिन क्योंकि स्त्री अपने स्थानपर किसी अन्यको कभी स्वीकार नहीं कर सकती, अपनी उपेक्षा नहीं सह सकती और न ही यह चाहेगी कि उसका पति उससे विमुख हो—'पत्नी चाहे जितनी प्रसिद्ध लेखिका हो, डॉक्टर हो, वकील हो, चाहे साधारण गृहिणी, वह यह कभी सहन नहीं कर सकेगी उसका पति उसकी उपेक्षा करे, उससे विमुख हो किसी औरको चाहे तथा उसका और उसके बच्चोंका सुख नगण्य समझे। प्रत्येक पत्नी पहले स्त्री होती है, फिर कुछ और।' (पृ. ७०)

'चोर चोर' में भयभीत मनमें उठनेवाले विभिन्न प्रश्नोंकी विचार शृंखलाओंको एकत्र किया गया है। कहानीमें पठनीय कुछभी नहीं है फिरभी अन्त जाननेकी उत्सुकता बनी रहती है।

'छेड़छाड़' संकलनकी अन्तिम कहानी है। यह कहानी कम घटना अधिक है। कहानीके तत्त्वोंसे दूर इस कहानी में एक घटनाको कहानीका रूप देनेका प्रयास किया गया है। वस्तुतः संग्रह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता है, कहानी तत्त्व दूर हटता जाता है।

समसामयिक और परम्परागत समस्याएं उठाकर भी उनका समाधान प्रस्तुत नहीं किया गया। प्रायः कहानियों में कहानीगत कलात्मकताका अभाव दृष्टिगत होता है। भाषा कथ्यके अनुरूप सहज और स्वाभाविक है।

□ **देवेन्द्र कुमार**

आलोचना

कालजयी कथाकृति और अन्य निबन्ध

लेखक : डॉ. हरदयाल; प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, २/४३ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १२७, डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

'कालजयी कथाकृति और अन्य निबंध' में डॉ. हर-हरदयालके समय-समयपर लिखे निबंध संगृहीत हैं। सभी निबंध विवेचनात्मक एवं गवेषणात्मक हैं। विवेचनात्मक निबंधोंमें ऐतिहासिक-बोध मूलक विश्लेषण किया गया है। सैद्धांतिक रूपमें निष्कर्ष एवं तथ्य हैं और इतिहास-परक संबंधोंमें तथ्यों एवं प्रवृत्तियोंका विश्लेषण हैं। विवेचनात्मक निबन्धोंमें कालजयी कथाकृति, नयी कहानी : परिभाषा एवं प्रवृत्ति, नयी कहानीका मध्य-वर्गीय संदर्भ, समकालीन हिन्दी कहानीमें सृजनावरोध, परिभाषाका प्रश्न, साठोत्तरी कहानी परिवेशगत संदर्भ आदि महत्वपूर्ण लेखोंको रखा जा सकता है। गवेषणा-त्मक निबन्धोंमें 'हिन्दी कहानी विविध आयाम' तथा 'रोमानी-ऐतिहासिक कहानी' जैसे लम्बे निबन्धोंको रखा जा सकता है।

कहानीसे सम्बन्धित इन अनेकायामी लेखोंकी दृष्टि और मान्यताओंकी बात आरम्भ करनेसे पहले यह बताना उपयुक्त होगा कि 'कालजयी कथाकृति' किसी कथाकृति का नाम नहीं है 'कालजयी कथाकृति' एक अवधारणा है। डॉ. हरदयाल ऐसी कथाकृतिका मानदण्ड उसकी सृजनात्मकताको मानते हैं, ऐसी सृजनात्मकता जिसमें मनुष्य जीवनकी गुणात्मकताका संग्रह हो। और, ऐसी कथाकृति भावनात्मक सघनता और सुखदायी अनुभूतियां व्यापक जनसमुदायको वितरित करती हैं। उनका अर्थश्लेष इतना लचीला होता है कि हर युगमें उसे विशेष सांचोंमें ढाला जा सकता है। डॉ. हरदयालके ही शब्दों में 'कालजयी कथाकृति पढ़नेके बाद हमें अनुभव होता है जैसे हम बहुत बड़े अनुभवसे गुजरे हैं, और वह अनुभव बहुत दिनतक हमपर छाया रहता है। ...ये कृतियां ऐसी सुखदायी अनुभूतियां व्यापक जन समुदायको वितरित करती हैं और उसे प्राप्त करनेके लिए पाठकको बार-बार आकर्षित करती हैं। इन कथाकृतियोंमें अर्थगत लचीलापन या अर्थश्लेष होता है। भाषा कुछ इतनी अर्थवती होती है कि अनेक अर्थ देकर भी उसकी सम्भावना चुकती नहीं है। उस कृतिमें से भिन्न वर्गों, विभिन्न समयों और देशके भिन्न-भिन्न लोग अपने-अपने लिए कोई-न-कोई अर्थ खोज निकालते हैं। उसका लचीलापन इस बातको सम्भव बनाता है कि उसे विभिन्न सांचोंमें ढाला जा सके फिरभी वह तरलकी तरल बनी रहे। सांचोंमें ढलकर भी वह अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाये रखे।' (पृ. १४)

इस प्रकार 'कालजयी कथाकृति' केवल कृतिही नहीं उसका लेखकभी आता है और उसका सामाजिकभी उपेक्षित नहीं रहता। ऐसी कथाकृति लेखककी प्रतिभाकी सृष्टि होती है उसमें व्यावसायिक लाभोंका कोई दखल नहीं होता। सैद्धांतिक रूपमें इस अवधारणाको स्वरूप देनेकी आवश्यकता थी। वह काम तो डॉ. हरदयालने कर दिया किन्तु भारतीय साहित्य अथवा विश्व साहित्यमें से उन्होंने किसीभी कृतिका नाम कालजयी कृतिके रूपमें नहीं लिया। इसका कारण केवल अवधारणाका स्वरूप गढ़नाभी हो सकता है और कृतिका नाम लेकर विवादमें पड़नेसे बचना भी हो सकता है। एक प्रश्नाकुलता-सी पैदा होती है कि क्या आजतक विश्व-साहित्यमें किसी कालजयी कृतिकी रचना हुई है? क्या ऐसी कृतिकी संभावना आजके परिवेशमें संभव हो सकती है? शायद यह प्रश्नही इस लेखकी उपलब्धि हैं जो साहित्यके सृजकों और रसिकोंको ऊँचे क्षितिजोंकी ओर अभिप्रेरित करती है?

'हिन्दी कहानी : विविध आयाम' में हिन्दी कहानी की कथायात्राके विविध पड़ावोंका ऐतिहासिक परिचय उसके स्वरूप एवं संवेदनाके सहित मिलता है। 'रोमानी-ऐतिहासिक कहानी' लगभग ३८ पृष्ठोंका लेख है जिसमें स्वतंत्रता पूर्वसे नयी कहानीतक की कहानीकी एक विशिष्ट दृष्टिसे काल और परिवेशके दबावोंके अध्ययन सहित एक विस्तृत ऐतिहासिक पहचान प्रस्तुत की गयी है। इस कालकी कहानीकी सूक्ष्म प्रकृति एवं प्रवृत्तिका सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक क्रमके विकास का विस्तृत ब्यौराभी मिलता है। समकालीन कहानीके विवेचन और विश्लेषणके अध्ययनकी सामग्री तो अनेक पुस्तकोंमें मिल जाती है किन्तु 'रोमानी ऐतिहासिक कहानी' पर गवेषणामूलक निबन्ध लिखकर डॉ. हरदयाल ने ऐतिहासिक महत्त्वका कार्य कर डाला है। लेख इतना रोचक इतना सुपाठ्य है कि लेख पढ़कर कहानीका रसिक शायद उतनाही आनन्दविभोर हो उठेगा जितना वह रोमानी कहानीको पढ़कर कल्पनाशील हो जाता है। रोचकता एवं सरसता डॉ. हरदयालकी निबन्ध शैलीका विशेष गुण है।

'समकालीन हिन्दी कहानीमें सृजनावरोध' लेखमें डॉ. हरदयालने ज्वलन्त प्रश्नोंपर चिन्तन किया है। व्यापक मानवीय सरोकारोंमें इन प्रश्नोंकी महत्ताको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कहानीमें सृजनावरोध की स्थिति उन्हें शिल्पके विकास किन्तु मानवीय जीवनके गुणात्मक मूल्योंके निरन्तर ह्रासके कारण दिखायी देती है जो साहित्यकी मूल्यवत्ताको समझनेवाले हर सामाजिककी चिन्ताका विषय हो सकता है। लेखकोंमें रचनाशीलताके प्रति निष्ठा और लेखकीय प्रतिभामें दर्पके अभावकी ओरभी उन्होंने स्पष्ट संकेत किया है। उनके ही शब्दोंमें 'मेरा उद्देश्य केवल इतना दिखाना है कि हिन्दी कहानीमें कहानीकारों और कहानियोंकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ी है। प्रेमचन्द और प्रसादकी पीढ़ी, जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा आदिकी पीढ़ी, अज्ञेय-यशपालकी पीढ़ी, 'नयी कहानी' की पीढ़ी और 'साठोत्तरी पीढ़ी' में उत्तरोत्तर संख्या वृद्धि हुई है किन्तु रचनाशीलताके प्रति निष्ठा उत्तरोत्तर कम हुई है। जिस निष्ठा या मिशनके साथ हिन्दीका पूर्ववर्ती कहानीकार रचना कर्ममें प्रवृत्त होता था आजका कहानीकार नहीं होता। परिणाम यह होता है कि आजका कहानीकार अच्छी कहानियां लिख सकने की सम्भावना बनकर रह जाता है कोई उपलब्धि नहीं बन पाता है। ऐसा क्यों होता है?' (पृ. ६३)

इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नका व्यापक विश्लेषण कर लेनेके बाद डॉ. हरदयाल अपनी इतनी बड़ी धारणाकी गुरुताको यह कहकर लघुतामें बदल देते हैं—'किन्तु यह निश्चित है कि यह पाठक निश्चित रूपसे अनधिकार चेष्टा कर रहा है। इस माहौलमें महान सृजनात्मकताकी आशा करनाही कभी-कभी व्यर्थ लगता है।' (पृ. ९४) यह सदेहभरी निराशा व्यक्त करके वे अपनी व्यापकताको अपने मध्यवर्गीय क्षेत्रमें समेट ले जाते हैं। साहित्यमें 'महान गुणों' में निष्ठा अभिव्यक्त करके फिर उसे समकालीनताके घेरेमें घसीट लेते हैं। पता नहीं वे क्यों महसूस नहीं करते कि महान् रचनाकारोंकी प्रतिभाका माहौलसे सम्बन्ध प्रतिकूलताका ही होता है। महान् कृतियां शताब्दीमें जन्म लेती हैं, फिर प्रतीक्षा क्यों न की जाये। क्योंकि महान् रचनाओंकी पहचान समकालीन पाठक या आलोचक नहीं करते, गुजरते हुए इतिहासके दौर करते हैं। उदाहरणके लिए कबीरके समकालीनोंने कब सोचा होगा कि इतनी सदियोंतक उनका साहित्य-बोध आधुनिक बना रहेगा। अतः सशक्त लेखक सम्बन्धी निराशा अकारण लगती है।

जहांतक डॉ. हरदयालकी आलोचना दृष्टिका प्रश्न है उसमें एक परम्परा आगे बढ़ती दिखायी देती है। इसमें द्विवेदीकालीन भारतीयता, प्रगतिशील आलोचनाका यथार्थवादी तर्क आधुनिक पश्चिमी वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं विचारधाराओं (मार्क्स, फ्रायड और सार्त्र) का समाहार मिलता है। इस रूपमें डॉ. हरदयालको 'तत्त्व का अन्वेषी' कहा जा सकता है। दृष्टिका मूलाधार 'मानवीय संवेदना' और मानव जीवनकी 'सामाजिकता' है। 'व्यक्तिवादको उन्होंने कभी स्वीकृति नहीं दी। अन्तर्दृष्टि साफ़ है इसलिए भाषामें बलफेर अबूझ अमूर्तताओंका मायाजाल एव वाक्चातुर्यका इन्द्रजालभी यहां नहीं हैं। आधुनिक आलोचनाके उपकरणोंका दुराग्रह भी दिखायी नहीं देता। उसमें आधुनिक भारतीय आलोचना-परम्पराका सौन्दर्य दिखायी देता है, उसकी आधुनिक पहचान दिखायी देती है। उसकी सबसे बड़ी शक्ति उसका इतिहास-बोध है जिसमें 'साहित्यमें महानता' के अवशेष जीवित रूपमें दिखायी देते हैं। उनकी अन्य पुस्तकोंकी तरह यह पुस्तकभी पाठकको साहित्यकी पहचान तो देती ही है उसे परखने-समझनेकी दृष्टिभी देती है।

☐ डॉ. कीर्ति केसर

कथाओंकी अन्तर्कथाएं

लेखक : रामनारायण उपाध्याय; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : १९०; क्रा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

महाकाव्यों एवं विभिन्न पौराणिक कथाओंपर विभिन्न लेखकों द्वारा लिखे गये ग्रन्थोंकी परम्परामें यह पुस्तक एक कड़ीके रूपमें प्रस्तुत हुई है। पुस्तकमें भारतीय संस्कृतिमें आराधनाके विभिन्न क्षेत्रोंमें प्रतिनिधित्व करनेवाले देवी-देवताओं, वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, रामचरितमानस, एवं अन्य प्राचीन दृष्टान्तों के सम्बन्धमें एक व्याख्यात्मक एवं प्रतीकात्मक विवरण प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। इस प्रक्रियामें विभिन्न अध्यायोंके अन्तर्गत धार्मिक कथाओंके प्रतीकात्मक स्वरूप, विन्ध्याचलके क्षोभ, समुद्र-मंथन, महाभारतकी रचना, रामचरितमानस, रामायण, नचिकेता, जनक, भामती, वेदव्यास, मनु, वसिष्ठ एवं विश्वामित्र, याज्ञवल्क्य, कश्यप, भरद्वाज, जमदग्नि, वाल्मीकि, तुलसी, उत्तररामचरितम्, श्रीकृष्ण उपनिषद् एवं ऋग्वेद इत्यादि के सम्बन्धमें तथ्यात्मक विवेचन किया गया है।

पुस्तकके प्रारम्भमें भारतीय उपासना पद्धतियोंमें पूजे जानेवाले विभिन्न देवताओं एवं महापुरुषोंका संक्षिप्त परिचय देते हुए प्रतीकात्मक रूपसे मानव-जीवन पद्धतिसे जोड़नेका प्रयास किया गया है। द्वितीय अध्यायमें विन्ध्याचलके आक्रोशको प्रतीकात्मक रूपसे मध्यभारतीय जनजातियोंके विद्रोहके रूपमें दर्शाया गया है। समुद्र-मंथनकी घटनाको लेखक आर्यों और अनार्यों द्वारा सम्मिलित रूप से प्रथम समुद्र-यात्राके रूपमें देखता है और चौदह रत्नों को इस यात्राके दौरान प्राप्त विभिन्न उपलब्धियोंके रूपमें। इसे आधुनिक दृष्टिसे अधिक तर्कसंगत तथा विश्वसनीय बनानेके लिए लेखकने गम्भीर प्रयास नहीं किया है।

पुस्तकका अधिकांश भाग रामायण, महाभारत एवं रामचरितमानससे जुड़ी कथाओंसे सम्बद्ध है। विभिन्न कथाओं एवं उनसे जुड़ी घटनाओंकी व्याख्या करते हुए उनमें वैज्ञानिक, नैतिक एवं आधुनिक दृष्टिसे तथ्योंको खोजनेका प्रयास किया गया है। विभिन्न कथाओंमें राजनीतिक व्यवस्था सम्बन्धी तथ्योंको उजागर करनेकी कोशिशभी स्पष्ट झलकती है। महाभारतके रचनाकार, रचना-प्रक्रिया, तत्सम्बन्धी घटनाओंका विवरण देते हुए वेदव्यासके इस काव्य-ग्रन्थकी प्रामाणिकताको सिद्ध किया गया है। महाभारतकी लेखन संबंधी घटनाका उल्लेख करते हुए वेदव्यासको प्रथम लेखक एवं उदारमना गणेशको प्रथम लिपिक उपाधिसे विभूषित किया गया है (पृ. २२-२३) महाभारतसे सम्बद्ध विभिन्न घटनाओंको नैतिक प्रायो- गिक रूप देते हुए एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत करनेकी हल्की-सी कोशिश की है। परन्तु इस प्रयासमें कतिपय स्थानोंपर लेखक जानबूझकर अथवा अनजानेमें ही कुछ तथ्यपरक त्रुटियांभी कर बैठा है। जैसे—लेखकके अनुसार भीष्मके सौतेले भाई चित्रांगद एवं विचित्रवीर्यमें से चित्रांगदकी मृत्युके पश्चात् भीष्म काशिराजकी तीन कन्याओंका अपहरण करके ले आये जिनमेंसे अम्बा वापस चली गयी तथा अम्बिका और अम्बालिकाका विवाह विचित्रवीर्यसे कर दिया गया। (पृ. ४२)। जबकि वास्त- विक तथ्य यह है कि कन्याओंका अपहरण चित्रांगदकी मृत्युसे पूर्वही किया गया था तथा अम्बिका चित्रांगद और अम्बालिका विचित्रवीर्यसे व्याही गयी। अम्बाने स्वयं भीष्मसे विवाह करनेकी जिद की परन्तु परशुरामके प्रयास के बावजूद उसमें सफलता न मिलनेपर उसने आत्मदाह कर लिया। इसी प्रकार अनेक स्थलोंपर विभिन्न तथ्यों की व्याख्याएं संतुष्ट नहीं करतीं।

बाल्मीकि रचित रामायण और तुलसीकृत रामचरित- मानसके विषयमें उल्लेख करते समय लेखक रामचरितमानस को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण और जनसामान्यके लिए उपयोगी मानता है। इसमें लेखक राम, सीता, उर्मिला, लव-कुश हनुमान, अहल्या आदि विभिन्न प्रतीकोंके माध्यमसे कथाको सामान्य जन-जीवनसे जोड़ता हैं। लेखक अपनी व्याख्या द्वारा विभिन्न घटनाओंका उल्लेख करते हुए रामकथाको भार- तीय ग्रामीण परिवेशसे सम्बद्ध करनेका प्रयास करता है। रामायण और रामचरितमानसके बारेमें विभिन्न विद्वानों के मतोंको उद्धृत करनेके साथही रामकथाको आर्यों एवं अनार्योंके मध्य संघर्षकी कहानीके रूपमें भी दर्शाया जाता है। रामायण तथा रामचरितमानसके प्रसंगोंका अलग- अलग उल्लेख है, परन्तु वर्णनकी प्रक्रियामें लेखक कई स्थलोंपर इन दोनों ग्रन्थोंके मध्य भेद नहीं रख पाता और एकके स्थानपर दूसरेका नाम ले लेता है (पृ. ८०-८५)।

पुस्तकका एक अंश उपनिषदोंमें वर्णित ज्ञान-विज्ञान एवं रहस्योंसे सम्बन्धित है, जिसमें मानव-मनमें उठनेवाली विभिन्न जिज्ञासाओंकी शान्तिके लिए समुचित उत्तर हैं। इसके अन्तर्गत विश्वकी उत्पत्ति, पृथ्वी, सृष्टि रचना, जल, अन्न, विभिन्न जीवोंकी उत्पत्ति, अग्नि, सूर्य, आत्मा, वाणी, ईश्वर, इन्द्रियां, मन, निद्रा, स्वप्न, प्राण, विज्ञान इत्यादिसे सम्बन्धित संक्षिप्त विवरण उपलब्ध हैं। उ

निषदोंसे सम्बद्ध इस वर्णनके लिए जितने अधिक [illegible] की आवश्यकता थी, वैसी शायद लेखकने अनुभव नहीं की। ऋग्वेदमें वर्णित जीवनके लिए अनिवार्य प्राकृतिक शक्तियों—सूर्य, उषा, इन्द्र, मरुत्, विद्युत्, अग्नि, पृथ्वी, आकाश इत्यादिका विवरण संक्षिप्त हैं, परन्तु आकर्षक और ग्राह्य।

[illegible] पौराणिक एवं महाकाव्यगत कथाओंके प्रति प्रेरित कर सकती है। इस क्रममें कई स्थलोंपर पौराणिक मिथकोंको मनमाना स्वरूप देनेसे परम्परागत तथ्य विकृत हो गये हैं, इसलिए सामान्य पाठकको संशयात्मक स्थितियोंमें डाल सकती है।

☐ हरनारायण पाण्डेय

भोजपुरी कोश

भोजपुरी शब्द-सम्पदा

कोषकार : डॉ. हरदेव बाहरी; प्रकाशक : भारती प्रकाशन; वितरक : स्मृति प्रकाशन, १२४ शहरारा बाग, इलाहाबाद। पृष्ठ २३८; क्रा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

शब्दकोश-निर्माण जैसा गंभीर और उत्तरदायित्वोंसे परिपूर्ण कार्य है, उसे देखते तथाकथित 'भोजपुरी भाषा का प्रथम शब्दकोश' अर्थात् 'भोजपुरी शब्द-सम्पदा' नामक पुस्तकका प्रकाशन अत्यन्त हास्यास्पद तथा दुर्भाग्यपूर्ण लगता है। इस पुस्तकके सम्पादकको भोजपुरी भाषाके विषयमें जो कुछभी छिछला ज्ञान है वह सब उधार या आरम्भिक है और मात्र इतनाही है कि झटपट कोश खड़ा कर 'प्रथम कोश' की वाहवाही लूट लें! जिस विद्वान्को यहभी पता नहीं कि भोजपुरी भाषाका प्रथम कोश लगभग एक दशक पूर्व धूमधामसे प्रकाशित हो चुका है और कभी का बाजारमें आ गया है वह कैसे कोश-निर्माणका साहस जुटा सका, यही आश्चर्य है। बिहार सरकार द्वारा विधिवत् भोजपुरी अकादमीका गठन पटनामें हो गया और उसकी मुखपत्रिका द्वारा समय-समयपर भोजपुरी भाषा की शब्दावलीके संदर्भमें जो विस्तृत चर्चाएं होती हैं, उनसे भी कोश-सम्पादक पूर्णतः अपरिचित है। यही कारण है कि सारीकी सारी अनर्गल बातें कोशमें भर गयी हैं। गत एक दशकके भीतर बिहारके कुछ विश्वविद्यालयोंके पाठ्यक्रममें आनेके कारण और धुआंधार स्तरीय पत्रिकाओंके प्रकाशनके कारण भोजपुरी भाषाकी स्थितिमें, उसके उच्चारणमें, अर्थ और स्वरूप निर्धारणमें जो परिवर्तनकारी उपलब्धियाँ सामने आयी हैं उनसेभी सम्पादक एकदम अपरिचित है।

भोजपुरी भाषाका प्रथम शब्दकोश भोजपुरी संसद वाराणसीसे प्रकाशित हुआ और इसे अन्तिम रूप देनेमें भोजपुरीके विद्वानोंकी एक समितिको कठिन श्रम करना पड़ा था। कुमारजीके सम्पादनमें प्रकाशित यह कोश बावजूद कुछ सामान्य त्रुटियोंके निश्चित रूपसे परिनिष्ठित शब्द कोशके समस्त प्रकारके अनुशासन और नियमोंसे परिपूर्ण हैं। ऐसा नहीं कि उसे उलटनेके बाद भोजपुरी भाषाभाषीको कहीं अटककर सोचना पड़ जाये कि यह किस भाषाका शब्द है। डॉ. बाहरीके प्रस्तुत शब्द कोशमें कई सौ शब्द, लगता है, नये सिरेसे गढ़ दिये गये हैं। चगड़ेबा, अगात, अजू और अगेया जैसे शब्दोंको देखकर आश्चर्य होता है। सम्पादकने 'इतते' शब्दको भी भोजपुरी मान लिया है। 'कानूनगो' के लिए 'कानगोम' ओर मजिस्ट्रेटके लिए महट्रेट कहाँ किस क्षेत्रमें बोला जाता है, सोचकर हैरानी होती है। कोई कोशकार किसी अपटु-अनाड़ी पात्र द्वारा प्रयुक्त बिगाड़कर बोले अटपटे शब्दोंको भी कोशमें स्थान देने लगें तब तो अच्छा कोश बना!

'भोजपुरी शब्द सम्पदा' में अंग्रेजी, उर्दू, और सामान्य हिन्दीके बोलचालके शब्दोंके तोड़े-गढ़े शब्दोंका जिस प्रकार अटपटा ईंट-रोड़ा जुटाया गया है और इस प्रकार एक कोशके नामपर जो भानमतीका पिटारा बना दिया गया है, वह भोजपुरी भाषाका एक कलंक है। सम्पादकने दावा किया है कि इसमें १४ हजार भोजपुरीके ठेठ शब्द हैं परन्तु ध्यानपूर्वक देखनेपर मुश्किलसे तीन-चार हजार ठेठ शब्द मिलेंगे। सो उनकेभी अर्थमें भारी-भारी भयानक अनर्थ !

'होरहा' का अर्थ चनेका पौधा, 'करुआर' का अर्थ लोहेका काँटा, 'अलाव' का अर्थ अलावा, 'खखनवा' का अर्थ लालसा, 'गुरहिआह' का अर्थ धूर्त और 'डाबर' का अर्थ निवासस्थान जैसे हजारों भ्रामक और गलत अर्थ कोशमें भरे पड़े हैं। 'देउकुरि' शब्दका भोजपुरी अर्थ जब देवकुल लिखकर कोशकार छुट्टी पा लेता है तो आश्चर्य होता है। पयेसार, पयरुख, पतकी और अतहर जैसे शब्द भोजपुरी प्रदेशके नहीं हैं। इनका शुद्ध रूप पइसार, पवरुख या पौरुख, पतुकी और अतहत जैसा सामान्यतः होगा। भोजपुरीमें यद्यपि उच्चारण भेद बहुत है और इसलिए काशी और बलियाकी भोजपुरीमें अन्तर पड़ जाता है परन्तु वह भेद कुछ विशेष प्रकारकी क्रियाओंमें अधिक होता है। ठेठ संज्ञाएं प्रायः समान रूपमें उच्चरित होती हैं। इन ठेठ संज्ञाओंकी और उनके रूपोंकी खोज कोशकार को करना होगी। पटनामें भोजपुरी अकादमी भोजपुरीका व्यापक, विस्तृत और परिनिष्ठित कोश बनानेमें लगी हुई है। भोजपुरीके कवि रामवृक्ष 'विधुर' ने भी एक प्रयास किया है। किन्तु कोई भोजपुरी भाषाका प्रेमी इस प्रकार अनाड़ी ढंगसे शब्द सम्पदा खड़ी करनेका साहस शायद नहीं करेगा। यह काम तो कोई बाहरी व्यक्तिही कर सकता है। अच्छा होता यदि विद्वान् सम्पादक पुस्तक प्रेसमें भेजनेसे पूर्व डॉ. उदयनारायण तिवारीको दिखा ली होती ! पर ऐसा जब हुआ नहीं और एक भ्रष्ट चीज बाजारमें आ गयी तो फिर भूमिकामें उक्त चूकका जिक्र करनेसे क्या लाभ ?

— डॉ. मान्धाता

पुरस्कृत मलयाली उपन्यास

त्रासदायी वातावरणका उपन्यास
'अवकाशिकळ'

उपन्यासकार : विलासिनी

प्रस्तुतकर्ता : डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर

विशेषताकी दृष्टिसे केरल अनेक क्षेत्रोंमें भारतका प्रथम राज्य है। इसी प्राथमिकताकी श्रेणीमें मलयालमका सबसे बृहदाकार उपन्यास अवकाशिकळ प्रकाशित हुआ है। उपन्यासके प्रकाशनसे पूर्वही अपनी ख्यातिके आधार पर इसकी दो तिहाई प्रतियां प्रकाशन-पूर्व मूल्यकी योजना के अन्तर्गत बिकभी गयीं। अब इसे केन्द्रीय साहित्य अकादमीने मलयालमका श्रेष्ठ ग्रन्थ घोषित कर अखिल भारतीय स्तरका पुरस्कार प्रदान किया है।

'विलासिनी' उपनाम है लेखकका, वास्तविक नाम एम. के. मेनोन (एम. कृष्णन कुट्टि मेनोन) है। त्रिचूर से थोड़ी दूर एक गाँवमें जन्म (१९२३) और केरलमें ही स्कूल व कॉलेजकी शिक्षा दीक्षा हुई। बादमें वे मलाया चले गये। वहीं १९७७ तक पहले पत्रकार और बादमें सूचना निदेशकके पदपर कार्यरत रहे। केरलसे उनका निरन्तर सम्पर्क बना रहा ओर उनकी कृतियां, कविता, उपन्यास आदि मलयालम पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती

रहीं १९७७ में वे स्थायी रूपसे केरल आ गये।

सिंगापुर केरलीयोंके लिए सोनेकी खान और विदेशी मालका भण्डार रहा है। वहां बसे केरलवासी अपनी केरलीयता भुलाने और तन-मनसे अंग्रेज बननेमें अपनी धन्यता मानते रहे हैं। श्री मेनोन इसके अपवाद हैं। उनके उपन्यासोंकी विशेषता उनका काव्यत्व है। मलाया-चीनी पात्रोंके संवादोंमें वातावरण निर्माणके लिए वे मलय, चीनी तथा अंग्रेजीदाँ लोगोंके सहज वार्तालापोंमें अंग्रेजी वाक्यों और शब्दोंका प्रयोग करते हैं। फिरभी ऐसे प्रयोगोंका अर्थ टिप्पणीमें दे देते हैं। श्री मेनोनने ३७ वर्षकी आयु में अपना प्रथम उपन्यास 'इणॅङान्त कणिकळ' लिखा, बादमें ऊँञाल, चुण्डेली आदि तीन चार उपन्यास और लिखे। वे नये वातावरणकी सृष्टि, नये प्रयोग और काव्यमय प्रसंगोंके कारण लोकप्रिय हो गये। इस सफलताने उन्हें एक बृहदाकार उपन्यास लिखनेकी प्रेरणा दी। सन् १९७१ में लेखन प्रारम्भ किया। अत्यधिक व्यस्तताके दिनोंमें भी रोज नियमित समय निकालकर पाँच छः पृष्ठ लिखते रहे। १९७५ में पुस्तककी पांडुलिपिका प्रथम प्रारूप तैयार हुआ। १९७७ में वे ट्रिवेंड्रम आ गये। यहाँ दो वर्षतक संशोधन कार्यमें जुटे रहे। पुस्तक १९८० में बाजारमें आ गयी।

इतना बृहदाकार उपन्यास लिखना औसत लेखक पाठक व समीक्षककी दृष्टिसे दुस्साहस कहा सकता है। इसीलिए श्री मेनोनने उपन्यासकी लम्बी भूमिका (अवकाश पत्रिका लिखी। भूमिकाके कुछ विचार सभी भारतीय भाषाओंके सृजनशील साहित्यिकोंके लिए विचारणीय हैं। वे कहते हैं : 'जीवनके प्रत्येक क्षेत्रकी प्रगति व्यक्तिको अधिक विश्रामकी वेला दे रही है। यही नहीं, अपनी जेब से खर्च करके आरामसे पुस्तकें पढ़नेकी सुविधा आज पहले से कहीं अधिक बढ़ी है। ...उपन्यासोंकी नयी संकल्पनाके अनुसार घटनाओंको विभिन्न दृष्टिकोणोंसे देखते हुए यथार्थ का अनावरण किया जाता है।... आज उपन्यासकार केवल मानव-मनोमंडलपर ही अपना दावा कर सकता है, शेष सबपर सिनेकैमरेका कब्जा हो चुका है। अनेक प्रतिष्ठित एवं महान् उपन्यास लम्बे रहे हैं। उदाहरणार्थ युद्ध और शांति, ब्रदेर्स कारमासोव आदि।

ग्रन्थके आकारकी तुलनामें अवकाशिकळ (उत्तराधिकारी) की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। मलायामें बसे एक केरलीय निस्संतान लखपतिकी वृद्धावस्थामें उनकी सम्पत्तिकी विरासतके पीछे चलनेवाला मानसिक, वाचिक और व्यावहारिक कुरुक्षेत्रही इसकी विषय-वस्तु है। श्री वेलुण्णि कुरुपका सत्तरवां जन्मदिन मनानेकी चर्चासे उपन्यास प्रारम्भ होता है। लगभग दो महीनोंकी विभिन्न घटनाएं (इनमें भी चुने हुए कुछ दिनोंकी विशेष घटनाएं ही प्रत्यक्ष वर्णनका विषय बनी हैं) कुरुपकी शारीरिक स्थितिको नहीं सुधारती। पारिवारिक क्षेत्रकी उलझनें बढ़ती जाती हैं। उत्सवकी सारी तैयारियां एकाएक कुरुप की स्थिति गंभीर होनेसे स्थगित होती हैं। कुरुपका देहान्त हो जाता है। इस मृत्युके दो महीने बाद वेलुण्णि कुरुपके छोटे भाई डॉ. रावुण्णि कुरुप, श्रीधरन, भद्रा, राजी आदि स्वर्गवासीके अस्थि विसर्जन और और श्राद्धके लिए भारत जानेको तैयार होते हैं। विरासतकी उलझन तो समाप्त नहीं होती क्योंकि डॉ. रावुण्णिकी लालची पत्नी कुटिल भाई शंकुण्णिके सुझावसे न्यायालयकी शरण लेनेकी सोचती है। उपन्यासकार कथाधाराको आगे प्रवाहित होने का अवसर देते हुए बिदा लेता है।

उपन्यासमें लगभग १२ प्रमुख पुरुष-पात्र और ९ प्रमुख स्त्री पात्र हैं। इनसे संबंधित घटनाएं प्रत्यक्षतः बहुत कम वर्णित हैं। अधिकतर पात्रोंके मानस-पटलमें स्वप्न या स्मृति चित्रके माध्यमसे फ्लैशबैकके रूपमें चित्रित हैं। हर एक पात्र अपने पास एक दर्पण रखता है। वह उस दर्पणमें अपना और दूसरोंका जैसा प्रतिबिंब देखता है—वैसाही चित्र व उसकी व्याख्याएं करता है। जब मन एकही दृश्य समय-समयपर अनेक बार देखता है तो प्रतिक्रिया बदलती भी है। इसका भी विवरण पात्र देते हैं। यों इक्कीस पात्रोंका चित्रण इक्कीस पात्रों द्वारा अनेक प्रसंगोंपर होता है। उद्गार, संवाद, वर्णन आदि विभिन्न माध्यम स्वीकार किये गये हैं।

उपन्यासके पुरुष पात्रोंमें सबसे सशक्त वेलुण्णि कुरुप ही है। एकदम गरीबीकी दशामें मलाया पहुंचे युवक कुरुप के लखपति बनने एवं, विभिन्न कंपनियोंके मालिक बननेके पीछे उनका पुरुषार्थ है। आश्रयदाता व सहायक मित्र अप्पु नायरकी विधवा पत्नी और उसकी संतानोंको मानवताके नाते अपना लेना उन्हीं संतानोंको निजी संतानसे भी अधिक प्यार करना [कुरुप प्रजननमें अशक्त थे—जिससे तीन-तीन व्याह करकेभी निःसंतान रहे] लालची व कपटी लोगोंसे सावधान रहना—भाई और भतीजोंको बहुत प्यार करना आदि अनेक विशेषताएं इस पात्रमें हैं। दूसरे प्रमुख पात्र कृष्णन अण्णिको आदर्श साहसी, सुन्दर, संयमी आदि अनेक गुणोंसे युक्त चित्रित किया गया है। उनके

मनकी कमजोरियाँभी दिखायी हैं। फिरभी चित्रण कुरुप का ही सशक्त है। श्रीधरन, भासी, शंकुण्णि, अशोक आदि पुरुष पात्रोंमें प्रधान है। स्त्री पात्रोंमें सबसे प्रमुख राजी (राजेश्वरी) है। कुरुपकी पालित पुत्री राजी सुन्दर व नृत्य कुशल है। मद्रासमें नृत्य-शिक्षण और उसके बीचमें फिल्ममें अभिनयसे उसकी ख्याति तथा धूर्त निर्देशककी साजिशसे शीलभंग, शीलभंगके दुःखसे आत्महत्याका प्रयास, और समयपर मामाके प्रयत्नसे प्राणरक्षा राजीके जीवनको घटनापूर्ण बनाती हैं। इस कन्याको उपन्यासकार ने सर्वप्रिय रूप दिया है। स्वस्थ, उदार, संयमी व व्यवहारकुशल कृष्णन उण्णिके प्रति राजी आकर्षित होती है। आयुका अन्तर राजीके अनुरागको कम नहीं करता, यद्यपि उण्णिको संकोच होता है। उनके विवाहित होनेकी संभावना उपन्यासके अन्तमें सूचित है। राजीका चित्रण अविशय भावुकतापूर्ण है। कभी लगता है कि कहीं उपन्यासकारकी स्वप्नकन्या तो राजी नहीं बनायी गयी? अन्य स्त्री-पात्रोंमें सुभद्रा दीपककी तरह पवित्र त्यागमय है जो स्वयं जलते-जलते अन्य लोगोंको प्रकाश देती है। सरस्वती अम्मा, राधामणि आदिके चरित्रभी काफी सजीव हैं। शंकुण्णि नायर इस उपन्यासका विलक्षण खलपात्र है।

इस उपन्यासकी भौगोलिक पृष्ठभूमि मलायाकी राजधानी कोलालंपूर (संक्षेपमें के. एल.) और कल्पित नगर नंजोग उाजार है। लेखकने अपने अनुभव और निरीक्षण-कुशलतासे मलायाकी प्रकृति, उन नगरोंका धनपूजक नैतिकतारहित जीवन, प्रशासनिक राजनीति, चीनी-मलय-संघर्ष, मलायाके भारतीय मूलके तमिषभाषी लोगोंकी सांस्कृतिक रुचि आदिका सरस परिचय दिया है। श्री मेनोनने एक अमरीकी हिप्पी युवक जिस होफमानको कृष्णन उण्णिके शिष्य और वेलुण्णि कुरुपके परिवारके परिचित युवकके रूपमें प्रस्तुत किया है। वह हिप्पी धर्म की सारी निरंकुशताओंमें रमनेके बाद उसमेंभी कुंठाका अनुभव कर भारतीय दर्शन और भारतीय कृष्णांगी युवती के स्वच्छ श्रद्धामय प्रेममें अपनी चरम गति पाता है। उपन्यासकारने जिम और उसकी पुरानी प्रेमिका मेरीलिन के माध्यमसे अमरीकाकी विलक्षणताओं तथा हरे कृष्ण धारावालोंकी विचित्रताओंपर विस्तारसे प्रकाश डाला है। औसत मलयालम उपन्यासोंमें ऐसा वातावरण और जीवन-दर्शन प्राप्त नहीं होता। वेलुण्णि कुरुपकी जन्मभूमि केरल के गाँवकी झाँकी उनके उद्गारोंमें मिलती है। मद्रासके सिनेमा क्षेत्रके मुख्य केन्द्र कोडंपाक्कम और वहांके स्टू-डियो-जीवनका विस्तारसे चित्रण इस उपन्यासमें अनेक बार आता है। फिल्मोंके प्रति असीम आकर्षणके कारण राजीके कितनेही फिल्मी गाने सुननेको मिलते हैं। इ[illegible] प्रसंगोंकी निरन्तर पुनरावृत्ति उबाऊ है।

उपन्यासके समूचे वातावरणमें एक त्रासपूर्ण चेत[illegible] समायी है। इसके सभी प्रमुख पात्र कोई-न-कोई सली[illegible] कंधोंपर लिये चलते हैं ओर दुःखका कडुआ घूंट पीनेको विवश हैं। अधिकांश पुरुष-पात्र नारी-सम्वन्धोंकी दृष्टि[illegible] असफल हैं। वेलुण्णि कुरुप पुत्र-प्रजननमें असमर्थ है। रावुण्णि कुरुप डाक्टर होनेपर भी भार्या-जित है। गंगाध[illegible] (इंचे गाफर) पत्नीके अलावा किसी अन्य प्रियाकी खोज में है, कर्मठ कृष्णन उण्णिके सामनेही उसकी 'प्रेयसी' पत्नी किसी अन्यके साथ विहार करती है। सभीको अप[illegible] षड्यन्त्रोंसे नचानेवाले शंकुण्णि नायरकी पत्नी राधामणि पतिके सामने सुकुके साथ रासलीला रचाती है, फिर[illegible] शंकुण्णि उस'धर्मपत्नी' के सामने कुत्तेकी तरह दुम हिलाता है। श्रीधर और उसकी पत्नीके आदर्श परिवारको प्रस्तुत करनाभी लेखक भूला नहीं है। फिरभी ऐसा प्रतीत होता है कि अविवाहित लेखककी व्यक्तिगत कुंठा संभवतः इ[illegible] त्रासिक केतनाके पीछे है।

उपन्यासके कवित्वमय प्रसंग विस्तारकी थकान[illegible] मिटानेवाले स्वच्छ शीतल निर्झरका काम देते हैं। मेनो[illegible] ने साहित्य-सृजनका श्रीगणेश कवितासे ही किया था। कविता अबभी उनकी संगिनी और अनुचरी है। उपन्यास-कारके कुछ काव्यात्मक वर्णन हैं :

'जब वसन्त अपनी आँखें खोलता है तो देखता है ए[illegible] छोटा-सा झरना पिघलती बर्फसे ढकी पहाड़ी ढलान[illegible] चाँदीके धागेकी तरह बहता उतर रहा है।'

'लिपस्टिकके मूंगोंकी पखुड़ियाँ खोल, मोती निर्मि[illegible] जुहीकी कलियाँ दिखाती, लजाती कनखियोंसे निहार रही है···कानोंकी बालियोंकी तरह मन झूल रहा है···बांसी[illegible] फँसी मछलीकी तरह छटपटा रही है···चारों ओर इन्द्र-धनुष-सा फैल जाता है···'

'अंधेरेकी काली शिलाकी जड़में फूटती निर्गलित हो[illegible] प्रकाशकी रजत-नदी···मन्दहासकी तरह विकसित हो[illegible] प्रभात···हरे हरे वनोंकी जुहीकी माला पहनाती गुनगुनी धूप···वृक्ष-निकुंज जहाँ वनदेवियां वीणा बजाती हैं···पहा-ड़ियोंके ढलान जहां इंद्रधनुषोंने बंदनवार सजाये हैं··· [illegible] मृदुल निनाद·'

कृष्णन उण्णिसे मिलनेके लिए राजी नौकासे जो यात्रा करती है वह काव्यात्मक प्रकृति-वर्णनका रत्नकोष है।

'अवकाशिकळ' पर अन्य विद्वानोंकी इस सम्मतिसे मैं सहमत हूं कि लेखकने यद्यपि विस्तारका स्पष्टीकरण किया है, तथापि अतिविस्तारसे स्थूलता और शिथिलता आयी है।

मेनोनने मलाया-प्रवासके दिनोंमें यह उपन्यास लिखा था। इस दृष्टिसे अवकाशिकळ प्रवासी केरलीय लेखकोंका रचनाओंमें सर्वश्रेष्ठ कहलानेका अधिकारी है। ▭

कोश : संदर्भ ग्रन्थ

शिक्षार्थी हिन्दी-अंग्रेजी शब्दकोश

कोशकार : डॉ. हरदेव बाहरी; प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : ७५८; डिमा. ८१; मूल्य : ७५.०० रु.।

जैसाकि कोशकार प्राक्कथनमें स्पष्ट किया है कि अंग्रेजी तथा यूरोपकी अन्य भाषाओंमें लर्नर्ज डिक्शनरी बनायी गयी है पर हिंदीमें इस ओर प्रयास नहीं किये गये। प्रस्तुत कोशमें 'शिक्षार्थी' का प्रयोग इस अर्थमें ही किया गया है। फिर अबतक के सभी प्रयास एक-भाषा कोशोंके संदर्भमें ही किये गये हैं जबकि यह प्रयास द्विभाषी कोशमें किया जा रहा है। इस कोशमें १०,५०० शब्दोंकी प्रविष्टियां हैं, जिनमें यह प्रयास किया गया है शब्दका सही उच्चारण, क्रमसे उसके सभी अर्थ, व्याकरण, प्रयोग, मुहावरे, समानार्थक तथा विपरीतार्थक शब्द और सभी आवश्यक जानकारी दी जाये। इस कोशका प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजीभाषीको हिंदी सिखाना तो है ही साथही हिंदीभाषी भी इसके उपयोगसे भाषा संबंधी अपना ज्ञान बढ़ा सकतेहैं।

शब्दकोशमें किन शब्दोंको लिया जाये, जिससे जहां एक ओर प्रारम्भिक शिक्षार्थीके लिए उपयोगी हो वहाँ अध्येताओंके लिएभी लाभप्रद हो, इसके लिए कोशकारने आवृत्तिको आधार बनाया है। इस दृष्टिसे किये गये सभी कार्योंको—मिशन प्रेस जबलपुर, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, दकन कालेज पुणे, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा तथा कैलाशचन्द्र भाटियाकी 'हिन्दीकी बेसिक शब्दावली'—आधार बनाया गया है।

शब्दकोशमें वर्णोंका क्रम[1] परम्परागत ही रखा गया गया है जिससे हिंदीके अन्य कोशोंके साथ इसको देखा जा सके। प्रारम्भमें 'भूमिका' के अन्तर्गत (पृ. रोमन पाँचसे उन्नीस) बड़े विस्तारसे यह समझाया गया है कि प्रस्तुत कोशमें क्या-क्या है और उसको देखनेको क्या विधि है, किन-किन संकेत चिह्नोंका उपयोग किया गया है।

अभीतक हिंदीके एकभाषी कोशोंमें शब्दके 'उच्चारण' की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। उच्चारणका सीधा सम्बन्ध आक्षरिक संरचना और अक्षर-सीमासे है। नागरी प्रचारिणी सभासे प्रकाशित कोशोंको इसमें पहल करनी चाहिये। संयोगसे इस दिशामें पहला प्रयास हिन्दी-अंग्रेजी कोशोंके माध्यमसे प्रारम्भ किया गया। प्रथम प्रयोग डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा महेन्द्र चतुर्वेदी द्वारा किया गया। उच्चारण देनेकी इस विधिसे भविष्यमें मानक उच्चारणकी समस्या हल हो सकेगी। इस दिशामें जिस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्याकी ओर ध्यान दिया गया है वह है अनुच्चरित 'अ' की समस्या जिससे सम्बन्धित टिप्पणी रोमन पृष्ठ संख्या १२ पर विस्तारसे दी गयी है। शब्दों के मध्यमें व्यंजनके बाद बिन्दुका प्रयोग इस आशयके लिए किया गया है जो प्रकारान्तरसे अक्षर-विभाजनको भी सूचित करता है, जैसे :

---

१. 'वर्णोंके क्रम' पर इधर पर्याप्त विवाद उठ खड़ा हुआ है। केन्द्रीय हिंदी निदेशालयने इस ओर पहल की है।

मरना, मर-ना mar'na
खुजली, खुज-ली khuj'li
खुदवाना, खुद-वाना, khud'vana
झलना, झल-ना Jhal-na

यही पद्धति 'विहार पीजेन्ट लाइफ' में डॉ. ग्रियर्सन ने अपनायी थी।

शब्दोंकी व्याकरणिक कोटि, स्त्रीलिंग, पुंलिंगका संकेत भी कोशकी उपयोगिताको बढ़ाता है।

व्यावहारिकताकी दृष्टिसे इस कोशमें प्रयोगोंको भी समुचित स्थान दिया गया है जैसे पहलेही शब्द अंकके छह विभिन्न संदर्भोंमें अर्थ दिये गये हैं, वहाँ साथही 'अंक में लेना', 'अंक देना' आदि प्रयोगभी गोद-विशेषके अर्थ में दिये गये हैं। 'अकेला' के विभिन्न प्रयोग दिये गये हैं, और उससे बने 'अकेलापन', अकेले (क्रि॰ वि.) आदिभी। कुछ औरभी प्रयोग दिये जा सकते थे जैसे, अकेला स्वामी (Sole) के अर्थका प्रयोग। 'सलाह' के अन्तर्गत सलाह देना, सलाह लेना, सलाह करना, सलाह मानना तथा स्त्री-लिंगके प्रयोगके स्पष्टीकरणके लिए अच्छी—, बुरी , हमारी—, आदिभी दिये गये हैं। 'पुराना' विशेषण विभिन्न अर्थोंमें कितने शब्दोंके साथ आ सकता है, सबको समेटनेका प्रयास किया गया है। कुछ सामासिक पदोंको भी ले लिया गया है और उनसे बने मुहावरेभी जैसे, मियां-मिट्ठू, मिलता-जुलता, मिला-जुला।

हाँ, सांस्कृतिक परिवेशके शब्दोंमें अधिक व्यवस्था अपेक्षित थी और कहीं-कहीं छायाचित्र अथवा रेखाचित्र नितान्त आवश्यक है जिसका अभाव खटकता है जैसे जलेबी acoiled sweetmeat) अधिक व्याख्या तथा रेखा-चित्रसे स्पष्ट हो पाती। 'हलदी' के साथ 'हलदीकी गांठ' भी दी जा सकती थी।

कोशकी उपयोगिता परिशिष्टमें दी गयी गयी सामग्री —वर्गीकृत शब्दावलियां, तोल-माप, मुद्रा, भारतकी भाषाएं, त्यौहार, हिन्दी प्रदेशमें प्रमुख व्यक्ति नाम, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्ति, कुछ देशोंके नाम, भारत-भूगोल, हिन्दी शब्दों और पदोंका निर्माण (पृ. ७०१-७५८)—से द्विगुणित हो गयी है। कोशकारका यह दावा कि 'हिन्दीभाषीभी इसके उपयोगसे भाषा सम्बन्धी अपने ज्ञानको कई गुना बढ़ा सकता है। यही नहीं, हिन्दी-भाषीका अंग्रेजी ज्ञानभी इससे समृद्ध होता है' वस्तुतः सही है। भाषाकी बारीकियोंको सीखने-सिखानेकी दृष्टिसे यह कोश अत्यन्त उपयोगी है जिसके पीछे सुप्रसिद्ध भाषा शास्त्री एवं कोशकार डॉ. हरदेव बाहरीकी वर्षोंकी साधना है। पुस्तकालयोंमें तो कोश खरीदा जायेगा पर इसकी घरेलू उपयोगिताकी दृष्टिसे सस्ता संस्करण अपेक्षित है टाइप कोशके अनुकूल है। आशा है हिन्दी तथा अंग्रेजी-भाषाभाषियोंके मध्य इस कोषका स्वागत होगा।

— डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

भारत : १९८१

भारत सरकारके सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके गवेषणा और सदर्भ विभाग द्वारा सकलित; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग पटियाला हाउस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : ६८८; सचल ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

भारत सरकारके सूचना तथा प्रसारण मंत्रालयका प्रकाशन विभाग हर वर्ष अंग्रेजी और हिन्दीमें संदर्भकोश प्रकाशित करता है, जिसमें देशके राष्ट्रीय जीवनके विभिन्न पहलुओंसे सम्बन्धित जानकारी, मुख्य तौरपर सरकारी सूचनाएं संकलित होती हैं। प्रस्तुत कोश इस शृंखलाकी सत्ताईसवीं कड़ी है। इसमें वर्ष १९८० की तथा १९८१ के मार्च मासतक की सूचनाएं शामिल की गयी हैं।

जिन लोगोंने इस संदर्भ ग्रन्थके पिछले संस्करण देखे हैं उन्हें इसकी रचना और स्वरूपमें कोई विशेष अन्तर दिखायी नहीं देगा। इसमें कृषि, उद्योग, शिक्षा, वाणिज्य, संचार परिवहन, ऊर्जा, वित्त, विज्ञान, जन संचार, स्वास्थ्य आदि विभिन्न क्षेत्रोंमें देशकी स्थिति तथा पिछले एक वर्षमें हुई प्रगतिका विवरण पिछले संस्करणोंकी भांति दिया गया है।

इसके अतिरिक्त देशके भौगोलिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्वरूप और भारतीय संविधानकी कुछ महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाओं और राष्ट्रीय प्रतीकों आदिसे संबंधित जानकारीभी हमेशाकी तरह इस कोशमें सम्मिलित हैं। इसी प्रकार विभिन्न राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशोंकी भौगोलिक, राजनीतिक, स्थिति तथा जनसंख्या, भाषा, उद्योग-धन्धों व अन्य क्षेत्रोंमें चल रही गतिविधियोंका विस्तृत विवरणभी इसमें उपलब्ध है। स्पष्ट है कि ये सभी आंकड़े और विवरण सम्बन्धित सरकारों तथा मन्त्रालयोंसे प्राप्त किये गये हैं। सरकारी प्रकाशन होनेके बावजूद सांस्कृतिक पहलुओंकी उपेक्षा नहीं की गयी है। ललित कला अकादमी, संगीत और नाटक अकादमी तथा

साहित्य अकादमी का ब्यौरा तथा उसके द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कारों और पुरस्कृत रचनाओं व व्यक्तियोंके उल्लेखके साथ-साथ चलचित्रोंके लिए दिये गये पुरस्कारों का भी वर्णन है। देशके विश्वविद्यालयोंका पूरा विवरण और वीरता पुरस्कार तथा सरकारी स्तरपर दिये जाने वाले अन्य पुरस्कारोंकी जानकारी भी इस संदर्भ-ग्रन्थमें देखी जा सकती है। एक अलग अध्यायमें तिथिक्रमसे राष्ट्रीय मंचपर घटी महत्त्वपूर्ण घटनाओंका उल्लेख है। चार सुन्दर मानचित्रभी पुस्तकमें संकलित है। एक, भारत का राजनीतिक मानचित्र है तथा तीन मानचित्र देशके वायुमार्ग, सड़क मार्ग, तथा रेलमार्गके हैं। सारी सूचनाएँ सरकारी तथ्यों और आंकड़ोंपर आधारित हैं, जो विभिन्न सारणियोंके रेखाचित्रोंके माध्यमसे प्रस्तुत किये गये हैं। विभिन्न क्षेत्रोंमें चल रही विकास गतिविधियोंके कई सुन्दर चित्रभी इस पुस्तकमें सकलित हैं जो निःसंदेह स्वागत योग्य हैं।

ग्रन्थकी विषयवस्तु विस्तृत और व्यापक होनेपर भी इसका महत्त्व सीमित है, क्योंकि गैर-सरकारी स्तरपर हो रहे विविध और विशाल गतिविधियोंका इसमें कोई उल्लेख नहीं है। अनेक क्षेत्रोंके बारेमें आँकड़ेभी अपूर्ण हैं। उदाहरणके लिए कृषि अध्यायमें 'भूमिका उपयोग' उपशीर्षकमें स्वीकार किया गया है कि देशके कुल ३२.८८ करोड़ हैक्टेयर भौगोलिक क्षेत्रमें से ३०.४० करोड़ हैक्टेयर अर्थात् ९२.५% भूमिके उपयोगके बारेमें ही आंकड़े उपलब्ध हैं। इसी प्रकार कृषि आंकड़ोंका संकलन १९७६-७७ के बाद हुआही नहीं। अतः कृषि सम्बन्धी आंकड़े मुख्य रूपसे १९७६-७७ को ही आधार मानकर जुटाये गये हैं, जो वास्तवमें सच्चाईको प्रकट नहीं करते। अन्य अनेक क्षेत्रोंके आंकड़ोंके बारेमें भी यही स्थिति है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकारी अधिकारियों द्वारा तैयार किये गये ये आंकड़े कई बार बढ़ा-चढ़ाकर तैयार किये जाते हैं, इसलिए अच्छा यह होगा कि इनके साथ-साथ विभिन्न सर्वेक्षणों और कार्यदलोंकी रिपोर्टोंके सम्बन्धित अंशभी इन अध्यायोंमें शामिल किये जायें, जिससे पाठकको संतुलित जानकारी मिल सके।

ग्रन्थके प्राक्कथनका प्रारम्भिक वाक्य हमारी राष्ट्रीय गरिमाको कम करनेवाला है। इसमें कहा गया है कि यह ग्रन्थ 'इंडिया १९८१' का हिन्दी रूपान्तर है। जब सरकारकी सभी महत्त्वपूर्ण सूचनाओं, घोषणाओं तथा नीति विषयक वक्तव्यों आदिको अंग्रेजीके साथ हिन्दीमें भी जारी करना अनिवार्य है तो इस सारी सामग्रीके आधार पर स्वतंत्र रूपसे हिन्दीमें यह ग्रन्थ क्यों नहीं सकलित हो सकता? लगता है यह उसी सुनियोजित षड्यन्त्रका एक अंग है जो दिन-प्रतिदिन मास-प्रति-मास और वर्ष-दर-वर्ष लोगोंमें यह गलतफहमी पैदा करने ओर पुष्ट करनेके लिए चलाया जा रहा है कि हिन्दीमें कोईभी गंभीर कार्य स्वतन्त्र रूपसे होना असम्भव है। यह षड्यंत्र समाप्त होना चाहिये और 'भारत संदर्भ कोश' जनोपयोगी पुस्तक मूल रूपसे हिन्दीमें ही संकलित करनेके प्रयास शुरू किये जाने चाहियें। यद्यपि यह सत्य है कि हिन्दीमें इतने विस्तृत संदर्भ ग्रन्थ बहुत कम प्रकाशित होते हैं परन्तु अनुवादकी बैसाखीसे मुक्ति दिलाना उचित दिशामें किया गया प्रयास होगा। (यह सुझाव 'प्रकर' में पहलेभी दिया गया है, पर सरकारने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया)।

इस वर्षके कोशकी एक विशेषता यह है कि १९८० में नये सिरेसे तैयारकी गयी छठी पंचवर्षीय योजनाकी प्राथमिकताओंका इसमें स्थान-स्थानपर उल्लेख है। इससे १९८० में सत्तामें आयी नयी केन्द्रीय सरकारकी नीतियों और कार्यक्रमोंकी झलक मिल जाती है।

अनुवाद होनेके कारण कई स्थानोंपर भाषाकी कृत्रिमता और दुरूहता खटकती है। अनेक त्रुटियों और सीमाओंके बावजूद हिन्दीके पाठकों विशेषकर शोधछात्रों, प्राध्यापकों व पत्रकारोंके लिए इस संदर्भ-ग्रन्थकी उपयोगिता असंदिग्ध है। इसमें काफी जानकारी ऐसी है, जो स्थायी महत्त्वकी है।

— सुभाषचन्द्र 'सत्य'

कार्यालयी हिन्दी

कार्यालय कार्य बोध

लेखक : हरिबाबू कंसल; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार; दिल्ली ११०-००६। पृष्ठ : २३६; डिमा. ८०; मूल्य : ४०.०० रु.।

भारतके संविधानमें हिन्दीको भारतकी राजभाषा घोषित किया गया था। सन् १९५० में संविधानको लागू करते समय यह आशा की गयी थी कि १५ वर्षोंमें हिन्दी राजभाषाके रूपमें अंग्रेजीका स्थान ले लेगी। इस लक्ष्य को प्राप्त करनेके लिए सरकारकी ओरसे अनेक प्रयत्न किये गये। एक केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय बनाया गया। अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्द कोश तैयार किये गये। सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेके लिए गृह मंत्रालयकी ओरसे एक हिन्दी शिक्षण योजना शुरू की गयी, जिसमें केन्द्रीय सरकारके कर्मचारियोंको कार्यालयके समय हिन्दी सिखायी जाती थी। सरकारी अधिनियमोंका हिन्दी अनुवाद करनेके लिए विधि आयोगमें एक विशेष विभाग खोला गया। इन सब संस्थाओंने बहुत काम किया। परंतु आज ३२ वर्ष बादभी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि निकट भविष्यमें हिन्दी भारतकी राजभाषा बनेगी। जो सरकारी कर्मचारी हिन्दी सीखभी गये हैं, वे भी अनेक कारणोंसे अंग्रेजीमें ही दफ्तरका काम करते हैं।

यह माना जाता है कि सरकारी कार्यालयोंमें प्रयुक्त होनेवाले अंग्रेजी शब्दों, वाक्यांशों और वाक्योंका हिन्दी रूपान्तर सरकारी कर्मचारियोंको आसानीसे उपलब्ध नहीं है। यदि इस प्रकारका हिन्दी रूपान्तर सुलभ करा दिया जाये, तो वे हिन्दीमें कामकाज शुरू कर देंगे। प्रस्तुत पुस्तक इसी दिशामें एक सराहनीय कदम है।

सरकारी कामकाजमें अंग्रेजीका स्थान हिन्दी ले, इस प्रक्रियामें एक नयी हिन्दी गढ़ी जा रही है, जिसे 'मक्खी-मार अनुवादी हिन्दी' कहा जा सकता है। यह भाषा कहीं बोली नहीं जाती। इसे बालकी खाल उतारनेवाले विद्वानोंने गढ़ा है। अंग्रेजी वाक्य रचनाको परम पवित्र-सा मानकर उसका हू-बहु अनुवाद करनेके प्रयासमें एक ऐसी नकली और भोंडी भाषा तैयार की गयी है, जो करोड़ों लोगोंके प्रयत्न करनेपर भी चलनमें नहीं आ सकेगी। अतः अनुवादी हिन्दीके रूपको संवारनेकी आवश्यकता है।

'कार्यालय कार्य बोध' के लेखक हरिबाबू कंसल सरकारी कामकाजकी समस्याओंसे भलीभांति परिचित हैं। वे अनेक वर्षोंतक केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्के महामन्त्री रहे हैं। यह परिषद् सरकारी कार्यालयोंमें हिंदी का चलन करवानेके लिए महत्त्वपूर्ण और उपयोगी कार्य करती रही है।

'कार्यालय कार्य बोध' पुस्तकमें भारतके शासनतंत्रकी जानकारी संक्षेपमें देनेके बाद सरकारी कार्यालयोंकी कार्यपद्धति बतलायी गयी है। इसके बाद टिप्पणी लेखन तथा आलेखनके बारेमें विचार किया गया है। सरकारी पत्राचारके विभिन्न रूपों, सरकारी पत्र, ज्ञापन, अर्ध सरकारी पत्र आदिके भेद तथा विशेषताएं बतायी गयी हैं। अनुवाद तथा सार-लेखनके सिद्धान्त समझाये गये हैं। सातवें, आठवें तथा नौवें अध्यायके ८० पृष्ठोंमें सरकारी पत्र-व्यवहारमें काम आनेवाले अंग्रेजी वाक्यांश तथा टिप्पणियां और साथही उनके हिन्दी अनुवाद दिये गये हैं। निश्चयही यह संकलन उपयोगी सिद्ध होगा। दसवें अध्यायमें नित्य प्रति काम आनेवाले सरकारी पत्राचारके प्रारूपोंके नमूने दिये गये हैं। अनेक फार्मोंके नमूनेभी हैं। लगता है कि इस पुस्तकको विशेष रूपसे रेल विभागके लिए उपयोगी बनानेका ध्यान रखा गया है। इसीलिए अन्तिम छह अध्यायोंके लगभग ५५ पृष्ठोंमें रेल विभागके कार्यालयोंमें प्रयुक्त होनेवाले अंग्रेजी शब्दों, पदनामों एवं कार्यालयोंके नामोंका संकलन तथा उनका हिन्दी रूपान्तर दिया गया है। हिन्दी रूपान्तरमें वैज्ञानिक तथा तकनीकी आयोग द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

सरकारी कामकाजमें हिन्दीके प्रयोगमें एक बाधा हिन्दीका अनिश्चित स्वरूपभी है। एक अंग्रेजी शब्दके लिए दो या तीन हिन्दी विकल्प दे दिये जाते हैं—जैसे Present के लिए 'उपस्थित' और 'हाजिर', Clerk के लिए 'लिपिक', 'बाबू' और 'क्लर्क', Advise के लिए 'सूचित करना' और 'अवगत कराना', draft के लिए 'प्रारूप' और मसौदा'। यदि एक शब्दके लिए एकही शब्द नियत किया जाये, तो प्रयोग करनेवालेका काम आसान हो जाता है।

भाषा प्रयोगसे मंजती है जबतक सरकारी कार्यालयों में हिन्दीका अनिवार्य प्रयोग शुरू नहीं होता, तबतक वह अटपटी लगती रहेगी। प्रयोगसे शब्दमें बल आता है; कहीं वह अर्थ व्यापक हो जाता है और कही सीमित हो जाता है। आशा है कि यह पुस्तक सरकारी कार्यालयोंमें हिन्दीके प्रयोगको बढ़ानेमें सहायता होगी।

□ विराज

भक्ति-योग-तन्त्र-साधना

श्री भक्ति रसामृत सिंधु बिन्दु

सम्पादक : श्यामलाल हकीम, प्रकाशक : श्री हरि-नाम प्रेस, श्रीधाम वृन्दावन। द्वि. सं. सन् १९७७ डि. पृ. १६४, मूल्य : ६.०० रु.।

माधुर्य कादंबिनी

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्तिपाद प्रणीता, सम्पादक श्यामलाल हकीम, प्रकाशक : ब्रज गौरव प्रकाशन, बाग बुंदेला वृन्दावन (उ. प्र.) । द्वि. सं. १९८१ क्रा. पृ. : २९५ मूल्य : १२.०० रु.। (पेपर बैक)

श्री चैतन्य महाप्रभुके मनोभीष्ट मनीषी श्री रूप गोस्वामी पादने 'श्री भक्ति रसामृत सिंधु' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की है, जिसमें भक्ति रस-माधुरीका सांगोपांग दार्शनिकतापूर्ण विवेचन किया गया है। श्री विश्वनाथ चक्रवर्तिपादने उस अथाह भक्ति रस सिंधुका मंथनकर जन सामान्य, सहृदयके लिए उस सिंधुको इस बिंदुमें भरकर मानवताकी सेवा की है और उसकी विश्व-कृपादर्शिनी टीका की है श्री श्यामलाल हकीमने (वैष्णव कर्मके मर्मज्ञ, 'हरिनाम' मासिक पत्रिकाके संपादक और चितक)। ग्रन्थके प्रारम्भमें श्री विश्वनाथ चक्रवर्तिपादका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसमें उनके तेरह मूल ग्रन्थों और बारह टीकाओंके नामोल्लेख भर हैं। उनकी अपूर्व वैष्णवताका वर्णनभी है।

इस ग्रन्थका मूल उद्देश्य है भक्तिके सांगोपांगोंका वर्णन विश्लेषण, जिसमें भक्तिके भेदोपभेद तो वर्णित हैं ही, भक्तिके चौसठ अंगों, साधकमें प्रेम विकासके क्रम, गुरूपादाश्रयके महत्त्व, श्रीकृष्णकी शिक्षा-दीक्षा, तीर्थोंके महत्त्व, व्रतोंकी आवश्यकता, नाम महात्म्य,जप, मूर्तिपूजा, वैष्णव सेवा आदिके विभिन्न उपादानों,अवदानों और घटकों का बड़ा सुन्दर विवेचन हुआ है। टीका उबाती नहीं, मन को रमाती है, विरमकर कुछ सोचनेके लिए प्रेरित करती है। इसलिए कि टीकामें सम्पादककी सहृदयता, भक्ति विह्वलता और सरसता है, अधीत विद्वान्के सम्यक् शास्त्रीय अनुशीलनका बल भी है। श्री श्यामलालजीने यथासाध्य प्रस्थानत्रयीका सहारा लेकर चक्रवर्तिपादके मतोंकी ही पुष्टि की है। स्थल-स्थलपर श्री चैतन्य चरितामृत, श्रीद्भागवत्, गीता, रामायण, सूरसागर, जयदेवके गीत गोविन्दसे उद्धरण देकर साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणस्वरूप एकादशीके महत्त्वकी चर्चा करते हुए श्री हरिभक्त विलाससे शतातपके वचनोंका साक्ष्य दिया गया है—'असत्यभाषणं द्यूतं दिवास्वापञ्च मैथुनम्। एकादश्यां न कुर्वीत उपवास परो नरः ।। आद्यंत टीकाकारका लक्ष्य रहा—'वैष्णवेर पद धूलि, ताहे मोर हनान केलि तर्पण मोर वैष्णवेर नाम' (श्री नरोत्तम ठाकुरके

वचन) और मानवताकी अनवरत सेवाका दृढ़ संकल्प 'जीवे सम्मान दिवे जानि कृष्णेर अधिष्ठान' (श्री महाप्रभु चैतन्यके वचन, पृ. ७७)। इसेही तुलसीने स्वीकार किया है 'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहिं सन करहिं विरोध।'

तत्सम शब्दोंकी बहुलता, पंडिताऊ भाषा, अपने शास्त्रीय ज्ञानको टीकापर लादनेके मोह आदि इस ग्रन्थको सार्वजनीन और लोकप्रिय बनानेमें भलेही व्यवधान लाये हों, पर विशेष सम्प्रदायवालोंके लिए यह ग्रन्थ प्रकाश-स्तम्भका काम करेगा, साथही प्रतिपाद्य (भक्ति, वैष्णवता) को समझने मनन करनेमें सहयोग देगा।

दूसरा ग्रन्थ 'माधुर्य कादम्बिनी' भी उक्त समीक्षित ग्रन्थकी ही कड़ी है। सम्पादकने 'दो शब्द' में कृतिके प्रभावकी कामना की है—'माधुर्य कादम्बिनी' (वैष्णव समाज चूड़ामणि अनन्य रसिक श्री विश्वनाथ चक्रवर्ति-पाद रचित) संसारके तापत्रयको निरस्त करते हुए माधुर्य-कारुण्य तथा प्रेमरस वर्षकारिणी मेघमालाके समान है।' समीक्ष्य कृतिकी मूल आत्माकी रक्षा करते हुए श्री श्यामलाल हकीमजीने श्रीकृष्ण माधुर्य, भक्ति साधनांग माधुर्य, श्री भगवन्नाम माधुर्य एवं भाव-प्रेम माधुर्यका जितना सात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया है, वह उनकी भावयित्री प्रतिभाका ही निदर्शन है। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पादक कृतिकी प्रत्येक भावदशाका भोक्ता रहा है और अपनी सहृदयता और सरसतासे उसके विवेचनमें प्राण फूंकता रहा है। इसमें भक्तिका सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन तो है ही—उसके अंगों-प्रत्यंगोंके पारस्परिक और आन्तरिक सम्बन्धोंको भी उकेरा गया है। कर्मका प्रवाह तीन धाराओंमें बहता है—कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्मके बिना वह लूला लँगड़ा, ज्ञानके बिना अन्धा और भक्तिके बिना हृदयहीन क्या निष्प्राण हो जाता है। वैष्णव धर्मकी आस्थाका स्वर भक्ति है—न कि मुक्ति—इसपर बल भी दिया गया है। 'मुक्तिसे भक्तिका परमोत्कर्ष' (पृ. ५४) 'मुक्तिपर भक्तिका अनुग्रह' (पृ. ६३) इस हेतु ध्यातव्य हैं। सम्पादक इसकी पुष्टिमें साक्ष्य देते हैं—

मुक्तानामपि सिद्धानाँ नारायण-परायणः।
सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥
—श्री मा. ६-१४-५

सम्पादक समीक्ष्य कृतिमें आद्यंत सजग रहा है कि भक्तिके स्वरूपको इस प्रकार विश्लेषित और व्याख्यायित किया जाये। उनके उपास्य हैं श्रीकृष्ण और साक्ष्य है 'चैतन्य चरितामृत' का स्थल-स्थलपर। श्रीकृष्ण प्रेमके लिए श्रद्धा सम्बलित मार्गही श्रेयस्कर है। सम्पादकने चैतन्य महाप्रभु द्वारा श्री सनातन गोस्वामीको दिया गया उपदेश उद्धृत किया है। (पृ. ८७)—
श्रद्धा···शब्दे विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।
कृष्णभक्ति कैले सर्वकर्म कृतहय॥ श्री चै. च. २।२२।३७

श्री श्यामलालजी भारतीय शास्त्रके विद्वान् हैं। उनका वैदुष्य और पांडित्य गीता, उपनिषद्, वेदान्त दर्शन आदिके उदाहरणों द्वारा प्रकट होता रहता है। इससे टीका विश्वसनीय और आधिकारिक होती है, पर शास्त्रोंके झाड़-झंखार, कांतारमें उलझकर कभी-कभी पाठकके हाथसे मूल फिसल जाता है। इससे सम्प्रदायके अनुयायियों और जिज्ञासुओंका भलेही हित हो, आम आदमीका हित अधरमें लटक जाता है। इसका भाषा अपेक्षाकृत सरल चलती रवानगी लिये होती तो इस कृतिसे भक्तोंका अधिक कल्याण होता। इतना माननेमें कोई आपत्ति नहीं कि सम्पादकमें अनन्त सम्भावनाएं हैं जिन्हें उजागर करनेकी ओर वे उन्मुख हैं। उन्हें मेरा साधुवाद!

▭ डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

मूलबन्ध : अनन्त रहस्योंकी कुँजी

स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीके मार्गदर्शनमें स्वामी बुद्धानन्द सरस्वती द्वारा लिखित; प्रकाशक : बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)। पृष्ठ : १००; डिमा. ७९; मूल्य : २०.०० रु.।

मूलबंध, योगके अभ्यासांगोंमें हठयोगकी एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। प्राचीन साहित्यके अतिरिक्त मूलबंधपर पुस्तकके रूपमें यह एक सराहनीय उपक्रम है। स्वामीजी और उनके सहयोगी इस कार्यके लिए बधाईके पात्र हैं। सारा विवेचन और सिद्धान्तोंका प्रतिपादन शास्त्रीय दृष्टिको ध्यानमें रखकर तथा अभ्यासानुभूतिको आधार बनाकर किया गया है। पुस्तक साधना और योग उपचार पद्धतिके रूपमें विभक्त है। अतः पुस्तकको अनेक दृष्टियोंसे देखा जा सकता है।

यदि कुछ स्थलोंको अधिक स्पष्ट ठीक-ठीक अर्थ-बोधक किया गया होता तो सर्वसाधारण साधकके लिए भी पुस्तक अधिक उपादेय हो सकती। उदाहरणतः पृ. ३ पर 'सभी बंध ठीकसे किये जानेपर···' इस विवेचनसे सामान्य पाठकको कुछभी बोध नहीं हो सकता। यहां कुछ और विस्तारकी अपेक्षा है। पृ. ५ पर दूसरे परिच्छेद

में 'मनुष्यके सच्चे रूपका वर्णनभी अस्पष्ट है। इसी प्रकार 'रुद्र ग्रन्थि', 'विष्णु ग्रन्थि' और 'ब्रह्म ग्रन्थि' (पृ. १० परभी यह संदर्भ है) यह योगका 'रहस्यात्मक मनोविज्ञान' है और यदि उचित स्पष्टीकरण तथा विवेचन न किया गया तो संबंधित योग प्रचारकोंको भ्रम-निर्माण करनेका दोष प्राप्त होगा। 'भावना', 'विचार', 'चेतना' (पृष्ठ ६ पर) आदि विवादास्पद संकल्पनाएँ हैं; इनका विवेचनभी ठीक-ठीक अर्थ बोधात्मक रूपमें होना चाहिये। इसी प्रकार कुछ अन्य विधानभी है, जिनसे एक निश्चित अर्थबोध नहीं होता जैसे पृ. २१ पर 'व्यक्तित्व पाजिटव बनता है।' पृ. २७ पर 'बीमारियोंको ठीक करता है' आदि।

पृ. ५२-५६ पर मूलबंध साधनाका विवेचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपादेय है। लेखक इस सम्बन्धमें अत्यन्त स्पष्ट संकल्पनाएँ रखता है। पृ. ७५-८२ पर कुंभक, महाकुंभक आदिका वर्णन प्रायोगिक दृष्टिकोणसे लिखा गया है। जिसमें रेखाचित्रोंका भी उपयोग किया गया है।

अन्तमें मूलबंधके साथ 'अक्यूपंचर' का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो विवादास्पद हो सकता है, परन्तु वह एक साहसिक कार्य है और उसकी सराहना होनी चाहिये। इससे इस विषयमें अन्य प्रयोग करनेकी प्रेरणा प्राप्त होगी।

— केशव

तन्त्र साधना सार

लेखक : देवदत्त शास्त्री; प्रकाशक : स्मृति प्रकाशन, १२४ शहरारा बाग, इलाहाबाद-२११-००३। पृष्ठ : १७६; क्रा. ७६; मूल्य : १२.०० रु.।

आजकल लोगोंको शास्त्रीय ग्रन्थ पढ़नेका समय नहीं रह गया है, पर कभी यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि तन्त्र साधना क्या है। लेखकने तन्त्र-विज्ञानका परिचयात्मक ग्रन्थ लिखकर मन्त्र, यन्त्र और तन्त्रका रहस्य आदि को स्पष्ट किया है और योगपूर्वक साधनापर जोर दिया है। पारिभाषिक शब्दोंकी व्याख्या की है, भाव-आचार और मार्गोंका निरूपण किया है, जप-साधना मन्त्र-साधनाका परिचय दिया है, शाक्त मन्त्रोंकी साधना विधि को स्पष्ट किया है, अन्य विविध मन्त्रों और शाबर मन्त्रों पर प्रकाश डालकर आथर्वण प्रयोग दिये हैं तथा लोक-जीवनमें तन्त्रकी अभिव्यक्तिका स्वरूप समझाया है। एक प्रकारसे पुस्तक तन्त्र साधनाका आधुनिक मानवको परिचय कराती है।

— भगीरथ पाण्डेय

मत अभिमत

सम्पादकीय : प्रतिक्रियाएं

आपके सम्पादकीयसे 'प्रकर'की प्रखरता औरभी प्रखर हुई है और उसका तेवर अधिक रचनात्मक हो रहा है। मेरा अभिनन्दन स्वीकार करें। हिन्दीकी जिस दुर्गतिका आपने उल्लेख किया है, उसपर केवल दुःख और अपने भाग्यको कोसाही जा सकता है। ऐसा लगता है कि यह देश और ८७ लोगों तथा भाषा-भाषियोंका हो सकता है, केवल हिन्दुओं और हिन्दीभाषियोंका नहीं हो सकता। 'आकाशवाणी' और 'दूरदर्शन' शब्दोंको लेकर जो काण्ड घटित हो गया, वह क्या किसी पढ़े-लिखे देशमें संभव है? इन शब्दोंको लेकर मेरे मनमें कोई भावना नहीं थी कि ये हिन्दीके शब्द हैं या कि इनसे हिन्दीके प्रचारको किसी तरह बल मिलेगा। किंतु इनके बहिष्कारने तथा इस बहिष्कारके सम्मुख आत्म-समर्पण हमारे विचारोंके खोखलेपन और दिवालिएपनके सिवा और क्या है?

—कन्हैयालाल ओझा, ८/ए नन्दन रोड, भवानीपुर, कलकत्ता-७००-०२५.

इधर प्रकरमें आपके तीन सम्पादकीय लगातार प्रकाशित हुए हैं, जिनमें आपके चिन्तन एवं विचारोंकी अभिव्यति अच्छे रूपमें हुई है। इनके सम्बन्धमें मैंभी अपने विचार लिख रहा हूं।

(१) नववर्षाभिनन्दनके संदर्भमें आपकी बात सोलह आने सही है। हम अपनी मानसिक दासताके गर्तमें इतने गहरे उतर गये हैं कि हम अपनेको ही भूल गये हैं और भूलते जा रहे हैं। अपनत्व, स्वाभिमान आदिके लिए कोई स्थान हमारे जीवनमें नहीं रह गया है। हम स्वतन्त्र कहलाते हुएभी सांस्कृतिक पराधीनताकी बेड़ियोंमें जकड़ते जा रहे हैं और अन्धानुकरणमें ही गौरवका अनुभव करने लगे हैं। पता नहीं इस 'भेड़चाल' से हम भारतीय कब छुटकारा पायेंगे? आपसे निवेदन है कि 'प्रकर' का वर्ष आप विक्रमी संवत् या राष्ट्रीय संवत्से आरम्भ करनेकी कृपा करें।

(२) 'साहित्य अकादमी और अकादमी पुरस्कार' विषयक आपकी टिप्पणी सार्थक एवं यथोचित है, जो वास्तविकताको उद्घाटितकर सही दिशा-निर्देश करती है। निश्चयही नवराजनीतिक संस्कृतिके प्रभावसे कोईभी क्षेत्र बचा नहीं रहा है। पूरा समाज उसके चंगुलमें फंस गया है। इंडियन-इंगलिशकी कृतियोंको पुरस्कृत किये जानेका कोई औचित्य नहीं है। इसके साथही दूसरी भयावह स्थिति विघटनवादियोंके द्वारा उत्पन्न कर दी गयी है। इस भूमिकाको अंग्रेजीके पक्षधरोंने बड़ी खूबीके साथ निभाया है और निभा रहे हैं। इसीके परिणामस्वरूप देशमें अधिक तनावकी स्थिति व्याप्त है। देशका भविष्य चाहे अन्धकारमय हो, चाहे वह भाड़में जाये, किन्तु उन्हें तो नारोंकी आड़में अपने निहित स्वार्थोंकी पूर्तिमें लगे रहना है। यही कारण है कि विघटनात्मक प्रवृत्तियोंके उभरनेसे देश विघटनके कगारकी ओर अग्रसर है।

(३) 'भाषाकी स्थापना और आन्दोलन' सम्बन्धी टिप्पणी भाषाकी सही स्थितिके परिप्रेक्ष्यमें वास्तविकता को उजागर करती है। खेद है कि कर्नाटकही क्या भाषा की दृष्टिसे सभी राज्योंकी यही नियति है। कैसी विडम्बना है कि स्वतन्त्र राष्ट्रमें वहांकी भाषाओंको अपना उचित स्थान प्राप्त करनेके लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

विदेशी भाषा अंग्रेजीकी विघटनात्मक और संघर्षात्मक भूमिका देशके लिए अत्यन्त घातक बनती जा रही है। देशके प्रबुद्ध नागरिकोंको उसके व्यर्थके व्यामोहसे अपनेको उबारकर सभी भारतीय भाषाओंको उनके उचित स्थानपर प्रतिष्ठापित करनेके लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

कर्नाटकमें कन्नड़को उसका उचित स्थान दिये जाने पर और अंग्रेजी पक्षधरोंका अल्पसख्यक भाषायी पूंछ पकड़कर उसे विरोधी हवा देना देशमें अल्पसंख्यक बहुसंख्यक-संघर्षकी स्थिति पैदाकर सदाके लिए अंग्रेजीका प्रभुत्व बनाये रखनेकी दुरभिसंधि अत्यन्त भयावह है। इस विषम स्थितिसे सभी जागरूक देशवासियोंको सावधान होनेकी आवश्यकता है।

कन्नड़ विरोधी इस विवादमें सबसे अधिक लज्जास्पद भूमिका रही है महाराष्ट्रके मुख्यमंत्री श्री बाबा साहब भोंसलेकी। उन्हें मराठीभाषियोंके तथाकथित हितरक्षणके लिए एकदम मैदानमें नहीं कूदना चाहिये था। कुछ तो सोचते-समझते। अब रही बात इंदिरा कांग्रेसके संसद्-सदस्य एफ. एम. खानकी। उन्होंने मुसलमानोंके सांविधानिक-अधिकारकी आड़में जो साम्प्रदायिक स्थिति पैदा की है, वह देशहितमें नहीं है। उनके नेतृत्व और प्रोत्साहनसे ही कन्नड़विरोधी वातावरण बना और मुस्लिम नेताओंने 'इस्लाम खतरेमें है' का नारा बुलन्द किया। कन्नड़को प्रतिष्ठित करने मात्रसे ही पता नही, इस्लाम कैसे खतरेमें आ गया? और कर्नाटकवासी मुसलमानोंकी उर्दू मातृभाषा कैसे हो गयी? यदि यही सच है तो फिरसे देशमें विभाजन-पूर्वकी स्थिति बनती जा रही है और उर्दू (परोक्षमें अंग्रेजीभी) फिर वही भूमिका निभानेको तत्पर हैं।

—वेदप्रकाश गर्ग, १४ खटीकान, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

'मेघदूत : एक पुरानी कहानी'

गुरुवर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके 'मेघदूत : एक पुरानी कहानी' पर डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्तकी समीक्षा पढ़ी ('प्रकर', नवम्बर ८१), बड़ी प्यारी भाषा, समानधर्मा संवेदना। उद्धरण थोड़े कम होने चाहिये थे, विश्लेषण 'थोड़ा ज्यादा'।

—डॉ. रमेशकुन्तल मेघ, आचार्य-अध्यक्ष हिन्दी विभाग गुरु नानकदेव विश्वविद्यालय अमृतसर.

▭ 'बयान'

'बयान' ('प्रकर' मई '८२) के उद्धरण कटीले-तीखे हैं —समर्पित/ तुम्हें/ पति परमेश्वरको/लोक और परलोक/ अर्जित पुण्य/ चारों धाम/ तन/ मन/ धन/ यह जीवन/ और आत्माभी ।/ शिवा—/ मेरी खोपड़ीके/' लेकिन विचारणीय है भारतीय नारी जीवनकी विवशता और आदर्शके तारोंपर लटकी रहती है। पूर्ण समर्पणके बदले उसे सुहागसे मात्र सुरक्षाका भाव मिलता है। इस सभ्य समाजमें जहां बलात्कार और शोषण नारीकी देहको मरोड़नेकी हवसमें गुरिल्ला बना हो, ऐसे माहौलमें पति परमेश्वरको यह सब समर्पण ज्यादा महंगा सौदा नहीं। 'सौदा' मैंने इसलिए कहा कि आजकी शिक्षित नारी स्वयंको गृहस्वामिनीसे विभूषित करनेके साथ-साथ अपना एक अलग अस्तित्व एवं व्यक्तित्व कायम करनेके चक्करमें भटकभी तो रही हैं। इस कविताको दो दृष्टिकोणोंमें रखकर परखा जा सकता है। एक व्यावहारिक पक्ष, दूसरा आदर्श। कवयित्रीको साधुवाद। समीक्षाओंसे लगता है अधिकतर कृतियां अच्छी हैं।

आज हो रहे हिन्दी प्रयोगों और विविध शैलियोंको आत्मसात् करनेको हिन्दी आकुल-व्याकुल हो उठी है।

—उर्मिला कौल, श्याम भवन, राजेन्द्र-नगर, आरा (बिहार) - ८०२३०१

▭ 'महाप्राण बाहुबलि'

'प्रकर' (जनवरी '८२) में 'महाप्राण बाहुबली' (नाटक) पर श्री नरनारायण रायकी समीक्षा प्रकाशित हुई है। संभवतः रचनाके सम्बन्धमें कुछ पक्ष समीक्षकको स्पष्ट नहीं हो पाये। किन्तु समीक्षक अपने विचारोंमें स्वतन्त्र है और हमें उनके विचारोंका सदा आदर करना चाहिये।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन (भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली-१).

बाहुबली नाटककी समीक्षामें समीक्ष्य मर्म अस्पष्ट रह गया है, ऐसा मुझे लगा। समीक्षकको समीक्ष्यका मर्म छूना चाहिये।

—डा. भोलानाथ भ्रमर, प्राचार्य त्रिलोकनाथ महाविद्यालय टाण्डा (फैजाबाद) उ. प्र - २२४ १९०.

समीक्षकीय स्पष्टीकरण : समीक्षक व्यक्तिगत रूपसे श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनकी सज्जनता, सद्भाव और सहयोगपूर्ण भावनाके प्रति श्रद्धावनत है, लेकिन एक समीक्षकके रूपमें वह अपना विचार ईमानदारीसे प्रस्तुत करना अपना कर्त्तव्य समझता है। गाल्सवर्दी जैसा नाटककार कहता है Loyalties cut each other. । समीक्षकको इस बातका खेद है कि श्री जैनको ऐसा लगा कि 'नाटकके कुछ पक्ष (समीक्षकको) स्पष्ट नहीं हो पाये।' समीक्षक सर्वज्ञ है भी नहीं और यह असम्भव नहीं कि समीक्षामें कोई पक्ष अनुद्घाटित रह गया हो और किसी 'पुस्तक समीक्षा' में स्पष्ट रहनेपर भी हर पक्षपर चर्चा संभव नहीं हो पाती, कभी ऐसा जरूरी नहीं समझा जाता और कभी ऐसाभी होता है कि दृष्टिभेदसे जो पक्ष समीक्षकको महत्त्वहीन अतः अनुलेख्य प्रतीत हो भिन्न कारणसे दूसरोंको महत्त्वपूर्ण लगे। इसीलिए समीक्षककी वैचारिक स्वतन्त्रताका स्वागत किया जाता है। यदि श्री जैन अपने शब्दोंमें कुछ अधिक स्पष्ट होते कि समीक्षामें कौन-सा पक्ष स्पष्ट नहीं हो पाया है तो यह समीक्षक उन्हें संतुष्ट करनेके लिए अधिक स्पष्ट कैफियत दे पाता।

समीक्षकके लिए यह पहला अनुभव है जब उसकी किसी नाट्य-समीक्षापर एक साथ दो स्थानोंसे असन्तोष व्यक्त किया गया हो। समीक्षामें कोई त्रुटि रह गयी हो यह संभव है और यह समीक्षक आत्म-परिष्कार, भूल-सुधार और क्षमा-याचना करनेके लिए भी तैयार है, पर उसकी गलती तो उसके सामने लायी जानी चाहिये। तथापि यह समीक्षक अपना खेद ज्ञापित करता है कि निष्ठापूर्वक अपना कार्य संपादित करनेपर भी अपनी किसी अज्ञात त्रुटिके कारण अपनी समीक्षा द्वारा समीक्षित कृतिके प्रकाशक श्री जैनको वह अपेक्षित संतोष नहीं पहुंचा पाया।

डॉ. भोलानाथ भ्रमरने समीक्षामें समीक्ष्य कृतिके समीक्ष्य मर्मके अछूते और अस्पष्ट रह जानेकी बात उठायी है। यदि भ्रमरजीका 'समीक्ष्य मर्म' वही है जो यह समीक्षक समझता है तो संभव है प्रस्तुत कैफियतसे शायद स्थिति स्पष्ट हो जाये।

समीक्ष्य कृतिका मर्म है कृतिका मूल 'कथ्य' अर्थात् रचनाके द्वारा जो बात रचयिता दर्शक-पाठकतक पहुंचाना चाहता है। इस समीक्षकको समीक्षित नाटकके आलेखके अध्ययनसे ऐसा प्रतीत हुआ कि बाहुबलीके व्यक्तित्व और गुणोंका बखान प्रस्तुत करनाही नाटकका मूल कथ्य है और यही बात समीक्षामें स्पष्टभी की गयी है। इस प्रयत्नमें [illegible] नाटक सफल नहीं होता। यदि इस नाटकमें बाहुबलीके [illegible]

'प्रकर'के

पुराने उपलब्ध अंक

प्रकाशनारम्भ वर्ष : सभी अंक अप्राप्य

१९७० : सभी प्रकाशित अंक उपलब्ध। [जन. ७० अंक : '१९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन']
पूरा सैट : २५.०० रु.

१९७१ : अप्रैल और अगस्त अंक छोड़ शेष अंक उपलब्ध। [जन. फर. संयुक्तांक : 'अहिन्दीभाषियों का हिन्दी साहित्य; जुलाई अंक : '१९७० के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : ३८.०० रु.

१९७२ : सभी प्रकाशित अंक उपलब्ध। [मई-जून संयुक्तांक : '१९७१ के उल्लेखनीय प्रकाशन']
पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७३ : सभी प्रकाशित अंक उपलब्ध। [मई-जून संयुक्तांक : 'भारतीय साहित्य : २५ वर्ष']
पूरा सैट : ४०.०० रु.

१९७४ : प्रकाशित अंक : अप्रैल, मई, जून, अक्तूबर नवम्बर, दिसम्बर. पूरा सैट : १५.०० रु,

१९७५ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, मार्च, जुलाई. अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर.,
पूरा सैट : २२.५० रु.

१९७६ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर.
पूरा सैट : २०.०० रु.

१९७७ : सभी प्रकाशित अंक उपलब्ध।
पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७८ : सभी प्रकाशित अंक उपलब्ध।
पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७९ : सभी प्रकाशित अंक उपलब्ध।
पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९८० : नवम्बर अंक छोड़कर सभी अंक उपलब्ध।
पूरा सैट : २७.५० रु.

१९८१ : सभी प्रकाशित अंक उपलब्ध।
पूरा सैट : ३०.०० रु.

- फुटकर सामान्य अंक : ३.५० रु.

सभी उपलब्ध अंकोंका मूल्य : ३३८.०० रु.

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७

कर एक सुदृढ़ जीवन स्थितिका निर्माण किया जा[ता] जीवनके विभिन्न आकर्षणों और प्रतिकूल परिस्थिति[यों] संघर्ष करते हुए उन्हें निर्वाणकी ओर अग्रसर दिखा[या] जाता तो अहम् और इदम्के संघर्षके बीचसे उदित [हो]ने वाला मोक्ष अधिक आकर्षक एवं उपयुक्त कथ्य ब[न] और तब बाहुबलीका व्यक्तित्व एवं चरित्रभी अधिक प्रे[रक] बन पड़ता। विष्णु प्रभाकरका 'सत्ताके आर पार' इस दृ[ष्टि]से काफी सफल रचना है। समीक्षकने अपनी समीक्षा[में] उक्त अंकके पृ. ३० पर दूसरे अनुच्छेदमें अपेक्षित च[र्चा] की है।

'कथ्य' की अभिव्यक्तिका प्रकार शैली है और [उ]से वस्तुविधान द्वारा प्रस्तुत करनेका कौशल शिल्प। अ[तः] 'समीक्ष्य मर्म' को 'छूने' के बाद उसकी प्रस्तुति योज[ना] (शैली + शिल्प) का परिचयभी पाठकोंको दिया जा[ना] चाहिये। संदर्भगत प्रकाशित समीक्षाके प्रारम्भमें [ही] रचनाके शैली-शिल्पपर विचार किया गया है और स[्पष्ट] किया गया है कि नाटककी रचना शैली मिश्र[ित है] क्योंकि इसमें नृत्य-नाट्य और काव्य-नाटक दोनों [की] शैली शिल्पका आश्रय लिया गया है। नाट्य-र[चना] होनेके कारण नाटकके दृश्यत्व पक्षपर भी वि[चार] किया गया है। एक नाटककी पुस्तक-समीक्षा क[े] क्रममें इस प्रकार प्रायः सभी अपेक्षित पक्षोंके [सा]थ साथ 'समीक्ष्य मर्म' पर भी समीक्षकने विचार किया है। यह बात अलग है कि इस समीक्षकने जिसे मर्म, शि[ल्प] और शैली माना हो कोई दूसरा उससे मतभेद रखे। स्वाभाविक हैं कि विवेचन और निष्कर्षमें अन्तर [आ] जायेगा।

—**डॉ. नरनारायण [राय]**
गढ़बनैली, पूर्णियां (बिहार)

☐ महत्वपूर्ण सुझाव :

'प्रकर' में पुस्तक-समीक्षाके अतिरिक्तभी यदि [आप] लेख देते रहेंगे तो उसका महत्त्व और अधिक बढ़ [सकता] है। यह जरूरी नहीं कि हर अंकमें यह लेख हो [पर] साहित्यिक प्रवृत्ति, आन्दोलन, लेखनका सर्वेक्षण इ[त्यादि] विषयोंपर लेख होने चाहियें। हो सकता है आपकी [भी] कुछ समस्याएं हों।

—**डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर, रीडर हि[न्दी] विभाग, पुणे विद्यापीठ, गणशखिंड, पुणे (महाराष्ट्र)**
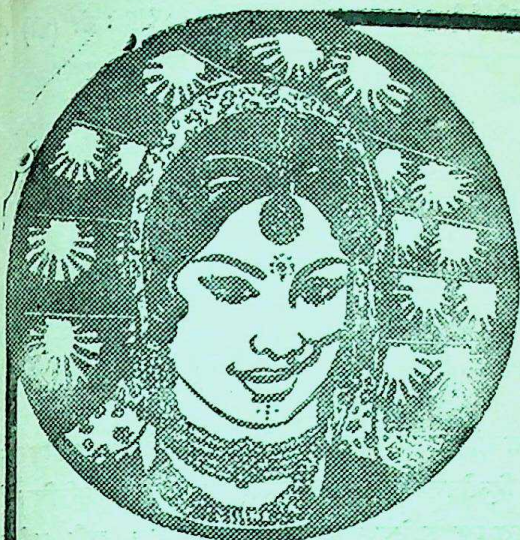
दिन में बारात चढ़ रही है?

- हां, यह एक अच्छी रीत चली है। बेकार का ताम-झाम और बिजली की बरबादी, यह कहां की अक्लमंदी। जब कोई बेटी वाला बेचारा दहेज की फांसी के तख्ते पर चढ़ा होता है तो उसे बिजली का एक-एक बल्ब बिच्छू के डंक की तरह काटता है।
- हम दहेज को पाप समझते है तभी तो लोग छिपकर दहेज लेने लगे हैं। पर ये ताम-झाम भी बंद होना चाहिए। बिजली की समाज के लिए उतनी ही जरुरत है जितनी हमारे शरीर के लिए खून की। क्या अपने खून को कोई नाहक बहाता है?
- 1980-81 में हमने 118 अरब 50 करोड़ यूनिट बिजली पैदा की। 1981-82 में भी हमारा लक्ष्य 130 अरब यूनिट बिजली तैयार करना है परंतु अभी मंजिल दूर है।

सामाजिक कुरीतियां मिटाना और राष्ट्र हित के लिए परिश्रम करना हमारा सर्वोच्च कर्तव्य है

नया 20 सूत्री कार्यक्रम

विस्तत जानकारी के लिए निम्न कूपन का प्रयोग करे।

उप निदेशक,
मास मेलिंग यूनिट,
विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय,
बी ब्लाक, कस्तूरबा गांधी मार्ग,
नई दिल्ली - 110001

नाम ____________________

पता ____________________ पिन ________

नये 20 सूत्री कार्यक्रम के बारे मे विस्तृत जानकारी के लिए कृपया मुझे हिंदी/अंग्रेजी की पुस्तिका भेजे।

davp 81/383

आगामी अंकमें

☐ **आदान प्रदान** : 'भारतीय साहित्य' की सम्पूर्ण अवधारणा और उसमें प्रवाहित होनेवाली अखिल भारतीय सां... तिक और सामाजिक चेतनाके आकलपन-आकलनके लिए हिन्दीतर भारतीय भाषाओंके लेखनसे परिचित हो... आवश्यक है। अनुवाद माध्यमसे आदान-प्रदानके कार्य द्वारा यह परिचय प्राप्त हो जाता है। इसी प्रयोज... निम्न कृतियोंका परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है :

हीराके प्रति [**गजराती संस्मरण और पत्र साहित्य**]; लेखक : हसमुख पारेख; समीक्षक हैं : डॉ. केश...

चिराग [**तमिल उपन्यासकार : पु. वरदराजन्**]; अनुवादक : क. त. अ. कलैवाणन्; समीक्षक हैं... सन्हैयालाल ओझा.

भटकाव [**बंगला उपन्यासकार : महाश्वेता देवी**]; अनुवादक : जगत् शंखधर; समीक्षक : डॉ. सुरेश... त्यागी.

☐ **सामयिक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक समस्याएं** : इस विषयकी पुस्तकें हिन्दीमें कम उपलब्ध हैं। प... इनका अपना महत्त्व है और साहित्यके लिए ये पृष्ठभूमिका काम देती हैं। इनके गहराईसे अध्ययनको प्रोत्सा... देनेके लिए एक हिन्दी और एक अंग्रेजी पुस्तककी समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है :

द अफगान सिन्ड्रोम : हाऊ टू लिव विद सोवियत पावर [**भवानी सेनगुप्त**]; समीक्षा प्रस्तुत कर... हैं : **डॉ. वेदप्रताप वैदिक.**

भारतीय उपमहाद्वीपमें शीत युद्ध [**प्रो. नरेन्द्रसिंह चौधरी**]; समीक्षिका हैं : प्राध्यापिका **विमला उपाध्या...**

☐ **कसप** [**उपन्यासकार : मनोहर श्याम जोशी**] : यह एक औपन्यासिक प्रेमकथा है, जो लैला-मजनू और शी... फरहादकी कोटिसे पृथक् होनेपर भी फिल्मी शैलीमें है। फिरभी, फिल्मी शैलीका यह उपन्यास वृत्तचित्र... प्रभाव छोड़ता है, अपने विस्तारके अनुसार कथाचित्रका नहीं। वृत्तचित्र देखा नहीं जाता, देखनेको विवश हो... पड़ता है। परंतु भाषा जीवन्त है, कुमाऊंके लोक-जीवन तथा वहांके मध्यवर्गीय परिवारोंकी मानसिकता... रूपायित करती है। समीक्षककी दृष्टिसे 'कसप' हिन्दी प्रेम-कथा-साहित्यमें एक अभिनव प्रयोग है। समीक्ष... हैं : **डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी.**

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रि... और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०००७ से प्रकाशित।

'प्रकर' मासिकके पुराने उपलब्ध अंक

प्रकाशनारम्भ वर्ष : सभी अंक अप्राप्य

१९७० : बारहों अंक उपलब्ध : [जन. ७० अंक : '१९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : २५.०० रु.

१९७१ : अप्रैल और अगस्त अंक छोड़ शेष अंक उपलब्ध : [जन. फर. संयुक्तांक : 'अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य'; जुलाई अंक : '१९७० के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : ३८.०० रु.

१९७२ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : '१९७१ के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७३ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : 'भारतीय साहित्य : २५ वर्ष'] पूरा सैट : ४०.०० रु.

१९७४ : प्रकाशित अंक : अप्रैल, मई, जून, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर. पूरा सैट : १५.०० रु.

१९७५ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, मार्च, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट : २२.५० रु.

१९७६ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर. पूरा सैट : २०.०० रु.

१९७७ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७८ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७९ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९८० : नवम्बर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध : पूरा सैट : २७.५० रु.

१९८१ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

फुटकर सामान्य अंक : ३.५० रु.

सभी उपलब्ध अंकोंका मूल्य : ३०१.०० रु.

प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७

वर्ष : १४
अंक : ७

श्रावण : २०३९ (वि.)
जुलाई : १९८२

सम्पादक

वि. सा. विद्यालंकार

वार्षिक मूल्य : २५.०० रु.
प्रति अंक : २.५० रु.

विदेशोंमें (समुद्री डाकसे) ५१.०० रु.
आजीवन सदस्यता २०१.०० रु.

प्रकर, ए–८/४२, राणा प्रताप बाग दिल्ली–११०–००७

दूरभाष : ७१ ३७ ६३

इस अंकमें

आजका तप्त-साहित्य

परम्परासे यातनामय और अभिशप्त जीवन बिताने वाले वर्गोंकी दशासे द्रवित होकर लम्बे समयसे समाज-सुधारक आन्दोलन करते रहे हैं और प्रचार-साहित्यभी प्रचारित-प्रसारित होता रहा है। राजनीतिसे संबद्ध प्रमुख लोग और दलभी राजनीतिक लाभ प्राप्त करनेके लिए कुछ इसी प्रकारका साहित्य बाजारमें लाते रहे हैं। इस साहित्यसे यह तो स्पष्ट होता है कि सुधारकों और राजनीतिज्ञोंको क्रूरताके शिकार वर्गोंकी समस्याओंकी प्रतीति तो हैं परन्तु उस जीवनकी अनुभूति नहीं है। इस सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनसे प्रभावित होकर मध्यवर्गीय लेखकोंका ऐसा वर्ग साहित्य क्षेत्रमें उतरा जिसकी भाषा कटु थी, जिसमें वैचारिक उग्रता थी और साहित्यके उपादानोंका आश्रय लेनेके कारण इसे साहित्यिक मान्यताभी प्राप्त हुई। परन्तु भुक्तभोगीकी अनुभूतिसे उत्पन्न संस्कारोंके अभावके कारण यह साहित्य बहुत प्रभावक सिद्ध नहीं हुआ तथापि प्रशंसित हुआ। समाजके अभिशप्त वर्गसे सहानुभूति रखनेवालोंका यह साहित्यिक प्रयास असफल नहीं कहा जा सकता। अब विभिन्न प्रयासों, आन्दोलनों और राजनीतिक स्तरपर उठाये गये ठोस कदमोंके परिणामस्वरूप एक नया साहित्य सभी भारतीय भाषाओंमें प्रस्तुत होने लगा है—मौलिक लेखन अथवा अनुवाद द्वारा—जिसे 'तप्त साहित्य' की हमने संज्ञा दी है।

पीढ़ियोंसे अमानुषिक यंत्रणाएं भोगते रहनेके कारण इस वर्गकी चेतनाने जिन संस्कारोंका आकलन किया, वही अब अभिव्यक्तिकी सुविधा प्राप्त होतेही प्रस्फुटित होकर सामने आया है। अभिशप्त जीवनकी भयानक वास्तविकता साकार होकर उपस्थित होती है तो वह ऐसा तप्त लोह प्रतीत होता है जिसका स्पर्श करनेका साहस जुटानाभी कठिन होता है। इससे अनेक शंकाएं जन्म ले रही हैं, अनेक प्रश्न उठ रहे हैं। इन शंकाओं और प्रश्नों की चर्चा करते समय हम यह नहीं भुला सकते कि इस 'तप्त-साहित्य' को जन्म देनेवाले लेखक, उपन्यासकार, कहानीकार और कवि हैं, प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हैं। न केवल साहित्य स्तरपर इन्होंने अपना वैशिष्ट्य स्थापित किया है, बल्कि प्रभावात्मक स्तरपर एक पृथक्तावादी मानसिकताको भी जन्म दिया है जिसे परिस्थितिजन्य माना जा सकता है। इसलिए प्रभावात्मक स्तरपर ही उपचारकी संभावनाएं भी हो सकती हैं।

उन्नीसवीं शतीमें देशपर जो शिक्षण-पद्धति लादी गयी, जोकि आजभी देशमें चालू है, उसका उद्देश्य इस देशके सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्वको नकारना रहा है और पाश्चात्य जीवन और दर्शन पद्धतिमें पूरे समाजको ढालना रहा है। इस शिक्षण-पद्धतिके सम्पर्कमें देरसे आने पर भी इस वर्गके भीतर सुलगते असन्तोषको एक वैचारिक आधार और विद्रोहकी भावना मिली, आत्माभिमान की भावना जागृत हुई और मिली शेष समाजसे अपनी पृथक्ता स्थापित करनेकी प्रेरणा। अब आग्रहपूर्वक इस पृथक्ताकी स्थापनाके प्रयत्न हो रहे हैं, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक,धार्मिक स्तरोंपर भी और साहित्य-कलाके स्तरभी। इसी मानसिकताको लक्ष्यकर ये प्रश्न उठाये गये हैं कि क्या तप्त-साहित्य वस्तुतः साहित्यकी कोटिमें आता है, साहित्यकी कसौटीपर खरा उतरता है, साहित्यमें कलात्मक सौन्दर्यके दर्शनकी आकांक्षा पूरी होती है? सम्पूर्ण जीवनके गन्तव्यकी अभिव्यक्ति और प्रेरणाकी इस साहित्यसे कितनी पूर्ति होती है?

भारतीय साहित्यकी अपनी परम्परा अतीतसे जुड़ी है। परन्तु तप्त-साहित्य शब्दप्रामाण्य, ग्रन्थप्रामाण्य, आत्मा और ईश्वर और उसपर आधारित समस्त नैतिकता एवं धर्मसत्ताको अस्वीकार करता है। साहित्यके परम्परागत सांस्कृतिक और वैचारिक पक्षको नकारता है, साहित्यगत संस्कारों और अनुभूतियोंको स्वीकार करनेको तत्पर नहीं हैं। तप्त-साहित्यके चिन्तकों और उसके दर्शनको प्रस्तुत करनेवालोंकी मान्यता है कि परिवर्तनशीलताका विरोध करनेवाली किसीभी स्थितिको स्वीकार नहीं किया जा सकता। उनका यह नकार कभी-कभी इस तथ्यकी भी उपेक्षा करता प्रतीत होता है कि भारतीय जीवन-पद्धति और दर्शनमें निरन्तर परिवर्तन हो हो रहे हैं, और उनके कारण एक नवीन मानसिकताका निर्माण हो रहा है। इस उपेक्षाके लिए उनकी युगोंकी संकुलित पीड़ा, त्रासदायक अनुभूतियोंके संस्कार एक कारण हो सकते हैं, परन्तु संपूर्ण सामाजिक परिप्रेक्ष्यकी दृष्टिसे इस अवरोधक तत्त्वको स्वीकृति प्रदान करना सहज नहीं है। यहीं यह आशंका जन्म लेती है कि क्या तप्त-साहित्य हजारों वर्षोंकी राजनीतिक, और सैनिक विवशताके कारण पराजित, इस कारण खण्डित चेतनाके भारतीय समाजको किसीभी स्तरकी पृथक्तावादी स्थिति की ओर तो नहीं धकेल रहा!

भारतीय समाजकी परिवर्तनकामी मानसिकता प्रायः सभी प्रकारके साहित्यको स्वीकृति प्रदान करती है। परन्तु किसीभी साहित्यकी अन्तर्निहित प्रेरणाको देखे-समझे बिना काम नहीं चलता। परम्पराकी अस्वीकृतिके बाद

जिस नयी धाराको ग्रहण [illegible] है, यह [illegible] से ही भारतीय व्यक्तित्व और कृतित्वको समाप्त करनेके लिए प्रयत्नशील रही है और समय-समयपर इस प्रकारके पृथक्तावादी आन्दोलनोंको जन्म देनेके लिए प्रयत्नशील रही है। इसका मूलाधार सर्जनशील या निर्माणात्मक न होकर विनाशक रहा है। यही प्रवृत्ति साहित्यके इस नये रूपमें उभरकर सामने आ रही है। तीव्रानुभूतियों और युग-युगकी पीड़ाओंके संस्कार सर्जनशील मनीषीको काल-जयी कृतिके सर्जनका श्रेय प्रदान कर सकते हैं और विनाशके ताण्डव नृत्यकी गुरुताके लिए उत्तरदायी ठहरा सकते हैं। आजकी खण्डित चेतनाके हमारे समाजमें तो यह साहित्य विघटनके नृत्यकी भूमिका बांधता प्रतीत होता है, जिसके दर्शन विभिन्न संघर्षों और प्रदर्शनोंमें होते हैं। पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तनमें विनाशके इस रूपको स्वीकृति प्रदान की गयी है और विनाशके बाद नये समाजके निर्माणकी कल्पना की गयी है। परन्तु खण्डित चेतनाके समाजमें विनाशकी यह प्रक्रिया दो पृथक्-पृथक् समाजोंके निर्माणकी स्थिति उत्पन्न कर देता है, ये दो समाज एक दूसरेके विरोधी होते हैं और उन दोनों समाजोंमें शोषक-शोषित का स्थान बदल जाता है।

इस सामाजिक प्रक्रियामें अभिशप्त वर्गकी पृथक्तावादी और प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहन देनेवाली कृतियोंको स्वीकृति या मान्यता देनेका प्रश्न यहां हम नहीं उठा रहे, क्योंकि यह तो कृतिके अपने मूल्य और गर्भितार्थपर निर्भर है। परन्तु अपराध-बोधकी भावना जागृतकर आततायी वर्गों और तत्त्वोंको सम-समाजके विकासमें योगदानके लिए प्रेरणा देनेवाली कृतियोंको स्वीकृति प्राप्त हो सकती है। यह लेखकीय प्रतिभा और उसकी आस्थाका प्रश्न है। साहित्यिक आन्दोलन, तप्त-साहित्य की चेतना, वैचारिक पृष्ठभूमि, दार्शनिक चिन्तन अथवा विवेचन-विश्लेषण द्वारा इस साहित्यको सामयिक मान्यता दिला सकते हैं, परन्तु महत्त्व सामाजिक निर्माण और उसके लिए साहित्यके योगदानका है। इस दृष्टिसे साहित्यके गन्तव्यको भुलाया नहीं जा सकता। साहित्यिक कसौटियां परिवर्तनशील हैं, स्थान विशेषकी श्रेष्ठ कृति अन्यत्रभी श्रेष्ठ रूपमें स्वीकृत होगी अथवा कुछ समय व्यतीत होने पर श्रेष्ठ रूपमें मान्य होगी, यह गारंटी कौन कर सकता है?

अतीतकी सम्पूर्ण रूपसे अस्वीकृति काम्य है अथवा अकाम्य, स्वयं अतीत काम्य है अथवा अकाम्य, यह कट्टरपंथी विचारधारासे जुड़ा प्रश्न है। सामाजिक और साहित्यिक स्तरपर इस विवादास्पद दृष्टिकोणको बीचमें लानेसे [illegible] पैदा होती है। हमारा आधुनिक जीवन अतीतके किन संस्कारों, स्मृतियोंसे अछूता है, यह निर्धारित करना दुस्साहसका काम है। आजका साहित्य भी पाश्चात्य और मार्क्सवादी अवधारणओंको उगलते रहनेपर और आधुनिकताका दावा करनेपर भी कितने अंशोंमें परम्परागत सामाजिक सांस्कृतिक, नैतिक और ऐतिहासिक संस्कारोंसे मुक्त है, यह उसी साहित्यको स्वयं तथ्यपरक घोषणा करनी चाहिये। जिस तप्त-साहित्यकी चर्चा हम कर रहे हैं, उसके विचारक-समीक्षक भी अभिशप्त वर्गके भारतीय संस्कृतिमें साहित्यिक-सांस्कृतिक योगदानकी सगर्व चर्चा करते हैं। राष्ट्रीय स्तरपर भी अतीतकी इस अस्वीकृतिका दण्ड हमें भुगतान पड़ा है। पाश्चात्य वैचारिक दीक्षाके कारण शब्द-प्रामाण्य और ग्रन्थप्रामाण्यको अस्वीकृति तो प्रदान की गयी, परन्तु इसके कारण भारतको मध्य और पूर्व एशियाके (कैलाश-मानसरोवर क्षेत्र सहित) क्षेत्रोंसे हाथ धोना पड़ा। अतीत से सम्पूर्ण रूपसे कट जानेकी साहित्यिक घोषणाएं साहित्य को कितनी विशिष्टता प्रदान करती हैं, यह इस साहित्य के विवेचकोंको बताना चाहिये।

साहित्यकी अपनी कसौटियां हैं। भारतीय साहित्य में ये कसौटियां कभी एक नहीं रहीं। ये विविध रूपी हैं। वैदिक और औपनिषदिक कसौटियोंसे आजके साहित्यका निरूपण नहीं हो सकता, आजकी कसौटियोंसे वैदिक औपनिषदिक साहित्यका मूल्यांकन नहीं हो सकता, यद्यपि पाश्चत्य विद्वान् अपनीही कसौटियोंसे इसका मूल्यांकन करते हैं, और उनके निष्कर्ष बिल्कुल अप्रासंगिक होनेपर भी अनेक भारतीय विद्वान् ज्योंका त्यों स्वीकारकर उन्हें प्रचारित-प्रसारित करते हैं। यही स्थिति तप्त-साहित्यके मूल्यांकनकी है। सम्पूर्ण साहित्य और तप्त-साहित्यभी, दोनोंके मूल्यांकनकी दो अलग-अलग कसौटियां नहीं हो सकतीं। कलात्मक संभावनाओंका क्षेत्र असीमित है, जीवनानुभूतियोंकी गणना नहीं हो सकती, परन्तु उनमें आस्थाका प्रश्न समान है। आस्था ही सर्जनशीलताकी प्रेरणा है। फिरभी विवेकको निरन्तर जागृत रखना पड़ता है, अनास्थाकी घोषणाओं द्वारा विवेकको कुण्ठित करनेसे सर्जनशीलताके कर्ममें बाधा उत्पन्न होगी और अपने चारों ओरकी सीमाओंका निर्धारण होगा। सीमाओंमें संकुचित व्यक्तिवादी चेतना अधिक घातक और विनाशकारी हो सकती है। इसका आधार अकेलापन और असहायावस्था होती, जिससे वह अधिक व्यापक परिवेश स्वीकार कर बच सकता है। व्यापक परिवेशमें प्रवेश करनेके बाद अपनी तीव्रानुभूतियों और युग-युगकी पीड़ाओंके संस्कारोंसे ही तप्त-साहित्य नहीं कल्याण-साहित्यकी सृष्टि होगी। ▭

चिराग

[अनूदित तमिल उपन्यास]

लेखक : मु० वरदराजन; अनुवादक : क. त. अ. कलैवाणन्; प्रकाशक : साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, ३५ फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : २५६; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

किसीभी कृतिके लिए किसी पुरस्कारसे सम्मानित होना उसके लिए गौरवकी बात हो सकती है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसकी सर्वांगीण श्रेष्ठताका प्रमाणभी हो। पुरस्कार सर्वथा निर्विवाद नहीं होते, सर्वदेशीय और सर्वकालिक तो कदापि नहीं हो सकते। देश और काल के अनुसार श्रेष्ठताके ही नहीं, आलोचनाके प्रतिमानभी बदलते रहते हैं। अभी हालमें साहित्य अकादमीके पुरस्कार ही लोक-सभातक में विवादका विषय बन चुके हैं। इसके अतिरिक्त पुरस्कार किसी दायरे विशेषके लिएभी हो सकते हैं जैसे भाषा विशेष,अवधि विशेष,समूह-विशेष,व्यक्ति-विशेष की कृतिके दायरेभी। आदर्शकी कसौटीपर श्रेष्ठ कृतिके लिए आवश्यक नहीं कि यह यथार्थकी कसौटीपर भी श्रेष्ठ उतरे और यह स्थितिभी सम्भव है कि समीक्षकका मन पहलेही किसी श्रेष्ठतर-कृतिसे प्रभावाच्छन्न हो और इस लिए बादकी किसी कृतिमें उच्चताके वे प्रतिमान उसे न दिखायी दें, चाहे समीक्षकका प्रकृत उद्देश्य तुलनात्मक न भी रहा हो। येही सब विचार तमिलके समीक्ष्य उपन्यास 'चिराग' के हिन्दी अनुवादको पढ़ते समय समीक्षक के मनमें आते रहे हैं। समीक्ष्य मूल कृति सन् १९६१ का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त कर चुकी है। संयोगसे इस उपन्याससे पहले समीक्षकके मनपर साहित्य अकादमी पुरस्कारसे सम्मानित डोगरी भाषाके एक दूसरे उपन्यास 'धरती अपनी अपनी' का प्रभाव ताजा था। उसकी समीक्षा 'प्रकर' के दिसम्बर १९८१ के अंकमें प्रकाशित हो चुकी है। जिस तरह प्रस्तुत उपन्यास दो मित्रों, चन्द्रन और वेलय्यनकी कहानी है, उसी तरह 'धरती अपनी अपनी' भी दो मित्रोंकी ही कहानी है, जो भिन्न धर्मावलम्बी हैं। 'चिराग' के दोनों मित्र भिन्न धर्मावलम्बी तो नहीं, किन्तु भिन्न स्वभावके अवश्य हैं। दोनों ही कृतियां आदर्शके आग्रहसे प्रस्तुत की गयी हैं, किन्तु उनके परिवेश, काल और प्रतिपादनमें जमीन-आसमानका अन्तर है। यहाँ उनकी तुलनात्मक समीक्षाका कोई प्रयोजन नहीं है। कहनेका तात्पर्य केवल यही है कि इस उपन्यासको पढ़ते समय समीक्षकको अनायास डोगरीके उस उपन्यासका स्मरण आता रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास इस शतीके तीसरे दशकके तमिलनाडुके ग्रामीण जन-जीवनका चित्र चित्रित करनेका प्रयत्न है। लेखक गाँधीवादीही नहीं, प्रत्युत महात्मा गांधीका परम भक्तभी है, अतः प्राचीन तपोवनीय ग्रामीण-संस्कृति के लिए उसके मनमें आस्था और निष्ठा स्वाभाविक है। आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा और तड़क-भड़कवाली जीवन प्रणालीसे उसका विरोधभी उतनाही स्पष्ट है। यह बात दूसरी है कि छह दशक बाद और स्वाधीनता प्राप्तिके बाद हमारी मानसिकतामें तो गहरा बदलाव आयाही है, ग्रामीण परिस्थितियों और फलस्वरूप उनकी संस्कृतियोंमें भी गुणात्मक परिवर्तन हुए हैं। कोरी आदर्शवादिताभी जीवनका स्वप्नही हो सकती है,वास्तविकता नहीं। इस ी विश्वसनीयताके लिए उपन्यासके अपने परिचयमें श्री रघुनायकन्ने ही यह आशंकाजन्य प्रश्न उठाया है, 'केवल मनोरंजनके उद्देश्यसे कहानी पढ़कर अपना समय नष्ट करनेवाले शिक्षित-वर्गको क्या यह उपन्यास विचारों ी दुनियांमें ले जाकर जीवनकी बुनियादी समस्याओंके प्रति उनका ध्यान आकर्षित नहीं करेगा ?' उत्तरमें कई नये चिन्त्य प्रश्न उठ खड़े होते हैं। पहला तो यही कि क्या 'केवल मनोरंजनके उद्देश्यसे' पढ़नेवाला शिक्षित वर्ग इस स्थूल आदर्शवादी रचनाको पढ़नेमें अपने समयका सदुप-

योग करना चाहेगा ? यदि करभी ले तो क्या आधुनिक शिक्षाके फलस्वरूप चन्द्रन्के स्वभावमें पैदा हुई विकृति उसे प्रभावित करेगी ? अपने प्रारम्भिक जीवनमें चन्द्रन् एक प्रतिभाशाली, अध्ययनशील और सुन्दर व्यक्तित्व वाला पूरे गाँवका आदर्श युवक था। क्या केवल आधुनिक शिक्षाके कारणही उसका ऐसा गहरा पतन और कारुणिक अन्त दिखाना अभीष्ट प्रभाव पैदा कर सकता है ? अच्छी ज्ञानदायिनी शिक्षा-प्राप्त मालनकी भी ऐसीही दशा दिखायी गयी है। लेखक गाँधीवादी है, किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या आजके युगमें तपोवनी-शिक्षा सचमुच आधुनिक मानवके सर्वांगीण विकासका साधन बन सकती है ? वेलय्यनके आदर्शोन्मुखी औसत व्यक्तित्व वाले चित्रणसे लेखकने यही प्रतिपादित करनेका प्रयत्न किया है, किन्तु लेखकके इस प्रयत्नमें पात्र लेखकके हाथ की कठपुतलियाँही बनकर रह गये हैं। उन्हें लेखक जिस तरह नचाना चाहता है, वे अपने व्यक्तित्वके बावजूद उसी तरह हरकत करनेको बाध्य हैं। यहांतक कि कुष्ठ रोगसे ग्रस्त चन्द्रन्की कुण्ठाहीन सेवामें वेलय्यनको भी लेखक उसी तरह नियोजित कर देता है, जैसा महात्मा गांधीने अपने आश्रममें परचुरे तथा अन्य कुष्ठरोगियों की सेवामें अपने आपको लगा दिया था। महात्माजीके मनकी वृत्तिसे हम परिचित हों भी, तबभी कथाके नायक वेलय्यनको असाधारण मानव बना देना औपन्यासिक-कलाके लिए कोई प्रत्यायक या प्रभावकारी तथ्य नहीं हो सकता। लेखककी गाँधी-भक्तिके लिए कई स्थानोंपर औपन्यासिकताको भारी मूल्य चुकाना पड़ा है। पृष्ठ ७६ के आगेका गाँधीजीकी गिरफ्तारीका प्रसंग और वेलय्यनके लम्बे स्वगतोक्त विचार इसका प्रमाण हैं।

दोनों मित्रोंकी यह कथा पूर्णतः आदर्शवादी है, और इसीलिए सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओंसे असम्पृक्त होनेके कारण बड़ी चौरस हो गयी है। चन्द्रन् एक प्रतिभाशाली, महत्त्वाकांक्षी व्यवहारवादी और कर्मठ युवक है। मानो आधुनिक शिक्षाका दण्ड देनेके लिए ही लेखकने उसे पतनके पथपर ढकेल दिया है। लेखकके लिए यह आवश्यक था कि उसके जीवनको दुःख, पीड़ा और व्याधिसे ग्रस्त दिखाये। इसके विपरीत नेकीकी राहपर चलनेवाला औसत व्यक्तित्वका उसका साथी वेलय्यन जीवनमें सफलता प्राप्तकर तुलसीके पौधेके समान विकसित हो जाता है, जो कनेरके पौधेकी तरह रंगीन फूलों वाला न होकरभी, सुगन्धित और गुणदायक होता है। उपन्यासकी सार-तत्त्व वेलय्यनके प्रति चन्द्रन्की इस उक्ति में स्पष्ट है, तुम्हारा जीवन मिट्टीके दीपकके समान और मेरा पीतलके दीपकके समान था। मेरी चमक-दमक कुछ दिनोंके लिए थी जरूर, इन सबसे क्या लाभ हुआ ? धीरे-धीरे उस दीपकमें विकार आ गया जिससे तेल सड़ गया और बातीभी नष्ट हो गयी। ज्योति मन्द पड़ने लगी। मैं निस्तेज हो गया। पर तुम तो उस दीयेके समान हो, जिसकी लौ शान्त और स्थिर रहती है।' (पृ. २५१)। उपन्यासके नाम 'चिराग़' की यही सार्थकता है।

उपन्यासके स्त्री-पात्रभी इसी तरह स्वाभाविक न होकर लेखककी इच्छाके कठपुतली मात्र बन गये हैं। बाल-विधवा पड़ोसिन भाग्यम्का चरित्रभी ऐसाही एक आदर्श है। चन्द्रन्की बहन कल्पकम, वेलनकी बहन मणिमैखलै और उसकी फूफीजात बहन कयलकण्णि आदिके चरित्रोंमें सपाट बयानीही है, मनोवैज्ञानिक सूझबूझका प्रमाण नहीं। उपन्यासमें स्थान-स्थानपर वेलय्यनकी कोरे आदर्शसे भरी लम्बी स्वगतोक्तियां प्रसंगानुकूल न होनेसे ऊबानेवाली ही अधिक प्रमाणित होती हैं।

किन्तु इस कृतिको एक दूसरी दृष्टिसे देखनाभी आवश्यक है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि यह एक विशिष्ट ग्रामीण-क्षेत्र और खासकर इस शताब्दिके उस तीसरे दशकके वातावरणसे सम्बन्ध रखती है, जब भारत स्वाधीन नहीं हुआ था, और मनुष्य सामान्यतः विचारोंमें ही नहीं, परिवेशमें भी सादगी पसन्द थे और जिनका सामान्य जीवन मानसिक-व्यूहोंका रंगमंच नहीं हो गया था। आदर्शकी सृष्टिभी सर्वथा अहेतुक या निरर्थक नहीं होती। सद्वृत्तियोंका उदय अन्ततोगत्वा मनुष्यके मानस में ही सम्पन्न हो सकता है। इसके अतिरिक्त अपनी सहोदर भाषाओंकी तरह हिन्दीको अपनी सहयोगी-भाषाओंके श्रेष्ठ साहित्य तथा श्रेष्ठ साहित्यकारोंका परिचय प्राप्त करनेमें भी यह एक स्तुत्य और अनुकरणीय प्रयास है। इसके हिन्दी अनुवादक तमिलके मर्मज्ञ विद्वान् हैं और उनका हिन्दी अनुवाद प्रवाहमय और स्वाभाविक हुआ है, यद्यपि कहीं-कहीं वह पुस्तकीयभी हो गया है। पुस्तकमें कहीं-कहीं मुद्रणकी अशुद्धियां भी हैं। पृष्ठ १८५ पर 'मणिमैखलै'के स्थानपर 'कयलकण्णि'नाम दिया गया है, जो स्पष्टही अनुवादककी असावधानीका फल है। एक बात अवश्य खटके बिना नहीं रहती, वह है पुस्तककी मूल-भाषा 'तमिल' के नामकी वर्तनीकी ! वह 'तमिष्' के रूपमें भी

व्यक्त की गयी है। इस विभेदसे सहजही बचा जा सकता था।

□ कन्हैयालाल ओझा

भटकाव

[अनूदित बंगला उपन्यास]

लेखिका : **महाश्वेतादेवी; अनुवादक : जगत शंखधर; प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १५५; क्रा. ८०; मूल्य : २०.०० रु.।**

अनुभवकी प्रामाणिकता और उसकी सशक्त अभिव्यक्तिके लिए प्रख्यात महाश्वेतादेवी 'जंगलके दावेदार', '१०८४ वेंकी मां', और 'अग्निगर्भ' के बाद हिन्दी-पाठकों के समक्ष 'भटकाव' के माध्यमसे आयी हैं। यह उनकी औपन्यासिक कृति 'घरे फेरा' का अनुवाद है। आवरण-पृष्ठपर आशा की गयी है कि 'यह सशक्त उपन्यास हिन्दी के पाठकोंको निश्चित रूपसे सोचनेके लिए मजबूर करेगा।' यह आशा उपयुक्त है।

'भटकाव' का पाठक यदि लेखकभी है तो यह उपन्यास उसके चिन्तनको झकझोरनेमें निश्चयही सफल होगा, क्योंकि इसके केन्द्रमें देवादिदेव नामका लेखकही है। चिन्तनकी प्रखरता चरित्रोंके या विचार-बिन्दुओंके जरिये ही प्रकट होती है। देवादिदेव इस उपन्यासका प्रमुख चरित्र है—नायक है। उसके चरित्रमें वे लेखक अपना प्रतिबिम्ब देख लेंगे जो वामपंथी आन्दोलनके पक्षधरभी होना चाहते हैं और व्यवस्थाके पालतू 'विद्रोही' बनकर दक्षिणपंथी शिविरकी नेक नजरोंमें भी रहना चाहते हैं, जो पाठ्य-पुस्तक चुनाव कमेटीसे लेकर सभी तरहकी कमेटियोंका सदस्यभी बनना चाहते हैं और नक्सलवादी जैसे आन्दोलनसे सहानुभूतिभी दर्शाते हैं, जो पुरस्कृतभी होना चाहते हैं और सत्ताको गालियांभी देना चाहते हैं। वाम विचारधाराका मुखौटा लगाकर कायर होते जाने, पथभ्रष्ट होते जानेवाले देवादिदेवकी अन्तरंग गाथा 'भटकाव' में है। नयी वामपंथी पीढ़ीका युवक शंकरदयाल देवादिदेवकी आत्मकथाके अनुवादके प्रस्तावको ठुकराता हुआ जो कहता है,वह दुहरे व्यक्तित्ववाले लेखकोंके मुंहपर तमाचाही है—'महाशय, आप लोगोंसे मैं नफरत करता हूं। कभी कुछ सच बातें लिखी थी। उन्हें सुनाकर सच्चे, विवेकपूर्ण, प्रतिबद्ध लेखकके रूपमें लोगोंकी श्रद्धा प्राप्त करना चाहते हैं और साथही शक्तिका व्यापारभी करते हैं। आप जैसे महान् लेखककी आत्मकथा मेरे निकट, देवादिदेव बोस, रद्दी कागजोंके अलावा कुछ नहीं है।' (पृ. २२)

ऐसा नहीं है कि देवादिदेव नासमझ है। वह समझता है कि उसकी रचनाएं जीवन, मनुष्य और समाज विमुख होती जा रही हैं, वह कायर होता जा रहा है, अस्वीकृत होता जा रहा है, आत्म-विश्लेषणके लिए, जीवन-धारामें लौट आनेके लिएही वह पर्वतीय एकान्तमें शरण लेता है। ईप्सिता—उसकी पत्नी विदा करते हुए कहती है—'आत्मान्वेषण करने जा रहे हो। छातीके भीतर कोना-कोना खोज डालो। देखो, गिरावट कबसे शुरू हुई थी? ईमानदार बनो, इससे बड़ी कोई और बात नहीं है, कभी भी नहीं है।' (पृ. ६२) लेखक-पाठकके लिए विचारका यह बिन्दु क्या कुछ कम है?

पर ऐसे विचार-बिन्दु तो 'भटकाव' में यत्र-तत्र बिखरे हुए हैं। केवल एक देखिये—'तुमभी अब एक व्यवस्था हो। तुम सभी वामपंथी, जनताके आदमी हो। और तुम्हारी जीवन-यात्रा, जीवन-यापनका आदर्श और तौर-तरीका—सभी व्यवस्थाके सेवक हैं। तुम लोगोका काम्य उच्चमध्य वर्गका जीवन है। कम्पनीके बॉस लोगों की तरह तुमभी देशकी ओरसे शुतुरमुर्गकी तरह आँखें बंद किये रहते हो। वे पार्टी देते हैं, बचाव तलाश करते हैं। तुम्हारा पलायन तथाकथित विरोध-साहित्यमें होता है। तुम्हारी संतानें कान्वेंटमें या अन्य किसी अच्छे स्कूलमें पढ़ती हैं, विदेश जाती हैं, स्वदेशमें अच्छी नौकरी करती हैं।' (पृ. ५५)

पर्वतीय एकान्त देवादिदेवके सामने उसके बीते जीवनकी सारी घटनाएं खोलता जाता है—रीलकी तरह। फ्लैश बैक शैलीमें चरित्रभी खुलते जाते हैं—शंकरदयाल, बलवंत, उज्ज्वला दत्त, गोपालकृष्णन, बादल, ललिता आदि। आक्रोश, करुणा, दृढ़ता, धैर्य, उत्साह—तरह-तरहके मानवीय भावोंके चित्र हैं ये चरित्र। और ईप्सिता? घर लौट आने—सच्चा और ईमानदार बननेकी प्रेरणा देनेवाली लेखक-पत्नी। 'घर लौटना' कई स्थलोंपर आया है। 'भटकाव' की जगह 'घर लौटना' या 'वापसी' इस उपन्यासका नाम होता तो वह अधिक व्यंजनापूर्ण लगता, सार्थकभी।

'भटकाव' की घटनाएं ताजगीका आभास देती हैं। आपात्कालको लेकर कई जगह तीखे व्यंग्य हैं। यह देखिये—'जिनके निर्देशपर इतनी सख्ती थी, सुना जाता था कि वे अपने सिंहासनपर अत्यन्त निश्चित हैं। निश्चित होनेका क्या यही नमूना है? इतनी सख्ती, धरपकड़ और गोली-गोलोंकी जरूरत उन्हें ही पड़ती है, जो हमेशा इस डरमें रहते हैं कि गद्दी अब गयी, तब गयी।'(पृ.४५) और 'सब कुछ अच्छा अच्छा था। कर्णधारके मनमें डर क्यों है? उनके काम डरके कारण हो रहे हैं। भयंकर भय मनुष्यको इतना निष्ठुर और निर्दयी बना सकता है। डरके साथ-साथ है सत्तामें बने रहनेकी अदम्य इच्छा।' (पृ. ४६)

महाश्वेतादेवीकी लेखन-शैली विश्वसनीय है—एक-एक शब्दका सार्थक प्रयोग वे करती हैं। अपनी तूलिका का तनिक-सा स्पर्श देकर कोई सजग चित्रकार चित्रकी भंगिमाओंको बदल देता है, उसी तरहकी सजगता महाश्वेतादवीके शब्द-प्रयोगमें है। शब्दोंके पीछे पृष्ठभूमिमें भी कुछ होता है—वही तो है जो कथ्य है। चरित्रांकन में यह शैलीभी है—'शंकरदयाल—ऊँचाई पाँच फीट दस इंच। रंग गोरा। नाक चिपटी। होंठ मोटे। हब्शियोंसे बाल। आंखें बादामी। पहचानकी निशानी—बांयी भौंह पर चोटका निशान। बचपनमें गिर गया था। दिल्लीमें पैदा हुआ। पिता कृषि विभागमें बाबू थे।' (पृ. १५) लेकिन भीतर-भीतर नकारे जानेकी वेदनासे व्याकुल देवादिदेवका चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक आधारभी लिये हुए है।

निष्कर्षत: 'भटकाव' सजग लेखनका उदाहरण है। पठनीय है क्योंकि विचार-प्रसार अच्छी रचनाकी पहचान है और इस दृष्टिसे यह सफल है।

□ **डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी**

हीराके प्रति

[अनूदित गुजराती संस्मरण पत्र साहित्य]

लेखक : हसमुख पारेख; अनुवादक : रघुवीर चौधरी एवं सुशीला जोशी; प्रकाशक : वोरा एंड कम्पनी पब्लिशिंग कं., ३ राउंड बिल्डिंग, कालबा देवी, मुम्बई-४००-००२। पृष्ठ : २१८; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

श्री 'हसमुख पारेख' औद्योगिक अर्थ-व्यवस्था तथा अर्थशास्त्रीय जगत्के एक जाने-माने व्यक्तित्व हैं। लेखक का जीवन देश-विदेशकी अर्थव्यवस्था और पूंजी बाजार की समस्याओंके प्रति समर्पित रहा है 'लंदन स्कूल आफ एकनामिक्स' से 'बैंकिंग एवं फाइनांस' में बी. एस्सी. उपाधि प्राप्त श्री पारेखने सर्वप्रथम बम्बईकी एक ख्याति-प्राप्त स्टाक एक्सचेंज फर्ममें कार्य प्रारम्भ किया और अपने मृदुल एवं निःस्पृह स्वभाव तथा कार्यके प्रति लगन एवं ईमानदारी और अध्ययन-लेखनके कारण व्यापारी जगत्में अच्छी साख स्थापित की। बादमें 'विश्व बैंक' के सहयोगसे स्थापित—'इंडस्ट्रियल क्रेडिट एंड इन्वेस्टमेंट कारपोरेशन आफ इंडिया— (आई. सी. आई. सी. आई.) के क्रमशः उपमहाप्रबंधक, महाप्रबंधक, प्रबंध निदेशक तथा निदेशक मंडलके अध्यक्ष पदपर कार्य करते रहे हैं। इस संस्थासे सेवानिवृत्त हो जानेपर आपने हाउसिंग डेवलपमेंट फाइनांस कारपोरेशनकी स्थापना की जिसके आप अध्यक्ष हैं। अर्थशास्त्र एवं व्यावसायिक जगत्की अनेक समस्याओंके संदर्भ में आपने अनेक देशोंकी यात्राएं की हैं और इस संबंधमें आधा दर्जन पुस्तकोंके अलावा पर्याप्त मात्रामें स्फुट लेखन किया है।

'हीराके प्रति' मूलत: दो खण्डोंमें प्रकाशित गुजराती कृति—'हीराने पत्रो'—का हिन्दी अनुवाद है जो यहां एकही जिल्दमें निबंधित है। कृति आत्म-निवेदन, संस्मरण और पत्र-साहित्यका एक मिलाजुला अनोखा रूप है। पत्नी-'हीरा'-के दिवंगत होजानेपर लेखक (पति) के विरह-विदग्ध एकाकी मनकी—जीवनका अनुदर्शन करते हुए—अनुभूतियों का पत्र रूपमें प्रकाशन है। प्रथम खण्डमें दस पत्र हैं और दूसरेमें ग्यारह। प्रथम दस पत्रोंमें पत्नीके प्रति प्रगाढ़ प्रेमके साथ-साथ लेखकके अपने जीवन-वृत्तकी यत्र-तत्र बिखरी हुई संक्षिप्त रूपरेखा प्रकट हुई है। स्वभावत: इस प्रत्यावर्त्तित जीवनमें अपने और पत्नीके परिजनोंसे संबंधित घटनाओंका उल्लेखभी हुआ है। संपूर्ण जीवन 'हिन्दू जीवन दर्शन' से परिचालित दृष्टिगोचर होता है। इस कृतिमें उल्लिखित प्राय: सभी पात्र एक अदृश्य शक्तिसे संचालित दिखायी देते हैं। लेखकका संपूर्ण जीवन लगता है किसी पूर्व निश्चित रूप-रेखाके अनुसार एक अविचल गतिसे उत्तरोत्तर प्रगति पथ पर बढ़ता चला जाता है। ६ भाई और २ बहिनोंके साथ बम्बईके एक मध्यवर्गीय परिवारमें जन्मे लेखकके चरित्र पर अपनी परिश्रमी, सहनशील, सेवापरायण और स्नेहशील उदारमना 'मां' का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। (पृ. ३०) छात्र जीवनसे ही लेखक अध्ययनशील जिज्ञासु

और परिश्रमी होनेके साथ-साथ, अशोक मेहता, छोटू भाई देसाई, दांतवाला आदि मेधावी छात्रोंकी संगतिसे लाभान्वित रहा है। अशोक मेहतासे लेखककी अटूट मैत्री रही और उसके कारण बादमें श्री अच्युत पटवर्द्धन, मीनू मसानी, यूसुफ मेहरअली तथा जयप्रकाश नारायण जैसे उच्चकोटिके नेताओं और विचारकोंकी मैत्रीका सुख प्राप्त हुआ। (पृ. २४)।

कालेज जीवनके समयही, अपनेही मुहल्लेमें रहनेवाली लड़की हीरासे परिचय बढ़ता है जो उत्तरोत्तर विकसित होकर विवाहके रूपमें परिवर्तित होता है। इस सारी विकास-यात्राका अत्यन्त मर्यादित उल्लेख किया गया है। प्रसंगवश लेखकने अपने और पत्नीके अनेक परिजनोंका उल्लेख किया है; जिनमें लेखककी माँ (पृ. ३०-३३) हीरा के बहनोई श्री चिमनभाई (पृ. ३८); डॉ. पन्नालाल (लेखकके पारिवारिक डॉक्टर और मित्र) श्री शांति भ.ई और मधुकर भाई विशेष रूपसे आर्कषित करते हैं। ये सभी चरित्र उच्च मनस्वी और अपने व्यवसाय तथा निजी परिवृत्तिके प्रति कर्त्तव्यपरायण हैं। वे अपने परि-जनों-मित्रों आदिका हित साधन करनेमें जीवनकी सार्थ-कता समझते हैं। इन सभी चरित्रोंके बीच एक ऐसा पात्रभी है—श्री गोरधन (हीराकी बहनकी पुत्री हेमलता का पति, जिसे लेखक-दम्पती अपने पुत्रकी तरह मानते हैं) जो एक प्रतिभाशाली, सद्‌गुण सम्पन्न तथा उच्च शिक्षित युवक होते हुएभी प्रमाद और कुसंगतिमें फँसकर अपना जीवन नरक बना लेता है।

उक्त पारिवारिक चरित्रोंके उल्लेखके अतिरिक्त इस कृतिमें लेखकने कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्तियोंके चारित्रिक गुणोंपर भी प्रकाश डाला है जिनसे व्यवसायके कारण उसका परिचय हुआ। इन व्यक्तियोंमें से श्री हरकिशन-दास (हकुभाई)—जो बम्बईके शेअर बाज़ारकी एक प्रमुख संस्था 'हरकिसनदास लखमीदास' के मालिक थे — के साथ लेखकने लगभग २० वर्ष व्यतीत किये। हकुभाई की लगन, सूझबूझ, सौजन्यशीलता, विचारशीलता, आतिथ्य सत्कारिता और मानवीय स्वभावकी परख आदि गुणोंका उल्लेख यथेष्ट मात्रामें (पृ. ४४-५७) किया गया है। आई. सी. आई. सी. आई. के द्वितीय अध्यक्ष श्री गगन विहारी मेहता (पृ. ७७) की कार्यकुशलता; कर्त्तव्य परा-यणता; सौजन्य वृत्ति और व्यक्तित्वकी बहुविधिताकी सराहना की है। इसी प्रकार भारतके तत्कालीन वित्त-मंत्रियों श्री टी. टी. के, श्री देशमुख और श्री मुरारजी देसाई (पृ. १४३) की तुलना करते हुए श्री टी. टी. के. के साहसी, लगनशील तथा विजनरी (द्रष्टा) व्यक्तित्वकी सराहना की है। पृ. १४६ पर स्वतन्त्र भारतके रिजर्व बैंकके प्रथम भारतीय गवर्नरके रूपमें श्री देशमुखके निष्ठा-वान्, आदर्शवादी एवं विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्वका उल्लेख किया है। उद्योग जगत्‌के प्रमुख व्यक्तियोंमें से सर पुरु-षोत्तमदास ठाकुरदासको लेखकने व्यापारी जगत्‌का बेताज का बादशाहका बताते हुए उनके व्यक्तित्वकी निरपेक्षता, कार्यक्षमता तथा प्रामाणिकताका उल्लेख किया है। इसी तरह जे. आर. टाटा और घनश्यामदास बिरलाकी असा-धारण प्रतिभाकी तुलना करते हुए टाटाके व्यक्तित्वकी नम्रता तथा बिरलाजीके स्वाभिमानकी आदरपूर्वक चर्चा की है। इसी प्रसंगमें (पृ. १५२) बालचंद हीराचंदको उद्योगोंकी दुनियांका योद्धा और सेनापति माना है। उद्योग जगत्‌की उक्त महान् शक्तियोंको परखनेके अवसर को लेखक अपना सद्‌भाग्य मानता है। इस शताब्दीमें हुए दो विश्वयुद्धोंके कारण विश्व स्तरपर आये आर्थिक उतार-चढ़ावकी एक संक्षिप्त किंतु महत्त्वपूर्ण विवेचना करते हुए भारतके आर्थिक विकासकी एक झीनी-सी झांकी इस पुस्तकमें प्रस्तुत की गयी है।

जिस व्यक्तिको संबोधित करके इन पत्रोंका सृजन किया गया है उस (लेखककी पत्नी 'हीरा') के व्यक्तित्व की भलेही कोई प्रभावशाली छाप पाठकके मनपर न पड़ती हो किंतु वह लेखकके अंतरंग जीवनका एकमात्र हीरा तो है ही। हीरा एक ऐसी भारतीय पत्नी और गृहिणीके रूपमें चित्रित हुई है, जिसका सारा जीवन अपने पति और परिवारकी परिधिमें सीमित रहता है। लेखक दम्पती अपने संबंधियोंकी संतानोंके प्रति—विशेषत: चिमनभाई और कुमुद बहनकी संतानोंके प्रति हार्दिक वात्सल्यभाव रखनेके कारण निस्संतान होनेकी अपूर्णता और खिन्नताका अनुभव नहीं कर पाते।

इन पत्रोंमें अपनी आत्मकथा लिखनेका लेखकका उद्देश्य नहीं है। किंतु अपने भावों-विचारों और भाषा शैलीके आधारपर अपनी एक साफ-सुथरी तस्वीर अंकित करनेमें पर्याप्त सफल है। लेखक एक उदारमना, सुरुचि-सम्पन्न तथा आडम्बरविहीन, सीधे-सरल, साधु स्वभाव का व्यक्ति तो है ही, किंतु साथही उसके व्यक्तित्वमें व्यव-स्थापनकी पैनी बौद्धिक क्षमता तथा अपने विषयकी तीव्र एवं दूरगामी दृष्टि रखनेकी मानसिक पात्रताभी उच्च-कोटिकी दिखायी देती है। अपना सारा जीवन व्यापार

की दुनियामें व्यतीत करनेपर भी लेखकने अर्थसंचय वृत्ति को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। 'धन संचय करना, उसी प्रवृत्तिमें लीन रहना, उसीके विचारोंको प्राधान्य देना यह व्यापारी जीवनका सामान्य नियम है, लेकिन मैं इसे अपना नहीं सका। व्यापार और धन प्राप्तिके व्यवसायकी तुच्छता एवं अपूर्णताको मैं ठीकसे समझ पाया हूं।' (पृ. १२३) प्रेमके व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण अनुभव को लेखककी पूर्णताके लिए अनिवार्य मानता है। (पृ. १२१) अपने शेष जीवनको व्यतीत करनेकी आकांक्षा प्रकट करते हुए लेखक लिखता है, 'मनुष्यका अंत:विकास बाह्य विकासके साथ जुड़ा हुआ है। मानव विकास और समाज विकासको देखने और उसीमें अपने-आपको जोड़ देनेकी मेरी महत्त्वाकांक्षा है और उसी विकास यात्रामें अपने शेष वर्ष निकाल सकूं तो ही मैं उन वर्षोंकी सार्थकता भोग सकूंगा। तभी समझूंगा कि शेष जीवन रसपूर्ण रीतिसे बिताया है।' (पृ. ११६) प्रीति, मैत्री एवं करुणा का बलही लेखकके जीवनका आधार है। (पृ. १२४)

लेखक मदर टेरेसाके सेवा-कार्यसे बहुत प्रभावित हुए हैं (पृ. १२६), संभवत: लेखकको महाराष्ट्रके बाबा आमटेकी सेवा-वृत्तिसे परिचयका अवसर नहीं मिला कि किस प्रकार बाबा आमटेने अपाहिज कुष्ठ रोगियों और अंधोको आत्मविश्वास तथा पुरुषार्थकी प्रेरणा देकर स्वावलंबी जीवन जीनेकी प्रेरणा दी है।

व्यक्तिसे लेकर राष्ट्रके आर्थिक विकासकी चिन्ता करते रहनेका उल्लेख लेखकने अपने बारेमें (पृ. १२४) किया है। इसमें कोई शक नहीं कि लेखकने आर्थिक विकासके कई पहलुओंके संबंधमें बड़े स्वप्न देखे हैं और जीवनभर बड़े-बड़े उद्योगोंके विकासकी योजनाओं में सहयोग प्रदान किया है। यह ठीक है देशने पिछले पैंतीस वर्षोंमें अपूर्व आर्थिक विकास किया है, किंतु उतनीही मात्रामें आर्थिक विषमताभी विकसित हुई है। इस विषमताके संबंधमें लेखकने कोई विचार नहीं किया।

सारी पुस्तककी भाषा शैली लेखकके व्यक्तित्वकी तरह सीधी, सरल और प्रवाहयुक्त है। प्राय: सभी घटनाओं और व्यक्ति चरित्रोंकी विशेषताओंका उल्लेखमात्र ही किया गया है। ऐसी अनेक घटनाएं हैं जिन्हें चित्रात्मक ढंगसे वर्णित किया गया होता तो वे अत्यन्त रोचक बन जातीं। इसी प्रकार व्यक्तियोंके चारित्रिक गुणोंकी सूची न देकर उन्हें गतिशीलताके साथ अनुभूतिके धरातल से उठाकर कलात्मक ढंगसे संजोया गया होता तो निश्चय ही वे भव्य और प्रभावशाली लगते। कतिपय शब्द प्रयोगोंको छोड़कर—जैसे बाताकहनी (पृ. ३६), जाति (पृ. ५९), चैतसिक (पृ. १३१; २१८), जवकास (पृ. १६०), अभिगम (पृ. १६२, १६९), तोणी (पृ. १६८) इत्यादि। अनुवाद उपयुक्त है।

▭ केशव

अनोखा छात्र

[अनूदित बंगला बाल कहानी-संग्रह]

लेखिका : कणा सेन; अनु. ब्रजगोपाल दास अग्रवाल; प्रकाशक : आर्य प्रकाशन मण्डल, जगत निवास, निकट महावीर चौक, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१। पृष्ठ : ८०; क्रा. ८१; मूल्य : १०.०० रु.

ये बाल-कहानियां पढ़तेही भाषाके अनोखेपनकी ओर दृष्टि जाती है। कुछ स्थल इस प्रकार लिखे गये हैं, मानो नाटकोंमें संवादसे पूर्व कुछ निर्देश दिये जा रहे हों। अनोखा-छात्र कहानीका ही एक उदाहरण देखिये—चारों ओर कीचड़भरा पानी नजर आता है। खेतोंमें धानके नये पौधे बरसाती हवाके स्पर्शसे खुशीसे इधर-उधर झूम हैं।...आदि। इस प्रकारके स्थल बहुत हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो रंगमंच तैयार करनेके लिए कुछ निर्देश दिये जा रहे हों। हिन्दी कहानियोंमें यह शैली नई अवश्य है, पर इससे कहानीके प्रवाहमें कोई बाधा नहीं आयी।

'अनोखा छात्र' कहानीके माध्यमसे लेखिकाने बताया है कि हमारी दूषित और नीरस शिक्षाप्रणालीके कारण एक कुशाग्र छात्र विद्यालयमें जानेसे जी चुराता है। और रतन बाबू जैसे हितैषी तथा बच्चोंसे स्नेह करनेवाले अध्यापकही उसे अपने वशमें करके विद्यालयीय शिक्षामें प्रवृत्त कर सकते हैं। विद्यालयमें बिना गयेभी पापड़ने जो ज्ञान प्रकृतिसे प्राप्त किया है, वह अद्भुत है। उसे विविध पक्षियों, धानकी विविध किस्मोंकी जानकारी है। उसके व्यक्तिगत पुस्तकालयमें ऐसी वस्तुएं हैं जिनकी वनस्पतिशास्त्र व जीवशास्त्रके महाविद्यालय व विश्वविद्यालयमें पढ़नेवाले छात्रोंको भी जानकारी नहीं है। वह रवीन्द्रनाथ ठाकुरका पद सुनाकर और उसका अर्थ बताकर गोविन्द दादाको चमत्कृत कर देता है। यह पूछे जानेपर 'तुम इतना जानते हो ऐसी सुन्दर कविता

हो, फिर स्कूल क्यों नहीं जाते मुन्ना बाबू ? वह नाराज होकर कहता है—स्कूलमें क्या होता है ? धानकी पहचान कराते हैं ? पक्षीकी पहचान कराते हैं ? मछलीकी पहचान कराते हैं ? पेड़की कराते हैं ? तितली पकड़ने देते हैं ? चीटियोंको चीनी खिलाने देते हैं ? गिलहरियोंके साथ खेलने देते हैं ? पक्षियोंके घोसलोंसे अण्डा लेने देते हैं ? स्कूलमें सिर्फ पुस्तकें रटाते हैं। मैं स्कूल कभी नहीं जाऊँगा। वस्तुतः बालक पापकका यह आधुनिक शिक्षा पर करारा व्यंग्य है।

'अनोखा छात्र' में भूतप्रेतकी बातको व्यर्थ बताया गया है। 'रहस्य' कहानी तो भूतकी व्यर्थता सिद्ध करनेके लिए लिखी गयी है। लेखिकाने जेबकतरों, मिलावटियों, धोखेबाजों, कालाबाजारी करनेवालोंको वास्तविक भूत कहा है। 'मणिमाला' कहानीके माध्यमसे लेखिकाने अपने रूपपर अहंकार न करनेका पाठ बच्चोंको पढ़ाया है। दूसरेको कहे कड़वे शब्द व्यक्तिको इतनी कठोर पीड़ा देते हैं, मानो उसे किसी विषैले कानखजूरेने काट लिया हो। 'माला और चन्दन' कहानीमें मित्रोंके पारस्परिक सद्भाव व दूसरेके लिए बलिदान हो जानेकी भावनाका वर्णन है। साथही अपनी जन्मभूमिके प्रति प्यारका पाठ भी है। 'बामनका सपना' में बामन, हसनी फूलटूसि और चिड़िया मौटूसी दो सहयात्रियोंके साथ रतनदोघीके गाँव जाते हैं। रास्तेमें अनेक कठिनाइयां हैं, पर वे घबराते नहीं। इस प्रकार गन्तव्यके लिए कठिनाइयोंपर विजयकी यह कहानी है। अभी वे गन्तव्यपर पहुंचे नहीं हैं, कहानी समाप्त हो जाती है। इस संसारमें प्रत्येक प्राणीकी यही स्थिति है। इस कहानीमें एक स्थानपर आधुनिक युगमें पैसेके प्रति अनावश्यक मोहका भी मजाक उड़ाया गया है।

'माला और चन्दन' तथा 'बामनका सपना' में पक्षी और पशु मनुष्यकी तरह बोलते हैं। इनको पढ़कर पंचतन्त्रकी कहानियां स्मरण हो आती हैं। पशु-पक्षियोंको मनुष्यकी तरह बात करता देखकर बालक कुतूहलका अनुभव करता है और इनके माध्यमसे कहानी लेखिकाकी सीखको अधिक अच्छी तरह ग्रहण करता है। असम्भव कहकर इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वास्तविकता यह है कि पशु-पक्षियोंकी प्रतीकात्मकता और अधिक गहरा प्रभाव डालती है।

प्रत्येक कहानी अत्यन्त सजीव है। इनकी सफलता का एक कारण इसके चुस्त संवाद हैं। इससे कहानीमें

नाटकीयता आयी है। संग्रहमें रवीन्द्रके एक पद तथा 'माला और चन्दन' में बुलबुलके गीतसे कहानीमें सरसता आयी है। भाषामें चित्रात्मकता है। मुहावरोंके प्रयोगसे तो लाक्षणिकता उत्पन्न हुई है। कुछ नये शब्दोंका भी प्रयोग है, जो सम्भवतः बंगलाके हैं। पर कहानीमें वे अत्यन्त सटीक है। अनुवादकने सांघातिक शब्दका प्रयोग बार-बार किया है। हिन्दीमें यह प्रयोग नहीं मिलता। पद्मपेड़ प्रयोग भी हिन्दीमें नया है।

लेखिकाने और तभी संभवतः अनुवादकने भी बीच-बीचमें अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग किया है - टूरिस्ट (१२) प्लीज (६३), बैण्डेज (६५), पांइण्ट, ग्रेट मैजीशियन, रिसीवर, स्कूल, फॉक्स, फाइन, बुलडॉग आदि। इनसे कहानीका वातावरण मार्डन बन गया है।

☐ डॉ. प्रशान्त

सामयिक राजनीति

अफगान-संकट : रूस-अमरीका प्रतिद्वन्द्विता[1]

समीक्षक : डॉ. वेदप्रताप वैदिक

अफगान-संकटको लेकर भारतीय लेखकोंकी अबतक लगभग जो आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, उनमें प्रो. भवानीसेन गुप्तकी पुस्तक निःसंदेह अपने ढगकी अनूठी हैं। इसके कई कारण हैं। सबसे पहला तो यह कि यह पुस्तक विभिन्न लेखकों द्वारा लिखित निबंधोंका संग्रह मात्र नहीं है। दूसरा इस पुस्तकमें अफगान घटना-चक्रका एक औपन्यासिक और रोचक विवरण प्रस्तुत करनेकी बजाय लेखकने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकी उन नवीन प्रवृत्तियों और परिस्थितियोंका विश्लेषण किया है, जो अफगान-समस्याके कारण उत्पन्न हुई हैं। तीसरा, अफगान घटनाओंके विश्लेषणमें आजकल पक्षधरताकी जो प्रबल प्रवृत्ति दीख पड़ रही है, उससे स्वयंको बचाने में लेखक सफल हुआ है।

समीक्ष्य पुस्तकका केन्द्रीय विषय यह है कि अफगानिस्तानमें सैनिक हस्तक्षेप करनेके कारण सोवियत संघ पहली बार संयुक्त राज्य अमरीकाकी टक्करमें एक बराबरीकी शक्ति बनकर आखड़ा हुआ है। अफगान-हस्तक्षेपके पहलेतक सोवियत संघको महाशक्ति तो माना जाता था लेकिन अमरीकाके समतुल्य नहीं। अब रूस न केवल अमरीकाके विश्व-नेतृत्वको चुनौती दे रहा है अपितु दुनियांके सर्वाधिक शक्तिशाली राष्ट्रका पद पानेके लक्ष्य की ओर बढ़ता जा रहा है।

लेखकने अपनी इस मान्यताको सिद्ध करनेके लिए अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। सर्वप्रथम वह सोवियत संघके बढ़ते हुए सैन्य-बलके आंकड़े प्रस्तुत करता है और मानता है कि आज न केवल परंपरागत शस्त्रास्त्रोंमें अपितु परमाणु आयुधोंके क्षेत्रमें भी सोवियत संघ अमरीकासे आगे निकल गया है। दूसरा, अफगान-हस्तक्षेप के पहलेतक सोवियत सेनाओंने जोभी सैनिक कार्रवाई की, चाहे वह हंगरीमें हो या चेकोस्लोवाकियामें, वह मूलतः अपने साम्यवादी कुनबेके भीतरही की; अमरीका की तरह बाहर नहीं। अफगानिस्तानमें हस्तक्षेप करके इसने पहली बार यह दिखाया कि वह अमरीकाकी तरह

1. द अफगान सीन्ड्रोम : हाऊ टू लिव विद सोवियत पावर; लेखक : भवानीसेन गुप्त; प्रकाशक : विकास पब्लिकेशन्स, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ; ३००; डिमा. ८२; मूल्य : १२५.०० रु.।

दुनियांके अन्य देशोंके मामलोंमें भी हस्तक्षेप कर सकता है। तीसरा, अफगानिस्तानमें रूसी हस्तक्षेपके प्रति अमरीका, चीन, यूरोपीय देशों, भारत और पाकिस्तान के रवैयोंकी व्याख्या करते हुए लेखक यह सिद्ध करना चाहता है कि दुनियांके देशोंने रूसी कार्रवाईका मुकाबला करनेकी बजाय रूसी शक्तिसे अपने-अपने स्तरपर तालमेल बिठानेकी कोशिश की है। जहांतक अमरीका और चीन का प्रश्न है, उन्होंने भी रूसके विरुद्ध ज्यादातर जबानी जमा-खर्चही किया है। पाकिस्तान, अफगानिस्तानमें रूसी-आगमनका लाभ उठानेमें जुटा हुआ है और भारत ने भी रूसका स्पष्ट विरोध नहीं किया है।

लेखक यहभी मानता है कि अफगानिस्तानमें हस्तक्षेप के बाद रूसका जो नया शक्ति-रूप प्रकट हुआ है, उसे अमरीकाके अनेक प्रभावशाली बुद्धिजीवी वर्ग और स्वयं रीगन प्रशासनभी मान्यता देनेको तैयार नहीं। यदि अमरीका रूसको अपने बराबरका दर्जा दे देगा तो दुनियांके दूसरे देशोंके लिए यह आसान होगा कि वे स्वयंभी अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिके इस नये ढांचेको स्वीकार कर लें अन्यथा अमरीकाको अपनी सर्वश्रेष्ठता स्थापित करनेके लिए फिरसे मुठभेड़की राजनीति चलानी होगी। इस मुठभेड़की राजनीतिमें अमरीकाका साथ देनेके लिए बहुत-से देश आगे नहीं आयेंगे। वे शुद्ध रूपसे अपने राष्ट्रहितोंकी रक्षाके विचारसे ही किसीभी महाशक्ति का साथ देंगे। ऐसी स्थितिमें रूसकी स्थितिही मजबूत होगी।

इस पुस्तककी उक्त मूल-स्थापनाओंपर विचार करने से पूर्व यह बता देना जरूरी है कि इस पुस्तकके अध्ययन का केन्द्रीय विषय अफगानिस्तान नहीं है। इसलिए लेखक ने अफगान क्रांतिके कारणों, स्वरूप और भविष्य आदिपर गहराईसे विचार नहीं किया है। वास्तवमें लगभग ३०० पृष्ठोंकी इस पुस्तकमें सबसे छोटा अध्याय वही है जिसमें अफगानिस्तानके आंतरिक मामलोंपर विचार किया गया है। इस अध्यायमें कुछ तथ्यात्मक भूलेंभी हैं।

लेखक स्वयं मानता है कि यह पुस्तक अफगानिस्तानपर नहीं है बल्कि अफगान-संकटसे उत्पन्न नयी अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंपर है। यदि विद्वान् लेखकने अफगान घटनाओंकी तहमें जानेकी कोशिश की होती तो नयी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंके बारेमें उनकी जो राय बनी है, वह काफी भिन्न होती। उनकी इस मूल स्थापनाका रूप कुछ और होता कि "अब अफगानिस्तानमें, जोकि सोवियत खेमे और समाजवादी व्यवस्थाके बाहरका देश है, सोवियत संघने हस्तक्षेप करके स्वयंको विश्व-राजनीतिके मंचपर अमरीकाके बराबर ला खड़ा किया है।"

वास्तवमें अफगानिस्तानमें सीधा रूसी हस्तक्षेप दिसम्बर, १९७९ में हुआ जबकि उसके २० मास पहलेसे ही वह एक तथाकथित समाजवादी क्रांतिकी छत्र-छायामें आ गया था। हफीजुल्लाह अमीनने तो यहांतक कहा था कि "सौर-क्रांति अक्तूबर-क्रांतिका ही विस्तार है।" अफगानिस्तानमें १९७८ में हुई क्रांतिके वास्तविक चरित्र के बारेमें सैद्धान्तिक मतभेद हो सकते हैं किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि तरक्की-अमीन काल में अफगानिस्तानमें रूसका प्रभाव इतना अधिक बढ़ चुका था कि तरक्कीकी हत्याके बाद रूसके पास इसके अलावा कोई चारा नहीं रह गया था कि वह सैनिक हस्तक्षेप करे।

सैद्धान्तिक स्तरपर किसीभी देशका किसीभी अन्य देशके आंतरिक मामलोंमें सैनिक हस्तक्षेप करना उचित नहीं है, तथापि अफगानिस्तानमें रूसी हस्तक्षेपके प्रसंगमें विश्वके विभिन्न क्षेत्रोंमें अमरीकी हस्तक्षेपकी चर्चा अनुपयुक्त न होगी। अमरीकाने आग्नेय एशिया (दक्षिण-पूर्व एशिया), पश्चिम एशिया, अफ्रीका जैसे हजारों मील दूर स्थित क्षेत्रोंमें हस्तक्षेप किये हैं और ऐसे देशोंमें हस्तक्षेप किये हैं, जिनसे न तो उसकी सुरक्षाको कोई सीधा खतरा हो सकता था और न उन देशोंसे उसका कोई सैद्धान्तिक लगाव था। अफगानिस्तानमें रूसी कार्रवाईको प्रतिरक्षात्मक माना जा सकता है। सेनगुप्त की स्थापनासे यह ध्वनित होता है कि रूसी हस्तक्षेप अमरीकी हस्तक्षेपोंकी तरह आक्रामक है और उन्हींकी तरह वह विस्तारवादीभी है।

रूसी हस्तक्षेपकी पृष्ठभूमिके रूपमें सोवियत संघकी पिछले ६०-६५ सालकी रणनीतिको जानना जरूरी है। सोवियत क्रान्तिके बादका रूस भयभीत और प्रतिक्रिया-स्वरूप उग्र देश रहा है। अपनी क्रान्तिकी रक्षामें रूसको आन्तरिक दृष्टिसे बहुत कठोर कदम उठाने पड़े हैं। इस विवशताके कारण रूस क्रान्तिका निर्यात बहुत सीमित मात्रामें कर पाया। सोवियत क्रांतिके बाद चीन, क्यूबा, वियतनाम आदि कई देश साम्यवादी हुए परन्तु मुख्य रूपसे अपनी शक्तिके बलपर। इसीप्रकार दक्षिणी यमन इथियोपिया, ईरान और अफगानिस्तानमें भी सत्ता-विरोधी या साम्यवादी तत्वोंकी मदद सोवियत संघने

खुलकर नहीं की। संभवत: इसी कारण सोवियत संघपर यह आरोप लगाया जाता है कि उसने इन देशोंके सत्तारूढ़ तंत्रके साथ ऐसे संबंध बना रखे थे कि वह यथास्थितिवाद का पोषक बना रहा।

यह कहा जा सकता है कि यदि अफगानिस्तानमें दो कारण एकसाथ उपस्थित न हो जाते— रूसको आत्म-रक्षाका भय और समाजवादी व्यवस्थाके उलटनेका खतरा— तो रूस वहां हस्तक्षेप नहीं करता। मिस्रमें सादातने नासिरकी सम्पूर्ण रूसपरस्त नीतिको उलट दिया किन्तु रूसने कोई हस्तक्षेप नहीं किया! सोमालियासे रूसका निष्कासन हो गया किन्तु उसने हस्तक्षेप नहीं किया, स्पष्ट रूपसे भौगोलिक कारणोंसे। साथही न तो रूसको आत्मरक्षाका भय था और न ही कोई तथाकथित समाजवादी क्रांति प्रवाहपतित हो रही थी। इसी प्रकार ईरानमें शाहकी तुलनामें खुमैनीके कम मैत्रीपूर्ण शासनके आगमनके बावजूद रूसने हस्तक्षेप नहीं किया। इसके विपरीत अमरीकाने बहुत मामूली बहानोंके आधारपर दुनियांके किस कोनेमें हस्तक्षेप नहीं किया? दूसरे शब्दों में विद्वान् लेखक अपनी पुस्तकमें यह सिद्ध नहीं कर सके हैं कि रूसी हस्तक्षेप अमरीकी हस्तक्षेपों जैसाही हैं। इसीलिए उनकी यह मूल स्थापना प्रथम दृष्टिपातमें टिकती नहीं कि अफगान हस्तक्षेपने रूसको प्रथम श्रेणी की महाशक्ति बना दिया है।

यह तथ्यभी विचारणीय है कि यदि रूस अफगानिस्तानमें हस्तक्षेप नहीं करता तो क्या उसकी प्रतिष्ठा कम हो जाती? बिलकुल नहीं! हस्तक्षेप होता या न होता, रूसकी सैनिक शक्तिमें उसके कारण कोई कमी या अधिकता नहीं होती। रूसकी जो सैनिक शक्ति आज है, वह अमरीकी शक्तिके लगभग बराबर है और कुछ दृष्टियोंसे ज्यादाही है, जैसाकि स्वयं लेखकने बहुत अच्छे ढंगसे स्पष्ट किया है। इस सैनिक मांसपेशीका निर्माण १९६२ के क्यूबा-कांडके बादसे तेजीसे शुरू हो गया था और सातवें दशकके मध्यसे ही, यह माना जाने लगा है कि, सोवियत संघ अमरीकाकी बराबरीका सैनिक-शक्ति सम्पन्न देश बन गया है। साल्ट-प्रथम और साल्ट-द्वितीय वार्ताओंसे यह बात औरभी अधिक स्पष्ट हो गयी थी।

इसमें संदेह नहीं कि अफगानिस्तानमें हुए हस्तक्षेपसे इस शक्तिका प्रदर्शन हुआ है, लेकिन यह प्रदर्शन इस शक्तिका कारण नहीं, एक परिणाम मात्र है। अफगानिस्तानमें रूसी सेनाएं जितनी सीमित भूमिका निभा रही है, उतनी भूमिकाके लिए दस साल पहलेभी सोवियत संघ तैयार था। द्वितीय महायुद्धके बादभी अजरबेजानपर रूसका कब्जा था या नहीं? अफगानिस्तान जैसे छोटेसे देशमें, जिसकी लगभग डेढ़ हजार किलोमीटरकी सरल मार्गोंवाली खुली सीमा रूससे लगी हुई है, सेनाएं भेजने से कोई देश दुनियांकी महत्तम शक्ति नहीं बन जाता!

जहांतक रूसी हस्तक्षेपके बारेमें दुनियांके लोगोंके रवैयेका प्रश्न है, लेखकका यह कहना ठीक है कि अमरीकाके मित्र देशोंने भी उसका पूरा साथ नहीं दिया। कार्टर प्रशासन और रीगन प्रशासन थोड़े-बहुत प्रतिबंध आदि लगाते रहे और साल्ट-दो संधि उन्होंने स्थगित कर दी, इसके अतिरिक्त अन्य कोई ठोस कदम नहीं उठाया। ऐसी स्थितिमें श्री सेनगुप्त द्वारा यह आशा करना कि दुनियांके अन्य देश रूसियोंके विरुद्ध अधिक कठोरतासे पेश आते, व्यावहारिक नहीं है। सयुक्त राष्ट्र महासभाने प्रचंड बहुमतसे रूसी कार्रवाईकी अवमानना की है और गुटनिरपेक्ष सम्मेलनोंमें अफगानिस्तानके कारण रूसको पहली बार नीचा देखना पड़ा है। वास्तवमें रूसी हस्तक्षेप के कारण तीसरी दुनियांके देशोंमें रूसी छवि विकृतही हुई है। मुस्लिम देशोंपर भी उसका बुरा असर पड़ा है। यदि अफगानिस्तानमें रूसी हस्तक्षेप नहीं हुआ होता तो शायद ईरानके साथ रूसके संबंध अबतक काफी अच्छे हो जाते।

जहांतक अफगानिस्तानका प्रश्न है, लगभग ढाई वर्ष बीत जानेके बादभी रूसी सेनाएं चैनकी सांस नहीं ले सकी हैं। वास्तवमें अफगानिस्तानमें रूसी हस्तक्षेपके कारण रूसकी शक्ति नहीं, कमजोरियां ही उजागर हुई हैं। पहली तो यह कि यदि अमरीका अपने निकटवर्ती क्यूबाको सहन कर सकता है और चीन वियतनामको, तो रूस एक सोवियत-विरोधी अफगानिस्तानको क्यों नहीं सहन कर सकता? यदि अमीन सादात बन जाता तो क्या सोवियत संघके टुकड़े-टुकड़े हो जाते? सोवियत संघ क्या जरूरतसे ज्यादा संवेदनशील नहीं हो गया था? दूसरा, अफगानिस्तान जैसे छोटे-से देशपर रूस अबतक नियंत्रण नहीं कर पाया है और अबभी सैनिक वापसीकी बात करता है।

वास्तविकता तो यह है कि रूसकी अर्थव्यवस्था इतनी मजबूत नहीं है कि वह क्यूबा, अफगानिस्तान, कम्बुजिया. दक्षिणी यमन, इथियोपिया आदि देशोंके लिए करोड़ों डालरका दायित्व ले सके और फिर यह भरोसा

भी नहीं कि जिन देशोंके लिए अपना पेट काटकर मदद कर रहा है, वे उसके समर्थक रहेंगेभी या नहीं। चीन का पुराना उदाहरण, सोमालियाका थोड़ा कम पुराना उदाहरण और आजकल वियतनामके साथ जैसे खट्टे-मीठे रिश्ते चल रहे हैं, ये उदाहरण रूसकी स्थितिको काफी अनिश्चयात्मक बनाते हैं।

लेखकके इस निष्कर्षसे भी सहमत होना कठिन है कि यदि अमरीका रूसको अपने बराबरकी शक्ति मान ले और उसके साथ तालमेल बिठा ले तो भविष्यमें रूसके हस्तक्षेपोंकी संभावनाएं कम हो जायेंगी। यह बात उन स्थितियोंपर तो अवश्य लागू होंगी, जहां हस्तक्षेपका कारण शुद्ध रूपसे महाशक्तियोंकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा हो लेकिन क्या हस्तक्षेपका कारण केवल यही होता है? क्या तिब्बतमें चीनी हस्तक्षेपके समय यही कारण था या सिक्किम या बांग्लादेशमें भारतीय हस्तक्षेपके समय भी यही कारण था?

वास्तवमें किसी देशमें किसी एक महाशक्तिके हस्तक्षेपको रोकनेके लिए कोई दूसरी महाशक्ति तभी मुकाबलेमें आ खड़ी होती है जबकि उसके अपने राष्ट्रीय-हितोंको सीधा खतरा हो, वरना हस्तक्षेप करनेवाले राष्ट्रको रोकनेवाला सबसे बड़ा तत्त्व हस्तक्षेप्य राष्ट्रकी आंतरिक शक्ति ही होती है। क्या कारण है कि रूस चेकोस्लोवाकिया और हंगरीमें घुस गया और आजतक पोलैंडमें नहीं घुस पा रहा है? क्या कारण है कि अमरीका हजारों मील दूर स्थित वियतनाममें घुस गया और क्यूबामें नहीं घुस पा रहा? ईरानमें रूस और अमरीका दोनोंही स्वयंको असहाय क्यों पा रहे हैं? भावी हस्तक्षेपोंको रोकनेके लिए जिस तरीकेकी कल्पना श्री सेनगुप्त कर रहे हैं, यह अन्तर्राष्ट्रीय बंदर-बांटके अलावा कुछ नहीं है। इससे तीसरी दुनियांके गरीब देशोंकी हानि ही होगी। तीसरी दुनियांके देशोंका भला इसी बातमें है कि वे दोनों महाशक्तियोंकी चालबाजियोंसे चौकस रहें और अपनी आंतरिक शक्तिको बढ़ायें। एक महाशक्ति यदि दूसरी महाशक्तिके बराबरभी हो गयी तो इससे तीसरी दुनियांके प्रसन्न होनेकी कोई खास बात नहीं है।

श्री सेनगुप्तकी उक्त मूल-स्थापनासे असहमत होनेके बावजूद यह मानना पड़ेगा कि यह पुस्तक अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिके क्षेत्रमें मौलिक चिंतन उपस्थित करती है। अतर्राष्ट्रीय राजनीतिके अध्ययनके क्षेत्रमें पिछले पच्चीस वर्षोंमें भारतीय विद्वान् घटनाओंको दोहरानेभर से अपने कर्त्तव्यकी इतिश्री समझते रहे हैं या हर संकटपर असंबद्ध निबंधोंका संग्रह उगल देनेमें माहिर रहे हैं। ऐसी स्थिति में एक मूल स्थापनाकी परिकल्पना करना और सारे घटना-चक्रको परिश्रमपूर्वक मथकर उसके समर्थनमें तर्क निकालनेका काम कोई प्रतिभाशाली व्यक्तिही कर सकता है। श्री सेनगुप्तकी मूल-स्थापनासे असहमत सुधी पाठक भी इस पुस्तकमें संगृहीत तथ्यों और उसकी प्रचंड भाषा-शैलीसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे।

यदि भाषाकी मजबूत पकड़ इस पुस्तकको शक्तिशाली बनाती है तो यहां वह तत्त्व है, जो इसकी सबसे बड़ी कमजोरीभी है। लेखकने सारी पुस्तकमें केवल अंग्रेजी भाषाके स्रोतोंसे ही जानकारियां एकत्रित की हैं। यदि वे रूसी भाषाके मूल स्रोतोंको पढ़ सकते होते तो रूसी रणनीतिको समग्र रूपसे समझने तथा अफगानिस्तान में खास तौरसे रूसके हस्तक्षेपको समझनेमें भी उन्हें सहायता मिलती।

इसी प्रकार रूसी हस्तक्षेपके बारेमें एशियाई देशोंके रवैयेका अध्ययनभी केवल अंग्रेजी अखबारों और अंग्रेजी-दां लोगोंकी रायके आधारपर किया गया है जोकि एकांगी है। वास्तविकता तो यह है कि हिन्दीमें लिखे गये लेखोंके संदर्भके बिना अफगानिस्तानपर भारतीय रवैयेका प्रामाणिक दस्तावेज तैयार कियाही नहीं जा सकता। जोभी हो, पुस्तक विचारोत्तेजक और उपयोगी है। ▭▭

भारतीय उपमहाद्वीपमें शीतयुद्ध

[भारत-पाक-अफगानिस्तानके संदर्भमें]

लेखक : प्रो. नरेन्द्रसिंह चौधरी; प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.)। पृष्ठ : १७२; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

भारतीय उपमहाद्वीपकी राजनीतिक समस्या यह है कि एक ओर तो भारत-पाक संबंधोंमें निरन्तर तनाव बना हुआ है। दूसरी ओर अफगानिस्तानमें रूसी हस्तक्षेपने भी इसे और अधिक जटिल बनाया है। हिन्द महासागरमें महाशक्तियोंके नौसैनिक बेड़ोंके जमघटने इस क्षेत्र की स्थितिकी जटिलतामें वृद्धि की है। इस प्रकार यह एक शांति क्षेत्र बननेके स्थानपर युद्ध क्षेत्रमें परिणत होता जा है। विश्वमें उत्तरोत्तर परिवर्तित शक्ति संतुलन और कूटयोजनात्मक संबंधोंके संदर्भमें यह आवश्यक है कि

प्राप्त सूचनाओं और आँकड़ोंके आधारपर वैज्ञानिक दृष्टि से सैन्य विश्लेषण किया जाये। समीक्ष्य कृति इसी दिशा में एक प्रयास है। इसके साथ भारतीय उपमहाद्वीप तथा उसके आसपासके क्षेत्रोंके घटनाचक्रका विश्लेषणभी किया गया है, जिससे उसके प्रभावका मूल्यांकन किया जा सके।

शीतयुद्धके बादल भूमध्यसागर तथा खाड़ीके क्षेत्रसे हटकर अब दक्षिण एशियापर मँडरा रहे हैं। भारत इस स्थितिसे बचा नहीं रह सकता। लेखकने इसकी चर्चा करते हुए लिखा है: 'दक्षिण एशियाकी बिगड़ती हुई स्थितिका एक पक्ष अफगानिस्तानमें रूसी सैनिक हस्तक्षेप है तथा दूसरा पक्ष भारत और पाकिस्तानके कटुतापूर्ण संबंध हैं। यद्यपि दोनों समस्याओंमें थोड़ा-सा मूल अंतर है, परन्तु दोनोंको महाशक्तियोंकी प्रतिस्पर्धाका कारण बनाया जाता रहा है। दक्षिण एशियाके क्षितिजपर पाकिस्तान एक गंभीर संकट बना हुआ है। यह पाकिस्तानके खैये पर निर्भर करता है कि इस क्षेत्रमें शांति और सुरक्षा बनी रहे अथवा लगातार संघर्षोंका एक सिलसिला प्रारंभ हो जाये।' (भारत, अफगानिस्तान व पाकिस्तान—पृ. १-२)।

भारतकी ओरसे पाकिस्तानके साथ सौहार्दपूर्ण संबंधों के लिए गंभीर प्रयास किये जाते रहे हैं, परन्तु वहाँकी सैनिक सरकारकी प्रतिक्रिया अनुकूल कभी नहीं रही। लेखकका दावा है कि जबतक भारत-पाक संबंध मैत्रीपूर्ण नहीं होते, तबतक भारत विश्वमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं बना सकता। उसकी मान्यता है—'भारतका प्राथमिक प्रयास इस ओर होना चाहिये कि उपमहाद्वीपमें संयुक्त सुरक्षा प्रणाली स्थापित हो सके। इसके लिए पाकिस्तानके साथ मैत्रीपूर्ण संबंध होना एक अनिवार्यता है। पाकिस्तानके विरोधसे भारत विश्वमें महत्त्वपूर्ण स्थान पानेमें कठिनाईका अनुभव करेगा।' (वही पृ. ४)

इस अनिवार्यतामें बाधा अमरीकी नीति है। उसकी नीति मित्र देशोंमें कूटयोजनाकी आम धारणा विकसित करना तथा इस हेतु उन्हें शस्त्रसज्जित करना है जिससे प्रतिरक्षाका एक जाल तैयारकर सोवियत रूसके विस्तारवादपर अंकुश लगाया जा सके। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रोंमें इस नीतिकी प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं हुई। पश्चिम एशियामें यह नीति विफल रही। अमरीकाने पाकिस्तानको शस्त्र सहायता देना प्रारंभ कर दिया है। लेखक अमरीका व पाकके गुप्त समझौतेका हवाला देकर स्थिति स्पष्ट करता है—'अमरीका और पाकिस्तानके गुप्त समझौतेके अंतर्गत अमरीका पाकिस्तानमें सैनिक अड्डे स्थापित कर सकेगा। कराचीके पश्चिममें एक अमरीकी नौसैनिक अड्डा बनानेकी योजना है और पेशावरमें अमरीकी वायुसैनिक अड्डा होगा।' (अमरीका व दक्षिण एशिया—पृ. ८-९) इस समझौतेसे भारतमें चिंता व्याप्त गयी है।

अमरीकी विदेश नीतिका मुख्य उद्देश्य अमरीकी हितों की रक्षा है, इसीके अन्तर्गत वह किसी भौगोलिक क्षेत्र या राष्ट्रको महत्ता प्रदान करता है। ईरानके शाहके पतन के बाद और अफगानिस्तानमें सोवियत सैनिक हस्तक्षेपके कारण अमरीकाकी दृष्टिमें पाकिस्तानकी सामरिक महत्ता बढ़ गयी है। लेखकने वर्तमान स्थितिमें अमरीका द्वारा पाकिस्तानके महत्त्वको स्वीकारनेकी विवशताके कारणोंकी ओर स्पष्ट संकेत किया है—'१. अमरीका ईरानके स्थानपर पाकिस्तानको खाड़ी क्षेत्रका रक्षक प्रहरी बना सकता है, जोकि अन्य इस्लामी राष्ट्रोंको भी स्वीकार्य होगा। २. पाकिस्तानी भूमिको अफगान छापामारों के लिए शस्त्र आपूर्ति व प्रशिक्षणका मुख्यालय बनाकर वह सोवियत सेनाको अफगानिस्तानमें अधिकसे अधिक उलझाना चाहता है ३. पाकिस्तानमें उपलब्ध हवाई, स्थलीय एवं नौसैनिक सुविधाओंके कारण हिन्द महासागर के क्षेत्रमें उसकी स्थिति सुदृढ़ हो जाती है।' (अमरीकी कूटयोजनाका प्रभाव, पृ. ४१)

हिन्द महासागर शक्ति-स्पर्धाका केन्द्र बन गया है। अफगानिस्तानमें सोवियत हस्तक्षेप एवं उसके पूर्व अंगोला और इथोपियामें हस्तक्षेपसे प्राप्त अनुभवोंसे सावधान होकर अमरीकाने धीरे-धीरे हिन्द महासागरमें अपनी शक्तिका विस्तार कर लिया है। अब अमरीकाके (नौसैनिक सूत्रानुसार) इस क्षेत्रमें ३२ युद्धपोत, फ्रांसके १२ पोत और सोवियत संघके २१ पोत हैं। हिन्द-महासागरको शांति-क्षेत्र घोषित करनेकी मांगकी चर्चा करते हुए लेखकने संयुक्त राष्ट्रकी एक-एक समितिका हवाला देकर वस्तु-स्थिति स्पष्ट की है—'संयुक्त राष्ट्र संघकी एक ४५ सदस्यीय समिति—जिसका गठन हिन्द महासागरके लिए किया गया था—की बैठक ग्रीष्मकालमें कोलबोंमें होनी थी, जिसमें हिन्द महासागरको शांति-क्षेत्र घोषित करनेके विषयपर वार्ता होनी थी। परंतु मार्च १९८१ में इस समितिके पश्चिमी सदस्योंने न्यूयार्कमें बैठककर यह स्पष्ट कर दिया कि वर्तमान वातावरण इसके उपयुक्त नहीं है। अमरीकाने भी मेडागास्करकी इस अपीलकी—कि हिन्द

महासागरके बारेमें विश्व नेताओंका एक सम्मेलन बुलाया जाये—उपेक्षा कर दी।' (हिन्द महासागरमें शक्ति-स्पर्धा पृ. १२२-१२३) इस शक्ति-स्पर्धाका परिणाम है भारत की सुरक्षापर खतरा। लेखकका विचार है—'हिन्द महासागरकी शक्ति-स्पर्धा एवं परमाणु शक्ति संचयके कारण सर्वाधिक खतरा भारतीय सुरक्षाको उत्पन्न हुआ है।' (वही, पृ. १३३)

विश्वमें बहुत कम क्षेत्र ऐसे हैं, जहाँ किसी महाशक्तिका अप्रत्यक्ष हस्तक्षेप न हो। जब अफगानिस्तानमें सोवियत सैनिक हस्तक्षेप हुआ, सोवियत विस्तारका खतरा देखकर कार्टर प्रशासनको अपने मानवाधिकारोंपर आधारित विदेश और रक्षा नीतिमें भारी परिवर्तन करना पड़ा तथा उसे अपनी परपरागत विदेश नीतिको अपनानेके लिए विवश होना पड़ा। इसी परिवर्तनने महाशक्तियोंके टकरावको प्रोत्साहन दिया। फलतः लेखकका मत है—'पश्चिमी एशिया से हटकर शीतयुद्धके बादल अरबकी खाड़ीके गर्म पानी और हिन्द महासागरके नीले पानीके ऊपर घिरने लगे।' शीतयुद्ध प्रारंभ करनेका प्रमुख कारण 'अफगानिस्तानमें सोवियत सैनिक हस्तक्षेप है, क्योंकि अमरीकाके लिए यह क्षेत्रीय मामला न होकर सोवियत संघ द्वारा खाड़ीके तेल क्षेत्रपर नियंत्रण स्थापित करने तथा हिन्द महासागर क्षेत्रमें अपना प्रभुत्व स्थापित करने का सुनियोजित प्रयास है।' (वही, पृ. १५६-१५७)

समीक्ष्य कृति न केवल भारत-पाक-अफगानिस्तानके आपसी संबंधों, समर नीतियों, विदेशी नीतियोंका परिचय है, वरन् विश्वकी दो बड़ी शक्तियों (अमरीका और रूस) द्वारा भारतीय उपमहाद्वीपमें शीतयुद्धकी संभावनाओंको प्रोत्साहन देनेका सटीक विवेचनभी है। कृतिके प्रतिपाद्य को विश्वकी समरनीतियों, शक्तियोंके पारस्परिक संघर्ष, शस्त्रोंकी आपूर्त्ति द्वारा किसी देशको युद्धके लिए बढ़ावा देने, विभिन्न राष्ट्रपतियों और विदेशमंत्रियोंकी घोषणाओं, युद्ध विशेषज्ञोंके वक्तव्यों आदिके आलोकमें आसानीसे समझा जा सकता है।

सात दृष्टांत-चित्रों और छः तालिकाओंने कृतिको विश्वसनीयता और ठोस आधार प्रदान किया है। भाषा सरल है। पारिभाषिक शब्दोंके अंग्रेजी शब्द कोष्ठकमें दिये गये हैं। यथा—कूटयोजनाके लिए 'स्ट्रेटेजी', महाशक्तियोंके लिए 'सुपर पावर्स' आदि।

▭ विमला उपाध्याय

इन्दिरा गांधी और आम आदमी

लेखक : पद्मनाभ तैलंग; प्रकाशक : तैलंग ब्रदर्स, भारत टाकीज चौराहा, भोपाल (म. प्र.)। पृष्ठ : १९२; डिमाई अठपेजी, ८१; मूल्य : १५०.०० रु.।

इस पुस्तकमें प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधीको देशकी सेविका और उनके पिताजी पं. जवाहरलाल नेहरू को राष्ट्रके प्रथम सेवकके रूपमें उजागर एवं उद्घाटित किया गया है। पुस्तक एक ओर लेखकके निजी प्रयास तथा मनीषाका फल है तो दूसरी ओर संकलनभी। प्रारंभ में प्राप्त संदेशोंमें इन्दिरा गांधीके व्यक्तित्व, कृतित्व और महत्त्वपर सहज उद्गार मिलते हैं।

१९२ पृष्ठके इस विशाल, सुन्दर तथा आकर्षक ग्रन्थ में कतिपय कविताएं तथा लेखभी संगृहीत हैं, जिनसे प्रत्येक वर्गके व्यक्तिको प्रतिनिधित्व दिया जा सके और इन्दिरा गांधीके सर्वतोमुखी व्यक्तित्वकी रेखाएं व्यापक एवं बृहत्तर रूपमें प्रस्तुत की जा सकें।

स्वाधीनता संग्राम और नेहरू परिवारकी घटनाओं तथा इतिवृत्तको तैलंगजीने लिखकर राष्ट्रीय आन्दोलनका रेखाचित्र और तरोताजा विवरण प्रस्तुत किया है। कहानी पं. मोतीलाल नेहरूसे शुरू होकर स्व. संजय गांधी और राजीव गांधीतक चलती हैं। इस अध्यायमें राष्ट्रीय संग्राम, राष्ट्रीय काव्य तथा राजनीतिक घटनाओंकी शोध सामग्री अनवरत तथा निरन्तरतामें मिलती है।

सामान्यतया लेखकने सन् १८५७ की प्रथम राष्ट्रीय क्रान्तिसे अपने विवरणका समारम्भ किया है परन्तु पं. मोतीलाल नेहरू (लाल-बाल-पाल-युग) से राष्ट्रपिता के उन्मेष तथा उत्थानको गहराईसे अंकित किया है। तिलक युगसे गांधी युगतक की गाथा अनेक घटनाओंसे ग्रथित है। ३१ दिसम्बर, १९२९ की लाहौर कांग्रेसकी पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा की गयी अध्यक्षता और रावी के तटपर मातृभूमिकी पूर्ण स्वाधीनताका प्रस्ताव एवं निष्ठापूर्ण संकल्पका उल्लेख है।

सन् १९६४ में पण्डित नेहरूके स्वर्गवास तथा सन् १९६६में लालबहादुर शास्त्रीके निधन और तद्नन्तर २४ जनवरी, १९६६ से इन्दिरा गांधीके नेतृत्वमें लेखकने नये युगके सूत्रपातका उल्लेख किया है। तैलंगजीने स्वाधीनता संग्राममें क्रांतिकारियोंकी शहादतकी मुख्य भूमिका

का भी विस्मरण नहीं किया है। आपातकालीन घोषणा, बीस सूत्री कार्यक्रम और अनुशासन पर्वमें नये युगके उदय की घोषणाभी कम महत्त्व नहीं रखती है। उपलब्धियोंके इस दौरके पश्चात् जनताकी अदालत और जनताके फैसले के तदन्तर जो जनता शासन आया और दिल्लीके खुले मंचपर किस्सा कुर्सीका रंग लाया। इन्दिरा गांधीकी असाधारण शक्तिका रहस्य आम आदमी रहा है, सतर्क आम आदमीने उन्हें फिरसे आमन्त्रित किया और आम आदमीकी अटूट शक्ति तथा उसके निष्पक्ष न्यायपर उनको सदैव भरोसा रहा है। लेखकने इन्दिराजीके इस कालखण्डकी चुनौतियों, उनसे उनकी मुठभेड़ और संजय गांधीके कृतित्वको अच्छी तरह विवेचित किया है। इंदिरा गांधीकी दक्षिणायणसे उत्तरायणकी ओर उनके वर्तमान स्वरूपकी परिचायिका है। सारी घटनाएं समकालीन हैं अथच प्रत्यक्षदर्शीकी संवेदनाओंसे सम्पृक्त हैं। आजके इन्दिरा युगकी समस्त आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक घटनाओंको भी सूत्रोंमें पिरोया गया है।

इस ग्रन्थके शीर्षकके साथ न्याय करनेके लिए आटो वाले, तांगेवाले, हिम्माल, कुली, सफाई कामगार, विकलांग, पानवाला, मटन बेचनेवाला, दर्जी, मोची, सब्जी वाली, नमकीन ठेलेवाला, बढ़ई, फेरीवाला, जमादारिन के अतिरिक्त, तरुणों, पत्रकारों एवं बुद्धिजीवियोंके लेखक द्वारा इन्दिराजीके प्रसंगमें लिये गये साक्षात्कारभी रोचक हैं।

ग्रन्थ इन्दिरा गांधी, उनके पूर्वज, वर्तमान परिवार तथा विविधमुखी चित्रोंसे सुसज्जित होनेके कारण, एक अच्छा, आकर्षक अलबम बन गया है। लेखकको कतिपय दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण चित्र एकत्र करनेमें भी सफलता मिली है।

— डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे

अमरीकी समाज

विकृत समाज

लेखक : गीतेश शर्मा, प्रकाशक : समायोजन प्रकाशन, १६ बी जवाहरलाल नेहरू रोड, कलकत्ता-७००-०८७। पृष्ठ : १३६; डिमा.; मूल्य : २०.०० रु.।

प्रस्तुत पुस्तक अमरीकी समाजके खोखलेपनको उजागर करनेके लिए लिखी गयी है। लेखकने इस पुस्तकके द्वारा उन भारतीय युवक-युवतियोंको सावधान करनेका प्रयत्न किया है, जो भारतीय समाजकी कमियोंसे अभिभूत होकर अपनी दृष्टि अमरीकाकी ओर रखते हैं, और समझते हैं कि वहांका अत्याधुनिक समाज हमारे लिए अनुकरणीय है। लेखकका कहना है कि उसने राष्ट्रीय कर्त्तव्य-बोध, ईमानदारी और सही स्थितिसे लोगोंको अवगत करानेके लिए इस पुस्तककी रचना की है। (पृ. ६)

अमरीकी समाजका रूप लेखकने एकही अनुच्छेदमें प्रकट कर दिया है—जिस देशमें ६० प्रतिशत लोग नशीले पदार्थके सेवनके आदी हों, जहाँ १०-११ वर्षका बालक हत्याका अपराध करता हो और यह साधारण घटना मानी जाती हो, जहाँ केवल एक शहरमें बाल-अपराधियोंकी संख्या हजारोंमें हो, जिस देशमें विवाहके पहले १३-१४ सालकी कच्ची उम्रमें संभोग एवं गर्भपात एक 'फन' या 'एडवेंचर' हो, हर तीन मिनटमें एक बलात्कार और एक मिनटमें एक हत्या होती हो, जहां मानवीय मूल्योंका मजाक उड़ाया जाता हो, वह देश दूसरे देशोंको क्या नेतृत्व देगा? उससे हम क्या सीखेंगे?

'अपराधी समाज' में अमरीकामें निरन्तर बढ़ रहे अपराधों तथा 'अपराधही अपराध' में अमरीकामें निरन्तर

बढ़ रही हत्याओंकी लेखकने जानकारी दी है। 'असुरक्षित जीवन' में वहां बढ़ रही चोरियोंका वर्णन है। 'टाइम्सकी नेक सलाह' में बताया गया है कि आप अपराधीसे बच नहीं सकते, अतः शान्ति और आत्म-समर्पण करके अपराधीसे निपटनेका प्रयत्न करें।

'नशीली दवा और उसका व्यापार' में बताया है कि स्कूली बच्चेतक मादक द्रव्योंके अभ्यस्त हैं। 'जूआ और जूआ घर' के अनुसार मालिकोंको हर रोज करोड़ों रुपये जूएसे उपलब्ध होते हैं। जिसका कुछ भाग प्रशासकों एवं कानूनी सलाहकारोंका भी होता है।

'टूटते परिवार' के अनुसार यह अमरीकाकी सबसे गंभीर समस्या है। वहाँ १०-१४ वर्षकी आयुकी ३० हजार लड़कियां गर्भ धारण करती हैं। 'संत्रस्त नारी और संत्रस्त पति' शीर्षकसे स्पष्ट है कि दोनों परस्पर एक-दूसरेसे ही भयभीत होकर, एक-दूसरेके विरुद्ध षड्यन्त्र रचते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। 'असहाय उपेक्षित बुढ़ापा' में बताया गया है कि समाज व परिवारसे उपेक्षित बूढ़ोंका जीवन नर्क तुल्य बनकर रह गया है।

'स्नेह वंचित बालक'के अनुसार ५३ प्रतिशत माताएं कामगर हैं, उनके बच्चे स्नेहके लिए तरसते हैं। एक करोड़ अमरीकी बच्चोंको नियमित प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षाके साधन उपलब्ध नहीं हैं। ६ से ८ सालकी उम्रके एक करोड़ बच्चे न तो स्कूलमें भर्ती हो पाये न स्कूली शिक्षा पा सके। हर साल ५ किशोर आत्महत्या करते हैं। ५ लाख किशोर आत्महत्या करनेका प्रयत्न करते हैं। अल्कोहल और नशीली दवाइयोंका सेवन तो प्रायः सभी करते ही हैं। 'बढ़ते बाल अपराध' में बताया है कि अमरीकामें प्रतिवर्ष ७५ हजार शिक्षक अपने छात्रों द्वारा घायल कर दिये जाते हैं।

'काम विकृति' अमरीकी जन-जीवनका आवश्यक अंग है। 'समलैंगिक यौनाचार' 'बाल यौनाचार' शीर्षकोंसे स्पष्ट है कि व्यक्ति कामपूर्तिके लिए कितने कृत्रिम मार्गों में से गुजर रहा है।

सामान्य धारणा यह है कि अमरीकामें लोकतन्त्र है और मानवीय जीवन समानताके सिद्धान्तपर आधारित है। किन्तु 'रंगभेद' अध्यायमें लेखकने वहां श्वेतों और अश्वेतोंके मध्य संघर्षकी अनेक घटनाएं दी हैं। श्वेतों द्वारा अश्वेतोंपर किये जानेवाले पाशविक अत्याचारोंका लोमहर्षक यथार्थ विवरण प्रस्तुत किया है।

'भ्रष्ट और विकृत राजनीति' में बताया है कि वहां चुनाव व्यवस्था विपुल धन व प्रचार साधनोंपर निर्भर है। सीनेटर बिकाऊ मालकी तरह हैं। राजनीतिक हत्याएं बहुत अधिक हो रही हैं।

'सम्पन्नताका ढोल' अध्यायके अनुसार वहां मन्दीकी वजहसे ८२ लाख लोग बेकार हैं। भिखारियोंकी संख्या कम नहीं है। चिकित्साकी सुविधाओंके अभावमें वहां बालक मर जाते हैं। १६ प्रतिशत बच्चे गरीबीमें पलते हैं। न्यूयार्कमें ३ हजारसे अधिक बेघर लोगोंके पास सोने की जगह नहीं है। १९८० में १३ प्रतिशत लोग गरीबी की सीमा-रेखासे नीचेकी जिन्दगी बसर कर रहे थे। हर वर्ष २० से २२ प्रतिशत महंगाई बढ़ जाती है।

'साहित्य और कला' के नामपर हिंसा और कामका बोलबाला है। यदि लेखक वहांकी शिक्षा व धार्मिक संस्थानों, तथा सामाजिक संस्थाओंमें व्याप्त भ्रष्टाचारका भी वर्णन करता तो अमरीकी समाजका चित्र और अधिक पूर्ण यथार्थ उभरता।

'कतरनें' अध्यायके शीर्षक हैं : 'छात्रोंने ७५ हजार शिक्षक घायल किये, हैण्डगनसे हत्याएं, रीगन हैण्डगनपर रोक लगानेके विरुद्ध, प्राणघातक खेल, अटलाण्टामें बच्चोंपर कर्फ्यू, फिल्मी अपराध वास्तविक जीवनमें, अमरीकाका बच्चे बेचनेवाला गिरोह गिरफ्तार, समलैंगिक जोड़ोंकी अभूतपूर्व परेड, हत्याओं की बाढ़, अमरीकामें अपराध आदि समाचार विभिन्न समाचार पत्रोंके आधारपर हैं, जो वहाँके विकृत समाजके प्रमाण हैं। अमरीकियोंकी दृष्टिमें अमरीका अध्यायमें विभिन्न अमरीकी विद्वानोंके अमरीकाके बारेमें धारणाएं व्यक्त की गयी है। हरबर्ट मारकूरू (१९६८) के अनुसार 'पूराका पूरा अमरीकी समाज पागलपनका विस्फोट है। समस्या यह नहीं कि कौन पागल है। यह समाजही उन्मादग्रस्त है। (पृ. १३८)

लेखकने प्रारम्भमें 'ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' तथा 'भौगोलिक स्थिति' अध्याय लिखकर अमरीकाका संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत किया है, 'हमारे अमरीकी सपने' में भारतीय समाजकी अमरीकाके प्रति बिना सोचे-समझे समर्पित भाव का वर्णन किया है।

लेखकने यह सम्पूर्ण सामग्री इण्टरनेशनल हेराल्ड ट्रिब्यून, हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम, स्टेट्समैन, डीरोथी शील्ड्स, करेंट, वाशिंगटन, न्यूयार्क पोस्ट, न्यूज वीक, इण्डियन एक्सप्रेस, नवभारत टाइम्स, टाइम्स ऑफ इण्डिया, जैण्टिलमैन आदि उन पत्र-पत्रिकाओंसे एकत्रित

की है जो अमरीका समर्थक हैं और जिनकी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय साखभी है। (पृ. ६)अतः यह सामग्री प्रत्यक्ष अनुभवोंपर आधारित तो नहीं है, पर प्रामाणिक पत्र-पत्रिकाओंसे अवश्य ली गयी है।

केवल भौतिकवादी संस्कृतिपर आधारित होनेसे अमरीकाका जीवन बहुतही भ्रष्ट और एकांगी हो गया है। लेखकने उस जीवनके खोखलेपनको सुन्दरतासे व्यक्त किया है।

लेखकका दावा है कि अमरीकी जन साधारणके प्रति उसके मनमें कोई दुर्भावना नहीं है, न उसका अपमान करनेकी इच्छासे उसने यह सारी सामग्री संगृहीत की है।

फिरभी यह सम्पूर्ण संग्रह एकांगी हो गया है। यदि लेखक चाहता तो उक्त पत्रिकाओंसे ही अमरीकी समाज की शक्तिके निदर्शनभी जुटा सकता था। लेखकका लक्ष्य अमरीकी समाजकी सीमाओंका उल्लेख करनाही था, उसमें वह सचमुच सफल रहा है। पर इसे पढ़ते समय यह भ्रान्ति-सी उत्पन्न होने लगती है कि कहीं किसी साम्यवादी संस्थाकी प्रेरणासे अमरीकी समाजके प्रति भारतीय मानसमें घृणा जागृत करनेके लिए यह पुस्तक न लिखी गयी हो?

अमरीकी समाजकी स्वच्छन्दता उसका स्वास्थ्य, लम्बा जीवन,पूर्वाग्रहोंसे मुक्त उसका अनौपचारिक जीवन, उसका खुलापन, उसकी उदारता, उसकी कर्मठता, ज्ञान-विज्ञान व आन्दोलनके प्रति उसकी उत्कट अभिलाषा, विश्वके अधिकांश देशोंमें व्याप्त उसका प्रभाव आदि अनेक ऐसे तथ्य हैं जो अमरीकी समाजकी शक्ति हैं। यदि सचमुच 'विकृत समाज' सा ही अमरीका होता तो वह विश्वमें इतने सम्मानसे टिका नहीं रह सकता था।

वस्तुतः 'विकृत समाज' में अमरीकी जीवनकी कतिपय गम्भीर कमियोंका लेखकने उल्लेख किया है, और यह पुस्तक इस दृष्टिसे बहुत उपयोगी है कि भारतीय युवक कहीं भूलसे या प्रचारके भ्रमसे अमरीकाको हीअपना आदर्श स्वीकार न कर लें। अमरीकी समाजकी विकृतियों को पढ़कर वह सोच सकेगा कि यदि उसने अमरीका जाकर कुछ सीखना है तो उसके पासभी अमरीकाको देनेके लिए बहुत कुछ है। यदि लेखक वहाँके भौतिकतापर आधारित एकांगी जीवनको पूर्णता प्रदान करनेके लिए भारतीय विवाह पद्धति, पारिवारिक स्नेह, सन्तानके प्रति ममत्व, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्योंकी भी व्याख्या करता तो उसकी दृष्टि तटस्थ व पूर्ण रहती।

हम लेखकसे आशा करते हैं कि वह पुस्तकके अगले संस्करणमें विकृत समाजके साथ इन विकृतियोंके कारण व अमरीकाकी शक्ति तथा अमरीका भारतसे क्या सीख सकता है, आदि बातोंका समावेश करके पुस्तकको एकांगी होनेसे बचाकर उसे पूर्णता प्रदान करेगा।

□ डॉ. प्रशान्त

व्याकरणिक शब्दकोश

प्रयोग और प्रयोग[1]

लेखक : बी. रा. जगन्नाथन **समीक्षक . डॉ. ब्रजमोहन**

प्रस्तुत पुस्तक मुख्यतः व्याकरणित शब्दोंका कोश है। अतएव, 'प्रयोग और प्रयोग' नाम स्पष्ट नहीं होता। यों इसमें बहुत-से शब्द ऐसेभी हैं जिनका व्याकरणसे कोई घनिष्ठ संबंध नहीं है, जैसे—अमकु, दंपति, मुकदमा, लायक। तिसपर भी यदि इसका नाम 'व्याकरणिक शब्द-कोश' रखा जाता तो संभवतः आपत्तिजनक न होता।

शब्दोंको अकारादि क्रममें लगाया गया है और यही समीचीन है क्योंकि शब्दकोशोंको अध्यायोंमें बाँटना व्यावहारिक नहीं है। अधिकतर शब्दोंका विवेचन भली-भांति किया गया है, और लेखकने यह प्रयास किया है

१. **प्रयोग और प्रयोग** ; लेखक : बी. रा. जगन्नाथन; प्रकाशक : आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, २/११ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ४५२; रायल ८१; मूल्य : १००.०० रु.।

कि अपनी बात पाठकोंतक सुस्पष्ट रूपमें पहुँचा सके। फिरभी पाठक लेखक महोदयकी समान मान्यताओं से सहमत ही हो जायें, यह आवश्यक नहीं है। यहाँ हम उनके कुछ शब्दोंके विवेचनका उल्लेख करेंगे।

अंग्रेजीसे आगत स्वर (पृ. २)) : लेखकने अंग्रेजी से आगत तीन स्वरोंका उल्लेख किया है : ऍ ऐ॑ ऑ।

लेखकने कहा है कि अंग्रेजीके इस प्रकारके शब्दों (क) get, men, Scent, cell, को 'ए' की मात्राका प्रयोग करके लिखा जाता है : गेट मेन सेंट सेल। किंतु अंग्रेजीके ये शब्दभी इसी प्रकार लिखे जाते हैं : gate main saint, sale,। (१)

इस भ्रमको बचानेके लिए कुछ लोग (क) में दिये शब्दोंको यों लिखते हैं : गैट, मैन, सैंट, सैल। किंतु इस प्रकार समस्याका समाधान नहीं होता, क्योंकि इस मात्रा से अंग्रेजीके इस प्रकारके शब्दभी लिखे जाते हैं : hat man, jam, ass। लेखक महोदय अन्तमें यह निष्कर्ष निकालते हैं कि "अगर ह्रस्व ऍ मात्रा 'ॅ' से ही लिखा जाये और इसके लिए नया चिह्न न बनाया जाये तो काम चल सकता है।"

प्रश्न यह है कि अंग्रेजीके उपरिलिखित शब्द हिन्दी की पुस्तकोंमें तो आयेंगे नहीं। अतएव, ऐसी पुस्तकोंमें तो नये चिह्न लगानेका प्रश्नही नहीं। किन्तु जिन पुस्तकोंके द्वारा हम हिन्दीभाषियोंको अंग्रेजी पढ़ायेंगे, उनसे उक्त शब्दोंका उच्चारण किस प्रकार सिखायेंगे। मान लीजिये हम men का उच्चारण मेन लिखते हैं,तो पाठक यह कैसे समझेगा उच्चारण men है या main? अतएव ऐसी पुस्तकों, और भाषा-विज्ञानकी पुस्तकों, शब्दकोशों आदिके लिए तो हमें कुछ नये चिह्न बनाने ही पड़ेंगे।

'अ' का मराठी रूप 'अ' तो अब अधिकतर हिन्दी-भाषियोंने स्वीकार कर लिया है। अतएव, अब निम्न-लिखित स्वर **अ आ ओ औ अँ अं अः** बहुधा इस प्रकार लिखे जाते हैं : अ आ ओ औ अँ अं अः यदि ए, ऐ, के भी नये रूप अे अै स्वीकार कर लिये जायें तो बड़ी सुविधा हो जाये। यहाँ हम नागरी लिपि सुधारकी व्यापक व्यवस्थापर विचार नहीं कर रहे। केवल विशेष प्रयोजनसे लिखी गयी अंग्रेजीकी पुस्तकोंके लिए जो नये चिह्न बनाने होंगे, उनका विवेचन कर रहे हैं। हम यहाँ ऐसा प्रस्ताव देते हैं जिससे ऊपर दिये हुए सारे झमेले समाप्त हो जायेंगे। हमारा मन्तव्य इन शब्दोंसे स्पष्ट हो जायेगा :

end	men	Send	Set
अ॑ंड	मे॑न	से॑ंड	से॑ट
and	man	Sand	Sat
अैंड	मैन	सैंड	सैट

इस प्रकार हमारा मौलिक स्वर 'ए' अछूता बच जायेगा। वह ऐसेही शब्दोंके काम आयेगा जैसे (१) में दिये गये हैं।

उपरिलिखित प्रस्तावके लिए हमें केवल दो नये चिह्न बनाने होंगे : ॓ ॔। सच पूछिये तो यह प्रस्ताव हमारा अपना नहीं है। कुछ लेखक इन चिह्नोंका प्रयोग करनेभी लगे हैं।

अब इस नये चिह्न ॉ पर विचार कीजिये जो इस प्रकारके शब्दोंमें दिखायी देता है :

Doctor	Hockey	Model	College (2)
डॉक्टर	हॉकी	मॉडल	कॉलिज

इन शब्दोंके साथही लेखक महोदयने इस प्रकारके शब्दोंपर भी विचार किया है : call dawn laud raw (३) लेखक महोदयके विचारसे इन शब्दों में भी उसी स्वरका प्रयोग होता है जिसका (२) वाले शब्दोंमें। किन्तु भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे ये दोनों स्वर एक दूसरेसे भिन्न हैं। उनके उच्चारणमें मुख अधिक खुलता है, (२) वाले शब्दोंकी तुलनामें।

एक बात औरभी है,(२) वाले शब्द ऐसे हैं जो सामान्य हिन्दीमें आत्मसात् हो गये हैं। (३) वाले शब्द ऐसे नहीं हैं। इस चिह्न 'ॉ' को तो सन् १९५७ वाले नागरी-लिपि सुधार सम्मेलन (लखनऊ) ने स्वीकार कर लिया था, और केन्द्रीय सरकारने भी इसे मान्यता दे दी है। यदि हम हिन्दीकी अभिव्यंजना-शक्तिको बढ़ाना चाहते हैं तो इस प्रकारके लिपि सुधारोंको स्वीकार कर लेना चाहिये।

अब रहा प्रश्न पंक्ति (३) वाले शब्दोंके लेखनका। ऐसे शब्द उन्हीं पुस्तकोंमें आयेंगे जो हिन्दीवालोंको अंग्रेजी सिखानेके लिए लिखी जायें। सामान्य हिन्दी-भाषासे इनका कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ अंग्रेजी-हिन्दी कोशोंने ऐसे शब्दों को इस प्रकार लिखना आरम्भ किया है : काः ल, डाः न, लाः ड, रा.। अतएव, ऐसी पुस्तकोंके लिए इस चिह्नको अपना लिया जाये। लेखक महोदयने अपनी सूचीमें इन शब्दोंका भी समावेश किया है : pot, wrong long। इनमें प्रयुक्त स्वर पंक्ति (२) वाले शब्दों जैसा है। किन्तु अभी हिन्दीमें आत्मसात् नहीं हुए हैं। अतः इनका कोई प्रश्नही नहीं है।

यदि लेखकने Mall शब्द न दिया होता, तो उपयुक्त होता। इसके दो उच्चारण हैं: मॉल, माल। पिछले उच्चारणका तो न (२) वाले शब्दोंके स्वरसे सम्बन्ध है। न (३) वाले शब्दोंके स्वरसे।

विदेशी व्यंजन (३२४)

"निम्नलिखित पाँच व्यंजन स्वन हिन्दीमें विदेशी भाषाओंसे गृहीत हुए हैं: क़ ख़ ग़ ज़ फ़।" लेखक महोदयने इन व्यंजनोंपर विस्तारसे विवेचन किया है। उनके मंतव्य इस प्रकार हैं:

(i) क़—उर्दू में इसका उच्चारण लगभग समाप्त-प्राय है। हिन्दीभाषियोंमें उर्दू के माध्यमसे पढ़े-लिखे लोगों के कुछ प्रतिशत (शायद १०-१५ प्रतिशतसे ज्यादा नहीं) लोगोंके व्यवहारमें इसका उच्चारण सुनायी पड़ता है। ···क़ की शोभा हिन्दीसे हटे तो अच्छाही है।

इस विचारसे सहमत होना कठिन है मैं स्कूलमें उर्दू का विद्यार्थी रहा हूं और उर्दू के ही वातावरण (पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में पला हूं। आजतक सैकड़ों उर्दू विदोंके संपर्क में आया हूं। उनमेंसे एकभी व्यक्ति मुझे ऐसा नहीं मिला जो क़ के बदले क बोलता हो,अर्थात्, जो इन शब्दों क़िस्मत, नक़्क़ाल, मज़ाक़, इश्क़ का उच्चारण इस रूपमें करता हो: किस्मत, नक्काल, मजाक, इश्क।

(ii) ग़—"इस स्वनका क़ की अपेक्षा कुछ अधिक व्यवहार है, लेकिन पूर्णत: शिक्षितोंकी बोली तथा साहित्यिक भाषातक सीमित रहनेके कारण और सामान्य बोल-चालमें व्यवहृत न होनेके कारण इस स्वनको भी मानक हिन्दीसे दूर रखना आपत्तिजनक नहीं होगा।"

इस व्यंजनके विषयमें भी हमारा वही विचार है जो क़ के विषयमें। जो लोग उर्दू विद हैं, अथवा उर्दू के वातावरणमें पले हैं, बराबर इन शब्दों ग़ैर, ग़ैरत, मुर्ग़ा, ग़रूर, बाग़ का शुद्ध उच्चारण करते हैं। कभी इस रूपमें नहीं करते: गैर, गैरत, मुर्गा, गरूर, बाग।

(iii) ख़—इस स्वनका हिन्दी भाषामें क़ ख़ ग़ से अधिक गहरा स्थान है।

(iv) ख़, फ़—महाप्राण व्यंजन अल्पप्राण व्यंजनसे पहले संयुक्त नहीं हो सकता अतएव तख़्त, सख़्त, फ़ख़्र को हम यों तो तखत, शखस,फ़खर के रूपमें उच्चारित करेंगे, या फिर तक्त, शक्स, फक्र के रूपमें, क्योंकि (बिना बिन्दी के) ये शब्द तख्त, शख्स फख्र बोलेही नहीं जा सकते। इसी प्रकार मुफ़्त, रफ़्तार, इफ़्तिख़ार, को या तो मुफत, रफतार, इफतिखार, कहेंगे, या फिर मुप्त, रप्तार, इप्तिखार। हम (बिना बिन्दीके) शब्दों मुफ्त, रफ्तार, इफ्तिार, को बोल नहीं सकते।

(v) ज़, ख़, फ़—ये ध्वनियाँ, या इनसे मिलती-जुलती ध्वनियां कई भारतीय भाषाओंमें विद्यमान हैं, जैसे गुजराती,मराठी, तेलुगू। एक प्रकारसे ज़ हिन्दीमें भी विद्यमान है, क्योंकि कुछ हिन्दीभाषी इन शब्दों मजबूर, बावजूद, मजालको ग़लतीसे मज़बूर, बावज़ूद, मज़ाल कहते हैं।

अतएव, लेखकके विचारसे उपरिलिखित तीनों व्यंजनों का प्रयोग तो हिन्दीमें करना चाहिये, किन्तु क़, ग़ का नहीं। हमारा विचार है कि इन पाँचों व्यंजनोंको हिन्दीमें स्थान मिलना चाहिये।

इस प्रकरणमें यदि लेखक महोदयने दो बातोंपर और ध्यान दिया होता तो अच्छा था:

(१) तनिक इन शब्दोंपर विचार कीजिये: measure, occasion। यहाँ जो व्यंजन ध्वनि su और sio से निकलती है, उसके लिए नागरी लिपिमें कोई स्थान नहीं है। अंग्रेजीके उपरिलिखित शब्द हिन्दीमें आत्मसात् नहीं हुए हैं और न जल्दी होनेकी आशा है। किन्तु उर्दू और हिन्दी सहोदर भाषाएँ हैं। उर्दू का शब्द अज़दहा लाखों हिन्दी-भाषी समझते और बोलते हैं और कुछ लेखक इस ध्वनि को इस प्रकार 'झ़' 'अझ़दहा' निरूपित करनेभी लगे हैं। हम यह मानते हैं कि इस ध्वनिको व्यक्त करनेका यह कोई वैज्ञानिक ढंग नहीं है, किन्तु ज़ के सादृश्यपर इसेभी स्वीकार कर सकते हैं। (इस सम्बन्धमें देखें: ब्रजमोहन: बिन्दीयुक्त अक्षर, शब्दलोक प्रकाशन, लाजपत नगर, मलदहिया, वाराणसी २२१००२ (१९७०)-२)। कुछ लेखक 'ज़' से ही इस ध्वनिका भी काम ले लेते हैं (दे. 'प्रयोग और प्रयोग' पृ. १५०) किन्तु हमारे विचारमें यह अनुपयुक्त है।

(२) नागरी लिपिके अर्ध-स्वर 'व' की दो ध्वनियाँ हैं: एक दन्त्योष्ठ्य, दूसरी द्वयोष्ठ्य जो रोमन लिपिके v और w से व्यक्त होती हैं। इन ध्वनियोंका अन्तर निम्न-लिखित शब्दोंसे स्पष्ट हो जायेगा।

विल्वमंगल Vilwamangal
वैश्वानर Vaishwanar
विश्वेश्वर Vishweshwar

अधिकतर स्थानोंपर 'व' का उच्चारण v जैसा होता हैं। अत: यदि w वाले उच्चारणके लिए यह चिह्न व निर्धारित कर दिया जाये तो क्या बुराई है? कुछ लेखक ऐसा करनेभी लगे हैं।

इस प्रस्ताव और उपरिलिखित अन्य प्रस्तावोंमें यह अन्तर है कि वे ध्वनियाँ तो एक प्रकारसे नागरी लिपिके लिए नयी हैं। यह ध्वनि तो पहलेसे विद्यमान हैं, केवल इसके लिए एक पृथक चिह्न निर्धारित करना है।

अंग्रेजी स्वनोंका नागरीमें लेखन (पृ. ४) इस प्रकरण में अंग्रेजी शब्दोंको नागरीमें लिखनेके सामान्य, प्रचलित प्रकारोंकी चर्चा की गयी है। विवेचन सुस्पष्ट और विस्तृत है।

अनुनासिकता (पृ. १५) यों तो यह विवेचनभी काफी स्पष्ट है, और छाँट-छाँटकर अच्छे उदाहरण दिये गये हैं किन्तु पृ. १६ पर दिया गया यह वाक्य विचारणीय है: "हिन्दीके लेखनमें अनुनासिकताके दो चिह्न हैं। ँ उन वर्णोंके ऊपर लिखा जाता है जिनकी शिरोरेखाके ऊपर कोई मात्रा नहीं है, जैसे : अँतड़ा, आँत, इँगुआ, रुँधना, ऊँट। ऊपरके मात्रायुक्त शब्दोंमें ं लगता है, जैसे निंदिया, ईंट, नींद, गेंद, ऐंठ।" हमारे विचारमें वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। इस बातको यों लिखा होता तो अच्छा होता : "हिन्दीके लेखनमें अनुनासिकताका चिह्न ँ है। किन्तु जिन शब्दोंमें शिरोरेखाके ऊपर मात्राएँ लगायी जाती हैं,उनमें, मुद्रण और मुद्रलेखनकी सुविधाके लिए यह छूट दे दी गयी है कि ँ के बदले ं का प्रयोग हो सकता है। ऐसा करनेसे कोई भ्रम नहीं होता क्योंकि हिन्दीमें शब्दान्तमें अनुनासिक ध्वनि ही आती है, जैसे : हैं, उन्हें, क्यों, आयें, (४)। इन शब्दोंको लिखनेका शुद्ध रूप यह होगा : हैँ, उन्हेँ, क्योँ, आयेँ, (५)। किन्तु हिन्दीमें इस ढंगके शब्द हैं नहीं : हैम्, उन्हेम्, क्योम्, अयेम्। जिनसे उपरिलिखित शब्दोंका भ्रम हो सके।

जिस रूपमें लेखकने उपरिलिखित नियम दिया है, उसका तो मतलब यह निकलता है कि ऊपर दिये हुए शब्दों (४) को (५) के रूपमें लिखना ही गलत होगा। यह उक्त नियमका अर्थ नहीं होगा, अनर्थ होगा।

अनुस्वार (१८) और **अन्विति** (२०) पर लिखे हुए लेख काफी अच्छे हैं। पृ. पर **अभिवादन** प्रकरणपर काफी प्रकाश डाला गया है। यह प्रायः अछूता विषय है। इसमें अभिवादनके तीन रूप बताये गये हैं : (१) हाव-भाव (२) मौखिक अभिवादन-संवाद (३) अभिवादन शब्दोंका प्रयोग। अभिवादन किस-किस प्रकार होता है, और उसके प्रत्युत्तरके क्या-क्या ढंग होते हैं, यह बड़ी रोचक-भाषामें समझाया गया है। इसके अतिरिक्त छोटे बड़ोंका किस प्रकार अभिवादन करते हैं, बड़े छोटोंमें और बराबरवालोंमें किस प्रकार अभिवादन होता है, इनका अन्तरभी बताया गया है।

अर्थ-सामीप्य दिखानेवाले प्रयोग (३४) और **अ-लोप** (३७) जिसमें यह दिखाया गया है कि अ कहाँ मूक हो जाता है--प्रकरणभी पठनीय है।

एक महत्वपूर्ण विषय है **अविकारी विशेषण शब्द** (४३) इसमें लेखकने इस बातपर ध्यान दिलाया है कि अरबी-फारसीके कुछ विशेषण जो अबतक अविकारी थे, अब हिन्दीके सम्पर्कसे विकारी बनने लगे हैं, जैसे **उर्दू** : ताज़ा घी, ताज़ा खबर, ताज़ा फल। **हिन्दी** : ताज़ा घी, ताज़ी खबर, ताज़े फल। **उर्दू** : गन्दा पानी, गन्दा हवा। **हिन्दी** : गन्दा पानी, गन्दी हवा।

अव्यक्त कथन (४४) **असमर्थतासूचक वाक्य** (४८) पठनीय हैं। पृ. ७५-७८ पर **और** का विवेचन सुन्दर हुआ है।

करता, करता है, करता था (७९) और **करेगा** (८३) का विवेचनभी काफी सूचनात्मक है।

क्रिया और क्रियारूप शीर्षकोंपर काफी विस्तृत लेख दिये गये हैं (११३-१२४)। इस विषयमें तीन विद्वानों : केलाग, कामताप्रसाद गुरु और धीरेन्द्र वर्माके मतोंकी तुलना रोचक और ज्ञानवर्धक है। साथही कई आरेख बनाकर विषयको विस्तारसे समझाया गया है।

गत्यर्थक क्रियाओं आना, जाना, पहुँचना, चलना, भागनाका विवेचन (१३३-१३५) भी अच्छा हुआ है।

निपात (१६०) वाला लेखभी द्रष्टव्य है। लेखक ने सात निपातोंका उल्लेख किया है : ही, भी, तो, तक; न, भर, भला। इनमें से पहले चार तो उपवाक्य या वाक्य स्तरसे ऊपरके हैं। बिना संदर्भके सरल उपवाक्यमें इनका उपयोग नहीं हो सकता। उदाहरणस्वरूप कुछ वाक्य भी दिये हैं :—

तो आप जायेंगे? मैं तो नहीं जाऊँगा।

ही आप जायेंगे? हाँ, मैं ही जाऊँगा।

भी राम जायेगा तो गोपाल भी जायेगा।

तक हेडमास्टरतक यह बात जाती है।

शेष तीनों निपात सरल उपवाक्यके भीतरभी आ सकते हैं :

भला मैं गाना क्या जानूँ भला।

न आप कल आम न लाये थे?

भर मैं उसे एक बार नज़रभर देख लूँ।

यह तो हुआ 'भर' का निपातके रूपमें प्रयोग। किन्तु

'भर' के तीन प्रयोग औरभी हैं :

विशेषण घर भरमें दिन भर, रात भर—इन पदोंमें यह संज्ञाके साथ अवधि सूचित करनेवाला शब्द है।

क्रिया : उसका पेट तो भर जाने दो।

पंचमाक्षर (१६४) वाला लेख सारगर्भित है। लेखकने इस सम्बन्धमें तीन प्रकारके वर्ग गिनाये हैं। किन्तु हमारा वर्गीकरण उनके वर्गीकरणसे थोड़ा-सा भिन्न है। हमारे विचार इस प्रकार हैं :

(१) क-वर्ग और च-वर्गके वर्णोंके साथ सदैव अनुस्वारका प्रयोग किया जाये, चाहे शब्द तत्सम हों, तद्भव हों, देशज या विदेशी। यथा :

लंका, पंखा, गंगा, कंघा, रंचक, पंछा, कंजा, मंझा
अंक, पंख, भंग, संघ, चंचु, पंछी, पंज, झंझा
टैंक, लुंगी, लंच, रंज

(२) अंतस्थ और ऊष्म स्वनोंसे पहले सामान्यतः अनुस्वारका प्रयोग हो :
संयम, संराधन, संलाप, संवेदना
अंश, प्रशंसा, संहति

(३) ण् का प्रयोग वहींपर हो जहाँ यह स्पष्ट रूपसे बोलता हो, चाहे इसके बादका वर्ण किसीभी वर्गका हो। यथा—
पुण्य विषण्ण कण्व मृण्मय

(४) शेष सारे स्थानोंपर 'ण्' के बदले बिन्दीका प्रयोग किया जाये, चाहे शब्द स्वदेशी हो या विदेशी :
कंटक कंठ गुंडा ठंडा
पैंट लंडन

किन्तु यदि इस प्रकारके विदेशी शब्द 'न्' से लिखे जायें तो उन्हें अशुद्ध न समझा जाये, यथा : पैन्ट, लन्डन।

(५) त-वर्ग और प-वर्ग वर्णोंके पहले न् और म् लिखे जायें, किन्तु यदि उन्हें बिन्दीसे लिखा जाये तो क्षम्य समझा जाये यथा :

अन्त, कन्थ, गन्दा, गन्ध, लम्प, गुम्फन, लम्बा, दम्भ
अंत, कंथ, गदा, गंध, लंप, गुंफन, लंबा, दंभ

(६) जिन शब्दोंमें न् अथवा म् स्पष्ट रूपसे बोल रहे हों, वहाँ उन्हींका प्रयोग किया जाये :
इन्कार भुन्गा गन्ना तन्मय अन्य
सम्मुख आम्र

यह नियम च-वर्गके वर्णोंको छोड़कर शेष सब वर्गों के वर्णोंपर लागू होगा, न और म के द्वित्वपर भी।

हमारे विचार लगभग वही हैं जो लेखकके, यद्यपि हमने उन्हें अपनेही शब्दोंमें ढाला है। केवल (३) और (४) अर्थात् 'ण्' के प्रयोगमें ही थोड़ा-सा अन्तर है।

प्रतिध्वनिमूलक शब्द (२११) और **प्रतिबिम्बित शब्द** (२१५) वाले लेखभी काफी व्यापक हैं। किन्तु **प्रेरणार्थक क्रिया** (२२३) वाले लेखको पढ़कर तो हम दाँतों तले उँगली दबाकर रह गये। हम यहाँ उनके कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं : "राम खाना खाता है' इस कारण निरर्थक है कि यह कोई निश्चित अर्थ नहीं देता, कोई नयी सूचना नहीं देता। संसारमें हर व्यक्ति खाना खाता है। सदर्भके अनुसार जबतक इस वाक्यमें कोई नयी सूचना न हो (राम सवेरे खाना खाता है, राम होटलमें खाना खाता है) तबतक यह वाक्य नहीं है।—इसी प्रकार 'माँ दाईसे बच्चेको दूध पिलवाती है' आदि संरचनाकी दृष्टि से शुद्ध, लेकिन प्रयोगकी दृष्टिसे गलत वाक्य है। यह वैयाकरणों द्वारा गढ़ा हुआ कृत्रिम वाक्य है।

इस प्रकार तो निम्नलिखित वाक्योंमेंसे कोईभी 'वाक्य' कहलाने योग्य नहीं है : बच्चा पैदा होता है। पहले गोदीमें खेलता है, फिर घुटनों चलने लगता है। बोलने लगता है। पाठशाला जाता है। बड़ा होता है। व्यवसायसे लगता है। विवाह करता है। उसके सन्तान होती है। प्रौढ़ होकर वृद्ध होता है। रुग्ण होता है। अन्त में मर जाता है।

उपरिलिखित सारा पैरा प्रयोगकी दृष्टिसे निरर्थक हो जाता है। यह बात हमारे गले नहीं उतरती। हमारा विचार है कि लेखक महोदय 'वाक्य' की कोई नयी परिभाषा बनायें। उसपर अपने नये व्याकरणका ढाँचा खड़ा करें। अन्यथा, ऊपर दिये हुए पैरेको दुबारा लिखें।

भाषामें फुटकर खाता (२४३) और **लिंग** (२६५) शीर्षकवाले लेख साथ-साथ पढ़ने योग्य हैं। पुल्लिंग और स्त्रीलिंगके प्रयोगके विषयमें एक पैरा बहुत सारगर्भित और रोचक है। हम उसे यहाँ ज्योंका त्यों उद्धृत करते हैं : "जिन संदर्भोंमें निश्चित रूपसे स्त्रीलिंगका बोध होता है, वहाँ स्त्रीलिंग क्रियाका प्रयोग अनिवार्य है। अगर उल्लिखित व्यक्ति या वस्तुके लिंगका निश्चित ज्ञान नहीं, तो वहाँ पुल्लिंगका प्रयोग होता है। उदाहरणके लिए निम्नलिखित प्रयोग देखिये

कोई गा रही है (जब मालूम हो कि गानेवाला स्त्री ही है)

अन्दर कोई बैठा है (जब व्यक्तिके लिंगका ज्ञान न हो)

अन्दर कुछ पड़ा है (जब अन्दरकी चीज़के बारेमें कोई जानकारी न हो)

अन्दर कोई चीज़ पड़ी है (चीज़ स्त्रीलिंग शब्द है)

अन्दर कौन बैठा है? (जब बैठे हुए व्यक्तिके विषय में जानकारी न हो)

अन्दर कौन बैठी है? (जब मालूम हो कि अन्दर कोई स्त्री है, और यह मालूम करना हो कि वह स्त्री कौन है)

माँ, कोई आया है (जब आनेवालेके बारेमें घंटीसे जानकारी मिले, लेकिन व्यक्तिके बारेमें जानकारी न हो)

मां, देखो, कौन आया है (जब व्यक्तिको देखनेपर भी श्रोताको कोई जानकारी न देनी हो)

माँ देखो, कौन आयी हैं (आनेवाली स्त्री हैं और आदरणीय है, यह सूचना देनेके लिए)

इन सब प्रयोगोंमें स्त्रीलिंगही निश्चित कोटि है, पुल्लिंग संशयात्मक प्रयोग है और फुटकर खाता है।

लिंग के अन्तर्गत संज्ञाके दो व्यापक वर्ग किये गये हैं: चेतन और जड़; चेतनके दो उपवर्ग है: मानुष और मनुष्येतर।

मनुष्येतर उपवर्गके भी दो प्रवर्ग हैं। उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय। जड़ वर्गके अन्तर्गत दो उपवर्ग हैं: पदार्थ (भौतिक वस्तुएँ), उपदार्थ (भाव, विचार आदि)। प्रत्येक वर्ग और उपवर्गके अन्तर्गत अनेक उदाहरण दिये गये हैं, जो बहुत स्पष्ट और सूचनात्मक हैं।

रंजक क्रिया (२६७)—लेख विवरणात्मक और स्पष्ट है। किन्तु ऐसी क्रियाओंके अन्तर्गत लेखकने इन क्रियाओंका भी उल्लेख किया है:

उकता उठना, खिसिया उठना, झेंप उठना, शरमा उठना, उबल उठना, लजा उठा, रो उठना, हँस उठना।

संभव है किसी सीमित क्षेत्रमें ये प्रयोग चलते हों। हमारी जानकारीमें तो इन व्यापारोंके प्रचलित रूप ये हैं:

उकता जाना, खिसिया जाना, झेंप जाना, शरमा जाना, लजा जाना, उबल पड़ना, रो पड़ना, हँस पड़ना।

वाच्य (३११) का विश्लेषण नये ढंगसे किया गया है। लीकको छोड़कर लेखकने तीन प्रकारके वाच्य बताये हैं: अकर्तृत्वबोधक, अकर्तृत्वसूचक, असमर्थतासूचक। वर्गीकरण मौलिक है, किन्तु इसे स्वीकार करनेसे पहले काफी मनन और चिंतन करना होगा।

विदेशी बहुवचन शब्द (३२२) के अन्तर्गत उन शब्दोंके बहुवचन रूपका विवेचन तो परम्परागत है जो संस्कृत अरबी-फारसीसे आये हैं किन्तु अंग्रेजीसे आये हुए शब्दोंके विषयमें लेखक महोदय गड़बड़ा गये हैं। देखिये:

आकारांत पुल्लिंग शब्दोंमें हिन्दीकी प्रकृतिके अनुसार रूपसिद्धि कई जगह अटपटी होती है—सोडा, डिप्लोमा, सिनेमा, ड्रामा। यहाँ, दो सोडा ले आओ, दो सोडे ले आओ - दोनों वाक्य सुननेमें आते हैं। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि रूपसिद्धि अटपटी होती है और अंग्रेजी बहुवचनका प्रयोग हिन्दीके प्रयोगके अनुरूप नहीं है।

यह कठिनाई काल्पनिक है। लेखकने दो प्रकारके शब्दोंको एकमें मिला दिया है। डिप्लोमा, फार्मूला, ड्रामा के बहुवचन रूप डिप्लोमे, फार्मूले, ड्रामे हैं। इनमें कोई कठिनाई नहीं है। किन्तु 'सोडा' और 'सिनेमा'के बहुवचन रूप तो अंग्रेजीमें भी नहीं बनते। कोई अंग्रेज यह नहीं कहेगा कि Bring two sodas. या तो कहेगा: Bring soda या Bring two bottles of soda। इसी प्रकार हिन्दीमें कहेंगे: सोडा ले आओ, या--सोडेकी दो बोतलें ले आओ। इसी प्रकार कोई यह नहीं कहेगा कि There are ten cinemas in the city, न यह कहेगा I have seen two cinemas today, वह कहेगा कि There are ten cinema houses in the city, या I have seen two cinema fils today। हिन्दीमें कहेंगे: नगरमें १० सिनेमा-गृह है। या -मैंने आज दो सिनेमा फिल्में देखीं। यों, स्थूल रूपसे हम सोडेकी बोतलको सोडा कह देते हैं, और सिनेमा-फिलमको केवल फिल्म या केवल सिनेमा।

कारक (१३) **परसर्ग** (१९८) **विभक्ति** (३३१)—ये तीनों लेख एक साथ पढ़ने योग्य हैं। स्व. प. किशोरी दास वाजपेयी परसर्ग शब्दके प्रबल विरोधी थे। उनके तर्कोंका लेखकने मुँहतोड़ उत्तर दिया है। विभक्तियों पर भी लेखकके विचार चिंतनीय हैं। आशा है और विद्वान्‌भी इस विषयपर मनन करेंगे और अपने विचार व्यक्त करेंगे।

पृ. ३३८ पर **व्यंजन गुच्छ** आता है। जहाँतक हमें पता है, इस विषयपर बहुत कम लेखकोंने अपनी लेखनी उठायी है। लेखककी इस परिभाषासे हम सहमत हैं: "व्यंजन गुच्छ उन दो या अधिक व्यंजनोंको कहेंगे, जो एक अक्षरमें स्वरसे पहले या बादमें आते हों और जिनके बीच अक्षरकी सीमा न हो।" यों तो यह परिभाषा सन्तोषजनक है और इससे उक्त विषय सम्बन्धी कई मामले सुलझ जाते हैं। जैसा लेखकने स्वयं लिखा है किन्तु इसमें भी एक असावधानी बरती गयी है। इस परिभाषा

के अनुसार 'क्रम' में तीनों व्यंजन अलग-अलग 'व्यंजन गुच्छ' कहलायेंगे, अर्थात् 'क्रम' में तीन 'व्यंजन गुच्छ' होंगे। किन्तु वास्तवमें तीनों व्यंजन अलग-अलग व्यंजन गुच्छ नहीं हैं, केवल इनका संयोग 'क्रम' व्यंजन-गुच्छ है। अतः उपरिलिखित परिभाषामें व्यंजनोंके बाद 'के संयोग' जोड़ दें तो अच्छा है।

लेखकने दो और तीन व्यंजनोंके गुच्छोंकी तालिकाएँ भी दी हैं, और वहभी शब्दादि गुच्छोंकी अलग, शब्दांत गुच्छोंकी अलग। ये तालिकाएँ बहुत उपयोगी हैं।

वाक्य (३०८) और **संयुक्त क्रियाएँ** (३७३) वाले लेख यों ठीक हैं किन्तु इन विषयोंके महत्त्वके विचारसे ये और विस्तृत होते तो अच्छा था। इनकी तुलनामें **सकना** (३८२) और **स्थितिसूचक क्रियाएं** (३९६) शीर्षकवाले लेखक अधिक संतोषजनक हैं। इनमें नाना प्रकारके उदाहरण देकर विषयका प्रतिपादन किया गया है।

सर्वनाम (३८५) का विवेचन बहुत सुन्दर, विस्तृत और सुस्पष्ट है। इसमें 'तू, तुम और आप' के प्रयोगपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। साथमें कई आरेख भी दिये गये हैं।

'ह' वर्ण पर पृ. ४०६ पर एक लेख लिखा गया है। 'ह' के उच्चारणकी स्थिति ऐसी है कि इसपर एक स्वतंत्र लेख आवश्यक था। किन्तु लेखक महोदय अपने मंतव्यको स्पष्ट नहीं कर पाये हैं। पृ. ४०७ पर दी हुई सामग्रीका यदि और विस्तार किया जाता, और कई अन्य प्रकारके उदाहरणभी दिये होते तो अच्छा होता।

हिन्दी विभिन्न अंचलोंसे—(३११) शीर्षकवाले लेखकमें कई अंचलोंकी विशेषताएं दिखायी गयी हैं: हिन्दी-बम्बई, हिन्दी-दिल्ली, हिन्दी-हैदराबाद।

इसमें सन्देह नहीं कि विद्वान् लेखकने उक्त पुस्तक लिखकर हिन्दी व्याकरणिक साहित्यकी एक कमीकी पूर्ति की है और एक श्लाघनीय प्रयास किया है। पुस्तक की अधिकतर प्रविष्टियाँ विचारोत्पादक और चिन्तनीय हैं। पुस्तक प्रत्येक हिन्दी-प्रेमीको अपने पास रखनी चाहिये। फिरभी पुस्तककी त्रुटियोंकी ओर लेखकका ध्यान आकृष्ट करना हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

पुस्तककी आंतरिक व्यवस्था

(१) क्ष, ज्ञ को पुस्तकके अन्तमें क्यों रखा गया है। ये अक्षर नागरीकी वर्णमालाके अन्तमें ऐतिहासिक कारणों से रखे जाते हैं। किन्तु सब भाषाविज्ञानी जानते हैं कि 'क्ष' का स्थान 'क' के अन्तर्गत है और 'ज्ञ' का 'ज' के अन्तर्गत; और सामान्य कोशोंमें यही पद्धति अपनायी जाती है।

(२) पृ. ८० "न, नहीं, मतमें हमने चर्चा की—" किन्तु ये तीनों शब्द तो पुस्तकमें बहुत बादको पृ. १८० पर आते हैं।

(३) पृ. ८१ : "क्रिया प्रकरणमें हमने देखा कि—" और क्रिया प्रकरण पृ. ११३ पर आता है। अर्थात् इस वाक्यके बहुत बाद।

भाषाकी गलतियाँ

(१) पृ. १० : 'मुझे ऐसा कोई धातु नहीं मिला है।' हिन्दीके कोशोंमें धातुको स्त्रीलिंग माना गया है।

(२) पृ. ३७ : नाग्वार, आद्तन; ये शब्द उर्दूके हैं, और इनमें ग्, द् के बदले ग द का प्रयोग होता है।

(३) पृ. ४० : कल्प्, पंख्, मार्ग, कांत्। जहांतक हमें पता है, जब किसी शब्दके अन्तमें कोई व्यंजन-गुच्छ आता है, तो अन्तिम व्यंजन स्वर-रहित नहीं होता। उसके अन्तमें हल्का-सा स्वर होता है जिसे उदासीन-स्वर (Neutral Vowel) कहते हैं। यद्यपि हम यह मानते हैं कि यह विषय निर्विवाद नहीं है, इसपर विद्वानोंमें मतभेद है। फिरभी यदि ऐसे शब्दोंको तत्सम्बन्धी सूचीमें न रखा जाता तो अच्छा होता। यही बात द्वित्वोंपर भी लगती है : दत्त, विषण्ण, मुड्ड। हमें आशा थी कि 'व्यंजन गुच्छ' वाले लेखमें लेखक महोदय इस विषयमें भी अपने विचार व्यक्त करेंगे, किन्तु इसपर उनका ध्यान नहीं गया।

(४) पृ. ९२ : 'सचमें कहो', इस ढंगका वाक्य कहाँ बोला जाता है?

(५) पृ. १९१ : 'भले दूसरे सब जानें' यह प्रयोग पुस्तकमें औरभी कई स्थानोंपर आया है। उचित प्रयोग है : भले ही, न कि भले। पृ. ३७५ : 'इसका उच्चारण लगभग समाप्तप्राय है'। 'समाप्तप्राय' का अर्थही है 'लगभग समाप्त'। अतएव 'लगभग' और 'प्राय' में से एकको निकाल देना चाहिये।

(६) पृ. ३७५ : 'मेरा प्रस्ताव है कि हिन्दीकी बोलचालकी भाषाका आधार उर्दू शैली था।' 'प्रस्ताव' शब्द अनुपयुक्त दिखायी देता है। हम तो इसके बदले 'विचार' या 'मन्तव्य' का प्रयोग करेंगे।

(७) पृ. ३९१ : 'अतः थोड़ीभी गलती करनेपर'। यदि थोड़ीके बाद 'सी' होता तो उचित था।

(८) पृ. ३९७ : 'मुझे जोड़ोंमें बराबर दर्द रहता है'; हम तो 'मुझे' के बदले 'मेरे' का प्रयोग करेंगे।

अंग्रेजीका शब्दानुवाद

बहुतसे लेखक अंग्रेजीमें सोचते हैं और हिन्दीमें उसका शब्दानुवाद (या अन्धानुवाद) करके रख देते हैं। और यह नहीं सोचते कि ऐसी सरचना हिन्दीकी प्रकृति के अनुकूल बैठती है या नहीं। कुछ नमूने देखिये : (१) दर्जनों स्थानोंपर ऐसे वाक्य आये हैं : मैं कहना चाहूँगा, जैसे पृ. ११ पर। इसका मतलब यह हुआ कि "भविष्यमें कहना चाहूँगा, आज नहीं कह रहा।" यह अंग्रेजीके I would like to say का शब्दानुवाद है। हिन्दीकी प्रकृतिके अनुकूल तो कहा जायेगा : मैं कहना चाहता हूँ या मैं समझता हूँ या मेरा विचार है।

(२) पृ. २७५ : 'दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि', यह In other words का शब्दानुवाद है। हिन्दीकी प्रकृतिके अनुसार कहेंगे कि 'या यों कहिये'। और लेखक महोदय इस अभिव्यंजनासे अनभिज्ञ नहीं हैं क्योंकि पृ.३८५ के अन्तमें उन्होंने स्वयं इसका प्रयोग किया है।

(३) पृ. ३९५ : 'नुक्ता कोई मायने नहीं रखता।' क्या इसे इस प्रकार कहना अच्छा न होगा : नुक्तेका कोई अर्थ नहीं है/होगा।

(४) पृ. १२५ : 'हाइफ़न' क्या हाइफ़न शब्दभी हिन्दीमें आत्मसात् हो चुका है? इसके स्थानपर 'योजिका' चलाया जा रहा है। वह क्या बुरा है?

प्रयोगकी गलतियां

(१) पृ. १४१ : 'नही सूचित कर पाता', यदि सूचित 'नहीं' से पहले होता तो अच्छा होता।

(२) पृ. १५०, 'निर्भर करता है', यह प्रयोग धड़ल्ले से चल रहा है। किन्तु होना चाहिये 'निर्भर है' या 'निर्भर होता है।'

(३) पृ. २७५ : 'रमेश दो महीनोंसे इस स्कूलमें पढ़ रहा है। प्रयोग है 'दो महीनेसे।' किन्तु जहाँ निश्चित अवधि न हो वहाँ महीनों चलेगा जैसे 'वह महीनोंसे बीमार है।'

(४) पृ.३८५ : 'यह पता लगानाभी मुश्किल हो सकता है।' 'सकता' के बदले 'जाता' कर दें या 'हो सकता' को बिलकुल उड़ा दें।

(५) पृ. ४०२ : 'तभी दो शब्दोंमें हम अन्तर करते हैं।' इसे यों क्यों न कहें कि 'तभी तो हम दो शब्दोंमें अन्तर कर पाते हैं।' इनके अतिरिक्त पृष्ठ ३८४ के इस वाक्यपर विचार कीजिये : सामर्थ्य सूचक 'सक' की जगह कई जगह 'पा' भी आता है। हम इस वाक्यको गलत तो नहीं कहेंगे। किन्तु यदि इसे इस रूपमें रखें तो अधिक स्पष्ट हो जाये। 'सामर्थ्यसूचक 'सक' के स्थानपर कई जगह 'पा' भी आता है।'

अन्तमें हम इतना और कहेंगे कि पुस्तकमें कई स्थलों पर लेखककी शैली बोझिल हो गयी है, और सामान्य पाठकके पल्ले यह नहीं पड़ता कि लेखकका आशय क्या है,जैसे (i) पृ. ४ : पैरा ३, (ii) पृ. ५७ : पैरा २.१, या (iii) पृ. ९६ : पैरा १, (iv) पृ. १८० : पैरा १, (v), पृ. ३२८ : सबसे ऊपरका पैरा। ▭ ▭

उपन्यास

कसप

लेखक : मनोहर श्याम जोशी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८, नेताजी सुभाष मार्ग; नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ३०६; डिमा. ८०; मूल्य : ४०.०० रु.।

'कुरु‌कुरु स्वाहा'से मनोहरश्याम जोशीको एक उपन्यासकारके रूपमें प्रतिष्ठा मिली। अपनी प्रयोगशीलताके कारण यह रचना चर्चाका विषय बनी, एक ओर प्रशंसित हुई तो दूसरी ओर 'खाली पोली बोम' मानी गयी। इसी उपन्यासकारकी यह दूसरी कृति है—कसप। कसप—कुमाऊँनी शब्द है, जिसका अर्थ होता है—क्या जानें। इस उपन्यासमें एक प्रेमकथा वर्णित है, जो लैला मजनू और शीरीं फरहादकी कोटिसे अलग है। इसे जोशीजीने

फिल्मी शैलीमें प्रस्तुत किया है।

'नायकका नाम देवीदत्त तिवारी है···वह अपनेको डी. डी. कहना-कहलाना पसन्द करे···कुछ लोग उसे 'डी. डी. दमूड़ी' भी कहते हैं···माँबाप दोनों अपने इस इकलौतेको दुधमुंहाही छोड़ गये थे। नायक बाईस सालका है। ढाई वर्ष पहले उसने इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे बी. ए. पास किया। एक चाचाजीने कह-कहलाकर उसे वहाँ ए. जी. दफ्तरमें क्लर्की दिलवा दी और आई. ए. एस., पी. सी. एस. के लिए तैयारी करनेको कहा मेधावी बालकसे। लेकिन साहित्यिक डी. डी. को यह सब रास नहीं आया। वह दो महीनोंमें ही बम्बई भाग गया। किसी व्यावसायिक दिग्दर्शकका सहायक है। कलात्मक फिल्में बनानेका इरादा रखता है। इस बीच उसके एकांकियों, कविताओं और कहानियोंके संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। विवाहको छोड़ अन्य सभी क्षेत्रोंमें उदीयमान श्रेणीका सितारा माना जा सकता है। विवाहके लिए, मध्यवर्गीय मानकोंके अनुसार, वह सर्वथा अयोग्य वर है।' (पृ. १०)

'नायिकाने न प्रेम किया है, न प्रेमके बारेमें फुर्सतसे कुछ सोचा ही है। इधर यह अलबत्ता वह कभी-कभी सोचती रहती है कि अब प्रेमके बारेमें भी कुछ सोचना चाहिये। उसे सत्रहवां लगा है पिछले महीने। इण्टरके प्रथम वर्षमें है। पढ़नेमें उसका जराभी मन नहीं लगता और आगे पढ़नेकी उसे कतइ इच्छा नहीं है। अल्मोड़ामें रहती है वह, जहाँ उसके पिता बनारस विश्वविद्यालयसे सेवा-निवृत्त होकर आ बसे चौदह वर्ष पहले। पाँच बच्चों में सबसे छोटी है, चार भाइयोंकी इकलौती बेणा। संस्कृतज्ञ पिताने इसका नाम मैत्रेयी रखा··पिताश्री एक मलेच्छ कन्याको देवभाषा ही नही वेदभी पढ़ानेका दुस्साहस कर रहे थे···वह मलेच्छ कन्या इस बच्चीको बेबी कहती थी। यह नाम उनके बड़े बेटेको, जो सेनामें भरती होना चाह रहा था, पूरा अंग्रेज था, पसन्द आया था। उसके आग्रहसे यही नाम चलभी गया···बेबी अपना नाम सार्थक करनेमें यकीन रखती है। खिलन्दड़ है। लड़कैंधी है। पेड़पर चढ़ना हो, गुल्ली-डण्डा खेलना हो, कब्बडी खेलनी हो, बेबी हमेशा हाजिर है। उसके बायें हाथकी छोटी अंगुली क्रिकेट खेलनेमें टूटी है और अब थोड़ी-सी मुड़ी रहती है। बेबी बैडमिण्टनमें जिला-स्तरकी चैम्पियन है, यह अलग बात है कि इस जिलेमें बैडमिण्टन स्तरीय नहीं···बेबीको दर्पणके लिए कमही फुर्सत मिलती है। सजती-सँवरती नहीं। कपड़े ठीकसे पहनती नहीं। लेकिन जमाने-भरमें उड़ती यह खबर उसके कानोंतक पहुंच चुकी है कि बेबी बेहद सुन्दर है।' (पृ. १२-१३)

अब नायक और नायिकाकी पहली मुलाकात होती है। नायक टट्टीमें बैठा है। अब इजारबंद बांध चुका है, दृष्टि घुमाता है और नायिकासे उसकी दृष्टि पहली बार मिलती है···उसका मुंह खुला रह जाता है। जीन सिम्मसनुमा एक अपरिचित लड़की।···कोई फौजी इस जीन सिम्मंसको भिड़क रहा है और नायक धप-से फिर बैठ गया है (टट्टीमें)···वह इजारबंदका एक सिरा खींचता है लेकिन अफसोस यह गलत सिरा है। गाँठ खुलनेकी बजाय दुहरी हो जाती।···इस तरह गाँठपर लगी गाँठके लिए हिन्दीमें कोई शब्द नहीं, कुमाऊँनीमें है—पालगाँठ किंवा मारगांठ। —(पृ. १५-२६)

तो प्रेम कथाओंमें अक्सर जो होता है, सो हुआ याने डी. डी. और बेबीकी प्रेम कहानी प्रारम्भ हो गयी। नायक दीवाना और खिलंदड़। बेबीके लिए डी. डी. परीशान और डी. डी. के समीप्यके लिए बेबी। बीचमें खलनायक तो कोई आता नहीं, पर दोनोंके बीच खलनायक-सा बेबीका फौजी भाई जरूर आता है। डी. डी. से बेबी बात करे यहभी उसे पसन्द नहीं। मजनू लैलाके भाईसे पिटकर सामनेके दो दांतभी गँवा बैठा है। फिरभी डी. डी. मैदान छोड़ता नहीं—वह डटा रहता है। बेबीके फौजी भाईकी दृष्टिमें डी. डी. एक फालतू किस्मका आदमी है, जो किसीभी स्थितिमें बेबीके योग्य नहीं। यही कारण है कि डी. डी. बेबीको पानेके लिए 'कुछ बनने' की सोचता है। आम भारतीय युवक जब कुछ बनना चाहता है, तो वह बम्बई भागता है—हीरो बनने। डी. डी. भी लौटकर बम्बईही जाता है और कुछ बननेकी धुनमें लग जाता है। फिल्मी दुनियांकी दौड़में वहभी सम्मिलित हो जाता है। इसी बीच उसकी मुलाकात एक विदेशी महिला गुलनारसे हो जाती है। गुलनारको डी. डी. 'जीनियस' नजर आता है। वह डी. डी. को पश्चिम जानेके लिए उत्प्रेरित करती है—जहां वह अपनी प्रतिभाको चमका सकनेका मौका पा सकता है। डी. डी. फ्रांसिसी टी. वी. के लिए डॉक्यूमेण्टरी बनानेके सिलसिलेमें कुमायूं पहुंचता है और लोगोंपर अपनी धौंस जमा सकनेमें सफलता प्राप्त करता है। उसकी प्रशंसा होती है। इसके बावजूद बेबीके कर्नल भाईको डी.डी. कतई नहीं भाता केवल बेबीके पिता शास्त्रीजीके मनमें डी. डी, के लिए स्नेह है। वह डी. डी. को तो चाहते है, पर उनमें वह साहस नहीं कि स्पष्ट रूपं

दें कि बेबीका विवाह डी. डी. से ही होगा। बेबी घरके लिए बोझ-सी हो उठती है। डी. डी. और बेबीके प्रेमकी चर्चा घर-घरमें होती है। तय किया जाता है कि बेबीका शीघ्र विवाह कर दिया जाये। इसपर बेबी नायिकोचित प्रतिक्रिया व्यक्त करती है—'क्या जल्दी मच रही मेरी शादी करनेकी ? लिख दो ठुल'दाको वह मैत्रेयीकी ओरसे किसीसे हां या ना कहनेवाला कोई नहीं होता। मैत्रेयीके बाबू अभी जिन्दा ही हैं। जो कहेंगे, वही कहेंगे और अगर जो मैत्रेयी उनकी सगी बेटी होगी तो वे वही कहेंगे, जो मैत्रेयी चाहेगी।' (पृ. १६७)

लोगोंको गुलनार और डी. डी. के साथकी कथा मालूम होती है दयाके माध्यमसे। यहां यह जान लेना ठीक होगा कि दया रिश्तेमें बेबीकी बहन होती है और वह डी. डी. को चाहती थी—ऐसा बेबीही बताती है। दयाका विवाह डी. डी. ही करवाता है बम्बईके एक स्व-जातीय युवकसे। एक ओर डी. डी. और दूसरी ओर बेबी तथा गुलनार। प्रेम कहानीमें त्रिकोणात्मक स्थिति पैदा होती—जो हर प्रेम कहानीमें होती है और होनीभी चाहिये। इसके बावजूद बेबी अपने संकलपपर दृढ़ है और वह कहती है—'देखो, मेरी देह लिपटी है उसके दिये हुए आवरणमें। मैं मुस्कुराती हूं तो इसलिए कि निश्चिन्त हूं कि जिसने दिया है आवरण, वही करेगा निरावरण, जिसने दी है लाज इन अंगोंकी, वही उघारेगा इन अंगोंको।' (पृ. १८२)।

बेबी अपने प्रियतमको गणानाथके मंदिरमें बुलाती है —पत्र भेजकर। इतना समय नहीं कि डी. डी. निश्चित समयपर गणानाथ पहुँच सके। मगर, हिन्दी फिल्मोंके कथा-नायकके लिए कुछभी असम्भव नहीं होता, उसी तर्जपर डी. डी. के लिए भी कोई काम असम्भव नहीं। वह निश्चित समयपर हवाई जहाजसे, टैक्सीसे और पैदल चलकर अपनी प्रेमिकाके समीप 'यथासमय' पहुँचता है। दोनोंकी मुलाकात होती है। नायिकाका निवेदन है—'लोग मुझे ढूंढ़ते हुए आ जायेंगे। जल्दीसे कर दे एक बार।'

'क्या करूं ?' —बुद्धू नायक पूछता है।

'जिलेम्बू कर, जिलेम्बू कहा।'—बेबी झुंझलाकर कहती है।

यह बराबर याद रखना होगा कि यह उपन्यास फिल्मी शैलीमें लिखा गया है। किसी हिन्दी फिल्ममें गीतकी एक पंक्ति है जिसमें 'जिलेम्बू' शब्दका प्रयोग किया गया है। लेखकके अनुसार यह फ्रांसीसी शब्द है (खोटाही सही) ? जो प्रेमका द्योतक है। डी. डी. को बेबी 'पारगांठ जिलेम्बू' विशेष नामसे भी सम्बोधित करती है। गणानाथ में नायक केवल जिलेम्बूही नहीं करता अपितु वह नायिका से संभोगभी करता है। जोशीजीने इस दृश्यका पांडित्य-पूर्ण तथा शास्त्रीय अंकन किया है, जो पृष्ठ २११ पर देखा जा सकता है। यह दृश्य नहीं भी होता तो उपन्यास में कमी नहीं आती। पर, शायद लेखक यह आग्रहपूर्वक दिखाना चाहता है कि ऐसी प्रेम कहानियोंमें एक बार ऐसा होताही है या फिर फिल्मी ढंगपर गरमाहट पैदा करनेवाला ऐसा एक दृश्य देनाही पड़ता है।

बम्बईमें डी. डी. को मैत्रेयीके पिता शास्त्रीजीका एक पत्र मिलता है, जिसमें उन्होंने लिखा—'सारे काण्डका अपराधी मैं ही हूं। अपनी पुत्रीका मन समझने और रखने का दायित्व मेरा था, मुझसेही उसमें चूक हुई। तुम अपने मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि मत लाओ। अब मैंने सारी बात आयुष्मती मैत्रेयीपर छोड़ दी है। उसका आग्रह है कि मैं तुम्हें यहां आमन्त्रित करूं। सो मैं कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि तुम यहां आकर मुझे और मेरी पुत्री को अनुगृहीत करोगे।'

डी. डी. को जो चाहिये वह मिल गया। वह दिल्ली आता है। मगर, अब उसके सामने एक बड़ी द्विधाभी है। गुलनारके माध्यमसे उसे अमरीका जाकर अपनेको चमकाने का एक मौका मिला है और ठीक इसी समय बेबीभी मिलनेवाली होती है। डी. डी. चाहता है कि बेबी तीन वर्षोंतक उसकी प्रतीक्षा करे। जब वह अमरीकासे लौटेगा तो विवाह करेगा। लेकिन बेबी चाहती है कि डी. डी. दिल्लीमें रहकर ही एम. ए. करे। दोनोंमें वाद-विवाद चलता है। बेबी अन्तमें कहती है (जैनेन्द्रकी सुनीताकी तरह निर्वसना होकर)—'जो तू मेरा मरद है तो आ और भोग लगा ले मेरा। जाकर कह दे मेरे इजा-बाबूसे शादी तो हो ही गयी थी गणानाथमें चतुर्थी कर्मभी हो गया बल यहां। और अब मैं कहीं नहीं जा रहा अमरीका। यहीं रहूंगा दिल्लीमें। या वह पसन्द न हो तुझे तो कह कि ले जाऊंगा आपकी लाडलीको बम्बईमें और देखूंगा कैसे नहीं रहती यह मेरे साथ वहाँ परेशानीमें। जो तू मेरा मरद न हो तोभी आ और शकुन कर जा रे लाटे।'—(पृ. २५२)

डी. डी. बेबीके नग्न शरीरपर एक चादर डालकर कहता है—'मुझे तुमसे प्यार है, मैं तुझे भोगूंगा, तेरे इस हिस्टीरियाको नहीं।'

और डी. डी. अमरीका प्रस्थान करता है—सुनहरे भविष्यकी ओर अपनी प्रियतमा बेबीको छोड़कर।

यही वह बिन्दु है जहाँपर उपन्यासको समाप्त हो जाना चाहिये था, किन्तु इसमें बावन पृष्ठ और जुड़ते हैं।

बेबीने एम. ए., पी-एच.डी. की उपाधियाँ अर्जितकर ली हैं। श्यामसुन्दर मिश्र नामक एक आई. ए. एस. अधिकारीसे उसका विवाह हो गया। डी. डी. अमरीका पहुँच कर डी. डी. से पुनः देवीदत्त (डेवीडाट)बन गया। उसने अपनेको विद्यार्जनमें लगा दिया। सिने क्षेत्रमें उसे ख्याति मिली। गुलनार और देवीदत्त १९८१ में भारत आते हैं—एक फिल्म बनाने। गंगोलीहाट जाते हुए रास्तेमें जीन और टॉप पहने एक लड़की देवीदत्तकी कार रोकवाती है। डी. डी. उसे देखकर हतप्रभ है कि बेबी चौबीस वर्ष बादभी बेबीही कैसे है। रेस्ट हाउस पहुंचनेपर उसे पता चलता है कि वह बेबीकी बेटी है। वहां डी. डी. की भेंट अपनी पूर्व-प्रेमिका उर्फ श्रीमती मैत्रेयी मिश्रसे होती है। बेबी मिश्र अपनी माँसे कहतीभी है—'तेरा पुराना प्रेमी आया है, मां।'

देवीदत्त और मैत्रेयी (केवल दोनों)आमने-सामने हैं। अभी-अभी देवीदत्तके जूतेकी 'मारगांठ'मैत्रेयीने खोली है। बात निकलती है तो मैत्रेयी स्वीकार करती है—'छिप जो नहीं पा रही तभी भाग रही यहांसे, ना?' देवीदत्त कहता है—'तू क्यों भागेगी? भगोड़ा तो मैं हूं।' इन दोनोंको विश्वास है कि ये दोनों बराबर जन्म लेते रहे हैं और देवीदत्त मैत्रेयीके योग्य नहीं पाया जाता रहा है और मैत्रेयी यह कह जाती है 'मैं यही चाहूंगी, यही मनाऊँगी भगवानसे कि तू मेरे अयोग्य पाया जाये लाटे।' और 'लुका-छिपी' के अगले दौरतक के लिए दोनों विदा हो जाते हैं।

और, नायक दूसरे दिन रो पड़ता है। गुलनार नायकको रोनेके लिए शायद पूरी तरह छोड़भी देती, किंतु फिल्म बनानी थी, अतः वह रोते हुए देवीदत्तके पीछे आकर खड़ी हो जाती है, जैसाकि हिन्दी फिल्मोंमें अक्सर हुआ करता है।

फिल्म यहां समाप्त हो जाती है याने 'कसप' जो एक उपन्यास है उसकी यहां समाप्ति हो जाती है।

लेखकने अत्यन्त जीवन्त भाषामें कुमाऊँके लोक-जीवन तथा वहाँके मध्यवर्गीय परिवारोंकी मानसिकताको रूपायित किया है। मध्यवर्गमें पनपनेवाली प्रेमकथा किन-किन स्थितियोंसे गुजरती है और कैसी-कैसी चुनौतियोंका उसे मुकाबला करना पड़ता है, उसकी मार्मिक तसवीर 'कसप' में देखी जा सकती है। भाषाके धनी जोशीजीने एक छोटी-सी प्रेम कहानीको ३०६ पृष्ठोंमें पसारकर अपनी उसी सामर्थ्यका पुनः परिचय दिया है, जो 'कुरु कुरु स्वाहा' में दिखायी पड़ी थी। डी. डी., बेबी, शास्त्री जी, कर्नल आदिके चरित्रोंको उनकी चारित्रिक कमजोरियों तथा विशिष्टताओंके साथ चित्रित करनेमें लेखकको सफलता हाथ लगी है। पर, उपन्यासमें गुलनार कम समयके लिए आकर भी पाठकोंके ऊपर अपनी अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। उसका कुतियापंथी जीवन-दर्शनभी एक दर्शनही लगने लगता है। यहभी कहा जा सकता है कि गुलनारको चित्रित करनेमें लेखकको जो सफलता प्राप्त हुई, वह अन्य पात्रोंके सृजनमें नहीं। बेबी डी. डी. की तुलनामें कहीं अधिक आत्म-विश्वास रखती है और परिस्थितियोंका मुकाबला करने या उन्हें मोड़ देनेमें वह सक्षम है। लेकिन बेचारा देवीदत्त तो 'शिवौ शिवौ' का ही पात्र बना रहता है, फलत. बहुत ऊपर उड़कर भी वह धरतीपर अपना कोई घोंसला तक नहीं बना पाता। ऐसा इसलिए होता हैं; क्योंकि वह स्वभावतः भगेड़ू है। उसके भगेड़ूपनने ही उसकी बेबीको उससे छीन लिया। डी. डी. को छोड़कर (खोकर नहीं) बेबी वह सब कुछ पा लेती है, जिसकी उसने कभी कामनाभी नहीं की थी।

लेखक स्वयं यह स्वीकार करता है कि उपन्यासको पृष्ठ २५३ पर 'फ्रीज' कर देना चाहिये था, पर वह उसे तानता है। चूंकि यह उपन्यास फिल्मी शैलीमें लिखा गया है, अतः उसकी परख फिल्मी कसौटीपर ही की जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। फिल्मोंके दो मुख्य भेद हैं—कथा-चित्र तथा वृत्त-चित्र (डॉक्यूमेण्टरी)। कथा-चित्र हिन्दीमें दो से साढ़े तीन घंटेतक के देखनेमें आये हैं और वृत्तचित्र दस मिनटसे लेकर आध घण्टेतक के। कथा-नायक डी. डी. डॉक्यूमेण्टरी फिल्मोंका निर्देशक रहा है। जोशीजीका उपन्यास ले-देकर मस्तिष्कके ऊपर एक डॉक्यूमेण्टरी फिल्मकाका ही प्रभाव छोड़ता है, जिसमें कैमरामैनका वैशिष्ट्य कुछ ज्यादा नजर आता है। वृत्तचित्रों को देखा नहीं जाता, उन्हें देखनेके लिए विवश होना पड़ता है। 'कसप' अपनी लम्बाईके कारण कथा-चित्र माना जाना चाहिये, पर इसका गठनात्मक प्रभाव वृत्त-चित्र जैसा हैं। लम्बे-लम्बे वृत्त-चित्र बनानेमें श्री सत्यजित राय माहिर हैं। संभव है, कुछ लोग मेरी इस मान्यता

का विरोध करें, पर सत्यजित रायके सम्बन्धमें सत्य यही है। सत्यजित राय (कुछ फिलमोंको छोड़कर) की प्रशंसा लोग इस डरसे करते हैं कि उनकी प्रशंसा न करनेवाला व्यक्ति 'कलाविहीन रुचि' का मान लिया जायेगा। 'कसप' के साथ कुछ वैसीही बात घटित होती नजर आती है। जोशीजी यह स्वीकार करेंगे कि फिलमोंमें एक'सम्पादक' भी होता है, जो बड़ी निर्ममताके साथ किसीभी फिल्मकी अनावश्यक लम्बाईको काटकर, अपनी कैंचीके सहारे, उसे सही रूप प्रदान करता है। मेरे जानते अगर 'कसप' किसी फिल्मी सम्पादकके सामने पहले रखा गया होता (यदि बादमें भी रखा जाये) तो यह उपन्यास निश्चयही इतना स्थूलकाय कभी नहीं होता या होगा, जितना कि अब है। पृ. ५३ पर जोशीजी स्वयं कहते हैं —'कितनी खराब पटकथा लिखता है परमात्मा, परमात्माकी कसम।' 'कसप'यदि एक फिल्म है,तो यह कहा जा सकता है 'कितनी खराब पटकथा लिखता है जोशी, जोशीजीकी कसम।' इस उपन्यासमें पृष्ठोंका कितना दुरुपयोग हुआ है, इसका एक दृष्टान्त पृ. १२७-१२८ पर देखा जा सकता है, जहाँ केवल लानत भेजनेका काम किया गया है लगभग एक पूरे पृष्ठपर। 'कसप' को यदि कथा-चित्र माना जाये, जो सम्भव नहीं तो इसमें हिन्दी फिलमों के अनुसार 'जयश्री टी.' के नृत्य और राहुलदेव बर्मनके संगीतकी कमी खटकती है। हाँ, जोशीजीने बड़ी होशियारीसे चित्रको जमाये रखनेके लिए बीच-बीचमें सेक्सी दृश्य और वाक्य जरूर जुटाये हैं, जो कलात्मक बोझके कारण कभी-कभी इच्छित प्रभाव पैदा नहीं कर पाते। यदि प्रभाव पैदा नहीं होता तो इसमें दोष पाठकोंका होगा, 'कसप' का नहीं (!)

'कुरु कुरु स्वाहा' का आनन्द वही ले सका जो बहुपठित है। ऐसा प्रतीत होता है कि जोशीजीकी रचनाओं को पचानेके लिए यहभी एक शर्त है। 'कसप' के साथ भी यह शर्त लागू मानी जा सकती है।

'कसप' ने पाठकोंको कुछ नये शब्दभी दिये हैं— हगन चहा (बेड टी), सिक्स थ्री होना (सामने होना), मारगांठ आदि। सम्भव है, 'जिलेम्बू मारगांठ' एक विशेष अर्थमें पाठकोंको काफी अच्छा जुमला लगे।

'छुप छुप खड़े हो, जरूर कोई बात है' यह गीत आर-पारका नहीं, फिल्म 'बड़ी बहन' का है। यह फिल्मी भूल है। फिल्मी भूल जनता कभीभी माफ नहीं करती। निरालाकी कविताको आप पंतकी कविता कह दीजिये, चल जायेगा। आपको कोई नहीं रोक सकता—साहित्यमें सब चलता है। लेकिन, फिलमोंमें यह घपला नहीं चल सकता। फिल्म दर्शकोंकी याददाश्त बड़ी भयंकर हुआ करती है।

'कसप' जो कुल प्रभाव छोड़ता है, उसके बारेमें क्या कहा जाये? इसका एकही उत्तर है—कसप। लेखकको बार-बार 'कसप' नामही क्यों सूझा, इसका उत्तरभी कसप ही है।

जोशीजीकी श्रीमतीजी प्रेम-कहानियोंकी घनघोर पाठिका हैं (बकौल जोशीजी) उन्हें 'कसप' कैसा लगा, यह जाने बगैर इस उपन्यासके बारेमें कोई राय नहीं बनानी चाहिये, क्योंकि लेखकने पृष्ठ १६४ पर बिलकुल सही बात कही है—'इन मामलोंमें घरवालियोंकी पण्डितों से ज्यादा अक्ल होती आयी है।'

कुमायूंके जीवनको सफलताके साथ साहित्यमें अंकित करनेवाले साहित्यकारोंकी बिरादरीमें जोशीजी 'कसप' के माध्यमसे सफलतापूर्वक सम्मिलित हो गये हैं—यह बेहिचक स्वीकार किया जायेगा यह कोई साधारण उपलब्धि नहीं।

कुल मिलाकर, 'कसप' हिन्दी प्रेम कथा-साहित्यमें एक अभिनव प्रयोग है, जो अपनी प्रयोगधर्मिता तथा सशक्त भाषाके लिए चर्चाका विषय बन सकता है। यह कृति औरभी सुगठित बन सकती थी यदि लेखकने पंडिताऊपन एवं विस्तारसे परहेज किया होता। फिरभी आशा है, 'घोर' पाठक-पाठिकाओंके बीच इसका आदर हो सकता है। मगर, यह सम्भावनाभी है कि 'कुरु कुरु स्वाहा' की तरह जोशीजीको यहभी सुननेको मिले— 'जोशीजी, काएकू खाली पोली बोम मारता है?'

☐ श्रवणकुमार गोस्वामी

अभिशप्त कथा

लेखक : मनु शर्मा; प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१। पृष्ठ : २६८; क्रा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

कच-देवयानी-शर्मिष्ठाके पौराणिक त्रिकोणको लेकर कामसंबंधोंकी बारीकी और गहराईकी पड़ताल करनेकी गुंजाइश ज्यादह है। लेकिन मौजूदा राजनीतिक कुटिलता और मूल्य संक्रमणको इस पुराख्यानके जरिये पढ़नेकी

कोशिश 'अभिशप्त कथा में' संभवत: पहली बार हुई है। 'कथा-सूत्र' के अन्तर्गत मनु शर्माने संकेत किया है कि इस पौराणिक गाथामें आधुनिक तत्त्वभी मौजूद हैं। 'कथा-सूत्र' के अन्तर्गत मनु शर्माने संकेत किया है कि इस पौराणिक गाथामें आधुनिक तत्त्वभी मौजूद हैं। 'कथा-सूत्र' में ही दो आधुनिक विसंगतियोंको रेखांकित किया गया है, जो इस उपन्यासमें बार-बार उभरती हैं। एक ओर सत्ताके लिए पुत्रीको भी दाँवपर लगानेवाली राज-लिप्सा है, दूसरी ओर पतनोन्मुख काम भावसे संबद्ध आचार्यत्व है। प्रथम विसंगतिको स्पष्ट करते हुए उपन्यासकारने लिखा है : "इन्द्रने भी अपनी पुत्री शुक्राचार्यको अर्पित की और वृषपर्वाने भी। क्या यह इसलिए नहीं हुआ कि उनके पास संजीवनी विद्या थी? सत्ता और सिंहासनके लिए अपनी पुत्रीतक को समर्पित करनेकी जघन्य वृत्ति क्या आजतक अपनी प्रासंगिकता नहीं बनाये हुए हैं?" असुरराज वृषपर्वाके लिए यह तबभी कुछ स्वाभाविक हो सकता है, लेकिन तपस्या-त्यागपर आधारित देवोंकी अस्मिताके लिए जयंतीका यह उपयोग किसी प्रकार 'जस्टिफाई' नहीं किया जा सकता। क्या यह विडम्बना नहीं कि जो इन्द्र नारीके लिए राजनीति को 'बौनेके लिए चन्द्रमा' मानता है, वही अपने इन्द्रासन की रक्षाके लिए एक नारी--जयंतीकी सहायताका मोहताज हो जाता है। वरुण और प्रजापतिको कचका प्रस्ताव नहीं रुचता। इन्द्र देवसृष्टिकी रक्षाकी दुहाई देकर जयन्ती को कचके साथ शुक्राचार्यके पास जानेकी अनुमति दे देता है। लेकिन वरुणकी दृष्टिसे वास्तविकता छिपी नहीं रहती : "हाय री राजलिप्सा !...इन्द्र पुत्र छोड़ सकता है, पुत्री छोड़ सकता है, पर सिंहासन नहीं छोड़ सकता" (पृ. ८६)। वृषपर्वाभी अपनी पुत्री द्वारा यह पूछे जाने पर कि सिंहासन और मुझमें चुनावका प्रश्न आनेपर किसे छोड़ेंगे, सिंहासनके प्रति अपना रुझाव व्यक्त करता है। इस कटु सत्यको देवयानी भलीभांति समझती है कि हर राजा अपनी सत्ताकी सुरक्षाके लिए प्रजाका बलिदान करना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। उसके लिए पुत्रीभी प्रजाही होती है। स्पष्ट है कि वृषपर्वा, इन्द्र दो पौराणिक चरित्र न रहकर 'अभिशप्त कथा' में एक 'प्रतीक' में ढल गये हैं—कुर्सी लोलुप नैतिकता-विहीन शासक वर्गका प्रतीक। दूसरी ओर बुद्धिजीवियोंके प्रतीक शुक्र, बृहस्पति और कच हैं, जो इच्छा-अनिच्छासे शासक वर्गके हित-साधनके लिए सक्रिय हैं। समूची 'अभिशप्त कथा' इन दो प्रतीकोंसे संबद्ध वर्गोंकी वास्त-विकतापर से आवरण हटानेवाली पौराणिक कथाकृति है।

आलोच्य उपन्यासमें कथा तत्त्व न्यून नहीं है। असुरोंकी संभावित विजयसे त्रस्त देवराजकी विपण्ण मन-स्थितिसे शुरू होकर 'कच' के छलसे अवाक् शर्मिष्ठा-देवयानीकी क्षुब्ध मानसिकतापर इसकी तान टूटी है। बीचमें जयन्तका युद्धविरामका प्रस्ताव, शुक्राचार्य-जयंती प्रसंग, कच-देवयानीका नैकट्य वृषपर्वाकी क्रोधाग्निमें 'कच' की आहुति, उसका पुनर्जीवन, संजीवनी विद्याकी प्राप्ति आदि अनेक घटनाएँ हैं, जो कथा प्रवाहको रोचक और कौतूहलपूर्ण बनाये रखनेमें सक्षम हैं, लेकिन घटनाओं, ब्यौरों और नाटकीय स्थितियोंकी योजना और चर्चा उपन्यासकारका अभीष्ट नहीं है। मनु शर्माके लिए कथात्मकता उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितनी कथाचरित्रों की निरन्तर परिवर्तनशील मानसिकता। नार्थोपफ्राइने कथात्मकताको रेलगाड़ीकी खिड़कीसे दिखायी देनेवाले झाड़झंखाड़, रोड़कंकड़की तरह माना है, जो आगेसे पीछे की ओर तेज-तेज गुजरते रहते हैं। वे दिखायी देते हैं लेकिन बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं होते। महत्त्वपूर्ण होता है, गंतव्य। मनु शर्माभी कथात्मकताको गंतव्य नहीं मानते। वे समस्याओं और प्रश्नोंके व्यूहमें घिरे चरित्रोंकी मान-सिकतामें गहरे उतरते हैं। चाहे, पराजयके भयसे असं-तुलित इन्द्र हो या कच द्वारा छले गये शुक्राचार्य, सर्वत्र मानसिक ऊहापोहकी अभिव्यक्ति भलीभांति हुई है। किन्हीं दुर्बल क्षणोंमें कचका आत्मालोकन न केवल उसके अंतरंगसे परिचित कराता है, अपितु कर्त्तव्यके कठोर आवरणमें दबी ढकी संवेदनशीलताकी ओरभी संकेत करती है। इस तरहकी द्वन्द्वात्मक मनःस्थितिके अभावमें 'कच' का चरित्र अवास्तविक लग सकता था। कच सोचता है : "क्या यही मेरा जीवन है, तप्त और अभि-शप्त।......अभीष्ट तुम्हें प्राप्त होगा, अभीप्सित तुम्हारी उपलब्धि होगी। फिरभी किसीसे तुम्हारा कुछ लेना देना नहीं। क्या यही हमारी नियति है? अमृत कुम्भ तुम देखते रहना, पर हाथ मत लगाना।... जयन्ती, देव-यानी, शर्मिष्ठा--सबने मेरी परिधिमें प्रवेश किया। मैंने भी उनका स्पर्श किया, पर मनसे उन्हें हटाता ही रहा, ढकेलताही रहा, जैसे वे अस्पृश्य हों। जहां मनने छूनेकी चेष्टा की, वहीं उसे लगा यह सौंदर्यतप्त लौह है। छूते ही फफोले पड़ जायेंगे।" (पृ. २८१-८२)। ऐसे अव-तरण समूचे उपन्यासमें बिखरे हुए हैं। सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है कि मनोवैज्ञानिक गहराई और द्वन्द्वको उकेरते समय किताबी मनोविज्ञानकी मदद नहीं ली गयी है।

जहां एक ओर सत्तालोलुप वर्गके चेहरेसे नकाब उतार फेंकना कृतिका मुख्य अभिप्राय है, वहीं हाशिएपर कुछ अन्य ज्वलंत प्रश्नभी विवेचित हैं। हिंसा या युद्धका सवाल कई बार उठा है। एक कूटनीतिक 'मिशन' पर होनेके बावजूद 'कच' बार-बार युद्धजनित हिंसाका विरोध करता है। वह असुरोंके सामने सवाल करता है, क्या जीवन सिर्फ युद्धके लिए है ? क्या प्रेम, शांति, सहिष्णुता के लिए हम तरसतेही रहेंगे ? शर्मिष्ठाभी कचके संपर्क में आकर एक ऐसी सृष्टिके उदयकी ओर संकेत करती है, जो देवासुर-संग्रामसे मुक्त होगी (पृ. २१७)। मनु शर्माने आश्रमोंके व्याजसे शिक्षा सस्थाओंकी स्वायत्तता का प्रश्न 'द्रोणकी आत्मकथा' में विस्तारसे उठाया था। प्रस्तुत कृतिमें भी वे इस समस्याको उठाते हैं। जयन्तको कुछ इस तरहका बोध होता है कि आश्रमोंकी स्वायत्तता को छेड़नेसे वे भभक उठेंगे और उनकी लपटोंकी लपेटमें राजप्रासादभी आ जायेगा (पृ. २३)। एक अन्य स्थान पर सत्ताके हाथों शिक्षक और बुद्धिजीवीके बिक जानेका चक्र आलोचनाका विषय बना है : 'जिस देशके आचार्य राजाओंकी मुट्ठीमें हों, उस देशकी मनीषा कुण्ठित हो जाती है' (पृ. २१३)। समस्याओंसे जूझनेके लिये युवा पीढ़ीके आगे आनेका समर्थनभी युगबोधके मेलमें है। 'दिनकर' ने कभी लिखा था—'ये नखत अमाके बुझते हैं / सारा आकाश तुम्हारा है।' राजेन्द्र यादवने 'सारा आकाश' में ये पंक्तियां युदा पीढ़ीपर चस्पा कर दी हैं। मनु शर्माभी आश्वस्त हैं कि भावी इतिहास नवयुवकोंका है : "भविष्य तो हमीं लोगोंका है। यदि हमही सचेष्ट नहीं होंगे तो पुरानी मान्यताओंको मरे बंदरियाके बच्चे की तरह छातीसे चिपकाये ये बूढ़े क्या करेंगे ?' (पृ. ४७)।

'अभिशप्त कथा' की भाषिक संरचना 'कथ्य' के मेलमें है। चंक्रमण, इष्टापूर्त्त, मंचक, कर्मक, आरण्यक, परिसर, पुष्करिणी आदि शब्दोंके प्रयोगसे तत्कालीन वातावरणका आभास बना रहता है। लेकिन यह अच्छा है कि अप्रचलित या क्लिष्ट शब्दोंके प्रयोगसे लेखकीय धाक जमानेकी कोशिश प्रायः नहीं मिलती। इससे पठनीयता अक्षुण्ण रह सकी है। कथनपद्धति जटिल या उलझावपूर्ण नहीं है। घटनाओंका संयोजन प्रायः दुरुस्त और सही है। लेकिन एक स्थानपर शिल्पगत खामी बहुत साफ है। पूरा उपन्यास लेखकीय सर्वज्ञताके शिल्पमें लिखा गया है। पृ. २१९ पर स्वयं लेखक उपन्यासमें प्रवेश करता है : 'इस घटनाके पहले यों तो कई घटनाएं हुई थीं, पर उनमें एक महत्त्वपूर्ण थीं, जो मेरे कलमके दायरेसे छूट गयी थीं।' 'उपन्यास' के बीचमें उपन्यासकारका इस तरह प्रवेश निर्दोष नहीं है। हालांकि राही मासूम रजा अपने दो-एक उपन्यासोंके भीतर अचानक प्रवेश करनेकी नाटकीयता दर्शा चुके हैं, लेकिन मनु शर्माकी उपर्युक्त पंक्तियाँ एक जोड़से ज्यादह नहीं हैं।

सूक्तियोंकी संपदा इस उपन्यासमें बिखरी हुई है। ये वैचारिक परिपक्वताके साथ-साथ उपन्यासकारकी भाषिक सामर्थ्यको भी व्यंजित करती हैं। कुछ पंक्तियाँ इस संदर्भमें देखी जा सकती हैं—

"जबतक नारी पुरुषकी विवशता है, तबतक वह पुरुष मनुष्य बना रहता है जब वह उसकी बुभुक्षा बन जाती है, तब वह असुर हो जाता है।"

"स्वर्ण खंडोंपर खरीदा गया व्यक्ति बार-बार खरीदा जा सकता है।"

"घट यदि चू रहा है तो कहीं-न-कहीं उसमें छिद्र अवश्य होगा।"

मँजी हुई भाषाकी चुस्ती संवादोंमें व्यक्त हुई है। शब्द-संपत्तिका अपव्यय वहाँ न के बराबर है। भावको साकार और स्पष्ट करनेके लिए जिन अप्रस्तुतोंका प्रयोग किया गया है, वे प्रायः सारगर्भित और मौजूं हैं। उदाहरणके लिए, कचके प्रति आसक्त देवयानीकी मनःस्थिति

को 'मछुए' और 'मछली' के माध्यमसे कहा गया है : "वह उस मछुएकी मानसिक स्थितिमें थी जो बार-बार 'कनक मीन' को फंसानेकी चेष्टा करता है, और हर बार वह फटककर जलमें चली जाती है" (१८६)। 'चोट खायी मृगी', 'अग्निबाण', 'गिरे हुए मल्ल' आदिके अप्रस्तुतभी अभिव्यंजनाके पैनेपनको बढ़ाते हैं। लोकोक्ति-मुहावरोंका प्रयोग संयमित है और उन्हें भावोंके अनुरूप कुछ बदल दिया गया है। 'उँगलियां क्यों थमायी कि कोई तुम्हारी बाँह पकड़नेके लिए आगे आये' जैसी पंक्तिाँ प्रभावित करती हैं।

आज हिन्दीमें पौराणिक प्रसंगोंको लेकर लिखनेवाले उपन्यासकार सख्यामें बहुत कम है। जो लिख रहे हैं वे भी या तो पुनरुत्थानवादी दृष्टिसे संचालित हैं या अतीत की घटनाओंपर जनवादी स्थापनाओंको जबरन आरोपित करनेवाले हैं। मनु शर्मा इन दोनों अतियोंसे बचते हुए चले हैं। लेकिन कुछ मुद्दोंकी वैचारिक व्याख्या 'अभिशप्त कथा' में अपेक्षित थी। 'संजीवनी विद्या' का पौराणिक अर्थ आजके संदर्भमें मौजूँ नहीं है। इस प्रकारकी कुछ कमजोरियोंके होते हुए भी 'अभिशप्त कथा' एक पठनीय कृति है।

▭ वेदप्रकाश अमिताभ

नगर पिता

लेखक : कुलानन्द भारती; प्रकाशक : श्री सजय प्रकाशन, ३०/२१, शक्तिनगर दिल्ली-७। पृष्ठ : २१६; क्रा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

लेखकको लम्बे समयतक नगर निगममें काम करने का अनुभव है। नगर निगम जैसी जगहपर राजनीतिका बोलबाला है। लेखकका कहना है : 'साहित्यिक व्यक्ति न तो राजनीतिको अपने अनुकूल बना पाता है और न वह स्वयंही राजनीतिके अनुरूपही बन पाता है।' (कथानकसे पूर्व)। भारतीजीका सम्बन्ध शिक्षण-संस्थाओंके साथ रहा है। नगर निगममें रहकर लेखकको जो मधुर एवं कटु अनुभव हुए, उन्हींको आधार बनाकर समीक्ष्य कृतिकी रचना हुई है।

आजकी राजनीतिका क्या स्तर है, इसका संकेत करते हुए कहा गया है : 'आजकी राजनीति अच्छे लोगों के लिए नहीं है। सरल और भोले लोग राजनीतिमें नहीं चल सकते। शैक्षिक जीवनमें सब है शान्ति है। राज-नीतिमें तो स्वच्छ, निर्मल भी मटमैला बन जाता है...' (पृ. ७१) राजनीतिके क्षेत्रमें कैसे व्यक्तिको सफल एव योग्य कहा जाता है, इसके संदर्भमें उपन्यासके नायक चन्द्रप्रकाशके शब्द देखें—

'जो व्यक्ति सबसे अधिक झूठ बोल सकता है। जमीनकी नहीं, आसमानकी बातें करता है, दम्भी, छिद्रान्वेषी होता है, सामने प्रशंसा और पीछे निन्दा कर सकता है + + बड़े-बड़े नेताओंके आगे पीछे घूमकर स्टील का चमकदार चम्मच बन सकता है, वही व्यक्ति राज-नीतिमें सबसे अधिक योग्य एवं सटर-पटरमें सफल व्यक्ति माना जाता है' (पृ. ६-७)।

आजके युगमें रिश्वत लेना-देना लोगोंने अपना धर्म बना लिया है। सरकारी-अर्द्धसरकारी जितनीभी संस्थाएं हैं, उनमें रिश्वतका साम्राज्य है। देशकी प्रगति न हो पानेका यही मूल कारण है। ईमानदार सज्जन एवं भले व्यक्ति पीछेही रह जाते हैं। निर्धन वर्गके लोगोंकी पहुंच अधिकारियों तक नहीं हो पाती। वहाँभी स्वार्थपरता तथा भाई-भतीजावादका प्राबल्य है। इस कृतिके लिखने में लेखकका उद्देश्य यह है कि यदि हम देशका मंगल चाहते हैं तो आवश्यकता इस बातकी है कि हम आलोचना-प्रत्यालोचनाका मार्ग छोड़कर कर्त्तव्यनिष्ठाका मार्ग अपनायें।

कृतिमें कहीं-कहीं हिन्दी भाषाके महत्त्व एवं उसके सर्वाधिक प्रयोगपर भी बल दिया गया है : 'हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है, देशकी सम्पर्क भाषा है + + देशके लगभग सभी लोग हिन्दीको आसानीसे बोल सकते हैं (पृ. १७१)।

उपन्यासमें कहीं-कहीं सूक्ति-परक वाक्यभी देखनेको मिलते हैं। यथा—'उचित कर्त्तव्यका पालन करनाही सबसे बड़ा धर्म है' (पृ. १९)। 'यदि हम अच्छा कर्म करेंगे तो हमें अच्छा फल मिलेगा। बुरा कर्म करेंगे, बुरा फल मिलेगा' (पृ० १८)।

प्रस्तुत कृतिमें मुद्रणकी भूलें हैं, बहुत अधिक भूलें हैं। अगले संस्करणमें मुद्रणकी भूलोंके शुद्धीकरण एवं विराम चिह्नोंके समुचित प्रयोगकी ओर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाना चाहिये।

☐ महेशचन्द्र शर्मा

कहानी संग्रह

खुशबू

कहानीकार : डॉ. लक्ष्मीशंकर वर्मा; प्रकाशक : साहित्य सहकार, कृष्णनगर, दिल्ली-११०-०५१ ; पृष्ठ : १३०; क्रा. ७६; मूल्य : ७.०० रु. ।

'खुशबू' डॉ. लक्ष्मीशंकर शर्माका गत अर्द्धदशकमें प्रकाशित एक महत्त्वपूर्ण कहानी-संग्रह है । लक्ष्मींशंकर मूल रूपसे अंग्रेजीके विश्वविद्यालयीन प्राध्यापक हैं और उनकी मन:चेतनामें अंग्रेजी तथा यूरोपीय साहित्य और उसके तमाम सृजनात्मक आन्दोलनोंकी भूमिका सदैव स्पंदित होती है । लेकिन हिन्दी कहानीके माध्यमसे उनके पास रचनात्मक अनुभूतियोंका एक अद्भुत संसार सदैव विस्फोटित होता है । 'खुशबू' उनकी कहानियोंका पहला संग्रह है जो सन् १९७६ में प्रकाशित कहानी संग्रहोंमें एक चर्चा-योग्य संग्रह कहा जा सकता है । लेकिन हिन्दी के पास किसी रचना और रचनाकारको चर्चित करनेका माध्यम वह अखबारी मानसिकता है, जिसे हिन्दीका हर रचनाकार भुनाना चाहता है । लक्ष्मीशंकर शर्माने अपने संग्रहको अखबारके सुपुर्द न करके पाठकको सुपुर्द किया और पाठकने उसे न केवल पढ़ा बल्कि उसकी खुशबूसे अभिभूत अभिव्यक्तियाँ कतिपय साहित्यिक मंचों व पत्रिकाओंके जरिये दीं भी, मगर फिरभी यह खुशबू अगर देशव्यापी न हो सकी तो इतनाही कहा जा सकता हे कि हिन्दीमें अभी सृजनकी गुणवत्ताका प्रभाव पैदा करने योग्य कोई सही माध्यम पैदा हो नहीं पाया है ।

खुशबूमें शर्माकी अट्ठाईस कहानियां संगृहीत हैं । अगर निर्मल वर्मा जैसे समर्थ कहानीकार नयी कहानीको 'अंधेरेमें चीख' कहकर अ-कहानीके उस दबावमें आ गये जिसकी मनोभूमि मूलरूपमें फ्रांसमें थी, और जहाँ एण्टी-स्टोरी एक आन्दोलनकी तरह छा चुका था, तो यह कहना होगा कि हमारे कहानीकारकी कहानी-चेतनाभी काव्य-चेतनाकी तरह पश्चिमकी उधारीपर चलनेमें माहिर है, अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा । यही कारण है कि अ-कहानी समानान्तर कहानी, समकालीन कहानी या नयी कहानी जैसे जलजले हिन्दी कहानीमें आये और गये । द्वितीय विश्व-युद्धने लेखनकी लम्बाईको घटाकर मनुष्यकी व्यस्तताके अनुकूल बना दी थी । इसी कारण कहानी लघु कहानी हो गयी और उपन्यास लघु उपन्यास । शर्मा ने इस लघु कहानीको उस समय आजमाया था जब लघु कहानी हिन्दी कहानी लेखकके लिए न तो आकर्षण थी और न ही वह इस प्रयोगके प्रति तत्पर था ।

'खुशबू' कहानी संग्रहको पढ़ते समय कई सवाल एक साथ खड़े होते हैं । खुशबूमें शर्माने कई आश्चर्योंको घटित किया है । ऐसे आश्चर्य बेल्जाक और मोपांसामें बहुत सहजतासे घटित हुए हैं और जहां युद्धगत थीमको बेल्जाक ने आजमाया या यौनगत दृष्टिको मोपांसाने प्रयोगा वहां उनकी कहानीका समूचा संसार अद्भुत हुआ है । यद्यपि मोपांसाकी लकीरपर जाकर सआदत हसन मण्टोने भी ऐसे प्रयोग किये थे लेकिन मोपांसाके पास एक आन्तरिक मनोविज्ञानकी दुनियां थी । शर्माकी कहानीको बहुत अन्दर तक जाकर पढ़नेपर यह लगता है कि उनके सब-कांशस में बेल्जाक, बर्गसां, के प्रभावोंका एक हल्का रंग है तो जरूर मगर जब वे कहानीको भारतीयता देते हैं तो ऐसा लगता है कि टालसटायका वह नैतिक पक्षभी उन्हें आंदोलित करता है जो किसीभी रचनाका सांस्कृतिक पक्ष कहा जा सकता है ।

शर्माकी कहानियोंको पढ़कर लगता है कि वे चाहे किसी क्लासिकी रागकी बंदिश न हों मगर उनका आलाप और उनकी द्रुत-विलम्बित गतिमें जिस क्लासिकी तत्त्वका गुंथन है वह उन्हें नये मूल्योंके साथभी क्लासिकी होनेको बाध्य करता है । 'लड़की या मां' और 'किरायेकी मां'

इन दो कहानियोंको संवेदनात्मकताके साथ मूल्यात्मक कहानियांभी माना जा सकता है। इनके रचना-विधानमें कहानीकारने दो अद्‌भुत चरित्रोंका अनपेक्षित विस्फोट किया है। यद्यपि 'न्याय' और 'विधाताकी देन' जैसी कहानियोंमें भी मूल्य-रचनाके प्रति शर्मा चेतनावान दिखायी देते हैं लेकिन प्रभावोंको दूरगामी बनानेकी जो क्षमता दो मांओंके माध्यमसे जाहिर होती है—उसे शर्मा की कहानीका ऐसा फिनिश कहा जा सकता है जो हिन्दी कहानीमें न तो प्रेमचन्दके बादकी परम्परामें है और न ही अन्य सामाजिक कहानियोंमें।

'कोट', 'ओढ़नी', 'पत्थरके इंसान', 'कड़ुआहट', जैसी कहानियोंमें बाल-मनोविज्ञानके प्रयोग हैं। यहांभी चार्ल्स डिकेन्ज़, पार्श्वमें खड़े व्यक्तित्वकी तरह नज़र आता है लेकिन शर्माका ट्रीटमेण्ट इतना मंजा हुआ है कि कहानी पूरे भारतीय परिप्रेक्ष्यको उजागर करती है। 'नया कदम', 'पीछे छूट गई', 'भगवान', 'रास्ता चलता रहा' जैसी कहानियोंमें शर्माके शिल्पगत प्रयोग है लेकिन शिल्पका यह दबाव कहानीकी कथ्य सामर्थ्यको सीमितभी करता है और थोड़ा कमजोरभी। 'खीरे' और 'असलियत' में शर्माने मृदुल हास्य रचनेका प्रयास किया है लेकिन हास्यमें निहित बौद्धिकताको पकड़नेके लिए ऐसे हास्यके प्रति तैयार रुचिके पाठकोंकी आवश्यकता होगी। 'जंगली' और 'धरोहर' ये दो कहानी यथार्थके प्रति संवेदित हैं। यहां आकर शर्माकी कहानीका कथ्य प्रगाढ़ हुआ है। शर्मा ने इन कहानियोंको बहुत सावधानीसे लिखा है क्योंकि वे जानते हैं कि हिन्दीमें यथार्थ, कहानीकी आत्मा बन चुका

है और प्रेमचन्दसे लेकर भीष्म साहनी और ममता कालियातक इसके तत्त्व गहरे पैठे हुए हैं।

हिन्दी कहानीमें संवेदना शब्दभी नया नहीं है बल्कि संवेदनाको नयेपनका पर्यायही मान लिया गया है। संवेदनाके स्तरपर 'खुशबू' और 'नदीका बहाव' जैसी दो लम्बी कहानियाँ हैं जो अपेक्षाकृत कहानीके तत्त्वोंकी कहानी कही जा सकती हैं। यहां शर्माका कथ्य तो प्रगाढ़ हुआ है ही, साथही कहानीके संवेदनाको शिल्प और भाषा दोनों देकर शर्माने कहानी विधामें संवेदनाक इस्तेमालका सही सबूत दिया है।' 'किरायेकी मां' में एक प्रकारसे संवेदनका संसार तो ऐसा ही है मगर शर्मा इस संवेदनमें नामवर सिंह के उस आरोपको खण्डित कर देते हैं जो मायनेरिटीके प्रति हिन्दी कहानी लेखककी हिन्दुई मानसिकतासे सदैव चिन्तित रहते हैं। शर्माने मुस्लिम पारिवारिकताकी थीमको जिस ढंगसे इस कहानीमें प्रयोगा है वह एक प्रकारसे यूनिवर्सल संवेदना है और इसमें संस्कृति के सारे मूल्य एकसाथ संवेदित हुए हैं।

शर्माकी कहानियोंका तकनीकी आधारपर मूल्यांकन किया जाये तो लगेगा कि जहां अभिव्यक्तिका एक चुस्त और मितव्ययी प्रयोग उन्होंने भाषाके जरिये किया है वहाँ भाषाकी रूपात्मक क्षमताको भी कहानीमें सही ढंगसे आजमाया है। पारस्परिक नैतिक प्रश्नों और स्थापित रूढ़ियोंके प्रति शर्माने जो चुनौतियां रची हैं वे कहानियों के माध्यमसे समाजगत चेतनाके दवाव पैदा करनेके लिए पर्याप्त है। शिल्पगत प्रयोगमें शर्माने किसी आन्दोलन या विचारधाराकी छाया ग्रहण नहीं की है लेकिन निर्मल वर्मा या मनोहरश्याम जोशी जिस वेगसे शिल्पका स्थापित मुहावरा तोड़कर रचनेकी आतुरता दिखाते हैं, या आंचलिकताके अन्दर जिस तरह कृष्णा सोबती शिल्पकी नयी रचना करती है वैसा तूफानी जुनून शर्मामें नजर नहीं आता। शर्मा शिल्पके प्रति शालीन होते हैं इसलिए उनकी कहानी असर तो करती हैं, मगर मार नहीं करती।

अंतमें हजारी बाबू द्वारा लिखित भूमिकाके ये शब्द शर्माकी कहानीके पूरे चरित्रको सही ढंगसे प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त हैं: 'कहानियां निर्भीक, सुथरी परिष्कृत और कलात्मक हैं। लेखक जीवनके शिवत्वके प्रति आस्थावान हैं, समाजके प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण रखता है तथा सामाजिक और नैतिक प्रश्नोंकी चुनौतियोंको प्रस्तुत करता है।'

☐ रमेश दवे

पत्र-पत्रिकाएं

प्रारूप

सम्पादक : राजेन्द्र मेहरोत्रा, ६४ चौक गंगादास, इलाहाबाद। मूल्य : प्रस्तुत अंक : ५.०० रु.।

'प्रारूप' का प्रवेशांक खोलतेही मध्यप्रदेश सरकारके प्रकाशनका भ्रम होता है। दस पृष्ठ पलटनेपर मालूम होता है कि इलाहाबादसे राजेन्द्र मेहरोत्राने प्रकाशित किया है। 'ये तख्ता गुरु और उनके दरबारी' शीर्षक सम्पादकीयमें इलाहाबादी गुटबन्दीका जिक्र है। तथाकथित महत्त्वपूर्ण (वामपंथी) लघु पत्रिकाओंके खिलाफ किन्हीं गुरु (घंटाल) द्वारा निकाले गये किसी एक सोलह पेजी पैम्पलैट 'जिन्दगीनामा और अकबरनामा' के विरोध में यह 'प्रारूप' निकाला गया है। न मालूम किस (राज/रण) नीतिके कारण पैम्पलैट निकालनेवालेका नामभी नहीं लिया गया और उसके खिलाफ पूरा गोला बारूद खर्च कर दिया गया।

'कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंहकी ग्यारह कविताएं' दो-चार स्थलोंपर अपनी पहचान बनाती-सी लगती हैं। काशीनाथ

सिंहकी चिट्ठी 'सम्पूर्ण रचनात्मक साहित्यके ऐतिहासिक सन्दर्भमें रचनाकी सार्थकताको मूल्यांकित करनेको' आलोचनाका दायित्व बताती है लेकिन व्यांवहारिक स्तरपर 'आलोचकको हमसे रचनाकारोंसे और पाठक वर्गसे यह बताना चाहिये कि रोशनाई ठीक है या नहीं, रेखा सीधी हुई या नहीं, और हमने-रचनाकारोंने—सही और जरूरी जगहको—समाजरूपी अखबारमें छपी हुई लाइनोंको—रेखांकित किया है या नहीं।' स्पष्ट है कि केवल घटित होनेवाली चीजोंको रेखांकित करनेमें ही रचनाकारका दायित्व समाप्त नहीं हो जाता और रचनाकार द्वारा की गयी 'अंडरलाइन' कैसी है, यह बतानेमें ही आलोचकका कर्त्तव्य पूरा नहीं हो जाता। तो यह अन्तर्विरोध है इस चिठ्ठीमें।

'स्वतन्त्रता और समाज' में राजेश्वर सक्सैनाने बदलती हुई समाजव्यवस्था, राजनीतिक दलबंदीकी लम्बी चर्चा करते हुए अज्ञेय, भारती, मोहन राकेशके स्थापित लेखनमें खोजे गये अनौचित्यपर व्यंग्य किया है। अज्ञेयने खड़ी बोलीकी तस्करी की है, बहुत मिलावट की है, संस्थान और प्रतिस्ठान बना-बनाकर मिलावट की है, जिसके प्रायश्चित स्वरूप खड़ी बोलीको पुनः लोकजीवी आधार देना होगा।' एक दो साहित्यकार कैसे मिलावट कर सकते हैं और एक या दो व्यक्ति या पत्र, या गुट कैसे लोकजीवी बना सकते हैं, सर्वाधिक व्यापक खड़ी बोलीको, यह समझमें नहीं आता।

कहानियों और कविताओंका अपना कुछ व्यक्तित्व नहीं लगा। कुमारसम्भवकी 'जंगका मैदान' काल्पनिक विद्रोह और विजेन्द्र सिंहकी 'पीली इमारत' घूसखोरीको उघाड़ती है। 'प्रेमचन्द जन्म शताब्दी कुछ विचारणीय मुद्दे' में डॉ. शिवकुमार मिश्रने प्रेमचन्दके व्यक्तित्व-कृतित्वके उचित-अनुचित पक्षोंके उद्घाटनकी चर्चा की है। प्रेमचन्दके मूल्यांकनके निकष और उपलब्धिकी ओर संकेत किया है। प्रदीप सक्सैनाने 'और आत्मालोचनाका दौर' में साहित्यिक गुटबन्दीकी चर्चा की है। 'समकालीन कविता उद्योग और रमेशरंजककी गायकी' में मोहदत्तने कविसम्मेलन और गुटबन्दीसे ग्रस्त एवं लघु-दीर्घ सरकारी-असरकारी पत्रिकाओं और आन्दोलनमें फँसी हिन्दी कविता के सन्दर्भमें कवि-सम्मेलनके मंचपरही साहित्यकी ओर मुड़नेवाले रमेशरंजकके लोकगीत शैलीमें लिखे गये गीतों की चर्चा है। जन-जीवनके दुखदर्द एवं समस्याओंका अंकन ब्रजभाषामें—जिसे अब ब्रज बोली कहनाही अधिक ठीक होगा, हुआ है, जो नये भावबोध को व्यक्त तो करता है लेकिन उसका क्षेत्र बड़ा सीमित हो गया है। इस पत्र में प्रकाशित कहानियोंमें भी बोलियोंके शब्दोंका अधिकाधिक बढ़ता प्रयोगग सम्प्रेषणको सीमित करता जा रहा है। अवधी, भोजपुरी, ब्रज या खड़ी बोली (भाषा नहीं) शब्दोंके कारण संवेदना/भावबोध/जीवनदृष्टि संकुचित होती जा रही है। यथातथ्यके सहज चित्रणके नाम पर यह सिमटता हुआ क्षेत्र अपने मूल उद्देश्य—अधिकाधिक जन सम्प्रेषण—को ही समाप्त करता जा रहा है। बोलीके छन्दों और शैलीका प्रयोग तो ठीक है लेकिन शब्दावलीका प्रयोग खतरनाक ही है। इस सन्दर्भमें प्रेमचन्दकी भाषा ही आदर्श हो सकती है, जो खड़ी बोलीका सर्व स्वीकृत रूप है।

विभूतिनारायण रायके उपन्यास 'घर' की तीनों समीक्षाएं परस्पर विरोधी हैं। 'कविताकी तैयारीमें भारतभूषण अग्रवाल' में डॉ. मूलचन्द गौतमने कविकी अप्रकाशित एवं प्रारम्भिक रचनाओंकी चर्चा की है उद्धरण देकर, कोई खास बात नहीं है इसमें।

सम्पादकीयमें घोषित लघु पत्रिकाओंका वामपंथी रुझानको 'प्रारूप' के प्रारम्भ और अन्तमें छपे सरकारी और निजी फर्मोंके विज्ञापन जाने-अनजाने ध्वस्त कर देते हैं। बीड़ी, कोयला, खांडके छोटे-मोटे व्यापारियों एवं प्रदेशीय सरकारके विज्ञापनोंसे निकलनेवाली पत्रिका बड़े व्यावसायिक घरानोंके प्रतिष्ठानोंसे निकलनेवाले 'प्रतिक्रियावादी बुर्जुवा पत्रकारिता' से कैसे भिन्न है? क्रान्तिका साहित्य तो धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिनमान, आदिभी छापते हैं, इनपर लघु पत्रिकाएं हमला करती हैं लेकिन स्वयं अपने प्रकाशनके लिए छोटे-मोटे व्यवसायियोंपर निर्भर रहती हैं। 'कैंसरकी ट्रेन' का यह उपयोग अपने लिए सही है तो दूसरोंके लिए क्यों गलत है?

वामपंथी रुझानवाली लघु पत्रिकाओं/पुस्तकोंके प्रकाशनके लिए जुटाये गये पैसोंकी व्यवस्था क्या हमारे व्यवहारके अन्तर्विरोध या वामपंथी शब्दावलीमें ही कहा जाये तो 'दोगलेपन' को नहीं उघाड़ती?

—डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

सेवा-पथ

[राष्ट्रीय सेवा योजना, राजर्षि महाविद्यालय अलवर की वार्षिकी—वर्ष १९८२] सम्पादक : महेशचन्द्र पुरोहित; पृष्ठ : ४४; मूल्य अंकितन हीं।

राजर्षि महाविद्यालय, अलवरकी राष्ट्रीय सेवा

योजनाकी वार्षिकी एक सुखद आ[illegible] है । [illegible] पर अंकित प्रसादजीकी उपयुक्त पंक्तियां—'इस पथका उद्देश्य नहीं है—श्रांति विजनमें टिक रहना, किन्तु पहुचना उस सीमातक, जिसके आगे राह नहीं है' और एक निश्चित दृष्टि रख चुनी हुई रचनाएं, स्वभावतः प्रकाशनका केन्द्र है इस इकाई द्वारा की गयी सेवाओंका ब्यौरा। पर वहांभी एक सुखद नवीनता दृष्टिगोचर होती है। द्रष्टव्य है सम्पादकीयकी ये पक्तियां—'अलवरसे लगभग तीन किलोमीटर दूर रावण देवरा गांव है जिसके निवासियोंको आजादी प्राप्त करनेके बत्तीस वर्ष बाद मतदान सूचीमें सम्मिलित करा कर मतदान देनेका अधिकार दिलाया गया। इस देशके लोकतन्त्रके कोलाहलमें यह एक अनहोनी और चौंकानेवाली घटना है।' सेवा योजना द्वारा गांवमें एक जन सहयोग समिति गठित करवायी गयी है जो अब गांववासियोंको राशनकार्ड दिलवानेके प्रयास कर रही है। समितिने गांवकी सफाई, स्वास्थ्य, शिक्षा, आदिके सघन कार्यक्रमभी बनाये हैं। निश्चयही इन कार्यक्रमोंसे जुड़कर युवा शक्तिको देशकी असली तस्वीरको नजदीकसे देखनेका अवसर मिल रहा है। सेवा तो महत्त्वपूर्ण है ही, उस सेवा कार्यकी सूचनाभी औरोंतक पहुंचाना कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वार्षिकीका एक महत्त्वपूर्ण लेख है छात्र श्री जयविन्दरसिंहका 'राष्ट्रीय सेवा योजना एवं राज्य स्तरीय शिविर' जिसकी ईमानदारी बहुत गहरेमें छूती है। [illegible] जयपुरमें २३ दिसम्बर '८१ से १ जनवरी ८२ तक आयोजित इस शिविरमें वक्ताओंकी कथनी और करनीके भेद, सायंकालीन सांस्कृतिक आयोजनोंके हल्के स्तर, प्रातःकालीन सभामें छात्रों की अल्प उपस्थिति, सभीपर लेखकने ईमानदारीसे प्रकाश डाला है, लेकिन उसकी सबसे प्रखर टिप्पणी है—'मेरा ऐसा मन्तव्य है कि ओ. टी. एस. जैसे भवनके भग्नावशेष को, जोकि तथाकथित सफेदपोश इन्जीनियरों एवं प्रशासकोंकी मूर्खताका परिणाम है, राष्ट्रीय म्यूजियमके रूपमें परिरक्षित रखा जाना चाहिये ताकि यह दुखद संस्मरण सदा-सदाके लिए ऐसे गैर-जिम्मेदारीसे कार्य न करनेकी प्रेरणा देता रहे।'

वार्षिकीमें नेताजी सुभाष, लालबहादुर शास्त्री, जगदीशचन्द्र बसु और लेनिनपर चार प्रेरक लेख हैं। कविताओंका स्तर अवश्यही थोड़ा हल्का है, और एक संकलित कविता तो गहुतही अनुपयुक्त है, खास तौरपर उसके साथ रचनाकारका नाम न होना कतई नहीं जंचता। प्रयत्न यह होना चाहिये कि हम छात्रोंसे उनके दिलकी बात कहला सकें। संकलनके लिए इस तरहके प्रकाशन सही जगह नहीं है।

कुल मिलाकर सम्पादक, प्रकाशक और लेखक इस सार्थक प्रकाशनके लिए बधाईके पात्र हैं।

— **दुर्गाप्रसाद अग्रवाल**

बाल साहित्य

साथी प्रेमचंद

लेखक : ललित शुक्ल; प्रकाशक : समानान्तर प्रकाशन, ७/८ दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२। मूल्य : ७.०० रु.।

हिन्दी साहित्यमें आज बच्चोंके लिए नाना प्रकारका साहित्य बड़ी तेजीसे लिखा जा रहा है। बाल वर्षके अवसरपर बच्चोंके लिए बहुत-सी पुस्तकें बाल-साहित्यके सजग पाठकोंके सामने आयीं। विदेशोंमें बाल-मनोविज्ञान पर आधारित परी कथाओंसे लेकर राज-नेताओं, क्रान्तिकारियों, महात्माओं, साहित्यकारोंके जीवन चरित्रसे सम्बन्धित बाल मनोविज्ञानपर आधारित बाल-साहित्य

नहीके बराबर है । इस [illegible] प्रयत्नशील हैं। गत दो वर्षोंमें इन्होंने साहित्यकारोंके जीवनसे सम्बन्धित चार बाल उपन्यास लिखे हैं। बाबा तुलसीदास, फक्कड़ कबीर और मतवाला निरालाके बाद साथी 'प्रेमचंद' उसी योजनाकी एक कड़ी है।

साथी प्रेमचंदकी भाषा सरल,सुबोध एवं बाल पाठकों के लिए रोचक है। उपन्यास-सम्राट् प्रेमचंदके बचपनसे लेकर मृत्युतक की घटनाओंका लेखा-जोखा यहाँ दिया गया है। बच्चोंके साथही प्रौढ़ व्यक्तियोंको भी इस बाल-उपन्याससे प्रेमचंदके सम्बन्धमें काफी जानकारी मिलती है। एक सुपरिचित लेखककी जीवनी पढ़नेमें उपन्यासका आनन्द आता है। रचनाका यह क्रम यदि आगे बढ़ता गया तो इससे बच्चोंको हिन्दी भाषाके रचनाकारोंका सही परिचय मिलता रहेगा।

— मदनमोहन श्रीवास्तव

एक थी गौरैया

लेखक : मदनमोहन श्रीवास्तव; प्रकाशक : समानान्तर प्रकाशन, दिल्ली-११०००२। मूल्य : ७.०० रु.।

प्रस्तुत बाल-कहानी-संकलनमें कुल दस कहानियाँ संकलित हैं। ये कहानियाँ बाल-मनोविज्ञान और जिज्ञासा को आधार बनाकर लिखी गयी हैं। इनमेंसे कई कहानियाँ लोकांचलमें कही-सुनी जाती हैं। लेखकने रोचक शब्दावली में रचनाओंको पाठकीयता प्रदान की है। किसीभी कहानीको पढ़ना प्रारम्भ कीजिये बिना उसे समाप्त किये मन नहीं मानेगा इन कहानियोंसे बच्चोंका कोई-न-कोई अवश्य मिलती है। सीखका रूप उपदेशका भारीपन नहीं लिये हैं।

छोटे बच्चोंमें अचरज और अनोखेपनके प्रति बड़ी जिज्ञासा होती है। अनहोनी बातोंके प्रति वे अपना आकर्षण दिखाते हैं। लेखकने बच्चोंकी इस प्रवृत्तिको पहचाना है। इन कहानियोंमें कहीं तो जिन्न अपना करतब दिखाता है और कहीं लालाजीकी चालाकीका करिश्मा पाया जाता है। कहीं जंगलके शेर मामा अपने भानजे बंदरसे वार्तालाप करते हैं और कहीं आम राजासे नाई फैसला करवाता है। इन कहानियोंमें बच्चों जैसा टटकापन है। जैसे भोलीभाली कथाएँ वैसे सीधी-सादी भाषा है।

□ ललित शुक्ल

तोता-मैना

प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, (सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार), पटियाला हाउस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : ५६; क्रा. ८१; मूल्य : ६.५० रु.।

राजा-रानीकी कहानियोंकी तरह पशु-पक्षियोंकी कथा-कहानियोंमें भी बालमन समान रुचिसे रमता है। पशु-पक्षियोंकी हमारे यहां प्राचीन परम्परा रही है। 'तोता मैना' में पक्षियोंसे सबंधित विभिन्न लेखकोंकी १२ कहानियां संकलित हैं। 'सुनहरी सारस' (देवेन्द्र कुमार), 'सुन्दर कौन' (मंजुला माथुर), कल्पनाशील कहानियां इस संदर्भमें उल्लेख्य हैं। 'सुनहरी सारस' में भद्रा नदीके क्षेत्रमें रहनेवाले सुनहरे धारीदार पंखोंवाले सारस रहते हैं। उनमें एक बार एक श्वेत सारस 'नन्हा' जन्म लेता है। सुनहरी धारियां न होनेके कारण सब उसकी उपेक्षा करते हैं। उदास नन्हा अलग कहीं चला जाता है और कछुओंसे मित्रता कर लेता है। एक दिन डाकू सरदार दिलावर सिंह उन सब सुनहरी सारसोंको सोनेके लालचमें, जालमें, फंसा लेता है। इस मुसीबतमें नन्हाही काम आता है। वह कछुओंकी मददसे डाकुओंको एक द्वीपपर एक प्रकारसे कैदकर, सुनहरी सारसोंकी जान बचाता है। तभी से वह सबका प्यारा बन जाता है।

'मोर' (सुधा जैन) लोककथाके रंगोंमें रंगी एक अन्य रोचक कहानी है। कहानीमें विभिन्न मोड़ और उतार-चढ़ाव उत्सुकताको बराबर बनाये रखते हैं। 'सुन्दर कौन' (मंजुला माथुर) में मोर और तोतेके चुस्त संवादोंमें से उभरती कहानीमें पर्याप्त नाटकीयता है जो कहानीको प्रभावात्मक बनाती है। 'कोयलकी कूक' (इन्द्रराज वारिज) में कोयल और कौएके संवादके माध्यमसे समय के मूल्यको रेखांकित किया गया है। 'शरणागतकी रक्षा' (राजेन्द्र शर्मा) और 'पाखंडी बगुला' (रामनारायण अग्रवाल(लोक प्रचलित कहानियोंका रूप प्रस्तुत करती हैं। 'एक वरदान' (बाला दूबे) भी अच्छी बन पड़ी हैं। शेष कहानियां सामान्य स्तरकी हैं।

□ डॉ. ब्रजराज किशोर

शाखा कार्यालय : ६३ गली राजा केदारनाथ,
चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

[टेली : २६ १४ ३८

प्रकर' : जुलाई'८२ पंजीकरण संख्या : १७५८२/६९ डाक पंजीकरण : डी (डी) ५१

आगामी अंकमें

☐ **कथा एक प्रान्तरकी** [ज्ञानपीठ पुरस्कृत डॉ. शंकरन् कुट्टि कुन्हीरामन् पोट्टेक्काटके मलयाली उपन्यास 'ओरु देशत्तिन्ते कथा' का हिन्दी अनुवाद] ; यह ग्राम्य-जीवनका सहज-सरल इसलिए अकृत्रिम चित्र हैं। मानवीय स्वभावके अवगुणोंका चित्रण है, परन्तु उनका सैद्धान्तीकरण नहीं है, कष्ट, कठिनाइयां विपत्तियां हैं किन्तु उनके परिणामस्वरूप उत्पन्न दिखायी जानेवाली कृत्रिम कुण्ठा, संत्रास आदि विकृतियां नहीं हैं; विपत्तियोंके चक्रव्यूह हैं और उनमेंसे मार्ग खोजनेकी सूझ-बूझ और साहसभी है तथा उसमेंही मिट-खप जानेवाली पराजयभी है; इसमें स्वाभाविक कामार्पण है और उससे बच निकलनेका दमखमभी हैं। कहानी स्वस्थ, स्वाभाविक और मृत्युसे जीवनकी ओर साहस एवं शक्तिके साथ बढ़ानेवाली आदर्शवादी रुझान की है। समीक्षक हैं : **डॉ. भोलानाथ भ्रमर**।

☐ **पाकिस्तानकी समकालीन उर्दू कविता** ; हमारे पड़ौसी देशोंके साहित्यमें क्या कुछ घटित हो रहा है, इसकी जानकारी हमें बहुत कम मिल पाती है। जब मिलती है तो न केवल हमारी ज्ञान-वृद्धि होती है बल्कि हमारे अपने साहित्यके प्रति हमारी प्रतिक्रियापर गुणात्मक प्रभाव पड़ता है। पाकिस्तानके उर्दू काव्यपर जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, उससे वहांके काव्यकी एक झलक मिलती है। अगामी अंकमें निम्न काव्य-संकलनोंका परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. हरदयाल** :

पाकिस्तानसे ताजा ग़ज़लें ; सम्पादक : नरेन्द्रनाथ
पाकिस्तान-८१ ; शायरा : फहमीदा रियाज
मेरे दिल मेरे मुसाफिर ; शायर : फैज अहमद फैज

☐ **कबिरा खड़ा बाजारमें [नाटककार : भीष्म साहनी]** ; नाटककारकी यह दूसरी नाट्यकृति है जिसमें इतिहास और कल्पनाका सम्मिश्रण है। कृति मध्ययुगीन वातावरणकी विसंगतियोंसे जूझते हुए कबीरके युवा कालसे आरम्भ होती है और सिकन्दर लोदीसे कबीरकी भेंटके साथ समाप्त होती है। कथावस्तु कबीरके उन समस्त चारित्रिक तत्त्वोंको रूपायित करती है, जिससे उनका व्यक्तित्व आजभी प्रासंगिक बना हुआ है। कबीरयुगीन जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियां अपनी विकृतियोंके साथ मानव-मूल्य-बोधके प्रतिकूल बनी थीं, वे आजभी हैं उनकी मान्यताएं उस युगके लिए जितनी आवश्यक थीं, उससे कम आज नहीं हैं। यदि कबीर आजके युगमें रहते तो उस युगसे अधिक विद्रोही बनते। समीक्षक हैं : **डॉ. धर्मदेव तिवारी**।

☐ **सांड [उपन्यासकार : हृदयेश]**; यह उपन्यास शिक्षाके क्षेत्रमें व्याप्त भ्रष्टाचार, नौकरशाहीकी वस्तुस्थिति तथा जांत-पांत, साम्प्रदायिक वैषम्य और शिक्षकोंके शोषणको व्यापक और मानवीय आधारपर प्रस्तुत किया गया है। देशभरकी शिक्षा-संस्थाओंमें लगभग यही स्थिति है, जिससे न्याय और समानताके विकासकी प्रक्रिया खण्डित है। स्वतन्त्रताके इतने वर्षों बादभी समाजके सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक मानसपर रूढ़ मान्यताओंके साथ एक नया पूंजीपति वर्ग किस तरह हावी है, इस उपन्यासमें देखा जा सकता है। समीक्षक हैं : **डॉ. मदन गौतम**।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए, भारती प्रिंटर्स, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०००७ से प्रकाशित।

वर्ष : १४ अंक : ८ अगस्त : १९८२ भाद्रपद : २०३९ (वि.)

सम्पादकीय

स्वर्गीय शंकरन् कुट्टि कुन्हीरामन् पोट्टेक्काट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

स्वर्गीय पोट्टेक्काटका श्रद्धांजलिपरक परिचय और उनकी साहित्यिक वृत्तिका आकलन.

आदान-प्रदान

कथा एक प्रान्तरकी

उपन्यास ग्राम्य-जीवनका सहज सरल एवं अकृत्रिम चित्र है। मानवीय स्वभावके अवगुणोंका चित्रण है परन्तु उनका सैद्धान्तीकरण नहीं, कष्ट कठिनाइयां बिपत्तियां हैं किन्तु कृत्रिम कुण्ठा संत्रास आदि विकृतियां नहीं ।

उपन्यासकार : शंकरन् कु. कु. पोट्टेक्काट समीक्षक : डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'

नाटक

कबिरा खड़ा बाजारमें

मध्ययुगीन वातावरणकी विसंगतियोंसे जूझते हुए नाटक कबीरके उन समस्त चारित्रिक तत्त्वोंको रूपायित करता है जिनसे उनका व्यक्तित्व आजभी प्रासंगिक बना हुआ है।

नाटककार : भीष्म साहनी समीक्षक : डॉ. धर्मदेव तिवारी

काव्य

पाकिस्तानकी समकालीन उर्दू कविता

पाकिस्तानके उर्दू काव्यकी झलक प्रस्तुत करनेवाली तीन कृतियां : पाकिस्तानसे ताजा ग़ज़लें (सम्पा. नरेन्द्रनाथ), पाकिस्तान-८१ (शायरा : फ़हमीदा रियाज़), मेरे दिल मेरे मुसाफिर (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़).

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

इस अंकमें

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७.

वर्ष : १४ अंक : ८ अगस्त : १९८२ भाद्रपद : २०३९ (वि.)

स्वर्गीय शंकरन् कुट्टि कुन्हीरामन् पोट्टेक्काट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

स्वर्गीय शंकरन् पोट्टेक्काटने मध्यवर्गीय परिवारमें जन्म लेकर भी अपनी प्रतिभा और अपने अध्यवसायके बलपर मलयालमके आधुनिक साहित्यमें शीर्षस्थ स्थान प्राप्त किया । यद्यपि उन्होंने साहित्य-साधना काव्य-क्षेत्रसे प्रारंभ की, परन्तु उन्हें प्रतिष्ठा यात्रा-साहित्य और कथा-साहित्यसे मिली । समीक्षकोंकी दृष्टिमें वे कलाकार, प्रकृति-प्रेमी, यात्री और समाजसेवी थे । उनके उपन्यासोंमें उनके ये सभी रूप देखे जा सकते हैं । भूमिहीन निर्धन वर्गकी भूमि की खोजमें मलाबार प्रदेशकी ओर पलायनके आधारपर लिखा गया उपन्यास 'विषकन्या' उनके इसी समाजसेवी रूपका परिणाम हैं जो १९४९ में मद्रास सरकारसे पुरस्कृत हुआ । १९६२ में केरल साहित्य अकादमीने 'ओरु तेरुविन्ते कथा' उपन्यासको पुरस्कृत किया, १९७३ में साहित्य अकादमीने 'ओरु देशत्तिन्ते कथा' को पुरस्कृत किया । बादमें यही कृति १९८० में भारतीय ज्ञानपीठकी पुरस्कार योजनाके अन्तर्गत पुरस्कृत हुई और इस प्रकार अखिल भारतीय स्तरपर वे प्रतिष्ठित हुए । भारतीय साहित्यके इस ६९ वर्षीय यशस्वी साहित्यकारके देहावसानपर हम अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं ।

देशकी विशालता और विभिन्न क्षेत्रीय विशिष्टताओंके कारण भारतीय भाषाओंके आपसी सम्पर्क और प्रभावशाली ढंगसे आदान-प्रदानकी समस्या बहुत समय से बनी हुई है । इस दिशामें समय-समयपर प्रयत्नभी होते रहे हैं और इन प्रयत्नोंका रूपभी अलग-अलग रहा है । परन्तु स्वतंत्रता प्राप्तिके बादसे ये प्रयत्न अधिक निश्चित दिशा ग्रहण करने लगे हैं । बाह्य संगठनात्मक प्रयत्नोंके अतिरिक्त एक नयी प्रक्रिया प्रारम्भ हुई है, वह है प्रादेशिक और क्षेत्रीय भाषाओंके आधुनिक सर्जनात्मक साहित्यका अखिल भारतीय स्तरपर मूल्यांकन । मूल्यांकनकी अखिल भारतीय प्रक्रियाका श्रेय भारतीय ज्ञानपीठकी उस पुरस्कार योजनाको है जिसके अन्तर्गत मलयालमके इस यशस्वी साहित्यिक शंकरन् कुट्टि कुन्हीरामन पोट्टेक्काटको तत्कालीन राष्ट्रपति संजीव रेड्डीने उनके उपन्यास 'ओरु देशत्तिन्ते कथा'के लिए एक लाख रुपया, प्रशस्तिपत्र और वाग्देवीकी प्रतिमा प्रदान किये । यह पुरस्कार प्रदान करते हुए श्री रेड्डीने इस अवसरपर विशेष रूपसे यह चर्चा की कि भारतीय साहित्यके इतिहासमें पहली बार सभी पन्द्रह भारतीय भाषाओंके मूल्यांकनकी प्रक्रिया द्वारा आधुनिक सर्जनात्मक लेखनके उच्च स्तरको रेखांकित करनेका प्रयत्न किया गया है । इस प्रकार लेखक और साहित्यकारको किसी एक प्रादेशिक या क्षेत्रीय लेखकके रूपमें नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतके लेखक और साहित्यकारके रूपमें सम्मानित किया गया है ।

श्री पोट्टेक्काटके इस चर्चित उपन्यासकी पृष्ठभूमि

पटरियोंपर बिताये जानेवाले जीवनकी कठोरता और पीड़ाकी यथार्थवादी महाकथा है। यह उपन्यास लेखकके अन्य उपन्यास 'विष कन्या'की शृंखलामें एक उत्कृष्ट कोटिकी रचना है। इसी प्रकार लेखकका एक और उपन्यास' ओरु तेरुविन्ते कथा'—एक मौहल्लेकी कथाकी पृष्ठभूमिकी सड़कोंपर बिताये जानेवाले जीवनका चित्रण है। उनकी ये गम्भीर रचनाएं मानवकी नियतिके दोनों पक्षों – उसका उल्लास और उसका विषाद—का उद्‌घाटन करती हैं। इन उपन्यासोंसे साहित्यकारकी अभावग्रस्त और पीड़ित वर्गके प्रति प्रतिबद्धता और व्यापक सामाजिक प्रश्नोंके प्रति जागरूकताका परिचय मिलता है। भारतीय संस्कृति और परम्परामें जिस मानवतावादी दृष्टिकोणको अपनाने पर निरन्तर बल दिया गया है, वह लेखककी कृतिमें तो प्रबलरूपसे उभरताही है, स्वयं लेखककी मानसिकताको भी स्पष्ट करता है।

अपनी इस मानसिकताका विश्लेषण स्वयं लेखकने पुरस्कार समारोहके अवसरपर अपने भाषणमें किया। उन्होंने कहा कि यथार्थ साहित्यका प्रयोजन अनुप्राणित करना और मनुष्यकी पाशविक वृत्तियोंको दूर रखना है। भ्रातृत्व, समानता और शान्ति जैसे जीवन-मूल्योंको प्रोत्साहन देनाही होगा और यह कार्य सर्वोत्तम ढंगसे साहित्य द्वाराही किया जा सकता है।

परन्तु क्या आधुनिक साहित्यसे यह प्रयोजन पूरा हो रहा है? इस प्रश्नका उत्तर स्वयं लेखकने बहुत स्पष्ट रूप में और कष्टभरे शब्दोंमें दिया कि आधुनिक साहित्यमें जो प्रवृत्तियां सामने आ रही हैं उनसे प्रतीत होता है कि साहित्यभी अब बिक्रीका माल बनता जा रहा है जोकि जाने-अजाने मानवकी नैतिक भावनाओंको कुण्ठितकर रहा है। काम-वासना, हत्या, लूट-पाट और बलात्कारकी कहानियोंसे भरे साहित्यसे बाजार पटा पड़ा है। चिन्ताकी बात यह है कि इस साहित्यकी बिक्री तेजीसे होती है।

आधुनिक युगके तीन अभिशाप हैं : गरीबी, प्रदूषण और बढ़ती जनसंख्या। इन तीनोंने आधुनिक साहित्यको भी प्रभावित किया है। साहित्यमें चिन्तन और विचारोंकी गरीबी लक्षित होती है, भ्रष्ट काम-वासना और अपराध वृत्तिने साहित्यको प्रदूषित कर दिया है और इन अगणित और गंन्दगीभरी किताबोंकी बाजारमें बाढ़ आ गयी है।

आजके यथार्थवादी युगमें सत् और असत् चिन्ताका विषय नहीं है। परन्तु उपन्यासकार भावनात्मक स्तरपर ही नहीं अपितु व्यावहारिक दृष्टिसे भी चिन्तित है। उसका कहना है कि जो असद्‌वृत्तियां देशभरमें व्या[illegible] हो गयी हैं उसका मुख्य कारण भारतीय सांस्कृतिक [illegible] की उपेक्षा है। निष्काम सेवाका स्थान स्वार्थने ले लि[illegible] है। आजकी मानसिकता यह है कि स्वार्थ सिद्ध कर[illegible] लिए और सांसारिक सुखोंकी प्राप्तिके लिए गन्देसे [illegible] साधन अपना लिये जाते हैं। इस विकट स्थितिसे दे[illegible] रक्षाके लिए उपन्यासकार साहित्यिकों और कलाकारों[illegible] आगे आनेका अनुरोध करता है। कालकी गति कि[illegible] प्रतीक्षा नहीं करती। पटरियों और सड़कोंपर जो [illegible] जिया जा रहा है, वह अपने एकही विस्फोटमें युगोंसे नि[illegible] साहित्य, कलाको तो नष्टकर ही देगा, सम्पूर्ण जीवन [illegible] जीवनी शक्तिको भी समाप्त कर सकता है।

विज्ञानके बढ़ते चरणों और भावनात्मक साहि[illegible] क्षेत्रमें उसके अतिक्रमणसे भी उपन्यासकार चिन्तित है[illegible] उसका संवेदनशील व्यक्तित्व भावपूर्ण अनुरोध करता [illegible] कि विज्ञानकी वेदीपर साहित्य और कलाकी बलि [illegible] चढ़ायी जानी चाहिये। विज्ञान और टैक्नालिजीका [illegible] पीढ़ीपर जो प्रभाव पड़ रहा है, उसके कारण आधु[illegible] समाजमें साहित्यिकोंके अस्तित्वपर प्रश्नवाचक चिह्न [illegible] गया है। श्री पोट्टेक्काटने सावधान किया है कि विज्ञा[illegible] चाहे जो सुख-सुविधाएं जुटायी हों, उसके साथ विनाश[illegible] संभावनाओंका उससे कहीं अधिक तेजीसे विस्तार हो [illegible] है। इसके ठीक विपरीत साहित्यका प्रयोजन सर्जना[illegible] है। उनका कहना है कि विज्ञानके प्रति अनुरागके [illegible] हमने बदलेमें प्रकृति प्रेमका सौदाकर लिया है। वि[illegible] शून्यताके कारण प्रचुर मात्रामें जंगल साफ किये जा [illegible] और परिणामस्वरूप रेगिस्तान विस्तारको निमन्त्रित [illegible] जा रहा है। हमें पता नहीं है कि ये रेगिस्तान और [illegible] कंटीली झाड़ियां मानव-मनमें जन्म ले रहे हैं।

आधुनिक साहित्यके पाठक जानते हैं कि श्री पो[illegible]क्काट द्वारा चर्चित रेगिस्तान और कंटीली झा[illegible] साहित्यमें कैक्टसके प्रतीकके रूपमें छा रहा है।

यह है उपन्यासकारका चिन्तन और मान[illegible] जिसने उनकी कृतियोंको पृष्ठभूमि प्रदानकी है। [illegible] रचनाएं जीवनके यथार्थके ठोस धरातलपर आधा[illegible] और अपनी शैलीके चमत्कार और अनुभव-समृद्धिके [illegible] मलयालम साहित्यमें लोकप्रिय हैं। श्री पोट्टेक्काटने [illegible] ताएं भी लिखी हैं और उत्कृष्ट कोटिकी कहानियां [illegible] हैं। उनका यात्रा-साहित्य विशिष्ट शैलीका है। [illegible] [illegible] यात्राओंके आधारपर जो कुछ उन्होंने [illegible]

है वह उन स्थानोंका चित्र और व्यक्तियोंका व्यक्तित्व सामने उपस्थित कर देता है। वे कुछ समय संसद् सदस्य भी रहे। विभिन्न गतिविधियों और रुचियोंके कारण संवेदनशील जिस व्यक्तित्वका निर्माण हुआ, वह सरल और निश्छल है। मानवीयताके प्रति जिस सहानुभूति का विकास उनके भीतर हुआ वह सर्जनशील कलाकारों में भी दुर्लभ है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करनेवाले वे सोलहवें और दूसरे मलयाली हैं। इससे पूर्व केरलके ही जी. शंकर कुरूपको उनके काव्यपर यह पुरस्कार प्रदान किया गया था। इनके अतिरिक्त बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, महाराष्ट्र तमिलनाड, कर्नाटक पंजाबके साहित्यकारभी यह पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। हिन्दीके दो कवियोंको यह पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इस प्रकार देशकी सम्पूर्ण साहित्यिक प्रतिभाके अखिल भारतीय स्तरपर मूल्यांकनके इस महत्त्वपूर्ण आयोजनसे देशकी आन्तरिक एकताको बल मिलेगा। □

ग्राम्य-जीवनका अकृत्रिम चित्र

कथा एक प्रान्तरकी[1]

उपन्यासकार : शंकरन् कुट्टि कुन्हीरामन् पोट्टेक्काट समीक्षक : डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'

प्रस्तुत उपन्यास अखिल भारतीय स्तरके एक परिपक्व एवं वरिष्ठ लेखककी एक बहुत अच्छी और बहुत बड़ी कृति है। वे वयोवृद्ध, अनुभव सम्पन्न, बहुमुखी प्रतिभाके धनी, सुलझे हुए और सफल लेखक हैं। मलयालम साहित्यको रोमाण्टिक कहानियोंकी एक नयी शैली देनेवाले तथा रूसी भाषामें अनूदित १३ कहानियोंके उनके एक संग्रहकी एक लाख प्रतियोंके बिकनेका गौरव प्राप्त करनेवाले लेखककी, एक एम. पी. लेखककी, तथा एक अद्भुत भ्रमणशील लेखककी अर्थात् इन सभी बातोंको अपने व्यक्तित्वमें समाहित करनेवाले मनीषी लेखककी कृति सामान्य नहीं हो सकती। ऐसे वरिष्ठ लेखकको अपनी आत्मकथा लिख सकनेका अधिकार स्वयसिद्ध है। किन्तु लेखकने आत्मकथा न लिखकर आत्मकथात्मक उपन्यास लिखा है। मधुकर उपाध्यायसे बातचीतमें उन्होंने कहा था कि 'आलोचकोंका यह विश्वास कि उपन्यासका मुख्य चरित्र श्रीधरन मैं ही हूं, एकदम सही है' (सारिका, वर्ष २२, अंक ३०८)। इतनेपर भी 'कथा एक प्रान्तरकी' आत्मकथा न होकर आत्मकथात्मक उपन्यास है अर्थात् आत्मकथा लगती हुईभी यह कृति उपन्यास है या औपन्यासिक शिल्प और स्वरूपमें भी इसके अन्दर आत्मकथा ही है। नाम और तारीख कल्पित (झूठी ?) और घटना-चरित्र (बात) सही—यह उपन्यास है; तारीख, नाम, घटना—सबकी सब सही—यह आत्मकथा है। 'आत्मकथात्मक' क्या है ?—इसे स्पष्ट करते हुए पोट्टेक्काट कहते हैं, 'आत्मकथाको यह रूप देनेकेके पीछे बस एक कारण था—वह यह कि मैं सचको हू-ब-हू कागजपर उतारना चाहता था। सच और वहभी अपनी जिन्दगीके सचको सीधे-सादे कागजपर टाँक देना बहुत हिम्मतका काम है—मैं समझता हूं कि यदि मैं आत्मकथा लिख रहा होता तो शायद बहुतसे ऐसे प्रसंग छूट गये होते, जिन्हें अब मैं अपने-से जोड़ना पसन्द नहीं करता। वैसे मैं कह तो नहीं सकता कि वे कौन-से प्रसंग ऐसे हैं जिन्हें लेखक अब अपनेसे जोड़ना पसन्द नहीं करता किन्तु पोट्टेक्काटजीने जब स्वीकार कर लिया वे ही श्रीधरन हैं, तो श्रीधरनसे संबंधित सारे प्रसंग उनसे संबंधित हो गये। वैसे, मेरा अनुमान है कि ऐसे कोई प्रसंग हैं ही नहीं, जो किसी बड़े आदमीसे जुड़नेपर उसे कलंकित करें। प्रेमचंद

---

१. **कथा एक प्रान्तरकी** [पुरस्कृत मलयालम उपन्यास 'ओरु देशत्तिन्ते कथा' का हिन्दी अनुवाद]; लेखक : शंकरन् कुट्टि कुन्हीरामन् पोट्टेक्काट; अनुवादक : प्रो. पी. कृष्णन्; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७ कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-११०-००१। पृष्ठ : ५०७; डिमा. ८१; मूल्य : ५०.०० रु.।

और टैगौर तो अपनी कहानियों (गुड़की चोरी, बड़े भाई साहब, काबुलीवाला, नायंजोरके बाबू लोग) में और स्वयं महात्मा गाँधीभी अपनी आत्मकथाके कई प्रसंगोंमें हैं किन्तु उनकी महत्ता अस्पृश्यही रही! लेखक उनके स्पर्श से प्रभावित होनेकी स्थितिसे बहुत ऊपर उठ गये हैं। अब जानु, हरे घाघरेवाली, सप्पर सफर संघ, पोन्नम्मा, एरुमा, एम्मा, वेलूमुप्पर, बालन, इब्राहीम, गोविन्द कुरुप, सरस्वती अम्मालु, अम्मुकुट्टि, नारायणी, आदि सभी पात्र और घटनाएँ उनकी हैं और वे उनसे मानसिक रूपमें संबंधित हैं !!

'कथा एक प्रान्तरकी' से एक नयी बात मालूम हुई। 'प्रस्तुति' में लक्ष्मीचंद जैनजीने लिखा है, 'पोट्टेक्काटका जन्म १४ मार्च १९१३ को कालीकटमें हुआ। कालीकट नाम तो बादमें पड़ा···पुराना नाम अतिराणिप्पाटं था।' अतिराणिप्पाटं अर्थात् एक बस्ती ! पोट्टेक्काटजीने उपन्यासके चौथे पृष्ठपर लिखा है, 'एक विशाल दलदलको पाट दिये जानेके कारणही अतिराणिप्पाटं बस्ती बनी। पुराने ज़मानेमें एक छोटी-सी नदी इस जगहसे बहती हुई एक मील दूर पश्चिमके समुद्रमें गिरती थी। सदियों बाद वह नदी सूख गयी और वहाँ दलदलसे भरा नाला बन गया।···वह नालाभी धीरे-धीरे पटकर दलदलमें बदल गया। दल जमीनमें बदलती गयी और वहाँ लोगोंका···।' यही स्थान अतिराणिप्पाटं है जो आजकल कालीकट है। निश्चित हुआ कि उपन्यासके नायकके पिताश्री कृष्णन मास्टर जब अपना पैतृक स्थान छोड़कर नये स्थानपर आये तब उस स्थानका नाम अतिराणिप्पाटंही था और यह नाम तबतक रहा जबतक कि नायक श्रीधरन इसे अलविदा कहकर चला नहीं गया। 'अतिराणिप्पाटं' नाम कब पड़ा और कब यह 'कालीकट' हो गया—यह इतिहासकारोंके शोधका विषय है। वैसे, बीसवीं शताब्दी या १९वीं शताब्दीके सभी इतिहासकार १४९८ ई. में वास्को-डि-गामाके भारतमें उतरनेकी जगहको कालीकट ही लिखते हैं। संभवतः जैसे 'कॉलीकतार' कैलकटा और कलकत्ता हो गया वैसेही 'अतिराणिप्पाटं' कालीकट हो गया होगा वैसे, भाषा विज्ञानका ध्वनि-परिवर्तन नियम इसमें लगता प्रतीत नहीं होता !

प्रस्तुत उपन्यासका सबसे पहला अध्याय है 'रिजर्वायर'। यह उपन्यासके 'अम्मुक्कुट्टि' अध्याय, 'पालोकसे' अध्याय और 'मर्मरः एक' अध्यायकी महत्त्वपूर्ण बातोंको लेकर लिखा गया है। 'रिजर्वायर' हौज, जलाशय या भण्डारगृहको कहते हैं। वहाँसे आवश्यकतानुसार वसन या वस्तुको लेकर अन्य कार्य किये जाते हैं। विचारकी दृष्टिसे अपाहिज गोपालनकी अन्तरात्मावाला विचार भलेही लेखक पोट्टेक्काटका अत्यन्त प्रिय एवं महत्त्वपूर्ण जीवन-सत्य हो किन्तु 'कथा एक प्रान्तर' का भाव रिजर्वायर—प्रेरणा सिद्धान्त—स्रोत संभवतः अम्मुक्कुट्टि प्रसंग और उससे उद्‌बुद्ध भावनाएँही प्रतीत होती हैं। अम्मुक्कुट्टिकी मृत्युकी मर्मभेदी सूचना तथा उसकी कविताओंसे ही 'अतिराणिप्पाटं' के पोट्टेक्काट के सम्पर्कमें आये या उनके द्वारा ममतापूर्वक निर्मित अनेक पात्रोंको निर्ममतापूर्वक (संभवतः प्रतिक्रियावश किन्तु अत्यन्त स्वाभाविक ढंगसे) मौतको समर्पित कर दिया है. भावोंकी गति-प्रक्रिया (विशेषतः भावुक साहित्यकारकी) बड़ी रहस्यमयी होती है। हैमलेट, मैकबेथ आदि दुःखान्त रचनाओंकी पृष्ठभूमिमें कौन है—यह नहीं जानता !

वैसे 'कथा एक प्रान्तरकी' की कहानी 'रिजर्वायर' के बादही प्रारम्भ होती है। उसके चार खण्ड हैं। चौथा खण्ड अपने अध्यायोंकी सूचीमें प्रथम तीनसे भिन्न है। शीर्षक हैं 'खण्ड : एक', 'खण्ड : दो', खण्ड : तीन' और 'खण्ड : चार', किन्तु अध्याय-योजना जहाँ पहले तीनों अध्यायोंकी विषयवस्तुसे संबंधित या उनकी ओर संकेत करने, ध्वनित करनेवाले या उनके प्रतीक शब्दों (संज्ञाओं) पर आधारित है वहाँ चौथे खण्डके सभी अध्यायोंके शीर्षक एकही हैं—'मर्मर'—केवल संख्यावाचक विशेषणोंसे कभी-कभी उन्हें संयुक्त कर दिया जाता है अर्थात् खण्ड : एक—१. रजिस्ट्री खत, २—नये रिश्तेदार · २०. अप्पुके खेतमें'; 'खण्ड : २—१. सत्यं ब्रूयात्···१०. विद्यालय और घरमें,···११. इस्तहार, १२. यक्षी'; खण्ड : तीन—१. पंख और सोना··· कुआँ और कैलेण्डर···३१. अतिराणिप्पाटं अलविदा' और खण्ड : चार—मर्मरः एक, मर्मर दो, मर्मरः तीन··· मर्मरः दस'। अभी-अभी इन अध्यायोंके नाम लिखते हुए मैंने पाया कि खण्ड : दोके अध्यायोंकी सूची जहाँ दी गयी है अर्थात् पृष्ठ १२६पर वहाँ लिखा है ११. इम्तहान किन्तु जहाँ उपन्यासका यह अध्याय है अर्थात् पृष्ठ १७८ पर वहाँ लिखा है 'परीक्षाएं' और पृष्ठ १७८, पृष्ठ १८१, पृष्ठ १८३, पृष्ठ १८५, पृष्ठ १८७, और पृष्ठ १७९ के अन्तमें अध्यायके नामकी जगहभी 'परीक्षाएं' ही मुद्रित है। वैसे विषयवस्तुकी दृष्टिसे कोई

अन्तर नहीं पड़ता किंतु पता नहीं क्यों ऐसा लगता है कि यह सही नहीं है। सुना है कि व्यक्तिवाचक संज्ञाओंकी न तो वर्तनी बदली जाती हैं और न उनके अनुवाद किये जाते हैं। विश्वास है कि ऐसी बात अन्यत्र और कहीं न होगी! यह मानते हुएभी कि जल्दीबाजीमें शैली-शिल्प की सुरक्षा नहीं हो सकी है प्रूफरीडरको इतना सतर्क तो रहना ही चाहिये कि वह 'साहित्यिक' की जगह 'साहित्यक' ('प्रस्तुति' के तीसरे पृष्ठपर अन्तिम पैराकी पहली पंक्ति), 'पौधे' की जगह 'बौधा' (पृ. २५३), 'नसीब' की जगह 'नजीब' (पृ. ३१०), पृ. ३९६ पर अध्याय संख्या २६ की जगह २७, आदि न छप जाने या वाक्यमें से आवश्क 'ने' का छूट जाना (पृ. ३५३)। 'आचनक' (पृ. १३७), 'मुखोटा' (पृ. ३५८), विकार शक्ति' (पृ. ४४६), सोतेले (पृ. ५१), कालिक भास्करन (पृ. ३४८), बारह (पृ. ३४८), बाहरी (पृ. ३४९), तौकरी (पृ. २०७) न छप जाये! वैसे छापेकी गलतियोंका न होना हमारे प्रकाशन-संसारके लिए एक अस्वाभाविक तथ्य माना जाता है (श्रीधरनने भी कहा है 'छापेवाले पत्नीको पन्नी (सुअर) में तब्दील कर देते हैं' (पृ. ३१६) और बेधड़क बनारसीकी एक कविता के अनुसार 'वे नारी, तुम केवल अद्धा हो' छाप देते हैं।) किन्तु 'भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन'को मैं इस दृष्टिसे एक अपवादही समझता हूँ और समझते रहना चाहता हूं!! चौथे खण्डके अध्यायोंका यह रूप-परिवर्तन किस कारण हुआ? मैं समझ नहीं पाया। खण्ड चारके दसों अध्याय 'मर्मर' ही क्यों हैं—प्रथम तीनसे बिल्कुल भिन्न। सोचता हूँ कि संभवत: इसलिए हो कि इस खण्डकी सभी बातों में श्रीधरनकी स्मृतियां मात्र हैं और शेषमें वेलुमुप्पर द्वारा सुनायी गयी बातेंही हैं एवं श्रीधरन उन घटनाओं का न दर्शक है और न किसी प्रकार भागीदार। किन्तु सारेका सारा उपन्यासही श्रीधरनकी स्मृतिका मर्मर मात्र है। तो क्या यह नामकरणका शिल्प-वैशिष्ट्य मात्र है! शायद यही हो। एक बात और। खण्डोंके नीचे जहां अध्याय-संख्या और अध्यायोंके शीर्षक दिये गये हैं वहां यदि पृष्ठसंख्याएं भी दे दी गयी होती तो विशिष्ट अध्येताओंको आसानी होती। तथ्य या उदाहरण ढूंढ़नेके लिए बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। प्रथम खण्डमें २२ अध्याय हैं और ये पहले पृष्ठसे १२५वें पृष्ठतक हैं, दूसरे खण्डमें १२ अध्याय हैं और ये पृष्ठ संख्या १२७ से १९९ तक में हैं, तीसरा खण्ड सबसे बड़ा है जिसमें ३१ अध्याय हैं जो पृ. २०१ पृ. ४४७ में है और चौथा खण्ड १० अध्यायोंमें फैला है और यह पृ. ४४९ से ५०७ तक का है। इन अध्यायोंमें से छोटे-से-छोटा अध्याय ३ पृष्ठोंका और बड़ेसे बड़ा १२ पृष्ठोंका है। कुल मिलाकर ७५ अध्याय हैं। और पृष्ठसंख्या ५०७।

उपन्यासका शीर्षक है 'कथा एक प्रान्तरकी' यानी 'ओरु देशत्तिन्ते कथा'। अर्थ हुआ 'ओरु' (एक) + देशत्तिन्तै (देशकी) + कथा (कहानी)। इस देशका तात्पर्य न भारतवर्षसे है, न केरलसे, न कालीकटसे और न किसी मुहल्ले या बस्तीसे। एक नदीके दलदलमें, दलदलके जमीन में, जमीनके बस्तीमें और बस्तीके आधुनिक नगरमें बदल जानेका उल्लेख मात्र इस कहानीमें है 'उल्लेख' 'कहानी' नहीं होता। हाँ, विकासके इन चरणोंकी कहानी बन सकती है और पोट्टेक्काटकी तरहके सिद्धहस्त-कुशल-सफल कथाकारके द्वारा तो निश्चित रूपसे। किन्तु ऐसा 'ओरु देशत्तिन्ते कथा' में नहीं हो सका क्योंकि सम्भवत: यह इस कहानीका न उद्देश्य था और न प्रेरणा। साथ ही, यह कथानायक श्रीधरनके जीवनकी भी पूरी कहानी नहीं है। यह श्रीधरनके शैशवसे लेकर-अतिराणिप्पाटंको अलविदा कहनेतक की और बादमें कुछेक दिनोंतक के लिए वहाँ आकर अतिराणिप्पाटंके परिवर्तित परिवेशको देखने और अपने परिचितोंकी अवशिष्ट जीवन-कथा सुनने-जाननेकी कहानी है। एक बस्तीके निर्माणकी और उसके परिवर्तित स्वरूपकी जानकारी देना तथा बीस वर्षोंतक एक बच्चेके और उसके कुछ परिचितोंके विकास या जीवनकी घटनाओंकी कहानी या कहानियाँ यदि गांव की कहानी हो, यदि बस्तीकी कहानी हो, यदि 'देशत्तिन्ते' हो तो वह इसे जाना जा सकता है। माना तो 'कथा एक प्रान्तरकी' या 'ओरु देशात्तिन्ते' ही जायेगा। मैं मानता हूं कि शब्दोंमें निहित अर्थों या भावोंका संकोच या विस्तार कर लेना कलाकारका प्रीविलेज होता है, कला-कुशलता होती है, और कथामें सदैव गणितही नहीं चलता—भावनाकी प्रधानता होती है, और कृतिकी ओर पाठकोंको आकृष्ट करना शीर्षककी एक विशेपता होती है—जो इसमें है।

कथा-नायक श्रीधरनका जन्म अतिराणिप्पाटंके सुयोग्य प्रशंसनीय, क्रान्तिकारी विचारधाराके, साहसी भक्त, और आचारवान् अध्यापक चेनक्कोतु कृष्णनूकी द्वितीया धर्मपत्नी (उसके पहलेकी विधवा) कुट्टिमालुकी कोखसे

हुआ। परिवारमें कृष्णन मास्टर, उनकी माता अम्मालु अम्मा, धर्मपत्नी, बड़ा बेटा कुंजप्पु, दूसरा बेटा गोपालन, छोटा बेटा राघवन और फिर नया बेटा श्रीधरन थे। अम्मालु अम्मा सामान्य दादियों जैसी थी। कुट्टिमालु परिवार परायण एवं मोह-राग-ग्रस्त सामान्य गृहिणी थी। राघवन् बीमारीमें गलगलकर मिट्टीके गड्ढेमें समा गया। अम्मालु अम्मा नातीको दुलारते-खेलाते एक दिन चल बसी। अपनी जवानीके दिनोंकी एक गलतीके कारण गोपालन बीमारी झेलते-झेलते दार्शनिक विचारक बनकर और श्रीधरनको सही सलाह देते-देते एवं सुधारनेकी चेष्टा करते हुए एक दिन दिवंगत हो गया। कुंजप्पु (जिसने अपने नामधारी दादाके सभी दुर्गुण पाये थे) शरारतें और अपराध करता हुआ, लोगोंको अकारण दुःखी करता हुआ, युद्धके दौरान भर्ती होकर और वहाँसे लौटनेके बाद फौजी जीवनकी झूठी गप्पें सुनाता हुआ, पेंटरका काम करता हुआ फिर रेलवेमें फिटरका काम करता हुआ, मां-बापको भी अपने ब्याह (पत्नी-पुत्र) की सूचना न देकर अनजानेही उन्हें जलील करता हुआ, चोरीमें भाग लेता हुआ, शराब पीता हुआ, लोगोंके षड्यन्त्रमें शामिल होकर अपना घर बंटवारेके रूपमें वर्बाद करता हुआ, 'पुत्रकी मृत्यु और उसका समुद्रमें फेंका जाना देखता हुआ अन्ततोगत्वा पत्नी द्वारा परित्यक्त एवं रोगग्रस्त होकर भिखारियोंका-सा जीवन बिताता हुआ मर गया। अकूत सम्पत्तिका स्वामी कुंजिक्केलु मेलान शराब, नारी, सिगरेट साथही अपने कर्मचारियोंके विश्वासघातके कारण 'मुंगेलीका खेद्दा' जैसे पापोंके परिणामस्वरूप 'बीस सालों तक मोहल्लेमें भीख माँगकर दर-दर फिरनेके बाद आखिर एक पारु धायकी भाड़ेकी झोंपड़ीके बरामदेमें शराबकी एक-एक बूंदके लिए तड़प-तड़पकर (संभवतः नाग-दर्शन के कारण भयसे चीखकर) मर गया। सात्विक, सदाचारी, निश्छल गृहस्थ मास्टर चेनक्कोत्तु कृष्णन (संभवतः भक्ति और सदाचारकी ईश्वरीय परीक्षा देते-देते) अपने पुत्रोंकी बर्बादी और एक अच्छे बेटेके संबंधमें अपनी सारी महत्त्वाकांक्षाओंका सपना देखते हुए एक दिन चल ही दिये। इसके अतिरिक्त भिखमंगों-सा ढोंगी सम्पादक नवीशन, छलिया कथा लेखक इब्राहीम, शराबी विलासी अहंकारी लेखक गोविन्द कुरुप, (मसखरी संघ) सप्पर सफर संघके शाकाहारी मसखरीके कारनामे और उसके सदस्यगण (माधवन, कुंजिरामन 'सफेद जूं', धोबी मुत्तु 'काली बिल्ली', केलुक्कुटि, [illegible] दामू 'बैल', दास, बढ़ई माधवन, श्रीधरन 'माइनर' और इन सबके नेता उस्ताद वासु) एवं इन सबको सुस्वादु भोजन और आशीर्वाद देनेवाली जिन्दादिल मोटी कुंकुच्चियम्मा, निर्दोष बालनपर पुलिसकी प्राणघातक पिटाई, वासुका भाग जाना और उसकी तस्करीके सामानमें से एककी चोरी, वासु और तिरुमालाका अवैध संबंध-प्रसंग, 'कोरमीना'-प्रसंग, चॉत्तप्पन बकरेका वध और उसकी चोरी, स्कूल-कालेज और छात्रोंकी शरारतें, हाशीम मुंशी, धोखेबाज ज्योतिषी, औरतोंकी लड़ाई, कोगिणीके साथ एक विधवाके पुत्र कुंजिक्कोरनकी दगाबाजी, आत्मानंद स्वामी (सुनार मजिस्ट्रेट) या गोपालन मजिस्ट्रेटकी धूर्तता, एम्मा पोनम्माकी अविश्वसनीय संभोग-शक्ति, दंगा, शरणार्थी, उनकी दयनीय मौतें, अप्पु और नारायणी, आच्चा, आण्डि, कणारन शकुण्णि, भास्करन मास्टर, चिरुता, चापुण्णि अधिकारीके यहाँसे 'प्रिन्स आफ वेल्स' पौधेकी चोरी, केशवन मास्टर, मुतोरन-चाचीचक्की प्रसंग, धर्मराज अयंग्गर-सरस्वती प्रसंग आदिकी शताधिक रोचक और मनोरंजक छोटी-छोटी कथाएं भी उपन्यासमें है। सबसे प्रमुख हैं कथा-नायक श्रीधरनकी कहानी जो उसके शैशवसे लेकर 'बचपन, लड़कपन और तरुणाईके' दिनोंतक इस उपन्यासमें वर्णित हैं और जिसमें प्रकारान्तरसे प्रौढ़ताके दिनोंकी भी एक घटना (यूरोप-प्रवास) भी है। उसके दादीकी गोदमें खेलने, नयी-नयी बातोंको जानने-समझने, नानाके यहाँ इलाजिपोपिलमें जाकर अप्पुके साथ घूमने और कहानियां सुनने, गोपालन भैयाके साथ मेले और त्यौहार देखने, स्कूल और कालेज में पढ़ने तथा विद्यार्थियोंकी मास्टरके प्रति शरारतें सुनने, औरतोंका झगड़ा सुनने-देखने, लड़कियोंके प्रति आकृष्ट होने, वासु बालन आदि शरारती लड़कोंके सम्पर्कमें आने और उनके संघमें शामिल होने, गणितमें अपनी कमजोरी और उसके परीक्षापर प्रभाव, प्रेम-पत्र लिखने, कविताएं लिखने, अच्छी सलाहें देनेवालेके सम्पर्कमें आने, झूठे-सच्चे साहित्यिकोंके सम्पर्कमें आने, समाजके विभिन्न वर्गों के व्यक्तियोंकी अच्छी-बुरी कहानियाँ (जीवन घटनाएं) सुनने और उन्हें देखने, रोमांटिक प्रवृत्तिके पैदा होने, समझने और सोचने, शील-स्वभाव आदिकी कहानियां हैं। पढ़नेपर लगता है कि आज ५८-६० वर्षकी उम्रवाले लोगोंने अपने शैशव, कैशोर्य एवं तारुण्यमें जो-कुछ देखा और सुना है, कुछ थोड़े-से (नाम, स्थान, आदि) के परि-[illegible] सब बातें और घटनाएं यहाँ हैं।

यदि भारतीय व्यक्ति और उसके समाजकी प्रवृत्तियां एक-सी हैं (सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंकी मूलभूत एकताके कारण) तो इस उपन्यासकी विभिन्न कहानियोंमें अन्तर्प्रान्तीय एकता-समानता है। अनुभवों और अनुभूतियोंकी समानता है। इस उपन्यासके कथानकका ढाँचा एक वृक्षके रूप जैसा है। जड़में है चेनक्कोत्तु घराना। तनेके रूपमें हैं मास्टर कृष्णन और उससे कुछ ऊपरसे अन्ततक है श्रीधरन। डालियोंके रूपमें हैं कुंजण्णु, राघवन, गोपालन वेलुमूप्पर, कुंजिक्केलु मेलान, आदि। टहनियोंके रूपमें में एम्मा पोन्नम्मा, श्रीधरनकी कलकत्ता यात्रा, पाणन कणारन, पांची, चक्की, 'कोरमीना', चबूतरेका संन्यासी आदि। पत्तोंके रूपमें हैं अम्मुक्कुट्टि,मदनोत्सव, नारायणी, हरे घाघरेवाली, चबूतरेका संन्यासी, गोविन्द कुरुप आदि। फूलोंके रूपमें मैं उन विचारों और निष्कर्षोंको समझता हूं जो घटनाओंसे निकलते हैं या व्यक्त हुए हैं। जैसे कभी-कभी एक साथ या शाखासे दो शाखाएं निकलती हैं वैसेही एक अध्यायमें प्रायः दो-दो कहानियोंके अंश हैं। कोई बड़ी कहानी एक क्रममें ही आद्यन्त नहीं कही गयी है। अनेकका पर्यवसान तो 'मर्मर' खंडमें होता है। यह विशिष्टता या गुण औपन्यासिकता या औत्सुक्य-वृद्धिका सृजन करती है और वस्तुतः बहुत अच्छी कला है। वैसे, वर्णन-कुशलता तल्लीनताका कारण तो बनती है किन्तु वैसी उत्सुकता कहीं नहीं है कि आदमी खाना-पीनाभी भूल जाये और समाप्त किये बिना उठेही ना।

जहाँतक विचार-प्रसूनका संबंध है, पोट्टेक्काटजीके अनुसार 'सर्वाधिक सार्थक' जीवन-सत्य 'अपाहिज गोपालन' के 'जीवनके अन्तिम क्षणमें आत्ममंथनसे उपजे दर्शन का 'नवनीत' ('प्रस्तुति'—लक्ष्मीचंद जैन) है और वह इस प्रकार है, 'ईश्वर है तो वह आकाशके भी पार कहीं दूर रहता है। तुम्हारे पुकारतेही वह नहीं आ जाता। लेकिन आपदामें तेरी पुकारको तुरतही सुन लेनेवाली और तेरी रक्षाके लिए तुरत मार्गदर्शन करनेवाली एक महाशक्ति तेरेही भीतर है—तेरी अन्तरात्मा। कोईभी कार्य हो, उसे करनेके पूर्व तुम अपनी अन्तरात्माकी आवाज सुनो...अन्तरात्माको धोखा देनेपर पता नहीं कब तुम्हारी तबाही हो जाये। हालाँकि तुम्हें उसका आभासभी नहीं होगा...इस प्रपंचके सभी प्राणी गतिशील चिन्मय शक्ति के ही अणु हैं।एक सहजीवीका अहित करनेके मनोभाव से तुम जिस अस्त्रको चलाओगे वह लक्ष्यमें लगकर, या न लगनेपर भी घूमफिरकर कभी तुम्हारीही छातीसे आ टकरायेगा। लेकिन तुम्हें इसका बोध नहीं होगा—उस अज्ञात गतिशील नियामक शक्तिके आगे मानव असहाय है' (पृ. ३६९)। आस्तिकतापर विश्वास करनेवाले मनुष्य के लिए यह चिन्तन या निष्कर्ष सर्वथा नवीन या विवास्पद नहीं हो सकता। इसमें ईश्वरकी उपेक्षा भी नहीं है। केवल तात्कालिक सहायता या मार्गदर्शनका शाश्वत सिद्धान्त है। जीवनके अनुभवकी भी कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तियां इस उपन्यासमें मिलती हैं, जैसे—'पथभ्रष्ट होने और जिन्दगीकी तबाहीके लिए अधिक गलतियाँ करनेकी जरूरत नहीं होती—जब कभी एकही गलती बड़ी हो जाती है...' (पृ. ३३८) युगों-युगोंके मानवीय अनुभवोंका एक क्रूर सत्य यहभी है, 'इन्सानके इरादों और मोहोंको जमानेका व्यंग्य एकदम उलट देता है' (पृ. ३७०)। मानव-जीवनको एक नाटकके रूपमें तो अनेक साहित्यिकोंने रूपायित किया है किन्तु पोटेक्काटजीने उसे एक नौका-विहारके रूपमें इस प्रकार लिया है, 'जिन्दगी तो समयकी नदीमें नौका-विहार है। सफरके अन्ततक—या फिर नावके डूबनेतक—लगातार कुछ-न-कुछ करना पड़ता है। नावकी गति कभी धीमी होती, कभी भंवरमें फँसकर घूमती, कभी हवा और लहरोंमें फंसकर नीचे डूबती, कभी ऊपर उठकर हिलती-डुलती बहावके विपरीतभी थोड़ी दूर आगे बढ़ा जा सकता है, लेकिन यह नाव एक पलभी निश्चल नहीं रह सकती।' गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहाभी है, 'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत, कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः— और जब कर्मसे मुक्ति नहीं तो जिन्दगीकी नावभी निश्चल नहीं। ईश्वरकी सृष्टि और मनुष्यके उसके संदर्भके महत्त्व में लेखक कहता है, 'ईश्वरकी सृष्टिपर इन्सान धूल-मिट्टी की सृष्टिभी नहीं कर सका है। ईश्वरके सर्जित मिट्टीके एक कणको भी आदमी विनष्ट नहीं कर सका है। वह ऐसा करभी नहीं सकेगा। ईश्वरकी सृष्टिमें जो कुछ है, इन्सान उससे ही कुछ खेल खेलने लगता है उसी खेलको हम हम जिंदगीके नामसे पुकारते हैं।' सचमुच यह मानव के जीवनकी नयी लगती-सी परिभाषा है और अब,दुनियां तथा उसमें इन्सानके लिए नियत कार्यका स्वरूप देखें। लेखक मास्टर कृष्णनसे कहलाता है,'यह दुनियां एक महाश्मशान है। हम पीढ़ियोंसे दिवंगत और मिट्टीमें समाये हुए आदमियोंके ऊपरही बसते हैं। हमारे पीछेकी पीढ़ी हमारे ऊपर अपनी दुनियांकी नींव डालेगी—श्मशानके ऊपर श्मशान।' (पृ. ४४९)। मेरे विचारमें

यह एक तथ्य होते हुएभी निराशावादी मनोविज्ञानकी उपज है। एकही चीजको आप अपने मन और अनुभवके आधारपर अपने-अपने रंग-ढंगसे देख सकते हैं। आजका युग वैयक्तिकताका न होकर, व्यक्तिपरक न होकर, सामाजिकताका एवं समष्टिका है। इसके तर्कभी प्रबल और अकाट्य हैं किन्तु उन सबकी उपेक्षा करता हुआ सोमन पृ. ४६६ पर स्वार्थ-सनी, व्यष्टिवादी, बात करता हुआ कहता है, 'मैंने दूसरोंका पैसा छीना नहीं है। दूसरों की बीवी नहीं छीनी हे। जबर्दस्तीसे एकभी औरतका उपभोग मैंने नहीं किया है। समाजकी सलाह या सहयोग से मैं इस हालतमें नहीं पहुँचा हूं। मैंने मेहनतका जो पैसा कमाया, उससे मैं अपनी इच्छाके अनुसार जिंदगी गुजार रहा हूं। मैंने समाजका क्या अपराध किया है।' जिंदगी के सम्बन्धमें एक रोमाण्टिक प्रेमीका विचार है, 'जिंदगी संयोगोंके ताने और मोहके बानेसे बुना हुआ एक घूंघट है' तो प्रौढ़ चिन्तक कृष्णन दुनियांको एक महाश्मशान मानता है। पर्यटक श्रीधरन जिंदगीको, 'एक विचित्र गली मानता है और कहता है, 'आपसमें मिलनेसे भी अधिक अलग हो जाने, पीछे हटनेकी भीड़-भाड़ही इस गलीमें होती है…' (पृ. ५०२) तो एक विशिष्ट परि-स्थितिमें पड़कर वह कहता है, 'नो' स्पष्ट कह देनेकी दृढ़ता…जिंदगीकी विजयके लिए वही है सबसे जरूरी हथियार' (पृ. ५०१)। वैसे सैद्धान्तिक रूपसे 'शील' का बड़ा महत्त्व है जीवनमें किन्तु यहभी सही है कि मेरे जन-पदमें एक उक्ति है 'सिलहा (शीलवान) मर्द भिखार (भिखारी) और सिलही नारि छिनार'। इस प्रकार यह उपन्यास इन उक्तियों, सूक्तियों और जीवनके सम्बन्धमें दार्शनिक-सी बातोंसे भी सुभूषित है।

उपन्यासमें पात्रोंके चरित्रका निर्माण—गुणों-अवगुणों की मात्राओंका अनुपात—प्रायः पहलेसे ही हो गया लगता है। जीवनमें प्रायः होताभी यही है। कृष्णन मास्टरके स्वर्गीय पितामें शराबकी लत और औरतोंके चक्करमें आनेके गुण, असीम हौसला और फक्कड़पन आदि अवगुण या गुण थे। उसके कारण उनका घर बँटा और कृष्णन मास्टरने घरानेकी चहारदीवारी लांघकर अतिराणिप्पाटमें आ गये। कुंजप्पु नम्बर २ में दादाके सभी गुण या अवगुण आ गये। उसीके कारण श्रीधरनको अतिराणिप्पाटंका अपना घर बेचना-छोड़ना पड़ा। कुंजप्पु की सभी शरारतें, उसकी नशेबाजी, स्कूल-स्थान-नौकरी-पेशा-आदि छोड़ने और पराये प्रदेशकी औरतके चक्करमें आनेकी आदतें दादासे प्राप्त अवगुणोंका द्योतक हैं। विचित्र साम्य है कि इसी कुंजप्पुके कारण श्रीधरनको अपने पिता का घर सदाके लिए छोड़ना पड़ा। यही स्थिति कुंजिक्केलु मेलानकी भी है। श्रीधरनमें अपने पिताके कुछ गुण तो हैं ही। ईमानदारी, चिन्तन शक्ति, साहस, शालीनता, शील, आदि दोनोंमें समान हैं। ऐसे अन्य चरित्रभी उप-न्यासमें हैं। चरित्रके इन अवगुणों या गुणोंकी दृढ़ताकी परख या उनका विकास, पर्यावरण या आकस्मिक रूप से घटित घटनाओंसे होता है। यह संयोगही था कि श्रीधरन शरारती लड़कोंके स्कूल-कालेजमें दाखिल हुआ। यह संयोग ही था कि उसे यूरोपमें एम्मा मिली। गोविन्द कुरुप या इब्राहीम, या सरस्वती अम्माल, या अम्मुक्कुट्टि या उसके भाई अय्यंगर या हरे घाघरेवालीसे भेंट अथवा उसके प्रेम-पत्रका अध्यापिका द्वारा हस्तगत किया जाना आदि संयोगकी ही बात थी। इन मोड़ों और संयोगोंने ही पात्रोंके रूपको निखारा है। इन पात्रोंके जीवनकी परिणति अत्यन्त आदर्शवादी ढंगसे हुई है। आण्डि, कुंजप्पु, कुंजिक्केलु मेलान, शंकुण्णि कम्पाउंडर, बालनकी पिटाई और उसकी मृत्युके प्रमुख कारण भास्करन मालिकका अन्त आदि बुराइयोंके बुरे परिणामवाले सिद्धांत पर ही है। पोन्नमाका अन्तभी वैसाही है। अम्मुक्कुट्टि, नारायणी, कृष्णन मास्टरका अन्त आदर्शवादी प्रेमका परिणाम है। इस उपन्यासके सभी पात्र सजीव होते हुए भी गतिशील नहीं हैं। उनमें चारित्रिक विकास नहीं दिखायी पड़ता। सब अपने बँधे-बँधाये ढंगपर हैं। जिंदगी मिली है, एक विशिष्ट प्रकारके चारित्रिक गुण मिले हैं और एक समाज मिला है तथा मिली है एक अदम्य जीवनी-शक्ति। चलते जाते हैं करते और भुगतते हैं, जहाँ सफर खत्म वहीं स्वाभाविक रूपसे हमभी खत्म। स्व. भगवतीचरण वर्माने एक बार मुझसे कहा था कि मेरे पात्र यथार्थवादी है और यथार्थ यह है कि न अच्छा सर्वदा और सर्वथा अच्छाही रहता है और बुरा एकदम से बुरा। 'ओरु देशत्तिन्टे कथा' में एकभी पात्र ऐसा नहीं है जिससे हम घृणा कर सकें। बर्बादी और तबाहीकी सबसे ऊँची चोटी परसे गिरनेवाला मेलान, पोन्नम्मा, बालन, वासु, कृष्णन् मास्टरका पुत्र कुंजप्पु, पांची, चक्की, आदिभी हमारी प्रशंसा और सहानुभूति पाते हैं। बालनके प्रति होनेवाले अत्याचारने पोन्नम्माके शरीरके तीनों टुकड़ोंकी तड़पनोंने, आण्डिके अन्तिम कर्मने और ऐसीही अन्य घटनाओंके कारण वे सब हमारी सहानुभूति

ही पाते हैं। श्रीधरनके घरके [illegible] उण्णलिअम्माका कुंजप्पुको दिया गया तीखा शाप और उसीके करुण अन्तने वेलुमूप्परकी इस बातका कि 'उसके मुंहमें कांटे थे, लेकिन उसके हृदयमें एक शहदका छत्ता भी था' (पृ. ४५६) समर्थनही किया है। कुंजप्पुका रुंधे गलेसे कहा गया एक असफल वाक्य, 'कम्पाउन्डर, किसी का भी बंटवारा न करो—मुझे कुछ नहीं चाहिये···मैं अपना रास्ता नाप लूंगा' उसके चरित्रमें एक सात्त्विक भावकी झलक देता हुआ उसकी मजबूरीकी पृष्ठभूमिमें उसे मानवीय सहानुभूतिका अधिकारी बना देता है!!

कार्यों, कथोपकथनों, एवं दूसरोंके मतोंसे निर्मित चारित्रिक रूपरेखा एवं तदनुसार किये जानेवाले क्रिया-कलापों, घटनाओंके कलात्मक संयोजनोंके अतिरिक्त वर्णनों-चित्रणों और हास-परिहास तथा व्यंग्य-विनोदभी उपन्यासको सुपाठ्य बनाये रहते हैं! वर्णन न बहुत बड़े हैं और न अरुन्तुद। वर्णनोंने प्रायः वातावरण निर्मित किया है। इसमें मदनोत्सवका वर्णन, इलंजिपोपिलके बाग-बगीचों, खेतों, घरों-बाड़ों, सुनसान दुपहरिया और सुनी हुई कहानियोंसे आतंकित मन और उसकी क्रियाओं-प्रतिक्रियाओंका मनोवैज्ञानिक वर्णन, उत्सवोंकी आयोजनाओंके वर्णन, स्थानों और यूरोपके पहाड़ी दृश्यों के वर्णन आदि हैं। इन वर्णनोंमें जब चित्रात्मकता आ जाती है तब वे चित्रण हो जाते हैं। ऐसे चित्रण कभी रूपके होते हैं, कभी प्रकृतिके, कभी भावोंके, कभी मनो-वृत्तियोंके। भावुकता एवं रागात्मकतासे समन्वित होकर ये काव्यात्मक हो उठते हैं। विशुद्ध कथाकार यथार्थवादी धरातलपर उतरकर आलंकारिक चित्रणोंमें (केवल मेरी दृष्टिमें) कभी-कभी अ-रसिक हो उठता है। हो सकता है कि हम लोगोंकी सौन्दर्य संबंधी धारणा कुछ दूसरी हो और मलयाली प्रदेशकी कुछ दूसरी। आदर मैं उसकाभी करूंगा किन्तु जिसकी उपमा हम श्रीफलसे देते आये हैं उसकी उपमा कटहलसे (पृ. १३४), जिसकी उपमा हम कमलसे देते आये हैं उन्हें आँवलेकी-सी मानना (पृ. १३३) मेरे सौन्दर्य-बोधको झटका देता है। वैसे, बूढ़ी अम्मालु अम्माके दांतविहीन मुंहको रबड़की फटी गेंदकी तरह बताना (पृ. ११), तोंदवाला आदमी पानीभरे तांबेके बर्तनसे अपनी मोटी तोंद सटाकर इस तरह बैठता था मानो एक बड़ा मेंढ़क पानीमें उछलनेकी तैयारी कर रहा हो (पृ. १२८), कुंजम्माकी उपमा सुन्दर पेंसिलसे देना (पृ. १३२), सिरपर गायके गोबरकी तरह बाल [illegible] पृ. ([illegible]) उपमा, कुट्टिप्पेणम्माकी अशोक वाटिकामें सीता देवीपर नियुक्त किसी राक्षसीसे उपमा (पृ. १३४), हट्टे-कट्टे काले-कलूटे आदमीके दांत निपो-रनेकी काले होंठोंके बीचसे नारियलके एक टुकड़ेके बाहर निकलनेसे उपमा (पृ. २०४), गधेकी तरह हँसना (पृ. २१५) दो बड़े-बड़े पापड़ोंका हाथीकी झालरकी तरह लगाना (पृ. २१९), एक अज्ञात प्रेमिकाके पीछे प्रेमी के पीछे चलनेकी कटहलके पत्तोंके पीछे जीभ हिलाकर चलनेवाली बकरीकी उपमा (पृ. २५०), सोडा बोतलकी स्फटिकी गोटीको कुत्तेकी आँखोंकी उपमा बनाना, क्रोधी कुत्तेकी भूंकनेकी आवाजकी तांबेके बर्तनको लोहेकी छड़ी से टकरानेपर निकलनेवाली आवाजसे उपमा (पृ. २५४) चाँदकी कामदेवके छातेसे उपमा (पृ. २६२) मंगम्माकी उपमा सींगविहीन भैंससे (पृ. २६८), सिर कटनेसे हिलने डुलनेवाले नारियलके पेड़ और उसके छोरपर पेड़के साथ ही-साथ तुप्रनके हिलनेके दृश्यकी उपमा एक सिरविहीन घोड़ेकी गर्दनको पकड़कर आसमानमें सवारी करनेवाले एक राक्षससे (पृ. २८४), वर्षाकी उपमा एक बड़े आर्के-स्ट्रासे जिसमें मेंढ़कोंका नगाड़ा, छोटे मेंढ़कोंका मृदंग, झिल्लियोंका रव और मूसलाधार वर्षाका शोर है (पृ. ३१३), अट्टहासकी उपमा अलसेशियन कुत्तोंके भोंकनेसे (पृ. ३३९), दाँतोंकी उपमा चांदीकी पतीलीसे (पृ. ३९८), मोटी बहन और दुबले-पतले भाईके एकसाथ खड़े होनेके दृश्यकी उपमा अंग्रेजीके १० अंककी लिखा-वटसे (पृ. ४५१), आदि) मुझे बहुत अच्छा लगा। इन उपमाओंमें प्रादेशिक यथार्थताभी है, ताजगीभी है, यथार्थवादी सूझभी है। पर्यवेक्षणकी बारीकीभी है, नवी-नताभी है, भाव-साम्य या रूप-साम्यभी है।

व्यंग्य-विनोद और हास-परिहासने भी उपन्यासको रंजक बना रखा है। वकीलोंके क्लबके वार्षिक समारोह के अवसरपर आयोजित 'इन्द्रलेखा' नाटकके मंचीकरणके लिए वकील-दल जब कवि मेलानके पास चंदा लेने गये तब उसने १०.०० रुपयेके टिकटके लिए ५.०० रुपये देते समय यह दलील दी कि पाँच रुपये काफी है क्योंकि मैं काना हूँ!! यह शुद्ध और आस्वाद्य परिहास है। व्यंग्य न फूहड़ है और न आक्रामक किन्तु फिरभी प्रभाव-शाली हैं। 'नया दुश्मन' नामक अध्यायमें श्रीधरन 'वसु-न्धरा' पत्रिकामें छपनेके लिए 'बाप और बेटा' कहानी भेजता है। इसपर संपादक पंडित मूसत्तुकी टिप्पणी है कि इसमें एक गधेकी जरूरत है और श्रीधरन उन्हींकी

भाषा-शैलीमें उत्तर देता है कि उसके लिए आप तो वहां हैं ही ! 'अतिराणिप्पाटं अलविदा' अध्यायमें मास्टर कृष्णनकी मृत्युके बाद आण्डि अर्जीनवीस कुंजप्पुको बहकाकर मास्टरके घर और उसकी सम्पत्तिका बहुतही छोटे दिलसे बँटवारा कर रहा है। उण्णूलि अम्माके शाप की बातें आतिशबाजीकी तरह फूटने लगीं। इसी बीच आण्डि पाखानेकी तरफ दौड़ गया। ऐसे अवसरपर अम्मा का यह कथन है, 'यह शैतान दौड़ रहा है—अब मलका भी बँटवारा होगा। अरे ! आण्डि मायिग्रेट (मजिस्ट्रेट) पाखाना तीन हिस्सोंमें बांट लो। उसमें निचलेका भाग इस नासपिटे कुंजप्पुको दे दो।' (पृ. ४४५)। यह अभिधा की हदतक पहुंचनेवाला, जले दिलकी पीड़ासे फूट पड़ने वाला, मार्मिक व्यंग्य है। व्यंग्य 'मजिस्ट्रेट' और मलपर है। ऐसाही एक व्यंग्य इस प्रकार है, 'घरके सामानोंके बीचमें शेक्सपियर, कालिदास, कुमार नाथन और शंकराचार्यकी कृतियोंके लिए चूल्हेके पत्थरका भी मूल्य नहीं था।' (पृ. ४४५)। ये और ऐसे व्यंग्य और हास-परिहास 'कथा एक प्रान्तरकी' की शोभा है।

मेरी दृष्टिमें 'कथा एक प्रान्तरकी' की एक बहुत बड़ी विशेषता है भारतवर्षके सुदूर दक्षिण स्थित मलयाली प्रदेशके वातावरणका चित्रण। इसमें वहाँकी नदी, वहाँके गांव, वहांके खेत, वहाँके घर, वहाँके नर-नारी, उनकी बोली, उनके स्वभाव, उनके, त्यौहार और उत्सव, उनकी मनोवृत्तियां, वहांके लोगोंका पारस्परिक संबंध, उनके रीति-रिवाज, उनकी रूढ़ियां उनके हृदयकी धड़कनें, उनके विश्वास-अन्धविश्वास, उनका पहनावा, उनके नाम, उनके भोजनोंके नाम आदि मिलते हैं।

हमारे यहां कभी-कभी घरेलू पशुओं-पक्षियोंको मानव-मानवीके नामोंसे भी पुकारा जाता है। मलयालम में भी बैलोंको मेलान, चोप्पन, पुल्लि, कण्णप्पन नाम दिये जानेका उल्लेख पृष्ठ २३ पर है। हमारे यहां कभी-कभी छोटी जातिके देहाती लोगोंको सुकई, घूरे, घिसियावन, गदवी, चिरकुट जैसे नामोंसे पुकारा जाता है। इसका उल्लेख करनेपर स्व. कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी ने मुझसे कहा था कि हमारे गुजरातमें ऐसा नहीं है, आश्चर्य है कि आपके यहां ऐसा हैं भारतवर्षके धुर दक्षिण मलयाली प्रदेशमें एरप्पन (भिखारी) मंकट्टा (मिट्टीका ढेला) कलप्पा (हल) और चूलू (झाड़ू) मुरं (सूप), डरलु (ऊखल), आदि नाम दिये जानेका जिक्र पृ. ३०९ पर है। मैं मानता हूँ कि सारे भारतको मान-सिकता एक है। उण्णूलि अम्मा और अम्मिणि अम्माका झगड़ा अखिल भारतीय प्रवृत्ति है। मेरे क्षेत्रमें लड़केके जन्मपर थाली बजाने या बन्दूक दागनेका और लड़की होनेपर तवा बजानेकी रूढ़ि है। अब दोनोंकी पैदाइशकी सूचना थाली-वादनसे होती है। 'ओरु देशत्तिन्ते कथा' के इस रूपान्तरके ४३७ वें पृष्ठपर लिखा है, 'माणिक्कयंने एक बच्चेको जन्म दिया है। एक बड़ी छड़ी जमीनपर पीटने · की आवाज सुनी थी···लड़की पैदा होती (तो) ···जमीनको सिर्फ तीन बारही पीटना काफी होता।'

अस्तु, इस पुस्तकमें जो कुछ है वह साफ है, स्पष्ट है। इसमें मनोविज्ञान है किन्तु मनोवैज्ञानिक गांठें नहीं हैं, इसमें मनुष्यके स्वभावके दोष (बुराइयां) हैं किन्तु उनका न तो सैद्धान्तीकरण है और न उन्हें स्वाभाविक एवं जस्टीफाइड कहा गया है; इसमें कष्ट हैं, कठिनाइयां हैं, मुसीबतें हैं किन्तु उनके परिणामस्वरूप उत्पन्न दिखायी जानेवाली कृतियां कुंठा, संत्रास आदि विकृतियां नहीं हैं; इसमें विपत्तियोंके चक्रव्यूह हैं और उनमेंसे निकल आने वाली सूझ-बूझ और साहसभी है तथा उसमें ही मिट-खप जानेवाली पराजयभी है, इसमें स्वाभाविक कामा-कर्षण है और उससे बच निकलनेका दमखमभी है। बीसवीं सदीके प्रथम चतुर्थांशके चिन्तन-मनन-लेखनके अभ्यासी लेखककी रचनामें इन सबकी आशंका भी नहीं की जा सकती है। कहानी स्वस्थ, स्वाभाविक और मृत्यु से जीवनकी ओर साहस एवं शक्तिके साथ बढ़नेवाली आदर्शवादी रुझानकी है। बुरेका अन्त दिखानेवाली तथा सात्विकका सात्विक अन्त दिखानेवाली यह आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी कथा पठनीय है। ▭ ▭

इसीका नाम दुनियां

[बंगलासे अनूदित]

लेखक : विमल मित्र; अनुवादक : उल्लेख नहीं; प्रकाशक : सरस्वती विहार; २१, दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली ११०-००२। पृष्ठ : २७६; क्रा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।

हिन्दीमें अनूदित बंगला उपन्यासोंका कथानक प्रायः पुरानी प्रतिष्ठा और पूंजीपर पल रहा मूर्खोंके स्वर्गका अकर्मण्य जमींदार, लिजलिजा नायक और तेजस्विनी, दर्पिता किन्तु घर्षिता नायिका, और इनके बीच अतिशय भावुकतामय गलदश्रु-सम्बन्ध, जो सद्गृहस्थकी सामान्य पहुँ-

लखी महिलाओंकी आलस्यमयी दुपहरी बितानेका अच्छा साधन होता है। श्री मित्रके प्रस्तुत उपन्यासका कथानक कुछ भिन्न है तो इसमें कि इसमें मूर्खोंके स्वर्गके अधिवासी अकर्मण्य जमीन्दार कीर्तिश्वर(शुद्ध रूप होना चाहिये कीर्तीश्वर, किन्तु सारी पुस्तकमें यही रूप दिया गया है) के मुकाबले एक नितान्त व्यवहारवादी. नीति-कुशल और कर्मण्य प्रतिनायक दुलाल साहाभी हैं, जो आवश्कता पड़ने पर साम-दाम-दंड-भेद, सब तरहकी नीतियोंका अनुसरण कर संघर्षके इस युगमें सहजही कीर्तिश्वरको ठेलकर अपना अस्तित्व और महत्त्व प्रतिपादित कर लेता है। इसके अतिरिक्त कीर्तिश्वर भट्टाचार्य अथवा मालिककी पत्नी बड़ी बहूजी है, स्वामिभक्त मुनीम निवारण सरकार है, जो मालिकके पुराने वैभवको रोते हुएभी उनसे जुड़ा हुआ है। दुलालके साथ है उसका सहयोगी वैसाही व्यवहार-पटु और सदा सजग निताई बसाक, जो अपनी सूझबूझ, कर्मण्यता तथा तत्परताके कारण किशनगजमें पैर जमाते-जमाते बुद्धू-शिरोमणि कीर्तिश्वरको उखाड़ फेंकनेमें सफल हो जाता है।

कथा तो इतने मात्रसे बन जाती है, पर नाटकीयता नहीं आ पाती। अत: अपने वैभवके दिनोंमें कीर्तिश्वरके एक पुत्र हुआ था सिद्धेश्वर, और उसके भी एक पुत्री हुई थी हरतन, जो तीन वर्षकी अवस्थामें ही अस्वस्थ होकर चल बसी। चल बसी, अर्थात् श्मशानतक पहुंच गयी, किन्तु सहसा भीषण आंधी और वर्षाके प्रकोपमें उनका, बाप सिद्धेश्वर आदि उसका दाह न करके उसे वहीं छोड़ भाग खड़े होते हैं। लड़कीका शव एक सत्य नामक मछुए को मिलता है, और शवमें श्वासका संचार हो उठता है। अर्थात् श्मशान पहुंची हुई लड़की पहुँच जाती है पुराण मछुएकी बहूके पास होते हुए एक गुसांई मांके घरमें,जहां पाल-पोसकर वह विवाह लायक हो जाती है। और संयोग देखिये कि एक घटक दोलगोविन्द तथा दुलाल साहाके मुनीम सदानन्दके कूट-कौशलसे वही लड़की हरतन कालान्तरमें दुलाल साहाके लड़के विजयकी बहू बनकर किशनगंजमें ही अपने दादाके शत्रुके घरमें भाग्यलक्ष्मी बन बैठती है, और एक बार तो अपने श्वसुरका पक्ष लेकर अपने दादाकी अच्छी-खासी भर्त्सनाभी कर देती है। एक दिन कीर्तिश्वरको पता चलता है कि उनकी पौत्री हरतन मरी नहीं, किन्तु किसी सत्य मछुएको वह जीवित मिल गयी थी। वे सत्य मछुएका पता करनेके लिए हावड़ा जूट मिल पहुँच जाते हैं, जहां 'श्रीमानी ओपेरा' के मालिक चंडी बाबूके जालमें फँसकर उसकी क्षय-रोग-ग्रस्त अभिनेत्री अंजनाको उसके प्रेमी बंकु बिहारीके साथ अपनी पौत्री हरतन समझकर उसकी चिकित्साके लिए अपने घर ले आते हैं। इस अभिनेत्रीकी चिकित्सा और सार-सम्भालमें ही कीर्तिश्वरकी रही-सही सारी जायदाद दुलाल साहाके पेटमें पहुँच जाती है। रहस्य खुलता है दुलाल साहाके पुत्र और हरतनके स्वामी विजयके विलायतसे लौटनेपर किन्तु तबतक कीर्तिश्वर मर चुके होते हैं। नयी बहू हरतन, अबतक अपनी खाल ओढ़े हुए अंजनाको रोकना चाहती है, पर अंजना कहती है 'तुम लोगोंकी दुनियांके नियम-कानून अलगही हैं।...हमारी उस दुनियांमें राम-रावणका युद्ध होनेपर रामकी ही विजय होती है, रावण की नहीं। लेकिन तुम्हारे यहां तो सब कुछ उल्टा है। (पृ. २७४) यह सब तो ठीक, किन्तु दुनियां क्या है? ढोंगी और पाखंडी (?)दुलाल साहाके करतबसे ही उसकी स्मृतिमें ही एक दिन किशनगंजका नाम पलटकर दुलाल गंज हो गया। वह गरीबोंका हितैषी, लाचारोंका सहायक और सर्वत्यागी संन्यासीके रूपमें प्रचारित हो गया! 'दुनियां इसीका नाम है।'

कथानककी इस अस्वाभाविकता, और नाटकीयता और इच्छाकृत संयोगोंके अतिरिक्त श्री विमल मित्रकी अतिशय नाटकीयतासे भरी कथा-शैलीभी एक प्रकारके पाठकको बांध रखती है,किन्तु ऐसाही पाठक सैक्स-अपराध और कॉमिक-साहित्यसे भी इसीतरह बंधा रहता है। कथा कहनेका श्री मित्रका एक फार्मूला है। वे बड़े गुलामअलीखांके प्रेमीही नहीं, स्वयंभी अच्छे संगीतज्ञ हैं। उन्हें पसन्द है संगीतके तान-पलटोंके आरोह-अवरोह में कलाबाजियां खाते हुए सहसा समपर उतर आना, 'नीर भरन कैसे जाऊं!' कहते हैं एक बार गुलामअली खांने इसी पदको ढाई घंटेतक तान-पलटोंमें अटकाये-उलझाये रखा था। अपने कथा-सूत्रको श्री बिमल मित्रभी इसी तरह अवान्तर तान-पलटोंमें अटकाये-उलझाये रखते हैं। उनकी मान्यता है कि इससे पाठककी कथामें उत्सुकता बनी रहती है, और वह व्यर्थके विस्तारकी परवाह किये बिना आगे पढ़ता चला जाता है। उच्चांग संगीत और उच्चांग साहित्य एक वस्तु नहीं हैं। एकका विषय है ध्वनि-तरंगोंके विस्तारमें आत्मनका विलय, और दूसरेका विषय है बोधके भाव-बिन्दुओंके समुच्छ्वासमें आत्मोपलब्धि! यह तो एक अबोध शिशुको लाली पॉप दिखाकर बहलाते-फुसलाते जाना है, और तबतक उसे नहीं दे देना

है जबतक कि वह खीझकर रोने न लग जाये ! इस दृष्टि से हिन्दीमें छद्म लेखकोंके जेबी सस्ते उपन्यासोंकी लोकप्रियतामें और इसमें केवल अंशोंका ही अन्तर हो सकता है, प्रकारका नहीं । बँगलाके अन्य लेखकोंकी अपेक्षा हिंदी में श्री विमल मित्रकी लोकप्रियताका यहभी एक कारण हो सकता है ।

व्यावसायिक-दृष्टिसे लिखनेके कारण व्यर्थंके फैलावके अतिरिक्त लेखनमें असगतियाँभी कम नहीं रहतीं । बँगला में लेखक धारावाहिक रूपसे विभिन्न-पत्रोंमें एकसाथ तीन-चार उपन्यास लिखते रहते हैं, जिससे उन्हें पहले लिखेको पुनः देखनेका अवकाशही नहीं मिलता। प्रस्तुत उपन्यासमें पृष्ठ ३३ में बी. डी. ओ. सुकान्त 'सेन' है, पर आगे जाकर वह 'राय' बन जाता है। दुलाल साहाके पुत्र विजयके विवाहके बाद पृष्ठ १४३ पर दोलगोविन्द और सदानन्दकी अच्छी-खासी भेंट होती है, किन्तु पृष्ठ १४६ तक पहुँचते-पहुँचते लेखक इस भेंटको एक बारगी ही भूल जाता है, दोलगोविन्द इसलिए पागल बन गया कि सदानन्द उसे वहाँ दिखायी ही नहीं दिया ! ऐसी असगतियोंको खोजने कोई दूरभी नहीं जाना पड़ता, और कई बातें अधरमें लटकीभी रह जा सकती हैं ।

पुस्तकके फ्लेपपर उपन्यास की सबसे आकर्षक वस्तु बतायी गयी है 'चरित्रोंकी यथार्थवादी सृष्टि' !' यथार्थसे यदि प्रकाशकका तात्पर्य आत्यन्तिकता हो तो बात दूसरी है, क्योंकि इस उपन्यासका प्रत्येक पात्र नाटकीयताके चरम बिन्दुपर आचरण करता है एक-दूसरेसे अलग-थलग कठपुतलियोंकी तरह । दुलाल साहा जो अपनी स्वार्थ-सिद्धि केलिए हजारों-लाखों रुपया सहज लुटा देता है, वह अपने एक महत्त्वपूर्ण गवाह सदानन्दको केवल कुछही रुपयोंकी कंजूसीसे असन्तुष्ट रखेगा, यह समझमें आने जैसी बात नहीं है । एक दर्जेके लिए उपन्यास रोचक है इसमें अवश्य सन्देह नहीं है ।

पुस्तकका अनुवाद अच्छा हुआ है, किन्तु अनुवादकका नाम न देकर प्रकाशक क्या साबित करना चाहता है ?

एक बात और । राष्ट्रभाषा हिन्दीमें अन्य भाषाओं से अनुवाद हो यह बहुत अच्छी बात है, किन्तु व्यावसायिकताकी भाग-दौड़में हमें पुस्तकोंकी गुणवत्ताको नहीं भूल जाना चाहिये । इसके अतिरिक्त अनुवादका यह कार्यक्रम, कम-से-कम बँगलाके साथ, क्या एकतरफा नहीं होता जा रहा है ?—यह पता लगाना मनोरंजकही नहीं, लाभप्रदभी होगा कि गत पाँच वर्षोंमें बँगलाके मुकाबले हिन्दीकी कितनी पुस्तकें बँगलामें अनूदित होकर छपी हैं ? या कि क्या इन दिनों हिन्दीमें कोई ऐसी पुस्तक प्रकाशित ही नहीं हुई कि उसका बँगलामें अनुवाद किया जाना उचित प्रतीत हुआ हो ?

▭ डॉ. अनिरुद्ध

पाकिस्तानकी समकालीन उर्दू कविता

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

हमारे पड़ोसी देशोंके साहित्यमें क्या कुछ घटित हो रहा है, इसकी जानकारी हमें बहुत कम मिल पाती है । इसके अनेक कारण हैं । उनकी चर्चा यहां करना उचित नहीं होगा, किन्तु इतना कहना पड़ेगा कि जब यह जानकारी हमें मिलती है तो न केवल हमारी ज्ञान-वृद्धि होती है बल्कि हमारे अपने साहित्यके प्रति हमारी प्रतिक्रियापर गुणात्मक प्रभाव पड़ता है । पाकिस्तानके समकालीन उर्दू साहित्यसे सम्बन्धित दो पुस्तकें—'पाकिस्तानसे ताजा ग़ज़लें'१ तथा 'पाकिस्तान-८१'२ पाकिस्तानके समकालीन उर्दू साहित्यका विस्तृत परिचय हमें देती हों, ऐसा तो नहीं है, किन्तु उसकी एक झलक अवश्य देती हैं

१. पाकिस्तानसे ताजा ग़ज़लें; सम्पादक : नरेन्द्रनाथ; प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २, अन्सारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२ । पृष्ठ : १२६; डिमा. ८०; मूल्य : १८.०० रु. ।
२. पाकिस्तान-८१; शायरा : फ़हमीदा रियाज; प्रकाशक : उपर्युक्त । पृष्ठ : ६४; डिमा. ८१; मूल्य : १६.०० रु. ।

तथा उसकी दिशा विशेषकी ओर संकेत भी करती है।

पहली पुस्तक 'पाकिस्तानसे ताजा ग़ज़लें' में पाकिस्तानके ५१ कवियोंकी चुनी हुई ग़ज़लें संगृहीत हैं, किसी कविकी केवल एक ग़ज़ल है और किसी कविकी छह ग़ज़लेंतक। उर्दू कविताके विभिन्न काव्यरूपोंमें से सबसे अधिक लोकप्रिय काव्यरूप ग़ज़ल ही है। इसका कारण ग़ज़लका विषय और रूपविधान दोनों हैं। ग़ज़ल की यह लोकप्रियता उसकी शक्ति है, किन्तु लोकप्रियता को बनाये रखनेके लिए ग़ज़लगो अनेक सीमाओंको भी स्वीकार कर लेता है। समीक्ष्य पुस्तकमें संगृहीत ग़ज़लें जितना ग़ज़लकी शक्तिको उजागर करती हैं उतनाही उसकी सीमाओंको भी। इस पुस्तकमें संगृहीत ग़ज़लोंमें कवियोंने ग़ज़लकी प्रायः सभी शर्तोंको पूरा किया है। मक़्ता जैसे एकाध नियमका कभी-कभी उल्लंघन कि ा गया है। वस्तुको लेकरभी यही बात कही जा सकती है। अधिकांश ग़ज़लोंके शेर प्रेमके बारीक नुक़्तोंको शब्दबद्ध करनेकी कोशिश करते हैं, जिसमें उन्हें सफलता मिली है। सगृहीत गज़लोंके अनेक शेर ऐसे हैं जिन्हें पाठक याद रखना चाहेंगे। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

ख्वाबोंके उफुक़पर तेरा चेहरा हो हमेशा
और मैं इसी चेहरेसे नये ख्वाब सजाऊँ। (पृष्ठ २०)
यूं तो दिन-दहाड़े भी लोग लूट लेते हैं,
लेकिन उन निगाहोंकी औरही सियासत थी। (पृष्ठ २७)
तू निगाहोंकी ज़बाँ खूब समझता होगा
तेरी जानिब तो उठा करती हैं अकसर आंखें। (पृष्ठ३०)
हम न होते तो किसी औरके चर्चे होते
खिल्क़ते-शह्र तो कहनेको फँसाने माँगे। (पृष्ठ ३५)
है यूँही घूमते रहनेका मज़ाही कुछ और
ऐसी लज़्ज़त न पहुंचनेमें न रह जानेमें। (पृष्ठ ३७)

ऐसे तमाम शेर पाठकोंको इस संग्रहके मिलेंगे। पाठकों को ऐसे शेरोंका कथ्य जितना आकर्षित करता है, उससे अधिक उसे व्यक्त करनेकी भंगिमा आकर्षित करती है।

नरेन्द्रनाथने लिखा है कि 'इन गज़लोंके ज़्यादातर शायर मिडिल-क्लासी शहरी तबकेसे हैं।' (भूमिका पृष्ठ ६) शायरोंके मध्यवर्गीय आधारका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि उन्होंने तानाशाहीके कारण उत्पन्न घुटन, निराशा और अपनी विवशता एवं अकेलेपनको अधिक अभिव्यक्ति दी है, विरोध और विद्रोहकी भावनाओंको कम। इस सन्दर्भमें सम्पादकका यह कथन सत्य है कि 'इन ग़ज़लोंमें कुनमुनाता हुआ इन्क़लाबका बुलावा किसी म्यानसे खिंचती हुई तलवारकी सरसराहट जैसा तेज़, किसी कोड़ेकी चोट जैसा तुर्श या किसी नंगी भीतर खिंचती हुई बेंत जैसा तल्ख़ बुलावा नहीं है। इन ग़ज़लों की नवा एक गडरियेकी बांसुरी है जो भेड़ोंको इकट्ठा भले कर ले, पर चरागाहोंकी मिल्कियत बदल देनेवाला लावा नहीं खोलाती।' (भूमिका पृष्ठ ७) लेकिन इस बातके प्रमाण संगृहीत ग़ज़लोंके अनेक शेरोंमें विद्यमान हैं कि पाकिस्तानका आजका कवि तानाशाही व्यवस्थाके प्रति विरोधकी भावना रखता है। विरोधकी यह भावना कहीं स्पष्ट रूपसे और कहीं सांकेतिक रूपसे अभिव्यक्त हुई है। कुछ उदाहरण देखें—

नज़र आती हैं ज़िन्दाँमें जो जंग-आलूद जंजीरें
जिला देकर बना लो उनसे जोहरदार शमशीरें। (पृ. १७)
बग़ैरे-हौसला रंजे-असीरी कम नहीं होता
जो हो जुम्बिश रगो-पै में तो शर्माती हैं जंजीरें।
(पृष्ठ १७)
हर गुंचा बड़े चावसे खिलता है चमनमें
हर दौरका मंसूर सरे-दार चले है। (पृष्ठ २४)
हम आप क़यामतसे गुज़र क्यों नहीं जाते
जीनेकी शिकायत है तो मर क्यों नहीं जाते। (पृष्ठ ८८)
कतराते हैं, बल खाते हैं, घबराते हैं क्यों लोग
सर्दी है तो पानीमें उतर क्यों नहीं जाते। (पृष्ठ ८८)

विरोधका, विद्रोहका यह स्वर दबा हुआ है। पाकिस्तानमें नागरिकोंके मनमें व्याप्त भय और आतंककी अभिव्यक्ति कभी-कभी ही हुई है।

समीक्ष्य संग्रहकी भाषा सामान्यतः बोलचालके निकट की भाषा है किन्तु ऐसी ग़ज़लोंका इस संग्रहमें अभाव नहीं है जिनमें अरबी-फारसीके शब्द ठूँस-ठूँसकर भरे हुए हैं। हाँ, कुछ ग़ज़लें ऐसी अवश्य हैं जिनकी भाषा और प्रकृति हिन्दी कविताके अधिक निकट है। जैसे इरफ़ाना अजीज़की तीनों गजलें। इनके कुछ शेर प्रस्तुत हैं—

झूम रहे हैं काले बादल दरसकी प्यासी आँखोंमें
काजल बनकर फैल गया है दाग मेरी रुस्वाईका।
कितना है आनन्द तेरे इस धीमे-धीमे लहजेमें
तेरे धीरजसे निखरा है रंग मेरी रानाईका।
संदल जैसी रंगतपर कुरबान सुनहरी धूप करूँ
रोशन माथेपर मैं वारूँ सारा हुस्न खुदाईका।
(पृष्ठ ४५)

ग़ज़ल उर्दूका इतना परम्पराबद्ध रूप है कि उसमें नवीनता बहुत दबे-ढके ढंगसे आती है और कम आती है। उसमें प्रयुक्त होनेवाले अधिकांश प्रतीक और उपमान परम्परा-मुक्त हैं। ... इनसे हटकर नये

प्रतीकों और उपमानोंको उपयोगमें लाता है तो वह एक सुखद नवीनताकी सृष्टि करता है। समीक्ष्य संग्रहके कुछ शायरोंने कुछ नये उपमानोंका उपयोग किया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) चुपके-चुपके ही असर करता है
इश्क कैंसरकी तरह बढ़ता है। (पृष्ठ २७)
(२) घरसे भागे हुए बच्चेकी तरह
दिल सरे-शह्रे-वफ़ा, तनहा है। (पृष्ठ २८)
(३) न शिकस्ता हर्फ़ हैं अजनबी,
न फ़िगार-लफ़्ज़ पराये हैं
वही ग़म है मेरी मताए-फन,
मेरे तज्रिबेमें जो आये हैं। (पृष्ठ ३३)
(४) उलझे-उलझे धागे-धागेसे ख़्यालों की तरह
हो गया हूं इन दिनों तेरे सवालोंकी तरह। (पृ.५२)

संग्रहमें संगृहीत कवियोंकी ग़ज़लोंकी संख्या इतनी थोड़ी है कि उनके आधारपर उनकी कविताकी निजी विशिष्टताओंके सम्बन्धमें कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। संगृहीत कवियोंमें से कुछही नाम ऐसे हैं जिनसे हिन्दीका पाठक परिचित है; जैसे—अहमद नदीम क़ासमी, नून. मीम. राशिद, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ आदि। इसलिए अच्छा होता कि सम्पादकने संगृहीत कवियोंपर संक्षिप्त परिचयात्मक टिप्पणियाँभी जोड़ दी होतीं।

रचनाको समझनेमें रचनाकारका परिचय निश्चयही सहायक होता है। फ़हमीदा रियाजके विषयमें जब हम यह जान लेते हैं कि 'फ़हमीदा पाकिस्तानमें एक पत्रिका 'आवाज़' निकालयी थीं। 'आवाज' पर कई बार मुकदमे चले। 'आवाज' के तेवरसे परेशान पाकिस्तानकी फौजी हुकूमतने फ़हमीदापर धारा १२४-ए के तहत मुकदमा चलाया। बगावतके इस मुकदमेमें जो सजा हो सकती है, वह है मौतकी। फ़हमीदा जमानतपर रिहा थीं। कुछ महीने पहले वह अपने पति और बच्चोंके साथ भारत चली आयीं। इन दिनों वह यहीं हैं।' तब 'पाकिस्तान-८१' में अभिव्यक्त भावनाओंको हम अधिक गहराईसे अनुभव कर पाते हैं। 'पाकिस्तान-८१' में मुक्त छन्दमें लिखी एक लम्बी कविता है जिसमें छह अध्याय हैं और एक 'आखिरी गीत' है। अध्यायोंका विभाजन भावना विशेषकी केन्द्रीयताके आधारपर किया गया है। पहला अध्याय कवयित्रीके लम्बे संघर्ष, थकान और संकल्पको व्यक्त करता है। इसका सूत्र रूप यह है—

मैं मुंह अंधेरे निकली थी

और अब—
दिन ढलनेको आया
देखो, मैंने कहीं थमकर सांसभी नहीं ली है
नहीं बैठी हूं समझौतोंके सायबानोंमें
पैर लड़खड़ाता है और ठोकर लगती है
तो मैं अपना अहद दोहराती हूं—
बारूदका गीत लिखनेका अहद
लेकिन—
मेरे दोस्त—
मैं थकभी जाती हूं! (पृष्ठ २०)

दूसरे अध्यायमें उस आतंकका चित्रण है जो तानाशाही व्यवस्थावाले पाकिस्तानमें व्याप्त है। यह आतंक पुलिस और सेना दोनोंका है। साथ चाय पीनेवाला आदमी मुखबिर है, इस बातका सन्देह होता है। भयने मानसिक रोगका रूप ले लिया है, क्योंकि पुलिसका किसीभी समय आकर द्वार खटखटा देना और सामने आ खड़ा होना एक हकीकत है जिसका इलाज डाक्टरकी गोलियां नहीं हैं। पुलिसका पाकिस्तानमें कितना आतंक है, इसका अनुमान इन पंक्तियोंसे लगाइये—

सिर्फ एक अचानक आहट!
और दिमाग़ सायरनकी चीख बन गया
पुलिस!
और उसके बाद
दरवाजेपर हर दस्तक
गलीमें हर आहट
सीढ़ियोंपर कदमोंकी हर चाप
दर्दसे धड़कते सरमें एकही ख़याल लाती है
पुलिस—पुलिस—पुलिस!

सैनिकोंसे भरे ट्रक इतमीनानसे भोंपू बजाते सड़कपर से गुजरते हैं। नागरिकके मनमें इनके प्रति क्रूर प्रतिहिंसा की भावना जागती है किन्तु वह मनमें ही घुटकर रह जाती है, क्योंकि करोड़ोंकी संख्यामें होकर भी हर नागरिक अकेला है, निहत्था है, मजबूर है। सैनिक मनुष्य नहीं हैं—

नहीं, इस ट्रकमें कोई दिल नहीं,
नहीं, इसमें सिर्फ वर्दियांभी नहीं,
इसमें बन्दूकें हैं
और इनकी गोलियां दिलोंसे टकराती हैं
तो आवाज पैदा नहीं करतीं,

यह तो आवाजोंको हलाक करनेके लिए
ही चलायी जाती है (पृष्ठ १६)

इस आतंक-राज्यमें जनताके लिए बचकर निकलने का कोई रास्ता नहीं है। अंग्रेजोंसे उत्तराधिकारके रूप मे मिली न्याय-व्यवस्था, 'मलकाका पुराना कानून' ही अवामका शोषण करके उसे निरीह बना देता है। अब ऊपरसे 'शरयतका कानून' लाया गया है। इससे भी यदि किसी निरपराधके बच निकलनेकी सम्भावना हो तो 'समरी मिलिटरी कोर्ट' हैं। कोई कहांतक बचेगा! पूरी की पूरी जनताको अपराधी घोषित करके 'सिटी कोर्ट' में लाकर खड़ा कर दिया है। निरपराध लोगोंको अपराधी घोषित करके कुछ ऐसे सौदे किये जाते हैं जिनपर किसी का भी खून खौल उठना चाहिये, लेकिन नहीं खौलता। इस प्रकार तीसरे अध्यायमें लेखिकाने न्याय-व्यवस्थापर तीखा प्रहार किया है। उसके प्रहारमें जो बल है वह उसके निजी अनुभवसे आया है। उसके लेखनसे पाकिस्तान के शासक इतने आतंकित हो गये हैं कि उसके पीछे पुलिस लगा दी है और उसपर मुकदमा चला दिया है। वह अकेली पड़ गयी है। लेकिन वह झुकनेके लिए तैयार नहीं है, क्योंकि—

मैं इन्सान हूं—एक इन्सान !!
जानते हो, इन्सान क्या होता है ?
सुनो, और खौफसे पीले पड़ जाओ
इन्सान—शहीदका इम्कान है (पृष्ठ २८)

चौथे अध्यायमें उस अन्धकारका चित्रण है जिसे तानाशाही, भ्रष्टाचार, विदेशी शह, विदेशी आर्थिक सहायता इत्यादिने सृजा है। इस अन्धकारने पाकिस्तानके आम आदमीको भयंकर गरीबी दी है। तपेदिकका बीमार जैसे शृंगार करे वैसेही विदेशी साजो-सामानसे पाकिस्तान सज रहा है। भयंकर गरीबी नौजवानोंको जीविकार्जनके लिए विदेशोंमें ले जा रही है, सम्पन्नताकी मृगतृष्णा उन्हें भटका रही है। इस व्यवस्थामें कोई परिवर्तन न हो, इसके लिए शासकोंने सड़कोंपर टैंक घुमा दिये हैं और जनताके सीनेपर बन्दूकें तान दी हैं। लेखिकाको लगता है कि इस यथार्थको अभिव्यक्ति देनेके लिए उसका अस्तित्व किसी 'गुनाहका अज़ाब है।' किन्तु वह ऋण उसे शक्ति प्रदान करता है, जब वह देखती है कि सेना और पुलिसके द्वारा सामानकी तलाशी ली जाती है, सामान जब्त कर लिया जाता है, लेकिन दानिशमन्द आंखोंमें आनेवाले आंसुओं, आबरूमन्द पेशानियोंपर पड़नेवाली नफरतकी गहरी-गहरी शिकनों, बिफरते गुस्से को व्यक्त करनेवाले सूखे होंठोंको जब्त नहीं किया जा पाता।

पांचवें अध्यायमें लेखिकाने फौजी अदालतका एक दृश्य प्रस्तुत किया है जिसमें उसे किसीके खिलाफ गवाही देनेके लिए बुलाया गया है। वहीं पूर्वदीप्ति शैलीका उपयोग करके उसने अपने निर्माणकी प्रक्रियाका संकेत दिया है। इसी निर्माण-प्रक्रियाके फलस्वरूप उसने अपनी रचनाओंमें वही लिखा है जो सच है। पाकिस्तानी यथार्थ के अपने अन्दर भरे हुए विषको वह बच्चों (भावी पीढ़ी) को चूमकर अमृत बना लेना चाहती है। छठे अध्यायमें उसने स्वयंको एक युद्ध-गायिकाके रूपमें देखा है और अपने देशवासियोंसे अपील की है कि वे अपने देशके अधूरे इतिहासको पूरा करें। 'आखिरी गीत' उद्बोधनका गीत है, जिसमें देशवासियोंको निर्भीक होकर जाग उठनेको प्रेरित किया गया है, क्योंकि—

नया दिन उग रहा है
नया दिन !
यही आजकी ताजा खबर है (पृष्ठ ६१)

फ़हमीदा रियाज़की यह लम्बी कविता 'पाकिस्तान ८१' एक शक्तिशाली कविता है। इसकी शक्तिका स्रोत क्या और कहां है, इस सम्बन्धमें हम अपनी ओरसे कोई विवेचन-विश्लेषण न करके इसी कविताकी इन पंक्तियों को उद्धृत कर देना पर्याप्त समझते हैं—

मैंने शेर लिखा
अपने आंसुओंसे ।
बिलख-बिलखकर लिखा !
खूनकी बूंदोंके नुक़ते डाले
अपने गोश्तको चीर-फाड़कर रीशे निकाले
और इन्हें काफ़ियेमें बांधा
बेबसीके नाखूनोंसे
मैंने अपनी हथेलीपर शेर गोदा (पृष्ठ २४)

अन्तमें पाठक यह जान लें कि समीक्षित पुस्तकोंको उर्दूसे लिप्यन्तर करके देवनागरीमें छापा गया है और कठिन शब्दोंके अर्थ दे दिये गये हैं। अतः हिन्दीका पाठक बिना कठिनाईके उर्दूका मजा ले सकता है।

मेरे दिल मेरे मुसाफिर

शायर : फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़'; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १२२; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

पाकिस्तानके उर्दू कवियोंमें से हिन्दी पाठकोंके बीच लोकप्रिय एक कवि फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' हैं। उनकी लोकप्रियताका कारण यह नहीं है कि वे इश्किया कविता लिखते हैं, वरन् उनकी लोकप्रियताका कारण यह है कि वे राजनीतिक कविता लिखते हैं। देवनागरी और उर्दू के लिए सामान्यत: प्रयुक्त लिपि दोनोंमें एक साथ प्रकाशित उनका नया कविता-संग्रह 'मेरे दिल मेरे मुसाफिर' राजनीतिक कविताओं—राजनीतिक प्रतिरोधकी कविताओं का संग्रह है। इस संग्रहकी कविताएँ, ग़ज़लें एवं गीत १९७८ और १९८० के बीच लिखे गये हैं। दो कविताएं पंजाबी भाषामें भी हैं। इस संग्रहकी अधिकांश कविताएँ लन्दन, मास्को, अमरीका, समरकन्द, ताशकन्द बेरुत और पेरिसमें लिखी गयी हैं—सबसे अधिक बेरुतमें। विदेशोंमें फ़ैज़ स्वेच्छासे नहीं गये अपितु देश-निकाला भोगनेके लिए गये। फलत: इस संग्रहकी कविताओंकी एक प्रमुख वस्तु देश-निकालेकी व्यथा है—

मेरे दिल मेरे मुसाफिर/हुआ फिरसे सादिर,
कि वतन-बदर हों हम-तुम/दें गली-गली सदाएं,
करें रुख नगर-नगरका/कि सुराग कोई पाएँ,
किसी यार-ए-नामा-बर का/हर एक अजनबीसे पूछें
जो पता था अपने घरका/सर-ए-कू-ए-नाशनायाँ
हमें दिनसे रात करना/कभी इससे बात करना,
कभी उससे बात करना।

स्वाभाविक है कि परदेशमें दिन बितानेवाले व्यक्ति में नॉस्टेल्जियाका मनोभाव बार-बार उभरे। फ़ैज़में यह मनोभाव हमें मिलता है। वे बड़ी ललकके साथ याद करते हैं—

थे कितने अच्छे लोग कि जिनको अपने ग़मसे फ़ुरसत थी,
सब पूछें थे अहवाल जो कोई दर्दका मारा गुज़रे था।

जुल्म स्वयं कविने भी सहे हैं और उसने अपने देशवासियों को भी जुल्म सहते हुए देखा है। अत: फ़ैज़के इस संग्रहमें इस प्रकारकी कई कविताएँ हैं जिनमें जुल्म, मजलूम और ज़ालिमका प्रभावशाली चित्रण हुआ है। 'लाओ तो क़त्लनामा मिरा' शीर्षक कविताकी निम्नांकित पंक्तियाँ उदाहरणके रूपमें प्रस्तुत की जा सकती हैं—

सुनने को भीड़ है सर-ए-महशर लगी हुई
तोहमतको तुम्हारे शहर-ए-खमोशाँ हर एक सू
किस खोजमें है तेग़-ए-सितमगर लगी हुई
आखिरको आज अपने लहूपर हुई तमाम
बाजी मियान-ए-कातिल ओ-खंजर लगी हुई
लाओ तो क़त्लनामा मिरा, मैंभी देख लूँ
किस-किसकी मुहर है सर-ए-महज़र लगी हुई।

समीक्ष्य संग्रहके प्रारम्भमें प्रोफेसर मुहम्मद हसनके द्वारा फ़ैज़के विषयमें एक छोटी-सी टिप्पणी लिखी गयी है। इसमें उन्होंने एक स्थानपर लिखा है—'फ़ैज़ने एक योद्धाका जीवन बिताया। उनको जिन्दगी-भर सजा मिली तो इस बातकी कि मौत, बदसूरती, सामाजिक अन्यायका व्योपार करनेवाले उनकी आत्माके भीतरके सच्चे खरे कवि और भोले-भाले मानवको न खरीद सके, न उसे पराजित कर सके।' हसन साहबका यह कहना सच है। फ़ैज़ अपने मूल्यों, सिद्धांतों और निष्ठाओंके लिए जेलकी यातनाएँ सहीं, आशा-निराशा और आस्था-अनास्था द्वन्द्वसे गुजरे, लेकिन वे टूटे कभी नहीं। उन्हींके अपने शब्द हैं—

सबसे ओझल हुए हुक्म-ए-हाकिम पे हम
क़ैदखाने सहे ताजयाने सहे।
लोग सुनते रहे साज़े दिलकी सदा
अपने नग़मे सलाखोंसे छनते रहे।
खूँचकाँ दह्रका खूँचकाँ आइना
दुलभरी खल्क़का दुख भरा दिल हैं हम।
तब्अ-ए-शायर हैं जंगाह-ए-अद्ल-ओ-सितम
मुन्सिफ-ए-खैर-ओ-शर हक़्क़-ओ बातिल हैं हम।

इस न टूटनेका कारण फ़ैज़की देशभक्ति, मज़लूमोंके साथ हमदर्दी, शांतिके लिए सरोकार, अन्यायका प्रतिरोध और उनका वह स्वभाव है जो निम्नांकित पंक्तियोंमें व्यक्त हुआ है—

कुछ भी हो आइना-ए-दिलका मुसफ़्फ़ा रखिये
जो भी गुज़रे,मिसल-ए-खुसरो-पे-ए-दौरा चलिये
इम्तहाँ जबभी हो मंज़ूर जिगरदारोंका
महफिल-ए-यारमें हमराह-ए-रकीबाँ चलिये।

फ़ैजका यही तेवर राजनीतिक रूपसे दमित अनुभव करनेवाले सचेत पाठकोंको अपनी ओर आकर्षित करता है। यह तेवर उनकी दोनों पंजाबी कविताओंमें भी विद्यमान है। वैसे उनकी कुछ ग़ज़लोंमें ग़ज़लकी परम्परागत नाजुक खयाली एवं बात कहनेकी चमत्कारपूर्ण भंगिमा भी विद्यमान है। उदाहरणके लिए यह शेर देखा जा सकता है—

घर जो वीरां था सरे-शाम वह कैसे-कैसे
फ़ुरक़त-ए-यारने आबाद किया आख़िर-ए-शब ।

फ़ैज़का यह संग्रह भाषिक स्तरपर एक और बात सामने लाता है । फैज वामपंथी प्रतिबद्ध कवि हैं । उनका आग्रह जन-साधारण तक अपनी बात पहुंचानेका हो सकता है, लेकिन अक्सर अरबी-फारसी मूलके शब्दोंकी अधिकता और लम्बे-लम्बे समासोंकी बहुलता उनकी भाषाको दुरूह बना देती है । गीतोंमें भाषा बिलकुल दूसरे छोरपर जा खड़ी होती है । गीतोंमें उर्दू और हिन्दीका विभेद नगण्य रह जाता है । गीतोंमें भाषाके स्वरूपमें ही परिवर्तन नहीं आया है अपितु संवेदनाभी बदली हुई है । इस संग्रहके एक गीतकी नीचे उद्धृत पंक्तियां हमारे कथनकी सत्यता सिद्ध करेंगी—

प्रेमकथाका अन्त न कोई, कितनी बार उसे दुहरायें
प्रीतकी रीत अनोखी, साजन, कुछ नहीं मांगें सब कुछ पायें

यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि फ़ैज़के पाठकोंको यह संग्रह परितोष देगा । □

काव्य संकलन

उज्जवल नील रस

कवि : केशव कालीधर (असल नाम केशवचन्द्र वर्मा); प्रकाशक : किताब महल, १५ थार्न हिल रोड, इलाहाबाद । पृष्ठ : ७२; डिमा. ८०; मूल्य : १६.०० रु. ।

हिन्दी साहित्यके एक चर्चित हस्ताक्षरका नाम है केशवचन्द्र वर्मा । इसके उपन्यास (काठका उल्लू और कबूतर, मुहब्बत मनोविज्ञान और मूंछ दाढ़ी, आँसूकी मशीन), कहानी संग्रह (लोमड़ीका मांस, बृहन्नलाका वक्तव्य, मुर्ग छाप हीरो, प्यासा और बेपानीके लोग, अफलातूनोंका शहर), नाटक (रसका सिरका, चिड़ीके गुलाम, बाबूजी जिंदाबाद, बच्चोंकी कचहरी, श्रम देवता), कविता संग्रह (झरबेरिया, वीणापाणिके कंपाउंड में) और अन्य कृतियोंमें अधिकांशतः इसका व्यंग्यकारही मुखरित हुआ है । उनमें अन्तर्निहित व्यंग्य बड़ा पैना, धारदार और मारक है, जिसका अभीष्ट ड्राइडनकी तरह (The true end of satire is the amendment of Vices through correction) सुधारवादी है । व्यंग्यकी शल्यक्रिया द्वारा सामाजिक विकृतियों, विसंगतियों और विद्रूपताओंको दूर करना है । यद्यपि 'उज्जवल नील रस' में अनेक जीवन-संदर्भोंको उसकी अतल गहराईमें उभारा गया है, आत्माभिव्यक्तिका स्वर प्रकर्षपर है, तथापि कवि व्यंजना शक्ति द्वारा अपने भाव व्यापारसे व्यंग्यात्मक प्रहार करही देता है । समीक्ष्य कृति चौंतीस कविताओं का संकलन है, जिसकी कुछ कविताएं विभिन्न स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं (माध्यम, धर्मयुग, ज्ञानोदय, नई धारा, लहर, कादम्बिनी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, अकथ, उत्कर्ष आदि) में पहलेही प्रकाशित हो चुकी हैं । इन कविताओं से कविकी काव्ययात्राके मोड़ों और पड़ावोंका पता तो चलताही है, उनके मध्य अविच्छनता और सातत्यका प्रमाणभी मिलता है । कविका दावा है—'ये कविताएं कुतूहलसे आगे जानेवालोंकी तलाशमें निकली हैं' (बकौल लेखकीय वक्तव्य) जो प्रायः सत्य है । इन कविताओंसे ताजगी और कथ्यकी नूतनताका अहसास होता है । सच पूछिये तो इन कविताओंमें पूरा युग मानवीय प्रश्नोंके समुचित समाधानकी तलाशमें व्यक्त हुआ है ।

मानवमें अनंत जिजीविषा है, विपुल बल वैभव है, अदम्य शक्ति साहस है । वह विश्वके रंगमंचपर आमूल परिवर्तनका आकांक्षीही नहीं, उसके लिए सन्नद्ध है, परन्तु आज उसकी शक्ति चाहकरभी, संघर्षकर भी, कुछ सर्जनात्मक परिणाम नहीं ला पाती है । इसे उसकी

विवशता कहें या सीमारेखा, पर उसकी चरम परिणति निराशा, हताशा और नकारात्मक परिणाममें देखी जाती है। 'लौट नहीं पाओगे' कविता इसका सटीक उदाहण है। एक ओर कवि आदमीके संकल्पों और प्रतिबद्धताको रेखांकित करता है—'तुम जो/ अँधेरेसे/ लड़नेके लिए दर्पस्फीत—/तुम जो/ अपनेही निकषपर/ विश्वासोंको खींच/ निहित किरणोंकी छाप देखनेको आकुल—/ तुम जो/ अपनी भुजाओंसे/ उठती सलाखोंको/ नतशिर करने का/ भरे गर्व—/ तुम जो/ हर शुभको स्वयंवर करनेके लिए/ पिनाकोंकी सामर्थ्यको ललकारते···' (पृ. १)और दूसरी ओर उसकी आवाज नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज बनकर रह जाती है—'तुम लौटही नहीं पाओगे···/ क्योंकि···/ क्योंकि कांसके इस समुन्दरमें/ हर झोंकेके साथ/ तुम सरोदकी वह गत सुनने/ लग गये हो/ जहाँ हर आंदोलन/ एक नयी आकृति ग्रहण करता है/ और हर क्षण/ एक जलते हुए तारकी तरह/ स्निग्ध/ मौन/ और स्थिर रहकर भी/ अनुभूत होतेही/ तराशता चला जाता है···' (पृ. ५, वही कविता)

उसकी सामर्थ्यकी डोरी खत्म हो चुकी है। उससे वह अब अपने अभीष्टको बांध नहीं सकता। वह निरुपाय होकर रस्सीके अन्तिम छोरको देखता है। उसका अकेलापन और अपनी बद्धमूल धारणाओंको पकड़े रहनेकी विवशताही उसकी करुण नियतिका कारण है—'अब कोई चमत्कार नहीं होगा/ तुम्हारे हाथोंकी रस्सी बढ़ नहीं सकती/ क्योंकि इस जगत्पर तुम अकेले हो/ और अपनी पकड़को मुट्ठियोंसे/ छोड़ नहीं सकते' (जरूरत क्या है—पृ. ७)। नतीजतन वह 'छोटा-सा संकल्प/ एक धँसती हुई यात्रापर छोड़ देता है' (वही, पृ. ८)। पूरा समाज पूंजीवादके अजदहेमें फँसा छटपटाता है। उसकी आत्मा गौरइयाकी तरह है, जो झूठे प्रलोभक आश्वासनोंके जाल में बार-बार फँसती है और अबभी फड़फड़ाती है। सामाजिक विकृतियोंके नतीजे हैं ये—'बल खाये दर्पणके पार परिचित विकृति झाँकती है / वहेलिए/ फेंके छलावेमें/ गौरइया अबभी फड़फड़ाती है।···' (विकृति, पृ. १५)

आकाश गंगापर पैरोंकी छाप खोजनेकी विवशता और तज्जन्य भटकाव उसके अस्तित्वकी नास्तिका सबूत देते हैं—'मैं तुम्हारी बातोंपर/हां या ना नहीं कह पाता/ क्योंकि मैं होता ही नहीं ! मैं तुमसे मनाभी नहीं कर पाता/ कि इस तरानेको मत छेड़ो/ जो आकाश गंगापर/ पैरोंकी छाप खोजने/ मुझे बेवश भटकाता है' (बिना इन पंखोंके—पृ. १७) और उसकी याचनाकी आवृत्ति उसके मोहभंगकी त्रासदी है—'तुम जानते हो/ कि बिना मांगे/ तुम हमेशा अधूरे रहोगे' (वही, पृ. १८)।

कवि बिम्बोंका धनी है। प्रतीक और बिंब लगभग सब कविताओंमें प्रयुक्त हुए हैं जो ताजगी और अछूतेपनका अहसास कराते हैं। इसी कवितामें 'एक गुनगुना हुआ सैलाब' (पृ. १०) 'आकाश गंगापर पैरोंकी छाप' (वही, पृ. ५०) और 'अभिशप्त लोकका बेगानापन (पृ. १८) ध्यातव्य हैं। 'पानीकी तलाश' कविता सुबिधाजीवियोंकी करुण कथा है, जो अपनेको सही समझने और सभी सुविधाओंको प्राप्त करनेका अहं पालता है, पर उसका नतीजा कितना नकारात्मक हो जाता है—'जो सहूलियतकी सुरंगोंमें/ बार-बार नया पत्थर चुन देता है' (पृ. २९) और 'जो झूठे पड़ते रास्तोंके/ सड़े पत्तोंपर/ अपनी दाब छोड़ता / जपा हुआ शब्द सत्य/ अपनी चौकड़ियोंको सौंप देता है।' (वही) यहां 'सहूलितकी सुरंग' ऐसे बिंबका प्रयोग जहां कविताको ताजगी देता है, वहीं उसे सर्वजनीनभी बनाता है। हर कवितामें कविका अपना नया तेवर है कहनेका नया अन्दाज है।

कवि कहीं-कहीं कल्पनाकी उड़ानमें दूसरे लोक और सर्वशक्तिमान्की बातभी करने लगता है, पर वह मानव की सीमा जानता है उसके दुःख दर्दभी। वह इलियटके 'स्काइलार्क' की तरह है, जो सीमाहीन गगनमें स्वच्छंद विचरण करते हुएभी कठोरताकी कुरूप धरतीका हमेशा ख्याल रखता है, क्योंकि उसने उड़ना इसी धरतीसे सीखा है। मानवकी लोभवृत्ति और उसकी अकिंचनताका कारण है ईश्वर (ठाकुर) की संपन्नतामें विश्वास करना—'दया का पात्रही तो है/ वह/ जो दूसरेकी सम्पदापर घात लगाकर/ अपने भिखमंगेपनको/ सदाके लिए मिटाना चाहता है' (लीलाका आस्वाद, पृ. ६०)। इसीलिए वह मंदिर जाना नहीं चाहता कि वहां वह याचक सुदामाका पर्यायभर रह जाता है, अपनी इयत्ताका बोध मिट जाता है—'नहीं आऊँगा—/ मैं अब नहीं आऊंगा/ इस मंदिर के दरवाजे/ जो मुझे सखासे सुदामाकी सीढ़ीपर/ले जाकर खड़ा करता है' (वही, पृ. ६०)। सुदामाकी सौगात (कुछ चावल) को कृष्ण बड़ी आत्मीयता और गर्मजोशी के साथ स्वीकारते हैं, पर··· रिश्तेनातोंकी सारी स्वीकृतियोंके बावजूद उसपर करुणाका मरहम लगाते हैं—'सौगातें—केवल स्वादकी वह कथा/ कहती है/ जो अरसेसे[illegible] बावजूद/ सारे नातोंपर/ करुणाका मरहम

लगाती रहीं' (पृ. ६०-६१)।

आदमीकी जिंदगीकी यही तो विडम्बना है कि वह सदा किनारेकी ओर भागता है, जिससे उसे सुरक्षाकी गारंटी मिलती है।···'तुमको सदा/ किनाराही पसन्द आया है/ जहांसे समय आनेपर/ अपनेको सुरक्षित निकल सको' (वही, पृ. ६१)। जिसने डूबना नहीं जाना, जो किसी विराट् चेतनाके सागरमें निमज्जित नहीं हुआ, जो अपनीही क्षमतापर इठलाता रहा, उसे उसका विश्वासही कैसे हो सकता है भला! परन्तु कवि चेतनाके पार कभी-कभी उसके नैकट्यका अनुभव करता है, तभी जब वह डूब जानेकी स्थितिमें होता है—'इस ऊभचूभमें/ चेतना खोकर जब जब/ दुहराता रहा हूं/ कभी-कभी वह मेरे बहुत निकट होता है : उसे तुम दोस्त कहो या देवता/ वह केवल डूब जानेकी स्थिति है! (वही, पृ. ६२) कवि उबरना नहीं चाहता, वह केवल लीलाका स्वाद चुपके-चुपके लेना चाहता है। लीलाका अर्थ होता है खेल—बस खेलही—'जयाजयौ। लामाला मैं'। न जीतसे उसकी महिमा बढ़ती है और न हारसे तेजही घटता है। वह तो राग-विरागके पार चला जाता है, वीतराग हो जाता है। ऐसा वीतरागी वपुही लीला कर सकता है। उसकी इस लीलाको साक्षी भावसे देखनेकी दृष्टि जिसने विकसित कर ली, 'उसे स्नेह सम्मानकी ये गठरियां लिये हुए/ जरूर अपने घर लौट जाता' (वही, पृ. ६२) का मलाल नहीं रहता। ऐसी कविता अन्तश्चेतनाके धरातलसे ही फूट सकती है और बिना उसे जिये शब्दोंमें बाँधाभी नहीं जा सकता। इस संदर्भमें 'मुझमें पिरोये रहकर भी' (पृ. ६३-६५), 'प्रीति रस' (६६-६९), 'उज्ज्वल नील रस' (पृ. ७०-७१) और 'स्वीकृति' (पृ. ७२) ध्यातव्य हैं। ये कविताएँ मनको विरमाती हैं और हृदयकी वृत्तियोंके उदात्तीकरणकी प्रयासी हैं।

मनुष्य अपूर्णताका पर्याय है ही। वह पूर्णताको प्राप्त कर गया, तो परमात्मा हो गया। मनुष्यकी विवशता है कि वह गलतीपर गलती किये चलता है। कविकी स्वीकारोक्तिसे उसके अनुभूत सत्यकी व्यंजना व्यक्त होती है। वह अपनी स्थिति आइनेकी तरह साफ कर देता है —'मेरे खेलकी निरर्थकता समझकर भी/ तुमने बढ़ावा दिया / लेकिन मैंनें कब कहा : / मैं परम सार्थक/ लीलाधर/ नामधारी/ शब्दोंका श्रेष्ठ कारीगर?' (प्रीति रस, पृ. ६७) कवि अब अपनी बचकानी गलतियोंको उसकी करुणासे धोकर जूहीके फूलकी तरह उजला और गंधमय करना नहीं चाहता, वरन् वह उसके महाज्वारमें वह जानेको उत्कट दीखता है—'नहीं—/ इस बार मुझे वह करुणाभी/ मत दो! / यह जो तुमने मुझे फेंका है/ उमड़ते हुए ज्वारमें/ जाने दो/ मुझे उसमें वह जाने दो! / ज्वार यह तुम्हारा है/ इसेभी आशीषकी तरह सिर माथे चढ़ाता हूं। (वही, पृ. ६९)।

कविका दावा (बकौल फ्लैप एक 'भाँति-भाँतिके जूठन चाटकर यदि आपका रसास्वादन इतना कुंठित हो चुका है कि अब किसी कविताका स्वाद लेनेमें अक्षम महसूस होता है तो निश्चयही 'उज्ज्वल नील रस' कविताएँ किसी सीमातक ताजगी दे सकेंगी।') बहुत हदतक सही है। जहांतक बिंबों और प्रतीकोंके प्रयोगका सवाल है—इसकी प्रत्येक कवितामें ये बखूबी देखा जा सकते हैं, जो इनकी भावयित्री प्रतिभाके निदर्शन हैं—'कांस · सिर्फ काँस/ लचीली बर्छियोंकी यह अयाचित फसल' (पृ. २), साबुनके रंगीन/ बुलबुलोंकी भांति/ तुम्हें अपने व्यक्तित्व के नये अर्थ तैरते दीखने लगते हैं' (पृ. ५), 'दवाके पोस्टरोंकी तरह सार्वजनिक दीवारोंपर छोड़ जाती है (पृ. १०), शायद एक और वैचित्र्य/निरर्थकताको अंगीकृत कर ले/ प्रकाशकी सुरंगोंसे/ स्तब्ध रथोंको/ द्युलोक का रास्ता मिल जाये' (पृ. १४)। 'बल खाये दर्पण' (पृ. १५), 'चीखती हुई रोशनी' (पृ. २७), 'फुफकारें अन्धेरे को बार-बार डँसकर/ स्याह संकलपपर सिमेंट लगाती हैं···(पृ. २८) आदि। सच पूछिये तो बिंबों, प्रतीकों और नवीन उपमाओंके जंगलके कारण कविके प्रकृत भावमें अवगाहन करना अनेक स्थलोंपर द्रविड़ प्राणायाम हो जाता है। भाषापर कविका अधिकार है—साफ-सुथरी—लगता है शब्दोंको मणिके समान पिरोया गया है। लगभग सभी कविताओंमें व्यंग्यकी प्रच्छन्न धारा अन्तः सलिला फल्गूके समान विद्यमान है। आवरण चित्र बड़ा आकर्षक और कृतिमें प्रवेश करनेमें सहयोगी है।

□ **डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय**

निर्वासनकी आंधी

कवयित्री : मालती शर्मा; सौरभ प्रकाशन, २५।२ 'पाखर' बम्बई-पुणे मार्ग, पुणे-४११००७। पृष्ठ : १०८; मूल्य : (पेपर बैक) : १६.००, (सजिल्द) : २१.०० रु.।

'निर्वासनकी आंधी' श्रीमती मालती शर्माकी १९६७

से १९८० तक पैंतालिस प्रतिनिधिक कविताओंका पहला संग्रह है। यह संग्रह उनके कवि व्यक्तित्व और काव्य विकासका प्रत्ययकारी दस्तावेज प्रस्तुत करता है और अपने प्रातिभ सामर्थ्य, वैचारिक संतुलन, मानव-प्रेम, अनाग्रही वस्तुनिष्ठ दृष्टि, कथन-भंगिमाकी विशिष्ट शैली के कारण कवयित्रीके व्यक्तित्वकी अलग पहचान कराता है।

मध्यवर्गीय एवं निम्न मध्यवर्गीय आदमीके जीवनमें व्याप्त दुःख-दर्द, जय-पराजय, विकृति-विद्रूप, घुटन-संत्रास कुण्ठा और विवशतासे प्राप्त यथार्थही उनकी कविताका प्राणवान उपजीव्य है। समकालिक परिवेश-गत कुरूपता और कष्टकारिताके साक्ष्यपर अधिसंख्य लोगोंके जीवनबोधका, रचनात्मक स्तरपर निर्वचन करने वाली ये कविताएं अनुभवका परिणाम न होकर अनुभव की विविध प्रतीतियाँ हैं। मानवीय मूल्योंकी विघटन-शील ओर निराशाजनक वर्तमान परिणतियों और उनके पुनर्लाभ और पुनर्स्थापनके बीच उत्पन्न होनेवाली आकुल छटपटाहटही इनकी मूल उद्भाविका शक्ति है। इसी दायित्व चेतनाके कारण इन कविताओंमें एक सहज ध्येय धर्मिताकी सृष्टि होती है।

जिस कविकी प्रतिभा मानवीय परिवेशके समस्त क्रियाकलापोंके प्रति उदासीन रहकर व्यावहारिक जीवन-चक्रके साक्ष्यपर मानवीय संभावनाओंकी दिशा इंगित नहीं करती वह कविकी सीमित संवेदना और साहसहीनता को प्रभावित करती है। ऐसी स्थितिमें कवि या तो किसी सीमित दायरेमें संकुचित होकर शुतुर्मुर्ग दर्शनका अनु-सरण करता है या फिर किसी विदूषककी भांति हास्या-स्पद शौर्यका प्रदर्शन करता है। श्रीमती शर्मा मुखौटों और मुद्राओंकी आड़ कभी नहीं लेतीं। उनकी कविताएँ सदैव समकालीन यथार्थ जीवनकी विविध सरणियोंका सीधा साक्षात्कार करती हैं और विविध दबावोंके बीच निर्मित होनेवाली मानसिकताको वाणी देनेके लिए प्रति-श्रुत हैं। मानवीय मूल्योंकी आत्यंतिक उपेक्षा और भोग-वादी भौतिकताके अतिवादी आग्रहके कारण आजका मनुष्य संवेदन शून्य और हिंसक होता जा रहा है। भेद-बुद्धि, संकुचित वृत्ति एवं शोषक और शोषितके बीच निरन्तर गहराती जा रही खाई जीवनको भयावह बनाती जा रही है। इन नियतिगामी प्रवृत्तियोंके आघातसे कव-यित्री बार-बार उद्वेलित और उन्मथित होती है वह देखती है कि 'जंगलकी सारी हरियाली [illegible] चटकनसे सुलगी/ आपसी आग/' गृहयुद्धसे लेकर विश्व-युद्धतककी भूमिकामें यही विनाशकारी सर्वभक्षी आग सक्रिय है मूल्य मर्यादाओंका अतिक्रमणकर क्षुद्र भौतिक स्वार्थोंकी पूर्ति आजभी सबसे घातक प्रवृत्ति है। यह स्थिति इतनी भयावह है कि स्वार्थों संकीर्णताओंमें जकड़े संवेदनशून्य मानव द्वारा उगले 'जहर,कलुष और कालिख' का विस्तार आकाशके विस्तारसे भी अधिक हो गया है। (आकाश, पृ.५२)। यह सांस्कृतिक संकट मस्तिष्कमें उगी किसिम किसिमकी झाड़ियोंका परिणाम है/एक बार फिर से अपनी खोपड़ीकी जमीन देखो/ वहाँ न जाने कितने किसिमकी/कंटीली झाड़ियां उग आयी हैं/जिनमें लहूलुहान है/ विश्वका हरापन/आहत है पुष्पगंध/ (तुम्हारा अँधेरा मेरा उजाला, पृ. १०) इसके मूलमें है मानवका पथभ्रष्ट विवेक : हमारी आत्मचेतना/ और प्रज्ञाका विकास/ कंस के हाथों भादोंकी गाज बन/ आसुरी आसमानमें खो गया बाहरका अँधेरा/ मनोंमें/ कुछ और भीतर कूदकर बैठ गया (वह नहीं जन्मा, पृ. २८)।

पूँजीवादी व्यवस्थाके शोषण चक्रमें पिसती, अनन्त प्रतीक्षाका पर्याय बनी 'झुणका भाखरकी शक्लमें बदली नुची चिथड़ी आकृति' में बदली शोषित मनुष्यताकी वेदना, चीख, तड़पन उन्हें शोषित वर्गकी स्थितिके लिए जिम्मेदार इस स्थितिके भीतर पैठने को विवश करती है। प्रतिक्रियावादी शक्तियोंकी मिली-भगत और गली-सड़ी परिभाषाओंके जरिये स्थितिकी पहचान, नजरियेके दोगलेपनका उन्होंने 'वह नहीं जन्मा', 'परिभाषाओंके जरिये', 'उपलब्धि' कविताओंमें बड़ी तलखीसे पर्दाफाश किया किया है : आजभी वृत्रने नहीं/ इन्द्रोंने/ जनका जीवन-जल चुराया है/ काले धनवाले/ जमाधरोंसे मिलकर/ वर्षा रुकवा दी है/चुनाव-यज्ञमें वोटों की आहुति न पाकर (वह नहीं जन्मा, पृ. २९)।

परिवेशगत विकृतियों और विद्रूपताओंके प्रति व्यंग्यात्मक प्रहार प्रवहमान काव्य-धाराकी प्रमुख प्रवृत्ति है। श्रीमती शर्माकी कविताओंमें व्यंग्यात्मक अभिव्य-क्तियोंकी एक विशिष्ट शैलीका दर्शन होता है। अति-परिचित मिथकों, आख्यानों, मुहावरों, लोकोक्तियों, लोक कथाओं आदिके सरल सुगम प्रस्थानसे आगे बढ़ते हुए बड़ी नाटकीयतासे दुखती रगपर उंगली रख देती हैं और तब ऊपरसे अत्यन्त सरल और मासूम लगनेवाली व्यंजना एक तिलमिलाहटमें बदल जाती है। इन कविताओंमें विनोदकी गुदगुदी नहीं, विष बुझी वेदनाकी बेचैनी और [illegible] एहसास मिलता है। दायित्वहीन

उदासीन व्यवस्था, शाब्दिक क्रान्तिसे युग-प्रवर्तनका दंभ भरनेवाले, विद्रोहके आर्केस्ट्रामें मुखोटे बदल स्वर मिलाने वाले रचनाकारोंपर 'खूँटा दौल देय न', 'सवेरेकी ऋचाएं' और 'बमरंग' में किये गये वेधक प्रहार लक्षणीय हैं। पर इन व्यंग्योंमें कलात्मक संयम और नैतिक विवेक कहीं खोया नहीं है।

पुरुष सत्तात्मक समाजमें जीवनके विविध स्तरोंपर शोषित और पीड़ित मध्यवर्गीय नारीकी समस्याओंसे आत्मीय सरोकार कवयित्रीकी कविताओंका एक और प्रमुख स्वर है। किन्तु इन कविताओंमें शोषित नारी वर्ग की मार्मिक व्यथा चित्रणके साथ कारणीभूत षडयन्त्रकारी व्यूहको विच्छिन्न कर देनेकी रोषपूर्ण छटपटाहट और 'आदिम अलिखित संविधान' की धाराओं 'हमदमी रंग' के बने बनाये साँचों और 'उपनाम' से बँधे व्यक्तित्वसे मुक्तिकी तड़पभी है। 'पंजीयन फार्म', 'सेवासदन' से 'मुर्दाघर' तक, 'छिनार', 'ओरत', 'वसंतके रास्तोंसे अनाजके दाने बीनते हुए' कविताएँ यदि पारम्परिक रूढ़िगत शोषण सरणियों और भोगी पुरुषके अनुत्तरदायी आचरणकी कुटिलताका पर्दाफाश करती हैं जिसमें : 'शौकीन लोग हमेशासे/ दोनोंही पालते आये हैं/ कुत्ता और औरत/ औरत और कुत्ते/ राजनीतिज्ञ हों या मजदूर/ पर उम्रकी ढलानपर/ दोनोंको सड़कपर छोड़ देते हैं' तो 'उपनामसे उपनामतक' तथा 'हमदमी रंग' जैसी कविताएँ उन बिन्दुओंको भी आलोकित करती हैं जिनसे नारी वर्गको जागृति और आत्म-सजगताकी भी प्रेरणा मिलती है। रूढ़ियों और संकीर्णताओंकी भर्त्सनाको काव्यात्मक गरिमाके साथ अभिव्यंजित कर पाना इन कविताओंकी अपनी शक्ति है।

लोक-जीवन और लोक-सरस्वतीके साथ कवयित्रीका गहरा लगाव इस संग्रहकी कविताओंमें आजके भौतिक आग्रहोंपर आधारित, विकासधर्मी प्रवृत्तियोंके सूर्यको 'कोलतारी आकाश' में तिरोहित करनेवाली 'अर्थतंत्री मन्त्रों' से मानव-मनकी कोमल और सर्जनात्मक कृतियों को उच्चाटनकी पीड़ा देनेवाली, विमता-सी ईर्ष्यालु, वर्तमान संस्कृतिके परिप्रेक्ष्यमें सांस्कृतिक विघटनकी गहरी त्रासदीके रूपमें अभिव्यंजित हुआ है। एक ओर तो 'फूलन दे' की गँवार मांकी आखिरी निशानी 'बगीचा, ताल, पीपलकी खोंतर हैं 'दूसरी ओर सूरजरहित कोलतारी आकाश, जगह-जगहसे बटोर गमलोंमें भरी मिट्टी, मुँह ढकी विधवा ऋतुएँ और 'चम्पा केतकीके फूल' सूरजमुखीके अँखुए हैं, सिगरेटके ठंडे कश और बनावटी कहकहे हैं (निर्वासनकी आँधीमें उखड़ी जड़ें पृ. ७३-७८)। इनमें आजका संवेदनशील मनुष्य अपनेको उखड़ा, विपन्न और निर्वासित अनुभव कर रहा है। इस आंधीमें उसकी जड़ेंही उखड़ी जा रही हैं। लोक-जीवन और लोक-संस्कृतिके ये अनेक विम्ब, प्रतीक, संदर्भ 'फूलन दे अनार दे' जैसे आख्यान, रोपनीके गीत, आम, नीम बबूल, जामुन, के पेड़, झांझ घड़ियाल, ढोलक, पखावज, चौपालकी चिलमकी आग, हुक्केकी गड़गड़ाहट, भाईचारेकी आवाज आदि ग्रामीण उपकरणोंके समायोजनसे विलक्षण दीप्तिही उत्पन्न नहीं होती इनसे कविताओंमें सहज आत्मीयताके साथ प्रतीकात्मक स्तरपर गहरे अर्थकी प्रतीतिभी होती है।

यद्यपि सांस्कतिक विघटनकी त्रासदी और पीड़ा कवयित्रीको सालती है किन्तु वे परिवेशगत विसंगतियोंके आघातसे विद्ध हो निश्चेष्ट नहीं होतीं, वल्कि उनसे टकरानेके लिए और अधिक उत्तेजित होती हैं। वार-वार आहत होनेपर भी एक शाश्वती निष्ठा उनके भीतर वर्तमान रहती है जिसके कारण वे जीवनकी सृजनात्मक संभावनाओंके प्रति आत्यंतिक रूपसे निराश नहीं होती : 'यह पीड़ा यह दर्द/ यह छटपटाहट यह बेचैनी/ ऐसीही नहीं रहेगी/ मानवको बहुत बड़ा ढ़ाढ़स है कि कभी-न-कभी/ यह कुँहासा छँटेगा/ सूरज उगेगा। (सूरज उगेगा पृ. १०७) मनुष्यकी बुनियादी रचनात्मकता और सृजनशीलतामें दृढ़ आस्थाके कारण श्रीमती शर्माकी कविताओं में मरण, वासना और पीड़ारसके विकृत बोधका सर्वथा अभाव है।

अपनी स्वचेतना और आत्मविश्वासके कारणही श्रीमती शर्मा प्रवहमान काव्यधाराके किसीभी आर्केस्ट्रामें सम्मिलित न होकर 'घुट्टीमें पायी' अपनी वफादारीका निरन्तर निर्वाह करते हुए अपने सहजातों और सहधर्माओं से भिन्न बनी रहती हैं। वे अपने भीतरकी आगको किसी संकुचित उद्देश्यके लिए विसर्जित नहीं करना चाहती क्योंकि वे उसे युगोंकी ऊष्मामें बदलनेके लिए संकल्पशील हैं। अपने वरणके प्रति उनके मनमें न तो कोई शंका है न द्वन्द्व, वे स्पष्टतः घोषित करती हैं : 'मेरा एकतारा अलग बजेगा/ भलेही उसके स्वर/ बूढ़ी घाटियोंमें खो जायें/ कोई न सुने/ कोई न समझें/'

श्रीमती शर्माकी कविताओंमें प्रयुक्त बोलचालकी भाषा पाठकसे सीधा संवाद करानेमें सहायक होती है। यह बोलचाल शब्दावलीभी संवेदनाके संस्पर्श और कौशलपूर्ण कलात्मक

[योजनसे विशिष्ट और अर्थगर्भ हो गयी है। उनकी सरल अभिव्यक्तियोंमें अर्थ सम्पृक्ति और प्रभावोत्पादकता उनके गहन भाव-बोध और कलात्मक क्षमताके संतुलनका प्रमाण है। भाषाकी तरहही उनकी शैलीमें भी एक प्रकार की ऋजुता सदैव बनी रहती है, किन्तु कविताओंको प्रभावी बनानेके लिए उन्होंने अनेक शैलीगत प्रयोग किये हैं। सहसा प्रवेश, प्रतिपक्षकी प्रतिष्ठा करके वार्तालाप, मंचीय व्यवस्था संदर्भ विपर्यय आदिका सुन्दर प्रयोग हुआ है। शैलीगत विविध प्रयोगोंके कारण उनकी कविताओंमें आकर्षक ताजगी उत्पन्न हुई है।

श्रीमती शर्माकी कविताओंकी बहुविध उपलब्धियोंके रेखांकनके बाद उनकी काव्याभिव्यक्तिकी एक सीमाका भी संकेत करना चाहूंगा। उनकी कविताओंमें समसामयिक विकृतियों और विषमताओंसे उत्पन्पन्न पीड़ाको झेलते समय अनुभूतियोंकी द्रवणताकी अपेक्षा बौद्धिक दृष्टिकी प्रतिकृति अधिक होती है। बौद्धिक प्रतिक्रियाओं की वक्रोक्तिपूर्ण अभिव्यक्तिमें अनुभूत वेदनाको ऐन्द्रीय आकार न मिल पानेके कारण अनेक स्थलोंपर अवांछित गद्यात्मकता आ जाती है। बाह्य जीवनके व्यापारोंका अन्तर्मुख होकर केवल बुद्धितक पहुँचकर रुक जाना और वहींसे परावर्तित हो जाना ही पर्याप्त नहीं होता। कवि के लिए सक्रिय भावात्मक लगावकी तरलतामें निहित गहन तापसे गुजरनाभी आवश्यक है। किन्तु हमें विश्वास है कि निरंतरकी रगड़ और सक्रिय जीवनकी समिधाओं आहुतियां पाकर श्रीमती शर्माका काव्य औरभी दीप्त और बहुआयामी बनेगा। ये कविताएं संभावनाओंका स्वयं प्रमाण है, उनका सम्पूर्ण रचना संसार, समाधानकी खोज में संकल्पशील काव्य-यात्राका पर्याय है।

— डॉ. रामजी तिवारी

सीढ़ियां चढ़ती हुई मैं

कवयित्री; प्रभा खेतान; प्रकाशक, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

काव्य-प्रतिभाको अधिकांश समालोचक दैवी-प्रतिभा मानते हैं, और उसके लिए साधना, शिक्षा, संस्कार, परिश्रम, अनुभव आदिकी खादका भी महत्त्व प्रतिपादित किया जाता है। किन्तु आजके अति व्यस्त जीवनमें यदि ये सुविधाएं न हों तो 'सड़कपर चलते हुए, बसोंमें दौड़ते हुए, भीड़के साथ रहते हुए क्या कविताएं न लिखी जायें? कविता लिखनेके हकदार कौन हैं?...कविता संवेदनाके एक खास विन्दुपर उपजती है, ठीक बात है,लेकिन धीरे-धीरे पत्थर होता हुआ व्यक्ति क्या करे? कैसे अपने जीवनमें कविताको जीवित रखे?'—सीढ़ियां चढ़ती हुई कवयित्री प्रभा खेतानके इस संकलनकी ६१ कविताएं इन प्रश्नोंका उत्तर है, और कई स्थानोंपर सटीक उत्तर है! उसकी यह पुस्तक इसीलिए 'समर्पित है उस अनाम बन्धुको/ जो समय-समयपर जिन्दगीकी घुमावदार सड़कों पर/ मिलता रहा है/ और मिलता रहेगा/ हर नयी दिशा का संकेत लिये हुए।—' कवयित्रीकी कैफियत है, 'मुझे ठीकसे लिखनेका कभी वक्त नहीं मिलेगा...योंही दौड़ते-भागते बेहद व्यस्त जिन्दगीमें, सारे दांव-पेंचोंको सुलझाते हुए...ऑफिसकी मेजपर कविताएं लिखी जायेंगी।' अतः इन कविताओंमें गहराई न भी हो—'कई बार महज एक ध्वनि, कभी पूरी कविता बन बहती हुई',—किन्तु इनकी विविधतासे इनकार नहीं किया जा सकता। अंकुर, नॉर्मल मन, तुम आये, हमारे बीच, क्यों नहीं, सीढ़ियां चढ़ती हुई मैं, अच्छा नहीं लगता, बोलो माँ, ओ मेरे आत्मन् मुक्ति कहाँ है, अमीनुल्ला तुम,अल्लाह, सम्भावना अलसाई दुपहर, आदि कविताओंके कुछ शीर्षक हैं, जिनसे कविताके बहुरंगी रचना-संचारका पर्याप्त आभास मिल जाता है।

सीढ़ियाँ चढ़ती हुई कवायित्री देखती है' मैं हूँ/ कहीं किसीको / सीढ़ियाँ दिखाती हुई / कहीं किसीकी / सीढ़ी बनती हुई / मैं हूँ / और मेरे साथ /कई लोग हैं / चढ़ते उतरते / थकानमें /...अपने-अपने घरोंको याद करते हुए' (पृ. ४३) जीवनकी इस शाश्वत-गतिके बाद 'ओ मेरे आत्मन्' से भी वह कहने का समय निकाल लेती है, 'तुम्हें जो मैं प्यार करती हूँ /उसीमें सारा संसार है /मुक्ति का तुम से / साक्षात्कार करनेमें है / नमकके पुतलेका / समुद्र की लहरोंमें खोजाना / समाधि / एक समाप्ति / अच्छा लगता है मुझे / उस निरानन्द / निर्विकल्प / अस्तित्वमें यह विभाजनही रहे / मैं रहूँ / तुम रहो' (पृ. ५६) यहीं समाधान न पाकर ही 'मुक्ति कहाँ है?' में वह कहती है, 'तुम हो यदि कहींभी/ किसीभी नामसे/ प्रवृत्ति भगवान/ जीवन-ज्योति/ मुझे फिर तुमसे जुड़ना है/ मैं केवल 'मैं' कुछभी नहीं/ स्वागत है उस चीलका/ जो गौरैयाको एक/ झपटटेमें कमसे कम/ ऊँचाइयाँ तो दिखा लायेगी/ क्या काम आयेंगे/ उसके अपने पंख/और पेड़का

साया/ मुक्ति यदि पहाड़ोंपर है /उड़ती चील/ को बुलाना तो पड़ेगा' (पृ. ६१) सीढ़ियाँ चढ़ते हुए अवश्य गहराई की ओर नहीं देखा जा सकता। वरना मुक्ति शायद पहाड़ों पर नहीं, अपनेही पंखोंके भीतर दिखायी दे जाती, और तब चीलका स्वागत करनेकी नौबत भी न रहती, फिर चाहे वह मुक्ति ही क्यों न हो। अस्तित्वका अन्त मृत्यु है, मुक्ति नहीं! 'अमीनुल्ला तुम' में स्वयं वह देख पाती है, 'अमीनुल्ला तुम जन्मे/ बड़े हुए/ और खत्म हो गये/ तुम चले गये/ फिरभी तुम जीते रहे/ तुम जीते रहोगे/ पिता बन/ भाई बन/ एक पूरा गाँव बन/ क्योंकि/ दुनियाँकी मिट्टी और हवाओंने/ समुद्रकी लहरोंने/ तुम्हें जीनेकी इजाजत दी है' तथा 'दुनियाँकी तमाम चीजोंमें/ तुम रंग-रूप और गंध बन/ घुले हुए हो/ (पृ. ६४-६५) यथार्थ में सबमें व्याप्त होकर ही तो जीवन मुक्त हो सकता है।

कुछ कविताओंमें अस्पष्टता है, अपूर्णताभी है— 'प्रश्न' कवितामें कवयित्री पूछती है, 'सबसे बात करनेके लिए/ मुझे सर्वमय/ होना पड़ेगा/ पर क्या मुझसे बात करनेके लिए/ वे सब / मुझ-मय हो सकेंगे? (पृ. २८) कवयित्री यदि एक पंक्ति और छोड़ देती, 'हाँ, यदि वे तुमसे बात करना चाहें! तो उसका प्रश्न प्रश्न नहीं रहता। ऐसी औरभी कविताएं हैं, जिनपर कुछ गहराईसे विचार करनेपर सन्दर्भही नहीं, अर्थभी बदल जाते या गहरे हो जाते—किन्तु कुल मिलाकर कविताएँ कवयित्री की श्रेष्ठ काव्य-प्रतिभाकी सूचक हैं। उसकी भाषामें प्रवाह ही नहीं, प्रौढ़ताभी है और भावोंकी सबल अभिव्यक्तिभी। ये सीढ़ियाँभी अभी बाहर हैं, जिनपर कवयित्री चढ़ रही है। और चढ़ाईके लिए ही नहीं, गहराईमें उतरनेके लिए भी सीढ़ियाँ सहायक होती हैं। साहित्यकी बहुत ऊँची सीढ़ियाँ पर वह चाहे न पहुँच पाये, पर गहरे वह उतर सकती है! कविताकी सही प्रकृति इस अन्तर्यात्राके लिए प्रेरित करना ही तो है। यदि कविता सचमुचही कवयित्रीके लिए अन्तश्चेतना है और यदि वह अपने 'इसी एक भीतरी बिन्दुके लिए सजग रहना चाहती है' तो आशा करनी चाहिये उसका इस अन्तर्यात्राका प्रस्थान-बिन्दु भी अधिक दूर नहीं है! शुभास्ते पन्थानम्।

▭ कन्हैयालाल ओझा

पतझर-पतझर, सावन-सावन

कवि : राजेन्द्र शर्मा 'राजन'; प्रकाशक : मेघदूत प्रकाशन, ३।८८८, जनक नगर, सहारनपुर (उ. प्र.)। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८२; मूल्य : १२.०० रु.।

गीतकी सबसे पहली विशेषता होती है गेयत्व। गेयता के अभावमें गीतका अस्तित्व नगण्य है। कवि सम्मेलनों अथवा अन्यत्र अपने गीतके माध्यमसे श्रोताओंपर हावी हो जानेके लिए यद्यपि आवाजभी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होती तथापि गीतकी निर्मिति भी इसमें विशेषतः सहायक होती है। निर्मिति अर्थात् गेयत्व जो लय तान छन्दादिपर निर्भर होती है। जाहिर है गीतकारका मुख्य कर्त्तव्य अपने भावों को इस प्रकार प्रस्तुत करना होता है कि भाषा-संरचना मुख्यतः गेयतापर केन्द्रित रहे और इस दृष्टिसे राजेन्द्र शर्मा 'राजन' अपनी कृति "पतझर-पतझर, सावन-सावन" में काफी सफल रहे हैं।

विवेच्य कृति "राजन" के छत्तीस लुभावने गीतोंका संकलन है जो संन्यासी मनकी 'आकर्षण बोझिल हैं लेकिन/ संन्यासी मन कहाँसे लाऊँ' से आरम्भ होकर "प्यार जिन्दा है" की 'लाखों भरी हैं पीढ़ियाँ पर प्यार जिन्दा है।' के साथ समाप्त होती है और जिसमें यत्र-तत्र छह मुक्तक भी हैं।

शिल्प पक्षकी दृष्टिसे विभिन्न छन्दोंमें स्पष्ट सुसंस्कृत सरल, सहज, एवम् प्रतीकात्मक भाषामें राजनने अत्यन्त मोहक गीतोंका सृजन किया है। इनमें नयी-नयी उपमाएं और रूपक तो हैं ही सृजन-कल्पनाके योगसे कविने अपनी चंचलता, अनघड़ता उत्फुल्लता और सबसे बढ़कर वेदनाओंको वाणी दी है। और अपनी आरम्भिक कमियोंके बावजूद शिल्पकी दृष्टिसे प्रस्तुत कृतिके आलोकमें कविसे आशाएं की जा सकती हैं।

कथ्यका जहाँतक संबंध है राजनमें वर्तमानके प्रति आक्रोश, प्रेमविह्वल हृदयका राग, भविष्यको सुधारने-संवारनेकी आकांक्षा है तो यौवनका उद्दाम अल्हड़पनभी कम नहीं।

प्रेमसे ही आरम्भ करें तो कविको अपने असफल प्रेम के कारण बड़ा कष्ट पहुंचा है। कवि नीड़ बनाताही रह गया और प्रेमिकाने उन्हें ध्वस्त कर डाला : "मैंने कितने नीड़ बनाये/ तुमने सबको तोड़ दिया/ मेरी हर बदलीके पीछे/ तपता सूरज छोड़ दिया।" (पृ० २६)/

कहीं बिन बुलाते यदि भरे झोंके आते हैं तो कहीं मनकी प्यासही नहीं बुझ पाती। कवि जब 'प्रेम-कलश' लेकर चलता है तो "जग दीवार बना" हुआ मिलता है। और इन सबसे ऊबनेका ही फल है कि कवि संकलनके आरम्भमें ही 'संन्यासी मन' पाने की कल्पना करता है ताकि न रहे बाँस न बजे बाँसुरी।

इसमें कदाचित दो राय नहीं हो सकती कि कविता बनायी नहीं जाती बल्कि बन जाती है। हां चतुर शब्द-शिल्पी जो अनुभव करता है वह उफनकर शब्दोंमें ढलती चली जाती है। राजनकी अपनी यही मान्यता है : "तुम जिसे हो गीत कहते/ वह सुलगती बेवसी है/ विविध मंचों पर हृदयकी/ पीर गाता फिर रहा हूँ।"

अपने गीत "जीवन दीप" में राजनका कहना है कि अभावोंके रहते हुए जीवनको कबतक झेला जा सकता है इसे टूटना ही होगा और यह एक तथ्य है कि अभावग्रस्त व्यक्ति या तो समर्पित हो जाता है अथवा टूट जाता है।

और यहभी एक सच्चाई है कि अभाव जब नहीं रहते, इच्छाकी जब पूर्ति हो जाती है तो व्यक्ति उस समयकी कल्पना करनेसे भी कतराता हैं जब अभाव थे— "मनका प्रेम कलश भर जाता/ रीतेपनकी बात न होती/ आलिंगन सम्भव होता तो/ बिखरेपनकी बात न होती।"

जाहिर है 'राजन' का युवा हृदय जहाँ हिलोरें मार रहा है वहीं तद्प्रसूत गीत कोरी कल्पना न होकर यथार्थकी ठोस धरापर खड़े हैं। जिस बेताबीसे इस युवा के गीत प्रान्तान्तरको विछिन्नकर चहुंदिश बढ़ रहे हैं और जिस सटीक चिन्तनके साक्षी ये गीत हैं उसके आलोक में कोईभी समीक्षक निःसंकोच कह सकता है कि गीतकार का भविष्य उज्ज्वल है।

□ विश्रान्त वशिष्ठ

उपन्यास

सांड

लेखक : हृदयेश; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०.००६ । पृष्ठ : २६२; क्रा. ८१, मूल्य : २५.०० रु. ।

हृदयेशकी रचनात्मकताके मूलमें एक छोटे शहरका चरित्र है, जिसे अपने कहानी-उपन्यासोंमें उन्होंने वैविध्य-मय समग्रतामें प्रस्तुत करनेकी कोशिश की है। इस चरित्र में परिवार, समाज और व्यवस्थाकी शोषणपूर्ण जकड़नसे ग्रस्त तथा इसे तोड़कर बाहर जानेके लिए आतुर, बेहतर जिन्दगीके लिए संघर्षरत लोग हैं। इस दृष्टिसे हृदयेशके उपन्यास जहाँ वैचारिक रूपमें आपसमें जुड़े हुए हैं, वहाँ उनमें जीवनके विभिन्न पहलुओंको समेटनेकी कोशिश की गयी है। संवेदनशील और ईमानदार लोगोंपर भ्रष्ट और जड़ व्यक्तियोंके प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दबाव और अत्याचारको उन्हों ठोस और वस्तुनिष्ठ रचनात्मक संदर्भही नहीं दिये, उससे मुक्तिकी कोशिशों और तरीकोंकी दिशा का स्पष्ट संकेत देकर शोषितोंके प्रति अपनी संलग्न प्रतिबद्धता भी दी है। 'सफेद घोड़ा काला सवार' उपन्यासमें लेखकने औपनिवेशिक भारतीय न्याय-व्यवस्थामें मौजूद विसंगतियोंके साथ, इसमें पिसते जनसामान्यकी बहुत विश्वसनीय तस्वीर पेश की। इसी क्रममें 'साँड' उपन्यास शिक्षाके क्षेत्रमें व्याप्त भ्रष्टाचार, नौकरशाही की वस्तुस्थिति तथा जात-पाँत, साम्प्रदायिक वैषम्य और शिक्षकोंके शोषणको व्यापक और मानवीय आधारपर प्रस्तुत किया गया है। विश्व और देशमें आये हुए महा-महिम विकाससे कटा हुआ यह शहर अपनी समस्त चारित्रिक विशिष्टताओंके साथ इस उपन्यासमें मौजूद है। पूरे देशकी शिक्षा संस्थाओंमें कमोबेश यही स्थिति है, जिससे न्याय और समानताके विकासकी प्रक्रिया खंडित हुई है। स्वतंत्रताके इतने अरसेके बादभी समाजके सांस्कृतिक; धार्मिक और राजनीतिक मानसपर रूढ़ मान्यताओंके साथ एक नया पूंजीपति वर्ग किस तरह हावी है, इसे 'साँड' उपन्यासमें देखा जा सकता है। अपने चरित्रमें विशिष्ट होते हुएभी इसमें कुछ ऐसे सामान्य प्रश्नोंको उठाया गया है, जो पूरे देशकी समस्याओंके संदर्भमें सोचनेको मजबूर करते हैं। विकासकी गतिशील प्रक्रियाके बीच अब वर्तमान व्यवस्थाका चरित्र इतना भ्रष्ट हो चुका है कि इसे नष्टकर नयी व्यवस्थाकी जरूरत महसूस होने लगी है। इस उपन्यासमें इन उभरती हुई प्रगतिशील ताकतोंको परिवेशमें देखा जा सकता है। ये शक्तियाँ प्रतिक्रियावादी तत्त्वोंके शोषण, अपमान, दबाव और यंत्रणाओंको झेलने के लिए अभिशप्त हैं। गलतको गलत न कहनेकी हिम्मत रखनेवाला बहुत वर्ग है, जो इस गलतके खिलाफ संघर्ष करनेवालोंके प्रति आन्तरिक सहानुभूति रखता है। अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानेवालोंको अत्याचारियों द्वारा बार बार कुचले जानेपर भी वे अपनी अदम्य नैतिक आस्थाको टूटने नहीं देते। व्यवस्थाके चौतरफा आतंकका सामना करनेके लिए कटिबद्ध लोग समाजमें अकेले पड़ते जानेके बावजूद, समान वैचारिक स्तरके लोगोंकी सामूहिक शक्तिसे अन्यायके सामने प्रश्नचिह्नही नहीं लगा देते, उसे तोड़ देनेका सक्रिय प्रयत्नभी करते हैं। प्रियंवदा और हरिशंकर शर्मा ऐसेही लोग हैं जो इस उपन्यासमें विचार और कर्मकी एकताके अनुयायी होनेके कारण हर तरफसे प्रताड़ित किए जाते हैं। लेकिन अन्तमें अन्यायी शक्तियों को अपने सामने झुकनेको बाध्य कर देते हैं।

इस उपन्यासके केन्द्रमें साहू सीताराम द्वारा काशी के पंडितके कहनेपर छोड़ा गया साँड़ तथा माता-पिताकी स्मृतिमें खोले गये—'साहू गंगाराम डिग्री कालेज', 'दुलारीदेवी महिला साहू इण्टर कालेज' तथा 'साहू बाल जूनियर हाईस्कूल' की गलत नीतियों और शोषणसे परेशान व्यापक जनसमुदाय है। साहू सीतारामके घरानेने इधर विस्मयकारी उन्नति की थी, जिसके फलस्वरूप पूरे शहरको अपने आतंकसे ग्रस्त कर दिया था। इन्होंने 'शहरके लिए कभी कुछ किया भी, तो उसपर अपनी दृष्टि, संस्कार और अधिकार लाद दिये—उसकी सामाजिकताको बौना बनाते हुए (पृ. ६) उनकी अपनी सुख सम्पदा, यश-ऐश्वर्यके लिए छोड़े गये साँडने सब्जी बेचकर,

खोमचा लगाकर जीविका निर्वाह करनेवाले असहाय गरीबोंका जीना हराम कर दिया है। साहू सीतारामकी आकांक्षाओंका प्रतीक यह साँड बाजारके हर दुकानदार, राह चलते नागरिकोंका सिरदर्द बना रहता है, लेकिन धार्मिक संस्कारोंसे ग्रस्त कोईभी उसे क्षति पहुँचानेसे डरता है। बाजारके असुरक्षित लोग साँडके कारनामों और नुकसानको प्रारब्धका फल मानकर सहते रहते हैं। सुदामाप्रसाद और निर्दोष रिक्शेवाले द्वारा नुकसानकी शिकायत करने पर साहूके मुंशी और कर्जा तथा किराया उगाहनेवाले लठैतों द्वारा उनसे अलग तरीकोंसे निबट लिया जाता है। उसके मालिक 'साहूजीको अपने हितकी तो चिन्ता है, दूसरोंके अनहितकी नहीं। उनका अपना लोक-परलोक सधता रहे, दूसरोंपर चाहे कुछभी गुजरे बीते' (पृ. १२३)। उनके प्रभाव और सनातनी धर्म-भीरू लोगोंकी वजहसे 'साँड जुर्मभी करता रहेगा और सजासे भी बचा रहेगा और उसके मालिक साहूजीका भी कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा' (पृ. १२८)। हृदयेशने साँडकी इन विनाशकारी गतिविधियोंके सूक्ष्म, कलात्मक चित्रण द्वारा उपन्यासको गहरे अर्थोंसे संयुक्त कर दिया है। श्यामकृष्णको हरीराम, गोपीराम और सत्यप्रकाश अग्रवाल इस आतंककारी साँडकी तरह लगते हैं, तो इसी से उनके समूचे चरित्रका आकलन हो जाता। उपन्यास में इन दोनों तरहके साँडोंके अनाचार-उत्पीड़नकी कथा समान्तर रूपमें चलती रहती है।

कालेजोंको दुकानकी तरह आयका स्रोत समझनेवाले ये प्रबन्धक संस्थाके हितकी आड़में अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हैं। हरीराम शिक्षकोंको नगरके प्रमुख अफ-सरोंके बच्चोंको मुफ्त पढ़ाने भेजकर उनसे हर तरहके गलत काम कराते हैं। फिर 'हर महकमेका बड़ा अफसर साहूजीके यहाँ दावत खाकर उनका अपना आदमी हो जाता है' (पृ. १२१)। इसी तरह वे प्रिंसिपल, शिक्षकों तथा कर्मचारियोंकी संस्थाके प्रति निष्ठाको महत्त्व न देकर अपनी स्वामिभक्ति और वफादारीपर जोर देते हैं, ताकि कहींसे उनका तनिकभी विरोध संभव न हो पाये। प्रिंसिपलके पदपर स्थायी नियुक्ति न होने देकर वे इस पदकी आशामें लगे प्राध्यापकोंको अपने प्रति और अधिक वफादार होनेपर मजबूर करते हैं। फिर 'अस्थायी व्य-वस्थामें अधिक-से-अधिक दखलन्दाजीकर चीजों और स्थितियोंको अपने हिसाबमें मोड़ा जा सकता है। ऐसी व्यवस्थामें प्रबन्धकर्ता हमेशाही हावी होते जाते हैं और दूसरे लोग 'जी हजूरिए मुसाहिब' (पृ. २७५)। अपने प्रभाव क्षेत्रमें निरन्तर वृद्धिके लिए तत्पर हरीराम शतरंजके चतुर खिलाड़ीकी तरह समझते हैं कि किस गोटसे किसे साधा जा सकता हैं। वे जानते हैं कि किस प्रं समें काम करानेसे एम. पी. खुश होगा, किस डाक्टरको कालेजका चिकित्साधिकारी बनानेसे लाभ होगा। शिक्षामंत्री, इन-कमटैक्स ऑफिसर, मजिस्ट्रेट, इण्डस्ट्रीज ऑफिसर, सप्लाई ऑफिसर, इत्यादिको अपने हितमें इस्तेमाल करने के लिए वह उनकी मर्जी और जरूरतोंका ध्यान रखते हैं। यही वजह है कि उनके हित साधनेमें सहायक शिक्षक कर्मचारी कर्तव्योंकी उपेक्षा और अवहेलना करने लगते हैं। हरीराम अपने सम्बन्धी भवानीप्रसादको विधानसभा का चुनाव जितानेके लिए कालेजके शिक्षकों व छात्रोंके तन-मन-धनका पूरा सदुपयोग करते हैं। उनके ये क्रिया-कलाप प्राईवेट कालेजोंके प्रबन्धकोंके शिक्षाके पीछे निहित स्वार्थोंकी यथार्थ स्थितिको सामने रख देते हैं।

दुलारीदेवी महिला साहू इण्टर कालेजके मैनेजर साहू सीतारामके छोटे भाई गोपीराम तथा उनकी पत्नी कौशल्यादेवी पुरानी परम्पराओं, रीतियों, धारणाओं, विचारों और मूल्योंके प्रशंसक होनेके नाते, कालेज की छात्राओं तथा शिक्षिकाओंपर भी उन्हें जबरदस्ती थोप देते हैं। प्रधानाध्यापिका विद्यावती अग्रवालके इसी मतकी होनेके कारण यह कार्य औरभी आसान हो जाता है। मैनेजरकी जातिकी होनेके कारण इस कालेजमें अयोग्य अध्यापिकाओंको नौकरी और छात्राओंको छात्र-वृत्तिमें प्राथमिकता दी जाती है। विद्यावती अध्यापि-काओं तथा छात्राओंसे ड्रेस, अनुशासनका ही कड़ाईसे पालन नहीं करातीं, उनकी छोटी-से-छोटी गतिविधिपर खुफिया नजर रखती है। अतिशय पवित्रतावादी दृष्टि-कोणके कारण वे उनके व्यक्तिगत पत्रोंको खोलकर पढ़ना ही नहीं, पूछताछ करनाभी अधिकार समझती हैं। विवा-हित और मुस्लिम छात्राओंको क्लासमें देखतेही आग-बबूला हो जानेवाली विद्यावती किसी-न-किसी तरीकेसे उनका पढ़ना छुड़ाकर अपने उद्देश्यमें सफल हो जाती हैं। इस दृष्टिसे विद्यावतीके कुण्ठित और असफल वैवा-हिक जीवनके बारेमें प्रियंवदाके काल्पनिक चित्रमें उनका व्यक्तित्व मुखर हो उठा है।

परिवारके बच्चोंको गैरोंके स्कूलमें पढ़ने न भेजनेकी वजहसे साहू सीताराम द्वारा खोले गये 'साहू बाल जूनियर हाई स्कूल' का उद्देश्य इतनेतक ही सीमित नहीं है।

स्कूलके मन्त्री सत्यप्रकाश अग्रवाल द्वारा इसे अपनी अप्राकृतिक यौन बुभुक्षाकी तृप्तिके साथ दूसरी दुकान बना दिया गया। स्कूलके विकासकी आड़में अध्यापकोंके वेतन से दानकी मदमें काटा गया रुपया, फर्जी नौकरोंकी तनख्वाह तथा ऐसेही कामोंसे मंत्री अपना घर भरते रहते हैं। हैडमास्टर तथा गोपीस्वरूप और चपरासी दौलतराम मंत्रीजीकी इच्छाओंकी पूर्तिका माध्यम बन जाते हैं। मन्त्रीजीकी इच्छासे बच्चोंसे ईंटें उठवानेका काम करवा कर मजदूरीकी बचत की जाती है। बेकारीमें भटकते हरिशंकर शर्माको मन्त्रीजी अनेक अहसानों और वेतनमें से कटौतीकी शर्तपर नौकरी देते हैं। अन्याय और शोषण को खामोशीसे सहनेवाले आदर्श अध्यापक मन्त्रीकी इन नीतियोंका कतई विरोध नहीं कर पाते। अन्याय और शोषणपर हरिशंकर शर्माका संघर्ष और बादमें विजय व्यवस्थाके आतंकमें पड़ी दरारका संकेत है, जो सामूहिक प्रतिरोधसेही सम्भव है।

'राग दरबारी' तथा अन्य अनेक उपन्यासोंमें शिक्षा के क्षेत्रमें व्याप्त अराजकता, अन्याय तथा शोषणका चित्रण हुआ है। 'सांड' में भी यह चित्रण ठोस वास्तविकताके रूपमें है। युवाशक्तिके सदुपयोग-दुरुपयोगके दोनों रूप उपन्याससे स्पष्ट हो जाते हैं। लेखकने इस प्रक्रिया द्वारा युवाशक्तिमें भविष्यके कल्याणका संकेत देकर उसकी सही दिशाका परिचय दिया है। हरिशंकर शर्मा की विजय तथा युवा लड़के द्वारा साँडको जहरभरा आटे का गोला खिलवाकर लेखकने उपन्यासको सोद्देश्य और सुखान्त तो बना दिया है, लेकिन कलात्मक दृष्टिसे यह भाग आरोपित-सा, अतिनाटकीय, अलग-थलग और अस्वाभाविक हो गया है। यहां आकर लेखकने जल्दबाजीमें उपन्यासकी व्यापक सम्भावनाओंका गला घोंट दिया है।

☐ **मूलचन्द गौतम**

जंगलके आसपास

लेखक : राकेश वत्स; प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली-६। पृष्ठ : २८४; क्रा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।

धर्म, शक्ति और राजनीति मनुष्यको निरन्तर विभाजित और खंडित करती जा रही है तथा स्वार्थपरता उसे टुकड़ों-टुकड़ोंमें जीनेपर विवश किये हुए है। यह मनुष्य ही है जो इस व्यवस्थामें आमूल परिवर्तन ला सकता है और यह परिवर्तन तत्काल होना चाहिये। इसी मन्तव्य की पृष्ठभूमिपर राकेश 'वत्स' का उपन्यास 'जंगलके आसपास' विकसित हुआ है। इस रचनामें ग्रामीण अंचल में बसे आदिवासी जीवन और विश्वासोंकी विभीषिकाओंका मर्मस्पर्शी चित्रण है जिनकी परम्परामें किसी भी दस्तूरको तोड़ना घोर संकटको आमन्त्रण देना है।

दमकड़ी, पहरुआ और डबरू ग्रामांचलोंमें विस्तार पाती हुई उपन्यासकी कथाका तानाबाना दिनेश, डॉक्टर तुलसी, ओझा, रायसाहब, राबर्ट, जगतिया, सरपंच, चंदेरी, श्यामा और सुचित्रा जैसे अनेकानेक पात्रोंके इर्द-गिर्द बुना गया है। कथा आदमखोरके हमलेसे प्रारम्भ होती है और नव-आदमखोरोंके हमलोंके विरुद्ध जन-आन्दोलनकी परिणतिके साथ समाप्त होती। इन दोनों छोरोंके मध्य दासता, अन्धविश्वासों, परतन्त्र मानसिकता, विलास, ऐश्वर्य, संकल्प और संघर्षके विभिन्न जीवन्त चित्र रचनाकारने प्रस्तुत किये हैं। इस कथामें दो पक्ष हैं—एक अनादि कालसे शोषणमें लिप्त सुविधाभोगी पक्ष और दूसरा क्रमिक यातनाओंकी अग्निमें झुलसता और दम तोड़ता हुआ पक्ष।

हमारे जीवन-दर्शन, मानवीय मूल्यों और संवेदनशीलताका विनाश करनेमें धर्म और अन्धविश्वासोंका प्रमुख हाथ रहा है। पूँजीने धर्मको अपनी मुट्ठीमें कैदकर स्वयंको सर्वशक्तिमान् बना लिया है। आदिवासी जीवन इस धर्मान्ध-शक्तिका सबसे बड़ा शिकार है।

'जंगलके आसपास क्यों—जंगलके भीतर क्यों नहीं?' इस प्रश्नके उत्तरमें दिनेश स्पष्ट करता है—'जंगल इसमें प्रतीक है···आजके जंगल···तन्त्र या व्यवस्था···मनुष्य आसपास रहकर इसी व्यवस्थाकी भयंकरता और बर्बरता झेलनेके लिए विवश है।' इस सड़ी व्यवस्थाके विरुद्ध संघर्ष अनिवार्य है जिसके लिए आत्मिक-दृढ़ताही निर्णयात्मक होगी। अपनी माता सुचित्रा द्वारा अपने सतीत्वकी रक्षाके लिए किये गये दृढ़ प्रतिरोधको देखकर ही श्यामा के मनमें इस व्यवस्थाके विरुद्ध निर्णयात्मक युद्धकी भूमिका जन्मती है—'उस दिन उसका रोना जैसे पहाड़ की गहरी गुफाओंमें समाधि ले गया था।' और वह इस मान्यताके विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी कि औरतका धर्म समर्पण और त्याग है—विद्रोह नहीं।

ओझा और रायसाहबकी साजिशोंके शिकंजोंमें पिसता हुआ समस्त अंचल और उसमें छटपटाते हुए मनुष्यकी व्यथा उपन्यासकारसे एक सही प्रश्न प्रस्तुत

करवाती है कि 'आदिम युगकी मायावी विचित्रताओंके गहरे गर्तसे इन्सान कैसे बाहर निकलेगा ?' अपनी रचना द्वारा फिर वह स्वतः उत्तरभी देता हुआ प्रतीत होता -- 'मरनाभी हो तो दुश्मनसे संघर्ष करते हुए मरना चाहिये। लड़ते-लड़ते मरना मरनेकी यातनासे परे होता हे।' वह जानता है निहत्थी जिन्दगी जीनेवाले लोग किसीभी प्रकार का खतरा उठानेको तत्पर नहीं है। इसी कारण परदेसी राबर्टको खुशी होती है 'कि अभीभी इस देशके खूनमें गद्दार खूनकी कमी नहीं आयी है।' उपन्यासकारने सहज और उन्मुक्त रूपसे इसे स्वीकारते हुए लिखाभी है— 'जोश या आक्रोशका निष्क्रिय या सुषुप्तावस्थामें पड़े रहनाही कायरता है।'

राकेश वत्सने ज्वलन्त प्रश्नोंको 'जंगलके आसपास' बटोरा है और समाधानोंकी ओर इंगित किया है—'जो मादा राक्षसी प्रवृत्तियोंका पोषण करता है वह कमजोरी कहलायेगा और जो इन्सानियतको बढ़ावा देता है वह बलिदान और त्याग।' इसीलिए उपन्यासका अन्त दुर्व्यवस्थाके विरुद्ध शक्तियुक्त जन-आन्दोलनके प्रारम्भसे होता है। समाजकी वर्तमान व्यवस्था अन्ततोगत्वा इसी एकमेव समाधानकी आकांक्षामें प्रतीक्षित है। वैचारिक संघर्षसे परे रहकर नियतिके प्रति अन्यमनस्क रहकर मानव सार्थकता सिद्ध नहीं कर सकता और राकेशकी यह बातभी अनुचित नहीं लगती कि 'तर्क द्वारा साबित हो जानेवाला सत्यही अन्तिम सत्य नहीं होता।'

उपन्यासकी भाषा सहज है और अभिव्यक्तिमें सार्थकता है तथा शिल्प कसा हुआ। समग्रतः राकेश वत्सने विभिन्न घटनाओं और पात्रोंको कथानकमें इस प्रकार पिरोया है कि पाठक उपन्यासके साथ खिंचता चला जाता है और लेखनकी सार्थकता भी यही है।

▭ **डॉ. सत्यमोहन वर्मा**

छोटी मालकिन

उपन्यासकार : शारदा राव; प्रकाशक : शब्दकार, २२०३, गली डकोतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : १४७; क्रा. ८१; मूल्य : १६.०० रु.।

विख्यात कवि स्व. बालकृष्ण रावकी पत्नीका यह पहला उपन्यास अन्याय और शोषणपर आधारित सामन्ती समाज व्यवस्थाको बेनकाब करता है। अपने वैभव और सामर्थ्यके बलपर जमींदार वर्ग किस प्रकार मानवीय मूल्यों और नैतिकताकी धज्जियाँ उड़ानेका खेल खेलते हैं यह इस उपन्यासका कथ्य है। इस वर्गके लिए पवित्रतम रिश्तोंसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है अपनी कुत्सित इच्छाओंकी पूर्ति। इसके लिए वे किसीभी छद्मका सहारा ले सकते हैं। ऊपरसे अत्यन्त शालीन लगनेवाले ये दरिंदे कितने क्रूर और आक्रामक हो सकते हैं यह जाननेके लिए 'छोटी मालकिन' की कथाका संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

सेठजी अपने अर्द्ध विकसित पुत्र रामका विवाह अपने धन-दौलतका कांटा फेंक गरीब घरकी चंदासे कर देते हैं। उनका इरादा सुन्दर, युवा पुत्रवधूको ही अपनी अंकशायिनी बनानेका है। घरके नौकर-चाकरतक उनकी इस इच्छासे परिचित हैं पर रुपयों और ताकतने उनके मुंह सी रखे हैं। सेठजीकी इच्छा पूर्तिमें बाधक बन जाता है उनकाही छोटा बेटा श्याम जो अनजानेही चन्दाकी ओर खिंच गया है, पहले सहज सहानुभूतिवश और फिर मोहवश। सेठजी चन्दाका मन श्यामकी ओर फेरनेके लिएभी धूर्तताका सहारा लेते हैं, सफलभी होते हैं, चन्दापर बलात्कारका प्रयासभी करते हैं पर तभी श्याम वहां पहुंचकर चन्दाको बचा लेता है· कथा बहुत सरल-सीधी है पर निहितार्थों-प्रतीकार्थोंमें बहुत महत्त्वपूर्ण है। मानवका पशुत्व नित्य नये चारगाह खोजही लेता है। जबतक पूंजी और शोषणपर आधारित समाज व्यवस्था है, मानवका पशुत्वभी बरकरार रहेगा। यह आकस्मिक नहीं है कि सेठजीकी इच्छापूर्तिमें सबसे बड़ा सहायक है उसका वेतनभोगी मुनीम। सेठजी श्यामपरभी नियन्त्रण इसलिए करनेका दम भरते हैं कि वह उनके पैसेका मुहताज है। निश्चयही आर्थिक स्वाधीनता सारे शोषण जाल काटनेमें समर्थ हो सकती है।

मानवके पशुत्वका त्रास सबसे अधिक सहना पड़ता है बेचारी नारीको। स्वाभाविकही है कि श्रीमती रावकी सहानुभूति चन्दाके साथ है। प्रशंसनीय यह है कि वे चंदाको अपने पाठकोंकी सहानुभूतिभी दिला पानेमें सफल हुई है।

उपन्यासका बहुत बड़ा अंश पूर्वदीप्ति पद्धतिके माध्यमसे कहा गया है जो ठीक लगता है, पर कुल मिलाकर शिल्पके लिहाजसे रचना ज्यादा प्रभावी नहीं बन पायी है। श्रीमती रावके पास सुलझी दृष्टि है, शोषितोंके प्रति सहानुभूति है—अगर इसमें शिल्प कौशलका भी मेल हो जाये जो उनकी बातका प्रभाव कई गुना बढ़ जायेगा।

▭ **दुर्गाप्रसाद अग्रवाल**

कहानी संग्रह

नरम-गरम

कहानीकार : रत्नलाल शर्मा; प्रकाशक : किताब घर, मेन रोड, गान्धीनगर, दिल्ली-११०-००३१। पृष्ठ : १४६; क्रा· ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

'नरम-गरम' की कहानियोंका कहानी मानना मेरी मजबूरी है, क्योंकि डॉ· विनयने इन्हें 'घर, परिवार, समाजके यथार्थकी (छवियां) अत्यन्त रचनात्मक-दायित्व-बोधसे व्यक्त' कहानियोंकी संज्ञा दी है (भूमिका)। इस दृष्टिसे सबसे पहले 'शीर्षक' पर दृष्टि जाती है। कहानियोंके शीर्षक कहींसे भी कथ्यसे जुड़े प्रतीत नहीं होते। ऐसा लगता है कथ्यकी झोली बनाकर कहानीकारने शब्दों की खूँटीपर टांग दिया। 'नरम-गरम' से लेकर 'तरकश के तीर' तक सर्वत्र यही स्थिति है। उदाहरणके लिए 'नरम-गरम' को ही लें। मध्यवर्गीय परिवारकी उपार्जिका 'सुन्दरी', जो नामके साथ रूपकी दृष्टिसे भी सुन्दरी, बी. ए. में पढ़नेवाले बड़े लड़के साथ दो अन्य बच्चोंकी भी माँ है—कार्यालयमें अपने सहकर्मियोंके बीच अकारण चर्चाका विषय बनती है। मोहनसिंह हैरान परेशान है कि सुन्दरी बाहरसे 'गरम' पर अन्दरसे 'नरम' क्यों है 'ठीक इसी समय उसका बॉस धड़धड़ाता हुआ हालसे गुजरकर अपने कमरेमें चला गया। अब सब कुछ शान्त था और मोहनसिंहके विचारोंको भी ब्रेक लग गया।' (पृ. १६) कहानी खत्म हो गयी। पूरी कहानीमें ऐसा कुछभी घटित नहीं हुआ, जिसका सम्बन्ध सुन्दरीके 'नरम-गरम' स्वभावसे होता अथवा यह पता चलता कि स्वभाव के 'नरम-गरम' होनेका तर्क-सम्मत कारण क्या है? यही स्थिति 'सामान', 'कितने-दिन', 'बाहर', 'उदासीन', 'निश्चिन्त' आदि अन्य कहानियोंकी है। शीर्षकके प्रति कथाकारकी उदासीनताके कारण अबूझ हैं।

'नरम-गरम' की कहानियोंमें विषय-वस्तु, अवश्य घर, परिवार और समाजकी धुरीपर टिकी है, परन्तु यह 'टिकना' ही तो सब कुछ नहीं है। इस टिकावमें एक बोधगम्य कथानक होना चाहिये, पात्र, चरित्र, उद्देश्य, परिवेश आदिके साथ कथा-वस्तुको देखनेवाली स्वच्छ एवं स्पष्ट दृष्टि होनी चाहिये। बेमतलबका देखनाभी कोई 'दृष्टि' है। कौन नहीं जानता कि आजकल व्यक्ति और समाजके जीवनमें क्या-क्या नहीं हो रहा है। सब लोग देख रहे 'कि आजका व्यक्ति अपने बाहरी रूपपर कितने आवरण चढ़ाये हुए हैं। कहींसे भी उसका असली चेहरा दिखायी नहीं पड़ रहा है। कहीं व्यक्ति अपनीही बुद्धिके बिछाये जालमें उलझकर छटपटा रहा है,तो कहीं समाजके रक्तशोषी पंजोंमें फंसकर। ऐसी हालतमें जरूरत इस बातकी है कि साहित्य दम तोड़ते व्यक्तिको मुक्त कराये, न कि खड़े-खड़े उसे मरता हुआ देखे और उसकी वेदना को कागजपर उतारकर उसकी त्रासदी, विडम्बना, मृत्यु-यंत्रणाका व्यापार करे। कोई करताभी है तो कमसे कम उसे लोक-रुचि, लोक-रंजन, लोक-मंगलका ध्यान रखना चाहिये। ग्राहकोंको आकर्षित करनेकी व्यवस्था करनी चाहिये। ग्राहकके बिना मालका क्या मूल्य है? प्रस्तुत संग्रहकी कहानियोंमें यह सब कहां है? कथ्य, तथ्य,तत्त्व, शिल्प, शैली किसीभी दृष्टिसे तो 'कहानी' नहीं बनती हैं। जीवन-दृष्टिसे देखनेपर 'नरम-गरम' की सुन्दरी और मोहनसिंह, 'कितने दिन' की मृदुला खन्ना; 'सामान' का विनय लांबा-रमेशकुमारी, 'उदासीन' का श्यामसुन्दर-लीलावती, 'बीमार' का राधे, 'आवाजोंके घेरे' का विपुल — सभी अपनेही कुसंस्कार, अज्ञानता, अहं, विकारादिसे ग्रस्त दिखायी पड़ते हैं। इस कहानी-संग्रहके किसीभी पात्र के पास स्पष्ट जीवन-दृष्टि नहीं है। जीवन-दृष्टिके अभाव ने इन पात्रोंमें अनावश्यक सामाजिक एवं वैयक्तिक उलझनोंको जन्म दे दिया है। इसी अभावके कारण वे 'वस्तु' को व्यक्तिका स्थानापन्न मान बैठे हैं। मि. खन्ना(कितने दिन) ड्यूटीपर जाते समय सुधीरदाससे कह जाते हैं— 'इन्हें टी वी खरीदकर दे चला हूं। इनका मन लगा

रहेगा। मेरे न होनेकी पूर्ति करेगा।' (पृ. ३०) रमेशकुमारी (सामान) के पिताके 'मनमें यह बात जम गयी कि विनय भलेही लौट आये, पर सामान कभी नहीं आयेगा। अब वह सामान रमेशकी ननदोंकी शादीमें चला जायेगा।' (पृ. ४१) दामिनी (बाहर) घर, हॉस्टल और नौकरी-तीनोंसे निकाल बाहरकर दी जाती है। शालिनी (रस्साकशी) के पिता कहते हैं—'देव, मेरी मुठ्ठीमें है। मैं अपनी लड़कीकी खातिर कुछभी करनेको तैयार हूं। यह कभी बर्दाश्त नहीं करूंगा कि मेरी बेटी चार-चार ननदोंके बीचमें जाकर रहे और उनकी गुलामी करे। शालिनीकी माँने उसे कभी पलंगसे भी नीचे नहीं उतरने दिया (पृ. १२०) मतलब, शालिनीभी गद्दा-तकिया-चद्दर जैसीही कोई 'वस्तु' है, जो बराबर पलंगपर पड़ी रहती है।

कथानककी दृष्टिसे भी 'नरम-गरम' की कहानियां अस्तव्यस्त हैं। पहली बात तो यह है, इन कहानियोंमें कोई क्रमबद्ध कथानक है ही नहीं। संरचनाकी दृष्टिसे भी त्रुटिपूर्ण हैं। घटनाएँ पहले तो घटित नहीं होतीं और यदि होतीभी हैं तो बिना किसी संतुलन, सामंजस्यके। इनके घटित होनेका न कोई 'कारण' दिया गया है, न प्रयोजन। उदाहरणके तौरपर 'निश्चिन्त' कहानीको ही लीजिये। 'करुणादेवी निकुंज' नामक दुमंजिला मकान है। ऊपरकी मंजिलपर मकान मालिक (इंजीनियर) की अनपढ़ पत्नी करुणादेवी रहती हैं। निचली मंजिलमें सुनयना, मृदुला, सुप्रिया, लाजवन्ती आदि सपरिवार रहती हैं। इन महिलाओंमें अपना 'ग्रुप' बनानेके लिए शीतयुद्ध (परनिन्दा, परछिद्रान्वेषण आदि) चलता रहता है। इसकी सूचनाभी कथाकारही देता हैं, घटनाएँ बिल्कुल मौन हैं। इसकी परिणति इस रूपमें होती है—'सुप्रिया खाना खत्म कर चुकी थी। उसने बर्तन वहीं मेजपर पड़े रहने दिये। मेहरी आयेगी तो अपने आप उठा ले जायेगी ···सुप्रियाको बैठे-बैठे नींदके झटके आने लगे। यह देख मृदुला चली गयी। सुप्रिया पलंगतक पहुंची और बाकायदा सो गयी। बच्चे स्कूलसे आकर खुदही खाना लेकर खा लेंगे। अपनी मम्मीको जगानेकी हिम्मत उनकी नहीं हो सकती। मृदुलाका बेटा दूध पीकर सो गया था। बच्चोंके आनेके बाद उन्हें खिला-पिलाकर जबरदस्ती सुला देगी और दरवाजा बन्द करके खुदभी सो जायेगी।' (पृ. १३७-३८)। आठ पृष्ठोंकी इस कहानीमें कथाकारने डेढ़ पृष्ठ, मृदुला द्वारा सुनयनाके बेटे हरीशसे बेसन मंगा कर कढ़ी छौंकनेपर खर्च किया है, एक पेज करुणा उसके मकान और पतिपर, एक पेज सुप्रियापर, बाकी बचे पृष्ठों में सुनयनाके बारेमें बताही चुका हूं। इस तरह इस कहानीकी कथावस्तु गढ़ी गयी है। इसमें न कहीं क्रमबद्धता है, न आंतरिकता-अन्तरंगता, न ही मनोविज्ञान, विचार और तर्क। अन्य कहानियोंकी भी यही स्थिति है।

'नरम-गरम' की कहानियोंमें आये सभी पात्र सामान्य किन्तु अस्वाभाविक हैं। उनकी चेष्टाएं भी सहज सामान्य हैं। कुंठित हैं; कुछ निराश-हताश; कुछ बेवजह हैरान-परेशान। पुरुष पात्रोंमें आन्तरिक भीरुता और नारी पात्रोंमें अस्पष्ट असंतोष है। किन्तु सब मिलाकर स्थिति यह है—'बुद्धि विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागज कोरे।' कहानियोंमें परिवेश और उद्देश्यगत शून्यता भी है। हाँ, भाषा रूप अवश्य स्वच्छ और स्पष्ट है। केवल इसी एक तत्त्वके सहारे 'संग्रह' पढ़ते समय ऊब नहीं पैदा होती। भाषाका सरल, सहज, स्पष्ट गुण बांधे रहता है। किन्तु शिल्प और शैलीका बेतुकापन अखरता है।

शर्माजीके पास अच्छी भाषा है, भावभी हैं। जमकर कहानी लिख सकते हैं। परन्तु लिखनेसे पहले सोच-विचार कर योजना बनानेकी जरूरत है। कहानीके तत्त्वोंमें सामंजस्य स्थापित करने और पाठकको कुछ विचार-तत्त्व प्रदान करनेकी भी आवश्यकता है। जबतक पाठकके मन को खाद्य पदार्थ नहीं दिया जायेगा तबतक उसकी वृत्तियां तृप्त नहीं होंगी।

फिरभी सहृदय पाठकोंसे अनुरोध है, इस संग्रहको अवश्य पढ़ें।

▭ डॉ. विजय द्विवेदी

कितने शाहजहां

कहानीकार : सन्तोषनारायण नौटियाल; प्रकाशक : स्टार बुक सेंटर, दरीबाकलां दिल्ली-६; वितरक : हिन्दी बुक सेंटर, ४/५ बी आसफअली रोड, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १८०; क्रा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

प्रस्तुत संकलन लेखककी पिछले तीस वर्षोंमें लिखी गयी कहानियोंको प्रस्तुत करता है। उसकी पहली कहानी सन् १९५१ में लिखी गयी और अन्तिम १९८० में।

वास्तवमें यह वह समय है जिसमें हिंदी कहानीने एक नया मोड़ लिया, विशेष रूपसे १९५५ के पश्चात्, और इस मोड़के साथ वह गति-प्रगतिकी विभिन्न स्थितियोंसे गुजरी। वह जैसे अब उड़नखटोलेकी चीज नहीं रही। नयी पीढ़ीने इस उड़नखटोलेके कल्पनाके डैने काटकर फेंक दिये और शेष रह गये खटोलेको यथार्थके बैल जोत दिये। अब यह खटोला आगे बढ़ा तो उसपर नीचेकी जमीनकी प्रतिक्रिया अनुभव होने लगी। कंकड़-पत्थर, गड्ढे-नाले, उतार-चढ़ाव उड़नके कारण खटोला अनुभव नहीं करता था सो अब करने लगा। यही कारण है कि उसकी यात्रा पहले जैसी सुहावनी नहीं रह गयी फिर वह विस्तारकी नहीं सूक्ष्मकी यात्रा थी।

सूक्ष्मकी इस यात्रामें कहानीने कितनेही ऐतिहासिक क्लोज-अप दिये हैं। राजनीतिक,सामाजिक,आर्थिक, पारिवारिक जीवनके क्लोज-अप।

कहानी-यात्राकी इस पार्श्वभूमिपर जब हम प्रस्तुत संग्रहका विचार करते हैं तो निराशा होती है। हम लेखक की पहली कहानी पढ़ते हैं १९५१ की 'गोभीका फूल' और फिर तीस वर्ष बाद १९८० की 'कितने शाहजहां' तो लगता है चल-चलकर भी कलम अपनी जगहपर हैं। कुछ लोगोंके चेहरे ऐसे होते हैं कि उनपर उम्रका असर इतना नहीं होता। यह उनकी अच्छी मिट्टीका लक्षण है। पर यही बात कलमके साथ हो तो इसे अच्छा लक्षण नहीं कहा जा सकता। चेहरेने धूप पानी न देखे या देखे भी हों तो बेपरवाहीके छातेके साथ।सो चेहरेके लिए यह ठीक है, पर कलमके लिए तो नहीं। हम जानते हैं कई कलमें धूप-पानीसे बची रहती हैं। उन्होंने ये बंगलों-कारोंके तावदानों से ही देखे होते हैं। सो कागजपर जब धूपपानी उतरते हैं तो उनमें वह गरमी या ठिठुरन कहां जो सड़कपर चलती कलम अनुभव करती है।

प्रस्तुत संग्रहकी कहानियाँ अधिकांशतः घटनात्मकता और आदर्शवादिताकी शिकार हैं। जैसे 'कितने शाहजहाँ,' 'आग तो बुझाये न बुझे,' 'दबे अंगारे,' 'कागा फिर बोला,' 'भोला,' 'एक औरही मशीन'। इनमें कथा किसी चरमबिन्दु को पहुँचती है और झटकेके साथ उसकी समाप्ति होती है। अन्तिमको छोड़कर इन कहानियोंके क्रमशः पात्र मां, सुधीर, सुशील, किरन, भोला एकदम दिव्य कोटिके लगते हैं। साफ-साफ झलकता है कि लेखक घटनाको चरम-बिन्दुकी ओर ले जानेके लिए या पात्रोंकी दिव्यता दर्शाने के लिए कथाको गढ़ रहा है। कई स्थलोंपर ऐसा प्रतीत होता है कि हम फिल्मी दृश्य देख रहे हैं। अन्तिम कहानी 'एक औरही मशीन' एच. जी. वेल्सकी विज्ञान कहानियों की याद दिलाती है। काफी दीर्घ और घटनाओंकी भर-मार-युक्त। यह विज्ञान-कहानी आश्चर्य है कि 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में हास्य व्यंग्य कहानीके तेवरके साथ छपी थी।

'सोनेकी सीढ़ी' अन्धविश्वासोंपर आधारित कहानी है जो अत्यंत कमजोर ढंगसे प्रस्तुत है। आरम्भिक कहानी होते हुएभी 'गोभीका फूल' लेखकको लेखनीका विश्वास जतानेवाली मानी गयी होगी। प्राइमरी अध्यापककी जिंदगीका अच्छा खासा स्वाद इसमें है। पर अध्यापकको दुर्घटनामें मारकर लेखकको क्या मिल गया! वह तो बेचारा जिंदाभी मरा हुआ था। हर बार फीस जमा करा कर घर अपने देहात दुर्घटनाग्रस्तही लौटता!

'फाइल' दफ्तरी जीवनकी निष्क्रियताका अच्छा खाका पेश करती है। 'चुनाव' में आज आम चुनावोंमें जिस तरहके हथकंडे अपनाये जाते हैं, तिकड़मबाजियां की जाती हैं उसका खासा कच्चा-चिट्ठा पेश है। संग्रहकी अत्यन्त बेहतरीन कहानी है 'कायर', यद्यपि 'उसने कहा था' की याद दिलाती है, पर इससे कहानीकी गुणवत्ता कम नहीं हो जाती।

वास्तवमें इस संग्रहकी कई कहानियां ऐसी हैं जिन पर समर्थ एकांकी लिखे जा सकते हैं···घटना, पात्र, चरमसीमा अब कहानीमें कहां रहे हैं। जिन्हें इनसे लगाव है वे अब एकांकी लिखते हैं यद्यपि यहभी अब इन शृंखलाओंसे मुक्त हो चुका है।

☐ शंकर पुणतांबेकर

मत–अभिमत

इस स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कर सकती है, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

नाटक : एकांकी

कबिरा खड़ा बाजारमें

नाटककार : भीष्म साहनी; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष बाजार, नयी दिल्ली-११०-००२ । पृष्ठ : १००; डिमा. ८१; मूल्य : १८.०० रु. ।

भीष्म साहनी कथाकारके रूपमें हिन्दी पाठकोंके बीच अति सुपरिचित हैं, पर नाटककारके रूपमें नहीं। इसके पूर्व उन्होंने 'हानूश' के माध्यमसे हिन्दी-नाटककार की जमीन पैर रखा, जिससे उनकी नाट्य रचना-शिल्प-विधिसे हिन्दी जगत् परिचित हुआ। इस तरह 'कबिरा खड़ा बाजारमें' उनकी दूसरी नाट्य कृति है, जिसमें इतिहास + कल्पनाका सम्मिश्रण है। साहित्यकार न विशुद्ध इतिहासकार होता हैं, न विशुद्ध वैज्ञानिक; न विशुद्ध दार्शनिक होता है, न विशुद्ध काल्पनिक—इन सबके योगसे ही उसका व्यक्तित्व निर्मित होता है और अपनी अनुभूतियोंको उन्हींके आधारपर जनमानसके समक्ष रखता है।

आलोच्य कृति मध्ययुगीन वातावरणकी विसंगतियों से जूझते हुए कबीरके युवाकालसे आरम्भ होती है और सिकन्दर लोदीसे कबीरकी भेंटके साथ खत्म होती है। इस बीचकी कथावस्तु कबीरके उन समस्त चारित्रिक तत्त्वोंको रूपायित करती है, जिससे उनका व्यक्तित्व आजभी प्रासंगिक बना हुआ है। कबीरयुगीन जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियां अपनी विकृतियोंके साथ मानव-मूल्य-बोधके प्रतिकूल बनी हुई थीं, वे आजभी हैं। उनकी मान्यताएं उस युगके लिए जितनी आवश्यक थीं, उससे कम आज नहीं हैं। इस संदर्भमें यह स्वीकार किया जायेगा कि यदि कबीर आजके युगमें रहते, तो उस युगसे अधिक विद्रोही बनते।

प्रस्तुत नाटक-रचनाके मूल उद्देश्यके रूपमें नाटककार ने स्वीकार किया है कि 'उनके कालकी धर्मान्धता, अनाचार, तानाशाही आदिके परिप्रेक्ष्यमें उनके निर्भीक, सत्यान्वेषी, प्रखर व्यक्तित्वको दिखानेकी कोशिश है। उनके अध्यात्म-पक्षको नकारना अथवा उसकी उपेक्षा करना अपेक्षित नहीं था, उस आधार-भूमिको स्थिरकर पानाही अपेक्षित था, जिसमें उनके विराट् व्यक्तित्वका विकास हुआ।' (भूमिका भाग) स्पष्टतः अपने लक्ष्यके अनुकूल नाटकार पूर्णतः सफल है। कबीरका अध्यात्म-पक्ष उनके सामाजिक पक्षसे अलग कर नहीं देखा जाना चाहिये। सच तो यह है कि कबीर आपादमस्तक संवेदनशील आदमी हैं; जिन्होंने आदमीकी पीड़ा-वेदनाको बड़े करीबसे सहृदयताके साथ महसूसा था और उसके विरोध में आमरण संघर्षका बिगुल बजाया था। इस दृष्टिसे विवेच्य कृतिका महत्त्व अक्षुण्ण है।

विवेच्य कृतिका शीर्षक सार्थक, विषयानुकूल, भावानुकूल है। 'कबिरा' अपने-आपमें यथार्थवादी अर्थ-बोध देता है। 'खड़ा बाजारमें' दृश्यमान जगत् रूपी बाजारमें खड़ा हो उसका मुआयना करनेमें तत्पर कबिरा उसकी असंगत गति-विधियोंको महसूसता है।

आलोच्य कृतिमें तीन अंक, जिनमें क्रमशः ५,२ और १ दृश्य हैं। अनुपातकी दृष्टिसे यह ठीक नहीं माना जायेगा। इतना होते हुएभी इसकी कथावस्तु संघटना सुघटित एवं सुसम्बद्ध है। कथानकको सुबद्ध बनानेके लिए नाटककारने कई घटनाओंको सूच्य बना दिया है। यथा : कबीरकी जन्म कथा, धार्मिकोंकी शासकोंकी कबीरके प्रति तथा उनके समर्थकोंके प्रति किये गये अत्याचार, कबीरका विवाह इत्यादि।

चरित्र-विकासकी दृष्टिसे (कबीर, नीमा, रैदास, महन्त, कोतवाल, कायस्थ, सिकन्दर, लोई) सफल कृति है। कबीर, रैदास, नीमा सिकन्दरके चरित्र बहुत कुछ पारम्परीण हैं, किन्तु महन्त रूढ़िवादी धर्मस्थ है, जो धर्मकी आड़में अत्याचार करनेवालों का प्रतीक हैं; कोतवाल—आजके क्रूर शासकका और कायस्थ चापलूस, [illegible] प्रतीक है। लोई भोली-भाली सरल नारी

है। इन चरित्रोंके दो वर्ग बनाये जा सकते हैं—(क) मुख्य पात्र और उसके सहयोगी और (ख) मुख्य पात्रके विरोधी और उनके सहयोगी पात्र।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि संवाद-योजना नाटकका प्राण है। संवाद-योजनाके आवश्यक गुण हैं– सम्प्रेषणीयता, स्वाभाविकता, पात्रानुकूलता, विषयानुकूलता, प्रवाहमयता, संक्षिप्तता आदि। विवेचनके आधारपर प्रस्तुत कृतिका कथोपकथन उक्त गुणोंसे युक्त है। नाटककार संवाद-योजनामें अधिक सचेष्ट दिखायी पड़ता है।

इसकी भाषा सरल, सुबोध, पात्रानुकूल एवं भावानुकूल है। मुहावरेदार भाषा भोजपुरीके पुटके साथ अत्यन्त सजीव हो उठी है। कुछ उदाहरण : बाजारमें उल्लू बोल रहे हैं/ जान सांसतमें आ गयी/ साँप पालते रहे/ न दीनके रहे, न जहानके/ करेजेपर हो रहा भुनता रहता है/ सभीके कान हो जायेंगे/ चूल्हा जलने लगा/— इत्यादि। इनके द्वारा भाषामें चित्रात्मकता आ गयी है। सूक्तियोंके प्रयोगसे सिद्धान्त प्रतिपादनकी भाषा बनती है। यत्र-तत्र सधुक्कड़ी भाषाका भी प्रयोग हुआ है, जिसमें व्याकरणका ध्यान नहीं रखा गया है। यथा, 'जिस दिन हम काशीमें प्रवेश किया···।' यह कथानकके अनुकूलही है।

नाट्य-रचना-शिल्प-विधानकी दृष्टिसे यह कहा जायेगा कि यद्यपि पश्चिमी नाट्य शिल्पके आधारपर संघर्षको ही केन्द्र माना गया है, तथापि भारतीय नाट्य शिल्प-विधिका नितान्त अभाव नहीं कहा जायेगा।

वातावरणकी सृष्टिमें भी यह सफल है।

इस प्रकार अन्तमें यह स्वीकार किया जायेगा कि विवेच्य कृति अभिनेयता, गठन, मंचन आदिकी दृष्टिसे संग्रहणीय है।

□ **धर्मदेव तिवारी**

एक था बादशाह

नाटककार : मंजूर एहतेशाम, सत्येनकुमार; प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : ७८; क्रा. ८१; मूल्य : १४.०० रु।

प्रायः सभी धर्मग्रन्थोंमें एक निरंकुश, कठोर और क्रूर शासककी कल्पना की गयी है, जो मृत्यु-भयसे आक्रांत होकर मानव-जातिके मूलपर ही कुठाराघात करता है, परन्तु अन्ततः मानवताका तारणहार जन्म लेकर उसका संहार करता है। तारणहारको मारनेका प्रयत्न निष्फल जाता है। 'श्रीमद्भागवत', बाइबिल और कुरान इसके साक्षी हैं। 'श्रीमद्भागवत' का कंस केवल अपनी बहन देवकीकी सन्तानोंकी ही हत्या करता है, जबकि बाइबिल ओर कुरानका फिरौन इससेभी बड़ा अत्याचारी है और सल्तनतके हर घरमें होनेवाली सन्तानका वध इस भयसे करा देता है कि एक नजूमी भविष्यवाणी करता है कि एक वर्षके भीतर 'मुल्कमें कहीं एक ऐसा लड़का पैदा होगा, जो शहंशाहको कत्ल करके उन्हें तख्तो-ताजसे महरूम कर देगा।' (पृ. ४२) तो इसी फिरौनकी कहानी है —लेखक-द्वय मंजूर एहतेशाम और सत्येनकुमारके संयुक्त लेखनका 'एक था बादशाह'।

कृष्ण और फिरौनके जीवनमें साम्य और वैषम्य है —कृष्ण एक सामंत-पुत्र होते हुएभी ग्वालेका जीवन जीते और शक्ति-संग्रहकर एक दिन कंसका तख्ता उलट देते हैं, परन्तु स्वयं शासक नहीं बनते, जबकि फिरौन एक सामान्य मजदूरसे अपनी सूझ-बूझके द्वारा शहंशाहके दरबारमें पहले मंसबदार और बादमें शहंशाहको मारकर स्वयं शहंशाह बन जाता है। इसके बाद कृष्ण युद्धनीति और धर्मनीतिके व्याख्याता बनते हैं, जबकि फिरौन इंसान से हैवान बन जाता है, कंस बनकर अपने वजीरे-आजमके माध्यमसे वह घोषणा करा देता है कि उक्त एक वर्षके भीतर पैदा हुए तमाम लड़के शहंशाहपर सदका कर दिये जायें। फलतः स्वयं मलिका तो बांझ बनकर रहतीही है सारे देशके बालकोंको जन्म लेतेही मौतके घाट उतार दिया जाता है। नजूमीको उम्रकैद दे दी जाती है, बा[illegible] को दोस्त और वजीरे-आजम हामानको फांसी दे दी जाती तथा मलिकाको भी एक लड़केको छिपाकर पालनेके कारण शीश महलमें नजरबन्द कर दिया जाता और बांझ बना दिया जाता है। सारा देश कब्रिस्तान और असंख्य कब्रें नामुराद वृक्षोंकी तरह खड़ी हो जाती हैं। अन्तमें फिर कुछ नौजवान और पात्र फिरौनको घेर लेते हैं— यह एहसास दिलानेके लिए कि तारणहार अभी जिन्दा है। कदाचित् नजूमीकी भविष्यवाणी सही सिद्ध होती है।

आजके प्रसंगमें भी यह कथा सटीक बैठती है। परिवार-नियोजनके नामपर असंख्य स्त्रियोंको बांझ और पुरुषोंको पुसंत्वहीन बना दिया गया है और एक दिन वह आ सकता है, जब फिरौनी व्यवस्थाकी पुनरावृत्ति हो— [illegible] और [illegible] पुरुषोंके देशमें वात्सल्य रस पा[illegible]

मूर्ति बनकर रह जाये। इस देशकी धरतीको भी 'नस्ले-इंसानीसे ही निजात' मिल जाये परन्तु यह सच है, शासक कोईभी हो, मानवताकी पौधको आजतक कोईभी नेस्तनाबूद नहीं कर सका।

बारह दृश्योंमें बंटे इस नाटकमें पांच 'लोकेल' हैं—वीरान सराय, शहशाहका दरबार, फिरौनका महल, हामान का महल, मार्ग या चौक। शिल्पकी दृष्टिसे अपरिपक्व होते हुएभी कथ्यकी दृष्टिसे नाटक अर्थपूर्ण और सटीक है। इसे सम्मिश्र मंच—'कम्पोजिट स्टेज'—पर प्रतीक मंच या परदोंपर खेला जा सकता है। पात्रोंकी संख्या अधिक है—कमसे कम तीन स्त्री-पात्र चाहियें जिनमें मल्लिकाकी पात्रीको छोड़कर शेष दो पात्रियां पहले औरतों और बादमें खादिमाओंकी भूमिकाएं कर सकती हैं।

इस नाटकको रंगशिविर, भोपाल द्वारा वेनु गांगुलीके निर्देशनमें मध्यप्रदेश कला परिषद्के नाट्य महोत्सवमें प्रस्तुत किया जा चुका है।

भाषा उर्दू प्रधान है। एकाध प्रूफकी अशुद्धियां भी हैं, यथा हसारी (हमारी पृ. ४९), साज़ (सजा, पृ. ६०) आदि।

☐ डॉ. अज्ञात

शोध आलोचना

कबीरदास : चिन्तन और सर्जन

सम्पादक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित; प्रकाशक : मनीषी प्रकाशन, मेरठ। पृष्ठ : १३३; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

महात्मा कबीर हिन्दी साहित्यके उन कवियोंकी श्रेणीमें है जिनकी दीप्ति कभी धूमिल नहीं हो सकती। प्रत्युत दूसरे शब्दोंमें यहभी कहा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों कबीरकी वाणी अधिकाधिक ऊर्जस्वी और ओजमयी होती जाती है। कबीर वाणीके रहस्यको समझनेके लिए हियेकी आंखकी दरकार है।'ज्यों ज्यों निहारिये नैरे ह्वै नैनन त्यों त्यों खरी निखरै हि निकाई।' कबीर साहबको गुरु मानकर पंथ-पूजाभी प्रचलित है, भक्त मानकर साधनाके क्षेत्रमें भी कबीरकी आध्यात्मिक देनका महत्त्व स्वीकार किया जाता है। कवि मानकर काव्यके निकषपर भी कविताकी परीक्षा की जाती है। कुछ लोग कबीरको समाज सुधारकके रूपमें देखते हैं। और अब बीसवीं शतीके तीसरे चरणमें कबीरको जनवादी, वर्ग संघर्षवादी, समाजवादी और मानवतावादी भी कहा जाने लगा हैं। इसलिए कबीरके मौलिक चिन्तन एवं सृजन धर्मके विवेचन-विश्लेषणकी आवश्यकता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। प्रस्तुत पुस्तक इसी आवश्यकताको दृष्टिमें रखकर सम्पादित की गयी है।

पुस्तकमें १६ निवन्ध संकलित हैं। निबन्ध लेखकोंने स्वेच्छासे विषयोंका चयन किया प्रतीत होता है। कुछ ऐसे विषय इस पुस्तकमें नहीं है जो कबीर साहित्यको समझनेके लिए आवश्यक हैं। एक निवन्ध कबीरके जीवन-वृत्त, परिस्थिति और सुधारवादी दृष्टिकोणपर होना चाहिये था। एक दूसरा विषय है कबीरकी भक्ति-पद्धति। इन दोनों निबन्धोंके अभावमें कबीरके चिन्तन और सर्जन को सर्वतोभावेन ग्रहण नहीं किया जा सकता। कबीर जिस काल और परिस्थितिके बीच उत्पन्न हुए उसका क्या प्रभाव उनके चिन्तनपर पड़ा और उनके भीतर विद्रोह, सामाजिक क्रान्ति, दंभ-पाखण्ड क्योंकर पैदा हुआ यह जानना नितान्त आवश्यक है। कबीर मूलतः सामाजिक चेतनासे ओत-प्रोत भक्त-हृदय सहज मानव है। कविके रूपमें हम चाहें तो उन्हें आदर दे सकते हैं किन्तु कवि कर्म उनका लक्ष्य नहीं है। कविता कबीरकी अनुगामिनी है, विचार व्यक्त करनेकी शैली मात्र है जिसके लिए

कवीरने किसी रूपमें कभी कोई श्रम नहीं किया। अतः उनके चिन्तनके मूलमें यदि अध्यात्म और दर्शनको रखें तो कोई अपत्ति नही है किन्तु मैं समझता हूँ कि उनकी सामाजिक चेतनाका पक्ष किसीभी प्रकार ओझल नहीं किया जा सकता।

इस संकलनमें सम्पादक महोदयने जिन सोलह निबंधों को स्थान दिया है उनमें छह निबन्ध तो कवीरके रहस्य दर्शन, योगपरक मान्यता, लीलातत्त्व, दार्शनिक शब्दावली, उलटबांसी विषयक हैं। इन निवन्धोंको चाहें तो अध्यात्म और दर्शनकी सीमामें रख सकते हैं। किन्तु कवीरकी भक्ति पद्धति, निर्गुण भावना और ईश्वर विषयक मूल धारणापर प्रत्यक्ष प्रकाश नहीं पड़ता। दो-तीन निबंध काव्यशास्त्रसे सम्बद्ध हैं, कवीर साहित्यमें शब्द शक्ति, कबीर काव्यमें अन्योक्ति, कवीर साहित्यमें कवि-समय। कबीरकी बौद्धिकता शीर्षक निबन्ध है जिसके पहले वाक्य में ही वदतो व्याघात दोष है। कवि कर्मसे बौद्धिकताका सीधा सम्बन्ध लेखक नहीं मानता। शायद कविताको वह हृदय पक्षकी वस्तु समझता है। दूसरे वाक्यमें कविको जीवनका आलोचक ठहराकर बौद्धिक आधारको अत्यन्त आवश्यक मानता है। कवि कोई बुद्धिहीन प्राणी नहीं है। कवि जब कवि-कर्ममें प्रवृत्त होता है तब उसकी चेतना अत्यन्त प्रबुद्ध, जागृत ओर विवेकपरायण होती है। तुलसीने मानसकी रचना करते समय नाना पुराण-निगमागम-सम्मत धर्मका प्रतिपादन किया। बुद्धि जागृत, विवेक सतर्क और चेतना प्रबुद्ध बनी रही तभी वे रामचरित मानस जैसा श्रेष्ठ ग्रन्थ लिख सके। प्रसादकी कामायनी का मूलाधारही बुद्धि और दर्शन है। जीवनकी आलोचना के बुद्धि-विवेकही अनिवार्य तत्त्व हैं। आलोचना तटस्थ और बुद्धिसंगत कार्य है, वस्तुपरक आब्जेक्टिव कर्म है। शुद्ध आत्मपरक होकर जीवनकी आलोचना सम्भव नहीं। खैर, इस विवादमें न पड़कर हमें देखना है कि कवीरकी बौद्धिकताकी लेखनने किस कसौटीपर परीक्षा की है। मेरी अपनी दृष्टिमें मध्ययुगमें कबीरसे अधिक बुद्धि-प्रवण दूसरा कवि नहीं हुआ। वाह्याचारोंका खंडन, सच्चे ईश्वरकी प्राप्तिकी दिशामें प्रयत्नशील कर्मकांडके ढकोसलोंको दूर करनेकी वृत्ति बौद्धिक विमर्शकी ही उपज है। कबीरकी आधुनिक युगमें प्रासंगिकताकी पकड़के लिए कबीरकी उलटवांसियोंसे काम नहीं चलेगा, कवीरकी व्यवहार बुद्धि, लोकाचार और जीवन-दृष्टिको समझनेसे ही कवीको समझा जा सकेगा। सामाजिक आर्थिक एवं कर्मकांडगत रूढ़ियोंपर कुठाराघात करनेके लिए बौद्धिक चेतनाका ही संवल कवीरके पास था।

कविताके नये प्रतिमान : कवीरकी प्रासंगिकता शीर्षक लेखमें जो बिन्दु लेखकने उभारा है वह आचार्य द्विवेदीका ही अनुकरण-बिन्दु है। उसमें तथ्य है, कवीर का अभीष्टभी है और कबीरको समझनेका मन्त्रभी है किन्तु वह सर्वांगपूर्ण नहीं है। कवीरकी सहजता, प्रखरता और क्रान्तिकारिताको कबीरकी जीवन पद्धति कह सकते हैं, जीवन-दर्शन नहीं। जीवन और जगत्के विविध रूपों का आकलन करते समय जिस पद्धतिको स्वीकार करते हैं वही हमारा जीवन-दर्शनभी हो यह आवश्यक नहीं है। वस्तुको मापनेका पैमाना वस्तुका आभ्यन्तर रूप नहीं होता। कबीर जीवनमें सहज थे, वाणी और अभिव्यक्तियों में प्रखर थे, समाजकी जड़ मान्यताओंको तोड़नेमें उग्र और क्रान्तिकारी थे किन्तु इन समस्त क्रिया-कलापोंके बाद वे चाहते क्या थे? उनका जीवन-ध्येय क्या था? सोचना यह है कि कबीरका जीवन किस लक्ष्यका आकांक्षी था और कौन-सा वह जीवन-दर्शन था जिसे कवीर प्राप्त करना चाहते थे। समाज-सुधारका काम तो अपने सामाजिक कर्त्तव्य पालनके लिए किया। मूलतः कवीर मानवतावादी जीवन-दर्शनके उन्नायक थे जिसपर लेखकका ध्यान नहीं गया। सहजता, प्रखरता, क्रान्ति आदि किसी लक्ष्यतक पहुंचनेकी प्रक्रियाकी पगडंडियां हैं। जीवन-दर्शन का कोई सत्य होता है। जिसे सर्वश्रेष्ठ मानकर कोई साधक ग्रहण करता है। कबीरका सत्य मानवात्माकी पूजा है, आस्तिकता है, पाखंडसे पलायन है। कविताको जीवनके निकट लानेकी मांग आज बढ़ रही है। जन-सम्पर्कके लिए कविताको भाषाका अलंकृत रूप छोड़ना पड़ रहा है। कबीरने इसे पहलेही छोड़ दिया था। उन्होंने शास्त्रज्ञानका आधार न लेकर अनुभूत सत्यका आधार बनाया था अतः शब्दजालमें न फंसकर सहज-सरल शैलीमें उन्होंने बात कहना उचित समझा। आलोचकोंका उन्हें भय नहीं था। सपाटबयानी उन्होंने की है लेकिन गंभीर बातभी सहज कह दी है जिसे सपाटबयानी कहकर उड़ाया नहीं जा सकता। कबीर जब मानवतावादकी बात कहते हैं तो प्रेमतत्त्व या प्रेम-दर्शन उसकी पृष्ठभूमिमें होता है इसे भूलना नहीं चाहिये। कबीरकी प्रासंगिकताके लिए खोज-बीनकी जरूरतही नहीं है, उनकी प्रासंगिकता आधुनिक युग संदर्भके अनेक पक्षोंमें स्वतः उभरकर सामने आ जाती है।

एक लेख इस पुस्तकमें 'लीला तत्त्व और कबीरका भावबोध' शीर्षक है। निस्सन्देह शीर्षककी दृष्टिसे विषय नूतन प्रतीत होता है। इस लेखमें केवल लीला शब्दके आधारपर कबीरका भावबोध परखा गया है। ईश्वरकी लीलाही यह संसार है इस भावकी अभिव्यक्ति दो-एक स्थलोंपर कबीर-वाणीमें अवश्य है किन्तु वह लीला तत्त्व नहीं है। लीला तत्त्व वैष्णव भक्तों तथा दार्शनिकोंकी देन है। हां, औपनिषदिक लीला तत्त्वसे यदि साम्य खोजते तो शायद दो-एक बूंद लीलाकी मिल जातीं, लेकिन लेखकने दो पंक्तियोंके आधारपर लेख पल्लवित करनेका पराक्रम दिखाया है जो विषयके साथ बिल्कुल मेल नहीं खाता।

काव्यशास्त्र विषयक चारों लेख गंभीर है। उनके आधारपर उस तत्त्वकी शोध की जा सकती है जिसकी कबीरने कभी चिन्ता नहीं की और उनके पैरवीकार समीक्षक आचार्य द्विवेदीने काव्यशास्त्रीय तत्त्वोंको बाइ-प्रोडक्ट कहकर उपेक्षणीय बना दिया। कबीरकी भाषा की समीक्षा कई शोध-प्रबन्धोंमें की गयी है। गुणावगुणका विवाद छोड़कर हम कह सकते हैं कि मनकी बात सहज कहने और श्रोताको मुग्ध करनेवाली भाषा काव्यशास्त्रसे सर्वथा अनभिज्ञ कबीरके पास थी।

कबीरके नैतिक विचार, कबीरका लोक चिन्तन, मध्यकालीन भारतीय संस्कृति और कबीर तथा कबीरकी दृष्टिमें नारी शीर्षक लेख कबीरके चिन्तन पक्षको उजागर करते हैं।

सम्पादनकी दृष्टिसे पुस्तक उपयोगी है। छात्र समुदायमें इस प्रकारके विषयानुसार वर्गीकृत निबन्ध परीक्षोपयोगी होते हैं। सम्पादकने विषयोंका चयन सूझ-बूझके साथ किया है। यदि किसी लेखकने विषयके साथ न्याय न किया हो तो इसमें सम्पादकका दोष नहीं है। आजकल कबीरको समझनेके लिए इस प्रकारकी आवश्यकता है।

☐ डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

संवाद

लेखक : डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १५८; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

आधुनिक हिन्दी समीक्षाके क्षेत्रमें डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय एक परिचित और चर्चित नाम है। समस्त आग्रहों और दुराग्रहोंसे मुक्त होकर, संगत तर्कों और ठोस प्रमाणोंके आधारपर दो टूक बात कहना उनकी विशिष्ट शैली है। किन्तु वे कृतिको समस्त संभाव्य कोणोंसे देख कर उसकी उपलब्धियोंको बड़ी आत्मीयता और निश्छलतासे प्रतिष्ठित करते हैं। अपनी समीक्षा दृष्टिपर आश्वस्त होनेपर भी अपने निर्णयात्मक विश्लेषणोंको अतर्क्य अथवा आत्यन्तिक न मानकर प्रतिपक्षके संगत तर्कों और प्रश्नोंके प्रति स्वागतशील बने रहते हैं। उनकी प्रवृत्ति जहां एक ओर आत्मविश्वासका द्योतन करती है वहां दूसरी ओर आत्मस्थापन और हठधर्मितासे परे सच्चे साहित्यानुराग और संस्कारजात शीलको भी प्रमाणित करती है। 'संवाद' श्रोत्रियजीकी इसी प्रवृत्ति और कृति की बृहत्तर संभावनाओंको पानेकी हार्दिक आकांक्षाका परिणाम है। 'संवाद' में मुक्तिबोध, अज्ञेय, शमशेर, वीरेन्द्रकुमार जैन, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, कुंवरनारायण, धर्मवीर भारती, हरिनारायण व्यास, और दुष्यन्तकुमारकी रचनात्मक उपलब्धियों और विशेषताओंको विस्तारसे विवेचित करनेवाली समीक्षाओंके साथ इन समीक्षाओंपर संबद्ध रचनाकारों ('मुक्तिबोध' और भारतीको छोड़कर) की प्रतिक्रियाओंको यथावत् प्रकाशित किया गया है। हिन्दी समीक्षाके क्षेत्रमें किया गया यह सर्वथा अभिनव प्रयोग श्रोत्रियजीके साहस और आत्मविश्वासका परिचायक है। यह प्रयोग जहां आलोचक और रचनाकारकी दृष्टियों और मन्तव्योंके आलोकमें एक नया परिदृश्य उद्घाटित करता है वहींपर रचना और आलोचनाके अन्तरालको यथासंभव समाप्त कर देनेवाला एक स्निग्ध माध्यमभी प्रस्तुत करता है। इस दृष्टिसे संवादका ऐतिहासिक महत्त्व है।

'संवाद' में संगृहीत समीक्षाएं लब्धप्रतिष्ठ पत्रिकाओं में प्रकाशित और चर्चित हो चुकी है। आलोच्य कवि अथवा कृतिको समझनेका नया आलोक और दृष्टिकमभी उनसे मिलता रहा है। किन्तु इन समीक्षाओंके एकत्र संगृहीत होनेसे श्रोत्रियजीकी वस्तुगत रचनात्मक दृष्टि अपनी-अपनी सम्पूर्णतामें सामने आती है। श्रोत्रियजी रचना और आलोचनाके बीच परस्पर आदान-प्रदानात्मक सम्बन्धके पक्षपाती हैं। उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार रचना अलोचनाके लिए खुली हुई है उसी प्रकार रचनाकारभी आलोचनाको चुनौती दे सकता है। रचनाकार और आलोचककी दृष्टिके वैषम्यसे विवेकशील पाठक पुनर्विचारके लिए बाध्य होता और सक्रिय चैतन्यके साथ

मार्मिक संवादमें शामिल होता है। अपनी समीक्षाओंके साथ रचनाकारोंकी प्रतिक्रियाओंको यथावत् प्रकाशितकर श्रोत्रियजीने अपने लिए खतरा उठाते हुएभी पाठकोंके सामने रचनाकारों और रचनाओंको समझनेका एक नया परिदृश्य उपस्थित किया है। यह विशेष रूपसे ध्यातव्य है कि सम्पादककी हैसियतसे श्रोत्रियजीको दो सुविधाएं सहजही उपलब्ध थीं। वे प्रति-आलोचनाओंके आपत्ति-जनक अंशोंको हटाकर अथवा यथासम्भव परिवर्तन करके अपनी स्थितिको निरापद कर सकते थे अथवा अपनी स्थापनाओंमें कुछ परिवर्तन करके प्रति-आलोचनाओंकी बेधकताको कुण्ठित और प्रभावहीन कर सकते थे, किन्तु ऐसा करनेसे न केवल अपने और पाठकके विवेकके साथ अविश्वास होता अपितु कृतिको पूर्णतामें पानेका पवित्र उद्देश्यभी विफल हो जाता।

डॉ. श्रोत्रिय, त्रुटियोंकी शोधको आलोचनाका व्यवसाय धर्म नहीं मानते। उनके लिए आलोचनाका मूल धर्म रचनाको सम्पूर्ण रूपमें उपलब्ध करना है। इसीलिए वे प्रत्येक कृतिके मापदण्डोंको रचनाके भीतरसे ही उपलब्ध करनेका प्रयत्न करते हैं। अपनी उम्मीदसे किसी कृतिके मूल्यांकनको सिरके बल चलने जैसा विवेकशून्य कार्य मानते हैं। वे एक मर्मी और रसज्ञ आस्वादककी अनाग्रही आकांक्षासे काव्यकी अतल गहराईमें डूबकर अपने द्वारा आविष्कृत मूल्योंको निष्ठा और विश्वासके साथ प्रतिष्ठापित करते हैं। यही कारण है कि 'संवाद' में संगृहीत, विभिन्न रुचियों, प्रवृत्तियों और संस्कारोंवाले कवियोंकी समीक्षाएं समान तल्लीनतासे लिखी जा सकी हैं। अपनी वस्तुगत तटस्थता और वादमुक्तताके कारण वे जहाँ काव्यकी मूल संवेदनातक निरवरोध पहुंचनेकी शक्ति प्राप्त करते हैं वहीं दुर्बल पक्षोंको रेखांकित करने की साहसिक और आत्मविश्वासपूर्ण निर्भीकताभी प्राप्त करते हैं। आलोच्य कवियोंकी समस्त उपलब्धियोंकी हार्दिक स्वीकृति और प्रतिष्ठाके साथही त्रुटियों, अभावों और विसंगतियोंका रेखांकनभी बड़ी स्पष्टतासे किया गया है। कृतिको सम्पूर्णतामें पानेके उद्देश्यसे ही वे विविध कोणोंसे उपलब्ध उसके धनात्मक और ऋणात्मक पक्षोंपर प्रकाश डालते हैं। उनकी यह रचनात्मक प्रवृत्ति 'संवाद' के सभी लेखोंमें द्रष्टव्य है।

'मुक्तिबोध' की रचनात्मक उपलब्धियोंपर विचार करते हुए श्रोत्रियजीने 'मुक्तिबोध' की कविताको सम्प्रा-णता और कालजयिता प्रदान करनेवाली मूल संवेदना और सृजनात्मकताको बड़ी मार्मिकतासे उद्घाटित किया है। 'मुक्तिबोध' की सृजन प्रक्रिया और उनके काव्यकी संरचनात्मक आंतरिकताकी गहरी छानबीन करते हुए श्रोत्रियजीने ठोस उदाहरणोंके साक्ष्यपर यह स्थापित किया है कि 'मुक्तिबोध' की कविता संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनके अविरल घात-प्रतिघात, प्रतिक्रियावादी शोषक शक्तियोंके विरुद्ध निरन्तर चलनेवाले संघर्ष; मनुष्य की मुक्ति और कल्याणकी आकांक्षासे प्रेरित सर्जनात्मक संघर्षकी आत्यंतिक परिणति है। उनके मिथक कविता को कालसे जोड़नेवाली सांस्कृतिक प्रक्रियाके रूपमें प्रस्तुत होते हैं। मुक्तिबोधपर लगाये गये आरोपोंका उत्तर देते श्रोत्रियजीने उनकी कविताकी व्याप्तिको विस्तारसे विश्लेषित किया है। उनकी कवितामें करुणा, विद्रोह और आस्थासे उत्पन्न होनेवाली सौन्दर्य और संघर्षकी विलक्षण सृष्टिको रेखांकित करते उसकी उस अन्यतम शक्ति को भी इंगित किया गया है जहां वह विद्रोहकी प्रेरणाके साथ तर्कसंगत विवेकभी प्रदान करती है। 'मुक्तिबोध' की बहुचर्चित कविता 'अंधेरेमें' को प्रातिनिधिक स्तरपर विश्लेषित करके मुक्तिबोधके संरचनात्मक संघर्षसे लेकर फलात्मक परिणतियोंतक की जटिल फैंटेसीके विविध स्तरों, अर्थ समृद्धियों, अन्तर्दर्शनकी प्रतिक्रियाओं, दिक्काल की अन्वितियों आदिको बड़ी तल्लीनताके साथ विश्लेषित किया गया है। 'अज्ञेय' के कवि जीवनके आरम्भसे अद्यतन विकास और उनके विविध पड़ावोंको दृष्टिमें रखते हुए श्रोत्रियजीने अपनी समीक्षा प्रस्तुत की है। 'अज्ञेय' की कवितामें सांस्कृतिक चैतन्य, वैश्विक चेतनाकी संपृक्ति, अनुभवकी ताजगी, उत्कट एवं गतिशील प्रयोगशीलता, बहुस्तरीयता, शैलिपक सिद्धि, अभिव्यक्ति—माध्यमके व्यंजकत्व आदिको महान् उपलब्धिके रूपमें स्वीकार किया गया है, किन्तु उनकी कवितामें आयी सूत्रात्मकता, अन्तर्मुखता, परिवेशगत दबावकी कमी, वैयक्तिकता, ग्रामीण शब्दोंके अनगढ़ और विसंगतिपूर्ण प्रयोगकी सायासता आदिको अभावात्मक पक्षके रूपमें रेखांकित किया गया है। शमशेरके काव्यकी समीक्षा करते समय डॉ. श्रोत्रिय कुछ अधिक अभिभूत प्रतीत होते हैं। वे शमशेरकी कविता को आलोच्यकी अपेक्षा आस्वाद्य अधिक मानते हैं। शमशेरकी रोमांसिक और प्रगतिशील जैसी दो विरोधाभासी प्रवृत्तियोंके बीच एक अविभाज्य अन्तःसम्बन्ध लक्षित करते हुए श्रोत्रियजीने यह सिद्ध किया है कि शमशेरका सम्पूर्ण वैयक्तिक उल्लास और करुणा सामाजिक उल्लास

और करुणाके स्तरपर व्यक्त होकर उन्हें अन्य रोमांसिक कवियोंसे अलग कर देता है। शमशेर सम्बन्धी पूर्ववर्ती निष्कर्षोंको भ्रामक और अविचारित घोषित करते हुए यह सिद्ध किया गया है कि प्रगतिशील रचनाओंके साथ होनेवाला शमशेरका संघर्ष एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। रूप वैविध्य और रूप विन्यासकी सिद्धियोंके आधार शमशेरके काव्यको कलाओंकी सिफानीके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया है। जटिलता और दुरूहताके संदर्भमें श्रोत्रियजीका तर्क है कि शमशेरकी कविताएं प्रज्ञापरक आत्मकी सृष्टि होनेके कारण, अनुभव, ऐन्द्रिक प्रशिक्षण और आत्मिक संवेदनकी अपेक्षा करती हैं।

वीरेन्द्रकुमार जैनके अध्यात्म पर्यवसायी बोध और अतीन्द्रिय जगत्में विचरणकी अतिमानसिक प्रवृत्ति तथा विलक्षण सृजनात्मक प्रतिभाके अनोखे मिश्रणसे उत्पन्न विलक्षण रागमयी अनुभूतिके विश्लेषणके साथ श्रोत्रियजी ने उनकी कविताको देह-मन-प्राणके मंथनसे निकला अमृत तत्त्व कहा है। उनकी कविताकी अदम्य भास्वरता, उदात्त गहराई और अर्थ-ससृद्धिकी पूर्ण प्रतिष्ठा करते हुएभी श्रोत्रियजी उनके इटर्निटी-बोधसे ग्रस्त आध्यात्मिक ऊर्ध्वगमनकी संश्लिष्ट अभिव्यक्तियोंको केवल आत्मगत उपलब्धिके रूपमें स्वीकार करते हैं। उनका तर्क है कि आध्यात्मिकताका सामूहिकीकरण न कर पानेके कारण वीरेन्द्रकुमार जैनकी कविताएं दलित, शोषित मनुष्य समूहके संघर्षकी कोई प्रेरणा नहीं दे पातीं। भवानीप्रसाद मिश्रकी सुदीर्घ काव्य-यात्राका अनुशीलन करते हुए उनकी आत्ममेधी साधना और जीवनकी अन्तर्वाही संगति को कविताके अनिवार्य घटकके रूपमें रेखांकित किया गया है। वादमुक्त होकर मानव आत्माके खालिस दुःख-सुखको अभिव्यक्ति देते हुए, प्रकृति और जीवनके बीच समन्वय की निरन्तर तलाशको मिश्रजीके काव्यका उपजीव्य माना गया है। मिश्रजीकी गहरी संवेदना, पाखण्डहीन सिसृक्षा, आत्मीय संवादिता, परम्पराको आधुनिकतामें रूपान्तरित करनेकी प्रवृत्ति, सही कवितासे जनताका सीधा साक्षात्कार करानेकी क्षमता, सहज विश्वसनीयता जैसे गुणोंके साक्ष्य पर श्रोत्रियजीने मिश्रजीको आधुनिक नव्यतर चेतनाके कवि के रूपमें प्रतिष्ठित किया हैं। उत्तरवर्ती रचनाओंके हवाले से उन्होंने मात्रात्मक विपुलताके साथ गुणात्मक ह्रासकी आशंकाभी व्यक्त की है।

नरेश मेहताके काव्यमें विविध स्तरोंपर उपलब्ध मधुकरी वृत्ति और विमुग्धकारी विलक्षणताओंका विश्लेषण बड़ी मार्मिकतासे किया गया है। नरेश मेहताकी ललित शिल्प योजना, कमनीय शब्दावलीके कोमल कलेवर में प्रखर और परुषकी विलक्षण व्यंजकता, लोक भाषा और सांस्कृतिक भाषाकी सही पहचान, सूक्ष्म सांकेतिकता, विम्ब विधानकी नव्यता जैसी उपलब्धियोंकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करते हुएभी श्रोत्रियजीने उनकी कवितामें रूपतंत्र की कमजोरी, प्रसंगोंकी स्थूलता,विखरावपूर्ण संरचनात्मक शिथिलता, वैचारिक अन्तर्विरोधोंसे उत्पन्न विसंगति, वर्तनीकी विकृतिसे भाषाके स्वभावकी अवहेलना, अकाव्यात्मक वर्णनात्मकता, भाषाके अतिवादी छोरोंकी अस्वाभाविकता जैसी कमजोरियोंको तर्कों और उदाहरणों द्वारा बड़ी स्पष्टतासे रेखांकित किया है। कुंवरनारायणके काव्यकी समीक्षाके क्रममें श्रोत्रियजी नयी कविताकी संवेदना, उसकी बनावट और बुनावटकी विस्तृत चर्चा करते हुए काव्य-सृजनकी प्रक्रियामें तत्त्वबोध और बौद्धिक सक्रियताके औचित्यको सिद्ध किया है। 'आत्मजयी' के सम्बन्धमें उठाये गये प्रश्नों और आरोपोंका तर्कसंगत उत्तर देते हुए श्रोत्रियजीने 'आत्मजयी' को दर्शन, वस्तु-बोध और कलात्मक अवधारणाको जातीय स्मृति और वर्तमान प्रश्न-व्यथाके साथ जोड़नेवाली एक विशिष्ट कृति के रूपमें स्वीकार किया है। किन्तु सृजन प्रक्रियामें छायावादी प्रवृत्ति, अवांछित परम्पराओंसे विद्रोहमें तीव्रताकी कमी, अग्निविज्ञानकी उपेक्षा जैसी कतिपय कमजोरियों को भी उन्होंने बड़ी स्पष्टतासे रेखांकित किया है। धर्मवीर 'भारती' की कृतियोंकी समीक्षामें 'कनुप्रिया' और 'अंधायुग' से पूर्वकी रचनाओंको, समसामयिक प्रश्नों और तनावोंसे निर्लिप्त होनेके कारण औचित्य बताया गया है, किन्तु 'कनुप्रिया' को रागविस्तार और राग गांभीर्यके साक्ष्यपर भारतीजीके कवि व्यक्तित्वका चरमोत्कर्ष और सम्पूर्ण रूपायनकी स्वीकृतिके साथही आधुनिक प्रेमकाव्य की अद्वितीय उपलब्धि माना गया है। 'अन्धायुग' के सम्बन्धमें श्रोत्रियजीने अनेक बुनियादी प्रश्न उठाये हैं। कृष्णके चरित्रमें दार्शनिक आग्रह, चिंतन, निरूपण और चित्रांकनमें संगति तथा अन्वितिका अभाव, गहरे विश्लेषण और रचनात्मक धैर्यका अभाव, प्रसंगोंकी अनियंत्रित भीड़, बिम्बात्मक भाषा आदि विपरीत प्रभावोंको साधार स्पष्ट किया गया है, किन्तु इन कतिपय कमजोरियोंको रेखांकित करनेके साथही डॉ. श्रोत्रियने 'अन्धायुग' को बहुआयामी समृद्धिसे पूर्ण एक सम्भावना सम्पन्न कृति

माना है। वे उसे काव्य नाटकके इतिहासमें मीलका पत्थर और नाटकमें कविताके उपयुक्त मंचकी खोज करने वाले नाटकोंकी नींव माना है।

हरिनारायण व्यासके काव्यका मूल्यांकन करते श्रोत्रिय जीने कृति और कृतिकारके जीवन-बोधके अन्त:सम्बन्धोंको बड़ी मार्मिकतासे स्पष्ट किया है। उन्होंने अपने तर्कों और उदाहरणोंसे सिद्ध किया है व्यासजी जीवनके विविध स्तरोंपर अनुभव की जानेवाली पीड़ाके व्याख्याताही नहीं सहभोक्ताभी हैं। इसीलिए उनके कवि मनमें चलनेवाला चौतरफा संघर्ष और मानवीय मूल्योंके विघटन तथा सांस्कृतिक ह्राससे उत्पन्न व्यथा उनकी कविताओंमें जीवन्त अभिव्यक्ति पाती है। अन्यान्य आघातों और उद्वेलनोंके बीचभी अपने वस्तुगत बोधकी दृढ़ताको बनाये रखना व्यासजीकी काव्यात्मक उपलब्धियोंको बड़ी निष्ठा के साथ उभारा गया है किन्तु उनके काव्यके कुछ महत्त्व-पूर्ण पक्ष छूट गये हैं। दुष्यन्तकुमारकी काव्य-यात्राका लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए उनकी रचनाओंमें भावपरक संवेदनाकी मार्मिकता, अन्तर्क्षोभकी सक्रियता, सृजनके धरातलपर उत्कट जिजीविषा, भाषागत विविध प्रयोग एवं भाषाके सामान्यीकरणकी प्रवृत्ति जैसी उपलब्धियोंके विश्लेषणके साथ उनकी गज़लोंमें रागके उन्नयनके साथ अन्तर्वर्ती गीति सत्ता और परिवेशमूलक मूल्यबोधके विलक्षण समन्वयको विशिष्ट उपलब्धिके रूपमें स्वीकार किया गया है। किन्तु आत्मस्थापनकी अतिरिक्त चेतना, आधुनिक विचारोंके अतिरिक्त दबाव, सांस्कृतिक बोधको धक्का पहुँचानेवाले प्रतीकीकरण, कथापर कथ्यके आरो-पण, काव्य नाटकमें नाटकीय बिंब और भाषाकी चाक्षुष भंगिमाके आदिसे उत्पन्न कमजोरियोंको भी स्पष्ट किया गया है।

डॉ. श्रोत्रिय यद्यपि किसी उम्मीदसे रचनाके मूल्यां-कन पक्षपाती नहीं है तथापि साहित्य अथवा काव्यके सम्बन्धमें उनकी कुछ मूलभूत धारणाएं हैं। इन्हीं धार-णाओंके आधारपर कृतियों और कृतिकारोंका तुलनात्मक विवेचन संभव होता है। वे काव्यमें एकान्तिक कला-साधना अथवा आत्मसाधनाके पक्षपाती नहीं है। उनका स्पष्ट कथन है कि, 'कविता सामाजिक यथार्थकी परंपरासे ही विकसित होनी चाहिये क्योंकि वह कविता जीवनको जोड़े रखती है और गहरी काव्य-प्रवृत्तियोंके लिए समझ सोचका रास्ता बनाती चलती है।' वे कविताको पारिवे-शिक संदर्भमें मूल्यान्वेषण और मूल्यालोचन करनेवाली जागतिक घटना और सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते हैं। यही कारण है कि मुक्तिबोध और भवानीप्रसाद मिश्रकी ओर वे अधिक आकर्षित हो सके हैं। उनके लिए कविता में युगबोधकी संपृक्ति और मानवीय कल्याणके प्रति व्या-पक दायित्व चेतना आवश्यक तत्त्व है।

श्रोत्रियजी अपने मूल्यांकनका दावा पेश करनेकी हठधर्मिता नहीं दिखाते, रचनाकी मूल संवेदनातक पहुँचने के निष्ठापूर्ण प्रयासको ही महत्त्व देते हैं। पुस्तकके आरंभ में दिया गया 'स्टीफेन स्पेंडर' का अभिमत उनकी इसी दृष्टिका सूचक है। यही कारण है कि वे जब किसी दुखती रगका स्पर्श करते हैं तो उनका संस्कारजात शील और संवेदनशील हृदय तिलमिलाने लगता है। लगता है कि इस मर्माघातसे रचनाकारकी सम्भाव्य पीड़ा उनके सामने सगुण साकार हो गयी है। परिणामस्वरूप रचना के अतलमें उतरकर उन बिन्दुओंकी खोजमें तल्लीन हो जाते हैं जिससे एक सानुपातिक संतुलन सम्भव हो सके। वे कृतिकी कमजोरियोंकी खोज कृतिको अधिक पूर्णतामें पानेके उद्देश्यसे करते हैं इसीलिए उन्हें उपलब्धियोंकी सापेक्षतामें प्रस्तुत करते हैं; कृतिकी कमजोरियोंको मूल्यांकन अथवा स्थापनाके रूपमें न रखकर प्रासंगिक टिप्पणियोंके रूपमें प्रस्तुत करते हैं। वे अपनी समीक्षा-दृष्टि को कृतितक ही सीमित न रखकर कृतिकी सभावनाकी ओर ले जाते हैं।

अपनी समीक्षण प्रक्रियामें श्रोत्रियजीने अनेक स्थलों पर नयी कविताकी पहचानोंको रेखांकित करते हुए नयी कविताकी प्रकृति और उसकी दिशाका तात्त्विक विश्लेषण किया है। वस्तु और शिल्पपक्षके विविध आयामोंको वर्तमान संदर्भमें विश्लेषित करते हुए रचनाकारके आन्तर संघर्ष और अभिव्यक्तिके संकटके प्रभावसे कविताके बदलते तेवरको बड़ी स्पष्टतासे रेखांकित किया है। ये टिप्पणियाँ नयी कविताकी पहचानको अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाती हैं।

श्रोत्रियजीकी रचनात्मक समीक्षामें, कभी-कभी रच-नात्मकता इतनी उदग्र हो जाती है कि उनका समीक्षक एक भावुक कविकी भूमिकामें उतर आता है। आस्वादके मुग्ध क्षणोंमें उनकी अभिव्यक्ति सहजही काव्यात्मक हो जाती है। इस संदर्भमें एक बात विशेष लक्षणीय है। आलोचनकी प्रक्रियामें वे आलोच्य कविके साथ इस हद तक तन्मय और तल्लीन हो जाते हैं कि उनकी आलोचना में आलोच्य रचनाकारकी भाषा और अभिव्यक्ति-प्रणालीका

भ्रम होने लगता है। 'संवाद' के लेखोंको एकसाथ पढ़ने पर भाषाकी वैविध्यपूर्ण सर्जनात्मक क्षमताको सरलता से देखा जा सकता है।

श्रोत्रियजीकी पूर्वाग्रहमुक्त ईमानदारी और गहरी पैठका ही परिणाम है कि अपनी प्रति-आलोचनामें सहज सम्भावनाके विपरीत सभी रचनाकारोंने उनकी आत्मीयता, श्रमशीलता, तटस्थता, महीन संकेतोंकी पकड़, नीर-क्षीर विवेकसे सम्पन्न वस्तुपरक दृष्टिकी सराहना की है। कतिपय निष्कर्षों और स्थापनाओंसे मतभेद तो स्वाभाविकही नहीं आवश्यकभी था अन्यथा इस सम्पूर्ण उपक्रमका क्या अर्थ होता? किन्तु इन निबन्धोंकी उपलब्धियोंकी सापेक्षतामें रचनाकारों द्वारा प्रस्तुत की गयी आपत्तियां अत्यल्प है। कुछने तो स्पष्टतः स्वीकार किया है कि श्रोत्रियजीकी समीक्षा उनकी कविताको सही दृष्टि क्रममें समझनेका मार्गदर्शन करते हुए उसे अपेक्षित प्रतिष्ठा प्रदान करती हैं। कुछने उनकी समीक्षाके आलोकमें अपने कृतित्वसे पुनर्साक्षात्कारका बोध किया है। कमसे कम इतना तो सभीने स्वीकार किया है कि उन्हें समझनेकी श्रोत्रियजीने पूरी ईमानदारी और निष्ठासे हर सम्भव कोशिश की और इसके लिए सभीमें हार्दिक कृतज्ञताका भाव है।

इन तथ्योंके आधारपर कहा जा सकता है कि श्रोत्रियजीने प्रस्तुत कृतिमें प्रवहमान काव्य-धाराके प्रतिनिधि कवियोंका गहरा और मार्मिक विवेचन करके नयी हिन्दी कविताकी पहचानोंको विश्वसनीय और व्यापक बनाया है। आलोचनाओं और प्रति-आलोचनाओंको आमने-सामने रखकर उन्होंने कविताको सही दृष्टिक्रममें समझनेका न केवल नया परिदृश्य उद्घाटित किया है अपितु रचना, आलोचना और पाठकके बीच आत्मीय संवादकी भूमिका निर्मित करनेका ऐतिहासिक कार्यभी किया है।

❑ रामजी तिवारी

कलाका जोखिम

लेखक : निर्मल वर्मा; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १२१; डिमा. ८१; मूल्य : २२.०० रु.।

सर्जनात्मक प्रतिभाके आलोचनात्मक लेखनमें सदा एक नयी चमक होती है जो शब्द परिवेशके प्रति उसकी ईमानदार जागरूकता और अनुभवकी गहराईसे उत्पन्न होती है। समस्याएं नयी भंगिमाओंके साथ उभरती हैं, देशी-विदेशी चिन्तनके आइनेमें उनका 'प्रत्यभिज्ञान' किया जाता है और फिर समर्थ रचनाकार उनके लिए अपने समाधान खोजता है। समस्याएं अक्सर कलाके मूलभूत प्रश्नोंसे सम्बद्ध होती हैं और अक्सर सनातन होती हैं। मिसालके लिए, कलाके जोखिमकी बात। प्राचीन यूनान में प्लेटोके समयमें कलाके लिए एक खास तरहका खतरा उत्पन्न हो गया था, रोमन कैथलिकोंके समयमें दूसरे तरहका, भारतमें मीमांसकोंकी दुनियांमें एक तीसरे तरह का, और यह जो आधुनिक सभ्यतामें कलाके लिए उत्पन्न खतरेका अहसास है, यह उसका चौथा रूप है और १८वीं शताब्दीसे ही इसपर चर्चा चल रही है। निर्मल वर्माके अनुभव-संसारमें यह खतरा एक नयी भंगिमाके साथ उभरता है—'हमारे युगका विशिष्ट अभिशाप यह है कि जहाँ कला एक तरफ मनुष्यके कार्य-कलापसे विगलित हो गयी है, वहां दूसरी तरफ वह एक स्वायत्त सत्ता भी नहीं बन सकी है, जो स्वयं मनुष्यकी खंडित अवस्थाको अपनी स्वतन्त्र गरिमासे अनुप्राणित कर सके। कलाका जोखिम यही है कि वह आजकी जड़ित पराधीन होती हुई सभ्यता में सम्पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र रह सके और स्वतंत्र रहकरभी अपने अलगावका अतिक्रमण कर सकें।'

आलोच्य पुस्तकमें लेखकके कुल ११ निबन्ध संकलित हैं। इनको तीन उपशीर्षकों 'रचना-चिन्तन', 'रचनाकार' और 'रचना-यात्रा' के अन्तर्गत रखा गया है। इस सभी निबन्धोंमें लेखकने कलाके उक्त जोखिमका किसी-न-किसी रूपमें साक्षात्कार किया है, और इस दृष्टिसे प्रस्तुत संकलनमें कामोबेश एकसूत्रता विद्यमान है।

आजकी दुनियांमें कलाके लिए जोखिमका अनुभव निर्मल वर्मा रचना, रचनाकार, आलोचना और पाठक सभी स्तरोंपर करते हैं। और युगका जो व्यापक परिवेश है वह तो खतरेका मूल कारण है ही। इन सभी रूपों और संदर्भोंमें 'जोखिम' का साक्षात्कार करनेकी प्रक्रियामें निर्मल वर्मा अनेक सौन्दर्यशास्त्रीय समस्याएं उठाते हैं जिनसे प्रस्तुत संकलनमें पर्याप्त गांभीर्य आ गया है। वे इन समस्याओंको उठाकर उनपर अपने ढंगसे विचार करते हैं और अपना अभिमतभी स्थापित करते हैं जिससे समग्र लेखन पर्याप्त रोचकभी हो गया है और सौन्दर्यशास्त्रीय समस्याओंसे उलझनेके लिए उपयोगीभी। उदाहरणके

लिए, निर्मल वर्मा कहते हैं कि मानव जातिका प्राथमिक पतन तब हुआ जब वह प्रकृतिके अभिन्न सम्बन्धसे टूटी थी। आजकी सभ्यताका संकट उसी ऐतिहासिक क्षणसे शुरू हो गया था और हमें 'घसीटकर' अणु युगतक ले आया है। इस क्रममें मानव जातिके पतनकी एक और स्थितिभी उत्पन्न हुई जब वह समाजसे भी टूट गया। इन दोनों स्थितियोंके कारण मनुष्यके भीतर एक भयावह अकेलापन और अनाथ हो जानेकी कातरता उत्पन्न हुई। लेखककी स्थापना है कि 'मिथक' प्रकृति और देवताओं का मानवीकरण करके प्रागैतिहासिक मनुष्यके इस आघात आतंकको कम कर सकते हैं। कला बहुत कुछ 'मिथक' की भूमिका निभा सकती है लेकिन जोखिम यह है कि आजकी स्थितियाँ इसमें बाधक हैं।

यह तो हुआ कलाकृति और परिवेशके स्तरका जोखिम। आलोचना और मूल्यांकनके स्तरभी कलाके लिए जोखिम है। आज पुराने रचनाकारों और उनकी रचनाओंको प्रासंगिकताके सवाल उठाये जाते हैं। पूछा जाता है कि प्रेमचंद क्या आज हमारे लिए 'उपयोगी' हैं? यदि है तो वे प्रासंगिक हैं, नहीं हैं, तो नहीं। लेखककी दृष्टिमें प्रासंगिकताका यह निकष गलत है, बल्कि हास्यास्पद है और कलामात्रके लिए एक प्रकारका खतरा पैदा करता है। वास्तवमें, कलामें प्रासंगिकताकी समस्या ऐतिहासिक समयपर निर्भर नहीं करती, वह उन प्रश्नोंसे सम्बन्ध रखती है जो समाज, संस्कृति, इतिहास और परम्परासे जुड़कर भी कहीं सतहके नीचे समूचे मनुष्यकी नियतिको छूते हैं...।'

इसी प्रकार, रेणुकी औपन्यासिक कृति 'परती : परिकथा' पर विचार करते हुए निर्मला वर्मा रचनाको आलोचकों द्वारा अपने 'सैद्धान्तिक मानदण्डोंके अमूर्त चौखटोंमें फिट करने' अथवा 'मानदण्डों' से संत्रस्त हो जानेकी भर्त्सना करते हैं। इस प्रकारकी स्थितियांभी कलाके लिए जोखिम हैं।

इस प्रक्रियामें निर्मल वर्मा मिथककी रचना प्रक्रिया, कलाकी प्रकृति, काव्य-भाषाके स्वरूप, उपन्यास और काव्यकी भाषामें तारतम्य, आलोचनाके स्वरूप आदि अनेक सौन्दर्यशास्त्रीय समस्याएं उठाते हैं और उनपर अपना सुचिंतित मत प्रस्तुत करते हैं। यह आवश्यक नहीं कि इस संबंधमें लेखककी सभी स्थापनाओंसे सहमत हुआ जाये। वास्तवमें, उत्कृष्ट वैचारिक लेखनका निकष यह होता है कि वह जागरूक अध्येताके सामने समस्याओं के नये क्षितिज उद्घाटित कर देता है और अध्येता उसमें इतने समर्थ संकेतभी प्राप्त कर लेता है कि वह स्वयं सोचनेके लिए अपनेको बहुत उन्मेषित अनुभव करता है। 'कलाका जोखिम' इस निकषपर सफल रचना है और फिर, इसमें जो समस्या उठायी गयी है उसके सम्बन्धमें लेखककी बेचैनी और छटपटाहट सारे लेखनको बहुत पैना और मार्मिक बना देती है।

☐ डॉ. प्रेमकान्त टंडन

'प्रकर' : अगस्त'८२ पंजीकरण संख्या : १७५८२/६९ डाक पंजीकरण : डी (डी) ५६६

आगामी अंकमें

☐ **आदान-प्रदान** : हिन्दीके 'तप्त साहित्य' की भांति मराठीका दलित साहित्यभी आन्दोलनात्मक है। दलित साहित्य को मूल प्रेरणा मिली डॉ. बाबा साहेब आंबेडकरके उस सवर्णविरोधी धर्म-युद्धसे जिसे उन्होंने हिन्दू धर्मका परित्यागकर बौद्धधर्म अपनानेपर अस्पृश्योंके लिए १९६५ में प्रारम्भ किया था। दलित वर्गकी कुण्ठा-यातना-वेदनाको व्यक्त करना, इस वर्गपर हो रहे अन्यायों-अत्याचारोंको वाणी देना तथा अदलित वर्गमें परिमार्जनकी भावना जगानेकी दृष्टिसे उसपर तीखे प्रहार करना, यही मूलतः दलित साहित्यके सृजनका लक्ष्य रहा है। इस प्रकार **'दलित कहानियां' [सम्पादक : सूर्यनारायण रणसुभे तथा कमलाकर गंगावणे]** दलितोंकी दीनता-हीनता, उपेक्षा-अपमान तथा संघर्ष-विद्रोहका जीवन्त इतिहास है। इनमें सवर्णोंकी ओरसे होनेवाले अन्याय-अत्याचारके प्रति भरपूर आक्रोश है। समीक्षक हैं : **डा. शंकर पुणतांबेकर**।

☐ **इतालवी कविता [सम्पादक : कृष्ण खुल्लर]** ; बारहवीं शतीसे लेकर अद्यतन कवितातक इटलीके २५ कवियों की ४५ कविताओंका हिन्दी काव्यानुवाद इस पुस्तकमें है। इन कविताओंमें रंग अनेक हैं। इन कविताओंके साथ चलकर अगर हम वक्तके कदम नाप सकते हैं और फिरभी अनुभव कर सकते हैं कि समयके संकेतोंकी रक्षा करते हुएभी इन कविताओंकी कलात्मकता कुंद नहीं हुई है, कविता इनमेंसे नहीं मरी है। कविता और कलाके पक्षमें तो यह एक बड़ीही महत्त्वपूर्ण बात है। आस्था और प्रभुभक्ति हो या मृत्युबोध, काम हो या मोक्ष, विनय हो या आक्रोश, नागर जीवन हो या ग्रामीण, इन कविताओंके दायरेमें सिमट आया है। प्रकृतिभी है और मनुष्यभी है। एक सर्वांगीण जीवन, जीवनका प्रवाह, इन कविताओंमें है। समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित**।

☐ **रचना अने संरचना [डॉ. हरिवल्लभ भायाणीके भाषणों, लेखों, टिप्पणियों आदिका प्रकाशित संग्रह]**; इस गुजराती समीक्षा ग्रन्थको साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत किया गया है। लेखकके समग्र कृतित्वका समाकलनकर किसी एक कृतिके माध्यमसे लेखकको समादृत करनेकी जो पद्धति अपनायी गयी है, उसीके अन्तर्गत यह गुजराती कृतिभी पुरस्कृत हुई है। इस कृतिकी विशेषता है कि एकसाथ इतिहास, तुलना और समीक्षाका सामंजस्य किया गया है; समीक्षाकी प्रकृति ऋजु है; लेखककी विरल-अद्भुत ज्ञान और संश्लेषण शक्तिका परिचय मिलता है। इस पुस्तककी परिचयात्मक समीक्षा प्रस्तुत कर रहे हैं : **डॉ. सुरेशचन्द्र त्रिवेदी**।

☐ **काव्य-संकलन** : कवि त्रिलोचनके **'उस जनपदका कवि हूं'** में १९५०-५४ में लिखे १०६ सॉनेट संगृहीत हैं। संगृहीत सॉनेटोंमें विषयगत एवं वस्तुगत विविधता है। अनेक सॉनेटोंका विषय स्वयं कवि है। ग्रामीण जीवनके प्रति लगाव, प्रकृति-प्रेम, प्रेम-भावना, प्रगतिशीलतासे संपृक्त सॉनेटभी हैं। इस संकलनके समीक्षक हैं : **डॉ. हरदयाल**। कवि नईमकी कृति **'पथराई आँखें'** में रचनाओंके तीन रूप हैं—आजकी शैलीकी कविताएं, सॉनेट और गज़लें एवं गीत। त्रिलोचनके अनुसार 'नईम छन्दकी आन्तरिक लय और भाषाकी लयसे परिचित हैं, इसी कारण उनकी कविता स्वरूपतः स्पष्ट और गुणयुक्त है।' नईम जो लिखते हैं अपनी शैलीके साथ लिखते हैं। इस संकलनको उसकी विशिष्टताके साथ प्रस्तुत कर रहे हैं : **रमेश दवे**।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०००७ से प्रकाशित।

वर्ष : १४ अंक : ६ सितम्बर : १६८२ आश्विन : २०३६ (वि.)

सम्पादकीय

बिहार प्रेस विधेयक : अभिव्यक्ति और चिन्तनपर प्रहार

बुद्धिजीवियों और पत्रकारोंको अपमानित और आतंकित करनेकी नयी शासकीय योजना

आदान-प्रदान

दलित कहानियां

दलित वर्गकी कुण्ठा-यातना-वेदनाको व्यक्त करने, इस वर्गपर होरहे अन्यायों-अत्याचारोंको वाणी देने तथा अदलित वर्गमें परिमार्जन जगानेकी दृष्टिसे उसपर तीखे प्रहार करनेवाला साहित्य.

सम्पादक : सूर्यनारायण रणसुभे, कमलाकर गंगावणे समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर

काव्य-संकलन

उस जनपदका कवि हूं

वस्तुगत और विषयगत विविधताके सॉनेट; ग्रामीण जीवनके प्रति लगाव, प्रकृति प्रेम, प्रेम भावना, प्रगतिशीलतासे संपृक्त सॉनेटभी.

कवि : त्रिलोचन समीक्षक : डॉ. हरदयाल

पथराई आंखें

अपने अन्दरसे संगीत छोड़ती, ध्वनित होती और लयमें आकारित होती शिल्पका रचाव करनेवाली कविताएं.

कवि : नईम समीक्षक : रमेश दवे.

इस अंकमें

वार्षिक शुल्क : २५.०० रु. **विदेशोंमें (समुद्री डाक) : ५१.०० रु.**

प्रति अंक : २.५० रु. **आजीवन सदस्यता : ३०१.०० रु.**

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७.

वर्ष : १४ अंक : ९ सितम्बर : १९८२ आश्विन : २०३९ (वि.)

बिहार प्रेस विधेयक : अभिव्यक्ति और चिन्तनपर प्रहार

संविधानके अनुच्छेद १९ (२) में अभिव्यक्तिकी जो स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है, वह अब सत्तारूढ़ दल को खलने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वातंत्र्योत्तर कालकी छोटी-सी अवधिको छोड़कर गत ३५ वर्षमें शासन पर निरन्तर हावी रहनेके कारण उसकी नीतियों और अहंकारपूर्ण व्यवहारका जो परिणाम देशको भुगतना पड़ रहा है, उसकी आलोचनाभी इस सीमातक असह्य हो उठी है कि शासकों द्वारा व्यापक रूपसे प्रहारात्मक प्रत्यालोचनाओं, धमकियों, आंसू गैस, लाठी-गोलीसे संतुष्ट न रहकर अब वैधानिक रूपसे यह व्यवस्था की जा रही है कि अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रता अंग्रेजी संविधानकी पुस्तक में ही बन्द रह जाये। देशकी जनतासे ब्लैकमेल कर, उसे धमकाने, दवाव डालकर उसकी स्वतंत्रता ऐंठनेके इस प्रयाससे देशभरमें क्षोभकी लहर दौड़ गयी है।

तात्कालिक क्षोभका कारण है बिहार प्रेस विधेयक [अधिकृत नाम : 'भारतीय दण्ड संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता (बिहार संशोधन) विधेयक, १९८२'] सत्तारूढ़ दलकी बिहारको यह नवीनतम देन है। इस दल के लंबे शासन-कालमें बिहारमें ऐसे तत्त्व शक्तिशाली और प्रभावशाली बने हैं जिनका लाठी-गोलीमें ही विश्वास है। इसी लाठी-गोलीके बलपर विधान-सभामें प्रवेश करने वालोंकी कमी नहीं है। इस प्रकारके विश्वास और मनोवृत्तिवाले शासकोंको बिहारके आंखफोड़वा कृत्यों, अरबन बैंक घोटाला कांड, हरिजनोंपर क्रूरतापूर्ण अत्याचारों, चोरी-डकैती-हत्या, दंगे, भ्रष्टाचार आदिके समाचार कैसे सह्य हो सकते थे। इसी असहिष्णुताका परिणाम था कि ३१ जुलाई ८२ को केवल चार मिनटमें भयंकर कोलाहल और हुल्लड़के बीच वह विधेयक पास कर दिया गया जिस पर साठ संशोधन रखे गये थे और २४ नोटिसोंकी सूचना दी गयी थी। इतने अधिक संशोधनों और सूचनाओंके साथ प्रस्तुत होनेवाले विधेयकको पास करानेमें न्यूनतम ५-६ घण्टे की आवश्यकता होती है। परन्तु लाठी-गोलीकी मनोवृत्ति इसे चार मिनटमें ही स्वीकार करानेमें सफल हो गयी।

इस विधेयकका मुख्य प्रयोजन पत्रकारोंको डराना और आतंकित करना है। इस दृष्टिसे तीन पद आधार बनाये गये हैं : 'अशोभन', 'फूहड़' और 'धमका डराकर प्रयोजन-सिद्धि' (किसी व्यक्तिको हानि पहुँचानेका उद्देश्य)। न्यायशास्त्रियोंका विचार है कि यदि 'फूहड़' लेखनमें अश्लील और मानहानिसे संबद्ध सामग्रीभी सम्मिलित हो तो इससे, बिहार प्रेस विधेयकके अनुसार, राज्य सरकार को भारतीय दण्ड संहिताकी धारा २९२ अथवा ४९९ अथवा २९२ ए के अन्तर्गत 'अनियंत्रित और अनिर्दिष्ट' अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। 'फूहड़' शब्द बहुत व्यापक है। इसकी व्यापकताका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि इस विधेयकके अनुसार मात्र मसखरी और गंवारूपनसे भरी भाषाके आधारपर, अशोभन या भ्रष्ट या मानहानियुक्त न होनेपर भी अभियोग चलाया जा सकता है। इस व्यवस्थाके विपरीत अनेक न्यायशास्त्रियों की मान्यता है कि 'फूहड़' के अन्तर्गत अशोभन, अश्लील अथवा मानहानि सम्बन्धी सामग्री नहीं आती और इसलिए भारतीय दण्ड संहितामें जोड़ी गयी नयी धारा २९२ए अवैधानिक है।

इसके अतिरिक्त विधेयककी वाक्य रचना अस्पष्ट है और इसके कार्य क्षेत्रका सीमांकन करना कठिन है।

उदाहरणके रूपमें 'स्पष्टीकरण' में कहा गया है कि 'फूहड़' शब्दमें ऐसी किसीभी वस्तु या सामग्रीको सम्मिलित माना जायेगा जो नैतिकताकी दृष्टिसे हानिप्रद है अथवा जिसका उद्देश्य किसी व्यक्तिको हानि पहुँचाना है।" विचारणीय प्रसंग यह है कि नैतिकताकी कोई निश्चित परिभाषा नहीं है और भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और स्थानोंमें नैतिकताकी व्याख्या अलग-अलग की जाती है। 'किसी व्यक्तिको हानि पहुँचानेका उद्देश्य' का प्रयोग तो व्यापक रूपसे सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे किये जानेवाले तथ्यात्मक उद्घाटनोंको दबानेके लिए किया जा सकता है।

धारा २९२ ए के प्रसंगमें न्यायशास्त्रियोंने यह प्रश्न भी उठाया है कि मानहानिके अभियोगोंमें 'सार्वजनिक हित' का प्रश्न सफाईके रूपमें प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु इस नयी धाराके अन्तर्गत यह सफाई पेश नहीं की जा सकेगी। इसका परिणाम यह होगा कि मानहानि सम्बन्धी वर्तमान वैधानिक व्यवस्थाओंके अन्तर्गत जिसे अपराध नहीं माना जाता वह इस नयी धाराके अन्तर्गत अपराध हो जायेगा और मानहानिके वास्तविक अपराधकी तुलनामें दण्डका रूप कहीं अधिक कठोर होगा। स्थिति तब औरभी भयंकर प्रतीत होती है जब दण्ड प्रक्रिया संहितामें किये गये संशोधनोंके साथ नयी धारा २९२ ए को रखा जाता है। यह धारा भारतीय दण्ड संहितामें नहीं है इसलिए अन्य राज्योंमें २९२ ए लागू नहीं होती। यह व्यवस्था कानूनमें सभी नागरिकोंकी समान स्थितिको समाप्त करनेवाली है। दण्ड प्रक्रिया संहिताकी धारा १९० में किये गये संशोधनोंके अनुसार इस क्षेत्रके अभियोगोंका विचाराधिकार न्यायिक दण्डाधिकारीके स्थानपर प्रशासनिक दण्डाधिकारीको सौंप दिया गया है जबकि प्रशासनिक दण्डाधिकारी पूर्ण रूपसे राज्य सरकारके निर्देशन और निरीक्षणमें कार्य करता है। इन दोनों विधेयकोंके अन्तर्गत जिस प्रक्रियाकी व्यवस्था की गयी है वह संविधानके अनुच्छेद २१ का उल्लंघन है क्योंकि वह उचित, न्यायसंगत और तर्कसंगत नहीं है।

सत्तारूढ़ लोगोंकी प्रवृत्ति दूसरे लोगोंको पीड़ा देने, यातना देने और आतंकका वातावरण पैदा करनेकी होती है। अधिकसे अधिक लोगोंको आतंकित करनेके लिए इस विधेयकमें ऐसी व्यवस्था की गयी है कि पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित सामग्रीसे बिल्कुल अपरिचित व्यक्ति एवं प्रकाशित सामग्रीके दुरुपयोगकी कोई भावना न रखते हुएभी इनके विक्रय और प्रचार-प्रसारमें सहयोग देनेके अपराध में दण्डित किया जा सकता है। आतंककी इस स्थितिमें केवल रोजी-रोटीके लिए पत्र-पत्रिकाएं बेचनेवाला कोई व्यक्ति ऐसी पत्र-पत्रिकाएं बेचनेका साहस नहीं करेगा जिसके बारेमें उसे पता होगा कि सत्तारूढ़ दल या शासन उन्हें पसन्द नहीं करता। और तो और, यदि ऐसी पत्र-पत्रिका किसी व्यक्तिके पास पायी जायेगी तो उसेभी दण्डित किया जा सकता है। अनेक विधि-विशेषज्ञोंको आशंका है कि यदि शासनकी दृष्टिमें कोई व्यक्ति अवांछनीय है तो उसपर अभियोग चलानेके लिए इतना पर्याप्त होगा कि उसके यहां उपर्युक्त प्रकारके प्रकाशनकी एक प्रति रखवा दी जाये। साथही विधेयककी वाक्य रचना ऐसी है कि इसके कार्यक्षेत्रकी कोई सीमा नहीं है। इसकी व्याख्या अनेक प्रकारसे की जा सकती है।

आतंकित वर्गके आंसू पोंछनेके प्रयासमें शिकायत से बचावकी एक महती व्यवस्था की गयी है कि किसीभी सरकारी अधिकारीकी शिकायतपर न्यायालय तबतक ध्यान नहीं देगा जबतक राज्य सरकार अभियोग चलानेकी अनुमति नहीं दे देगी। इस महती व्यवस्थाकी विडम्बना यह है कि यदि शासन किसी पत्रकारको परेशान करनेपर तुला है तो अभियोग चलानेके लिए अनुमति देनेमें शासन कुछ क्षणभी नष्ट नहीं करेगा। अनुमति मिलनेसे पहले ही, विधेयककी व्यवस्थाओंके अनुसार किसीभी व्यक्तिको गिरफ्तारकर सींखचोंमें बन्द रखा जा सकता है। इस विधेयकके अन्तर्गत जमानतभी नहीं हो सकती। इस विधेयकके विरोधमें जब बिहारके पत्रकारोंने प्रदर्शन किये थे तो इसी कारण वे जो झंडियां लिये हुए थे, उनपर लिखा था **'चोरोंके लिए बेल, पत्रकारोंके लिए जेल।'**

देशकी स्वातंत्र्योत्तर अवधिमें दमनकी यह प्रवृत्ति एकाएक पैदा नहीं हुई। सत्तासे चिपके रहनेवाले लोग इस प्रकारके प्रयत्न पहलेभी करते रहे हैं। १९५१ में प्रेस (आपत्तिजनक सामग्री) अधिनियम लागू किया गया था। परन्तु इसकी अवधि एक वर्षकी ही थी। उड़ीसा १९६२ और तमिलनाडु १९६० के अधिनियमोंकी बहुत चर्चा हुई है। उड़ीसाका अधिनियम चार-पाँच वर्ष पूर्वही रद्द कर दिया गया था। बिहारका प्रेस विधेयक तमिलनाडुके प्रेस विधेयककी प्रतिकृति है। इन सब अधिनियमों और विधेयकोंकी चर्चा सत्तारूढ़ दलोंके प्रेसके प्रति रवैय्येका परिचय देनेके लिए की गयी हैं अन्यथा दमनके लिए लागू किये गये अधिनियमों और अध्यादेशोंकी संख्या कम नहीं है।

वस्तुतः प्रत्येक लाठी-गोली सरकार स्वयं आतंकित रहती है। पत्र-पत्रिकाएं और समाचार-पत्र तो मात्र दर्पणका कार्य करते हैं। शासन, सत्तारूढ़ दल जो कुछ

करता है, जन-साधारणपर उसकी जो प्रतिक्रिया होती है उसे यथातथ्य रूपमें पत्र-पत्रिकाएं और समाचार-पत्र प्रस्तुत कर देते हैं। उससे उनका जो रूप उभर कर आता है, वह इतना भयावना और घिनौना होता है कि सत्ता-रूढ़ उसे देखनेसे भी घबराने लगते हैं। इसी घबराहटके आतंकके कारण वे दर्पणको ही तोड़नेमें अपनी शक्ति खपा देते हैं। जिस लोकतंत्रकी रक्षाके लिए वे संविधान की शपथ लेते हैं, उसी लोकतंत्र और संविधानको भी समाप्त करनेमें शक्तिका उपयोग करते हैं। किस प्रकार देशका सांविधानिक ढांचा धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है और उसका स्थान अराजकता ले रही है, इस ओर शासकोंका ध्यान नहीं है इस ओर जब उनका ध्यान खींचा जाता है और स्थितिपर विचार करनेके लिए उन्हें आमन्त्रित किया जाता है तो वे ध्यान दिलानेवाले वर्गका ही मुंह नोंच लेना चाहते हैं और उसपर प्रहार शुरू कर देते हैं।

यह शोचनीय स्थिति देशभरमें व्याप्त न होने पाये, इसे रोकनेका दायित्व अब केवल देशके बुद्धिजीवियोंपर ही आ पड़ा है। ▭ ▭

आदान-प्रदान

दलित वर्गकी कुण्ठा–यातना–वेदनाका साहित्य

दलित कहानियां[१]

सम्पादक : सूर्यनारायण रणसुभे, कमलाकर गंगावणे **समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर**

आलोच्य पुस्तकमें मराठीकी दलित कहानियां हिन्दी में प्रस्तुत हैं। चयन संपादकोंका ही है तथा वे ही अधिकांश रचनाओंके अनुवादकभी हैं। उन्होंने पुस्तकके आरम्भमें दलित साहित्यका परिचयात्मक विवरणभी दिया है।

मराठीमें दलित साहित्य अधिक पुराना नहीं है। इसकी सर्जना अभी २५-३० वर्ष पूर्वही आरंभ हुई। यह साहित्य वास्तवमें उस आंदोलनकी देन है जिसे डा. बाबा साहब आंबेडकरने स्वयं १९५६ में हिंदू धर्मका परित्याग कर बौद्धधर्म अपनानेके पश्चात् अस्पृश्योंके उद्धारके लिए आरंभ किया था। धर्मपरिवर्तनके पश्चात् डॉ. आंबेडकर ने सवर्णोंके विरुद्ध एक प्रकारसे जिहाद छेड़ दिया। सबसे अधिक तीखे प्रहारका शिकार बनी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था। उनके विचारसे मनुनिर्मित इस व्यवस्थाने आदि कालसे अस्पृश्योंका शोषण ही नहीं किया, उन्हें समाजसे अलग-थलग रख पशुसे भी बदतर जीवन जीनेके लिए बाध्य किया है। उनकी मान्यता थी कि सवर्णोंका चिंतन, उनका साहित्य अस्पृश्योंके साथ कभी न्याय नहीं कर सके। संत साहित्यभी नहीं। डॉ. आंबेडकरने वेदों, रामायण, महाभारत, गीता आदिका भी पूरा-पूरा बहिष्कार किया।

डॉ. आंबेडकरने दलितोंके अपने उद्धारके लिए नारा प्रस्तुत किया—Educate, Organise and Agitate. उनका मत था कि इस नारेपर अमल किये बिना दलितों को सदियोंसे ठुकराये गये आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकेंगे। विशेष बात तो यह कि भारत अब स्वतंत्र हो चुका था और देशको समान सामाजिक-राजनीतिक अधिकार देनेवाला संविधान १९५० में लागू हो गया था और इस संविधानके प्रणेताओंमें स्वयं डॉ. आंबेडकर थे।

डॉ. आंबेडकरके दलित आंदोलनमें वह समस्त जन-समुदाय नहीं आता जो समाजमें निचले स्तरकी उपेक्षित अपमानित जिंदगी जीनेको बाध्य है। यह अस्पृश्योंतक ही सीमित है…बल्कि उन अस्पृश्योंतक सीमित है जिन्होंने

१. **दलित कहानियां**; सम्पादक : सूर्यनारायण रणसुभे तथा कमलाकर गंगावणे; प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२-००३। पृष्ठ : २१२; क्रा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

धर्मांतरकर बौद्धधर्म अपना लिया है और अब जो नव-बौद्ध कहलाते हैं। अस्पृश्य हैं पर नवबौद्ध नहीं···फिर वे कितनेही दलित हों, दलित नहीं।

जिस तरह प्रगति साहित्य मार्क्सवादकी देन है, उसी तरह मराठीका दलित साहित्य आंबेडकरवादकी देन है। इसके लेखक आंबेडकरको अपना मसीहा मानते हैं और उनके बताये हुए मार्गसे जराभी इधर-उधर नहीं जाते। इसी तरह दलित साहित्य मात्र वही है जिसमें 'दलितोंके जीवनका दलितों द्वारा अंकन' हुआ है। दलितेतर यदि दलितोंका अंकन करें, तो वह दलित साहित्यकी सीमामें नहीं आता। इस संबंधमें उल्लेखनीय है कि मराठीके धूमिल नारायण सुर्वेकी दलित कविताको दलित साहित्य के अंतर्गत नहीं लिया जाता, उसमें यद्यपि अस्पृश्य दलित का अत्यंत यथार्थ और सशक्त अंकन हुआ है। दलित लेखकोंकी मान्यता है कि अदलितका दलित साहित्य दलितोंकी वेदना-यातनाको कैसीही सशक्त अभिव्यक्ति दे, उसका यह प्रयास मात्र 'सहानुभूति' का होगा 'अनुभूति' का नहीं।

अपनी कुंठा-यातना-वेदनाको व्यक्त करना, अपने पर हो रहे अन्यायों-अत्याचारोंको वाणी देना तथा अदलित वर्गमें परिमार्जनकी भावना जगानेकी दृष्टिसे उसपर तीखे प्रहार करना यही मूलत: दलित साहित्यके सृजनका लक्ष्य रहा है। लोकसाहित्य जिस तरह लोक-मानसका दर्पण है, कुछ इसी तरह दलित साहित्य दलित मानसका। लेकिन लोकसाहित्यके विपरीत यह साहित्य आंदोलनात्मक है। दलित अपने साहित्यको, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रांतिका हथियार मानता है। इसीलिए वह अपने साहित्यको Literature of Action कहता है।

दलित साहित्यके संबंधमें स्पष्टत: ही यह देखा जाता है कि वह निषेध, नकार और विद्रोहका साहित्य है। निषेध उसका मनुस्मृति रचित चातुर्वर्ण व्यवस्था और तज्जनित धर्म, संस्कृति और साहित्यसे है। दलितोंका कथन है कि 'आर्य धर्म संकुचित होकर हिन्दु धर्म बना और कालांतरमें हिंदुधर्मका संकोच ब्राह्मण धर्ममें हुआ जिसे अस्पृश्योंके प्रति सहज द्वेष था।' इनका कथन है युगोंसे समस्त संस्कृति और साहित्यका स्वरूप इसी ब्राह्मण धर्मसे परिचालित रहा है।

ऐसे धर्म, संस्कृति और साहित्यके प्रति जो एकही जातिकी बपौती बन जायें और जो जानवरोंको तो स्थान दे पर अस्पृश्योंको नहीं, दलितोंमें नकार और विद्रेषका भाव पैदा कर देता है। हिंदुधर्मकी यह मान्यता कि पूर्व-जन्मके पाप-पुण्यसे मनुष्यको जन्म प्राप्त होता है दलित लेखकोंको कदापि मान्य नहीं। सवर्णोंके साहित्यमें चली आ रही यह मान्यता उनके विचारसे दलितोंके प्रति षड्यंत्र है जिसका भंडाभोड़ करना दलित साहित्यका आद्य कर्तव्य है।

दलित लेखक मानते हैं कि बिना विद्रोह-क्रांति-विद्रेष की आग बरसाये वे सवर्णोंकी दासतासे मुक्त नहीं हो सकते। यही कारण है कि दलित साहित्य सीधे-सीधे आग उगलता है। रामायण हो या महाभारत, भागवत हो या गीता सभीपर। सदियोंसे प्रताड़ित इस वर्गको युगकी नयी चेतना और नये संविधानके तहत अपनी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आकांक्षाओंके लिए विस्फोटिक हो उठना वैसे स्वाभाविकभी है।

पर सवाल उठता है दलित साहित्यके ये तीन स्वर जहाँ उसकी विशेषताएं हैं, क्या आपही सीमाएं नहीं बन जातीं? वह दलितोंके सुधार-क्रांतिका साहित्य है या उनकी संवेदनाओंका? क्या इसमें अंतर्मुखताकी अपेक्षा बहिर्मुखताका आधिक्य नहीं है? क्या यह एक बिंदुपर आकर एकरसताका शिकार नहीं हो जायेगा? क्या स्थूल सामूहिक चेतना-चित्रणही सब कुछ है सूक्ष्म व्यक्तिनिष्ठ संवेदनाओंके अंकनका कोई महत्त्व नहीं? स्थूल सामयिक यथार्थमें से क्या सूक्ष्म शाश्वत यथार्थोंका उद्भव संभव है। रामायण-महाभारतके मिथोंके प्रति एकदम उग्र भाव कहाँतक उचित है जिनके भावसत्य संदर्भों और तारतम्यकी दृष्टिसे अस्पृश्योंपर अन्याय-अत्याचारके रूपमें नहीं हैं।

मराठी दलित साहित्यमें साहित्यकी अन्य विधाओंकी तुलनामें कविताका सृजन अधिक हुआ है। इसके बाद कहानीका ही क्रम है। पर दलित जीवनके भोगे हुए यथार्थका सही परिचय हमें मिलता है इस वर्गके लेखकों के आत्मवृत्तोंसे। इनमें अबतक जो प्रकाशित हुए एवं चर्चित भी, वे हैं—बलुतं (दया पवार), आठवणींचे पक्षी (प्र. ई. सोनकांबले), मुक्काम पोस्ट देवाचे गोठणे (कोंडविलकर), उपरा (लक्ष्मण माने) तथा तराल-अंत-राल (शंकरराव खरात)। इन ग्रंथोंकी लोकप्रियता इस बातकी द्योतक है कि बुद्धिवादी पाठक अब ललित लेखक को इतना पसंद नहीं करता जितना जीवनके प्रत्यक्ष चित्रणको। प्रस्तुत कहानी संग्रहकी 'बलुतं', 'यादोंके पंछी',

'प्रवृत्ति,' 'पराये' तथा 'मैं मेरा गांव', 'ढूंढ रहा हूं' क्रमशः उपर्युक्त आत्मवृत्तोंमें से ही उद्धृत अंश हैं। हमें खेद है कि संकलनकर्ताओंने इन रचनाओंके संबंधमें ऐसा कोई संकेत नहीं दिया है।

मराठी दलित कहानीका प्रवर्तक बाबूराव बागुलको माना जाता है। इनके पूर्वके लेखकोंमें स्वप्निल आदर्शवादकी बात कही जाती है। प्रस्तुत संग्रहको अण्णाभाऊ साठेकी कहानी **'जाल'** कुछ ऐसीही है। पर यही बात बंधु माधवकी **'सारा आकाश फट चुका है'** के संबंधमें नहीं कही जा सकती। हां, उसके कथाशिल्पमें अवश्यही कमजोरी है। बाबूराव बागुलके लेखनकी यह विशेषता है कि उसमें लेखनकी प्रतिबद्धता ऊपरसे थोपी हुई नहीं लगती। आलोच्य संग्रहकी उनकी कथा **'जब मैंने जाति छिपायी थी'** इसका उदाहरण है। इसे मकानके पीछे अपनी जाति छिपानी पड़ती है। इस दशामें उसकी मानसिकताका और उन प्रतिक्रियाओंका जो स्वयं उसके सामने अछूतोंपर होनेवाले अत्याचारोंसे उसपर होती है चित्रण, जिस संयत ढंगसे प्रस्तुत है वह अपने आपमें बेमिसाल है।

बाबूराव बागुलके पश्चात् कहानीमें विशेष उल्लेखनीय नाम आते हैं केशव मेश्राम, अर्जुन डांगले और योगिराज वाघमारेके। इनकी प्रस्तुत संग्रहमें क्रमशः 'परोपजीवी', **'प्रमोशन'** और 'उद्ध्वस्त' कथाएं संकलित हैं। केशव मेश्रामका लेखन जीवनके कठोर यथार्थकी प्रतिच्छवि है। कथा प्रसंगोंको अत्यन्त तटस्थ एवं संयमपूर्वक पेश करना इनकी खास विशेषता है। कथा रची हुई नहीं लगती। यथार्थ भोगसे निःसृत है। अतः उसमें न भड़कीलापन है और न नकली आक्रोश। **'परोपजीवी'** का अजाब राव कहनेको अस्पृश्य है, पर पैसेवाला हो जानेके कारण उसके लच्छन वे ही हैं जो सवर्ण नेताओंमें पाये जाते हैं।

अर्जुन डांगले दलित पैंथर—दलित आंदोलनके प्रमुख नेताओंमें से हैं। इस नाते उनका जीवनानुभव सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिसे काफी व्यापक है। कहना न होगा कि इसका प्रतिबिंब इनकी कहानियोंमें स्पष्टतः देख पड़ता है। यथार्थका यथातथ्य चित्रण जहां इनकी उपलब्धि है, तो सीमाभी। कथ्यकी इतिवृत्तात्मक तात्कालिकता जीवनके स्थूल धरातलतक ही बनी रह जाती है। **'प्रमोशन'** में दिखाया गया है कि अस्पृश्योंके लिए रिजर्वेशन वरदान न होकर शाप बन गया है। प्रमोशन आफिसमें हो या समाजमें, सवर्णोंकी प्रतिक्रियाएं इन्हें ठेस पहुंचाती हैं।

योगेश बाघमारे नवकहानी लेखकोंमें कहे जा सकते हैं। इन्होंने जिस अंचल विशेषमें जन्म पाया उसीका अंकन पूरी ईमानदारीके साथ अपनी रचनाओंमें किया है। 'उद्ध्वस्त' कहानी दलितोंके आंदोलनोंकी वे बूमरंगी प्रतिक्रियाएं प्रस्तुत करती हैं जो सवर्णोंकी ओरसे लौटकर अंततः उन्हींपर आघात करती हैं। स्थूल इतिवृत्तात्मकता इस कहानीकी कमजोरी है।

प्रस्तुत संग्रहको दृष्टिगत रखकर हम अन्य दलित कहानीकारोंमें सुधाकर गायकवाड, अमिताभ, योगेन्द्र मेश्राम, भीमराव शिवराले, शंकरराव सुरडकर, भास्कर चंदनशिव और श्रीराम गुंदेकरके नाम ले सकते हैं। इनकी कहानियोंमें सामान्यतः दलितोंके विभिन्न जीवनपक्षों का अंकन है। जैसे वे शिक्षित होकर भी काम नहीं पाते (उद्वेग), इनमें इतनी भूख-गरीबी है कि मरे हुए जानवर की लाशपर गिद्धोंकी तरह टूट पड़ते हैं (पड), शिक्षा और व्यवसायके स्तरपर समान होते हुएभी सवर्णोंसे उपेक्षा-अपमान पाते हैं (आक्रोश), सवर्णोंके शोषण और भोगका शिकार बनते हैं (अजस्र), सवर्ण इन्हें अपना न्याय्य हक प्राप्त नहीं होने देते (इसे छोड़कर कोईभी), श्मशान भूमि दलित-सवर्णमें बंटी है (श्मशान) और अभावग्रस्ततासे लाभ उठाकर इन्हें सवर्ण अपने हकमें बांध लेते हैं (अमानत)।

इस तरह दलित कहानियां दलितोंकी दीनता-हीनता, उपेक्षा-अपमान तथा संघर्ष-विद्रोहका जीवंत इतिहास हैं। इनमें सवर्णोंकी ओरसे होनेवाले अन्याय-अत्याचारके प्रति भरपूर आक्रोश है। इस आक्रोशमें कलात्मक समन्वय किस हदतक हो सका है इसका निर्णय हम जैसे सवर्ण आलोचकको करना शायद उचित नहीं होगा। यह कार्य तो स्वयं दलित आलोचक करें और हमारा ख्याल है, वे कर भी रहे हैं। उग्रवादी लेखनकी अपनी सीमाएं होती हैं। हो सकता है कि यह दलित लेखन, जैसाकि कुछ दलित विचारक दावा करते हैं, अमरीकाके नीग्रो साहित्य के निकट है। पर सवर्णोंसे नाता तोड़ यह साहित्य क्या इस भूमिसे भी नाता तोड़ देना चाहेगा।

अनुवादकी भाषा संतोषजनक नहीं है। □ □

इतालवी कविता

सम्पादक : कृष्ण खुल्लर; प्रकाशक : समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-११००५५। पृष्ठ : १६ + ६६; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

बारहवीं शताब्दीसे लेकर अद्यतन कवितातक इटली के २५ कवियोंकी ४५ कविताओंका हिंदी काव्यानुवाद प्रस्तुत करनेवाली 'इस पुस्तकका संकलन एवं प्रकाशन नयी दिल्ली स्थित इतालवी राजदूतावासके सांस्कृतिक केंद्रके सौजन्यसे (१९८१) में हुआ।' अनुवाद किया है कृष्ण खुल्लर, गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, राजेन्द्र अवस्थी, विनोद शर्मा तथा सुरेश धींगड़ाने। आरम्भमें भारतमें इतालवी राजदूत श्रीएमिलिओ पाओलो बास्सीके संक्षिप्तसे 'दो शब्द' इस आशंसाके साथ "कि यह हिंदी अनुवाद विशाल भारतीय काव्यरसिक समुदाय को सर्वश्रेष्ठ इतालवी काव्य रचनाओंके आस्वाद, काव्य सर्जनाके सार्वभौमिक मूल्योंके परिचयमें सहयोगी सिद्ध होगा। यह काव्य संकलन न सिर्फ दो राष्ट्रोंके बीच परस्पर सद्भावनाओंका सेतु बनेगा अपितु दो संपन्न प्राचीन संस्कृतियोंकी व्याख्या और उनके बीच वैचारिक विनिमयका भी एक सुदृढ़ सेतु बनेगा।" और केशव मलिककी छोटी-सी भूमिका और अनुवादकोंके परिचयके साथ कविताओंके अन्तमें कवि-परिचय और दान्तेकी 'दैवी कॉमदी' के प्रथम सर्ग नरकयात्राके आवरण-चित्र सहित १६ कवियोंके चित्र दिये गये हैं। रूप-सज्जा और काव्यानुवाद, दोनोंमें ही (एकाध जगह प्रूफकी अशुद्धिके बावजूद) पुस्तक आकर्षक है और न केवल राजदूत महोदय की उक्त आशंसाकी पूर्तिकी सम्भावनाओंसे सच्चे अर्थोंमें पूर्ण है बल्कि सुन्दर प्रस्तुतीकरणके लिए प्रशंस्यभी है। कृष्ण खुल्लरकी ओरसे आभारके और राजदूतकी ओरसे आशंसाके दो शब्द अंग्रेजीमें भी क्यों छापे गये हैं, यह समझमें नहीं आता। दोनोंही इतालवीमें होते और तब मूलकी रक्षा की जाती तो अच्छा लगता, और यह होना अनुवादककी ओरसे कठिन नहीं था (अन्यथा अनुवादही कैसे किये) और राजदूत महोदयके लिए तो बड़ाही स्वाभाविक भी हुआ होता। इस योजनाका मूल संयोजक कौन रहा, इसकाभी कोई संकेत कहीं नहीं है, पर आभार से लगता है कृष्ण खुल्लर रहे होंगे। केशव मलिक अपनी भूमिकामें कला और जीवनके आपसी रिश्ते और इतालवी [illegible] भूमिकाका कुछ जायजा लेते हैं, पर इतालवी कविताकी इतिहासकी भूमिपर पहचान और विकास की राहमें उभरी प्रवृत्तियोंका परिचय पूरी पुस्तकसे गायब है और बावजूद इसके कि कवि-परिचयमें उसके संकेत हैं, कई बार कवियोंकी केवल एक-एकही रचनाके प्रस्तुतीकरणके कारण उसका कोई संगठित रूप नहीं उभरता। हाँ, काव्यके धरातलपर रचनाओंका अनुवाद मौलिकताकी गंधसे रसा-बसा है और आह्लादित करता है।

स्वाभाविकही है कि संग्रहमें सबसे बड़ा भाग विश्वकवि दान्ते एलीगियेरोको मिला है, जिसकी पांच कविताओं के अनुवाद प्रस्तुत हैं। साथमें इटलीके अमर-कवि जाकोमो ल्योपार्दी हैं जिनकी ४ रचनाएं अनूदित हैं। दो कवि, यूजेन्यो मोंताले और साल्वातोरे क्वासीमोदो, नोबेल पुरस्कार विजेता हैं पर साल्वातोरेकी केवल एक कविताका अनुवाद संगृहीत है। शेषकी ३, २ और १ कविताएं हैं।

लेकिन यह तो बाहरी और सतही परिचय है, अंतरंगको जाननेके लिए कविताओंका पढ़ना (और पढ़कर उनमें डूबना) जरूरी है। तभी पता लग सकता है, काल के आवरणको छेदकर, सदियोंके अंतरालको पार करती हुई ये रचनाएँ अबतक कैसे और क्यों यात्रा करती चली आयीं और आजके जैसे संकुल जीवनमें भी इन कवियों (अनुवादकों) को उपयोगी प्रतीत हुईं।

इन कविताओंके रंग अनेक हैं। इतनी सदियोंके अंतरालमें आखिर इतिहास और प्रवृत्तियोंमें अन्तरभी तो कितना हुआ है। इन कविताओंके साथ चलकर अगर हम वक्तके कदम नाप सकते हैं और फिरभी अनुभव कर सकते हैं कि समयके संकेतोंकी रक्षा करते हुएभी इन कविताओंकी कलात्मकता कुंद नहीं हुई है, कविता इनमेंसे नहीं मरी है, तो यह एक उपलब्धिही तो है। कविता और कलाके पक्षमें तो यह एक बड़ीही महत्त्वपूर्ण बात है। आस्था और प्रभु-भक्ति हो या मृत्युबोध, काम हो या मोक्ष, विनय हो या आक्रोश, नागर जीवन हो या ग्रामीण, इन कविताओंके दायरेमें सिमट आया है। प्रकृतिभी है और मनुष्यभी। एक सर्वांगीण जीवन, जीवन का प्रवाह, इन कविताओंमें है। कविताएँ आत्मरतितक सीमित नहीं हैं, जीवनकी उष्णता उनमें है और कविता के शील निर्वाहके साथ है। संभव नहीं कि सब कवियोंकी कविताओंका उल्लेखभी यहाँ किया जा सके। कुछेक उद्धरणोंसे सन्तोष करना होगा।

सान फ्रांचेस्को द' असीजी यदि सर्वशक्तिमान प्रभुके प्रति उसका महिमागान रचते हुए परम विनम्र भावसे उसकी स्तुति करते हैं, गुईदो कावलकान्ती प्रेम और रहस्यके वृत्त बनाते और संकेतोंसे नारी मूर्तिको उसमें टाँकते सौन्दर्य-प्रतिमा अंकित करते हैं तो चैको अंजोलियोयेरी उसी प्रेममें शांति और मृदुताके स्थानपर दीप्ति और ताप भर देते हैं और भरपूर शक्तिसे 'प्रतिरोध' करते हैं। दान्ते स्वयं उसी 'प्रेयसी' के सौन्दर्यपर मुग्ध हैं,उस स्वर्गीय सुषमाकी प्रशंसामें रत और आश्चर्यचकित हैं। वे कभी 'अवसाद' से भरते हैं, कभी 'उस पार' खिंचते हुए उनकी दूरस्थ यात्री-सी आत्मा 'चकित होती है उसके सौन्दर्यपर' और कभी 'संवेदना' का वह क्षण उनके अनुभवमें आता है जहाँ वे प्रेमकी बुलंदियोंके जालसे बच नहीं पाते, प्रेयसी रूपमें मिली कमनीय किंतु क्रूर नारीके प्रति उनकी आसक्ति ऋतुओं और परिवेशके परिवर्तनसे ठण्डी नहीं पड़ती। 'प्रेम नहीं निकल पाता (उनके) हृदयसे घातक शूल' अतः वे कहते हैं—'मैं कृत संकल्प हूँ/ जीवंत पीड़ा सहन करनेके लिए/ बेशक मुझे सदा जीवित रहना पड़े।' या 'मैं हूँ/ एक कदम पीछे नहीं किया/ अपने संघर्षसे/ न ही चाहता हूँ/ हार मान लूँ।/ यदि कष्ट सहनेमें मजा है/ मृत्युसे बढ़कर/ फिर कोई मजा नहीं।' 'प्रेयसिका हृदय पाषाण है, तो/ मैं स्वयम् पाषाण बन जाऊँगा।' फ्रांचैस्को पेत्रार्काभी उसी प्रेमके जले हैं, अवसाद और सूनी आशाओंसे भरे-भरे— ताप-तप्त, प्रेममार्गकी कटुताका अनुभव करते हुए उनकी दृष्टिमें "जो कुछभी दुनियां करती है प्यार/ वह छोटा-सा स्वप्न है।' उसीमें वे खुशीमें नंगे पाँव/ अंदरसे कितना जलता हूँ मैं' के दुहरे अहसास और आंतरिक बेचैनीसे भरे हुए हैं। पेत्रार्का इस प्रेमसे 'दिव्य आत्मा' की अनुभूतिमें रँगते हैं तो उनके मित्र जोवन्नी बोकात्सो प्यारके पंजोंकी गहरी पकड़ और यातनाका अनुभव करते हैं। उनकी वाणीमें सबसे अलग एक तुर्शी है, एक छटपटाहट है, एक आक्रोश है और है एक विनय, दीनताभरी पुकार। एकसाथ कई अनुभवोंकी सन्धिपर खड़े हैं बोकात्सो।

लारेन्जो द मेदीचीकी कविताका स्वरभी अलग है। कलके अनिश्चयसे वे त्रस्त नहीं हैं,खुश होनेके लिए सबका द्वार उन्मुक्त रखना चाहते हैं। नियतिवादी होकर वे न हारे हैं, न चिंताग्रस्त हैं। उल्लास और भोगमें उनकी सहज निष्ठा है : 'औरत और जवान प्रेमी/अमर रहे

बेकूस और/ खेलने दो हरेकको नाचने दो/ दिलोंको तपने दो मिठासमें/ न बेकार श्रम न अवसाद ।/ जो घटना है उसे होने दो/ जो होगाही/ कलमें कोई भरोसा नहीं है ।'

लुदोविको एरिओस्तोकी कविताएँ प्रेम-विभोरता और प्रेमोन्मादकी कविताएँ हैं । मिकेलान्जलो ब्यूनारौत्ती मृत्युके स्पंदन और प्रेमके माध्यमसे ईश्वरीय अहसाससे भी अनुप्राणित हैं और भयावह शोक, घबड़ाहट, उद्विग्नता और अकेलेपनसे टूटकर भी लक्ष्यतक अपनी भावना को संप्रेषित कर सकनेकी इच्छा और अपनी आंशिक क्षमतासे नयी संरचना कर सकनेके विश्वाससे पुलकित भी । वे अपनी इस विकलताको कितने उद्वेलनके साथ व्यक्त करते हैं कि बेचैनी मूर्तिमतही नहीं हो जाती, कहीं अन्दरतक हमें बेधती-कचोटती है : 'किसी शोकातुर पक्षी की तरह/ जो हरी टहनियों और निर्मल जलसे कतराता है/ मैं इस भयावह और निर्जन चट्टानपर अकेला मंडराता हूं ।'

तुम्मास्सो कम्पानेल्ला और ऊगो फॉस्कोलोकी रचनाएँ कातर प्रार्थना और शोकसे भीगी हुई हैं । जाकोमो ल्योपार्दी कभी बाहरी 'अनंत' विस्तारसे होते हुए आंतरिक अनन्तमें शान्तिका अनुभव करते हैं और इस सुखमें उन्हें 'यादभी नहीं आता/ विघटनकारी व्यतीत ! कभी वे 'एशियाके चरवाहेका रात्रिगीत' गाते हुए आत्मीय भावसे चांद और चरवाहेके जीवनकी भटकन और उनकी अन्तहीन यात्रामें समानता देखते हैं, चरवाहेके श्रम और उसकी यातनाके प्रति गहरी सहानुभूतिसे भर उठते हैं । उनकी सहानुभूति अवसाद, मृत्यु-दंश, अकेलेपनकी पीड़ा में बदलती हुई अन्ततः जन्म लेनेवालेके लिए जन्मके दिन को ही अवसादपूर्ण मान बैठती है । गहरे अवसाद और खिन्नतामें डूबे हुए उनके स्वर गूँजते हैं—'अगर जीवन दुर्भाग्य है/ हम उसे क्यों जीते हैं ?/ पवित्र चाँद/ ऐसी हैं मरणशील जीवनकी / स्थिति।/ पर तुम मरणशील नहीं हो/ शायद तुम्हें थोड़ीभी परवाह न हो/ मेरे शब्दों की ।' जीवनकी सार्थकताको प्रश्नांकित करते हुए वे पूछ उठते हैं : 'और जब देखता हूं आकाशमें जलते/ तारोंको/ विचारमग्न मैं खुदसे कहता हूं/ कहाँसे आती हैं इतनी मशालें ?/ क्या करती है अनन्त हवा/ और क्या करता है गहरा अनन्त आकाश ?/ इस बंधनहीन अकेलेपनका/ क्या अर्थ है ?' इस बंधनहीन अकेलेपनमें सारी स्वतंत्रता पाकरभी जीवन जैसे अपना अर्थ खो देता है, एक गहरी त्रासदी बन जाता है । ल्योपार्दी अपनी कविताओंमें एक सहज सक्रिय जीवनका बिम्ब उभारते हैं, मानवीय करुणा और आन्तरिक लगावकी सोंधी गंधसे पूरा वातावरण भर देते हैं, युवा पीढ़ीके लिए 'गांवमें शनिवार' आमोद-प्रमोदमय हो इस शुभाशंसासे उत्फुल्ल दिखायी पड़ते हैं और फिर अन्ततः 'अपने आपको' सम्बोधित करते हुए जीवनकी कटुता कुछ इस तरह उन्हें आतंकित करती है कि सारा माहौल पीड़ा और सूनेपनसे भर जाता है : 'मानव-रूपके लिए/ निश्चित है सिर्फ मृत्यु/ प्रकृति तड़पाती है अब/विश्वात्माकी क्रूर शक्ति/ आघात करती है/ और शाश्वत/ सिर्फ शून्य है ।'

जूजैपे जूस्तीका स्वर 'घोंघा' के बहाने शांतिप्रिय और निश्चिन्त या आत्मलीन मनुष्यके प्रति तीखे आक्रोश से भरा हुआ है, भारी गुस्सा है उनमें । गाब्रियेले द अनून्ज्यो नयी दुनियांके अस्त्र-शस्त्रोंसे उत्पन्न धड़कनका अहसासभी कराते हैं और प्रकृतिके दृश्यपटभी बुनते हैं। प्रकृति उन्हें चारों ओरसे घेरती-सी और उनमें अभिव्यक्ति के नये आयाम जागती-सी लगती है । दीनो कम्पानामें प्यारकी आग सुलग रही है । उन्हें 'जिनोआकी नारी' के हाथोंमें दुनियाँ 'कितनी छोटी और हल्की महसूस होती है ।' जूजैपे उंगारेत्ती 'नदियाँ' के माध्यमसे अपने अकेलेपनमें से निकलकर अपनी परम्परासे—अपने घरसे—जुड़ते और बल प्राप्त करते हैं जबकि यूजेन्यो मोंताले 'काँच-सी बंजर हवामें से गुजरते हुए' पीठ पीछे असारता, शून्य और अकेलेपनकी दुनियांका दबाव अनुभव करते हैं । वे जीवनके तापका तीव्रतासे अनुभव करते हैं (गर्मियां) और उसे 'खौलते झागपर तनी हुई व्यग्र तितली' के बिंब के सहारे पैनी अभिव्यक्ति देते हुए इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि 'कई जिन्दगियोंकी होती है जरूरत/ एक जिन्दगीके लिए ।' संघर्ष और मत्स्य-न्यायका तीखा अनुभव करते हुए वे गर्मीके अनुभवसे 'मर्म' तक पहुँचते हैं। पट्टियों और पलस्तरमें कैद जीवनकी लम्बी यात्रामें वे भी वे हर आदमीके अकेलेपनके बावजूद तत्त्वतः दोनोंकी एकतापर ही बल देना चाहते हैं । साल्वातोरे क्वासीमोदो बदलते वक्तके अहसासके बोझसे दबे जा रहे हैं और हर चीजकी मासूमियत न केवल खो चुके हैं बल्कि स्वीकार करते हैं 'मौतकी मानिंद उदास कर देती है मुझे खूबसूरती ।' उनके यहाँ प्रकृतिका सौन्दर्य उभरकर आता है, पर एक लम्हेके लिए और उदासीको और गहरानेके हेतु । बार्तोलो कत्ताफी भवसागरको पार करनेके लिए की गयी यात्रामें व्यक्तित्वकी सीमाओंको आँकते हैं (द्वीप), बिन्वेंजी कार्दारैल्ली अपने आपको 'सागरपाखी' मानकर

अनन्त नील राशिमें अनन्त शान्तिको पानेकी कामना करते हुएभी इस वातसे बुरी तरह पीड़ित हैं : 'किन्तु जीवनको निस्सहाय जीना मेरी नियति है/ सहना आपदाओंको/ और ढोते चले जाना झंझावातोंमें अपनी जीवन नैया !' और इसी झंझावातसे लड़ते-लड़ते चेज़ादे पावेज़ो मृत्यु-वृत्तसे घिरे होनेका अहसास लिये 'मोक्ष' के द्वार तक पहुंच जाते हैं।

— डा. आनन्दप्रकाश दीक्षित

पुरस्कृत
भारतीय साहित्य

गुजराती समीक्षात्मक कृति

रचना अने संरचना[1]

लेखक : डॉ. हरिवल्लभ भायाणी

समीक्षक : डॉ. सुरेशचन्द्र त्रिवेदी

प्रस्तुत ग्रन्थ डॉ. हरिवल्लभ भायाणीके भाषणों, लेखों, टिप्पणियों आदिका प्रकाशित संग्रह है। डॉ. भायाणी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मध्यकालीन गुजराती साहित्य, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र एवं भाषाशास्त्रके जाने-माने पण्डित हैं। ग्रन्थके प्रथम खण्डमें तीन भाषण हैं—अभिनव गुप्तका काव्य विचार और तत्त्व विचार; साहित्य विचारका संरचनावादी अभिगम और उपन्यासकी प्रकृति : अद्यतन दृष्टिकोण।

'अभिनव गुप्तका काव्य विचार और तत्त्व बिचार' में डॉ. भायाणीने समीक्षा और दर्शनकी अन्योन्याश्रितता तथा परस्पर प्रभावकतापर विचार किया है। दार्शनिक प्रभावके कारण समीक्षा दूषित हो जाती है; शुद्ध समीक्षा तत्त्व उपेक्षित रह जाता है फिरभी यह प्रभाव अनायास आ घुसता है। भारतीय समीक्षा विशेषत: रस-चिंतन आचार्य अभिनव गुप्तसे प्रवल रूपसे प्रभावित है। अभिनव गुप्तको पूर्ववर्ती दर्शन,व्याकरण,तर्क एवं काव्य-चिंतन की परम्परा प्राप्त थी। यद्यपि संस्कृत साहित्यमें भोगे हुए या भुक्तमान जीवनका सांकालिक संस्पर्श वहुत कम है तथापि गीति और नाट्यमें उसने काफी ऊँचाइयोंका स्पर्श किया है। अभिनव गुप्तके विचारोंको सरल शब्दों में प्रस्तुत करना एवं नवागत प्राध्यापकोंको उससे परिचित कराना इस लेखका प्रमुख प्रयोजन है।

लेखमें अभिनवके रस-सम्बन्धी तथा साधारणीकरण सम्बन्धी विचारोंसे जिनिवा सम्प्रदायके समीक्षकों—खास तौरसे मार्लोपोंती, ज्यार्जपलेके इन्टर्सब्जेक्टिविटीके साम्य का प्रतिपादन डॉ. भायाणीका मुख्य लक्ष्य रहा है।

काव्यका चरम प्रयोजन आनन्द है। आनन्द एक मानस-गोचर स्वानुभूति है। सच्चे सहृदयको ही आनन्दानुभूति होती है। क्षोभ, अभिनिवेश या पूर्वाग्रहसे मुक्त काव्याभिमुख व्यक्तिही सच्चा सहृदय है। वार-वारके काव्यानुशीलनसे मुकुरकी भाँति निर्मल चित्तमें तन्मयता हृदय-संवाद स्थापित होता है। चित्तवृत्तिकी स्वकीय-परकीय भावसे परे जो स्थिति है वही साधारणीकरण की आधारभूमि है जो आनन्दानुभवका मूल कारण है। लौकिक आनन्द विघ्न-बाधित होता है जबकि अलौकिक आनन्द विघ्नरहित एवं अपूर्व होता है। जिनिवा सम्प्रदायके समीक्षकोंके—सर्जकके संवित् तथा भावकके संवित् के तादात्म्यके विचारसे साधारणीकरणका अद्भुत व

---

१. **रचना अने संरचना**; लेखक : डॉ. हरिवल्लभ भायाणी, प्रकाशक : आर. आर. शेठ नी कंपनी, मुम्बई। डिमा. १९८०; मूल्य : १५.०० रु.। [साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा ५०००)से पुरस्कृत।]

अनायास साम्य है।

डॉ. भायाणीको प्रो. नगीनदास पारेखके ग्रन्थसे पर्याप्त सहायता मिली है। भारतीय एवं पाश्चत्य काव्य-समीक्षाके क्षेत्रमें तुलनात्मक अध्ययनकी संभावनाओंका क्षितिज विस्तार करनेमें डॉ. भायाणीका यह प्रयत्न श्लाघ्य है, परन्तु समीक्षामें तुलनाके बिन्दुओंका स्पर्श मात्र हो पाया है—विस्तार अपेक्षित था।

दूसरा लेख है 'साहित्य-विचारका संरचनावादी अभिगम।' संरचना शब्दकी अपेक्षा डॉ. भायाणी 'बंधा-रण' शब्दको अधिक निर्दोष और वैज्ञानिक मानते हैं, फिरभी ग्रन्थके शीर्षकमें तथा इस लेखमें भी 'संरचना' शब्दका बहुत खुलकर प्रयोग हुआ है। प्रमाता और समी-क्षकके लिए मूल प्रश्न है—सही-सही आस्वाद और उप-लब्ध आस्वादके परीक्षण-विश्लेषणोपरान्त वस्तुनिष्ठ प्रतिमानोंका निर्धारण कैसे किया जाये? उत्तरमें डॉ. भायाणीने समीक्षाका इतिहास विशेषत: रोमेंटिक समीक्षा के पश्चात्की नव्य समीक्षाका उद्भव-विकास आदिपर दृक्पात किया है। नव्य समीक्षाकी सीमाओंने भाषा-केन्द्री समीक्षाको जन्म दिया और उसीमें से फ्रेंच संरचना-वादका अंकुर फूटा। 'कंटेम्पररी क्रिटिसिज्म' (१९७०) ग्रन्थके आधारपर कतिपय विचार प्रस्तुत हुए हैं। ग्रन्थ में प्रतिपादित दृष्टिकोण हैं—मानवतावादी, कृतिनिष्ठ समीक्षा, विधानिष्ठ समीक्षा, सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि-कोण, मनोविश्लेषणात्मक, तुलनात्मक, भाषानिष्ठ एवं भावनिष्ठ समीक्षा। इन आठों दृष्टिकोणोंका सम्बन्ध मुख्यत: तीन—सर्जक, भावक और कृतिसे है। संरचना-वादी दृष्टिकोण भावकसे सम्बद्ध है। संस्कृत समीक्षाकी वस्तुनिष्ठतापर भी प्रसंगत: विचार किया गया है।

संरचनावादके अभ्युदयके मूल कारणके रूपमें परंपरा-गत समीक्षाके विरुद्ध प्रतिक्रियाको ही स्वीकार किया गया है। अमरीकी नव्य समीक्षाके पूर्व कृतिकी परीक्षामें इति-हास, मूलस्रोत, कर्ता, उसका जीवन, उसके मनोभाव, युगीन दृष्टि, सांप्रत विचारधारा आदि—कृतिसे इतर —प्रतिमानोंका आश्रय लिया जाता रहा। इसके विपरीत नयी समीक्षाने केवल साहित्यिक प्रतिमानोंका आश्रय लिया। फलत: कृतिनिष्ठ समीक्षा फूली-फली। उससेभी कुछ समस्याएं पैदा हो गयीं यथा—साहित्यकी समीक्षा की ही क्यों जाये? उसकी आवश्यकता ही क्या है? साथही समीक्षाके कार्य व प्रयोजन तथा मूल्यके प्रश्न उठ खड़े हुए।

ब्रेडबरीके विचारोंको प्रस्तुत करते हुए डॉ. भायाणी कहते हैं कि परम्परागत ऐतिहासिक दृष्टिकोणका पक्ष कमसे कम इसलिए तो लियाही जा सकता है कि वह कृतिसे सम्बद्ध व उपादेय सामग्रीको खोजकर पूरक सामग्री प्रदान करता है जबकि कृति-निष्ठ समीक्षाकी आग्रही समीक्षा केवल कृतिके पाठ और शब्दकोषको ही पर्याप्त समझती है। कृतिके अर्थघटनपर ही आधृत होनेसे विशिष्ट ज्ञानके आधारपर अपना प्रामाण्य स्थापित नहीं कर पाती। अत: उसका महत्त्व शैक्षिक उपकरण या साधन से अधिक कुछ नहीं।

इस समस्याका उत्तर प्रस्तुत करनेके लिए ही स्ट्र-क्चरल एप्रोचका जन्म हुआ। स्ट्रक्चरकी अवधारणा आधु-निक भाषाविज्ञानसे प्राप्त प्रेरणाका परिणाम है।

कृतिनिष्ठ समीक्षाके विरुद्ध तीन आपत्तियां हैं।

(१) यह विश्लेषणके संदर्भमें अधिक चुस्त और वैज्ञानिक नहीं है।

(२) 'कृति स्वयं पर्याप्त है'—यह विचारही एकांगी है और

(३) इसके केन्द्रमें काव्यानुभूति नहीं है।

संरचनावादके पुरोधा—बर्थ, तोदोरोव, रेरिदा आदि ने संरचनावादका लक्ष्य स्थिर करते हुए कहा है कि कृति का नवीन अर्थ खोजना या अर्थघटन करनेकी अपेक्षा खासकर उन शर्तों व स्थितियोंका पता लगाना है जिनके आधारपर साहित्यमें काव्यार्थ निष्पन्न होता है।

जॉनाथन कलरको उद्धृत करते हुए वे कहते हैं कि कोईभी उक्ति केवल मौखिक उद्गारही नहीं सार्थ उक्ति है। श्रोताको उस भाषाका व्याकरण मालूम है, उसको ध्वनि, वाक्य, अर्थ, आदि इकाइयोंका तंत्र सुपरिचित है फलत: उसे सद्य: अर्थ उपलब्ध या सुलभ होता है। प्रत्येक उच्चरित या लिखित वाक्यका अर्थ होता है, संरचना होती है। इस अर्थबोधके लिए साहित्यिक सज्जता अर्थात् लिटररी कम्पीटेंसी आवश्यक है।

भाषाके पूर्वत: उपेक्षित गुण-धर्मोंको संरचनावादमें विशेष बल मिला। सेमिओटिक्स या सोमओलॉजी और संरचनावादका भेद स्पष्ट करते हुए डॉ. भायाणी कहते हैं कि जब केवल संकेतोंपर ही बल दिया जाये तब संकेत विज्ञानका प्राबल्य मानिये और संकेतोंके बाह्याभ्यन्तर सम्बन्धोंपर विचार किये जानेपर संरचनावादकी प्रबलता मानी जाये। Functional Theory of Meaning को डॉ. भायाणी संरचनावादका एक स्रोत मानते हैं। ऑस्टिनके Speech Act वाक्कर्मका उल्लेख करते हुए

वे भाषा-व्यवस्थाको नियम निर्मित एवं नियम निर्मा... मानते हैं।

वर्धने भाषा-शैली और लेखन संज्ञाओंको विशिष्ट अर्थमें प्रयुक्त किया है। जॉनाथन कलरने संरचनावादी अभिगमको गीत और उपन्यासोंकी समीक्षामें प्रयुक्त कर दिया है। डॉ. भायाणीने चार्ल्स मोरिस द्वारा निरूपित संकेत विज्ञानका परिचय विस्तारसे दिया है। अन्तमें संरचनावादकी सीमाओं और उपलब्धियोंका भी परिचय दिया है।

संरचनावादका बल है—(१) सहयोगी भावकता एवं अपेक्षाओंकी खोजपर—अर्थात् लेखक और भावककी एक सी संवेदनापर (२) साहित्य-चिन्तनके क्षेत्रमें सामाजिक संदर्भकी महत्तापर और (३) समाज विज्ञान एवं भाषा विज्ञानकी सहायतासे आधुनिक तत्त्व-विचारमें वाक्कर्मपर आधारित अर्थ-विचारके माध्यमसे जो सामाजिक-सांस्कृतिक मोड़ आया वैसा मोड़ साहित्यके क्षेत्रमें लानेपर।

डॉ. भायाणीने लेखके अन्तमें तुलनार्थ वाक्यपदीयका संदर्भ दिया है। अधिक उपयुक्त होता यदि तुलनाके बिन्दुओंका स्पर्श मात्र न कर वे काकु, स्वरादय आदिका विवेचन करते और अपनी बातको सोदाहरण स्पष्ट करते। ब्रेडबरीका आश्रय लेते हुए वे संरचनावादकी न्याय्यता प्रतिपादित करते हैं; क्योंकि—इतर समीक्षाकी अपेक्षा साहित्यसे ही उद्भूत व गृहीत तत्त्वोंपर प्रतिष्ठित होनेसे यह संरचनावाद अधिक न्याय्य है।

तीसरा निबन्ध है—'उपन्यासकी प्रकृति : आधुनिकतम प्रवृत्तियाँ', जिसमें पश्चिममें उपन्यासके उद्भव एवं विकासका इतिहास विस्तारसे निरूपित हुआ है। १६वीं शतीके मध्यतक यह धारणा बलवती रही कि कला जीवनका अनुकरण है। प्रारम्भमें उपन्यासके विषयमें भी यही धारणा रही। इसके विपरीत १६वीं शतीके उत्तरार्द्धमें सौन्दर्यपरक धारणा दृढ़ होती गयी, जिसमें स्वरूपगत यथार्थपर बल दिया गया। २०वीं शतीमें यह धारणा या सिद्धान्त विकसित हुआ कि कृति (रचना) और पाठकके बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित हो। १६४६ में वेलेक और वॉरनने लिखा कि काव्यकी तुलनामें उपन्यासके सिद्धान्तका विवेचन मात्रा और गुण दोनों दृष्टियों से कुछ न्यूनही ठहरता है। जबकि १६७४ में हाल्पेरियन ने कहा कि उपन्यासका विवेचन कविता और नाटककी भांतिही विदग्ध और संकुल होता है। इस शतीमें उपन्यासके सृजन, स्वरूप और आस्वादके प्रश्नोंको लेकर ... हुआ।

एपिक, रोमांस और नॉवेल क्रमशः पश्चिमी सामरिक, सामंतीय एवं व्यापारीय युगोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास व्यक्तिवादी युगकी उपज है। मिशेल बुतोर के अनुसार प्रत्येक अच्छा उपन्यास प्रति-उपन्यास Anti-Novel होता है।

प्लैटोने जाति या जातिगत अवधारणाको सत्य कहा था। व्यक्ति सत्य या सामान्यसे इतर-सत्य उसकी दृष्टि में सत्य नहीं है। इसके विपरीत नोमिनलिस्टोंने व्यक्तिवाद खड़ा किया। एक्वायनसेने जाति विशिष्ट व्यक्तिवादको स्वीकार किया। ह्यूमने यह प्रतिपादित किया कि द्रष्टाकी चेतनासे निरपेक्ष द्रष्टव्य या बाह्यजगत्की कोई सत्ता या सार्थकता नहीं, परिणामतः चित्तवाद खड़ा हुआ। बाह्यजगत्की तुलनामें द्रष्टाके अन्तर्जगत्का महत्त्व बढ़ गया। कैंट, हिगेल आदिने इसे आगे बढ़ाया। चित्तवादकी प्रतिक्रियामें बाह्यार्थवादका उदय हुआ। बाल्जाक, जोला, आदि इसके पुरोधा रहे। फिर आया यथार्थवाद और फ्रॉयडका मनोविश्लेषणवाद। प्रस्तुतकी प्रतिक्रिया प्रस्तुत करते हुए बेकेटकी स्थापना है कि यथार्थवादी एवं प्रकृतिवादी अनुभवकी विष्ठा (उत्सर्ग) की पूजा करते हैं। वे ऊपरी सतहका या मुखौटोंका चित्रण करनेमें ही रुचिशील हैं परन्तु उस सतहके नीचे अवस्थित मूल सक्रिय विचार-तत्त्व तो कैदही रहता है। फलतः अन्तश्चेतनावादका उद्भव हुआ। यथार्थकी अभिव्यक्तिके लिए प्रयुक्त भाषिक युक्ति-प्रयुक्तियोंका उपयोग जिसमें प्रमुख है—ऐसे नव्य यथार्थवाद Neo-realism के सिद्धान्त का विकास हुआ जिसकी प्रमुख स्थापनाएं हैं—(१) किसीभी मॉडेलका आधार न लेते हुए नितान्त मुक्त सृजन ही उपन्यासकारकी शक्ति है (२) कलाकृति अपने किसी पूर्ववर्ती सत्यपर प्रतिष्ठित नहीं है। बल्कि यों कहा जा सकता है कि वह अपने-आपको ही अभिव्यक्त करती है (३) लेखकीय प्रतिबद्धताका अर्थ राजनीतिक प्रतिबद्धता नहीं किन्तु अपनी भाषाकी वर्तमान समस्याओंकी सम्पूर्ण अभिज्ञता और उनकी गंभीरताकी प्रतीति तथा उन्हें सुलझानेकी भीतरी उद्दाम कामना ही है (४) यथार्थका कुछ अर्थभी है क्या? कृति अपनी रचनाके पश्चात्ही कुछ अर्थवान् बनती है। उसकी (उपन्यासकी) सफलताके निर्णयार्थ वस्तुनिष्ठ प्रतिमान हमारे पास नहीं हैं।

इन प्रतिमानोंकी स्थापनाके यत्नमें ही फ्रांसका यथातथ्यवाद 'जैसा है वैसा' उदित हुआ। इसमें संपूर्ण

सचाईसे पूर्ण वास्तविकताका सृजन करनेके लिए लेखक अपनी भाषामें से प्रचलित समाज व्यवस्थाका आग्रही रहा विशेषतः बुर्जुवा समाज द्वारा चिराचरित (परम्परागत) मान्यताओंके त्यागका अत्याग्रही रहा।

उपन्यास शर्तिया संभावनाओंकी सृष्टि है। यदि ऐसा हो तो उसमें क्या क्या होना चाहिये ? वास्तविक संभावना से उसका निकटका नाता है। उपन्यासमें यथार्थके माध्यम से इतिहास, अन्योक्ति और रोमांसका समन्वय सिद्ध होता है। शोल्जने यह निष्कर्ष दिया कि उपन्यासमें अनुभूत सत्य कल्पित सत्यका समन्वय अब अधिक टिक नहीं सकता। अतः कथाको अब कल्पनाकी दिशा ग्रहण करनी चाहिये। इसके विपरीत लोज यह तथ्य प्रस्तुत करते हैं कि वस्तुतः आधुनिक कृतियां इसके विपरीत दिशामें जा रही हैं; अ-कपोल कल्पित Non-fictional दिशामें ही वे जा रही हैं।

समग्र लेख उपन्यासके सम्बन्धमें विविध पाश्चात्य विद्वानोंके ग्रन्थोंके गम्भीर अध्ययन तथा चिंतनका प्रमाण प्रस्तुत करता है जो यह सिद्ध करता है कि डॉ. भायाणी के अध्ययनकी परिधि निस्सीम व वैविध्यपूर्ण है।

दूसरे खण्डमें कतिपय टिप्पणियां प्रस्तुत हैं प्रथम है—काव्यमें भाषाका कार्य। पश्चिमी ग्रन्थों व ग्रन्थ-कारोंका विशेषतः जॉनाथन कलर, क्लिन्थ ब्रूक्स तथा एच. जी. विदोवसनकी रचना 'स्टाइलिस्टिक्स एण्ड टीचिंग ऑफ लिटरेचर' का आधार गृहीत है। पैथेटिक फैलेसी, इमेज, ऑब्जेक्टिव कॉ-रिलेटिव, डेविएशनसे चर्चा प्रारम्भकर भाषा वैज्ञानिक शैली विज्ञानाश्रित विवे-चनका संक्षिप्त किंतु सारपूर्ण इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है और साथही भारतीय मतके अभिधा, लक्षणा, व्यंजना तथा तात्पर्या-वृत्तिकी महत्ता व उत्तमताकी ओर संकेत भी दिये गये हैं।

अन्य टिप्पणियां हैं—अर्थशक्ति और अर्थाभिव्यक्ति; नव्य शैली विज्ञान, साहित्य-इतिहासके विषयमें कुछ, वाग्डम्बर और पदावली।

अर्थशक्ति और अर्थाभिव्यक्तिमें डॉ. भायाणीने अभिधासे व्यंजनातकके संक्रमणकी ओर संकेत किया है। काव्य-भाषाके सम्बन्धमें पूर्व और पश्चिमके विचारकोंके मतोंका स्पर्श करते हुए भारतीय मत—शब्दशक्ति विवे-चन—की उच्चता व श्रेष्ठताकी ओर अपनी सहज अनु-कूलता व्यक्त की है।

नव्य शैली विज्ञान सम्बन्धी टिप्पणीका प्रमुख आधार रोजर फाउलरका ग्रन्थ है। प्रतिपाद्य विचार-बिन्दु हैं—

(१) भाषा प्रयोगसे तात्पर्य चित्तसात् (आत्मसात्) कृत भाषाज्ञानसे है। (२) भाषा सामर्थ्य (३) भाषककी क्षमता (४) मुख और श्रवण सम्बन्धी ज्ञानतंतुओं और शरीर रचनाका उपयोग (५) वाणी-व्यवहारकी तत्कालीन परिस्थितियाँ व उनके प्रति संवेदनशील दृष्टि। फलतः शब्द-चयन (६) स्मृतिकी सीमाएं (७) वागंगोंकी त्रुटि-पूर्णता या निर्दोषता (८) आकस्मिक कारण (९) प्रयोक्ता की मान्यताएं — वृत्तियां, जानकारी, स्वास्थ्य, मानसिक स्थिति विशेष (१०) इतर-बोली, लहजा, विशिष्ट काकु, वय, जाति, व्यक्तित्वके द्योतक तत्त्व आदि। यहाँभी उन्होंने fictional ordering कल्पित व्यवस्थापन तथा Fiction Making device नवनिर्माण रीतियाँ—पर बल दिया है। नव्य शैलीविज्ञान एवं संरचनावादका घनिष्ठ सम्बन्ध बताते हुए अपनी बात प्रतिपादित की है।

साहित्येतिहास विषयक टिप्पणी विशेष महत्त्वपूर्ण है। आजकल साहित्य मीमांसा 'तंत्र' बनती जा रही है। व्यवस्था हमेशा यांत्रिक होती है। साहित्येतिहासकी तीन आधारभूत विशिष्टताएं वे मानते हैं—(१) वह विशिष्ट होता है (२) वह ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करता है (३) वह किसी व्यवस्थाका अंग है। सौन्दर्य मीमांसक का कार्य जहाँ समाप्त होता है इतिहासकारका कार्य वहींसे शुरू होता है। पिछले तीन दशकोंमें साहित्यिक कृतिकी मीमांसा करने या आस्वादके लिए सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहासके विविध पहलुओंपर ध्यान दिया जाने लगा है। कालक्रमसे कृतियोंका परिचय दे देने मात्र से साहित्येतिहासकी इतिकर्त्तव्यता नहीं है। इसी प्रकार युग विभाजनभी सुविधाभोगी और सापेक्ष वस्तु है। प्राचीन, मध्यकालीन, आधुनिक आदि शब्द सापेक्ष है। 'काल' निरन्तर प्रवाहशील है अतः काल विभाजन अंतिम नहीं, परस्पर असंपृक्तभी नहीं है।

'वाग्डम्बर' का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. भायाणी प्रश्न करते हैं कि यह गुण है या दोष ? इसका निर्णायक तत्त्व है 'अनुभूति' का स्वरूप। अनुभूतिकी सामान्य या असामान्यताके अनुपातमें ही अभिव्यक्तिकी सरलता या आलंकारिताका आधार होता है। भारतीय रीति विचार की ओर संकेत करते हुए 'गौड़ी' की अधिक प्रभावकता प्रतिपादित की गयी है। रचनाकार और श्रोताकी दृष्टि से इसपर विचार किया गया है। वाग्डंबर भाषा-शैलीका पर्याय माना गया है परन्तु दोनोंमें भिन्नता है यद्यपि मूलतः दोनों काव्य-भाषासे सम्बद्ध हैं। वर्ड्स्वर्थने सहज स्वाभाविक पदावलीका पक्ष लिया है, तो कॉलरिजने

काव्य-भाषाको साधारण भाषासे [illegible] माना है । अतः डॉ. भायाणीने कुंतलके सुकुमार और विचित्र मार्गों की ओर संकेत किया है । डॉ. भायाणीने प्रश्न उठाया है कि काव्य-भाषा और सामान्य भाषा परस्पर निकट होनी चाहिये या दूर ? इस मुद्देपर—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, डिंगल आदिको उन्होंने साधारण भाषासे दूर काव्य-भाषा प्रतिपादित किया है । प्रसाद और नानालाल की काव्य-भाषाभी साधारण भाषासे दूर है । अति प्रयुक्त शब्दकी व्यंजना या चमक खत्म हो जाती है । निस्तेज और अर्थरिक्त इसी परम्परागत भाषाका नये कवियोंने विरोधकर नयी काव्य-भाषाके निर्माणपर जोर दिया । प्रत्येक नये युगमें पूर्ववर्ती कालकी भाषा पुरानी व कालग्रस्त हो जाती है । एक अन्य तथ्य प्रतिपादित किया है कि प्रयोक्ताके तेज व बल-संदर्भसे परम्परागत रूढ़ व घिसा-पिटा शब्दभी चेतनायुक्त बन जाता है ।

तीसरे खण्डमें कुछ सार प्रस्तुत किये गये हैं । साहित्य और समाज, मध्यकालीन साहित्यकी विरासत, लोकनाट्य की प्राचीन परम्परा, साहित्यके संदर्भमें वैश्विकता, भारतीयता और गुजरातीता आदि ।

यहाँ मुख्यत: रेनेवेलेकके ग्रन्थ 'थियरी ऑफ लिटरेचर' का आधार लिया गया है । चूंकि साहित्य जीवन का प्रतिबिंब है, जीवन उसकी प्रधान सामग्री है । भाषा, छन्द, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, पुराकथा आदिभी सामग्रीही है । साहित्यकार, साहित्य और श्रोता—तीनों समाजके अंग हैं । इस दृष्टिसे Literature is a social insttiute है । साहित्यके परीक्षणके तीन दृष्टिकोण—वर्णनात्मक, विधि-निषेधमूलक तथा मूल्याश्रित किंवा मूल्यांकनाश्रित । साहित्यकारकी दृष्टिसे साहित्य और समाजके सम्बन्धोंका विवेचन किया जा सकता है । सामाजिक प्रयोजनकी दृष्टिसे दोनोंका सम्बन्ध देखा-परखा जा सकता है । भावकपर पड़नेवाले प्रभावकी दृष्टिसे भी उसे देखा जा सकता है । प्रश्न यह है साहित्य समाजमें किस सीमातक नियन्त्रित है ? प्रश्नका उत्तर तीन दृष्टियोंसे ढूँढ़ा जा सकता है—(१) समाज, (२) साहित्यकार और (३) भावककी दृष्टिसे । साहित्यकार और समाजके बीच आत्मीयता होती है, होनी चाहिये । साहित्य शासक एवं सामाजिककी रुचियोंसे प्रभावित होता है । आधुनिक साहित्यकार सामाजिक विच्छिन्नता की अनुभूति करता है । सम्प्रति सामाजिक प्रभावकता अधिक महत्त्वपूर्ण है अतः साहित्य सामाजिक दस्तावेज या सामाजिक यथार्थका चित्र है—यह मान्यता दृढ़ीभूत होती जा रही है । इस दृष्टिसे सामाजिक कृतियों, [illegible], नैतिक धार्मिक, विचारोंका ऐतिहासिक अध्ययन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । जाति, परिवेश और क्षण—इस त्रिकमें साहित्य परिवेशपर सर्वाधिक ध्यान देता है । मार्क्सवादी अभिगम आर्थिक परिवेश पर अधिक ध्यान देता है । कुछ समीक्षकोंने सौन्दर्य या रसको सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है । अन्तिम बात है—भावी समाज (जो वर्गविहीन समाज होनेकी अधिक संभावना है) में समाजके प्रति साहित्यका क्या रुख रहेगा ?

'मध्ययुगीन साहित्यकी विरासत' में प्रादेशिक भिन्नताके बावजूद एकता, रूपत: भिन्न किन्तु तत्त्वत: एक ऐसे साहित्यकी पारस्परिक निकटतापर विचार प्रकट किये गये हैं । गुजराती-मराठीकी निकटता या अन्य ऐसी किसी निकटताके मूलमें पूर्व परम्परा—सिद्धोंकी परम्परा का लाभ मुख्य है ।

'लोक नाट्यकी प्राचीन परम्परा' में भवाईका इतिहास प्रस्तुत करते हुए उपरूपकोंके एक भेद 'प्रेक्षणक'—प्रेक्षण—को उसका मूल बतलाया गया है । लोक नाट्यमें सामाजिक दुर्बलताका निरूपण, सामाजिक-घातकोंके अनिष्टोंपर व्यंग्य प्रधान होता है । इसपर प्रहसन और भाणके तत्त्वोंका समन्वित प्रभाव पाया जाता है । हल्लीसक या रासकका गेय तत्त्व, चर्चरीका नृत्त तत्त्व और अम्बिकामें गीत और नृत्य दोनोंका लोक नाट्यपर प्रभाव है ।

साहित्य संदर्भमें वैश्विकता, भारतीयता और गुजरातीताका चर्चित मुद्दा है—विज्ञान और तकनीकीके प्रभावसे यह विश्व छोटा और एक देशसे दूसरा देश बहुत निकट हो गया है; फलत: पश्चिमके अनेक देशोंका संपर्क सहज सम्भव हो गया है । परिणाम यह हुआ है कि हमारे साहित्यमें वैश्विकताका विचार व प्रभाव बढ़ गया है परन्तु कला और शिल्पके क्षेत्रमें हम अबभी अपनी भारतीयता सुरक्षित रखे हुए हैं । लोक-कलाओंके क्षेत्रमें हम गुजरातीपन बचाये हुए हैं । वर्तमान संदर्भमें यह कहाँतक उचित है या शोचनीय ?

चतुर्थ खण्डमें 'अर्वाचीन गुजराती काव्य-समीक्षाकी एक दिशा-भूल' मुख्य लेख है जिसमें डॉ. भायाणीने यह बतलाया है कि आधुनिक गुजराती काव्य-समीक्षा प्रारम्भ से ही पाश्चात्य समीक्षाका पल्लव पकड़कर चली है और भारतीय-काव्य-समीक्षाको छोड़कर उसने भारी भूल की है । डॉ. भायाणीने यह बतलाया है कि संस्कृत समीक्षा वस्तुनिष्ठ-विवेचन, विवरण और मूल्यांकन और अन-

न्यता, सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराका महत्त्व आदि उन तमाम विचार-बिन्दुओंसे सुपरिचित थी जिनपर पश्चिमी समीक्षाका प्रसाद खड़ा हुआ है। एलियटके ऑब्जेक्टिव कॉरिलेटिव-सिद्धान्तको रस सिद्धान्तके साथ तुलनीय बताते हुए कहा, बल्कि यह प्रतिपादित किया कि रस सिद्धान्त अधिक सुस्पष्ट व पुष्ट है। इसी प्रकार एस्थेटिक डिस्टन्सकी तुलना तादात्म्य ताटस्थ्य एवं साधारणीकरण से की है। ओर्गेनिसिटीकी पदशैय्या, पदमैत्री और बंध-गुणसे समताभी बतलायी है। 'इमेज' का सम्बन्ध अप्रस्तुत विधानसे स्थापित कर दिखाया है। इसी प्रकार पश्चिमी अलंकार निरूपणके समक्ष भारतीय अलंकार निरूपणको खड़ा कर दिया है। एलिटरेशनका साम्य अनुप्रास, यमकादिसे है। अरस्तूके मेटाफर और डायाफरकी तुलना लक्षणा और व्यंजनाके साथ आसानीसे की जा सकती है। रूसी 'स्वरूपवाद' का सम्बन्ध सालंकारता और वक्रोक्तिसे जोड़ा जा सकता है। आधुनिक स्ट्रक्चरलिज्मके लिटररी कोम्पिटन्स (साहित्यिक क्षमता या अर्हता) के साथ सहृदयताका विचार तुलनार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। तुलनाके अनेक आयामोंका दिशा-संकेत डॉ. भायाणीने किया हैं।

'भवभूतिकी प्रकृति कविता' लेखमें संस्कृत नाटकोंमें बीच-बीचमें आनेवाले पद्यों (श्लोकों) की सार्थकता प्रतिपादित करते हुए भवभूतिके नाटकोंमें—पद्योंमें निरूपित प्रकृतिका सुन्दर दिग्दर्शन कराया गया है। इन श्लोकोंमें जो प्रकृति वर्णन है, वह जीवनसे प्रगाढ़ रूपसे संसक्त है। यह प्रकृति वर्णन जीवनसे जुड़ा हुआ, अंगीरसका पोषक है, फालतू या अवांछित नहीं। 'महावीरचरित' का पाँचवाँ अंक, 'उत्तर रामचरित' का द्वितीय अंक, 'मालती माधव' का नवम अंक प्रकृति वर्णनकी दृष्टिसे ध्यातव्य है। छन्द, रस, अलंकार आदिकी परस्पर पोषक स्थिति भी द्रष्टव्य है।

समस्त लेख प्रकृति-वर्णन-वैशिष्ट्यके निरूपणसे भरा है। 'कमललोचने अश्रु' में अमरु शतक, राजशेखर और कुछ अज्ञात कवियोंकी विरह वर्णनकी विदग्धताका आस्वाद कराया गया है, 'अपूर्व अनुभूति, अदम्य व्यंजना'—में अपभ्रंशकालीन काव्यकी सघन-प्रभावक संवेदना का सदृष्टांत आस्वादन कराया गया है।

पंचम खण्डमें कुछ अनुवाद और टिप्पणियां हैं। 'अर्थघटन/ विवरणना वे प्रयोग' में श्री. ब. क. ठाकोरकी प्रसिद्ध कविता 'भणकारा' तथा राजेन्द्र शुक्ल कृत'अनिद्रा' का अर्थघटन कर दिखाया है। व्यावहारिक-समीक्षाका यह सुन्दर उदाहरण है। वाक्य-रचना, पदावली, छन्द, लक्षणा, ध्वनि, अलंकार, सांस्कृतिक परिवेश आदि अनेक दृष्टियोंसे परीक्ष्य काव्योंका परीक्षण-विवेचनकर डॉ. भायाणीने काव्य-समीक्षाका एक व्यावहारिक—समायोगात्मक मार्ग निर्देश किया है विशेषतः नये अध्यापकोंके लिए। यहांभी भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धान्तोंका समन्वित आश्रय लिया है। रीति, गुण, ध्वनिके साथ स्ट्रक्चरल पोएटिक्सका भी परस्पर सम्बद्ध विवेचन साधार प्रस्तुत किया है।

समस्त ग्रन्थ डॉ. भायाणीके विविध विषयोंके गहन अध्ययन, मनन, चिंतन और क्रियान्वयनका परिचायक है तथा उनके अगाध पांडित्यका प्रमाण है।

डॉ. चन्द्रकान्त टोपीवालाने 'ग्रन्थ' पत्रिकाके मार्च १९८१ (अंक २०७) में इस कृतिका विवेचन करते हुए अपनी कतिपय प्रतिक्रियाएं प्रस्तुत की हैं जो इस प्रकार हैं—(१) ग्रन्थका विवेचन-विश्लेषण शिथिल है। (२) तुलना सतही है। (३) डॉ. भायाणी भारतीय काव्यशास्त्रके प्रति अभिनिवेशी हैं। (४) संस्कृत श्लोकोंका अनुवाद त्रुटिपूर्ण है। (५) भूमिकामें जिन अध्यापकों (संस्कृत व अंग्रेजीके ज्ञानसे वंचित) को ध्यानमें रखा गया है, उन्हें यह अधिक उपकारक सिद्ध नहीं होता है। (६) शीर्षकमें 'बंधारण' शब्द न रखकर 'संरचना' शब्द स्वीकारकर उदारताका परिचय दिया है (संभवतः व्यंग्य में यह कहा गया है)।

डॉ. टोपीवालाकी इन सभी बातोंसे सहमत हो पाना बड़ा कठिन है। ऊपरी दृष्टिसे यह विवेचन विशृंखल या शिथिल दिखायी दे सकता है परन्तु बात वैसी नहीं है। डॉ. भयाणीकी कठिनाई यह रही है कि एकही साथ वे इतिहास, तुलना और समीक्षा—तीनों कर्मोंको साथ मेंकर चलना चाहते है, यही कारण है कि समीक्षा फिसलती जान पड़ती है। विषयके थोड़ेसे भी जानकार व्यक्तिको इनके लेखनका मर्म तुरन्तही ग्राह्य हो जायेगा।

'तुलना सतही है' कहनेकी अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि 'विस्तृत नहीं है' इसका प्रमुख कारण है विस्तार भयसे बचना। डॉ. भायाणीने यथाप्रसंग तुलनाके बिन्दुओंका स्पर्श मात्र कर दिया है जो खटकता है। अच्छा होता कि वे जमकर तुलना करते और सार्थिक प्राय मौन न रहकर निर्भीक पदावलीमें उच्चावचता का आख्यान करते। किन्तु समीक्षकके रूपमें डॉ. भायाणी

ऋजु प्रकृतिके समीक्षक हैं। वे [illegible] भी फूलकी गेंदसे प्रहार करते हैं।

वे 'अभिनिवेशी हैं' ऐसा कहना दोनों ओरसे सत्य सिद्ध होगा। यदि कहा जाये कि वे पाश्चात्य समीक्षाके प्रति अभिनिवेशी हैं—तो यह बातभी उतनीही सही होगी जितनी डॉ. टोपीवालाकी। वस्तुतः प्रत्येक विद्वान् यदि सही अर्थमें विद्वान् है तो पूर्व या पश्चिमकी हर अच्छी बातका अभिनिवेशी होगा। डॉ. भायाणीभी अभिनिवेशी हैं—किसी एक शास्त्र या समीक्षाके नहीं, हर अच्छी समीक्षाके, हर अच्छे विचारके।

अनुवादकी जिन त्रुटियोंकी ओर डॉ. टोपीवालाका संकेत है वे अछांदस् अनुवादके कारण—लयकी रक्षाके कारण हैं। ये वहुत नगण्य-सी बातें हैं।

डॉ. टोपीवालाकी अन्तिम प्रतिक्रिया विचारणीय है। संस्कृत और अंग्रेजीका ज्ञान नये अध्यापकोंमें अब वैसा नहीं रहा, जैसा कुछ वर्ष पूर्व था। आजभी कुछ अच्छे अध्यापक मिलेंगे जोकि संस्कृत और अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान रखते हों। जिन्हें पूर्व और पश्चिम समीक्षाका पर्याप्त आधार प्राप्त नहीं हैं—उनके लिए डॉ. भायाणी के समग्र विचार या लेखन सुपाच्य नहीं होंगे। जिनका आधार पर्याप्त है, उन्हें यह अपर्याप्त जान पड़ेगा। मूढ़ और अमूढ़ दोनोंकी तृप्ति कर पाना तो कठिन कार्य है।

अर्थ और अतृप्तिके बीचका मार्ग खोजना सुदुष्कर है। डॉ. टोपीवालाने डॉ. भायाणीके विरल-अद्भुत ज्ञान और संश्लेषण शक्तिकी पर्याप्त प्रशंसा की है। डॉ. टोपीवाला भी एक समधीत विद्वान् हैं। मतभेद आवश्यक है तभी तो तत्त्वबोधकी वृद्धि होगी।

इस कृतिपर पुरस्कार घोषित होनेपर कुछ लोगोंको आश्चर्यानुभूति होती है। इसलिए नहीं कि डॉ. भायाणी पुरस्कारके योग्य नहीं हैं, इसलिए कि उन्हें यह रचना इतनी सशक्त प्रतीत नहीं होती। इस सम्बन्धमें नम्र निवेदन यह है कि वे १६ मई ८२ के टाइम्स ऑफ इण्डियामें प्रकाशित श्री रमेश दिविकका पत्र पढ़ें। दक्षिणके एक लेखकने इस बातपर अपना क्षोभ प्रकट किया था कि किसी समीक्षकने यह कह दिया कि पुरस्कृत कृतिसे उसी लेखककी अन्य कृति अधिक बलवत्तर है। वस्तुतः लेखक मात्र अधिक संवेदनशील होता है। पुरस्कार के लिए कोई कृति तो केवल माध्यम होती है। उस लेखकके समग्र कर्तृत्वका समाकलनकर अन्तमें किसी कृतिके माध्यमसे वह समादृत होता है। यदि 'रचना अने संरचना' के विषयमें भी ऐसा हो तो भी क्या आपत्ति है! डॉ. भायाणीका समग्र कर्तृत्व निश्चयही महान् है और अकादमीने उन्हें इस रचनाके माध्यमसे पुरस्कृत कर एक श्लाघ्य कार्य किया है। ▭ ▭

शोध आलोचना

साहित्यका समाजशास्त्र : अवधारणा सिद्धान्त एवं पद्धति

लेखक : डॉ. विश्वम्भरदयाल गुप्त; प्रकाशक : सीता प्रकाशन, मोती बाजार, हाथरस-२०४-१०१। पृष्ठ : १०७; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।

मानवीय ज्ञानके विभिन्न अनुशासनोंमें समाजशास्त्र अपेक्षाकृत नया अनुशासन है। उसकी एक शाखाके रूप में 'साहित्यका समाजशास्त्र' तो बिलकुल नया अनुशासन है। यह कहा जाये कि वह तो अभी बनही रहा है, तो अत्युक्ति न होगी। डॉ. विश्वम्भरदयाल गुप्तकी पुस्तक 'साहित्यका समाजशास्त्र' हिन्दीमें अपने विषयकी पहली-पहली पुस्तकोंमें से एक है। अतः साहित्य और समाज-शास्त्र दोनोंके क्षेत्रमें वह ध्यान आकर्षित करेगी।

मूल पुस्तकके प्रारम्भ होनेसे पूर्व विद्यानिवास मिश्र लिखित 'आमुख' तथा राजेश्वरप्रसाद लिखित 'भूमिका'

सम्मिलित हैं। साहित्य और समाजशास्त्रके सम्बन्धको लेकर मिश्रजीने कुछ तर्कसम्मत और सन्तुलित बातें कही है, किन्तु राजेश्वरप्रसादजीकी दृष्टि अपना सन्तुलन खो कर एकांगी हो गयी है। यहाँ इसपर विचार करनेका अवसर नहीं है।

समीक्ष्य पुस्तक पाँच अध्यायोंमें विभाजित है। पहला अध्याय है 'साहित्यका समाजशास्त्रीय उपागम'। इस अध्यायमें साहित्यके प्रति विभिन्न समाजशास्त्रियोंके दृष्टिकोणोंका विवरण प्रस्तुत करनेके पश्चात् उनके आधारपर कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले हैं। साहित्य-शास्त्री साहित्यका अध्ययन काव्यशास्त्रीय मानदण्डों एवं कलात्मक मूल्योंके सन्दर्भमें करता है। इसके विपरीत समाजशास्त्री साहित्यको एक संस्थाके रूपमें स्वीकार करता है और उसका अध्ययन समाजशास्त्रीय मानदण्डोंके संदर्भमें करता है। "साहित्यके समाजशास्त्रीय अध्ययन उपागम हेतु'कृति'एक महत्त्वपूर्ण आधार है। कृतिके उद्भव विकास एवं अस्तित्वके लिए उत्तरदायी इकाइयों लेखक-प्रकाशक-पाठक-आलोचकवर्गकी अन्तर्क्रियाओंसे निर्मित साहित्य-संरचना, उनकी भूमिका एवं पारस्परिक प्रभाव तथा मानव-व्यवहारपर कृतिके प्रभावोंका अध्ययन साहित्य का समाजशास्त्रीय आधार प्रस्तुत करता है जिसके आधारपर साहित्य-सर्जनकी सम्पूर्ण प्रक्रियाको बोधगम्य बनाया जा सकता है।" (पृ. १४)इस अध्यायमें विभिन्न समाजशास्त्रियोंके जो मत दिये गये हैं और लेखकने स्वयं जो निष्कर्ष निकाले हैं उनसे सभीके साहित्यके समाजशास्त्रीय अध्ययनके औचित्य और महत्त्वको सिद्ध करनेकी चिन्ताका पता चलता है। दूसरे अध्यायमें साहित्यके समाजशास्त्रका ऐतिहासिक विकास प्रस्तुत किया है। एच. तेनको साहित्यके समाजशास्त्रका संस्थापक माना जाता है। उसके बाद अनेक विचारकोंने इसे व्यस्थित रूप देनेमें योगदान दिया। इन सबका विवरण लेखकने उपस्थित किया है। भारतवर्षमें भी इस दिशामें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे हुए प्रयत्नोंका विवरण लेखकने दिया है। अभीतक भारतमें समाजशास्त्रियोंकी अपेक्षा साहित्यशास्त्रियोंका योगदान ही अधिक है। तीसरे अध्याय में साहित्यके समाजशास्त्रकी अवधारणाको निश्चित किया गया है। इसमें साहित्य क्या है, दोनोंका वर्ण्य-विषय क्या है, साहित्यिक कल्पना और समाजशास्त्रीय प्राक्कल्पनाओंका स्वरूप क्या है और उनमें पारस्परिक संबंध क्या है, आदि प्रश्नोंका उत्तर खोजनेके पश्चात लेखकने साहित्यके समाजशास्त्रकी अवधारणाको स्पष्ट किया है। उसकी स्थापना है कि "साहित्यका समाजशास्त्र सौन्दर्यात्मक एवं अभिव्यक्तिमूलक संस्थाके रूपमें साहित्य-सर्जन की सम्पूर्ण प्रक्रियाको देनेवाले कारकोंके सन्दर्भमें साहित्यिक समाजकी संरचना और प्रकार्योंका तथा कृतिके प्रभावों एवं परिणामोंका क्रमबद्ध अध्ययन है।" (पृ.५१) यह स्वीकार करते हुए कि'साहित्य-समाजशास्त्रके विषय-क्षेत्रपर विचारक एकमत नहीं हैं', लेखकने साहित्य-समाजशास्त्रकी विषय सामग्रीका निर्धारण करनेका प्रयत्न किया। (पृ. ५३-५४) चौथे अध्यायमें साहित्य-समाजशास्त्रकी अध्ययन पद्धतियोंकी स्थापना की गयी है। साहित्यका अध्ययन दार्शनिक, काव्यशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक इत्यादि विभिन्न आधारोंपर किया जाता रहा है। इन अध्ययनोंमें अनेक दुर्बलताएँ रही हैं, जिन्हें साहित्यका समाजशास्त्र दूर करता है। उसकी तीन मुख्य अध्ययन पद्धतियां हैं—ऐतिहासिक, तुलनात्मक, एवं संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक पद्धति। अन्तिम अध्यायमें साहित्य-समाजशास्त्रके सिद्धान्तोंकी व्याख्या की गयी है। ये सिद्धान्त हैं—प्रतिच्छाया सिद्धान्त, नियामक सिद्धान्त, प्रभावक सिद्धान्त, व्यक्तित्व सिद्धान्त, कृतिके स्वागतका सिद्धान्त, सम्प्रेषणका सिद्धान्त, साहित्यिक तथ्यका सिद्धान्त और समाजवादी यथार्थवादका सिद्धान्त। इन सिद्धान्तोंमें ऐसी चीजें नगण्य हैं जिनसे आजका प्रबुद्ध साहित्य-समीक्षक परिचित न हो या जिनका वह उपयोग न करता हो।

'साहित्यका समाजशास्त्र' पुस्तक डॉ. गुप्तकी विद्वत्ताको सामने लाती है। यही विद्वत्ता इस पुस्तकका सबसे बड़ा दोष है। किसी विषयमें किस-किसने क्या-क्या कहा है, लेखक इसकी झड़ी लगा देता है। इसका परिणाम यह है कि अनेक बार प्रत्येक वाक्य के साथ एक-एक संदर्भ जुड़ा है। उदाहरणके लिए आगे उद्धृत तीन वाक्योंमें से प्रत्येकके साथ एक-एक संदर्भ जुड़ा हुआ है—"समाजशास्त्र समाजका वैज्ञानिक अध्ययन है। समाजको समाजशास्त्रियोंने सामाजिक सम्बन्धोंकी जटिल व्यवस्थाके रूपमें परिभाषित किया है। इन्हीं सामाजिक सम्बन्धोंका अध्ययन समाजशास्त्रकी विषय-वस्तु है।" (पृ. ४७-४८) यही कारण है कि दूसरे अध्यायकी १८ पृष्ठोंकी पाठ्य-सामग्रीके साथ ९८ संदर्भ सम्बद्ध हैं। सन्दर्भों, उद्धरणों और दूसरोंके कथनोंकी इस भरमारमें डॉ. गुप्तकी अपनी बात खो गयी है। उनमें मौलिक और स्पष्ट ढंगसे विचार कर सकनेकी क्षमता है, इसके प्रमाण उनकी इस पुस्तकमें विद्यमान हैं, किन्तु उनपर

उनका अध्यापक और यान्त्रिक अनुसंधान इतना हावी है कि उनकी मौलिक चिन्तनकी क्षमता प्रमुखता प्राप्त नहीं कर पाती। अच्छा होता कि साहित्य और समाज दोनोंके निजी पर्यवेक्षण और विश्लेषणके माध्यमसे साहित्यके समाजशास्त्रके संबन्धमें उन्होंने अपनी स्थापनाएँ सामने रखीं होतीं। उस स्थितिमें उनकी पुस्तक अधिक प्रभावशाली और विचारोत्तेजक बन सकी होती। अपने वर्तमान रूपमें तो वह सूचनाओंका अम्बार मात्र है। उसकी भूमिका मुख्यत: सूचनात्मक है। इस रूपमें वह पाठकोंको एक नवीन ज्ञान-क्षेत्रका परिचय मात्र दे सकती है। इस दृष्टिसे उसकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

☐ डॉ. हरदयाल

राकेश गुप्तका रस विवेचन

लेखक : डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी, डॉ. नीरजा टंडन; प्रकाशक : ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़-२०२-००१। पृष्ठ : ६१; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

यद्यपि प्रस्तुत पुस्तकका कलेवर बहुत विस्तृत नहीं, कुल ६१ पृष्ठही हैं, परन्तु विषय-वस्तुकी दृष्टिसे पुस्तक का अपना महत्त्व है। आजसे बहुत वर्ष पूर्व (१९५० में) डॉ. राकेश गुप्तका शोध प्रवन्ध 'साइकॉलॉजीकल स्टडीज इन रस' प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने बहुत-सी रस सम्बन्धी प्राचीन मान्यताओंका खण्डन करके रस-सिद्धान्तका मौलिक विवेचन किया और रसको ब्रह्मास्वादकी स्थितिसे उतारकर लौकिक अनुभूतिके स्तरतक लानेका सराहनीय प्रयास किया था। प्रस्तुत पुस्तक डॉ. गुप्त द्वारा प्रस्तुत रस-विवेचनकी समीक्षाके उद्देश्यसे लिखी गयी है। पुस्तकमें तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय 'रस-विवेचनकी परम्परामें डॉ. राकेश गुप्त' डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी द्वारा लिखित है, दूसरा अध्याय 'डॉ. राकेश गुप्तकी रसास्वादन एवं साधारणीकरणसे सम्बन्धित स्थापनाएँ और उनका मूल्यांकन' डॉ. (कुमारी) नीरजा टंडन द्वारा लिखित है। तीसरा अध्याय परिशिष्टके रूपमें है जिसमें डॉ. राकेश गुप्तकी भावी पुस्तक 'आस्वादन सिद्धान्त' की संक्षिप्त रूपरेखा दी गयी है।

जिस उद्देश्यको लेकर यह पुस्तक लिखी गयी है उस उद्देश्यमें यह प्रयास सफल है। डॉ. गुप्तकी रस संबंधी मान्यताओंको पुस्तकमें स्पष्टता और तर्कपूर्ण ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। अधिकांश भागमें डॉ. गुप्तकी मान्यताओंका समर्थनही किया गया है परन्तु यत्र-तत्र विशेषत: प्रथम अध्यायमें गुप्तजीसे असहमतिभी व्यक्त की गयी है। परन्तु ऐसे स्थल विरलही हैं। डॉ. गुप्तकी रस-सिद्धान्त की परम्परामें मुख्य देन यह है कि इसमें लौकिक व्यावहारिकताको जोड़ा गया और रसको अलौकिक अनुभूतिके गगनसे लौकिक धरातलपर उतारा गया। शास्त्रीयताकी जकड़में रूढ़ होते जा रहे 'रस' को मनोवैज्ञानिक धरातल पर विश्लेपितकर डॉ. गुप्तने रसके विपयमें चिन्तनको एक नयी दिशा दी। उन्होंने साधारणीकरणके सिद्धान्तको न मानकर प्रतिक्रियात्मक अनुभूतिको रसानुभूति माना और रसानुभूतिको सदैव सुखात्मक न मानकर दु:खात्मक भी माना (जो पहले रामचन्द्र-गुणचन्द्र मान चुके हैं)। इन सब बातोंको इस पुस्तकमें प्रस्तुत किया गया है। डा. राकेश गुप्तके मत बहुत विवादास्पद रहे हैं। उनकी कटु आलोचनाभी हुई है। इस पुस्तकमें इन आलोचनाओं का भी उत्तर देनेका प्रयास किया गया है। उनसे सहमत होना या न होना यह व्यक्तिके चिन्तन-सापेक्ष है क्योंकि ज्ञानकी सीमाएं निरन्तर परिवर्धनशील हैं।

यहाँ इस पुस्तकमें प्रस्तुत डॉ. गुप्तके सिद्धान्तोंकी समीक्षा न तो अभीष्टही है और स्थानकी दृष्टिसे न संभवही। परन्तु कुछ बातें ऐसी हैं जिनपर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना नहीं रहा जा सकता। डॉ. गुप्त की धारणाएं प्रस्तुत करते समय अतिरिक्त उत्साहसे काम लिया गया प्रतीत होता है, जिससे प्राचीन आचार्योंके मत को भी समझनेमें भूल की गयी है। उदाहरणके रूपमें प्रथम अध्यायमें जहाँ डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदीने मत व्यक्त किया है कि भरतसे पूर्व रसके दो रूप थे—आस्वाद रूप (व्यक्तिनिष्ठ) तथा आस्वाद्य रूप (वस्तुनिष्ठ)—(पृ. ११), उन्हींके शब्दोंमें 'नाट्यशास्त्रके रस-विवेचन में भरत मुनिकी दृष्टि रसके वस्तुनिष्ठ रूपपर उसी प्रकार केन्द्रित है, जैसे अर्जुनकी केवल चिड़ियाकी आंख पर थी। यहाँतक कि उन्होंने रसके व्यक्तिनिष्ठ या आस्वादरूप रसका परिचय देनेवाले उपर्युक्त श्लोकोंको उद्धृत करनेके बावजूद स्वयं एक शब्दभी ऐसा नहीं लिखा जिससे यह प्रतीत हो सके कि आस्वादमूलक रससे उनका कोई वास्ताभी है। रससे रीतकर कोई अर्थ प्रवर्तित नहीं होता, यह बतलानेके बाद वे रसकी परिभाषा करते हुए कहते हैं कि रस आस्वाद्य है और अपनी आस्वाद्यताके कारण 'रस' इस नामसे जाना जाता है।

लेखककी उपयुक्त धारणा सर्वथा निर्मूल एवं भ्रान्तिजन्यहै। भरतमुनिका यह अभिमत कदापि नहीं था कि रसके दो रूप हैं। वस्तुतः रस सदैव व्यक्तिनिष्ठ होता है और भरतकोभी यही मान्य था। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि रस आस्वाद्यमान होता है—'रस इति कः पदार्थः ? उच्यते—आस्वाद्यमानत्वात्।' सम्भवतः लेखक ने 'आस्वाद्यमान' को 'आस्वाद्य' समझकर इस भ्रान्तिको जन्म दिया है कि रस आस्वाद्य है अतः वस्तुनिष्ठ है। 'आस्वाद्यमान' में स्पष्टही क्रियाका बोध है। इस शब्द का निर्वचन इस प्रकार है आ उपसर्ग + स्वद् धातु + कर्मवाच्यबोधक यक् प्रत्यय + तात्कालिक क्रियाका बोधक मान (शानच्) प्रत्यय। इसका अर्थ है 'आस्वाद किया जाता हुआ।' इससे उन्होंने आस्वादन प्रक्रियाको बताकर यह स्पष्ट कर दिया है कि आस्वादही रस है। भरतके अनुसार जिस प्रकार विभिन्न प्रकारके व्यंजनोंसे युक्त भोजनको खाते हुए सुमनस् लोग रसका आस्वादन करते हैं और प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार अनेक प्रकारके भावोंसे व्यंजित, वाचिक, आंगिक और सात्त्विक अभिनयोंसे उद्बुद्ध स्वायिभावोंका सुमनस् प्रेक्षक आस्वादन करते हैं और हर्षित होते हैं—कथमास्वाद्यते रसः ? यथा हि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषाः हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनय व्यञ्जितान् वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाःहर्षादींश्चाधिगच्छन्ति।(नाट्यशास्त्र ६।३३-गद्यांश)। रस वस्तुतः कार्य नहीं आस्वादन क्रिया है, इस बातका स्पष्टीकरण विश्वनाथने भी अपने साहित्यदर्पणमें किया है। (द्रष्टव्य साहित्य दर्पण ३-२६)। 'आस्वाद्यमान' पदमें कर्मवाच्यकी क्रिया प्रयोग करनेसे भरतको यही अभिप्रेत है कि आस्वादका कार्य स्वयं वस्तु द्वारा नहीं अपितु सहृदय प्रेक्षकोंके द्वारा किया जाता है।

लेखकने भरतके उपर्युक्त मतको ठीक प्रकारसे न समझनेके कारणही इस मतका प्रतिपादन किया है कि रसनिष्पत्ति रंगपीठपर स्थित आश्रयके हृदयमें है। सहृदय तो उसे देखकर हर्षादिको प्राप्त होते हैं (पृ. १३)। उनके अनुसार दर्शक दूसरेकी रसानुभूतिसे हर्षित होते हैं जबकि भरतके अनुसार रसानुभूति करनेवाला और हर्ष अनुभव करनेवाला एकही व्यक्ति है और वह है सुमनस् प्रेक्षक। लेखकका यह कहना कि भरतके रस-सिद्धान्तको 'काव्य-शास्त्रमें मात्र पैवन्दकी तरह लगा दिया गया था (पृ. २७)' अतिवादका द्योतक है। भरतकी इस परिभाषा से अधिक उपयुक्त 'रस' की कोईभी परिभाषा अभीतक नहीं दी जा सकी है।

दूसरे अध्यायमें डा. (कुमारी) नीरजा टंडनने गुप्तजीकी साधारणीकरण विषयक धारणाओंको प्रस्तुत किया है और गुप्तजीकी आलोचनाओंका भी उत्तर दिया है। गुप्तजी साधारणीकरणके सिद्धान्तको व्यर्थ मानते हैं। उनकी दृष्टिमें यदि साधारणीकरणके सिद्धान्तको माना जाये तो राम और रावणके सीताके प्रति प्रणय निवेदनमें दर्शकके लिए कोई भेद नहीं रहेगा। गुप्तजी साधारणीकरणसे तात्पर्य पात्रोंके भावोंका वायवी होना मानते हैं। वस्तुतः साधारणीकरणके सिद्धान्तके आदि प्रणेता भट्टनायक का यह मत कदापि नहीं था। साधारणीकरण तो एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मंचपर अभिनीत दृश्य प्रेक्षकके मानस पटलपर अंकित होता है और वह उसके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। लोक जीवनमें राजा दुष्यन्त शकुन्तलासे प्रणय व्यवहार करे तो किसी अन्य व्यक्तिको इससे कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु रंगमंचपर उपस्थित दुष्यंत और शकुन्तलाकी रतिमें प्रमाताभी सम्मिलित हो जाता है। दुष्यन्तादिसे व्यक्तिगत लगाव न होनेके कारण और चित्तकी एकाग्रताके कारण सत्त्वका उद्रेक होता है जिससे प्रमाताके मनमें अच्छाईके प्रति पक्षपात और बुराईके प्रति द्रोह स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न हो जाता है। यह साधारणीकरणही हैं, विशेषीकरण नहीं जैसाकि गुप्तजी मानते हैं। इसी प्रक्रियासे राम और रावणके प्रणय निवेदनमें पाठक भेद करता है।

कुल मिलाकर पुस्तक पठनीय है और रसके विभिन्न पक्षोंपर नये विचारोंकी प्रसूति होती है। इस पुस्तकका महत्त्व यह है कि अंग्रेजी न जाननेवाले लोग भी डॉ. गुप्तके मतसे अवगत हो सकेंगे। परन्तु मूल पुस्तकोंके संदर्भोंको उद्धृत न करना अवश्य असुविधाजनक है।

☐ डॉ. सुधीकान्त भारद्वाज

जैनेन्द्र और उनका साहित्य

लेखक : डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागर; प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन, १३३, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-११०-००६ । पृष्ठ : २०६; डिमा. ८०; मूल्य : ४५.०० रु. ।

डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागरकी समीक्षा कृति 'जैनेन्द्र और उनका साहित्य', कृतिकारके सर्वांगीण रूपपर प्रकाश

डालनेका दावा करती है। इससे पूर्व जैनेन्द्र साहित्यके विविध रूपोंपर काफी-कुछ लिखा गया है, उन सबका समावेश तो समीक्षक नहीं कर पाया, किन्तु इतस्ततः उसने इन समीक्षाओंकी प्रभाववादी प्रतिक्रिया जरूर अंकित की है। पुस्तककी मूल योजनामें एक प्रकारकी स्वेच्छाचारिता है। लगता है जैसे विभिन्न कालोंमें लिखे गये निबन्धोंको एक सूत्रमें पिरो दिया गया है। इस पुस्तककी सार्थकता इसी तथ्यमें निहित है कि जैनेन्द्रपर एकही पुस्तकमें सम्पूर्ण सामग्री सुलभ हो जाती है। समीक्षकका श्रद्धापरक दृष्टिकोण, कहीं-कहीं वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त करनेमें बाधक हुआ है।

पुस्तककी मूलधारा समीक्षा और शोधके दोनों तटोंके बीच प्रवाहित हुई है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि न तो यह विशुद्ध समीक्षा कृति है और न ही विशुद्ध गवेषणात्मक ग्रन्थ। श्री भटनागर भाषाके परिनिष्ठित रूपकी भी रक्षा नहीं कर पाते। पहला निबन्ध 'जैनेन्द्र: मेरी दृष्टिमें' संस्मरणपरक है। दूसरे निबन्धमें जैनेन्द्रपर पौर्वात्य और पाश्चात्य प्रभावोंका समेकित विवरण प्रस्तुत करनेका प्रयास है। तीसरे निबन्ध 'जैनेन्द्र: दार्शनिक मुद्रा में' शोधका स्वर मुखर हो गया है। चौथे निबन्ध 'जब साहित्यिक अदालतमें जैनेन्द्रपर मुकदमा चलाया गया' में पुनः सृजनात्मक समीक्षाके दर्शन होते हैं। यहाँ समीक्षकने जैनेन्द्रको सुरक्षा-कवच प्रदान किया है। उसकी सहानुभूति और निष्ठा जैनेन्द्रके अन्तरंगका उद्घाटन करनेमें सक्षम सिद्ध हुई है। अगले 'दुर्द्धर्ष अन्तःसंघर्षकी मर्मान्तक कहानी' में गद्य काव्यकी छटाके दर्शन होते हैं और मृणालके व्यक्तित्वको समझने-समझानेकी अनवरत चेष्टा भी। गद्य काव्यात्मक सृजनकी धारामें समीक्षा कुण्ठित हो जाती है और भावापन्नता प्रमुख हो उठती है। कहानी पर जो कुछ लिखा गया है, उसे चलताऊ भी कहा जा सकता है। उसमें गहरे परिचयकी अन्तर्धारा नहीं मिलती।

जैनेन्द्रके निबन्ध-साहित्यपर भी इसी प्रकार विहंगम दृष्टिपात किया गया है। जैनेन्द्रका विपुल निबन्ध-साहित्य कहीं गहरे अध्ययनकी अपेक्षा करता है। 'जैनेन्द्रके चिंतन की संभूमिकाओंका संविश्लेषणात्मक अध्ययन' एक विस्तृत निबन्ध है और इसे पुस्तकका मेरुदण्ड कहा जा सकता है। इसमें कलाकारके वैचारिक सूत्रोंको आकलित करनेमें समीक्षकने पर्याप्त श्रम किया है। यदि सम्पूर्ण पुस्तकके लेखनमें यही दृष्टि प्रधान रहती, तो समीक्षकसे कहीं अधिक संतुलित समीक्षा प्राप्त हो सकती थी। अन्तिम निबन्ध जैनेन्द्रकी भाषा-शैलीपर है, किन्तु यहाँ तो रघुनाथ सरन झालानीके कार्य और दृष्टिको ही अद्यतन रूप देनेकी चेष्टा की गयी है। जैनेन्द्र साहित्यके विद्यार्थीके लिए इसमें काफी विचारात्मक सामग्री है।

श्री भटनागरके लेखनमें एक प्रकारका अधैर्य है। वे अनेक साहित्यिक विधाओंको गड्डमगड्ड कर देते हैं। यहाँपर 'समीक्ष्य' और 'समीक्षक' दोनोंमें एक प्रकारकी स्वेच्छाचारिता लक्षित होती है। यही स्वेच्छाचारिता जहाँ जैनेन्द्रको मौलिकता और विशिष्टता प्रदान करती है, वहीं वह समीक्षकको संकटग्रस्त भी कर देती है, क्योंकि उससे संतुलित और परिनिष्ठित निष्कर्षोंकी अपेक्षा की जाती है। यदि श्री भटनागर कुछ धैर्य और और संतुलनके साथ लिख सकें तो हिन्दी जगत् उनकी संभावनाओंका सदुपयोग कर सकेगा।

□ डॉ. लक्ष्मीकान्त शर्मा

काव्य संकलन

उस जनपदका कवि हूँ

कवि : त्रिलोचन; प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ११६; डिमा. ८१; मूल्य : २७.०० रु.।

इस पुस्तकमें १९५०-५४ में लिखित कविके १०६ सॉनेट संगृहीत हैं। उनका चयन डॉ. नामवरसिंह एवं डॉ. केदारनाथसिंहने किया है। सॉनेटोंके लिए त्रिलोचन ने रोला छन्दको अपनाया है, अपवाद पृष्ठ ९० का सॉनेट है। इन सॉनेटोंका रूप स्पेन्सर और शेक्सपियरके सॉनेटों वाला है।

त्रिलोचनके 'उस जनपद···' में संगृहीत सॉनेटोंमें विषयगत एवं वस्तुगत विविधता है। इन सॉनेटोंमें से कई सॉनेटोंका विषय स्वयं कवि है। आत्मविषयक सॉनेटोंमें त्रिलोचनने अपने सम्बन्धमें अपनी और दूसरोंकी धारणाओंको बाँधा है। कविने इन सॉनेटोंमें एक ओर अपनी आर्थिक विपन्नता और दूसरी ओर अपने स्वाभिमान, अपनी अकड़को रेखांकित किया है। कविका अपने सम्बन्ध में कहना है कि वह धुनका पक्का है। वह अपनी देहका दैन्य लेकर मनकी अदीनताके साथ सोत्साह कहीं भी जा सकता है। वह अपनी ओजस्वी वाग्धारासे भ्रमग्रस्त जनों का भ्रम दूर करता है, लोगोंके मिथ्याभिमानको मथ डालता है। उसकी संघर्षमें आस्था है। वह इस दुनियांमें समझौता नहीं कर पाया है। उसे कुछभी होनेसे पहले मनुष्य होना प्रिय है। उसके जीवनका लक्ष्य है समतापर आधारित समाज—

> विषम समाज व्यवस्था सम जब दिखलायेगा
> तभी, तभी, सन्तोष इस हृदयमें आयेगा। (पृ. ९३)

जो लोग त्रिलोचनको व्यक्तिगत रूपसे जानते हैं, वे उनके उपर्युक्त व्यक्ति-चित्रकी सत्यताको प्रमाणित करेंगे। समीक्ष्य संग्रहके सॉनेट त्रिलोचनके व्यक्तित्वकी कुछ और प्रवृत्तियोंको भी सामने लाते हैं। त्रिलोचनको ग्रामीण जीवन प्रिय है। ग्रामीण जीवनके कुछ ऐसे सुख हैं जिन्हें नगरका जीवन कभी नहीं दे सकता। पृष्ठ ७४ के सॉनेट में जाड़ेकी ऋतुके कुछ सुखोंका चित्रण है। ग्रामीण जीवन के प्रति इसी लगावका परिणाम कविका प्रकृति-प्रेम है। अनेक सॉनेटोंमें (पृष्ठ ५२, ५३, ५५, १०२ आदि) कवि ने प्रकृतिके सहज और सुन्दर चित्र उपस्थित किये हैं। नीमके फूलोंका निम्नोद्धृत चित्र एक विरल चित्र है—

> फूलोंकी चाँदनी नीममें जो आयी है
> खींच रही है सुरभि-डोरसे मेरे मनको
> बरबस अपनी ओर, भला कैसे इस जनको
> कृपापात्र कर दिया सुछविने जो छायी है
> टहनी-टहनीपर। (पृष्ठ ५२)

कविकी सहानुभूति व्यापक है। उसकी मैत्रीका दायरा मनुष्योंतक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका विस्तार चेतन मात्रसे लेकर जड़मात्र तक व्याप्त है।

'उस जनपद···' के अनेक सॉनेट प्रेमकी भावनासे सम्बन्धित हैं। इन सॉनेटोंमें जो स्त्री है, वह कभी प्रेमिका प्रतीत होती है, कभी पत्नी। मुझे लगता है कि इन सॉनेटोंमें प्रेमिका और पत्नी अलग-अलग स्त्रियाँ हैं। प्रेमिकासे सम्बन्धित सॉनेटोंमें से अधिकाँशमें अतीतकी स्मृतियाँ हैं, जबकि पत्नीसे संबंधित सॉनेटोंमें प्रवास और आर्थिक विवशताका चित्रण मुख्यतः हुआ है। त्रिलोचनमें नारी-सौन्दर्यके प्रति सहज ललक है, इसके प्रमाण 'उस जनपद···' की एकाधिक सॉनेटोंमें विद्यमान हैं। कविका स्पष्ट कथन है—

> नयी घटा, नव फूल, सुढार नवेली नारी
> दिखलायी दे तोभी मन होगा आभारी। (पृष्ठ ६६)

नारीके सौन्दर्यका आकर्षण किसी व्यक्तिविशेषतक सीमित नहीं है——

> पुष्पा, लीला, कला, रागिनी, इला, माधुरी
> जोभी नाम तुम्हारा हो, तुम भलीसे भली

आँखोंको लगती हो। कामिनी हो नयी पुरी
तुमसे शून्य नहीं है, सजकर गलीसे गली
फिरती हो तुम। (पृष्ठ ४४)

त्रिलोचनजीकी गणना हिन्दीके प्रगतिवादी कवियोंमें की जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उनकी कविताओंमें प्रगतिशीलताके अनेक तत्त्व विद्यमान हैं, लेकिन उनकी कविताओंमें प्रगतिवादकी रूढ़िग्रस्तता नहीं है। वे वर्गहीन समाज-व्यवस्थाके पक्षमें हैं, उसे वे स्पष्ट शब्दोंमें वक्तव्यके रूपमें कहते हैं, लेकिन नारेबाजी प्रायः नहीं करते हैं, और न ही प्रगतिवादी हिन्दी कविताकी रूढ़ वस्तुको रूढ़ ढंगसे व्यक्त करते हैं। उनकी प्रगतिशीलता उस जीवनके साथ एकाकार अनुभव करनेमें है जो दलित शोषित और पिछड़ा हुआ है। वे अपने किसी साथीको सम्बोधित करते हुए कहते हैं --

मुझको जो पिछड़े हैं पथपर
उन्हें देखना है—मेरे इतने अपने हैं
जितने तुम हो नहीं। संग उनके तपने हैं
तप जीवनके, जाते देखा करते रथपर
औरोंको चुपचाप, पड़े हैं जहाँ वहाँ हैं,
तुम महिमामें मुग्ध, तुम्हें क्या कौन कहाँ हैं?
(पृष्ठ ३४)

वे अपनेको उस जनपदका कवि मानते हैं जो भूखा और नंगा है, जो कला नहीं जानता, कविता नहीं जानता, जो अपनेसे अपने समाजसे उदासीन है, जो दुनियां को ठीक-ठीक पहचानता नहीं है, जो रूढ़ियोंको ढोता है और विफल मनोरथ होनेपर रोता है; रामायण पढ़-सुन कर धर्म कमाता है और नारायण-नारायण जपता है। ऐसे जनपदका का कवि होनेका कविका दावा गलत नहीं है। नहीं है। गान्धीजीको वह पूरी तरह अस्वीकार नहीं कर पाता है। कभी-कभी वह ऐसे मनोभावोंको व्यक्त करता है, ऐसे प्रश्नोंको उठाता है जिन्हें कट्टर प्रगतिवादी लोग कभी स्वीकार नहीं करेंगे।

अबतक मुख्यतः इस बातकी चर्चा की गयी है कि 'उस जनपद···' के सॉनेटोंमें क्या कहा गया है? जो कुछ कविने कहा है उसका मूल्यांकन नैतिक-राजनीतिक-आर्थिक मूल्योंके आधारपर किया जा सकता है। हम कह सकते हैं कि कविकी दृष्टि स्वस्थ और प्रगतिशील है। लेकिन कविताके मूल्यांकनमें इससे आगेभी जाना होता है। प्रश्न उठता है कि त्रिलोचनके सॉनेट कलात्मक दृष्टि से कैसे हैं। यहाँ इस चीजको भी देखा जा सकता है कि रचना और आलोचनाके पारस्परिक सम्बन्धको लेकर कविकी दृष्टि क्या है? अन्य अनेक रचनाकारोंके समान त्रिलोचनजी भी आलोचना और आलोचकोंसे नाराज हैं। डॉ. रामविलास शर्मापर व्यंग्य करते हुए उन्होंने दो सॉनेट लिखे हैं। उन्हींमें से एक सॉनेटमें वे लिखते हैं—

कविका रचनासे ही जीवन
नहीं टिका है, आलोचनाकी बिना सीवन
पाये यशकी चादर चलती नहीं, न निष्ठा
बिना कभी कोई आलोचक कलम उठाते
देखा गया किसी कविके ऊपर। (पृष्ठ ११०)

त्रिलोचनजीने ये पंक्तियाँ व्यंग्यसे लिखी हैं, लेकिन इन पंक्तियोंको यदि गम्भीरतापूर्वक लिया जाये तो मानना होगा कि बात सही कही गयी है। आलोचनाके प्रति त्रिलोचनजीका यह व्यंग्य भाव सम्भवतः इसलिए है कि उन्हें आलोचकोंसे वैसी स्वीकृति नहीं मिली जैसी वे चाहते थे। वांछित आलोचनात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त न होनेका कारण उनकी अपनी कवितामें निहित है। उनकी कविताएँ एकायामी हैं। अक्सर तो उनकी कविताएँ वर्णनात्मक हैं। उनमें जो कुछ है, सतहपर है। सतहके नीचे कुछ ऐसा नहीं है जिसे पकड़नेके लिए उनकी कविताओंको पढ़नेके लिए बार-बार मन करे। दूसरे शब्दोंमें त्रिलोचनकी कविताएँ पाठकों-आलोचकोंके लिए चुनौती नहीं हैं। शिल्पके स्तरपर जो चीजें ध्यान आकर्षित करती हैं, उनमें काव्यरूप सॉनेट, पंक्तिके बीचमें वाक्य पूरा करना और निस्संकोच भाव स्थानीय शब्दोंका प्रयोग करना प्रमुख है। इसलिए 'उस जनपदका कवि हूं' की कविताएँ पाठकोंको आकर्षित अवश्य करेंगी, परितोष भी देंगी, लेकिन एक सीमातक, और यह सीमा बहुत दूरतक नहीं जाती है। पता नहीं डॉ. केदारनाथ सिंहने क्या सोचकर 'उस जनपद···' की कविताओंको 'जानी-पहचानी समकालीन कविताके समानान्तर एक प्रतिकविता' कह दिया है!

□ **डॉ. हरदयाल**

पत्र-व्यवहार करते समय कृपया
अपनी ग्राहक संख्याका उल्लेख करें।

पथराई आंखें

कवि : नईम; प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू. बी. बेंग्लो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ : ११२; डिमा. ८०; मूल्य : २५.०० रु.।

'पथराई आँखें' नईमका पहला मगर महत्त्वपूर्ण कविता-संग्रह है। नईम एक प्रयोगधर्मी नव-गीतकारके रूपमें स्थापित हो चुके हैं और नवगीत लेखनमें वे रमेश रंजक, सूर्यकुमार, रामावतार त्यागी आदिसे कई बार आगे निकले हैं। प्रस्तुत संग्रहमें नईमकी रचनाओंके तीन रूप हैं—आजकी शैलीकी कविताएँ, सॉनेट और ग़ज़लें एवं गीत।

नईमको चाहे अलग-अलग कविताओंके जरिये पढ़ें या एक पूरे संग्रहके जरिये—उनकी रचना अपने अन्दरसे संगीत छोड़ती हैं, ध्वनित होती हैं और लयमें आकारित होकर अपना शिल्प रचती हैं। इसलिए नईम नयी कविता, अकविता या आजकी कविता इन तमाम शब्दोंसे प्रतिबद्ध न होकर सिर्फ कवितासे प्रतिबद्ध हैं और उनकी यह प्रतिबद्धता उनके गीतमें जाकर अपने शिल्पका चरम शीर्ष स्थापित करती है। वैसे गीतमें शब्दोंका पर्यायी-करण, दुहराव और बेमतलब खिचाव कविताको बोझिल करते हैं, लेकिन नईम अपनी कविता, गीत या ग़ज़लोंमें इस तथ्यके प्रति चौकन्ने लगते हैं। इसलिए उनका गीत शाब्दिक मुजस्मा न लगकर छांदिक और लयिक भावप्रवणताके साथ उमड़ता है, बहता है और पाठकके भावलोक पर छा जाता है।

त्रिलोचनने अपनी भूमिकामें यह ठीकही लिखा है कि —मुक्तछंद अप्रिय और उबाऊ बन चला है—नईम छंद की आन्तरिक लय और भाषाकी लयसे परिचित हैं, इसी कारण उनकी कविता स्वरूपतः स्पष्ट और गुणयुक्त है।

नयी कविताको किसीभी आकृतिके साथ उठायें मगर अन्ततः उसकी परिणति गीतात्मक होती है। छंद और लयके प्रति नईमकी यह अतिरिक्त चौकसी उनकी रचना का पूरा स्वभाव बताती है। अतः गीत नईमके लिए शैली न होकर अपनी रचनात्मकताका स्वभाव या प्रकृति है। उनकी पहलीही रचना जिन बिम्बों और प्रतीकोंके साथ चली है उसे देखकर लगता था कविता अपने फार्ममें छंद-हीन होगी मगर ऐसा नहीं हो पाया—'सूरज हमारे प्रयासोंसे/ खेतों और गाँवमें रुक गया था/ लेकिन दिवसा-वसानके पहलेही/ उसका सर शर्मसे झुक गया था।' अगर इस छंदको नईम मुक्त लिखते तो शायद एक अलग शैलीमें जाकर यह बात अधिक असरदार हो जाती मगर नईमने छंद चुना और कविताके स्वभावके विरुद्ध होनेके कारण यह छन्दभी गद्यात्मक हो गया। ऐसे रचनाविधान के समय छन्दके प्रति अधिक मोह रखना कविताके मर्म को नष्ट कर देता है। इसलिए छन्दके आग्रहसे मुक्त होकर भी नईम अच्छा लिख सकते हैं क्योंकि उनकी संवेदनात्मकताका कैनवास काफी बड़ा है। आगेकी दो कविताओंमें भी यही बात है—'मैं प्रत्येक जल प्लावनके बाद अकेला बचा'—जितनी शक्तिशाली अभिव्यक्ति बन पड़ी है वह अपने फार्ममें बंधकर शिथिल हो जाती है और 'अस्वस्थ' और 'अश्वत्थ' जैसे सन्दर्भ असरमें कमजोर पड़ जाते हैं जबकि उनकी अपनी सार्थकता है। साँझ, रात दो चित्रमें कविने तीन-तीन लकीरोंके यूनिट चुने हैं—अगर नईम चाहते तो इस यूनिटको बहुत अच्छी हाइकू शैलीकी रचनामें बदल सकते थे और उससे उनके नयेपनके साथ एक अच्छी शैलीके इस्तेमालको भी स्थान मिलता लेकिन छंद पूरा करना जैसे उनकी जिद हो या नियति हो—इसलिए वे छन्देतर या छन्दसे पृथक् कुछ अलग रखनेकी कोशिश ही नहीं करते। यदि पृथक्से किसीभी कविताका एक अंशही पढ़ें तो वह अपने आपमें कितना सशक्त और सार्थक लगता है और जो प्रभाव पैदा करता है वह आज की हर कविताके प्रभावसे ज्यादा प्रभावशाली है मगर परिणतिमें गीत होकर वह जिस तरहसे फैलता है वही फैलाव नईमको नेगैटिव बना देता है—'हाथोंमें रथका/ खण्डित पहिया/ बादल महारथियोंसे घिरा हुआ/ धरती पर गिरा हुआ/ बालक सूर्य लहूलुहान।' (सांध्य सूर्य—चार चित्र)

नईम प्रकृतिसे एक नर्म कवि हैं और उनपर सांस्कृतिकता संक्रामक रूपसे हावी हैं। उन्होंने गीतके कलेवरसे एक सामाजिक संस्कृतिका बीजतत्त्व अपनाया है। इसलिए उनकी रचनाओंमें पौराणिक, दार्शनिक और कथात्मक सन्दर्भ भरे पड़े हैं। उर्दू भाषाकी पृष्ठभूमिने जिस मिठासको उनमें पैदा किया था उसी मिठासको उन्होंने गीतमें रचा है। वे दावा नहीं करते नये होनेका, या पुराना बने रहनेका। वे घोषणाभी नहीं करते किसी सांस्कृतिक प्रतिबद्धताकी। सबकुछ उनकी रचनाएं कहती हैं और रचनाओंके ये साक्ष्य उन्हें एक सांस्कृतिक कवि, एक सामाजिक कवि और सुरुचिवान कविकी छवि देती

है। वे जहाँ मुखर होते हैं वहाँ उनका गुस्सा भी बड़ा सात्त्विक दिखायी देता है—'तुम कहते हो, इज्जत खतरे में है/ मैं कहता हूं, हमला बोला जा रहा है।'

अपनी रचना होनेके आयाममें जिस अस्तित्ववादी चेतनासे वे ग्रस्त हैं वह सन्दर्भ बनकर गायब हो जाती है 'घंटियोंकी आवाजोंमें/ त्रिलोचनकी सॉनेट्स/ और शमशेरकी ग़ज़लोंमें/ अबोध शिशुओंकी मुस्कानें।' ऐसा लगता है यह रचना इन दो बड़े कवियोंको कविताके जरिये समीक्षानेका प्रयत्न है क्योंकि इससे त्रिलोचन या शमशेरका रचनाचरित्र तो प्रकट होता है मगर त्रिलोचन या शमशेरकी सार्थकता यहाँ व्यक्त नहीं हो पाती।

(१) 'कलतक मैंने इस नगरमें/ आँगन और घरको बतियाते देखा था/ लेकिन आज घर आँगन सड़कपर आ खड़े हुए हैं।'

(२) 'मेरा हर कौर दांतोंके नीचे किरकिराता है/ थूक देता हूं इस सारी व्यवस्थापर/' (देखतेही देखते)

(३) 'असहमति हो सकती है/ क्योंकि यह बीमारी प्रजातंत्रमें आम हैं/—अनाभारी नहीं हूँ।' (४) 'धर्मनिरपेक्ष बनाम धर्मभीरू संविधानकी छत्रछायामें/ अपने-अपने दड़बोंमें प्रेमसे रह रहे हैं।' (ईमानोंके घेरेमें)

(५) 'मात्र अनुभवके लिए/ बलात्कार मैंने कियाभी हो तो/ आपकी आपत्तिका उत्तर मेरे पास क्या हो सकता।' (एक लिखित बयान)

इन पाँच उदाहरणोंमें नईमने चाहा तो यही था कि वह गीतसे अलग हटकर, अछंदीय शैलीमें आजके आदमीका सारा आक्रोश आजकी कवितामें कह डाले मगर यहाँभी जब छन्द घुसा तो रचनाएँ अनावश्यक फैल गयीं। इस फैलावको यदि नईम रोक सके तो चाहे वे गीत लिखें या कविता उनके पास बिम्ब प्रतीक, विचार और संवेदनका अटूट भण्डार है, उनके उपयोगकी पूरी समझ है, और उन्हें रचनेका शिल्प हैं। हॉपकिन्स एक पादरी कवि था और डॉयलन टामसके पास बहुत कुछ रोमेण्टिकोंकी शैली थी मगर छाँदिक होकर भी उन्होंने रचनाको उसके अनावश्यक प्रसरणसे रोक लिया था। यह कोशिश अगर नईमभी कर गये तो हिन्दीमें गीतकी आधुनिकताके वे सबसे अधिक असरदार कवि हो सकते हैं।

उनका यह छाँदिक आग्रह सॉनेट्स या ग़ज़लोंमें खूबसूरत लगता है :

(१) 'पराजित अहसासको कबतक सहेजूँ/ तूरपर मूसा नहीं, फिर किसे भेजूँ।'

(२) 'राँगे-सा ढाल सको तो ढालो/ छन्द तोड़नेवालेपर डालो/ माला यह, जायेंगे भाग्य जाग।'

(३) 'पराक्रम टूटे खिलौनों-सा पड़ा बेकाम/ महज होनेको हुई तो दिशाएं ही बाम।'

ग़ज़लमें जाकर नईमका शिल्प और ज्यादा निखरता है लेकिन यहाँभी न जाने क्यों अज्ञेय आदिके सन्दर्भ लेकर ग़ज़ल रचनेकी ज़िद नईम करते हैं—

(१) 'साँप यदि सभ्य हो गये हों तो/ बात ये है, गरल नहीं होगा।' (आजके बाद) 'हमने ऐसी कलम लगायी है/ फूलके बाद फल नहीं होगा।'

(२) 'रोटियोंकी माँगकर क्यों दागते हो गोलियाँ/ भर सकेंगे क्या कभी ये घाव जो गहरे हुए।' (आदमी क्यों आज)

संग्रहके तीसरे खण्डमें नईम अपने गीतकारकी सार्थकताके साथ उपस्थित हैं। यहाँ उनके लोकपक्ष, लोकभाषा और गीतके प्रयोगात्मक रूपसे साक्षात्कार होता है। लेकिन उनकी अन्य तमाम रचनाओंके मुताबिक उनके गीतमें कहीं-न-कहीं उनका जनवादी रूप दिखायी दे जाता है। अपने शुद्ध गीतोंमें एक प्रकारकी प्रतिबद्धताकी झलकभी नजर आती है। इसलिए नईमका रचनाचरित्र उनके गीतोंसे देखा जा सकता है :

(१) 'साहूकारोंके सुराजमें/ पिया गये परदेस ब्याजमें।' (बिरहा सुबुक सुबुक)

(२) 'अपने-अपनेमें रह सकते हैं/ बोले तो खुदसे कह सकते हैं।' (भीतरसे बाहरही)

(३) 'खोहमें निर्मम भटकती चीख हूँ मैं/ यूँ, बुजुर्गोंकी दुआ, आशीष हूँ मैं।' (कर गये कुछ लोग)

(४) 'धरतीपर धरतीसे ऊँची उनकी कुरसी/ अब मिजाजपुरसी भी लगती, मातमपुरसी।' (दर्द कहीं दिरक गया)

(५) 'द्वारपर कर्फ्यू खड़ा संगीन साधे/ आइनेके सामने हम ठीक आधे।' (ढो रहा सूरज)

नईमके गीतोंमें घटनात्मक ताजगी है, खरापन है, समयके साथ चलता व्यंग्य है और गीत शैलीका सही निर्वाह है। मगर कहीं-कहीं गीत अतिबौद्धिक या प्राध्यापकीयभी हुए हैं। कभी-कभी प्रयोगोंके प्रति अति-उत्सुकताने भी गीतको उसके मार्मिक तत्त्वसे हटाकर उसे महज तुकबन्दीमें बदल दिया है।

'पथराई आँखें' नईमके एक परिपक्व कवि होनेका

प्रमाण है। सबसे अच्छी बात यह है कि वे गीत लिख या गज़ल-सबकुछ अपनी शैलीके साथ लिखते हैं। गज़लों में न दुष्यन्तसे बँधते हैं न चन्द्रसेन विराटकी तुकवादिता से और न ही उर्दू के इश्कमजाजीवाले गज़ाली चरित्रसे। अगर नईम 'क्रियापदों', लेकिन, क्योंकि, इसलिए आदिकी सम्बद्धतासे मुक्त होकर कविताका अपना व्याकरण रचें तो उनसे बिम्ब और प्रतीकोंके माध्यमसे बहुत अधिक आगे जानेकी क्षमता नजर आती है। दूसरे नईमको प्रार्थना या उपदेशकी शैलीपर भी रोक लगानी होगी वरना वे उनकी मानविक संवेदनाको आगे नही बढ़ने देंगी। जहाँतक छन्दका प्रश्न है और लेखनकी पहचानका प्रश्न है उनके शब्द इतने सक्षम हैं कि वे दोनोंका सामर्थ्य प्रकट कर देते हैं। नईमका यह संग्रह अपने समूचे रूपमें छंदकी आँतरिक लयका संग्रह है।

☐ **रमेश दवे**

सोऽहं हंसः

कवि : बच्चन; प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली-६। पृष्ठ : ३०; डिमा. ८१; मूल्य : १०.०० रु.।

'सोऽहं हंसः' बच्चनजीके हँस प्रतीकके आधारपर लिखित १० गीतोंका एक लघु संकलन है ये गीत कवि की नवीन रचना नहीं है। इनमेंसे सात गीत उन्होंने लगभग ३० वर्ष पूर्व अपने कैम्ब्रिज-प्रवासमें लिखे थे और बादमें 'प्रणय-पत्रिका' संकलनमें प्रकाशित हुए थे। दो गीत 'आरती और अंगारे' शीर्षक संकलनसे लिये गये हैं और एक 'चौंसठ रूसी कविताएँ' में प्रकाशित रूसी कवि याकोव पोलोन्स्कीके एक गीतका भावानुवाद अथवा सृजनात्मक अनुवाद है।

बच्चनजी सिद्ध गीतकार हैं। हिन्दी गीति-काव्यमें उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। मार्मिक तथा सहज प्रवाहपूर्ण है। मार्मिक तथा सहज प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति उनकी रचनाकी निजी विशेषता रही है। उनकी यह विशेषता इस संकलनमें भी यत्र-तत्र दिखायी देती है किन्तु सर्वत्र नहीं। बच्चन जैसे सिद्ध गीतकारकी रचनामें भी शिथिलता दिखायी देती है, यह आश्चर्यजनक है। प्रस्तुत हंस-गीतों में कहीं अनावश्यक शब्द-योजना है तो कहीं आवश्यक शब्द-योजनाका अभाव। 'हंसकी विदा' शीर्षक गीत-रचना की टेक-पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—'हो चुका है चार दिन मेरा तुम्हारा/ हम-हंसिनि/और इतनाभी यहाँ पर कम नहीं है' (पृ. २०)। इस गीतके अन्तिम अनुच्छेदकी पंक्तियां बहुत शिथिल हो गयी है—'किन्तु उनके वास्ते रोयें उन्हें जो/बैठ सहलाते रहे हैं, किन्तु उनसे जो वसन्ती/ बात बहलाते, बवंडर सात दहलाते/रहे हैं, जिन्दगी उनके लिए मातम नहीं है' (पृ. २१)।

'हंसका घाव' शीर्षक गीतकी टेक पंक्ति करुणा तथा अवसादकी मनोदशाको अभिव्यंजित करती है—'बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं/ अब तुम्हारीही शरणमें' (पृ. २६), किन्तु शेष गीतकी भाववस्तु इसके अनुकूल नहीं है। इस गीतमें वीरोचित उत्साह तथा संघर्षशीलता की प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। छन्दकी पूर्तिके लिए बच्चन जैसे कविको भी अनावश्यक शब्द-योजनाका सहारा लेना पड़ा है। इसी गीतके तीसरे अनुच्छेदकी चार पंक्तियां इस प्रकार हैं—'रेख लोहूकी लगाकर आ रहा हूं/ मैं अधरकी मेखलापर/ शक्ति अम्बरमें, परीक्षित, भक्तिकी/ लूँगा परीक्षा मैं धरणिमें' (पृ. २१)। इन पंक्तियोंका अन्तिम-अंश 'भक्तिकी लूँगा परीक्षा मैं धरणि में' प्रस्तुत अर्थ और भावभूमिसे अलग रहकर है और अनावश्यक है।

कैम्ब्रिज-प्रवासमें लिखे गये एक-दो गीतोंमें बच्चनजी ने घरकी यादका मार्मिक-चित्रण किया है। इन अंशोंमें भारतीय परिवेशके कुछ चित्रोंका भावपूर्ण अंकन हैं। 'हंसका प्रवास' शीर्षक गीतका अन्तिम अनुच्छेद इस प्रसंगमें पठनीय है। 'हंसकी चेतावनी' शीर्षक गीतसे प्रकट होता है कि अपनी इंगलैंड-यात्राको लेकर बच्चनके मनमें कहीं आलोचना या ग्लानिका भी भाव था—"एक वे हैं जोकि अपनी साधनासे/ पंकसे ऊपर उठे हैं/ एक तू है, पांव अपना नीच कीचड़/ में फंसाने जा रहा है" (पृ. १४)।

बच्चनजीको अपने ये गीत अवश्य प्रिय लगते होंगे तभी उन्होंने इन्हें नये संकलनके रूपमें प्रकाशित कराया है। बच्चनजीके बहुतसे पाठकोंको भी इनका प्रकाशन प्रिय लगेगा किन्तु आधुनिक काव्य-संस्कारवाले अनेक पाठक इन गीतोंमें कुछ नवीन न पाकर निराशभी होंगे। इन गीतोंकी भाव-सम्पदा आधुनिक काव्य-रचनासे काफी भिन्न है और आधुनिक बोधकी कसौटीपर इनकी प्रासंगिकता कठिनतासे ही तलाशी जा सकती है।

☐ **जुगमन्दिर तायल**

उर्वशी-ऊर्मिला

कवि : अनन्तराम मिश्र 'अनन्त'; प्रकाशक : चेतना प्रकाशन, कुम्हरावाँ, लखनऊ। पृष्ठ : ५६; क्रा. ७६; मूल्य : ४०.०० रु.।

समीक्ष्य पुस्तकके शीर्षककी सार्थकता इस बातमें देखी जा सकती है कि इसमें संगृहीत 'उर्वशी और कुतुक' तथा 'विरहिणी ऊर्मिला' इन दो आख्यानक काव्योंमें नारीत्वके दो विपरीत ध्रुवोंको आमने-सामने रखकर कवि उर्वशीपर ऊर्मिलाकी वरेण्यताको व्यंजित करना चाहता है।

'उर्वशी और कुतुक' नामक प्रथम आख्यानक या निबन्ध काव्यमें कविका मुख्य प्रतिपाद्य मृणमय तनपर चिन्मय आत्माकी महत्ताको रेखांकित करना है। इन्द्र-सभामें रूप-यौवन-दर्पिता उर्वशी पृथ्वीलोकसे स्वर्गमें भ्रमणार्थ आये तीन महर्षियों—पर्वत, कर्दम और कुतुक—को वशमें कर दिखानेके लिए अपूर्व सम्मोहक नृत्य आरंभ करती है। नृत्यकी प्रत्येक कामोद्दीपक भंगिमाके साथ वह क्रमशः अपने अंग अनावृत करती जाती है। जब वह अपने 'मन्मथमूल उरोजों' को अनावृत करती है तो 'पर्वत' हिल उठते हैं। 'कर्दम' भी वासनाके कर्दममें सन जाते हैं। किन्तु महर्षि कुतुक अविचल नृत्य देखते रहते हैं। क्रमशः उर्वशी विवस्त्र होकर नृत्य करने लगती है। 'नृत्य के उपक्रम'में उसके 'जघन स्थलोंके कदलीत्वसे'उसके 'पीन नितम्ब सुभंगिमा पाने' लगते हैं। उसकी 'कटि-आपगा' 'मदिरत्व' की हिलोरें-सी लेती दिखायी देने लगती है। लेकिन इससे भी अप्रभावित महर्षि कुतुक कहते हैं कि यह तो मात्र पंचभौतिक शरीर है। वे तो उस उर्वशी, उस नारीत्व, उस प्रमदात्वको देखना चाहते हैं जो इस 'अंग-तरंग' से भिन्न, 'मादनकारिणी, गुह्य और अतीन्द्रिय' है। तब नारद कहते हैं कि प्रमदात्व नारी-शरीरमें नहीं, द्रष्टाकी आंखोंमें होता है। नारी-शरीरमें प्रमदात्व देखना तो सीपमें रजतकी-सी भ्रान्ति है। जिनकी दृष्टि जड़में चेतनको देखनेमें समर्थ होती है उनमें द्रष्टा और दृश्यका विभेद तथा तज्जन्य भ्रान्ति उत्पन्नही नहीं होती। महर्षि कुतुक उर्वशीके रूप-गर्वको खर्बकर अपने मित्र पर्वत और कर्दमको साथ लेकर तप-हेतु चले जाते हैं।

'कवि-कथन' शीर्षक भूमिकामें कविने उर्वशीको भोगवादी सभ्यता और महर्षि कुतुकको तप-संयममयी आध्यात्मिक संस्कृतिका प्रतीक बताया है। नारदको उसने 'उस अन्तर्मुखी प्रवृत्तिका द्योतक माना है जो भौतिकता और आध्यात्मिकताका तात्त्विक विश्लेषणकर आध्यात्मिकतामें ही आत्मिक सुख-शान्तिका प्रतिपादन करती है। इस संदर्भमें पर्वत और कर्दम ऋषियोंको उन साधकोंका प्रतीक माना जा सकता है जो वासनाके ज्वालागिरिके मुखपर संयमका शिलाखंड रखकर समझ बैठते हैं कि उन्होंने ज्वालामुखी-विस्फोटका निवारण कर लिया है। अर्थात् जिनका संयम अभावात्मक होता है, ज्ञान-वैराग्यजन्य नहीं।

काव्यतत्त्वकी दृष्टिसे इसमें बौद्धिकता है, पर भाव-स्नात भावात्मकता है, पर बुद्धिसे मर्यादित और कल्पना से मनोरम। इकतालीस सवैया छन्दोंमें निबद्ध यह आख्यानक काव्य छोटा होते हुएभी प्रभावकी दृष्टि महनीय है और इसीलिए पठनीयभी।

'विरहणी ऊर्मिला' नामक दूसरे आख्यानक काव्यमें 'गीताके दैवीसम्पद् 'ह्री' (लज्जा, मर्यादा) को ऊर्मिलाके चरित्रमें अन्वर्थक करनेका प्रयास है। इस दृष्टिसे कविकी ऊर्मिला साकेतकारकी वियोगिनी ऊर्मिला तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की त्यागमयी ऊर्मिलासे विशिष्ट हो गयी है। वह व्यष्टिके धरातलपर वियोगिनी है तो समष्टिके धरातलपर त्यागममयी। उसके प्रियतम लक्ष्मण जब उससे वन गमनकी अनुमति मांगते हैं तो मर्माहत होकरभी वह संयत स्वरमें कहती है—'प्रिय! समष्टिके लिए व्यष्टि को मैं स्वाहा करती हूँ।' (पृ. ३८) और इसी लोक-हित के उच्चादर्शसे प्रेरित होकर आगे कहती है—'तुम विराम देने जाओ ऋषियोंके चीत्कारोंपर।' (पृ. ३८) काव्यमें ऊर्मिलका यह उदात्त रूप जहां अभिनव छटा बिखेरता है वहां उसका विरहिणी रूप पारम्परिक वर्णनोंका पिष्ट-पेषण होनेसे अधिक प्रभावशाली नहीं हो पाया है। वियोग-वर्णनमें कविने मधुमास, कोयल, पपीहा, चन्द्रोदय आदि उन्हीं उद्दीपक उपकरणोंका उपयोग किया है जो काफी दोहराये जा चुके हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि इसमें मौलिक उद्भावनाओंका अभाव है। अनेक स्थल अत्यन्त मार्मिकभी है।

ऊर्मिलाके वियोगाश्रुओंको लेकर कवि कहता है—'ये आंसू, जिनमें वेदोंकी धरतीकी हरियाली/ ये आंसू, जिनमें प्रभातकी प्रगतिमयी उजियाली/ आंसू हैं या मनोभावही प्रकटे मोती-जैसे/ हरकारे-से प्रणय-जगत्के, रुकभी जाते कैसे ?' (पृ. ३४)।

शिल्प-विधानभी दोनों आख्यानक काव्योंका कथ्यके अनुरूप है। दोनों काव्य छन्दोबद्ध है।'उर्वशी और कुतुक' में कविने किरीट, मत्तगयन्द, दुर्मिल, मदिरा आदि सवैया छन्दोंका सफल प्रयोग किया है। दो-एक स्थल ऐसेभी हैं जहां छन्दकी यति खटकती है, जैसे—'संयमियोंकी कमी नहीं संसृतिमें इसको दिखलाके रहूँगा।' (पृ. ८) यहां 'संसृति' के बाद यति और 'में' का उससे अलग जाना लयके साथ बहती अर्थकी धाराको खण्डित करता-सा लगता हैं। पंक्ति इस तरह हो सकती थी—'संयमियोंकी कमी नहीं सृष्टिमें, मैं इसको दिखलाके रहूँगा।' 'विरहिणी उर्मिला' में भी कहीं-कहीं छन्दके पूर्वार्द्धके वाक्यके कुछ भागका छन्दके उत्तरार्द्धमें प्रयोग हुआ है, जैसे—'अन्धकार-कबरीमें वसुधा, दीधितियोंके फीते/ बांधे शोभमान, मधुयौवनके मादक गुण जीते।' (पृ. ३५) यहाँ 'फीते बाँधे' एकही पंक्तिमें आता तो निश्चितही सौन्दर्य बढ़ जाता। फिरभी छन्दपर कविकी पकड़ बड़ी मजबूत है।

अलंकरणकी प्रवृत्तिभी कविमें पारम्परिक अधिक है। यमकीय प्रयोगोंमें इसकी झलक देखिये—'महती महतीको बजाते हुए।' (पृ. ७) और 'भजने लगे संयम और चराचर मन्मथको भजने लगे हैं।' जहाँतक भाषाका सवाल है, दोनों आख्यानक काव्योंमें संस्कृतकी तत्सम शब्दावलीका प्रयोग अधिक हुआ है। लेकिन इससे कथ्य की संप्रेषणीयता बाधित नहीं हुई है,प्रत्युत कविताका नाद-सौन्दर्यही बढ़ा है। 'टोंक', 'रोंक' (पृ. १५), सोंचते-सोंचते (पृ. ६), सोंच (पृ. ७) शब्दोंका सानुस्वार प्रयोग समझमें नहीं आता। संभवतः यह क्षेत्रीय प्रभाव हो। सब जगह प्रूफकी अशुद्धि नहीं मानी जा सकती।

काव्यकृतिके समग्र प्रभावसे कविमें महाकाव्योचित प्रातिभ क्षमता प्रतीत होती है और यदि वह इस दिशामें प्रयत्नशील हो तो उसकी सफलता असंदिग्ध है।

□ डॉ. श्रीबिलास डबराल

जिसे सब जियें

कवि : अश्विनी; प्रकाशक : संधान प्रकाशन, सं. १२/६८६, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली-११०-०२२। पृष्ठ : ४०; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

अश्विनीकी इन रचनाओंमें जन-हितैषी चेतना और समष्टिपरक काव्यादर्श उनकी उस मानसिक बुनावटको रेखांकित करते हैं जहां हमारे भीतरका संवेदनशील व्यक्ति इंसानी सरोकारकी सरहदें छूनेके लिए बार-बार कोशिश करता नजर आता है। पहली और अन्तिम कविता लगभग एक-सी बात दुहराती नजर आती हैं—'बनूं फल-फूल छायादार वृक्ष/ और मेरा सर्वस्व सर्मापत हो/ सबको/ नहीं तो मैं न पनपूं/ न रहूं/'

परम्परा और प्रगतिके बारेमें कविकी धारणा बहुत साफ है कि 'वक्त गवाह है/ कि अधिकतर नयी रचनाएं खाद खुद बनती हैं।'

कुछ व्यंग्य हैं जो हमारे पाखण्डों, रागद्वेषों, अमानवीय रिश्तों और फरेबोंको बेनकाब करते हैं। लेकिन हमें यह कहते हुए ज्यादा संकोच नहीं होता कि अश्विनी की कविताएं बहुत कुछ परिमार्जन और कलात्मक अभिव्यक्तिकी मांग करती हैं। इनका कथ्य और शिल्प अभी गहराई और कसाव मांगता है।

सन्तोषकुमार तिवारी

उपन्यास

मन परदेसी

उपन्यासकार : कर्त्तारसिंह दुग्गल; प्रकाशक : सरस्वती विहार, २१ दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १८६; क्रा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

'अब मैं इस देशमें नहीं रहूँगी।' बेगम मुजीम सोच रही थी—'बेशक जायदाद है,भट्टीमें जाये। बेशक रिश्तेदार हैं, जहन्नुममें जायें। उधर पाकिस्तानमें भी तो रिश्तेदार हैं। और बनाये जा सकते हैं। एक बेटी तो भाग गयी। पता नहीं दूसरी, क्या कर बैठे? इस्लाम जैसा मज़हब

बार-बार नहीं मिलता। हाथों आयी जन्नत कोई कैसे गंवा दे ? जब मेरी ननद इस्मत लाहौरसे मुझे लेने आयी थी, तो मुझे उसके साथ चले जाना चाहिये था। पर जाती कैसे ? दोनों बेटियां इधर पढ़ रही थीं। सीमा कॉलेजमें थी जेबा स्कूलमें।' (पृ. १९) कथानायिका बेगम मुजीबकी यही मानसिक द्वन्द्वात्मकता 'मन परदेसी' की मूल संवेदना है। विभाजनकी विडम्बनाने कैसे एक व्यक्तिकी मानसिकताको भी दो भागोंमें विभाजित करके रख दिया है।

बेगम मुजीबके पतिने देश (भारत) को आजाद करवानेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। लेकिन ज्योंही देश आजाद हुआ—दो टुकड़ोंमें बँट गया। मुजीबका परिवार भारत (मेरठ) में रह गया और उसके भाई-बहन पाकिस्तान (लाहौर) में। मुजीब न रहा तो उसके भाईने उसके परिवारको पाकिस्तान आ जानेकी बात कही और बेगम मुजीबका भी मन करता कि वह पाकिस्तान चली जाये लेकिन वह ऐसा कैसे कर सकती थी—'कैसे जाती ? कैसे जाती ?? इतना बड़ा बंगला है यहाँ। इतनी सारी दुकानें किरायेपर चढ़ी हैं, बहनें, भाई हैं। सारा शहर मुझे जानता है। हर गलीमें कुदसिया बेगमको याद किया जाता है। सारा मुहल्ला मुझपर जान छिड़कता है। सुबह-शाम 'कुदसिया बीबी, कुदसिया बीबी' कहते लोगोंकी जबान नहीं थकती। यहाँ हमारा कब्रिस्तान है, जिसमें मेरा शौहर दफन है, ससुर दफन है सास दफन है। पिछली बार चुनावमें मैंने कांग्रेसको वोट दिया था। खुद महात्मा गांधीके नाम पर्ची डाली, दूसरोंसे डलवायी। इस उम्र में आकर खुद हिन्दी पढ़ना शुरू किया, अपने बच्चोंको हमेशा हिन्दी पढ़नेके लिए कहा। पड़ौसीके साथ रहना हो तो पड़ौसी जबान सीखनेमें क्या हर्ज है ?' बेगम मुजीब इस द्वन्द्वसे उबर नहीं पाती। उपन्यासकारने बेगम मुजीबकी अन्तर्व्यथा बाह्य परिवेशमें रूपायित करनेके साथ-साथ भारत-पाक विभाजनगत संघर्ष, तज्जन्य विसंगति, दो संस्कृतियोंके परिवेशके बीच झूलता एक परिवार और उसकी विचारधारा, और जीवन-पद्धति तथा संस्कारोंपर भी गहरी दृष्टि डाली है। बाह्य परिवेश और संस्कारगत वैषम्य दोनों किस प्रकार व्यक्तिकी मानसिकताको प्रभावित करते हैं और युगकी परिवर्तनशीलतामें व्यक्ति एका-एक उनसे समझौता करनेकी स्थितिमें नहीं आ पाता, लेखकने यह सवाल मुजीबके भाई शेख शब्बीर, जाहिद, महमूद आदि पात्रोंके माध्यमसे उठाया है। जाहिद और महमूदके वार्तालापमें यह सन्दर्भ देखा जा सकता है—

"आप क्या सोचते हैं कि आजसे चौदह सौ साल पहले, जिन्दगीका जो ढंग पैगम्बरने बताया, उसे आजभी लागू किया जा सकता है ?"

"बेशक !" महमूदमें एक कट्टरपंथीकी दृढ़ता थी।

"अगर कोई चोरी करे, तो उसके हाथ काट देने चाहियें ?"

"बेशक !"

"अगर कोई परायी औरतकी तरफ आँख उठाकर देखे ?

"उसके हाथ और पाँव दोनों काट देने चाहियें।"

"औरतको पर्देमें रहना चाहियें ?"

"बेशक !" (पृ. १२०-१२१)

लेकिन यह कट्टरता या संस्कारगत जकड़न अब शिथिल पड़ती जा रही है, इसीलिए बेगम मुजीबकी लड़की सीमा सिख लड़के (इन्द्रमोहन) के साथ भाग गयी। शेख शब्बीरकी लड़की नूरीने भी एक पंजाबी लड़केसे शादी कर ली। बेगम मुजीबकी छोटी लड़की (जेबा) भी राजीवसे शादी करना चाहती है, भलेही बेगम मुजीबके लिए यह स्थिति कितनीभी त्रासद क्यों न हो—'बेगम मुजीब चादर उठाकर अपने शौहरके मजारकी ओर चल दी। उसकी कब्रके पास पहुंची कि वह बेहाल होकर उसके ऊपर गिर पड़ी। छल-छल आँसू बहाती हुई बेगम मुजीब अपने बच्चोंके अब्बासे कह रही थी, "मेरे सिर-ताज ! मेरे सिरताज !! मैं क्या करूं ? मैं कहां जाऊँ ?" (पृ. १८९) यही नहीं कट्टर इस्लामी शेख शब्बीरका लड़का कबीरभी एक पंजाबी लड़कीसे शादी कर लेता है, भलेही शेख शब्बीर इस स्थितिसे समझौता न कर पागलही क्यों न हो जाये—"यही जी चाहता कि कपड़े फाड़कर वह कहीं निकल जाये। सोये-सोये 'अल्लाह हू' 'अल्लाह हू' बोलने लगता फटी-फटी आँखें। तब न वह बीबीको, न बेटे-बेटीको, न किसी रिश्तेदारको पहचानता। जो मुँहमें आता, बके जाता। न सिर न पैर। किसीकी समझमें कुछ न आता।' (पृ. ११०)

उपन्यासकारने मूलकथाके साथ-साथ भाषायी विवाद हिन्दू-मुस्लिम एकता, विश्व राजनीति, आदि प्रासंगिक प्रश्नों पर भी चर्चा की है। अलीगढ़का हिन्दू-मुस्लिम दंगा इस दृष्टिसे उल्लेखनीय है। धार्मिक सहिष्णुतापर भी संकेत देखा जा सकता है—'उस रात सोनेसे पहले जेबा पंजाबी में कुछ गुनगुना रही थी : 'मन परदेसी जे थिए सब देस पराया।'

बेगम मुजीबकी छातीमें जैसे बोल चुभ रहे हों। "बेटी, ये बोल किसके हैं ?" अम्मीने आवाज देकर जेबा से पूछा। आप-से-आप वह यही गुनगुनाती जा रही थी।

"बाबा नानकके ये बोल हैं अम्मीजान !" और जेवा ने फिर उन बोलोंको गाकर बुहराया :

'मन परदेसी जे थिए सब देस परायां।'

"बाबा नानककी यह वाणी मैं भारतके सारे मुसलमानोंको सुनाना चाहती हूँ। ये बोल सबको जबानी याद कराना चाहती हूँ।" (पृ. ६९)

फ्लैपपर दी गयी टिप्पणीसे सहमति प्रकट करते हुए यही कहा जा सकता है कि अनेकतासे एकताके, साम्प्रदायिकतासे भावनात्मक एकताके टकरावका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और गहरी सवेदनाकी अनुभूति इस उपन्यासकी विशेषता है।

औपन्यासिक भावधाराके अनुकूल भाषाकी सृष्टि, चरित्रोंकी जीवन्तता और पारिवेशिक यथार्थकी गहनतम अनुभूति-अभिव्यक्ति, चित्रात्मकता और मूर्तता' मन परदेसीको औरभी विशिष्टता प्रदान कर देते हैं। एक अंश द्रष्टव्य है : अकेली बैठी हुई, कभी जेबाको लगता, जैसे ठण्डी-मीठी फुहार पड़ रही हो। जैसे रिमझिम-रिमझिम वर्षा होने लगे। छल-छल बादल फूट पड़े हों। चारों ओर जल-थल हो जाये। अन्दर-बाहर धुला-धुला। टीले भुरभुरा रहे। गड्ढे भर रहे। निचुड़-निचुड़ रहे वृक्ष। नहाई-नहाई टहनियां। कहीं कलियाँ आखें खोल रहीं। कहीं कलियाँ अंगड़ाई ले रहीं। कहीं कलियाँ शरमाई-शरमाई। कहीं कलियाँ मुस्कानें लुटा रहीं। कहीं कलियाँ खिल-खिल हँस रहीं। राह चलतोंको बांध-बांध रही। एक मादकता, एक मस्ती एक खुमार। एक मौज। एक लहर। एक उल्लास। जैसे धरती करवट ले रही हो। आवाजें। दे रही हो। वाहें फैला-फैला बाहुपाशमें लेनेको मचल रही हो।' (पृ. १३३)

विभाजनकी त्रासदीको लेकर काफी लिखा गया है, पर चरित्रोंके मानसको उकेरनेका सफल प्रयास कमही हुआ। कर्त्तारसिंह दुग्गलकी यह कृति इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण सफल प्रयास है। रचना सोद्देश्य होते हुएभी यथार्थभावभूमिपर निर्मित है।

[डॉ. भैरूंलाल गर्ग

लेखकोंकी बस्ती

उपन्यासकार : विश्वम्भर 'मानव'; प्रकाशक : किताब महल, १५, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ : १४०; क्रा. ८०; मूल्य १२.५० रु.।

छत्तीस परिच्छेदोंमें विभक्त इस उपन्यासमें आदर्शका पुट होते हुएभी यथार्थका संस्पर्श अधिक है। कथाका तानाबाना महानगर इलाहाबादकी विविध आयामी जिन्दगी को सामने रखकर बुना गया है। समीक्ष्य उपन्यासमें बदलते युगकी मानसिकता, ढहते मूल्य, मानव मूल्योंके प्रति सच्ची आस्था, और संत्रासके साथ नवोदित लेखकोंकी समस्याओं, उनके स्वभाव और व्यवहार एवं प्रकाशकोंकी शोषण-वृत्तिपर प्रवाहमय रोचक शैलीमें प्रकाश डाला गया है। साहित्यकार परिस्थितिकी विपरीतताके निविड़ अन्धकारमें भी अपने अस्तित्वकी रक्षाके प्रति जागरूक रहता है। स्वभावसे संवेदनशील और रोमांटिक वृत्ति होने पर भी उसका एक निजी व्यक्तित्व होता है।

उपन्यासके केन्द्रमें है आलोक शर्मा, जो आर्थिक विषमताओं और दुर्वह पीड़ाओंको झेलते हुए लेखकोंके बीच रहनेकी आकांक्षाको लेकर साहित्यकारोंके गढ़ इलाहाबाद चला आता है। कुशाग्र बुद्धि आलोकको अपने प्रारम्भिक जीवनमें काफी विपन्नताका सामना करना पड़ता है,—परन्तु बाल्यकालमें ही देवकीनन्दन खत्रीका 'भूतनाथ' 'चन्द्रकांता' और चन्द्रकांता संतति' पढ़कर अभिभूत हो जाता है। कालेजमें कविताके प्रति रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है।

साहित्यके प्रति अनुरागके कारण ग्रामीण युवक आलोकका सम्पर्क 'वसुन्धरा' पत्रिकाके सम्पादक सदानन्द से होता है। सदानन्द आलोककी लेखक बननेकी महत्त्वाकांक्षाको अभिशाप मानते हुए परामर्श देते हैं :—हिन्दीमें इस युगमें और विशेष रूपसे भारतवर्षमें लेखक होना एक अभिशाप है। लेकिन, लेखकोंको कौन समझाये ?... हमारे देशकी परिस्थितियां अभी ऐसी नहीं हैं कि यहाँका लेखक सुख और समृद्धिमें जी सके।' (पृ. ३०) लेकिन आलोक अपने सद्व्यवहारसे सदानन्द परिवारका अन्तरंग सदस्य बन जाता है। सदानन्द परिवारके बिखर जानेपर भी वह 'सदानन्द भवन' को संग्रहालयमें परिवर्तितकर निदेशक बना रहता है।

साहित्यकार सदानन्दके परिवारके माध्यमसे समकालीन समृद्ध साहित्यिक जीवनका आलेख प्रस्तुत किया

गया है। सदानन्दके तीन लड़के—यशोधन, प्रभाकर और इन्दीवर, एवं एक मात्र लड़की मैत्रेयी अधिक शिक्षित नहीं थे। लेकिन प्रकृतिसे संवेदनशील, सौन्दर्योपासक और कवि होनेके कारण उनका निजी व्यक्तित्व था। यशोधन कवि होनेके कारण भावुक और संवेदनशील है। प्रभाकर स्वच्छन्द और प्रगतिशील विचारोंका है। उपन्यासकारने आर्थिक वैषम्य, शोषणकी समस्या एवं तज्जनित विसंगतियोंका चित्रण प्रभाकरके माध्यमसे किया है। प्रभाकर के हृदयमें दलितोंके प्रति गहरी सहानुभूति है। वह अन्त्यजोंकी बस्तीमें मैले-कुचैले बच्चोंके लिए स्कूल खोलता है और यथाशक्ति उनकी मदद करता है। (पृ. ११३)

इन्दीवर शरीरसे कोमल और स्वभावसे संवेदनशील होनेके साथही सौन्दर्योपासक भी है।—"सम्पन्न घरकी युवतियोंके उदार सम्पर्कसे उसके मनमें नारी-सौन्दर्यके सूत्र एकत्र होकर घनीभूत होने लगे। लेकिन उसका स्वभाव इतना सात्त्विक और दृष्टि इतनी पावन थी कि सौन्दर्यकी मादक लहरें बार-बार उसके निरपेक्ष दृढ़ मनके तटसे टकराकर पीछे लौट जाती थीं।" (पृ. ६०) इन्दीवर योगीराज जीवानन्दके आश्रम जाकर आध्यात्मिक माँ विमलासे योगमायाका रहस्य समझता है और भोग और कामसे दूर भागता है। इन्दीवर अपने समयका एक प्रतिष्ठित कवि है।

शान्त और गम्भीर प्रकृतिकी मैत्रेयीका जीवन अन्त तक रहस्यमय बना रहता है। उसका विवाह अल्पायुमें ही हो जाता है। प्राचीन रूढ़ संस्कारोंमें आबद्ध परिवार स्त्री शिक्षा और स्वतन्त्रताका विरोधी है। वातावरणकी प्रतिकूलतासे मैत्रेयी कभी ससुराल नहीं जाती है। वह अध्ययन कार्य और शिक्षा प्रसारमें जुट जाती है। कवयित्री और समाजसेविका मैत्रेयी बदलते हुए सामाजिक संदर्भमें परम्परागत मूल्योंका विरोध करती है।

मुख्य कथाके समान्तर अन्य प्रासंगिक कथाएं भी चलती रहती हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालयके ग्रामीण छात्र दुष्यन्त गुप्तकी रोमांटिक वृत्ति, कवयित्री उमा भसीनसे भावात्मक सम्बन्ध और कालान्तरमें अन्तर्जातीय विवाह समकालीन स्वच्छन्द वातावरणको प्रस्तुत करते हैं। रोली नारीकी शारीरिक पवित्रताके परम्परागत नैतिक मूल्यका उल्लंघनकर वैवाहिक जीवनमें भी सैक्स सम्बन्धी स्वतन्त्रताके पक्षमें है; क्योंकि किसी परिस्थितिवश यदि अन्य पुरुषको अपना शरीर समर्पित करती है तोभी हृदय में जिस ऊँचाईपर पतिकी प्रतिमा स्थित है, वहाँ कोई नहीं पहुंच सकता। (पृ. ७३)

'लेखकोंकी बस्ती' नामके बारेमें लेखकका स्पष्टीकरण है—"प्रेस, प्रकाशन और पत्र-पत्रिकाओंके आधिक्य के कारण प्रयाग सदाही 'लेखकोंकी बस्ती' जैसा रहा है। ये लेखक नगरके अनेक भागोंमें फैले हुए थे, और सदानन्द से प्रायः मिलते रहते थे। अपनी कालोनीमें उन्होंने एक 'अतिथि गृह' बनवा रखा था, जहाँ बाहरसे आये साहित्यकार दो-एक दिन ठहर सकते थे।" (पृ. २७) समग्र रूप से 'लेखकोंकी बस्ती' में प्रयागके समकालीन समृद्ध साहित्यिक जीवनका रोचक एवं स्वाभाविक चित्रण-विश्लेषण है। लेखकोंकी मनःस्थिति और उनके अभावोंके साथ प्रकाशकोंकी शोषण वृत्तिपर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। परम्परागत मूल्योंके विरोधके साथ आधुनिक संचेतनाके अनुरूप सहज अनुभूतियोंका सहानुभूतिपूर्ण चित्रणभी मिलता है।

□ राजेश शर्मा 'पीयूष'

खेला खतम पइसा हजम

उपन्यासकार : हिमांशु श्रीवास्तव; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१ एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : १२८; क्रा. ८०; मूल्य : १८.०० रु.।

'खेला खतम पइसा हजम' हिमांशु श्रीवास्तवका लघु उपन्यास है। इसमें कथाकारने शहबाज़ नामकी नाटक कम्पनीकी अतिहसीन नायिकाकी आदर्शवादिताका चित्रण किया है। इस आदर्शमें ताराशंकर नामके कम्पनी के एक जोकरके माध्यमसे राजनीतिक यथार्थके प्रवेशका भी चित्रण है। नाटक कम्पनी पूंजीवादी एकतंत्रकी शोषक और शोषणमूलक व्यवस्थाकी गिरफ्तसे छूटकर कलाकारोंकी साझेदारीकी समाजवादी व्यवस्थाकी ओर चली जाती है और उसे सफलता मिलती है। सफलता मिलनेपर पुराना शोषक पूंजीवादी व्यवस्थापकभी उसमें शरण पाता है। इस संदर्भमें गांधीवादी हृदय परिवर्तन से लेकर मार्क्सवादी यथार्थतक की सूक्ष्म रेखाएं इस छोटे से उपन्यासमें बहुत बारीक बुनावटमें उकेरी गयी हैं। वस्तुतः यदि शिल्पकी अति आग्रही उर्दूदानी वृत्तिको निकाल दिया जाये तो उसे प्रेमचन्दके शिल्पके निकट प्रतिष्ठित किया जा सकता है और इस प्रकार आदर्शोन्मुख यथार्थकी पूरी प्रतिज्ञा उपन्यासमें स्पष्ट हो जाती है।

रचनाकी दृष्टिसे आधुनिक कालकी होते हुएभी कथाकारने पूरे कथा-बंधानको उस कालकी पृष्ठभूमिपर आधारित किया है जब भारतमें स्वतंत्रता उग रही थी। तब समाजमें नवाब लोग हुआ करते थे जिनके जीवनकी हर परिभाषा ऐय्याशीकी सीमापर जाकर समाप्त हो जाती है। प्रस्तुत उपन्यासमें नौटंकीके भीतर कलाकारों के विद्रोह और नवनिर्माणके समान्तर एक उस नवाबकी कहानीभी चलती हैं जो नाटक कम्पनीकी प्रमुख नायिका सुन्दरीपर दीवाना है और उसे प्राप्त करनेकी कोशिशोंमें उस सुन्दरीका आदर्शवादिता, कलानिष्ठा, प्रेम, चतुराई और साहससे बराबर असफल होता जाता है। असफलताकी खोजमें वह ऐसा कुछ कर गुजरता है कि उपन्यासकी घटनाओंमें तीव्रताके साथ जटिलता आ जाती है। कथाकार मँजे हुए हाथोंसे शिल्पमें अनेकमुखी संघर्षों और जटिलताओंका सृजनकर उसे बहुत दिलचस्प बना देता है। नाटक कम्पनीवालोंकी कहानी नौटंकीकी भाँति हलकी-हलकी होते बच जाती है और पुरानाही सही पर आदर्शवादी स्वाद तो अन्ततः उभरही आता है।

— विवेकी रा[य]

कहानी संग्रह

स्थगित

लेखिका : अर्चना वर्मा; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १५६; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।

'स्थगित' में संगृहीत अर्चना वर्माकी दस कहानियाँ महिला कथा लेखिकाओंकी सुपरिचित सीमित अनुभवकी कहानियोंकी तरह पति-पत्नी-प्रेमिकाकी टूटनको स्वर देती हैं। वैयक्तिक अनुभववादकी इन कहानियोंमें विभिन्न मूड्स और मनःस्थितियोंका अंकन पूरी कलात्मकताके साथ किया गया है, इसलिए इनका कोई सामाजिक कारण स्थूल रूपसे नहीं देखा जा सकता, यद्यपि इन्हें परिवेशसे एकदम अलग करके भी नहीं देखा जा सकता। इन कहानियोंके केन्द्रमें भावुक और संवेदनशील लड़की, पत्नी, प्रेमिका, बच्चे और माँ हैं, जो परिवारके परम्परागत रूढ़ ढांचे, पिता, पति या प्रेमीके छल-कपटसे पीड़ित हैं। निर्णयके लिए स्वतंत्र और जिम्मेदार होनेपर भी अकेलेपनकी यातना इनकी नियति बन जाती है, जहाँ ये सहने और ज्यादासे ज्यादा शिकवा-शिकायत करनेसे लेकर आत्महत्यातक उसे भोगते हैं। महानगरीय मध्यवर्गके बौद्धिक परिवेशमें साहित्य और दर्शनके सान्निध्य में पलनेवाली ये स्त्रियाँ अतिरिक्त रूपसे संवेदनशील होनेके कारण, जीवनकी प्रत्येक घटना, क्षण और शब्दसे प्रभावित होकर निरन्तर कुछ-न-कुछ ऊल-जलूल सोचती-विचारती रहती हैं। एकाधिकारकी भावना या इच्छित परिणामोंकी कामनाको ठेस लगते ही सन्तुलन खो बैठना इनका स्वभाव है। अतिशय पवित्रतावादी दृष्टिकोणके कारण ये हर जगह 'मिसफिट' हैं और यही अहसास इन कहानियोंका मूल मन्तव्य है।

अर्चना वर्माकी ये कहानियाँ प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नीकी आन्तरिक-मानसिक भावनाओंसे जुड़ी होनेके कारण अलग-अलग न होकर एक-दूसरीका विकसित रूप प्रस्तुत करती हैं। इस सीमाके कारण कुछ कहानियोंमें स्थितियाँ, घटनाएँ, यहाँतक कि पात्रोंकी पुनरावृत्ति हुई है, इसलिए इन्हें निरन्तरतामें देखना जरूरी है। इन कहानियोंमें अस्तित्वके प्रति सजग, उसके लिए संघर्षरत नारियाँ किसी-न-किसी रूपमें मोहभंगका शिकार होती हैं। पति-पत्नीकी टकराहटमें बच्चोंकी मानसिकता भी विकृत होती है, जिससे समूचा परिवार अजनबीपनकी यातनामें कैद हो जाता है। लेखिकाने इन स्थितियोंको

पूरी संश्लिष्ट गहनतासे उभारा गया है। 'अर्थ' की कहानीकी नायिका अपने विवाहित प्रेमी शान्तनुके साथ प्रेमके क्षणोंको पूरी तन्मयतासे भोगते हुए, असुरक्षाकी आशंकासे आहत और अपमानित होती है। परम्परागत पत्नीसे ऊबनेवाला शान्तनु बेमतलब सपने देखनेवाली नायिकाको अपना अकेलापन बाँटनेका माध्यम भर समझता है। नायिका इस पूरी प्रक्रियामें स्वयंकी तटस्थता, लगाव और अलगावमें अपने ऊपर नियंत्रण रखती है और आत्मविश्लेषण द्वारा पराजित होनेकी, टूटनेकी हताशासे बची रहती है। 'बीते हुए' कहानी तापसीके बचपनके खेलकूदभरे अतीतकी स्मृति है, जिसमें भाईसे झगड़ा, आशीषकी बातें, माँकी यादें उभरकर उसकी निरर्थकता के अहसासको बढ़ा देती हैं। तापसीके अवचेतनमें मौजूद सारी घटनाएँ, आशीषको लेकर देखे गये सपने उसे और अधिक अकेला कर जाते हैं। तापसी और आशीष दोनों ही अविवाहित रहकर अपनी परिस्थितियोंसे लड़ते रहते हैं। बादमें तापसी मालीसे आशीषके स्मृति चिन्हके रूपमें लगे दुरंगे गुलाबको निकाल देनेको कहकर निरर्थकतासे मुक्ति पानेका प्रयास करती है।

'डोरका पिछला सिरा' पिताके घर और शहरमे शिक्षाके लिए दो बरस बिताने आयी मनजाश्रीके खट्टे-मीठे अनुभवोंकी कहानी है। यहां घरमें बेकार दिनू दा, अपनी-अपनी लालटेन और अपनी-अपनी किताब लिये पढ़ते बन्नो, नन्नो, सोनू, गीतू और टिम्मी, काकी और बड़ी अम्मा, नेत्रहीन बाबा, पण्डाइन चाचीके घरका चहल-पहल भरा माहौल, भंगडी, माँको गाली देनेवाले टब्बू दादा अपनी विभिन्न चारित्रिक विशेषताओंके साथ मौजूद हैं। 'मोटरकी रफ्तारको बैलगाड़ीकी रफ्तार' में बदल देनेवाला यह वातावरण संवेदनशील मनजाके मन में घृणा और वितृष्णा जगाता है। वह बिना किसी हस्तक्षेपके इन लोगोंके व्यवहारको चुपचाप देखनेके अलावा कुछ कर नहीं सकती। वह हर सप्ताह होस्टलसे घर आकर अपने परिवारके अतीतको जिस क्रूर रूपमें देखती है, उससे और अकेली हो जाती है। सुमितका सुखद साथ और बातेंही उसका आश्वासनभरा सुरक्षित संसार है, जहां वह थोड़ी देर चैन पाती है। लेकिन 'पुनश्च:' में सुमितके साथ बिताये दाम्पत्य जीवनमें कड़वाहट भर जानेसे पुरानी मधुर स्मृतियाँभी उसे निरर्थक होनेसे बचा नहीं पातीं। अधूरेपनकी झल्लाहटमें दोनों एक दूसरेको जख्मी करनेसे बाज नहीं आते। नीला' दी और सुमितकी सुविधाजनक दिनचर्यामें एक यांत्रिक पुर्जे की भूमिका निभानेवाली यह मातृहीन लड़की अपनी जिन्दगीमें फालतू होती चली जाती है। कालेजके दिनों में सुमितके साथ सुरक्षा देखनेवाली यह लड़की पुराने साथी प्रदीपके व्यवहारमें एक नयी सार्थकता देखती है। ये दोनों कहानियां एक-दूसरेकी पूरक या एकही तस्वीर के दो पहलू हैं, जिनमें लेखिकाने नायिकाकी मानसिकता के एक-एक रंग रेशेको शब्द दिये हैं। 'वृतान्त', 'बूमरैंग', 'स्थगित', और 'बेहद' कहानियां दाम्पत्यमें पति-पत्नीके मानसिक द्वन्द्वके नये आयामोंको सामने लाती हैं। यह टकराव दोनोंकी अलग जीवन-दृष्टि और स्वायत्तत-बोध की उपज है। 'वृतान्त' के जतीन और सविता आधुनिक जिन्दगीमें दौड़ते लोगोंकी सफलता पानेके सिलसिलेमें पारिवारिक सुखसे हाथ धो बैठनेवाले शिक्षित मध्यवर्गीय पति-पत्नी हैं। आर्थिक रूपसे आत्मनिर्भर सविता जतीन की पार्टियोंमें आनेवाले लोगोंको, पतिपर उसके एकाधिकारमें बाधक मानकर, घरमें तनाव पैदा करके अपनी और जतीनकी जिन्दगीमें जहर घोल लेती है। इस नाटक के आरम्भ और पटाक्षेपके बीचके द्वन्द्वमें सविता पतिको माता-पिता, भाई-बहनोंके दायित्व, सारी दफ्तरी दोस्तियों और कामचलाऊ रिश्तोंसे काटकर पूरे आदमीके रूपमें पाना चाहती है और माँगती है अपने जीवित और स्वतन्त्र इकाई होनेकी पहचान। अपने कर्त्तव्यों और दायित्वोंमें घिरा जतीन फालतू कामोंमें वक्त देकर पैसा कमाता है, ताकि घरवालोंकी जरूरतें पूरा कर सके। ऐसेमें सविताको लगता है कि वह किसी सुनियोजित षड्यन्त्रके आगे अकेली छूटती जा रही है। वह छुट्टी लेकर निरुद्देश्य भटककर सार्थकता खोजनेके चक्करमें भी कोई सार्थकता नहीं खोज पाती। इस नीरस उदासीन दिनचर्यामें सुनीलभी अकेला पड़ता जाता है और मम्मी पापाके झगड़ेमें वापस घर आनेको उसका मन नहीं करता। लेखिकाने अन्तमें सुरेश और रमाके सुखद दाम्पत्य और पतंगोंके प्रतीकसे कहानीको नये अर्थोंसे संयुक्त कर दिया है। 'बूमरैंग' में किरायेदार माताजी पति-पत्नीको मोहरा बनाकर लड़ा देती हैं, बच्चेको भी अभिनयकी ट्रेनिंग देकर उनके बीचकी दूरीको बढ़ा देती हैं। पति-पत्नी चाहते हुए भी एक नहीं हो पाते, सुलह की दूसरोंके द्वारा की गयी कोशिशें पत्नीके आहत अहं को स्वीकार नहीं होतीं। माताजी यह चाल चलकर घर की सब चीजोंको इस्तेमाल करनेकी सुविधा पा जाती

हैं।

'स्थगित' दर्शनशास्त्रके अध्यापककी बौद्धिक महत्त्वाकांक्षाओंके बंजर परिणामको सामने लानेवाली कहानी है। वह पत्नी रमा, पुत्री रितु और पुत्र जयंतकी उपस्थिति के बावजूद, बड़े और महत्त्वपूर्ण कार्यकी तल्लीनतामें उन्हें खोकर निरन्तर अकेला होता जाता हैं और सबको निर्णयकी स्वतन्त्रता तथा जिम्मेदारी सौंपकर अकेला करता जाता हैं। थोथे गर्वमें व्यावहारिक जिन्दगीसे कटते हुए, सुखी-संतुष्ट होनेका अभिनय करते वे भीतरसे खाली होते जाते हैं। अपना अतीत उन्हें निरन्तर आत्म-विश्लेषणपर मजबूर करता है। रमाकी मृत्यु, रितुकी असफल दाम्पत्यके कारण आत्महत्या तथा जयंतके विदेश में ही बस जानेके निर्णयसे शून्यमें टंगे हुए वे खोसलाके बेटे राजनको अपने श्रमका अधिकांश दाय सौंपकर निश्चिन्त हो जाते हैं। उनकी प्राथमिकताओंमें परिवार के दायित्वोंसे आगेभी कुछ और था जिसकी प्रतीक्षा वे जिन्दगीभर करते रहे। और उस प्रतीक्षाके लिए उन्होंने सबसे ज्यादा जरूरी चीजोंको दाँवपर लगा दिया। 'बेहद' कहानी 'स्थगित' में मौजूद रितुकी आत्महत्याके सूत्र और परिस्थितियोंको ही विकसित रूपमें प्रस्तुत करती है। रितु दीपनके साथ विवाहका निर्णय कर सारे सूत्र उसके हाथोंमें सौंप देती है। बीमार मांके बहानेसे पूर्व पत्नीको पैसा भेजनेवाला दीपन इसे बताकर संवेदनशील रितुको भीतरसे तोड़ देता है। फिर वह इस असलियतको झूठ नहीं मान पाती और इस बारेमें माता-पितासे कुछभी कह नहीं पाती और परिणाम होता है आत्महत्या। अपने पत्नीके अस्तित्वके झूठा पड़तेही वह खुदको और गर्भके बच्चेको नाजायज-निरर्थक समझकर आत्महत्यामें ही सार्थकता देखती है। विवाहके निर्णयका विरोधहीन स्वीकार और पिताका साथ होनेका आश्वासन रितुको जिन्दगीमें जूझनेकी ताकत नहीं दे पाता। जिन्दगीके उल्लासको स्थगित करनेवाले इस तरहके लोग कोरे शब्दजालसे...जिन्दगीके सचको पकड़ रखना चाहते थे। किसीने उन्हें बताया क्यों नहीं कि शब्दजाल नहीं होते, हवा होते हैं और उनसे कुछभी पकड़कर रखा नहीं जा सकता।' (पृष्ठ १३८)। इस तरहके लोगोंसे रिश्तेभी सारी जिन्दगी नर्सरीमें रहनेको अभिशप्त होते हैं, जो तनिकसे आघातसे चूर-चूर हो जाते हैं।

'चौकोन' और 'मुक्ति' इस संग्रहकी, संरचना-मानसिकतामें जटिल और उलझी हुई कहानियां हैं, जो माता-पिता तथा व्यवस्थाके चरित्रको खोलती हैं। मां-बापके बच्चोंको दिये गये उपदेश, वर्जनाएं और मर्यादाएं तथा सफल जिन्दगीके मानदंड उन्हें कहीं का नहीं रहने देते। पिताकी सफलता और असफलताके प्रतीक दो बच्चोंकी जीवन सम्बन्धी मान्यताओंसे उनकी मानसिकताके अन्तरको समझा जा सकता है। 'मारुती' से बुद्ध जयन्ती पार्कके सामने खड़ी कारको लेकर चलानेवाला बच्चा अपने निर्दोष दोस्त संजूके साथ एक्सीडेंटका शिकार हो जाता है। पिता बच्चेके इस खेलको 'गैंग एक्टिविटी' के सन्देहसे, उसे कानूनी तौरपर बचाकर उम्रभरके लिए अपराध-बोधसे ग्रस्त कर देते हैं। इस बच्चेकी मानसिकताके दो भागोंमें द्वन्द्वके माध्यमसे लेखिकाने न्याय व्यवस्था और सफलताके मानदण्डोंके खोखलेपनको उजागर किया है। छोटे बच्चेकी मृत्युके बाद, जो पिताके साम्राज्य-विस्तार, नामको रोशन, पुरखोंके तर्पणका स्वप्न था, बड़ेपर ही उनकी आशाएं केन्द्रित हो जाती हैं, लेकिन वह अन्दरसे उस सबको स्वीकार ही नहीं कर पाता। 'मुक्ति' कहानीमें लेखिकाने फैंटेसीनुमा शिल्पके माध्यमसे व्यवस्थाके अन्याय और शोषणके विरोधके परिणामको व्यक्त करके, संकट और बाजीको उलटनेकी जटिल स्थितियोंका संकेत किया है। वैरगिया नाला तथा मुक्तिदाता-नारायन, दामोदर और वासुदेवकी त्रिमूर्तिके प्रतीकोंसे लेखिका परम्परागत सुरक्षा और विरोधके जोखिमको सामने लाती है। सरकारी क्षेत्रोंमें यूनियनोंके झण्डोंकी असलियत और संवेदनशील व्यक्तियोंकी स्थिति, गंगाचरनकी अकारण सेवा-निवृत्ति और नायक तथा सेक्रेटरी द्वारा विरोधमें प्रकट होती है। ईश्वरके साक्षात्से मुक्ति पानेवाला रमचन्ना और ऐसे ही न जाने कितने लोगोंकी सरपतके जंगलमें गुमनाम मृत्यु वैरगिया नालेके रहस्यको उजागर कर देती है। 'जिनके हाथोंमें चाभियां होती हैं वे कुछ लोगोंको देकर मारते हैं, कुछ लोगोंको न देकर' (पृ. ८६)। ऐसी स्थितिमें 'यूनियनकी लड़ाई व्यक्तियोंसे नहीं होती जो अन्याय करते हैं, व्यक्तियोंके लिए नहीं होती जो अन्याय सहते हैं। उसकी लड़ाई अन्यायसे होती है' (पृ. ८७)। विरोध की यह अमूर्तता यूनियनके पदाधिकारियोंकी पदोन्नति और जनसामान्यके दण्डमें बदल जाती है। इस बाजीके उलटे जानेकी प्रतीक्षा साधनोंके सही उपयोगके बिना निरर्थक होकर यथास्थितिके ही पक्षमें जाती है। एक दूसरेकी ओर पीठ किये घेरेमें खड़े लोगोंके 'साथ

संकट है सही लेकिन संकटमें सा[illegible] और कौन-सी मुक्ति है ?' (पृ. ६२) ।

अर्चना वर्माकी ये कहानियां सुस्पष्ट कथासूत्र अथवा सुनिश्चित निष्कर्षको लेकर न चलते हुए प्राय: अनिश्चय की दोहरी मानसिकतामें समाप्त हो जाती हैं । ये शिक्षित मध्यवर्गीय जीवनके कमजोर, कोमल, भावुक, बेहद संवेदनशील, रुग्ण और निषेधात्मक पक्षतक सीमित रह जाती हैं । मध्यवर्गीय दाम्पत्यमें टूटन और बिखरावको रेखांकित करनेके संदर्भमें चरित्रोंका अकेलापन-अद्वितीयता रुग्ण वैभवमें बदल जाती हैं । शिल्पकी कलात्मक जटिलता कहानियोंको दिशाहीन जंगलमें छोड़ जाती हैं, यहीं लेखिकाकी दृष्टिकी अस्तित्ववादी सीमाएँ मुखर होती हैं । ये कहानियाँ अप्रासंगिक, निरर्थक उदासीनता में कैद उन चरित्रोंके दमित अवचेतनकी झाँकी दिखाती हैं, जो ऊब और निष्क्रियताके अस्तित्ववादी दर्शनमें कैद हैं। अस्तित्वमें झूठे अहंको छोड़कर, सामाजिक-सामूहिक शक्तिके साक्षात्कारका अभावही इन कहानियोंकी प्रासंगिकता और सार्थकताके आगे प्रश्नचिह्न लगाता है। शायद भविष्यमें लेखिका कहानियोंके इस फार्मूले और अनुभवकी सीमित दुनियांसे उबरे, जो एक सार्थक-सामर्थ्यवान् लेखकके लिए जरूरी है ।

☐ **मूलचन्द गौतम**

एक नीच ट्रैजेडी

लेखिका : मृणाल पाण्डे; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२ । पृष्ठ : १३७; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु. ।

मृणाल पाण्डे उन कतिपय विशिष्ट कहानीकारोंमें हैं, जिन्हें अपने सूक्ष्म निरीक्षणके बलपर मध्यमवर्गीय जीवन-स्थितियोंके विभिन्न आयामोंको अपनी कहानियों में ज्योंका त्यों रूपायित करनेका कमाल हासिल है। दरअसल जबतक कहानीकारका, जीवनकी वेधक स्थितियों से सीधा साक्षात्कार नहीं होता, या वह दूसरोंकी वेदना को स्वानुभूतिके धरातलपर नहीं भोग पाता, कृतिमें वह तीक्ष्णता नहीं आती, जो उसे सामान्य रचनाओंकी कोटि से ऊपर उठा सके । निःसन्देह ऐसी तीक्ष्णता 'एक नीच ट्रैजेडी' की कहानियोंमें विद्यमान हैं।

[illegible] संग्रहमें लेखिकाकी जो कहानियां संगृहीत हैं, जिनमें आन्तरिक एवं बाह्य, वैयक्तिक एवं सामाजिक यथार्थके विभिन्न पहलुओंका अंकन सहज तटस्थताके साथ किया गया है । वैचारिकताके साथ-साथ अनुभूतिका संस्पर्श इन कहानियोंको और अधिक संवेद्य बना देता है । भौतिक सुखोंके पीछे भागनेकी स्पर्धामें सम्बन्धोंका विघटन, पारिवारिक तनाव, संत्रास और घुटनके वातावरण में जीनेका अभिशाप, कृत्रिम हास और मुस्कान ओढ़नेकी विवशता, अर्थकेन्द्रित समाजमें मानव-मूल्योंका अवमूल्यन आदि सामयिक प्रश्नोंके प्रति लेखिकाकी सजगता इन कहानियोंको सामाजिक अर्थवत्ता प्रदान करती है । उसपर मानव-स्वभावका तटस्थ विश्लेषण इन्हें सार्वभौमिक उत्कृष्टताके आसनपर प्रतिष्ठित कर देता है ।

'बर्फ' एक परिवारकी मौन स्तब्धताकी कहानी है, जो तनावके शब्दोंकी मारकताको कलात्मक प्रतीकोंके माध्यमसे व्यक्त करती है । ये वे क्षण हैं, जिनमें जीवन की सारी ऊष्मा बुझ जाती है और सारा जीवन प्रवाह एक भयंकर दुर्निवार शीतमें जम जाता हैं,...बर्फकी तरह ।

"अन्धेरेसे अन्धेरेतक" अमरीकामें बसे एक एकांकी युवककी कहानी है, जो अकेलेपनकी पीड़ाको सम्पूर्ण तीव्रताके साथ अभिव्यक्त करती है। वस्तुतः वर्तमान युगकी यह ट्रेजेडी महानगरीय सभ्यताका अभिशाप है, जिसका विकरालतम रूप विकसित देशोंके महानगरीय जीवनमें देखनेको मिलता है । साथ-साथ रहते वर्षों गुजर जाते हैं, पर पड़ोसियोंसे यदा-कदा 'हॅलो शॅलो' को छोड़कर, बात करनेतक का अवसर नहीं आता। कहानीका मनोहर इस पीड़ासे मुक्ति पानेके लिए स्वदेश लौटना चाहता है, किन्तु एक अलगाव, एक दूरी अन्दरही अन्दर उसे परिवारसे भी नहीं जुड़ने देती ।

पारिवारिक सम्बन्धोंके कुछ संश्लिष्ट पहलुओं का सहज रूपायन करनेवाली एक सशक्त कहानी है : 'दोपहर में मौत" । आजके अर्थपोषित समाजमें सम्बन्धों की सरल धारा स्वार्थके रेगिस्तानमें न जाने कहाँ खो गयी है ? सम्भवतः इसीकारण विदेशमें बेटेकी आकस्मिक मृत्युकी विभीषिकाको सहकरभी रघुके माता-पिता अपनी पुत्रवधू और बच्चोंको भारत बुलानेका आग्रह नहीं करते बल्कि रघुके हार्डसिंग सोसाइटीके शेयरको छोटे बेटेके नाम परिवर्तित करनेके लिए प्रयत्नशील दीख पड़ते हैं ।

"ग्रानी कि एक बीत थी" अन्तर्जगत्की कहानी है। समयके प्रवाहमें पड़कर प्रेम सम्बन्धोंके विछिन्न हो जाने परभी प्राय: उनकी तरलता मनकी परतोंके नीचे अवशिष्ट रह जाती है। यही कारण है कि जिन्दगीके किसी मोड़पर पुराने साथीका मिल जाना एक सुखद आश्चर्य प्रदान करता है। किन्तु, दूसरी ओर, यह बातभी उतनी ही सच है कि इस बीच सब कुछ अन्दरही अन्दर पूर्णतया बदल चुका होता है। वे अन्दरसे बेहद उलझे हुए, पर ऊपरसे बिल्कुल सरलीकृत रूपमें, एक-दूसरेके सामने आते हैं। और विडम्बना यह है कि उनका वार्तालाप 'और क्या ?' की तटस्थ औपचारिकतासे आगे नहीं बढ़ पाता।

'बिब्बो' एक रेखाचित्रनुमा कहानी है, जो एक युवा नौकरानीके स्वभाव और व्यक्तित्वको अंकित करती है। समृद्ध अभिजात-वर्गके व्यवहारकी छानबीन इस कहानी की अन्यतम उपलब्धि है। 'कुत्तेकी मौत' एक पालतू कुत्तेके प्रति सहज विकसित ममता तथा भयजन्य घृणा के संघर्षकी कहानी है, जिसमें विजय, अन्तमें, घृणा एवं क्रूरताकी ही होती है। 'पितृदाय' कहानी एक युवा प्राध्यापककी पितृसेवाको अंकित करती है, जो कर्त्तव्यके स्तरपर, रुग्ण वृद्ध पिताको बचानेके लिए नर्सों, डाक्टरों और मेडिकल स्टोरों, और यहांतक कि ज्योतिषियोंके चक्कर लगाते-लगाते दिन-रात एक कर देता है किन्तु भावनाके स्तरपर इस दौड़-धूपसे नहीं जुड़ पाता। इसका कारण, संभवत:, वह घृणा और उपेक्षा है, जो उसे और उसके परिवारको जीवनभर अपने पितासे मिली है।

'प्रतिशोध' मानव मनकी गहराइयोंमें उतरकर असामान्य व्यवहारकी गुत्थियां सुलझानेका प्रयास करने वाली एक उत्कृष्ट कहानी है। जीवनभर नारीकी छाया से भी घृणा करनेवाले मधुसूदन बाबू ढलती उम्रमें दमयन्तीके मोहमें इतने डूब जाते हैं कि औचित्य-अनौचित्य का विवेक खोकर उसके कालेजके चेयरमैनको एक अश्लील गुमनाम पत्र लिखकर उसे नौकरीमें न रखनेका आग्रह करते हैं।

'एक नीच ट्रेजेडी' इस संग्रहकी विशिष्ट रचना है। लगभग ४५ पृष्ठोंकी यह लम्बी कहानी हॉस्टलकी एक छात्रा सुधाकी अनुभव-शृंखलाके माध्यमसे युवा मनका सुन्दर विश्लेषण करती है। कहानीका केनवास बहुत व्यापक है और सुधाके हॉस्टलसे उसके परिवारतक फैला है, जिसमें अलग-अलग स्वभाव और आदतोंवाली सहेलियां, अध्यापक और हॉस्टल-सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं; सरल हंसमुख और धर्मभीरू माँ हैं, पुरातनताके हिमायती 'क... चाचा हैं, भृगुसंहिता और नक्षत्रोंमें लीन मुन्ना चाचा हैं, त्रारुदीकी रानी मालिनी मौसी हैं, अंग्रेजी और अं... जियतकी प्रशंसक 'क्षणे रुष्ट: क्षणे तुष्ट:' शालिनी मौसी हैं,...और अनेक चेहरे हैं, अपनी-अपनी विशेषता लिये। इनमें कहीं पीढ़ियोंका मौन संघर्ष है तो कहीं मान्यताओंकी टकराहट। कहानी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप... मध्यवर्गीय जीवनकी अनेक स्थितियोंको अपनेमें समेटे हैं, थोथा अध्यापक, काइयाँ अफसर, ढोंगी राजनेता और घूसखोर बाबू जिसके कुछ पहलू हैं।

मृणाल पाण्डेकी कहानियोंमें आद्यन्त एक जीवन दृष्टि है, मानव मूल्योंका आग्रह है और भौतिकताके प्रति विमुखताका भाव है। कहीं-कहीं गतिकी मन्थरता खटकती है, खास तौरपर 'एक नीच ट्रेजडी' कहानीमें।

शिल्पके स्तरपर भी कहानियाँ उत्तम बन पड़ी हैं। सोद्देश्य विशेषण और सटीक उपमान कलागत उत्कृष्टता के परिचायक हैं। प्रतीकोंका प्रयोग संप्रेषणमें सहायक हुआ है।

□ तेजपाल चौधरी

नाटक : एकांकी

अग्निखण्ड

लेखक : इन्द्रजीत भाटिया; प्रकाशक : पाण्डुलिपि प्रकाशन, ई-११/५, कृष्णनगर, दिल्ली-५१ । पृष्ठ : ७५; क्रा. ८१; मूल्य : १२.०० रु. ।

'अग्निखण्ड' नाटककार इन्द्रजीत भाटियाकी चौथी प्रकाशित नाट्य-कृति हैं। इस नाटकमें उन्होंने आजकी युवा मानसिकता, उसको वरगलानेवाली अवसरवादी राजनीति तथा उनके कारण सामाजिक जीवनको ठप्प कर देने वाले आन्दोलनों आदिके सजीव चित्रण किये हैं। किस प्रकार एक मेधावी और तेजस्वी युवक राजनीतिकी दलदलमें फंसाया जाता है और अन्तत: अपने आदर्शोंसे भी हाथ धो बैठनेको मजबूर किया जाता है, इसके चित्रण इस नाटकमें है। छोटे पैमानेपर यह आजके सामान्य भारतीयकी कथा है जिसे चुनावी राजनीतिने बार-बार छला है।

प्रमोद वर्मा एक युवा-नेता है जिनकी वाणीमें जादू है। इस जादूसे वह जनसमूहकी चेतनाको जिधर चाहे मोड़ सकता है। उसकी प्रेमिका तथा बादमें उसकी पत्नी भी उसके इस जादूसे आकर्षित होकर उसके साथ हुई थी। रुचिको इस तेजस्वी युवकके प्रखर व्यक्तित्वमें न जाने कितने स्वप्न पल्लवित दिखायी दिये थे। इस अदम्य शक्तिको दिशा देनेके लिए रुचि मूल्योंकी प्रतीक गाँधी टोपी भेंट करती है। रुचि स्वेच्छासे इस बेकार युवकको जीवन-साथी बनाती है और स्वयं नौकरीकर जीवन-यापन के साधन जुटाती है जिससे कि उसका पति स्वतंत्र रूपसे अपनी यात्रा जारी रख सके। प्रमोदके पुरुष-अहंको यह बात कहीं खलती रहती है। अन्तमें वह पैसा पानेके लिए नेताजीके चुनाव-प्रचारका संचालक बन जाता है। नेताजी का अपना कोई चरित्र नहीं। पहलेभी दो-दो बार चुनाव हार चुके हैं। किन्तु इस बार प्रमोदके प्रयाससे वे चुनाव जीत लेते हैं। पैसेके लिए प्रमोदने अपने आदर्शोंको भुला अवश्य दिया और एक धूर्त्त व्यक्तिको देशभक्त, सच्चा जन-सेवक और जन-प्रतिनिधि अवश्य सिद्ध कर जनताके विश्वासको उनके पक्षमें खींच लिया किन्तु वह अपने इस कार्यसे भीतरसे टूटता चला जा रहा है। भीतरी दबावके कारण वह मानसिक संतुलन खोकर अग्निखण्डकी तरह जल रहा है।

चुनाव जीतनेके पश्चात् नेताजी मन्त्री पद पानेकी जोड़गाँठमें लगते हैं। उनका प्रतिद्वन्द्वी एक पुराना जन-सेवक है जिसको गिरानेके लिए उसकी छविको विकृत करना जरूरी है। इसके लिए नेताजी रुचिको प्रलोभन देकर खींचना चाहते हैं। वे आश्वासन देते हैं कि यदि रुचि उनके प्रतिद्वन्द्वीपर लांछन लगाकर मन्त्री बननेमें उनकी सहायता करे तो वे मन्त्री पद पातेही प्रमोदको कहीं 'फिट' कर देंगे। नेताजीके सही चरित्रसे अवगत होने से रुचि उनके छलावेमें नहीं आती बलिक प्रमोदके भाषणों से गुमराह हुई जनताको भी वह वास्तविकताकी जानकारी देती है। अन्तमें रुचिकी प्रेरणासे सब प्रण करते हैं कि वे अपनी मानसिक स्वतंत्रताको बेचकर प्रमोदकी भाँति आत्म-विरोधकी ज्वालामें खण्ड-खण्ड होकर नहीं जलेंगे।

'अग्निखण्ड' का कथ्य यही है कि हम खोखले नारों और झूठे आश्वासनोंसे सावधान रहें तथा आन्दोलनकी भीड़-मनोवृत्तिको भी भ्रामक समझ उससे बचें। हम अपने दिमाग, वाणी और श्रमको दूसरोंके स्वार्थोंके लिए गिरवी नहीं रखेंगे तभी हम अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा कर सकेंगे। नाटकका सन्देश मुख्यत: युवा पीढ़ीके लिए है। प्रकारान्तरसे नाटकमें राष्ट्रको क्षीण करनेवाली शक्तियोंकी भी तलाश विद्यमान है।

नाटककारने प्रभाव-वृद्धि तथा प्रस्तुतिके लिए नाटकीय युक्तियोंके सहारेभी लिये हैं। प्रथम अंकमें फ्लैश बैक पद्धतिसे रुचि और प्रमोदके सम्बन्धोंके विकासको दिखाया गया है। दूसरे अंकके प्रारम्भमें घटनाओंके विकासकी सूचना पात्र एक-एक कर आगे बढ़कर देते हैं। इससे अतीतके कथा-सूत्र जुड़ हैं। प्रमोदके आन्तरिक उद्वेलनको अधिक मार्मिकता प्रदान करनेके लिए उपहास की हँसीके साथ नेताजी उपस्थित होते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म मानसिक उद्वेलनको स्थूल वृत्तियोंके नैकट्यमें तीव्रता प्रदान की गयी है।

नाटकमें दो अंक हैं। पहला अंक मंथर गति लिये हुए हैं। उसमें परिवेशकी व्याख्या अधिक है। दूसरे अंक में त्वरित वेगके साथ सब-कुछ घटता चलता है। दूसरा अंक आवेगभी लिये है और उसमें सूक्ष्मतर धरातलपर नायककी मानसिक उथल-पुथलभी प्रस्तुत हुई है। इस प्रकार प्रभावकी दृष्टिसे नाटककारने निरन्तर विकासकी षद्धतिको अपनाया है।

मंचनके विचारसे नाटकमें कठिनाई उत्पन्न करनेवाला प्रसंग कदाचित्‌ही कोई हो। सामयिक प्रश्नोंको उठाने वाले नाटकको अभिनेय होनाही चाहिये। हमारे विचारसे अभिनय प्रेमीजन इस नाटकका स्वागत करेंगे।

☐ **भानुदेव शुक्ल**

नवरंग

सम्पादक : सत्येन्द्र तनेजा; प्रकाशक : हरियाणा साहित्य अकादमी, १५६३, सेक्टर १८ डी, चण्डीगढ़। पृष्ठ : २३६; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

समीक्ष्य कृति हरियाणा साहित्य अकादमीकी ओरसे हरियाणा प्रदेशके ख्यात एवं नवोदित नाटककारोंके एकांकियोंका सत्येन्द्र तनेजा द्वारा संपादित संग्रह है। इसमें बारह नाटककारोंके बारह छोटे-बड़े एकांकी संगृहीत हैं। विष्णुप्रभाकर, जयनाथ नलिन और हरि मेहता जैसे सुपरिचित नाटककारोंकी रचनाएँ भी हैं, रूपनारायण शर्मा कृष्ण मानव जैसे नवोदित नाटककारभी जिनके एकाध नाटक अबतक सामने आ चुके हैं और सुरेन्द्रनाथ सक्सेना, अमृतलाल मदान, कँवलनयन कपूर, मनमोहन गुप्त, जमनादास, हेमराज निर्मम, रमेश गुप्त, जैसे नये नाटककारभी जिन्होंने अभी नाटक-रंगमंच जगत्‌में कोई पह[चान] नहीं बनायी है। संग्रहके प्रारम्भमें सत्येन्द्र तनेजा द्वा[रा] प्रस्तुत ग्यारह पृष्ठोंका सम्पादकीय है जिसमें एक समीक्[षक] के रूपमें तनेजाने संकलित एकांकियोंपर अपनी संक्षि[प्त] टिप्पणी और निष्पक्ष राय प्रस्तुत की है। इस संग्रहकी समीक्षा करते हुए इस समीक्षकको भी लगभग वही [सब] बातें दुहरानी पड़ेंगी। इस चर्वित-चर्वणसे बचते हु[ए] संक्षेपमें कुछ बातें की जा सकती हैं।

किसी सम्पादित संग्रहमें सर्वप्रथम विवेच्य है [कि] सम्पादकीय दृष्टि जिस दृष्टिको मूर्त्तता प्रदान करने[के] लिए अभियोजन प्रस्तुत किया जाता है। यह एकांकी संग्रह सम्पादककी किसी निजी दृष्टिको आकार देने[के] लिए प्रस्तुत नही किया गया है। अकादमीकी एक योजना के तहत प्रदेशके नाटककारोंमें कुछको चुनकर प्रतिनिधित्व देना था। स्पष्ट है कि इस स्थितिमें सम्पादकको कार्य तंग घेरेमें काम करना था और इसी कारण संग्रहके अधिकांश एकांकी शैली, शिल्प अथवा कथ्य आदि कि[सी] दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण नहीं लगते और न इस संग्रहको देख कर कोई ऐसा निर्णय लिया जा सकता है कि हिन्दी नाटक और रंगमंच (और उनसे सम्बद्ध किसी अध्ययन) के संदर्भमें इस संग्रहकी कोई विशिष्ट उपलब्धिभी है। लेकिन इस संग्रहके एकांकियोंसे हरियाणाके उस परिवे[श] की कल्पना की जा सकती है जिसके स्पंदनोंको इस संग्रह के अनेक एकांकियोंमें अभिव्यक्ति मिली है। अधिकतर नाटककार ग्रामीण अथवा कस्बाई जीवनसे अधिक संपृक्त रहे हैं इसलिए यदि रचनाओंमें महानगरीय और अभि[जात्य] जात्य संस्कारके प्रभाव कम हैं और सहजता अधिक है तो आश्चर्य नहीं और इस बातपर भी आश्चर्य नहीं हो[ना] कि नाटककार चाहे देशके जिसभी कोनेसे सामने आ[या] हो उसकी रचनाओंमें देशमें व्याप्त शोषण, भ्रष्टाचार, अराजकताकी स्थिति, व्यवस्थाकी विसंगतियां और इन सभी विषमताओंसे उत्पन्न हो गयी जीवनकी मूल्यहीनता की स्थितिका चित्रण समान रूपसे मिलता है। उदाहरण के लिए संग्रहके जनता और चुहिया, जलते प्रश्न, पु[ल] टूट गया, जहरीला पेड़, आदि एकांकी देखे जा सकते हैं जिनमें क्रमशः व्यवस्थाकी निरंकुशताकी प्रवृत्ति, पूँजीपति और नेताओंकी साँठ-गाँठसे चलनेवाला भ्रष्टाचार, व्य[क्ति]क्तिगत (ठीकेदार) स्वार्थ हेतु नौकरशाहीकी मिलीभगत से व्यापक जनजीवनको संकटमें डाल देनेकी दुष्टतापूर्ण

मूल्यहीन प्रवृत्ति, दफ्तरी बाबूकी हरामखोरी और रिश्वत-खोरीके जरिए सरकारी दफ्तरोंकी मिटती जा रही निष्ठा मूल कथ्य बन पड़े हैं। सारे विषय ऐसे हैं जो केवल हरियाणातक सीमित नहीं, जो पूरे देशका संकट है, हरियाणा का भी। इसलिए यह संग्रह प्रकारान्तरसे यही सिद्ध करता है कि हर जगह स्थिति एक है अतः विषयको गम्भीरतापूर्वक लिया जाना चाहिये।

जैसाकि स्पष्ट हो चुका है, अव्वल तो इस संग्रहके पीछे सम्पादककी कोई दृष्टि काम नहीं करती रही है, और सांस्थानिक 'दृष्टि' को सामने रखनेके कारण वह 'दृष्टि' सम्पादककी नहीं मानी जायेगी; फिरभी अगर वह दृष्टि मान ली जाये तो स्पष्टतः वह संकीर्ण दृष्टि है। अतः आलेखोंकी पड़ताल इस दृष्टिसे नहीं की जा सकती कि संकलित एकांकी किस सीमातक सम्पादककी दृष्टिको पोषण, विस्तार, और अभिव्यक्ति देनेमें सफल रहे हैं। केवल यही किया जा सकता है कि संकलित रचनाओंके आधारपर आलेख और आलेखकारपर संक्षिप्त समीक्षकीय अभिमत व्यक्त किया जाये।

इन दिनों एक दृश्यीय नाटकही अधिक लिखे जा रहे हैं जिसके पीछे रंगमंचीय सुविधाकी मूल दृष्टि काम करती है। ऐसी स्थितिमें अगर एकांकी नाटकोंमें अनेक दृश्यबंध हों तो वे आजके लिए कितने उपयोगी साबित होंगे? रूपनारायण शर्माके एकांकी 'जहरीला पेड़' में छैः दृश्य और दो कार्यस्थलके दृश्यबंध है, सुरेन्द्र सक्सेनाके 'जलते प्रश्न' में दो कार्यस्थलके दृश्यबन्ध हैं और ग्यारह दृश्य हैं। आजके तकनीकी रंगशिल्पसे दृश्यबन्धकी समस्या का हल हो जाये यह दूसरी बात है पर एक छोटे-से एकांकीमें ग्यारह बार प्रकाश द्वाराही दृश्य परिवर्तन दिखलाकर प्रभावान्विति बनाये रखनेमें कहाँतक सफल हुआ जा सकता है! दस-पंद्रह मिनटमें खेला जानेवाला एकांकी 'प्रतिशोध' दो कार्य स्थल और चार दृश्योंवाला लगभग फिल्मी अन्दाजका एकांकी है। कृष्ण मानवका 'नाटककार' वस्तुतः रेडियो एकांकी है, तो विष्णु प्रभाकरका 'सुनन्दा' शरतके उपन्यासपर आधारित एकांकी। कँवलनयन कपूरका 'जनता और चुहिया' शैली-शिल्पकी नवीनताकी दृष्टि रखता है और कथ्यकी दृष्टिसे भी प्रभावशाली ठहरता है। सम्पादकने यदि इस एकांकीको संग्रहकी सर्वश्रेष्ठ रचना स्वीकार किया है तो असंगत नहीं। संग्रहके अन्य एकांकी यथा जमनादासके 'पहचान' में पौराणिक चरित्र नारदका हास्य-व्यंग्य और विद्रूपके लिए किया गया प्रयोग, अमृतलालके 'छुपन छुपायी' में परिवारमें बच्चोंकी स्थितिका सूक्ष्मांकन, रमेश गुप्तके प्रतिशोधमें वस्तु-विधानका संगठन उल्लेखनीय विशेषताएं जरूर हैं पर अन्यथा सभी एकांकी साधारण हैं। नये-पुराने सभी ठौरके लेखकोंमें वस्तुतः कमलनयन कपूरपर ही आ कर दृष्टि ठहरती है, संग्रहकी अन्य रचनाएं उस स्तरका स्पर्श नहीं कर पातीं।

हरियाणाके नाट्य लेखनका यह समसामयिक प्रतिनिधित्व बहुत आश्वस्त नहीं करता और न हरियाणाके नाट्य वैभवका सम्यक् निदर्शनही प्रस्तुत करता है। सूची के कई नाटककार हिन्दी नाट्य लेखनमें समादृत स्थान रखते हैं पर उनकी संकलित रचनाओंसे उस प्रौढ़िका रंचमात्रभी अहसास नहीं मिलता। इन सारी सीमाओंको बस एक बात कहकर टाल दिया जा सकता है कि सम्पादक बेचारा क्या कर सकता था—जो सामग्री मिली उसमेंसे छाँट-छूटकर अकादमीके लिए एक संकलन तैयार कर दिया। संकलनके प्रकाशनपर आयी लागत और उसे तैयार करनेमें लगे परिश्रमसे अधिक सार्थक रचनाएं तैयार हो सकती थीं यदि उस दृष्टिसे सोचा जाता।

—डॉ. नरनारायण राय

मत-अभिमत

इस स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कर सकती है, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

वैदिक अध्ययन

वेदस्य व्यावहारिकत्वम्

लेखिका : डॉ. ज्योत्स्ना; प्रकाशक : लेखिका, सढौरा (अम्बाला) । पृष्ठ : २२+२४४; डिमा. ८१ (वि. सं. २०३८); मूल्य : ७५.०० रु. ।

यद्यपि मुख पृष्ठपर इस बातका उल्लेख नहीं है, तथापि लेखिकाके प्रास्ताविकम् (प्रस्तावना) से पता चलता है कि यह पुस्तक मूल रूपमें विद्यावारिधि (पी. एच. डी) उपाधिके लिए राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान द्वारा स्वीकृत उनका शोध-प्रबन्ध है।

समीक्ष्य पुस्तक दस भागोंमें विभाजित है। प्रथम भागको 'उपोद्घात' का नाम दिया गया हैं। इसमें वेद सम्बन्धी सामान्य चर्चा यथा वेद शब्दका अर्थ, वेदका परिमाण, वेदका आविर्भाव, वेदोंका अपौरुषेयत्व तथा वेदोंमें इतिहासपर विचार सम्मिलित हैं। विद्वत्तापूर्वक तर्कके आधारपर वेदमें आये तथाकथित इतिहासों या ऐतिहासिक नामोंकी विवेचना करके उनके वास्तविक प्रकृति सम्बन्धी अर्थ स्पष्ट किये गये है।

इससे आगेके सात भागोंको अधिकरण कहा गया है। इनमेंसे प्रथम अधिकरण आभ्युदयिक अधिकरण है जिसमें आर्थिक दृष्टिसे वैदिक विचार प्रस्तुत किये हैं और अर्थोपार्जनके विभिन्न साधनोंका विवेचन किया गया है। द्वितीय 'आरोग्याधिकरण' में शरीर-रचना, रोग-निदान, रोगोंके नाम और उनकी चिकित्साके वेदनिर्दिष्ट उपायों पर प्रकाश डाला गया है। तृतीय अधिकरण शिक्षासे सम्बद्ध है। इसमें शिक्षाके पूर्ण दर्शन और शिक्षाकी वेदोक्त व्यवस्थाका विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ अधिकरण वेदके वैज्ञानिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन है। इसमें जीव-विज्ञान, प्रकृति-विज्ञान, परमेश्वर-विज्ञान, सृष्टि-विज्ञान, विभिन्न लोकोंके, ग्रह-नक्षत्रोंके परिभ्रमण, आकर्षण आदिसे सम्बद्ध नक्षत्र-विज्ञान, अग्नि-विज्ञान, वायु-विज्ञान, शब्द-विज्ञान, दूर-संचार-विज्ञान, सूर्य-विज्ञान, गणित-विज्ञान और यान-विज्ञान विषयोंका समावेश है। पंचम अधिकरणका विषय समाज-व्यवस्था है। तदन्तर्गत वर्ण, आश्रम, विवाह,सन्तान और परिवारपर वेद सम्बन्धी विचारोंकी समीक्षा की गयी है। षष्ठ अधिकरण राजनीतिक अधिकरण है। इसके शासन और व्यवहार-दर्शन, ये दो उपविभाजन हैं। व्यवहारका क्षेत्र व्यापक है जिसके अन्तर्गत न केवल न्याय-व्यवस्था, अपितु मित्र बनाना, कण्टकशोधन, विदेश-नीति, युद्ध-नीति आदि विषयभी विवेचित हैं। इस प्रसंगमें व्यभिचारी, परदाराभिगामी आदि व्यक्तियोंका तथा पुंश्चली स्त्रियोंका राजा द्वारा वेदोल्लिखित वन्ध्यकरण रूप-दण्ड विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। अन्तिम अधिकरणमें आध्यात्मिक ज्ञानका विश्लेषण किया गया है। सर्वप्रथम दुःखोंके प्रकार और उनके अज्ञान क्रोध, काम आदि कारण बताये गये हैं। तदन्तर उन दुःखोंके उपशमन हेतु यज्ञ-यागोंका अनुष्ठान निर्दिष्ट है। अधिकरणके अन्तिम भागमें ईश्वर सम्बन्धी विचार है और उसकी उपासनाकी प्रेरणा दी गयी हैं।

इन अधिकरणोंके पश्चात् पुस्तकका नवम् भाग उपसंहारात्मक है। इसमें पूर्वोक्त सभी भागोंका सार-संक्षेप एक-एक करके प्रस्तुत किया गया है। इसके द्वारा पाठकको लेखिकाके प्रत्येक भाग सम्बन्धी निष्कर्षोंका पृथक्-पृथक् ज्ञान हो जाता है। अन्तिम भाग परिशिष्टात्मक है। प्रथम परिशिष्टमें ग्रन्थ-सूची है, द्वितीय परिशिष्ट पुस्तकान्तर्गत नामोंकी सूची है और तृतीय परिशिष्ट विशिष्ट पदोंकी सूची है। शोधकी दृष्टिसे इन तीनों सूचियोंका विशेष महत्त्व है।

प्रस्तुत पुस्तक वेदान्तर्गत सभी विषयोंको एक साथ रखनेका प्रथम एवं स्तुत्य प्रयास है। पुस्तकका महत्त्व इसलिए औरभी बढ़ जाता है क्योंकि इसकी भाषा संस्कृत है। इस प्रकार यह देश-विदेशके सभी संस्कृताध्येताओंके लिए सुगम है।

महर्षि दयानन्दने प्रथम[illegible] ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिकामें और अपने वेदभाष्यमें अनेक स्थानोंपर वेदोक्त विभिन्न विद्याओं और ज्ञान-विज्ञानका निर्देश किया था। वस्तुतः वेद इतना विशाल ज्ञान-महोदधि है जिसके आधार पर एक-एक विद्या या ज्ञान-विज्ञानकी एक-एक शाखापर एक-एक विशालकाय ग्रन्थकी रचना हो सकती है; परन्तु विदुषी लेखिकाने उन सब विषयोंको एकसाथ समेटकर गागरमें सागर भरनेका कार्य किया है। इसके द्वारा पाठक को वेदोक्त विषयोंकी विविधता, व्यापकता और गाम्भीर्य का संक्षेपमें बोध हो जाता है।

डॉ. ज्योत्स्नाने केवल विविध विषयोंका परिगणन-मात्र नहीं किया है, अपितु उन विषयोंका सम्यक् आधार वेदमें बताकर निरुक्त, ब्राह्मण-ग्रन्थों, दर्शनसूत्रों, स्मृति-ग्रन्थों आदिके प्रमाण देकर उन्हें सिद्ध किया है और प्रामाणिक बनाया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ शोधके सिद्धान्तोंपर आधारित होनेके कारण अत्यधिक प्रामाणिक हो गया है। उदाहरणार्थ आकाशवाणी और दूरदर्शनके प्रसंगमें प्रसारणके मूल सिद्धान्त बताते हुए सर्वप्रथम विदुषी लेखिकाने ब्राह्मणों आदिके आधारपर सिद्ध किया है कि मरुत् वास्तवमें रश्मियां अथवा ध्वनि-तरंगें एवं प्रकाश-तरंगें हैं। फिर उनकी सात संख्या वैदिक मन्त्रोंके आधारपर प्रमाणित की है। इन सातमें से भी प्रत्येकके सात-सात सूक्ष्म भेद होनेसे मरुतोंके सात-सातके सात गण सिद्ध किये गये हैं। पृश्निको निरुक्तमें अन्तरिक्ष बताया गया है और रुद्रको अग्नि। इन्हें वैदिक मन्त्रोंके उद्धरणों द्वारा पुष्ट करके यह बताया गया है कि मरुतों अथवा तरंगोंको 'पृश्निमातरः' इसलिए कहा गया है, क्योंकि ये अन्तरिक्षमें व्याप्त होती हैं; इसी प्रकार इन्हें 'रुद्रस्य सूनवः' (रुद्रके पुत्र) इसलिए कहा गया है क्योंकि इनकी उत्पत्ति अग्नि अथवा सूर्य अथवा विद्युत्से होती है और विद्युत् तत्त्व इनमें प्रमुख रूपसे विद्यमान है क्योंकि उसके द्वाराही इनका प्रसारण और निग्रहण होता है। इसी आधारपर लेखिकाने वेदमें इनकी मनुष्योंसे तुलना की है या इनके मनुष्य अभिधानकी सार्थकता बतायी है। लेखिका का कहना है कि ये तरंगें मनुष्यों या मनुष्य समान हैं क्योंकि विद्युत्में आविष्ट मरुतोंमें या तरंगोंमें मनुष्यों जैसा आवेश प्रतीत होता है। जैसे मनुष्य सन्देश वहन करते हैं, ध्वनि अभिव्यक्त करते हैं और आकृतियोंको चित्रित करते हैं, उसी प्रकार ये तरंगेंभी दूरसंचार, आकाशवाणी और दूरदर्शन यन्त्रोंसे कार्य करती हैं। वेद-मन्त्रों द्वारा इन तरंगोंकी अपरिमित शक्ति प्रमाणित करके इनका ध्वनि तथा रूपके साथ सम्बन्ध बताया गया है।

इस प्रकार पुस्तकमें सर्वत्र जटिलतम विषयोंको ब्राह्मण-ग्रन्थों, निरुक्तादि शास्त्रों द्वारा पुष्ट वेदमन्त्रों द्वारा प्रमाणित किया गया है और सफलतापूर्वक यह सिद्ध किया गया है कि वेद सभी उत्कृष्ट विद्याओंका आकर है। केवल सूक्ष्म दृष्टि होनी चाहिये। निस्सन्देह ऐसे विषयों में विद्वानों द्वारा विवाद उठाये जा सकते हैं। परन्तु प्रमाण सहित प्रस्तुतीकरण द्वारा बहुत-सी आशंकाओंका उन्मूलन स्वयंही हो जाता है। दूसरी ओर विवाद होना या उत्पन्न करना शोधकी एक महती उपलब्धि है क्योंकि इससे चिन्तन और ज्ञानका विस्तार होता है। वेदोंमें विज्ञानके विषयमें बहुत कुछ कहा-सुना जाता है, परन्तु उसे तर्क-पूर्वक प्रमाणित करके विद्वानोंके सम्मुख रखनेका साहस विरलोंमें होता है। डा. ज्योत्स्नाने इस विषयपर लेखनी उठाकर वेदाध्ययनके एक महत्त्वपूर्ण मार्गमें पदार्पण किया है।

पुस्तककी भाषा संस्कृत है परन्तु उसमें कहीं पाण्डि-त्यप्रदर्शनकी गन्ध नहीं है। अत्यन्त सरल समासरहित, आडम्बरशून्य भाषाको सामान्य संस्कृत जाननेवाला पाठक भी समझ सकता है। इस प्रकार यह पुस्तक अप्रत्यक्ष रूपसे संस्कृतके प्रचारमें भी सहायक होगी। संस्कृतज्ञोंके लिए एक प्रमुख आकर्षण यहभी है कि उपोद्घातसे लेकर आध्यात्मिक अधिकरणतक पुस्तकके प्रत्येक भागके अन्तमें उसका सार सुललित संस्कृत-पद्योंमें प्रस्तुत किया गया है। उदाहरणार्थ सामाजिक अधिकरणका सार निम्नलिखित दो पद्योंमें दिया गया है :

> सामाजिकेऽस्मिन्नधिकारदेशे
> या ब्राह्मणादिर्विविधा अभिख्याः।
> तासां समीक्षा गुणकर्मणा वा
> जात्याऽथवा किं प्रतिपादिता वै॥
> ततो व्यवस्था चतुराश्रमाणां
> गुह्यो विवाहस्य पुनर्विचारः।
> पुत्रोपलब्धिः किल सन्नियामः
> कुटुम्बवृत्तं विधिवत् प्रदिष्टम्॥

इस सामाजिक अधिकरणमें ब्राह्मणादि वर्णोंके जो विविध नाम हैं, वे गुण, कर्मके आधारपर हैं या जातिके आधारपर हैं, इसकी समीक्षा की गयी है [यहाँ पूर्ण विवे-चनके पश्चात् इतिहासके उदाहरण देकर लेखिकाने तर्क-

पूर्वक सिद्ध किया है कि वेदोक्त वर्णव्यवस्था गुणकर्मपर आधारित है] इसके पश्चात् चारों आश्रमोंकी व्यवस्था बतायी गयी है। उनमेंसे गृहस्थाश्रमके अन्तर्गत वेदानुसार विवाह-पद्धति तथा विवाहके नियमोंपर विचार किया गया है। यहींपर पुत्रकी लालसा और परिवार नियोजन तथा पारिवारिक सम्बन्धों आदिपर विधिवत् विचार किया गया है।

कहीं-कहीं भाषामें व्याकरण-सम्बन्धी कुछ भूलें हो गयी हैं, जिनकी ओर ध्यान आकृष्ट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। उदाहरणार्थ प्रास्ताविकम्‌में 'स्वतन्त्रप्रबन्धा अपि व्यलेखि'में क्रियामें बहुवचनका रूप 'व्यलेखिषत' होना चाहिये। यहींपर 'यथाशक्तिः' के स्थानपर 'यथाशक्ति' और 'अर्थेण' के स्थानपर 'अर्थेन' होना चाहिये। पृ. ११८ पर पुल्लिग रश्मि शब्दका प्रयोग स्त्रीलिंगमें है—'रश्मयः···वर्णवत्यो भवन्ति' और एतासाम्'। इसी स्थलपर 'सप्तसु उपविभागेषु'की सन्धि 'सप्तस्वोपविभागेषु' की गयी है, शुद्ध सन्धि यह होगी—'सप्तसूपविभागेषु'। पृ. १२३ पर 'सुधन्वा' शब्दका प्रयोग बहुवचनके रूपमें किया गया है: यद्यपि यहां शुद्ध रूप 'सुधन्वानः' होगा।

ग्रन्थसूचीमें पुस्तकके विषयके आदि उपदेष्टा महर्षि दयानन्दकी 'ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका'के उल्लेखका अभाव बहुत खलता है।

परन्तु ये भूलें मनुष्यमात्रके लिए स्वाभाविक हैं, अतः गौण एवं उपेक्षणीय हैं। वस्तुतः डॉ. ज्योत्स्नाकी यह कृति उनके अपने लिए श्रेयस्करी है और वैदिक अध्ययन के क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण योगदान है। इससे आधुनिक वैदिक शोधमें एक नयी दिशाका सूत्रपात हुआ है। मुझे विश्वास है कि इससे प्रेरणा लेकर वैदिक शोधकर्ता इस पुस्तकके एक-एक विषयका विस्तृत अध्ययन करेंगे।

▭ डॉ. कृष्णलाल

मत अभिमत

▭ साधुवाद

आज जबकि हिन्दीमें आलोचनाका स्तर एकांगी और पक्षपातपूर्णहो गया है, आपके द्वारा सम्पादित 'प्रकर' में श्री बांदिवडेकर द्वारा अपने उपन्यास 'खंजन नयन' ('प्रकर', जनवरी '८२) तथा डॉ. मूलचन्द्र गौतम के द्वारा की गयी 'गदरके फूल' ('प्रकर', जून '८२) की आलोचना पढ़कर सन्तोष हुआ। दोनों विद्वान् आलोचकों ने पुस्तकोंकी समीक्षा ईमानदारीसे की है, भलेही कहीं-कहीं मेरा मत इनसे अलग हो। कृपया दोनों विद्वान् आलोचकों को मेरी ओरसे बधाई दें। हिन्दीमें अभी उपन्यास कहानियोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंकी पुस्तकोंका आलोचना स्तर तो औरभी अधिक गिरा हुआ है, इसलिए डॉ. गौतम की समीक्षापर विशेष रूपसे उन्हें साधुवाद देता हूँ।

—अमृतलाल नागर, चौक, लखनऊ-२२६-००३,

▭ असरहीन आलोचना

आपके सम्पादकत्वमें 'प्रकर' एक जरूरी विचार-विवेककी पत्रिका बन चुकी है। अभी ज्यादातर अध्यापक ही आपके आलोचक हैं। उस पेशेमें शुक्लजी और डॉ. रामविलास शर्माभी रहे हैं। उनकी विशेषता, रचनात्मक मूल्योंकी व्याख्या करना और सृजनशील गतिरोधको तोड़ता रहा है। ध्यान दिला रहा हूँ कि डॉ. कमलकुमार की समीक्षा ('नदीकी बांकपर छाया', 'प्रकर', जून '८२) से अज्ञेयकी या डॉ. विवेकी रायकी समझदारीसे मुद्राराक्षस ('शोक संवाद', 'प्रकर,' जून '८२) की कला चेतनापर कोई असर नहीं पड़ेगा।

—विष्णुचन्द्र शर्मा, सादतपुर कालोनी, डा. घ. गोकुलपुरी, दिल्ली-११००६४,
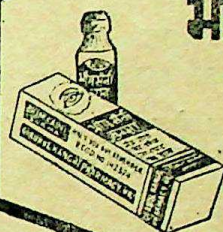
आगामी अंकमें

☐ **इतने पास अपने [कवि : शमशेर बहादुर सिंह]**; इस संग्रहमें कविकी आधुनिक कविताका एक निजी वातावरण है। बेखबर सपनोंमें रहनेवाला शमशेरका कवि यहां जीवनकी स्वच्छ और निर्मल कविताकी रचना करता है और उसके अनुकूल उनका आधुनिक व्यक्तित्वभी वयस्य आत्मीय है। कवि शमशेरकी प्रौढ़ आत्मीयताकी यहां दो सतह हैं, एक संत कविका धरातल है स्वच्छ और निर्मल; दूसरा प्रेमी कविका आत्मीय परिवार है, एक सम्पूर्ण समर्पणकी कोमलतासे आश्वस्त। शमशेरके सन्त और प्रेमी कवि-व्यक्तित्वोंमें बहुत दूरी नजर नहीं आती। कहीं-कहीं कविताके परिदृश्यमें उदास मूक आईना उभर आता है, उस आइनेमें सन्त कवि मौतके पावन अंशको महसूस करता है। इस लोक आइनेमें जीवन एक मंच है और शमशेर तटस्थ अभिनेता। पाठक इन कविताओंके दृश्य लोकमें कभी-कभी शमशेरके दुःख और दर्दको देखता-परखता है। समीक्षक हैं: **विष्णुचन्द्र शर्मा**

☐ **अो अन्ध गली [उड़िया कहानी संग्रह : कहानीकार-अखिलमोहन पट्टनायक]** साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत इस संकलनमें सामाजिक यथार्थ, जटिल मनोविज्ञान, अलगाव तथा युगबोधकी कहानियां हैं। संग्रहकी कहानियों का परिचय तथा मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए समीक्षकने इसे 'सर्वश्रेष्ठ कहानी संग्रह' नहीं कहा, परन्तु उसका विचार है कि प्रमुख साहित्य-सेवियोंको प्रोत्साहन देनेकी नीतिके अन्तर्गत इस पुरस्कारका औचित्य है। सामान्यतः भारतीय साहित्यके तुलनात्मक अध्ययनकी दृष्टिसे संकलन उपयोगी है। परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं: डॉ. **तारिणीचरण दास चिदानन्द।**

☐ **कानुरु हेग्गडिति [कानरू गांवकी चौधरानी; कन्नड़ उपन्यासकार : के. व्ही. पुट्टप्प]** : कन्नड़के सुप्रसिद्ध और ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त 'कुवेम्पु' का यह प्रथम उपन्यास है। मूल भाषामें यह कृति लगभग आधी शती पूर्व की रचना है। उपन्यासमें धरतीकी विशिष्ट गन्ध छलक रही है। समाजमें फैली ज्योतिषीके प्रति निष्ठा, भूत-प्रेतोंमें अडिग विश्वास, संयुक्त परिवारकी टूटन, दलित और सर्वहारा समाजका परम्परागत शोषण, भयंकर गरीबी, संत्रास आदिके यथार्थ चित्र सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। यह अनायासही समग्र भारतकी एक अविच्छिन्न मानसिकताका परिचय प्रस्तुत करता है। लेखककी शैलीसे अनायास हिन्दीके प्रेमचन्द और बंगलाके ताराचन्द वंद्योपाध्यायके उपन्यास 'गणदेवता' की याद ताजा हो जाती है, फिरभी इनमें भेदक तत्त्वभी उतनेही स्पष्ट स्वयंसिद्ध हैं। समीक्षक हैं : **कन्हैयालाल ओझा।**

☐ **विश्वासघात [समसामयिक राजनीति; लेखक : लालकृष्ण अडवानी]**; इस पुस्तकमें जनता पार्टीके निर्माण, जनता सरकारके कार्यों व जनता पार्टीके टूटनेका संक्षिप्त इतिहास बहुत सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त दल-बदल विरोधी विधेयक, चुनाव प्रणाली, राष्ट्रपति द्वारा लोकसभाके भंगके निर्णयका औचित्य-अनौचित्य, राष्ट्रपतिपर महाभियोग चलानेकी वैधानिक स्थिति, देशमें साम्प्रदायिक कलहके कारणों, मंत्रियोंके लिए अपेक्षित आचार संहिता, श्रीमती गांधीका व्यक्तित्व, भारतीय पत्रकारकी मनःस्थिति आदि अनेक सामाजिक विषयोंपर भारतीय जनताके पार्टीके महत्त्वपूर्ण व्यक्तिके विचार हैं। समीक्षक है : **डॉ. प्रशान्तकुमार।**

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, २५७४. रघुबरपुरा, गांधीनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित और ... से प्रकाशित।

वर्ष : १४ अंक : १०

कार्तिक : २०३९ वि. अक्तूबर १९८२ (ई.)

काव्य-संकलन

इतने पास अपने

जीवनकी स्वच्छ और निर्मल कविताकी रचना.

कवि : शमशेर समीक्षक : विष्णुचन्द्र शर्मा.

पुरस्कृत ओड़िया साहित्य

ओ अन्ध गली

सामाजिक यथार्थ, जटिल मनोविज्ञान, अलगाव तथा युगबोधकी कहानियां.

कहानीकार : अखिलमोहन पट्टनायक समीक्षक : डॉ. तारिणीचरण दास

आदान प्रदान

कानूरू हेग्गडिति

आधी शती पूर्वके कानूरु गांवकी चौधरानी तथा कन्नड़ ग्रामीण समाजका औपन्यासिक चित्र.

उपन्यासकार : कुवेम्पु समीक्षक : कन्हैयालाल ओझा

सामयिक राजनीति

विश्वासघात

जनता पार्टीके निर्माण जनता सरकारके कार्यों एवं जनता पार्टीके विघटनका विवरण.

लेखक : लालकृष्ण अडवानी समीक्षक : डॉ. प्रशान्तकुमार

इस अंकमें

वार्षिक शुल्क : २५.०० रु. **विदेशोंमें (समुद्री डाक) : ५१.०० रु.**

प्रति अंक : २.५० रु. **आजीवन सदस्यता : ३०१.००**

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७.

वर्ष : १४ अंक : १० अक्तूबर : १९८२ कार्त्तिक : २०३९ (वि.)

लेखक और समाजका संबंध

लेखक और समाजका क्या सम्बन्ध है, यह लम्बे समयसे चिन्तनका विषय बना हुआ है। चिन्तनकी दिशाएं व्यक्तिवादी, समष्टिवादी, अतिशयवादी, क्रान्तिवादी और विघटनवादी हैं। इन परस्पर विपरीत दिशाओंके चिन्तन के कारण उत्पन्न मतभेदों और उनकी चर्चाओंमें लेखक और समाजके सम्बन्धमें से समाज प्रायः लुप्त होजाता है और विचारणीय वस्तु लेखकके सम्बन्धमें ही शेष रह जाती है। यह स्थिति अभी हालमें आयोजित एक विचार-गोष्ठीके उपलब्ध समाचारों और विवरणोंसे उभरकर सामने आयी। लेखकीय विचारगोष्ठियोंमें से 'समाज' के लुप्त हो जानेका अभिप्राय लेखकीय अहं और उसका महत्त्व स्थापित करनेके प्रयत्नमें समाजको अप्रासंगिक और गौण बना देना है, जबकि समाजसे आत्मीयतापूर्ण संबंधों और संवादके कारणही जीवन्त साहित्यकी रचना होती है। साहित्य रचनामें समाजके साथ संबंधोंकी जो सहजता और गहराई होती है, गोष्ठियोंमें उसका व्यतिक्रम क्यों होता है, यह अपने आपमें विचारणीय है।

इस शिथिलताका कारण मात्र कुछ विशिष्ट क्षण, परिवेश अथवा श्रोता समूहको मान लेना अथवा मौखिक चिन्तनक्रमके प्रवाहमें लेखक-विचारकका सामयिक रूपसे अभिभूत हो जानेकी कल्पना करना समस्याका अतिसरली-करण होगा। सामयिक रूपसे उद्भूत प्रतिक्रियाओंकी भी एक अन्तर्धारा होती है जिसका निर्माण दीर्घकालसे अन्तः-बाह्य परिस्थितियोंके संघर्षसे होता रहता है। व्यक्तिगत चेतनाके स्तरोंकी भिन्नताभी इन अन्तर्धाराओं के निर्माणमें और उन्हें प्रभावित करनेमें सहायक होती है। व्यक्तिगत चेतनाके स्तरोंकी चर्चा बहुत जटिल है और वे रचनात्मक और विघटनात्मक प्रवृत्तियोंको किस रूपमें किस सीमातक प्रभावित करती हैं, वह यहां अभीष्ट भी नहीं है परन्तु चेतनात्मक स्तरोंको प्रभावित करने वाली बाह्य परिस्थितियोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि इसी आधारपर लेखककी गरिमा और व्यक्तित्व का निर्धारण किया जाता है।

यह सही है कि समाज और लेखकके संबंधोंकी आत्मीयता और गहराईसे साहित्यका स्तर निर्धारित होता है, परन्तु आजका समाज शासनसे नियन्त्रित है। नियन्त्रण की उग्रता सामान्य रूपसे समाजकी चेतनाको जड़ीभूत कर देती है। जड़ता स्वयं एक यन्त्रणा है। इस यन्त्रणा की तीव्रानुभूतिही संघर्षको आधार प्रदान करती है। यह संघर्ष अपनेही वर्गके साथ होता है क्योंकि उस वर्ग का जड़ीभूत अंश शासकोंसे जुड़ चुका होता है बल्कि यह अंश अपने आपको समाजका एक भाग न मानकर शासकसे तादात्म्य स्थापित कर चुका होता है। इस स्थितिमें साहित्यकी धाराभी दो दिशाओंमें प्रवाहित होने लगती है। एक साहित्य शासकोंकी रुचि और हितोंका प्रतिनिधि बन जाता है और इस साहित्यकी प्रचुरता होती है। परन्तु मानवीय व्यवहारकी विचित्रता यह है कि जड़ीभूत या सुषुप्त समाजकी अन्तश्चेतना इस प्रचुर साहित्यका विरोध कर रही होती है, यहींसे शासन नियंत्रित समाजमें दरार पड़ने लगती है। इसी दरार से विभिन्न विद्रोही धाराओंका उद्भव होता है। इन विद्रोही धाराओंमें से कौन-सी विशेष धारा प्रबल हो उठेगी, यहभी समाज द्वारा अपनी जीवन-यात्रामें निर्मित ऐतिहासिक स्मृतियों और संस्कारोंपर निर्भर करता है।

यहींसे चिन्तनकी विभिन्न दिशाएं फूटती हैं,इन्हींकी गूंज सामान्यतः हमें विचार गोष्ठियों और लेखनोंमें मिलती हैं।

यहींसे विच्छिन्नताके संकटकी आशंका जन्म लेती है। यह विच्छिन्नताही विघटनका रूप ले लेती है। कठोर रूपसे शासन द्वारा नियंत्रित समाजमें यह स्थिति व्यापक रूपसे पायी जाती है। इस संकटके समय बुद्धिजीवियों और साहित्यकारोंके बंटे होनेपर भी ऐसी सामाजिक शक्तियोंके जन्म लेनेकी संभावनाएं होती हैं, यही संभावनाएं साहित्यकी दिशाको भी परिवर्तित करनेके लिए प्रयत्नशील होती हैं। साहित्य अपने परिवेशसे बंधा होता है, परिवेशसे असम्पृक्त साहित्यकी कल्पना सहज नहीं है। स्वयं परिवेशभी परिवर्तित होता रहता है। विशिष्ट बौद्धिक आदर्शवादी और शासन दोनोंही विशिष्ट परिवेशके निर्माणके लिए प्रयत्नशील रहते हैं और इसमें प्रायः सफलभी हो जाते हैं। प्रायः यह निर्मित परिवेश यथार्थसे भिन्न होता है। परन्तु इसकी 'प्रत्यभिज्ञा' आदर्शवादी प्रचार और शासकीय प्रतिबंधारूढ़ धुआंधार प्रचारमें धूमिल हो जाती है। इसलिए इस प्रकारका साहित्य अपनी विश्वसनीयता खो देता है।

यदि इस प्रसंगमें देशके आपात स्थितिके साहित्यका उदाहरण दिया जाये तो देशका मनीषी वर्ग इसका समर्थन करेगा। परन्तु यदि आर्थिक परिवेशके साहित्य, पूंजी-वादी और मार्क्सवादी दोनों प्रकारके साहित्यकी चर्चा की जाये तो इन शिविरोंके बुद्धिवादी इसे चुनौती देनेको सन्नद्ध हो जायेंगे और इस साहित्यकी कलात्मक और शिल्पिक असफलताओंको स्वीकार करनेको स्वीकार करनेको तैयार नहीं होंगे। चिन्तन, विश्लेषण और अनुभवसे इस साहित्यकी जिन विसंगतियोंकी ओर ध्यान खींचा जा चुका है,उसपर भी ध्यान देनेको उत्सुक नहीं होंगे। कुछ इसी प्रकारकी विडम्बना भारतीय साहित्य और लेखकोंकी है। हमारा समाज विभक्त समाज है। शिक्षित वर्ग की आस्था निष्ठाका निर्माण जिस शिक्षा पद्धति और पाठ्क्रमसे हुआ है, इस देशकी मानसिकतासे उसकी संगति नहीं बैठती। इस वर्ग द्वारा रचित साहित्यमें यथार्थकी अपेक्षा अपने बन्द कक्षमें बैठे महान् सर्जकोंकी महान् कल्पनाओंके दर्शन अधिक होते हैं। यह महान् सर्जक 'बहुश्रुत' होता है, इन 'श्रुत' तथ्योंको अपने प्रेरक साहित्यके आदर्शों और समाधानोंका आवरण देकर जब वह प्रस्तुत करता है तो यह साहित्य अपनी 'नवीनता' का आकर्षण लिये होता है और इस कारण कुछ चर्चित होता है,कुछ उछाला जाता है। यह साहित्य अतिशयवाद, विघटनवाद और नारेके रूपमें क्रान्तिवादको जन्म देता है।

शासक और सत्तारूढ़ दलका भी आदर्शका अपना एक आवरण होता है। एकाधिकारवादी (तानाशाही एवं सैनिक प्रकृतिके एकाधिकारवादी भी) तथा लोकतंत्र-वादी दोनोंही समान रूपसे आदर्शका आवरण तैयार करते हैं। वे श्रेय हैं या प्रेय, यह प्रश्न नहीं है। समस्या उनके राजनीतिक प्रयोगकी है, इससे निर्मित मानसिकता के वातावरणमें साहित्य-सर्जनकी है। राजनीतिक स्तर पर जब समानताकी उद्घोषणा होती है, उसे संविधान-बद्ध किया जाता है तो बौद्धिक वर्गको अपनी सफलता पर गर्व हो सकता है,परन्तु शासक या सत्तारूढ़ दलको यह अपने हितोंके अनुकूल नहीं पड़ता। वह इससे बचावके जो मार्ग अपनाता है, सामयिक आवश्यकताको ढाल बनाकर जिन विशेषाधिकारोंकी सृष्टि करता है, समानताके अधिकारको सीमित करता है, उससे सामाजिक विसंगतियोंका जन्म होता है : ये सामाजिक विसंगतियां प्रायः अपनी प्रारभिक अवस्थामें बुद्धिजीवियोंकी पकड़से बाहर रहती हैं, क्योंकि उग्र रूपमें सामने नहीं आतीं। परन्तु वे असंदिग्ध रूपसे विघटनकी आधारभूमि तैयार कर रही होती हैं। हमारे समाजमें जिन उग्र विसंगतियोंकी ओर आज हमारा ध्यान जा रहा है, वे बहुत पहलेही प्रकट होने लगीं थीं। उस समय बुद्धिजीवियोंने इन्हें सामयिक प्रतिक्रिया बताकर इनकी ओर उंगली उठानेवालोंकी भर्त्सना की और साहित्य रचनाकी दृष्टिसे इस प्रकार की विसंगतियां वर्जित क्षेत्र घोषित हो गयीं।

वर्जनाओंकी इस शृंखलाने हमारे साहित्यके व्यापक आधारको कितना प्रभावित किया है और लेखकीय चेतना को कितना कुण्ठित किया है इसका अनुमान हम लेखकोंके व्यवहारसे कर सकते हैं। हमारा लेखक वियतनाम, कम्बोदिया तथा इसी प्रकार अन्यत्र होनेवाले नरसंहारसे विचलित हो उठा। काव्य रचनाकी बाढ़ आ गयी। वैज्ञानिक प्रगतिके कारण संकुचित विश्वकी इन घटनाओंने इस देशके कवियों (तथा अन्य विधाओंके रचनाकारों) के संवेदन-लोकमें उथल-पुथल मचा दी और प्रति-संहारकी मांगसे काव्य-जगतको गुंजा दिया। परन्तु अपनेही पड़ोस में होनेवाले नर-संहारको जिस शान्त चित्तसे ग्रहण किया गया, उससे मानना होगा कि या तो आजके 'संकुचित विश्व' पर दृष्टि रखते-रखते यह निकटस्थ पिसते भू...

कणको न तो देख पाता है न [illegible] है; अथवा बुद्धिजीवियोंके सहयोगसे शासकोंने जिस वर्जना-लोककी सृष्टि की है, वह उससे प्रतिबद्ध है। फ़िलस्तीनी मुक्ति संगठनकी अपने एक राज्यकी मांग का आज हमारा शासक, पत्रकार और लेखक समर्थन करता है, इसलिए कि इजराइल और साम्राज्यवादियोंने उन्हें अपने घरसे उखाड़ दिया है, वह उनके अपने पूर्व क्षेत्रोंमें उनके पुनर्वासकी भी मांग करता है। परन्तु इन मानवीय अधिकारोंकी मांग बंगला देशसे बलात् निष्कासित-निर्वासित एवं प्रताड़ित मानवोंके लिए नहीं कर पाता। क्या लोगोंका अपने क्षेत्रोंमें पुनर्वास संभव नहीं है, क्या उन्हें उत्पीड़न रहित अपने पृथक् राज्यकी मांग का अधिकार नहीं है। राजनीति और साहित्यके बीच विद्यमान स्थूल या सूक्ष्म सीमा रेखाका विस्तार कब किस ओर हो जाता है, इसका निर्णय स्वयं साहित्यिक या लेखक करेगा अथवा शासक या सत्तारूढ़ दल ?

स्थिति यह है शिक्षणकी पृष्ठभूमि, राजनीतिक प्रतिबद्धता, शासन द्वारा आरोपित वर्जनाओंके कारण साहित्यकार, लेखक और समाजके बीच आत्मीयताका अभाव है। इसका स्वयं साहित्यकार और लेखकपर यह प्रभाव है कि वह सामाजिक विच्छिन्नताका शिकार है। वह सामाजिक यथार्थका चित्र प्रस्तुत करनेमें अपने-आपको असमर्थ पा रहा है। उसका यह विचलन जो रचना कर रहा है वह अतिशय-केन्द्रित और विघटन-केन्द्रित है। यदि भारतीय साहित्यकार अपने व्यक्तित्व और गरिमा की स्थापना कर योगस्थ वृत्ति अपनाकर, राजनीतिके आवरणों, मुखौटोंसे हटकर, अलंकरणों-पुरस्कारोंकी उपेक्षाकर, अपने समाज-परिवेशसे जुड़कर यदि कुछ रचना कर सके तो कुछ समय बाद समाजपर उसके प्रभावको वह स्वयंभी अनुभव कर सकेगा है। ▭ ▭

काव्य
संकलन

शमशेरकी स्वच्छ और निर्मल कविता

समीक्षक : विष्णुचन्द्र शर्मा

'इतने पास अपने'[१] में आधुनिक कवि शमशेर बहादुर सिंहकी प्रायः सन् '७० के बादकी कुल ३३ कविताएँ संगृहीत है। इस संग्रहमें शमशेरकी आधुनिक कविताका एक निजी वातावरण है। बेखबर सपनोंमें रहनेवाला शमशेरका कवि, यहाँ जीवनकी स्वच्छ और निर्मल कविता की रचना करता है और उसके अनुकूल उनका आधुनिक व्यक्तित्वभी वयस्य आत्मीय है।

कवि शमशेरकी प्रौढ़ आत्मीयताकी यहाँ दो सतह है। एक संत कविका धरातल है, स्वच्छ और निर्मल। दूसरा प्रेमी कविका आत्मीय परिवार है, एक सम्पूर्ण समर्पणकी कोमलतासे आश्वस्त।

शमशेरके संत और प्रेमी कवि-व्यक्तित्वोंमें बहुत दूरी नजर नहीं आती। इस संकलनका शमशेरका संत कवि सपना देखता है, कलाकारोंकी प्रदर्शनियोंमें हिस्सा लेता है, या पेंटिंग, कला, सौन्दर्यपर अन्तरंग बहस करता है, या गुजरे वक्तके बातचीतके टुकड़ोंको एकान्तमें याद करता है। शमशेरका कवि और चित्रकार इस पूरी प्रक्रिया में एक किस्मकी तटस्थता कायम रखता है। दूरसे देखनेके नाते शमशेरकी कविताका लैण्डस्केप, या आत्मीय जनोंका पॉःट्रिट, स्वच्छ और निर्मल नजर आता है।

कहीं-कहीं कविताके परिदृश्यमें उदास मूक आईना उभर आता है, उस आईनेमें शमशेरका ६० वर्षीय संत

१. **इतने पास अपने**; कवि : शमशेर बहादुरसिंह; प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज,नयी दिल्ली-२। पृष्ठ: ७५; डिमा, ८०; मूल्य : १६.०० रु.।

कवि मौतके पावन आ[illegible] आईनेमें जीवन एक मंच है और शमशेर तटस्थ अभिनेता। पाठक इन कविताओंके दृश्य लोकमें कभी-कभी शमशेर के दुख और दर्दको देखता-परखता है। शमशेर जैसे जान-कर अपने पाठकोंको अपनी मौतकी दूरी और नजदीकीका अनुभव कराते चलते हैं।

कवि शमशेर 'इतने पास अपने' संकलनमें दो दृष्टि-कोणसे कला और मौतकी मानसिकताका अनुभव कराते हैं। यहाँ पाठक, करीबसे शमशेरकी कला और उनकी अपनी मौतकी निकटताका एहसास करता चलता है। मौतका एक दृष्टिकोण पूरबकी भारतीय चिन्तन परम्पराका है। इस दृष्टिकोणमें मौतसे सीधे साक्षात्कार करनेकी संत कवियों की दृष्टि है। मौतका दूसरा दृष्टिकोण दूसरे महायुद्धके बाद यूरोपमें पैदा हुआ था। इस दृष्टिकोणमें मानव नियतिपर आघात पहुँचाती सभ्यताका संकट है निरन्तर मौतकी निकटता, इन्सानके हृदयको कैसे होम कर रही है, इसका विवेचन अस्तित्ववादी दर्शनने किया है।

शमशेरके कला और सौन्दर्यके निजी वातावरणमें दोनों दृष्टिकोण एकसाथ और एकही दृश्यमें आते हैं। 'संसारके चक्केपर हैं' कवितामें शमशेरका दार्शनिक कवि यह देखता है :

संसारके चक्केपर है दो हाथ
दो हाथ पूरब पच्छिम
आँख
दोनों देखतीं एकसाथ
यह एकही दृश्य। (पृ. ३७)

ये आँखें शमशेरके कवि और पेंटरकी है। दोनोंकी नजर पूरबको पच्छिमसे मिलाती है। बदलते एकही संसारमें, दूरियों और नजदीकियोंकी परस्पर विरोधी सभ्यताओंके मर्मकी यह एक आधुनिक जमीन है, जिसके अन्वेषी कवि शमशेर हैं।

शमशेर, सुबह-शामके प्राकृतिक लोकमें, या कला-दीर्घामें, या परिवारमें कहीं रहे, उनका कवि दार्शनिक भूमिकामें अपने अकेलेपनकी सम्पूर्ण समर्पण भावनापर अपनी आँखें टिकाये रहता हैं। शमशेरका ढलती अवस्था के साथका अकेलापन विचित्र लगता है। वे अपने अकेले-पनमें संसारसे तटस्थ आत्मीयताभी जोड़ते हैं और विश्वास सहज उल्लाससे अपने गहराते अकेलेपनपर व्यंग्यभरी हंसीभी (कबीर या निराला-सी) हंसा करते हैं।

गहराते अकेलेपनकी मानसिकतामें कवि शमशेरकी [illegible] जाती है पर उनका कवि और पेंटर यह सूक्ष्म पर्यवेक्षण करता रहता है कि लोगोंके होंठ सपनोंमें कैसे हिलतेसे जान पड़ते हैं।

मौन या नींद या सपनेकी खामोशीमें, शमशेरकी कवितामें उनके दोस्त और बुजुर्ग बहुतही दूरसे नजदीक आते हैं। यह शमशेरकी कविताके शिल्प या सपनोंकी बुनावटका बड़ा बारीक जादूई तानाबाना है। शमशेरकी कवितामें, अवचेतनसे या नेपथ्यसे, उनका कलाका पारखी और आधुनिताका खोजी, दोनों उनके शिल्पके तानेबानेको मूल्यवान बनाते चलते हैं।

'रोम सागरके बीचोंबीच' कवितामें, संसारके सदियों पुराने कला इतिहासकी भूखी मानवीय आत्मा है। शमशेर के गहराते आजके अकेलेपनसे कई धरातलपर वह जुड़ती या विदा होती है अंतमें रह जाती है अकेली कचोटती पीड़ा :

और यह खामोशी बता रही है
कि मेरे कुछ दोस्त और बुजुर्ग
बहुतही दूर चले गये हैं
आर. एन. देव शिवचंद बन्ने भाई
प्रकाशचंद्र गुप्त मुक्तिबोध प्रोफेसर एजाज हुसैन
और…और…

हमीं एक हमेशाके आलसी
पिछड़ गये हैं
क्यों आखिर (पृ. ३१)

शमशेरकी खामोशीमें एक एब्स्ट्रेक्ट पेंटिग बनती है जहाँ—कलानुभवका इतिहास, भूले-बिसरे मित्रोंकी यादें, और अपनी मौतका विडम्बनाभरा प्रसंग घुलमिल जाता है—कोलाज-सा। घुलमिल जानेके अनेक कलानुभवोंको शमशेर ('वन वेला', 'सरोज स्मृति' के निरालासे) कभी व्यंग्यकी शैलीमें चित्रित करते हैं और कभी (सूरदासकी बाल लीलासे) लीला करते हुई लोग-दूरी और नजदी-कियोंका फासला बनाये रखनेके बावजूद— रंग मंचपर 'यात्रा' या 'बाउल' से नजर आते हैं।

स्मृतिका यह नया लोक कैसे शमशेरकी रचना-प्रक्रिया में एकही कवितामें अपार मृत्युलोकमें रूपान्तरित होता जाता है और उस रूपान्तरणमें शमशेरका व्यक्ति कितना विस्मयजनक लगता है, इसे देखाही जा सकता है :

डूबते सूरजकी तरह शर्माता हुआ-सा कोई ईश्वर
मेरी धरतीकी ओर मुस्करा-मुस्कराकर देखता हुआ
डूबता जा रहा है।

यहाँ 'ईश्वर' लीला पुरुष है, जो कवितामें [illegible]

रचता है। 'ओ मेरे घर' कवितामें युद्धकी स्थिति है जिसमें कविको 'भगवान दिये कई-कई'। यह भगवान, प्रेमकी क्रूरतम कटुतम स्थितिमें एक बार कविको अपनी तरह 'निरीह' लगते हैं और दूसरी बार जब वह उनकी हृदय-हीनता और ऊँचाईपर सोचता है तो वह 'अद्भुत शक्ति-शाली मकानीकी प्रतिमाओं' (पृ. १९) से खोखले नजर आते हैं। लीला पुरुषका प्रतिनिधि 'ईश्वर' वास्तवमें शमशेरका प्रिय प्रतीक सूर्य है, जैसे उस प्रतीकके साथ शमशेर किसी आश्चर्यलोकमें पहुँच गये है :

यकायक मैं एक छोटी-सी नावमें
अपने आपको नहीं पाता हूँ
और वहाँ रंगीन बर्फका
बहता हुआ कोई टापू है
बहुत-से देवता मुझे एकसाथ देखने आये हैं क्यों
आये हैं
मैं जोर देकर वह पद सुनाना चाहता हूँ
मो सम कौन कुटिल खल कामी (पृ. ३३)

यहाँ ध्यान देना चाहिये, एक जहाज, छोटी-सी नावमें या बहते हुए बर्फके टापूमें कैसे रूपान्तरित होता है या सूर्य, ईश्वरमें कैसे मूर्तिमान होता है और उसके साथ तुलसीदासका पद कैसे कविकी जबानपर प्रकट हो जाता है।

पश्चिमी सभ्यतामें मौतके सामने या इतने पास पहुँचनेपर आदमी पादरीसे अपना अपराध स्वीकार करता है। भारतीय सभ्यताका संत, ईश्वरके साथ अपना अटूट नाता कायम करता है और उसी भेंटका दृश्य—अपार मृत्यु-लोककी लीला—का बोध होतेही वह अपनी निजी दुर्बलताओंको उस परम पुरुषके सामने सौंपकर हल्का हो जाता है। शमशेरकी कवितामें मौतका मिथ और कविकी विनयशील भक्ति भावनाकी लीला एक दृश्य बनाती है। उस दृश्यमें पश्चिमी और भारतीय परम्पराकी प्राचीन गूँजें घुल-मिल जाती है। इस घुलनशीलताके गुणसे कवि का व्यक्तित्व उदात्त होता है और उसकी एकाग्रता, उस दृश्यके लीलालोकमें डूबे हुए कविकी असम्भव सरलता की कलाको विकसित करती है। असम्भव सरलताकी शमशेरकी कला, कविताकी बनावटमें, स्वप्न, रंगमंचकी नाटकीयता, बातचीतकी विस्मयपूर्ण कला और बोलचाल की भाषाको एकही दृश्यमें बार-बार रूपान्तरित होते हुए व्यक्त करती है। इससे कविताकी रचनामें अनेक मानसिक सतह उभरते, घुलते जाते हैं। शमशेरका कवि अपनी सम्पूर्ण समर्पणकी लीलाको कलाको सूक्ष्म बिम्बोंमें चित्रित करता है। विडम्बनाओंमें अपने निरीह आदमीकी 'निपट मूर्ख' या 'हमेशाके आलसी आदमी' पर वह व्यंग्य करना भी नहीं भूलता है।

शमशेर और मुक्तिबोधकी कविताओंमें एक समानान्तर सहज संसार मिलता है। दोनों धरती और नक्षत्र मंडलका विराट व्यापक फलक अपनी कवितामें रचते हैं। दोनों कवि, विराट लोककी फैंटेसीमें, अपने कविके विचरण करनेकी पूरी सतर्कतासे खोज-खबर लेते चलते हैं। 'हमारी जमीन' कवितामें विराट लोक है: 'जो सिर्फ अपने चाँदसे पास है, सूरजसे कितनी दूर है/ यद्यपि उससे बँधी हुई···।' इस लोकमें भी दोनों अकेले और असहाय हैं, इसका शमशेरको बोधभी है और जो संसार चक्रका नियम है उससे दोनों बँधेभी हैं। इसने विपरीत 'ओ मेरे घर' में कविता का बँधान भिन्न है। यहाँ विराट प्रकृतिका बिम्ब न केवल रूपान्तरित होता चलता है, बल्कि कविताके विन्यासका शिल्प लोचदार है। घर, पृथ्वीमें, रूपान्तरित होते हुए एक प्रतीकके आगे कविके निजीपनको खोलता चलता है। चूँकि पृथ्वी माँका प्रतीक है या मूरतमंत मां है और शमशेरका कवि, उससे निजी पीड़ा कहता है:

इन्सानके अँखौटेमें डालकर मुझे
सब कुछ तो दे दिया :
जब मुझे मेरे कविका बीज रूप दिया कटुतिक्त।

यहाँ अँखौटा शब्द देशज है और माटीकी गंधकी तरह बड़ा प्राणवान है। आत्मविश्लेषणकी चिन्तामें कवि, अंत में खुदको ही समझाता है : फिर एकही जन्ममें और क्या क्या चाहिये !' (पृ. २०)

शमशेरके कविकी यह चिन्ता वसुधाको कुटुम्ब बनाये रखनेकी उदात्त भारतीय दृष्टि है। यह दृष्टिकी उदात्तता शमशेरके संत कविकी मानवीय प्रेमकी शक्ति है। शमशेरने इस दृष्टिको 'तथागतीकरणकी कला' और 'अत्यधिक निजी अधुनातन कला दृष्टि' कहा है। वास्तव में यह शमशेरई कलाकी कसौटी है। इसे शमशेरके संत कविकी दार्शनिक भूमिकाभी कहा जा सकता है। कलाके प्रति सम्पूर्ण समर्पणका सहजबोधही शमशेरके कविको आधुनिक बनाता है।

शमशेरकी कवितामें परम्पराके पुनर्मूल्यांकनका यह अनूठा गुण है। खुद शमशेरने इतिहास दर्शनकी इस कलाकी मानवीय 'मार्मिक-इतिहास-भिदी अद्वितीयता' कहा है। इतिहास दर्शन और कलाको बदलती मान्यताओंका

इस संकलनकी कविताओंमें [illegible] मिल जाता है। शाहजहाँ इसी 'मार्मिक-इतिहास-भिदी अद्वितीयता' से शमशेरका प्रेमी कवि बन जाता है। 'प्यारका मौसोलियम' कविता स्वप्नकी कलाकी उत्कृष्ट प्राप्ति है। पिकासोके एलबमको देरतक देखते रहनेके बाद कल्पनाशील शमशेरके पेंटरने कविता लिखी 'पिकासोई कला'। श्रद्धेय उस्ताद स्वर्गीय प्रोफेसर एजाज हुसैन साहबकी यादमें डूबकर शमशेरके कविने कविता लिखी 'गोया वो…'। नयी दिल्लीमें विजय सोनीके चित्रोंकी प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए दो शब्दके रूपमें कविता लिखी 'विजय सोनीके चित्र।'

इस संकलनमें दो जगह मुक्तिबोधका जिक्र आया है। एक जगह कविताके अंतर्दर्शनमें याद आनेवाले मुक्तिबोध उदात्त आदमी हैं, दूसरी बार मुक्तिबोध पद शमशेरने फुटनोट दिया है 'इस प्रदर्शनीके कई चित्र मुक्तिबोधकी कहानी 'क्लाड ईथरली' का अन्तदर्शन थे।'

आजके हिन्दी पाठकको शमशेरकी कविता पढ़ते समय लगता है कि डॉ. हरीना जेहराके लिए लिखी कवितामें भी फुटनोट देना जरूरी था। शमशेर पिकासो, या दूसरे कलाकारोंकी पेंटिंगमें निहित अर्थको पूरी तरह खोलते नही हैं, बल्कि वह उस पेंटिंगके समान्तर अपनी प्रतिक्रियामें रची पटिंग पाठकके सामने छोड़ जाते हैं। इसीलिए शमशेरकी कविताके बहुतसे दृश्य उनके फुटनोट के बादही पाठकको आसानीसे समझमें आते हैं।

स्वर्गीय चित्रकार सुप्रभात नंदनकी पेंटिंग देखकर लिखी शमशेरकी कविता 'एक स्टिल-लाइफ' पर पाठक अटकलही लगा सकता है। दिल्लीकी एक प्रदर्शनीमें देखकर लिखी शमशेरकी कविता 'अनिल चौधरीके चित्र' को भी पाठक शमशेरकी 'पुनर्रचना' के स्तरपर ही कुछ-कुछ समझ पाता है। पेंटिंग देखकर शमशेर भीतर अपनी 'एक जवान कविता' को बहता हुआ पाते हैं। वहां शमशेरका जवान कवि और हिन्दी पाठक फासलेपर नजर आते हैं:

वास्तवमें दो कैनवास हैं
एक तरल : एक स्थिर
दोनों पारदर्शी
एक दूसरेमें छिपे हुए। (पृ. ५५)

अज्ञेयजीके ड्राइंग रूममें कभी देखा था शमशेरने जो चित्र, उसे यादमें फिरसे जवान कविताके रूपमें रचा है : 'फान गौग्का एक चित्र कवितामें'। 'असम्भव' शीर्षक कवितापर नोट है 'कवि-कथाकार अश्कके लिए।' जगदीश अग्रवालके लिए लिखी कविताका शीर्षक है 'एक विदा'। 'प्रभाकर माचवे' शीर्षक कविता उनकी साठवीं वर्षगांठ पर समर्पित कविता है। इस कवितामें दो बार नोट जड़े हैं शमशेर भाईने। ब्रेकेटमें दिया नोट शमशेरकी स्वाभाविक रचना-प्रक्रियाको स्पष्ट करता है : 'माचवेजीकी पंक्ति 'तुम समशेर लिखेको, जट्टा' ने कुछ ऐसा गुदगुदाया कि उन्हींकी तुक योजना और शैलीमें उनके प्रति अपने हार्दिक उद्गार प्रकट किये बिना मैं न रह सका। कला और सौन्दर्यकी आधुनिकतम मान्यताओंपर शमशेर साहबका दूसरा जरूरी फुटनोट है : 'आधुनिकता भावुकताके विरोधसे प्रारम्भ होती है; और इस विरोधमें और नाना व्यंग्य छंद प्रयोगोंमें माचवेजी आधुनिकोंमें पहले हैं।'

आ. शुक्लने भवभूति और तुलसीदासको भावुक कवि कहा है। भावुकता विरोधी प्रतिक्रियाके दो पक्ष आधुनिक आलोचकोंमें पाये जाते हैं। एक पक्ष परम्पराके विरोधको आधुनिकता मानता है। दूसरा पक्ष परम्पराके परिष्कारको आधुनिकताकी प्रगतिशील दृष्टि कहता है। शमशेरके आलोचकोंने अभीतक कविताके सहज-बोधकी कसौटीके अभावमें 'शतरंजका खाना' ही बनाया है। मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्माने शमशेरकी राजनीति, इंकिलाब और कला भावनाकी विशुद्धताकी छानबीन करनेके बाद उनके कविमें रीतिवादी सौंदर्यका रुझान रहस्यवादी प्रवृत्तिका भटकाव तथा अस्तित्ववादी परम्परासे लगावका सूत्र (या गोटी) खोज निकाला है। आधुनिकतावादी आलोचक मुख्यत: रूपतत्त्वके खाने बनाते रहे हैं। कुछ आधुनिकतावादी आलोचकोंने पश्चिमी काव्य-परम्परासे शमशेरके छंद, लय, भाषा, बिम्ब और प्रतीक योजनाका प्रभाव खोज लिया है। शमशेरके मार्क्सवादी या आधुनिकतावादी आलोचक अभीतक शमशेरकी आधुनिक जमीनकी व्याख्या नहीं कर सके हैं। मार्क्सवादी आलोचक निरालाकी श्रेष्ठ कविताओंसे एक मानदंड निर्मित करता है, पर वही आलोचक शमशेरकी श्रेष्ठ कविताके प्रगतिशील आधुनिक मर्म-मूल्यको समझने से ही साफ मुकर जाता है। शमशेरकी कविताकी तुला, आजका जीवनमूल्य है जो आधुनिक जगतमें तेजीसे बदल रहा है, पर उसके साथ उसने स्थायी मूल्योंकी आधुनिक परखको विकसित और पुष्ट किया है जिसपर बहसका यह स्थान नहीं है।

शमशेरकी कविताका स्थायी मूल्य है, स्वच्छ और निर्मल कविताकी परख। इसी नाते शमशेर रूपवादी आलोचकोंकी तरह, परम्परावादी या यथास्थितिशील नहीं हैं। आधुनिक कविताकी स्थायी मूल्य-दृष्टिकी खोज

वह कविके अनुभव और [illegible] अनुसार करते हैं। इस कसौटीमें वे बड़े कड़े हैं। वे परम्पराकी श्रेष्ठतम कविता, कला और सौंदर्यकी 'प्राचीन या आधुनिक' हार्दिकताओंको विकसित करते हैं। विकास की उनकी जमीन व्यापक है। शमशेर हिन्दी-उर्दूके दोआबके आधुनिक कवि हैं। गालिब और निरालाकी मार्मिक भाषाओंके स्वरूप और नादको शमशेरने अपनी कवितामें आत्मसात् कर लिया है।

हर श्रेष्ठ कवि एक सीमापर रूढ़ हो जाता है। शमशेरकी संध्या कविता रूपतत्त्वकी लय या शब्दोंकी लयकारितासे जहाँ पाठकोंको विस्मयपूर्ण लगती है, वहीं ठहराको ठैरा, प्रियाको प्रीया, वयस्यको व्यस्कका कविताका खेल, महज चमत्कार पैदा करता है। देशी भाषाओंसे उच्चारणकी एकरूपता होती है, स्वरोंका प्रयोग वहां व्यंजकताको मुखर करता है। शमशेरके यहाँ यह प्रयोग उच्चारणका खेल-सा लगता है। माचवेजीपर लिखी कविताका तुक विधान या वंदभी कविके अभ्यासका खेलही रह जाता है। कविता यहाँ शमशेरसे दूर हट जाती है। इस तरह कविताकी रूढ़ि शमशेरने खुद रची है। अछूते बिम्बोंकी खोज करनेवाले शमशेरके बारीक कलानुभावमें भी झिलमिलाती झाड़ियों या झिलमिल ओढ़े अलंकरण अब खटकते हैं। ठहरा हुआ-सा केसरिया आसमान या केसरिया साँवलापनका रंग निर्देशन, या उपमान और बिम्ब रचनामें आईना, कैनवास, लय, मंच, नाव, सोनेके ज्वार या काजलकी तलवार और तलवार अंधेरेकी जैसे प्रयोग पाठकोंको अब चौंकाते नहीं हैं, बल्कि यह लगता है भावुकताके विरोधकी आधुनिक समझमें शमशेर खुदको दुहराने लगे हैं। शमशेरकी यह असावधानी या काव्य-रूढ़ि इसलिए भी खटकती है क्योंकि भारती कविताकी आधुनिक कला, और कविताके अतीत और भविष्य के खतरोंके प्रति शमशेर पाठक या कविको सावधान करते रहे हैं।

महाजनी सभ्यतामें खोखले या विशिष्ट 'मकानीकी प्रतीमा'से लोग या'भगवान' क्यों बढ़ रहे है? क्यों महाजनी सभ्यताकी श्रेष्ठ 'कृति' में पोल नजर आने लगी है? इस विषयका विवेचन मुक्तिबोध और शमशेरने मार्क्सवादी दृष्टिसे किया है। 'गोवा वो' कविताका यह प्रसंग है:

बड़ीसे बड़ी कृति यहाँ तो
कोई बड़ाही कीमती इश्तहार है
[illegible] आधुनिक बाजार है
जितनाही बड़ा आर्टिस्ट जो है
उतनाही बड़ा पत्रकार है (पृ. २८)

शमशेर कलाको 'कीमती इश्तहार' में ढालनेके विरोधी हैं। यही वह मार्क्सवादी कवि हैं। न ही वह आर्टिस्टकी आयुमें बड़े पत्रकार हैं, न ही उनकी कविताओं का कहीं दिल्ली या भोपालमें अभीतक आधुनिक बाजार लगा है। मुख्यतः एकाकी होनेके नाते शमशेरमें कलाकी पवित्रताका एक विचित्र पहलू है, जो उन्हें महाजनी सभ्यतासे या उसके सरकारी या सेठाश्रयी बाजारसे दूर-पार ले जाता है।

शमशेरका कलाकार-कवि अपनी कला-प्रयोगशालामें तल्लीन रहनेवाला एक वैज्ञानिक कवि है। वह प्रयोगशालामें 'अत्याधुनिक मर्मकी सूचनाएं' खोजता है। पतनशील आधुनिक सभ्यताके बाजारकी चीख-पुकारसे असन्तुष्ट शमशेर विजय सोनीसे कवितामें संवाद करते हैं:

'तुम डेन्मार्क जाओ
स्वीडन पोलैण्डमें
कोई नया रूप
जन्म ले रहा है
अनपहचाने शायद
उसकी परछाई मैं यहां
पकड़ रहा हूं
'शिल्प चक्र' में। (पृ. ३५)

शमशेर यहाँ महामानव समुद्रके एक खोजी जहाज हैं, जो आत्मज्ञानसे विकसित होती कविता या कलाके विज्ञानको टटोलते चलते हैं। जो सौंदर्य और संगीतकी स्वच्छ और निर्मल ऊँचाइयोंसे कभी निराश नहीं होते। शमशेरके लिए नया रूप लेती मानवीय कला, ऊँची कलाका आईना है। वे जानते हैं कब पूँजीपति या सत्ता उनकी कविता या कलाको संरक्षण देती है। वह पूँजीवादी सत्ताकी संरक्षणवादी प्रवृत्तिसे दुखी होकर लिखते हैं:

कवि एक बड़ा-सा तोता है, जैसा कि मैं।
जिसे उसके संरक्षक पालते हैं।
कई होते हैं वे। (पृ. ४१)

आपातस्थिति (एमर्जेन्सी) क्यों बुरी है? क्यों युद्ध या तानाशाह फिलस्तीनियोंको आजतक बेघरबार या शरणार्थी शिविरोंमें मौतके घाट उतार रहा है? यह शमशेरके करुण इन्सानकी स्थायी चिन्ता है। वे अपने

अनुभवसे जानते हैं कि साम्राज्यवादी या तानाशाह इतिहासके प्रवाहसे उनके मूल्यवान समयको एक काटाकी तरह काटता है। 'अमनका राम' का कवि शमशेर ही 'थरथराता रहा' कविता लिखते हैं। इस कवितापर उनका नोट है : एक विचित्र प्रेम 'अनुभूति'। यह मानतावादी कविका प्रेम है, अपनी जनतासे या उस समस्त वातावरण से जो वेत-सा थरथराता रहा था उस समय :

थरथराता रहा जैसे बेंत
मेरा बाय··· कितनी देरतक
आपादमस्तक
एक पीपल पात मैं थरथर।
काँपती काया शिराओंभरी
झन-झन
देरतक बजती रही
और समस्त वातावरण
मानो झंझावात
ऐसा क्षण वह आपात
स्थितिका। (पृ. ७१)

यह विचित्र प्रेम अनुभूतिभरी थरथराहट शमशेरके स्वच्छ हृदयकी निर्मल अभिव्यक्ति है। मानवतासे अटूट प्रेमका यह आशावाद शमशेरके कविका 'मानवी व्योम' है। यहाँ कवि और जनताकी देरतक बजती रही स्पष्ट अतिस्पष्ट 'बेचारगी' का अनुभव है। इसी 'बेचारगी' की महाजनी सभ्यतामें आम आदमी शोषणके चक्रमें फँसता जा रहा है। शमशेरने इसेही आधुनिक खरीद-फरोख्तका बाजार कहा है। कला और सौंदर्यको संरक्षण देनेके नामपर यह जनविरोधी सभ्यता मानव जातिको युद्ध और बेचारगीमें झोंकती जा रही है। शमशेरकी आधुनिकता इसी अर्थमें पूँजीवादी आधुनिकता नहीं है। वह जनतंत्र और समाजवादीकी तीसरी दुनियांकी कविता है। कला और सौंदर्यकी अत्याधुनिक मर्म सूचनाएँ 'शमशेर कवितामें कब और कैसे देते हैं इसका पुनर्मूल्यांकन आनेवाले समयमें होगा।

'कला' शमशेरके सौंदर्य-बोधका स्थायी मूल्य है। उनकी कविता, स्वच्छ और निर्मल कला इसीलिए है क्योंकि वह उसे 'मनुष्यकी आत्मा' कहते हैं। यह 'आत्मा' स्थिर भाववादी दर्शनका जड़ तत्त्व नहीं हैं। यह मनुष्य का विज्ञान है, यानी मानवज्ञानका बदलता हुआ स्वरूप है :

सायंस एक धड़कन हो जाती है ज्ञानस्वरूप
और मनुष्यका समाज एक हो जाता है
संगीतसे।
युद्धको सेबसे अधिक भय संगीतसे है
(क्योंकि वह कहीं-न-कहीं अटामिकी विस्फोटको
वशमें कर लेता है) (पृ. ४५)

□□

दर्दके आसपास

कवयित्री : पुष्पलता कश्यप; प्रकाशक : राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर। पृष्ठ : ७६; डिमा. ८१; मूल्य : १४.३० रु.।

आलोच्य कृतिको तीन खंडोंमें विभाजितकर रचनाओंका अनुक्रम पेश किया गया है—सपनोंकी जाली, यादोंके फॉसिल्स, दर्दके आसपास।' व्यक्तिका अंतर्वाह्य संघर्ष, उसके अंतर्विरोध और परिवेशगत अमानवीय कुरूपताएं हमारे जीवनको कटु, कसैला और खुरदरा बना रही हैं। 'परिवेश' ही समकालीन कविताका कथ्य है। अनिश्चय, खामोशी, उदासी, अकेलापन, रिक्तता, सन्नाटा, उलझाव, संदेह, बिखराव हवस, उद्विग्नता, आतंक, अभाव, टूटन, दर्द, वैषम्य, भटकाव, अर्थात् आदमियतके कई हिस्से' इन रचनाओंमें मौजूद हैं। संकलनमें विरासतके संस्कारोंकी जटिल गांठेंभी हैं। और 'तैरती आवारा मुस्कराहटें' भी। धुआँ, धुंधलका और अंधेरा—परिवेश और युगीन सच्चाइयां, विसंगतियोंकी खुली कहानी ही तो हैं—

गहराये दर्दकी अनिश्चयात्मक
विसंगत स्थितियोंकी
खामोश सूनी ऊंघती हदबंदियोंमें
शहरके मकान सो रहे हैं।
और यहां, वहां जोड़ोंके बीच
अंधेरा धंसता जाता है।

यथार्थसे संश्लिष्ट बेशुमार बेचैनी और दबाव रचनाकारके मनमें जज्ब हो गये हैं और प्यासभरी जिज्ञासाओंके याद भरे संवाद बहुत बारीकीसे अपनी मनचाही कह गये हैं।

संवेदनाके ताबूतमें कुलबुला रहा है
जैविक आवेश, तप्त जिस्म।
गुच्छोंमें उलझ गये हैं गुच्छे
और बिंधकर गुँथ गया है जिस्म।···

वासनाका उद्दाम दर्द
मांससे मांसका गुथाव···
जो कुछ मुझमें है
कौमा, विराम, अर्थ, दर्द
सब बह रहा है······।

कवयित्रीने बेझिझक स्वीकारा है कि 'वासनाके बृहत् खेल को छोड़ने लायक उम्र/हमारी कभी नहीं होती'; शायद इसीलिए उमंगोंके सिलसिले और प्रस्फुटित ओठोंकी मादक सिहरन जीवनकी ऊष्मासे अपना लगाव दर्शाती रहती है। दरअसल टीसता, सालता, रिसता दर्द बहुत गहरेमें काव्यात्मक रचाव पा गया है।

तमाम त्रासद स्थितियोंके बीच लगता है कि कवयित्री जीवन और जीनेकी लालसा संजोये 'किसीभी सांचे में ढलनेके बजाय अपने अनुकूल साँचेकी तलाश' करती नजर आती है और यही 'आह्वान' जुड़नेकी, बढ़नेकी अधीरताका स्वास्थ्यप्रद लक्षण है। जीनेके लिए आग, तपिश और गर्मीका चुनाव है। 'भूख' कविता सागर और नदीके प्रतीकोंमें ढलकर बहुत प्रभावी ढंगसे दुष्ट राजनीतिज्ञ और सर्मापित जनताकी दयनीय हालतका बखान करती है—

नदियोंको गर्व है कि वे अस्तित्वशील हैं
और एक दिन सागरको सर्मापित हो जायेंगी
अन्य कोईभी अनुकरणीय पदांकन उनके सामने नहींहै
नदियोंकी कोखमें भूख पल रही है।

हमें सहूलियत और कठिनाईके बीचका रास्ता चुनकर अंध प्रदेशोंमें घुसी आस्थाकी सलामतीको बरकरार रखना है ताकि बेहतर जिंदगी जी सकें। 'आदम, होवा और शैतान' की कहानीके बीच हमें सारे अनुभवोंको अपनी दृष्टिसे देखना है ताकि 'गुलमोहरके गाछ' अभिनय कर सकें।

कवयित्रीके पास अनुभूतियोंकी नंगी भाषा है याने शब्द हमें सीधे संवेदना और मूल वैचारिकताके इतने करीब ला देते हैं कि हम तुरंत उनसे तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, अभिभूत हो जाते हैं। अनुभव-संसार इतना व्यापक और गहरा है कि हर विश्लेषण अपनी समग्रतामें एक संश्लिष्ट चित्र बनकर स्थायी रूपसे दिमागपर छा जाता है। कवयित्रीकी पंक्ति लेकरही कहना होगा कि 'आंतरिक समध्वनिके उपवाक्योंको समीपतर होकर सुननेकी' स्थिति कायम हो जाती है। कविताके ये संवाद जैसे हमारे आत्मीय और अवचेतनके सुलझे संवाद बन जाते हैं। फिर वह 'एब्सर्ड डॉयलॉग' नहीं रहता। उसके पास हर क्षणकी अनुभूतिजन्य पकड़ है—'ईश्वरको तकलीफ पहुंचानेमें भी एक मजा है / और इस सुखका कोई मुकाबला नहीं है।'

चाहे अभावग्रस्त निर्धनताका 'समझौता' हो, चाहे बेचैनीका उफान, चाहे लैंप-पोस्टका दर्द हो या 'टूटनका चक्र' आदमियतके कई हिस्से असरदार होकर हमसे सीधा साक्षात्कार करते हैं। कवयित्रीके पास शब्दोंकी गतिशील अर्थवत्ताकी अक्षय सम्पत्ति है इसीलिए वह किसीभी मनोभावको अपनी गिरफ्तमें लेकर साकार कर देती है: 'तुममें एक भयंकर नाग गरमजोशीसे फुफकारकर/ मेरी मुस्कराहटको अपने कैमरेके लैंसमें बन्द कर लेता है।' पुरुष और नारी मनकी भीतरी सुगबुगाहट, शारीरिक और मानसिक स्तरपर एकाकार होनेकी शब्दहीन चरम अनुभूति केवल कहानियोंमें अबतक जितनी महीन कलात्मक अभिव्यक्ति पा सकी थी, उससे भी गहरी पैठ और बिना दुराव-छिपावके भीतरी अहसास इस संकलन की विशिष्ट उपलब्धि है।

यों तो 'दर्द दिया है, दर्दके दस्तावेज, दर्द फैला है आसपास, दर्दोंके दोपहर' आदि अनेक संकलन इस बीच मेरी नजरसे गुजरे हैं, पर 'दर्दके आसपास' चक्कर लगाना स्वयं अपनेको उस व्यूहमें पा जाना है। यही इस कृतिकी महती विशेषता है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है।

☐ **डॉ. संतोषकुमार तिवारी**

चट्टान टूटती है

कवि : राजदेव सिंह 'कोशल'; प्रकाशक : अभिनव प्रकाशन, ३२ ए/१ ए **दर्पनारायण टैगोर स्ट्रीट, कलकत्ता**-७००००७, पृष्ठ : ४८; **डिमाई; मूल्य :** १०.०० रु.।

'चट्टान टूटती है' कौशलजीकी पाँचवीं काव्य-कृति है। इस संग्रहमें निष्ठुर-जड़ताकी कारासे मुक्ति पाने और दिलानेकी अदम्य चेतनासे सम्पन्न ३३ कविताएं हैं। ये 'छन्द-मुक्त' न होकर, 'मुक्त-छन्द' रचनाएं हैं। मुक्त-छन्दके सम्बन्धमें निरालाजीने कहा था, 'मुक्त-छन्द तो वह है, जो छन्दकी भूमिमें रहकरभी मुक्त है।··· मुक्त-छन्दका समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।' ('परिमल, प्रथम संस्करण, भूमिका, पृष्ठ १३-१४) 'कौशलजीने भी अपनी कविताओंकी संज्ञा 'मुक्ता' दी

है, जो उपर्युक्त दृष्टिसे उचित जान पड़ती है, और कहीं-कहीं श्लिष्ट प्रयोगके रूपमें भी वह संगत है, इसमें सन्देह नहीं।

संग्रहकी कविताओंमें अन्यान्य सामाजिक परम्पराओं, रूढ़ियों और स्वार्थ-पंकिल राजनीतिकी गति-विधियों तथा सामन्तवादी व्यवस्थाको बनाये रखनेकी साजिश आदिको लेकर पैने व्यंग्य-प्रहार प्रस्तुत किये गये हैं। कवि ने अपने उद्देश्यके अनुरूप सड़ी-गली सामाजिक राजनीतिक मान्यताओंके प्रति आक्रोश और विद्रोहका स्वर उभारकर शारीरिक तथा मानसिक जड़ताकी कारामें बन्दी चेतना की प्राणवत्ताको उद्दीप्त करनेवाले विध्वंसके स्फुलिंगोंसे संभाव्य नयी सर्जनाके सन्देशका ताना-ताना बुना है. जो सच्चे और निर्भीक साहित्यकी पहचान है। उजले आदर्शों के घिनौनेपन, शोषण और भ्रष्टाचरणपर आधारित सभ्यताकी चमक-दमक, जीवनके यथार्थ-बोधके प्रति कवि की दृष्टि सर्वत्र सजग और सचेत है, तथा—'रोटी बहुत कुछ है', 'सफेद हाथी चलता है', 'पूनम', 'विध्वंस', 'माँगो नहीं, छीन लो' शीर्षक कविताओंकी कतिपय पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'रोटी अगर पेटमें न हो/तो रोटीके सिवा/कुछ नजर नहीं आता/तब चाँदकी गोलाईमें/चन्द्रमुखी नहीं/रोटी उभरती है:/और तारे/ मक्काके भुने दानेसे दिखते हैं/जहाँ साथ नहीं पहुंच पाता/तब आहें जमकर/गोली बनती हैं/नालियोंसे निकलती हैं।/भूखाही 'पाप' करता है/रामायण नहीं पढ़ पाता।' (पृ. ३)।

\+ + +

'हलाली—/गाय, भेड़, बकरी/ मुर्गीकी ही होती है/ शेर,कुत्ते और बिल्लीकी नहीं। शोषण—/मजदूरों, किसानों/पढ़े-लिखे मजबूरों/का होता है,/धनवानोंका नहीं।···प्रजातन्त्रका सफेद हाथी/गरीबीकी छातीपर/ 'सत्यमेव जयते'/का घंटा बजाता/बड़े शानसे चलता है।' (पृ. ८-६)।

'चाँद हँसिया लेकर उगा/तारोंकी बिचारोंकी/सारी फसल/ काटकर खा गया।/उसके पिचके गाल भर गये,/उभर गये,/ वह गोला हो गया/और आकाशका/सर्वमान्य नेता हो गया/···सारे सर्वहारो !/तारो !/खुशियाँ मनाओ,/ क्योंकि आज तुम्हारे आँगनमें /पूनम है !' (पृ. ७)।

× × ×

'पूछते हो, 'उबकता हूं/भड़कता हूं, सुलगता हूं/तोड़फाड़ करता हूँ/लावा उगलता हूं।···पूछा है सूरजसे,/'कितना तपाया है ?'/पूछ जठरानलसे,/ 'कितना जलाया है ?'··· मैं ही मर्यादित रहूँ !/तुम आकाशमें उड़ो,/चाँदपर जाओ,/ अपने उपग्रह बनाओ !/झोपड़ियोंको तोड़ो,/साठ मंजिली इमारतें उठाओ !' (पृ. १८)

× × ×

'छीन लेना चोरोंसे/कोई बुरी बात नहीं।/गीताभी यही बात/तुमको बताती है,/···तिनको !/मिल रस्सी बनो! जीना है, मृत्यु वरो/माँगो नहीं, छीन लो। (पृ. १६)।

केवल ऊंचे आश्वासनोंकी ऋचाओंका श्रवण, उत्तुंग धवल-गृहोंका दर्शन और आदर्शोंका निर्वचन-संकीर्तन हमारी व्याधि नहीं हर सकता। मनुष्य यानी आम आदमी को जीवन-यापनके लिए बुनियादी आवश्यकताओंकी पूर्तिकी सुविधा तो मिलनीही चाहिये। संकेतों और प्रतीकोंके माध्यमसे यह बात प्रभावकारी ढंगसे व्यक्त की गयी है –

'स्वर्गसे एकभी भ्रष्ट नहुष/नहीं गिरा/विश्वामित्र अपने बलपर/उसे रोक रहे हैं/उर्वशियाँ/पुरूरवाको छोड़कर/'दीनू' का आलिगन नहीं करतीं/स्वर्गके आश्वासन/ भोगे जाते नरककी यातना/कम नहीं करते/···देवताओंकी नहीं,/आदमीकी बातें करो/इसको स्वर्ग नहीं,/धरतीपर जीनेका अधिकार चाहिये।' (पृ. ४)

इसी प्रकार 'आधुनिक हर्ष', 'ये शल्य', 'शैतानो! राज करो' शीर्षक कविताओंमें स्वार्थी धनाधीशों, नेताओं, 'कुत्ता न हो सकनेका दुःख' तथा 'टामी' में पिछलग्गू चाटुकारों, 'जय जवान जय किसान' में झूठे नारोंकी फसल उगाने और गरीबोंके खूनसे फैक्ट्रियों तथा महानगरोंको जममग करनेवाले पूँजीवादके पोषकोंपर तीखे व्यंग्य किये गये हैं, यथा—

'हरित क्रांति हो गयी/भर गये गुदाम घर।/देश अपना बच गया/बच गये भव्य नगर/फैक्ट्री, मिल, ताज-महल।/बच गये श्रीमान्/जय जवान, जय किसान।' (पृ. १६)

संग्रहकी 'वृत्त सिमट गये हैं', 'दायरे और दायरे', 'इन बौनोंके बीच', शीर्षक रचनाएँ मनुष्यकी निरन्तर सकीर्ण होती जा रही मनोवृत्तिके साथ-साथ उदात्त जीवनास्थाके प्रति स्वागतका भाव-व्यंजित करती हैं—

'अब बिन्दुओंके चलनेसे/रेखाएं नहीं बनतीं,/ रेखाओं के सिकुड़नेसे बिन्दु बनते हैं।' (पृ. ४०)

इसके अतिरिक्त, इस संग्रहकी 'कितनी अंधेरे हैं', 'देखा है', जैसी अन्यान्य कविताएँ भी वैयक्तिक-सामाजिक-यथार्थको मुखर करती हैं। कहीं-कहीं कुछ का...

ताओंमें भाव-विस्तार प्रभाव-विस्तार नहीं करता। समग्रतः कथ्य और शिल्प दोनोंकी दृष्टिसे संग्रह सशक्त है।

— डॉ॰ उमाशंकर शुक्ल

पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकी कविताएँ

सम्पादक : डॉ. विद्याधर शर्मा गुलेरी; प्रकाशक : चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२००३। पृष्ठ : ३०+४६; डिमा, ८१; मूल्य : १२.७५ रु.।

हिन्दी गद्यके आरंभिक उन्नायकोंमें गुलेरीजीका नाम सम्मानपूर्वक लिया जाता है। कम लोगोंको यह बात मालूम होगी कि उन्होंने कुछ कविताएँ भी लिखी थीं। उनकी हिन्दी, संस्कृत और राजस्थानीमें लिखी कविताओं को एक जगह संग्रह करके विद्याधर शर्मा गुलेरीने एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। हालांकि इन कविताओंमें ऊँचे दर्जेका कवित्व नहीं है, फिरभी वे गुलेरीजीकी भावुकता, चिंतन और भाषाधिकारका परिचय देनेमें समर्थ हैं।

आलोच्य कृतिमें हिन्दीकी दस, संस्कृतकी छह कविताएँ और राजस्थानी कविताका एक अंश संगृहीत है। अन्तमें 'वाल्मीकि रामायण' और 'महाभारत' के दो अंशोंके गुलेरीजी कृत अनुवाद दिये गये हैं। पृष्ठ ४२ पर दिये गये फुटनोटसे लगता है कि गुलेरीजीकी ब्रज-भाषामें रचित कुछ कविताएँ और हैं, जो पुस्तकके अगले संस्करणमें सम्मिलित की जायेंगी। पुस्तकका कलेवर बढ़ानेके लिए 'गुलेरीजी अपने शब्दोंमें' 'पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरीकी साहित्यिक उपलब्धियाँ', 'जीवन परिचय' आदि शीर्षकोंके अन्तर्गत परिचयात्मक सामग्री दी गयी है। अच्छा होता, सम्पादकने गुलेरीजीकी कविताओंपर कोई समीक्षात्मक आलेखभी दिया होता।

गुलेरीजीकी कविताओंमें 'ओज' की प्रधानता है। 'एशियाकी विजयादशमी', 'आहिताग्निका', 'झुकी कमान' आदि कविताएँ 'स्वाधीनता' को मूल्यवान मानकर इसके लिए संघर्षको जबर्दस्त समर्थन देती हैं। 'स्वदेश प्रेम' द्विवेदी युगकी कविताओंका मुख्य स्वर है। गुलेरीजीकी कवितामें भी यह पर्याप्त मुखर है—

है जन्मभूमि जिनको जननी समान
स्वातंत्र्य है प्रिय जिन्हें शुभ स्वर्गसे भी
अन्यायकी जकड़ती कटु बेड़ियोंको
विद्वान वे कब समीप निवास देंगे ? (पृ. १३)

'भारतकी जय' शीर्षकसे समूह-गानका जो अंश दिया गया है, उससे जाहिर है कि 'धर्मनिरपेक्षता' के प्रति उनकी आस्था कम नहीं थी। 'स्वागत शार्दूलविक्रीडतम्' में व्यंग्यका पैनापन द्रष्टव्य है। 'रवि' शीर्षक कवितामें चमत्कारका प्रदर्शन है। कविताओंकी भाषा कहीं बहुत संस्कृतनिष्ठ है, तो कहीं बोलचाल और अंग्रेजीके शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया गया है।

आज इन कविताओंका कोई विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि अधिकतर तात्कालिक संदर्भोंसे जड़ी हुई हैं। गुलेरीजीने मात्र तीन कहानियाँ लिखकर जो यश प्राप्त किया, वह दर्जनों कविताएँ लिखकर न प्राप्त कर सके तो इसके पीछे उनकी कविताओंकी अभिधामूलकता और सपाटताका योगदान है। फिरभी इन कविताओंका ऐतिहासिक महत्त्व है। अच्छा होता कि इन कविताओंका रचनाकाल पृथक्-पृथक् दिया गया होता और जिन पत्र-पत्रिकाओंमें ये छपीं, उनका भी उल्लेख होता।

☐ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

शोध आलोचना

प्रताप पचीसी

कवि : शिवचन्द्र; सम्पादक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित; प्रकाशक : मनीषी प्रकाशन मेरठ। पृष्ठ : ६६; डिमा ८१; मूल्य : १७.०० रु.।

प्रताप-पचीसीके रचनाकार कवि शिवचन्द्र अठारहवीं शताब्दीके रीतिग्रंथ निर्माता कवियोंमें है जिनका उल्लेख तो यत्र-तत्र इतिहास-ग्रंथों और शोध-प्रबंधोंमें मिलता है किन्तु कविके वास्तविक कृतित्वका मूल्यांकन डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित द्वारा सम्पादित 'प्रताप पचीसी' ग्रंथमें ही किया गया है। काव्य-दोषपर रीतिकालीन आचार्योंने विशेष ध्यान नहीं दिया। अलंकार,गुण, रीति वृत्ति, ध्वनि आदिकी सम्यक् मींमांसा करनेवाले आचार्य कवियोंने विस्तारपूर्वक गुणोंके साथ दोषोंपर विचार नहीं किया। दोष-मीमांसा वास्तवमें कवि कर्ममें प्रवृत्त होनेवाले रचनाकारोंके लिए मार्ग-दर्शक कार्य है। अर्थात् कविता लिखते समय कहाँ-कहाँ और किस प्रकार कवि पथभ्रष्ट हो सकता है, उसे यह बताना दोष मीमांसा लिखनेवाले कवि आचार्यका काम है। दोष-निरूपण वास्तवमें छिद्रान्वेषण न होकर त्रुटियोंको दूर रखने और स्वच्छ लेखनमें प्रवृत्त होनेका दिशा-बोध है।

'प्रताप पचीसी' की विषय-वस्तुपर चर्चा करनेसे पहले मैं प्रस्तुत ग्रंथके सम्पादनके विषयमें कुछ टिप्पणी करना आवश्यक समझता हूं। पहली बात तो यह है कि यदि डॉ. दीक्षित जैसे काव्य मर्मज्ञ विद्वान् इस लघु ग्रंथ का पांडित्यपूर्ण शैलीसे सम्पादन न करते तो यह ग्रंथ जैसे अबतक अंधकाराच्छन्न रहा है वैसेही अज्ञात बना रहता। कवि शिवचन्द्र नाम हिन्दीके विशिष्ट इतिहास-ग्रंथोंके लिए महत्त्वका नहीं रहा किन्तु प्रताप-पचीसी-ग्रंथ अपने वर्तमान सम्पादित रूपमें निस्सन्देह ध्यानाकर्षणका नहीं वरन् विशेष महत्त्वका हो गया है। आजसे पच्चीस वर्ष पहले मैंने अपने एक शोध छात्रसे काव्य शास्त्रमें 'दोष निरूपण' पर कार्य कराया था। उन्होंनेभी इस ग्रंथ को उस समय कोई महत्त्व नहीं दिया था। यदि 'प्रताप पचीसी' अपने वर्तमान रूपमें उस समय सुलभ होती तो हिन्दी काव्य शास्त्रमें दोष निरूपणपर बहुत प्रमाण रूपसे लिखा जा सकता था।

डॉ. दीक्षितने केवल प्रताप-पचीसीका मूल पाठ,टीका और शब्दार्थही प्रस्तुत नहीं किया है वरन् २८ पृष्ठोंकी अपनी भूमिकामें रीतिकालीन हिन्दी इतिहासका एक अछूता पृष्ठही पूरा किया है। कवि शिवचन्द्र नामके कई कवियोंका विविध ग्रंथोंमें उल्लेख है, मिश्रबंधु विनोद

हिन्दी साहित्य (डॉ. धीरेन्द्र वर्मा) राजस्थानी भाषा और साहित्य, राजस्थानका पिंगल साहित्य, राजस्थानके राजघरानोंकी हिन्दी सेवा, नागरी प्रचारिणी सभाकी खोज रिपोर्ट,हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथोंकी विवरणात्मक सूची तथा उदयपुर साहित्य संस्थान द्वारा प्रकाशित राजस्थानमें हिन्दीके हस्तलिखित ग्रंथोंकी खोज आदिमें शिवचन्द्रका नामोल्लेख है। किन्तु किस ग्रंथका लेखक किस कालका कौन-सा शिवचन्द्र कवि है यह निर्णय किसी शोधकर्ता विद्वान्ने नहीं किया। हर्षका विषय है कि डॉ. दीक्षितने इस दुःसाध्य कार्यको अपने हाथमें लिया और शोधकी वैज्ञानिक प्रविधिसे इस समस्याका हल प्रस्तुत किया। बाह्य साक्ष्योंकी जाँच पड़ताल करनेके बाद जब कोई प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध नहीं हुआ तब विद्वान् सम्पादकने अन्तःसाक्ष्यके आधारपर इस समस्याका हल खोज निकाला। उन्होंने प्रताप पचीसीके छन्दोंके आधारपर यह सिद्ध किया है कि प्रताप पचीसीके प्रताप साहि राजा बाघसिंहके पुत्र थे। बाघसिंह किशनगढ़के महाराजा प्रतापसिंहके विशेष कृपापात्र थे। मुहणोत प्रतापसिंहके पिता बाघसिंह सन् १७७४ में किशनगढ़के फौजबख्शी थे। इन समस्त अनुमान आदि प्रमाणोंके आधारपर कवि शिवचन्द्रका रचना काल विक्रमकी १८वीं शतीके अन्त तथा ईसवी सन् की १९'वी शतीके प्रारंभमें सम्पादकने स्थिर किया।

प्रताप-पचीसी काव्य-दोषोंका निरूपण करनेवाला लघुकाय ग्रंथ है। नामसेही स्पष्ट है कि इसमें पच्चीस पद होंगे किन्तु पद संख्या लक्षण उदाहरण मिलकर ५१ हैं। जिन दोषोंपर लेखकने लक्षण दिये हैं वे तो २१ ही है। ऐसी स्थितिमें प्रताप-पच्चीसीके नामकरणका कारण लक्षण-निरूपक दोहोंकी संख्याको ही मानना चाहिये। सम्पादक महोदयभी इसी मतका समर्थन करते हैं। एक विशेषता इस ग्रंथकी और है जिसकी ओर साधारणतः पाठकका ध्यान नहीं जाता किन्तु सम्पादकने उस विशेषता का निर्देशकर दिया है। कविने दोष निरूपणमें लक्षणके साथ जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं उनमें प्रतापसिंहके व्यक्तिगत दोषोंपर भी कविकी दृष्टि रही है। इसीलिए एक स्थानपर इस पचीसिकाको 'बाघके प्रतापकी अकीरति कहानी-सी' लिखकर स्पष्ट कर दिया है।

दोषन दिखाइबेकों गुन समुझाइबेकों
कवि रिझाइवेकों, महावाक बानी-सी।
[illegible] ...वारनकों
सूर सिरदारनकों, सिच्छाकी निसानी-सी।
मन मगरूरनिकों, कृपन करूरनिकों
मान काटिबेकों, भई तीछन कृपानी-सी।
कवि सिवचन्दजू, पचीसिका बनाई यह
बाघके प्रतापकी अकीरति कहानी-सी।

कवि शिवचन्द्र रचित प्रताप-पचीसीको पढ़कर कविके छन्द ज्ञान, भाषा ज्ञान, विषय ज्ञान आदिका अच्छा परिचय मिलता है। रीतिकालीन कवियोंकी सुदीर्घ शृंखला की यह लघुकाय रचना दोष विवेचनमें निर्दोष रचनाके रूपमें स्वीकृत होगी। सम्पादक महोदयने पाठालोचनकी वैज्ञानिक पद्धतिसे इसके छन्दोंको शुद्ध रूपमें मुद्रितकर पाठकोंके लिए अत्यन्त सुबोध बना दिया है। शब्दार्थ और टीकासे 'यह ग्रंथ और अधिक उपयोगी बन गया है। दोष-निरूपणके विषयमें रीतिकालके अन्य कवियोंने जो ग्रंथ लिखे उनमें प्रताप-पचीसी लघुकाय होनेपर भी दोषके स्वरूप-निरूपणकी दृष्टिसे उल्लेख्य है। बलभद्र मिश्रका 'दूषण विचार', रघुनाथ बंदीजनकृत 'दूषण उल्लास', रसिक गोविन्दकृत 'दूषण हुलास, ग्वाल कविकृत 'दूषण दर्पण', उदयचन्द्र भंडारीकृत दूषण दर्पण आदि ग्रंथोंका अपना महत्त्व है किन्तु कवि शिवचन्द्रकी शैलीमें विशेषता यह है उसने प्रतापसिंहके दोषों को इस काव्य कृतिमें बड़ी वक्र शैलीमें समेटा है। वचन-वक्रता, कथन भंगिमा और श्लेषके चमत्कारने इसके चारुत्वको द्विगुणितकर दिया है। रीतिकालके ऐसे श्रेष्ठ ग्रंथके वैज्ञानिक शैलीसे सम्पादित करनेका श्रेय डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षितको है। वे बधाईके पात्र हैं।

☐ **डॉ. विजयेन्द्र स्नातक**

राम-काव्यके प्रगतिशील आयाम

लेखक : डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे; प्रकाशक : सत्येन्द्र प्रकाशन, ६० पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-६। पृष्ठ : १२८; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

रामकाव्यकी प्रगतिशीलता उसके लोकमंगलमें है इसीलिए वह वाल्मीकिसे लेकर नरेश मेहतातक संजीवनी बूटी तथा अक्षय प्रेरणास्रोत बना हुआ है। डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबेने इसी मूल आसवको अपने इस ग्रन्थमें रेखांकित किया है। इसमें बिन्दुसे सिंधुकी मांगलिक यात्राकी

है। समूचे विश्वकी रामकथा तथा रामकाव्यको आकलित किया गया है। एक ओर आदिवासियोंकी रोचक तथा विचित्र रामकथा है तो दूसरी ओर एशियाई देशोंके रामाख्यानको प्रस्तुत करके, लेखकने अपने फलकको व्यापकत्व तथा सर्वांगीणता प्रदान की है। शबरीकी प्रासंगिकताको लेकर डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबेने अपने ग्रन्थके शीर्षकके साथ पूर्ण न्याय किया है। रामकाव्यमें सामाजिकता तथा तुलसीकी रचनात्मकतामें युगकी हिस्सेदारी जैसे प्रबुद्ध पक्षों और राम, रावण, उर्मिला, हनुमान जैसे पात्रोंको अपने आधुनिकतामें मण्डित विवेचनका मुख्याधार बनाकर, लेखकने अनछुए पार्श्वोंको उद्घाटित किया है। डॉ. दुबेकी तुलनात्मक अनुशीलनकी दृष्टि रामकाव्यकी ऐतिहासिकता, इतिवृत्तात्मकता तथा विकासोन्मुखताके साथ तब औचित्य निरूपण करती है जबकि वह तुलसी, केशव आधुनिक हिन्दी कवियों आदिके रामके पार्थक्यको विश्लेषित करती है। इसी प्रकार लोककवि ईसुरीके रामकाव्यसे लेकर महाकवि सूरदासके विस्मृत रामकाव्य, केशव, रहीम, पद्माकर और सुमित्रानंदन पंतके रामकाव्यकी संस्थितियों तथा विशिष्टताओंमें डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबेने हमारे दृष्टिपथको सर्वतोमुखी बनानेकी सफल चेष्टा की है। डॉ. दुबेके गहन तथा सघन अध्ययन को उस समय विशेष क्षेत्र मिलते हैं जब वे बुन्देली, जैन रामायण और यूरोपमें तुलसीकी तुरहीको बजानेवाले जार्ज ग्रियर्सनको अपनी समीक्षाके आवर्तमें समेटते हैं।

डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबेने महाकवि कालिदास, जैन रामायण 'पउम चरिउ' और गुजरातकी रामकथा तथा 'साकेत' को अपने ग्रन्थमें महत्त्वपूर्ण संस्थिति देकर सचमुच रामकाव्यके मंगलघटको जलसे आप्लावित दिया है। यदि बाल्मीकिके राम आधुनिक संशयशील इन्सानके निकट हैं तो तुलसीके मर्यादावादसे मण्डित परन्तु रीतिकालमें उनको सामंती परिवेशसे आपूर्ण करके, कृष्णकी भांति स्थापित कर दिया गया है। इन बारीक रेखाओं और अन्वितियोंको इस पुस्तकमें बड़ी कुशलताके साथ विमोचित किया गया है। डॉ. दुबेका नज़रिया साम्प्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता तथा भावनात्मक ऐक्यका भी रहा है इसीलिए उन्होंने मुस्लिम कवियोंसे लेकर आर्यसमाज तथा महात्मा गांधीके चिंतन कणोंको भी संसार व्यापी रामकथाके परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत करनेका सार्थक प्रयास किया है।

रामकथा अग-जगमें फैली है। वह रामसे भी बड़ी है। यहां राम नहीं गये—वहां उनका वृत्त चला गया। वह युगकी न होकर युग-युगोंकी है। उसने समयके तकाजे के साथभी तालमेल किया है। उसमें सन्दर्भ एवं पर्यावरण के अनुकूल परिवर्तित तथा ढलनेकी अपूर्व क्षमता तथा सामर्थ्य है। इस ग्रन्थमें इन्हीं मनन-विन्दुओंकी रेखाओंमें शाश्वत रंग भरे गये हैं। पुस्तकका आवरण पृष्ठ आकर्षक नयनाभिराम है। छपाई-सफाई तथा प्रस्तुतीकरण सन्तोषजनक है।

☐ गणेशदत्त त्रिपाठी

हिन्दी-साहित्यका प्रवृत्यात्मक इतिहास

लेखक : डॉ. शिवमूर्ति शर्मा; प्रकाशक : किताब महल, १५, थार्नहिल रोड इलाहाबाद। पृष्ठ : ३८४; डिमा. ८२; **मूल्य** : १७.०० रु.।

पुस्तक नौ अध्यायोंमें विभक्त है—१. हिन्दी : उत्पत्ति, विकास और नामकरण, २. हिन्दी-साहित्यके आदि कालकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, ३. काल-विभाजन, ४. हिन्दी-साहित्यका आदिकाल, ५. हिन्दी-साहित्यका मध्यकाल, ६. हिन्दी-साहित्यका उत्तर मध्यकाल, ७. हिन्दी-साहित्यका आधुनिक काल, ८. हिन्दी-गद्यका विकास, ९. वर्तमान हिन्दी-गद्यकी विविध विधाएं। ये सभी अध्याय यथानुसार उपशीर्षकोंमें विभक्त हैं।

यत्र-तत्र लेखकका अपना निजी चिन्तन एवं नवीनता दृष्टिगत होती है किन्तु सब मिलकर पुस्तक परम्परागत इतिहासोंसे भिन्न नहीं है। हिन्दी-साहित्येतिहासकी सर्वांगपूर्णताके लिए अभी बहुत कुछ आवश्यक है। इसी पुस्तकमें श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदीने 'भूमिका' में इस अभाव की ओरसंकेत किया है—'अभी तो मैथिली-जैसे समृद्ध साहित्यसे केवल विद्यापतिको ही लिया जा सका है। पूरा प्रचलित उर्दूका साहित्य अछूताही रह गया है। हिन्दीतर प्रदेशों तथा देशविदेशमें लिखे जानेवाले साहित्य का समावेश करना शेष है। हिन्दीके लोक-साहित्यका इतिहासभी साहित्यिक इतिहासमें कमही स्थान पा सका है। आल्हाका उल्लेख मात्र होकर रह गया है।' (भूमिका, पृ. ८)

क्या प्राकृत-अपभ्रंश तथा हिन्दी एकही भाषा हैं? अगर नहीं तो क्या प्राकृत-अपभ्रंश साहित्यभी हिन्दी-साहित्यमें समाविष्ट होना चाहिये अथवा हो सकता है? इसपर भी हिन्दी साहित्यके इतिहासोंमें विवेचन होना चाहिये।

हिन्दी-साहित्यके प्रवृत्यात्मक इतिहास कमही लिखे

गये हैं, इस दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। लेखकके अनुसार इस पुस्तकमें 'कवियोंके जीवन-चरित और उनकी रचनाओंके नाम परिगणनपर अधिक बल न देकर, भरसक प्रयास किया गया है कि युगीन परिवेशके परिप्रेक्ष्यमें हिन्दी-साहित्यकी गतिविधियोंको अंकित किया जाये।''

आदिकाल और मध्यकालके लिए उक्त कथन सत्य हो सकता है किन्तु आधुनिक कालके विवेचनमें (मुख्य रूपसे गद्यकी विधाओंमें) लेखकने अन्य छोटे-मोटे इतिहासोंकी भाँति चलता हुआ विकासात्मक इतिहासही दिया है। उन सभी विधाओंका अथवा आधुनिक कालके गद्यके प्रवृत्तिमूलक विवेचनका यहाँ अभाव मिलता है। उत्तर स्थानाभाव हो सकता है किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि हिन्दी-साहित्यके बृहत् इतिहासका वर्णन-विवेचन मात्र चार सौ पृष्ठोंमें ही किया जाये। संक्षेपमें विवेचन करनेका एक कारण विद्यार्थियोंको दृष्टिपथमें रखनाभी हो सकता है किन्तु इस पुस्तकके आधुनिक कालमें जितनी सामग्री दी गयी है, उससे छात्रोंकी भी माँग पूरी नहीं हो सकेगी। फिरभी सब मिलाकर पुस्तक विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी है।

□ कमलसिंह

उपन्यास

कई अन्धेरोंके पार

लेखक : से. रा. यात्री; प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १३७; क्रा. ८१; मूल्य : १६.०० रु.।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्यमें भारतीय जीवनकी झांकी प्रस्तुत करनेवाले लेखकोंमें से. रा. यात्री एक परिचित नाम है। उनकी अधिकांश रचनाएँ मध्यवर्गीय परिवेश और मनोविज्ञानके बहुत निकट हैं जो व्यक्ति और समाजके भीतर उतरकर उनके अंतरंग संसारका वास्तविक बोधही नहीं करातीं, अपितु दुखती रगके समाधानकी तलाशभी करती हैं। 'कई अंधेरोंके पार' उनका नवीनतम उपन्यास है जो मध्यवर्गीय मनोदशा (मन और दशा) पर केन्द्रित है।

धीरेन्द्र निम्न मध्यवर्गीय अभावग्रस्त आठ प्राणियोंके परिवारका बोझ ढोनेवाले एक ऐसे दुखी पिताका पुत्र है जो दलालीके पेशेमें परखीसे निकाले गये सतनजेके बलपर दो जूनकी रोटीभी नहीं जुटा पाता। यही कारण है कि हायर सेकेन्डरी परीक्षा उत्तीर्ण करतेही धीरेन्द्रको किरानाकी नौकरी करके परिवारको सहयोग देनेके लिए विवश होना पड़ता है। जीवन और ओढ़ी गयी प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखनेकी अनिवार्यता तथा अभावोंकी दुर्निवारताके कारणही उसकी माँ जहाँ अपने उन छोटे-छोटे बच्चोंको थेगड़ोंसे ढाँकती है वहीं रुखा-सूखा खाकर अपने दो कमरेके छोटे-से मकानका एक कमरा किरायेपर उठाकर गृहस्थीकी जर्जर गाड़ीको दलदलसे बाहर निकालनेका कष्टकर प्रयास करती है। अभावोंकी मारसे त्रस्त और जीवनसे निराश पिता अंततः परिवारसे उदासीन-सा होकर जीने लगता है। परिणामतः धीरेन्द्र सहित पूरा परिवार लघुता, हीनता और दुर्बल मानसिकताका शिकार हो जाता है।

शालिनी एक ऐसी विधवाकी पुत्री है जो बादमें एक अन्य दो पुत्रवाले विजातीय विधुरसे शादीकर लेती है। शालिनीने जीवनके प्रारम्भमें दुःख और दरिद्रताके वे समस्त कष्ट झेले हैं जो एक अभावग्रस्त पिताहीन परिवारको झेलने पड़ते हैं। तभी तो उसेभी नौकरी करनेके लिए मजबूर होना पड़ता है। इसी शालिनीसे धीरेन्द्रका प्रेम विवाह हो जाता है। विवाहका कारण उसकी देहाकृतिही नहीं है, बल्कि उसकी नौकरीसे होनेवाली आयभी है। विजातीय पिता और भाइयोंसे उपेक्षित शालिनी धीरेन्द्रकी पत्नी बनकर उस छोटे और अभावग्रस्त मकान तथा परिवारसे जुड़कर बहुत प्रसन्न होती है और स्वयं कष्ट सहकरभी परिवारको संभालनेमें तन-मन-धनसे जुट जाती है। परिवारजनोंमें वह पूर्णतः घुलमिल जाती है।

परिवारिक बोझ और अ[illegible] है । शालिनी अपने संकल्पके प्रति दृढ़ रहती है कि वह कांक्षाओं और हीनतासे प्रताड़ित धीरेन्द्र जहाँ जी-जानसे जुटकर अपने माता-पिता और परिवारजनोंका जीवन संभालकर किसी प्रकार किनारा पानेकी चेष्टा करता है, वहीं शालिनीके विजातीय पिता और भाईयोंके स्वार्थी षड्यंत्रसे धीरेन्द्रके ऊपर मुसीबतोंका पहाड़ टूट पड़ता है । पहले तो ससुरालवाले धीरेन्द्रको उसकी गरीबी और दरिद्रता आदिका बखान करके उसे अपमानित करते हैं और चाहते है कि शालिनी अपने जेवरों सहित उनके साथ आकर रहे ताकि उसकी तनख्वाहकी राशि उन्हेंही मिलती रहे । जब इसकी पूर्ति नहीं होती तो वे उसपर शालिनीपर किये जानेवाले झूठे अत्याचारोंका आरोप लगाकर तलाक दिला देते हैं । इसमें शालिनीका न कोई हाथ होता है और न धीरेन्द्रका अपराध । परिणामतः इस धक्के और तमाम चिन्ताओं तथा तनावोंके कारण धीरेन्द्र पागल हो जाता है ।

जीवनकी कठिनतम दुःखद स्थितियोंको झेलते हुए अंततः जब धीरेन्द्र पुनः नौकरीमें लग जाता है तो उसकी शादी सुशीला नामक ग्रामीण कन्यासे हो जाती है जिसमें न तो कोई चतुराई है और न महत्त्वकाँक्षाएं, न फैशन । दिनरात काम करते हुए पति और परिवारजनोंकी सेवा करनाही वह अपना कर्तव्य और धर्म मानती है । दो बच्चोंकी माँ सुशीला जब एक बार मायके गयी होती है तब धीरेन्द्रकी भेंट अचानक बाजारमें शालिनीसे हो जाती है । फलतः अतीतकी समस्त घटनाएँ दोनोंके सामने एक बार पुनः घूम जाती हैं । वे एक-दूसरेके आत्मीय होकरभी निकट आनेमें संकोच करते हैं क्योंकि स्थितियाँ बदल चुकी हैं । शालिनी धीरेन्द्रके वर्तमान सुखी और व्यवस्थित जीवनको बरबाद करनेके लिए तैयार नहीं है क्योंकि वह जानती है कि अतीतमें जो भी हुआ उसका कारण वह स्वयं है ।

पिता और भाइयोंसे प्रताड़ित और उपेक्षित शालिनी जब अलग कमरेकी तलाशकी बात धीरेन्द्रसे करती है तो वह अपने मकानमें कमरा खाली होनेकी सूचना देकर वहीं रहनेकी सलाहभी भावना और आकर्षणवश दे डालता है । व्यक्ति ठोकर खाकरभी कई बार मानवीय दुर्बलताओंका शिकार हो जाता है । शालिनी सुशीलासे मिलकर उस कमरेमें किरायेदारिनके रूपमें ममता नामसे रहने लगती है और अतीत प्रसगोंको छिपा लेती है । शालिनीको निकट पाकर धीरेन्द्र उसका देह-सुख पानेके लिए आतुर हो जाता अपने किसीभी कार्य अथवा आचरणसे साध्वी सुशीलाके साथ धोखा नहीं करेगी । इसीलिए वह धीरेन्द्रसे दूर भागती रहती है । वह धीरेन्द्रसे स्पष्ट कह देती है कि 'आपके भीतर जो ज्वालामुखी है वह मेरे भीतरभी कम नहीं है । मगर उसका विस्फोट कितना विध्वंसकारी है—इसे शायद आप नहीं जानते । मैं एक बसी-बसायी सुखी गृहस्थीको अपने हाथों बरबाद नहीं होने दूँगी—इसके लिए मुझे चाहे कुछभी करना पड़े ।'...आप अपने निकट मुझे देखना चाहते हैं तो फिर मुझे गलत न समझिये । मैं सुशीलाके पीठ पीछे कोई ओछापन नहीं करूँगी ।' जैसे ही उसे यह प्रतीत होता है कि धीरेन्द्र उसके भीतर भावों को न समझकर दैहिक आकर्षणके प्रति उत्तेजित और बावला हो रहा है और यदि यही स्थिति रही तो किसी दिन सारा परिवार इस आंचमें झुलस जायेगा, वह एक रात्रि धीरेन्द्रकी सुख और शाँतिके लिए निर्लिप्त भावसे देह सौंपकर दूसरे दिन कमरा खालीकर वहाँसे जानेका निश्चयकर लेती है । शालिनीके स्नेह, समर्पण और सरल स्वभावसे प्रभावित सुशीला जब दूसरे दिन कमरा खाली करनेका शपथपूर्वक कारण पूछती है तो शालिनी सारी घटनाओंको उजागर कर देती है ।सुशीला सब कुछ जानकर अचंभिततो होती है, परन्तु विचलित नहीं होती । बल्कि अपनी उदारतासे उन दोनोंके टूटे रिश्तोंको जोड़कर अपने माध्यमसे एकाकार कर देती है ।

उपन्यासका ताना-बाना जहाँ मध्यमवर्गीय परिवारों की निर्मम परिस्थितियोंका चित्रण करता है, वहीं उस वातावरणमें जीनेवाले व्यक्तियोंकी हीनता, लघुता, विवशता, द्वन्द्व, तनाव और टूटी आकांक्षाओंके खंडहरों तथा बनते-बिगड़ते रिश्तोंको भी उद्घाटित करता है । तमाम आकाँक्षाओंको रौंदकर कष्ट सहते हुए जर्जर गाड़ी को खींचनेवाले मध्यवर्गीय मनुष्यका वहाँ जीवन है तो दूसरोंका पारिवारिक जीवन बरबाद करनेवाले उच्च मध्यवर्गीय लोगोंकी स्वार्थी पशुताभी ।

उपन्यासकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें मध्यवर्गीय नारीकी स्थिति और मनको उजागर करनेकी भरपूर चेष्टा की गयी है । नारी केवल शरीरही नहीं—जिसको केवल भोगा जाये—वह समाजकी जीवित इकाई है जिसके शरीरके भीतर मन और प्राण, बुद्धि-विवेक और चरित्रभी है । उसे देखने समझनेके लिए कोई तैयार नहीं है । यही कारण है कि धीरेन्द्रकी गृहस्थीमें पत्नीके

रूपमें पूर्ण मनसे सहयोग करनेवाली शालिनी अपने पिता के अनर्थकारी षड्यंत्रमें साथही नहीं देती लेकिन मध्य-वर्गीय परिवारकी दुखद मर्यादा और विवशताके कारण खुलकर विरोधभी नहीं कर पाती क्योंकि वहाँ लड़की या वधूको ऐसा कोई अधिकारही प्राप्त नहीं है। तभीतो उपन्यासकी सबसे सात्त्विक पात्रा शालिनीको सारे दुष्प-रिणामोंका केन्द्र बनना पड़ता है। वह धीरेन्द्रके निकट दुबारा पहुंचकर सब कुछ देकर भी बदलेमें कुछ पाना नहीं चाहती। सब कुछ सहनेको सहमत है किंतु सुशीला से छल-कपट स्वीकार नहीं। जब सुशीला समाधान उप-स्थित करती है तो वह सहर्ष स्वीकारकर लेती है, जहाँ कोई शर्त नहीं है।

भटकती जिन्दगीको जोड़नेकी यह अप्रत्याशित आदर्श भावुक घटना न तो व्यावहारिक लगती है और न ही विश्व-सनीय। अपमानके कितनेही घूँट पीनेवाला धीरेन्द्र शालिनीसे अकस्मात् भेंट होनेपर जब उसे कमरा किराये पर देना स्वीकार करता है तो अजीब-सा लगता है क्योंकि इतनातो वे दोनोंही जानते हैं कि दो कमरेके मकानमें आजू-बाजू रहकर वे एक-दूसरेसे बच नहीं सकते और न ही परिवारको उस आगसे बचाया जा सकेगा, न उस तथ्यको ही छिपाया जा सकेगा कि शालिनी उस घर की बहू रह चुकी है। इसीलिए शालिनीकी बादकी दृढ़ता उसके भीतरी भावके प्रति शंकाभी उत्पन्न करती है, भले ही वह उत्तम मानवीय भावनाके कारण ही हो। निकटता के दुष्परिणाम शीघ्रही दिखायी देने लगते है। संभवत: यही कारण है कि लेखकको विवश होकर घटनामें इस प्रकारका अव्यावहारिक मोड़ देना पड़ा ताकि कथाको अनियंत्रित होनेसे बचाया जा सके। इसीलिए उसने सुशीला को आदर्श उदार महान् देवीके रूपमें प्रस्तुत किया है जो आजके समाजमें अकल्पित लगती है।

यात्री कथा-संयोजन और रस-निष्पादनमें कुशल हैं। इसी कुशलताके कारणही पाठक उपन्यासके सभी हल्के-गहरे, ऊँचे-नीचे अंधेरेको पार करता हुआ अंततक पहुँच जाता है। भाषाके प्रतिभी कोई आग्रह नहीं है। भाषा और संवाद योजना आत्मीय लगती है। मध्यवर्गीय हीनग्रंथिवाले व्यक्तिके मनोविज्ञानका प्रस्तुतीकरणभी सहज और स्वाभाविक है जिसके लिए पृ. ४५, ६०, ६२, ९०, ९२ आदिके प्रसंग देखेजा सकते हैं।

कुल मिलाकर यह एक रोचक उपन्यास है जिसमें मध्यवर्गीय जीवनकी झलक प्रस्तुत करते हुए इस तथ्यको उभारनेकी चेष्टा की गयी है कि नारी देहभोग और शोषण की ही वस्तु नहीं है उससे आगेभी बहुत कुछ है जिसको जीवनकी सम्पन्नताके लिए जानना-समझना बहुत आव-श्यक है।

▭ डॉ. गंगाप्रसाद गुप्त

बीते कलकी छाया –

लेखक : श्रीचन्द्र अग्निहोत्री; प्रकाशक : शब्दकार, २२०३ गली डकोतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली—६। पृष्ठ : २३७; का ८१; मूल्य : २२.०० रु.।

जमींदार बोधसिंहका वंश तीन पीढ़ियोंसे गोद लेकर ही चलता आरहा था और उन्हेंभी अपनी वंश-परम्परा कायम रखनेके लिए जग्गूको गोद लेना पड़ा। सामान्य कृषक रिछपालका लड़का जग्गूसे जगजीतसिंह बन गया। निम्नवर्गीय संस्कारोंमें पला-बढ़ा जग्गू राजसी संस्कारोंमें अपनेको फिट न कर पाया किन्तु राजा साहब बोधसिंहने उसे सामन्ती-व्यवस्थामें ढालही लिया। शिक्षा-दीक्षा, तौर-तरीके, रीति-रिवाज, सारी सामन्ती प्रथाओंसे वह अवगत हो गया। लेकिन समयका बदलाव, जमींदारी प्रथा समाप्त होने लगी, बोधसिंहका स्वर्गवासहो गया, जग-जीतसिंह विलासोन्मुख हुआ और बोधसिंहका स्वप्न अधूरा रह गया। बोधसिंहकी पत्नीभी एक दिन जग-जीतको छोड़कर पीहर चली गयी, फिर कभी न लौटी। जगजीतने विलासितामें सब कुछ फूँक दिया, शराब और वेश्याओंके चक्करमें। प्रयत्न करनेपरभी वह अपनी जमीं-दारीको न बचा पाया और इसी चिन्तामें घुटकर एक दिन मृत्युको प्राप्त हो गया। रह गयी अकेली जगजीतसिंहकी पत्नी शिवकली। मक्खन सेठका जगजीतसिंहपर काफी कर्ज हो गया था तो वणिकवृत्तिसे उसने हवेलीको किराये पर लेकर हथियाही लिया। यही कथा है 'बीते कलकी छायामें।'

लेखकने अपने पूर्व प्रकाशित उपन्यास 'नयी बिसात' की भाँतिही प्रस्तुत उपन्यासकी कथाको भी ग्रामीण परि-वेशसे ही उठाया है। कहानीके केन्द्रमें है जगजीतसिंहजो जग्गूसे जगजीत बनकर सामन्ती प्रथाका शिकार बनकर रह गया। लेखकने जगजीत सिंहके माध्यमसे सामन्ती परिवेश और उसकी विसंगतियोंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की है। उपन्यास चरित्र प्रधान न होकर घटना प्रधान है।

समयके साथ सब कुछ बदल जाता है। जब जमीं-

दारी प्रथा न रही तो सामन्तोंका प्रभावभी न रहा, अब वे भी सामान्य धरातलपर उतर आये। जिस बोधासिहका दबदबा सारे गांव और तअल्लुकेमें था, उसका परिवार दयनीयावस्थामें पहुँच गया। जगजीतके कायापलटके साथ-साथ ग्रामीण परिवेश और ग्रामीणोंकी बदलती मानसिकताका भी उद्घाटन हुआ है। सरकार जमींदारी प्रथा खत्मकर रही है, अब सामन्तोंका उतना प्रभाव नहीं रहा तो लोग उनसे क्यों डरें? इसका उदाहरण है मक्खन जो पंसारीसे सेठ हो गया और जिसने जगजीतको कर्ज देकर हवेलीपर कब्जाकर लिया। लेखकने यथास्थान जमींदारी और सामन्ती व्यवस्थापर भी चोटकी है 'पापाको तो बड़े आदमियोंसे चिढ़ है रूबीने मनही मन कहा। राजाओं, रईसों और जमींदारोंसे जिनको पापा कुछ जोर देकर सामन्त कहते हैं प्रिजुडिस (पूर्वाग्रह) भी है। उनके लिए संस्कृतिके अलमबरदार हैं कुलमी-कबाड़ी, कारखानों के मजदूर, हल जोतनेवाले किसान'। (पृ. ३२)

लेखकने एक सामन्ती परिवारके अवसानकी कथाको केन्द्र बनाकर परिवेशगत बदलावकी स्थितियोंको रेखाँकित करनेका प्रयास अवश्य किया है किन्तु आजके जीवन की किसी विसंगति अथवा समस्या विशेषका यथार्थ उद्घाटन नहीं हो पाया। लेखकने उपन्यासके अन्तमें जिस बातपर अधिक जोर दिया है 'बहूरानी जमाना बदल रहा है बड़ी तेजीसे बदल रहा है। हम सब तुम, हम ओ लाला सिरीपत हैं बीते कलकी छाया, तीसरे पहरकी परछाई' जो आदमीके आगे-आगे चलती है आदमीसे लम्बी रहती है, ये है वह तीसरे पहरकी परछाईं। कगारपर के रूख हैं हम सब माटी जिनकी जड़ें छोड़ चुकी है। एक रेला आया कि न जाने किस पतालमें बिला जायेंगे।'— इसमें लगता है लेखकने परिवर्तनको लक्षित करते हुए समयके प्रभावको रेखांकित करनेका ही प्रयास किया है। कथा ग्राम जीवनसे सम्बन्धित होते हुएभी उसकी आन्तरिकता और व्यापकतासे पूरी तरह जुड़ नहीं पायी है। यद्यपि उपन्यासका अन्त दुखांत है किन्तु पाठकको किसी भी धरातलपर झकझोरता नहीं, जैसे सब कुछ योंही घटित हो गया। कथाकी तीव्रगामिताभी संवेदनागत प्रभावको पाठकतक पहुंचानेमें बाधाही उपस्थित करती है।

एक बात अवश्य कही जा सकती है कि लेखकने ग्रामीण परिवेशको जीवन्त बनानेके लिए ग्रामजीवनकी प्रथाओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों आदिका स्थान-स्थानपर उल्लेख किया है, इससे कृतिमें रोचकता आयी है। लेखकने उपन्यासके माध्यमसे कुछ प्रश्न अवश्य खड़े किये हैं— जमींदारी प्रथाकी समाप्तिपर छोटे किसानोंपर क्या बीतती है। महाजनी व्यवस्था कैसे पनपती है? प्रेमका नाटक रचाकर धोखा देनेवालेके साथ प्रेमिका कैसा व्यवहार करती है? जाति, धर्म, विवाह आदि समस्याओंको किस कोणसे देखा जाता है? आदि। किन्तु इन प्रश्नोंका कोई उचित हल उभरकर नहीं आया है।

कहना न होगा कि अगर लेखक वाह्य परिवेशके साथ-साथ ग्राम जीवनके आन्तरिक यथार्थका उद्घाटन करता तो कृति निःसन्देह विशिष्टता पा लेती। फिरभी लेखकने जिस क्षेत्रको कथाका आधार बनाया है, वहाँकी संस्कृति रीति-रिवाज और भाषाका पुट कृतिमें है और इस कारण यह कृति आंचलिकताके निकट पहुँच गयी है, जो इसकी यथार्थताका प्रमाण है। यत्र-तत्र कहावतों व मुहावरोंका प्रयोग व्यंग्यात्मकता और पात्रानुकुल भाषासे कृति सजीव बन पड़ी है। लेखकका प्रयास इसलिएभी प्रशंसनीय है कि वह ग्रामीण परिवेशसे जुड़ा है जिस परिवेशके उद्घाटनका साहस कमही लेखक कर पाते है।

□ डॉ. भैरु लाल गर्ग

गांवकी ओर

लेखक : मधुकान्त; प्रकाशक : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के-७१ कृष्णनगर, दिल्ली-११००५१। पृष्ठ : १८६; डिमा. ८०; **मूल्य** : ३०.०० रु.।

'ऐसा लगा जैसे कोई जलती मशाल लेकर आकाश में उतरा था और सारे गांवको रोशनकर कहीं चला गया अपनी मशालकी रोशनी फैलाने दूसरे गांवकी ओर।' (पृ. १८६)। समीक्ष्य उपन्यासके अन्तकी ये लेखकीय पंक्तियां उपन्यासका अन्तभी है और प्रारम्भभी, क्योंकि उपन्यासकी रचना एक निश्चित केन्द्र बिन्दु अथवा विचारको सामने रखकर की गयी है जिसे लेखकने 'कुछ मेरी' में स्पष्ट किया है:—'यदि हमें भारतको सम्पन्न देखना है तो हमें गांवमें जाना होगा। यह माना कि वहां पर सुविधाओंका अभाव है परन्तु जिन्दगीको जिया तो जायेगा, आनन्दकी प्राप्ति तो होगी। मेरे उपन्यासका भी यही उद्देश्य है।'

अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए लेखकने एक एम. बी. बी. एस. डाक्टर रसेन्द्रको केन्द्र-बिन्दु बनाया है। रसेन्द्र स्वत: गांवकी ओर आर्कषित नहीं होता—इसके मूलमें उसके पिता चौधरी हंसपालकी प्रतिज्ञा कि वह अपने लड़केको डाक्टर बनाकर गांववालोंकी सेवामें लगायेंगे। चौधरी हंसपालकी प्रतिज्ञाका भी कारण है एक महं

अस्पतालमें उसके साथ हुए दुर्व्यवहारकी प्रतिक्रिया। रसेन्द्रने पिताको दिये हुए वचनका पालन किया और इस उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायक बने चौधरी हीरालाल। गांवको केन्द्र-बिन्दु बनाकर लेखकने गांवोंमें फैली गरीबी अशिक्षा, अन्धविश्वास, बेरोजगारीका चित्रण किया है और डॉ. रसेन्द्रके माध्यमसे उन्हें शिक्षा, सहकारिता, स्वच्छता, परिवार नियोजन 'मद्य निषेध'की शिक्षा दी गयी है और बंधुआ मजदूरोंको छुटकारा दिलाया गया है।

समीक्ष्य उपन्यासके सभी पात्र, चौधरी हीरालाल, हजारीलाल, बदलूसिंह, भैरवी, केशव, रामू, डॉ. कपूर, डॉ. राजीव, मास्टर कृपाराम नायक रसेन्द्रके महान, उद्देश्यकी पूर्तिमें लगे हैं। चौधरी बदलूसिंह, छबीली, पुजारी हजारीलालकी दुर्भावनाएं मसीहा डॉ. रसेन्द्रके प्रभावसे समाप्त हो जाती हैं।

इसप्रकार समीक्ष्य उपन्यास आदर्शकी शमांसे प्रकाशित है। उपन्यासमें रसेन्द्र और मेणालीकी कोमल भावनाओंका आदर्श तथा सूक्ष्म चित्रण हुआ है। यद्यपि 'आदर्शकी बात करना तो बड़ा आसान है लेकिन उन्हें जीवनमें निबाहना कितना कठिन है—' (पृ. १४४), फिरभी नायक रसेन्द्र आदर्शका निर्वाह करनेमें सफलता प्राप्त करता है और मेणालीको अपनेही हाथोंसे विदा करता है। यथार्थकी दृष्टिसे मेणाली और रसेन्द्रका प्रेम इतना वायवी है जो किताबोंमें ही मिल सकता है अथवा जिसका निर्वाह बुतही कर सकते हैं। परन्तु मेरे विचारसे लेखकने नायक रसेन्द्रके अन्तर्द्वन्द्वकी अभिव्यक्तिके साथ जिस आदर्शकी रक्षा की है—वह नायकके लक्ष्यके लिए तो उचितही है—साथही एक अन्य दृष्टिसे भी उचित है। वह दृष्टि है, शहरी अथवा शहरी हवामें पले युवकोंपर ग्राम सुधारके नामपर लगा लांछन—कि शहरी बाबू किसी गांवकी गोरीको अपने प्रेम जालमें फांसकर धोखा देते हैं। इस प्रकार लेखकने मेणाली और रसेन्द्रके प्रेमके बीच आदर्शका अलंघ्य बाध बांधकर ग्राम सुधारके नाम पर शहरी हवामें पले युवकोंपर लगे कलंकको धो दिया है।

मेणालीका चरित्र मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमिपर खरा उतरा है। एक अबोध बालिकाको जब प्रेमका बोध होता है तो निश्चयही वह उन्मादकी सीमापर जा सकता है जिसकी रक्षा डॉ. रसेन्द्रके आदर्शने की है।

लेखकने एक बात बहुत अच्छी कही है कि सरकार गांवोंके उत्थानकी बात तो बहुत करती है परन्तु गांवोंके उत्थानके सारे आयोजन महानगरोंके आलीशान भवनों और सुख-सुविधाओंके बीच सम्पन्न होते हैं। अतः सरकार और सरकारी मशीनरीको भी गांवोंमें जाना चाहिये। उपन्यासमें शिक्षामंत्रीको गांवमें बुलाकर रसेन्द्र के माध्यमसे लेखकने सरकारका ध्यान इस ओर दिलाया है। एक अन्य विचार जो इस उपन्यासके माध्यमसे सामने आया है और महत्त्वपूर्णभी है—हम अपने सीमित साधनों में सभी गांवोंका उद्धार एकसाथ नहीं कर सकते। इसके लिये कुछ विशेष गांवों अथवा किसी विशेष गांवको चुनना होगा और जब उसका पूर्ण सुधार हो जाये, तब दूसरेकी ओर बढ़ना होगा। डॉ. रसेन्द्र प्रथम गांवको छोड़कर जब दूसरे गांव जाता है तब अप्रत्यक्ष रूपसे इसी भावनाकी अभिव्यक्ति करता है।

समीक्ष्य उपन्यासके माध्यमसे लेखकने मूल्यवान अंग्रेजी दवाइयोंकी समस्याभी सामने रखी है। गांवोंकी प्रकृतिदत्त जड़ी बूटियोंमें रोगोंको जड़-मूलसे समाप्त करनेकी अद्भुत क्षमता है, आवश्यकता है उनपर शोध करनेकी। इसके लिए हमारे देशके डाक्टरोंको आगे आना चाहिये।

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि समीक्ष्य उपन्यास उद्देश्यकी दृष्टिसे सफल है। शीर्षक सीधा-सादा तथा कहानी सपाट है। घटनाएं घटती नहीं, वरन् निश्चित उद्देश्यकी पूर्तिके लिए घटनेको विवश की जाती हैं। चरित्र-चित्रणमें वैविध्य नहीं है। यदि लेखक ध्यान देता तो आजकी बदली परिस्थितियोंमें गांवमें उत्पन्न नयी समस्याओंका चित्रण कर सकता था, यदि ऐसा होता तो निश्चयही उपन्यासको महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता। फिरभी प्रस्तुत उपन्यास रोचक तथा पठनीय है।' उसकी सार्थकता तभी सिद्ध होगी जब युवा पीढ़ीके लोग 'गांवके विषयमें तनिकभी सोचेंगे' (कुछ मेरी)। मुन्शी प्रेमचन्दने भी ऐसाही सोचनेके लिए 'प्रेमाश्रम' बनाया था पर कितनोंने सोचा? हां, जब गांव शहरकी ओर भाग रहे हैं, नगर महानगर बनते जा रहे हैं—नयी पीढ़ी भौतिकतामें लिप्त नगरकी ओर भाग रही हैं तो उनसे कहा अवश्य जा सकता है कि भारत गांवमें है—यदि भारतके बारेमें सोचना है तो गांवकी ओर जाओ। समीक्ष्य उपन्यास सुधारात्मक होनेके कारण यह चेतावनी साहसके साथ नहीं दे पाया है।

❑ शम्भु शुक्ल 'प्रभीत'

सोनिया

लेखक : दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ; प्रकाशक : प्रचारक बुक क्लब, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बॉ १०६, पिशाच-मोचन, वाराणसी-२२१००१। पृष्ठ : १११; क्रा. ८१; मूल्य : ६.०० रु.।

दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ मूलतः नेपाली साहित्यकार हैं, किन्तु हिन्दीमें भी उनका लेखन, गुण और मात्रा दोनों दृष्टियोंसे प्रशस्त एवं अभिनन्दनीय है। व्यापक जीवन दृष्टि और संवेदनाओंकी सूक्ष्म पकड़के कारण उनकी कहानियोंमें वह रोचकता विद्यमान है, जो हर वर्गके पाठकोंको आकर्षित करने और उनकी प्रशंसा अर्जित करनेमें समर्थ है।

'सोनिया' में लेखककी पन्द्रह कहानियाँ संगृहीत हैं, जिनमें से अधिकतर विगत दशकके दौरान हिन्दीकी लोक-प्रिय पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन कहानियों का फोकस प्रमुख रूपसे नेपालके लोक-जीवन और लोक-संस्कृतिपर केन्द्रित रहा है। इनमें नेपालकी पर्वतीय भूमि की आत्मा बसी है क्योंकि इनमें वहांके लोगोंके खान-पान वेशभूषा और आचार-व्यवहारकी सही तस्वीर अंकित है। इनमें वहांके लोकगीतोंकी अनुगूँजें आद्यन्त व्याप्त हैं। कहना न होगा, ये कहानियाँ नेपालके शैल शिखरोंकी तरह आकर्षक वन पड़ी हैं·· स्वच्छ, उज्ज्वल और स्पृहणीय !

किन्तु इन कहानियोंका एक दूसरा पहलूभी है। जो कहीं अधिक वेधक है। आँचलिक सुषमाके माधुर्यके साथ इनमें यथार्थकी कटुता और कठोर जीवनकी तिक्तताभी है। दरअसल अपने आस-पासके जीवनसे जुड़ पाना और उसकी द्रावक स्थितियोंको साहित्यके माध्यमसे मूर्त करना एक सजग साहित्यकारकी नैतिक जिम्मेदारी है, जिसे दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ बखूबी निवाहते हैं। चाहे झाड़-फूँकसे इलाज करनेकी अज्ञानता हो या अभावोंसे लड़नेकी विवशता; चाहे नारी-शोषणकी दारुण वेदनाहो या वैधव्य का विकराल एकाकीपन, चाहे वियुक्त मातृत्वकी पागल तड़प हो या विवश प्रेमकी मौन कसक; चाहे नशेकी घातक परिणतिहो या स्वार्थ प्रेरित व्यवहारपर अवचेतन पश्चाताप—विषमताओं और विसंगतियोंके हर रूपको लेखकने रेखांकित किया है।

'सोनिया' एक मासूम पहाड़ी लड़कीकी 'मास्टरनी बनने' की अधूरी साधकी कहानी है, जिसका कारुणिक अन्त मनपर एक अमिट छाप छोड़ जाता है। 'संदर्भ' एक पदमुक्त अधिकारीकी मनोव्यथा और ग्लानिकी कहानी है, जो अधिकारका गौरव खोकर मणिहीन सर्पकी तरह असहाय और कान्तिहीन होगया है, या सिन्दूर-मिटी नारीकी तरह उपेक्षित और दयनीय! **'केटी'** एक ऐसे युवकके अनुतापकी कहानी है, जो सुन्दर और कम-सिन लड़कियोंको फुसला-भगाकर जनरल साहबको भेंट चढ़ाता रहा। जिसकी दृष्टि इनामके लालचमें कभी किसी के आँसुओंको न देख पायी।···परन्तु एक मासूम लड़की के निश्छल प्रेमने उसके अवचेतन मनको पिघला डाला और बख्शनामा पढ़ते समय दो बूंद आँसू उस कागजपर टपक पड़े।

छोटे-मोटे पारस्परिक झगड़ोंको भुलाकर आड़े वक्त में पड़ोसियोंके काम आनेकी सहज उदारताकी स्वामिनी **'गगा चाची'**; वैधव्यके अभिशापको मुसकानोंके साथ वहन करती हुई कर्त्तव्य-परायण **'नीमा पेम्पा'**; अपने मास्टरजीके लिए रोहू मछली लानेके प्रयासमें नदीकी तीक्ष्ण धाराकी शिकार **'फुलियां'**; कोयलोंके अभावमें ठंडे होते **'मकल'** (तापनेकी अँगीठी) के पास निरन्तर ठिठुरती बुढ़िया नौकरानी; **'त्योहार'** के लिए खाद्यसामग्री जुटाने की आकांक्षामें ग्राहकको ठगनेकी बेवसीपर पछताता हुआ बब्बन, खोये बेटेकी **'शिनाख्त'** के लिए हर आगन्तुककी पीठपर तिल तलाश करती हुई जापानी बुढ़िया; बेटीके इलाजके लिए पाँच पैसेकी पुष्टकारी दस पैसेमें बेचता हुआ **'नांग्ले'** और मौन प्रेमकी साधना करता हुआ

'हारांबा'—सभी हमें इतने आत्मीय लगते हैं, कि अनजानेही हमारी समवेदना बटोर लेते हैं।

'टा-टा', 'रनिंग कमेन्ट्री', खंडित' और लिफ्ट' भिन्न तर्जकी कहानियाँ हैं, जिनमें शहरी यथार्थके कुछ पहलुओंका रेखांकन हुआ है। 'टा-टा' कहानी त्याग और समर्पणकी ओर संकेत करती है तो 'रनिंग कमेन्ट्री' क्रिकेट की बढ़ती लोकप्रियताके संदर्भमें कुछ रोचक प्रसंगोंका चित्रण करती है। 'लिफ्ट' प्रसव वेदनासे छटपटाती औरतको कारमें लिफ्ट न देनेकी अमानवीयता और मन ही मन अपने निर्णयको 'जस्टीफाइ' करनेकी क्रूरताकी कहानी है।

'खंडित' संवाद शैलीमें लिखित एक यथार्थपरक कहानी है, जो सम्बन्धोंकी व्यावहारिकताको उकेरती है। वर्षोंके अन्तरालके बाद जब सुरेश और मोना मिलते हैं तो वे अपने-अपने वर्तमानसे पूर्ण सन्तुष्ट हैं। किसीको किसीसे कोई गिला-शिकवा नहीं। बल्कि, किसी हदतक, अपनी-अपनी स्थितिको बेहतर दिखानेकी स्पर्धा उन्हें सहज नहीं होने देती।

'सोनिया' की कहानियोंमें एक पूर्व-नियत ट्रैजेडी प्रायः सर्वत्र विद्यमान है। उनके पात्र अपने लक्ष्यतक नहीं पहुँच पाते और यह स्थिति मनमें एक बेचैनी-सी छोड़ जाती है, यद्यपि यहभी सच है कि कहीं-कहीं यह ट्रैजेडी आरोपित-सी लगने लगी है।

शिल्पकी दृष्टिसे ये कहानियाँ ग्राह्य बन पड़ी हैं। शैलीकी सरलता स्पृहणीय है। किन्तु लिंग, वचन और कारकीय प्रयोगोंकी भूलें (जिनकी मात्रा कम नहीं है) अनुपेक्षणीय हैं।

सस्ते मूल्यपर उत्तम साहित्य प्रदान करनेका प्रकाशकका प्रयास स्तुत्य है।

□ डॉ. तेजपाल चौधरी

लक्ष्मण रेखा

लेखिका : अरुणा सीतेश; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६। पृष्ठ : १८६; का. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

अरुणा सीतेशकी चौदह कहानियोंका संग्रह 'लक्ष्मण रेखा' अपने-आपमें इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लेखिकाने इन कहानियोंके पात्रोंको स्वतंत्र छोड़ा है। ये पात्र जो मन में है, उसे बोल देते हैं और एक दूसरेकी बात सुननेके लिए अपने कान बन्द नहीं करते, खुले रहने देते हैं।

'स्त्री-पुरुष' के सम्बन्धोंको लेकर लिखी जानेवाली कहानियोंमें (लक्ष्मण रेखा, सेतुहीन, प्रतीक्षा,) 'लक्ष्मण रेखा, अधिक प्रभाव छोड़ती है। यह कहानी सुधी पाठकों को सोचनेके लिए बाध्य करती है कि क्या नारीको बांधनेमें ही संतुष्टि है, उसे यदि मुक्त करनेका साहस किया जाये और फिर उसे इसलिए रोका जाये कि कहीं वह उच्छृंखल न हो जाये, किस मानसिकताका प्रतीक है? नारीको पिंजरेकी सुन्दरी बनाकर रखनेमें क्या तुक है। अपने मनके दकियानूसी संस्कारोंसे एक पुरुष मुक्त न होकर स्वयं लक्ष्मण रेखा खींचनेवाला राम बन जाये तो कितनी बड़ी विचित्र विडम्बना है।

'सवेरा' कहानी मानवीय संवेदनासे जुड़ी कहानी है। गांव और शहरका द्वन्द्व तो है ही, लेकिन गाँवमें रह-रहे अपने असहाय वृद्ध माता-पिताकी सेवाका दायित्व एक पढ़ा लिखा युवक मनमें साधकर गाँवसे शहर आनेमें गरेज करे तो इसमें कुछभी तो अस्वाभाविक नहीं है। 'परन्तु' कहानी एक पढ़ी-लिखी लड़कीकी घटनभरी ज़िंदगीका जायजा इस रूपमें लेती है कि उसका अपनाही पिता उसके भविष्यको अन्धकारमय बनानेमें अनजानी भूलें करता, मूर्ख सिद्ध होता है।

'धरम-करम', 'तलाश', 'निर्णय', 'मोहलत' कहानियों में आजके युग-बोधमें व्याप्त कुरीतियों और विसंगतियों का अच्छा चित्रण है। कहीं हरिजन समस्या है, तो कहीं भाई-भतीजावादका समाजविरोधी रूप, कहीं विदेशमें बसनेपर मजबूर भारतीयोंकी मनोदशा और कहीं जीवन में दुर्घटनाओंसे आनेवाले आकस्मिक परिवर्तन। ये कहानियाँ इस बातकी पुष्टि करती हैं कि अरुणा-सीतेशने अपने चारों ओरके सामाजिक जीवनको विभिन्न स्तरोंपर बारीकीसे देखनेका प्रयास किया है, ये अलग बात है कि कहीं-कहीं कुछ कहानियाँ अपने स्वाभाविक रूपमें बदलाव के लक्षण प्रस्तुत नहीं कर पायीं। इन कहानियोंके अतिरिक्त 'मोहरा' कहानीमें रक्षकको ही भक्षक बनते लेखिका ने नारी सुधार सम्बन्धी गठित विभिन्न तथाकथित समितियों और संगठनोंके खोखलेपनपर व्यंग्य कसा है। कितनेही नाम हैं : नारी उत्थान समिति, नारी शिक्षा संस्थान, नारी प्रगति संघ और महिला कल्याण केन्द्र आदि-आदि। प्रस्ताव पारितकर देनेमें ही इनकी सक्रियता और कुशलताके दर्शन होते हैं। यह कहानी मन्नू भण्डारी के उपन्यास 'महाभोज' की याद ताजा करती है।

'ऊँचाई' 'अनुत्तरित' एवं 'सपना' कहानियाँ सफल कहानियां मानी जा सकती हैं। 'ऊँचाई' कहानीमें अरुणा सीतेशने बड़े सक्षम ढंगसे बाढ़ ग्रस्त परिवारोंकी मानसिकता और छिछलेपनकी परतोंको उधेड़ा है। कहानी न केवल रोचक अपितु बोधगम्य बन गयी है। इस कहानी के ये शब्द मार्मिक और विचारणीय हैं :

'मैं हैरान था—कहाँ गया वह सब प्यार, वह सब अपनत्व—लगा तीन-चार दिन स्वप्न सरीखे कहीं उड़ गये।'

'अनुत्तरित' कहानी अन्तर्मनकी अमूर्त्त भावनाओंको लेकर लिखी गयी है। इस कहानीका घटनाक्रम, जहाँभी और जिस रूपमें भी जिसके साथ घटा है, उसे यह कहानी रुचिकर लगेगी। 'सपना' कहानीमें पात्रका प्रश्न 'कहानी लिखनेसे क्या होगा' एक सार्थक प्रश्न है।

अरुणा सीतेशकी इन कहानियोंको पढ़कर यह आभास मिलता है कि लेखिकाको कथ्य या भाषा शैलीके प्रति विशेष मोह या विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता क्योंकि ये कहानियाँ अपनी सरलता और भावगम्यतासे पाठकोंको बाँध लेती है—विशेषकर नारी मन और युवा वर्गके पाठकोंके मनको उद्वेलितकर सकती हैं। कुछ कहानियोंमें शब्द चित्र और बिम्ब पाठकोंकी कल्पना शैली और हृदयानुभूतिको अवश्य छू जायेंगे—मुलायम स्वर, गिद्ध-दृष्टि (सपना), शब्द तालूसे चिपक जाते हैं (परन्तु,) हवापर बैठकर (मोहरा), कुंडली मारकर बैठ गया था, शकका कीड़ा (ऊँचाई)।

▭ यशपाल वैद

नाटक : एकांकी

अब और नहीं

नाटककार : विष्णु प्रभाकर; प्रकाशक : भारतीय साहित्य प्रकाशन, २८६ चाणक्यपुरी, सदर, मेरठ-२५०-००१ ; पृष्ठ : ६३; क्रा. ८१; मूल्य : १२.५० रु.।

सामान्यतः हर व्यक्ति जीवन, जगत, साहित्य और कला मूल्योंकी एक निजी धारणा रखता है। जब कोई स्थिति उसकी पूर्वनिर्धारित धारणाके अनुकूल होती है तो वह उसे 'अच्छी' लगती है और उसके गुणोंकी वह चर्चा करता है। नाट्य रचना विधानसे सम्बद्ध इस समीक्षक की भी अपनी कुछ स्थिर धारणाएँ हैं और यहां यह स्वीकार करनेमें कोई हिचक नहीं कि कुछ बिंदुओंपर विष्णु प्रभाकरकी समीक्ष्य कृति उसे अपने नजदीक प्रतीत हुई है।

विष्णु प्रभाकर हिन्दीके मँजे हुए नाटककारोंमें एक हैं। शैली और शिल्पके महत्त्वपूर्ण प्रयोग सामान्यतः इनके नाटकोंमें नहीं मिलते। समीक्ष्य कृतिमें भी वे अनुपलब्ध हैं। लेकिन कथ्यकी बारीकियोंकी प्रस्तुतिमें विष्णु प्रभाकर उल्लेखनीय हैं। 'अब और नहीं' ऊपरसे भलेही नारी स्वतन्त्रता और उसकी स्वतन्त्र सत्ताकी तलाशका नाटक प्रतीत हो लेकिन नाटकके स्थूल घटना विन्यासके अंतरालमें एक और उदात्त नाटक घटता है—आत्मा द्वारा मुक्तिकी तलाशका नाटक। यहां आकर नाटक पूरी तरहसे जीवनको दार्शनिक दृष्टि देता है। नाटक जीवनका होता है, सही है, लेकिन महत्त्वपूर्ण वहां जीवन नहीं जीवनके प्रति दृष्टि होती है। यह नाटक वह दृष्टि देता है। हिन्दीके अधिकांश नाटकोंमें जीवनका चित्रण तो मिलता है, दृष्टि नहीं मिलती। छोटे-छोटे और सापेक्षिक सत्योंके बीचसे उभरते हुए किसी शाश्वत सत्यका निरूपण प्रस्तुत करना रचनाको मूल्यकी दृष्टिसे महत्त्व देता है। रचना द्वारा निरूपित सत्य जितना बड़ा

और व्यापक होगा, उसका कलात्मक मूल्य उतनाही महत्त्वपूर्ण। 'अब और नहीं माया, मोह, और अतृप्त-अनन्त कामनाओंमें लिप्त आत्माके जागने और सापेक्षिक अचिर जगतमें निरपेक्ष, चिर एवं परम तत्त्वकी तलाशमें अग्रसर होनेका नाटक है; यद्यपि अन्य धरातलपर इसे मनकी इच्छाओंके अनवरत मनके कारण उत्पन्न मानसिक कुण्ठाके चित्रणका मनोवैज्ञानिक नाटकभी बताया गया है।

नाटकका प्रारंभ वीरेन्द्रप्रतापके भरेपूरे घरकी चहल-पहलके बीच होता है। बेटे-पोतेसे भरे घरमें अचानक शान्ता अपनेको अकेली, खो गयी, ठगी चली गयी महसूस करती है और परिवारपर उदासीकी छाया तैरने लगती है। शान्ताकी बेटी शुभ्राको शान्ताकी तरहही सितार बजानेका शौक था। शादी-ब्याह और घर-गृहस्थीके दबावमें सितार रखा चला गया। यही घटना बहुत पहले शांताके साथ घटी थी। तब उसने मन मारकर झेल लिया था पर घरके कबाड़खानेसे निकले सितारने अचानक नाटकीय रूपसे शांताको झिंझोड़कर रख दिया। संगीतमें अपने आपको खो देनेका उसका सुख कभी प्रेम, कर्तव्य और उत्तरदायित्वके बहाने छीन लिया गया था। पर अब वह महसूस करती है कि उसने सबके प्रति अपने कर्त्तव्यका निर्वाह किया और अगर कहीं चूक हुई तो अपने प्रति कर्त्तव्यके निर्वाहमें। अपनी आत्माकी आवाज को अनसुनीकर घायल मनसे उसने अबतक सांसारिकता निबाही, पर अब उसे संसारका कोई आकर्षण बांधता नहीं, कोई कर्त्तव्य अपूर्ण नहीं। इसलिए अब वह सांघातिक रूपसे घायल मनका उपचार करने और आत्माका संगीत गाने, बजाने, सुननेका दृढ़-अटल निर्णय लेती है। उसके मनके घावको परिवारके व्यक्ति देख नहीं पाते। सबको लगता है शान्ता असहज हो गयी है, उसे मनोरोग हो गया है। उसके शरीरकी चिकित्सा करायी जाती है। मनके घावकी चिकित्सा शरीरके द्वारा होती देखकर शांता हंसती है और सब सोचते हैं वह विक्षिप्त हो गयी है। परिवारसे अपनेको काटकर चित्र, संगीत और अमिता की भोली-भाली बातोंमें अपनेको खो देती है। नये घरके गृह-प्रवेशके दिन अपने पतिके बनाये मकानमें न जाकर शांति और मुक्तिकी तलाशमें अकेली निकल पड़ती है। अंतिम दृश्यमें वह अपनी यात्रापर अग्रसर दिखती है। लोग उसके गंतव्यसे परिचित नहीं, पर सहानुभूति सब को है और उसे विक्षिप्तके साथ-साथ मेधावी (संभवतः जागा हुआ इंसान तात्पर्य रहा हो) भी मानते हैं। पता चलता है कि शीतके मनमें तमसा नदीके जन्मस्थानके निकटका कोई काल्पनिक चित्र है जहां पहुंचकर आत्माके उन्मुक्त संगीतका रसास्वादन वह कर सकती है और उसके सुरमें सुर मिलाकर वह गा सकती है।

अनेक घटनाओं एवं प्रसंगोंको छोड़कर यहां केवल रचनाकी मुख्य चेतनाकी ओरही इंगित किया गया है। दूसरोंका मन रखती-रखती शांताका अपना मन भूखा-प्यासा और घायल पड़ा रहा। बादमें वह अनुभव करती है कि आत्माके उन्मुक्त होनेपर मनका उपचार हो सकेगा। मुक्ति होती है बंधनोंसे। माया, ममता, स्नेह एवं अन्य भौतिक आकर्षण बंधन हैं। बंधनको जाने बिना मुक्ति संभव नहीं। शांताने बंधनको जाना। निर्विकार भावसे सभी बंधनोंको तोड़कर शरीर, मन और आत्मा सबको साथ लेकर मुक्तिकी ओर वह इसीलिए अग्रसर हो सकी। दुनियांके और लोग इस दर्दको झेलते हैं पर उन्हें मुक्ति का मार्ग मालूम नहीं होता, इसीलिए छटपटाकर, फिर मन मारकर यहीं उन्हें जीना पड़ता है। आत्माकी मुक्ति के इस संघर्षमें व्यक्ति अकेला होता है, लिंग, वचन, पुरुषकी सीमासे परे होता है। इसलिए शांताका मुक्तिके लिए किया गया संघर्ष सदियोंकी शोषित और सदियोंसे परतंत्र नारीकी स्वतन्त्रताकी यात्रा भर नहीं है, इससे भी ऊपर यह आत्माके परमात्मासे मिलन वरणकी उत्कण्ठापूर्ण यात्रा है। इस अर्थमें नाटकके प्रारंभमें शांता द्वारा लिखी गयी कविताका कोरस गायन 'आओ अपना अंधकार स्वयं भेदें हम' सांकेतिक, नाटकके मूलार्थको व्यंजित करनेवाला और शैलीगत नवीनता उत्पन्न करने का प्रयासभर नहीं, उस व्यापक और निरपेक्ष सत्यका स्वीकार और प्रतिपादन है, आगे प्रस्तुत घटनाओं द्वारा जिसका निरूपण किया जाता है।

नाट्य रचना शिल्प पारंपरिक है। कोई शैलीगत नवीनताभी नहीं दिखती। पर नाटकका कथ्य महत्त्वपूर्ण है और माया जालमें घिरे किसीभी प्रबुद्ध जीवको संकेतसे मुक्ति की दिशा दे सकता है। नारी-शोषण और परतंत्रताका अभिधा-मूलक संदेशभी सामान्य धरातलपर प्रवाह जीवकी कोटिके दर्शकोंको प्रेषित होगा। अठारह पुरुष-स्त्री पात्रोंका यह नाटक दस बारह व्यक्तिभी भूमिकाके फेर-बदलके साथ प्रस्तुत कर सकते हैं। नाटक सहज, अभिनेय, पूर्णतः मंचीय दृष्टिसे व्यावहारिक है। नाटककारने प्रतीकात्मक मंचकी कल्पना की है पर यह यथार्थवादी रीतिसे भी प्रस्तुत

किया जा सकता है और नाट्यधर्मी रीतिसे भी। समीक्षककी रायमें यह नाटक किसीभी पाठकके लिए अवश्य पठनीय, किसीभी मंडलीके लिए करणीय नाटक है।

पुस्तक समीक्षाकी सीमाओंके चलते कई बातोंकी चर्चाका लोभ नियंत्रित रखना पड़ा है। तथापि यह समीक्षक स्वीकार करता है कि शैली, शिल्पकी दृष्टिसे सामान्य होकर भी प्रभाकरजीके इस नाटकने अपने कथ्य-विनियोजनमें इस समीक्षकको काफी प्रभावित किया है।

▭ डॉ. नरनारायण राय

महाप्रयाण

नाटककार : राजेन्द्रमोहन भटनागर; प्रकाशक : पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, ८८८, ईस्ट पार्क रोड, करोल बाग, नयी दिल्ली-११०००५। पृष्ठ : १६७; क्रा. ८२; मूल्य : १२.०० रु.।

'महाप्रयाण' नाटककार और उपन्यासकार डॉ. राजेन्द्रमोहन भटनागरका नया ऐतिहासिक नाटक है। कथा चिर-परिचित है, उस इतिहास-खंडकी, उस धार्मिक परिवेशकी, जिसने सिद्धार्थ जैसे योगी राजकुमारको जन्म दिया, जिसने तपकर बुद्धत्व प्राप्त किया और बुद्ध बनकर जगत्को दुःख, जरा और मृत्युके अनन्त वृत्तसे मुक्त होनेका संदेश दिया। परंतु यह राजकुमार सिद्धार्थसे बुद्ध कैसे बना, इस क्रम-विकासको मनोविज्ञान और दर्शनकी पृष्ठभूमिसे पोषितकर डॉ. भटनागरने एक नया आयाम दिया है।

सिद्धार्थ निरंतर अपने हृदयके अन्तर्द्वन्द्वसे लड़ते रहते हैं—खोये-खोयेसे रहते हैं वह सोचकर कि रोग, जरा और मृत्यु अवश्यम्भावी हैं, दुःखने मानव-मनको छलनी-छलनी कर रखा है। क्या इनसे जगत्को छुटकारा दिलाया जा सकता है, परन्तु प्रत्यक्षमें, यशोधराके समक्ष, वह वैराग्यकी बातको नकारता है, उसके परितोषके लिए चक्रवर्ती राजा बननेकी ही बात करता है और यशोधरासे प्यार करता और उसकी सुख-सुविधाका ध्यान रखता है। परोक्षतः अन्तर्मन उन तमाम प्रश्नोंके शोधमें लगा रहता है—जिनका उत्तर पानेके लिए उसे तपके, वैराग्यके मार्ग पर एक-न-एक दिन चलनाही होगा। यह अंतर्द्वन्द्व तभी मिटता है, जब वह अन्तरात्माकी आवाजसे जागकर पत्नी-पुत्र, राज-पाट, सुख-ऐश्वर्य,सबका त्यागकर राजप्रासादसे बाहर निकल पड़ता है।

यशोधरा एक सामान्य पत्नी है। पत्नीकी भाँति पतिको नृत्य-संगीत और मधुर संवाद द्वारा जीवनके प्रति राग उत्पन्न करनेके लिए प्रयत्नशील रहती है, यद्यपि उसके मनका भय और अन्तर्द्वन्द्व कभी दूर नहीं हो पाता, क्योंकि वह देखती हैं कि सांसारिक आकर्षण सिद्धार्थको बाँध नहीं पाते, उनका मन वर्तमानसे दूर कहीं अतीत या अनागत भविष्यमें खोया रहता है, फलतः सिद्धार्थके स्वप्न-प्रलापोंसे उसके अपने मनका संशय निरंतर प्रगाढ़ होता रहता है। वह स्वप्नमें भी चिंतित रहती है कि कहीं वे काषाय वस्त्र न धारणकर लें। अर्द्धचेतनावस्थामें वह ऐसाही कुछ अनुभव करती है वह अनुमति देती और सिद्धार्थ प्रव्रज्या ग्रहणकर चीवर धारण करते हैं। उसके मनका संशय उसके द्वारा बनाये गये चित्रोंमें भी अभिव्यक्ति पाता हैं। पुत्र राहुल उन चित्रोंको देखकर, विशेषकर चीवरधारी 'भद्रपुरुष' को देखकर अपने पिताश्रीको पहचान लेता है और अंततः महाश्रमणसे जब वह अपना 'दाय' माँगता है, तो राहुलको भी श्रमण बना लिया जाता है।

उपेक्षिता यशोधरा अपने पुत्रको भी बिना पूर्वानुमति के प्रव्रजित देखकर अपनी उपेक्षा सहन नहीं कर पाती और इसीकी चरम परिणति होती है—उसकी मूर्छा, जब सिद्धार्थ बुद्ध बनकर राजप्रासादमें पधारते हैं। ज्ञान-प्रबुद्ध होते हुएभी यशोधराका आचरण एक सामान्याका-सा बनकर रह गया है।

नाटकके भीतर एक और नाटक है—'गणिका', जिसका लेखक है काश्यप, सिद्धार्थका मित्र। 'गणिका' में सालवती और वैद्य कौमार्यभृत्यके प्रणयकी अन्तर्कथा है, जिसके किसी एक पात्रको सिद्धार्थ अपने मनके अनुरूप पाता और असावधानीवश स्वप्नमें उसीके संवाद दोहराता रहता है, जिससे यशोधराके मनकी आशंका बढ़ती जाती है और यह आशंका उसे उन्निद्र और अंततः बेचैन बना देती है।

नाटकके संवादोंकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है, परंतु एकाध स्थानपर वक्त (पृ. ७३), मजबूती (पृ. १३८), इनकार ऐतराज, नाराज (सभी पृ. ६०) आदि जैसे उर्दूके आमफहम शब्दभी आ गये हैं। वाक्य-विन्यासपर पूर्वीपनका प्रभाव है, यथा जिज्ञासावश प्रश्न किये हैं (पृ. ४२), स्वयं आनेकी पहल किये हैं' (पृ. १५४) आदि लिंग-दोष भी हैं, यथा चार प्रकारके गंधोंसे (पृ. ५३, गंध स्त्रीलिंग है, पुल्लिंग नहीं) आदि। वर्तनीकी कई-कई भूलें

हैं, संभवतः प्रूफ-दोषके का[illegible] अपने प्राचीन परिवेशके कारण 'महाप्रयाण' जयशंकर प्रसादकी शैलीका नाटक है, जिसमें काव्य और दर्शनकी गंगा-यमुनी धारा सतत् प्रवाहित होती रहती है।

नाटक त्रि-अंकी है। प्रत्येक अंकमें 'दृश्य-परिवर्तन' द्वारा क्रमशः चार, तीन तथा तीन दृश्य दिखाये गये हैं, जिनके 'लोकेल' रंगशालासे लेकर राजप्रासादका उद्यान, शयनकक्ष, आद्य ऋषिका आश्रम, राजप्रासादका प्रकोष्ठ कक्ष तथा नदी-प्राँत तक विस्तीर्ण हैं। यह नाटक सम्मिश्र मंच (कम्पोजिट स्टेज) अथवा रंगशाला और उद्यान, राजप्रासादका कक्ष तथा आश्रम, इन तीन पृथक दृश्यबंधों पर खेला जा सकता है। यदि भाषाको व्यवधान न भी माना जाये, तोभी पात्रोंकी बहुलताके कारण कुछ व्यवधान पड़ सकता है। यह पात्र-बहुल-नाटक है, जिसमें सात तो नारी-पात्रही हैं। कदाचित् इतने नारी-पात्र जुटा पाना साधारण नाट्य-संस्थाके वशकी बात नहीं है। हाँ, किसी बालिका महाविद्यालयकी छात्राएँ या महिला मंडल की सदस्याएँ अवश्य इसे सरलतासे प्रस्तुतकर सकती हैं।

सामान्यः भाषा पुष्ट और अभिनय-क्षम और संवाद छोटे, अर्थव्यंजक और सटीक हैं।

'नाटकका जन्म' शीर्षक नाटककारकी भूमिकाको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक कहीं-न-कहीं दूसरे हिन्दीं विद्वानोंकी भाँतिही, इस हीन-भावनासे त्रस्त है कि [illegible] नाट्य-साहित्य मराठी, गुजराती आदि भाषाओंके नाट्य-साहित्य और रंगमंचकी तुलनामें कम प्रगतिशील है। बंगला रंगमंचके संबंधमें अनेक ऐसे तथ्योंका निरूपण हुआ है, जो प्रूफ आदिकी भूलोंके कारण भ्रांति उत्पन्न करते हैं। कलकत्ता थियेटरकी स्थापना सन् १७७६ में नहीं, १७७७ में हुई थी। १७९५ में बंगाल थियेटरकी स्थापना करनेवाले 'लेबोडेन' नहीं 'लेबडेफ' थे। इसी प्रकार एक अन्य रंगशालाका नाम 'चौरंग थियेटर' नहीं, 'चौरंगी थियेटर' था, आदि। प. राधेश्याम कथावाचक कृत 'वीर अभिमन्यु' की रचना १९११ से १९१५ ई. के बीच हुई, १९१९ ई. में नहीं। उनका 'श्रवणकुमार' सन् १९१६ में लिखा गया प्रकाशित हुआ, सन् १९२८ में नहीं। भारतीय जन नाट्य संघकी स्थापना सन् १९४३ में हुई, १९४०-४१ में नहीं। वस्तुत. पिछले एक दशकके भीतर हिन्दी नाटक और रंगमंचका इतिहास काफी अधिकृत रूपसे सामने आ चुका है, जिसके अनुशीलनके अभावमें अनेक भ्रांतियोंकी पुनरावृत्ति स्वाभाविक है। वस्तुतः हिन्दी नाटक और रंगमंच किसीभी अन्य प्रादेशिक भाषा की अपेक्षा कहीं अधिक समृद्ध हो चुका है और दूसरोंके आगे सदैव बौना बनने या बने रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

□ डॉ. अज्ञात

हास्य व्यंग्य

भ्रमरानंदके पत्र

लेखक : विद्यानिवास मिश्र; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-६। पृष्ठ : १३२; डिमा· ८१ (सजिल्द); मूल्य : ३०.०० रु.।

पुस्तकमें विद्यानिवास मिश्र द्वारा मुख्यतः 'सरस्वती' पत्रिकाके लिए और एकाध 'धर्मयुग' के लिए लिखित १५ पत्रात्मक व्यंग्य लेख संकलित हैं, जो उन्होंने भ्रमरानन्दके नामसे लिखे थे। ललित निबंधके क्षेत्रमें ख्यातिप्राप्त मिश्रजीके ये पत्र एकसाथ अपनी आत्मीयता और खुलेपनमें मित्रोंके पत्रोंका आस्वादभी देते हैं और अपनी मुक्तताकी लपेटमें विषयके प्रतिपादनका निबंधनभी करते चलते हैं, अतएव पत्र होकर भी ये ललित निबंधभी हैं। इनमें निहित व्यंग्य इन्हें धारदार और पैना बनाकर इन्हें

ललित निबंधकी कोटि... व्यक्तित्व प्रदान करता है। समसामयिक विषयोंसे जुड़े ये पत्र-निबंध अपनी शैलीसे बालमुकुन्द गुप्तके 'शिवशंभु का चिट्ठा' की याद ताजा करते हैं।

मिश्रजी संस्कृत तथा हिन्दीके विद्वान् हैं, कवि हैं और देश-विदेश घूमे हैं। व्यक्ति रूपमें वे संस्कारी मनुष्य हैं और प्राचीन भारतीय संस्कृतिमें उनकी निष्ठा है। स्वभावके मृदुलपर अपनी बातपर अडिग। इन पत्र-निबंधोंमें उनके ये सभी रूप मिल जाते हैं। चूंकि ये मनकी उन्मुक्तावस्थामें लिखे गये हैं और गुरु-गंभीर लगनेवाली शैलीका अनुसरण नहीं करते, मिश्रजी इनमें विशेष तरंगी या लहरी होकर उपस्थित हुए हैं। उसी तरंगका आभास बनाये रखनेके लिए वे जगह-जगह विजया छाननेकी बात कहते हैं। कल्पना और असंबंधमें संबंधकी योजना इन पत्र-निबंधोंको ऊपरी तलपर या अभिव्यक्ति के अन्दाजमें अटपटा बनाती है, और मिश्रजीने अपनी 'प्रवेशिका' में इसे स्वयं लक्षितभी किया (कराया) है, पर इसीमें इनका लालित्य है, इसीमें इनका आकर्षण।

इन निबंधोंमें अनेक समस्याएँ गुँथी हुई हैं। समसामयिक प्रश्नोंके प्रति सजगताही इन निबंधोंके लेखनका कारण है। संस्कृतके अध्येता और अध्यापककी आर्थिक विपन्नता और विदेशी संस्कारों तथा शिक्षाके बढ़ते दबाव, सांस्कृतिक पर्व, विजयादशमीके विभिन्न प्रतीकार्थ और तमिळ प्रदेशमें किया गया उसका विरोध; होली और अकुंठित आनंद-भोग; साहित्यकारकी चारण-वृत्ति और उसकी विपथनशीलता; उसकी व्यावसायिकता; यात्रा-वृत्त; युद्ध और साहित्यकार तथा युद्ध और समाज; अंग्रेजी और हिन्दी, आंचलिकता और साहित्य; शिक्षकों के हाथों सरस्वतीकी दुर्दशा और नयी कविता और रसवाद, जैसे अनेक व्यावहारिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक और शैक्षणिक विषयोंको स्पर्श करते हुए ये निबंध बोध भी देते हैं और झकझोरतेभी हैं। 'भ्रमरानंदी रसवाद' डॉ. नगेन्द्रके 'रस-सिद्धांत' की प्रतिक्रियामें उसकी खिल्ली उड़ानेकी दृष्टिसे लिखा गया है; उनकी ओरसे नये हिंदी काव्यमें रसकी स्थापनाके विरुद्ध—सम्पूर्ण ग्रन्थकी आलोचनाकी दृष्टिसे नहीं। 'कमलभक्षकोंके देशमें' एक विश्वविद्यालयके हिंदी विभागके प्राध्यापकोंके 'साहित्यिक' कार्यकलापपर प्रहार करता है।

ये निबंध १९५२ से १९६६ तक के बीच लिखे गये हैं, अतएव लगभग दो दशककी सीमामें देशकी वैचारिक, ... और राजनीतिक स्थितिका जायजा लेते हैं। व्यंग्यकी मार और विनोदकी फुहारमें गंभीरता यहां सुरक्षाका अनुभव करती रही है, नीरस और जटिल होनेसे बच गयी है। कटु, तिक्त, कषायादि रसोंका आस्वाद देनेवाले ये निबंध अंततः मधुर हैं। और इस आस्वादमें भाषाका बड़ा हाथ है। मुहावरों, देशी मिट्टीकी टटकी और सोंधी गंध लिये हुए शब्दों, मित्रालापमें प्रचलित व्यंजना-गर्भ और बोली-ठोलीवाले प्रयोगों, भावावेगके अनुकूल पद एवं वाक्य-बंधों, विरोधाभासपूर्ण उक्तियों और बिम्बोंकी योजनाने भाषाको न केवल सरल और प्रवाहशील बनाया है, बल्कि उसे पैनापनभी दिया है और उसे गरिमामंडितभी किया है। इन निबंधोंके आनंदका भान इनके पढ़नेपर ही पता लग सकता है, क्योंकि एक निबंधके पढ़ लेनेपर ये दूसरा और दूसरेसे तीसरा निबंध पढ़नेके लिए चित्तको उकसाते हैं। स्वागत!

— डा. आनन्दप्रकाश दीक्षित

देख कबीरा रोया

लेखक : विनोद भट्ट; अनुवादक : गोपालदास **नागर; प्रकाशक : भारतीय साहित्य** प्रकाशन, २६/१६ ए, चौखंबा, वाराणसी। पृष्ठ : १७७; आ. ८१; **मूल्य :** २०.०० रु.।

विनोद भट्ट गुजरातीके जाने-माने हास्य-व्यंग्यकार हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी ४८ फुटकर रचनाओंका संकलन है जिसमें निबन्ध, कहानियाँ, लघुकथाएँ, पत्र, पैरोडियाँ आदि सभी प्रकारकी विधाएँ तथा शैलियां विद्यमान हैं। विषय-विविधताभी मिलती है। राजनीति, साहित्य, शिक्षा, प्रेम, गृहस्थी, लॉटरी, चिकित्सा, नशाबन्दी, नसबन्दी, चाटुकारिता, आडम्बर, भ्रष्टाचार, ज्योतिष आदि अनेकानेक विषय हैं जो हमारे आजके विसंगत जीवनकी विरूपताओंको प्रस्तुत करते हैं। मूल स्वर राजनीतिक विरूपताओंका है जिसमें चुनावी हथकंडे, दलबदल, झूठे आश्वासन, दल निष्ठा, निजी स्वार्थ, भाई-भतीजावाद, जनसेवा और न्यायकी ढोंगबाजी विशेष रूपसे मुखर हैं। इनमेंसे कुछ चुटीले उद्धरण पेश हैं—

—(१९७७ को जनता-सरकारके संदर्भमें जो खिचड़ी सरकारही थी) एकता बढ़े इसके लिए आपके पास कोई प्लान है? नकुलने कहा, हम सभी भाइयोंको बराबर भाषण द्वारा जनताको बताते रहना चाहिये कि हम एक

हैं और हमारे बीच मतभेद नहीं रहा है। (पृ. ५२)

—कर्णसे पूछा गया, दलबदलूके लिए आपके क्या विचार हैं, तो उसने जवाब दिया, इसका आधार दलबदलू कौन-सा दल बदलता है इसपर आधारित है। (पृ. ५२)

—(हारे उम्मीदवारका कथन) मैं सोचता था कि वह (जनता) हमेशा अपने भविष्यकी तरफ देखेगी, लेकिन उसके बजाय जनताने मेरे भूतकालकी तरफ देखा। (पृ. ६४)

—(श्रीमती गांधीसे इंटरव्यूमें)—इमरजेंसीके समय आपने लाखों निरपराध लोगोंको जेलमें ठूँस दिया, आपको दुःख होता है क्या? (उत्तर) होता तो है। लेकिन क्या किया जा सकता था। मेरे पास अधिक जेलोंकी व्यवस्था नहीं थी। (पृ. ६७)

—राजाके काले कुत्तोंने गाँवके लोगोंकी खिचड़ी खा डाली। शिकायत की गयी तो राजाने जाँच-आयोग बैठा दिया। लेकिन उससे पहले राजाने अपने सभी काले कुत्तों को सफेद रंगसे रंगवा दिया। (पृ. ८६)

—(सुदामाको द्वारपाल) महाराजके वचनपर विश्वासकर इधर फेरे मार रहे हो, पर काम नहीं बनेगा। लोकशाही अब इधरभी आ गयी है। अतः बहुत हुआ तो पुराने बचनोंके बदलेमें नया वचन मिल जायेगा। (पृ. ११०)

—राजनीति और प्रेमके बीच बहुत निकटका संबंध है। और वह यह कि इन दोनोंमें पड़नेके कारणकी आवश्यकता नहीं होती। (पृ. १६१)

—(प्रेमपत्र मंत्रीका) पत्रमें कोई भूल चूक रह जाये या कोई बेवकूफी हो जाये, तो मेरी भोलीभाली जनता की तरह चला लेना। (पृ. १७२)

राजनीतिपर 'पांडवोंका कहना है', महारथी कर्णका इंटरव्यू', 'सेवा, सेवा, सेवा', (यह हरिशंकर परसाईके 'सेवाका बलात्कार' का अच्छा जायजा है), 'विश्वामित्र का तपोभंग—एक जाँच-आयोग', 'कथा भगवान असत्यनारायणकी', 'एक दलबदलूका प्रेमपत्र', विशेष उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

शैक्षणिक विसंगतियोंकी ओर लेखकका कम ध्यान गया है, सिर्फ इक्कादुक्का रचनाएँ मिलती हैं। जैसे 'एक और कचकी तलाश', जिसमें रिसर्च गाइडोंपर व्यंग्य है तथा 'प्रेमपत्र एक शिक्षकका', जो मात्र शैलीकी रचना है।

'मयूरको आप पहचानते हैं', 'सत्ताइस नंबरके बस स्टॉपपर' उधार माँगनेवालोंपर रचनाएँ हैं और दोनों ही अच्छी हैं।

पति-पत्नी संबंधोंको लेकर 'वैवाहिक जीवनके पच्चीस वर्ष', 'जब पति देरसे घर लौटते हैं', बहुत कुछ ठीक हैं। 'अखाडेका न्याय'में एफ. आर. स्टॉकटनकी कथा 'दी लेडी ऑर दी टाइगर'पर अच्छी पैरोडी है।

साहित्यिक विडंबनाएँभी कमही स्थलोंपर हैं। रचना मात्र एक है—'एक पुरस्कृत लेखकका निवेदन'। लेखक बेचारेको प्रेमपत्र लिखनेवालों तक में स्थान नहीं है जबकि धोबी दूधवाले तक लिखते हैं।

जेबकतरे, बेयरे एवं अभावग्रस्तोंपर जहाँ अलग रचनाएँ हैं वहाँ प्रेमपत्र शैलीमें लेखकने चोर, धोबी, दूधवाले, हज्जाम जैसे व्यक्तियोंकी जिंदगीकी विडंबनात्मक झाँकियांभी पेश की हैं।

डॉक्टरी पेशेपर लेखकका विशेष ध्यान नहीं गया है। एक डॉक्टरका प्रेमपत्र जरूर है, पर वह खींचातानीके सिवा कुछ नहीं।

'नशाबंदी मीमांसा' 'श्रीमती गांधारीका इंटरव्यू', (इसमें लेखक भूल गया है कि गांधारी राजघरानेकी थी), 'इंटरव्यू मोहम्मद तुगलकसे', आधुनिक मेघदूत, स्वादिष्ट भेलपुरी, कॉफे द हैवन', (चुटकुला मात्र) तथा प्रेमपत्रों में शैलीकी दृष्टिसे क्रिकेटरका प्रेमपत्र, वकीलका प्रेमपत्र तथा विषयकी दृष्टिसे चोरका प्रेमपत्र, दलबदलूका प्रेमपत्र छोड़कर शेष सभी पत्र—अत्यंत कमजोर और भरतीकी रचनाएँ हैं।

लघुकथा एवं पैरोडीकी रचनाओंमें 'घूसमीमांसा, रावणकी शर्त, एक परी कथा, बंदर और मगर एकदम सशक्त रचनाएँ हैं।

लेखकके पास दृष्टि है, शैली है, भाषाभी है, पर दिशा संतुलित नहीं है। पर यह हर हास्य व्यंग्यकारकी ट्रेजेडी है। हास्य मंचीय चुटकुलेबाजी करने लगता है तो व्यंग्य स्तंभीय सामयिकीका शिकार बन जाता है, इसमें चोट तो होती है पर मात्र अस्थायी एवं प्रसंग सापेक्ष व्यंग्यचित्र जैसी।

☐ शंकर पुणतांबेकर

धूपका चश्मा

लेखक : सन्तोष खरे; प्रकाशक : प्रारूप प्रकाशन, ६४, चौक गंगादास, इलाहाबाद। पृष्ठ : १०४; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

सत्तरोत्तरी दशकमें जिन व्यंग्यकारोंने तेजीके साथ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रसार पाया, उनमें संतोष खरेकी पहचान जीवंत एवं अनाक्रामक व्यंग्यके कारण बनी। 'धूपका चश्मा' संतोष खरेका, पहला व्यंग्य संकलन है। स्वभावतः हिन्दी व्यंग्यके चेतन पाठकोंके सामने संतोष खरेकी वास्तविक तस्वीरके निर्माणमें इस संकलनकी विशिष्ट भूमिका बनेगी। प्रस्तुत संकलनमें २६ व्यंग्य रचनाएँ एकत्र हैं और इन रचनाओंके परिपार्श्वसे व्यंग्यकारकी रुचि झलकती है। साहित्य और प्रेम ज्योतिष और शिकार, गाली और लोकतंत्र, अफसरशाही और परिवार जैसे विविध इलाकोंसे फिसलती हुई संतोष खरेकी निगाह उस देशकी कहानीपर टिकी है जिसमें मँहगाईकी बाढ़ आयी हुई है। विषय-वैविध्यके समानान्तर संतोष खरेने सम्प्रेषणकी नव्यताको अंगीकार नहीं किया है, लेकिन उनका व्यंग्य-लेखन परिवेशकी विसंगतियोंसे पूरी जीवंतताके साथ जुड़ा है।

रवीन्द्रनाथ त्यागीका आमोदी व्यंग्यवितान संतोष खरेके इस संकलनमें भी तना हुआ है। मुख्य अतिथि साहित्यकार और कलेक्टर, प्राचीन शिकारका मेरा अर्वाचीन चिंतन, छापे और छेदीलालजीका अखबार, मेरी सर्वश्रेष्ठ रचना, वे लोकतंत्रके हिमायती हैं, मेरी यात्राओं के दुश्मन, एक क्लर्ककी आत्मकथा जैसी व्यंग्य रचनाओं में समसामयिक परिदृश्यकी नुकीली व्याख्या व्यंग्यकारने की है। जीवनके यथार्थकी गहरी पकड़को जीवंत अभिव्यक्ति देनेमें संतोष खरेने अपनी प्रतिभाका परिचय दिया है। व्यंग्य लेखककी कमेंटरी शैलीका सुघड़ विन्यास आम के आम गुठलियोंके दाम, आधुनिक नायिकाका नखशिख वर्णन, एक पीड़ित पतिकी दास्तान, यह उस देशकी कहानी जैसी रचनाओंमें पर्यावरणकी परिक्रमाका कौशल उपलब्ध है।

संतोष खरेके पास शैलिकीय उपकरणोंका भांडार नहीं है, लेकिन परिस्थितियोंकी पैनी समझदारीका प्रखर संयोजन है। 'धूपका चश्मा' के कतिपय व्यंग्य कमजोर हैं। साहित्यमें दसवाँ रस, भगवान मिल गये, चेहरा और दर्पण, कपड़ोंकी उपयोगिता जैसी रचनाएँ ललित निबंधनुमा हैं। संतोष खरेको यह श्रेय दिया जा सकता है कि अपने व्यंग्यों द्वारा जीवनकी कटुताका उद्घाटन मृदुल तरीकोंसे उन्होंने किया है। 'धूपका चश्मा' व्यंग्य की सम्पन्नता और व्यंग्यकारके स्खलनोंका एकसाथ प्रस्तोता है। अपने इस पहले संकलनके प्रकाशनके साथही संतोष खरे व्यंग्य लेखनकी थोकीकृत कतारमें आ खड़े हुए हैं। उनके कई व्यंग्य, जो धूपके चश्मेके सामने नहीं आये हैं, प्रखरतर संवेदनाके वाहक हैं। संतोष खरेके भावी व्यंग्य संकलनमें अधिक तीक्ष्ण एवं असरदार व्यंग्य-कर्म मुखर होगा, ऐसी आशा की जा सकती है।

▭ डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी

अफसरनामा

लेखक : जगदीशचन्द्र 'जीत'; प्रकाशक : राजेश प्रकाशन, कृष्णनगर, दिल्ली-५१। पृष्ठ : १०६; क्रा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

आजके युगमें जो कविता प्रकाशित होती है, उसका अध्ययन समकालीनताकी दृष्टिसे करना युक्तिसंगत और समीचीनही है। इसके अंतर्गत यह देखना आवश्यक है कि वह कथ्य दृष्टि और शिल्पके आधारपर समकालीन है या नहीं। उसमें किन विषयों, प्रसंगों, घटनाचक्रोंको उठाया गया है जिनके माध्यमसे आधुनिक जटिल जीवन की संश्लिष्टताकी अभिव्यक्ति हुई है या नहीं। उसमें कविकी जीवन-दृष्टि क्या है और वह कितनी आधुनिक है। कविने जिस शिल्पको अपनाया है, वह कितना नया है और हमारी वर्तमान सामाजिक चेतनाको सक्षम अभिव्यक्ति देनेमें किस हदतक समर्थ है यानी वह आजकी कविताकी दृष्टिसे प्रासंगिक है या नहीं।

कहा जा सकता है कि किसी हलके-फुलके कविता संग्रहकी नापजोखके लिए इतने भारी भरकम बटखरोंकी क्या आवश्यकता है। कवि जगदीशचंद्र 'जीत' का नया कविता संग्रह, वास्तवमें, हलका-फुलका कविता संग्रह है जिसमें कविने अफसरोंके जीवनको अपनी कविताकी अभिव्यक्तिका माध्यम बनाया है और अपने आपको उसी बिंदुपर केन्द्रित किया है। कविने अपने सीमित विषय-क्षेत्रमें विविधतरके साथ प्रवेश किया है, पर शिल्पके सीमित प्रयोगके कारण उसकी अभिव्यक्ति आहत और बाधित हुई है।

आधुनिक युगमें इस [illegible] है— नेता, अफसर और व्यापारी जो युगसंचालक, नियामक और निर्धारक है; पर मूलतः संहारक और संघातक हैं। आज हमारे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवनमें नैतिक मूल्योंमें गिरावट आ गयी है जिसके लिए उक्त त्रयी काफी हदतक उत्तरदायी है। इन्हींमें से एक अफसर नामक वर्गको कविने विभिन्न कोणों और पहलुओंसे अपनी कवितामें चित्रित किया है। अफसर क्या होता है, कैसा होता है, उसका आचार-व्यवहार कैसा है, दफ्तर-घर और बाहर उसके कौन-कौनसे रंग-रूप हैं आदिका बखान 'अफसरनामा' के एक-सौ-एक तुक्तकोंमें किया गया है।

हर तुक्तक पांच-पांच पंक्तिका है जो अपने आपमें पूर्ण है और स्वतंत्र अस्तित्वसे युक्तभी। कविताका यह रूप अपेक्षाकृत नया है, पर हिन्दीमें प्रचलित नहीं हो सका। इस रूपको पहली बार हिन्दीमें प्रचलित कवितामें प्रस्तुत करनेका श्रेय भारतभूषण अग्रवालको है जिनसे कवि जीत बहुत आब्सेस्ड जान पड़ते हैं। यह कविता-रूप मुक्तक, रुबाईका आधुनिक रूप है जिसके स्थानपर आज हाइकूका प्रचलन अधिक हो गया है, पर इनसे अधिक ध्यान आकृष्ट कर रही है मिनी कविता जो आधुनिक युगीन नयी कविताका ही उन्नत, परिष्कृत और संक्षिप्त रूप है।

कवि जीतके ये तुक्तक हलका-फुलका हास्य और थोड़ा-सा व्यंग्य उभार पानेमें अवश्यही समर्थ रहे हैं, पर समसामयिक जीवनको सही संदर्भोंमें सार्थक अभिव्यक्ति नहीं दे सके हैं। उन्होंने वर्ण्य विषय तो अपेक्षाकृत नया उठाया है, पर तुकबंदीके कारण सब कुछ गड़बड़ा गया है जिससे न तो शिल्पमें परिपक्वता आ सकी है और न अभिव्यक्ति सक्षम बन सकी है। तुकबंदीके चक्करमें कविताकी अभिव्यक्तिमें व्याघात पहुंचता है जहाँ शब्दोंकी तुक तो बैठ जाती है, पर अर्थकी तुक यानी संगति नहीं बैठ पाती। तुकके चक्करमें अंग्रेजी भाषाके या दूसरे ऐसे शब्दभी आ जाते हैं जो अभिव्यक्ति-क्रममें उपयुक्त नहीं होते। इसमें शब्दोंको तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है और क्रममें उलट-पुलटभी हो जाती है। 'अफसरनामा' में यह सब मिलता है जिससे अभिव्यक्ति बाधित हुई है।

— **डॉ. रतनलाल शर्मा**

पुरस्कृत
उड़िया संकलन

सामाजिक यथार्थ, युगबोध और अलगाव की उड़िया कहानियां : 'ओ अन्ध गली'

कहानीकार : अखिलमोहन पट्टनायक **समीक्षक : डॉ. तारिणीचरण दास**

"ओ अन्ध गली' अखिलमोहन पट्टनायककी १६ उड़िया कहानियोंका एक संकलन है। अवश्य इसे उनका सर्वश्रेष्ठ कहानी-संग्रह नहीं कहा जा सकता, परन्तु साहित्य अकादमी जिसप्रकार प्रमुख साहित्यसेवियोंको प्रोत्साहित करती आयी है, उसका यह एक उदाहरण है। पट्टनायकसे पहले मनोजदास तथा किशोरीचरण दासको उनकी कहानियोंके लिए भी अकादमीका पुरस्कार मिला है। किशोरीचरणकी कहानियाँ मनकी सूक्ष्म गुत्थियोंको सुलझाती हैं और मनोजदासकी कहानियाँ सामाजिक वैविध्य तथा शैली-वैचित्र्यका भंडार हैं। पट्टनायकके इस संग्रहमें सामाजिक यथार्थ, जटिल मनोविज्ञान, अलगाव तथा युगबोधने प्रमुख स्थान पाया है। अतः सभी कहानियोंको निम्न भागोंमें बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है : (क) मनोवैज्ञानिक कहानियां—हले जोता किणिबार प्रत्यक्ष विवरणी, शेष आविष्कार, चन्द्रर अभिशाप, प्लान् चेट ओ परलोक, (ख) अलगाव—डिमिरिफुल (गूलरका

फूल), हंस संगीत, अकाल बोधन, सेइलोकटा (वह आदमी); (ग) युगबोध—गोटिए लाटेरी टिकट, जउधर, जन ओ जनता, रक्त कहूँ, कापालिक, सम्वादपत्रर उपेक्षित नायक, अंधगली; (घ) सामाजिक यथार्थ—ऋतु-चक्र।

कहानी-संग्रहकी पहली कहानी 'डिमिरिफुल' मंजुकी अम्माकी मानसिक विकृति तथा उस परिवारके अकेलेपनकी कहानी है। यह नाटकीय होते हुएभी पात्रोंके प्रति सहानुभूति पैदा करनेवाली कथा है। 'हले जोता किणिबार प्रत्यक्ष विवरणी' में विक्रेताकी विषम मनोवैज्ञानिक स्थिति (खिलौने माँगनेपर पैर पकड़े रहकर जूते पहनानेका लगातार उद्यम) और उसके परिणामको सूचित किया गया है, 'शेष आविष्कार' में एक मृत औरतकी कथा कही गयी है जो हरसाल एक निश्चित तिथि में स्टेशनपर दीख पड़ती और चलती गाड़ीको अपने लम्बे हाथोंसे बन्दकर देती। यह कहानी अस्वाभाविकही नहीं अविश्वसनीयभी है। 'प्लान्चेट ओ परलोक' कहानीमें समाजमें व्याप्त परलोक सम्बन्धी विश्वासपर परोक्ष रूपसे चोटकी गयी है। 'चन्दर अभिशाप' में एक स्नायुरोगी छात्रके स्वप्नाचरण तथा मृत्युकी करुण कहानी है। विषय मनोविज्ञानसे सम्बन्धित यह कहानी पिष्टपेषण तथा दीर्घतासे अपनी कला खो बैठती है।

विदेशके अलगावको भारतवर्षमें ढूँढ़ना आजके कथा साहित्यका फैशन जैसा बन गया है, फिरभी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हम लोग कुछ हदतक औपचारिक बन गये हैं, एक दूसरेसे कटसे गये हैं। 'हंस संगीत' ऐसी एक कथा है जिसमें पत्नीका जन्मदिवस तो धूमधामसे मनाया जाता है, परन्तु पति-पत्नीमें कोई आंतरिकता नहीं बल्कि अलगावही नजर आता है। 'अकाल बोधन' में एक महिला अपने लखपति पतिको त्यागकर कॉलगर्ल बन जाती है और अपने पूर्व प्रणयीसे सम्बन्ध स्थापित करती है। सेइलोकटा (वह आदमी) सचमुच एक कलात्मक कहानी है। कैदखानेमें बन्द एक व्यक्ति बाहरके दुमंजिले मकानपर जिस आदमीको देखते-देखते थक जाता है, उसके स्थानान्तरित होनेपर अकेलापन महसूस करता है।

'ऋतु चक्र' एक आदिवासीके सामाजिक दायित्व बोध तथा जीवन संघर्षकी करुण कथा है। इनके अतिरिक्त अन्य कहानियाँ साधारणतः युगबोध सम्बन्धी हैं। 'गोटिए लाटेरी टिकटर काहणी' के नायककी मृत्यु तर्कसंगत और आवश्यक नहीं जान पड़ती। जउधर (लाखका मकान) समसामयिक होते हुएभी आकस्मिक-सी ज्ञात होती, कापालिक युगीन शिक्षितोंमें रही दुर्बलताओंको सूचित करती है। 'जन ओ जनता' नित्य प्रति घटनेवाली घटनाओं तथा जनताकी दायित्व हीनताकी ओर संकेत करती है। 'अंध गली' जैसी लम्बी कहानी आजके संत्रासवादियोंके विचारोंका खंडनकर भारतीय विवेकबोधको जागृत करती है। संकलन इसके नामसे नामित होनेपर भी इसकी दुर्बलता और सोद्द्श्यता छिपाये नहीं छिपती। परंतु 'रक्त छईं' सचमुच आजके शहरी जीवनके युग सत्यको उभारकर रख देती है। इस कहानीके भाई-बहन एक शहरी परिवारकी बुरी आर्थिक दशा तथा ढहते सामाजिक मूल्य बोधकी ओर इशारा करते हैं। यह कथा अकथ्य होते हुएभी अस्वीकार्य नहीं है।

इस प्रकार यह संकलन अलगाव तथा युगबोध सम्बन्धी संकलन है, जिसमें कुछ कहानियाँ अवश्य प्रभावजनक तथा कलात्मक बन पड़ी हैं। □ □

कर्नाटक देश और संस्कृतिका उपन्यास

कानूरू हेग्गडिति[1]

उपन्यासकार : कुवेम्पु

समीक्षक : कन्हैयालाल ओझा

कानूरु हेग्गडिति अर्थात् कानूरु गाँवकी चौधरानी, कन्नड़के सुप्रसिद्ध और ज्ञानपीठ पुरस्कारसे समलंकृत ख्यातिप्राप्त साहित्यकार श्री कुवेम्पुका प्रथम उपन्यास है। प्रारम्भमें ही लेखकको पाठकोंसे निवेदन करना पड़ा है, 'मेरे इस प्रथम उपन्यासको कहानीके कोलाहलके लिए न पढ़ें। सावधानसे सचित्त सजीव हो पढ़िये। यहाँ जो चित्रित है वह पर्वत-प्रान्तके जीवन सागरमें एक बूँद है। नये गाँव जानेवाले वहाँके लोगों एवं जीवनके बारेमें झट कोई निर्णय किये बिना, थोड़ी देर सब्रसे रहकर धीरे-धीरे परिचयसे लोगोंकी तथा उनके जीवनकी जानकारी जैसे कर लेते हैं वैसे इस उपन्यासकी जंगली-दुनियाँमें—वन्य संसारमें—प्रवेश करनेवाले पाठकोंको बरतना पड़ता है। यानी, एक बार पढ़ने मात्रसे 'हमने सबकुछ जान लिया' कहनेवाले उन्हींकी तरह हँसीके पात्र होंगे जैसे मोटरमें बैठकर जानेवाले एक गाँवकी एक गलीमें से होकर दूसरी गलीसे पार होकर कहते हैं कि हमने उस गाँवका पूरा परिचय प्राप्तकर लिया है।' इस कथनको पढ़कर सहज ही प्रश्न किया जा सकता है कि यदि कहानीका कोलाहल न हो तो उपन्यास पढ़ाही क्यों जाये, और वह रचनाही उपन्यास क्यों हो ? अन्य कई विधाएँ हैं जो कहानियों का कोलाहल नहीं होतीं। वर्णनके लिए यात्रा-वृत्त हैं, इतिहास हैं, भाषिक-गौरव और विषय-विशेषके प्रतिपादनके लिए निबन्ध हैं, और काव्यात्मक अनुभूतिके लिए महाकाव्य हैं। लेकिन उपन्यास एक ऐसी सर्वसमावेशक विधा है जिसमें ये सब तत्त्व समाये जाते हैं और सरलता से खपभी जाते हैं। लेखकका यह आग्रह कि इसे एकसे अधिक बार पढ़ा जाये, दो प्रतिक्रियाएँ प्रस्तुतकर सकता है। एक तो यह कि एक बार पढ़कर पाठक समझे नहीं, और तब उसे असन्तोष हो सकता है ! दूसरी यह कि एक बार पढ़नेसे कथ्यका सम्पूर्ण रस पाठकपर आभासित न हो और जितनी बार वह पढ़े हर बार उसे नया रस मिलता रहे। पहली दशामें पाठक रुष्ट होकर पन्नेपर पन्ने पलटना या बिलकुल पढ़ना छोड़भी सकता है। दूसरी दशामें लेखककी वकालत आवश्यक नहीं है, यह प्रेरणा उसे कथ्यसे ही प्राप्त होनी चाहिये ! समीक्ष्य-कृति को आद्योपान्त पढ़कर मुझे लगता है कि पाठकमें दोनों प्रतिक्रियाएँ सम्भव हैं और इसके लिए कारण स्पष्ट हैं।

मूल-भाषामें यह कृति लगभग आधी शती पूर्वकी रचना है। इस बीच उपन्यासके रचना-शिल्पमें पर्याप्त विकास हुआ है न केवल सामाजिक-संरचनामें परिवर्तन-परिवर्धन हुआ है, बल्कि पाठकोंकी रुचि और मानसिकता में भी पर्याप्त निखार आया है। वस्तुतः उपन्यासका कथा-काल तो उससेभी पूर्वका है, जबकि स्वराज्यतक की भावना शहरोंके कुछ शिक्षित वर्गतक ही सीमित थी। साहित्यकी सार्थकता समाजमें नैतिकता, सदाचार आदि सद्‌गुणोंकी प्रतिष्ठाके लिए ही समझी जाती थी, विशुद्ध-काव्यात्मकताको एक साहित्यकारका गुणही नहीं, कौशल भी समझा जाता था, लेखककी अभिज्ञताके प्रदर्शनके लिए साहित्यका कोईभी प्रकार उचित अवसर समझा जाता था। यह कठिनाई उन साहित्यकारोंके साथ औरभी स्वा-

१. **कानूरु हेग्गडिति—कानूरु गांवकी चौधरानी—** [कन्नड़ उपन्यासकार : कुवेम्पु (के.व्ही. पुट्टप्प)]; अनुवादक : गुरुनाथ जोशी; प्रकाशक : साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, ३५ फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली-११०००१। पृष्ठ : ५१८; डिमा. ८१ (सजिल्द); मूल्य : ३०.०० रु.।

भाविक हो उठती थी जो मूलग्रन्थ ... विधाओंमें भी लिखते रहे हों। 'कानूरु हैग्गडिति' इन सभी समस्याओंसे ग्रस्त है, जो उसके साधक गुणभी हैं और उसकी सहज औपन्यासिकतामें बाधकभी हैं। ५१८ पृष्ठका यह बृहत्काय उपन्यास मूल-कथाके सहज प्रवाह में आधेसे भी कम समय और स्थान ले सकता था और उस त्वरित-गतिमें कृतिकी प्रभविष्णुता बढ़तीही, घटती नहीं। कुछही दूरीके बाद काव्यात्मक-प्रसंग अनावश्यक रूपसे भारी और असहज लगने लगते हैं, यद्यपि स्वतन्त्र रूपमें उनसे लेखककी प्रतिभा और पर्यवेक्षणका प्रमाण मिलता। कथा-तत्त्वके प्रसंगसे कट जानेसे पाठकमें अपेक्षित रस-निष्पत्तितो नहीं ही होती, कहीं-कहीं वातावरण की प्रतिकूलताके कारण पाठकको रसाघातभी होता है। पृष्ठके पृष्ठ अनावश्यक प्रकृति-चित्रणसे बोझिलही हुए हैं जैसे पृष्ठ ४४-४५, या पृष्ठ १४०-१४१ पर अपने प्रिय कुत्ते टाइगरकी मृत्युपर पुट्टण्णका प्रकृति निरीक्षणमें तन्मय होना। इसके अतिरिक्त लेखकको मानो पाठककी सहज बुद्धिपर तनिकभी विश्वास नहीं है। हर प्रसंगपर विशद भाष्य प्रस्तुत करनेकी लेखककी प्रवृत्ति पाठकको कक्षाका एक अबोध छात्र बना देती है। अपने प्रेमी हूवय्यको देखतेही सीताकी आँखोंसे आँसू झरनेके प्रसंगपर लेखक कहता है, 'हूवय्यको देखतेही सीताके हृदयमें अनेक भाव उद्रिक्त हुए, उनमें सर्वप्रथम और मुख्य था हर्ष। उसके लिए बहुत दिनोंसे कातर बनी वह अपनी इष्टमूर्ति को देख खुश हो जानेके बजाय क्या करेगी? लेकिन मनुष्यमें अभिमान एक चीज है न! अपने प्रीतमको देखनेसे सन्तोष होनेपर भी सीताने स्वाभिमानसे मान-मनौतीसे उसे प्रदर्शित न करनेका निश्चय किया। उसके बाद प्रियतमके इतने दिनोंतक न आनेसे कोप-दुख एकके पीछे एक आये! उसके बाद 'हाय मुझे ज्वरसे कराहते देख, पीड़ाका अनुभव करनेका उनको अवसर नहीं मिला न?' यह सूक्ष्म प्रतिहिंसा भावभी उत्पन्न हुआ। इन सब भावोंकी परस्पर क्रियाओंके फलस्वरूप पलके मुँदी हुई उसकी आंखोंसे आँसू नीरव हो झरने लगे।' (पृ. २५८-२५९) इसी तरहका प्रसग है घरका बँटवारा होनेके एक दिन पहलेका, जब लेखक शायद अपनी अभिज्ञता-प्रदर्शनके लोभसे ही मैथ्यू आर्नाल्ड और वर्डसवर्थको न केवल खींचही लाता है, बल्कि लिखता है 'हूवय्य गोल्डन ट्रेजरीके पन्ने पलटते-पलटते 'रग्बी चैपल'का पृष्ठ खोल-कर अट्ठावनवीं पंक्तिसे पढ़ने लगा (पृ. २७१) और फिर अग्रे जीके पूरेके पूरे उद्धरण दे दिये गये हैं!

उपन्यासकी मुख्य मूल-कथा बहुत बड़ी नहीं है। कानूरु एक छोटा-सा गाँव है जिसके स्वामी एक समृद्ध किसान-जमीदार चन्द्रय्य गौड़जी हैं। उनके सयुक्त परिवारमें दिवंगत ज्येष्ठ भाई सुब्बय्यकी विधवा नागम्मा और उसके पुत्र हूवय्यके अतिरिक्त स्वयम् चन्द्रय्य गौड़जी की तीसरी पत्नी सुब्बम्मा पहली दिवंगत पत्नीका पुत्र रामय्य और दूसरी दिवंगत पत्नीकी एक पुत्री पुट्टम्म और एक पुत्र वासु है। परिवारमें अनेक बन्धक मजदूर जैसे बैरा, सिद्द, सोम, गाड़ीवान निंग उसका लड़का गंग, हलेपैकका तिम्म, मुसाहब पुट्टण्ण आदि हैं, जिनके ऊपर देखरेख रखनेवाला सेरेगार (मिस्त्री) रंगप्प सेट्टजी है। उनकी जमींदारीमें पासका ही एक गाँव केलकानूरभी है, जहाँ देखरेख करनेवाला चन्द्रय्य गौड़जीका किसान-नौकर अण्णय्य गौड़जी अपने बेटे ओबय्य, चौथी पत्नी तथा एक बेटीके साथ रहता है! चार-चार विवाह करके अण्णय्य अपने स्वामी चन्द्रय्य गौड़जीका कर्जदारभी है, किन्तु अब कर्जा अदा नहीं कर पानेके कारण विवाहके योग्य अपने पुत्र ओबय्यका विवाह नहीं कर पाता। फलस्वरूप ओबय्य न केवल विद्रोही बल्कि कुमार्गगामीभी हो जाता है।

पासही एक दूसरी जमींदारी है सीतमनेकी, जिसके जमींदार हैं सिंगप्प गौड़जी और उनका पुत्र कृष्णप्प। इन दोनों जमींदारियोंमें परस्पर अनबन है। एक और जमींदारी है मुत्तल्लीकी, जिसके जमींदार श्यामय्य गौड़जी एक भले और समृद्ध किसान हैं। उनके परिवारमें उनकी पत्नी गौरम्मा, एक पुत्र चिन्नय्य और दो पुत्रियाँ सीता तथा लक्ष्मी हैं। उनके नौकरों और मुसाहबोंमें हैं: नंज, काला किलिस्तर जाकी आदि आदि। चन्द्रय्य गौड़जी श्यामय्य गौड़जीके कर्जदारभी हैं। इन प्रमुख पात्रोंके अतिरिक्त तुंग नदीके तटपर अग्रहारका एक लोभी और पाखंडी ज्योतिषी वेंकप्पय्य भी है, जो अपने लोभमें अपने जजमानोंके घर जलाकर अपने हाथ सेंकते रहनेमें निपुण है। इसके अतिरिक्त इन परिवारोंमें पालतू कुत्तोंका झुंड, जंगलमें शूकर, बाघ, नाना प्रकारकी चिड़ियाँ, मुर्गे, आदि शिकारके लिए हैं। एक पूरा संसार है अपनी विशिष्ट संस्कृति और प्रकृतिको लिये हुए।

कानूरुके चन्द्रय्य गौड़जीका संयुक्त परिवार समृद्ध और सुखी था, कम-से-कम तबतक तो अवश्य ही था जब तक कि उसके कर्त्ता-धर्ता चन्द्रय्यके ज्येष्ठ भ्राता सुब्बय्य

गौड़जी जीवित थे और उस गृहस्थीके स्वामी थे ! शायद उनके जीवन-कालमें ही उनका पुत्र हुवय्य और चन्द्रय्य गौड़जीका पुत्र रामय्य दोनों भाई मैसूर उच्च-शिक्षा प्राप्तिके लिए जा सके थे। किन्तु सुब्रय्य गौड़जीकी मृत्यु के बाद गृहस्थीका स्वामित्व चन्द्रय्य गौड़जीको प्राप्त हुआ और वे लोभ, मात्सर्य, शराब, संशय तथा आस-पासके चाटुकारोंकी चाटुकारिताका शिकार बन गये। रही सही कसर समाजमें फैले अन्धविश्वास, पाखंडसे भरी रूढ़ियाँ तथा लोभी और दौरात्म्यकी प्रतिमूर्ति ज्योतिषी वेंकप्पय्य की उल्टी मतिने पूरी कर दी। बात प्रारम्भ होती है दोनों भाई हूवय्य और रामय्यकी पढ़ाई बन्द करके। जायदादका बँटवारा करके हुवय्य और उसकी माँ विधवा नागम्माको अलगकर दिया जाता है। हुवय्य और सीताके विवाहमें बाधा प्रस्तुत की जाती है, और दोनों भाइयोंमें अविश्वास तथा घृणाके बीज बो दिये जाते हैं। यहाँतक कि सीताका विवाह हूवय्यके स्थानपर रामय्यसे कर दिया जाता है। सीताके विरोध और विद्रोहको भूत-बाधा बता कर सीतापर अत्याचार और उसका उत्पीड़न किया जाता है। चन्द्रय्य अपनी युवा पत्नी सुब्बम्माके चरित्रपर संशय करता है, और अपने संशयमें मात्सर्यके कारण अपनेही पुत्र हूवय्यको भी सान लेता है। फलस्वरूप उत्पीड़ित सुब्बम्मा घर छोड़कर अपने पितृगृह नेल्लुहल्ली भाग जानेको विवश होती है। इधर कानूरुमें चन्द्रय्य सेरेगार सेट्टजी और उसकी प्रेयसी गंगाकी कामलिप्सामें नीचे गिरता चला जाता है और अपने औरस पुत्र रामय्य की घृणाका पात्र भी हो जाता है। अन्तमें जब भयंकर रोगमें ग्रस्त होकर शय्या पकड़ लेता है तो उसकी सेवा और देखरेखके लिए रामय्यही गाड़ी भेजकर अपनी विमाता सुब्बम्माको नेल्लुहल्लीसे बुलवा लेता है। पति द्वारा परित्यक्त पत्नीका पितृगृहमें भी सम्मान नहीं रहता, यह अनुभव करके सुब्बम्माभी अभिमान त्यागकर कानूरु लौट आती है। तबतक उसकी प्रतिद्वन्द्वी नागम्मा का भी देहान्त हो चुका होता है। अपने पुत्र रामय्यकी उपेक्षा और मन तथा तनकी दुर्वह विडम्बनामें जब चन्द्रय्य गौड़जीका देहान्त हो जाता है तो उनकी पत्नी सुब्बम्म अनायास सारी गृहस्थीकी मालकिन बन जाती है अर्थात् कानूरु हेग्गडिति, और चल निकलता है उसका स्वेच्छा-चार ! उसे सेरेगार रंगप्प सेट्टजीका गर्भ रह जाता है, और उससे मुक्ति पानेकी चेष्टामें वह अपने सारे आभूषण रंगप्पको भेंटकर देती है। रंगप्प सुब्बम्माका सबकुछ माल-मत्ता समेटकर अपने मजदूरोंके साथ एक रात फरार हो जाता है। गर्भ-पातके लिए अत्यन्त तीव्र-दवा खाकर सुब्बम्मा बड़ी दुर्दशामें दम तोड़ देती है, और इस तरह घरकी प्रतिष्ठाको मिट्टीमें मिल गयी देखकर रामय्यभी उसी रात आत्महत्याकर लेता है। इस भयानक अन्धड़में केवल लेखकका आदर्श पात्र हूवय्यही बच रहता है अपने आत्मबलकी दृढ़तामें वट-वृक्षकी तरह, किन्तु वहभी जीवनकी सारी हरियाली खाये हुए निष्पत्र ठूँठकी तरह ही ! लेखकने अन्तिम अध्याय 'दस वर्षोंके बाद' द्वारा शायद एक परम्पराकी अनावश्यक खानापूर्ति करनेकी चेष्टा की है, जिसके अनुसार धीरोदात्त नायककी कथाको सुखान्त बनाना आवश्यक है।

इस मूल-कथाके साथ कई अवान्तर छोटी-मोटी कथाएं जुड़ती चलती हैं, जो ग्रामीण-वातावरणको रंगीन तो करती हैं किन्तु चटक रंगोंकी भरमारमें मूल-कथाका रंग विच्छिन्न होने लगता है। हूवय्य और रामय्यके तीर्थहल्ली स्टेशनसे कानूरु पहुँचनेतक ही पुस्तकका चौथाई से अधिक भाग समाप्तहो जाता है, और इस बीचही पचीसों जरूरी-गैरजरूरी पात्रोंकी भीड़ जुड़ जाती है, जिनसे व्यक्तित्वके चित्रात्मक वर्णनके बावजूद, पाठक तादात्म्य दूर, सामान्य पहचान भी नहीं कर पाता! इसका एक कारण तो शायद उत्तर-भारतके पाठकका दक्षिण-प्रदेशोंकी संस्कृतिसे अपरिचयभी हो। नामोंकी ही इस 'गौड़जी-सेट्टजी' और 'य्य' प्रत्ययकी भूलभुलैयामें वह सरलतासे खो जाता है और घबराभी जाता है। किन्तु उत्तर-भारतके पाठककी इस असुविधाको ध्यानमें रखकर ही लेखकने प्रारम्भमें पुस्तकको एकाधिक बार पढ़नेका आग्रह अवश्य नहीं किया होगा, उसके प्रारंभिक पाठक तो उसी वातावरणके रहे हैं। लेखकका उद्देश्य कहानी कहनाही नहीं है, उसका उद्देश्य है उस युगके पर्वत-प्रान्तके ग्रामीण जन-मानस, उनकी रीति-नीति, आशा-विश्वास, आचार-विचार आदिमें रसी-बसी संस्कृति तथा धरतीकी गन्धका प्रतिभास प्रस्तुत करना रहा है। इसीलिए मुर्गोंकी लड़ाई, बाघ-शूकर आदिके शिकार, केकड़ा-मछली पकड़ना आदिके प्रसंग अनावश्यक नहीं कहे जा सकते हैं। चरित्र-चित्रणमें भी इसीलिए व्यक्ति नहीं हैं बल्कि 'टाइप' हैं। चाहे जिसको लें, पुरुष पात्रोंमें चन्द्रय्य, श्यामय्य चिन्नय्य, कृष्णय्य, रामय्य, वेंकप्पय्य या अन्य छोटे-बड़े नौकर-मुसाहब हों या स्त्री पात्रोंमें नागम्मा, गौरम्मा, सुब्बम्मा, गंगा, सीता, लक्ष्मी

आदि हों, सभीकी एक पूर्व-निर्धारित निश्चित-भूमिका है। और उन्हें लेखकका अभीप्सित-मन्तव्य चरितार्थ करना है। कथाका नायक हूवय्यतक लेखकको इच्छाओंका दास है। इसीमें उसकी सार्थकताभी है!

वातावरणके चित्रणमें लेखक असंन्दिग्ध रूपसे सफल है। प्रत्येक प्रसंगमें धरतीकी विशिष्ट गन्ध छलकती प्रमाणित होती है। जहाँ जैसी आवश्यकता हुई, तोते, पिकलार, कामल्ली, काजाण, मींचुल्ली चोटे, कुटुर, पुरुलि आदि पक्षी चहचहाते मिलते हैं। केला, सुपारी, ताड़ आदि वृक्षोंसे छाये और बाघ-शूकर आदि हिंस्र वनैले प्राणियोंसे भरे हुए घने जंगल और इन सबके बीच पालतू कुत्तोंके साथ आदिम-प्रवृत्तिसे ग्रस्त मानव-समाज—प्रस्तुत उपन्यास इस सबका एक समग्र प्रत्यायक चित्र है। समाज में फैली ज्योतिषीके प्रति निष्ठा, भूत-प्रेतोंमें अडिग विश्वास, और उनकी प्रसीदनेके प्रयत्नोंमें नृशंस अविचार, प्रतिहिंसात्मक-प्रतिशोधकी आगमें स्वयंही नष्ट हो जाने तक की उदग्र-प्रचंडता, संयुक्त-परिवारकी टूटन, दलित और सर्वहारा समाजका परम्परागत शोषण, जिसमें शोषितको अपने शोषणका भी पता न लगे, भयंकर गरीबी संत्रास आदिके यथार्थ चित्र उपन्यासमें सर्वत्र बिखरे पड़े हैं, और जो अनायासही समग्र-भारतकी एक अविच्छिन्न मानसिकताका परिचय प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि लेखकने इस ग्रामीण-चित्रमें सहेज रखने लायक कुछभी प्रस्तुत नहीं किया है—हूवय्यका आदर्श चरित्रभी कानूरुकी ग्रामीण-सरलता या भोलेपनकी उपज नहीं है, वह विकसित हुआ है मैसूरमें आधुनिक-शिक्षाके फलस्वरूप, वर्ड्सवर्थ और मैथ्यू आर्नाल्ड इसके प्रमाण हैं—किन्तु तबभी लेखक अनायास हिन्दीके प्रेमचन्द और बंगलाके ताराशंकर बन्द्योपाध्यायके उपन्यास 'गणदेवता' की याद दिला देता है, यद्यपि इनमें भेदक-तत्त्व भी उतनेही स्पष्ट और स्वयं सिद्ध हैं।

अनुवादकी भाषा पुस्तकीय अधिक हो गयी है, ऊपर दिये गये कतिपय उद्धरणोंसे यह स्पष्ट है, और यदि कहनेको कुछ बचा हो तो वह प्रेसकी अशुद्धियोंने पूरा कर दिया है। प्रकाशकोंने शायद प्रूफ-रीडिंगका दायित्व प्रेसके अधकचरे मुद्रकोंकी सुविधापर ही छोड़कर अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ ली है। शायद वे समझते हैं कि एक अच्छी कृतिका हिन्दीमें अनुवाद प्रस्तुत कर देनाही उनका कम अहसान नहीं है। साहित्य-अकादेमी जैसी राष्ट्रीय संस्थाके लिए यह कोई गौरवकी बात नहीं है।

एक ओर तथ्यकी ओर प्रकाशकका ध्यान दिलाना आवश्यक लगता है। प्रारम्भमें वह यदि लेखक और कन्नड़ साहित्य तथा वहाँकी विशिष्ट संस्कृतिका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर देता तो पाठकको बड़ी सुविधा होती। शायद यह वहाँकी संस्कृतिमें ही हो कि हूवय्य सीताकी माँ गौरम्माको 'सास' कहकर सम्बोधित करता है (पृ. १०५ या १४७) जबकि उनका तबतक ही नहीं, बादमें भी विवाह नहीं हुआ। कर्णाटककी तत्कालीन संस्कृतिको समझनेमें यह पुस्तक अवश्यही सहायक होगी। □

पहाड़ी जीव

[अनूदित कन्नड़ उपन्यास]

लेखक : शिवराम कारंत; अनुवादक : बी. आर. नारायण; प्रकाशक : शब्दकार, २२०३, गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १८४; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।

भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कारविजेता शिवराम कारन्तका पहाड़ी जीव लघु उपन्यास है, जिसमें एक सीधे सच्चे आत्मतुष्ट परिवारका शांत संयमित जीवन प्रस्तुत किया गया है। कर्नाटकके पहाड़ी गांवमें रहनेवाले इस परिवारमें लेखक एक रात बितानेके लिए रास्ता भूलकर आ जाता है लेकिन कई दिनतक रहता है उनके सहज-स्नेह और अपनी घुमन्तू प्रवृत्तिके कारण आतिथेय पति-पत्नीके जीवनमें एकही दुख है कि उनका पुत्र घर छोड़कर चला गया है, जिसकी यादमें उसकी माँ बिसूरती रहती है। दुःख बापको भी है लेकिन वह अपनी दार्शनिक मनोवृत्ति एवं व्यावहारिक दृष्टिके कारण इस दुःखको अपरिहार्य मानकर अपने जीवनका अंग समझ बैठे है जबकि सहज स्नेहशीला ममतामयी माँका मन इस अप्रिय स्थितिको स्वीकार नहीं कर सका है। उनके मनमें दुःख उमड़ता रहता है। पिता गोपालय्याने अपने पोषित भांजेको ही पुत्रका वात्सल्य देकर इसकी क्षतिपूर्ति करली है। बात बातमें मालूम पड़ता है कि इसी भांजेकी पत्नीसे अवैध सम्बन्ध स्थापित करनेमें असफल होकर ही उसने घर छोड़ा है। कथानककी गति बड़ी धीमी हैं पहाड़ी गाँवके शांत नीरस जीवनकी गतिकी तरह। गोपालय्याका भांजेके प्रति वात्सल्य, भांजेका गोपालय्याके प्रति श्रद्धामय व्यवहार, गोपालय्या और

उनकी पत्नी शंकराम्माका सहज स्वाभाविक दाम्पत्य जीवनका रस, अधिक कार्यसे मुक्त होकर भी एकमात्र संतान पुत्रके घरसे चले जानेका दर्द अन्दर-ही-अन्दर तो घुमड़ताही है बात-बातमें बाहरभी निकल पड़ता है। घुमक्कड़ लेखक जब उनके लड़केका फोटो देखता है तो पहचान लेता है कि यह तो वही युवक है जिसने एक शहरी लड़कीसे शादी करली है और पूनामें बस गया है। यद्यपि यह चमत्कारही है कि पूना जैसे शहरमें जिस युवकसे लेखककी भेंट होती है उसीके घर पहाड़ी गाँवमें वह जा पहुँचता है।

इसमें न तो कोई पहाड़ी गाँवके जीवनका अबदैन्य है, न ही विशेष प्राकृतिक सौन्दर्यका चित्रण है। एक छोटा-सा पैराग्राफ अवश्य है प्राकृतिक सौन्दर्यका जो लेखककी सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टिका परिचायक है। 'उसने (सूर्योदयने) सामनेके पहाड़के शिखरको काँसे की मथानी सा चमका दिया था। पर वहाँ पिछले दिनका वही दृश्य मुझे दही खंडमें नीले रंगकी मथानी-सा लग रहा था। आज हिमके ही दहीके रूपमें मेरे सामनेके पहाड़ने अपने अस्तित्वकी महानतासे मेरे जैसे न जाने कितने क्षुद्र प्राणियोंको डराकर कंपा दिया होगा···उस आकाशके सामने पुरुषके समान जो पहाड़ दिखायी दे रहा था, अब नम्रताकी मूर्ति स्त्री बन चुका था। हरे किनारेकी नीली साड़ी पहनकर मिलनेके लिए तैयार जैसे दिव्यांगनाके अहंकारके सम्मुख पहाड़रूपी दिव्यांगना सासके सामने शरमाती बहू खड़ी हो'' (पृष्ठ ११६-११६)।

मानवीय मूल्योंको अपनाये हुए गोपालय्या और शंकराम्मा, नारायण भट्ट एवं उनकी पत्नी, देरण्णा वाप्या और स्वयं लेखक एक सुखद स्थिति प्रस्तुत करते है जो हमारे गांवों और विशेषतः पहाड़ी गाँवोंके सामान्य जीवनकी आदर्श झाँकी समझी जा सकती है। आजके शोषण हाहाकार बलात्कार जैसी सनसनीखेज नुस्खों और राजनीतिक दलबन्दीसे प्रतिबद्ध लेखनका बौद्धिक बहससे रहित यह उपन्यास सामान्य पाठकके लिए पठनीय है जिसमें लोकजीवनकी सहजता, उल्लास, अंधविश्वास और जीवनकी सुख-दुःखमयी परिस्थितियाँ है। गोपालय्याकी शांत संयमित विवेकपूर्ण जीवन-पद्धति और उनकी जीवन्ततासे उत्पन्न हास-परिहास अच्छा लगता है।

☐ कृष्णचन्द्र गुप्त

तक्षशिलाकी राजमाता

[अनूदित गुजराती उपन्यास]

उपन्यासकार : उच्छरंग राय केशवराय ओझा; अनुवादक : शीला मेहता; प्रकाशक : प्रचारक बुक क्लब, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन, वाराणसी। पृष्ठ : १८०, क्रा. ८०; मूल्य ७.०० रु.।

गुजरातीके सुप्रसिद्ध उपन्यासकार उच्छरंग राय केशव राय ओझाने 'तक्षशिलाकी राजमाता' भाग १ में युधिष्ठिर संवत् २७७२ की उन परिस्थितियोंका अंकन किया है जिनमें सिकन्दर भारत-विजयके लिए जोर-शोरसे प्रयत्न कर रहा था। सिकन्दरकी तमन्ना न तो भारतके धर्म और व्यवस्थाको छिन्न-भिन्न करनेकी थी और न यहांकी अतुल धन-सम्पदाको हस्तगत करनेकी। वह कहता है—'मैं वहां जाऊं। वहांके राजागण तथा वहांकी जनता मुझे नमन करे, मुझे विजेताके रूपमें स्वीकार करे और ये सब इतिहासके सुनहरे अक्षरोंमें लिखा जाये, बस इतनीही मेरी इच्छा है।' (पृ. १६)। इस इच्छाकी पूर्तिके लिए वह साम-दाम-दण्ड-भेद सब तरीके अपनाता है। अपने विश्वस्त मिनाण्डर उर्फ नन्दन तथा ज्याजियन सौदागर तुषारको वह भारत भेजता है और ये लोग भारतीय जन-जीवनमें घुसकर भीतरसे अंग खोलनेका प्रयास करते हैं।

अवयस्क राजाकी माता राजमाता रम्भादेवीके मन में यौवनका सरोवर सूखा नहीं हैं। उनके अपने यौवनकी इच्छाएं भी भारत रक्षाके प्रयत्नोंमें बाधक बनती हैं और पुत्रके प्रति उनका अत्यधिक दुलारभी स्थितियोंको जटिल बनाता है।

कथा प्रवाहमें ही बौद्ध धर्मके पनपनेकी परिस्थितियां और उनका तत्काल राजनीतिपर प्रभावभी चित्रित हुआ है। सवर्ण हिन्दुओंका पिछड़ी जातियोंके प्रति दुर्व्यवहार उन दलितोंका अनायास बौद्ध धर्मकी गोदमें धकेल देता है, यह तथ्य आज पुनः प्रासंगिक हो उठा है। मीनाक्षीपुरम् आदिकी ताजा घटनाएं गवाह हैं। पूरे उपन्यास पर भी समकालीन सन्दर्भोंमें विचार करनेकी आवश्यकता है। क्यों हम सर्वशक्तिमान होते हुए भी पराजित होते रहे हैं और क्यों हमारे अपने लोग बारबार हमसे छल करते रहे हैं? हम क्यों नहीं अपने लोगोंकी निष्ठा पा सकते हैं और क्यों पराये उनकी वफाके स्वामी बनते

सफल हो जाते हैं ? इन प्रश्नोंपर विचार करनेसे वर्तमान की भी अनेक गुत्थियां सुलझ पायेंगी।

समीक्ष्य उपन्यास मूलका एकही भाग है अतः कथा यहां पूरी नहीं हो पायी है। बुक क्लब योजनामें पूरे उपन्यासका एकसाथ प्रकाशन अधिक अच्छा होता। शीला मेहताका अनुवाद बहुत सहज नहीं है। फिरभी, उपर्युक्त कारणोंसे उपन्यासका महत्व असंदिग्ध है।

▭ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

सामयिक राजनीति

जनता पार्टीके विघटनकी कहानी

'विश्वासघात'[1]

लेखक : लालकृष्ण अडवानी

समीक्षक : डॉ. प्रशान्तकुमार

'प्रस्तुत पुस्तक' विश्वासघातमें जनता-पार्टीके निर्माण जनता-सरकारके कार्यों व जनता-पार्टीके टूटनेका संक्षिप्त इतिहास अत्यन्त सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त दलगत विरोधी विधेयक, चुनाव-प्रणाली, राष्ट्रपति द्वारा लोकसभाके भंगके निर्णयका औचित्य-अनौचित्य, राष्ट्रपतिपर महाभियोग चलानेकी वैधानिक स्थिति, देशमें साम्प्रदायिक कलह होनेके कारण मन्त्रियोंके लिए अपेक्षित आचार-संहिता, श्रीमती गांधी का व्यक्तित्त्व, भारतीय पत्रकारकी मनःस्थिति आदि विषयोंका भी वर्णन हुआ है। श्री अडवानीका जनता-पार्टीमें महत्वपूर्ण स्थान रहा है, वे उसके प्रत्येक क्रिया-कलाप और गतिविधियोंसे पूर्ण रूपसे परिचित ही नहीं अपितु उनसे जुड़े थे। अतः पुस्तकमें पाठकको जनता पार्टीके इतिहासकी प्रामाणिक सामग्री अत्यन्त तर्क-संगत शैलीमें उपलब्ध हो जाती है।

श्री अडवानी पहले भारतीय जनसंघके फिर जनता-पार्टीके और अब भारतीय जनता पार्टीके वरिष्ठतम नेताओंमें से है। अडवानीजी एक महत्त्वपूर्ण व जिम्मेदार सांसद रहे हैं और जनता शासनके ढाई तीन वर्षोंके कार्यकालमें जितने शिष्ट और शालीन वे रहे हैं तथा मंत्रीपद की प्रतिष्ठाका जितना ध्यान उन्होंने रखा है,उसका दूसरा उदाहरण संभवतः नहीं मिल सकेगा। उनके व्यक्तित्वकी सौम्यता विचारोंकी प्रखरता एवं उनकी अद्भुत कर्मण्यतासे उनके सम्पर्कमें आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित होता है। उनका ईमानदारीपूर्ण जीवन आजकी पंकिल राजनीतिमें भी कमलके समान स्वच्छ है।

पुस्तकमें कुल १२८ पृष्ठ हैं, इनके अतिरिक्त ३६ पृष्ठोंमें ७ परिशिष्टभी हैं। १२८ पृष्ठोंमें से छठे, सातवें और आठवें अध्यायों (कुल अध्याय १०) में अर्थात् ४३ पृष्ठों (एक तिहाई पुस्तक) की सामग्री भारतीय जनसंघ व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघसे सम्बद्ध है। यही इस बातका सूचक है कि अपने-अपने घटकोंके प्रति पक्षपात अथवा उसके प्रति मोह दलोंके विलयकालमें भी बना हुआ था। जनता-पार्टीके टूटनेके कारणोंमें चौ. चरणसिंह और उनके साथियों द्वारा किये विश्वासघातकी चर्चाके साथ इस तथ्यकी स्वीकृतिभी आवश्यक थी। चौ. चरणसिंह और उनके साथियोंका प्रारम्भसे ही श्री मोरारजी देसाईपर यह आरोप रहा था कि मन्त्रीमण्डलके निर्माण और राज्यपालोंकी नियुक्तिमें उन्होंने अपने पुराने साथियोंके प्रति अधिक विश्वास प्रकट किया था। श्री अडवानीने भी

---

१. **विश्वासघात**; लेखक : लालकृष्ण अडवानी; अनुवादक : धर्मपाल पांडे; प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ :१६४; डिमा. ७६; मूल्य : ३०.०० रु.।

अपनी पुस्तकमें प्रकारान्तरसे यह शिकायत की है कि संसद में जनता सांसदोंमें जनसंघ घटककी संख्या एक-तिहाई थी पर १९ व्यक्तियोंके मन्त्रीमण्डलमें, उन्हें कुल तीन स्थान मिले। यह सच है कि वरिष्ठ नेताओंने दलकी एकताको दृष्टिमें रखकर इसकी प्रत्यक्ष शिकायत नहीं की, पर जनसंघके कार्यकर्ताओंमें इस प्रकारकी बातोंसे असंतोष था, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। घटकवादके बने रहनेमें अकेले चौधरी साहबही उत्तरदायी नहीं थे, सभी दल समान रूपसे अपराधी थे।

इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुएभी कि जनसंघ घटक जनता पार्टीकी एकताके लिए अधिक प्रयत्नशील था, पर था वहभी एक घटकही। जनता पार्टीके घटकोंमें शीत-संघर्ष प्रारम्भसे ही था। श्री अडवानीकी पुस्तकमें यह बात अनेक स्थानोंपर प्रकट हुई है: हम लोग जो भूतपूर्व जनसंघके सदस्य रहे हैं, भूतपूर्व जनसंघके सदस्योंका यह प्रयत्न रहा, हरियाणा और उत्तरप्रदेशके मुख्य-मन्त्रियोंको जनसंघ घटकने जो समर्थन प्रदान किया था (पृ. २७), यदि जनसंघ अड़ जाता (पृ. ७०), चन्द्रशेखर और जनसंघ इस बातपर जोर दे रहे थे, उत्तर-प्रदेशके चार मन्त्रियोंको जिनमें से दो जनसंघके थे, उतर-प्रदेशके जनसंघके मित्रोंने, भूतपूर्व जनसंघके सदस्योंने, श्री वाजपेयी या उत्तर-प्रदेशमें श्री रामप्रकाशके परामर्शसे (पृ. ७१), अलग-अलग समूहोंके गठजोड़के आधारपर भूतपूर्व जनसंघके सदस्योंने, बहुगुणा जनसंघसे रुष्ट हो गये (पृ. ७४); इसके अतिरिक्त पुस्तकमें अनेक स्थानों पर 'हमने' का प्रयोगभी जनसंघ घटकके लिए हुआ है। इससे श्रीमती गांधीका यह आरोप वजनदार प्रतीत होता है कि जनता पार्टी नारंगीके समान है, ऊपरसे एक अन्दर से विभक्त। यह स्वीकार करना होगा कि जनता पार्टीके कर्णधार शीतसंघर्षकी स्थितिको टाल नहीं पाये। जनता-पार्टीके विघटनका एकमात्र कारण चौधरी साहब और उनके साथियोंका विश्वासघात बताना तथ्यको बहुत सरल एवं एकांगी रूपमें प्रस्तुत करना है।

श्री अडवानीने अत्यन्त साहसपूर्वक अपनी इस गलती को स्वीकार किया है कि जुलाई १९७८ में जो मोरारजी देसाई द्वारा चौधरी चरणसिंहको मन्त्रीमण्डलसे निकालनेके बाद अपने दलकी एकताकी उत्कट इच्छाके कारण उनकी राजनीतिक सूझ-बूझपर पर्दा पड़ गया था और वे (अर्थात् जनसंघ घटक) श्री मोरारजी देसाई, जगजीवन-राम, चन्द्रशेखर, नानाजी देशमुख एवं श्री बहुगुणा जैसे अनुभवी राजनीतिक खिलाड़ियोंकी उपेक्षा करके चौधरी साहबको पुन: मन्त्रीमण्डलमें लानेका प्रयास करते रहे। प्रयास इतना अधिक था कि श्री अडवानीने मोरारजी देसाईको इस बातके लिए तैयार करनेके लिए उनके मन्त्रीमण्डलसे त्यागपत्र तक दे दिया। यद्यपि पुस्तकमें श्री अडवानीने त्यागपत्रके कारण निर्दिष्ट किये हैं, पर उसका परिणाम चौधरी साहबको दुबारा मन्त्रीमण्डल में लानाही रहा, और जनताने भी यही सोचा था। किन्तु समय साक्षी है कि चौधरी साहबको दुबारा मन्त्रीमण्डलमें लाना अभिशाप सिद्ध हुआ। श्री अडवानीने स्वयं स्वीकार किया है कि इस प्रक्रियामें चौधरी चरणसिंहको अधिक महत्त्व प्राप्त हो गया और उनको दिया गया यही महत्त्व अन्ततः दलके विघटनका कारण बना। चौधरी साहबकी जनसंघके प्रति कटुतामें भी कोई अन्तर नहीं आया (पृष्ठ ७१)। जो लोग श्री मोरारजी देसाईकी अनुशा-सात्मक कार्रवाईके कारण उनकी दृढ़ताकी प्रशंसा करते हैं वे जनसंघ घटकके इस कृत्यकी आलोचनाभी करते हैं। यदि जनसंघही चौधरी साहबको दुबारा मन्त्रीमण्डलमें लाया था तो प्रधानमन्त्री बनानेमें भी उनका साथ देना चाहिये था। 'प्रारम्भसे ही' अध्यायमें लिखा गया है कि भारतीय जनसंघ घटकने एकताकी कीमत चुकानेके लिए श्री चरणसिंहको उपाध्यक्ष बनाकर जम्मू तथा कश्मीर आदि ११ प्रदेशोंके टिकट देनेका अधिकार उनको दिलाया। यदि जनसंघ २८ जुलाई या २० अगस्त १९७९ को दलके विघटनको बचानेके लिए चौधरी चरणसिंहको समर्थन दे देते, कमसे कम श्रीमती गांधीकी तरह सरकार से बाहर रहकर उनकी सरकारको न गिरने देते तो आज इतिहास कुछ औरही होता।

श्री अडवानीने पुस्तकका नाम 'विश्वासघात' चौधरी चरणसिंह द्वारा जनता पार्टीके प्रति किये विश्वासघातके कारण रखा है। विडम्बना यह है कि श्री अडवानी व उनके साथी चौधरी साहबके व्यक्तित्वकी दुर्बलताओंसे पहलेसे ही परिचित थे, फिरभी उनको अपने साथ लिये रहे। पर क्या चौधरी साहबके स्वाभिमानके अनुकूल वे उनको अपने साथ ले सके? श्री अडवानीने चौधरी साहब के विचित्र स्वभावके अनेक निदर्शन प्रस्तुत किये हैं और वे २८ जुलाई १९७९ के बाद नहीं बल्कि पहलेसे ही उनकी घोर महत्त्वाकांक्षा और दुर्बलतासे परिचित थे। (क) श्री श्यामनन्दन मिश्रने श्री अडवानीको आपातकालमें जेलमें ही यह समझा दिया था कि एक दलमें चौधरी चरणसिंह

के साथ काम करना असम्भव है, (ख) १९७७ के चुनावोंके लिए जम्मू व कश्मीरसे शेख अब्दुलरहमानको टिकट देने की जिद्द तथा ओम्प्रकाश त्यागी व नानाजी देशमुखको टिकट देनेमें आनाकानी करना, (ग) चुनावमें चौधरी साहब के साथ काम करनेके अनुभवके बाद जनसंघ घटकके मन में मित्रताकी कोई विशेष भावना नहीं रह गयी थी। (पृ. २२), (घ) सामान्यतः यही धारणा रही कि जनता पार्टी के प्रति चौधरी साहबकी आस्था नहीं है और उनके मन में यह जबर्दस्त शिकायत बनी हुई है कि उन्हें प्रधानमन्त्री नहीं बनाया गया (पृ. २३), (ङ) श्री मोरारजी देसाईकी स्थितिको कमजोर बनानेके लिए चौधरी साहब द्वारा कान्तिभाईका अनावश्यक प्रश्न उठाना, (पृ. २४), (च) २९ मई १९७८ को चौधरी चरणसिंह द्वारा समाचार-पत्रोंमें सरकारकी आर्थिक नीतियोंकी निन्दा (पृ. २६), (छ) श्री अडवानी तथा उनके साथी जानते थे कि चौधरी साहब नये दलमें प्रवेश तभी करेंगे जब उन्हें पता चल जायेगा कि उन्हें कौन-सा पद दिया जायेगा (पृ. ६४), (ज) मई १९७९ में चौधरी साहबके समर्थक एक धनाढ्य व्यक्तिका यह सन्देश कि १९८२ में यदि जनसंघ चौधरी साहबको प्रधानमन्त्री बना दे तो जनसंघके विरुद्ध उनका अभियान समाप्त हो सकता है (पृ. २९), (झ) चौधरी साहबपर जातपातका भूत सवार होना (पृ. २८), (ञ) चौधरी साहबका विचित्र राजनीतिक बजट (पृ. ११२), (ट) चौधरी साहब द्वारा सौदेबाजीकी पेशकश कि हिमाचल प्रदेशसे शान्ताकुमारको निकाल दिया जाये तो जनसंघ घटकसे हमारी मित्रता हो सकती है (पृ. २९), (ठ) चौधरी साहबको उनके जन्म-दिनपर किसान रैलीमें श्रीमती गांधीका जेलसे गुलदस्ता भेजना तथा उनके पोतेके नामकरणमें श्रीमती गांधीका उपस्थित होना···आदि आदि। यदि इन सब कारणोंके होनेपर भी यह जानते हुएभी जनसंघ घटक चौधरी साहबका साथ निभाता रहा, उन्हें उपप्रधानमन्त्रीतक बनवानेमें सक्रिय भूमिका निभाता रहा तो प्रधानमन्त्री पद देनेमें इतनी आपत्ति क्यों? मानवीय स्वभावके आधारपर इसकी भलेही व्याख्याकी जा सके, पर राजनीतिक दृष्टिसे यह एक भूलही मानी जायेगी।

'विघटन नहीं विश्वासघात' अध्यायमें लेखकने श्री लिमयेपर आरोप लगाया है कि उन्हें दलोंको तोड़ने, फूट डालने, विघटन करने और नष्ट करनेमें सुख मिलता है। 'काम अच्छा, व्यवहार बुरा' अध्यायमें राजनारायण के विकृत व विचित्र व्यक्तित्वके बारेमें बहुत कुछ कहा गया है। प्रश्न यह है कि सन् १९७७ में जब उन्हें जनता दल में शामिल किया गया था, क्या उनके जीवनका यह पक्ष सबके सामने नहीं था, क्या उनके व्यक्तित्वका दूषित पक्ष इन्हीं दो वर्षोंकी उपज है? क्या इनके वे साथी जो जनता पार्टी छोड़कर चले गये थे, इसीप्रकार विचित्र प्रकृतिके ही थे? उनमें भी अपनत्वकी भावना उत्पन्न करनेमें असमर्थ रहे। श्री लिमये और उनके साथियोंने दलबदल विरोधी विधेयकका विरोध किया और राजनीति के विशारदोंको भी श्री लिमयेकी 'चाल' का अनुमान भी न हो सका। जब लिमये उस विधेयककी भ्रूण हत्या करके (पृ. ३९) चले गये (पृ. ३७) तब उनकी कलई अडवानीजीके सामने खुली। ऐसा लगता है कि गम्भीर बातोंको बहुत सतही ढंगसे लिया जा रहा था। उस काल में दलके सदस्योंके लिए यह आचारसंहिताभी तैयार न हो सकी कि वे अपने सभी संघर्ष दलके अन्दरही तय कर लेंगे।

श्री अडवानीने लिखा है—'ऐसा लगता है कि श्री चह्वाणने विरोध पक्षका नेता नियुक्त होनेकी खुशीमें सरकारके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लानेका निर्णय किया। उन्होंने यह सोचाही नहीं था कि इसके परिणामस्वरूप कितनी गम्भीर घटनाओंका सूत्रपात होगा और वे तथा उनका दल किस प्रकारकी स्थितिमें आ पड़ेगा, जिसकी उन्होंने कल्पनाभी नहीं की थी (पृ. ४३), यह श्री अडवानीका ही अनुमान है, अन्यथा श्री चह्वाण श्री राजनारायण आदिके कहनेसे ही अविश्वास प्रस्ताव लाये थे और मोरारजी भाईकी सरकारको गिरानेकी उनकी पूरी योजना थी, जिसमें वे पूरे सफल रहे। यही कारण है कि श्री मोरारजी भाईके कहनेपर भी वे जनसंघका बहाना बनाकर उनका समर्थन न कर सके। जिसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाये थे, उसका समर्थन करतेभी कैसे? श्री मोरारजी देसाईकी राजनीतिज्ञता तो तब प्रकट होती जब वे अविश्वास प्रस्ताव लानेसे पूर्वही श्री चह्वाण और उनके साथियोंको अपने मन्त्रीमण्डलमें शामिल करनेका निमन्त्रण दे देते, तब शायद इतिहास कुछ औरही होता।

श्री अडवानीने हिन्दुस्तान टाइम्समें बी. बालसुब्रमण्यनके व्यंग्यात्मक लेख 'लिव एण्ड लेट डाई' को उद्धृत करते हुए लिखा है कि चौधरी चरणसिंह और उनके अनुयायी श्रीमती इन्दिरा गांधीकी कठपुतली बने, क्योंकि उन्होंने अपराधियोंके बारेमें गल्प साहित्य नहीं पढ़ा था।

यदि वे पढ़ते तो उन्हें ऐसे [illegible] का पता चल जाता जिसके मस्तिष्कपर हत्याका भूत सवार रहता है। यह सत्य है कि चौधरी साहब सत्ता-प्राप्तिकी व्यग्रतामें ठीक कदम नहीं उठा पा रहे थे। पर क्या वे लोग दोषी नहीं हैं जिनके मस्तिष्कमें हत्याका भूत भी सवार नहीं था, पर फिरभी वे चौधरी साहबको गलत कार्य करनेसे रोक नहीं सके। क्या उस समय कोई राज-नीति, कोई कूटनीति कोई अन्य पद्धति चौधरी साहबको गलत कार्य करनेसे नहीं रोक सकती थी ?

श्री अडवानीने कई जटिल तथ्योंको अत्यन्त सरल ढंगसे प्रस्तुत कर दिया है। वे श्रीमती गांधीके बारेमें लिखते हैं—चिकमगलूरमें चुनाव जीतनेके बाद ऐसा लगा कि अब उनकी प्रगति रुक गयी है अर्थात् उससे ऊंचा उठना उनके वसकी बात नहीं, (पृ. ४२)। इस तथ्यको श्री अडवानीने सिद्ध करनेका भी प्रयत्न किया है। पर बादमें वे स्वयं अपनी बात काट देते हैं। वे लिखते हैं—श्रीमती गांधी १९८२ की प्रतीक्षा नहीं कर सकतीं थीं।...इसलिए उन्होंने अपनी अवनतिको रोकनेके लिए प्रयत्न आरम्भ किये। उनका उद्देश्य यह था कि जितना शीघ्र हो सके मध्यावधि चुनाव कराये जायें। वे किसीभी कीमतपर केन्द्रमें अस्थायित्व उत्पन्न कर देना चाहतीं थीं। सम्भवतः श्री अडवानी कहना चाहते हैं कि चौधरी चरणसिंहके कारण श्रीमती गांधीमें पुनः शक्तिका संचार हुआ, जबकि वास्तविकता यह प्रतीत होती है कि श्रीमती गांधीने प्रच्छन्न रूपसे किन्तु लगातार चौधरी चरणसिंहकी महत्त्वाकांक्षाओंको प्रोत्साहन दिया। उधर उनका पुत्र राज-नारायणके साथ मिलकर ऐसी योजनाका निर्माण करता रहा जिसके परिणामस्वरूप जनता सरकारका पतन हुआ। जो महिला योजनापूर्वक मध्यावधि चुनावकी स्थिति ला सकती हैं, वह चिकमंगलूरकी जीतपर शून्य हो गयीं थीं, इस बातपर विश्वास कैसे किया जाये ?

२८ जुलाई १९७९ को चौ. चरणसिंहको राष्ट्रपतिने प्रधानमन्त्री बना दिया और २० अगस्तको उनको लोक-सभामें बहुमत सिद्ध करनेके लिए कहा। श्री चरणसिंह श्रीमती गांधीकी सहायतासे प्रधानमन्त्री बने थे, और यह बात जनता पार्टीको भली प्रकार मालूम थी कि श्रीमती गांधी २० अगस्तको अपना समर्थन वापस ले लेंगी। श्री अडवानीने लिखा है—(यह बात) मूर्खसे मूर्ख व्यक्तिको भी दिखायी दे रही थी कि श्रीमती गांधी चौधरी चरण-सिंहको प्रधानमत्रीके पदपर आसीन कराकर उन्हें अपना [illegible] था। इसप्रकार प्रधानमन्त्रीके पदपर चौधरीके आसीन होनेसे पहले श्री राम जेठमलानीने उन्हें एक पत्र लिखा था जिसमें यह चेतावनी दी गयी थी कि "आपका लाभ उठानेके बाद आपको 'निचोड़े हुए नींबू' के समान फेंक देगी।" प्रश्न यह है कि इन २३ दिनों (२८ जुलाई से २० अगस्त १९७९) में जनता पार्टीके कर्णधारोंने क्या किया ? वे सभी २० अगस्तकी प्रतीक्षा करने लगे, और चौधरी चरणसिंहके अपदस्थ होनेपर हंसी के अवसरकी प्रतीक्षा करते रहे। यदि जनता पार्टी चाहती तो इन तेईस दिनोंमें चरणसिंहको पुनः जनता पार्टीमें लाने का प्रयत्न कर सकती थी अथवा वे अपने समर्थकोंकी सूची तैयार करके चौधरी साहबके अपदस्थ होतेही उसे राष्ट्रपतिको पकड़ा सकते थे। जनता पार्टीने ये बहु-मूल्य तेईस दिन गंवा दिये।

दिलचस्प बात यह कि उन्हें राष्ट्रपतिके इस निर्णय का, कि वे लोकसभा भंग कर सकते थे, कुछ-कुछ ज्ञान था। (पृ. ५३)। यहां इस बातके कारणोंका भी अन्वेषण करना चाहिये कि राष्ट्रपति श्रीमती गांधीके अधिक प्रभाव में क्यों थे ? उनका श्री मोरारजी देसाई व जगजीवन-रामसे नाराजगीके कारणोंका अनुमान किया जा सकता है, पर श्रीमती गांधीसे प्रसन्न होनेका कोई कारण समझ में नहीं आता। श्रीमती गांधी कूटनीतिमें सफल थीं तभी वे राष्ट्रपतिको मध्यावधि चुनावोंके लिए तैयार कर सकीं। जनता पार्टीके दिग्गज राजनीतिज्ञ राष्ट्रपतिके साथ, जिनको उन्होंने स्वयं इस पदपर आसीन किया था, ठीक सम्बन्ध स्थापित करके नहीं चल सके, और न उनके अन्त-र्मनको समझकर उनसे बातही कर सके। राष्ट्रपति द्वारा उनकी इच्छाके विरुद्ध लोकसभा भंग करनेका निर्णय लेने पर उनके हाथों केवल खीझ और उनपर महाभियोग चलानेकी बातही रह गयी। १९८० के चुनावोंके बादके परिणामोंको ध्यानमें रखकर कहा जा सकता है कि श्री संजीव रेड्डीके पास कहनेको बहुत कुछ है। वे कह सकते हैं कि यदि वे श्री जगजीवनरामको सरकार बनानेका अव-सर दे देते तो यह देशकी इच्छाके विरुद्ध होता।

श्री अडवानीने 'डरावा जी उठा' अध्यायमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघपरलगाये गलत आरोपोंका अत्यन्त सुन्दरता से उत्तर दिया है। इस प्रसंगमें श्री अच्युत पटवर्धनके लेखको उद्धृत करना अत्यन्त समीचीन रहा है। श्री वाज-पेयीके लेख और उसपर प्रतिक्रियाको भी श्री अडवानीने उद्धृत किया है। श्री वाजपेयीका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

को यह सुझाव कि संघको अ[illegible] यह बता देना चाहिये कि वह राजनीतिक भूमिका निभानेका इच्छुक नहीं है। इस कथनपर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके विरोधी बड़े खुश होकर कहते हैं, देखा हमने क्या कहा था। श्री वाजपेयीने भी इस बातको स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ राजनीतिमें भाग ले रहा है। (पृ.१००)। उक्त उद्देश्यकी पूर्तिके लिए श्री वाजपेयीने एक सुझाव यह दिया है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघको विधिवत् अपने इस दृष्टिकोणकी व्याख्या करनी चाहिये कि हिन्दू राष्ट्रसे उसका तात्पर्य भारतीय राष्ट्रसे है। अडवानीजी के अनुसार इस सुझावका आशय यह है कि इस बातपर बल दिया जाये कि संघ धर्मनिरपेक्षताके प्रति कटिबद्ध है। पता नहीं क्यों श्री अडवानीने यहां यह नहीं बताया कि श्री वाजपेयीके इस सुझावसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सर्वथा असहमत रहा है और श्री वाजपेयीको इस कारण अपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके साथियोंका कोपभाजनभी बनना पड़ा है। श्री वाजपेयीने 'शब्दोंके रूप' अर्थ पुराने, गलत अर्थ देने लगते हैं—इस सिद्धान्तके आधारपर उसके लिए नवीन सर्वग्राह्य शब्दोंका प्रयोग करनेका सुझाव दिया था, पर उनके साथियोंको यह बात पसन्द नहीं आयी। जबकि स्वयं श्री देवरसजीने प्रकारान्तरसे वाजपेयी जीकी ही बात कही है, वे कहते हैं—हमारा विश्वास है कि हिन्दू और भारतीय, हिन्दू राष्ट्र और भारतीय राष्ट्र समानार्थक शब्द हैं। (पृ. १०४)।

श्री अडवानीने पुस्तकके कई पृष्ठ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघकी विशेषताओंपर लिखे हैं, सम्भवतः इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। अडवानीजीने स्वयं स्वीकार किया है कि प्रश्न राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघकी अच्छाई-बुराईका नहीं था, इसके पीछे कुछ अन्य राजनीतिक कारण थे। मुख्य डरावा यह था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अथवा जनसंघके निष्ठावान् कार्यकर्ता जनता पार्टीके अन्य घटकोंको कहीं प्रभावहीन न कर दें? यह डरावा स्वाभाविक और कुछ-कुछ वास्तविक था। यह डरावा उनको परेशान न करे, इसके लिए जनसंघ घटकके प्रयत्न के बादभी कोई मार्ग नही निकला। सच तो यह है कि दोहरी सदस्यता या दोहरी निष्ठाका प्रश्न एक उलझा हुआ प्रश्न है। ६ अप्रैल १९८० को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघके प्रश्नपर जनसंघ घटकके जनता पार्टीसे निकल आने के बाद लोगोंकी निष्ठा जनता पार्टीकी अपेक्षा संघके प्रति अधिक थी।

इस बातपर भी अत्यन्त गम्भीरतासे विचार करने की आवश्यकता है कि जनसंघ घटकको आजभी अनेक व्यक्ति व दल अछूत क्यों मानते हैं? श्री चह्वाणने चौ. चरणसिंहका ही साथ क्यों दिया? और यह क्यों कहा कि वे मोरारजी भाईका साथ केवल इसलिए नहीं देंगे कि जनसंघी भाई उनके साथ हैं। श्री अडवानीका कहना है कि उनका व्यवहार समझमें नहीं आता। पर हमारे सामने तो यही मुख्य प्रश्न होना चाहिये कि जब कोई व्यक्ति जनसंघ घटकके साथ अछूतका-सा व्यवहार करता है, तब सामान्य जनताकी क्या प्रतिक्रिया होती है? आज लोग हरिजनोंसे अछूतका-सा व्यवहार करते हैं, पर किसीमें यह साहस नहीं है कि वह सार्वजनिक रूपसे यह कह सके कि वह हरिजनको अछूत मानता है, पर कुछ राजनीतिज्ञ जनसंघको सार्वजनिक रूपसे अछूत कहनेमें नहीं झिझकते। इस प्रश्नपर बहुत गम्भीरतासे विचार होना चाहिये।

श्री अडवानीने चौ. चरणसिंह व उनके साथियोंका दल छोड़कर जाना कई दृष्टियोंसे अच्छा माना है। इस सम्बन्धमें उनके निम्नलिखित कथन उद्धरणीय हैं:—हमें उनका (चौ. चरणसिंहका) आभारी होना चाहिये कि प्रधानमन्त्रीकी गद्दीपर बैठनेकी अधीरताके कारण उन्होंने ऐसी कारवाई की कि उनका महत्त्व समाप्त हो गया है, और राजनीतिमें अब उनपर कोई विश्वास नहीं करेगा। (पृ. १४)—यह बड़ी खुशीकी बात है कि संघसे घृणा करनेवाले जनता पार्टीसे निकल गये हैं और उसे एक नया अवसर मिला है कि वह अपनेको फिरसे संगठित करे और नये सिरेसे जनताका विश्वास प्राप्त करे। (पृ. ६७)—लेकिन श्री लिमये और अन्य व्यक्तियोंने जिन्होंने चौधरी चरणसिंहकी दलबदल नीतिकी योजना बनायी, अनजाने में जनता पार्टीकी बहुत बड़ी सेवा की है—वह इसप्रकार कि उन्होंने जनतामें दलबदल और दलबदलुओंके प्रति घोर घृणाका भाव जगा दिया है। दो महीने पहले जब जनता पार्टीके सदस्योंकी संख्या ३०० थी, उसके प्रवक्ताओं के लिए जनताकी बातोंका उत्तर देना कठिन हो रहा था, वे यह नहीं बता पाते थे कि उनके दलोंमें क्यों लगातार लड़ाई-झगड़ा चल रहा है और कीमतें क्यों इतनी बढ़ रही हैं कि लोगोंके लिए जीना दूभर हो गया है। आज यद्यपि हमारी संख्या घटकर २०३ रह गयी है। ये सिर उठाकर चल सकते हैं और उनसे कह सकते हैं कि जिन व्यक्तियोंके कारण ये समस्याएं बनी

हुई थीं वे हमें छोड़कर जा चुके हैं। दलके स्वास्थ्यके लिए यह अच्छाही हुआ कि उसके गन्दे तत्त्व निकल गये हैं। (पृ. ३९-४०)—आज जब वे लोग हमारा साथ छोड़ गये हैं, हम खुलकर उनका नाम ले सकते हैं। जबतक वे लोग हमारे दलमें रहे, सारा ध्यान उन्हींके आचरण पर केन्द्रित रहा, जनताने इस बातकी ओर ध्यानही नहीं दिया कि सरकार कैसा काम कर रही है। अब स्थिति बदल गयी है और हम विश्वासके साथ मतदाताओंके सामने जाकर अपना पूरा मामला उनके सामने रख सकते हैं। (पृ. ११७)—जिस प्रकार हमारे कुछ साथियोंने हमारे साथ विश्वासघात किया और जनता पार्टी टूट गयी, उससे लोगोंके मनमें इस दलके लिए अपार सहानुभूति उत्पन्न हुई है। जनताकी सद्भावनाके कारणही इस दल का निर्माण हुआ था और और यह सद्भावना—जो कुछ समय पहले समाप्तप्राय हो गयी थी—फिरसे जाग उठी है। (पृ. १२५-१२६)

यह सब लिखते हुए श्री अडवानीका मत था कि देश की जनता १९८० के चुनावोंमें चौ. चरणसिंह व लोकदल को सर्वथा कुचलकर रख देगी। पर १९८० के चुनाव-परिणाम इस बातके प्रमाण हैं कि उनकी धारणा निराधार थी। १९८० के चुनाव परिणामोंके संदर्भमें यही कहा जा सकता है कि या तो जनता चौ. चरणसिंहके दलबदलसे रुष्ट नहीं हुई थी, अथवा यह मानना चाहिये कि कुछ लोगोंके रुष्ट हो जानेके बादभी चौ. चरणसिंह का 'अपना मतदाता' जनता पार्टीके मतदाताओंसे अधिक था। १९८० के चुनाव परिणामोंके बाद जनता पार्टी बिखर गयी। अतः चौधरी चरणसिंहका दल छोड़कर जाना जनता पार्टीकी अच्छाईके लिए नहीं कहा जा सकता।

श्री अडवानीने १९७७ के चुनावोंपर भी अपनी टिप्पणी कई स्थानोंपर दी है मतदाताओंने समझ-बूझ कर श्रीमती गांधी और उनकी आपात् स्थितिको कूड़ेमें फेंक दिया। (प्रस्तावना)।—सामान्मतया हमारे जैसे देश में मतदाताओंपर राजनीतिक तत्त्वोंके बजाय गैर-राजनीतिक तत्त्वोंका अधिक प्रभाव पड़ता है। परन्तु १९७७ के चुनावमें सामान्य भारतीय मतदाता अचानक राजनीतिक दृष्टिसे अत्यधिक जागरुक व्यक्ति बन गया। उम्मीदवार अच्छा हो या बुरा, यदि वह श्रीमती गांधी का उम्मीदवार था तो हरा दिया गया। अधिकतर राज्यों में जाति, सम्प्रदाय और साधनों जैसी बातें चुनावमें [...] नहीं रहा और लोगोंने केवल एकही उद्देश्यसे मतदान किया। वह उद्देश्य यह था कि श्रीमती गांधी और उनके बेटेको फिरसे सत्तारूढ़ न होने दिया जाये (पृ. ११९)।—१९७७ का मतदान निश्चित रूपसे नकारात्मक मतदान था। लोगोंने श्रीमती गांधी, उनके द्वारा घोषित आपात्स्थिति और संजयके विरुद्ध मत दिये। (पृ. १२१) —१९७७ में मतदाताओंको स्वयं पता था कि उन्हें क्या करना है (पृ. १२७)। इसके साथही श्री अडवानीने १९८० के चुनावोंके बारेमें भी अपने अनुमान प्रकट किये—श्रीमती गांधीका विचार है कि उनके आकर्षणसे मतदाता उनकी ओर खिंचे चले आयेंगे। परन्तु मैं समझता हूं कि वे इस बारभी मतदाताओंकी राजनीतिक सूझबूझका गलत अनुमान लगा रही हैं। इस दृष्टिसे इस बारके चुनाव अपूर्व होंगे। तीन मुख्य राजनीतिक दल चुनावके अखाड़े में उतरेंगे—जनता, इन्दिरा कांग्रेस और लोकदल। ये तीनों न केवल अपने चुनाव घोषणा-पत्र और अपने उम्मीदवार लेकर मतदाताओंके सामने जायेंगे बल्कि उनके मनोनीत प्रधानमन्त्रीभी जनताके साथ होंगे। यह बात भारतमें कभी नहीं हुई—१९७७ में भी नहीं।...इस चुनावके इस नये आयामका मतदाताओंपर काफी प्रभाव पड़ेगा। लोगोंको तीनोंमें से एक व्यक्ति चुनना है—एक तानाशाह है जिसे लोग एक बार मिट्टीमें मिला चुके हैं, दूसरा दलबदलू है, जिसकी इज्जत उसके अपने कार्योंने खत्म कर दी है, और तीसरा एक कुशल प्रशासक है। मैं मानता हूँ कि भारतकी जनतापर सही चुनाव करनेका विश्वास किया जा सकता है। (पृ. १२८)—मेरी विनम्र सम्मतिमें श्री अडवानीजीने भारतीय मतदाताओं द्वारा मतदान करनेपर ठीक टिप्पणी नहीं की। १९७७ के चुनावोंमें भी बहुत कम मतदाताओंने सोच-समझकर श्रीमती गांधीको हराया था। जनता पार्टीकी विजयका कारण सभी दलोंका मिलकर चुनाव लड़नाही था। १९८० में जनता पार्टीकी हारका कारणभी यही है कि दलके विभक्त हो जानेके कारण मतभी विभक्त हो गये। श्रीमती गांधीके अपने मतदाता थे, जो उन्हें तानाशाह होनेपर भी दण्डित नहीं करना चाहते थे। चौधरी चरणसिंहके भी अपने मतदाता थे, जो उन्हें दलबदलू होनेपर भी पुरस्कृत करना चाहते थे। शेष रहे कुशल प्रशासक बाबू जगजीवनराम, उनको तथा शेष जनता पार्टीको भी अपनेही मत मिले। हमारे देशमें सोच-समझकर दलीय भावनासे ऊपर उठकर मत देनेवाले मतदाताओंकी संख्या

बहुत कम है ।

श्री अडवानीने प्रस्तावनामें चुनाव-व्यवस्थामें क्रान्तिकारी परिवर्तनोंका सुझाव दिया है । उन्होंने पश्चिमी जर्मनीकी निर्वाचन व्यवस्थामें समुचित परिवर्तनोंको स्वीकार करनेके लिए कहा है, जिसमें कुछ स्थान तो बहुमतके आधारपर दलोंको मिलते हैं और कुछ उम्मीदवारों को तालिकाओंके आधारपर । चुनाव-प्रणालीकी प्रक्रिया पर सचमुच बहुत गम्भीरतासे विचार करनेकी आवश्यकता है। इस समय चुनाव-प्रणाली और उसके द्वारा सरकारके गठनकी प्रक्रिया इतनी दूषित है कि देशके कुल २० प्रतिशत व्यक्तियों द्वारा समर्थित दल शेष ८० प्रतिशत जनता पर शासन करता है। चुनाव-प्रणालीपर विचार करते हुए देखना होगा कि देशका प्रत्येक मतदाता मतदानमें भाग ले (२) दलीय अंकुश कमसे कम हो (३) भ्रष्टाचार चुनाव-व्यवस्थासे परे रहे (४) एक निर्धन व्यक्तिभी यदि चुनाव लड़ना चाहे तो उसे चुनाव लड़नेकी सुविधा हो। शत-प्रतिशत जनताकी इच्छाकी पूर्ति यदि राष्ट्रीय सरकार के गठनसे पूर्ण होती हो तो उसकी सम्भावनाओंपर भी विचार होना चाहिये । एक बार लोकसभाके निर्माणके उपरान्त किसी दलको ५० प्रतिशत समर्थन न होनेकी स्थितिमें लोकसभा भंग करनेके स्थानपर प्रधानमन्त्री पद के लिए जितने उम्मीदवार हों, संसद्सदस्योंको वरीयताके क्रमसे उतने मत देनेका अधिकार हो और आनुपातिक निर्वाचन प्रणालीसे सबसे अधिक समर्थन प्राप्त व्यक्तिको प्रधानमन्त्री बना दिया जाये। इस प्रणालीसे १९७९ में प्रधानमन्त्रीका चुनाव कर लिया जाता तो १९८० के मध्यावधि चुनाव टल सकते थे ।

पुस्तकमें एक खटकनेवाली बात यह है कि अडवानी जीने कुछ स्थानोंपर अत्यन्त कठोर शब्दोंका प्रयोग किया है। वे लिखते हैं—श्री लिमयेकी भूमिका यदि विकृत है तो चौधरीकी भूमिकाको घृणितकी संज्ञा दी जा सकती है (पृ. ३६)……चौधरी चरणसिंहने जो कुछ किया उसके लिए दलबदलू बहुत हलका शब्द है। यह काम तो पीठमें छुरा भोंकनेके समान है, इसे विश्वासघातका जघन्य कार्य कहा जाना चाहिये (पृ. ३७)……चौधरी चरणसिंहकी सत्तालिप्सा और श्री मधु लिमयेके विकृत मस्तिष्कने उन्हें उन बातोंके प्रति अन्धा कर दिया था जो मूर्खसे मूर्ख व्यक्तिको भी दिखायी दे रही थी (पृ. ९६) श्री चह्वाणको झूठा और पाखण्डी (पृ. ४५) तथा श्री राजनारायणको प्रलापी (पृ. ९६) कहा गया है। यह कठोर शब्दावली आवेशके क्षणोंमें पारस्परिक बातचीत अथवा अधिकसे अधिक किसी चुनाव-भाषणमें तो ग्राह्य हो सकती है, किसी गम्भीर पुस्तकमें अच्छी नहीं लगती। हां, लेखककी व्यक्तिगत दैनंदिनीमें यह भलेही स्थान प्राप्त कर ले। श्री अडवानीने 'प्रारम्भमें ही' अध्यायमें चौधरी साहबकी प्रधानमंत्री बननेकी इच्छाको उनपर भूतकी तरह सवार कहा और उनपर उसे मन्त्रीमण्डलकी एक उपसमितिकी बैठकमें प्रकट करनेको भोंडापन माना है (पृ. १५-१६)। मेरे विचारमें जिस प्रकार चौ. साहबको अपनी प्रधानमंत्री बननेकी इच्छा को अधिकारियोंके सामने प्रकट नहीं करना चाहिये था उसीप्रकार श्री अडवानीको भी चौधरी साहबकी दुर्बलता को प्रत्येक पाठकके सम्मुख प्रस्तुत करना अनुपयुक्त था। इसे पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति उनके दलसे निकल जानेके कारण अपनी खीझ व्यक्त कर रहा है। यह सब लिखनेसे यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि हम चौ. चरणसिंह या उनके साथियोंके किये कृत्यसे प्रसन्न हैं या उनके पक्षमें हैं। अभिप्राय केवल इतना है कि गम्भीर पुस्तकोंमें व्यक्तिगत राग-द्वेषको स्थान नहीं मिलना चाहिये। नेताओंकी व्यक्तिगत चरित्रकी दुर्बलताओंको प्रकट करके किसी राष्ट्रीय कार्यकी सिद्धिकी संभावना नहीं है। आजकी राजनीतिमें पता नहीं कब किसके साथ बरतना पड़े, इस कारण भी व्यक्ति विशेषके विरुद्ध कुछ कहना अनुपयुक्त है। श्री अडवानीने श्री जगजीवनराम व कुछ अन्य नेताओंके नाम इस पुस्तकमें अत्यन्त आदरसे लिये हैं। वे लिखते हैं—श्री जगजीवनरामको इस निर्णयपर आपत्ति थी तो यह ठीक ही थी··परन्तु इन्होंने इस निर्णयको शिरोधार्य किया और अपने आपको परिस्थितियोंके अनुकूल ढाल लिया (पृ. १२३)। श्री अडवानी व भारतीय जनसंघ श्री जगजीवनरामसे इतने प्रभावित थे कि १९७७ में भी उन्होंने उनको ही प्रधानमंत्री बनानेका विचार किया था (पृ. १७२)। श्री अडवानीने उन सभी नेताओंको आदर से स्मरण किया है जिन्होंने जनता शासनके ढाई वर्षोंमें राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ या जनसंघ घटकके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा, इनमें श्री मोरारजी देसाई, चन्द्रशेखर, बाबू जगजीवनराम व दण्डवते प्रमुख हैं। इनके सम्बन्ध में श्री अडवानीका कहना है कि इन्होंने भू. पू. जनसंघ के प्रति सर्वथा उचित दृष्टिकोण अपनाया है। प्रश्न है कि १९८० में जब इन लोगोंने विशेषतः श्री जगजीवनराम

ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघको गालियां दीं, और वे अलग हो गये, भू. पू. जनसंघ घटकको भी भारतीय जनता पार्टीके रूपमें पृथक होना पड़ा, श्री अडवानीकी इन सबके प्रति क्या प्रतिक्रिया रही ? संभवत: वे इन्हें कर्पूरी ठाकुरके समान मानेंगे, जो अक्तूबर १९७८ में जनसंघके समर्थक थे, पर अगस्त १९७९ में जब जनसंघ घटकने श्री रामसुन्दरदासका समर्थन दिया तो कर्पूरी ठाकुरकी दृष्टिमें वह साम्प्रदायिक हो गया। इसपर श्री अडवानी ने लिखा है—क्या इससे अधिक उत्तरदायित्वविहीन कोई बात हो सकती है कि वे इस प्रकारका अति-शयोक्तिपूर्ण और झूठा आरोप केवल इस कारण लगायें कि उनके साथ उनके राजनीतिक संबंध बदल गये हैं ? ···किसी दंगे या अल्पसंख्यकोंके प्रति किसीभी राजनीतिज्ञ का दृष्टिकोण राजनीतिक कार्य-साधकतापर आधारित नहीं होना चाहिये। यह बड़ा गम्भीर मामला है और इसमें ओछेपनसे काम लेना गम्भीर बात है। (पृ. ९३)। आज जनता पार्टीके जो साथी श्री अडवानीसे अलग हो गये हैं, उनके प्रति उनकी क्या धारणा है, यह पाठकोंके लिए जिज्ञासाका विषय है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि श्री अडवानीने पुस्तक में जनता पार्टीके विघटनका सम्पूर्ण दायित्व चौ. चरण-सिंह, राजनारायण, मधु लिमये व श्री फर्नाण्डीज आदि को स्वीकारकर इतनी बड़ी दुर्घटनाका अत्यन्त सरल कारण प्रस्तुत कर दिया है। चौ. साहबकी सत्तालिप्सा व बाकी नेताओंका मोरारजी भाईकी सरकारको गिरानेके षड्यन्त्रकी जितनी निन्दा की जाये थोड़ी है, किन्तु विघ-टनका केवल यही कारण नहीं है। विघटनका एक बड़ा कारण घटकवादका बना रहना था और उसके लिए सभी घटक समान रूप रूपसे उत्तरदायी थे।

सबसे बड़ी बात यह कि जनता पार्टीमें श्रीकृष्ण या चाणक्य जैसा कोई महान् नीतिज्ञ नेता नहीं था, जो विभिन्न घटकोंमें एकता रख पाता। श्री मोरारजी भाई में ऐसी क्षमता हो सकती थी यदि वे अविश्वास प्रस्ताव आनेपर सारी स्थितिका आकलन कर लेते और राजनीति छोड़कर दलीय एकताके कार्यमें जुट जाते। यों श्री अड-वानीने अपनी पुस्तकमें उन कारणोंका उल्लेख नहीं किया जिन कारणोंसे श्री मोरारजी भाईने लोकसभामें अपना अल्पमत सिद्ध होनेसे पूर्वही प्रधानमंत्री पदसे त्यागपत्र दे दिया। ईश्वर-विश्वासी मोरारजी भाईका अकस्मात् प्रधानमन्त्री पद छोड़ देना कुछ विचित्रही था। इस प्रसंग में यहभी उल्लेखनीय है कि जनता पार्टीके कर्णधारोंने विघटनकी स्थितिसे बचनेके लिए राजनीतिसे बाहर श्री जयप्रकाश नारायण अथवा श्री जे. बी. कृपलानीके पास जाकर उनसे मार्गदर्शन लेना भी उपयुक्त नहीं समझा।

विघटनके बादभी जनता पार्टी और उधर लोकदल के सभी नेता अपने अहंभावके कारण अपनी-अपनी ढपली अलग बजाते रहे, देशके जनमानसकी बिना चिन्ता किये अन्धे व्यक्तिके समान गुमराह बने रहे। उन्हें एक दूसरेके प्रति घृणा हो गयी थी। श्रीमती गांधीने इस स्थितिका पूरा लाभ उठाया और १९८० के चुनावोंमें वे इसीकारण विजयी हुईं। लोकसभाके चुनाव-परिणामोंसे भी यदि ये सीख ले लेते, और एक हो जाते तो सम्भवत: जून १९८० के विधानसभाके चुनावोंमें अच्छा परिणाम दिखा पाते, पर इस कालमें तो इनका और अधिक विघटन हो गया। तबभी इन्होंने एक होनेके स्थानपर सड़कपर लड़ना पसन्द किया।

कुल मिलाकर 'विश्वासघात' दलीय भावनासे १९८० के चुनावोंसे पूर्व मतदाताओंको प्रभावित करनेके लिए लिखी गयी पुस्तक है। इस दृष्टिसे इसका मूल्यां-कन किया जाये तो पुस्तक अच्छी है। इसे प्रचारात्मक साहित्यकी उत्कृष्ट पुस्तक कहा जा सकता है। किन्तु ऐसी पुस्तकोंकी ऐतिहासिक स्थिरता नहीं होती। दूसरे इस पुस्तककी साज-सज्जा, उत्तम छपाई, मूल्य, प्रकाशक प्रचारात्मक साहित्यका न होकर किसी स्थायी साहित्यका सा है।

श्री लालकृष्ण अडवानी जैसे गम्भीर व सुलझे हुए लेखकको किसीभी राजनीतिक कालका विवेचन व विश्ले-षण तटस्थ दृष्टिसे ही करना चाहिये। श्री अडवानीकी शैलीमें स्पष्टता, सरलता व ओज आदि कई गुण हैं। उसमें अनेक स्थानोंपर साहित्यिक पुटभी है। यदि वे देश की राजनीतिपर तटस्थ दृष्टिसे लिखें तो उनकी गणना देशके महान् राजनीतिक लेखकके रूपमें होगी। हम आशा करते हैं कि वे शीघ्रही कोई एक स्थायी मूल्यका ग्रन्थ प्रस्तुत करेंगे।

पुस्तक लेखक द्वारा १९७९ में अंग्रेजीमें लिखी 'दि पीपॅल बिट्रेड' का अविकल अनुवाद है जोकि अच्छा बन पड़ा है। □□
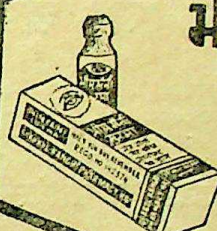
'प्रकर' : अक्तूबर'८२ पंजीकरण संख्या : १७५८२/६६ डाक पंजीकरण : डी (डीएन) ५६१

आगामी अंक

दीपावली अंक

इस अंकमें आलोचना साहित्यके ग्रन्थोंका निरूपण होगा.

आशा है ये आलोचना ग्रन्थ साहित्यकी विभिन्न सर्जनात्मक विधाओंको नवीन ज्योति प्रदान करेंगे.

यह ज्योतिमाला आपके लेखन-कर्मके लिए प्रकाश-स्तंभ सिद्ध हो.

दीपावलीकी मंगल कामनाओंके साथ.

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, २५७४. रघुबरपुरा, गांधीनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०००७ से प्रकाशित।

दीपावल
अं

मार्गशीर्ष : २०३९ (वि.)
नवम्बर : १९८२

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७

वर्ष : १४ अंक : ११ नवम्बर : १९८२ मार्गशीर्ष : २०३९ (वि.)

इस अंकमें

शोध : आलोचना

कहानी-आलोचना

हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा—डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ	५२	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
हिन्दी कहानी : १९७९—सम्पादक : डॉ. राकेश गुप्त, डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी	५४	डॉ. पुष्पपालसिंह

नाट्य-आलोचना

असंगत नाटक और रंगमंच—डॉ. नरनारायण राय	५६	डॉ. भानुदेव शुक्ल.
समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच—डॉ. विनय	५८	डॉ. नरनारायण राय
नटरंग विवेक—डॉ. नरनारायण राय	६१	डॉ. धर्मदेव तिवारी
नाट्य परिवेश—कन्हैयालाल नन्दन	६४	डॉ. नरनारायण राय
धनुष यज्ञ—डॉ. अज्ञात	६६	डॉ. भानुदेव शुक्ल

साहित्य एवं आलोचना

साहित्य विधाओंकी प्रकृति—सम्पादक : देवीशंकर अवस्थी	६७	डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
कला साहित्य और समीक्षा—डॉ. तारिणीचरणदास 'चिदानन्द'	७०	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
साहित्य और जन संघर्ष—शम्भुनाथ	७२	डॉ. मूलचन्द गौतम
आलोचकका दायित्व—डॉ. रामचन्द्र तिवारी	७६	डॉ. प्रशान्तकुमार

प्रेमचन्द : व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रेमचन्द विश्वकोश—डॉ. कमल किशोर गोयनका	७९	डॉ. विष्णुकान्त शास्त्री
प्रेमचन्द कथा संसार—डॉ. नरेन्द्र मोहन	८३	डॉ. सीताराम खोड़ावाल

अभिनन्दन : संस्मरण

डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन': व्यक्तित्व और कृतित्व—सम्पादक : डॉ.कमलसिंह	८५	डॉ. रामस्वरूप आर्य
जयशंकर प्रसाद—रमेशचन्द्र शाह	८६	प्रा. महेशचन्द्र शर्मा

साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित

पाश्चात्य-साहित्य के कतिपय अमर रत्न

डॉन क्विग्ज़ोट

शेक्सपियर के समकालीन विश्व-विख्यात लेखक सरवान्तीस की अप्रतिम स्पेनिश कालजयी कृति। अनुवादक : छविनाथ पाण्डेय। पृष्ठ ५१४, द्वितीय संस्करण (१९७१), ११ रुपये।

वालडेन सरोवर

प्रख्यात अमरीकी विचारक और क्रान्तिदृष्टा हैनरी डेविड थोरो के एकान्त जीवन के अनुभव। अनुवादक : बनारसीदास चतुर्वेदी। पृष्ठ ३२६, द्वितीय संस्करण (१९७१), ७ रुपये ५० पैसे।

राख और हीरे

समसामयिक पोलिश साहित्य में एक कालजयी कृति माने जाने वाली, प्रसिद्ध उपन्यासकार येर्जी आन्द्रजेयेव्स्की का अमर उपन्यास—'पोपिओल इ दियामेन्त' अर्थात् **एशेस एण्ड डायमण्ड**। पोलेन्ड में फासिज्म के विरुद्ध की गई लड़ाई का सजीव चित्रण। अंग्रेजी से अनुवादक : रघुवीर सहाय। पृष्ठ २४८, (१९७८), १८ रुपये।

राजा

योरोपीय साहित्य में चाणक्य का स्थान रखने वाले जाने माने लेखक माकियावेल्ली की इतालवी कालजयी कृति—'दि प्रिंस।' अनुवादक : रामसिंह तोमर। पृष्ठ १०४, द्वितीय संस्करण (१९८२), १२ रुपये।

पथ का प्रभाव

कनफ्यूशियस के समकालीन माने गए चीनी लेखक लाओ-त्से के सुप्रसिद्ध दार्शनिक ग्रन्थ 'ताओ ते चिंग' का हिन्दी अनुवाद। अनुवादक : जगदीशचन्द्र जैन। पृष्ठ ७२(१९७३), २ रुपये ५० पैसे।

एरियौपेजिटिका

विश्व-विख्यात अंग्रेजी स्वतंत्र-चिन्तक तथा कवि जॉन मिल्टन की अनुपम कृति जिसमें लेखक ने मनः-स्वातंत्र्य की महत्ता का गरिमामय प्रतिपादन किया है। अनुवादक : बालकृष्ण राव। पृष्ठ ९८, द्वितीय संस्करण (१९८२), ८ रुपये।

प्राप्ति-स्थान : साहित्य अकादमी
रवीन्द्र भवन
नई दिल्ली-११०००१

दीप पर्व : भारतीय चेतनाका प्रतीक

एक-एक दीप संजो-सजाकर दीपमालिकाका आयोजन हमारी पुरातन परम्परा है। एक-एक दीपकका व्यक्तित्व स्थापित करकेभी दीपपंक्तिके द्वारा समाकलित समष्टिकी प्रतिष्ठाके लिए हम प्रयत्नशील होते हैं, विकीर्णतामें अविच्छिन्नताके समावेशकी कामना करते हैं। प्रयत्नों-कामनाओंकी गतिशीलतामें बाधक तमोमय एवं अंधकारपूर्ण शक्तियोंके जालको छिन्न-भिन्न करनेके लिए इसे 'ज्योतिपर्व' का रूप देते हैं, उसीके आलोकमें समाज पर क्रन्दनकी वर्षा करनेवाली रावणी शक्तिपर विजयकी संकल्पना करते हैं और अमंगल-मर्दिनी कालीका आवाहन करते हैं। यह संकल्प, यह आवाहन व्यक्ति-व्यक्तिकी चेतनाको जागृतकर ऐसी ज्योतिकी स्थापना-प्रतिष्ठाकी शक्ति प्रदान करे कि जिसमें व्यक्ति अपने स्थानपर स्थित होता हुआभी अपनी अस्मिताके पार्थक्यकी ओर संकेत नहीं कर सकता।

यह संकल्पना स्मरणातीत कालसे मूर्त रूप लेती रही है। कब कौन व्यक्ति, वर्ग, जाति यहां आया और अपने प्रज्वलित दीपकको दीपपंक्तिमें एकछंद बिठा गया, यह तो आजका अन्वेषणशील इतिहासभी ठीकसे बतानेमें असमर्थ हैं, परन्तु विभिन्न धाराओं, संस्कारों और जीवन-पद्धतियोंकी चेतनाओंने भारतीय ज्योतिके साथ एकाकार होकर उसके आलोकको सघन बनाया। शक्तिशाली झंझा-वातोंने इस ज्योतिके स्रोतोंको विच्छिन्न करनेके अनथक प्रयास किये है, फिरभी इस ज्योतिको आलोकित रखनेमें हम सफल रहे हैं। आजकी अन्तर्बाह्य स्थूल-सूक्ष्म विघटन-शील शक्तियांभी इस ज्योति और आलोकसे पराजित होकर 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' के घोषको जीवित रखें, यही कामना है।

इस मंगलमय पर्वके इस रूपमें स्मरणकी प्रासंगिकता 'अनेकतामें एकता', के राजनीतिक नारेसे संबद्ध है। कामना और कर्म पृथक्-पृथक् होते हुए भी प्रेरक-प्रेरित भावसे सम्बद्ध हैं, ऊर्ध्व और व्यापक कामनाएं एकताके भावको चरितार्थ करती हैं; संकीर्ण और निम्न कोटिकी कामनाएं अनेकताको जन्म देती हैं और निष्पत्ति 'एकतामें अनेकता' होती है। यही विघटनकी पूर्ववर्ती प्रक्रिया है, जिससे हमारा देश राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्तरोंपर पीड़ित हैं। यदि इस पीड़ाको हमारे साहित्यमें सही प्ररिप्रेक्ष्यमें अभिव्यक्ति मिले तो इस विघटनको रोकनेमें सहायता मिल सकती है, परन्तु आज का भारतीय साहित्य जिस नव-उन्मादसे ग्रस्त हो गया है वहभी एकतामें अनेकताकी पुष्टि कर रहा है, विघटनकी दिशामें अग्रसर कर रहा है। आर्थिक और राजनीतिक स्तरोंपर अनेकताकी भावनाको जो तीव्र और उग्र गति-शीलता मिली है, उसने हमारे सामाजिक ढांचेको डावां-डोल कियाही है, नैतिकताकी धारणाओंकाभी अव-मूल्यन किया है। इस प्रबल आवेगसे हमारी अवचेतना इतनी प्रभावित है कि सर्जनात्मक प्रवृत्तियोंकाभी दिशान्तर हो गया है और केन्द्रापसारी भावनाएं और शक्तियां उसका स्थान ले रही हैं।

केन्द्रापसारी सर्जनात्मक प्रवृत्तियोंने, स्वभावतः, मानवीय संबंधोंमें दरार पैदा कर दी है। यह दरार धर्म की आड़में संचालित संकीर्ण आन्दोलनोंसे अधिक घातक है क्योंकि ये सीधी अवचेतन मनपर प्रहार करती है और कुण्ठाग्रस्त परिवेशका निर्माण करती हैं। इसी परिवेशमें मानसिक वृत्ति निराशाकी स्थितिसे कदम बढ़ाकर विनाश-विध्वंसकी ओर प्रवृत्त होती है। क्षोभ, क्रोध, विद्रोहके रूपमें व्यक्त यह वृत्ति कुछ समय बादही संत्रस्त और आतंकित होकर या तो भक्तिका मार्ग अपना लेती है अथवा काम-कलोलके रास्तेपर चल देती है। हमारी राष्ट्रीय स्मृति इस प्रकारके चित्र उभारनेमें समर्थ है। इन अतीत चित्रोंसे एक यह रूप तो स्पष्ट होता ही है कि जहां भक्ति मार्गने सामूहिकताको जन्म दिया और संवेद-नात्मक अनुभूतियोंका सहभोगी बनाया, वहीं काम-कलोल मार्गने व्यक्तिको एकाकी, आत्मकेन्द्रित और रसभोगी बना दिया और वह आत्मवंचकसे समाजवंचक बन गया। यही प्रवृत्ति आधुनिक साहित्यमें भी दृष्टिगोचर होती है। परिवेश-भेदसे आजके साहित्यकी दिशा भक्तिमार्गी होने की संभावनाएं नहीं हैं, परन्तु ऊर्ध्वगामी उदात्त साहित्य के अभावमें तप्त-साहित्यने जिन आशंकाओंको जन्म दिया है वे तो श्रेयस्कर हैं ही नहीं, साहित्यिक परिधिके भीतर पनपता काम-कलोल-साहित्य मध्यकालके परिचित संकट मार्गकी ओर संकेत करता है जो असाधारण रूपसे लम्बी कालावधि तक देशमें जड़ताकी स्थिति बनाये रहा। अद्भुत बात यह है कि मध्यकालीन जड़ताने हमारी सामाजिक और नैतिक व्यवस्थाको पंगु बनाया, परन्तु राजनीतिक स्तरपर देशका विखण्डन नहीं हुआ। यहांकी

धरतीसे जुड़ा समाज इस विखण्डनको किस अन्तर्निहित शक्तिके बलपर रोकनेमें समर्थ हुआ, यह [illegible] अध्ययन और विश्लेषणका एक अन्यतम विषय प्रतीत होता है।

हमारी चिन्ता अतीतकी नहीं, वर्तमानकी है। आजके भिन्न परिवेशमें हमारे समाजमें विवशता है। विवशताकी स्थितिपर तप्त साहित्य निरन्तर प्रहार करता रहता है। कभी-कभी यह ताप चिन्ताजनक स्थिति पैदा कर देता है और केन्द्रापसारी भावनाएं और शक्तियां भड़क उठती हैं। यह साहित्य अतीतकी जड़ताको बाह्य आतंक द्वारा भंग करना चाहता है, इसलिए विद्रोही प्रवृत्तियोंका पोषण करता है। इस मार्गकी जोखिम यह है कि विद्रोह करनेवाले वर्गोंका नेतृत्व, निर्देशन और नियंत्रण जिन लोगोंके हाथमें रहता है वे ही विद्रोही समाजकी तात्कालिक मनोभावनाओंका लाभ उठाकर सत्तारूढ़ हो जाते हैं और उनका पहला लक्ष्य यही विद्रोही वर्ग और समाज होता है। इस प्रकार आतंकका चक्र-प्रवर्तन पहलेकी तुलना में अधिक तीव्रतासे होने लगता है। इस स्थितिको जन्म देने वाला साहित्य तो सबसे पहले शिकार होता है। पीड़ित समाज पीड़िततर होने लगता है। भावनाओंको उभाड़नेसे लेकर विद्रोह तककी प्रक्रिया अपने आपमें कम पीड़ा नहीं है, विद्रोह-आतंक-प्रतिविद्रोहका प्रवर्तन-प्रत्यावर्तन समाजको समूल नष्ट करनेकी निश्चित दिशा है। आज राजनीतिक-सामाजिक स्थितिके जिस स्तरपर हम पहुंच चुके हैं, उसमें उग्र चक्र-प्रवर्तनको रोकनेमें सक्रिय होनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है। साहित्यके माध्यमसे राजनीतिक सत्ताकी ओर पग बढ़ानेवाले साहित्यिक-राजनीतिज्ञोंको अपनी योजनाओंपर यह अंकुश रुचिकर नहीं प्रतीत होगा, परन्तु संवेदनशून्य एवं यन्त्रचालित समाजके निर्माणकी उनकी योजनाओंका समर्थन नहीं किया जा सकता। यह स्थिति स्वयं तप्त साहित्यके प्रवर्तकोंका भी संभवतः काम्य नहीं है।

यही स्थिति जब भाषिक-धार्मिक-सांप्रदायिक-प्रादेशिक विग्रहका रूप ले लेती है तो जटिलता और बढ़ जाती है। विग्रहको तात्कालिक रूपसे रोकनेके लिए मूल कारणों और उनके समाधानकी उपेक्षाकर जब समझौतावादी नीतियां अथवा आत्म-समर्पणका मार्ग अपनाया जाता है तो ये विग्रह स्थायी भावका रूप ले लेते हैं और विघटन की प्रवृत्ति गहरी हो जाती है। आज राजनीतिक क्षेत्रमें इसी संकटका हमें सामना करना पड़ रहा है। इससे जूझनेके लिए योजनाबद्ध रूपसे एकपक्षीय प्रचार साहित्य का निर्माण होता है और इससे बाजार पाट दिया जाता है। बौद्धिकताका झंडा फहरानेवाले बुद्धिजीवी और उनके संस्थान-केन्द्र इस अभियानमें सहयोगी होते हैं। अबतक की आठ दशकोंकी पूरी शती एकपक्षीय और एकांगी प्रचार साहित्यके निर्माणमें जुटी रही है। इसके अन्तर्गत जिस विष-बेलका आरोपण विभिन्न आदर्शवादी आवरणों और नारोंके अन्तर्गत किया गया, वे आदर्शवादी आवरण और नारे आज अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये हैं। आवरणोंको पहचानना सबके लिए भलेही संभव न हो, परन्तु नारों की गूंजसे कोई अप्रभावित नहीं रहा। रोचकता यह है कि इन्हीं नारोंकी गूंजके बीच हमें विष-बेलके फलों को गलेके नीचे उतारना पड़ रहा है; इससे हम चौंकते हैं, झल्लाते हैं, पर फिर जिस तन्द्रामें चले जाते हैं उससे इसी निष्कर्षपर पहुंचा जा सकता है कि अतीतके जड़ता के संस्कारोंसे अभी हम मुक्त नहीं हो पाये। अन्यथा कोई कारण नहीं कि राष्ट्र-शरीरके इन गहरे घावोंसे बहते रक्तके आस्वादके लिए स्वयं अपने हाथों विषैले कीट-पतंगोंको ला-लाकर बिठाते रहें। संभव है अभी हमारे सत्ताधीशोंकी राष्ट्रीय भावना वायवीय हो अथवा विदेशों से माँगकर लायी गयी ऐसी वस्तु हो जिसकी सचालन-पद्धतिसे अभी वे अपरिचित हों, परन्तु देशकी जनता तो परंपरागत राष्ट्रीय भावनासे ही पगी है। अवश्यही प्रचार-साहित्यसे यह जनताभी दिग्भ्रमित हो जाती है और इसी कारण वह भाषिक-धार्मिक-साम्प्रदायिक-प्रादेशिक आन्दोलनोंकी भी शिकार हो जाती है, विष-बेलके फलों को भी निगलनेको विवश होती है।

इस सारी स्थितिका परिणाम यह है कि हम अनेकतामें एकताके दर्शन करने अथवा अनेकतामें एकता स्थापित करनेके स्थानपर एकतामें अनेकताकी स्थापनाकी दिशामें चल रहे हैं। हमारी ऊर्ध्व कामनाएं एकताकामी हैं परन्तु अपनी निम्नगामी कामनाओंके कारण हमारे कर्म और कार्य जिस चिन्तनको जन्म दे रहे हैं, वे सभी विघटनशील तत्त्वोंको गतिशील बना रहे हैं। हमारा तप्त साहित्य और प्रचार साहित्य इसी चिन्तनकी पुष्टि कर रहा है और विघटनात्मक प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहित कर रहा है। आशाकी किरण है स्वतन्त्रताके बाद जन्मी नयी भारतीय चेतना, जो निरन्तर इन विघटनवादी प्रवृत्तियोंसे संघर्ष कर रही है। यह चेतना धीरे-धीरे व्याप्त हो रही है, एक नये राष्ट्रीय विश्वासको जन्म दे रही हैं और नयी दिशामें नया मार्ग ग्रहण कर रही है। इस मार्गको आलोकित करनेवाले ज्योतिपुंजका प्रतीक हमारा वार्षिक 'दीप पर्व' है, जिसमें एक-एक गृहस्थकी दीपक पंक्ति इस ज्योतिपुंजको सघन बनाती है और आलोककी तीव्रतामें वृद्धि करती है। यह व्यक्ति-चेतना समुदाय-चेतनामें परिवर्तित हो रही है। यह हमारे राष्ट्र समाजके अखण्डित रूपको शक्तिशाली बनाये और उसके प्रचार-प्रसारको विस्तृत करे।▭▭

भूख और उसके शारीरिक-मानसिक अनुभावका चित्र : 'रोटी रोजी'[1]

उपन्यासकार : हैमसन नट पेडर्सन
रूपान्तरकार : नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

समीक्षक : डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'

प्रस्तुत उपन्यासकी रचना विश्वके महान् उपन्यासकार द्वारा हुई हैं। लेखक हैमसन नट पेडर्सनको सन् १६२० में नोबुल पुरस्कार मिल चुका है। वैसे, मेरी इच्छा थी कि रूपान्तरकर्त्ता या प्रकाशक महोदयने जहां यह लिखा है, 'इन्हें सन् १६२० ईसवीमें सुप्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया गया था' वहीं उन्हें यहभी लिख देना चाहिये था कि सुप्रसिद्ध नोबेल पुरस्कार 'हंगर' पर मिला या 'दि ग्रोथ आफ दि स्वायाल' पर। मैं सोचता हूं कि सम्भवत. वह सुप्रसिद्ध पुरस्कार 'हंगर' पर न मिलकर 'दि ग्रोथ आफ दि स्वायाल' पर मिला होगा क्योंकि हैमसन नट पेडर्सनने केवल ये ही दो उपन्यास लिखे थे—और लेखकको सामान्यत: शांति-विज्ञान, औषधि-विज्ञान आदिके लिए नोबेल पुरस्कार नहीं मिला करते।

रूपान्तरकर्त्ताने लिखा है कि हेमसन नट पेडर्सन 'आधुनिक जीवनकी अपेक्षा प्राकृतिक मूल्योंके पक्षधर थे।' लेखक ९३ वर्षकी आयुतक जीवित रहे और उनका यह आलोच्य उपन्यास १८६६ ईसवीमें प्रकाशित हुआ था अर्थात् लेखककी आयुके ४०वें वर्षमें। तात्पर्य यह है कि अपना यह उपन्यास उन्होंने १६वीं शताब्दीके अन्तिम दशकमें लिखा और उस आयुमें लिखा जो युवावस्थाके अन्त और प्रौढ़ावस्थाके प्रारम्भकी थी। यह इस तथ्यका द्योतक है कि 'रोटी-रोजी' के प्रणयनके समय लेखककी आयु कल्पनाशीलता, आदर्शप्रियता, रंगीन सपने देखने, मुहब्बतकी दीवानगी, रोमांस भावातिरेक और भावप्रवणता आदिकी स्थिति पार कर चुकी थी। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि यद्यपि अस्तित्ववादी विचारधारा, प्रभाववाद, बिम्बवाद, प्रतीकवाद, सुर्रियालिज्म (अति यथार्थवाद) आदिका युग नहीं आ पाया था किन्तु तबभी नीत्शे (१८४४-१६००), कार्ल जेस्पर्श (१८८३), हेडगर (१८८६), मार्सल (१८८६) हसर्ल (१८८६) के विचारोंको प्रभावित करनेवाले विभिन्न सामाजिक, दार्शनिक और वैचारिक तत्त्व और स्वयं इनके विचारभी चिन्तनशील व्यक्तियों को प्रभावित करने लगे थे। फ्रायडके मनोविश्लेषण सम्बन्धी विचार और कार्ल मार्क्स एवं एंजिलसका दर्शन सामने आ चुके थे। फ्रांसमें एमिल जोलाके विचार प्रचलित हो चुके थे और फ्लोबेरके 'मादाम बॉवेरी' (१८५७) ने यथार्थवादको विजयी सिद्ध कर दिया था। प्रकृतवाद या नेचुरलिज्म साहित्यिक कृतियोंकी आधारभूमि बन चुका था। लेखक आदर्शवाद, स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद, शास्त्रवाद, आदिके बन्धन तोड़ चुका था। जीवनके सभी वस्तु-व्यापारोंका यथावत् चित्रण, जीवनके आध्यात्मिक पक्षका परित्याग, धर्म और तथाकथित नीतिका परित्याग, आदि लेखकोंका दृष्टिकोण बन चुका था। औद्योगीकरण और युद्धोंकी विभीषिकाओंने मनुष्यके अस्तित्वकी अवहेलना प्रारम्भ कर दी थी जिसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि यूरोपके मानव ने परम्परागत सामाजिक और धार्मिक मूल्यों और मान्यताओंकी उपेक्षा की और विशुद्ध मानवीय मूल्योंकी प्रति-

1. रोटी रोजी [अंग्रेजीसे अनूदित उपन्यास; उपन्यासकार : हैमसन नट पेडर्सन]; रूपान्तरकार : नर्मदेश्वर चतुर्वेदी; प्रकाशक : महालक्ष्मी प्रकाशन, ४६ चक, इलाहाबाद-३ (उ. प्र.)। पृष्ठ : १६७; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

ष्ठापना की। उन्नीसवीं [illegible] दृष्टिकोण आदर्शवादी रंगीन मोहकताओंसे ऊपर उठकर जीवनके स्थूल तथ्योंकी ओर उन्मुख हुआ। इसके लिए यथार्थ जीवनकी सच्ची अनुभूति अनिवार्य थी। 'रोटी-रोजी' के लेखक हैमसन नेट पेडर्सन अपने आविर्भावके पूर्वके सभी विचारकोंके चिन्तनको आत्मसात् कर चुके थे--सबको पचा चुके थे (यथार्थवाद, प्रकृतवाद, मार्क्सवाद, आदि) — अनावश्यक और युग धर्मकी दृष्टिसे हृत-गत दृष्टिको छोड़ चुके थे (आदर्शवाद, रहस्यवाद, अतीन्द्रिय आकर्षण और मोहकता आदि) तथा विश्वयुद्धोंके बादकी अति बौद्धिकता या सिद्धान्तवाद, उच्छृंखलता, आदिकी विषभरी छायासे मुक्त थे। वे वादों और सिद्धान्तोंके चौखटे में कठिनाईसे समा सकेंगे। इसके लिए तो स्वयं वादोंकी सीमाएं कम या अधिक करनी पड़ सकती हैं। इस उपन्यासमें जो तथ्य चित्रित किया गया है वह कल्पना प्रसूत न होकर स्वयं लेखकके द्वारा अनुभूत है क्योंकि उपन्यासके प्रारम्भमें ही लेखकने ढाई पंक्तियोंमें यह टिप्पणी दी है, 'उन दिनोंकी यह बात है जब क्रिस्टेनीमें इधर-उधर भटकता हुआ मैं भूखों मर रहा था…'। उपन्यासमें चित्रित अनुभूति सही और सच्ची है। शैली कल्पनाके और उसकी वायवीयता, रंगीनियों और मोहकताओंसे मुक्त है। प्रकृति-चित्रणभी रंगीन न होकर, एक शहरका यथार्थ वास्तविक और तीखा है। सब कुछ एक भूखे और गरीब इन्सानकी मानसिक और शारीरिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, और द्वन्द्वों तथा उसकी पृष्ठभूमिसे सम्बन्धित है। यह गरीब नैतिकताकी परम्परागत धाराणाओं और यथार्थकी विवशकर देनेवाली शक्तियों और प्रवृत्तियोंके द्वन्द्वसे पीड़ित हैं। परिस्थितियां उसे मजबूर किये हैं। वह विवशभी है और प्रयत्नशीलभी; वह सचेतभी है और परिस्थितिसे विवश होकर कार्यकर डालनेवालाभी। आजके मामूली इन्सान और गरीब लेखककी यही कहानी है।

इस 'रोटी-रोजी' उपन्यासका नायक 'मैं' है। तात्पर्य यह है कि यह एक आत्मकथात्मक शैलीका उपन्यास है।

उपन्यासकी प्रधान समस्या यह है कि जीवनके दिन प्रसन्नतापूर्वक कैसे बिताये जायें। लेखकके शब्दोंमें यह समस्या इस प्रकार व्यक्त की गयी है, 'सुबह आँख खुलते ही अपने स्वभाववश मैं यह सोचने लगा कि सचमुच कोई उपाय है जिससे मैं आजके दिनको प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत करं सकूँ।' मैं कहना चाहता हूं कि मृत्युके बाद और नये जन्मके पहलेके बीचका अज्ञात अन्धकार जब समाप्त हो जाये और व्यक्ति जब दिनका प्रकाश देखे (ह्वेन दि न्यू मैन सीज दि लाइट आफ दि डे), समाजकी गतिविधियां सामने आ जाये, नया मनुष्य अपने आसपास पुरानी विचारधाराओं, मान्यताओं, आदिको मढ़ा हुआ देखे और नये मनुष्यको नयी दृष्टि देनेवाले लोग नये दर्शन विज्ञापित करें तब मनुष्य कितनाही नया क्यों न हो किन्तु अपनी मूलभूत मांगके अनुसार वह यही सोचता है कि उसका यह जीवन सुखसे कैसे बीते। जीवन चाहे बीसवीं शताब्दीका हो, चाहे उन्नीसवीं, और चाहे अन्य किसी शताब्दीका, किन्तु उसकी प्रसन्नता या सुखका आधार है प्रमुखतः तीन - (i)रोटी-रोजी(ii) काम वासना (सेक्स) और (iii) मकान; और ये सब आर्थिक सम्पन्नताकी पृष्ठभूमिमें ही प्राप्य हैं। मेरे ऐसा सोचनेका आधार है लेखकके ये वाक्य' मैं ऊपरी मजिलमें अधमुख लेटा था, उसी समय नीचे घड़ीकी छह बजानेकी ध्वनि मैंने सुनी। अबतक दिनका प्रकाश फैल चुका था और लोग सीढ़ियों से नीचे-ऊपर आने-जाने लगे थे। दरवाजेके अगल-बगल कमरेकी दीवारें 'मारगैन क्लेडे' नामक समाचार-पत्रके पुराने अंकोंसे मढ़ दी गयी थी, जिसमें प्रकाश-गृहके व्यवस्थापक द्वारा प्रेषित सूचना बिल्कुल अलगसे दिखायी पड़ रही थी। उसकी बायीं ओर थोड़ीही दूरपर फोवियन ओल्सेनकी नयी पकी रोटियोंका उभारा हुआ विज्ञापन था। सुबह आँख खुलतेही अपने स्वभाववश मैं यह सोचने लगा कि सचमुच कोई उपाय है जिससे मैं आजके दिनको प्रसन्नतापूर्वक व्यतीत कर सकूं। मैं कुछ समयसे आर्थिक कठिनाइयोंसे ग्रस्त था।' तो समस्या थी आजके दिनको प्रसन्नतापूर्वक व्यतीतकर सकनेकी, स्वभाव बन गया था यह सोचना, कारण था आर्थिक कठिनाइयां; जीवनकी परिस्थितियाँ ऐसी थी कि समस्त वस्तुएं बिक चुकी थीं या गिरवी रखी जा चुकी थीं, मकान किरायेका कमरा था जो किराया अग्रिम दे सकनेके अभावमें किसीभी दिन छीना या खाली कराया जा सकता था, लेख लिखनेके लिए सामग्रीका अभाव हो गया (न पेंसिल, न कलम, न अच्छा कागज, न रोशनी, न मोमबत्ती, न स्थिर मस्तिष्क) स्वभावमें परिस्थितियोंके कारण अस्थिरता, तुनुकमिजाजी, सनक, झक्कीपन, गम्भीरताका अभाव, चंचल मस्तिष्कके लिए अनिवार्य सूक्ष्म और विचित्र विचार, अद्भुत कल्पनाएं विचित्र सूझें चिन्तनका अनिवार्य तत्त्व हो गयी और फलतः लेखभी अस्वीकृत होने लगे, जमानत न जमा कर

पानेवाली विवशताके कारण ... ऐसीही अन्य कमजोरियों या मजबूरियों या गलतियोंके कारण नौकरियां नहीं मिली और प्रायः प्राप्त होनेवाली घृणा, अधूरे वादे, 'संक्षिप्त अस्वीकृतियां', आशाओंके पूर्णतः निराशाओंमें ही परिवर्तित होते रहनेके कारण तथा प्रयासोंकी सतत निष्फलताओंके कारण साहसकी भी हत्या हो गयी। गरीबीने सतत सोचते रहनेकी आदत डाल दी और मन की सहज उत्फुलता और आवेश-आवेग समाप्त हो गये तथा वह हीन ग्रन्थियोंसे भर गया और नशेके अभावमें बाह्य स्वरूप नशा करनेवालों जैसा हो गया।

ऐसी गरीबीकी अवस्था क्यों आ गयी? यह प्रश्न स्वाभाविक है किन्तु इसका उत्तर न तो नायक 'मैं' देता है और न लेखक। कहा केवल इतना ही गया है, 'मैं कुछ समयसे आर्थिक कठिनाइयोंसे ग्रस्त था'। पेडर्सन महोदय न इसका कारण धर्म मानते हैं, न पुनर्जन्म, न बुर्जुआ वर्गके द्वारा प्रोलितेरियतका शोषण, न वर्ग स्वार्थ और न कुछ और। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कोईभी यह नहीं बता सकता कि किसी डालमिया या किसी बिड़लाके यहां न पैदा होकर किसी मजदूरके यहां पैदा क्यों हुआ। और, जैसे यह गरीबीकी दशा अ-कारण सम्मुख उपस्थित कर दी गयी है और वास्तविक उपन्यास के दूसरेही पृष्ठसे इसके परिणामका चित्रण प्रारम्भ हो जाता है वैसेही इसका निवारणभी युक्ति-युक्त नहीं है। अत्यधिक संख्यामें मीठी रोटियां (शायद केक) खानेके कारण नायक 'मैं' के मनमें बड़े भीषण विचार आने लगे। और वह सोचता हुआ कि जहाजके मोटे-मोटे रस्सोंको काट दे या 'आग' 'आग' चिल्ला दे तो क्या हो, बन्दरगाह पहुंच गया और एक जहाजके कप्तानसे बातें करके उसके जहाजपर नौकरी पाकर इस दुःखद परिस्थिति और क्रिस्टेनीसे बाहर हो गया। जैसा अचानक प्रारम्भ था वैसा ही अचानक अन्तभी हुआ। ऐसा लगता है कि यह उपन्यास कारण और निवारणके उपकरणों या कारणों या तत्वोंसे या उसकी स्वाभाविकताके प्रश्न या समस्यासे ऊपर उठा हुआ है—अपनेको मुक्त मानता है। उसका क्षेत्र परिस्थितियों और उसके परिणामस्वरूप होनेवाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओंकी स्वाभाविकता, यथार्थता और औचित्य मात्र है। लेखनमें कला है किन्तु सम्भवतः वह कलाके लिए है—उसका कोई वैयक्तिक या सामाजिक लक्ष्य नहीं है।

तो, मनुष्यके जीवनकी सबसे बड़ी समस्या है भूख! वैसे तो यह समस्या सचराचर सभी प्राणियोंके सामने है। खाद-पानी न मिले तो सम्पूर्ण वनस्पति जगत् अ+जीव हो जाये; उर्वरा धरती माताका नक्काशीदार आँचल नष्ट हो जाये और वह वन्ध्या रेगिस्तान हो जाये, रत्नाकर मरुभूमि हो जाये, पशु-पक्षी (थलचर, जलचर, नभचर, सभी) घुरच घुरचकर नष्ट हो जायें। किन्तु मानवका मानवपन तो विशेष रूपसे तभीतक सुरक्षित है जबतक भूखकी भड़की हुई आगकी लपटोंसे वह बची है। भूखका यह विकराल प्रदेश-सीमित तांडव मैंने १९४३ ई. के बंगाल में होता हुआ देखा और पढ़ा था। यह न केवल प्रदेश-सीमित था बल्कि वर्ग-सीमितभी था। दानवीरों-धर्मवीरों-मानवताके पुजारियोंकी खत्तियोंमें अनाजके हजारों-लाखों कसे हुए बोरे भरे थे और उधर सड़कपर भूखी मरती-तड़पती-मजबूर जनतापर कौवे-चील-गिद्ध महामहोत्सव मना रहे थे, एक पाव चावलकी पोटली दिखाकर शैतान कंकालशेष भूखी मानवताको अपनी सेजपर आनेके ललचवा रहा था। तथा स्वयंकी सेवामें पटु सेवक अर्थात् स्वयंसेवक एवं स्वयंसेवी दल देश और देशकी जनताके भावी कल्याणके लिए चतुराईसे प्राप्त दानका पर्याप्त भाग सफाईसे जोड़ रहे थे। (ऐसा न होता तो बादमें अनेक पब्लिक स्कूल, और अनेकानेक उद्योगोंकी ग्लेमरस आयोजना कैसे सम्भव होती!!)। व्यक्तिके जीवनमें भी कभी-कभी भूखका तांडव होता है। इस देशका गरीब, मजदूर, किसान, बंधुआ मजदूर, भिखारी एवं बेवस खूब जानता हैं। इस भूखका जैसा विशद और मार्मिक चित्रण इस 'रोटी-रोजी' नामक उपन्यासमें मैंने पाया है वैसा अन्यत्र मैंने नहीं पाया। वैसे, मैंने पढ़ा कमही है और इसलिए हो सकता है कि हुआ हो!

लगातार कई बार या कई दिनोंतक भोजन न मिलने के कारण शरीरके अन्दर आवश्यक तत्त्वोंकी कमी हो जाने के कारण शरीरके भीतरी और फिर बाहरी अवयवोंकी जो मांग होती है या जो प्रतिक्रिया उनमें उत्पन्न हो जाती है उसीकी अनुभूतिका नाम है भूख। यह विशुद्ध रूपसे भौतिक क्रिया-प्रतिक्रिया है। यही कारण है कि इसका दृश्य परिणाम शरीरके बाहरी अवयवोंकी क्रियाओंमें ही परिलक्षित होता है। 'मैं' की ये प्रतिक्रियाएं (ये शारीरिक अनुभाव) अत्यन्त स्वाभाविक, मार्मिक और कारुणिक हैं। दुकानपर सजी भोजन सामग्री देखकर उन्हें ध्यानपूर्वक देखना और फिर वापस चल देना (पृ. ४६), रोनेकी स्थिति (पृ. ५५), चिल्लाना तथा इधर-उधर भटकना

(पृ. ५५-५६), सनकियों जैसी [illegible] (पृ. ५८-६०), लोगोंको चरका देनेका भाव, अकारण हँसी, स्वगत (पृ. ६०), भूखके मर जानेकी अनुभूति, शून्यकी स्थिति, कोई भी इच्छा न रह जाना, कल्पनाओंमें भटकना (पृ. ६०-६१) मरनेकी कामना, आक्रोश, पागलों जैसी हरकतें (पृ. ६३-६४), जड़ स्थिति (पृ ७८), आत्म-प्रतारणा और आत्मप्रपीडन (पृ. ८४-८५), लोगोंके प्रति अकारण ईर्ष्या-द्वेष-कटुताके भाव (पृ. ६४), मांसविहीन हड्डी (कुत्तेकी) माँगना और एकान्तमें ले जाकर चबाना (पृ.१३७-१३८) शरीरको इधर-उधर तोड़ना-मरोड़ना, छातीसे घुटनोंतक झुकाना (पृ. १३७) अपने कोटकी जेब फाड़कर चबाना (पृ. १३७), सड़कपर पड़ा नारंगीका टुकड़ा, कंकड़ चबाना, लकड़ीका टुकड़ा चबाना, चमड़ा और हजामत बनानेके चमकदार ब्रशको और मामूली चमड़ेको चबाना (पृ. ८०-८२), कोटके बटन बेचनेका प्रयास, लैम्प पोस्ट से माथा टकराना, हथेलियोंमें नाखून धँसाना, जीभ काटना, पागलोंकी तरह हँसना (पृ. ८२), जई चुरानेकी इच्छा (पृ. ८६) भूखे पेट पानी पीनेपर वमन (पृ. १०४), छातीमें कष्ट—पेटमें छोटे-छोटे कीड़ोंके चलने और अपनी सूड़ोंसे पेटमें काटने और इस प्रकार कष्ट पहुंचानेका भाव (पृ. १३५), पसीना टपकना (पृ. १३६) और इस प्रकार के अनेक शारीरिक अनुभावों या प्रतिक्रियाओंके हृदय-स्पर्शी चित्रणोंसे 'रोटी-रोजी' के पृष्ठ भरे हुए हैं।

भूखका प्रभाव भौतिक शरीरपर ही नहीं पड़ता बल्कि मन और चिन्तनकी गतिविधिभी उससे प्रभावित हो उठती है। भूख, नौकरी पानेके प्रयासोंमें असफलता, सफल और सम्पन्नोंसे प्राय: मिलनेवाली घृणा, उपेक्षा, तिरस्कार और चातुर्दिक बराबर घेरे रहनेवाली मुसीबतें और मजबूरियां 'मैं' या नायकको जिन्दगीकी खुशियां भूलनेको, सोचने (हर बातपर सोचने लगने) को, विचारोंमें उलझते रहनेको, स्वयंको अन्याय-पीड़ित माननेको, और अपनी स्वभावजन्य प्रसन्नता भूल जानेको मजबूर कर देती है। तुच्छ घटनाओंके व्यथापूर्ण विवरणोंसे परिचालित हुए बिना बैठभी न सकना, ऐसे विचारोंका कल्पना-शक्तिपर सम्पूर्ण आधिपत्य, रचनात्मक प्रतिभाका निरन्तर ह्रास, दु:ख या कष्टके कारणोंको ही सोचते रहना, ईश्वरको निरंकुश मानना, अन्य विषयोंपर सोचनेमें असमर्थता, (पृ. २२ और २३), जूतोंमें अपनी आत्माकी प्रतिकृति देखना (पृ. २६), विचारोंमें विशृंखलता और दुर्व्यवस्था आना (पृ. ३३) चिढ़ना, खीझना, अपशब्द कहना आदि उपहासास्पद भावनाओंका जन्म, आत्म-प्रवंचना, भय, लाज, अपनी दयनीय स्थिति दूसरोंसे छिपाना, निराश होनेपर पाशविक क्रोधका उदय, अशिष्टता, सत्य और ईमानदारीसे कार्य करनेकी प्रवृत्तिका बराबर घटते जाना, दूसरेका सामान बेचना, अपनी अन्तरात्माको निकृष्ट कार्योंमें लगाकर बिना किसी हिचकिचाहटके झूठपर झूठ बोलते जाना, अनुचित कार्योंके कर डालनेपर न दु:ख और न पश्चाताप, अपनेको अभागा समझना, अपने किरायेके कमरेमें चोरकी तरह घुसना और चोरीसे ही निकल भागना, तंद्रामें मधुर सपने देखना, प्रतिक्रियामें आकर दूसरोंको बेवकूफ बनाना, आवेग, उद्विग्नता, भय, प्रसन्नता कल्पना लोकमें अभिनय, बड़े और सम्पन्न होनेका अभिनय, द्वन्द्व, आदि अवांछित एवं हल्की-फुलकी वृत्तियां मानसमें घर कर लेती हैं। जिनके पास कुछ नहीं होता उन्हें अपने मान-अपमानका खयाल सबसे अधिक और सबसे जल्दी आता है—यह बात इस उपन्यासके नायकके विषयमें सर्वाधिक सही उतरती है। हीन ग्रन्थि या हीन भावना तो उसके स्वभाव और कर्मका एक अनिवार्य अंश या तत्त्व हो चुकी है। उसकी हीन भावनाके विषयमें काम-निमंत्रण, संभोग।आमंत्रण-सी उसकी तथाकथित प्रिया 'याजली' कहती है: 'एक बार झिड़कनेसे और थोड़ा-सा गुस्सा दिखानेसे आप ···दब्बू बन जाते हैं···एक बार आपके पाससे थोड़ा हट जानेपर···लज्जित हो जाते हैं' (पृ. १४९) 'आप तो बहुत संकोची हैं···आप मेरी कुर्सीके पीछे अपनी बाहें फैला देते और बड़ी आसानीसे सोच लेते कि आपको क्या करना चाहिये। क्या ऐसा नहीं कर सकते? मैं यदि ऐसी कोई बात कहती हूं तो आप इस तरह आंखें फाड़कर देखते हैं जैसे आपको उस बातपर विश्वासही न हो कि मैंने उसे कहा है—सच्ची बात तो यह है कि आप और कुछ कर ही नहीं सकते।'(पृ. १४७)। और हीन-भावग्रस्त 'मैं' को 'डर था कि वह हमेशाके लिए मेरे हाथसे निकल न जाये···मैंने निश्चय किया कि मैं उसकी आंखोंमें योग्य दिखायी देनेका प्रयत्न करूंगा (पृ. १५१)।' यह हीन-भावना या हीन-ग्रंथि दीनताकी स्थितिकी अनिवार्य देन है! तो, गरीबी मन, स्वभाव और चिन्तनकी दशा और दिशापर भी प्रभाव डालती है!!

कहा जाता है—'भूखे भजन न होय गुपाला, यह लो आपन कंठी माला' और दु:खकी अतिशयतामें उद्भ्रान्त मनुष्य झुंझलाकर भगवान्‌को भी न कहने योग्य कह जाता है। 'रोटी-रोजी' का नायक 'मैं' इस उपन्यासके

५१वें, ७९वें, १३९वें प[illegible] भी ईश्वर के सम्बन्धमें अनुचित एवं अशोभनीय बातें कह जाता है : 'मेरे हृदयमें बुरे विचारोंने घर बना लिया था···कुप्रवृत्तियोंके लिए मार्ग खोल दिया था और स्वर्गमें बैठा हुआ वह जगन्नियन्ता मेरी कार्यविधिको सावधानीसे देख रहा था। उसे यह ज्ञात था कि मेरा विनाशकाल निरन्तर पूर्णताकी ओर पहुंच रहा था' (पृ. ५१), 'हे ईश्वर ! मैं तुम्हें बतला देना चाहता हूँ कि तुम अकुशल कारीगर हो।' (पृ. ६१); 'ओ, स्वर्गमें निवास करनेवाले ईश्वर! अब मैं समझ गया कि तुम्हारा कोई अस्तित्व नहीं है··· मैं शाप देता हूं कि तुम्हारे स्वर्गमें नरककी आग लग जाये···मैं तुम्हारी शाश्वत शक्तिसे घृणा करता हूं क्योंकि तुम्हें यहभी ज्ञात नहीं है कि किस व्यक्तिकी कब परीक्षा लेनी चाहिये·· मैं तुम्हारे ऊपर हँस रहा हूं···तुम्हारा स्वर्ग रसातलमें धँस जाये···संसारकी निकृष्ट पतित वेश्याओंसे तुमने अपने स्वर्गको भर दिया है·· उन्होंने तुम्हारे सामने करुणापूर्वक घुटने टेक दिये होंगे···ओ स्वर्गवासी क्रूर हृदय !···यदि तुम्हारा नाम मेरे मुंहसे निकलेगा तो मैं अपने ओठोंको काट लूंगा'··· (पृ. १३८-१३९)।

फिरभी इतना मानना पड़ता है कि १९वीं शताब्दी की कृतिके नायककी स्थिति मात्र 'आरत काह न करहि कुकरमू' वाली स्थिति है। वस्तुतः 'मैं' पूर्णरूपेण आस्तिक और आस्थावान् नायक है। वह अपनी तथाकथित क्षणमात्रके लिएभी प्राप्त सफलताको 'ईश्वरीय सफलता' मानकर '···घुटने टेककर ईश्वर और विश्वके समस्त प्राणियोंको गंभीर स्वरमें धन्यवाद' (पृ. ३८) देता है और 'आवेशपूर्ण भावुकताके प्रवाहमें रो' (पृ. ३८) पड़ता है। अपनी असफलतापर वह क्रुद्ध तो होता है किन्तु अगलेही क्षण 'अचानक अपनी भावनाको बदलते हुए, दोनों हाथ जोड़कर मैंने एक ओर अपना सिर झुकाया और तरल भावनामय धर्मभीरुताके स्वरमें मैंने अपनेसे पूछा, 'मेरे प्रिय पुत्र, क्या कभी तुमने ईश्वरसे सच्चे हृदयसे निवेदन किया है ?' और फिर धीमे स्वरमें उत्तरभी स्वयंही देता है, 'नहीं' ! (पृ. ७९)। अपनी अनुचित बातपर वह अपनेको समझाता है। वह नये और सुन्दर विचारको ईश्वरीय कृपा एवं ईश्वरीय संकेत मानता है (९३)।

सच्ची बात तो यह है कि यह 'मैं' एक महान् व्यक्ति है किन्तु इन कुछ दिनोंके लिए एक विषम परिस्थितिमें पड़कर विषमतासे जूझता हुआ उससे निकलनेका प्रयास करता है। कभी-कभी वह अत्यन्त विवश होकर असंतुलित पथभ्रष्ट, दृष्टिभ्रष्ट और दिशाभ्रष्ट हो जाता है किन्तु अगलेही क्षण अपनेको संभालनेका प्रयास करता है और हर नयी परिस्थितिमें उसका यह प्रयास प्रारम्भ हो जाता है। इस समय वह गरीब है और मजबूर। गरीब और मजबूर दो तरहके होते हैं—एक जड़ गरीब मजबूर और दूसरे, चेतन जागरूक गरीब-मजबूर। घास मडियोंमें, मछली बाजारोंमें, मिलोंमें, देहातोंमें, शराबखानोंमें, वेश्यालयोंमें, देहातोंमें, सड़कोंपर, कचहरियोंमें, अड्डोंपर, और ऐसीही तमाम जगहोंपर जड़ गरीब प्रायः मिल जायेंगे। जबकि वाशिंगटन, ईसामसीह, तुलसीदास, सूरदास, जायसी, शांतिप्रिय द्विवेदी, लालबहादुर शास्त्री, डॉ. आम्बेदकर, ईश्वरचन्द विद्यासागर, आदि चेतन गरीब-मजबूर हैं। यह चेतन गरीब आत्माकी दृष्टिसे और बुद्धि की दृष्टिसे सतर्क एवं जागरूक होता है और असद् तथा विषमसे सदैव संघर्ष करता है, यह उचित-अनुचितके बारे में सदैव सोचता-विचारता है, यह हार-हारकर भगवान्‌की सहायता मांगता है, इसकी जीतके आनन्दका क्षण केवल एक होता है और वह आता है केवल अन्तमें !! यह 'मैं' एक चेतन गरीब-मजबूर है। उसे आत्म-सम्मानका ध्यान रहता है (पृ. ३८)। वह विवश होकर वेईमानी करनेको तैयार होता है किन्तु अगलेही क्षण सोचता है, '...मेरा इतना पतन कदापि नहीं हो सकता कि मैं भोजन प्राप्त करनेके लिए दूसरेकी वस्तुको बन्धक रखूं और अपनी आत्माको नीचे गिराकर खाने-पीनेकी व्यवस्था करूं··· (पृ. ४८), अपनी दीनतम स्थितिमें भी वह दूसरे गरीब की सहायताको उद्यत होता है (पृ. ५३), उसमें मानवता है और मानवताकी मांग है विश्वास जो उसमें है(पृ.५४), वह अपने दुःखोंका कारण खोजना चाहता है (पृ. ६३), किसीके द्वारा मित्र-भाव प्रदर्शित किये जानेपर उसकी आँखोंमें आंसू भर आते हैं। (पृ. ६४), अपने कार्योंके औचित्य या अनौचित्यपर वह आत्ममंथन करता है। (पृ. ८६), उसका चिन्तन स्वस्थ होता है, अपनी बेईमानी के कार्यकी असफलतापर उसे संतोष होता है (पृ. ९०); वह सरलता और ईमानदारी निबाहनेका भरसक प्रयास करता रहता है (पृ. १०४), उसकी भीरुता और धर्मभीरुता तथा निर्धनताने उसे दो-दो बार भ्रष्टकामिनी-गर्तमें डूबनेसे बचा लिया, पृष्ठ १०८ पर वह सत्कर्मोंके करनेपर प्राप्त आनन्दके विषयमें विभोर होकर सोचता है, आदि।

चेतन मानवके पास [illegible] परिस्थितियां [illegible] न हों, किन्तु सत्कर्म और सद्विचार जरूर होते हैं। पृष्ठ १०८ पर एक विचारोत्तेजक सद्वाक्य है, 'सत्कर्मोंके करनेमें क्याही अधिक आनन्द है।' विश्रामभी कितना आनन्द-दायक है'—पृष्ठ ८५ का यह वाक्य बड़ाही महत्त्वपूर्ण विचार सामने रखता है। 'इतना अधिक निर्धन हो जाना सचमुच बहुत नीचता और विपत्तिका कृत्य था' (पृ. १०५)—यह वाक्य अंग्रेजीकी इस सूक्तिका समर्थन करता है कि 'पावर्टी इज ए सिन!' यह बड़ाही विचारोत्तेजक वाक्य है। एक ओर ईसामसीह धनिकोंका स्वर्ग-प्रवेश असम्भव मानते हैं तो दूसरी ओर गरीबीको पाप कहा जाता है; सारे पापोंकी जड़ उसे माना जाये और उसका दोषी हो गरीब। यदि गरीब पापी है तो सोचनेकी बात है कि दीनबन्धु या दीनदयाल क्या है!! एक विचार यहभी मिलता है कि व्यक्ति तुच्छ बातोंके प्रति उदासीन होना चाहिये (पृ. ६२)। इस तरहके वाक्य और विचार इस 'रोटी-रोजी' में हैं तो किन्तु वे अधिक नहीं हैं क्योंकि उपन्यास विचार-प्रधान न होकर चरित्र प्रधान है जिसमें एक चिन्तनशील और ईमानदार व्यक्ति मुसीबतके दिनोंमें नौकरी पानेके लिए प्रयासपर प्रयास करता है और असफल रहता है और वह समय आ जाता है जब भूखों मरने और मरनेकी उत्कट इच्छा-अभिलाषा करनेकी नौबत आ जाती है जिसका परिणाम यह होता है कि वह लेख-कीय मनोवृत्तिका व्यक्ति हर बातपर बहुत तरहसे सोचता रहता है; कुछ करता है, असफल होता है, और फिर अपने मन, अपने कर्म, अपने विचार, अपने वातावरण, वातावरणकी प्रत्येक वस्तु, घटना, परिणाम, आदिपर सोचता रहता है। चिन्तनकी इस अधिकताके कारण विचार-सूक्ति और वैचारिक अभिव्यंजनाओंकी कमी हो गयी है।

शैली प्रायः वर्णनात्मक है किन्तु वर्णनमें अधिकता, अतिशयता, अनावश्यक डीटेल्स नहीं हैं। वर्णन उतनाही है जितना आवश्यक है। पृष्ठ १०६ पर दिया गया लग-भग १६ पंक्तियोंमें ही रातके ११ बजे एक राजपथके उन्मुक्त वासना-उद्दीप्त वातावरणका चित्रण है। अपनेको बेचनेके लिए बेशर्मीकी हदतक तैयार 'मेरी' की दास्तान भी वहींतक वर्णित है जिसमें उसका चरित्र उभर सके। होटलकी व्यवस्थापिकाका रहस्यमय रूप पृष्ठ ११५ पर तो केवल कुछही पंक्तियोंमें उभरकर सामने आ जाता है। हाँ, 'मैं' का कमरा छिनना, उसका मकान मालकिनके [illegible] वातावरण—यह सब अवश्य विस्तारसे वर्णित हुआ है किन्तु वह आवश्यकभी था (१६६-१६८ और १७४ से १८० तक)। मकान माल-किन एक झगड़ालू औरतका चित्र उपस्थित करती है। इस उपन्यासमें 'मैं' के बाद उसकी प्रिया 'याजली' का ही चित्रण कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण है। वासनाके क्षेत्रमें इस नारीको पुरुषका औद्धत्य, उसकी पहल और उसकी पशु-वत्ता उसे अच्छी लगती है और उसके प्रति वह आकृष्टभी होती है—उसके अभावमें वह पुरुषको इनके लिए प्रेरित भी करती है, किन्तु उसके लिए इस क्षेत्रमें धनवान होना ही अनिवार्य है। वासनावेगमें बहुत आगे बढ़कर भी वह प्रत्यावर्तन कर बैठती है। गरीब पुरुष उसके लिए भोगका आलंबन नहीं रह पाता; वह मात्र दया और सहानु-भूतिका उद्दीपनही रह जाता है। पात्र और परिस्थितिके अनुसार कुछ उपमाएं बहुतही सुन्दर बन पड़ी हैं: 'मैं कुत्तेकी तरह कांप रहा था' (पृ. ४७); एक समर्थ सम्पा-दकके सामने एक लेखक अर्थात् 'मैं' उसके सामने एक निर्धन भिखमंगेकी तरह खड़ा था...' (पृ. १०२); 'समस्त राजपथ मानव-समाजके लिए एक दलदल था जिससे वासनाकी भाप निकल रही थी' (पृ. १०५); उसकी स्थिति देखकर ऐसा अनुमान होता था मानो अपनी गर्दन उठाकर कोई अजगर बड़े ध्यानसे कोई आवाज सुननेके लिए बैठा हो' (पृ. १६७), 'तुम्हें पेटकी पीड़ासे चिल्लाने वाले घोड़ेकी तरह दुःखसे सांसें लेनी चाहिये (पृ. ७९), आदि। कहीं-कहीं मुहावरे और कहावतेंभी रूपान्तरकारसे प्रयुक्त किये हैं; जैसे: तमाशा करना (७९), जबान बन्द करना (८३), आंखें फैलाना (२३), नींद काफूर होना (३५), फूलकर कुप्पा होना (३६), मूसलाधार वर्षा (६५), जादू चलना (१२२), भाड़के मुँहमें जाओ (१३३), फूट-फूटकर रोना (१३८), आदि। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि इन कहावतों और मुहावरोंका चामत्कारिक रूपमें प्रयोग नहीं हुआ बल्कि अत्यन्त स्वाभाविक रूपमें हुआ है। ऐसा लगताही नहीं कि ये मुहावरे हैं।

भाषाकी दृष्टिसे 'मन्द और मधुर स्वांग मेरे मुंहपर सीधे आ रही थी' (१५७), 'इताना' (१४६), 'जाड़ा' (११३), 'पीड़ा' (२०), 'किटाणुओं' (२३), 'बड़ा सुन्दर ऋतु' (७४), 'उसका स्वांस मेरे शरीरमें व्याप्त हो रहा था' (११७), ११६वें पृष्ठपर ८वीं पंक्तिका दो बार छपना, 'साधारणतयासे' (३३), 'पीठके बल झुककर बैठ गया' (२५), विराम चिह्नोंका न लगना (जैसे, पृष्ठ

२६वीं १५वीं पंक्तिपर, 'दुकानपर वाला साधारण नाम' (३०), 'क्रोद्धपूर्वक' (३१), 'उनीद्र' (३२), 'मधुर वायु मेरे चारों ओर फैल रही थी' (५४), 'खूबसुरल (१२०), 'मैंने लगा' (१०६), 'बढ़ी कठिनाई' (१२३), 'भयभीय' (१२५), 'मूखी' (१३६), 'याज़खी' (१४८), 'कलही बात नहीं है' (१४८),...'प्रवती भी अपने होशमें नहीं था' (१४६), 'सड़कमें कूदती हुई' (१०७), 'भगवान नामपर मैं तुम्हें' (१६३), मैंने ऐसे आदमीको कभी देखेभी नहीं' (१७८), आदि प्रयोग (चाहे आदरणीय डॉ. चतुर्वेदीजीकी राइटिंग न पढ़ पानेके कारण) बहुत खटकते हैं। कला और असावधानी दो विरोधी तत्त्व हैं !!

एक बात और। मेरा अनुभव-क्षेत्र बहुतही सीमित है—स्त्रियोंके सम्बन्धमें और विशेष रूपसे स्त्रियोंके पहनावे—विदेशी स्त्रियोंके पहनावेके सम्बन्ध में तो औरभी बहुत कम। धोबियों (भारतीय) की तरह मैं भी 'पेटीकोट' का अर्थ घाघरानुमा वह लहँगा-टाइप वस्त्र समझता हूं जिसे हमारे घरोंकी महिलाएं साड़ीके भीतर पहना करती हैं। विदेशी औरतें फ्रॉकके भीतर कच्छा या कच्छी टाइप अण्डरवीयर पहनती होंगी—पेटीकोट नहीं। उसेभी पेटीकोट कहते हों, तो मैं नहीं जानता। ये विचार मेरे मनमें तब उठे जब मैंने 'रोटी-रोजी' के पृष्ठ १०५ पर 'स्त्रियोंके पेटीकोटकी सरसराहट' आदि पढ़ा और १५३ वें पृष्ठ पर 'मैं' को 'याजली' से यह कहते पढ़ा 'पेटीकोट खोलकर अलग करो।' इसका तात्पर्य यह हुआ कि क्रिस्टेनीकी औरतें फ्रॉकके नीचे 'अण्डरवीयर' नहीं, 'पेटीकोट' पहनती थीं !!

तो, 'रोटी-रोजी' की समस्या मकानकी नहीं है। समस्या है मकानका किराया देनेकी। मकान छूटनेके एक ही आध दिनके अन्दर 'मैं' ने क्रिस्टेनी छोड़ दिया। रोटी की समस्या 'रोजी या धनकी समस्याका एक अंशमात्र है। 'मैं' ने इसके लिए तीन-चार जगह प्रयास किया जिसमें उसे कभी नौकरी देनेवालोंके दृष्टिकोण और कभी अपनी भूल या असावधानीके कारण सफलता नहीं मिली। लेखकों तो धन मिले और भूखके कारण विक्षिप्त-सा मन और अस्थिर बुद्धिके लिए यह संभव नहीं था। संभवतः लेखक नौकरी ढूँढ़नेही क्रिस्टेनी आया था। असफल होकर चला गया। पुस्तकमें समस्याका सांगोपांग युक्ति-युक्त चित्रण और उल्लेख नहीं है। भूख और उसके शारीरिक तथा मानसिक अनुभावका ही चित्रण है—और वह निःसंदेह रूपसे और अद्वितीय ढंगसे सफल है। पुस्तक पठनीय है। ☐ ☐

शाश्वत पंचांग और अन्य कविताएं[1]

[बल्गारीसे अनूदित कविताएं]

कवि : ल्यूबोमीर लेवचेव
रूपान्तरकार : गंगाप्रसाद विमल, दिमितर पोपोव
समीक्षक : प्रा. धर्मपाल सिंह आर्य.

बल्गारियाके शीर्षस्थ कवि लेवचेवकी कविताओंका यह दूसरा अनूदित संग्रह भारतमें प्रकाशित हुआ है। वर्षों पूर्व लेवचेवकी कविताओंका एक संग्रह – मुर्गायुद्ध, इस लेखकके हाथों आया था, और उन कविताओंने एक विचित्र-सा प्रभाव छोड़ा था। उन कविताओंमें थोड़ा-थोड़ा भारतीय काव्यका-सा स्वाद था। संभवतः इसलिएभी कि उनमें कुछ कविताएं भारतको ही लेकर लिखी गयी थीं। परन्तु मुख्य बात है कि लेवचेवकी कविताओंमें पाठकको आकर्षित करनेकी अद्भुत क्षमता छिपी हुई है। वे बरबस अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

प्रस्तुत संकलनमें लेवचेवकी कई तरहकी कविताएं हैं। कुछ ऐसी कविताएं हैं जिनके द्वारा हम यूरोपीय कविकी चिन्तनासे परिचित होते हैं। यह आश्चर्यका ही विषय है कि कविताएं हमें कविकी विचारधारा और उसके मुख्य कंसर्नोंकी स्पष्ट झलक दें। कविकी कामना एक बड़े सत्यकी प्राप्तिकी है और यह सत्य है जिसके बीज हमारी आत्मामें अनादिकालसे अंकुरित हैं। विश्व-बन्धुत्वकी हमारी धारणाको जैसे लेवचेव पश्चिमी गोलार्द्ध की विचारधारासे जोड़ देते हैं—'यह मैत्रीमय है,

...समग्र विश्व' (शाश्वत पचांग पृ. २८)

आजकलके सदा मैत्री बंधुताके घोषके साथ इन कविताओंका प्रकाशन और अधिक सार्थक हो गया है। जिस तरह संसारमें 'मैत्रीमयता' की मूल धारणा विद्यमान है, ठीक उसीतरह पीढ़ियोंके बीचभी एक सेतु बराबर बना हुआ है। लेवचेव स्पष्ट करते हैं कि चाहे वे युवा नहीं

१. प्रकाशक : पराग प्रकाशन, ३/११४, कर्ण गली, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : ६४; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

रहे, फिरभी कोई चीज है जिससे वे बंधे हैं
'पर तुम तो रहते हो
निश्चितही मुझमें।
जैसे गेहूं निबद्ध है रोटीमें
जैसे सूर्योदय
दिनमें घुला-मिला है
तुम हो मुझमें
एक पवित्र मेखलाकी तरह ।' (गीत, पृ.१७)

इन कविताओंके विषय प्रेम, विश्वमैत्री, सहृदयता जैसे भाव तो हैं ही, इनमें कहीं-कहीं पश्चिमकी वह भयावहता और क्रूरताभी उजागर होती है जिसने मनुष्यको उसके नैसर्गिक आधारसे दूर कर दिया है—

'औपचारिक खुशी
ऊब गया हूं मैं।' (कैपरिस ५,पृ. १६)

इसका तात्पर्य है कि औपचारिक प्रसन्नता आनन्दकी सृष्टि नहीं अपितु ऊबकी उत्पत्ति करती है।

'शाश्वत पंचांग' शीर्षक कवितामें अनेक विषय घुले-मिले हैं। कहना चाहिये कि यह यूरोपीय काव्य कलाकी एक विशिष्ट प्रवृत्ति है।

एक बात और विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है और वह महत्त्वपूर्णभी है। वह है बलगारी मानसमें अपने अतीत का आभार व्यक्त करनेकी प्रवृत्ति। यहां लेवचेवकी एक पूरी कविता 'शहीद कवियोंका देश' उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती है —

'पर जीवित हो अभी तुम'
...मेरे लिएभी है एक भूमि कहीं
एक भूमि कहीं मेरे अन्तस्तलमें
...क्या अपेक्षा रखते हैं हम
एक अवलम्बकी या
ध्वजाएं विपत्तियां उठाते हुए
पर हमारी कमजोरियां
रहती हैं छिपी हुई कहीं।

यह कविता अत्यन्त मार्मिक रूपसे अतीतको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

ल्यूबोमीर लेवचेवकी कविताओंकी वस्तुका वैविध्य यह सिद्ध करता है कि काव्य-विषयोंकी संभावनाएं अनन्त हैं। जो कवि यह महसूस करते हैं कि उनके विषय खत्म हो गये हैं और वे उलूल-जलूल लिखने लगे हैं, उन्हें लेवचेवकी कविताएं पढ़नी चाहियें। अभी 'कविर्मनीषिः' की सर्जना शक्तिमें अनन्त संभावनाएं विद्यमान हैं। बहुत पहले भारतीय आचार्यने लिखा था—अनन्त काव्य जगत् में [उसका निर्माण करनेवाला] केवल कविही एकमात्र प्रजापति ब्रह्मा है। उसे जैसे अच्छा लगता है [उसकी इच्छानुसार] यह विश्व उसी प्रकार बदल जाता है।[१] सृष्टिके आरम्भसे उत्तम कवियों द्वारा प्रतिदिन सारका ग्रहण करनेपर भी वाणीके सौन्दर्यकी अभीतक मुहरभी नहीं टूटी है। [आजतक भी पूर्ण रूपसे खुला हुआ प्रतीत नहीं होता है।][२] लेवचेवकी कविताओंमें नयी-नयी कल्पनाओंका स्फुरण हुआ है। ये विश्वास दिलाती हैं कि काव्य विषयोंकी संभावनाएं अनन्त हैं।

बल्गारियाई भाषासे इन कविताओंका अनुवाद हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक गंगाप्रसाद विमलने प्रोफेसर दिमितर पोपोवके सहयोगसे किया है। इस तरह मूल भाषासे सीधे हिन्दीमें आनेवाली इन कविताओंमें मूलभाषाका संगीत किस रूपमें आया है, इसपर टिप्पणी करना, इस समीक्षक के लिए मुश्किल काम है, परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि अपनी ताजगीके कारण ये कविताएं अनुवादमें भी उतनीही ताजगीभरी हैं।

मुझे यह कहनेमें भी संकोच नहीं है कि भारत बल्गारियाके पारस्परिक सम्बन्धोंको दृढ़ता देनेका काम, यह आदान-प्रदान अवश्य कर सकता है और इस सिलसिलेमें लेवचेव या दूसरे लेखकोंकी हिन्दीमें अनूदित कविताएं और दूसरी रचनाएं भारतमें बल्गारियाके प्रति आत्मीयता बढ़ा रही हैं। ऐसाही काम बल्गारियामें भी हो रहा होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि अब मनुष्यका यह विश्वास दृढ़तर होता जा रहा है कि संस्कृतिही वह मिलन-बिन्दु है जहांसे हम लोगोंको एक मंचपर लानेका काम करते हैं। कुछ मित्र कहेंगे—कविताओंसे क्या होता है? पर यह जानना आवश्यक है कि सर्जनात्मक मस्तिष्कही वह महीन बिन्दु खोजकर लाता है, जिससे भावी अन्वेषण होते हैं। कविता सम्भवतः मनुष्यके वैज्ञानिक मस्तिष्ककी सबसे अच्छी खोज है, क्योंकि यहींसे बारीकसे बारीक अनजानी विमाओं (डाय-

---

१. अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥
कुन्तक—वक्रोक्ति जीवितम्-३-११ (अग्निपुराण-३३८।१०)

२. आसं सारं कविपुंगवैः प्रतिदिवस गृहीत सारोऽपि।
अद्याप्यभिन्न मुद्र इव जयति वाचां परिस्पन्दः॥
कुन्तक—वक्रोक्ति जीवितम् ३-१६

अक्तूबर ८२ के प्रमुख प्रकाशन

पुस्तक	लेखक	मूल्य
अखिल भारतीय प्रशासनिक कोश (प्रशासनिक शब्दावली)	भोलानाथ तिवारी, कैलाशचन्द्र भाटिया	१५०.००
नये हिन्दू मन्दिर (सांस्कृतिक)	श्रीनारायण चतुर्वेदी	२५०.००
कसौटी (वैचारिक निबन्ध)	श्रीनारायण चतुर्वेदी	४०.००
आरोग्य शास्त्र (स्वास्थ्य)	आचार्य चतुरसेन	१७५.००
यौवन रक्षा (स्वास्थ्य)	आचार्य चतुरसेन	७५.००
हिन्दी हम सबकी (हिन्दी प्रसार)	शिवसागर मिश्र	४०.००
शहीद भगतसिंह : अधखुले पृष्ठ (जीवनी)	के. के. खुल्लर	४०.००
हिन्दू धर्म : मानव धर्म (आध्यात्मिक)	गो. कृ. भुस्कुटे	४०.००
पाणिनीय व्याकरण की भूमिका	वी. कृष्णास्वामी आयंगार	४०.००
फुलझड़ियां (हास्य रचनावली-१)	काका हाथरसी	६०.००
पैरोडियां (हास्य रचनावली-२)	काका हाथरसी	६०.००
काक दूत (हास्य रचनावली-३)	काका हाथरसी	६०.००
नोंक झोंक (हास्य रचनावली-४)	काका हाथरसी	६०.००
महामूर्ख सम्मेलन (हास्य रचनावली-५)	काका हाथरसी	६०.००
दो किनारे (उपन्यास)	आचार्य चतुरसेन	३०.००
देवांगना (उपन्यास)	आचार्य चतुरसेन	२५.००
मील का पहला पत्थर (कहानियां)	सं. सुरेन्द्र तिवारी	५०.००
हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़ियां	रामनारायण उपाध्याय	२५.००
बसंत का एक दिन (कहानियां)	रामदरश मिश्र	३०.००
मन पवन की नौका (सांस्कृतिक निबन्ध)	कुबेरनाथ राय	२५.००
मृगजल दृगजल (उपन्यास)	विभूति मुखोपाध्याय	५०.००
मन की बांसुरी (उपन्यास)	सुनीलमोहन गांगुली	२०.००
नारी शृंगार	श्रीमती हर्षनन्दिनी भाटिया	५०.००
गोरख धंधा (हास्य व्यंग्य)	मसऊद मुफ्ती	३०.००
अन्तरात्मा का उपद्रव (हास्य व्यंग्य)	कुन्दनसिंह परिहार	३०.००
प्रयत्न जारी है (काव्य)	महावीर प्रसाद गैरोला	३०.००
एक पत्ता और (कहानियां)	श्रीमती सुदर्शन भण्डारी	३०.००
अन्याय को क्षमा (उपन्यास)	राबिन शा पुष्प	२५.००
सोने का इन्द्रधनुष (कहानियां)	बाला दुबे	२५.००
ज्योतिष जगत (ज्योतिष)	शत्रुघ्नलाल शुक्ल	२५.००
क्रांतिवीर सुभाष (उपन्यास)	गिरिराज शरण	२५.००
पटेल ने कहा था (विचार-सार)	गिरिराज शरण	२५.००
नेहरू ने कहा था (विचार-सार)	गिरिराज शरण	२५.००
सुभाष ने कहा था (विचार-सार)	गिरिराज शरण	२५.००
गांधी ने कहा था (विचार-सार)	गिरिराज शरण	२५.००
सरल रामायण (धार्मिक)	शंकर बाम	३०.००

प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०-००६

भीत मानना ।

प्रेमचन्दने 'गोदान' में गोबर और होरीमें भी ऐसा ही वार्तालाप कराया है । शहरसे आकर गोबर गांवके अत्याचारियोंके विरुद्ध विद्रोहका झंडा खड़ा न करनेपर होरीको लताड़ता है तो होरी कहता है 'जिस पैरके नीचे गर्दन दबी हो, उसे सहलानेमें ही फायदा है ।' मतलब, जल्दबाजीमें बिना अपनी और दुश्मनकी शक्तिका सही अन्दाज लगाये हुए चींचपड़ करना अपने लिएही घातक सिद्ध होगा । यह समझदारी होरीमें थी आजसे पचास साल पहले । यही समझदारी लेखिका चोट्टि मुंडामें भी दिखाती है क्योंकि प्रेमचन्दकी ही तरह उसकाभी अपने क्षेत्रका—अर्थात् आदिवासी जीवनका गहरा अध्ययन है, और अध्ययन है उस पूरे तंत्रका जिसमें पुलिस, महाजन, ठेकेदार, पुजारी, गुंडे-बदमाश, पार्टी कार्यकर्त्ता, सत्तारूढ़ दलके 'बातें कम, काम ज्यादा' करके देशको आगे बढ़ाने वाले युवलीगी हैं । एक अन्य स्थानपरभी परिस्थितियोंकी भयावहता और अपनी असहायताका पूरा अन्दाज लगाकर काम करते हुए चोट्टि मुंडा कहता है 'सांपसे जो न डरे वह बेवकूफ होता है' । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि शोषकोंसे भयभीत ही रहा जाये, मुंह सीकर हर अत्याचार झेला जाये ।

अपनी अन्य कथाकृतियोंकी तरह इसमेंभी लेखिकाने जहां शोषण, अन्याय और अनाचारका दुर्दम तांडव दिखाया है वहां उसके विरोधमें आदिवासियोंकी कसमसाहट, शोषणका संघबद्ध होकर विरोध करना, उत्तेजित होनेपर शोषकोंकी हत्या, मारपीट लूटमारभी दिखायी है।पचास-पचास हजार रुपया हर इलैक्शनमें देनेवाले तीरथनाथकी गद्दीपर डाका पड़ता है, गुमाश्तेका सर काटा जाता है । रोमियो पहलवान जैसे सत्तारूढ़ दलके पालतू भेड़ियोंकी भी हत्या की जाती है और उसे सरेआम चोट्टि मुंडा स्वीकारताभी है । सत्ताकी गुंडोंसे साठगांठके होते हुएभी यह सब होता है । लेखिकाकी दृष्टि यथार्थपर है जिसमें शोषित तो मरही रहे हैं शोषक भी यदाकदा मारे जाते हैं । कुल मिलाकर पाठक यदि सन्तोषकी सांस नहीं लेता, तो निराशभी नहीं रह जाता ।

प्रश्न है कि ऐसे लेखनकी सार्थकता क्या है ? सार्थकता है भारतीय आदिवासी अंचलोंके घनघोर अन्धेरेमें क्या हो रहा है ? कौन किस नीयतसे काम कर रहा है ? ईसाई मिशनरी हैं, जिनके अपने लक्ष्य हैं । ठेकेदार हैं, जिनके अपने स्वार्थ हैं, राजनीतिक कार्यकर्त्ता हैं जो अपने 'भविष्य' को उससे बांधे हुए हैं, सूदखोर महाजन हैं, सरकारी तन्त्र, स्थानीय गुंडे, बदमाश, प्रदेशीय और केन्द्रीय राजनीतिक चालबाजियां हैं और इनसे घिरे हुए सीधे-सादे मुंडा है जो झूठ बोलना जानतेही नहीं, जो अपने मनोभावोंको छिपाना जानतेही नहीं । जिनको यदि घाटो—नमकके पानीमें पकाया हुआ शाक मिल जाये तो परमसुखी हो जाते हैं । भात तो उनके लिए ऐय्याशी है । शरीरपर लंगोटही जुट जाये तो परम संतुष्ट । ऐसे लोगों को मिलनेवाले केवल चौथाई वेतनका भी जब राजनेताओं की शह पाये हुए गुंडे, चौथाई भाग बट्टा मांगते हैं, जब उनसे बेगार लिये जानेपर, जिन्दा रहने लायक भातभी नही मिलता, तब वे क्या करें ? समस्या यह है जिसका समाधान लेखिकाने उनके जीवनमें पनपते हुए विद्रोहमें दिखाया है । उन्हेंभी अब यह मालूम पड़ गया है कि यह व्यवस्था अटल नहीं है । शोषकोंकी चालबाजी और उनके बेहद सीधेपनके कारण है । बीरसा मुंडाने उन्हें विद्रोहका रास्ता दिखाया था, यद्यपि वह फांसी चढ़ा दिया गया । नक्सलवादियोंने शोषकोंको समाप्त करनेका रास्ता बताया था, उनकी भी सफाई 'लॉ एण्ड आर्डर' के नामपर सरकारने कर दी । मार्क्सवादी तथा अन्य वामपंथका दम भरनेवाली पार्टियां सत्ता हथियानेको ही सही, उनके दुःख-दर्दसे जुड़ी हुई हैं । कमसे कम चुनावके मौसममें उनके 'हिमायती' बढ़ जाते हैं, यद्यपि उनके लिए 'दिल्ली अभी बहुत दूर हैं ।'

भलेही कलकत्ता और त्रिवेन्द्रमकी गद्दी उन्होंने हथिया ली हो और कुछ प्रान्तोंमें उनके कुछ 'नामलेवा और पानी देवा' हों,फिरभी यह आग अब बुझनेवाली नहीं है, हांलाकि यहभी सच है कि आगामी दस-पांच सालमें कुछ चमत्कारभी नहीं होनेवाला है । फिर, स्थिति इतनी निराशाजनक भी नहीं है कि हाथ धर रखकर बैठा जाये । जो शोषित जनजीवनके प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व समझते हैं, जो लेखनको आजीविकाका नहीं, जीवनका साधन मानते हैं, जो शोषित पीड़ित मानवतासे कहींभी किसीभी रूपमें जुड़े हुए हैं, उनके दिमागके जाले साफ करनेके लिए ऐसे लेखनकी उपयोगिता है । जो शाश्वत मूल्योंकी अमूर्तताके शब्दजालमें फंसे हुए हैं या समय काटनेके लिए पढ़ते हैं या पैसा बनानेके लिए चटपटा और बिकाऊ साहित्य लिखते हैं, उनके लिए यह मात्र राजनीतिसे प्रेरित या दूषित साहित्य है, लेकिन ऐसे लोगोंका यह फतवाभी सही मूल्यांकन है ।▭▭

सत्यभामा[1]

[गुजरातीसे अनूदित]

उपन्यासकार : कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी
रूपान्तरकार : प्रफुल्लचन्द्र ओझा
समीक्षक : डॉ. राजेश शर्मा

'सत्यभामा' ऐसा महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय सांस्कृतिक दस्तावेज है, जिसमें पौराणिक आख्यानके धरातलपर यादवेन्द्र श्रीकृष्णके दिव्य सौन्दर्य एवं माहात्म्यका उल्लेख है। उपन्यासमें लेखककी तल्लीनता, पात्रोंके साथ तदाकारिता और घटनाओंके साथ अनुभूत्यात्मक जुड़ाव महत्त्वपूर्ण है। कथाका तानाबाना सौराष्ट्र प्रदेशके द्वारका नगरीके विविध आयामी जीवनको सामने रखकर बुना गया है।

कथा नायिका सत्यभामा स्वयंको कृष्ण-प्रिया मानती है। राजस्थानकी कवयित्री मीरांकी भांति श्रीकृष्ण के रंगमें रंगी हुई है। सत्यभामाका धनाढ्य पिता सत्राजित कृष्णके प्रति घोर शत्रुभाव रखते हुए द्वारकाका एकछत्र सम्राट् बननेकी महत्त्वाकांक्षा अपने दिलमें संजोये हुए है। अपने पिता द्वारा कृष्ण और उनके विरुद्ध रचे गये षड्यन्त्रोंको विफल करनेके लिए अन्तहीन जोखिमोंसे लोहा लेती है।

अपूर्व विजय प्राप्त करके द्वारका लौटे श्रीकृष्ण, बलराम एवं अन्य यादव अतिरथियोंके प्रति शत्रुतापूर्ण मनोवृत्ति,साथही राजा उग्रसेनके प्रति सत्राजितका अवज्ञाका भाव सत्यभामाको अच्छा नहीं लगता था। वह द्वारकाके अन्य लोगोंकी तरह यादवेन्द्र श्रीकृष्णको साक्षात् भगवान् मानती थी। सत्राजित अपनी अपार सम्पदाका उपयोग राज्यहितके विरुद्ध अपनेही वैभव-विलासको बढ़ानेमें करता आ रहा था।—'द्वारकामें वह सबसे अधिक धनवान थे, उनका भवन अत्यन्त वैभवशाली था; उनके घोड़े और उनकी गायें सर्वोत्तम थीं। सबसे बड़ी बात, उसके पितापर प्रभास तीर्थके देवता भगवान् सूर्यकी सभी यादवोंकी अपेक्षा अधिक कृपा थी। अपनी विशेष कृपाके चिह्नस्वरूप उन्होंने उसके पिताको स्यमन्तक मणि दी थी। यह एक ऐसा चमत्कारिक रत्न था, जिसकी समुचित पूजा करनेपर, वह निकृष्ट धातुओंको भी स्वर्णमें परिवर्तित कर देती थी।'

यादव-नायकोंने कुरुओं और पांचालोंके मध्य शान्ति और मैत्री स्थापित कराकर पाण्डवोंको अपनी सम्पत्तिका पांचवां हिस्सा दिया था। कृष्णके अनुसार—'धन यदि धर्मकी उपज हो, उचित रूपसे उसका उपार्जन और व्यय किया जाये तो वह अनिष्टकर नहीं है।' (पृ. ४४) सत्राजितने अपनी सम्पत्तिका पांचवा हिस्सा देनेसे यह कहकर मना किया कि, 'यादवगण पाण्डवोंके सामन्त नहीं हैं कि उन्हें इतना प्रचुर कर दें।' सत्राजित अपनी पुत्री सत्यभामाका विवाह सात्यकिपुत्र युयुधान सात्यकिसे करना चाहता था। कृष्ण सत्राजितके समक्ष यह प्रस्ताव रखते हैं कि यदि आप स्यमन्तक चाचा अक्रूरको सौंप देंगे, तभी आर्य सात्यकिसे सत्याका विवाह सम्भव है। सत्राजित इस प्रस्तावको सुनतेही क्रोधसे उन्मत्त हो कृष्णकी हत्याका असफल प्रयास करता है। यही नहीं वह कृष्णपर मणि चुरानेका मिथ्या आरोपभी लगाता है। कृष्ण प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि स्यमन्तक मणि नहीं मिली तो वे आत्मघात कर लेंगे। इस अपकीर्तिजनक आरोपसे सत्यभामाको अकथनीय मनस्ताप होता है। और वह वीर पत्नीका विदा-संदेश कृष्णको भेजती है। उधर सत्राजित अपने भाई प्रसेनके साथ मणिको उस पवित्र गुहामें छिपाने भेजता है जहाँ बैठकर वह सूर्यदेवकी उपासना करता था। लेकिन सिंह प्रसेनको मार देता है। सत्यभामा और सात्यकि मणिको ढूंढ़नेके लिए चुपचाप बीहड़ जंगलमें निकल पड़ते हैं। सात्यकिका अपहरण रीछराज जाम्बवान द्वारा हो जानेपर सत्यभामा कृष्णको अचेतावस्थामें मिलती है। रीछ सिंहको मारकर स्यमन्तक मणिको रीछ-समुदायमें ले जाते हैं। ऊंचे शिखरपर स्थित पवित्र गुहामें पहुंचकर कृष्ण और सत्याभामाको विश्वास हो जाता है कि इसी गुहामें मणिको लाकर देवदूतोंके हाथों सौंप दिया गया है। सत्राजित प्रतिमास यहीं आकर बकरोंकी बलिके द्वारा मणिकी पूजा करता था।

पवित्र गुहाके बीचमें रीछ-मानवोंकी विचित्र बस्ती थी। कृष्ण और सत्यभामा उस बस्तीमें प्रवेश करके उनके बाह्याचारोंसे अत्यन्त अभिभूत होते हैं—'जब भोज समाप्त हो गया तो धर्म-गुरु फिर उठ खड़ा हुआ, उसने काले

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : २०७; क्रा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

देवताका आह्वान किया, ढ़ोलक [illegible] नृत्यके दो-एक पदक्षेप किये। इसके बाद उसने चिल्लाकर कहा, 'हे सदा शक्तिशाली, आजकी रात चन्द्र-वधू आप की सेजपर आयेगी। आप अपनी रीछ-प्रजाको यह उत्सव मनानेकी अनुमति दें।' (पृ. १५५) कृष्ण, पक्षी-कन्या रोहिणीसे विवाह करके ऐन्द्रजालिक मणिके साथ सात्यकि और सत्यभामाको लेकर रीछ-समुदायसे जान बचाकर द्वारका लौट आते हैं। इस प्रकार पहली बार दुर्जेय सत्राजित कृष्णके समक्ष परास्त हो जाता है।

लेखकने पौराणिक धरातलपर वर्तमान समस्याओंको सफलताके साथ उजागर किया है, अतः यह कृति महाभारतकालीन कथाका पुनर्लेखन न होकर पूरक है। उपन्यासकारने जहां सम्पत्तिके न्यायसंगत उपभोग एवं विभाजनको कृष्णके माध्यमसे आवश्यक ठहराया है, वहीं आर्योंके संघर्षशील जीवन और तत्कालीन आदमखोर जनजातियोंकी संस्कृति, उनके लोक-विश्वासों एवं बाह्याचारोंका भी लोमहर्षक चित्र उत्कीर्ण किया है। वन्य जीवनके चित्रणमें कल्पनाका योग होते हुएभी विषय-वस्तु के प्रवाहमें कहींभी अवरोध पैदा नहीं होता। जीव-जन्तुओंके व्यवहार एवं मनोवेगोंको 'उरी' नामक संवेदनशील बिल्लीके माध्यमसे व्यक्त किया गया है। लेखकपर नारी मुक्ति आन्दोलनका प्रभावभी देखा जा सकता है। सत्यभामाके वीर चरित्रमें नारी-मुक्तिका स्वर मिलता है। उसकी भावप्रवणता, तन्मयता, कष्ट सहिष्णुता और कृष्णके प्रति मध्ययुगीन एकनिष्ठता स्पृहणीय है। उपन्यासके कृष्ण महाभारतके योगेश्वर, तत्त्वज्ञ एवं परम नीतिविद् महापुरुषही हैं। लेखकने कृष्णके व्यक्तित्वमें ईश्वर-तत्त्वका समावेशकर उनके परवर्ती स्वरूपकी भूमिका तैयार कर दी है। ▭▭

मत–अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कर सकती है, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदान भी सिद्ध हो सकती है।

बिधा पत्र?

[अंग्रेजीसे अनूदित]

लेखक : खलील जिब्रान
अनुवादक : विट्ठल शर्मा चतुर्वेदी
समीक्षक : प्रा. महेशचन्द्र शर्मा

अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर ख्यातिप्राप्त जिन चिन्तकों—विचारकोंको इस देशमें असाधारण लोकप्रियता मिली है, उनमें खलील जिब्रानका नाम मूर्धन्य है। जिब्रानका लेखन अत्यन्त शक्तिशाली है, क्रान्तिकारी है। उनका लेखन वस्तुतः 'नवीन' की इस उक्तिको व्यावहारिक रूप देता प्रतीत होता है : 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये।' जिब्रानकी दृष्टिमें धन एव सत्ता का महत्त्व नहीं रहा। वह तो मानवकोही सर्वोच्च स्थान पर स्वीकारते हैं। इसीलिए, मानवकी गरिमा तथा प्रतिष्ठाके लिए ही जिब्रानकी सम्पूर्ण साहित्य-सृष्टि समर्पित है।

'प्रकाशकीय' के अन्तर्गत कहा गया है : 'इस कृतिकी भाव-भूमि अत्यन्त हृदयस्पर्शी और प्रेरणादायक है··· इसमें उन्होंने प्रेमके वास्तविक स्वरूपका चित्रण किया है। उनकी दृष्टिमें प्रेम मात्र भोगका साधन नहीं है, बल्कि त्याग और आत्मिक विकासका माध्यम है। शुद्ध प्रेमको न तो कोई धनसे खरीद सकता है, न सत्तासे दबा या जीत सकता है। सच्चा प्रेम आत्म-बलिदान द्वारा व्यक्तियोंको जीवनके उच्चतम छोरपर पहुंचा सकता है' (पृ. ३-४)। 'प्रकाशकीय' में व्यक्त यह अभिमत समीक्ष्य कृतिके रचनोद्देश्यको बड़े स्पष्ट रूपसे हमारे सामने रखता है। महात्मा कबीरने भी ऐसाही कहा है :

'यह तो घर है प्रेमका, खालाका घर नाहीं।
सीस उतारे भुई धरे, सौ पैठे इहि माहीं॥'

रामनरेश त्रिपाठीका भी यही कहना है :

'सच्चा प्रेम वही है जिसकी,
तृप्ति आत्मबलिपर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है,
करो प्रेमपर प्राण निछावर॥'

१. प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, एन ७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : १३८; क्रा. ८२; मूल्य : ६.०० रु.।

अभिनव अपरिहार्य नवीनतम प्रकाशन : १९८२

उपन्यास :

तीसरी सत्ता	गिरिराज किशोर	४८.००
दहकन के पार	निरूपमा सेवती	१६.००
स्वामी	मन्नू भण्डारी	१८.००
खुशबू गुलाब की	"रूद्र" काशिकेय	३०.००
नचिकेता	गौरीशंकर कपूर	२०.००

कहानी :

विपथगा	अज्ञेय	२४.००
सब एक जगह – भाग एक	शानी	५५.००
सब एक जगह—भाग दो	शानी	५५.००
कितना सुन्दर जोड़ा	सुरेन्द्र वर्मा	१६.००
बावन पत्ते एक जोकर	मंजुल भगत	१८.००

नाटक :

मारा जाई खुसरो	रमेशचंद्र शाह	१५.००
पलायन	भारतभूषण अग्रवाल	१८.००
मौजूदा हालात को देखते हुए	मृणाल पाण्डेय	१४.००
एक था बादशाह	मंजूर एहतेशाम, सत्येनकुमार	१४.००

संस्मरण : ललित निबंध :

मेरे प्रिय संस्मरण	महादेवी वर्मा	२६.००
मेरे प्रिय निबंध	महादेवी वर्मा	२५.००
स्मृति लेखा	अज्ञेय	३०.००
रंगों की बोली	माखनलाल चतुर्वेदी	२५.००
शिखरों की छाँह में	अक्षयकुमार जैन	२४.००
मुंशी अजमेरी	मैथिलीशरण गुप्त	१५.००

कविता :

मेरी प्रिय कविताएँ	महादेवी वर्मा	२५.००
चलना होगा	छैलबिहारी दीक्षित "कंटक"	२६.००
प्रीत का धागा—गीत के मोती	आर. डी. सक्सेना	२५.००
गंधबाप	नरेंद्र चंचल	२२.००
साँझ का आकाश	रमाकान्त श्रीवास्तव	१६.००
किसी भी तारीख को	श्रीकान्त जोशी	२२.००
कैक्टस के दांत	अभिमन्यु अनत	२२.००

आलोचना :

साहित्य का समाजशास्त्र	डॉ. नगेन्द्र	२६.००
कथाकार प्रेमचंद	डॉ. रामदरश मिश्र	४४.००
हिन्दी भाषा की सामाजिक भूमिका	डॉ. भोलानाथ तिवारी	२५.००
समकालीन लेखन : वैचारिकी	डॉ. चंद्रभान रावत डॉ. रामलाल खंडेलवाल	३०.००

नये सूचीपत्र के लिए लिखें :

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

समीक्ष्य लघु औपन्यासिक कृति ११ छोटे-छोटे अध्यायोंमें विभक्त है। अध्यायोंके शीर्षक हैं : 'प्रेमकी शक्ति', 'मूककी अन्तर्व्यथा', 'मृत्युका पंजा', 'प्रथम मिलन', 'श्वेत ज्वाला', 'तूफान', 'अग्निकुंड', 'मृत्युके दरबारमें', 'देवालय', बलिदान' एवं 'समाप्ति'।

प्रस्तुत कृतिमें जिब्राानने पुरुष, स्त्री, सौन्दर्य एवं प्रेम आदि विविध विषयोंपर चिन्तन-मनन किया है, जो निश्चयही पाठकोंको प्रभावित किये बिना नहीं रहेगा। इस कृतिमें पाठक जिब्राानके उस 'दर्शन' को देखेंगे जिसमें जीवनके वस्तुगत सत्यकी उपलब्धि सम्भव हो सकती है।

सौन्दर्य क्या है ? सलमाके सौन्दर्यको देखकर जिब्रान ने इसपर टिप्पणी की है : 'सौन्दर्य एक जीवन-मर्म है, जिसे पाकर आत्माको सुखकी अनुभूति होती है, जिसके प्रभावके आधारपर आत्मा उन्नत होती है, परन्तु कल्पना और विचार इसके सामने असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि वे इसे किसीभी तरहसे शब्द देनेका प्रयत्न करते हैं, परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिलती।' (पृ. ३१)

'सच्चा सौन्दर्य तो उस प्रकाशकी किरणें हैं, जो अपनी आत्माके पवित्रतम उद्‌गम स्थानमें से निकलकर अपने वाह्य शरीरको प्रकाशित करती हैं, जैसे बीजकी अन्तरतम गहराईमें से जीवन विकसित होता है और पीछे उसमेंसे सुगन्धयुक्त सुहावना पुष्प प्राप्त होता है। (पृ. ३१)।

'सच्चा सौन्दर्य स्त्री और पुरुष दोनोंके बीच एक सम्पूर्ण समझौता है, जो एक क्षणमें दोनोंको पूर्णत्वकी ओर पहुँचा देता है और दोनोंकी आत्माओंके बीच विश्व में इनका सर्वोच्च सम्बन्ध स्थापित करता है…' (पृ. ३१-३२)।

सलमाका एक कथन हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं जो 'प्रेम' की सच्ची अवधारणाको प्रकट करनेमें अत्यन्त सक्षम बन पड़ा है : 'जो प्रेम अपने प्रेमपात्रको अपने काबूमें लेनेकी इच्छा करता है, वह संकुचित है। परन्तु जो प्रेम काल तथा स्थलके बन्धनोंसे मुक्त है, उसे अपने प्रेमपात्रके व्यक्तित्वके अतिरिक्त दूसरे किसीकी अपेक्षा नहीं होती' (पृ. १२२)।

इसी कृतिमें अन्यत्रभी कहा गया है : 'उच्च प्रेम वह है, जो ईर्ष्याके नामतक को नहीं जानता, ऐसा प्रेम संपूर्ण रूपसे स्वतन्त्र होता है और उसका आत्माके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होनेसे देहको किसीभी प्रकारका कष्ट नहीं पहुंचाता' (पृ. ६३)।

पुत्र एवं पुत्रीके विवाहके अन्तरको लेकर इस कृतिमें एक कटु सत्यकी ओर इंगित किया गया है : 'पुत्रका विवाह माता-पिताके लिए आनन्दका कारण बनता है, क्योंकि उससे अपने घरमें एक नये व्यक्तिका आगमन होता है, परन्तु पुत्रीका विवाह दुःखका कारण बनता है क्योंकि इससे घरमें से एक प्रिय तथा चिर-परिचित व्यक्तिकी कमी अनुभव होती है' (पृ. ६१)।

कालिदासने भी अपनी सुप्रसिद्ध नाट्य-कृति 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के चतुर्थ अंकमें इसी सत्यकी ओर इंगित किया है : 'पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनया विश्लेष दुःखर्नवैं।'

समीक्ष्य कृतिमें आधुनिक युगकी एक सर्वथा परिहार्य सामाजिक विषमताकी ओरभी इंगित किया गया है। आजके युगमें लड़का-लड़कीका विवाह एक व्यापारिक सौदा बन गया है। इसपर जिब्राानने विचार किया है : 'आधुनिक समयमें विवाह एक प्रकारका व्यापारिक सौदा बन गया है।…यह सौदा वयस्क लड़का-लड़कीके माता-पिताओंके बीचमें होता है। अनेक देशोंमें लड़के इससे लाभमें रहते हैं और माता-पिता घाटेमें। परन्तु सौदोंके मालकी तरह एक घरसे दूसरे घरमें जानेवाली

लड़कियोंके जीवनमें से तो सब कुछ नष्ट हो जाता है। पुराने कूड़े-कर्कटकी तरह इनके भाग्यमें घरका अन्धेरा कोना लिखा होता है। इस अन्धेरे कोनेमें कोई कहनेके लिए भी इनका भाव नहीं पूछता और वे रो-रोकर जीवन के दिन पूरे करती हैं' (पृ. ८५)।

उपन्यासकारने समीक्ष्य कृतिमें यह सिद्ध करनेका प्रयास किया है कि प्रेममें भोगका समावेश हो जानेपर प्रेम विकृत हो जाता है और इसप्रकारके प्रेमका यह दुष्परिणाम निकलता है कि व्यक्ति जीवनमें ऊपर नहीं उठ पाता, नीचेही गिरता चला जाता है। इस प्रकारका विकृत प्रेम निश्चयही व्यक्तिके विकास-मार्गमें सबसे बड़ा व्यवधान बन जाता है।

पुस्तकमें मुद्रण-सम्बन्धी भूलेंभी देखनेको मिलती हैं। पृष्ठ ८१ से ९६ तक पृष्ठोंका क्रमभी अव्यवस्थित हो गया है जो कृतिके निर्बाध रूपसे पढ़नेमें बाधक है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि त्याग एवं आत्मिक विकासके माध्यमसे प्रेमके गरिमापूर्ण स्वरूपको प्रकट करनेके उद्देश्यसे समीक्ष्य कृतिकी सृष्टि की गयी है। कृतिकारको अपने उद्देश्यमें अभीष्ट सफलता मिली है। प्रस्तुत कृति शिष्ट साहित्यकी श्रेणीमें आती है। विठ्ठल शर्मा चतुर्वेदीने इसका जो अनुवाद प्रस्तुत किया है, वह मूलकृतिका आनन्द प्रदान करता है। यह अनुवादककी कुशलता एवं सफलता कही जायेगी।

पुस्तकका मूल्य निश्चयही ऐसा है जिससे सभी स्तर के व्यक्ति इसे खरीदकर पढ़ सकते हैं। ▭▭

बुद्ध : जीवन और दर्शन[1]

[अंग्रेजीसे अनूदित]

लेखक : डॉ. सद्धातिस्स,
अनुवादक : विट्ठलदास मोदी
समीक्षक : डॉ. कमलसिंह

[1] **प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, एन ७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१ । पृष्ठ : ९२; क्रा. ८१; मूल्य : ६.०० रु.।**

डॉ. सद्धातिस्सके अनुसार "प्रस्तुत पुस्तकका उद्देश्य बुद्धके स्वयंके जीवन और उससे संबद्ध घटनाओंके संदर्भमें उनकी शिक्षाओंका विवेचन करना है।" (भूमिका, पृष्ठ ५)। अनुवादकके अनुसार "इस पुस्तककी विशेषता यह है कि इसमें भगवान् बुद्धकी जीवनीके साथ उनके विचारोंके विकासकी राह, उनका साधना-पथ और उनके धर्मकी रूपरेखा आ गयी है।" (निवेदन, पृष्ठ ७)

सस्ता साहित्य मंडलने एक नयी पुस्तक-मालाका प्रकाशन प्रारम्भ किया है। इस मालामें विभिन्न धर्मोंके प्रवर्त्तकों अथवा उन्नायकोंके जीवन और शिक्षाओंसे संबंधित पुस्तकोंका प्रकाशन किया जायेगा। प्रस्तुत पुस्तक इस मालाका प्रथम पुष्प है।

पुस्तकमें सात प्रसंग हैं—१. शैशव, २. मनुष्यकी चार अवस्थाएं, ३. संबोधिकी प्राप्ति, ४. मध्यम मार्ग, ५. संघ, ६. करुणा, ६. निर्वाण। पूरी पुस्तक त्रिपिटक का आधार लेकर लिखी गयी है।

धर्म और दर्शनकी गहराई भारतमें न जाने कबसे चली आ रही है। किन्तु जब-जब इसमें विकृति आयी है, योग-साधना मात्र चमत्कार एवं आकर्षणका निमित्त बनी है, धार्मिक संस्थानोंमें भ्रष्टाचार पनपा है, दर्शनकी मनमानी ऊल-जलूल व्याख्या की गयी है; अंधविश्वासों में भटकाव हुआ है, तब-तब कोई महासाहसी सत्य पुरुष इन विकृतियोंके विरुद्ध लड़ा है और धर्म तथा दर्शनका परिष्कार किया है। महात्मा बुद्ध ऐसेही महापुरुष थे। जीवन-संघर्ष और विकृतियोंका परिष्कार प्रस्तुत पुस्तकमें सिद्ध हो रहा है।

देवदत्तके द्वारा घायल किये जानेवाला पक्षी बगुला कहा गया है (पृष्ठ १६) संभवतः वह पक्षी हंस था।

भाषा-शैली सरल और प्रभावक है। पाठकको कहानी का-सा आनन्द आयेगा। विचारोंकी शुद्धिके लिए एवं सन्मार्गपर अग्रसर होनेके लिए पुस्तक उपयोगी है। संसार से विरक्ति और वैराग्यके लिए उपयुक्त वातावरणकी सृष्टिभी की गयी है किन्तु आजके वैज्ञानिक एवं तर्कवादी युगमें पाठकके सम्मुख कतिपय प्रश्न एवं जिज्ञासाएं आ खड़ी होती हैं यथा नदीमें सोनेके कटोरेका धारके विपरीत तैरना कैसे संभव हुआ? (पृष्ठ ३२) क्या यशोधराको बिना पूछे अथवा बिना सलाह लिए चुपके-चुपके तपस्या को निकल जाना सामाजिक, पारिवारिक एवं धार्मिक दृष्टिसे उचित था? इत्यादि। ▭▭

शोध : आलोचना

भारतीय काव्य शास्त्र

स्वभावोक्ति[1]

लेखक : डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ
समीक्षक : डॉ. धर्मदेव तिवारी

'काव्यशास्त्र' गहन गंभीर और दुर्गम विषय है। डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षितने विवेच्य ग्रन्थकी भूमिकामें मत प्रकट किया है कि "काव्य शास्त्रका विषय जितना गहन है, उतनाही जटिलभी। काव्य-बोधके लिए उसके विवेचकोंने अनथक श्रम करके जितने नये मार्गोंकी खोज की हैं और जितनी सूक्ष्म और अन्तर्दृष्टि और पैंठसे काम लिया है, उतनाही साधारण पाठक और विचारवन्त विवेचकके लिए काव्य-शास्त्रीय गुत्थियाँ उलझनभरी प्रमाणित होती गयी है।" यह स्थापित मत सहज भावसे स्वीकार्य है।

अलंकार शास्त्र उसी काव्य शास्त्रका एक अंग है। भारतीय काव्य शास्त्रमें इसकी सुदीर्घ परम्परा रही है। अलंकार-धारणा, अलंकार-संख्या और काव्यमें अलंकारों के स्थानसे सम्बद्ध जोभी विवेचन हुए हैं, वे ऊहापोहात्मक ही कहे जायेंगे। वस्तुतः अलंकार अभिव्यक्तिकी एक प्रणाली है। मानव सभ्यताके विकास-चरणपर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसकी अभिव्यक्ति प्रणालीमें बदलाव आता गया। अलंकारके आधारपर उक्त प्रणाली के दो वर्ग बनते हैं (क) सालंकारिक और (ख) निरलंकारिक।

आजके आलोचकों (डॉ. ओम्प्रकाश, डॉ. शोभाकान्त मिश्र आदि) ने अलंकार-परम्परा, अलंकार-धारणा, अलंकार-संख्या और काव्यमें अलंकारोंका स्थानपर तर्कयुक्त विवेचन किया है अवश्य, पर स्वभावोक्तिपर विशद विवेचनकी अपेक्षा बनी हुई थी। स्वभावोक्ति एक अलंकार है। अतः उसपर अलंकार-विवेचनके क्रममें जो विवेचन हुआ है, वह सीमितही कहा जायेगा। प्रस्तुत ग्रंथमें उसे पहली बार विशदता प्राप्त हुई है। इसी संदर्भमें डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षितके मतको देखा जायेगा। "स्वभावोक्तिका इतने विस्तारसे एक अलग ग्रंथके रूपमें इससे पूर्व कोई विवेचन नहीं हुआ है।" (भूमिका पृ. ११)

प्रस्तुत ग्रंथ उपसंहार सहित छह अध्यायोंमें विभक्त है। इसके अतिरिक्त डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षितकी सारगर्भित एवं महत्त्वपूर्ण भूमिकाभी है। इसमें क्रमशः काव्य का वर्गीकरण; संस्कृत-काव्यशास्त्रमें स्वभावोक्ति; हिन्दी काव्यशास्त्रमें स्वभावोक्ति; स्वभावोक्तिका भाव-पक्ष; स्वभावोक्तिका शैली-पक्षका प्रतिपादन हुआ है। उपसंहार ग्रंथमें विवेचित तथ्योंका सार है।

'काव्यका वर्गीकरण' विवेच्य ग्रंथका प्रथम अध्याय है। यहाँ काव्यकी परिभाषाके रूपमें स्वीकार किया गया है—"अनुभूति तत्त्वकी शब्दार्थ रूप अभिव्यक्तिही काव्य है।" यह परिभाषा अतिव्याप्तिपूर्ण है, क्योंकि समस्त मानव जगत्की अभिव्यक्तियाँ काव्य मान ली गयी हैं। वस्तुतः 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' के वजनपर यह परिभाषा निर्मित की गयी है। दूसरी बात है कि उक्त परिभाषामें रस या आनन्द या चारुत्वका कोई स्थान नहीं।

काव्य-वर्गीकरणके जो आधार दिये गये हैं, वे ग्राह्य एवं महत्त्वके हैं। इन आधारोंमें शैलीको भी स्वीकार किया गया है, जिसके 'आधारपर हुए वर्गीकरणका ही महत्त्व सर्वाधिक है।" (पृ० २५)। यहीं यह स्वीकारा गया है कि "भारतीय काव्यशास्त्रके अनुसार स्वभावोक्ति एक ऐसी काव्यशैलीके रूपमें प्रस्तुत होती है जो अलंकार-प्रधान वक्रोक्ति शैलीसे भिन्न है और गुण-प्रधान है। (पृ. २५)। यह निष्कर्षही "स्वभावोक्ति-शैलीके क्षेत्र और शिल्पगत वैशिष्ट्य" पर विचार-विमर्श करनेके लिए तत्पर करता है। यही इस ग्रंथका उद्देश्यभी माना जायेगा।

आलोच्य ग्रंथके द्वितीय तथा तृतीय अध्याय क्रमशः 'संस्कृत काव्यशास्त्रमें स्वभावोक्ति' और 'हिन्दी काव्यशास्त्रमें स्वभावोक्ति विवेचन' हैं, जिनमें संस्कृत-हिन्दी-आचार्यों द्वारा विवेचित स्वभावोक्ति परम्पराको पूर्व-पक्ष

[1] प्रकाशक : **सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बिस्सो चौक, बीकानेर (राजस्थान)। पृष्ठ : १५८; डिमा. ८०;** मूल्य : ३०.०० रु.।

एवं उत्तर-पक्षके साथ उपस्थापित किया गया है। लेखक जितना अधिक विवेकशीलोन्मुखी वृत्तिसे अपने प्रतिपादनको पुष्ट करेगा, उसकी मान्यताएँ उतनीही स्थिर एवं चिरस्थायी होंगी। डॉ. कुलश्रेष्ठकी मान्यताएँ ऐसीही हैं। उनकी मौलिकता उनके द्वारा उपस्थापित उत्तर-पक्षमें है। इन अध्यायोंका केवल ऐतिहासिक तथ्योंको उपस्थित करनेका ही महत्त्व नहीं है, बल्कि समीक्षात्मकभी । विवेकशील तार्किकताके आधारपर विभिन्न मतोंका परीक्षण मात्र मौलिकताही नहीं, बल्कि अन्यतम विशेषताभी हैं।

विवेच्य ग्रंथका चौथा अध्याय है—'स्वभावोक्तिका भाव-पक्ष'। यहाँ स्वभावोक्तिके 'स्वभाव' और 'काव्यमें उसकी स्थितिपर' विशेष रूपसे विचार किया गया है। इस तथ्यको उद्‌घाटित करनेके लिए विद्वान् लेखकने अनेक बिन्दुओंको स्थिर किया है, जिनमें 'मानव-स्वभाव' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विन्दु है। अपने विवेचनको पुष्ट करनेके लिए तथा उसे मनोवैज्ञानिक स्तर प्रदान करनेके लिए भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियोंके सिद्धान्तोंको आधार बनाया गया है। 'स्वभाव' का काव्यक्षेत्रमें जो विस्तार-विषय-प्रतिपादन है, वह लेखकीय सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेकशीलताका परिचायक है। इसकी व्याप्ति चेतन-अचेतन, सांस्कृतिक, सामान्य-असामान्य चरित्र तथा बालजगत्‌तक स्वीकार की गयी है। इस प्रकार व्याख्येय अध्याय अपनी सम्पूर्ण विशेषताओं, मौलिक विवेचनों तथ्यगत उद्‌घाटनों के कारण पूर्ण बना है।

'स्वभावोक्तिका शैली-पक्ष' प्रस्तुत ग्रंथका पांचवां अध्याय है, जिसमें शैली विषयक तत्त्व; उसकी विशेषताएँ; उसके गुण; उसके सामान्य विषय; युद्ध और रूप-वर्णन और प्रकृति-चित्रणके साथ उसका सम्बन्धपर महत्त्वपूर्ण तर्कसंगत विवेचन किया गया है।

स्वीकार किया गया है कि "स्वभावोक्तिको अन्य प्रकारके काव्यसे अलग करनेवाला तत्त्व उसका शैली-पक्ष है।" (पृ. ११०)। संस्कृत काव्यशास्त्रियोंके मतके परीक्षणके आधारपर स्वभावोक्ति शैलीकी आठ विशेषताएँ सामने आती हैं—१. निरलंकृतता, २. निर्व्याजता, ३. लक्षित-बिम्ब-विधान, ४. सारल्य, ५. इतिवृत्तात्मकता, ६. परिगणना, ७. समासहीनता, ८. अभिधात्मकता। इन समस्त विशेषताओंको परिभाषित-व्याख्यायितकर उदाहरण दिये गये हैं। परिभाषा-व्याख्या-उदाहरणमें सर्वत्र संहति बनी हुई है।

स्वभावोक्तिके वर्ण्य-विषयके प्रतिपादनमें यह स्पष्ट किया गया है कि अतिलौकिक विषय स्वभावोक्तिके वर्ण्य विषय क्षेत्रसे बाहर है। जिन विषयोंका चित्रण स्वभावोक्ति शैलीमें होता है, वे हैं—गार्हस्थिकता; लोक-जीवन; बाल-क्रीड़ा; पशु-चेष्टा; सभा-वर्णन; नगर-वर्णन और वात्सल्य वर्णन। इन विषयोंके उदाहरण संस्कृत-साहित्य या हिन्दी-साहित्यमें मिल जायेंगे।

आलोच्य ग्रंथका अन्तिम और छठा अध्याय है—'उपसंहार', जिसमें स्वभावोक्तिका स्वरूप-निरूपण तो कियाही गया है, साथही, दूसरे सिद्धान्तोंके साथ स्वभावोक्ति-शैलीके सम्बन्धपर भी विचार किया गया है। स्वभावोक्तिके महत्त्वको उकेरनेके बाद स्वभावोक्ति वर्ण्य है या शैली इस प्रश्नका समाधान किया गया है। इसके उत्तरपक्षमें कहा गया है कि "स्वभाव इसका वर्ण्य है और ××× । स्वभावकी उक्ति 'काव्यका आधार।'" (पृ. १५२)। इसप्रकार कहा जा सकता हूं कि "स्वभावोक्ति, काव्यका एक ऐसा प्रकार है जो मानव-स्वभावको उन शैलीगत विशेषताओंके साथ अभिव्यंजित करता है जो स्वभावोक्ति-शैलीके वैशिष्ट्यके रूपमें व्यक्त की जा चुकी है।" 'वक्रोक्ति' के वजनपर 'स्वभावोक्ति काव्यस्य मूलम्' स्वीकारना—उसकी महत्ताको स्वीकारना है।

इस प्रकार संपूर्ण ग्रंथके परीक्षणके बाद यह स्वीकार किया जायेगा कि इस तरहकी मौलिक कृतिसे हिन्दी जगत् निश्चित रूपसे गौरवान्वित होगा। विवेच्य कृति गहन-गंभीर विवेचन, सरल-सुगम प्रतिपादन, मौलिक स्थिर सिद्धान्त निरूपणके कारण पठनीय, मननीय एवं संग्रहणीय बनी है। □ □

भारतीय काव्य समीक्षामें औचित्य सिद्धान्त[१]

लेखक : डॉ. रामलखन शुक्ल

समीक्षक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित

मैकमिलनकी भारतीय काव्यशास्त्र मालाके अन्तर्गत औचित्य सिद्धान्तपर विचार करनेवाली इस पुस्तकमें दो खण्ड और कुल १० अध्याय हैं। साथमें है एक १२ पृष्ठीय पातनिका, संपादककी ओरसे जो इस पुस्तकका महत्त्व बढ़ाती है। खण्ड एकमें क्रमशः औचित्यका अर्थ एवं व्याप्ति; औचित्य सिद्धान्तका ऐतिहासिक विकास; आचार्य क्षेमेन्द्र और औचित्य (के नाना भेद); आधुनिक भारतीय विचारक और औचित्य; पाश्चात्य काव्य-समीक्षामें औचित्य; उपपत्ति एवं स्थापनाएं तथा खण्ड दो में औचित्यके विनियोगके अन्तर्गत क्रमशः आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक कालके हिन्दी काव्य का विवेचन किया गया है। स्पष्ट है कि लेखकने व्यापक धरातलपर औचित्य सिद्धान्तका बिवेचन और विनियोग किया है और अपनेसे पूर्ववर्ती समस्त विवेचकोंके विचारों को इस ग्रन्थमें समाविष्ट और आत्मसात् कर लिया है। पश्चिममें औचित्यकी छानबीन पुस्तकका महत्त्व और बढ़ाती है या उसे परिपूर्णता देती है। पुस्तकका रचना-संस्थान एक शोध-प्रबन्ध जैसा है।

डॉ. शुक्लने परिश्रमपूर्वक इस ग्रन्थको लिखा है। औचित्य सिद्धान्तका ऐतिहासिक विकास बताते हुए वे भरतमुनि द्वारा उल्लिखित लोकधर्ममें ही औचित्य सिद्धांत के बीज देखते हैं। अन्य आचार्योंके प्रसंगमें उन्होंने भावात्मक और अभावात्मक दोनों रीतियोंसे औचित्यकी मान्यताकी सिद्धि की है। परन्तु भामहके विषयमें अपनी यह धारणा व्यक्त करते हुएभी कि 'उन्होंने वक्रता-समन्वित शब्द और अर्थके साहित्यमें ही काव्यकी चारुता देखी है। यह वक्रता अप्रत्यक्ष रूपमें औचित्यकी ओर संकेत करती है।'(६) वे इसे स्पष्ट करनेसे चूक गये हैं। दण्डीमें औचित्यका अभावात्मक रूपमें प्रस्थापन दिखायी देता है। स्वयं क्षेमेंद्रके विषयमें उनका कथन है कि (१) 'उन्होंने औचित्यको रससिद्ध काव्यका जीवित माना है किंतु वह यह स्पष्ट नहीं कर सके हैं कि उनकी दृष्टि रस प्रधान है अथवा औचित्य।···वास्तवमें औचित्य रस-सिद्ध काव्यका ही स्थिर जीवित है।' (पृ. ५२)। (२) 'ऐसा प्रतीत होता है कि क्षेमेंद्रने औचित्यकी महत्ता सिद्धान्त रूपमें स्वीकार की है, किन्तु उसे प्रस्थापित करनेका उन्होंने कोई विशेष प्रयास नहीं किया है।' (पृ. ५२)। एक तो डॉ. शुक्लके इन कथनोंमें 'औचित्य विमर्श' के लेखक डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीके विवेचनकी गूंज है, दूसरे डॉ. शुक्लने स्वयं इनके समाधानका कहीं कोई प्रयत्न नहीं किया है।

ग्रन्थका छठा अध्याय इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि

१. प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., २/१६ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २२+२३४; डिमा. ८१; मूल्य : ५०.०० रु.।

पूर्वके कई अध्यायोंमें दिये [illegible] आधारपर यहां उपपत्ति और स्थापनाओंपर विचार किया गया है। स्वाभाविक है कि इसमें पूर्वकथितका यत्र-तत्र पुनरुल्लेखभी हुआ है। यदि इस अध्यायको पुनः ऐतिहासिक क्रम और पूर्व तथा पश्चिमको अलग करके न रखा गया होता और समग्रतः औचित्यका एक संश्लिष्ट विवेचन कुछ समस्याओंको लेकर किया जाता तो अच्छा होता और बिखरावसे बचा जा सकता था। वर्तमान रूपमें ग्रन्थ विवरणात्मक अधिक हो गया है।

इस प्रकारके विवेचनकी कमीको कुछ दूरतक पूरा किया है 'पातनिका' ने जिसमें डॉ. त्रिपाठीने डॉ. रामपाल सिंह तथा राघवनके विचारोंसे मतभेद व्यक्त करते हुए क्षेमेंद्रकी दृष्टिको सर्जन, ग्रहण और समीक्षणके तीन पक्षोंमें से अन्तिमसे सम्बन्धित माना है और क्षेमेंद्र तथा अभिनव गुप्तके परस्पर विरोधका शमन किया है। रस और औचित्यके प्रसंगमें भी त्रिपाठीजीका निष्कर्ष है कि 'क्षेमेंद्र की दृष्टिमें औचित्य रससिद्ध काव्यका जीवित है—अर्थात् काव्यके जीवितका जीवित है।' 'औचित्यका जीवितत्व लाक्षणिक है अभिधात्मक नहीं। रस अभिधामें काव्यका जीव है और औचित्य लक्षणामें।' इसी प्रसंगमें त्रिपाठीजीने इस प्रश्नका समाधानभी खोजा है कि वक्रोक्ति तथा ध्वनिसे परिचित होकरभी क्षेमेंद्रने उनकी अपेक्षा औचित्यका व्यतिरेक क्यों नहीं दिखाया? 'त्रिपाठी जीने 'औचित्य विमर्श' में औचित्यके पृथक् मतवाद होने का खण्डन किया था, किंतु यहाँ पुनर्विचारके परिणामस्वरूप उन्होंने उसे मतवादके रूपमें स्वीकार किया है। पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी, मार्क्सवादी तथा अन्तश्चेतनावादी दृष्टियोंके अतिरिक्त रिचर्ड्स और इलियटके विचारोंके आलोकमें भी त्रिपाठीजीने औचित्यके स्वरूप पर विचार किया है और अन्ततः वर्तमान रचना संसार और औचित्यपर विचार करते हुए वस्तुगत एवं कलागत औचित्यके एकसाथ या पृथक् निर्वाहकी संभावनाओंपर भी दिशा-निर्देश किया है। वस्तुतः उनके इस विवेचनके आलोकमें औचित्यके विषयमें और अधिक विचारकी अपेक्षा है। ▭▭

भारतीय काव्य समीक्षामें अलंकार सिद्धान्त[1]

लेखक : रेवाप्रसाद द्विवेदी

समीक्षक : डॉ. प्रेमकान्त टण्डन

विवेच्य पुस्तकका नाम वास्तवमें होना चाहिये था —'संस्कृत काव्य शास्त्रमें अलंकार-विवेचन', क्योंकि यदि मैकमिलनकी 'भारतीय काव्यशास्त्र सिरीज' के संपादक डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीकी कोई ५० पृष्ठकी भूमिका प्रस्तुत पुस्तकके साथ न होती तो पुस्तकके मूल कलेवरमें ऐसा विशेष कुछभी नहीं है जो उसके उक्त अभिधानको सार्थकता दे सकता। पुस्तककी विवेच्य सामग्रीसे यह बात तुरन्त स्पष्ट हो जाती है। समस्त सामग्री आठ अध्यायोंमें विभक्त है जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं—(१) काव्यशास्त्र और अलंकार दर्शन (३०पृ.) (२) लक्षण और अलंकार (१२ पृ.) (३) अलंकारोंका विकास (२२ पृ.) (४) अलंकारोंका वर्गीकरण (१५ पृ.) (५) काव्यशास्त्रकी मुख्य परिभाषाएँ (८ पृ.) (६) मुख्य अलंकार और उनके लक्षण (६८ पृ.) (७) अन्य अलंकार (३५ पृ.) और (८) अलंकारोंका पारस्परिक अन्तर (५ पृष्ठ)। अन्तमें अलंकारानुक्रमणिका सम्बन्धी दो परिशिष्ट (२४ पृ.), सदर्भ ग्रन्थ-सूची और सामान्य अनुक्रमणी (१४ पृ.)—इसप्रकार कुल पृष्ठ संख्या २६७। इसके अतिरिक्त, ग्रन्थारम्भमें लेखक डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदीका लगभग ४ पृष्ठीय 'प्राक्कथन' है, और लगभग ५० पृष्ठकी डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीकी भूमिका है, जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है।

स्वयं लेखकके अनुसार इस पुस्तककी विशेषताएँ हैं—इस ग्रन्थमें शब्दालंकारोंको बादमें प्रस्तुत किया गया है, अर्थालंकारोंको पहले···उदाहरण और लक्षण गद्यात्मक हैं···इनसे अध्येताको उपमा आदि अलंकारोंका स्वरूप स्पष्ट रूपसे विदित हो सकेगा···१६ वर्षोंके अध्यापनसे मुझे अध्येताओंकी जिन कठिनाइयोंका ज्ञान था, उन्हें दूर करनेका यथासंभव प्रयास किया गया है। अनुक्रमणीसे

१. **प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., २/१६ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २६७; डिमा. ८०; मूल्य : ५०.०० रु.।**

स्पष्ट हुआ है कि अलंकारको स्वतन्त्र अलंकारके रूपमें सबसे पहले कब और किस आचार्यने प्रस्तुत किया। मुख्य उद्देश्य है अलंकारोंके एक-एक भेदका सिद्धान्तभूत स्वरूप समझाना…लक्षणोंके विषयमें चिर रूढ़ धारणाका इस ग्रन्थमें पर्याप्त मात्रामें उन्मूलन हो गया है। (प्राक्कथन के अंश)।

लेकिन उक्त सभी बातें अलंकार विषयक अबतक प्रकाशित तमाम पुस्तकोंका विवेच्य बन चुकी हैं। बल्कि काव्यशास्त्रीय ग्रन्थोंमें इन विषयोंपर संभवत: अधिक स्पष्ट और उपयोगी विवेचन सुलभ है। 'लक्षण' विषयक 'चिररूढ़' धारणाका 'उन्मूलन' यदि प्रस्तुत ग्रन्थसे हो भी गया है तो उससे सम्बद्ध सामग्री कुल आठ पृष्ठोंकी है। वैसे, 'लक्षणों' के विषयमें ऐसी कोई चिर रूढ़ धारणा थी भी नहीं, जैसाकि लेखकने दावा किया है।

वास्तवमें, जैसाकि मैं अन्यत्रभी लिख चुका हूं, अलंकारोंपर अब इसप्रकारके पिष्ट-पेषणकी कोई आवश्यकता नहीं है, यह सब बहुत हो चुका है। अब जो आवश्यक है वह कुछ दूसरीही बात है। काव्यसे अलंकारका चाहे संयोग सम्बन्ध माना जाये और चाहे समवाय, यह निश्चित है कि वह काव्यके आत्मभूत मूल चारुत्वका पोषण करते हुए पाठकके अनुभवको समृद्ध करता है। अतः, प्रश्न स्वभावतः यह है कि अलंकार काव्यके मूल चारुत्वका पोषण किस प्रकार करता है और पाठकके अनुभवको समृद्ध किस प्रकार करता है। इस प्रश्नका उत्तर देते हुए अब उस वास्तविक प्रक्रियाका निरूपण और विवेचन आवश्यक है जिससे अलंकारके उक्त दोनों फलन निष्पन्न होते हैं। कक्षाओंमें विद्यार्थियोंको अलंकारों की तोता रटन्त करवाने, उनके लक्षण-उदाहरण; भेदोपभेद याद करवाने अथवा यह बता देने मात्रकी कोई बड़ी सार्थकता नहीं है कि अमुक छंद अमुक अलंकार है। वास्तवमें उनको यह बताया जाना चाहिये कि कोई अलंकार काव्यके सौन्दर्यमें किस प्रकारसे वृद्धि कर रहा है, और रचनाकारकी अनुभूतिकी अभिव्यक्ति एवं उसके ग्रहणमें किस प्रकारसे सहायक हो रहा है। विवेच्य पुस्तक में ऐसा कोई विशेष प्रयास लक्षित नहीं होता।

पुस्तकमें एक अध्याय है 'अलंकारोंका विकास'। इसमें लेखकने भरत मुनिसे लेकर भिखारीदासतक के द्वारा निरूपित अलंकारोंकी संख्या बतायी है और यह बताया है कि किस आचार्यने किस आचार्यका कौन-सा अलंकार स्वीकार या अस्वीकार किया। क्या 'अलंकारोंका विकास' इसीको कहते हैं? मैं समझ रहा था कि उक्त अध्यायमें लेखकने अलंकारोंकी स्वरूप विषयक अवधारणाके विकास-क्रमका निरूपण किया होगा क्योंकि बहुतसे अलंकार ऐसे हैं जिनकी स्वरूपगत अवधारणाभी क्रमशः विकसित हुई है। उदाहरण के लिए, 'रूपक' को लीजिये। इसकी स्वरूपगत विशेषताएं क्रमशः विकसित हुई हैं—कमसे कम तीन सरणियां तो अवश्यही लक्षित की जा सकती हैं। प्रारम्भिक आचार्य 'उपमेयपर उपमानके अभेद आरोप' को रूपक मानते थे। क्रमशः उपमेयका उपमानमें निगीर्णन, अपह्नवयन आदिके माध्यमसे विलयन हुआ। फिर यह विलयनभी घनीभूत हुआ। दण्डी-भामहसे अप्पय दीक्षिततक यह जो रूपककी अवधारणामें विकास हुआ, उसका क्रम निर्दिष्ट किया जाना चाहिये था। पर ऐसा कुछ नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त 'रूपक' तो केवल 'अलंकार' न होकर अभिव्यक्तिकी एक पूरी पद्धति एवं विशिष्ट अवधारणा है। पाश्चात्योंने रूपकपर पूरी-पूरी पुस्तकें लिखी हैं और उसका अनेक दृष्टियोंसे बहुत विशद अध्ययन किया है। इसलिए इसके विस्तारपूर्वक विवेचनकी अपेक्षा यहाँभी थी। उपमासे इसके भेदका निरूपणभी अपेक्षित था। यह सही है कि सभी सादृश्यमूल अलंकारोंमें उपमाही ध्वनित होती है, लेकिन फिरभी उपमा द्वारा चारुत्व-पोषणकी विधि रूपकसे अत्यन्त भिन्न है।

उपमेयके अध्यवसानकी स्थितिमें रूपकका 'प्रतीक' से क्या तारतम्य होता है? वैसी स्थितिमें प्रतीक-विधानसे रूपक-विधानमें क्या अन्तर होगा और किसप्रकार उसका निर्देश होगा? क्या प्रतीककी अवधारणाके विकासके सूत्र रूपकमें खोजे जा सकते हैं?

कुछ अलंकारोंके प्रचलित नामोंका उल्लेखही नहीं किया गया है। उदाहरणके लिए, 'सम अभेद रूपक' और 'रूपकातिशयोक्ति'। यह सही है कि इनके लक्षण बताये गये हैं, पर इन नामोंके अन्तर्गत नहीं।

अलंकारोंके स्वरूपको स्पष्ट करनेका उपक्रम पुस्तक में है, लेकिन बहुत तात्त्विक नहीं। उदाहरणके लिए 'रूपकातिशयोक्ति' को ही लीजिये। उसमें 'रूपक' प्रधान है या 'अतिशयोक्ति'?—या फिर दोनों समतुल्य हैं? इन प्रश्नोंका 'क्यों-कैसे' अपेक्षित था। लगता है इस अलंकारमें रूपक और अतिशयोक्तिके अतिरिक्त 'अपह्नुति' और 'भ्रम' भी समाविष्ट, बल्कि अन्तर्भुक्त हैं। अतः, इसके स्वरूपकी निष्पत्तिका विवेचन अपेक्षित था।

'काव्यशास्त्र और अलंकार दर्शन' में कुछ उपयोगी सूचनाएँ दी गयी हैं। परन्तु 'अलंकार तत्त्व और आधुनिक चिंतन' पर अपेक्षाकृत अधिक विशद विवेचन अपेक्षित था।

पुस्तकका सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वाधिक उपयोगी अंश सम्पादककी भूमिका है। डॉ. राममूर्ति त्रिपाठीकी इस विद्वत्तापूर्ण भूमिकासे ही इस ग्रन्थको उसकी वास्तविक सार्थकता प्राप्त होती है। डॉ. त्रिपाठीने प्रत्येक आचार्यकी अलंकार विषयक मान्यताके साम्य-वैषम्य-आदि का बहुत स्पष्ट निर्वचन करते हुए संस्कृत काव्यशास्त्रके अन्य काव्य-मूल्योंसे उसके तारतम्यकाभी बहुत अच्छा विवेचन किया है। विभिन्न सम्प्रदायों और आचार्योंकी अलंकार विषयक मान्यतामें क्या सूक्ष्म परिवर्तन आते रहे—इसकाभी बहुत स्पष्ट विवेचन उन्होंने किया। इस भूमिकाका भी सबसे महत्त्वपूर्ण अंश वह है जहाँ सम्पादक ने हिन्दीमें आचार्य शुक्ल,स्वच्छन्दतावाद,प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद, नयी कविता आदिकी अलंकार विषयक दृष्टिका विवेचन किया है। इसके वाद (१) परम्परागत सौन्दर्यशास्त्रकी रस-पर्यवसायी चारुता और वैचित्र्य-पर्यवसायी चारुता (२) व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवादी साहित्यकारों, और (३) मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्रके संदर्भमें अलंकारकी अवधारणा विश्लेषण करते हुए नयी समीक्षा, शैली विज्ञान आदितक के अद्यतन पाश्चात्य आलोचनात्मक चिंतनसे संस्कृत अलंकार चिंतनका तुलनात्मक विवेचन करते हुए आजकी समीक्षामें 'अलंकार' की शक्ति और सम्भावना पर विचार किया है।

उक्त भूमिका सहित विवेच्य पुस्तक कुल मिलाकर विद्यार्थियोंके लिए अलंकार विषयक एक और उपयोगी पुस्तक मानी जा सकती है। □ □

काव्यशास्त्र और काव्य[१]

लेखक : डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी
समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा

डॉ. राधवल्लभ त्रिपाठीने भारतीय काव्यशास्त्रके सम्बन्धमें [illegible] हटकर सोचनेका प्रयास किया है। उनकी पुस्तक 'काव्यशास्त्र और काव्य' उनके इसी मौलिक चिन्तनका परिणाम है। इस पुस्तकमें काव्यके स्वरूप और रचना-प्रक्रियाके सम्बन्धमें गहराईसे विचार किया गया है, साथही विविध काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तोंके स्वरूप, स्रोतों और पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रियामूलक सम्बन्धोंके विषयमें नयी स्थापनाएँ की गयीं हैं। लेखक ने अपनी कृतिके उद्देश्यको रेखांकित करते हुए लिखा है, 'काव्यके स्वरूप तथा उसकी रचना-प्रक्रियाके विषयमें काव्यशास्त्रकी धारणाएं किन काव्य-स्रोतोंसे किसप्रकार गढ़ी गयीं, यह पुस्तकका मूल विषय है।'

पूरे प्रतिपादनमें लेखककी ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि अनुस्यूत रही है जो इस ग्रन्थकी मूल विशेषता मानी जा सकती है। लेखकके अनुसार संस्कृत काव्यशास्त्रमें रस, अलकार, रीति, ध्वनि वक्रोक्ति तथा औचित्य नामक छह सम्प्रदायोंका विभाजन युक्तिसंगत नहीं है। जिन प्राचीन आचार्योंको इन कथित सम्प्रदायोंका प्रवर्तक माना जाता है, उनकाभी अपने-अपने प्रस्थानको इस रूपमें प्रवर्तित करनेका आशय कदापि नहीं था। लेखकका अभिमत है कि, 'एक ओर रस-ध्वनि, दूसरी ओर अलंकार, गुण-रीति, वक्रोक्ति और औचित्य—इनकी अवधारणाओंके पीछे ऐतिहासिक विकासकी क्रमिक परम्परा है। उन्हें न एक दूसरेसे स्वतन्त्र कहा जा सकता है,न विच्छिन्न।' लेखक ने विभिन्न काव्यशास्त्रीय सम्प्रदायोंमें निहित चिन्तनके सातत्य और अन्वितिकी खोजमें एक पूरी तर्क-परम्परा प्रस्तुत करके पारदर्शी प्रतिभाका परिचय दिया है। यदि लेखक 'संस्कृत काव्यशास्त्रीय चिन्तनका इतिहास' ग्रन्थ लिखकर अपनी मान्यताओंको किंचित् और विशद फलक पर प्रस्तुत कर सके तो निश्चयही भारतीय काव्यशास्त्र का बहुत उपकार हो।

लेखककी विवेचन-पद्धति सर्वत्र तर्काश्रित और समीक्षात्मक रही है। दृष्टिकी नवीनताके साथ लेखककी भाषामें भी नयी तराश और भंगिमा है जो सिद्धान्तोंके सूक्ष्म विश्लेषणमें सहायक सिद्ध हुई है। बीच-बीचमें अंग्रेजी और हिन्दीके काव्यशास्त्रियोंके मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए तुलनात्मक निष्कर्ष दिये गये हैं। यद्यपि कहीं-कहीं लेखककी स्थापनाओंसे वैमत्य हो सकता है, तथापि इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ अनेक नयी उद्भावनाओं और मौलिक मान्यताओंसे युक्त है। मैं ऐसे

---

१. प्रकाशक : मैकमिलन इण्डिया लि., २/१६ अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २००; डिमा. ८२; मूल्य : ५५.०० रु.।

सुचिन्तित ग्रन्थके प्रणयनपर लेखकको वधाईका पात्र समझता हूं।

छंदका आधुनिक रचना विधान और जगन्नाथ प्रसाद भानु[1]

लेखक : सुशील त्रिवेदी
समीक्षक : डॉ. प्रेमकान्त टंडन

पुस्तकका विषय आजके काव्यके संदर्भमें छंद विवेचन नहीं है बलिक इसका मूल-विवेच्य है जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का व्यक्तित्व और कृतित्व। भानुजीका छन्द विषयक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'छन्द-प्रभाकर'। लगभग ७०० छन्दोंका विवेचन करनेवाले इस २२८ पृष्ठीय ग्रन्थका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १८९३ में हुआ था। चूँकि भानुजीने इस पुस्तकमें छन्द-विवेचनकी परम्परागत पद्धतिसे थोड़ा हटकर नये ढंगसे, वैज्ञानिक पद्धतिका अनुसरण करते हुए, गद्यमें, छन्दोंका विवेचन किया है, उर्दू, मराठी, आदिके कुछ छन्दोंसे हिन्दीके छन्द-विधानकी तुलनाभी की है और उस समयतक खड़ी बोली काव्यमें विकसित एवं प्रयुक्त छन्दोंका भी विवेचन किया है, इसलिए पुस्तकको यह अभिधान दे दिया गया।

वैसे, ८७ पृष्ठोंकी इस छोटी-सी पुस्तकमें 'भानु' जी के व्यक्तित्व और कृतित्वका विवरण पर्याप्त उपयोगी है। सन् १८५९ में जन्मे भानुजी लम्बे समयतक शासकीय सेवामें महत्त्वपूर्ण पदोंपर कार्यरत रहे और निरन्तर बड़ी निष्ठाके साथ अपने दायित्वका वहन करते रहे। उनकी कर्त्तव्य-निष्ठा और ईमानदारीकी बराबर प्रशंसा भी होती रही। लेकिन अंग्रेजी राजमें, अंग्रेज स्वामियों के अधीन कार्य करते हुएभी भानुजीने भारतीय साहित्य, विशेषकर हिन्दी-साहित्यके प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम अनुराग बनाये रखा। उनका व्यक्तित्व एक बहु-अधीत विद्वान्, साहित्यशास्त्री, काव्यानुरागी एवं रचनाशील कविका संरक्षणशील व्यक्तित्व है। संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, उड़िया, हिन्दी, उर्दू आदिके भाषा-साहित्यके व्यापक अध्ययनके साथ-साथ उनके अध्ययनशील व्यक्तित्वका एक सर्वथा विलक्षण पक्ष 'गणितशास्त्री' का भी है। उन्होंने एतद्विषयक 'काल-प्रबोध' और 'काल-विज्ञान' नामक दो ग्रन्थोंकी भी रचना की है। भानुजी अद्भुत संगठन-क्षमतावाले एक सच्चे लोकसेवी और निश्छल हृदयभक्तभी थे। सन् १९४५ में ८६ वर्षोंके सार्थक, सुदीर्घ जीवनकालके बाद वे स्वर्गस्थ हुए।

उन्होंने छोटी-बड़ी विविध विषयोंकी कुल मिलाकर लगभग २०-२२ पुस्तकें लिखीं। इनमें बड़े और प्रसिद्ध ग्रन्थ दो हैं—'छन्द-प्रभाकर' जिसके अबतक सात संस्करण हो चुके हैं,और 'काव्य-प्रभाकर'। शेषमें कुछ तुलसीदास और उनकी 'मानस' विषयक पुस्तकें हैं और कुछ फुटकर साहित्यशास्त्रीय।

'छन्द-प्रभाकर' निश्चयही उनका महत्त्वपूर्ण कार्य है। विवेच्य पुस्तक लेखकके अनुसार, 'छन्द-प्रभाकरकी रचना भानुजीने वैज्ञानिक ढंगसे वर्तमान परिपाटीपर की है। यह ग्रन्थ अपने ढंगका अनूठा है। भानुजीने छन्द-शास्त्रके दोनों पक्षोंको—सिद्धान्त अथवा गणित पक्ष तथा व्यावहारिक अथवा छन्द रचना—समान महत्त्व दिया है तथा उनका यथोचित विस्तृत विवरण देकर निजी दृष्टिकोण पूर्णतया स्पष्ट कर दिया है।'

लेखकने प्रस्तुत पुस्तकमें छंद-प्रभाकरके विविध पक्षों एवं उसकी उपलब्धियोंका बड़े विस्तारसे विवेचन किया है।

'काव्य-प्रभाकर' भानुजीका एक दूसरा विशद ग्रन्थ, लगभग ७६० पृष्ठोंका ग्रन्थ है जो एक प्रकारसे साहित्य-शास्त्रका सर्वांगनिरूपक ग्रन्थ है, हालांकि उसमें उन्होंने अंग्रेजी साहित्य शास्त्रीय चिंतनको भी समन्वित करनेका सराहनीय प्रयासभी किया है। इसका विवेचनभी लेखकने पर्याप्त विस्तारसे किया है।

लेकिन भानुजीकी अन्य पुस्तकोंपर इसमें विस्तारसे चर्चा नहीं की गयी। यह होनी चाहिये थी। □ □

१. प्रकाशक : राष्ट्रभाषा प्रकाशन, ५१८/६ बी, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली ११०-०३२। पृष्ठ : ८७; डिमा. ८०; मूल्य : २१-०० रु.।

काव्यालोचन

कविताकी मुक्ति[1]

लेखक : डॉ. नन्दकिशोर नवल

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द गौतम

साहित्यको सोद्देश्य माननेवाले रचनाकार और आलोचकको, साहित्यके क्षेत्रमें कदम रखनेसे पहले अपने दिमागमें कई प्राथमिकताएँ तय कर लेनी पड़ती हैं। इन प्राथमिकताओंके बारेमें तय किये गये विचारोंके आधार पर ही रचनाकारकी साहित्यिक समझ, विचारधारा, सामाजिक बदलावके संदर्भमें साहित्यकी भूमिका और प्रतिबद्धताकी सोद्देश्यताको समझा जा सकता है। सामाजिक व्यवहार और जीवनके वैविध्यकी जानकारीके अभावमें किसी विचारधाराकी जड़ और किताबी समझके व्यापक दुष्परिणाम सामने आते हैं। कहनेकी जरूरत नहीं कि ऐसे व्यक्तिके लिए साहित्य एक जीवंत प्रक्रिया न होकर यांत्रिक, जड़ और निष्प्राण वस्तु होती है, यदि नहीं होती तो आरोपित विचारधाराके परिणामस्वरूप हो जाती है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी विचारधारा और सृजनात्मक दृष्टिके मुताबिक सोद्देश्यताके सवालको हल करता है। यह सोद्देश्यता सही है या गलत, अच्छी है या बुरी इसका निर्णयभी रचनाकारकी शोषक-शोषितकी पक्षधरतासे होता है। इसी आधारपर उनकी प्रगतिशीलता / प्रतिक्रियावादिता तय होती है। हिन्दी साहित्य में इन दोनों धाराओंका टकराव या कहें वैचारिक संघर्ष मौजूद है। प्रगतिशील साहित्यकारोंने सृजन और मूल्यांकनके संदर्भमें शोषित, पीड़ित सघर्षशील जनको प्राथमिकता देनेवाली मार्क्सवादी विचारधाराको साहित्यके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आधार के रूपमें ग्रहण किया है। हिन्दी साहित्यमें प्रगतिशील धाराके रचनाकार-आलोचकोंकी लम्बी परम्परा रही है और यह इतनी वैविध्यपूर्ण है कि इसकी जानकारीसे सृजन और मूल्यांकनकी मान्यताओंके, इस धाराके समस्त अन्तर्विरोधोंकी शक्ति और सीमाओंको स्पष्ट रूपमें समझा जा सकता है। मार्क्सका नाम सुनतेही बिदकनेवाले पूर्वाग्रही, उनकी विचारधाराको समझे बिना जो मनमाने

---

1. प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१ एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : १५१; डिमा. ८०, ३५.०० रु.।

निष्कर्ष इसपर थोप देते हैं, वे समूचे विश्वजीवनको व्यापक रूपसे प्रभावित करनेवाली इस विचार-पद्धतिके महत्त्वको समझनेसे इन्कार करके अपनी संकीर्णताका ही परिचय देते हैं। इस तरहके पूर्वाग्रह प्रायः अधूरी और एकांगी समझके कारण संचालित होते हैं।

साहित्य और कलाके क्षेत्रमें मार्क्सवादी विचारधारा का उपयोग राजनीति और अर्थशास्त्रके सापेक्ष कलात्मक-सौन्दर्यशास्त्रीय रूपमें होता है और इस रूपमें ये आधार के पूरक तत्त्वका कार्य करते हैं। हिन्दीमें प्रगतिशील आलोचनाकी सुदृढ़ परम्परा रही है। सैद्धान्तिक-दार्शनिक विचारोंको व्यावहारिक समीक्षाके क्षेत्रमें लागू करते समय अक्सर प्रगतिशील आलोचक संकीर्णता या अनावश्यक उदारताके शिकार होते रहे हैं। परम्पराके ऐतिहासिक महत्त्वको समझकर डॉ. रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, शिवकुमार मिश्र तथा अन्य अनेक आलोचकोंने हिन्दी आलोचनाका सही दिशामें विकास करके, साहित्य के प्रति सही मार्क्सवादी दृष्टिकोणका परिचय दिया है। इस रूपमें प्रगतिशील आलोचनाको महत्त्वपूर्ण जनवादी साहित्यकी पहचान और उसके प्रति सही समझ विकसित करनेके साथ-साथ, कलावादी, पूँजीवादी व्यवस्थाकी रुग्ण-पतनशील प्रवृत्तियोंके वाहक प्रतिक्रियावादी साहित्य से संघर्षभी करना पड़ा है। संकीर्णवादी किताबी मार्क्सवादियोंने अपने दृष्टिकोणसे ज्यादातर लोगोंमें साहित्यके प्रति अरुचिको बढ़ाकर उसे दूषित किया है और उदारतावादी इतने उदार रहे हैं कि उनमें और कलावादियोंमें अन्तर करना मुश्किल हो जाता है। इस तरह साहित्य के क्षेत्रमें मार्क्सवादी दृष्टिके संयोजनके लिए, रचनाकार आलोचकसे विवेकपूर्ण सही समझकी अपेक्षा की जाती है। जहांभी वह इस दायित्वको पूरा नहीं कर पाया वहीं, उसकी दृष्टि संकीर्ण-दूषित हो जाती है। इसके लिए विचारके बजाय व्यक्तिका दोष ज्यादा है, यही उसकी सीमा है। इस सीमाको पहचानकर ही प्रगतिशील परम्पराका विकास किया जा सकता है। कुत्सित समाजशास्त्रियोंकी हठवादिताने मार्क्सवादके बारेमें गलत धारणाएँ फैलानेमें भरपूर योग दिया है। साहित्यमें परम्परा को नकारकर प्रगतिशीलताका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। यह विचारधारा मनुष्यको उसके व्यक्तित्वसे अलग करके किसी मशीनका निष्क्रिय पुर्जा न मानकर उसे सामाजिक परिप्रेक्ष्यमें देखती है। डॉ. नन्दकिशोर नवलने 'कविता की मुक्ति' पुस्तकके सैद्धान्तिक निबन्धोंके माध्यमसे प्रगतिशील साहित्य और आलोचनाके बारेमें फैली गलत धारणाओंका खण्डन करके उन्हें सही संदर्भमें प्रस्तुत किया है। उन्होंने 'लेखकका परिवेश और रचनाका संसार', 'प्रगतिशील साहित्य और रूपकी समस्या', 'प्रगतिशील कविता : परम्परा और नवीनता', 'प्रकृति और हिन्दी कविता' तथा 'राजनीति और समकालीन हिन्दी कविता' निबन्धोंमें सुसंगत रूपसे मार्क्सवादी सौन्दर्य शास्त्रकी बुनियादी अवधारणाओंको, हिन्दी साहित्यके संदर्भमें विवेचित करके जहाँ अपनी विचार दृष्टिको संतुलित और सही आलोचना-परम्परासे जोड़ा है, वहाँ व्यावहारिक समीक्षाके क्षेत्रमें कलावादी, व्यक्तिवादी अराजकताका ध्वंस करके साहित्यके सामाजिक दायित्वकी सही दिशा निर्धारित की है। तात्कालिक राजनीतिके आधारपर कविताके बारेमें दिये गये निर्णय उनकी सीमा हैं।

वैसे इस पुस्तकमें विवेचित सभी मुद्दों—परम्परा, रूप और वस्तु, रचना-लेखक और परिवेश, सम्प्रेषणकी समस्यापर पूर्ववर्ती प्रगतिशील समीक्षकोंने भी विचार किया है, इसी क्रममें नवलजीने इन्हें अपनी समीक्षा-दृष्टि के सैद्धान्तिक आधारके रूपमें प्रस्तुत किया है। लेखकके परिवेश और रचनाके जटिल तथा द्वन्द्वात्मक सम्बन्धोंको स्पष्ट करते हुए, उन्होंने इनकी परस्पर सम्बद्धता तथा सकारात्मक यथार्थवादी दृष्टिपर बल दिया है। साहित्य को निरर्थक शब्द उगलनेवाले विराट् यन्त्रके रूपमें मानने वाले कोरे कलावादियोंको समझना चाहिये कि 'रचनाका संसार एक सर्वथा सार्थक संसार होता है। वह निरर्थक तभी होता है, जबकि वह लेखकके परिवेशसे अत्यधिक विच्छिन्न एक अत्यधिक स्वतन्त्र संसार होता है।' (पृ. १२)। प्रगतिशील साहित्यको रूपहीन कोरी वैचारिकताकी मान्यताका प्रचार सिद्ध करनेवाले रूपवादी समस्याको एकांगी और अतिवादी दृष्टिसे देखते हैं। नवलजीने वस्तु का प्राथमिक तथा अनिवार्य मानते हुएभी वस्तु और रूपकी एकात्मताको साहित्यकी संप्रेषणीयताके लिए जरूरी मानकर पूर्वाग्रही दृष्टियोंको निरस्त करके सही दृष्टिकोण अपनाया है। वस्तु और रूपके जटिल सम्बन्धों के बारेमें फैलायी गयी अफवाहोंसे ही वस्तुवादी-रूपवादी पूर्वाग्रह जन्म लेते हैं, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत होती है। स्वच्छन्दतावादी साहित्यमें प्रयुक्त प्रगतिशील और पतनशील रूपोंके विश्लेषणसे रूपकी उपयोगिता तथा महत्ता स्पष्ट हो जाती है। यांत्रिक और भाव-विचार

रहित अमूर्त रूप साहित्यको यथार्थसे विमुख करके प्रति-क्रियावादी भूमिका निभाते हैं; इसलिए सतर्क और सचेत रहकर ही साहित्यकार सृजनकी सार्थकता प्रमाणित कर सकते हैं। साहित्यके विकासके संदर्भमें वस्तु और रूपका गतिशील तथ्य परिवर्तित सम्बन्ध समाजकी परिस्थितियों से अनिवार्य रूपसे जुड़ा रहता है। इसीलिए 'कविताकी मुक्ति' छन्द और रूपसे मुक्ति न होकर उसकी रूढ़ियोंसे मुक्ति है। निराला और लोर्का, दोनों कवियोंने कविता की मुक्तिको संकीर्ण अर्थमें न लेकर, उसे पूर्ण और निर-पेक्ष न मानकर सामाजिक विकासके सापेक्ष बताया, अन्यथा तो उनका यह विचार अराजकताका प्रवर्तक हो सकता था। इसीलिए कविताकी मुक्ति रूप, भाव और पुराने ढांचेमें क्रान्तिकारी परिवर्तनके साथ, आर्थिक और सामाजिक शोषण, रूढ़ जातीय संस्कार, अमानवीय प्रथाओं और रीतियोंसे भी मुक्ति है। इसीलिए कविता की अनिवार्यताओंको समझकर ही उसे इस व्यापक मुक्ति के लक्ष्यकी प्राप्तिका साधन बनाकर प्रगतिशीलतासे जोड़ा जा सकता है। नवलजीके सम्प्रेषण, परम्परा और नवीनता, काव्य भाषा और बिम्ब, प्रकृति और राजनीतिके सम्बन्धमें व्यक्त विचार प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूपसे कविताकी मुक्तिसे ही जुड़े हुए हैं।

कवितामें सम्प्रेषणकी समस्याका महत्त्व काव्यको सोद्देश्य माननेवाले कवियोंके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह केवल भाषा अथवा अभिव्यक्तिकी समस्या नहीं है। 'इसका गहरा सम्बन्ध कविके अनुभवोंसे भी होता है।' इसलिए सम्प्रेषणको भाषातक सीमित माननेवाले कवि काव्यकी रचना-प्रक्रियाको समझे विना, उसका सतही और उथला हल प्रस्तुत करके अनुभव और अभिव्यक्तिके स्तरपर मौजूद इस समस्याकी तहतक नहीं पहुंच पाते। प्रगतिशील कवि और कविताके लिए नवलजी सम्प्रेषणी-यता, सौन्दर्य और सक्रिय बनानेकी क्षमताको अनिवार्य मानते हैं और इसकी सीमामें प्रेम और प्रकृतिकी कवि-ताओंकी सक्रियताको रेखाँकित करके, उन्हें सही दृष्टिसे जोड़नेमें सहायक मानते हैं। सम्प्रेषणके संदर्भमें साधा-रणीकरणकी चर्चा तथा गद्यमें भारतेन्दु और प्रेमचन्द और कवितामें नागार्जुन, त्रिलोचन और केदारकी प्रगति-शील परम्पराका संकेत, साहित्यमें सम्प्रेषणीयताके चेतन प्रयास और अचेतन कार्यके महत्त्वको व्यापक आधार देते हैं। 'काव्य भाषा और बिम्ब' तथा 'अपनी केवल धार' निबन्धोंमें नवलजीने कविताकी भाषाके आन्तरिक स्वरूप को गढ़ने [illegible] की कोशिश की है। आधुनिकतावाद के असरमें लिखी गयी कवितामें बिम्बोंके विघटनके कारणों पर विचार करते हुए नवलजी मानते हैं कि 'बिम्बोंके माध्यमसे कविता यथार्थसे जुड़ती है। यथार्थ कविको संवेदित करता है और उसके प्रभावसे निर्मित बिम्ब पाठक को। इस प्रकार बिम्ब कविताका निर्धारक तत्त्व है'। (पृ. ३५)। कहनेकी जरूरत नहीं कि यह धारणा आचार्य शुक्लकी परम्परासे प्राप्त है। निराला और पन्तकी कवि-ताओंके उदाहरणोंमें बिम्बोंके सूक्ष्म ऐन्द्रिय संवेदनात्मक स्वरूपको स्पष्ट करके, नवलजी धारणाओंके बलपर ऐन्द्रिय और भावात्मक स्तरपर वस्तुजगत्से विच्छिन्न होकर लिखी जाती कविताको 'खूबसूरत मलबेका निर्माण' करना मानकर, उसका जनजीवनके संदर्भमें निरर्थकताका ही संकेत करते हैं। भाषाके प्रति कविके व्यवहारसे भी उसकी शक्ति प्रकट होती है। नवलजीने अज्ञेय, रघुवीर सहाय, राजकमल, जगदीश चतुर्वेदी, सौमित्र, धूमिल, कुमारेन्द्र और कमलेशकी काव्य भाषाकी तुलनामें निराला, मुक्ति-बोध, नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन जैसे प्रगतिशील कवियोंकी समर्थ काव्य भाषाके गुणात्मक अन्तरको स्पष्ट करके, मनमोहन, राजेश जोशी और अरूण कमल जैसे नव्यतर कवियोंकी कविताओंमें विकसित भाषाको यथार्थ से जुड़ी हुई माना है। भाषाके क्षेत्रमें परम्परा और नवी-नताके सम्बन्धोंकी यह खोज सिद्ध करती है कि किसी कविकी क्षमता और शक्तिकी पहचानका प्रामाणिक माध्यम उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा हो सकती है।

'प्रगतिशील कविता : परम्परा और नवीनता' निबन्धमें इस कविताके सम्बन्धमें प्रचलित पूर्वाग्रहों एवं भ्रमोंका निराकरण करके, नवलजीने परम्पराके अन्ध विरोध द्वारा उसके प्रगतिशील तत्त्वोंकी उपेक्षा करनेवाले कवियोंकी कमियों और अभावोंको स्पष्ट करके, परम्परा के प्रति स्वस्थ आलोचनात्मक रवैयेपर बल दिया है। अतिक्रान्तिकारी कवियोंके लिएही नहीं 'कविताकी सम्पूर्ण परम्परासे अपनेको काटकर केवल अपने भीतरसे कविता रचनेका प्रयत्न बड़ेसे बड़े कविके लिएभी विशेष फलप्रद नहीं हो सकता' (पृ. २५)। इसी आधारपर उन्होंने धूमिल और सर्वेश्वर जैसे कवियोंकी आलोचना करके उनके व्यक्तिवादी अराजक दृष्टिकोणको गलत ठहराया है। नवल परम्पराका अर्थ अन्धानुकरण नहीं मानते, बल्कि उसके मूल्यवान्-मूल्यहीन तत्त्वोंकी पहचान करके मूल्यवान् के ग्रहण और विकासपर बल देते हैं। उनके अनुसार

बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना के
विश्वविद्यालय स्तरीय प्रकाशन

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	मूल्य
१.	हिन्दी भाषा का स्वरूप विकास	डॉ. अवधेश्वर अरुण	७.००
२.	भारतीय साहित्य शास्त्र कोश	डॉ. राजवंश सहाय 'हीरा'	५०.००
३.	रीति साहित्य को बिहार की देन	डॉ. अमरनाथ सिन्हा	१२.५०
४.	हिन्दी कहानी का शैली विज्ञान	डॉ. बैकुण्ठनाथ ठाकुर	७.००
५.	नेपाली साहित्य का इतिहास	डॉ. दीनानाथ शरण	२०.००
६.	लोक उद्योग	डॉ. कुमार रामचन्द्र प्र. सिंह	१०.५०
७.	आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक संगठन	डॉ. जगन्नाथ मिश्र	२५.००
८.	उच्च लेखा शास्त्र	डगलस गारबट	६०.००
९.	लोक अर्थशास्त्र	डॉ. शिवबालक सिंह	२८.००
१०.	अमेरिका का इतिहास	डॉ. बनारसी प्र. सक्सेना	२०.००
११.	गुप्त अभिलेख	डॉ. वासुदेव उपाध्याय	५१.००
१२.	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास	डॉ. जयशंकर मिश्र	४२.००
१३.	भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की रूपरेखा	डॉ. सीताराम झा 'श्याम'	१८.००
१४.	वस्त्र विज्ञान एवं परिधान	प्रो. प्रमिला वर्मा	२५.००
१५.	शरीर क्रिया विज्ञान	प्रो. श्रीमती कान्ति पाण्डेय प्रो. श्रीमती प्रमिला वर्मा	४४.००
१६.	दार्शनिक विश्लेषण परिचय	जॉन हस्पर्स	४७.००
१७.	गांधीवाद को विनोबा की देन	डॉ. दशरथ सिंह	२५.००
१८.	पुस्तकालय संगठन एवं प्रशासन	डॉ. रामशोभित प्रसाद सिंह	२१.००
१९.	फसल विज्ञान	डॉ. चन्द्रिका ठाकुर	२०.००
२०.	भौतिकीय रसायन शास्त्र	मेल्विन ह्यूज	६४.००
२१.	आधुनिक यूरोप	प्रो. जे. सी. झा (छात्र संस्करण) (पु. संस्करण)	२२.५० २५.००

विस्तृत सूची-पत्र तथा जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :—

डॉ. बैकुण्ठनाथ ठाकुर
निदेशक
बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
१९५-बी, श्रीकृष्णपुरी,
पटना-८००००१

परम्पराका हम ठीक-ठीक उपयोग कर सकें, इसके लिए उसके प्रति आलोचनात्मक दृष्टि अपनाना जरूरी है' (पृ. २६)। ऐसा न कर पानेके खतरोंके प्रति या अधूरी-एकांगी समझके परिणामोंके प्रति वे बेखबर नहीं हैं। महत्त्वपूर्ण कलात्मक और प्रासंगिक कविताके लिए नवलजी साहित्य की प्रगतिशील राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय परम्पराके साथ समाजवादी देशोंमें रचित समाजवादी-यथार्थवादी कविता की परम्पराकी जानकारी और उसे आत्मसात्‌कर विकास की जरूरत मानते हैं। परम्परा और नवीनताकी इस द्वन्द्वात्मक एकताके द्वाराही नये कवि सामाजिक प्रगतिकी धारासे स्वयंको और कविताको जोड़ सकते हैं। 'प्रकृति और हिन्दी कविता' निवन्धमें नवलजीने वैज्ञानिक और आधुनिक सभ्यताके प्रभावसे कला और साहित्यके क्षेत्रमें प्रकृतिके साथ कवि-मनुष्यके परिवर्तनशील सम्बन्धोंका विश्लेषण करके, उसके स्वस्थ रूपकी ओर संकेत किया है। वैदिक-लौकिक संस्कृतके काव्योंमें चित्रित प्रकृतिके स्वरूपोंके साथ, मध्यकालीन काव्यमें प्रकृति वर्णनके अभावका कारण तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियोंको और रीतिकालकी विकृत स्थितियोंका कारण वे सामाजिक सम्बन्धोंकी विकृतिको मानते हैं। छायावादी काव्य में प्रकृतिके वैभव और वैविध्यके मूलमें स्वतन्त्रताकी तीव्र चेतना और प्रयोगवादी कवियोंकी कृत्रिमताके सामाजिक कारणके रूपमें वे पूँजीवादी रुग्ण दृष्टिकोणका प्रभाव देखते हैं। प्रकृति और परिवेशके सम्बन्धोंके प्रति यह आलोचना दृष्टि तर्कसंगत होनेके साथ तहतक जाकर विश्लेषणका विश्वसनीय आधार जुटाती है। इसी पूँजीवादी-सामन्तवादी युगमें केदार, नागार्जुन और त्रिलोचन का काव्य प्रकृतिके साथ उनके रागात्मक और स्वस्थ सम्बन्धोंकी अभिव्यक्तिसे जुड़ा रहा है, तो इसका कारण यही है कि इनका व्यक्तित्व अखण्ड और सामंजस्यपूर्ण है और इन्होंने प्रकृतिसे अपनेको विच्छिन्न नहीं किया है। ये प्राकृतिक प्राणीभी हैं और सामाजिक प्राणीभी', (पृ. ४६)।

साहित्य और राजनीतिका सम्बन्ध प्रगतिवादी आंदोलनसे लेकर अबतक उठाया जाता रहा है। नवलजीने 'राजनीति और समकालीन कविता' के सम्बन्धपर विचार के कुहासेको छाँटकर सही प्रगतिशील दृष्टिका परिचय देते हुए, राजनीतिसे परहेज या सत्ता पक्षकी राजनीतिसे सुविधा और अवसरका लाभ उठानेके लिय आतुर चतुर लोगोंकी नीयतको बहुत गहरे जाकर देखनेकी कोशिश की है। अज्ञेय, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा और अशोक वाजपेयीकी मान्यताओंका खण्डन करते हुए लेखकने स्पष्ट कहा है कि 'जहाँतक प्रचारात्मकताका प्रश्न है, यह चीज कवितामें कलात्मकताके अभावका सूचक होती है' (पृ. ५०)। उन्होंने रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, सर्वेश्वर, धूमिल, कुमारेन्दु तथा वेणु गोपालकी कविताओंके उदाहरण देकर, इन कवियोंकी भ्रान्त राजनीतिक समझको परिस्थितियोंका नितांत आत्मपरक मूल्यांकन और क्रान्तिकारिताको निम्न पूंजीपति वर्गकी व्यक्तिवादी अराजकता मानकर खारिज कर दिया है। इस सन्दर्भमें नवल जीको केदार, नागार्जुन और त्रिलोचनके सही दृष्टिकोणकी परम्पराही महत्त्वपूर्ण लगती है, जबकि वे इन कवियोंके भटकाव (खासकर नागार्जुनके) और अन्तर्विरोधोंसे भी परिचित हैं। यहाँ उन्हें यहभी सोचना चाहिये कि कविकी सही राजनीतिक समझ होते हुए कविताका महत्त्वपूर्ण होना गारंटी नहीं है, जबकि गलत राजनीतिक दृष्टि होते हुएभी कविता महत्त्वपूर्ण हो सकती है? लेनिन के उद्धरण देते हुए उन्होंने लिखाभी है कि 'जो बातें क्रान्तिकारी नेताके लिए सही है, वे क्रान्तिकारी कविके लिएभी अवश्य सही होंगी' (पृ. ५८)। खासकर तब जब वर्तमान समाजमें सही राजनीति बढ़े हुए दौरमें नहीं है। वामपंथी राजनीतिके इस संक्रमणशील-विकासशील दौरमें विभिन्न दलों, स्तरोंपर वैचारिक मतभेद और संघर्ष मौजूद हैं। इसलिए साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्रमें इस जटिल प्रक्रियाको समझे वगैर साहित्यिक कृतियोंपर राजनीतिक फतवे देना तात्कालिक जल्दबाजीके निर्णयोंको थोपना है। यहां नामवर सिंहकी यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि 'किसी साहित्यिक कृतिके मूल्यांकनमें राजनीतिक विचार हमेशा निर्णायक नहीं होता।' तथा 'मार्क्स या लेनिनका प्रमाण किसी आलोचनाके प्रामाणिक होनेकी गारंटी नहीं है।'(पूर्वग्रह—४४-४५,पृ. २४-३१) मार्क्स और लेनिनके वक्तव्योंको तत्कालीन ऐतिहासिक संदर्भोंसे काटकर और अपने देशकी सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियोंकी जटिलता तथा आवश्यकता को अनदेखा करके साहित्यपर ज्योंका त्यों थोपना उनके और अपने साथ ज्यादती है। आज जब वामपंथी दलोंने जन-दबावके कारण राजनीतिमें संयुक्त मोर्चेकी जरूरत महसूस की है, तो साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्रमें नीतिगत मतभेदोंमें विघटन पैदा करनेके बजाय उन्हें विकासशील दृष्टिसे देखना चाहिये। ऐसा न होनेपर प्रतिक्रियावादी, साम्राज्यवादी, ताकतों और वामपंथी शक्तियोंको एकही लाठीसे हाँकना किसी तरह सामाजिक बदलावमें सक्रिय भूमिका अदा नहीं करता। ऐसे प्रगतिशील आलोचक

अपनी एकाँगी 'तर्क पद्धति' को सही दृष्टिकोण मानकर समाजवादी यथार्थवादी साहित्यके प्रतिमानोंमें घपला पैदा करते हैं। पूँजीवादी जनतन्त्रमें सीमित नागरिक अधिकारोंके महत्त्व, संसदीय प्रणालीकी उपयोगिता और वामपंथी दलोंकी भूमिकाको समझनेके साथ, इस व्यवस्थासे टकरावको अराजकतावाद कहना संघर्षकी प्रक्रियाकी जटिलताको अधूरा समझना है। इसीलिए साहित्यमें, कवितामें राजनीतिके बजाय बहस कमजोर राजनीतिक कवितापर आकर टिक जाती है। यह सरलीकरणका दूसरा छोर है। नवलजी गिरिजाकुमार माथुर, भवानीप्रसाद मिश्र तथा सर्वेश्वर, कुमारेन्द्र और वेणुगोपालकी काव्य-चेतनाको मूल्य और निर्णयके एक जैसे स्तरपर रखकर, प्रगतिवादी आन्दोलनकी गलतियोंसे सबक न लेकर उन्हें दोहराते हैं। साहित्य और कलाके मोर्चोंपर दोहरे संघर्ष को चलानेके लिए सही दृष्टिकोण जरूरी है, इस सावधानी और सजगताके अभावमें आलोचना खुदभी अराजकताका शिकार होती हैं। यहाँ प्रगतिशील कवितासे कलात्मकताकी माँग निरस्त नहीं होती और वामपंथी कविताकी वैचारिक भूमिकाभी स्पष्ट होती है। संघर्षके मोर्चे अनेक तथा जटिल होते हैं और सभीपर पूरी मुस्तैदी की जरूरत होती है, आलोचकका दायित्व है कि ऐसी स्थितिमें वह इन स्तरोंको पहचानकर सही साहित्यिक-राजनीतिक समझको विकसित करे, किसी स्तरसे चिपककर बाकीको नकारने न लगे। इस पुस्तकके निबन्धोंमें प्रतिक्रियावादी, पूंजीवादी साहित्यके साथ प्रगतिशील साहित्य के वैचारिक टकराव और प्रगतिशील साहित्यके भी विविध स्तरोंके आंतरिक मतभेदों और संघर्षोंको देखा जा सकता है। इस मामलेमें यह सावधानी बरतनेकी जरूरत है कि राजनीतिक क्षेत्रके अस्थायी मतभेदोंको सांस्कृतिक क्षेत्रमें विकासशील दृष्टिसे देखा जाये, तभी प्रगतिशील शक्तियों के विघटनको रोका जाकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया जा सकता है। क्योंकि मतभेदोंके बावजूद ये शक्तियां मूल सिद्धांतों और लक्ष्योंके बारेमें एकमत हैं। इसके लिए एक-दूसरेके अन्तर्विरोधोंकी पहचान और कमियोंकी आलोचना का सकारात्मक होना जरूरी है। समाजवाद और क्रांति की भूमिकाको, इनके आपसी सम्बन्धों और परस्पर निर्भरताको समझे बिना किसीभी मूल्यांकनके अधूरे और एकांगी होनेका खतरा है, भलेही उसमें बार-बार सही दृष्टिकोणकी दुहाई दी गयी हो। जिस तरह किसी विचारधारा और उसके माननेवालोंकी मानसिकता-वैचारिकता अन्तर्विरोधोंसे ग्रस्त होती है, उसी तरह कवि, कविता और राजनीतिके अन्तर्विरोधभी जटिल होते हैं। जरूरत उनके प्रगतिशील तत्त्वोंको आगे बढ़ानेकी है। यही वजह है कि कविताकी सामाजिक बदलावमें भूमिकाके बजाय, जब उसे राजनीतिज्ञकी दृष्टिसे देखा जाने लगता है, तो मूल्यांकन गडबडा जाता है। इन्हीं कारणोंसे मार्क्सवादी समीक्षक व्यावहारिक समीक्षाके क्षेत्रमें कदम रखतेही अव्यावहारिक दुराग्रहों-पूर्वाग्रहोंके शिकार हो जाते हैं। नवलजी इस स्थिति से बचनेका सचेत प्रयास करते हुएभी कहीं-कहीं उससे बच नहीं पाये हैं। अपने निष्कर्षोंको सही सिद्ध करनेके लिए उन्होंने कवियों और कविताओंकी नकारात्मक कमजोरियोंको बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है। राजनीतिक दृष्टिको प्रमुखता देने के कारण उन्होंने कहीं-कहीं कविताओंको गलत संदर्भोंमें रख-कर मनमाने निष्कर्ष निकालनेकी जल्दबाजी की है। उदाहरणके लिए पृ. १४३ पर धूमिलकी कवितामें आये शब्द 'घेराव' तथा पृ. १५० पर मादा भेड़िये द्वारा छौनेको दूध पिलानेके साथही मेमनेका सिर दबानेके बिम्बके बारेमें उनकी टिप्पणी और पृ. १४६ पर 'कविता' को समझनेकी कठिनाईके कारण उनकी गलत व्याख्याको लिया जा सकता है। यही राजनीतिक दृष्टिकी सीमा है।

जिन दिनों धूमिलके चुस्त मुहावरों, सूक्तियों और चालू लटकोंसे प्रभावित होकर, उनके काव्यके अतिरंजना-पूर्ण मूल्यांकन द्वारा उन्हें कविताका 'हीरो' बनानेकी कोशिश की जा रही थी, उन्हीं दिनों नवलजीने 'बौखलाये हुए आदमीका संक्षिप्त एकालाप' निबंध लिखकर धूमिल के काव्यके प्रति एक नयी दृष्टिका परिचय दिया। इस दृष्टिसे धूमिलकी राजनीतिक दृष्टि तथा समझकी विसंगतियोंका पर्दाफाश हुआ। यह बात अलग है कि इस मूल्याँकनमें नवलजीने जहाँ उत्साहातिरेकमें धूमिलके काव्य और दृष्टिको नकारा, वहाँ उनकी अपनी सीमाएँ स्पष्ट हो गयी। इस निबन्धमें प्रस्तुत देशका राजनीतिक विश्लेषण महत्त्वपूर्ण है, जैसेकि 'अभी देशमें जो राजनीतिक संघर्ष छिड़ा हुआ है वह पूंजीवाद और समाजवादके बीचका संघर्ष नहीं, बल्कि विकासके पूंजीवादी और गैरपूंजीवादी मार्गोंके बीचका संघर्ष है।' (पृ. १३७) नवलजी नेहरूके 'विश्वशांति' और 'पंचशील' आदि सूत्रोंको साम्राज्यवाद विरोधी मानते हुएभी चीनी आक्रमणसे उनके मोहभंगको स्पष्ट नहीं करते (पृ. १३...)। राजकमल चौधरी, धूमिल और वेणु गोपालकी राजनीतिक दृष्टिको सुसंगत विचारधाराके अभावमें निराशा और

दुस्साहसिकतासे ग्रस्त मानना, उनकी वैचारिक असंगतिको सामने लाना है। यह मूल्यांकन इन कवियोंकी दृष्टिको समझनेके लिए सही वैचारिक आधार प्रस्तुत करते हुए, उनकी लोकप्रियताके भ्रमको खंडित करता है। 'बासी और ताजा कविताएं' निबन्धमें नवलजीने सर्वेश्वरके 'कविताएं-१' संकलनकी कविताओंके आधारपर कविकी ह्रासोन्मुख तथा विकासोन्मुख प्रवृत्तियोंका विश्लेषण करते हुए, उसकी वैचारिक असंगतियोंके साथ काव्यगत उपलब्धियोंपर विचार किया है। 'भवानी मिश्रकी विलाप संध्या' लेख कविके संग्रह 'त्रिकाल संध्या' के सन्दर्भमें, आपात्काल और उसके बादमें विकसित परिस्थितियोंका वस्तुगत मूल्यांकन किया गया है। नवलजीने इन कविताओंको कविकी भावनात्मक प्रतिक्रिया मानकर उनके पीछे विचारधाराहीन पूंजीवादी-भाववादको माना है। सम्पूर्ण क्रांति और राष्ट्रीय सरकारकी वास्तविकता तथा निरपेक्ष स्वतन्त्रताकी अवधारणाके रहस्यको समझनेके लिए, भवानी मिश्रकी इन निरर्थक कविताओंपर लिखे इस लेखको पढ़ना जरूरी है। नवलजीने इस तरहके कवियोंकी कविताओंको सही दृष्टिकोणकी समझदारीके अभावके कारण व्यर्थ माना है।

'कवितान्तरसे कवितान्ततक' निबंधमें १९७५ में प्रकाशित नागार्जुनके 'तालाबकी मछलियां', शमशेरके 'चुका भी नहीं हूँ मैं', गिरिजाकुमार माथुरके 'भीतरी नदी की यात्रा', लक्ष्मीकान्त वर्माके 'तीसरा पक्ष', रघुवीर सहायके 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो', दुष्यन्तकुमारके 'सायेमें धूप' तथा चंद्रकांत देवतालेके 'दीवारोंपर खूनसे' कविता संग्रहोंपर संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। इनमें नवलजीने नागार्जुन तथा शमशेरके संग्रहोंकी कविताओंको उल्लेखनीय और बाकी कवियोंकी समझ तथा कविताको निरर्थकही माना है। यत्र-तत्र दी हुई वैचारिक टिप्पणियाँ महत्त्वपूर्ण हैं।

'दिनकरका पूर्ववर्ती काव्य' तथा 'हास्य कवि श्री रामजीवन शर्मा 'जीवन', इस पुस्तकके महत्त्वपूर्ण निबंध हैं। दिनकरवाले निबंधमें नवलजीने आचार्य शुक्लकी विचार-परम्पराको ग्रहणकर, स्वाधीनता आंदोलनकी पृष्ठपीठिकामें, कविकी वैचारिक पृष्ठभूमिको कविताकी प्रगतिशील स्वच्छन्दतावादी धारासे जोड़कर देखा है। इस परिवेशमें दिनकरके कविकी मानसिकताका जो विकास-ह्रास हुआ, उसका सम्बन्ध स्वाधीनता आंदोलनकी गतिविधियोंके अन्तर्विरोधसे जुड़ता है। तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक सन्दर्भमें दिनकरके बारेमें यह टिप्पणी कि वे साम्राज्यवादके विरोधमें संघर्षके उस रूपको स्वीकार करके चलनेवाले कवि नहीं थे, जोकि महात्मा गांधी और कांग्रेस द्वारा निर्दिष्ट था। उनकी एक विशेषता यह थी कि वे साम्राज्यवादके साथ सामन्तवादके भी विरोधी थे' (पृ. ६८)। 'प्रणभंग', 'रेणुका', 'हुंकार', 'सामधेनी' 'कुरुक्षेत्र', 'रसवन्ती', तथा 'द्वन्द्वगीत' संग्रहोंमें दिनकरका प्रारम्भिक क्रांतिकारी कवि निरन्तर गांधीवादके आध्यात्मिक रहस्यमें गुम होकर, सही विचारधारासे कट गया। नवलजीने दिनकरकी प्रकृति और प्रेम सम्बन्धी कविताओं के सौन्दर्यका विवेचन करते हुए, उनकी क्रान्तिकारिताको निम्न पूंजीवादी क्रान्तिकारिता माना है, जो आतंकवादी और अराजकतावादी होती है। सही विचारधाराके अभाव में मनमें उठनेवाले सौन्दर्य और सत्य तथा भाव और कर्मके द्वन्द्वोंके साथ 'शृंगार और वीरता, बुद्धि और हृदय, आत्मा और शरीरके मिथ्या अन्तर्विरोधको वे अन्ततक अपने चिन्तनसे दूर न कर सके', (पृ. ७९) और यह प्रवृत्ति निराशामें परिवर्तित हो गयी। स्वतंत्रता के बाद दिनकरका काव्य संघर्षकी मुख्य धारासे कटकर राष्ट्रीय पूंजीपति वर्गकी शरणमें चला गया, उसके विश्लेषणके बिना नवलजीके इस मूल्यांकनको अधूरा समझना चाहिये, (भूमिका, दो शब्द)। वैसे पूर्ववर्ती काव्यके प्रति आलोचककी दृष्टि वस्तुपरक तथा तर्कसंगत होनेके कारण उसे सही संदर्भमें प्रस्तुत करके तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक समझको प्रमाणितकर सकी है। यही उसकी मौलिकता और उपलब्धि है।

नवलजीने हिन्दीके प्रगतिशील जातीय साहित्यकारों की परम्परामें 'जीवन' जीके काव्यको विचारके केन्द्रमें लाकर, 'हिन्दी कविताकी एक उपेक्षित, लेकिन महत्त्वपूर्ण धाराकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकर्षित किया है,' जिससे इस तरहके जन-कवियोंके काव्यको साहित्यमें समुचित प्रतिष्ठा मिल सके, (दो शब्द)। स्वतंत्रता आन्दोलनमें सक्रिय रूपसे भाग लेनेवाले जीवनजीने राष्ट्रीय भावोंकी कविताओंसे कवि-जीवनकी शुरूआत की, लेकिन आजादीके बाद होनेवाले मोहभंगके कारण स्थापित व्यवस्थाकी आलोचनाके रूपमें, समाजकी तीव्र विसंगतियोंपर कटु व्यंग्य करनेसे नहीं चूके, यही उनकी जागरूक-सचेत दृष्टिका प्रमाण है। जीवनजी स्वतंत्रताके बाद देशके सामाजिक-राजनीतिक जीवनमें पनपे छद्म, भ्रष्टाचार, नेताओंकी कथनी-करनीके अन्तरपर व्यंग्य

करके चोटही नहीं करते, [illegible] के प्रति सचेतभी करते हैं। कविताकी यही शक्ति उन्हें सामान्य, फूहड़ और अशिष्ट हास्यके कवि सम्मेलनी कवियोंसे अलग करती है। वे व्यवस्थाके चरित्रको उधेड़ कर रख देते हैं, यही वजह है कि उनकी कविता पहले सहलाकर बादमें तिलमिलानेको छोड़ देती है। इसीलिए नवलजीने उन्हें हास्यका स्तर गिरानेवाले विदूषक-बाजारू कवियोंसे अलग, राष्ट्रीयतावादी-स्वच्छन्दतावादी कवि माना है। साहित्यमें नागार्जुन जैसे व्यंग्यकारसे तुलना करते हुए नवलजी मानते है कि 'नागार्जुन छायावादोत्तर यथार्थवादी कविताकी देन हैं, जबकि 'जीवन' जी राष्ट्रीयतावादी कविताकी देन', (पृ. ६४)। नागार्जुनने वैज्ञानिक विचारधाराके माध्यमसे व्यंग्यको कवितामें उच्च कलात्मक स्तरके रूपमें विकसित किया है, जबकि जीवनजीने सरलता, लेकिन अमोघ आक्रामकताके रूपमें। दोनोंमें यही अन्तर और यही सम्बन्ध है। इसी परम्परा में पढ़ीसजी, वंशीधर शुक्ल और रमई काकाके काव्यका मूल्यांकनभी होना चाहिये, तभी काव्यकी इस धाराका व्यापक स्वरूप और वैविध्य सामने आ सकेगा।

'कविताकी मुक्ति' पुस्तकके ये निबन्ध नवलजीकी आलोचनाकी गंभीर भूमिकाको स्पष्ट करते हैं। उन्होंने जिस आलोचना पद्धतिके सैद्धान्तिक-व्यावहारिक आधारको ग्रहण करके साहित्यिक मूल्यांकनके औजारोंको विकसित किया है, वह उन्हें समृद्ध प्रगतिशील आलोचनाकी परपंरासे जोड़ता है। परंपराको उन्होंने जिस स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टिकोणसे देखा है, वह उनकी समझके प्रति आश्वस्त करताहै। इन स्फुट निबन्धोंमें अपवादोंको छोड़कर अस्वीकार्य और अनपेक्षितपर चोट तो की गयी है, लेकिन स्वीकार्य और अपेक्षितका संकेत भर दिया है। आगे उन्होंने नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन, मुक्तिबोध तथा इनकी परम्परा को विकसित करनेवाले मनमोहन, राजेश जोशी, अरुण कमल और उदयप्रकाश जैसे कवियोंके काव्यका मूल्यांकन प्रस्तुत किया, तो इसीसे उनकी दृष्टिकी क्षमता, शक्ति और कमजोरी तथा सीमा स्पष्ट हो सकेगी। अपनी सचेत और सतर्क राजनीतिक दृष्टिके सकारात्मक उपयोगसे वे काव्य समीक्षाके प्रतिमानोंके निर्धारणमें महत्त्वपूर्ण योग दे सकेंगे। 'हिन्दी आलोचनाका विकास' तथा छुटपुट निबन्धोंसे उन्होंने इसका संकेत दियाभी है। इस दृष्टिसे 'कविताकी मुक्ति' पुस्तकका महत्त्व नवलजीकी आलोचना दृष्टिके विकासको समझनेके लिए जरूरी बना रहेगा। ▭▭

माखनलाल चतुर्वेदीके काव्यका अनुशीलन[1]

लेखक : डॉ. जगदीशचन्द्र चौरे

समीक्षक : डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे

'एक भारतीय आत्मा' के गढ़ एवं कर्मभूमि खण्डवा से जुड़े और निमाड़ी माटीमें रचे-पचे डॉ. जगदीशचन्द्र चौरेकी शोधकृति 'माखनलाल चतुर्वेदीके काव्यका अनुशीलन' यदि 'एक भारतीय आत्मा'के काव्यके साथ न्याय करती है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। लेखक और उनके शोध निर्देशक, दोनोंही, 'एक भारतीय आत्मा' के निकट तथा घनिष्ठ सम्पर्कमें रहे हैं इसलिए उन्होंने कृतित्वमें व्यक्तित्व एवं जीवनीके सूत्रोंको अन्वेषित करके, शोधकी सही तलाश की है। माखनलाल चतुर्वेदीका काव्य समयसे प्रकाशित न होनेके कारण, हिन्दीमें शोध एवं समीक्षाका सम्यक् आधार नहीं बन पाया—वैसे हिन्दीके राष्ट्रीय कवियोंके साथ अभीतक भी पूरा न्याय नहीं हो पाया है क्योंकि विश्वविद्यालयोंकी मान्यताएं उन्हें सामयिकताकी तुलापर अधिक विवेचित करती हैं और उनके 'असि तथा मसि' के बलिदानी व्यक्तित्वको अप्रासंगिक माना जा रहा है जो किसी समय अग्निदीक्षा कालमें सफल-सार्थक हुए थे। यहां 'एक भारतीय आत्मा' के राष्ट्रीय व्यक्तित्वको उतना उद्घाटित नहीं किया गया है जितना उनके स्वच्छन्दतावादी कवि-कर्तृत्वके साथ सम्पूर्ण औचित्य-निर्धारणकी संस्थिति बनी है। 'एक भारतीय आत्मा' की राष्ट्रीयताके सर्वविदित एवं सर्वविश्रुत होनेके कारण, उनके छायावादी कवि व्यक्तित्व और उनके स्वच्छन्दतावादके दर्शनके प्रदेयोंको या तो उपेक्षितकर दिया गया अथवा उसको विधिवत् अनुसंधान का विषय नहीं बनाया गया। इस शोध प्रबंधमें हिन्दीमें पहली बार पाश्चात्य एवं हिन्दीके स्वच्छन्दतावादी चिंतन के व्यापक आयामोंको विश्लेपित करते हुए, माखनलाल चतुर्वेदीके इस सन्दर्भको बृहत्तर एवं महत्तर भूमिका एवं प्रंशस्ति मिली है। डॉ. चौरेकी यह स्थापना एवं मान्यता

---

१. प्रकाशक : सत्येन्द्र प्रकाशन, २८ पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद-२११-००६। पृष्ठ : ३१६; डिमा. ८२; मूल्य : ६०.०० रु.।

है कि माखनलाल मूलतः तथा प्रधानतः स्वच्छन्दतावादी काव्यके प्राण-पखेरू थे। उनके मनः प्राणमें वैष्णव वृत्ति थी इसलिए उनका रचनात्मक रुझान स्वच्छंदतावादकी ओर उन्मुख हुआ। यही नहीं, उनके वैष्णव व्यक्तित्वने उनकी राष्ट्रीयता, रहस्यवाद तथा गांधीवादको भी अपने रंगमें सराबोरकर रखा है। मध्यप्रदेशके दो महान् रचनाकर्मी मुकुटधर पाण्डेय और माखनलाल चतुर्वेदी छायावादके अग्रणी तथा ज्येष्ठ कवि रहे हैं परन्तु उनके इस बहुमूल्य अवदान तथा ऐतिहासिक कृतित्वका समुचित समाकलन नहीं हो पाया। विश्वविद्यालयोंके परम्परित ढांचोंमें में से वे दूर फेंक दिये गये और उनकी ज्येष्ठता तथा प्रदेयात्मक स्थितिकी समुचित नाप-जोख नहीं हो पायी। स्वच्छन्दतावादकी यूरोपीय एवं पौर्वात्य मनीषाके तात्त्विक अनुशीलनपर, डॉ. चौरेने अपनी अभिनव-नूतन शोध-मान्यताओंकी स्थापना करनेमें सफलता पायी है।

प्रस्तुत आलोच्य ग्रन्थमें हिन्दीके छायावादी काव्यके विकासके इतिहासको अच्छी रेखाएं मिली हैं। माखनलाल चतुर्वेदीके समस्त काव्य-साहित्यके परिचयके साथ ही साथ उसका समुचित वर्गीकरणभी किया गया है। माखनलाल चतुर्वेदीके काव्यमें प्राप्त एवं उपलब्ध स्वच्छन्दतावादी तत्त्वोंको अन्वेषित किया गया है।

उनके स्वच्छन्दतावादी काव्यके भावपक्षका बड़ी बारीकीसे परीक्षण किया गया है। इसीप्रकार उनके स्वच्छन्दतावादी काव्यकी रचना-प्रक्रिया, कला-विधान एवं शिल्प पक्षको भी सोदाहरण उन्मुक्त किया गया है। लाक्षणिकता, विशेषण विपर्यय, प्रकृति-प्रेम, प्रतीक, नये प्रयोग, मानवीकरण और शैलीगत विशिष्टताओंकी समीक्षामें सूझबूझसे काम लिया है।

चूंकि हिन्दीमें स्वच्छन्दतावाद अंग्रेजी साहित्यका प्रदेय है इसलिए लेखकने विलियम ब्लेश, राबर्ट बर्न्स, विलियम वर्ड्सवर्थ, कालरिज, राबर्ट सदे, सर वाल्टर स्काट, बायरन, शैली, जान कीट्स आदिके साथ माखनलाल चतुर्वेदीकी ठीक तुलना की है। छायावादकी हिन्दी की 'वृहत्त्रयी' एवं 'चतुष्टयी' में 'प्रसाद', 'निराला,' 'पंत' और 'महादेवी'के साथभी उनकी तुलनात्मक स्थिति को सुस्पष्ट किया गया है। इनके अतिरिक्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मुकुटधर पाण्डेय और डॉ. रामकुमार वर्माके काव्य-साहित्यको भी तुलनामें अछूता नहीं रखा गया है।

हिन्दीमें ऐसे समीक्षकोंका अभाव नहीं है जो माखनलाल चतुर्वेदीको स्वच्छन्दतावादका प्रवर्तक मानते हैं। कतिपय उनको छायावादकी राष्ट्रीय शाखाके संस्थापक का भी श्रेय देते हैं। उनके साथ माखनलाल स्कूल या निकायको भी जोड़ा गया है और वे नवीन प्रगीत शैली के समारम्भकर्ताके रूपमें भी कहीं-कहीं याद किये गये हैं। उनके द्वारा की गयी साहित्यिक पीढ़ीका निर्माणभी कम महत्त्व नहीं रखता।

इस ग्रन्थके परिशिष्टभी अत्यन्त उपादेय, ज्ञानवर्द्धक और सासार स्थितिवाले हैं। प्रथम परिशिष्टमें माखनलालके सम्पूर्ण जीवन-क्रमको सूत्रों तथा बिन्दुओंमें बांध दिया गया है। द्वितीयं परिशिष्टमें उनके समस्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य, गद्य एवं पद्यकी रचनाओं को विस्तृत सूचीबद्ध किया गया है। तृतीय एवं अंतिम परिशिष्टमें माखनलाल चतुर्वेदीके साहित्यपर लिखित आलोचनात्मक साहित्यको आकलित किया गया है।

निष्कर्ष रूपमें डॉ. जगदीशचन्द्र चौरेका यह शोध ग्रन्थ निश्चयही हिन्दीके स्वच्छन्दतावादी काव्य और माखनलाल चतुर्वेदीकी शोधकी दिशाओंमें एक नयी पहल करता है। ▭▭

सर्वेश्वरका काव्य : संवेदना और संप्रेषण[1]

लेखक : डॉ. हरिचरण शर्मा

समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

नयी हिन्दी कविता जिन विशिष्ट कवियोंके कारण इतिहासमें अपनी जगह बना सकी है उनमें सर्वेश्वर दयाल सक्सेना एक महत्त्वपूर्ण नाम है। निरन्तर विकसनशील रचनात्मक व्यक्तित्वको प्रखरतर करनेवाले सर्वेश्वरमें कभी ठहराव नहीं आया। उनके इसी कवि व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर समीक्षक डॉ. हरिचरण शर्मा ने 'नयी कविताका अथसे अबतक का विकास-इतिहास सर्वेश्वरसे जुड़ा है' ऐसा मानते हुए सर्वेश्वरकी कविता यात्राको समेटकर एक अच्छी पुस्तक लिखी है। प्रतिश्रुतिमें समीक्षक स्वीकार करते हैं कि 'सच मानिये यह पुस्तक मैंने नहीं लिखी, उन कविताओंने लिखा ली है जिनमें सर्वेश्वरके अनुभूतका सम्प्रेषण है। सर्वेश्वरकी प्रतिश्रुति कविताके लिए है और कविता संकलित है पाठकके लिए।'

पुस्तक चार अध्यायोंमें समीक्षकके विचारोंको प्रस्तुत करती है। पहला अध्याय है 'सर्वेश्वर नयी कविताके अपरिहार्य हस्ताक्षर' जिसमें सबसे पहले नयी कविताको 'समयका लेख' बताया गया है। नयी कविता के प्रमुख कवियोंकी अविस्मरणीय कविताओंके साथ सर्वेश्वरकी कविताओंपर विचार करके उन्हें 'युगकी धड़कन' के रूपमें पहचाना गया है। नारी और प्रेमको लेकर समीक्षक बताते हैं कि नयी कवितामें छायावादी प्रेमके स्थानपर 'सेक्स अपील' का सन्दर्भ साफ हो जाता है। वहीं सर्वेश्वरकी मध्यवर्गीय श्रमशिथिल नारी अपनी अलग छवि प्रस्तुत करती है। सब कुछको भुलानेवाली आजकी ओछी प्रवृत्तिपर चोट करनेवाले सर्वेश्वरकी कविताओंसे अभिभूत समीक्षक कविताको युद्ध बतानेवाले आलोचकोंसे घोर असहमति व्यक्त करते हुए नयी कविताको 'समयका साक्ष्य' और कवियोंको उसके 'सही सार्थवाह' घोषित करते हैं। परिवेशकी व्यापकता और उसके साथ नयी कविताके अपरिहार्य लगावको भी यहीं पर रेखांकित किया गया है।

नयी कविताके अपरिहार्य हस्ताक्षरके रूपमें सर्वेश्वर की तुलना अज्ञेयसे की गयी है। दोनों कवियोंमें अन्तर बताते हुए समीक्षकका दावा है कि 'अज्ञेय चिन्तकसे कवि बने हैं और सर्वेश्वर कविसे चिन्तक'। सम्भवतः समीक्षक इसे बड़ी उपलब्धि मान रहे हैं।

सामाजिक यथार्थका ग्रहण और क्रूर कुरूप व्यवस्था की पहचान सर्वेश्वरकी विशेषता है। मध्यवर्गीय चेतना और गाँवोंकी ओर उन्मुख दृष्टिको रेखांकित करते हुए समीक्षक डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदीका एक महत्त्वपूर्ण वाक्य उद्धृत करते हैं : 'तद्भवता, सार्वजनीनता और व्यापकता' को छितराकर देखनेपर सर्वेश्वरकी मौलिकताकी परख की जा सकती है।

'सृजनके सोपान' नामक दूसरे अध्यायमें काव्य संग्रहोंके प्रकाशन-क्रमसे सर्वेश्वरकी रचनाओंका समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। 'तीसरा सप्तक' में सर्वेश्वर के वक्तव्यसे लेकर उनके अन्य संग्रहोंके मूल स्वरकी खोज

---

1. **प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२-:०३। पृष्ठ : १६२; डिमा. ८०; मूल्य : ४५.००**

में एक सूत्र देता हुआ स[illegible] सर्वे-श्वरके समस्त काव्य-विकासके लिए कोई सूत्र तलाशा जाये तो वह यही होगा कि वे अनुभूतिसे विचारानुभूति और विचारानुभूतिसे विचार और तर्कतक आये हैं।' (पृ. ३६) 'काठकी घाटियाँ' के गद्य और काव्यपर विचार करते हुए सर्वेश्वरके गद्यमें कविताके उपकरणोंकी तलाश की गयी है। कविताओंके सन्दर्भमें 'दर्दको संग्रह का की नोट' माना गया है। जिन कविताओंमें लोक-जीवनका स्पर्श है उल्लास, आह्लाद, प्रकृति-प्रेम और हास-परिहासके रंग उभरे हैं। समसामयिकताको व्यापक काव्यानुभव बनानेमें इसी सन्दर्भमें सर्वेश्वरकी सफलता लक्षित की जा सकती है।

'बाँसका पुल' को आन्तरिकतासे निकलकर समाज की ओर आनेका माध्यम मानते हुए डॉ. शर्मा सर्वेश्वर के दर्दको मध्यवर्गीय वैशिष्ट्यके रूपमें देखते हैं। 'सर्वेश्वरका असली स्वर इन्हीं कविताओंमें है' (पृ. ४४) के साथ निम्नलिखित वाक्य द्रष्टव्य है—'सर्वेश्वर बार-बार अकेलेपन, दर्द, अस्तित्वहीनता और निरर्थकतापर कविताएं लिखते रहे हैं, किन्तु इस विषयगत 'रिपीटीशन' को नित नये 'प्रेजेण्टेशन' ने उबाऊ नहीं बनने दिया है।' (पृ. ५१)

'आफिन रिपीटेड' (पृ. ६१) जैसी शब्दावली हिन्दी समीक्षाकी निजी भाषासे बहुत दूर पड़नेवाली शब्दावली है जिससे बचनेका यत्न होना चाहिये।

'एक सूनी नाव' की कविताओंकी परख करते हुए डॉ. शर्मा मलयजकी सम्मति (इस संग्रहकी कविताएं थकानकी कविताएँ लगती हैं—मलयज)से अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। संवेदनाकी तीव्रता और विस्तृति के अभावके प्रश्नपर भी मलयजसे अहसमत होते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं कि 'इस संग्रहमें कवि अन्तर्मुख हुआ है।' 'पर्सनल और इण्ट्रोवर्ट' (पृ. ५३) साथही ये कविताएँ एकान्त क्षणोंका दर्द मात्र नहीं हैं, ये तो दर्दको सहकर पूरे परिवेशके साथ आस्थाके स्वरोंमें बोलनेवाली सशक्त कविताएँ हैं।' (पृ. ५५) 'दुर्घटना' कविताको पूरी तरह अस्तित्ववादी बताया गया है (५५) व्यंग्य, प्रेमानुभूति, युयुत्सा, जिजीविषा, इन सबके रंग 'एक सूनी नाव' की कविताओंमें सोदाहरण दिखलाये गये हैं।

'गर्म हवाएँ' की शैलीकी आक्रामकताको रेखांकित करनेके बावजूद समीक्षक इस संग्रहके प्रति किंचित् असंतोष व्यक्त करता है, 'इस द्विधामें या कहूं कि अन्त-[illegible] समीकरणके अभावमें ही कविता गिरने लगी है और अनुभूतिकी दीवारोंसे बाहरी बोधका पलस्तर झड़ने लगा है।' (पृ. ६२) 'ऐसे स्थलोंपर सर्वेश्वरकी कतिपय कविताओंमें भाषा और भावभी समझौता नहीं कर पाये हैं।' (पृ. ६२-६३) '(ईमानदार स्थितियोंको) जोड़नेवाला सीमेण्टभी सरकारी है।' (पृ. ६३) साथही यहभी स्वीकार किया गया है कि 'वे वर्तमान विसंगतियों और तनाव के उस रूपको बिम्बोंमें बाँधते हुए दिखायी देते हैं जिसपर साठोत्तर लेखन टिका हुआ है।' (पृ. ६६)

अकल्पनीय ठण्डेपन और अभिधात्मकताके कारण कमजोर व्यंग्यकी ओर इशारा करनेके साथही समीक्षक 'गर्म हवाएँ' के रूमानी सन्दर्भोंकी गहराईसे छूने वाली कविताओंकी प्रशंसा की है। अकेलेपनके दर्दके साथ ही आत्मजयी भावकी अनेक कविताओंको भी महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया गया है।

'कुआनो नदी' संग्रहमें इसी नामकी कविताको सर्वोत्तम (सर्वेश्वरकी) कविता माना गया है। भारतके ग्रामीण जीवनकी सम्पूर्ण परम्पराको यह कविता बारीकियोंके साथ मूर्त करती है। यह लम्बी कविता तीन खण्डोंमें है। पहले खण्डमें कुआनो नदी ग्राम संवेदना और संस्कृतिकी धारा है। दूसरे खण्डमें वह नगर बोध और नागर संस्कृतिकी धारा है। तीसरे खण्डमें कुआनो जनक्रान्तिकी वेगवती धारा हो जाती है। संग्रहकी अन्य कविताओंमें समाजके दर्दको अभिव्यक्ति मिली है। अनेक तरहसे घिनौने यथार्थको कविने उभारा है। गरीबी हटाओ, गुबरैला, एक बस्ती जल रही है, बाँस गाँव आदि कविताओंमें तीखे व्यंग्यके साथ यथार्थका अंकन हुआ है। गुबरैला कवितामें बुद्धिजीवियोंके निजी संसार पर करारा व्यंग्य किया गया है। यथार्थके तीव्र दंशकी कविताएँ हों या व्यंग्यकी—समीक्षकका दावा है कि सभी कविताएँ मूल्योंकी खोज करती हैं। 'पथराव' में कविता और उसकी जड़ों और रचना प्रक्रियाके प्रति ईमानदार संकेत दिये गये हैं।

'जंगलका दर्द' में मानवी संसारमें रहता हुआ संवेदनशील कवि बार-बार अनुभव करता है कि वह आदमियोंके नहीं अमानवीय पशु-ससारमें रह रहा है। लहूलुहान होती मनुष्यताके प्रति दर्दको ही 'जंगलका दर्द' में स्वर मिला है। भीतर और बाहरके पशुओंसे लड़नेवाले कविके शब्द 'गुलेलसे छूटी कंकड़ी' और 'बुलेट' की तरह घाव करनेवाले बताये गये हैं। कवितापनको

सुरक्षित रखते हुएभी 'परिवर्तन' ... देनेमें सर्वेश्वर माहिर हैं। अनुभूतिका खरापन, टूटते मूल्योंके बीच दायित्वबोध, सौन्दर्यबोधकी जमीनपर खड़े होकर निर्भीकता और कर्मठताके संदेश—इन कविताओंके मूल स्वर हैं। पहले भागकी कविताएँ मुक्ति की मशाल लेकर नयी क्रान्तिका स्वर भरती हैं तो दूसरे भागकी कविताएँ कविके व्यक्तित्वको तराशनेमें लगी हैं। अधिकांश कविताओंमें जनचेतनाकी ताप, आग, मशाल जैसे बिम्बोंमें व्यक्त किया गया है। आपात्काल के दौरान लिखी इन कविताओंमें 'फूलोंकी रंगत आगकी लपट' में बदल गयी है। इस संग्रहकी कविताओंकी व्यक्तिपरकताके सन्दर्भमें समीक्षकका दावा है कि 'इसमें व्यक्तिपरकता इतनी है कि कविता कविता न रह कर मात्र एक आइडिया बनकर रह गयी है।' रुमानी कविताओंकी स्पष्टता तो प्रजनन-पुष्पको चूमनेतक पहुंच जाती है। यहाँभी अनुभूतियोंके विचारानुभूतियाँ बननेके सम्बन्धमें लिखा गया है कि 'सर्वेश्वरकी ये कविताएँ उनकी गहरी अनुभव प्रक्रियाके दौरकी ऐसी कविताएँ हैं जो भावी दुनियांके लिए शिलालेखका काम करेंगी।

तीसरा अध्याय है 'संवेदनाका धरातल'। इसमें रागात्मक संवेदना, पीड़ाबोध, वैचारिक संवेदना, समकालीन परिवेशसे साक्षात्कार, व्यंग्यबोध, मानवीय करुणा, लोकसम्पृक्ति, मूल्यबोध और सौन्दर्यबोध उपशीर्षकोंके अन्तर्गत सर्वेश्वरके सम्पूर्ण काव्यका विश्लेषण किया गया है। उनकी कविताकी बारीकियोंका अध्ययन करते हुए समीक्षकने उन्हें 'समकालीन दुनियांकी एक्सरे प्लेट्स' 'आंतरिक चेतनाका संवेदनात्मक ज्ञान प्रस्तुत करनेवाली भीतरी लिखावट' 'समग्र जीवन दृष्टिको पानेकी आकांक्षी' 'समयका लेख' 'प्रामाणिक दस्तावेज' आदि कहा है।

चौथे अध्याय 'सम्प्रेषणके माध्यम' में सर्वेश्वरके शिल्प पक्षका बहुत सधा हुआ विवेचन किया गया है। 'सम्प्रेषणका सार्थक सेतु: भाषा' के अन्तर्गत काव्यानुभूति काव्यप्रक्रिया, संवेदना, सम्प्रेषण और इन सबके साथ कविकी काव्य भाषाकी निजी पहचान करायी गयी है। सम्प्रेषण माध्यमके रूपमें प्रतीकोंका प्रयोगके सन्दर्भमें समीक्षक 'सर्वेश्वरके प्रतीकोंको उनके अनुभवके शाब्दिक प्रतिरूप' मानते हैं। 'उनकी काव्यभाषाकी अनिवार्यता' के कारण सर्वेश्वरके प्रतीक भावप्रेषणका कार्य करते हुए भाषिक शक्तियोंका विकास करते हैं।

संवेदनाके मूर्त सम्प्रेषणके लिए बिम्बको अनेक प्रतिष्ठित विद्वानोंकी परिभाषाओंके सहारे परिभाषित करते हुए समीक्षक कविको काव्य बिम्बोंकी निजताको रेखांकित करते हैं। वे ऐसे बिम्बोंकी ओरभी संकेत करते है जो महज 'स्केच' लगते हैं। यथार्थको मूर्त करने वाले, अलंकृत, ऐन्द्रिय, ध्वनिसंवेद्य, रंग, गन्ध आदिकी कोटिके बिम्बोंकी लम्बी तालिकाके साथ सर्वेश्वरके बिम्ब विधानकी बारीकियाँ समझायी गयी हैं।

सम्प्रेषणके क्रममें अप्रस्तुत योजनाकी सार्थकतापर विचार करते हुए सर्वेश्वरके अप्रस्तुतोंकी व्याख्या की गयी है। इन अप्रस्तुतोंके आधारपर तीन निष्कर्ष निकाले गये हैं अनुभवकी विशालता, अप्रस्तुतोंमें जिन्दगीकी सांस-साँसको सम्प्रेष्य बनानेकी शक्ति और अनिवार्यता।

सर्वेश्वरकी कविताओंमें जीवनास्था-मूल्यास्था और जिजीविषाको रेखांकित करते हुए उपसंहार किया गया है। उन्नीस सौ छिहत्तरतककी सर्वेश्वरकी काव्य-यात्राका एकत्र विवेचन करनेवाली पुस्तकके रूपमें यह पुस्तक समादरणीय है। □ □

समकालीन बोध और धूमिलका काव्य[1]

लेखक : डॉ. हुकुमचन्द राजपाल

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द गौतम

साठके बादके कवियों और कवितामें धूमिलकी कई दृष्टियोंसे पर्याप्त चर्चा हुई है। भाषा और वैचारिकता को लेकर धूमिलके काव्य और उनकी क्षमताके बारेमें अनेक प्रकारके आरोप लगाये गये हैं, उपलब्धियोंपर विचार किया गया है। धूमिलने कविताकी भाषाका जो मुहावरा विकसित किया, भीड़से अलग होनेके कारण उसने अपनी पहचान बनायी। इस कविकी विचारधारा, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिसे इतने अन्तर्विरोधोंसे ग्रस्त है कि बँधी हुई लाइनसे सोचनेवाले आलोचकोंने इसकी आन्तरिक ऊर्जा और आकर्षणको नजर अन्दाज

---

१. **प्रकाशक : कोणार्क प्रकाशन, ६१ एफ, कमलानगर, दिल्ली-७। पृष्ठ : १५१ डिमा. ८०; मूल्य : १५.०० रु.।**

करके इसे बौखलाये हुए आदमीका एकालाप माननेका अन्तिम निर्णय दे दिया। कविकी चेतनाका विकासशील पथ उसकी काव्य-यात्रामें प्रत्यक्ष रहता है, जिसे समझे बिना न तो उसके विकासको समझा जा सकता है, न काव्यको। जबकि काव्यकी समग्र समझके लिए यह जानना बेहद जरूरी है कि विचारके विकासके साथ कवि की कविताके विकासका क्या सम्बन्ध रहा। मूल्यांकनका गलत आधार चुन लिये जानेपर कविके काव्यको सही संदर्भमें देख पाना मुश्किल है, इससे अनेक प्रकारकी भ्रामक धारणाओंको बढ़ावा मिलता है। डॉ. हुकुमचन्द राजपालने अध्ययन-अध्यापनकी सुविधाके लिए समकालीन बोध और मूल्योंके संदर्भमें धूमिलके काव्यका मूल्यांकन 'समकालीन बोध और धूमिलका काव्य' पुस्तकमें किया है। लेखकने प्रारंभमें समकालीन कविताकी अवधारणाको स्पष्ट करके धूमिलसे उसके सम्बन्धको दिखाकर, समकालीन बोध और इसके संदर्भमें मूल्योंकी विविधताके मूल्यांकनके आधारभूत सिद्धान्तकी चर्चा की है। यहीं धूमिलके काव्यमें प्रतिष्ठित मूल्य-चेतनाका संक्षिप्त परिचय देकर बादके अध्यायोंमें उनका विस्तृत सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विवेचन किया गया है।

धूमिलका काव्य-विकास कथ्य और शिल्पकी दृष्टि से बहुत विचित्र रहा है। यही वजह है कि कविताओंके प्रकाशन कालके आधारपर काव्य-विकासका निर्धारण न केवल अधूरा होगा, बल्कि अपर्याप्त और अव्यवस्थितभी। लेखकने इस अध्यायके अन्तर्गत कविके दो संग्रहों—'संसद् से सड़कतक', 'कल सुनना मुझे' के साथ स्फुटरूपसे प्रकाशित कविताओंका सार संक्षेप प्रस्तुत करके उसकी काव्य चेतनाके विविध संदर्भोंपर विचार किया है। आम मध्यवर्गीय व्यक्तिकी तरह धूमिलकी सामाजिक-राजनीतिक चेतना आजादीकी खुशफहमीसे लेकर मोहभंग तक विकसित हुई। इसीलिए कविके दोनों संग्रहोंकी कविताएं एक-दूसरेकी विपरीत परिस्थितियोंको सामने लाती हैं। इसी कारण अनेक लोगोंको धूमिल निहायत नासमझ और बचकानी राजनीतिक चेतनावाला कवि नजर आने लगता है, जबकि यह स्थिति व्यापक समूहकी थी, आजभी है। बहुतोंकी तरह धूमिलको नेहरू प्रगतिशील लगते थे, जबकि वास्तविकता इसके उलट थी। कुछ लोग आजभी स्वार्थोंके कारण इसे स्वीकारनेमें हिचकिचाते हैं। धूमिलने इसे साहसके साथ स्वीकार किया। यह बात अलग है कि उसकी कविता लोकतन्त्रके धनात्मक पक्षसे न जुड़कर अराजकताके पक्षमें चली गयी। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि कविताके इस तेवरके कारणही धूमिलकी अलग पहचान बनी। नेहरूके प्रति मोहसे लेकर नक्सलबाड़ीतक की यात्राके इन संदर्भोंको जाने-समझे बिना धूमिलके काव्यके प्रति न्याय नहीं हो सकता।

डॉ. राजपालने 'समस्या बोध: विविध आयाम' के अन्तर्गत धूमिल-काव्यके संदर्भमें उसके व्यवस्था, लोकतंत्र, नारी, विश्व राजनीति और रणनीति सम्बन्धी विचारोंका विश्लेषण किया है। संशय बोध, संत्रास बोध, व्यंग्य बोध, इतिहास बोध और धूमिलकी काव्यभाषा तथा वक्तव्यके अन्तर्गत इन धारणाओंके सैद्धान्तिक विवेचनके बाद उसके काव्यका विवेचन इसी आधारपर किया गया है। शोधनुमा तरीकेसे किया गया यह मूल्यांकन धूमिल काव्य की किसी गहरी समझको प्रमाणित करके कुछ नयी बात नहीं कर पाता। फिर लेखक भलेही यह कह चुका हो कि 'हिन्दीके समीक्षक स्वयंको सभी विषयोंका विशेषज्ञ मान लेते हैं तथा किसीभी नये विषयपर अपना अधिकार समझते हैं।' (पृ. १७) स्वयं लेखकने कई स्थलोंपर इसका परिचय दिया है।

धूमिलके काव्यके संदर्भमें यह पुस्तक सामान्य शुरूआत मानी जा सकती है। इसके बादभी कविके काव्यके प्रति सही समझको विकसित करनेवाली पुस्तककी जरूरत बनी रहती है, जो धूमिलकी राजनीतिक समझकी जटिलता और कविताकी सार्थकताको रेखांकित कर सके। □□

मराठी सन्त कवियोंकी सामाजिक भूमिका[1]

लेखक : डॉ. गणेश तुलसीराम भ्रष्टेकर
समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

साहित्यिक प्रवृत्तियों और कृतियोंकी समीक्षाके पाठक सीमित होते हैं। सामान्य पाठक इस प्रकारकी समीक्षाका कोई प्रयोजन नहीं समझता। समीक्षाके थोड़े से पाठकोंमें भी सन्तों और भक्तोंके सम्बन्धमें लिखी गयी पुस्तकोंके ग्राहक नहींके बराबर होते हैं। ऐसी

---

१. प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)। पृष्ठ : १६४; डिमा. ८०; मूल्य : ४५.०० रु.।

स्थितिमें आश्चर्ययुक्त प्रसन्नता होती है, 'मराठी सन्त कवियोंकी सामाजिक भूमिका' जैसी पुस्तक पढ़कर, जो सरस उपन्यासकी तरह पठनीय है। मराठीके सन्त कवियोंपर लिखी गयी इस पुस्तकमें जो कथाका रस है उसका आलम्बन हमारे बीचका नायक है। यह कथा-नायक है गणेश अष्टेकर जो बचपनसे अपने आसपासके मानव-समुद्रको पैनी निगाहसे देखता है। उसके उचित-अनुचित व्यवहारके प्रति प्रतिक्रिया करता है और मनमें एक संकल्प सँजोता रहता है कि इस भ्रष्ट समाजको बदलनेके लिए वह कुछ-न-कुछ अवश्य करेगा। अपने समाजके रोगको जड़से उखाड़कर उसे स्वस्थ बनानेका स्वप्न देखनेवाला यह विद्यार्थी आगे चलकर अध्यापक बनता है। अध्यापनके साथ लेखनको अपनाकर उसे अपने संकल्पको कार्यान्वित करनेकी एक राह मिलती है। अध्यापकीय जरूरतके कारण शोधकार्य करनेके बाद यह ईमानदार व्यक्ति धूमिलकी रचना प्रक्रियाकी जांच करता है जिसने व्यवस्थाकी बखिया उधेड़नेके लिएही 'कटघरे' का चुनाव किया था। धूमिलको चुननेका कारण है— "मुझे लगता था कि 'कटघरेका कवि धूमिल' में स्व. धूमिल और मैं दोनों विपक्षमें खड़े थे।" (पृ. १६) आरम्भमें जिसे कथानायक कहा गया है वह लेखक अपनी पुस्तकका विषय अन्य पुस्तकोंसे नहीं चुनता, सीधे जीवन से उठाता है। 'मुझे उक्त प्रभावके स्वरूपका साक्षात्कार तो सबसे पहले मेरे अपने परिवारके लोगोंके आचरणमें ही हुआ था। बादमें मैंने उसे अपने आसपासके लोगोंमें देखा और उसकेभी बाद मुझे वह प्रभाव साहित्यमें पढ़ने को मिला। × × × उन प्रभावोंसे उत्पन्न भले-बुरे परिणामोंको मैंने न चाहकर भी भोगा है।' (पृ. २५)

इसतरह समीक्ष्य पुस्तक लेखकके अनुभवका विश्वसनीय दस्तावेज है। यही कारण है कि आद्यन्त इसमें कथा-रसका स्वाद मिलता रहता है।

पाठक अनुक्रमणिका देखकरही चौंक उठता है।

१. भूमिकासे पहले, २. पाँच सौ कविः पन्द्रह लाख कविताएँ, ३. धर्म बनाम रूढ़ि-पालन, ४. खानेको हरिनाम ! पीनेको हरिनाम ! ५. स्त्रीः नरककी सीढ़ी ! ६. बैकुण्ठके लिए विमानसेवा ! ७. नवमूल्यांकनकी आवश्यकता।

'भूमिकासे पहले' का आरम्भ अट्ठाइस साल पहले एक युवतीके साथ भाग जानेवाले पुजारीके प्रति जनाक्रोश और बादमें उसके प्रति श्रद्धाकी घटनासे होता है। लेखक अपने अनुभवोंके आधारपर 'समाजमें व्याप्त आध्यात्मिक भ्रष्टाचार' लिखना चाहता था जिसके स्थानपर प्रस्तुत पुस्तक लिखी गयी। यह कैसे हुआ, इसको बहुत रोचक शैलीमें अनेक उपशीर्षकोंके अन्तर्गत बतानेके बाद मराठी सन्तोंकी रचनाओंके प्रभाव और उनके प्रति लोगोंकी आस्था-अनास्थाके सम्बन्धमें उठनेवाले प्रश्नोंका संकेत करता हुआ लेखक संतोंके सम्बन्धमें प्रचलित किंवदन्तियों की वास्तविकतापर सन्देह व्यक्त करता है।

दूसरे अध्याय 'पाँच सौ कवि: पन्द्रह लाख कविताए' के अन्तर्गत मराठी सन्तोंकी लम्बी सूची और आजतक प्राप्त होनेवाली नयी रचनाओंकी ओर संकेत करनेके बाद लेखकने महानुभाव सम्प्रदाय और वारकरी सम्प्रदाय का परिचय दिया है। तेरहवीं शताब्दीमें महाराष्ट्रके 'गतिरुद्ध' समाजमें 'समयकी आवश्यकता' के रूपमें संत-परम्पराका आविर्भाव हुआ, इस तथ्यको कुशलताके साथ प्रतिपादित किया गया है। मुकुन्दराज, ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, गोरोबा काका, स्त्री सन्त कवयित्रियों, लतीबशाह तथा योगसंग्रामके लेखक शेख-महम्मद जैसे संत कवियोंकी दीर्घपरम्पराका परिचय दिया गया है।

तीसरा अध्याय है'धर्म बनाम रूढ़ि-पालन'। विषमता के मूल कर्मवादपर प्रहार करते हुए हिन्दू धर्मकी व्यावहारिक अनुदारताको रेखांकित करनेके साथ समीक्षक सिद्ध करता है कि वर्णव्यवस्था मूल रूपमें श्रेष्ठ थी. व्यवहारमें आकर नियामकोंकी स्वार्थ बुद्धिसे वह दूषित हुई। मराठी सन्तोंने धर्मके मूल रूपको समझा। ज्ञानेश्वर ने अलग-अलग व्यक्तियोंके लिए धर्मकी व्यवस्था करके बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया। सन्तोंके अवदानको स्मरणीय मानते हुएभी अष्टेकर इस बातपर अपना क्षोभ बारबार व्यक्त करते हैं कि इन लोगोंने वर्णव्यवस्थाका विरोध नहीं किया, या उस रूपमें नही किया जिस रूपमें उन्हें करना चाहिये था। जिन सन्तोंने वर्णोंके बीचकी खाई को पाटनेके प्रयास किये उनके प्रति आदर व्यक्त किया गया है। समीक्षक सन्तोंकी सामाजिक भूमिकाको बहुत महत्त्वपूर्ण मानते हैं। आमूल परिवर्तन करके समाजकी विषमताको पूरीतरह मिटानेमें असमर्थ संतोंके उद्देश्य और उनकी सीमाओंका रेखांकन गम्भीरताके साथ किया गया है।

'खानेको हरिनाम ! पीनेको हरिनाम !' चौथा अध्याय है, जिसमें सन्तोंकी 'निवृत्ति' को महाराष्ट्रके

समाजके अविकसित रह जानेका बड़ा कारण बताया गया है। अपने वंशगत पेशेका उपदेश देकरभी सन्तोंने अनर्थ किया, यह बात स्पष्ट कही गयी है। शक्ति और ऐश्वर्य की प्रतिष्ठा करनेवाले रामदासका प्रभावभी एक सीमित वर्गतक रहनेके कारण महाराष्ट्रके बृहत्तर समाजका उन्नयन नहीं कर सका, ऐसी मान्यता स्थापित की गयी है। इस अध्यायका निष्कर्ष है— 'सम्प्रदायकी भाग्यवादी सीख, वित्तके प्रति अनासक्तिका उपदेश और पारलौकिक सुखकी प्राप्तिकी आशामें इहलौकिक सुखोंके प्रति विमुखता ने मिलकर यहाँ एक ऐसे समाजका निर्माण किया, जो सामाजिक अथवा आर्थिक विषमताके विरोधमें खम ठोक-कर मैदानमें न तब उतरा न अब उतरनेकी शक्ति उसमें है।' (पृ. १०२)

'स्त्री: नरककी सीढ़ी' पाँचवां अध्याय है जिसमें मराठी सन्तोंकी स्त्री-विषयक धारणाका विश्लेषण निर्ममताके साथ किया गया है। एकनाथ जैसे सन्त एक ओर स्त्री-पुरुषको बराबर मानते हैं, दूसरी ओर स्त्रीकी घोर निन्दा करते हैं। नामदेव और रामदासकी शिष्याओंके साथ उनके सम्बन्धोंकी जाँच करनेमें लेखक पुलिसकी दृष्टिका उपयोग करता है। आश्रम-व्यवस्थाको काम-जीवनपर आधारित बताया गया है। इस तरहके अनेक निष्कर्ष हैं जिनसे सहमत होनेमें बहुतोंको कठिनाई होगी। देवदासी प्रथाकी अमानवीयताके प्रति लेखकका दृष्टिकोण सर्वथा आदरणीय है। संतोंकी स्त्री-निन्दासे जनसाधारण के अप्रभावित रह जानेकी बातभी अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण है। स्त्रीके प्रति अन्याय-भावनाके मूलमें पुरुषकी एकाधिकार-लिप्साको रेखांकित किया गया है।

छठा अध्याय है 'वैकुण्ठके लिए विमानसेवा', जिसमें तुकारामके विमानमें बैठकर सदेह वैकुण्ठ जानेकी लोक-प्रचलित घटनाको लेखकने वस्तुतः हत्याका मामला बताया है। मुक्ति सम्बन्धी धारणा और मोक्षकी कल्पनाका विश्लेषण करते हुए लेखकने 'ब्राह्मणेतर वर्गोंके लोगोंमें पढ़ने-लिखनेके प्रति रुचि उत्पन्न करनेके महान् कार्य' (पृ. १३५) का श्रेय सन्तोंको दिया है। ईश्वर-साक्षात्कार, निवृत्ति और आत्माभिमुखी सामाजिकताके सन्दर्भ में लेखकका निष्कर्ष है कि 'भागवत सम्प्रदाय एक सुनिश्चित मध्य मार्गपर चलनेवाला और साधकोंको आत्माभिमुखी सामाजिक होनेकी शिक्षा देनेवाला था। इसने 'प्रच्छन्न बौद्ध' श्री शंकराचार्यके घोर मायावादकी अकर्मण्यताको अस्वीकार्य माना था और चरम प्रवृत्तिवाद को भी। सहज स्वाभाविक इच्छाओंकी पूर्तिके लिए प्रयासशील रहनेसे भौतिक आकांक्षाओंमें भारी वृद्धि हो जाना और भौतिक आकांक्षाओंसे पीड़ित-परिचालित सामाजिकोंके हितोंका आपसमें टकराना अवश्यम्भावी होता है, जिससे संस्कृति और सभ्यताकी विकास-यात्रामें सँजोये गये महान् मानवीय मूल्योंको भारी क्षति पहुंचती है। यदि हम अपनी सहज स्वाभाविक इच्छाओंको दमित करें तो एक कुण्ठाग्रस्त और रुग्ण समाज अस्तित्वमें आ जाता है। इससे यही अच्छा होता है कि उन इच्छाओंको संयमित करना सीखें। और यही मराठी सन्त कवियोंकी 'सामाजिक भूमिका' का मर्म दिखायी देता है। एकनाथ, तुकाराम और रामदासके बाद इस प्रदेशकी जनतामें जो राजनीतिक और धार्मिक चेतना उदित हुई, वही इस बात का प्रबल प्रमाण है कि यहांके सन्त कवियोंकी शिक्षाने जनमानसकी आकांक्षाओंकी जड़ोंमें चरम भाग्याश्रित निवृत्तिवादका मठ्ठा नहीं डाला था।' (पृ. १४४)

सातवाँ और अन्तिम अध्याय है 'नवमूल्यांकनकी आवश्यकता।' देश-विदेशमें जाति और धर्मके नामपर उठनेवाले संहारक तूफानोंसे आहत डॉ. अष्टेकर मराठी सन्तोंके योगदानको 'कालबाह्य' अर्थात् आजके लिए अप्रासंगिक मानते हैं। भक्तिको दुर्बलताजन्य मानसिकता की उपज मानकर धर्मकी नयी भूमिकाके सम्बन्धमें लेखक की राय है कि 'एक ऐसे धर्मकी आवश्यकता है जो 'उस' लोककी अपेक्षा 'इस' लोकको महत्त्व देता हो, भौतिक समृद्धिका निषेध न करता हो और सामाजिक जीवनमें व्याप्त अन्यायके विरोधमें खम ठोककर खड़ा हो सके।'

'धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी और गणतन्त्रीय राष्ट्रके निर्माण' को आज सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य समझनेवाले डॉ. अष्टेकर स्पष्ट अनुभव करते हैं कि 'बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्धतक यहांका समाज केवल धर्मपालनको जीवन का सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण कार्य समझता था।' (पृ. १५२) जबतक इसको (धर्मको) सामाजिक और राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षणिक जीवनसे समूल उखाड़कर फेंका नहीं जा सकता, तबतक इस देशका भविष्य सुधरनेकी कोई आशा नहीं है। धर्मके स्थानपर अर्थकी महत्ताको स्थापित करना आवश्यक है।' (पृ. १५५) 'आज हमें मार्क्ससे आगे बढ़कर धर्मको अफीमकी गोली नहीं, विष की प्याली करार देना आवश्यक है।' (पृ. १५४)

डॉ. अष्टेकर एक विकल्प यहभी देते हैं कि सयुक्त राष्ट्र संघकी तरह एक विश्व धर्म संगठन होना चाहिये।

डॉ. अष्टेकरके निष्कर्षोंसे असहमतिके बावजूद उनकी मानवीय दृष्टि प्रशंसनीय है। भारतीय समाजके पुनर्गठन के लिए कार्यरत विद्वानों और समाजसेवियों विशेषतः लक्ष्मणशास्त्री जोशी, बाबा आढाबजी, बाबा साहब आमटे और सन्त विनोबाके महान् कार्योंको आशाकी किरणके रूपमें प्रस्तुत करते हुए डॉ. अष्टेकर अपनी समाज-परिकल्पनाका वास्तविक परिचय देते हैं।

हिन्दी भाषाको व्यापक स्तरपर प्रतिष्ठित करनेमें मराठी सन्त कवियोंकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इस बातको रेखांकित करनेके साथही दक्खिनी हिन्दीके सम्बन्ध में डॉ. अष्टेकर एक बहुत अच्छी बात कहते हैं, 'हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीचके सौहार्दको सच्ची अभिव्यक्ति देनेके लिए ही औरंगाबाद स्थित सूफी कवियोंके आध्यात्मिक केन्द्रमें 'दक्खिनी', भाषाका उद्भव और विकास हुआ था। यही भाषा 'वली' साहब जब दिल्ली ले गये तो वहाँकी राजनीति-प्रधान स्थितिमें वह उर्दू में रूपान्तरित हो गयी, जिसमें से साम्प्रदायिक सौहार्दकी खुशबू गायब होती गयी…।' (पृ. ८५)

पुस्तकको अतिशय पठनीय बनानेवाले बहुतसे ऐसे वाक्य हैं जो लेखकके हृदयसे निकले हैं, जैसे 'रोटी पानेकी खुशी श्रमकी प्रतिष्ठाका सबसे छोटा परन्तु उदात्त लक्षण है और करोड़पति बननेका आनन्द श्रमकी अप्रतिष्ठाका सबसे बड़ा और सबसे घिनौना प्रमाण है।' पृ. ९७)

मराठवाड़ा विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागके प्रति हिन्दी जगत्‌को आभारी होना चाहिये जिसने इस पुस्तक के लेखनके लिए प्रेरित करनेसे लेकर प्रकाशनतककी व्यवस्था की। अन्य भाषाओंके साहित्यकारोंके लिए भी यह एक अनुकरणीय प्रयास है। ▭⊐

कहानी–आलोचना

हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा[1]

लेखक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृति दो भागोंमें बाँटी गयी है। पहले भाग में उपसंहारके साथ ग्यारह निबंध हैं, जिनमें हिन्दीकी प्रारंभिक कहानियोंसे लेकर भिन्न-भिन्न कहानी आंदोलनों, उनकी प्रवृत्तियों और उनके मूल्यांकनकी ईमानदारीसे कोशिश की गयी है। इतनाही नहीं आंदोलनोंसे बाहरकी कहानियोंपर भी एक निबंध है। दूसरे भागमें हिन्दी कहानीके कुछ विशिष्ट हस्ताक्षरों (फणीश्वरनाथ रेणु, राजेन्द्र यादव, रामदरश मिश्र, विवेकीराय, हिमांशु जोशी, दिनेश पालीवाल और सुरेशकुमार) की कहानियोंके तटस्थ और निष्पक्ष मूल्यांकनका प्रयास है। कृतिके दूसरे भागसे कहानीके आंदोलनों और उसके बदलते प्रतिमानोंको गहराईसे समझनेमें सहायता मिलती है। इससे लेखकके समीक्षकका रूप उभरकर सामने आया है। इसमें दो मत नहीं कि इस दशकमें समीक्षाके क्षेत्रमें लेखक एक चर्चित हस्ताक्षर रहा है और अपनी संभावनाओंको उजागर करनेकी दिशामें उसका प्रयत्न श्लाघ्यही नहीं, स्तुत्य कहा जा सकता है।

लगभग एक दर्जन समीक्षा, शोध और आलोचना पुस्तक प्रकाशित करानेके कारण लेखककी दृष्टि स्पष्ट, नीर-क्षीर विवेकी और निर्णयात्मिका हो गयी है। 'हिन्दी की प्रारंभिक कहानियाँ' का चर्चा करते हुए लेखक हिन्दी को प्रथम कहानी कहलानेवाली कहानियोंकी जाँच पड़ताल करते हैं, और अपनी टिप्पणीभी देते चलते हैं—'ये कहानियाँ या तो नैतिक सवालोंको उठाती हैं या इनका संदर्भ आर्थिक है' (पृ. १४) परंतु 'अर्थ' के प्रति कहानीमें व्यक्त धारणाको भी 'वह लगे हाथ व्यक्तकर देता है-- 'धन-दौलतसे कहीं महत्त्वपूर्ण प्रेम, मित्रता, स्वामीभक्ति, विद्वत्ता आदि हैं। माधवराव सप्रेकी 'एक टोकरीभर मिट्टी' में विधवाकी गरीबीके आगे जमींदारकी स्वार्थलिप्साकी पराजय और उसका पश्चात्ताप वस्तुतः धन और शक्तिके मदको बहुत छोटा साबित करता है। (पृ. १४)

लेखक कहानियोंमें व्यक्त जीवन मूल्योंके प्रति जागरूक रहा है। इसका संकेत 'लेखककी ओरसे'के एक वाक्यसे मिलता है। प्रारंभिक कहानियोंमें समाज-सापेक्ष मूल्य-बोधको लेखकने अंकित किया है—'मूल्य-बोधकी दृष्टिसे हिन्दी कहानी, शुरूसे ही समाज-संलग्नताका प्रमाण देती है। इसमें 'गलत मूल्योंका विरोध नहीं मिलता, लेकिन उनका समर्थनभी नहीं है।' (पृ. १५)

प्रेमचंद युगका न केवल साहित्यिक मूल्य है, वरन् राष्ट्रीय जागरणकी दृष्टिसे इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। महात्मा गाँधी, दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय

[1] प्रकाशक : गिरनार प्रकाशन, पिलाजीगंज, महेसाना (उ. गुजरात)। पृष्ठ : १३७; डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

प्रभृति देशभक्तों और समाज सुधारकोंके प्रयत्नोंसे सामाजिक कुरीतियों-विसंगतियों और विद्रूपताओंके विरुद्ध वातावरण बनना शुरू हुआ। प्रेमचंदभी इसी समय साहित्य साधनाके क्षेत्रमें आये और उन्होंने क्रांतिका शंखनाद किया। सब मिलाकर अनुकूल परिणाम दिखायी पड़ने लगे। नये जीवन मूल्य पनपने लगे, रुढ़ियों, दासता, अंधविश्वासके चौखटे चर्राने लगे। शोषण, स्वार्थ, घृणा, वर्ग भेद, संप्रदाय आदिकी अप्रासंगिकता प्रकट होने लगी। इसमें सर्व प्रमुख स्थान है प्रेमचंदका। लेखकका दावा सही है—'इस युगके जिन कहानीकारोंने इस परिवर्तनको रचनाओंमें व्यक्त किया, प्रेमचंद उनमें अग्रणी थे।' (प्रेमचंद-युग, पृ. १८) प्रेमचंद प्रारंभसे ही मूल्य प्रतिष्ठाकी ओर उन्मुख रहे हैं, पर इनकी प्रारंभिक कहानियाँ यांत्रिक मूल्यवत्ताका प्रमाण देती हैं। बकौल लेखक 'प्रेमचंदकी शुरूकी कहानियाँ—'मिलाप', 'देवी' आदि मूल्यबोधके लिहाजसे कमजोर हैं क्योंकि इनमें मूल्यों की प्रतिष्ठा यांत्रिक तरीकेसे हुई है।' (पृ. १९) अन्तिम दिनोंमें उनके लिए आदर्श और मूल्यका कोई अर्थ नहीं रह गया था। 'तीसरे और अंतिम चरणकी कहानियाँ—'कफन' 'पूसकी रात', 'शतरंजके खिलाड़ी', 'नशा' आदि गवाही देती हैं कि अंतिम दिनोंमें असमानता और वर्ग भेदपर आधारित मौजूदा व्यवस्थाके शिकार बहुसंख्यक लोगोंको किसी मूल्य या आदर्शसे नत्थी करनेके प्रयासको वे व्यर्थ समझने लगे थे। (पृ. २०)

'प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कहानी' (पृ. २७-३६) मूल्याभिव्यक्तिकी दृष्टिसे दो भागोंमें बाँटी गयी है—जन सामान्य से जुड़े सामाजिक मूल्योंकी कहानियाँ, जिससे यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, अमृतराय आदि जुड़े हैं और व्यक्तिगत मूल्योंके प्रति रुझानकी कहानियाँ, जिनमें "जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचंद्र जोशीकी कहानियाँ प्रेमचंदकी सामाजिकताको 'अति' मानते हुए व्यक्ति-मनकी गहराइयों में घूमती हैं।" (पृ. ३२) अज्ञेयकी प्रारंभिक कहानियों का मूल्यचिंतन समाज संदर्भोंपर आधारित था, पर उसमें अनुभवकी ऊष्माभी थी। बकौल अज्ञेय 'कलाकार निरा व्यक्ति नहीं सामाजिकभी है। व्यक्ति और समाजके प्रति उत्तरदायित्व अतिरिक्त कलाकारका कलाके प्रतिभी उत्तरदायित्वके है।' इस प्रकार लेखक अंतर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्यके द्वारा अपनी स्थापना सिद्ध करनेमें सफल हुआ है, उसकी मूल्य-दृष्टिकी स्पष्टताभी ध्यातव्य है।

'नयी कहानी' (पृ. ३७-४७) जैनेन्द्र, अज्ञेय इलाचंद जोशी आदि द्वारा व्यक्तिगत अनुभवों और शाश्वत मूल्योंसे गढ़ी गयी कहानीसे स्पष्ट अलगाव महसूसती है। कारण है तत्कालीन परिवेश और मूल्योंमें त्वरित परिवर्तन। नयी कहानीके मूल्य-बोधको लेखकने इस प्रकार स्पष्ट किया है—'क्षोभ और असंतोषकी मनःस्थिति, मूल्य संकट और मूल्य विघटनकी स्थितियाँ और स्थापित नैतिक-बोधकी चुनौतियाँ।' इस संदर्भमें लेखकने प्रतिनिधि कहानियों और उनके कहानीकारोंका हवाला देकर अपनी बातका समर्थन किया है। यथा 'मार्कण्डेयकी कई कहानियाँ आजादीके बाद राजनीतिक प्रशासनिक क्षेत्रोंमें हुए मूल्य विघटनको निरावृत करनेके साथ उत्पीड़ितोंकी बदलती हुई मानसिकताको सामने लाती हैं। ('हंसा जाये अकेला' और 'दोनेकी पत्तियाँ' उदाहरणार्थ द्रष्टव्य पृ. ३९) नयी कहानीकी सबसे बड़ी विशेषता है मध्यवर्गीय परिवारके दायरेमें घटित जीवनचक्रों तथा मूल्य-संक्रमण और मूल्य-विघटनका संपूर्ण विश्वसनीयताके साथ प्रस्तुतीकरण ('नयी कहानी' का उपसंहारात्मक कथन, पृ. ४७)। विसंगति और व्यर्थतासे जन्मी है अकहानी (पेरिसमें जन्मी एन्टी-स्टोरीका भारतीय संस्करण)। इसमें व्यक्त मूल्यहीनता या मूल्योंका विघटन देशके सामाजिक-राजनीतिक जीवनादर्शोंके अवमूल्यनसे मेल खाते हैं। 'अकहानी' और 'सचेतन कहानी' के आंदोलनमें कालावधिकी दृष्टिसे अंतर है। 'सचेतन कहानी' का जहाँ कहानीके मैनरिज्मसे विरोध है वहीं यह मनुष्यको संपूर्णता में देखनेकी आकांक्षी है। 'नयी कहानी' अपने आखिरी दौरमें जहाँ मूल्यगत अस्थिरतासे ग्रस्त थी, वहाँ 'सचेतन कहानी' इस स्थितिसे उबरनेका प्रयास है। भिन्न कहानी आंदोलनोंकी नब्ज टटोलकर लेखक न केवल उसके सूक्ष्म अंतर और अंतर्संबंधोंपर प्रकाश डालता है, वरन् उसकी पकड़ और तलस्पर्शिनी दृष्टि वस्तुस्थिति आइने की तरह साफकर देती है। लेखककी इन स्थापनाओंसे उनकी सूझबूझ और मौलिकताका भी पता चलता है। 'समांतर कहानी' 'जनवादी कहानी' 'सक्रिय कहानी' 'लघु कहानी' और 'आंदोलनोंसे बाहरकी कहानियाँ' में भी प्रतिपाद्यके प्रति लेखकको स्पष्ट धारणा और निर्णयात्मक कथनका पता चलता है। ये निबंध परस्पर पूरक हैं और विकास यात्राकी दृष्टिसे परस्परानुस्यूतभी। एक बात अखरनेवाली है। लेखकने उद्धरणकी बैसाखीका अधिकांश स्थलोंपर सहारा लिया है। कृतिकारके कथन, कृतिसे उद्धरण और कुछ आधिकारिक साक्ष्यतक तो ठीक हैं, पर

पग-पगपर आलोचना ग्रंथोंकी हवाला उतना उचित नहीं लगता। जब लेखक कृतिकी अंतरात्मामें बैठ सकता है, नीरक्षीर विवेक न्यायकर पाता है, तो उद्धरणोंके उपयोगका यह लोभ क्यों ?

विशिष्ट हस्ताक्षरोंकी कहानियोंका मूल्यांकन उनकी तबतककी प्रकाशित कहानियोंके आधारपर बड़ा समीचीन बन पड़ा है। उनके साक्ष्य संदर्भित कृतिसे ही (अधिकांश) खोजे गये हैं। मेरी समझसे यह भाग उन आधुनिक कथाकारोंको निकटसे परखनेके लिए बड़ा उपादेय है। एक जगह सबका ऐसा विस्तृत विवेचन मिलना भरसक संभव भी नहीं है। कथा आँदोलनोंपर शोधरत छात्रोंको इस पुस्तकसे निश्चयही मदद मिलेगी। पाद-टिप्पणीसे लेखक के प्रामाणिक और बहुश्रुत होनेका पता चलता है। उस आधारपर ग्रंथांतमें ग्रंथानुक्रमणिका दे दी जाती, तो पुस्तक अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी हो जाती। भाषापर लेखकका अधिकार है। वह अपनी बात समझानेमें सक्षम है। ▭▭

हिंदी कहानी : १९७९[1]

सम्पादक : डॉ. राकेश गुप्त तथा
डॉ. ऋषिकुमार चतुर्वेदी
समीक्षक : डॉ. पुष्पपाल सिंह

हिन्दीमें प्रति वर्ष विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं कथा-संकलनोंके द्वारा अनगिनत कहानियां सामने आती हैं। इन सभी कहानियोंको पढ़ पाना किसीभी व्यक्तिके लिए दुष्कर है। सुधी समीक्षक और अध्येताभी कहानियोंके इस अरण्यमें कहां-कहां भटकता फिरे !! ऐसी स्थितिमें उन व्यक्तियों एवं संस्थाओंके प्रयत्नोंका स्वागतही करना चाहिये जो कहानीके इस विपुल साहित्यसे कुछ चुनी हुई कहानियोंको हमारे सम्मुख रेखांकित करनेका प्रयास करते हैं। ऐसाही प्रयास 'हिन्दी कहानी : १९७९' है जिसमें सम्पादक-द्वयने विवेच्य वर्षकी सर्वश्रेष्ठ (??) कहानियों अथवा निरापद रूपमें कहें तो प्रमुख कहानियोंको प्रकाशमें लानेका स्तुत्य कार्य किया है। यद्यपि किसीभी ऐसे संग्रहमें किसीभी व्यक्तिको यह शिकायत और 'सही शिकायत' हो सकती है कि इस संग्रहके अमुक रचना क्यों ली गयी और अमुक रचना क्यों छोड़ दी गयी ? श्रेष्ठता और लोकप्रियताके मापदण्ड प्रत्येक व्यक्तिके अलग-अलग हो सकते हैं किंतु इस संग्रहकी समीक्षाके पूर्व अनायास ही हमारा ध्यान ऐसे अन्य प्रयत्नोंकी ओरभी चला जाता है। इस समय मेरे सामने डॉ. महीपसिंह संपादित '१९७९ की श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ' और डॉ. देवेश ठाकुर संपादित 'कथा वर्ष :१९८०' हैं (जिसमें वर्ष १९७९ की कहानियाँ हैं)। विवेच्य कथा संग्रहको इन दोनों संग्रहोंके के साथ मिलाकर देखनेसे एक बात सहजही दिमागमें आती है कि क्या एक वर्षमें हिन्दीमें दो-चारभी कहानियाँ इस स्तरकी प्रकाशित नहीं होतीं कि वे सर्वसम्मतिसे, प्रत्येक सम्पादककी दृष्टि आकृष्ट करते हुए, प्रत्येक संग्रह में स्थान पा जायें [यह महज़ एक इत्तफाक लगता है कि इन तीनों संग्रहोंमें केवल मृणाल पांडेकी 'खेल' ही एक ऐसी कहानी है जो देवेश ठाकुर और महीपसिंहके संग्रहमें स्थान पा सकी है]। यदि सभी संग्रहोंमें कुछ लेखक समान रूपसे आयेभी हैं तो फिर उनकी वही कहानी नहीं है जो दूसरे संग्रहमें दिखायी देती है। नहीं कहा जा सकता कि इसके लिए किसे दोषी माना जाये—सम्पादककी सभी कहानियाँ न देख पानेकी सीमा अथवा प्रमाद, अथवा 'अपनेही' लेखक चुननेकी बाड़ेबंदीकी सीमा अथवा फिर कहानी-समीक्षाके सही और सर्वमान्य निकषोंकी सीमा ?? स्थिति चाहे कुछभी हो, सम्पादकोंका यह योगदान नकारा नहीं जा सकता कि वे कुछ विशिष्ट कहानियोंको हिन्दी संसारके सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। इस समय हमारा मंतव्य उपर्युक्त तीनों सम्पादनोंकी तुलना करनेका नहीं है, इसलिए बातचीत सीधे कहानियोंपर लायी जा सकती है।

आलोच्य संग्रहमें बीस कहानियाँ हैं : मेरे लिए नहीं (ईश्वरशरण सिंहल) यंकम्मा (चकोर सूर्यप्रताप सिंह), कुकुरमुत्ते (जवाहरसिंह), बीचमें पड़ी चाबी (श्रीमती सरयू शर्मा), बहू बेगम(चन्द्रकिरण सौनरेक्सा), अस्तित्व के लिए (प्रेमसिंह नेगी), बच्चे (चन्द्रकिशोर जायसवाल), विवश विक्रमादित्य (उषाकिरण खान), सूना घर (कर्तारसिंह दुग्गल), शब्द बिद्ध (प्रतिमा वर्मा), खाली तारीख (मंजुल भगत), क्यों ? (शिवानी), शोभा

---

[1] **प्रकाशक : ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़ (उ. प्र.)। पृष्ठ : २६३; डिमा. ८१; मूल्य : ३५.०० रु.।**

यात्रा (भीष्म साहनी), सखी (रेणु श्रीवास्तव), सरवहारा (ऋता शुक्ल) गंधबीज (सुरेन्द्र सुकुमार), जिन्दगी का एक दिन (मिथिलेश्वर), घोड़ेका नाम घोड़ा (गिरिराज किशोर), ढाई आखर प्रेमका (मालती जोशी), सहज और सहज (सत्येन्द्र शरत्)। कर्त्तारसिंह दुग्गल मूलतः हिन्दीमें नहीं लिखते, वे पंजाबी-अंग्रेजीके लेखक हैं, उनकी अधिकांश कहानियाँ हिन्दीमें पंजाबीसे अनूदित हैं, पता नहीं उनकी 'सूना घर' क्यों इस हिन्दी कहानी के प्रतिनिधि संकलनमें ली गयी है? (कभी-कभी कुछ पत्रिकाओंमें हिन्दीतर लेखकोंकी कहानियां अनुवादके नामसे प्रकाशित नहीं होतीं जबकि वे अनुवाद होती हैं, हिन्दीमें आनेसे पूर्व वे मूल भाषामें लिखी या प्रकाशितभी हो जाती हैं)।

'कहानियां : १९७९' की अच्छी कहानियोंपर बातचीत करनेके लिए प्रारम्भकी दस कहानियोंको छोड़कर बादकी दस कहानियोंपर बातचीत की जा सकती है। मंजुल भगतकी 'खाली तारीख', शिवानीकी 'क्यों' भीष्म साहनीकी 'शोभा यात्रा', ऋता शुक्लकी 'सरवहारा', सुरेन्द्र सुकुमारकी 'गंधबीज', मिथिलेश्वरकी 'जिन्दगीका एक दिन', गिरिराज किशोरकी 'घोड़ेका नाम घोड़ा' और सत्येन्द्र शरत्की 'सहज और सहज' निश्चयही इस वर्षकी श्रेष्ठ कहानियाँ कही जा सकती हैं। रेणु श्रीवास्तवकी 'सखी' और मालती जोशीकी 'ढाई आखर प्रेमका' कहानियाँ अत्यन्त सामान्य हैं। मालती जोशीके कथा-लेखनने जिस स्तर और गरिमाका परिचय दिया है, 'ढाई आखर प्रेमका' उससे बहुत नीचे रह जाती है। ग्रामीण परिवेशके कथा-लेखनके लिए ऋता शुक्लकी 'सरवहारा' बहुत स्मरणीय कहानी है। आदर्शकी झोंकमें इस कहानीका अन्त अवश्य कुछ कमजोर हो गया है अन्यथा संक्रमणकालीन स्थितियोंसे गुजरते भारतीय ग्रामीण समाज और मानसकी अत्यन्त प्रामाणिक तस्वीर यहाँ प्रस्तुत हुई है। कथ्यके अनुरूप भाषा, अभिव्यक्ति—सभी कुछ ग्रामीण जीवनकी सांस-सांसमें रच-बसकर कागजपर उतरी हैं जिसमें कहीभी आंचलिकताका लबादा ओढ़नेका उपक्रम नहीं है। ग्रामीण समाजने विशेषतः और सारे समाजने जिस ईमानदारीकी कीमत अपनेको सब तरहसे मिटाकर दी है, बाबा सुदरसन और पौत्र सिवा—सभी उसी व्यथाको ढोते हुए पात्र बहुत जाने-पहचाने परिवेशको साक्षात् करते हैं। मुझे व्यक्तिगत रूप से यह इस संकलनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी लगी। 'खाली तारीख' (मंजुल भगत) में अपने प्रकारसे अभिजात वर्ग के ओढ़े हुए 'खालीपन' और संत्रास' को बहुत खूबीसे व्यंग्यके स्तरपर उघाड़ा गया है। 'क्यों' (शिवानी) इसी वर्गके मुक्त जीवन और 'आधुनिकतावाद' पर एक करारा तमाचा है। 'शोभा यात्रा' (भीष्म साहनी) इस वर्षकी एक बहुत अच्छी कहानी है किन्तु उसका कथ्य, मेरी दृष्टिमें, सम्पादकीय टिप्पणीसे अलग है। कहानी धर्म-कथाके माध्यमसे यह संप्रेषित करना चाहती है कि 'अनुशासन' और 'व्यवस्था' बिना भयके नहीं हो सकते—कहानी अपनी इंगितमें 'आपात्कालीन स्थिति' को संदर्भित करती है। १९७९ की कई अच्छी कहानियोंमें प्रकारान्तरसे 'इमरजैंसी' की स्थितियोंको लेखकीय सोच के साथ उभारा गया है, (यथा महीपसिंहकी 'चार मुर्गे') गिरिराज किशोरकी 'वीरगति' आदि)।

कहानी संकलनके पूर्वार्द्धमें आयी कहानियोंमें 'मेरे लिए नहीं' (ईश्वरशरण सिंहल) सामान्य कथ्यसे हटकर एक प्रेमकथा है किंतु वह किसीभी दृष्टिसे विशिष्ट नहीं बन पाती—सामान्य रोमानी प्रेम-कथाओंसे वह सिर्फ इस बातमें अलग है कि कहानीकी नारी अवसर मिलनेपर विवाह-सूत्रमें बंध जाती है, पूर्व प्रेमके नामपर बैठी नहीं रहती। 'यंकम्मा' भिखारी जीवनपर लिखी बड़ी सामान्य-सी प्रेम-कहानी है जो इसी कथ्यपर लिखी शैलेश मटियानी आदिकी अच्छी कहानियोंकी याद दिलाती है। यही स्थिति कमोबेश जवाहरसिंहकी 'कुकुरमुत्ते' और सरयू शर्माकी 'बीचमें पड़ी चाबी' कहानियोंकी है। 'बहू बेगम' (चन्द्रकिरण सौनरेक्सा) अपने कथ्यकी एक अच्छी कहानी होते हुएभी एक भावुक आदर्श और रोमानसे ग्रस्त है, जो प्रसाद-संस्थान (प्रसाद स्कूल) की कहानियोंकी याद दिलाती है। कहना न होगा कि यह आधुनिक हिंदी कहानीके मुहावरेसे पिछड़ गयी है। इसीप्रकार प्रेमसिंह नेगीकी कहानी 'अस्तित्वके लिए' अच्छी कहानी होते हुए भी अपने कथ्यमें नयी नहीं हैं, इसलिए १९७९ के प्रतिनिधि संकलनमें स्थानकी अधिकारिणी नहीं थी। 'बच्चे' (चन्द्रकिरण जायसवाल) कहानीभी अत्यन्त सामान्य है, यह जिन्दगीके किसी अहम सवालसे नहीं टकराती। 'विवश विक्रमादित्य' (उषाकिरण खान) की एक अच्छे कथ्यपर लिखी गयी कहानी है किन्तु उसमें श्यामकी मनोव्यथाका चित्रण कुछ कमजोर रह गया है जिससे यह एक बहुत अच्छी कहानी बनते-बनते रह गयी है और रियासत के सामंती वैभव और तौर-तरीकोंको ही उभारती है।

इस संग्रहको पढ़कर नहीं लगता कि हम १९७९ की कहानी, विशेषत: और समकालीन कहानी,की सम्भाव्यता की अनुभव-यात्रासे गुजर रहे हैं। समग्रत: यह संपादन समकालीन हिन्दी कहानी-लेखनके मूल स्वरों और अन्तर्धाराओंसे परिचय नहीं करा पाता। १९७९ वर्षकी अनेक अच्छी रचनाएँ (सभी नाम गिनाना संभव नहीं और उसमें मतभेदकी काफी गुंजाइश रह सकती है) वर्षके इस प्रतिनिधि संकलनमें नहीं है। फिरभी इस प्रकाशन संस्थान (ग्रन्थायन-अलीगढ़) और सम्पादक-द्वयका यह प्रयत्न इसलिए सराहनीय कहा जायेगा कि प्रत्येक वर्षकी प्रतिनिधि कहानियोंको सामने लानेका श्रमसाध्य कार्य इनके द्वारा सम्पन्न होता है। ▭▭

नाट्य-आलोचना

असंगत नाटक और रंगमंच[1]

सम्पादक : डॉ. नरनारायण राय.
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

डॉ. नरनारायण राय द्वारा संपादित पुस्तक 'असंगत नाटक और रंगमंच' में सोलह लेखकोंके लेख संकलित हैं। इनमें 'असंगत नाटक' के नामसे जानी जानेवाली नाट्य-धाराके प्राय: सभी पक्षोंपर विचार प्रस्तुत हुए हैं। लेखकभी रचनाधर्मी लेखक, समीक्षक, रंगकर्मी तथा दर्शक वर्गके प्रतिनिधि हैं। इस तरह एक मुकम्मल चित्र संकलन द्वारा हमारे समक्ष बनता है।

'एब्सर्ड ड्रामा' या 'असंगत नाटक' के नामसे ख्यात, नाट्यकी परंपरा लगभग एक दशक मात्र रही, किन्तु उसने नाट्य-रसिकोंको झकझोरकर रख दिया। हिन्दीमें तो परंपराके रूपमें यह शायदही रही हो, किन्तु इसकी चर्चा आजभी हुआ करती है। द्वितीय विश्वयुद्धके महाविनाशके बाद तनावों, बिखराव और आंतकभरे वातावरण का एक नया दौर आया जिसमें कल्पनातीत विनाशक हथियारोंके साथ निर्मम राजनीति उभरी जिसके शीत युद्धमें सारे मूल्य असंगतसे हो गये। मानव इतिहासमें अनिश्चय और आंतककी सर्वव्यापी ऐसी स्थिति पहले कभी नहीं रही—विश्वयुद्धके कालमें भी। यूरोपमें छठे दशकमें विभिन्न राष्ट्रोंके अनेक नाटककार पूरी तरह निजी प्रेरणावश ऐसे नाटकोंके सृजनमें एकसाथ संलग्न हुए जिनमें जीवनकी विसंगतियों और अर्थहीन हुए मूल्यों के भारसे दबे हुए जीवनके ऊलजलूल अस्तित्वके निरूपण हुए। इन नाटकोंके पात्र, उनकी हरकतें, उनके संवाद—सभी कुछ अनर्गल लगते हैं। एक-सी प्रवृत्ति के प्रदर्शन करते हुएभी ये नाटककार निजी कारणोंसे ही इस प्रकार की रचनाओंमें प्रवृत्त हुए। अधिकतर नाटककार अपना-अपना देश छोड़कर पेरिसमें जा बसे थे। इससे यही माना जा सकता है कि इनकी निजी मानसिकताओं के विकासके लिए पेरिसका कला-परिवेश अधिक अनुकूल रहा होगा। शायद पेरिसही इस नयी नाट्य-धाराका संचालक था जिसने अनेक कला-आंदोलनों—विशेषकर व्यक्तिवादी कला-चेतनाको प्रश्रय दिया था।

असंगत नाटकोंके रचयिता असामान्य मानसिकताके लेखक थे। आयरिश बैकेट तथा अमरीकी आल्बी इनमें सबसे संतुलित हैं। बैकेटने अतिरिक्त संवेदनशीलताको एक नाट्य-शैलीके निर्माणमें लगाया और आल्बीके नाटकों में एक प्रकारकी बौद्धिक संगति मिलती है। शेष नाटककार निजी कारणोंसे अनुभूतियोंके दबावसे ग्रस्त हैं। रूस-जन्मा आदामोव और फ्रेंच माँके रूमानियन पुत्र यूजीन आयनेस्को राजनीतिक परिस्थितियों—नाजीवाद और साम्यवादके आंतकसे ग्रस्त थे। यहूदी हैराल्ड पिण्टर का बचपन लन्दनमें आतंकभरी स्थितियोंमें गुजरा था जहाँ साथके बालक हर समय इस यहूदीको पीड़ित करने के अवसरकी तलाशमें रहते थे। ज्याँ जैने नाजायज संतान, और अपराधी था जिसे समाजके बहिष्कारने असामाजिक बना दिया था। स्मरणीय है कि इस शैली का पहला नाटककार हिन्दीका भुवनेश्वर था जो प्रतिभाशाली किन्तु घोर मर्यादाहीन और उच्छृंखल जीवन जीने वाला व्यक्ति था, जो न जाने कहाँ लावारिस हालतमें दम तोड़कर म्यूनिसिपैलिटीके खर्चेपर अंतिम संस्कारों का भागीदार हुआ, इसका पता किसीको नहीं है। अभिप्राय यह है कि ये सभी नाटककार जिन मानसिकताओं के स्वामी थे वह व्यक्तिवादी मानसिकता नाटक जैसी सामाजिक कलाके अनुकूल नहीं थी किन्तु इन्होंने बहुचर्चित नाटक रचे और अधिक समय नाट्य-धाराओंको

---

१. प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१ एफ, कमलानगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : १५२; डिमा. ८१; मूल्य : ४५.०० रु.।

प्रवाहित नहीं कर सके।

संकलनके प्रथम दो लेख प्रतिष्ठित रचनाधर्मी लेखकों कमलेश्वर तथा मणि मधुकरके हैं। कमलेश्वरने इन नाटकोंसे परम्परा, संस्कृति आदिमें दफन 'स्व' की वापिसी पायी है। अपने खास अन्दाजमें उन्होंने एब्सर्ड नाटकके प्रारंभको 'मृच्छकटिकम्' तथा सोफोक्लीजके नाटकोंमें खोजा है। इसी प्रकारके अन्दाजमें मणि मधुकरने राजस्थान के शेखावाटी ख्याल, गवरी नाट्य, चिड़वा ख्याल आदिमें एब्सर्डके मूल तत्त्वोंको खोज निकाला है। इस प्रकार दोनों विषयोन्मुखी वृत्तिसे हटकर दूरकी कौड़ी लानेमें विशेष संलग्न है। चमत्कार इस बातमें है कि कौड़ीभी स्वयं इन्होंने ही पैदा की है। लगता है कि इनपर विषय हावी हो गया है।

डी. प्रेमपतिके निबन्धमें गंभीर तथा वस्तुपरक विवेचनके साथ असंगत नाटककी एक संपूर्ण व्याख्या हुई है। असगत नाटककी नकारात्मक दृष्टिने केवल रिक्तता की ही सृष्टि की है। नैतिक या आचरण संबंधी मूल्योंसे स्वतंत्र नाट्य-रचनाकी बातको बेतुकी बताते हुए उन्होंने नाटकके सामाजिक स्वरूपको ही महत्त्व दिया है। यूरोप की पतनोन्मुखी धाराकी भौंड़ी नकलके वे विरोधी हैं। इसमें हमें आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयीके इसी प्रकारकी चेतावनीके शब्द याद हो आते हैं। प्रेमपतिने एक नाट्य-शैलीपर निष्कर्ष मात्र नहीं दिये हैं बल्कि नाटकके स्थिर मानदण्डोंकी पुष्टिभी की है।

वैजनाथ रायके निबंधमें भी कुछ ऐसेही विचार अधिक आक्रामक शैलीमें व्यक्त हुए हैं। उनके विचारमें असंगत नाटकके प्रयास आम-आदमीको उसकी संघर्ष-चेतनासे गुमराह करने और यथा स्थितिको बनाये रखने के हैं।

'असंगत नाटक'के श्रेष्ठ रंगकर्मी सत्यव्रत सिन्हा इन नाटकोंके भारी प्रेमी होते हुएभी इनकी कमियोंसे अनवगत नहीं हैं। इसलिए उनके निबंधमें सफाई देनेकी मुद्रा रही है। 'नटरंग' के अंक २४ (१९७४ ई.) में उन्होंने अपनी पसन्द प्रकट की थी—"सिद्ध नाट्य-पुरुष सैमुअल बैकेट पर मैं न्योछावर हूं। 'गोड़ोके इन्तजारमें' मुझे हजार-हजार बार करनेको मिले तो करूँगा। आयनेस्को मेरी आकांक्षा है। एब्सर्ड आल्बीभी मुझे पसन्द है।" उनसे तटस्थ तथा निस्संग समीक्षाकी अपेक्षा थीभी नहीं। किन्तु, उन्होंने गंभीर अध्ययन और ईमानदारीके साथ अपनी बात कही है। उनका आग्रह है कि इन नाटकोंको [illegible] सिद्धता यानी समाधिकी अवस्था चाहिये। इनके कलाकार समाधान नहीं देते बल्कि समाधानोंकी खिल्ली उड़ाते हैं। यह प्रश्न कि पश्चिमी जीवन-प्रणाली हमारे देशके लिए कैसे सार्थक हो सकती है, अनावश्यक है क्योंकि ईमानदार रचनाकार सार्वभौमिकताकी बात करता है, स्थानीय नहीं।

सिन्हाजीकी प्रस्तुति बौद्धिक स्तरकी है इसलि वह हमें सोचनेको मजबूर करती है। सिन्हाजीने 'विसंगतिका नाटक' कहकर इन नाटकोंको सही शीर्षकभी दिया है।

रामसेवक सिंह असंगत नाटकोंके ऐतिहासिक महत्त्व को स्वीकार करते हैं। मदनमोहन माथुरने लक्ष्मीनारायण लालके 'अब्दुल्ला दीवाना', हमीदुल्लाके 'दरिन्दे' सुशील कुमार सिंहके 'सिंहासन खाली है' आदिमें असंगत नाटक के तत्त्व भरपूर पाये हैं। हमारे विचारमें इन सोद्देश्य नाटकोंमें संगतिकी कमी या इनके लेखकोंमें व्यक्तिवादी चेष्टा कहीं नहीं है इसलिए इनकी प्रतीकात्मकताको असंगत सिद्ध करना अन्यायपूर्ण होगा। माथुरजीने भी बात कुछ अनिश्चयभरे स्वरमें प्रस्तुत की है।

नरनारायणने प्रकट किया है कि व्यावहारिक जीवन में व्यक्तिको अपने चरित्रसे भिन्न भूमिकाएँ निभानी होती हैं। यही जीवनकी आन्तरिक विसंगति है। विसंगतियोंका चित्रण नाटकका साधारण धर्म है। 'असंगत नाटक' ने इस प्रकार कुछ नया नहीं किया है। इसकी विशेषता इसकी शैलीगत भिन्नतामें मानी जा सकती हैं जिनके आधारपर इसे नया बताया जा रहा है। किन्तु ये विशेषताएँ नाटकके धर्मके लिए सहायक नहीं हैं। जीवनके प्रति नकारात्मक प्रवृत्ति इनके मूलमें विद्यमान हैं जिसने इनको अतिव्यक्तिवादी तथा दुर्बोध बना दिया है। इनको युद्धोत्तर मानसिकताकी महत्त्वपूर्ण देन मानने पर भी प्रश्न होता है कि मानव इतिहासमें विनाशकारी युद्ध असंख्य हुए हैं किन्तु नाटककार ऐसी नकारात्मक दृष्टि लेकर कभी अग्रसर नहीं हुए। दूसरे, असंख्य लेखकोंमें इने-गिने नाटककारही इस बिखरावकी मानसिकतासे क्यों ग्रस्त हैं? रायजीके समर्थनमें भुवनेश्वरका उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है जो किसी युद्धसे नहीं बल्कि सामान्य समाजसे ही त्रस्त होकर असामाजिक चिन्तन लेकर आगे बढ़े।

नरनारायण राय मूल्यांकनको जीवन-सन्दर्भोंसे जुड़ा मानते हैं। उनकी समीक्षाकी उल्लेखनीय बात यह है कि

वे व्यावहारिक समीक्षाको भी सैद्धान्तिक स्तरपर पहुँचा कर स्थायी मूल्यके निकष प्रदान करते हैं। अपने निबधमें उन्होंने नाटककी आत्माकी तलाश की है।

किरनचन्द्र शर्माने भी 'असंगत नाटकों' को नाटककी स्वस्थ परम्परासे दूर माना है। ये नाटक किसी जीवन-पद्धतिको स्वीकार नहीं करते हैं इसलिए इनमें विद्रोह नहीं है। शर्माजीने सिद्ध किया है कि हिन्दीके असंगत कहे जानेवाले नाटकभी अन्ततः संगतिपर जा पहुँचते हैं और इस प्रकार वे अपनी स्वस्थ परंपराके अंग बने हुए हैं।

प्रेमचन्द्र गोस्वामी असंगत नाटकको नकारात्मक नहीं मानते हैं।

शेष निबंधोंमें 'असंगत नाटक' की रंगमंचीय विशेषताओंपर विचार हुए हैं। किरणशंकर प्रसाद इस रंगमंचको साधनहीन अव्यावसायिक अभिनयोंके लिए आदर्श पाते हुए भी दर्शक मात्रकोभी भागीदार न बना पानेवाली बाधाओंके प्रति सतर्क हैं। गिरीश रस्तोगीने असंगत नाटकपर अधिक विचार किया है, उसके रंगमंच पर कम। किन्तु, उन्होंने 'असंगत नाटक' के दर्शनकी गहरी छानबीन की है। उन्होंने भुवनेश्वरके पहले नाटककारके रूपमें प्रतिष्ठाके दावेको पुष्टभी किया है। आत्मानन्द सिंहने दर्शकोंकी प्रतिकूल प्रतिक्रियाके खतरेको प्रकट किया है।

असंगत नाटकके रंगमंचके स्वरूपपर सबसे गंभीर विचार डॉ. चन्द्रके निबंधमें हुआ है। वे इसके सरल रंगमंचको भारतकी वर्तमान परिस्थितियोंके अनुकूल प्रकट कर इसके विकासके समर्थक हैं। कृष्णमोहन सक्सेना मुद्राराक्षसके मतसे प्रभावित जान पड़ते हैं जिसके अनुसार इसने हिन्दी रंगमंचको लोक-तत्त्वोंसे अनुप्राणित किया है। लोकनाट्य रंगमंचका सीधा सरल विधान असंगत नाट्य रंगशिल्पसे प्रभावित है, ऐसे किसीभी विचारके आभास देनेपर निश्चयही लेखकको इसका उत्तर देना होगा कि शताब्दियोंसे विकसित, भारतेन्दु आदि द्वारा गृहीत लोक-नाट्य रंगमंचका अस्तित्व कहाँसे था?

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि संकलन 'असंगत नाटक' के सभी पक्षोंको भली प्रकार प्रस्तुतकर सका है। प्रायः संकलनकर्त्ताको ऐसे कार्यमें सभी पक्षोंपर सामग्री खोजनेमें बहुत पापड़ बेलने होते हैं। श्री नरनारायण राय के अथक परिश्रमने 'असंगत नाटक' के सभी पक्षोंपर व्यापक और प्रामाणिक जानकारी जुटायी है। इस संकलनके महत्त्वपर हमें कोई आशंका नहीं है। नाट्य-अध्येयताओंको इस संकलनसे निश्चयही पूर्ण सन्तोष प्राप्त होगा। ▭▭

समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच[1]

सम्पादक : डॉ. विनय

समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

इस समीक्षककी यह धारणा रही है कि संपादित पुस्तकोंकी समीक्षाके अन्तर्गत प्रथम उल्लेख्य विषय होना चाहिये, संपादकीय दृष्टि अर्थात् वह संकलन-दृष्टि जिसे केन्द्रमें रखकर आलेख जुटाये जाते हैं और तब इसकी चर्चा होनी चाहिये कि आलेखगत सामग्री संपादकीय दृष्टि को पोषण, विस्तार और अभिव्यक्ति देनेमें कहाँतक समर्थ है। अंतिम उल्लेख्य विषय होना चाहिये आलेख और आलेखकारकी निजी सीमाएँ एवं उपलब्धियाँ। 'विचार बंध' शीर्षकसे प्रस्तुत नयी शैलीका संपादकीय एवं आवरण पृष्ठके विज्ञापनसे स्पष्ट होता है कि उक्त शीर्षकसे आयोजित इस पुस्तक द्वारा संपादकका अभीष्ट नाटक और रंगमंचके 'एक पूरे परिदृश्यकी व्याख्या-विवेचना' प्रस्तुत करना और इस क्रममें नाटक और रंगमंचके संबंधमें उठनेवाले आजके कई ज्वलंत प्रश्नोंपर विचार करता, नाटककार और रंगकर्मके बीचके 'गैप' को दूर करता रहा है। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए डॉ. विनयने आलेख को पाँच खण्डोंमें विभाजित किया है :(क) दृष्टि : विशेष लेख (ख) दिशा : रंगमंचीय अध्ययन (ग) दृष्टिकोण : नाटककार (घ) रचना : नाट्य समीक्षा (ङ) प्रभाव : संबंध। सीढ़ी-दर-सीढ़ी संपादक इन खण्डोंके माध्यमसे अपने पाठकोंको बताना चाहता है कि आजके नाट्य जगतके ज्वलंत प्रश्न क्या हैं और उनपर विभिन्न लोगों की 'दृष्टि' क्या है; रंगमंचीय अध्ययन खण्डमें वह हिन्दी रंगमंचकी यात्रा 'दिशा' का संकेत देना चाहता है।

---

१. प्रकाशक : भारती भाषा प्रकाशन, ५१८/६ बी विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : २५२; डिमा ८१; मूल्य : ५०.०० रु.।

तीसरे खण्डमें समकालीन प्रतिनिधि नाटककारोंकी रचना दृष्टिपर उनके रचना संसारके संदर्भमें आलोचनात्मक निबंधोंके जरिए समीक्षकीय 'दृष्टिकोण' प्रस्तुत किया गया है; चौथे खण्डमें सोलह नाटकोंकी अनेक नाट्य समीक्षकों द्वारा समीक्षाएँ प्रस्तुत की गयी हैं ताकि पाठक नाटककार विशेषकी रचना विशेषसे परिचित हो सकें और अन्तमें दो निबंधों द्वारा हिन्दी रंगमंचपर प्राचीन एवं परंपराका भारतके संदर्भमें एवं नवीन तथा पश्चिमके प्रभावका ब्रे‌ख्तके संदर्भमें विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार पाँच खण्डोंमें संपादकने अपने उद्देश्य तक पहुँचनेकी कोशिश की है और इस कोशिशमें उन्होंने चालीस लेख एवं समीक्षाएँ संकलित की हैं, उन्तीस लेखकोंका सहयोग प्राप्त किया है (जिनमें से इक्कीसकी एक-एक, छः की दो-दो, एककी तीन तथा एककी चार रचनाएँ पुस्तकमें संकलित हैं)। यहीं प्रासंगिक रूपसे यह उल्लेखभी आवश्यक प्रतीत होता है कि संपादक डॉ. विनय 'दीर्घा'नामसे एक त्रैमासिक पत्रका भी संपादन करते हैं। १९८१ में 'दीर्घा' का 'समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच' शीर्षकसे विशेषांक प्रकाशित किया गया था, और पत्रिकाके लिए सामग्री आमंत्रित की गयी थी। पत्रिकाके इस विशेषांककी जिल्द बदलकर उसी संस्करणको पुस्तकाकार बंधवाकर एक पुस्तकके रूपमें प्रस्तुत कर दिया गया है। ध्यातव्य है कि समर्पणके पृष्ट से अंततक अक्षरशः वही सामग्री उसी पृष्ठानुक्रमसे मुद्रित है। इस स्थितिमें अगर कहींभी 'दीर्घा' के उक्त विशेषांक के पुस्तकाकार प्रकाशित किये जानेकी सूचना अंकित नहीं हो सकी है तो आश्चर्य नहीं किया जाना चाहिये क्योंकि छपाई वस्तुतः एकही बार हुई, केवल जिल्द दो किस्मोंमें बाँधी गयी।

संपादककी दृष्टिको पोषित करनेके लिए प्रथम खण्ड के लिखे गये लेखोंमें पहला है सत्येन्द्र तनेजाका लेख (नवें दशकका बुनियादी सवाल)। हिन्दीका अपना कोई रंगमंच नहीं, प्रसादकी इस उक्तिको आजतक दुहराया गया है। तनेजा इसके विपरीत हिन्दीके अपने रंगमंचको विभिन्न कोणोंसे स्थापित करनेकी कोशिश करते हैं पर किसी निष्कर्षतक पहुँचनेके क्रममें प्रसादकी रायके आसपास ही आ टिकते हैं। विभिन्न नाटकोंके साक्ष्यसे आज के विद्रोही युवा मानसकी तस्वीरके, अंकनके क्रममें जगमोहन चोपड़ाको ऐसा महसूस होता है मानों नाटककारोंने समस्याकी तहतक पहुँचनेकी कोशिश किये बिना, किसी 'वाद' से प्रभावित होकर युवा पीढ़ीके साथ न्याय नहीं किया है, उसे त्रिशंकु बनाकर रख दिया है। 'राजनीतिक चेतनाका सवाल' उठाते हुए अपने लेखमें अतुलवीर अरोड़ा ने यह स्पष्ट करनेकी चेष्टा की है कि समकालीन समाज राजनीतिकी उपज है और नाटक-रंगमंच उसे परिभाषित कर रहे हैं, भाष्य अभी पूर्ण नहीं हुआ है। रीतारानी पालीवालने समकालीन कतिपय वरिष्ठ नाटककारोंमें नयी रंग चेतनाकी स्थितियाँ रेखांकित करते हुए अपने लेख 'समसामयिक रंगचेतना' में यह स्थापित किया है कि नवीन रंगचेतना आजादीके बाद और वहभी मुख्यतः पश्चिमी प्रभावसे विकसित हुई। 'समकालीन नाट्य लेखन और रंगकर्म' पर विहंगम दृष्टि डालते हुए गिरीश रस्तोगीने एक संवादहीनताकी स्थिति रेखांकित की है जिसने नाटक और रंगमंचको नाटककार रंगकर्मी और दर्शकों तक सीमितकर दिया है। भाषा, संस्कृति, साहित्य आदिसे सम्बद्ध लोग अभीतक इस ओर झुक नहीं पाये हैं फलतः अबभी एक जड़ता और शून्यता व्याप्त है। 'चिरंजीत' ने अपने निबंध 'रेडियोकी हिन्दी-उर्दू के नाट्य साहित्यको देन' में एक माध्यम और शिल्पके रूपमें रेडियोके प्रभावका अन्वेषण हिन्दी-उर्दू के कतिपय नाटकों के प्रसंगसे प्रस्तुत किया है। भगवान दासने 'काव्य नाटक (और उसके) आंतरिक रंगमंच' पर विचार करनेकी चेष्टामें 'काव्य', 'नाटक', 'शब्द' आदिपर चिन्तन प्रस्तुत किया है, दो काव्य नाटकोंका मूल्यांकनभी, लेकिन 'आंतरिक रगमंच' का कोई स्वरूप स्पष्ट नहीं कर पाये हैं। 'रंग निर्देशन : ठहरावकी परख' में मुद्राराक्षस निर्देशन में आये ठहराव और रंगकर्मके पिछड़ते जानेकी बात करते हैं पर ठोस प्रमाण और तर्कका आधार नहीं लेते, कारण है दो पृष्ठोंका आलेख। कृष्णदत्त पालीवालने 'आधुनिक पाश्चात्य रंग दृष्टि' पर एक सुगठित और परिचयात्मक निबन्ध प्रस्तुत किया है। बाल साहित्यके विशेषज्ञ लेखक हरिकृष्ण देवसरे 'हिन्दीके बाल नाटक' पर एक संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत करते हैं और पहले पैराग्राफके अलावा कहीं प्रभावित नहीं करते। मोटे तौरपर इस खण्डके दस विचार प्रधान निबन्धों द्वारा संपादकके संकल्पको अभिव्यक्ति मिल जाती है कि इस सामग्रीसे समकालीन नाटक और रंगमंचके संपूर्ण परिदृश्यपर छिटफुट ढंगसे विचार सम्भव हो सका है और कतिपय गम्भीर प्रश्नोंसे जूझनेकी कोशिशभी की गयी है।

दूसरे खण्डमें 'रंगमंचीय अध्ययनकी दिशा' का

संकेत करनेवाली सामग्री है बंबई, उज्जैन, दिल्ली और गोरखपुरकी रंगमंचीय गतिविधिपर कमला व्यास, पंकज पाठक, प्रताप सहगल, और गिरीश रस्तोगीकी 'नटरंग' (त्रै.) शैलीकी ४ टिप्पणियाँ। समकालीन रंगशिविर पर जितेन्द्र कौशलकी टिप्पणी भारतमें 'थियेटर वर्कशाप' गतिविधिपर अच्छी जानकारी देनेवाली सामग्री है। इस पूरे सिलसिलेमें बेतुके ढंगसे विन्यस्त की गयी पर विषय की दृष्टिसे एकमात्र उपयुक्त रचना महेश आनन्दकी है 'कहानी : रंगमंचका नया आयाम'। इस खण्डमें ऐसीही सामग्री नृत्यनाट्य, मनोशारीरिक रंगमंच, असंगत नाट्य आदिपर होनी चाहिये थी जिनसे रंगमंचकी गति-विधिकी दिशामें वाजिब चर्चा शामिल हो पाती। दिल्ली, बम्बई, उज्जैन और गोरखपुरकी प्रदर्शन गति-विधिके आँकडे ब्यौरे आदिसे रंगमंचकी वि[illegible]नात्मक दिशाका अध्ययन पूरा नहीं हो पाता। अतः यह खण्ड संपादकके संकल्पको पूरा करनेमें अत्यल्प योगदान देता है और सामग्री चयनकी संपादकीय दृष्टिपर पुनर्विचारकी जरूरत छोड़ जाता है।

तीसरे खण्डमें लक्ष्मीनारायण लालके नाटकोंमें आंतरिक रंगमंच (नरनारायण राय), शंकर शेषके नाटकों की अन्तर्यात्रा (रीता कुमार), सुरेन्द्र वर्माके नाटकोंका संसार (व्रजराज किशोर), मुद्राराक्षसके नाटक (सुरेन्द्र तिवारी), कुसुम कुमारके नाटक (रीतारानी पालीवाल), नाटककार मणि मधुकर (कुलदीप कौर) लेख संकलित हैं। कुसुम कुमारके अलावा शेष नाटककार इस दृष्टिसे शीर्षक बननेके हकदार हैं कि उन्होंने किसी-न-किसी रूप में अपनी पहचान कायमकर ली है। कुसुम कुमारको पांक्तेय नाटककर्त्रीके रूपमें अभी स्वीकार नहीं किया जा सकता, यह बात उनकी समीक्षिकाके लेखमें नहीं छुप पायी है। शेष सभी निबन्ध नाटककारके किसी-न-किसी पक्ष विशेषको उनकी रचनाओंके संदर्भमें परिभाषित करते हैं।

चौथे खण्डमें लक्ष्मीनारायण लाल जैसे स्थापित एवं बहुचर्चित नाटककारसे लेकर डॉ. विनय जैसे सद्यः नवोदित नाटककारोंके एक-एक नाटक (किसीके तो एकमात्र नाटक) की समीक्षाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। नाटकोंके चुनावके प्रति कोई विशेष दृष्टि नहीं है और न उनमें शैली-शिल्प-कथ्यका उल्लेखनीय वैविध्य ही है। विभु कुमार और डॉ. विनयके नाटकोंके चयनका कोई 'विशेष' औचित्य स्पष्ट नहीं होता। समीक्षकोंमें से काफी नाम नये हैं तो अपने खास ढर्रेपर चल रहे जयदेव तनेजा और महेश आनन्द जैसे समीक्षकभी शामिल हैं। अपनी बेबाकी में कृष्णदत्त पालीवाल और गिरीश रस्तोगीकी समीक्षाएँ प्रभावशाली हैं, एक दृष्टि और दर्शनभी उनके पीछेसे झाँकता है।

अन्तिम खण्डमें हिन्दी रंगमंचपर पड़नेवाले विभिन्न रंग प्रभावोंका अन्वेषण करनेवाले दो निबन्ध हैं। विजय चौधरीने ब्रैख्तके संदर्भमें हिन्दी रंगमंचकी समस्याओं-विशिष्टताओंका आकलन किया है तो इन्द्रनाथ चौधरीने भरत और ब्रैख्तके रंग-दर्शनकी तुलना की है। यह खण्ड विश्लेषण और सामग्रीकी दृष्टिसे एकदम कमजोर खण्ड है जबकि गंभीरतासे इस खण्डका विन्यास किया जाता तो शायद यही खण्ड सबसे उपयोगी होता। हिन्दी रंग-मंचपर यथार्थवादके बाद एब्सर्ड नाट्य, विभिन्न पश्चिमी रंग शैलियों, विभिन्न प्रादेशिक रंगमंच एवं देशके विभिन्न लोकनाट्योंका व्यापक प्रभाव पड़ा है और आज के हिन्दी रंगमंचने दस साल पूर्वकी स्थितिकी तुलनामें अप्रत्याशित प्रगति की है। समसामयिक रंगचेतनापर लिखते हुए रीतारानी पालीवालके समक्ष इन पक्षोंको उधेड़नेके पर्याप्त अवसर थे पर शायद वे संपादकीय निर्देशसे बँधी रह गयी हैं। कृष्णदत्त पालीवालने कुछ पश्चिमी उपलब्धियोंका उल्लेख किया है पर भारतीय रंगमंच (जैसे बादल सरकार, मुद्राराक्षस,...) में इन प्रभावोंका अन्वेषण वहाँ विषयके दायरेमें संभव नहीं था, ये सारे शेष कार्य इस अन्तिम खण्डमें होने थे।

इस संपूर्ण आयोजनको सामने रखकर यही कहा जा सकता है कि सम्पादकने उद्देश्य बड़ा व्यापक रखा और वहाँतक पहुँचनेके उसके संकल्पमें भी कहीं कमजोरी नहीं आयी है, लेकिन विषय-वस्तुके आयोजनमें उनकी दृष्टि स्पष्ट नहीं रह सकी है जिसके कारण प्रायः सभी खण्डों में अनेक पक्ष यूँ ही अछूते रह गये हैं, जिनपर अवश्य चर्चा होनी थी जैसे प्रथम खण्डमें हिन्दी रंगमंचके परिवर्तनकी रूपरेखा और उन परिवर्तनोंकी अनुकूलता-प्रतिकूलतापर, दूसरे खण्डमें विभिन्न नाट्य केन्द्रोंकी रपटकी जगह आजकी विभिन्न नवप्रचलित रंग शैलियों के चरित्रकी पड़तालकी, तीसरे खण्डमें कुसुम कुमारसे पहले हमीदुल्ला, वृजमोहन शाह, रेवतीशरण शर्मा, दया-प्रकाश सिन्हा, गिरिराज किशोर, आदि जैसे समकालीन नये नाटककारोंमें से नाटककार लिये जाने थे। तो चौथे खण्डमें मादा कैक्टस, एक और अजनबी, तालोंमें बंद प्रजा-

तंत्र, कृतिविकृति, पांचवां सवार, पहला विद्रोहीकी जगह एक सत्य हरिश्चन्द्र, अग्निलोक, बुलबुल सराय, आधे-अधूरे, राजा बलिकी नयी कथा, उत्तर उर्वशी, सिंहासन खाली है आदि नाटकों जैसे नाटक चुने जाने चाहिये थे। अन्तिम खण्डके बारेमें चर्चा की ही जा चुकी है। निष्कर्षतः संकल्प एवं उद्देश्यके निर्वाहकी चेष्टाओंके बावजूद 'नाटक और रंगमंचके पूरे परिदृश्य' की विवेचना-व्याख्या संभव नहीं हो पायी है, उद्देश्य अधूरा रह गया है। इन संबद्ध सभी जरूरी सवालोंपर तो नहीं पर कुछ खास मुद्दोंपर बात की गयी है। उम्मीद है आगे इससे भी सुनियोजित रचनाका संपादन डॉ. विनय कर सकेंगे। ▭

नटरंग विवेक[1]

लेखक : डॉ. नरनारायण राय

समीक्षक : डॉ. धर्मदेव तिवारी

आज नाटक और रंगमंचसे सम्बद्ध जिनमें विद्वानोंकी आलोचनात्मक कृतियाँ सामने आ रहीं हैं, उनमें युवा-लेखक,चिन्तक डॉ. नरनारायण राय अग्रणी हैं। अद्यावधि नाटक एवं रंगमंचसे सम्बद्ध उनकी आधे दर्जनसे भी अधिक किताबें तथा कई दर्जन निबन्ध प्रकाशमें आ चुके है, जिनमें 'नाटककार लक्ष्मीनारायण लालकी नाट्य साधना' 'नाटककार लक्ष्मीनारायण मिश्र' तथा 'आधुनिक हिन्दी नाटक : एक यात्रा दशक' विद्वानोंके बीच बहुचर्चित ग्रन्थ हैं। उनकी कृतियोंके अध्ययन-विश्लेषणसे बोध होता है कि उनमें विषय-वस्तुकी स्पष्टता, चिन्तनकी स्थिरता, विवेकशील तार्किकताकी त्रिवेणी है। यह न केवल उनके लिए, बल्कि हिन्दी साहित्यके अध्येताओं तथा भाण्डारके लिएभी सुखद है।

आलोच्य कृति आठ निबन्धोंका संग्रह है, जिनमेंसे, सूचनाके आधारपर एक निबन्ध 'भारतीय जीवन-दर्शन और कामदीका स्वरूप' नाटक और रंगमंच शीर्षकसे 'चन्दूलाल दुबे अभिनन्दन ग्रन्थ' के लिए लिखा गया था, जो १९७९ में प्रकाशित हुआ। यदि सूचना ठीक है, तो उक्त निबन्धका 'नाटक और रंगमंच' शीर्षक विषय-प्रतिपादनकी दृष्टिसे असंगत है। इसके अतिरिक्त इसमें संकलित निबन्ध हैं—'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच : प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व'; 'संस्कृत नाटक और हिन्दी रंगमंच'; 'विधागत सांकर्यकी सृष्टि : नृत्य नाट्य की रंगदृष्टि'; 'रंग-संभावनाओंकी दस्तकें : बाल रंगमंच'; 'पश्चिमी चिन्तनका भारतीय संस्करण : असंगत नाट्य'; 'आधुनिक रंग-प्रयोग : कहानियोंका रंगमंच'; 'एकान्तिक रंगसाधना : शारीरिक रंगमंच'। इन निबन्धोंके विषय-प्रतिपादनकी दृष्टिसे दो वर्ग बनते हैं—(क) पहले वर्गमें वे निबन्ध आते हैं, जिनमें केवल नाटक पर चर्चा है और (ख) दूसरे वर्गमें वे निबन्ध रखे जायेंगे, जिनमें नाटक और रंगमंच दोनोंकी चर्चा की गयी है। इनके अतिरिक्त कोई तीसरा वर्गभी रंगमंचको रूपायित करनेवाले निबन्धोंके आधारपर बना सकता है, पर यह इसलिए स्वीकार्य नहीं होना चाहिये कि जहाँभी रंगमंचकी व्याख्या प्रस्तुत की गयी है, वहाँ नाटककी चर्चा प्रासंगिक रूपसे सही आ गयी है।

विवेच्य कृतिके पहले वर्गके निबन्ध हैं 'भारतीय जीवन-दर्शन और कामदीका स्वरूप' और 'पश्चिमी चिंतन का भारतीय संस्करण : असंगत नाट्य।' मानव-जीवन-दर्शन यथार्थवाद एवं आदर्शवादका सम्मिश्रण रहा है। सच्चाई यह है कि कोई न केवल यथार्थवादी है और न केवल आदर्शवादी। फलतः यथार्थवादी या आदर्शवादी खेमा बनना अपने-आपमें भ्रामक है। अतिशयताकी दृष्टिसे यदि उक्त खेमे बनाये जाते, तो बहुलांश ठीक है। इस आधारपर भारतीय जीवन आदर्शवादी कहा जायेगा और उसका उद्देश्य सुखोपलब्धि, आनन्दोपलब्धि है। इसके विपरीत पश्चिमी जीवनादर्श यथार्थवादी है। यही कारण है कि भरत अरस्तू समकालीन होते हुएभी भरत ने नाटकको सुखान्त माना, अरस्तूने दुःखान्त। यों, तो गम्भीर चिन्तन-मननके बाद यह भेद निराधार लगता है, जिसे विद्वान् लेखकने भी उठाया है और विवेकशील तर्क के आधारपर इस विभाजनको अस्वीकार किया है। कामदी और त्रासदीका विभाजन नाटकके अन्तको लेकर हैं। इसपर लेखकीय सटीक प्रश्न है 'अगर त्रासदी और

---

१. **प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू. बी. बैंग्लो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : ११६; डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।**

कामदी केवल अन्त (परिणति) की दृष्टिसे अलग-अलग हैं, तो उनके विभाजनका आधार कितना उचित है ? (पृ. २७) । यह निर्विवाद तथ्य है कि नाटकका अन्त आनन्दमें होता है, जिसे हम दूसरे शब्दोंमें रस दशा या सुखोपलब्धिकी अवस्थाभी कह सकते हैं। अतः समस्त दृश्य-काव्यको केवल नाटककी आख्यासे अभिहित करना चाहिये ।

इस वर्गका दूसरा निबन्ध है—'पश्चिमी चिन्तनका भारतीय संस्करण : असंगत नाट्य।' यहाँ 'असंगत' व्याख्येय है । असंगत-निर्धारणका आधार क्या होगा ? प्रकृति या समाज । आवरणोंके भीतर जो हम हैं, वही प्रकृति है और सामाजिक मान्यताएँ समाज । स्पष्ट है जो मूल प्रकृति है, वही संगत और उसपर जो आवरण है, वही असंगत । किन्तु यहाँ 'असंगत' जिस अर्थमें आया है, वह उक्त मान्यताके विपरीत है। फलतः सामाजिक धारणा-मान्यताके अनुकूलको संगत और उसके बन्धनको तोड़ना ही असंगत । दूसरे शब्दोंमें हम कह सकते हैं कि जो है वह 'असंगत' और जो होना चाहिये वह 'संगत'। इस प्रचलित मान्तता-सिद्धान्तके आधारपर ही 'असंगत' की व्याख्या की जाती रही है । इस मतका आधार-स्तम्भ है भारतीय जीवन-दर्शन । भारतीय जीवन-दर्शन 'जो है' में विश्वास न कर 'जो होना चाहिये' में विश्वास करता है और पश्चिमी जीवन-दर्शन 'जो है' में । यही कारण है कि 'असंगत' को भारतमें बढ़ावा नहीं मिला और पश्चिम में मिला । इसलिए असंगत नाटकोंका जन्म पश्चिममें होता है, जिसका भारतीय संस्करण किया गया और कुछ असंगत कृतियां (नाटक) देखनेमें आयीं अवश्य, पर उसकी दृढ़ या सुदीर्घ परम्परा कायम होनेकी सम्भावना को स्वीकारा नहीं जायेगा, क्योंकि वह जीवनादर्श तथा अनुभूतिके अनुकूल नहीं है । फलतः अमान्य ।

आलोच्य कृतिके दूसरे वर्गके निबन्ध हैं - 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच : प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व'; 'संस्कृत नाटक और हिन्दी रंगमंच'; 'विधागत सांकर्यकी सृष्टि : नृत्य-नाट्यकी रंगदृष्टि'; 'रंग-सम्भावनाओंकी दस्तकें : बालरंगमंच'; 'अत्याधुनिक रंग प्रयोग : कहानियोंका रंगमंच'; और एकान्तिक रंग-साधना : शारीरिक रंगमंच' ।

द्वितीय वर्गके प्रथम निबन्धमें 'प्रयोगधर्मी' शब्द व्यक्तित्वका विशेषण है । इसका अर्थ हुआ—प्रयोग करने वाले व्यक्ति । ये प्रयोग नाटक और रंगमंच दोनों स्तर-पर हुए हैं । प्रयोग यानी Experiment और Experiment फल या परिणाम नहीं होता, पर यहां प्रयोग फल या परिणाम (Result) के अर्थमें व्यवहृत है । स्वतन्त्रता-बाद नाटक रचना-शिल्प, शैली तथा रगमचकी दिशामें जो मोड़ आये हैं, उन्हें यहां उकेरा गया है । इसी विश्लेषणके बीच लेखक अपनी मान्यताओंको भी स्थिर करता चलता हैं ।

विवेच्य वर्गका द्वितीय निबन्ध हिन्दी रंगमंचोंपर संस्कृत नाटकोंके प्रदर्शनसे सम्बद्ध है । अद्यावधि हिन्दी रंगमचकी जो प्रगति हुई है लेखक उससे बहुत अधिक सन्तुष्ट दीख रहा है । वह घोषणा करता है 'हिन्दी रंगमंच अब सम्पूर्ण भारतीय संस्कृतिको प्रतिनिधित्व देने लगा है । (पृ. ४५) । हिन्दी रंगमंचके निर्माणपर संस्कृत रगमंच परम्परा, पश्चिमी यथार्थवादी शैली तथा प्रादेशिक रंगमंचोंका प्रभाव पड़ा है । आजभी 'हिन्दी रंगमंच के लिए संस्कृत रंगमंचकी आवश्यकता' बनी हुई है। हिन्दी रंगमंचपर संस्कृत नाटकोंकी प्रस्तुति की गयी है, वह जितना सुखद है,उतनाही दुःखदभी । इसलिए स्वीकार किया गया है कि 'हिन्दी रंगमंचपर संस्कृत नाटकोंकी प्रस्तुति-शैलीके विषयमें एक निश्चित दृष्टिकोण अपनाने की अभीभी आवश्यकता बनी हुई है, जिसपर सम्पूर्ण रंगजगत्को गम्भीरतापूर्वक विचार करना है।' (पृ. ५५)

प्रस्तुत वर्गका तीसरा निबन्ध 'नृत्य-नाट्यको रूपायित करता है । 'नृत्य-नाट्य' नयी विधाके रूपमें स्वीकारा गया है । अनेक विद्वानोंके मतोंको उपस्थित करते हुए लेखकने मन्तव्य दिया है कि 'जब किसी कथा अंश को नृत्यकी भाषामें अन्य उपरंजक कलाओंके साथ दर्शक समुदायके समक्ष मंचित किया जाता है तो आरंगणके इस सम्पूर्ण व्यापारके रूपमें प्रस्तुत दृश्य रचना 'नृत्य-नाट्य होती है ।' (पृ. ६०) । इस नयी विधामें नृत्य-नाट्यका सम्मिश्रण है । अतः यह संकरी विधा है। यह संकरी विधा 'यूरोपीय 'बैले' पद्धतिपर निर्मित एक नवीन रंग परम्परा हैं।' (पृ. ६६) । इस सन्दर्भमें मध्यकालीन लोक-नाट्योंके पुनरवलोकनकी आवश्यकता बनी हुई है। यह ठीक है कि उदयशंकरका 'राधाकृष्ण' बैलेके अध्ययन के बाद उससे प्रभावित होकर सामने आया है। इसीलिए इसे सर्वांशतः पाश्चात्य देन मानकर मौन हो जाना ठीक नहीं है । मेरा विश्वास है कि यदि इसे मध्यकालीन लोक नाट्योंसे जोड़ा जाये, और इसकी उत्पत्तिके उत्स खोजे जायें, तो अवश्य सफलता मिलेगी । असमके शंकरदेवने

'चित्र यात्रा' नामक एक नाटक लिखा था, जो असम
है। अनुमान किया जाता है कि उक्त नाटक आलेख रूप में नहीं था, वल्कि रूईके सहारे पर्देपर अनेक चित्र बना कर नृत्यादिके साथ उसे दर्शकोंको दिखलाया गया था। आज इस अँचलमें 'भाओना' लोकनाट्य प्रचलित हैं, जो 'नृत्यनाट्य' के बहुत अधिक करीव है। अतः इसपर पुनः परीक्षणकी आवश्यकता बनी हुई है।

व्याख्येय वर्गका चौथा निबन्ध 'बाल रंगमंच' का प्रतिपादन करता है। बाल मनोविज्ञानने सिद्ध कर दिया है कि वच्चे वयस्कोंकी गतिविधियोंका अनुकरण करते हैं। वे व्यवस्था-अव्यवस्थासे सर्वथा परे होते हैं। बच्चे राष्ट्रके भविष्य हैं। अतः उनके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकासकी व्यवस्थाकी आवश्यकताको नकारा नहीं जा सकता। 'रंगमंच' उनके बहुमुखी विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है। स्वतन्त्र भारतका सम्बन्ध अन्य विकसित राष्ट्रोंसे हुआ और इसी संदर्भमें अन्य देशोंमें स्थापित 'बाल-रंगमंच' की भी जानकारी मिली। उसके बाद इस दिशामें कार्य होने लगे और कुछ 'बाल-रंगमंच' की स्थापनाभी की गयी। बाल-रंगमंचकी उपादेयतापर लेखकीय विचार सटीक हैं : 'बाल-रंगमंचके व्यापक प्रचार-प्रसार और उपयोगसे सम्यक् रूपसे विकसित व्यक्तित्ववाले नागरिकोंकी पीढ़ी तैयार की जा सकती है जिससे राष्ट्रीय जीवनभी उन्नत एवं शक्तिशाली हो सकेगा। (पृ. ७५)।' इस दिशामें अभी पर्याप्त पहल करनेकी आवश्यकता बनी हुई है।

इस वर्गका पांचवां निबन्ध कहानियोंको मंचित करने के प्रयोगसे सम्बद्ध है। यह अत्याधुनिक प्रयोग है।' हिन्दी में अभिनेय नाटकोंका नितान्त अभाव है अतः उसे पूरा करनेके लिए कोई रास्ता तलाश किया जाना चाहिये और इसी तलाशके परिणामस्वरूप यह तय किया गया कि अभिनेय कहानियोंको रंगमंचपर प्रस्तुत किया जाये।' (पृ. ६५)। इस दिशामें देवेन्द्र राज अधिक सक्रिय हैं। कहानियोंको नाट्य रूपमें रूपान्तरितकर मंचित करना उद्देश्य नहीं, बल्कि कथ्य, शब्द और दृश्यका मँचन—जिससे एक सम्पूर्णताका दृश्य मंचपर उपस्थित हो सके। यहां उसका कहानीत्व बना रहता है। यदि निदेशक कहानीके प्राणकी रक्षा मंचनके समय नहीं कर पाता है, वह सफल मंचन नहीं कहा जायेगा। कहानियोंका मंचन अभिनयाश्रित कम भावाश्रित अधिक हैं। डॉ. रायने यह स्वीकार किया है कि 'यह एक नवविकसित रंगशैली है

(पृ. १०४) इसके रंगमंचके स्वरूप और नाट्य सिद्धान्तको स्थिर होनेमें अभी समय लगेगा।' (पृ. १०५)। इतना स्वीकार किया जायेगा कि इस दिशामें जो चेष्टाएँ हो रही हैं, वे सुखद हैं अवश्य, पर अधिक नहीं है।

शारीरिक रंगमंचको प्रतिपादित करनेवाला इस वर्ग का अन्तिम एवं छठा निबन्ध है। यह निबन्ध प्रस्तुत विवेच्य ग्रन्थका भी अन्तिम निबन्ध हैं। इसके शीर्षकमें 'एकान्तिक' शब्दका प्रयोग हुआ है, किन्तु उसे ऐकान्तिक होना चाहिये था। डॉ. रायने स्वीकारा है—'मनोशारीरिक रंगमंच हिन्दी रंगमंचपर किया जा रहा एक अद्यतन नवीन रंग-साधना है।' (पृ. १०६)। सच तो यह है कि मनोशारीरिक रंगमच पिछले चार-पांच वर्षोंकी निधि है। फलतः अभी रूप-निर्धारणकी स्थिति पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पायी है। इसे संजोने-संवारनेमें श्री शशांक बहुगुणा और विजय सोनी दत्तचित्त दीख रहे हैं। इन दोनोंके साथ बादल सरकारका नामभी लिया जायेगा। 'ग्रोटोव्स्की' का रंगकर्मी चिन्तन आज विश्वविख्यात बनता जा रहा है। उसीके चिन्तन प्रभावसे मनोशारीरिक रंगमंचकी उत्पत्ति मानी जा सकती है। इसकी आख्यासे ही स्पष्ट होता है कि 'इस रंग प्रदर्शनकी शैलीमें शरीर को एकान्त महत्त्व प्राप्त है। × × × यहां कथ्यकी अभिव्यक्तिका एक मात्र अध्ययन शरीर है।' (१०६) यह अद्यतन शैलीने 'शब्दोंकी सत्ताके प्रति विद्रोह किया है।' (पृ. १११)। सच पूछा जाये तो 'शारीरिक रंगमंच आवेगोंकी अभिव्यक्ति' है। डॉ. रायने इसी परिप्रेक्ष्य में मन्तव्य स्थापित किया है कि 'शारीरिक रंगमंचका प्रयोग उन अभिव्यक्तियोंके लिए किया जाये जहाँ भाषा वांछित अर्थ संप्रेषित करनेमें × × × असमर्थ साबित हो रही हो।' (पृ. ११२)।

आलोच्य कृतिका जब हम समग्रतामें विश्लेषण करते हैं, तब यह निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी नाटक और रंगमंच विविध प्रयोगोंके दौरसे गुजर रहे हैं। यहां विवेचित समस्त निबन्ध अपने-आपमें पूर्ण हैं। साफ-सुथरी, सहज-बोधगम्य भाषा इसकी अन्यतम विशेषता है। आशा हैं डॉ. राय भविष्यमें इनसे सम्बद्ध पृथक् ग्रन्थ देकर एतद् विषयक तथ्योंका विशद रूपसे उद्‌घाटन करेंगे। अपने अनेकविध वैशिष्ट्योंके कारण विवेच्य कृति पठनीय एवं संग्रहणीय बनी है। □□

नाट्य-परिवेश[1]

लेखक : कन्हैयालाल नन्दन

समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

समीक्ष्य कृतिका वस्तु-विधान पांच खण्डोंमें आयोजित किया गया हैं। आयोजनका उद्देश्य है 'एक काल खण्डमें रचे, खेले और अनुभव किये जानेवाले (भारतीय) रंगमंचकी अन्तर्यात्राका एक जीवन्त साक्ष्य' प्रस्तुत करना; नीरस नाट्य समीक्षासे ऊबे हुए पाठकोंको ताजगी का अनुभव देना; रंगकर्मके विभिन्न पहलुओंपर सोच-विचार प्रस्तुत करना ताकि रंगमंचके विकासकी मुकम्मिल तस्वीर तैयार हो सके (फ्लैप-२ का विज्ञापन)। इस उद्देश्यको फलीभूत बनानेके निमित्त पांच किस्मकी चीजें इस पुस्तकमें संकलित की गयी हैं।

प्रथम खण्ड 'आजका रंग जीवन : एक अन्तर्यात्रा' लेखकके व्यक्तिगत संस्मरणोंपर आधारित पुस्तकका 'भूमिका' अंश है जिसमें आनुषंगिक रूपसे लेखकने ग्रामीण और नागरी रंगमंचपर अपने विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। इस भूमिका अंशका दूसरा महत्वपूर्ण उपयोग है नाट्य समीक्षक और नाट्य समीक्षापर लेखकीय दृष्टिकी अभिव्यक्ति। पहलेही पृष्ठपर लेखकने 'प्राध्यापक समीक्षक' के 'अज्ञान' पर अपनी चिंता प्रकट कर दी है (यह दीगर बात है कि श्री नन्दनभी शुरूमें अध्यापकही रहे)। अपनी सरस नाट्य समीक्षाओंके जरिये प्राध्यापकीय समीक्षाओंसे ऊबे पाठकोंको उन्होंने अगले खण्डमें राहत पहुंचानेकी काफी कोशिश की है। इस खण्डमें लगभग सैंतालिस नाटकोंके प्रदर्शनसे प्राप्त अनुभवोंपर आधारित समीक्षाएँ (रंग-समीक्षा या प्रस्तुति समीक्षा) तेईस उपशीर्षकोंमें प्रस्तुत की गयी हैं। इनमें हिन्दीके नाटकभी है, विभिन्न भारतीय भाषाओंके नाटक भी और अन्तमें तो लंदनमें देखे अंग्रेजी नाटक 'ओह कैलकटा' की विस्तृत रंग समीक्षाभी दी गयी है। इस प्रकार भारतीय रंगमंचकी मुकम्मिल तस्वीरको विश्व

---

[1] प्रकाशक : शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : २३४; डिमा. ८१; मूल्य : ५०.०० रु.।

रंगमंच या अंग्रेजी रंगमंचसे भी जोड़नेकी कोशिश की गयी है। नाट्य समीक्षाके इस खण्डमें तीन-चार नाटकों की बात एकही उपशीर्षकमें औसतन एक पृष्ठकी दरसे प्रस्तुत की गयी है। उदाहरणके लिए पहलेही उपशीर्षक को देखा जाये; इस समीक्षामें तीन नाटकोंके प्रदर्शनपर तीन पृष्ठोंकी कुल ६१ पंक्तियोंमें समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। प्रस्तुत समीक्षामें समीक्षकने सबसे पहले निर्देशकका, फिर रंगशालाका, उसके बाद नाटककारका, प्रकाश-व्यवस्था और दृश्य-परिवर्तन प्रणालीका परिचय दिया है। प्रदर्शन-क्रमके पहले नाटक 'ख्यालकी दस्तक' की समीक्षा केवल इन पंक्तियोंमें पूरी की गयी है: 'उस शामकी नाटकत्रयीका पहला नाटक 'ख्यालकी दस्तक' लेखककी भाषाई लोचके कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करने के अलावा दर्शकोंपर कोई अच्छा प्रभाव नहीं डाल सका और न पात्रोंका अभिनयही नाटककी कमजोरीको ढँक सका। बस प्रकाश व्यवस्था द्वारा दृश्य-परिवर्तन दिखाने की जिस प्रणालीका अनुसरण उस दिन नाटकोंमें किया जा रहा था उसका परिचय मात्र देकर नाटक समाप्त हो गया।' उक्त नाटकके प्रदर्शनकी समीक्षा यहीं समाप्त हो जाती है। इसके बादके दो छोटे-छोटे पैरोंमें ऐसेही शेष दो नाटकोंके प्रदर्शनपर संस्कृतयुगीन निर्णयात्मक आलोचनाकी शैलीमें समीक्षकका निर्णय व्यक्त हुआ हैं। इस समीक्षामें समीक्षककी दृष्टिमें केवल निर्देशक सत्यदेव दुबे और उनका आभा मण्डल है और 'थियेटर यूनिट' का 'हिन्दी रंगमंचको दिया गया महान योगदान है। इस प्रकारकी समीक्षाओंसे नन्दनजी प्राध्यापकीय नाट्य समीक्षासे ऊबे हुए पाठकोंको राहत पहुंचा सकेंगे इसमें इस समीक्षकको संदेह प्रतीत होता है। 'ओह कैलकटा' पर जितना तन्मय होकर समीक्षा लिखी गयी है अगर वैसीही दौड़-धूप दूसरे नाटकोंको देखनेके लिए लेखकने की होती तो समीक्षाओंका कुल प्रभाव बेशक कुछ और होता। जैसा उल्लेख किया गया है, लगभग आधी समीक्षाएँ उसी स्तरकी हैं। शेष आधीमें कुछ अच्छी समीक्षाएँ भी हैं। ये सभी समीक्षाएँ 'रंग समीक्षा'के अन्तर्गत रखी जायेंगी। आलेख और प्रदर्शनकी अलग-अलग समीक्षाएँ अधूरी साबित होंगी यदि आलेखसे प्रदर्शनकी सम्भावनाओंके आकलनकी दिशा और प्रदर्शनसे होकर नाट्यवस्तुके काव्यगत मर्मका अन्वेषण कार्य पूरा नहीं होता। 'नाट्य समीक्षा' अपने-आपमें पूर्ण शब्द है, आलेख और प्रदर्शनके रूपमें उसका विभेद सदैव एकांगी निष्कर्ष देगा। दूसरी ओर समीक्षाओंके असंतुलित आकारकी ओर ध्यान जाता है—यदि पहला उपशीर्षक (दो पृष्ठोंसे भी कम) ६१ पंक्तियोंमें तीन नाटकोंकी समीक्षा प्रस्तुत करता है तो कहीं एक नाटकके प्रदर्शनपर पांच छः पृष्ठभी खर्च किये गये हैं। यह असन्तुलन 'मूड'के कारण अधिक है, किसी व्यक्ति विशेषको उछालनेके लिए कम और महत्त्वपूर्ण नाटक या प्रदर्शन होनेके कारण तो यह विस्तार शायदही आ पाया हो। उदाहरणतः 'बाजरका ख्वाब' और 'काकेशियन चाक सर्कल' को समीक्षकने समान-विस्तारका समान महत्त्व दिया है। समीक्षाएँ प्रदर्शित नाटकोंकी हैं और प्रदर्शनके लिए अच्छे या महत्त्वपूर्ण नाटकोंका चयन हमेशा जरूरी नहीं होता। हल्की प्रशस्ति पानेकी अभिलाषासे किये जानेवाले प्रदर्शनभी कम नहीं होते। समीक्षकने इस लिहाजसे भी नाटकोंका चुनाव नहीं किया और एकदम नगण्य—साधारण नाटक और उनके वैसेही महत्त्वहीन प्रदर्शनपर पुस्तकके अत्यंत महत्त्वपूर्ण पृष्ठ खर्च हो गये हैं। पुस्तकीय अभियोजनमें इस खण्डका मोटा हिस्सा है और किसी महत्त्वपूर्ण उपलब्धिकी ओर नहीं ले जाता।

पुस्तकके तीसरे खण्डमें लेखक-समीक्षक श्री नन्दन द्वारा नाट्यसे सम्बद्ध विभिन्न समकालीन हस्ताक्षरोंके नौ साक्षात्कार (इंटर्व्यू) संकलितकर प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें आठ स्वतन्त्र उपशीर्षकोंमें एकाकी व्यक्तिके इंटरव्यू हैं और नवां इंटर्व्यू समवेत रूपसे एकसाथ प्रस्तुत है। नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वर दयाल, मणि मधुकर, विजय तेदुंलकार, निर्देशक इब्राहिम अलकाजी, सत्यदेव दुबे एवं रंगकर्मी अनिल चौधरी, तरसीमलालके अलग-अलग, और अन्तिम उपशीर्षकमें शरद जोशी, शंकर शेष, सत्यदेव दुबे, सुरेन्द्र वर्मा और अरुण बनर्जी जैसे नवोदित नाटककारोंका एकत्र इंटर्व्यू प्रस्तुत है। 'इंटर्व्यू' को पढ़ते हुए रचना और प्रदर्शनके कई महत्त्वपूर्ण एवं आंतरिक पक्षोंकी जानकारी पाठकों को मिल सकती है और नाटक-रंगमचकी जानी-मानी हस्तियोंकी सृजनात्मक दृष्टिसे वे काफी हदतक परिचित हो सकते हैं। इस दृष्टिसे इस खण्डकी सामग्रीका महत्त्व है। लेकिन पुस्तकका यह हिस्सा लेखकका मौलिक लेखन स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि यहाँ लेखक एक जिज्ञासुभर है, वास्तविक महत्त्व उस वक्ता और उस वक्तव्यका है जो प्रश्नके उत्तरोंके रूपमें सम्बद्ध व्यक्तियों ने दिये हैं। यहाँ लेखककी जगह वक्ता प्रधान है और उसका वक्तव्य प्रस्तुत करना नन्दनजीका अभीष्टभी है।

पुस्तकके चौथे खण्डमें पुस्तक समीक्षाके रूपमें सुरेन्द्र वर्मा (तीन नाटक), लक्ष्मीकान्त वर्मा (रोशनी एक नदी है), तथा तीन अनूदित नाटक (छायानट, कुमारकी छत पर, किसी एक फूलका नाम लो) की समीक्षा 'आलेख पड़ताल' के रूपमें प्रस्तुत की गयी है। बीचमें राकेशपर सुन्दरलाल कथूरियाकी सम्पादित आलोचना पुस्तकपर दो पैराग्राफकी चलताऊ टिप्पणीभी शामिल कर ली गयी है जिसका इस खण्डमें कोई औचित्य नजर नहीं आता क्योंकि यह खण्ड नाटकोंकी पड़ताल प्रस्तुत करता है। नाटकोंमें 'सहकारी खेती' जैसा प्रचारात्मक नाटकभी चर्चित हुआ है यह दूसरी विसंगति है। समीक्षककी जानकारीके अनुसार नन्दनजीकी यह सामग्री 'नटरंग' के विभिन्न अंकोंमें प्रकाशित है। यत्र-तत्र प्रकाशित (जिसमें धर्मयुग और सारिका वगैरहभी शामिल है) उनकी सारी छिट-पुट सामग्री औचित्य एवं उपयुक्ततापर विचार किये बिना यहाँ एकत्रकर प्रकाशित कर दी गयी हैं। पर यहाँ इस खण्डमें समीक्षककी दृष्टि संतुलित है और आलेखके माध्यमसे नाटकके भीतरके रंगमंचतक पहुंचनेकी उन्होंने कोशिश की है। इस अर्थमें ये समीक्षाएँ 'प्रेक्षागारके अनुभव' से अधिक मानक निष्कर्ष देती हैं और समीक्षकीय दृष्टिका परिचय देती है।

पुस्तकके अन्तिम खण्डमें रेडियो प्रसारण हेतु कुछ मराठी नाटकोंके दृश्य जहां-तहांसे लेकर एक 'रेडियो नाट्य रूपक' तैयारकर प्रस्तुत किया गया है जिसका स्पष्ट उद्देश्य मराठी नाटक और रंगमंचके बारेमें हिन्दी श्रोताओं-पाठकोंको कुछ सामान्य जानकारियाँ देनाभर है। चुने गये विभिन्न नाट्य दृश्यों द्वारा रचनाके सौन्दर्यको प्रतिनिधि रूपमें उभारनेकी भी दृष्टि रही है पर इस सम्पूर्ण खण्डकी सामग्रीका कुल प्रभाव इस क्षेत्रसे सम्बद्ध व्यक्तियोंको किसी स्पष्ट विशेष निर्णयतक नहीं ले जाता।

इस सम्पूर्ण पुस्तकमें इस प्रकार मुख्यत: तीन प्रकारकी सामग्री हैं: नाट्य समीक्षा (प्रस्तुति समीक्षा एवं आलेख समीक्षा), इंटव्यूं, एवं रेडियो रूपक। इनमें से मुख्य हिस्सा समीक्षा खण्डका है अतः इसे मूलत: समीक्षा ग्रन्थही माना जायेगा। संकलित साक्षात्कारोंका विषय नाट्य है इसलिए अन्य पुरुष प्रधान रचना होनेपर भी इसमें एक ऋजुता है। पर रेडियो रूपक एक सर्वथा भिन्न विधा है चाहे वह प्रचारात्मक हो चाहे संकलित रचनाकी तरह सामान्य ज्ञान देनेवाली रचना। इस वैविध्यके कारण पुस्तकमें वैचित्र्य अधिक है रोचक एकतानता कम। छिट-पुट लेखनका संग्रह होनेके कारणही ऋजुहीनता और एकतानताका अभाव दिखता है फलत: अच्छी सामग्रीभी भीड़-भाड़ और बिखरावके कारण दब गयी दिखती है। ▭▭

धनुष यज्ञ[1]

लेखक : डॉ. अज्ञात

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

लोक-नाट्य-रंगमंचपर तुलसीकृत 'रामचरित मानस' के अभिनयकी परम्परा तुलसीके समयसे चली आ रही है। ज्ञात तथ्योंके अनुसार रामलीलाका आरम्भ स्वयं तुलसीने कराया और जनभाषामें रामकथाको प्रचलित किया। रामलीलाकी लोकप्रियताने रामकथाके अभिनेता मेधा भगतको संस्कृतसे जनभाषामें खींचा था। मेधा भगत तुलसीसे वयस्क थे और प्रतिष्ठित रामभक्त कलाकार थे। स्पष्ट है कि रामलीलाकी आकर्षण शक्ति बहुत प्रबल थी। रामलीलाकी लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती गयी। उसका धनुष यज्ञका प्रसंग विशेष लोकप्रिय हुआ। प्रतिष्ठित नाट्य-समीक्षक डॉ. अज्ञातने छोटी-सी पुस्तक 'धनुष यज्ञ' में इस नाट्यांशके काव्य-सौष्ठव तथा इसकी रंगमंचीय विशेषताओंपर विचार प्रस्तुत किये हैं।

'पूर्वरंग' में डॉ. अज्ञातने दावा किया है कि 'इस पुस्तिकामें धनुषयज्ञके काव्य-सौष्ठवके विविध आयामोंकी समीक्षाकर उसे, एक ऐसे धरातलपर ला खड़ा किया है, जहांसे वह अन्य लोक-नाट्योंके काव्यसे नितांत पृथक् दिखता है।' अपने विवेचन द्वारा लेखकने अपने दावेको भली प्रकार सिद्ध किया है। उसने शास्त्रीय दृष्टि से काव्य-गुणोंसे भली प्रकार सम्पन्न धनुषयज्ञको अन्य लोक-नाट्योंसे विशिष्ट प्रकारका लोक-नाट्य सिद्ध किया है। पुस्तकके उत्तरार्द्धमें प्रस्तुत यह विवेचन 'एकेडेमिक' हो जानेसे पूर्वार्द्ध भागकी सरसता खो अवश्य बैठा है किन्तु है यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण।

---

1. **प्रकाशक : रंगभारती प्रकाशन, कोठी साहूजी, मिर्जा मंडी, चौक, लखनऊ-२२६-००३। पृष्ठ : ४६; डिमा. ८२; मूल्य : १०.०० रु.।**

३८ पृष्ठोंकी पुस्तकमें धनुषयज्ञ लीलाका सांगोपांग विवेचन हुआ है। यह विवेचन दो प्रकारका है। पूर्वार्द्ध भागमें धनुषयज्ञकी परम्परा, प्रसार-क्षेत्र, नये छन्दोंकी मिलावटपर विचार तथा धनुषयज्ञके प्रचलित अनेक रूपों को देखते हुए मानक पाण्डुलिपि तैयार करानेकी आवश्यकताका आग्रह, विभिन्न स्थानोंपर अभिनयोंके परिचय, कलाकारोंके परिचय तथा रंगमंचकी बनावट आदिको रोचक शैलीमें प्रस्तुत किया गया है। उत्तरार्द्धमें काव्य-विवेचन है जो सामासिक शैलीमें है। यह अंश गम्भीर तथा कभी-कभी शुष्कभी है। तथापि, उत्तरार्द्धका यही स्वरूप अपेक्षितभी है। अपने ढंगसे पुस्तकके दोनों अंश उपयोगी हैं। प्रसंगानुकूल भाषा और शैलीके व्यवहारमें लेखककी निपुणताभी उल्लेखनीय है।

धनुष-यज्ञ-लीलाके प्रतीकार्थकी व्याख्या करते हुए डॉ. अज्ञातने दो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। पहली व्याख्यामें उन्होंने इसको गलित परम्परावाद, जड़ता, अहं आदिकी आहुतिका यज्ञ माना है। अपने कार्यको पूरा कर चुकनेके बादभी नयी शक्तियोंके उदयमें अवरोधक बनी पुरानी तथा अप्रासंगिक बनी पीढ़ीके रूपमें अपने स्थानपर डटे रहनेवाले परशुरामको संन्यास लेकर रामको कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण होने देनेमें बाधक न होनेका बोध करानेवाला यह प्रसंग है तथा इसकी यह व्याख्या सार्थकभी है। किन्तु रूपककी दूसरी व्याख्याभी क्या ऐसी संगत है?

डॉ. अज्ञातके अनुसार 'धनुषयज्ञके रूपककी एक औरभी व्याख्या की जा सकती है। धनुष उस चुनौती का प्रतीक है जो मुगल साम्राज्यके महाकायत्व, बोझ और हिन्दुओंके बलात् धर्म-परिवर्तन द्वारा उत्पीड़नके रूपमें जन-मानसके समक्ष प्रस्तुत थी। परशुराम इस साम्राज्यके प्रतिनिधि एवं संरक्षकके रूपमें, राम द्वारा चुनौतीके स्वीकार कर लिये जानेके कारण, हारी बाजी जीतनेका उपक्रम करते हैं। राम हिन्दू राष्ट्रके प्रतीक हैं, जो लोक-जिजीविषाके और लक्ष्मण लोकसत्ताके सामर्थ्य रूपमें परशुरामकी उद्धतता और अहंकार, गर्व और तेज का मर्दन करते हैं।'

विष्णुके अवतार तथा निरंकुश सत्ताके विरुद्ध लोक-सत्ताकी प्रतिष्ठा करनेवाले परशुरामको मुगल साम्राज्यके प्रतिनिधिके रूपमें देखनेके इस प्रयासमें पौराणिक मान्यता के मर्दनके साथ रामके आराध्य शिवके धनुषकी अवमानना भी प्रकट हुई है। पुरानी पीढ़ीके अप्रासंगिक आचरणोंसे असहमत होने तथा उनके विरोधके अधिकार को आगे बढ़ती हुई नयी पीढ़ी द्वारा माननेमें तथा पुरानी पीढ़ीको विनाश योग्य माननेमें बड़ा अन्तर होता है। परशुराम चुक गयी आदरणीय किन्तु अप्रासंगिक पीढ़ी के प्रतिनिधि होते हुएभी रावणके समान असहनीय नहीं थे। कम-से-कम तुलसीने तो ऐसा कभी नहीं माना। न लक्ष्मण को कभीभी लोक-सत्ताके प्रतिनिधिके रूपमें देखा गया है। यदि ऐसा होता तो यही अर्थ निकलता कि मुगल साम्राज्यके विरुद्ध लक्ष्मणके माध्यमसे प्रकट लोक-वाणी को राम बार-बार दबानेकी कोशिश करते रहे। शिवका धनुष तोड़कर रामने चुनौतीको नष्ट कर दिया तो रावण को मारनेकी आवश्यकता क्या रह गयी थी? चमत्कार-पूर्ण व्याख्याके मोहमें समीक्षकने तो सारी रामकथाको ही गड़बड़ा दिया है और पुराणोंकी मान्यताको भी ध्वस्त-सा कर दिया है हम प्रथम व्याख्याको स्वीकार करते हुए इस दूसरी व्याख्याके औचित्यको नकारते हैं। सौभाग्य-वश ये व्याख्याएँ पुस्तकके महत्त्वमें बाधक या साधक नहीं है।

पुस्तककी भाषा परिनिष्ठित और सधी हुई है। छोटी-सी पुस्तकमें डॉ. अज्ञातने भरपूर सामग्री दी है। हम उनसे अपेक्षा रखते हैं कि अपने महत्त्वपूर्ण सुझावको पूरा करते हुए वे स्वयंही धनुषयज्ञकी मानक पाण्डुलिपि तैयार करानेकी चेष्टा करेंगे। इस कार्यके लिए वे ही उपयुक्त व्यक्ति हैं। हमें विश्वास है कि प्रस्तुत अत्यन्त लघु शोध-पुस्तिकाका नाट्य-समीक्षामें स्वागत होगा।

□□

साहित्य एवं आलोचना

साहित्य विधाओंकी प्रकृति[1]

सम्पादक : देवीशंकर अवस्थी

समीक्षक : डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर

प्रस्तुत ग्रन्थ साहित्य-विधाओंकी प्रकृतिसे सम्बद्ध

१. **मैकमिलन कं. ऑफ इंडिया लि. ४ कम्युनिटी सेंटर, नरायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज १, नयी दिल्ली-११००२८। पृष्ठ : २००; डिमा. ८१; मूल्य : ५०.०० रु.।**

विषयोंको लेकर सम्पादित [illegible] चार लेख साहित्यके सम्बन्धमें सामान्य चर्चाएँ हैं। अर्स्ट फिशरके 'कलाका प्रयोजन' निबन्धमें कलाको संतुलनकी स्थितिमें बनाये रखनेका उपाय माना गया है। मनुष्य और विधाके बीच एक गहनतर सम्बन्धकी अभिव्यक्तिके रूपमें कला प्रयोजनीय मानी गयी है। अधिक सम्पन्न अस्तित्व और अनुभवमें बिना खतरेके पाठक कलाके माध्यमसे ही उतर सकता है। अर्स्ट फिशरकी कलाकी सोद्देश्यताकी दृष्टि संतुलित है क्योंकि वे इस बातपर जोर देते हैं कि कला न केवल यथार्थके तीखे अनुभवसे निश्चित रूपेण पैदा हो, इसका 'निर्माण' भी जरूरी है, वह वस्तुपरकतासे रूप धारण करे।' फिशर यहभी बात बलपूर्वक कहते हैं कि 'कलाकृति एक निश्चेष्ट साक्षात्कारके द्वारा नहीं बल्कि कर्म और निर्णय की मांग करनेवाली बुद्धिको उकसाकर दर्शकोंको अपनेमें बांधे।' फिशरके लेखकी समाप्तिके ये वाक्य सारे लेखकी केंद्रीय दृष्टि व्यंजित करते हैं: 'मनुष्य अपनी दुनियां को समझे और उसे बदले, इसके लिए कला अनिवार्य हैं। लेकिन अपनेमें निहित जादुई तत्त्वके चलतेभी कला उतनीही अनिवार्य है।' फिशरके महत्त्वपूर्ण निबन्धके महत्त्वपूर्ण मुद्दोंको यहाँ इसलिए उद्धृत किया गया है क्योंकि समूचे संकलनमें सम्पादकने इसी बिंदुसे लेखोंको समाविष्ट किया है। रत्नधर झाके इस अनुवादमें पर्याप्त सफाई है—इधर अंग्रेजीसे अनूदित लेखोंका स्तर देखते हुए यह कहना जरूरी है। यद्यपि उनके अनुवादमें भी कहीं बोझिलपन आया है। ये अंश देखें—'मानव जाति ···नहीं सकेंगी' (पृ. ५)।

बेलिंस्कीका 'साहित्य क्या है ?' लेख फिशरके लेख की तुलनामें बहुतही सामान्य है जिसे टाला जा सकता था। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके लेखमें 'साहित्यकी सामग्री' प्रकारान्तरसे फिशरकी ही कतिपय बातें आयीं हैं। हां, कलाकी कर्मको प्रोत्साहनकी बात उतने ठोस रूपमें नहीं आयी है। 'साहित्यका स्वरूप और प्रवृत्ति' लेखमें स्व. देवीशंकर अवस्थीने संस्कृत परम्पराका प्रचुर उपयोग करके उन स्थलोंको संकेकित किया है जो भारतीय और पाश्चात्य विचारकोंमें लगभग समान रूपसे प्रतिष्ठित हैं। प्रस्तुत लेखमें साहित्यकी भाषाकी विशिष्टतापर भी दृष्टि केन्द्रित है। साहित्यके विविध प्रयोजनोंका संकलित रूप में विचार किया गया है और इसमें दृष्टि आग्रही विचारकवी न होकर तटस्थ और जिज्ञासु अनुसंधित्सुकी ही [illegible] मा और रूपाकारपर विशेष बल यह स्पष्ट करता है कि अवस्थीजी हिंदीमें एक संतुलित चिन्तकका गहन प्रमाण उपस्थित करनेवाले समीक्षक थे और आजके माहौलमें उनकी अनुपस्थितिपर अधिक खेद भी होता है।

इन चार लेखोंके बाद 'कविता क्या है?' रामचन्द्र शुक्लका लेख समाविष्ट किया गया है और हिंदी पाठकों से उसके सम्बन्धमें अधिक चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं है। रामचन्द्र शुक्लका यह वाक्य 'कविता भाव प्रसार द्वारा कर्मण्यके लिए कर्मक्षेत्रका विस्तार कर देती है या उनका भावना, कल्पना, सौंदर्य, चमत्कारवाद, कविताकी भाषा इत्यादि मुद्दोंपर विवेचन ध्यानपूर्वक पढ़ा जाये और विचारा जाये कि हम उनके आगे समीक्षात्मक क्षेत्रमें कितने आये हैं तो विचारक शुक्लजीपर गर्व होता है। अवस्थीजीने प्रस्तुत संकलनमें भारतीय चिन्तकोंको स्थान देकर प्रकारान्तरसे भारतीय पाठकोंकी ही ग्रन्थिको दूर करनेका भी अप्रत्यक्ष प्रयास किया है।

'कविताकी आवयविक प्रकृति' में क्लींथ ब्रुक्स तथा रावर्ट पेन वारेनने कविताकी तुलना पौधेसे करके निरन्तर वर्धमान जीवन्त और एकात्म अवयव-अवयवी भावको सोदाहरण प्रस्तुत किया है। 'काव्यकी रचना प्रक्रिया' पर मुक्तिबोधका बहुचर्चित लेख है और कविताको स्थूल उपयोगिताकी कसौटीपर कसनेवालोंको रचनाकारकी लिखते समयकी यह स्वानुभूत प्रक्रिया अपने आग्रहोंपर पुनर्विचार करनेको बाध्य करेगी—करना चाहिये।

ब्रैंडर मैथ्यूजका 'नाटकका विधान' लेख इंदुजा अवस्थीने अनूदित किया है। अनुवाद अच्छा है। मैथ्यूज ने नाटकका सारभूत तत्त्व मानव ईहाका उद्घाटन व्यापार बताया है और उसकी रचना मानव समाजके लिएही बतायी है। मैथ्यूजने संघर्ष तत्त्वका भी समुचित विचार किया है। उनके द्वारा नाटकका सारभूत सिद्धान्त शायद यही है: नाटककार विरोधी ईहाओंके घात-प्रतिघातके सम्पूर्ण भावको स्पष्ट करनेके लिए आवश्यक दृश्योंका प्रदर्शन। लेखमें मतभेदके लिए गुंजाइश कमही है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका लेख 'नाटक' प्रस्तुत संकलनमें समाविष्टकर पश्चिमी और भारतीय दृष्टिके सुन्दर समन्वयकी स्थितिको ही प्रमाणित किया गया है। यह लेख इस बातको भी प्रमाणित करता है कि भारतीय चिंतनमें प्रचुर संचित ऐसा है जो आजके चिंतनमें भी उपयोगी हो सकता है—आवश्यकता सही विचारककी है

जो शब्दोंके पीछे जाकर उस संदर्भ और मूल अर्थ एवं अभिप्रायकी खोज करेगा जो भारतीय मनीषामें जीवन्त रूपमें वर्तमान था ।

'उपन्यासका महाकाव्यत्व' राल्फ फॉक्सकी प्रसिद्ध पुस्तकका अंश है जिसका संकलनमें समावेश उचित है । देवराज उपाध्यायके 'प्रबन्ध काव्य,रोमांस और उपन्यास' (आलोचना : उपन्यास अंकसे संगृहीत) में क्लारा रीव की पुस्तकके आधारपर उपन्यास और रोमांसका पार्थक्य बताया है । रोमांसके भारतीय रूपपर लेखक अधिक बल देते तो सम्भवत: लेखकी उपयोगिता बढ़ जाती । इस लेखका महत्त्वपूर्ण विचार यह है कि बाह्य बिखरी और टूटी अवस्थामें उपन्यास वैयक्तिक प्रवृत्तिका प्रतिनिधित्व कर रहा है । एकतो आतमनिरीक्षणके मुद्देपर बल देते हुए उस संदर्भमें इलाचन्द्र जोशीका विशेष उल्लेख खटकता है, दूसरे, हिन्दी उपन्यासका वह समूचा विस्तार ही उपेक्षित होता है जो सामाजिक यथार्थ या समाजवादी यथार्थको प्रकट करता है । यह गम्भीर उपेक्षा है और शायद एकांगी स्थापनाका परिणाम है।' आजका समय, उपन्यास और पाठक'मुरेन गेसुर्याका निबन्ध है । यह यूरोपीय लेखकों का परिसंवाद है । लेखक और यथार्थ विशेषत: समाजवादी यथार्थको केन्द्रमें रखकर बहस की गयी है और रूसी लेखक और अन्य लेखकोंका विभाजन साफ नजर आता है। 'यथार्थ एवं उपन्यासके सम्बन्धमें विविध मत' से अधिक गहराईका बोध प्रस्तुत परिसंवादसे नहीं होता । ये केवल वैयक्तिक 'रिमार्क' मात्र है ।

'कहानी : स्वरूप और अन्तर्वस्तु' शीर्षकसे लिखा हुआ फैंक ओ' कोन्नोरका लेख काफी वजनदार है । उनका यह कथन कि उपन्यासमें मानवीय अकेलेपनकी गहरी अनुभूति कहानीकी तुलनामें क्षीण रूपमें मिलती है, विवाद्य है । लेखककी बहुत-सी मान्यताएँ चौंका देती हैं। उदाहरणके लिए : 'एक व्यक्ति महान् उपन्यासकार होते हुएभी एक सामान्य रचनाकार हो सकता है ।' या 'लेकिन मोपासां और चेखव द्वारा प्रारम्भमें लिखी गयी कहानियोंका कहानी-कलाके विकासके लिहाजसे इतने कच्चेपनका दौर था कि उनके गलत होनेकी गुंजाइश कम थी ।' आनन्दस्वरूप वर्माके अनुवादमें काफी ऐसी संदिग्ध जगहें हैं जहाँ यह पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि अभिप्रायकी संदिग्धता मूलमें है अथवा अनुवादके कारण पैदा हुई है । कहीं-कहीं अनुवाद दोषपूर्णभी हो गया है और ऐसे स्थल पर्याप्त हैं । जे. बर्ग इसेबिनका [illegible] आकारमें छोटा है परन्तु गुणवत्ता की दृष्टिसे बहुतही महत्त्वपूर्ण है और उनके लेखनमें पर्याप्त स्पष्टता और ठोसपन है 'कहानी क्या नहीं है' इसकी चर्चा करनेके उपरान्त कहानीके व्यवच्छेदक एवं स्वरूप विधायक लक्षणोंको उन्होंने संकेतित किया है। नारायण कुमारने अनुवादभी अच्छी तरह किया है। नामवर सिंहका बहुचर्चित लेख 'कहानी और फैंटेसी' इसमें संकलित किया गया है । यथार्थके आतंकको एक ओर रखकर या यथार्थके नामपर नितान्त वर्तमानसे चिपकते जानेकी कछुआधर्मी वृत्तिको छोड़कर फैन्टेसीका यहाँ स्वागत किया गया है । एक बहुत बड़ी बात कही गयी है : 'ऐंद्रजालिक कहानियाँ समयके इस सिमटते दायरे को तोड़ती है ।'

'आलोचनाका स्वरूप' हटिंग्टन' के अंशकी टिप्पणी का अनुवाद है । सम्पादकने इसीपर एक छोटी टिप्पणी दी है—'बहुत महत्त्वपूर्ण है' । अनुवादकका नाम नहीं दिया गया है और अनुवाद सन्तोषजनकभी नहीं है क्योंकि काफी सदिग्धता उत्पन्न करता है । सम्पादककी छोटी सिफारिशी टिप्पणीके बावजूद यह कहना पड़ता है कि टिप्पणी कोई विशेष महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं उठाती जो हिंदीके आलोचक वर्गके लिए नयी हो ।

रेने वेलेकका महत्त्वपूर्ण निबन्ध 'साहित्यिक सिद्धान्त समालोचना और इतिहास' परस्पर सम्बन्धोंके मुद्दोंपर प्रकाश डालता है और अपनी संतुलित काव्यशास्त्रीय दृष्टिके लिए रेने वेलेक प्रख्यात हैं । मेरे मनमें एक प्रश्न उठता रहा है । इस निबन्धके दो अनुवाद मैंने पढ़े और लगा कि आखिर अनुवादका कुल उद्देश्य क्या है । रेने वेलेक उस पण्डित परम्परामें आते हैं जो अपने संदर्भोंकी विपुलता और विविधताके लिए एवं इस समृद्ध सूचना-पूँजीके बीचभी स्पष्ट, तर्कयुक्त, ठोस चिन्तनका गहन परिचय देती है । परन्तु मुद्दा यह है कि अगर यह सारा अनुवाद कार्य उस व्यक्तिके लिए है जो अंग्रेजीसे अच्छी तरह परिचित नहीं है (ऐसे अनुवादोंका यही लक्ष्य होना चाहिये) तो स्पष्टतापूर्वक कहना चाहिये कि यह अनुवाद लगभग शब्दश: होते हुएभी या होनेके कारणही उद्देश्यमें सफल नहीं होता । होना यह चाहिये कि निबन्धके महत्त्वपूर्ण मुद्दोंको सही हिंदीमें प्रस्तुत किया जाये, उस हिंदीमें नहीं जो अनुवादकी हिंदी बन गयी है । इससे किसीको लाभ नहीं होता । ये अनुवाद तभी सार्थक हो सकते हैं जब इनमें आये संक्षिप्त एवं केवल संकेत मात्र करनेवाले

संदर्भोंकी विशद व्याख्या [illegible] हिंदीका

पाठक उसे समझ सके। (एक छोटा-सा प्रश्न : क्या अंग्रेजी 'मैटाफिजिकल' कविताका अर्थ 'अध्यात्मवादी' कविता समीचीन है।)

'भारतीय साहित्य शास्त्र' से उद्धृत लेखका अन्तिम भाग (पृष्ठ १७५ से १७७) अनावश्यक है क्योंकि वे अपने ग्रन्थके युक्तिवादकी प्रणाली बता रहे हैं। इसके अनुवादकका नाम नहीं दिया गया है जबकि पूरी पुस्तक का अनुवाद बहुत पहले ग्रन्थ रूपमें प्रकाशित हुआ है।

'साहित्यका व्याकरण' इस ग्रन्थमें समाविष्ट करने का अगर यही उद्देश्य है कि भारतीय शास्त्रका रूप सामने आये तो दूसरे महत्त्वपूर्ण लेख समाविष्ट किये जा सकते थे। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजीका यह लेख परिचयात्मक से अधिक कुछ नहीं है। इससे अधिक अच्छी सामग्री ग. त्र्य. देशपांडेके ग्रन्थमें ही मिलती जो शायद हिंदीके पाठकोंके लिए अधिक उपयोगी होती।

कुल मिलाकर प्रस्तुत सम्पादित ग्रन्थकी यही उपयोगिता है कि अगर केवल हिंदीका जानकार पाठक अपनी आलोचना सम्बन्धी समझको अधिक गहरे स्तरपर ले जाना चाहता है तो यह ग्रन्थ उसे पढ़ना चाहिये। लेकिन जो अंग्रेजी मूलमें पढ़ सकते हैं वे शायद अंग्रेजी से अधिक लाभान्वित होंगे। अनुवादके वाचक कर्मको सामने रखना आवश्यक है। अन्यथा बहुत बार इसमें उलझनदार झटके मिलते रहते हैं। ▭ ▭

कला साहित्य और समीक्षा[1]

लेखक : डॉ. तारिणीचरण दास 'चिदानन्द'

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृतिको दो खण्डोंमें बाँटा गया है। खण्ड एकमें साहित्य और कला संबंधी निबंध हैं, जिनमें सैद्धांतिक विवेचन प्रमुख है। निबंधोंके शीर्षक हैं—'भाषा, एक मुक्त चिंतन', 'कला तथा साहित्य' 'कलाकी प्रेरणाएँ और प्रवृत्तियाँ', 'कलामें विरह और मिलन', 'कलाके [illegible]', [illegible] विचार', 'साहित्य-विचार', 'भारतीय साहित्यका आभिमुख्य', 'चित्रकला: चितन और अध्ययन'। खण्ड २ में देशी-विदेशी प्रमुख और बहुचर्चित कृतियों 'मेघदूत', 'गीतांजलि', 'कामायनी', 'गोदान', 'परजा', 'माटिर मणिष', 'हेमलेट', 'वेस्टलैंड', 'डॉ. जीवागो', 'ओथ आफ द स्वायल' और 'ओल्ड मैन एंड द सी' की समीक्षाएँ हैं। इसे आलोचना या व्यावहारिक समीक्षा कहा जा सकता है, 'जो खासकर प्रभाववादी, मनोवैज्ञानिक, विश्लेषणात्मक तथा निर्णयात्मक समीक्षा पद्धतियोंमें लिखा गया है' (बकौल 'लेखकीय' वक्तव्य)।

'भाषा : एक मुक्त चिंतन' निबंधमें भाषाको तीन भागों (मूक भाषा, अव्यक्त भाषा, व्यक्त भाषा) में बाँटकर उसके विभिन्न पहलुओंका सांगोपांग विश्लेषण किया गया है। विवेचनाकी शैली रमानेवाली है, जिसमें भाषाका सौंदर्य भी है—'चंचल गतिपूर्ण सरितामें, ललाम ललनाके ललित कपोलों तथा सजल आंखोंमें, वसंत कोकिलकी काकलिमें, निर्झरके झर-झर शब्दोंमें तथा बादलके गुरु गंभीर गर्जनमें भी एक भाषा है' (पृ. १७) भाषामें प्रयुक्त प्रतीक भी काल प्रवाहमें बदलते लगे। लेखकने इस बदलावको उसकी पूरी परम्परामें अंकित किया है—'वस्तुत: प्रतीक व्यक्तिगत होता है, पर समाज उसके पीछे दौड़कर उसका भेद जानता···है। अत: कहा जा सकता है कि प्रतीककी गति व्यक्तिसे समाज और समाजसे विश्वकी ओर उन्मुख है।···आज पुरानी उपमा और उपमेयभी नहीं रह गये।···मीन नयनकी अपेक्षा हमें मोमबत्तीसी आँखें और रेशमी वायु अधिक पसंद होने लगे (पृ. २१)। लेखकने रवीन्द्रनाथ ठाकुर, बादलेयर, इलियट, एजरा पाउंड आदि देशी-विदेशी साहित्यकारोंका साक्ष्य देखकर प्रतीक, बिंब, शब्द ध्वनि आदि का स्वरूप स्पष्ट किया है। 'कला तथा साहित्य' का आधार उन्होंने सांख्य दर्शनका एक सूक्त बताया है—'प्रकृति दर्शनार्थ (ज्ञात होनेके लिए) पुरुषकी अपेक्षा रखती है और पुरुष कैवल्यार्थ (अपना स्वरूप पहचानने के लिए प्रकृतिकी सहायता लेता है।' व्याख्या विवेचन के दौरान लेखक अपनी स्थापना करता चलता है यथा कला पक्षकी सार्थकता भाव पक्षसे ही प्रमाणित होती है भावहीन ललित शब्द-जाल और रंगीन चित्र निरर्थक होते हैं।' इन निबंधोंमें एक बात अखरनेवाली है। लेखक जिस आधार और स्थापनाको लेकर प्रारंभ करता है, उसका सम्यक् निर्वाह नहीं कर पाता। इसके स्पष्ट

---

1. प्रकाशक : राष्ट्रभाषा समवाय प्रकाशन, राष्ट्रभाषा रोड, कटक (उड़ीसा)-७५३-००१। पृष्ठ : १६६; डिमा. ७८; मूल्य : १२.०० रु.।

कारण हैं—विषयके प्रति अस्पष्ट धारणा, खुली निर्णीत दृष्टिकी कमी और देशी-विदेशी विद्वानोंके कथनोंके साक्ष्य देनेका लोभ। उपर्युक्त निबंधके 'कलालोचन' उपशीर्षक का पहला वाक्य है—'हीगलने कहा है कि सूक्ष्मताही कलाकी कसौटी है।' (पृ. २७) हीगलका नाम ले लेनेसे पाठकोंपर क्या अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। डॉ. श्याम सुन्दर दासने 'ललित कला' शीर्षक निबंधमें कलाओंकी उत्कृष्टताका आधार उसकी अभिव्यक्तिके माध्यमकी सूक्ष्मता माना है और ललित कलाओंमें काव्य कलाको श्रेष्ठ बताया है। इस संदर्भमें सैकड़ों लेख, निबंध छपे हैं। लेखककी मौलिकताका पता उसकी विवेचन क्षमता और स्पष्ट धारणासे ही चल सकता है, न कि साक्ष्योंकी भीड़ खड़ा करनेसे।

कुछ निबंध विषय प्रतिपादन और मौलिक स्थापनाओं की दृष्टिसे लेखकीय क्षमताका परिचय देते हैं। इसमें 'कलाकी प्रेरणाएँ और प्रवृत्तियाँ' तथा 'साहित्य-विचार' उल्लेखनीय हैं। पहले निबंधमें कला सृष्टिके लिए तीन चीजों (स्रष्टा, सृष्टिका उपादान या माध्यम और भाव) की आवश्यकतापर बल देते हुए साहित्य कलाके विभिन्न अंगों, उपांगों, उपादानों और घटकोंका सुन्दर विवेचन हुआ है। 'सत्य' की व्याख्या करते हुए लेखक स्पष्ट करता है कि कलाका लक्ष्य सत्योद्घाटन है। उसका कहना है—'अस्तित्वके भीतर सत्य सदा छिपा रहता है। कला में यह ज्ञान तथा रहस्यके रूपमें दिखायी पड़ता है··· सत्य तथा रहस्यको बिना प्रकट किये कला स्थायी नहीं हो सकती। अतः किसी-न-किसी रूपमें कला सत्यका ही प्रदर्शन करती है। (वही निबंध, पृ. ३७) परन्तु उसे यह भी स्पष्ट करना चाहिये कि हर जगह कला सत्यका उद्घाटनही करती चले, तो उसकी अवस्था 'एथेंसके सत्यार्थी' कहानीके नायक देवकुलीशकी तरह हो जायेगी, जिसने नंगी आँखोंसे सत्यको देखनेकी हठधर्मिताके कारण पूर्ण अंधत्व प्राप्त किया। कला सत्यके उद्घाटनके लिए मार्ग प्रशस्त करती है, संकेत करती है, उसके अवसर जुटाती है, 'कांतासम्मित उपदेश' (आचार्य मम्मट) द्वारा सत्यको गति देती है, उसे प्रभावक बनाती है। वह सत्य का सीधे वर्णन करने लगे, तो साहित्य कौन पढ़ना चाहेगा? 'साहित्य विचार' में साहित्यकी अवधारणा स्पष्ट करते हुए कविता, गद्य कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबंध और आलोचनाके स्वरूपको विवेचित किया गया है। लेखककी विवेचन क्षमता और स्थापनाएँ द्रष्टव्य हैं।

खण्ड दो की आलोचना पद्धतिके संबंधमें लेखकीय वक्तव्य (पहले पैराग्राफमें उद्धृत) का पूर्णतया निर्वाह नहीं हो पाया है। 'हैमलेट: एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन' (पृ. १४०-१४४) में उन मनोवैज्ञानिक सिद्धांतोंकी व्याख्या होनी चाहिये, जो हेमलेटपर लागू होते हैं, फिर उस कसौटीपर हेमलेटका परीक्षणभी। मनोविज्ञानकी किसी पुस्तकसे विषम मनोविज्ञान, मनोग्रंथि, दमित काम, शासन करनेकी प्रवृत्ति, हीन भावना आदिके नामोल्लेख भरसे न उन सिद्धांतोंका पाठकोंको पता चलता है और न वह हेमलेटको उस आधारपर परखही पाता है। यह निबंध सूचनाधर्मी और विचार-बिंदुओंका संकलन भर माना जा सकता है। 'ओल्ड मैन एण्ड द सी' (पृ. १६४-६६) तथा 'ओथ ऑफ द स्वायल' (पृ. १५९-१६३) में कृतिके मूल्यांकनका प्रयास कम, उसकी कथा और आलोचकोंके मतोंके आधारपर प्राप्त प्रभावांकन अधिक हुआ है, फिरभी लेखकके इस प्रयासको सराहा जा सकता है कि हिन्दी पुस्तकसे विदेशी साहित्यकी सामान्य जानकारी उपलब्ध हो सकेगी। 'बातोयाला' (रेनेमांश) और 'परजा' (गोपीनाथजी महान्ति) का तुलनात्मक अध्ययन ('परजा : एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. १३१-१३४) बड़ा समीचीन बन पड़ा है। जंगली कथा वस्तु एवं संस्कृति तथा अभिजात्य संघर्षकी दृष्टिसे दोनों कृतियाँ तुलनीय हैं भी—लेखकका चुनाव और तुलनात्मक विवेचनाकी दृष्टि दोनोंही प्रशंसनीय हैं। 'गोदान', 'कामायनी' और 'मेघदूत' की समीक्षा और मूल्यांकनमें लेखक की तटस्थता और उसकी परख देखने योग्य है। 'कामायनी' निबंधकी प्रारंभिक पंक्तियोंसे ही कृतिके प्रतिपाद्य की ओर ध्यान जाने लगता है—'कामायनीमें प्राथमिक विश्वमन या शुद्धमनपर क्रियमाण सांसारिक वस्तुकी संवेदना उसे किस ओर ले जाती है, कैसे मानवीय सृष्टि या संस्कृति बनती है, दिखाया गया है।' (पृ. ११३) 'रवीन्द्रनाथ और गीतांजलि' (पृ. १०५-११२) में 'गीतांजलि' की अंतरात्मामें झाँककर लेखकने उसके भाव और कला पक्षको औचित्यकी वाणी दी है। शेली, बायरन, कीट्स, कबीर आदिके साथ उसकी तुलनाने इस निबंधको बड़ा उपयोगी बना दिया है।

लेखकने आलोचनकी भाषाका यथासाध्य प्रयोग किया है, पर कहीं-कहीं उसका कवि उसपर हावी हो गया है। सब मिलाकर यह कृति साहित्य-सिद्धांत और

व्यावहारिक समीक्षाकी दृष्टिसे पठनीय है। लेखककी जागरूकता और ईमानदार कोशिशको सराहा ही जा सकता है। पारिभाषिक शब्दोंके लिए कोष्ठकमें उसकी अंग्रेजी तथा जगह-जगह अंग्रेजीके उद्धरणसे पुस्तक उपयोगी बन गयी है। ▭▭

साहित्य और जनसंघर्ष[1]

लेखक : शंभुनाथ

समीक्षक : मूलचन्द गौतम

हिन्दीमें प्रगतिशील साहित्यके सृजनके साथ उसके मूल्यांकनकी समृद्ध परम्परा रही है। इधर साहित्यमें जनवादी उभारके साथ जनवादी आलोचनाभी आयी है। कुछ लोग इस उभारको परम्पराका उच्छेद कहकर खारिज भले करना चाहें, लेकिन इसकी वास्तविकतासे इन्कार नहीं कर सकते। साहित्यकी प्रतिक्रियावादी धारा इसे कलाकी स्वायत्त दुनियाँ मानकर बाकी जरूरी और संघर्षशील प्रयासोंसे काटकर देखती है। निश्चितही साहित्यके प्रति यह दृष्टिकोण शासक वर्ग और सत्ताकी सुविधा, सुरक्षा और संरक्षणका सीधा परिणाम है, जो इस प्राप्त सुविधाके बदलेमें सत्ताकी सुरक्षाका दायित्व सँभालता है। यह सामाजिकार्थिक समस्याओंसे जनताका ध्यान हटाकर, रुग्ण साहित्य परोसकर संघर्षकी संभावनाओंको समाप्त करनेके लिए 'स्लो पॉइजन' का काम करता है। साहित्यकी इस पतनशील, रुग्ण धाराके ठीक विपरीत प्रगतिशील-जनवादी साहित्य जनताको संघर्षकी वैचारिक मानसिकताके लिए तैयार करता है। परिवर्तनका भी शक्तियोंके विकासमें साहित्यकी यही सक्रिय भूमिका है, जिसे वह प्रारंभसे निभाता आ रहा है। इस कार्यको यह साहित्य एक दिनमें पूरा नहीं कर देता। इसलिए जो लोग साहित्यसे यह अपेक्षा करते हैं, उन्हें निराशा, भटकाव और मोहभंगके अलावा कुछ हाथ नहीं आता। शंभुनाथने 'साहित्य और जनसंघर्ष' पुस्तकके लेखोंमें जनसंघर्षोंमें साहित्यकी इसी भूमिकाको रेखांकित करनेकी कोशिशकी है। इस दृष्टिसे साहित्यके मूल्यांकनका गुरुतर दायित्व निभानेके लिए इतिहास और परम्पराकी समझ तथा समकालीन समाज और राजनीतिके सावधानीपूर्ण सतर्क विश्लेषणकी जरूरत है, जिसके बिना इस तरहका कोईभी प्रयास बचकानी हरकतमें तब्दील हो सकता है। समय-समयपर लिखे गये इन संकलित लेखोंको पढ़ते हुए, शंभुनाथकी विश्लेषण क्षमताके साथ उनके वैचारिक अन्तर्विरोध, भटकाव और सीमाभी जाहिर हो जाती है। निर्णय देनेके अतिरिक्त उत्साहमें उनकी 'वोल्डनेस' जरूर उभरी है, लेकिन यांत्रिक समझ, धैर्यकी कमी और सर्वमान्य बने रहनेकी मुद्राने इन लेखोंपर अपना प्रभाव छोड़ा है, जो विश्लेषणको वस्तुगत-तर्कसंगत नहीं बना पाता। साहित्य और जनसंघर्षके द्वन्द्वात्मक विश्लेषणमें इतिहासकी गलत समझ और वैचारिक प्राथमिकताएँ तय न कर पानेके कारण, शंभुनाथ सैद्धान्तिक विवेचन और व्यावहारिक समीक्षामें बुरी तरह असफल हुए हैं और ऐसी स्थितिमें उन्होंने 'साहित्य औप जनसंघर्ष' दोनोंको दिशाहीन बनाकर छोड़ दिया है। जहाँ कहीं वे इस स्थितिसे बच सके हैं, वहां उनकी विश्लेषण क्षमताकी पूरी शक्ति उभरी है। साहित्य, विचार, और राजनीतिकी परम्परा और वर्तमान स्थितिके प्रति सही, वस्तुगत, आलोचनात्मक रुख और रवैयेके अभावमें यह वैचारिक असंगति, बिखराव और भटकाव स्वाभाविक है, जिसकी परिणति शंभुनाथके इन लेखोंमें हुई है।

इस पुस्तकके 'साहित्य और जनसंघर्ष,' 'चिंतनकी कुछ दिशाएँ,' 'लघुपत्रिका: जनोन्मुखताका सवाल,' 'रचनाधर्मिता और जन,' 'कैसा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य ?' और 'लोकवामकी सही दिशा' लेखोंसे शंभुनाथके सोच सरोकारोंको समझा जा सकता है। 'हमारा साहित्य भारतीय जनताके संघर्षोंके बीच ऐतिहासिक रूपसे विकसित हो रही सामाजिक-राजनीतिक चेतनाका कलात्मक दस्तावेज है। कला और कविताका ऐसा कोई रूप हम नहीं पाते, जिसपर युगका दवाव न हो। कभी यह दवाव सत्ताकी ओर से रहा है, कभी संस्कृतिकी परिवर्तनकारी शक्तियोंकी ओरसे' (पृ. ६)। ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक पद्धतिसे साहित्यके इन रूढ़ और गतिशील सम्बन्धोंको समझना चाहिये, तभी तत्कालीन जनसंघर्षोंका स्वरूप स्पष्ट होगा। 'महान साहित्य व्यापक जनसंघर्षोंकी उपज होता है और सामाजिक परिवर्तनकी लड़ाईमें इसकी

---

१. प्रकाशक : संभावना प्रकाशन, रेवती कुंज, हापुड़-२४५-१०१। पृष्ठ : १७२; डिमा. ८०; मूल्य : ३०.०० रु.।

अहम् भूमिका होती है' (पृ. १५)। प्राचीन साहित्यके प्रति इस दृष्टिकोणको अपनानेसे उसकी युगीन प्रासंगिकता साफ हो सकती है, लेकिन समकालीन साहित्यके संदर्भमें जोखिम है। इसीलिए शंभुनाथ यह मानते हुएभी कि राजनीतिसे 'कला कभी तटस्थ नहीं हो सकती, अगर यह जनवादी राजनीति नहीं करती, तब या तो किसी दलकी नौकरशाहीकी राजनीति करती है या यह 'कला-कलाके लिए' के बहाने पूँजीतन्त्रके परम्परागत अवशेषों अथवा सामन्ती व्यवस्थाके आधुनिक अवशेषोंकी अभिव्यक्ति करती है' (पृ. १२)। जब यह कहते हैं कि 'साहित्यिक भावनाओंको राजनीतिक दलोंके रणकौशलका स्थायी हिस्सा कभी नहीं बनना चाहिये, अन्यथा विचारधाराकी नौकरशाही और गृह उद्योगीकरणका खतरा खड़ा होता है' (पृ. १०), तो राजनीतिक दल और जनवादी राजनीतिके सम्बन्धमें उनकी अमूर्त धारणाका पता चल जाता है। वे वामपंथी दलोंकी एकजुटताके हिमायती होनेके बावजूद, यह नहीं भूलते कि 'अक्सर एक शत्रु से जनताको त्राण देनेवाले खुद सत्तामें आनेपर सर्ववंचित जनताका गला घोंटने लगते हैं और अगला शत्रु बन जाते हैं, (पृ. १०-११)। यह स्थायी जनसंघर्षकी नीतिही उनके जनवादका आधार है। इसीलिए वे बिना जोखिम उठाये, जनसंघर्षके पक्षमें रहकर सबके अन्तर्विरोधोंकी पहचान का दावा करके सर्वमान्य बने रह सकते हैं। जनसंघर्ष एक ऐसा हथियार बन जाता है, जिसे अमोघ शस्त्रके रूप में किसीपर भी चलाया जा सकता है। पुनर्मूल्यांकनवाले लेखोंमें शंभुनाथने इसका परिचय दियाभी है। यह दो नावोंपर पैर रखनेवाली स्थिति है जो साहित्यमें अराजकता और अवसरवादिताकी खुली छूट देती है। बिना जोखिम उठाये जनसंघर्षकी वकालत सबकी होकर किसी की न होनेकी सुरक्षित स्थिति हैं। इसलिए एक तरफ वे मानते हैं कि 'हमारे बिखराव तथा भटकावका सबसे बड़ा कारण यह है कि भारतीय क्रान्तिकी परिस्थितियोंका हमारा राजनीतिक-सामाजिक विश्लेषण अभीभी लँगड़ा है, लेकिन हम पूर्ण और सर्वज्ञानी बननेका दंभ भरते हैं, (पृ. १३) दूसरी तरफ कि 'जनता निम्नस्तरीय साहित्य में खोयी रहती है और साहित्य किसी काल्पनिक जनता और समाजकी गैरभारतीय कल्पनाओं अथवा अवास्तविक विश्लेषणोंमें सैर करता रहता है' (पृ. १५)। साहित्य और जनताके बीचकी खाईको पाटने और क्रान्तिकी सही स्थितियोंकी समझके लिए, वे जनसंघर्षके इतिहासकी खोजके साथ साहित्य, समाज और संस्कृतिके पुनर्मूल्यांकनकी जरूरतोंपर बल देते हैं। साहित्य और जनसंघर्ष की यह अमूर्त, सरलीकृत और भ्रान्त समझ जनवादकी जड़ोंपर प्रहार करती है।

इतिहास और परंपराकी नासमझीके कारणही शंभुनाथको हिन्दी साहित्यमें भाववादी दृष्टिकोण और लफ्फाजी तथा विदेशोंमें किया गया चिन्तन महत्त्वपूर्ण लगता है। काश! उन्होंने विदेशी चिन्तनसे ही कुछ प्राप्त किया होता। अन्य भारतीय भाषाओं तथा विदेशोंकी तुलनामें हिन्दीके लेखकके पुराने पड़ जानेके डरके पीछे, कहीं उन्हें अपने पुराने पड़ जानेका तो डर नहीं है, (पृ. १२६)। इसी विदेशी समझका परिणाम है कि उन्हें १८५७ का स्वाधीनता संग्राम सिपाही विद्रोह (पृ. ३८, ४०, ६२) नजर आता है। जनवादकी शुरुआत खुदसे मान लेनेपर ऐसाही होता है। 'चिन्तनकी कुछ दिशाएं' के अन्तर्गत लेखकने 'जैनेन्द्रके विचार', अज्ञेयकी 'संवत्सर' रघुवीरसहायकी 'लिखनेका कारण' पुस्तकोंको निरर्थक और शाश्वत मूल्योंकी स्थापना करनेवाली माना है। डॉ. रामविलास शर्माकी 'भाषा और समाज', डॉ. रमेशकुन्तल मेघकी 'अथातो सौन्दर्य जिज्ञासा', कर्णसिंह चौहानकी 'आलोचनाके नये मान' पुस्तकोंकी सैद्धान्तिक-व्यावहारिक विवेचना द्वारा शंभुनाथने इन विचारकोंकी उपलब्धियोंको रेखांकित करते हुए इनकी कमियोंकी ओरभी संकेत किया है। 'जन और जनवाद' टिप्पणीमें लेखकने जनवाद और सर्वेश्वरके जनपर विचार करते हुए पूरे कौशलसे उन्ही बातोंको दोहराया है, जो सर्वेश्वरने कही हैं। वामपंथी विचारधाराके साहित्यको एक मोर्चेके तहत लानेके साथ 'वादी' होनेसे सर्वेश्वरको परहेज है, कमोवेश यही स्थिति शंभुनाथकी भी है। वे कहते हैं 'जनवादी होनेका अर्थ निम्नवर्ग तथा दलितोंके मुक्ति दृष्टिकोणसे जुड़ना है। वादी होनेका अनिवार्य अर्थ यह नहीं होता कि वह पार्टीको माने। लेकिन यह जरूर होता है कि वह न केवल एक विचारधाराको माननें—इसका एक संगठित विकास करनेकी दिशामें सचेष्ट हो बल्कि किसी संगठन अथवा संयुक्त मोर्चेसे किसी-न-किसी स्तर पर जुड़ा रहे' (पृ. १४१)। या कि 'संघर्षरत प्रगतिशील धाराओंके सयुक्त क्रान्तिकारी उभारका नामही जनवाद है'। शंभुनाथ लघु पत्रिकाओंकी जनोन्मुखताके लिएभी जनवादी पत्रिकाओंमें पनपे संकीर्ण रुझानको छोड़कर लोकतांत्रिक बहसका माध्यम बनाना जरूरी मानते हैं। व्यावसायिक पत्रिकाओंमें अभिव्यक्तिकी स्वतंत्रताके अभाव में लघुपत्रिकाओंका यह दायित्व बढ़ जाता है। लेखकने

हिन्दीमें पत्रिकाओंकी स्थितिपर अनेक पहलुओंसे विचार करते हुए संयुक्त और असरदार प्रयासपर बल दिया है, जिससे व्यावसायिकता तथा कठमुल्लेपन दोनोंसे संघर्ष किया जा सके। उन्होंने आपात्कालमें लेखकोंकी अभिव्यक्तिकी स्वतंत्रतापर लगे प्रतिबन्धके संदर्भमें, मध्यवर्गीय सुविधाजीवियोंकी आन्तरिक स्थितिका सही विश्लेषण किया है। साहित्य और रचनाकारपर सत्ताकी पूंजीवादी शक्तियोंके दबावके कारण 'लेखकका सारा विरोध अन्ततः शासक-शोषक वर्ग अथवा अवसरवादी शक्तियोंके हाथों ऊँचे दामोंपर इस्तेमाल होनेमें खप जाता है' (पृ. १५७)। इस परीक्षाकी घड़ीमें प्रगतिवादी शक्तियों द्वारा तानाशाहीके समर्थनके पीछे एक बड़े छद्म क्रान्तिकारी समुदाय की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओंका हाथ था। इस स्थितिका बहुत सही मूल्यांकन करते हुए शंभुनाथने आगाह किया है कि आपात्कालमें 'वस्तुत: मार्क्सवाद, समाजवाद और प्रगतिवादके नामपर हिन्दुस्तानकी पूंजीवादी-फासीवादी शक्तियोंके प्रभावशाली हिस्सेने अपना वेश उसी तरह बदल लिया, जिस प्रकार नये कौशलोंके साथ कुछ तानाशाही शक्तियोंने लोकतन्त्र और दूसरी आजादीका जामा पहन लिया था' (पृ. १५८)। यही वे लोग थे जिन्होंने मार्क्सवादका व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए सीढ़ीकी तरह इस्तेमाल किया। शंभुनाथने प्रकाशन, प्रेस व्यावसायिक पत्रिकाओं और जनवादी पत्रिकाओंमें अभिव्यक्तिकी स्वतंत्रतापर लगे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दबावोंका जिक्र करके जड़ताको तोड़नेकी जरूरत महसूस की है। इन्हीं कारणोंसे साहित्यके क्षेत्रमें अराजकता जन्म लेती है। शंभुनाथ इसके लिए गणतांत्रिक प्रतिरोध तथा बहस की जरूरत मानते हैं। देखना चाहिये कि यह मुद्रा कहीं सबकी नेक सलाहकार बनकर निर्विवाद सिद्ध होनेकी तो नहीं है? जिससे जनसंघर्षमें शत्रु-मित्रका भेदही मिट जाये। 'साहित्यका पार्टटाइम शौक पालनेवाले अधिकांश लेखक रचनाके स्तरपर तो प्रतिरोधी स्वर रखना चाहते हैं, क्योंकि आजके साहित्यिक दौरमें बिना ऐसे स्वरके कोई पूछ नहीं, पर उनके मूल पेशागत सस्कार, बन्धन और मध्यवर्गीय चरित्र उन्हें सुविधामुखी बना देते हैं (पृ. १५६)। ऐसी स्थितिमें जनसंघर्षका दायित्व प्रतिबद्ध लोगोंपर ही आता है।

शंभुनाथने रचनाधर्मिता और जनके सम्बन्धोंके साथ लोकवामकी संघर्षशील दिशाके बारेमें भी विचार किया है। 'किसीभी साहित्यकारकी रचनाधर्मिता यह होती है कि उसने अपने प्रासंगिक अनुभवों तथा विचारोंके माध्यम से जिन्दगीके यथार्थोंको, समयके अन्तर्संघर्षोंको और कल की बदलती चुनौतियोंको कितनी गहराईसे अभिव्यक्त किया है' (पृ. १४९)। यह प्रश्न रचनाकी समग्र प्रक्रिया और चरित्रका है, जो लेखक और परिवेशके द्वन्द्वात्मक सम्बन्धका परिणाम होता है। दर्शन, विचारका रचनासे जटिल सम्बन्ध होता है। रचनाकार समाजके वर्गोंके आन्तरिक सम्बन्धों-टकरावोंको पहचानकर रचनामें व्यापक सत्यकी अभिव्यक्ति करता है। ऐसा न कर पानेकी स्थितिमें रचना और रचनाकारकी कोई प्रासंगिकता नहीं रह जाती। इसी रचनाधर्मिताको अपनाकर लेखक जनता की जीवन दृष्टि और भविष्यकी दिशाको वैज्ञानिक आधारपर प्रस्तुत कर सकता है, तभी वह संस्कृतिके परिवर्तनकामी तथा प्रतिरोधी हिस्सेकी भूमिका निभाने में समर्थ होगा। विश्वमें सामंतवाद, वर्ण वैषम्य, पूंजीवाद और साम्राज्यवादी शक्तियोंके बढ़ते संघर्षके संदर्भ में, हमारे देशमें सामाजिकार्थिक क्रान्तिके लिए चलने वाला संघर्ष बार-बार भटकाव और बिखराव तथा जड़ता का शिकार हो जाता है, इसके कारणोंको समझकर ही उन्हें दूर किया जा सकता है। शंभुनाथ साहित्यमें उठती क्रान्तिकी लहरोंको समाजसे कटी हुई मानते हैं। इसको सही दिशासे जोड़े बिना, 'गणतांत्रिक आन्दोलनों को विकसित किये बिना समाजवादी क्रान्तिको सशस्त्र विप्लवके मार्गसे लाया जा सकता है—यह पूंजीवादका ही एक नया कौशल बन जायेगा' (पृ. १६९)। भटकाव का एक बड़ा कारण मध्यवर्गीय सुविधावाद है, जिसने अबतक मजदूर संगठनोंका नेतृत्व करके उन्हें समझौतापरस्त बना दिया है। इसलिए मजदूर और किसानोंके आन्दोलनोंको नवमध्यवर्गीय चरित्रसे अलग करके ही संघर्ष किया जा सकता है। 'वेतनवृद्धि और अन्य सुविधाओंके लिए संघर्षका महत्त्व है, लेकिन अगर यह व्यापक होकर बुनियादी परिवर्तनके लिए जन मांगोंसे नहीं जुड़ता, तो इसका चरित्र मध्यवर्गीय सुविधावादसे जकड़ जाता हैं' (पृ. १६८)। भारतमें आर्थिक क्रान्ति चाहनेवाली राजनीतिक शक्तियोंको अपना जनाधार व्यापक बनाना होगा। यह कार्य तब औरभी कठिन हो जाता है, जब 'परम्परागत वामपंथी आन्दोलनोंसे सुरक्षित होनेके लिए मौजूद पूंजीवादी व्यवस्थाने अपना एक नया 'मैकेनिज्म' विकसित कर लिया है', (पृ. १७१)। जनसंघर्षोंकी इस जटिलताको अनदेखा करके, समझौतेकी प्रक्रियाको

निरस्त करके लोकवामकी [illegible] नहीं की जा सकती। वामपंथी आन्दोलनके इस विकासशील दौरमें, जबकि इसे कई तरहके आघात सहने पड़ेंगे, किसी अतिवादका सहारा औरभी घातक होगा। तानाशाही, नवतानाशाही, साम्प्रदायिक शक्तियाँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय आधारोंसे परिचालित होनेवाली शक्तियोंसे इस लोकवाम की दिशामें सहयोगकी अपेक्षा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि लोकतांत्रिक वामपंथी शक्तियोंकी एकताका संघर्ष इन्हीं से है। स्वार्थी, अवसरवादी, सुविधाकामी वर्गोंसे अलग 'भारतीय क्रान्तिमें जनवाद, संयुक्त क्रान्तिकारी संघर्ष तथा लोकशाही—ये तीन प्रयोगशील आधार होंगे' (पृ. १४१) शंभुनाथके इन विचारोंपर बहसकी गुंजाइश है।

'कविताएँ: समाज और देश' निबन्धमें शंभुनाथने दिनकरके काव्यकी प्रारंभिक क्रान्तिकारी जनचेतना और स्वातन्त्र्योत्तर भटकावपर सरसरी तौरपर नजर डाली है। उनकी राष्ट्रभक्ति और राजभक्तिका फर्क कवितामें साफ तौरपर दिखायी देता है। लेखकका प्रयास दिनकर-काव्यके जनवादी गुणोंको पहचानने और उनके भव्य स्खलनोंकी चर्चाका रहा है। दिनकर काव्यके संदर्भमें यह विश्लेषण काफी हदतक सही है कि 'राष्ट्रीयतावाद पलटी खाकर काफी देर बाद अन्ततः राजकी अधीनता स्वीकार कर लेता है। राष्ट्रीयता जब अकेली हो जाती है तो इसका परिणय किसी-न-किसी वक्त सुविधावादसे ही होता है, (पृ. ८४)। जबकि 'पक्ष और सत्तामें जाकर रचना हमेशा भ्रष्ट होती है।' फिरभी दिनकरकी प्रारंभिक जन-चेतनाका महत्त्व कम नहीं हो जाता। 'कवितामें जनवादी बदलाव' को रेखांकित करते हुए शंभुनाथने मुक्तिबोध, त्रिलोचन, नागार्जुन, केदारनाथसिंह, विजेन्द्र, विष्णुचन्द्र शर्मा, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, धूमिल, दूधनाथसिंह, जगूड़ी, देवताले तथा अन्य युवा कवियोंकी कविताओंकी, सामाजिक आर्थिक-राजनीतिक चेतनाका चलताऊ विश्लेषण किया है। जिस जनवाद और जनसंघर्षकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि आलोचकने तैयार की है, यह निबन्ध उसकी समझके आगे कई तरहके प्रश्नचिह्न लगाता है। उसने कहा भी है कि 'कहानीकी अपेक्षा आजकी कवितापर बातचीत करनेमें खतरे अधिक हैं', (पृ. ११४) क्योंकि कविताकी आलोचना कई तरहकी तैयारीकी माँग करती है और शंभुनाथमें यह नदारद है। जिसकी वजहसे वे कविताओंके नकारात्मक पक्षोंको अनदेखा कर जाते हैं। चूँकि कविता बहुत छूट देती है, अतः तनिक असावधान होतेही इसका मूल्यांकन गड़बड़ा जाता है। जनवादी कविताके बारेमें यह निबन्ध अधूरा और अपर्याप्त है।

जनसंघर्षोंकी जटिल परम्पराको समझनेके लिए शंभुनाथने कबीर, तुलसी, भारतेन्दु, प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, यशपाल और रेणुके साहित्यके पूनर्मूल्यांकनका प्रयास किया है। जनसंघर्षकी ऊपरी और मोटी समझके लिए कबीर, भारतेन्दु, प्रेमचन्द और निराला बहुत सुरक्षित कवि हैं, जबकि तुलसी, प्रसाद तथा यशपाल किताबी मार्क्सवादीके लिए चुनौती रहे हैं, आजभी हैं। यहाँ डॉ. रामविलास शर्मा तथा मुक्तिबोधकी आलोचना का याद आना स्वाभाविक है, जिन्होंने इन कवियोंकी कविताको गहरी वस्तुगत दृष्टिसे समग्र जटिलतामें समझनेकी कोशिश की है। शंभुनाथने इन लेखोंको लिखने से पहले इस मूल्यांकनको देखभर लिया होता तो बहुत-सी कमियोंसे बच सकते थे। जाति, धर्म और आर्थिक वैषम्यके सामाजिक-राजनीतिक मान्यतागत आधारको समझनेके लिए कबीर और तुलसी दोनोंका महत्त्व है। और नहीं तो जनवादी इन कवियोंके काव्यमें मौजूद व्यापक जनाधारसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। इसके बिना भारतीय मानसिकताकी जड़ोंमें मौजूद स्थितियोंकी समझ बहुत अधूरा रहेगी। कबीरकी सामाजिक-राजनीतिक चेतना गहरी थी, जबकि तुलसीमें यह तत्कालीन सीमाओंके साथ उभरी, अतः जटिल है। शंभुनाथ जिन आधुनिक अव-धारणाओंको, रमेशकुन्तल मेघकी तर्जपर लेकर उतरते हैं, उनका प्रवेश तुलसीवाले लेखमें नहीं दिखायी देता, जिसके कारण उन्हें तुलसीकी प्रगतिशील इतिहास-दृष्टिकी कोई प्रासंगिकता नजर नहीं आती। 'रामचरित मानस' मध्यकालीनतावादका संदर्भ ग्रन्थ होते हुएभी मलबेका ढेर नहीं है, जिसके साथ मनमानी की जा सके। पुन-र्मूल्यांकनकी बाढ़में, वस्तुगत दृष्टिके अभावमें शंभुनाथ बह जाते हैं, प्रसादपर उनका लेख इसका साक्षी है। प्राध्यापकीय, एकेडेमिक दृष्टिको कोसकर ही काम नहीं चल सकता, जबतक कि खुद उससे बचनेकी कोशिश न की गयी हो। इस दृष्टिसे तुलसीको समझे बिना निराला को भी नहीं समझा जा सकता। साहित्यकी परंपराके पुनर्मूल्यांकनका शंभुनाथका यह प्रयास गंभीर न होकर हल्की-सी सतही कोशिश है।

'प्रेमचन्दके संघर्षशील पात्र' लेखकका एक अच्छा निबन्ध है, जिसमें उनके पात्रोंको तत्कालीन जनसंघर्षके विकासशील दौरमें, उनकी सारी शक्तियों और मानवीय

कमजोरियोंको देखा जा सकता है। शंभुनाथ जब कृतिके भीतरसे उभरते जनसंघर्षको न समझकर अपनी दृष्टि थोपने लगते हैं, तो उनकी समझ गड़बड़ा जाती है. इससे साहित्य और जनसंघर्ष दोनोंही हाथसे छूटने लगते हैं। (पृ. ६८) पर प्रसादके संदर्भमें पश्चिमके काले बादलोंमें अंग्रेजोंकी पराधीनता तथा उगते सूर्यमें आजादीका संकेत (खासकर 'कामायनी' के 'आह वह मुख ! पश्चिमके व्योम ?')देखना उनकी यांत्रिक समझका प्रतीक है। ठीक यही स्थिति यशपालके क्रान्तिकारी दृष्टिकोण और उनके साहित्यको आमने-सामने रखनेसे पैदा होती है। मध्यवर्ग के पतनशील-रुग्ण चित्रणके अलावा यशपालके प्रगतिशील पक्ष इससे सामने नहीं आ सके हैं। परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों-अन्धविश्वासोंपर चोट करनेकी यशपालकी सीमाको देखे बिना जनसंघर्षकी अगली भूमिका तैयार नहीं हो सकती। उच्चवर्ग और मध्यवर्गको नकारकर, उनके अन्तर्विरोधोंको समझे बिना, इनकी वास्तविकतासे आँख मूंदना घातक है। इसी कारण शंभुनाथ रेणुके ग्रामीण परिवेशको रोमानी यथार्थ, राजनीतिक दृष्टि तथा चेतनाके अभावसे ग्रस्त मानकर साहित्यकी यांत्रिक समझको दोहराते हैं। यही कारण है कि वे प्रेमचन्द, यशपाल और रेणुके सामने बहुत सारे प्रश्नचिह्न लगाकर छोड़ देते हैं, जबकि आलोचकसे उनके विश्लेषण और समाधानकी अपेक्षा की जाती है, साहित्यकारसे उतनी नहीं। रचनामें यथार्थ और जनसंघर्ष जटिल तथा समग्र रूपमें उभरते हैं, जबकि इसे देखनेवाले आलोचककी दृष्टि एकांगी और व्यक्तिगत रुचिसे संचालित होती है। शंभुनाथ, ज्ञानरंजनके कहानी-संग्रह 'क्षणजीवी' की कहानियोंको निष्क्रिय, रोमानीपनके अथाह निराशावादमें डूबी, सामाजिक यथार्थवादसे दूर कहकर, उनकी सीमाओंकी तरफ स्पष्ट संकेत तो करते हैं, लेकिन 'अनुभव' कहानीके थोपे हुए कृत्रिम अन्तमें जनदिशाका संकेत समझकर अपनी सीमाओंको भी सामने ले आते हैं। यही कारण है कि वे जनसंघर्ष और साहित्यके अन्तःसम्बन्धोंकी वस्तुगत समझ विकसित नहीं कर पाते।

'साहित्य और जनसंघर्ष' में शंभुनाथके लेखोंसे वर्तमान जनसंघर्ष तथा परम्पराके प्रति दृष्टिकी दिशाको खोजनेकी प्रक्रियाको आगे बढ़ानेका वातावरण जरूर उत्पन्न हुआ है। यों उनकी सीमाएँ और संभावनाएँ भी उभरकर सामने आयी हैं। साहित्य, समाज, राजनीति तथा संस्कृतिके क्षेत्रमें मौजूद वैचारिक टकरावोंको [illegible] लिहाजसे यह समकालीन आलोचनाकी एक जरूरी पुस्तक है। इन लेखोंके विकासशील दौरसे आगे शंभुनाथसे गंभीर आलोचना कर्मकी अपेक्षा की जा सकती है।

आलोचकका दायित्व[1]

लेखक : डॉ. रामचन्द्र तिवारी

समीक्षक : डॉ. प्रशान्तकुमार

यह कृति हिन्दीकी नयी आलोचनाकी सम्पूर्ण गतिविधियोंको अपनेमें समेटे हुए है। हिन्दीके लगभग सभी प्रमुख आलोचकोंकी इसमें चर्चा है। डॉ. तिवारी विशाल अध्ययन पैनी व निष्पक्ष दृष्टिके कारण न केवल हिन्दी की नयी आलोचनाका एक चित्र प्रस्तुत कर सके हैं, अपितु हिन्दी आलोचनाको एक दिशा देनेमें भी समर्थ रहे हैं।

ग्रन्थका प्रारम्भभी 'आलोचकका दायित्व' से किया गया है। आदर्श आलोचकका दायित्व रचनाके मर्मका उद्घाटन करना है। इस प्रयोजनसे डॉ. तिवारीने श्रेष्ठ आलोचकके दायित्व निर्दिष्ट किये हैं कि आलोचक—(क) काव्यको परिभाषित करता है (ख) परम्परागत मूल्योंका पुनराख्यान करता है। (ग) नये मूल्यकी स्थापना एवं नवीन पद्धतिकी प्रतिष्ठा करता है। (घ) काव्यानुभूति एवं जीवनानुभूतिके सम्बन्धोंकी व्याख्या करता है। (ङ) काव्यके आस्वादनका स्वरूप निर्धारित करता है। (च) अवाँछित पद्धतियों एवं मूल्योंका विरोध करता है। (छ) काव्य वस्तु और काव्य शिल्पके संश्लिष्ट सम्बन्धका विश्लेषण करता है। (ज) रचना-प्रक्रिया और प्रेषणीयताकी व्याख्या करता है तथा (झ) कालजयी कृतियों और अपनी प्रिय रचनाओंका मूल्यांकन करता है। ये सभी कार्य एक-दूसरेसे संश्लिष्ट रूपमें सम्बद्ध हैं। विशेषतः व्यावहारिक समीक्षामें आलोचककी आलोचना-दृष्टि इन सबको संघटित एवं समाहित करके मूल्यांकन में प्रवृत्त होती है। अन्तमें निष्कर्ष रूपमें डॉ. तिवारीने जोड़ा है कि आलोचकका दायित्व है कि वह सच्चे सं-

---

[1] **प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक वाराणसी। पृष्ठ : १४०; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।**

दनशील और मानव समस्याओंको [illegible] वाले कविकी वाणीको पहचाने और उसे अपना नैतिक समर्थन दे।

'आलोचना : स्वरूप और तत्त्व' दूसरा अध्याय है। लेखकका कथन है कि आलोचनाका विषय काव्य है और काव्यका विषय मनुष्य। इसी कारण आलोचना मनुष्यके काव्य-बिम्बित स्वरूपका अध्ययन करनेवाली साहित्यिक प्रक्रिया है। मनुष्य न इतिहास है न दर्शन, न विज्ञान है न समाजशास्त्र, न मनोविज्ञान है न गणित। ये समस्त शास्त्र उसे और उसके संघर्षोंको समझनेके साधन मात्र हैं। काव्यमें वह सम्पूर्ण जटिलताके साथ बिम्बित होता है। अतः काव्यकी मीमांसा करनेवाली आलोचना अधिकसे अधिक पूर्ण तभी हो सकती है जब वह अनुभवकी समग्रता और जीवनकी सम्पूर्ण जटिलताका आधार लेकर अपना स्वरूप निर्मित करे। 'साहित्यमें प्रेषणीयताका प्रश्न' तीसरे अध्यायमें प्रेषणीयतामें रचनाकारकी विभिन्न अनुभूतियों, पाण्डित्य प्रदर्शनके लिए प्रयुक्त चमत्कारिक उक्तियों, वस्तु और शिल्प क्षेत्रमें नये प्रयोगों तथा आलम्बनके प्रतिनिधि भावोंकी अभिव्यक्तिको बाधक माना गया है। लेखकका मत है कि साहित्यमें प्रेषणीयताके तत्त्वको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें सबसे बड़ा योगदान आलोचकका ही है। 'आधुनिक हिन्दी आलोचनामें मूल्यों का विकास' अध्यायमें लेखकका कथन है कि रामचन्द्र शुक्लने मनुष्यताकी सामान्य भूमिकाको काव्यका चरम लक्ष्य स्वीकार किया है। छायावाद युगमें व्यक्तिकी स्वतन्त्रताका महत्त्व रहा। प्रगतिवादमें मार्क्सवादी जीवन के अनुसार सामाजिक यथार्थकी अभिव्यक्तिको प्रमुखता दी गयी। इसकी प्रतिक्रियामें प्रयोगवादमें व्यक्तिकी पूर्ण स्वतन्त्रतापर बल दिया गया। आलोचनाके बदलते मापदण्डोंपर, उनकी शक्ति और सीमापर लेखकने अपनी संतुलित टिप्पणीभी की है। उन्होंने साहित्य, कृति और आलोचना दोनोंके एकही मूल्य स्वीकार किये हैं।

'हिन्दी आलोचना तथा गवेषणका वर्तमान स्वरूप' अध्यायमें लेखकने मान्यता प्रस्तुत की है कि अनुसंधानकर्ताके लिए वस्तुपरक दृष्टि, तर्कपूर्ण विवेचन और विश्वसनीय प्रभाव आवश्यक शर्त है। आलोचनामें वैयक्तिक या आत्मपरक दृष्टि-निक्षेपका भी अवसर रहता है। उसका विश्वास है कि हिन्दी आलोचनाके 'कैनवस' का विस्तार हो गया है पर साथही इस ओरभी ध्यान खींचा है कि आलोच्य सामग्रीका समग्र मूल्यांकन अभी नहीं हो पा रहा। हिन्दी आलोचनाके सम्बन्धमें तीन प्रकारकी प्रवृत्तियाँ लक्षित हो रही हैं—'मूल्यांकनके नये प्रतिमानकी खोज, २. प्राचीन शास्त्रीय प्रतिमानोंका पुनराख्यान और ३. विश्व-प्रचलित प्रतिमानोंको ग्रहण करनेकी आकांक्षा। डॉ. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल नन्ददुलारे वाजपेयी और डॉ. नगेन्द्रने इस सिद्धान्तकी व्याख्या की। इधर मानवतावादी, मनोविश्लेषणवादी, प्रतीकवादी, अस्तित्ववादी, बिम्बवादी, आदि समीक्षा सिद्धान्तोंकी चर्चा विश्वप्रतिमान ग्रहण करनेकी आकांक्षा का ही परिणाम है। पर आलोचना अथवा रचनाका श्रेष्ठ आधार व्यापक मानवीय सत्यही है। हिन्दीकी व्यावहारिक समीक्षामें 'रचना' से अधिक 'रचना-प्रक्रिया' को महत्त्व देना समीचीन नहीं है क्योंकि उससे मूल संवेदनातक पहुंचनेमें कठिनाई होती है। इस प्रसंगमें लेखकने नये आलोचकोंकी वृत्तिसे भारतीय सांस्कृतिक सम्पदाके उपेक्षित हो जानेके खतरेकी ओर संकेत किया है। हिन्दी गद्यकी व्यावहारिक समीक्षाभी हिन्दी आलोचनाकी उपलब्धि है। हिन्दी शोधसे लेखकने असन्तोष व्यक्त किया है। यह सच है कि अधिकांश हिन्दी शोध तथ्यानुसंधान मात्र हैं, पर अच्छे शोध ग्रन्थोंकी ओर सम्भवत लेखककी दृष्टि नहीं गयी। वास्तविकता यह है कि स्तरीय हिन्दी आलोचना प्रकाशितही नहीं हो पाती जबकि निम्न स्तरीय शोध कृति किसी-न-किसी रूप में प्रकाशमें आ जाती है। कमसे कम परीक्षक बनकर तो विश्वविद्यालयोंके विभागाध्यक्ष देखही लेते हैं।

'हिन्दीके निजी आलोचना शास्त्रकी सम्भावना : पुनर्विचार' छठे अध्यायमें लेखकने हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ आलोचकोंके कार्योंका विवरण प्रस्तुत किया है। यह सत्य है कि हिन्दी आलोचक संस्कृत व पाश्चात्य काव्यशास्त्रके आधारपर आलोचनाके क्षेत्रमें बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। पर लेखककी यह मान्यता कि हिन्दी आलोचनाका अपना स्वरूप बन चुका है, उसका आलोचनाशास्त्र प्रतिष्ठित है, मात्र इसे रेखांकित करनेकी आवश्यकता है—एकपक्षीय है। अभी इस दिशामें अधिक काम की अपेक्षा है। सप्तम अध्याय 'काव्य भाषाकी चिन्ता' में काव्य भाषायी समीक्षापर विचार किया गया है। लेखकका कहना है कि प्रत्येक कवि अपने भावोंके अनुरूप अपनी भाषाका प्रयोग करता है। लेखकका यह भी कहना है कि भाव और भाषामें द्वैत नहीं होना चाहिये। लेकिन व्यावहारिकताके स्तरपर क्या भाषा संवेदनाके सहारे वस्तु संवेदनाकी सही और पूरी परख

सम्भव है ? उनका कहना है कि काव्यमें प्रयुक्त शब्दही सब कुछ नहीं हैं। लेखककी जीवनी, उसका परिवेश, उसका इतिहास और उसका मनोविज्ञानभी महत्त्वपूर्ण है। इनका मत है कि भाषायी अध्ययनके आधारपर कविके कथ्यकी खोजमें लक्ष्यसे भटक जानेके खतरेभी कम नहीं है। भारतीय काव्यशास्त्रमें भाषाका बहुत महत्त्व है पर यह भाषा मात्र साधन है, प्रधानता कथ्यकी ही है। 'काव्य भाषाके सम्बन्धमें इतनाही सत्य है कि काव्यमें भाषाकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। 'हिन्दीका आधुनिकीकरण और अंग्रेजीका दबाव' अध्यायमें लेखकने यह चिन्ता व्यक्त की है कि कहीं हिन्दी मात्र अनुवादकी भाषा बनकर न रह जाये ? उन्होंने इस वृत्तिसे हिन्दीकी दुरूहताकी ओरभी ध्यान आकृष्ट किया हैं।

अगला अध्याय हैं 'रचनाकी चुनौतियां और आलोचनाकी सृजनशीलता'। आलोचकोंने कविताकी व्याख्या आधुनिक भावबोधके अनुसार की और अर्थ रूप जगत् व शब्द रूप ब्रह्ममें अद्वैतता स्थापित करके कोरे अभिव्यक्ति पक्षको नकारा। पर लेखक यह माननेके लिए तैयार नहीं है कि भाषा संवेदनाका सही बोध कविके अनुसार जगत् का सही साक्षात्कार कर सकता है। आलोचनाकी सृजनशीलताके सन्दर्भमें तनाव या द्वन्द्वकी तलाशका भी उल्लेख अनिवार्य है। लेखकने कथ्यकी नवीनता, फैंटेसी और स्वप्न कथाओंका अयथार्थवादी शिल्प, एक-एक शब्दमें एक-एक वाक्यका अर्थ गर्भित करनेकी जटिल प्रक्रिया शब्द संकेतको रंग संकेतका स्थानापन्न बनानेकी सायास चेष्टा, अपरिचित बिम्बोंके सहारे एक अमूर्त पारदर्शी वर्णमय लोककी सृष्टि भावक वर्गकी कवि-कर्मके साथ क्रियात्मक योग स्थापित कर पानेकी अक्षमता आदि अनेक करणोंको गिनाकर कविताके मर्मतक पहुंचनेमें असमर्थताका वर्णन किया है। अन्तमें उनका निष्कर्ष स्पष्ट हैं 'भाषा-संवेदनापर निर्भर होने और रचनाकी पूर्ण स्वायत्तता स्वीकार कर लेनेमें हमें ऐसा लगता है कि आलोचनाकी भूमि अत्यन्त संकुचित हो गयी है।

'ऐतिहासिक आलोचनाकी प्रासंगिकता' अध्यायमें भी लेखकने कवितामें कोरे भाषिक विश्लेषणको महत्त्व न देकर कुछ बाह्य तत्त्वों—ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक आदि—का सहारा लेकर इसकी व्याख्याको अधिक उपयोगी बताया है। 'नयी समीक्षा : शक्ति सीमाएँ' अध्यायमें लेखककी स्थापना है कि हिन्दी साहित्यमें भी पिछले दो दशकोंमें नये काव्य सृजनके समानान्तर जो समीक्षा पद्धति विकसित हुई है, वह आंग्ल-अमरीकी साहित्यमें प्रतिष्ठित नयी समीक्षासे बहुत कुछ प्रेरित और प्रभावित है। लेखकके मतमें नयी समीक्षा शब्दही पाश्चात्य जगत्से आया हैं। नयी समीक्षा के मूल तथ्य हैं—१. काव्यको स्वत. पूर्ण संरचना मानने के कारण नयी समीक्षा ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी और दार्शनिक समीक्षाओं को महत्त्व नहीं देती। २. नयी समीक्षा रचनाकी आन्तरिक संगतिके विश्लेषणपर बल देती है। ३. नयी समीक्षा के अनुसार काव्य भाषिक सर्जना मात्र है। इसलिए भाषा के सर्जनात्मक तत्त्वोंका विश्लेषणही समीक्षाका मुख्य धर्म है। ४. नयी समीक्षा सम्प्रेषण या आस्वादके प्रश्न को महत्त्व नहीं देती। वह कृतिके मूल्यांकनमें भी विश्वास नहीं करती। वह कृतिके घनिष्ठ पाठपर ही सर्वाधिक बल देती है। हिन्दी आलोचक न अमरीकी नयी समीक्षाकी, न मार्क्सवादी समीक्षाकी, मूल प्रतिज्ञा का यथावत् पालन कर सकेहैं। इसीप्रकार शैली विज्ञान के सम्बन्धमें लेखकने प्रसिद्ध आधुनिक समीक्षक रेने वेलेक के निष्कर्षको प्रस्तुत किया है—'शैली विज्ञान कविताकी संरचनाको समझनेमें सहायक हो सकता है, पर वह आलोचनाका एक अंग है, पूरी आलोचना नहीं।' अन्तमें इस अध्यायमें लेखकका मत है कि नयी समीक्षाकी सबसे बड़ी शक्ति है काव्य-भाषाके सघन विश्लेषण द्वारा उसके सर्जनात्मक स्वरूपका अन्वेषण।

पुस्तकके बड़े भागमें लेखक पथिकृत् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, समन्वयशील, स्वच्छन्दतावादी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, चिन्मुखी मानवताके अन्वेषक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रस सिद्धान्तके पुनराख्याता डॉ. नगेन्द्र, प्रखर मार्क्सवादी समीक्षक डॉ. रामविलास शर्मा शीर्षकोंसे इन समीक्षकोंके समीक्षा-मूल्योंका सुन्दर वर्णन करता है। लेखकने न केवल इन समीक्षकोंके शास्त्रीय व व्यावहारिक समीक्षा ग्रन्थोंका गहन अध्ययन किया है, वरन् इन समीक्षकोंपर लिखे अन्य विचारकोंके मतोंको भी गंभीरतासे पढ़ा है। संभवतः लेखकके मतमें ये आचार्य समीक्षक हिन्दी-समीक्षाके आधार स्तम्भ हैं। हिन्दी-समीक्षा इन्हींके अनुकरणपर आगे विकसित हो सकती है यद्यपि लेखकके इन आलोचकोंके सम्बन्धमें किये गये विश्लेषणमें कहीं-कहीं मतभेद हो सकता है, फिरभी इनका मूल्यांकन करके लेखकने अपनी पुस्तकके अभिप्राय को पूर्ण किया है।

यह प्रभावित करनेवाली कृति है। कथन प्रमाणपुष्ट

है। कहीं-कहीं मतभेदभी हो सकता है। जैसे—'तुलसीके मानसमें निहित सामाजिक चेतना सार्वकालिक नहीं है।' (पृ. ९), प्रत्येक सफल आलोचक किसी अंशतक कविभी होता है। (पृ. ११)। छायावादी कवियोंने आलम्बन पक्षको अलौकिक एवं अस्पष्ट रखकर तथा अभिव्यक्तिको अधिक लाक्षणिक सूक्ष्म एवं सांकेतिक बनाकर प्रेषणीयता की स्थितिको संदिग्ध बना दिया था। (पृ. १५) अशोक वाटिकामें रावण द्वारा सीताके प्रति व्यक्त क्रोधके साथ पाठकका मानसिक तादात्म्य नहीं होता और प्रेषणीयता के सिद्धान्तकी चरितार्थता खण्डित हो जाती है। (पृ. १६)। प्रश्न है कि क्या कवि तब उसी क्रोधकी ही प्रेषणीयता चाहता है? 'ईश्वर' का सृजन किया था (पृ. १९) क्या यह बात सभी स्वीकार कर लेंगे? आलोचक के मूल्य सामान्यतः काव्यके मूल्योंके अनुवर्ती होते हैं। (पृ. १९)। प्रश्न है कि क्या आलोचक नये कवियोंको अपना अनुवर्ती नहीं बनाता? क्या वह अपनेसे पूर्ववर्ती कवियोंके दोषोंका वर्णन करनेमें सक्षम नहीं होता। इसी प्रकारके कुछ स्थल औरभी हैं, जिनसे प्रत्येक पाठक सहमत नहीं होगा। डॉ. नगेन्द्र हिन्दी साहित्यके महान् समीक्षक हैं, पर इनकी हिन्दी साहित्यके इतिहास-लेखकों में गणना देखकर विचित्र लगा। इतिहास-पुस्तकोंके सम्पादनसे कोई इतिहास लेखक नहीं होता। डॉ. रामचन्द्र तिवारीने आचार्य शुक्ल व डॉ. नगेन्द्र आदिकी रस व्याख्याओंपर जो टिप्पणियां की हैं वेभी आंख मूंदकर स्वीकार नहीं की जा सकतीं।

पुस्तकका शीर्षक है 'आलोचकका दायित्व।' लेखक ने आलोचकके दायित्वको सुन्दरतासे प्रकट किया है। पर इनका सम्पूर्ण बल आधुनिक आलोचना और विशेष रूप से नयी समीक्षापर रहा है। उनकी पुस्तकपर पाश्चात्य आलोचक व मत छाये रहे हैं। आश्चर्य है कि आचार्य शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि जिन हिन्दी आलोचकों को मान्यता दी है उनपर भारतीय सिद्धान्तका व्यापक प्रभाव होते हुएभी इस पुस्तकमें भारतीय पारम्परिक शास्त्रीय समीक्षा पद्धतिकी उपेक्षा हुई है। भारतीय काव्यशास्त्रके शाश्वत मूल्योंकी स्थापना करके आधुनिक आलोचकोंको उनसे प्रेरणा दी जा सकती थी, विशेष रूप से हिन्दी काव्यशास्त्रके निर्माणके प्रसंगमें इसकी विशेष आवश्यकता थी।

पुस्तकमें कई शब्दोंके दो रूप मिलते हैं—महत्त्व-महत्व, तत्त्व-तत्व, सर्जन-सृजन। निश्चयही मुद्रकके प्रमादसे ऐसा हो सकता है। अहम, जनों आदि असंस्कृत प्रयोगभी पुस्तकमें आये हैं। स्तरीय पुस्तकोंमें ऐसी अशुद्धियां उपेक्षणीय नही होती। संभव है यह लेखकका नहीं प्रकाशकका दोष हो। लेखक अंग्रेजी शब्दोंके अनूदित शब्दोंको हिन्दीमें अधिक स्थान नहीं देना चाहता। कुछ स्थानोंपर उसने स्वयं ऐसे प्रयोग किये हैं जैसे सामान्य पाठकके लिए औसत पाठक। निश्चयही लेखकके मस्तिष्क में ऐवरिज शब्द घूम रहा था।

विद्वान् लेखक बधाईके पात्र हैं कि उन्होंने आजकी आलोचनाका स्पष्ट, सुन्दर व पूर्ण वर्णन करनेके साथ आलोचनाका दायित्व स्पष्ट किया है।

हिन्दीके कालपुरुष : प्रेमचन्द
व्यक्तित्व और कृतित्वका आकलन
'प्रेमचन्द विश्वकोश'[1]

लेखक : डॉ. कमलकिशोर गोयनका **समीक्षक : डॉ. विष्णुकान्त शास्त्री**

प्रेमचंदका जन्म कब हुआ था—३१ जुलाई, १८८१ को या १० अगस्त, १८८१ को या सितम्बर १८८१ को, किस तारीखको? प्रेमचंदने सरकारी नौकरीसे इस्तीफा कब दिया था १९२० में या १६ फरवरी १९२१ में? प्रेमचंदके प्रेसमें हड़ताल कब हुई थी—फरवरी, १९३३ में या ३-४ सितम्बर, १९३४ को? प्रेमचंदका पहला उपन्यास कौन-सा है? 'हमखुमवि हमसवब' या 'किशना' या 'असरारे मआविद' (उर्फ देवस्यान रहस्य)? ये और

१. प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०-००६। दो खण्ड। प्रथमः जीवन खण्ड; पृष्ठ : ४०८; रायल; मूल्य : १२५.०० रु.। द्वितायः साहित्य खण्ड; पृष्ठ : ५२३; रायल; मूल्य : २७५.०० रु.।

ऐसे बहुत-से सवाल प्रेमचंदके उन अध्येताओंके समक्ष उलझन बन खड़े होते हैं, जो प्रेमचंदके जीवन और साहित्यको अभ्रांत तथ्योंके आलोकमें अपनी विवेचनाका विषय बनाना चाहते हैं।

अब ये अध्येता ऐसी जिज्ञासाओंके सही समाधानके लिए प्रायः आश्वस्त हो सकते हैं, क्योंकि डॉ. कमल किशोर गोयनकाके तपके सुफलके रूपमें 'प्रेमचंद विश्व-कोश' के पहले दो खंड प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें प्रेमचंदके जीवन और साहित्यका तथ्याश्रित विवरण दिया गया है। 'प्रेमचंद विश्वकोश' अर्थात् प्रेमचंद और उनके साहित्यके सम्बन्धमें जो कुछ ज्ञातव्य हो सकता है, उस सबका प्रामाणिक एवं सृजनात्मक संकलन है यह। निस्सन्देह प्रेमचंद ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त साहित्य-कार हैं जिनके बारेमें अधिकाधिक प्रामाणिक सूचनाएं संगृहीत होनी ही चाहियें। इन्हींके आधारपर प्रेमचंदके साहित्यकी पृष्ठभूमिको ठीक-ठीक समझा जा सकता है और तभी उसका सही मूल्यांकन किया जा सकता है।

ऊपर प्रेमचंदके जीवनकी महत्त्वपूर्ण घटनाओंके सम्बन्ध में जो परस्पर विरुद्ध मत उद्धृत किये हैं, उनमें से कई स्वयं प्रेमचंद या शिवरानी प्रेमचंदकी स्मृतिपर आधारित हैं। डॉ. गोयनकाने उनकी मीमांसा करते समय यथासंभव वस्तुगत प्रमाणोंका आश्रय लिया है। प्रेमचंदकी सर्विस-बुकके अनुसार उनका जन्म १० अगस्त, १८८१ को हुआ था। एंट्रेंसके उनके सर्टिफिकेटके साक्ष्यके आधारपर उनका जन्म सितम्बर, १८८१ की किसी तारीखको होना चाहिये, किन्तु प्रेमचंदकी जन्म-कुंडलीमें (जो दुर्भाग्यवश अब खो गयी है) उनके जन्मकी तारीख ३१ जुलाई, १८८० दी हुई थी। श्रीपतराय एवं श्री मुरारीलाल केडिया की गवाहीपर डॉ. गोयनकाने इसी तारीखको प्रामाणिक माना है।

शिवरानीजीने लिखा है कि प्रेमचंदजीने १९२० में अपनी नौकरीसे इस्तीफा दिया था, किन्तु उनकी सर्विस-बुकमें स्पष्ट उल्लेख है कि उनका कार्यकाल उनके इस्तीफे के कारण १६ फरवरी १९२१ को समाप्त हुआ। हो सकता है कि उन्होंने इस्तीफा १४ या १५ फरवरीको लिखकर दिया हो, किन्तु उसकी स्वीकृति १६ फरवरीको ही हुई होगी।

शिवरानी देवीने ही लिखा था कि प्रेमचंदके सरस्वती प्रेसमें हड़ताल फरवरी, १९३३ में हुई थी, किंतु डॉ. गोयनकाने प्राप्त प्रमाणोंके आधारपर सिद्ध किया है कि यह हड़ताल ३-४ सितम्बर, १९३४ को हुई थी और १६ सितम्बर, १९३४ को कर्मचारियोंसे लिखित समझौता हुआ था।

अपने प्रथम उपन्यासके सम्बन्धमें स्वयं प्रेमचंदने परस्पर विरोधी बातें लिखी हैं। अब वस्तुगत प्रमाणके आधारपर यह सिद्ध है कि प्रेमचंदकी प्रथम प्रकाशित उर्दू रचना 'ओलिवर क्रामवेल' की पहली किस्त काशीसे निकलनेवाले उर्दूके साप्ताहिक पत्र 'आवाज-ए-खल्क' के १ मई, १९०३ ई. के अंकमें प्रकाशित हुई थी। इसी पत्र में ८ अक्तूबर, १९०३ ई. के अंकसे उनका पहला उपन्यास 'असरारे-मआविद' (देवस्थान-रहस्य) धारावाहिक रूपसे छपा। इन कुछ उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंदके करीब ५६ वर्षोंके जीवनकी लगभग १५०० ज्ञात-अज्ञात घटनाओंको कालक्रमिक रूपसे दिनांकित करना कितना कठिन कार्य था? जिस अध्यवसाय, योग्यता और लगन और वैज्ञानिक सूझ-बूझसे डॉ. गोयनकाने इस चुनौतीको स्वीकार किया वह श्लाघ्यही नहीं अनुकरणीय भी है। प्रेमचंदसे संबंधित प्रामाणिक सामग्री—उनके प्रमाणपत्र, नियुक्तिपत्र, सर्विस-बुक, बैंकोंकी पास बुकें, प्रकाशकों आदिसे हुए अनुबन्धों, पत्रों, डायरियों आदिका पता लगाकर उनका संग्रह करना, प्रेमचंदपर विविध भाषाओंमें लिखित समस्त पूर्ववर्ती साहित्यका संकलन वर्गीकरण करना, उससे ज्ञात होनेवाले तथ्योंको यथासंभव प्रामाणिक रूपसे दिनाँकित करना, परस्पर विरुद्ध सूचनाओं की मीमांसा करना डॉ. गोयनकाके असाधारण धैर्य, कठोर परिश्रम, पैनी सूझ-बूझ और सर्वोपरि अपने उद्देश्यके प्रति उनकी अटूट निष्ठाके फलस्वरूपही संभव हो सका। यह सच है कि इस क्षेत्रमें पूर्ववर्तियों विशेषतः श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद, अमृतराय एवं मदनगोपाल आदिका अशेष ऋण डॉ. गोयनकापर है, किन्तु यहभी सच है कि डॉ. गोयनकाने उस ऋणको न केवल चक्रवृद्धि ब्याजके साथ चुकाया है, बल्कि उनके द्वारा अनजाने हुई कई जीवन एवं साहित्य संबंधी त्रुटियों एवं भ्रामक सूचनाओं को दूरभी किया है। इस प्रकार उन्होंने उपलब्ध सामग्रीका उपयोग करते हुए उसका शोधनभी किया है तथा प्रेमचंद के जीवन एवं साहित्यके सम्बन्धमें असंख्य नये तथ्य एवं दस्तावेज प्रस्तुत किये हैं। डॉ. गोयनका प्रेमचंदके पूर्व जीवनीकारोंकी तुलनामें अधिक विश्वसनीय, प्रामाणिक एवं अपरिमित नवीन सामग्री देनेके कारण सदैव याद किये जायेंगे।

प्रेमचंदके जीवनको तारीखवार कलेण्डरनुमा प्रस्तुत करनेकी प्रेरणा लेखकको 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय' और रवीन्द्रनाथकी इसी शैलीकी जीवनी 'कालपुरुष'से मिली। इस शैलीके गुणदोष दोनों हैं। इस शैलीमें जहां एक ओर दिन-प्रतिदिनकी घटनाओंके आलेखनसे चरितनायककी बहुमुखी प्रवहमान जीवनधारा प्रत्यक्ष होती है, वहीं प्रसंगों की विविधताके कारण किसी एक विषयको उसकी क्रमिक समग्रतामें उपस्थितकर पाना संभव नहीं होता। प्रेमचंदके सदृश महान साहित्यकारोंके दोनों प्रकारके जीवन-चरित्र लिखे जाने चाहियें। प्रेमचंदकी जीवन-सारणी प्रस्तुत करनेके साथही प्रथम खंडमें प्रेमचंदके वस्त्र तथा उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंका विवरण दिया गया है, जिससे स्पष्ट है कि जीवन-यापनके लिए उन्होंने बहुत कम वस्तुओं का उपयोग किया था। इस विवेचनासे यह सच्चाई उभरती है कि औसत भारतीय मध्यवर्गीय व्यक्तियोंकी तरह जीवन जीते हुए प्रेमचंद्ने कितने असाधारण कार्य किये थे।

प्रेमचंदके अध्ययन-संसारका पूर्णतः निर्देश कर पाना तो शायद प्रेमचंदके लिएभी संभव न होता, किन्तु तोभी डॉ. गोयनकाने उन अंग्रेजी, उर्दू और हिन्दीकी पत्र-पत्रिकाओं, लेखकों और कृतियोंकी एक लम्बी तालिका प्रस्तुत की है, जिनका उल्लेख प्रेमचंदने किया है। अनुमानतः यह तालिका प्रेमचंदके समग्र अध्ययनके संभवतः १० प्रतिशतसे भी कम है, फिरभी इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है कि उनकी रुचिके वैविध्य और अध्ययनशील मानसके व्यापक क्षितिजका आभास इससे मिलता है।

प्रेमचंद संबंधी अनेक महत्त्वपूर्ण दस्तावेजोंको तथा विविध परीक्षाओंके उनके प्रमाणपत्रों, सर्विस बुक, बैंककी पासबुकों, अनुबंधों आदिकी प्रतिलिपियां या छाया-चित्रों में संकलितकर एवं प्रेमचंदके व्यक्तिगत एवं साहित्यिक मित्रों तथा परिचितोंकी तालिका देकर लेखकने सर्वथा मौलिक, असाधारण एवं सराहनीय कार्य किया है। 'प्रेमचंद विश्वकोश' के इस प्रथम खण्डसे प्रेमचंदके जीवनके सम्बन्धमें हमें ज्ञात घटनाओंके अतिरिक्त असंख्य अज्ञात घटनाओं एवं तथ्योंकी जानकारी मिलती है, जो निश्चय ही प्रेमचंदके जीवनके सम्बन्धमें हमारी जानकारीको विकसित करती है। डॉ. गोयनकाने प्रेमचंदकी जीवनीको जिस प्रकार नये रूपमें लिखा है तथा उनके जीवनके अनेक अज्ञात क्षेत्रोंके सम्बन्धमें, नये तथ्यों एवं दस्तावेजोंको खोजकर, प्रकाश डाला है तथा अमृतरायकी जीवनी 'प्रेमचंद : कलमका सिपाही' के समान अपनी जीवनी (प्रेमचंद विश्वकोश-खण्ड १) को सृजनात्मक न मानते हुए भी उसे सृजनात्मक एवं कलात्मक अन्वितिसे प्रस्तुत किया है, उसके लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाये वह कम है। वस्तवमें यह जीवनी हिन्दी जीवनी साहित्यके इतिहासमें एक नया प्रयोग है और एक ऐसा सीमा-चिह्न है जिसे पार करना सरल न होगा।

प्रेमचंदकी जीवन-सारणीको प्रस्तुत करनेके समानही महत्त्वपूर्ण एवं विवादास्पद कार्य है प्रेमचंदकी रचनाओं का कालक्रमानुसार विवरण तैयार करना। डॉ. गोयनका ने बहुतही परिश्रमपूर्वक उनकी समस्त कृतियों अर्थात् लेखों, उपन्यासों, कहानियों, नाटकों, समीक्षाओं, सम्पादकीय टिप्पणियों एवं अनूदित रचनाओं आदिका कालक्रमिक लेखा-जोखा, प्रकाशनकी तारीखोंके आधारपर उपस्थितकर समस्त प्रेमचंदप्रेमियोंको अपना ऋणी बना लिया है। ३२० से ३७१ तक रायल साइजके ५३ पृष्ठों में फैली यह सूची प्रेमचंदके साहित्यिक कृतित्वकी विपुलताका प्रमाण है। प्रेमचंद कलमके मजदूरभी थे, सिपाहीभी और सम्राट्भी। 'गोदान', 'रंगभूमि', 'कफन', 'ईदगाह', महाजनी सभ्यता' जैसी अमर कृतियोंके लेखक 'वान-संगीत' जैसी पुस्तककी समीक्षाभी करते थे और 'वैवाहिक लेन-देन और कानून' जैसे विषयपर सम्पादकीय टिप्पणीभी लिखते थे। यहभी उल्लेखनीय है कि ८ अक्तूबर, १९३६ को प्रेमचंदजीकी मृत्यु होनेके बादभी उनकी अप्रकाशित रचनाएं छपती रहीं, अग्रंथित कृतियों के संकलन निकलते रहे, विस्तृत कृतियोंके संग्रह प्रकाशित किये जाते रहे, ज्ञात रचनाओंके नये-नये कलेवरोंमें संस्करण छपते रहे। आजभी यह क्रम चलही रहा है। इस विश्वकोशके प्रथम खंडमें प्रेमचंदके साहित्यिक प्रकाशनका १९८० तकका ब्योरा संकलित है। डॉ. गोयनकाने प्रेमचंदकी प्रकाशित कृतियोंका धारावाहिक उल्लेख करते हुए यहभी बताया है कि कौन-सी रचना पहले उर्दू या हिन्दीमें प्रकाशित हुई, कब उसका रूपान्तर दूसरी भाषा में छपा। उनके विवेचनसे यह स्पष्ट है कि प्रेमचंदकी कुछ रचनाएं केवल उर्दूमें, कुछ केवल हिन्दीमें और अधिकांश दोनों भाषाओंमें उपलब्ध है। डॉ. गोयनकाने यहभी बताया है कि एक भाषासे दूसरी भाषामें रूपान्तर करते समय प्रेमचंदने उस भाषाके बोलनेवालोंको दृष्टिगत रखकर किसीनकिसी कृतिमें थोड़ा-थोड़ा परिवर्तनभी किया है। [illegible] एक नया एवं दिलचस्प

विषय है। 'प्रेमचंद विश्वकोश' तथा डॉ. गोयनकाके प्रेमचंद सम्बन्धी कार्योंकी यह एक उपलब्धिही है कि उनसे प्रेमचंदके जीवन तथा साहित्यके सम्बन्धमें अध्ययनकी नयी दिशाएं खुली हैं तथा इस अध्ययनके लिए नवीन तथा प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हुई है। इस कार्य के दौरान डॉ. गोयनकाको उर्दू-हिन्दी पत्रिकाओंमें प्रकाशित प्रेमचंदकी अप्राप्य एवं असंकलित १६ कहानियां मिलीं जिनका संकलन उन्होंने 'प्रेमचंदकी अप्राप्य कहानियां' के नामसे किया है और जो मुद्रणाधीन है। इस पुस्तकके प्रेसमें जानेके बाद डॉ. गोयनकाको प्रेमचंद की चालीसके करीब अप्राप्य रचनाओंकी जानकारी और मिली है। निश्चयही इस शोधकार्यके लिए डॉ. गोयनका बधाईके पात्र हैं। प्रेमचंदके लुप्त एवं अज्ञात साहित्यका उद्धार करनेवालोंमें अमृतरायके बाद डॉ. कमलकिशोर गोयनकाका नाम सदैव कृतज्ञतापूर्वक लिया जाता रहेगा।

'प्रेमचन्द विश्वकोश' के प्रथम खंड (जीवनी) में सादे कागजपर २६ एवं आर्ट पेपरपर १८ चित्र दिये गये हैं जिसमें से कुछ अन्यत्र कहीं मुद्रित नहीं हैं। अन्तमें सहायक सामग्रीकी सूची और नामानुक्रमणिका जोड़कर डॉ. गोयलकाने इस खंडको और उपयोगी एवं स्थायी महत्त्वका बना दिया है।

'प्रेमचंद विश्वकोश' का दूसरा खंड (प्रेमचंदका साहित्य) प्रेमचंदके समग्र हिन्दी-उर्दू साहित्यका परिचय एवं विवरण प्रस्तुत करनेवाला खंड है। इसमें वर्णानुक्रम से प्रेमचंदकी लगभग १७०० रचनाओंका परिचय एवं सारांश दिया गया है। इस कार्यके लिए डॉ. गोयनका एक सौ से अधिक विद्वानोंका सहयोग प्राप्तकर सके यह उनकी संगठन-क्षमताका निश्चित प्रमाण है। प्रत्येक रचनाके शीर्षक तले उसकी साहित्यिक विधा, प्रथम प्रकाशनकी तिथि, पत्रिका एवं पुस्तक अथवा संकलनका उल्लेखकर उसका सारांश दिया गया है। इसमें प्रेमचंद के ज्ञात साहित्यके अतिरिक्त उनकी १६ अप्राप्य कहानियों तथा अनेकानेक विस्मृत लेखों, सम्पादकीयों, पुस्तक-समीक्षाओं एवं भूमिकाओंकी सूचनाभी दी गयी है। इस प्रकार यह खंड प्रेमचंद-साहित्यका आशुनिर्देशक बन गया है। इसकी एक विशेषता यहभी है कि इसमें प्रेमचंदकी प्रमुख कृतियोंके प्रथम संस्करणके आवरण पृष्ठोंके छायाचित्र भी छपे गये हैं। 'किशना' नामक उपन्यासके अप्राप्य प्रथम संस्करणकी प्रामाणिक जानकारी लंदनकी इंडिया आफिस लाइब्रेरीकी ग्रंथसूचीमें प्रदत्त विवरण के आधारपर दी गयी है। इस एक उदाहरणसे ही यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक-सम्पादक डॉ. गोयनकाने प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करनेके लिए कितना परिश्रम किया है, कितनी मौलिक सूझ-बूझका प्रमाण दिया है, कितनी निष्ठा एवं लगनसे कार्य किया है।

भारतीय तथा विदेशी भाषाओंमें अनूदित प्रेमचंद-साहित्यकी भाषावार सूचना, उर्दू और हिन्दीमें प्राप्त प्रेमचंदकी रचनाओंकी अलग-अलग अनुक्रमणिका तथा प्रेमचंद-साहित्यका विषयानुरूप वर्गीकरण इस खंडकी अन्य प्रशंसनीय विशेताएं हैं। इनके संयोजनसे वांछित रचनाको खोज निकालना पाठकके लिए सुगम हो गया है। परिशिष्टमें उन रचनाओंकी प्रविष्टियां वर्गानुक्रमसे दे दी गयी हैं जो किसी कारणवश मूलमें सम्मिलित नहीं की जा सकी थीं। फिरभी यह संभव है कि इन दोनों खंडोंमें कुछ साधारण भूलचूकें रह गयी हों, कुछ सूचनाएं अपूर्ण हों, किन्तु इतने बड़े कामोंको इन छोटी त्रुटियोंसे बिलकुल मुक्त रख पाना संभव नहीं होता। मुझे निश्चय ही कोई ऐसी त्रुटि नहीं मिली जो उल्लेखनीय हो। एक व्यक्तिके द्वारा इतना बृहद् एवं अनुपम कार्य करना आश्चर्यजनकही है।

प्रेमचंद शतवार्षिकीके अन्तर्गत सारे देशमें छोटे-बड़े कई समारोह हुए, प्रकाशन हुए। सबका अपना-अपना महत्त्व है, किन्तु यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि डॉ. कमलकिशोर गोयनका द्वारा परिकल्पित, लिखित एवं सम्पादित 'प्रेमचद विश्वकोश' इस शतवार्षिकीकी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। हिन्दीमें यह अपने प्रकार का पहला कार्य होनेपर भी डॉ. गोयनकाने जिस पूर्णताके साथ उसे प्रस्तुत किया है, वह उनकी मौलिक सूझ-बूझ, शोध-दृष्टि एवं प्रेमचंदके प्रति उनकी समर्पित निष्ठाका द्योतक है। वास्तवमें यह डॉ. गोयनकाकी दृढ़-निष्ठाका साहसिक प्रयोग है, क्योंकि इस महान कार्यमें आनेवाले बड़े-बड़े संकटोंको झेलते हुए वे दृढ़ निष्ठासे अनेक वर्षों तक इस कार्यको पूर्ण करनेमें लगे रहे। प्रेमचंद शतवार्षिकीके अवसरपर, उनके जीवन एवं साहित्यके अनुरूप ही समर्पित यह श्रद्धांजलि—'प्रेमचंद विश्वकोश' प्रेमचंद के साथही सदैव याद की जाती रहेगी।

'प्रेमचंद विश्वकोश' के तीसरे, चौथे और पांचवें खंडभी शीघ्र प्रकाशित होने चाहिये। इनमें क्रमशः प्रेमचंद-साहित्यके लगभग तीन हजार पात्रों, जीवनके विविध पक्षोंपर प्रेमचंदके सुचिन्तित विचारों और उनके समग्र

साहित्य एवं व्यक्तित्वपर [illegible] होना निस्संदेह 'प्रेमचंद विश्वकोश' के ये पांचों खंड मिलकर प्रेमचंदके संबंधमें ज्ञातव्य प्रायः सभी विषयोंको समेटकर उनके निरन्तर बृहत्तर एवं भारवर होते जानेवाले बिम्बको उसकी समग्रतामें प्रस्तुत कर सकेंगे और उनके अध्ययनके नये द्वार खुल सकेंगे। ▭ ▭

प्रेमचन्दका कथा संसार[1]

लेखक : डॉ. नरेन्द्रमोहन

समीक्षक : सीताराम खोड़ावाल

प्रेमचन्द शताब्दी वर्षमें प्रेमचन्द और उनके साहित्यपर पत्र-पत्रिकाओंमें पूरे वर्ष कुछ-न-कुछ प्रकाशित होता रहा। इसके अतिरिक्त अनेकों शोध-प्रबंध तथा लेख प्रकाशित हुए। उसीकी एक कड़ीं है 'प्रेमचन्दका कथा संसार', जिसमें २४ लेखोंका संकलन है। पूरी पुस्तकको वैज्ञानिक ढंगसे चार खण्डोंमें विभक्त किया गया है।

प्रेमचन्द इस शताब्दीके आरम्भसे ही न केवल भारतीय साहित्याकाशपर छाये रहे हैं बल्कि देशके सामाजिक चिन्तकोंमें भी उनका स्थान बहुत ऊंचा है। कथा और पत्रकारिताके क्षेत्रमें तो उनके योगदानपर काफी कुछ लिखा जा चुका है और प्रसंगवश यहभी कहा गया है कि प्रेमचन्दका साहित्य सामाजिक समस्याओंका बिम्ब और समाधान प्रस्तुत करता है। किंतु वास्तविकता यह है कि प्रेमचन्द एक सामाजिक चिंतकही थे। कथाको तो उन्होंने मात्र माध्यम बनाया था, जैसे तुलसी और कबीर पहले संत और बादमें कवि थे और अपने विचार प्रचारके लिए उन्होंने काव्यकी टेक ली। उपर्युक्त कथन का प्रमाण इस बातसे मिल जाता है जब आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जैसे कुछ समीक्षकोंने प्रेमचन्दपर प्रोपेगंडिस्ट होनेका आरोप लगाया। प्रेमचन्दजीने इस आरोप का खण्डन नहीं किया बल्कि साहसपूर्वक स्वीकार किया कि [illegible] प्रति लोगोंमें जागरूकता लाना प्रोपेगण्डा है तो मैं प्रोपेगंडिस्ट होनेपर गर्व करता हूं। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने भी प्रेमचन्दके बारेमें यही कहा था कि वे प्रोपेगंडिस्ट हैं।

इतना तो स्पष्ट है कि मठाधीश समीक्षकोंको प्रेमचंद भाते नहीं थे, कारण कुछभी हो। प्रगतिशील विचारधारा के प्रसारके साथ प्रेमचन्दको अप्रासंगिक कहा जाने लगा। उनका तर्क है प्रेमचन्द जिस युगमें रह रहे थे वह युग ही नहीं रहा। वे शोषकही नहीं रहे तो प्रेमचन्द कहां सामयिक रह गये? इस पुस्तकको पढ़नेपर भ्रांति दूर हो जाती है। इस पुस्तकके कुछ लेख पढ़कर प्रतीत होता है कि इन नये टिप्पणीकारोंने या तो प्रेमचन्दके सम्पूर्ण साहित्यका अध्ययन नहीं किया है या उन्हें आजकी ग्रामीण समस्याओंका आभास तक नहीं है। वे समझते हैं कि अंग्रेजोंके जानेके बाद प्रेमचन्दकी वे बहुत-सी रचनाएं असामयिक हो गयी हैं, जो स्वाधीनता आन्दोलनसे प्रेरित होकर लिखी गयी थीं। परन्तु यह उनकी भ्रांति है क्योंकि प्रेमचन्द राजनीतिक आजादीको ही स्वाधीनता का एकमात्र लक्ष्य नहीं मानते थे। 'प्रेमचन्दका उपन्यास साहित्यः एक सर्वेक्षण' में डॉ. यश गुलाटीने जागरणके १७ अप्रैल १९३३ अंकका उद्धरण दिया है जिसमें प्रेमचंद ने स्वयं लिखा था—"आज भारतका उद्योगधंधा पनप उठे, आज भारतके घर-घरमें खानेके लिए दो मुट्ठी अन्न, पहननेके लिए दो गज कपड़ा हो जाये···जीवनमें कुछ कविता, कुछ स्फूर्ति, कुछ सुख मालूम पड़े तो कौन इस बातकी चिंता करेगा कि पार्लियामेंटमें अंग्रेज हैं या हिन्दुस्तानी।" (पृष्ठ ११७) एक सवाल है कि प्रेमचंद की प्रासंगिकतापर प्रश्न चिह्न लगाने वालोंसे, क्या जो प्रेमचंद चाहते थे वह हो गया!' सबको भरपेट रोटी, कपड़ा और रहनेके लिए मकान उपलब्ध हो गया)

दूसरा मुद्दा ये टिप्पणीकार उठाते हैं कि प्रेमचंदने जमींदारके किसानोंपर जुल्मोंका नक्शा खींचा है वह तभी सामयिक था; आज जमींदार नहीं रहे तो प्रेमचंदभी असामयिक हो गये। यहांभी उनकी धारणाएं परीक्षणीय हैं आज जमींदारी प्रथाका मात्र स्वरूप बदला है। तब शहरमें बैठा जमींदार गाँवके किसानका आर्थिक शोषण करता था। उस समय गाँवका हर मजदूर और हर किसान उसका समान रूपसे दबैल था आज उसका और अधिक विकृत रूप सामने आ रहा है। बड़े-बड़े भूस्वामी आज खेतोंमें बाबा आदमके जमानेकी दरोंपर मजदूर रखते हैं।

---

1. प्रकाशक : **सरस्वती विहार, २१ दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ३१४; डिमा. ८०; मूल्य : ३५.०० रु.।**

खेतीहर मजदूर [illegible] मजदूरी [illegible] बेलछी और पीपराकी घटनाएं घटती हैं; तब तो गाँव में सभी दबैल थे और आज एक दब्बू वर्ग है तो दूसरा दबंग है। तब दूर बैठा जमींदार या उसके इक्का-दुक्का कारिंदे किसानका आर्थिक शोषण करते थे, आज बड़ा किसान भूमिहीनोंका न केवल आर्थिक अपितु सामाजिक शोषणभी करता है जिनकी बहू-बेटीकी आबरू उनके पास गिरवी रखी रहती है।

प्रेमचंदकी सामयिकता वैसे तो अबभी इतनी स्पष्ट है फिरभी इस पुस्तकमें कमसे कम दो स्थानोंपर ऐसे प्रसंग दिये गये हैं जो उनकी प्रासंगिकताके ही ज्वलंत उदाहरण नहीं बल्कि उनकी दूर-दृष्टिके वज्र साक्ष्य हैं।

आज देशकी राजनीतिमें यह माँग बड़े जोरसे उठती है कि जनताके जो चुने हुए प्रतिनिधि उसकी आकांक्षाओं के प्रतिकूल कार्य करते हैं उनकी सदस्यता समाप्त कर दी जानी चाहिये। गुजरातमें एक आन्दोलन हुआभी, फिर लोकनायक श्री जयप्रकाश नारायणके नेतृत्वमें एक आन्दोलन चलाया गया। श्री धर्मेन्द्र गुप्तके लेख—"प्रेमचंदके उपन्यास और राजनीतिका संदर्भ" में एक ऐसेही तथ्यपर प्रकाश डाला गया है—'प्रेमाश्रम' का रचनाकाल १९१८ है, यानी प्रेमचंदने राजनीतिके जिस पक्षको १९१८ के आसपास देखा-परखा था, और जिस कमीकी ओर इंगित किया था, उसीपर १९७५ के आस-पास लोकनायक जयप्रकाश नारायणने विशेष जोर दिया है। जयप्रकाशने भी बार-बार यह कहा कि उस विधायक या संसद-सदस्यको वापस बुलानेका अधिकार मतदाता को मिलना चाहिये, जो चुनावमें किये गये वायदोंको निभानेमें असफल रहा हो। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस बातको जयप्रकाशने '७५ में अनिवार्य माना और जिसपर आज सभी प्रबुद्ध व्यक्ति एकमत हैं, उसे प्रेमचंद ने १९१८ में ही देख लिया था। लगभग साठ वर्ष पूर्व 'प्रेमाश्रम' के पृष्ठोंपर अंकित प्रेमचंदके विचार यह सिद्ध करते हैं कि प्रेमचंदकी राजनीतिक दृष्टि कितनी पैनी और खरी थी।" (पृष्ठ १४०-१४१)

इसके साथही प्रेमचंदकी प्रासंगिकताका एक और जीवंत उदाहरण दिया है डा. महीपसिंहने अपने लेखमें 'प्रेमचंदकी कहानियों-समस्याओंका संदर्भ' में। उन्होंने 'मंत्र' कहानीका उल्लेखकर यह बताया है कि धर्मान्तरण के बारेमें जो समस्या आज उठ रही है उसका हूबहू आभास प्रेमचंदको कमसे कम पचास साल पहले हो गया था। विराट् हिन्दू सम्मेलनकी प्रेरणा उसीसे ली जा सकती थी। डा. महीपसिंहने यहभी स्पष्ट कर दिया है कि 'मंत्र' नामकी दो कहानियां हैं वे ऐसा न करते तो पाठकको भ्रांति हो सकती थी।

फिर सम्पादकके प्रथम लेखमें ही मंगलसूत्रका जो उदाहरण दिया गया है वह प्रेमचंदकी प्रगतिशीलता और प्रासंगिकताका प्रत्यक्ष प्रमाण है—"प्रेमचंदने अपने अधूरे उपन्यास 'मंगलसूत्र' में देवकुमारका आत्म-मंथन दिखाते हुए अपनी बदली हुई मानसिकताको इस प्रकार खोला है: 'देवता वह है जो न्यायकी रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जानकर अनजान बनता है तो धर्म से गिरता है और अगर उसकी आंखोंमें यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अन्धाभी है और मूर्खभी। देवता किसी तरह नहीं। देवताओंने ही भाग्य और ईश्वर और भक्तिकी मिथ्या धारणाएं फैलाकर इस अनीतिको अमर बनाया है। मनुष्यने अबतक इसका अन्त कर दिया होता या समाजका ही अन्त कर दिया जाता जो इस दिशामें जिन्दा रहनेसे कहीं अच्छा होता। नहीं, मनुष्योंमें मनुष्य बनना पड़ेगा।' ये पंक्तियां उनकी रचनात्मक मानसिकतामें घटित हो रहे बदलावकी सूचक हैं।"

कई लेखकोंने यह स्पष्ट करनेका सद्प्रयास किया है कि प्रेमचंदकी विचारधारामें जो विरोधाभास देखनेको मिलता है वह उनके दृष्टिकोणमें परिस्थिति और अनुभव-जन्य सुलझावका प्रतीक है। यह प्रकट करता है कि प्रेमचंद एक लीक पकड़कर चलनेवाले जड़बुद्धि लेखक नहीं थे, उन्होंने किसी सिद्धान्तपर आँख बंदकर अपनी धारणाएं निर्धारित नहीं कर ली थीं बल्कि हर सिद्धान्तको परखा, तोला और जो जंचा उसे स्वीकारा, जिसे बेदम पाया उसके प्रति धारणा बदल ली। यही धारणाएं उनके साहित्यमें रूप बदलती हुई प्रतिबिम्बित हुईं। डा. नरेन्द्र-मोहनका यह कथन यही प्रमाणित करता है—"इससे लगता है कि अपने लेखनके आखिरी दौरमें आकर प्रेमचंद सुधार, समझौते और हृदयपरिवर्तन जैसे साधनोंसे ऊब गये थे। गांधीवादी सिद्धान्तों और नीतियोंमें उनकी आस्था हिल गयी थी। सबसे पहले इसकी सूचना 'गोदान' में मिली थी।"

डॉ. भीष्म साहनीने अपने लेख 'प्रेमचन्दके कथा साहित्यमें सामाजिक चेतना जातपातपर प्रहार किये जानेके संदर्भमें 'ठाकुरका कुआं' कहानीका उल्लेख किया है। उन्होंने पूरी कहानीका सार संक्षेपमें दिया है, परंतु

इससे आभास मिलता है कि उन्होंने ऐसी अनेक कहानियों का जिक्र नहीं किया है जिनमें जातपातपर और तीव्रता से प्रहार किया है, जिनमें कटाक्ष भी है और प्रताड़नाभी, संवेगभी है और चिंतनभी। ये कहानियां हैं मंत्र, दूधका दाम, सौभाग्यके कौड़े, सद्गति और आगा-पीछा।

इसी प्रकार डॉ. साहनीने जहां प्रेमचन्द साहित्यमें साम्प्रदायिकताकी निंदाका उल्लेख किया है वहां एक बहुतही सशक्त 'हिंसा परमो धर्म' का जिक्र करना भूल गये हैं।

डॉ. विनयके लेख 'प्रेमचंदके उपन्यास और मनोविज्ञान'में कहा गया है कि प्रेमचंद मनोवैज्ञानिक कथाकार नहीं थे। लेखकने सैद्धान्तिक आधारपर कोईभी परिणाम क्यों न निकाल लिया हो वास्तविकता तो यह है कि बड़े घरकी बेटी, पंच परमेश्वर, अलगोझा, आगा पीछा, सौभाग्यके कौड़े, बूढ़ी काका, शंखनाद, घर जमाई, आदि कहानियां प्रेमचंदके मनोवैज्ञानिक होनेमें कोई संदेह नहीं रहने देती। प्रेमाश्रमका ज्ञानशंकर और रंगभूमिका प्रभुसेवक बड़े ही मनोवैज्ञानिक चरित्र हैं। फिर प्रेमचंदने भय, क्रोध, प्रेम, वासना, स्वार्थ आदि मनोभावोंपर जो सूक्तियां दी हैं उन्हें पढ़कर तो ऐसा लगता है कि प्रेमचंद मनोविज्ञानके ज्ञाताही नहीं मर्मज्ञ पण्डित थे।

इसी पुस्तकमें डॉ. रामदरश मिश्रने अपने लेख 'प्रेमचंदकी कहानियां और उनकी परम्परा' में स्पष्ट कहा है [illegible] कहानियोंमें मनोवैज्ञानिक तथ्योंका उद्घाटन होता चलता है।" (पृ. २०२)

कुछ लेखकोंसे कहीं-कहीं चूकभी हो गयी है। यहां एकका उल्लेख अनिवार्य है। डॉ. यश गुलाटीके लेख 'प्रेमचंदका उपन्यास साहित्य : एक सर्वेक्षण' में लिखा गया है—'रंगभूमिका सूरदास मरते दमतक औद्योगीकरणका विरोध करता है और ज्ञानशंकरके कारखानेसे अपनी तथा गांवकी जमीन बचानेका संघर्ष करता है।" (पृ. १०५) यहां चूक यह है कि रंगभूमिमें कारखानेका मालिक ज्ञानशंकर नहीं जानसेवक है। सम्पादककी शायद पुरानी रूढ़ियोंसे लगाव है। इसका प्रमाण है कि पुस्तकमें डिठौना भी लगा दिया गया है। वह है डा. कमलकिशोर गोयनका का लेख 'प्रेमचंद अध्ययनकी नयी दिशाएं' डा. गोयनका प्रेमचंदके साहित्यकी समीक्षापर नहीं उनके व्यक्तिगत जीवनका उद्घाटन करनेपर ज्यादा जोर देते रहे हैं। इसी कारण वे समीक्षित लेखमें बताते हैं कि प्रेमचंदकी बैंक पासबुकमें ४ हजार ४७१ रुपए ५ आने ११ पाई जमा थे। इस बातको प्रचारित करनाभी उन्हें आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रेमचंदने अपनी बेटीके विवाहपर ७००० रुपए खर्च किये थे। इसी संदर्भमें श्री गोयनकाने प्रश्न पूछा है "अब आपही बतायें और फैसला करें कि क्या ये तथ्य निर्धनतामें जीवित एवं मर जाने वाले प्रेमचंदकी कहानी कहते हैं या एक मध्य वर्गके व्यक्तिके आर्थिक जीवनकी कथा कहते हैं?'(पृ. ३११)।

अभिनन्दन : संस्मरण

डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' : व्यक्तित्व और कृतित्व[1]

सम्पादक : डॉ. कमल सिंह

समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य

डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' हिन्दी भाषा एवं साहित्यके जाने-माने विद्वान् हैं। समीक्ष्य ग्रंथमें उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्वपर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। यह एक प्रकारसे अभिनदन-ग्रंथही है किन्तु सम्पादकों ने अंध-श्रद्धासे बचते हुए कृतित्व विवेचनमें डॉ. सुमन की मान्यताओं अथवा स्थापनाओंसे असहमतिपरक लेख भी ग्रंथमें दिये है। अतः यह ग्रंथ परंपरागत अभिनंदन-ग्रंथोंसे हटकर कुछ विशिष्टही हैं।

समीक्ष्य ग्रंथ तीन खंडोंमें विभाजित है—(१) व्यक्तित्व (२) कृतित्व तथा (३) अलीगढ़ जनपद।

---

१. प्रकाशक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' : व्यक्तित्व और कृतित्व, ग्रन्थ परिषद्। प्राप्ति केन्द्र : डॉ. कमल सिंह, १६८, ब्रह्मपुरी, मुजफ्फरनगर-२५१-००२। पृष्ठ : २९३; डिमा. ८१, मूल्य ६०.०० रु.।

व्यक्तित्व खंडके आरंभमें ही डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'का पद्यबद्ध आत्मकथ्य है, जिसमें उनके जीवनकी प्रमुख घटनाओंका उल्लेख हुआ है। डॉ. बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, पं. सीताराम चतुर्वेदी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. विद्यानिवास मिश्र प्रभृति मूर्धन्य विद्वानों की शुभाशंसा संवलित तथा डॉ. जगदीश वाजपेयी; श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु', श्री आनंदपाल सिंह 'एकलव्य' आदिकी काव्यांजलियोंके साथ-साथ इस खंडमें डॉ. सुमन जीके मित्रों, सहयोगियों तथा शिष्योंके अनेक लेख हैं, जिनसे उनके व्यक्तित्वपर प्रकाश पड़ता है। कुछ विद्वानों के महत्त्वपूर्ण उद्गार इस प्रकार हैं—'श्री सुमनजीने अपने मसृण, मृदु तथा स्नेहशील स्वभावके कारण अनेक सद्भावयुक्त सुहृद और शिष्य अर्जितकर लिये हैं। किसीभी अध्यापकका यही सबसे बड़ा गुण और यही उसकी विराट् विभूति है' (आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी ; पृ. १८)। 'व्याकरण जिज्ञासु और काव्यास्वादमें प्रायः सौहार्द नहीं रहा। सहृदय समाजमें वैयाकरणको प्रायः शास्त्राभ्यास जड़ माना गया है किन्तु सुमनजी इस कोटिमें नहीं आते।' (डॉ. नगेन्द्र, पृ. १९)। डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' का स्मरण करतेही आँखोंके सामने एक ऐसे व्यक्तिका चित्र उभर आता है, जो पढ़ने-लिखनेकी साकार प्रतिमा है तथा भाषा और साहित्यका विश्लेषण जिसके जीवनका जैसे एकमात्र उद्देश्य है। डॉ. सुमनका रहन-सहन और स्वभाव सूफियाना है। एक सतत मुस्कान उनके होठोंकी अभिन्न मित्र है। विनोद उनका चिर सहचर है। क्लांत मानसिकतासे वे कोसों दूर हैं।' (डॉ. मलखानसिंह सिसौदिया। पृ. ४७)। 'डॉ. सुमनकी अध्यापन कला अद्भुत है। कामायनीकी व्याख्यासे लेकर भाषा-विज्ञानकी गुत्थियोंको सुलझानेमें उनकी समानता शायदही कोई करता हो। जादू वह है जो सरपर चढ़कर बोलता है। डॉ. सुमनके व्याख्यानोंका जादू कोई उनके श्रोताओंसे पूछे। उनकी आकर्षक-व्याख्यान शैली, उनकी विश्लेषणात्मक दक्षता और उनके पांडित्यकी गरिमा कभी भुलायी नहीं जा सकती।' (डॉ. इंदरराज बैद अधीर, पृ. ७४-७५)

कृतित्व खंडके अन्तर्गत डॉ. सुमनके प्रकाशित एवं प्रकाशनाधीन ग्रंथों एवं लेखोंके साथ-साथ आकाशवाणीसे प्रसारित उनकी वार्ताओंकी सूचीभी दी गयी है' जो निश्चयही उपयोगी है। डॉ. साहबकी अवतक १४ पुस्तकें तथा २८८ लेख विभिन्न पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं तथा ४ ग्रंथ एवं २९ लेख प्रकाशनाधीन हैं। तीस पृष्ठों (पृ. सं. १३८ से १६८ तक) में डॉ. सुमनके काव्योंसे मुक्ता-संकलन तथा आलोचनात्मक एवं भाषाशास्त्रीय ग्रंथोंसे उद्धरण प्रस्तुत किये गये है, जिनसे उनकी भावधारा, स्थापनाओं तथा मान्यताओंका दिशा-निर्देश प्राप्त होता है। इस खंडमें उनके सभी प्रमुख ग्रंथोंपर स्वतंत्र लेख हैं तथा कुछ लेखोंमें उनके समग्र कृतित्वका विवेचन प्रस्तुत किया गया है। डॉ. सुमनजीके पत्रोंका संकलन 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' एक अद्वितीय ग्रंथ है, जिसमें उनका बहुआयामी पांडित्य एवं व्यक्तित्व मुखर है। अतः इस ग्रंथपर एकाधिक लेख हैं। डॉ. सुमनकी हिन्दी शब्दशास्त्र तथा भाषा-विज्ञानके क्षेत्रमें अद्वितीय देन है। वे रामचरितमानसके मौलिक व्याख्याकार हैं तथा उनका शब्दार्थ-विवेचन सर्वथा अनूठा है। लोक-साहित्य एवं संस्कृतिमें भी उनकी अनोखी पैठ है। कृतित्व खंडमें उनके इन्हीं रूपोंके दर्शन होते हैं।

डॉ. सुमनजीका जन्म अलीगढ़ जिलेके शेखूपुर ग्राममें हुआ। अतः ग्रंथके तृतीय खंडमें अलीगढ़ जनपदकी झांकी प्रस्तुत की गयी है। इस खंडमें सात लेख है, जिनमें अलीगढ़के भौगोलिक परिवेश, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, साहित्यकारों, संगीतकारों, तथा चित्रकारोंका परिचय दिया गया है। एक लेख अलीगढ़के प्रसिद्ध लोकगीतोंपर भी हैं। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथमें डॉ. बनारसीदास चतुर्वेदीके शब्दोंमें 'पुरुषके साथ प्रकृतिका भी अभिनंदन हो गया है।' ग्रंथ अद्वितीय हैं, इसमें संदेह नहीं। ▭

जयशंकर प्रसाद[1]

लेखक : रमेशचन्द्र शाह

समीक्षक : महेशचन्द्र शर्मा

हिन्दी-साहित्यके आधुनिक युगमें लब्धप्रतिष्ठ एवं प्रातिभ साहित्यकार जयशंकर प्रसाद (और विशेषतः उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय कृति 'कामायनी') के व्यक्ति

---

१. **प्रकाशक : साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, ३५ फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली-११०-००१। पृष्ठ : ९५; डिमा. ७९; मूल्य : २.५० रु.।**

तथा साहित्य स्रष्टा रूपको लेकर बहुत बड़ी संख्यामें शोध-प्रबन्धोंका प्रणयन हुआ है, समीक्षात्मक कृतियोंकी सृष्टि हुई है तथा अनेक सम्पादित कृतियाँ लिखी गयी हैं। फिरभी, प्रख्यात चिन्तक-समीक्षक श्री रमेशचंद्र शाह-कृत 'जयशंकर प्रसाद' कृतिको आद्योपान्त देख-पढ़कर इसकी उपादेयताकी सराहना किये बिना नहीं रहा जायेगा। श्री शाहने मूलत: यह पुस्तिका अंग्रेजीमें लिखी है तथा स्वयंही इसे हिन्दीमें अनूदित किया है।

दस विभिन्न शीर्षकों—१. 'युग', २. 'व्यक्तित्व', ३. 'कानन-कुसुम' और 'झरना', ४. 'छायावाद : प्रसाद अपने सहवर्त्तियोंके बीच', ५. 'आँसू' की प्रयोगशाला', ६. 'इतिहासके सबक', ७. 'औपन्यासिक शल्य-क्रिया', ८. 'एक गीति-अन्तराल', ९. 'कामायनी : एक संश्लेषण' तथा १०. 'उपसंहार' - के अन्तर्गत समीक्ष्य कृतिको पूर्णत्व देनेका प्रयास है।

पहले खण्डमें प्रसादके युगका विवेचन करते हुए लेखकने अपनी यह मान्यता व्यक्त की है कि प्रसादका कथा-साहित्य तथा नाट्य-साहित्य अपने सारे रूमानी तथा रहस्यात्मक वातावरणके बावजूद गहरे मनोवैज्ञानिक यथार्थवादकी नींवपर खड़ा है। दूसरे खण्डमें प्रसादका जीवन-वृत्त प्रस्तुत करते हुए उनके व्यक्तित्वका परिचय देनेका प्रयास है। तीसरे खण्डमें प्रसादकी 'कानन-कुसुम' एवं 'झरना' कृतियोंका विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। चौथे खण्डमें प्रसादके सहवर्तियों (निराला एवं पन्त) के बीच उनकी स्थितिका निरूपण करते हुए लेखक ने पाया है कि 'हमारे जातीय-सांस्कृतिक इतिहासकी सबसे प्रखर आत्मचेतना प्रसादमें ही मिलती है। अतीतभी उनकी रचनाओंमें कुछ इस तरह बोलता है मानो वह वर्तमानकी ही बात हो' (पृ. ३१)। पांचवें खण्डमें प्रसाद कृत 'आँसू' पर काव्यगत दृष्टिकोण से विचार किया गया है। छठे खण्डमें प्रसादके ऐतिहासिक चरित्रोंपर चिन्तन-मनन हुआ है। सातवें खण्डमें प्रसादकी औपन्यासिक रचनाओं एवं कहानियोंकी शल्य-क्रिया है। आठवें खण्डमें प्रसाद-कृत 'लहर' का विश्लेषण करते हुए लेखकका कहना है कि" 'लहर' में संकलित कविताएं उत्कृष्ट गीतिकाव्यका मानक प्रस्तुत करती हैं।' (पृ. ६५)। ९वें खण्डमें प्रसादकी प्रतीकात्मक महाकाव्य-कृति 'कामायनी' पर सर्गानुसार इस तरह विचार किया गया है जिससे हिन्दीतर वे लोगभी, जिनका कामायनीसे अल्प-परिचय है, इसके बारेमें जानकारी प्राप्त कर सकें।

'उपसंहार' शीर्षकके अन्तर्गत लेखकका अभिमत है कि "हमारे लिए इतनाही अनुभव करना काफी होगा कि इस प्रचण्ड प्रतिभाके स्वामीने अपनी आत्मामें निहित कवित्व और कवि-सृष्टिको एक सीमातक तो शुद्ध काव्य के माध्यमसे चरितार्थ किया और शेषको अपने नाटकीय और कलात्मक साहित्यकी राहसे। जहाँ यह नाटकीय और औपन्यासिक कवित्व जीवनके अनिवार्य संघर्ष-तत्त्व पर अधिक एकाग्र हो सका, वहीं उनका काव्यगत कवित्व उस संघर्ष और उस अन्तर्द्वन्द्वको ही सूक्ष्मतर ढंगसे परिभाषित करने तथा उसका समाधान खोजनेकी ओर प्रवृत्त हुआ" (पृ. ९१-९२)।

अन्तमें दो परिशिष्ट दिये गये हैं। 'परिशिष्ट:अ' में प्रसादजीके प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची (प्रकाशन वर्षके सहित) दी गयी है तथा 'परिशिष्ट:ब' में सहायक सामग्रीकी सूची। इससे निश्चयही पुस्तककी उपादेयता सूचित होती है।

कहना न होगा कि श्री रमेशचन्द्र शाहने इस लघु पुस्तिकामें प्रसादके विभिन्न-रूपों—कवि, नाटककार एवं कथाकार--पर उनके युगके परिप्रेक्ष्यकमें सम्पूर्ण सबलताओं एवं दुर्बलताओंके साथ तर्क-सम्मत रीतिसे चिन्तन-मनन किया है। संक्षेपमें प्रसादके जीवन एवं साहित्य-साधना-सम्बन्धी जानकारी देनेके जिस लक्ष्यको लेकर समीक्ष्य कृतिका प्रणयन हुआ है, उसमें लेखकको सफलता मिली है। लेखककी लेखन-शैलीपर 'गागरमें सागर' भरने का मुहावरा चरितार्थ होता है। ▭

'प्रकर' मासिकके पुराने उपलब्ध अंक

प्रकाशनारम्भ वर्ष (१९६९) : सभी अंक अप्राप्य

१९७० : बारहों अंक उपलब्ध : [जन. ७० अंक : '१९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : २५.०० रु.

१९७१ : अप्रैल और अगस्त अंक छोड़, शेष अंक उपलब्ध : [जन. फर. संयुक्तांक 'अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य'; जुलाई अंक : '१९७० के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : ३८.०० रु.

१९७२ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : '१९७१ के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७३ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : 'भारतीय साहित्य : २५ वर्ष'] पूरा सैट : ४०.०० रु.

१९७४ : प्रकाशित अंक : अप्रैल, मई, जून, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर. पूरा सैट : १५.०० रु.

१९७५ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, मार्च, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर. पूरा सैट : २२.५० रु.

१९७६ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट : २०.०० रु.

१९७७ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७८ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७९ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९८० : नवम्बर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध : पूरा सैट : २७.५० रु.

१९८१ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

फुटकर सामान्य अंक : ३.५० रु.

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७

मध्यप्रदेश साहित्य परिषद के प्रकाशन

सृजनात्मक लेखन की महत्त्वपूर्ण पुस्तकें

महत्वपूर्ण कवियों के कविता संग्रह

चयनिका—पं. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
समुद्र के बारे में—भगवत रावत
कविता में सुबह रामविलास शर्मा
वृक्ष की शिराओं में—प्रमोद त्रिवेदी
नरक को कभी शर्म नहीं आती—हरीश पाठक
कच्चे घर के लिए—राजकुमार कुम्भज
खिड़कियों पर लगे कागज़—हरिशंकर अग्रवाल
जारी हैं लेकिन यात्राएं—विनोद निगम

प्रत्येक संग्रह का मूल्य : पन्द्रह रुपये

महत्त्वपूर्ण कथाकारों के कहानी संग्रह

उन्नीस साल का लड़का—शशांक
औपचारिक अंतःकरण—राजेन्द्रकुमार मिश्र
सरेआम—हरीश पाठक

प्रत्येक का मूल्य : बारह रुपये

महत्त्वपूर्ण पुस्तक

प्रेमचंद आज
महादेवी वर्मा, भीष्म साहनी, अमृतलाल नागर और
अमृत राय के भाषण

मूल्य : पन्द्रह रुपये

निबन्ध संग्रह

पानी पानी पानी—कमलाप्रसाद चौरसिया

मूल्य : पन्द्रह रुपये

व्यक्तिगत खरीदी पर भी पन्द्रह प्रतिशत कमीशन। पचास रुपये से अधिक की पुस्तकें खरीदने पर डाक-खर्च भी नहीं लिया जायेगा। अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :

सचिव, मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, प्रोफेसर कालोनी, भोपाल
पिन कोड-४६२००२ (म. प्र.) दूरभाष : ७३२२०

आगामी अंकमें

□ **कड़ी धूपका सफर [अमृता प्रीतम]**; अपनी बेबाक और अकुंठ अभिव्यक्तिके लिए अमृताजी विख्यात हैं। उनकी प्रस्तुत पुस्तकमें वैदिक कालसे लेकर अत्यन्त आधुनिक कालकी बीस-साला कवयित्रियोंतक की लगभग सत्तर चुनी हुई महिला चिन्तक-साहित्यकर्त्रियों की चर्चा है। जो पात्रियां मरकर इतिहासकी वस्तु हो चुकी हैं उन लगभग तीन दर्जन महिलाओंका 'ऐतिहासिक दस्तावेज और दुःखान्त' शीर्षक खण्डमें स्मरण किया गया है। उनकी जीवनकी प्रमुख घटनाओं और साहित्यिक कृतित्वपर संक्षिप्त टिप्पणियां हैं। इनमें भारतकी चार कवयित्रियाँ लल्लेश्वरी, हब्बाखातून, मीराबाई और अंग्रेजी-फ्रेंचमें कविता करनेवाली तोरु दत्त शामिल हैं। शेष विभिन्न देशोंकी हैं। 'हलफिया बयान' अनुच्छेदमें एक दर्जनसे अधिक अदबी महिलाएं हैं। विदेशी साहित्यकर्त्रियोंके साथ कुछ भारतीय हैं। लगभग एक दर्जनही महिलाएं 'जूती कसूरी पैरमें न पूरी' खण्डमें है जिनमें सभी भारतीय हैं। 'कन्यकाओंकी बैठक' खण्डमें 'शायर बच्चियों' का जिक्र है जिनके हाथोंमें लाल धागे वाली मौली नहीं, लाल विचारोंकी मौली बंधी है। अमृताजीका चुनावका आधार 'लाल विचारोंकी यह मौली' रही है। समीक्षक हैं : **कन्हैयालाल ओझा।**

□ **पुलपर पानी [ऋतुराज]**; जिन्हें अपने समयसे हटकर कवितामें किन्हीं और माध्यमोंसे शाश्वतता खोजने की तलब है और जो सामाजिकताका एक अलग तंत्र गढ़कर उससे राजनीति और अर्थसमस्याको नितान्त बहिष्कृत कर देनेमें सुख मानते हैं, उनके लिए इन कविताओंमें होनेकी कोई गरज नहीं हो सकती, पर इनके बावजूद ये हैं और बहुतोंको अपने होनेका अहसास कराती हैं। यह अवश्य है कि कविताका बहुआयामी व्यक्तित्व यहां नहीं उभरता और मुद्रा लगभग एकही बनी रहती है। हालांकि यह मुद्रा सर्वत्र और सर्वथा आक्रोशी कविताओंकी बंधी-बंधाई प्रणालीवाली कुछ खास मुहावरोंवाली मुद्रा नहीं है और उछाल-शैलीका आश्रय नहीं लेतीं। समीक्षक हैं : **डॉ. आनन्दस्वरूप दीक्षित।**

□ **रंगनाथकी वापसी [गिरीश रस्तोगी]**; यह श्रीलाल शुक्लके उपन्यास 'राग दरबारी'का नाट्य-रूपान्तर है; जो मंचितभी किया जा चुका है। कहानियोंके रंगमंचके समानान्तर इन दिनों उपन्यासोंके रूपान्तरोंकी भी एक परम्परा बन गयी है। देशव्यापी मूल्यहीनताके विभिन्न पार्श्वोंको प्रतिबिंबित करनेकी यह गंभीर कोशिश है। देशका निर्माण और पतन काफी हदतक देशकी शिक्षा व्यवस्थापर निर्भर है कि देशकी आगामी पीढ़ीको किन परिस्थितियोंके लिए तैयार किया जाता है। मैकालेकी गुलाम तैयार करनेकी शिक्षा-पद्धति थोड़े बहुत परिवर्तनके साथ आजभी चल रही है। पर राजनीति और सत्ताके पर्यायवाची बन जानेसे वर्तमान शिक्षा पद्धति और व्यवस्था उसका हथियार बन गयी है। इस कृतिकी भूमिकामें रूपान्तरकी प्रक्रियाको लेकर जो संवाद शुरू किया गया है, वह नाट्यचिन्तकों और रंग-दार्शनिकोंके लिए चुनौती हैं। समीक्षक है : डॉ. **नारायण राय।**

□ **प्रतिसमीक्षा :** मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास 'कसप' की 'प्रकर' (जुलाई ८२) में प्रकाशित समीक्षापर 'प्रकर' के ही समीक्षक **डॉ. जगदीश शर्मा** का विचार है : 'कसपकी इस समीक्षाकी सीमा केवल उसकी अपनी सीमा न होकर हिन्दीकी लगभग पूरी कथा-समीक्षाकी सीमा है। गहरे कलात्मक अभिप्रायों की पकड़ कथा साहित्य संबंधी हिन्दी समीक्षामें कम ही दिखायी देती है जो समीक्षा-दृष्टि इस मान्यतासे निर्दिष्ट हो कि कथा साहित्य यथार्थका दस्तावेज है उसमें सर्जनात्मक समृद्धिका उपेक्षित रह जाना अपरिहार्य है।...कलाकी समझ उपन्यासकी समीक्षाके लिए भी उतनीही आवश्यक है जितनी कविता और नाटककी समझके लिए। कथाका सीधे अपना कोई कलात्मक मूल्य नहीं होता। लेकिन रचनाकारकी अन्तर्दृष्टिको उद्घाटित करनेका उपकरण होनेके नाते वह उपेक्षणीयभी नहीं है क्योंकि रचनाकारकी सर्जनात्मक कल्पनाको उसकी अन्तर्दृष्टिसे दीप्ति प्राप्त होता है।'

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, २५७४. रघुबरपुरा, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०-००७ से प्रकाशित।

पौष : २०३९ (वि.)
दिसम्बर : १९८२

इस अंकमें

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार

सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

वर्ष : १४ अंक : १२ दिसम्बर : १९८२ पौष : २०३९ (वि.)

सरकारी हिन्दी

यदि सरकारी हिन्दीके लिए 'अनुवादी हिन्दी' शब्दका प्रयोग किया जाता तो राजनीतिक वृत्तिके साहित्य प्रेमियोंको तो प्रसन्नता होती, परन्तु सरकारी क्षेत्रोंमें अनूदित रूपमें तथा आकाशवाणी और दूरदर्शन द्वारा प्रयुक्त भाषाके जो विभिन्न रूप सामने आते हैं उन्हें केवल अनुवादी हिन्दी कहना कठिन होता। सरकारी कार्यालयों में एक ओर तो हिन्दीके नामपर मात्र अंग्रेजीसे अनुवाद तैयार किया जाता है, दूसरी ओर जनसम्पर्कके माध्यमोंमें ऐसी खिचड़ी भाषाका प्रयोग किया जाता है जिसे केवल मिश्रित जनसंख्याके महानगरोंमें अंग्रेजीप्रेमी काममें लाते हैं। अभी इसका नामकरण नहीं हुआ। इस प्रकार सामान्यत: सरकारी हिन्दीके दो रूप हैं, अनुवादी हिन्दी और खिचड़ी हिन्दी।

अनुवादी हिन्दीके उदाहरण वे रिपोर्टें हैं जो वैधानिक बाध्यताके कारण प्रचारित की जाती हैं। ये रिपोर्टें संसद् में प्रस्तुत होती हैं और संसद्-सदस्योंमें वितरित होती हैं। हमें जानकारी नहीं कभी किसी संसद-सदस्यने इन हिन्दी रिपोर्टोंकी भाषाकी ओर प्रशासन अथवा संसद्का ध्यान खींचा हो। इन हिन्दी रिपोर्टोंके बारेमें सामान्य धारणा यह है कि इनकी भाषा प्रयत्न करनेपर भी समझमें नहीं आती। किसीभी अनुवादमें पाये जानेवाले सम्पूर्ण दोष इनमें देखे जा सकते हैं। यदि भाषा विज्ञानके पण्डित चाहें तो हिन्दी के काव्य-दोष ग्रन्थोंकी भांति अनुवाद-दोष ग्रन्थभी तैयार कर सकते हैं। सामूहिक रूपसे बड़ी संख्यामें भरती किये जानेवाले हिन्दी-अधिकारियोंमें इस ग्रन्थकी अच्छी खपत हो सकती है। अर्थ-विपर्यय, अर्थ दोष, दोषपूर्ण शब्द-निर्माण, अप्रचलित एवं अनुपयुक्त शब्द-प्रयोग, शब्दों की प्रकृतिसे अपरिचय, वाक्य-दोष, वाक्य रचनामें असंतुलन, व्याकरणिक दोष आदि ऐसे अनेक दोष हैं जिनसे हिन्दी-अधिकारी, विशेषत: अनुवादकर्मी, का परिचित होना अनिवार्य है। संघीय लोक सेवा आयोग हिन्दी अधिकारियों अथवा हिन्दी कार्य करनेवाले अन्य कर्मचारियोंकी भरतीके लिए उनकी अंग्रेजी योग्यता जानने और उसे परखनेको जितना उत्सुक रहता है, उतनी उत्सुकता उनकी हिन्दी योग्यता जानने और परखनेके लिए नहीं दिखाता। संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा स्वीकृत व्यक्तिका अपनी नियुक्तिके बाद केवल कार्य अपने अधिकारियोंको ही प्रसन्न रखना होता है, क्योंकि अधिकांशत: ये अधिकारी हिन्दी न जाननेवाले और बहुधा हिन्दी-विरोधी होते हैं। इस हिन्दी विरोधका परिणाम रिपोर्टोंसे स्पष्ट हो जाता है। हिन्दीमें अनूदित ये रिपोर्टें जब इन अधिकारियोंके पास पहुंचती हैं तो प्राय: ये लोग उसे बिना देखे आगे बढ़ा देते हैं। ध्यान खींचनेपर मुस्कराते हुए उत्तर देते हैं कि इन रिपोर्टोंको कौन देखता है। यह एक सत्यभी है क्योंकि इन अनूदित हिन्दी रिपोर्टोंको पढ़नेका श्रम करनेकी बजाय इन्हें अंग्रेजीमें पढ़ना अधिक सुविधाजनक होता है। तो सीधा-सा प्रश्न यह उठता है कि श्रम और धनका सरकारी स्तरपर यह दुरुपयोग किस लिए?

इस दुरुपयोगको रोकने और वैधानिक अनिवार्यता को पूरा करनेके लिए अनेक बार यह सुझाव दिया गया है कि अनुवादके स्थानपर मूलत: ही यह कार्य हिन्दीमें क्यों न किया जाये? इसमें सबसे बड़े बाधक इंडियन इंगलिश ओढ़े हमारे उच्च पदाधिकारी हैं। इस वर्गने जिस उच्चवर्गीय नयी 'संस्कृति' का निर्माण किया है उसमें हिन्दीका प्रवेश निषिद्ध है। इसलिए उनके शब्दोंमें 'हिन्दी किसीपर लादी नहीं जा सकती', और इसलिए उन्हें अंग्रेजी यानी इंडियन इंगलिश लादनेका अधिकार

है। इसलिए, अधिकसे अधिक, हिन्दी केवल अनुवादी भाषाका स्थान ले सकती है। यह नहीं है कि हिन्दीको मूल रूपसे ही काममें लानेके प्रयत्न नहीं किये गये, परन्तु जब-जब ये प्रयत्न किये गये, सदाही इन प्रयत्नोंको निष्फल कर दिया गया। डॉ. केसकरके कालमें आकाशवाणीमें समाचार मूल रूपसे हिन्दीमें ही तैयार करने, हिन्दी संवाददाता नियुक्त करनेकी एक व्यापक योजना लागू की गयी। इस योजनाके लागू होतेही डॉ. गोपाल रेड्डी सूचना मंत्री बने और उन्होंने पूर्ण शक्तिके साथ इस लागू योजनाको ही नहीं समाप्त किया, बल्कि इसके अन्तर्गत कार्य करनेवालोंको भी आंतकित किया। संभव है श्री रेड्डीका व्यक्तिगत स्तरपर हिन्दीके प्रति विरोधी रवैय्या होनेके कारण स्थिति यहांतक पहुंची हो, परन्तु सामान्यत: इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि सरकारी कार्यालयोंमें हिन्दी-अधिकारियों अथवा अन्य हिन्दी कर्मचारियोंसे अंग्रेजी और अंग्रेजियतप्रेमी अधिकारियों या अफसरोंका केवल आदेशपालक होनेकी आशा की जाती है, मूल रूपसे अथवा अंग्रेजीके समान स्तरपर कार्य करनेका कोई अवसर नहीं दिया जाता। जिस समस्याको प्रशासनिक स्तरपर सुलझानेकी आशा की जा सकती थी, वह आशा इन अधिकारियोंकी अहंकारपूर्ण धृष्टताके कारण समाप्त हो चुकी है। यह तो अब राजनीतिक स्तरपर ही सुलझायी जा सकती है, वहभी केवल स्वयं हिन्दीभाषियों और हिन्दीप्रेमियोंके संगठित और शक्तिशाली आन्दोलनके बलपर। देशको भद्दे और हास्यास्पद अनुवादों अथवा इन अनुवादोंके माध्यमसे प्रस्तुत सरकारी हिन्दीकी आवश्यकता नहीं है। इस दिशामें हिन्दी सम्बन्धी संसदीय सलाहकार समिति (यदि ऐसी कोई समिति विद्यमान हो) बहुत कुछ कार्यकर सकती है।

इसी प्रसंगमें सूचना और प्रसारण मन्त्रालयके गवेषणा और संदर्भ विभाग द्वारा प्रकाशित किये जानेवाले वार्षिक संदर्भ ग्रन्थ 'भारत' की भी चर्चाकी जा सकती है। यह ग्रन्थ मूलत: अंग्रेजीमें तैयार किया जाता है और प्रतिवर्ष इसका हिन्दी रूपान्तरभी प्रकाशित होता है। इस ग्रन्थकी 'प्रकर' में प्रतिवर्ष प्रकाशित होनेवाली समीक्षाओं में निरन्तर इस ओर ध्यान खींचा गया है कि यह ग्रन्थ मूल रूपसे हिन्दीमें तैयार किया जाना चाहिये। इस ग्रन्थके सम्बन्धमें हमें यह लिखनेमें कोई संकोच नहीं कि अन्य सरकारी रिपोर्टोंकी तुलनामें इसकी भाषा अधिक परिष्कृत होती है। भाषाकी दृष्टिसे यह एक अपवाद प्रकाशन है। परन्तु मूल प्रश्न यह है कि इसका संकलन मूलत: हिन्दीमें क्यों न हो? इस संदर्भ ग्रन्थको सम्पादित और प्रकाशित करनेवाले विभागमें ही ऐसे हिन्दी अधिकारी विद्यमान हैं जो पद, योग्यता, अनुभव और वेतनक्रम सभी दृष्टियोंसे अंग्रेजीवाले कर्मचारियों के समान हैं, परन्तु हिन्दीसे संबद्ध होनेके कारण वे केवल अनुवादक होते हैं जबकि अंग्रेजीवाले गवेषक, संकलनकार और सम्पादक।

यही स्थिति आकाशवाणी और दूरदर्शनके समाचार विभागोंमें भी है। दोनों समाचार विभागोंमें समान पदों पर समान योग्यता, अनुभव और वेतनक्रमके लोग होते हैं। हिन्दी समाचारमें कार्य करनेवाला समाचार सम्पादक मात्र अनुवादक होता है, और यह अनेक बार प्रसारित समाचारोंकी भाषासे भी स्पष्ट हो जाता है, जबकि अंग्रेजीका समाचार सम्पादक वस्तुत: सम्पादक होता है। अनेक बार यह प्रयत्न किया गया कि संसद्की कार्यवाहीकी रिपोर्ट मूलत: हिन्दीमें ही तैयारकर समाचार विभागको दी जाये, यहभी प्रयत्न किया गया क्योंकि अधिकांश नेता दिल्लीमें हिन्दीमें भाषण देते हैं, इसलिए उनका मूल हिन्दी रूपही सीधे हिन्दी समाचार विभाग को उपलब्ध हो, इस प्रयोजनसे कुछ व्यक्तिभी हिन्दीके नामपर हिन्दी विभागके बजटकी धनराशिपर नियुक्त किये गये, परन्तु कुछही दिनोंमें वे केवल अंग्रेजी रिपोर्टर (संवाददाता) बन गये, क्योंकि वे अपने अंग्रेजी और अंग्रेजियतप्रेमी अफसरोंके स्वामीभक्त आदेशपालक थे। इसका प्रभाव यह है कि सरकारी विभागोंमें कार्यकरनेवाले ये हिन्दी अधिकारीभी अपनी पदोन्नतिके लिए हिन्दी नहीं अंग्रेजीमें बात करते हैं, अंग्रेजियतका व्यवहार करते हैं और अपने अफसरोंके मनपर यह प्रभाव डालनेके लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि वे हिन्दीकी अपेक्षा अंग्रेजी अधिक अच्छी जानते हैं और वस्तुत: उनकी प्रथम भाषा ही अंग्रेजी है। इसमें वे प्राय: सफल होते हैं। भाषाकी दृष्टिसे द्विविधाग्रस्त ये लोग जिस भाषाका निर्माण करते हैं, वह 'सरकारी हिन्दी' या 'अनुवादी हिन्दी' ही होती है जो न जन-सामान्यकी भाषा होती है, परिनिष्ठित।

यही वह मनोवृत्ति है जिसने आकाशवाणी और दूरदर्शनपर खिचड़ी भाषाको जन्म दिया है। भाषाओंके विकासका अनुसंधान करनेवालोंके लिए यह रोचक विषय है। मुस्लिम आक्रमणकारी अपने साथ फारसी और अरबी लाये। फारसी राजकीय भाषा रही। इस राजकीय दबाव और आवश्यकताके परिणामस्वरूप खिचड़ी भाषा उर्दूका जन्म हुआ और मुस्लिम राजसत्ता

ने अपने अन्तिम कालमें इसे प्रश्रय किया और इसका पोषण किया। बाजारकी भाषासे वह राजकीय सम्मानकी भाषा बन गयी। इस भाषाका जन्म बाजारोंमें आक्रान्ता सैनिकों और जनसाधारणके सम्पर्कसे हुआ था, पर अब जिस नयी भाषाके निर्माणका प्रयत्न दिया जा रहा है, उसका श्रेय जनसम्पर्कके राजकीय साधनोंको दिया जा सकता है। यह खिचड़ी या मिश्र भाषा हिन्दी और अंग्रेजीके सम्मिश्रणसे तैयार की जा रही है, आकाशवाणी और दूरदर्शन इसे राजकीय सम्मानके साथ अपने कार्यक्रमोंमें प्रस्तुत करते हैं। यह नयी खिचड़ी भाषा बिना सरकारी घोषणाके 'सरकारी हिन्दी' का रूप ले रही है। जिस प्रकार जनसाधारण उर्दूको समझने और ग्रहण करनेमें असफल रहा, फिरभी वह प्रतिष्ठाकी भाषा बना दी गयी, वही स्थिति इस नयी खिचड़ी भाषाकी है। महानगरोंके विशिष्ट क्षेत्रों और अंचलोंमें इसे स्वीकृत्ति और प्रतिष्ठा मिल चुकी है। जनसाधारण यदि इसे अभीतक स्वीकार नहीं कर सका तो यह उसका अपना दोष है कि क्यों वह अंग्रेजी नहीं जानता? प्रशासनतो उसे अंग्रेजी ओढ़ानेको तैयार है, अरबों रुपया वह इस देशमें खर्चकर रहा है जिससे देशका कोई नागरिक अंग्रेजी जाने बिना न रहे। खिचड़ी भाषाका वह प्रचार-प्रसार, सरकारी माध्यमोंमें उसका प्रयोग, उसे अंग्रेजी और अंग्रेजियतमें रंगनेके लिएही तो किया जा रहा है।

यह द्विविध प्रयत्न, 'अनुवादी हिन्दी' द्वारा भाषाको विकृत करने और खिचड़ी भाषाको प्रोत्साहन, किस लिए हो रहा है, इसका प्रयोजन क्या है? क्या हिन्दी-उर्दू विवाद की भान्ति एक और हिन्दी-नवमिश्र भाषाके विवादकी भूमिका तैयारकर इस बीच अंग्रेजीकी स्थितिको मजबूत करनेका प्रयत्न किया जा रहा है? उत्तर हमें जन-चेतनासे मिलेगा। ▭▭

प्रस्तुत समीक्षाएं : कुछ उभरते प्रश्न

ऊपर 'अनुवादी हिन्दी'की चर्चा हुई है। अनुवादी हिन्दीकी समस्या केवल सरकारी हिन्दीतक सीमित नहीं है। निजी प्रकाशनोंमें भी इसी प्रकारकी समस्याका सामना करना पड़ता है। अनेक विश्वविख्यात रचनाएं हिन्दीमें अनूदित हुई हैं, परन्तु ये अनूदित कृतियां हिन्दी पाठकों के मन-मस्तिष्कको प्रेरित करनेके स्थानपर पुस्तकालयों की अलमारियोंमें दीमक दलोंकी प्रतीक्षामें सुरक्षित हैं। यहां हमारा उद्देश्य किसी ग्रन्थ विशेषके अनुवादकी ओर संकेत करना नहीं था, परन्तु जब समस्या विकट रूपसे सामने आ खड़ी होती है तो चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। ऐसीही हिन्दीमें अनूदित एक पुस्तक ल्यूकाचका 'उपन्यास का सिद्धान्त' है। यह पुस्तक प्राप्त होतेही इस पुस्तककी समीक्षाके लिए हमने पुणे विद्यापीठके यशस्वी समीक्षक डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकरका चुनाव किया और उन्होंने सोत्साह इसका समीक्षा-भार स्वीकार कर लिया। डॉ. बांदिवडेकरने अब जो टिप्पणी इस पुस्तकपर भेजी है उसमें न केवल अनुवादकी समस्यापर ध्यान खींचा है, बल्कि अनुवादके लिए इस पुस्तकके चुनावपर भी प्रश्न-चिह्न लगाया है। उनका पत्र है :

"'उपन्यासका सिद्धान्त' पुस्तकको मैंने बड़े उत्साहसे पढ़ना शुरू किया था। परन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि अनेक बार प्रयत्न करनेपर भी मैं उसे पूरी तरह पढ़ नहीं पाया।

मैंने भूमिकामें यह अपेक्षा की थी कि ल्यूकाच, जिसने अपने निबंधोंको बादमें नकार दिया, के परवर्ती लेखनके संदर्भमें उसके उपन्यास सिद्धान्तकी चर्चा होती और यह भी चर्चा होती कि विद्वान् अनुवादकने उसे आजकी स्थिति में अनुवाद योग्य क्यों समझा। उसमें ऐसा क्या बच गया है कि अनुवादका कठिन कवच भेदकर हिन्दीका पाठक उसे पढे। इस संदर्भमें जो क्षीणसे संकेत हैं उन्होंने मुझे निराश कर दिया।

यह अनुवाद अंग्रेजीसे किया गया मालूम होता है और मेरी निस्संदिग्ध मान्यता है कि ल्यूकाचके अंग्रेजीमें किये अनुवाद अंग्रेजी जाननेवालोंके लिए अधिक सुपाठ्य हैं बनिस्बत हिन्दी अनुवादोंके। आखिर ये अनुवाद किस

लिए ? अगर अंग्रेजीसे अपरिचित हिन्दीका अध्येता इसका पाठक है तो यह अनुवाद शब्दशः शायद गलत न हो लेकिन उसकी दृष्टिसे पूर्णतः निरुपयोगी हो गया है। असलमें होना यह चाहिये कि ल्यूकाचके सिद्धान्तोंको सुगम हिन्दीमें समझाते हुए कोई ग्रन्थ लिखा जाये। हिन्दीके ऐसे अनुवादोंसे कोई लाभ नहीं दिखता। मैं यह भी स्पष्ट लिख दूं कि आजके 'तेरीभी चुप मेरीभी चुप' वाली अवस्थामें इस प्रकारकी बात स्पष्टतः कोई नहीं लिखेगा कि अनुवाद अगम्य हो गये हैं। यहभी सम्भव है कि कोई ऐसे व्यक्तिभी निकल आयें जो मुझेही नासमझ करार देकर अनुवादकी सराहना करें। परन्तु इस बातकी सम्भावनाको देखते हुएभी मैं स्पष्टतः कहूंगा कि इस प्रकारके अनुवाद प्रकाशक और पाठक दोनोंको चकमा देते हैं। यदि आप चाहें तो मैं ऐसे कतिपय वाक्य निकाल कर प्रस्तुत कर सकता हूं जो अत्यन्त आडम्बरपूर्ण भाषा के शिकार होकर अर्थहीन हो गये हैं।..."

विद्वान् समीक्षककी इस टिप्पणीसे सहमत होनेके कारण इसपर और अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

गायब अनुवादक

श्रीमती अमृता प्रीतमकी पुस्तक 'कड़ी धूपका सफर' की समीक्षामें विद्वान् समीक्षक और सुप्रसिद्ध उपन्यासकार सन्हैयालाल ओझाने अनूदित कृतियोंपर से अनुवादकको गायब करके उसे मूल कृतिका आभास देनेके प्रयासकी ओर ध्यान खींचा है। इस पुस्तककी समीक्षाकी समाप्ति पर उन्होंने गंभीर प्रश्न उठाये हैं और व्यावसायिकताके बढ़ते चरणोंकी ओर ध्यार खींचा है। इस व्यावसायिकता का और शोषणका शिकार अनुवादक होता है। प्रकाशक व्यवसायी है, व्यवसायके मूलमें शोषण निहित है। यदि 'लाल विचारोंकी मौली' से संवेदित लेखिकाही काली व्यावसायिकताके क्षेत्रमें उतरती दिखायी दे तो जिस मूल समस्याको लेकर कृति प्रस्तुत की गयी है, उसकी विश्वसनीयतापर प्रश्नचिह्न लग जाता है, क्योंकि व्यवहारमें 'लाल विचार' की प्रेरणा गायब है।

साहित्य और कला सम्बन्धी मूल्य

श्री मनोहर श्याम जोशीके नये उपन्यास 'कसप' की समीक्षा 'प्रकर' के जुलाई ८२ अंकमें प्रस्तुत हुई थी। समीक्षक थे डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी। इस समीक्षामें कथ्यकी असंगतियों और समीचीनताकी संदिग्धताकी ओर ध्यान खींचते हुए विद्वान् समीक्षकने जोशीजीका ही वाक्य दुहराते हुए लिखा था, 'जोशीजी, काएकू खाली पोली बोम मारता है ?' परन्तु हमारे विद्वान् समीक्षक डॉ. जगदीश शर्माकी धारणा इसके विपरीत है। उनका विचार है कि इस उपन्यासकी सूक्ष्म व्यंजनाओंको समझे बिना 'कसप' का वास्तविक मूल्य हाथ नहीं आता। इसलिए उसका पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। उन्होंने अपनी यह धारणा इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित 'प्रतिसमीक्षा' के अन्तर्गत व्यक्त की है।

यह सही है कि अनेक बार मूल्यांकन विवादस्पद हो जाता है। कला पक्षपर बल देनेके कारण यह धारणा उपयुक्त प्रतीत होती है कि 'कलाकी समझ उपन्यासकी समीक्षाके लिएभी उतनी आवश्यक है जितनी कविता और नाटककी समझके लिए। कथ्यका सीधे अपना कोई कलात्मक मूल्य नहीं होता, लेकिन रचनाकारकी अन्तर्दृष्टिको उद्घाटित करनेका उपकरण होनेके नाते वह उपेक्षणीयभी नहीं है क्योंकि रचनाकारकी सर्जनात्मक कल्पना को उसकी अन्तर्दृष्टिसे पोषण प्राप्त होता है।' सैद्धान्तिक स्तरपर इसके विरोधका प्रश्न नहीं उठता। उपन्यासके स्तरका निर्धारण ही उसके कला-पक्षसे होता है। हमारा विचार है कि सामूहिक प्रभावकी दृष्टिसे यदि कला शालीनताकी उपेक्षाकर नग्नताको अधिक प्रबल रूप से रेखांकित करे तो ऐसी कला-कृतिकी समीचीनताको चुनौती देनेके अधिकारको भी मान्यता मिलनी चाहिये। फिरभी इस उपन्यासके पुनर्मूल्यांकनकी जो रूपरेखा डॉ. जगदीश शर्माने प्रस्तुत की है, और उसके कलात्मक स्वर को रेखांकित किया है और व्यंजनाओंको स्पष्ट किया है वह अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण है। वस्तुतः यथार्थ, कथ्य, कला, उनके सामंजस्य और सीमाओंको लेकर असहमति बहुत समयसे चली आ रही है। ऐसा प्रतीत होता है, नैतिकतावादियोंमें और कलावादियोंमें यह विवाद बना रहेगा। फिरभी श्रेष्ठ कृतियां इन विवादोंमें से ही अपना रास्ता बनाती हैं। ▭▭

मत-अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कामकर सकती है, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

टूटते परिवारोंकी नायिकाओंका

कड़ी धूपका सफर[1]

लेखिका : अमृता प्रीतम

समीक्षक : कन्हैयालाल ओझा

भारतीय ज्ञानपीठका १९८२ का डेढ़ लख रुपयेका साहित्य-पुरस्कार पंजाबीकी प्रसिद्ध साहित्यकर्त्री श्रीमती अमृता प्रीतमको घोषित किया गया है, यह सूचना समीक्ष्य-पुस्तकके प्रच्छद-पटपर ही नहीं, अपितु एक अलग फ्लैपपर भी मुद्रितकर पुस्तकके साथ संयोजित की गयी है। अवश्यही लेखिकाको पुरस्कार इस पुस्तकपर मिला हो, यह बात नहीं है, किन्तु इससे कृतिकारकी गुणवत्ता का प्रभाव तो ग्राहक तथा पाठकपर पड़ताही है। कृति का पड़ता है या नहीं, यह बादकी बात है।

पंजाबीके क्षेत्रमें अमृताजीका साहित्य और जीवन दोनोंही काफी चर्चाका विषय रहे हैं। जीवनको भरपूर जीनेके अधिकारसे किसीको वंचित नहीं किया जा सकता, और उसकी ईमानदार अभिव्यक्ति किसीभी साहित्यके लिए गौरवशाली उपलब्धिही होती है। इस बेबाक और अकुंठ-अभिव्यक्तिके लिए अमृताजीको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति मिली हुई है, और अब भारतीय ज्ञानपीठका पुरस्कार पाकर वे भारतीय-साहित्यमें भी वरेण्य स्थानका अधिकार पा चुकी हैं। यहां उनकी जीवनीके बारेमें उल्लेख अभिप्रेत न होता, यदि समीक्ष्य-कृतिके सन्दर्भमें यह प्रासंगिक और अनिवार्य न समझा जाता। प्रस्तुत पुस्तकमें वैदिककालसे लगाकर अत्यन्त आधुनिक कालकी बीस-साला कवयित्रियोंतक की लगभग सत्तर चुनिन्दा महिला चिन्तक-साहित्यकर्त्रियोंके सन्दर्भ हैं। जो पात्रियां मरकर इतिहास की वस्तु हो चुकी हैं, उन लगभग तीन दर्जन महिलाओं का 'ऐतिहासिक दस्तावेज और दुःखान्त' शीर्षक खण्डमें स्मरण किया गया है। इस खण्डमें उनके नामोल्लेखके साथ उनके जन्म-मृत्युके वर्ष, जहां उपलब्ध हैं, जीवनकी प्रमुख घटनाएं और साहित्यिक-कृतित्वपर संक्षिप्त टिप्पणियां हैं। इनमें भारतकी चार कवयित्रियांभी शामिल हैं : दो कवयित्रियां कश्मीरकी लल्लेश्वरी और हब्बा खातून, एक राजस्थानकी मीरांबाई तथा एक अंग्रेजी-फ्रेंचमें कविता करनेवाली तोरु दत्त। अन्य शायराओंमें ग्रीक, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इटेलियन, पोलिश, स्वीडिश रूसी, पुर्तगाली, हंगेरियन आस्ट्रेलियन, जापानी, चीलियन, अफ्रीकी, अमरीकन, मोरक्कन, वीयतनामी—मतलब यह कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रकी प्रख्यात महिलाएं हैं।

दूसरे अनुच्छेद 'हलफिया बयान' में एक दर्जनसे अधिक अदबी महिलाएं हैं, जिनमें का कईका अमृताजीके साथ एक तरहका साक्षात्कार है—अमृताजीके प्रश्न हैं, और लेखिकाओंके उत्तर ! विदेशोंकी अन्य कई साहित्य-कर्त्रियोंमें इस अनुच्छेदमें भारतीय हैं : उर्दूकी इस्मत चुगताई, कुर्रतुल ऐन हैदर, पंजाबीकी अजीतकौर और दिलीपकौर टिवाणा; डोगरीकी पद्मा सचदेव, हिन्दी (शायद) की सुशीला पगारिया और उर्दू-पंजाबीकी सारा शगुफ्ता हैं। लगभग एक दर्जनही महिलाएं हैं 'जूती कसूरी पैरमें न पूरी' शीर्षकोक्त खंडमें, जिसमें सभी भारतीय महिलाएं हैं। इस खंडमें केवल शायराही नहीं, कहानीकार-चित्रकार-पत्रकार मुख्तसिर यह कि जो शादीकी पैरमें न पूरनेवाली कसूरी जूतीको फेंक घरकी चारदीवारीको लांघकर आजाद जिन्दगी बसर कर रही हैं, वे भी हैं। इसके अलावा 'कन्यकाओंकी बैठक' खंडमें

---

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ १८२; क्रा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

उन 'शायर-बच्चियों' का जिक्र है जो 'सदियोंके धूलभरे रास्तेपर चलते हुए आज अपने हाथोंसे अपने पैरोंकी मिट्टी फाड़नेमें विश्वास करती हैं···आज जिनके हाथोंमें लाल धारियोंवाली मौली नहीं, लाल विचारोंकी मौली बँधी हुई है।' (पृष्ठ १२६)।

वस्तुत: 'लाल विचारोंकी यह मौली' ही अमृताजीके चुनावका आधार रही है। और चूंकि इस लाल-विचार का जीवनकी शैलीसे अटूट गहरा सन्बन्ध है, तथा स्वयं अमृताजीने अपने जीवनको इसी भंगिमाके साथ जिया है, इसीलिए यहां उनकी जीवनीकी ओर संकेत किया गया। प्रस्तुत कृतिके उनके जीवन-चरित्रके बारेमें कुछभी प्रसंग नहीं है, इसके लिए उनकी आत्मकथा 'रसीदी टिकट' काफी प्रसिद्ध हो चुकी है प्रस्तुत कृतिमें महिलाओंके चुननेका उनका आधार, साक्षात्कारमें प्रश्नोंकी नुकीली धार, और साहित्यकर्त्रियोंकी रचनासे चुनी हुई पंक्तियों से जो स्पष्ट होता है, उसका सम्बन्ध साहित्यसे उतना नहीं है, जितना जीवनमें विवाहके प्रति विद्रोहसे है। पुस्तकमें शीर्षकसे ही यह स्पष्ट हो जाना चाहिये, सफर 'कड़ी धूपका।' शायद यही कारण है कि जहां उन्होंने सम्पूर्ण विश्वसे अतीत-वर्तमानकी महिला साहित्यकर्त्रियों को चुना है, वहां अपने पासही की हिन्दीकी वर्तमान किसी साहित्यकर्त्रीको अपनी लेखनीका विषय नहीं बनाया। यह बात नहीं कि हिन्दीमें 'लाल विचारोंकी मौली' वाली आधुनिक साहित्यकर्त्रियां नहीं हैं, किन्तु उन्होंने इन विचारोंको अपने सक्रिय-जीवनमें भी स्वीकृत करके विद्रोहकी भूमिका ग्रहण की हो, ऐसा नहीं लगता, और इसीलिए वे अमृताजीके विचार क्षेत्रसे बाहररही रहीं।

विवाह स्त्री और पुरुषके पारस्परिक सम्बन्धोंका मान्य सामाजिक विधान है, क्योंकि उनकी यह पारस्परिक निर्भरता प्राकृतिकही नहीं, जैविकभी है। प्रकृतिमें जीव-धारीका प्रारंभ 'एक-कोशी' के रूपमें ही हुआ था, और विकासकी प्रक्रियामें प्राणी लक्षाब्दियोंतक अवश्यही एक-लिंगी (यूनी-सेक्सुअल) रहा होगा। एकसे अनेक होजाने की नैसर्गिक आवश्यकताने कालान्तरमें द्वि-लिंगीय सृष्टि का विकास किया, और जैसाकि निचली-प्रजातियोंसे स्पष्ट है, मादाके उद्भावका सारा प्रयोजन केवल प्रजनन-तक ही सीमित है; इसी आवश्यकताके अनुसार उसकी शारीरिक, जैविक और रासायनिक विशिष्टताओंका विकास हुआ है। अपने प्रारम्भिक विकासके सोपानोंमें मनुष्य प्रजातिभी इस प्राकृतिक नियमका अपवाद नहीं हो सकती थी! यहां स्त्री-जीवनकी एक अन्य जैविक-विशिष्टताकी ओर ध्यान दिया जाना आवश्यक है—प्रजनन-प्रक्रियामें जहां एक नर एक-के-बाद-एक लगातार कई मादाओंको मातृत्व प्रदान कर सकता है, एक मादा एक समयमें केवल एकही नरको पितृत्व दे सकती है! यह तथ्य इस बातका द्योतक है कि स्वभावसे ही नर बहुपत्नी-व्रती है, जबकि मादा एक पतिव्रतीही हो सकती है!

अवश्यही अपनी संस्कृति और ज्ञान-विज्ञानके विकास के साथ मनुष्य-प्रजाति इन प्राकृतिक और जैविक सीमाओं का अतिक्रमण कर चुकी है। अपने काम-सम्बन्धोंके लिए अब वह किसी मेटिंग सीजनकी अपेक्षा नहीं रखती, और इसीलिए अपने काम-जीवनको संयमित करनेके लिए सामाजिक नियमोंके अन्तर्गत उसने विवाहकी संस्थाका विकास किया। सामाजिक संरचना तथा आर्थिक-उत्पादन साधनोंकी पृष्ठभूमिमें सभ्यताके विकासके साथ मातृ-सत्ताक तथा पितृसत्ताक व्यवस्थाओंमें विवाहके स्वरूपमें भी परिवर्तन होते रहे हैं। आज भारतमें स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धोंको नियन्त्रित करनेवाली विवाह-प्रथाका स्वरूप कृषि-युगकी सभ्यता और आवश्यकताओंकी देन है; और इन सम्बन्धोंमें अब जो दरार और टूटन होने लगी है, वह इस कारण है कि हम कृषि-युगसे निकलकर तेजीसे औद्योगिक युगमें प्रवेश कर रहे हैं। कृषिभी अब श्रमिकोंपर उतनी नहीं, जितनी यन्त्रोंपर निर्भर करने लगी है। संयुक्त-परिवार और पैतृक सम्बन्धोंके विघटनके साथ स्थायी आवासके बन्धन भी ढीले पड़ते जा रहे हैं। स्त्री, अब प्रजननका साधन-भर न रहकर सामाजिक व्यवस्थामें पुरुषके समानही स्वतन्त्र जीवन बिताना चाहती है। प्रजनन-प्रक्रियातक अब, शुक्र-बैंकके आविष्कारोंके साथ पितृ-निरपेक्ष, और टेस्ट-ट्यूबके विकासके साथ मातृ-निरपेक्ष होती जा रही है। केवल रह गयी है जैविक-भूख मात्र, स्त्री और पुरुष के बीचकी मिलन-रेखा! यदि इन सम्बन्धोंमें अभी भावुकता शेष है तो वह हमारे संस्कारोंकी देन है। अभी परिवार एकदमसे टूटे नहीं हैं और स्त्रियांभी अभी उतनी आगे बढ़ी नहीं हैं—यह संक्रमण-युग है! उस दिशामें जो महिलाएं बढ़ रही हैं, अमृताजीने उन्हें सम्भवत: अपने स्वयंके अनुभवोंसे ही पहचाननेका प्रयत्न किया है, और उनके इस 'कड़ी धूप' के सफरमें कुछ शीतलताका आभास देनेकी कोशिशभी की है।

कृषि-युगकी आवश्यकताने ही जीवनको दो क्षेत्रोंमें बाट दिया था, घर और बाहर! प्रजनन और शिशुकी देखभालके लिए स्त्री सहजही घर-साम्राज्यकी अधिष्ठात्री देवी बन गयां, और पुरुष इन बन्धनोंसे मुक्त बाहरी क्षेत्रका उद्योक्ता। इसी तरह पुरुषकी बहुपत्नी-वृत्ति तथा स्त्रीकी एकपति-वृत्ति, जो मूलतः जैविक-विशिष्टता थी, सामाजिक और नैतिक आवश्यकता तथा अपेक्षा बनती गयी, रूढ़ होती गयी। अब उत्पादनके साधनोंमें परिवर्तनके साथ यदि वे रूढ़ आवश्यकताएं पैरमें पूरी न पड़नेवाली कसूरी जूती प्रमाणित होने लगी हों तो यद्यपि अस्वाभाविक इसमें कुछ नहीं है, खासकर तब जबकि मनुष्य जैविक-सीमाओंपर विजय पा रहा हो, किन्तु इसके साथ, नैतिक न सही, मानसिक जो अनेक प्रश्न जुड़ गये हैं, उनका क्या समाधान हो? सभ्यताके पिछले हजारों वर्षोंने स्त्री और पुरुषके सम्बन्धोंको केन्द्र करकेही अपना विकास किया है, जिसमें जीवनके विविध-आयाम विशिष्ट दिशाओंमें न केवल बहुत आगे बढ़े हैं, बल्कि समृद्ध हुए हैं और उन्होंने जीवनमें गहराई, विस्तार तथा एक भावात्मक सार्थक-गुणवत्ता दी है। अन्य प्राणियोंकी तरह मनुष्य केवल उदर-काम-प्रजनन या आहार-निद्रा-मैथुनतक ही सीमित नहीं रह गया है। यह कारण है कि आर्थिक रूपसे स्वतन्त्र होकर निरपेक्ष रूपसे बुद्धिका उपयोग करनेवाली सर्वथा बौद्धिक नारीभी पुरुषसे निरपेक्ष नहीं रह पाती, तलाकके बाद तलाक लेकरभी वह पुरुषका साथ खोजनेको बेचैन रहती है। उसकी समस्त आर्थिक और बौद्धिक प्रवृत्तियाँ तथा गतिविधियाँ महज हाशिएकी (मार्जिनल) जरूरतें या मन-बहलावके झुनझुनेही साबित होते हैं। इन साक्षात्कारोंमें यही बात बार-बार प्रकाशमें आती है।

लेखिकाने केवल नारीकी दृष्टिसे ही इस समस्याको उजागर किया है. जबकि यही पुरुषकी भी समस्या हो सकती है। यह शायद उनके विचार-क्षेत्रसे बाहरका विषय हो, पर इससे जुड़ा हुआ है, यह तो उन्हें स्वीकार करनाही पड़ेगा। घरका साम्राज्य सदा घृण्य और परित्यजनीय हो, या बाहरका साम्राज्य सदा लोभनीयही हो, यह केवल स्त्रीकी एकांगी दृष्टिसे उसका विशफुल थिंकिंग (इच्छाकृत-कल्पना) ही है। इसी समस्याके दूसरे सीमान्तपर, इन्हीं दिनों राजधानीमें एक 'पतिमंच' की स्थापनाके समाचार पढ़नेको मिले हैं। इन साक्षात्कारों को पढ़कर स्पष्ट होता है कि नारीकी समस्याके मूलमें विद्रोह है सम्बन्धोंको संयत करनेवाली विवाह-प्रथा तथा मातृत्वकी मजबूरीके प्रति। विवाह वस्तुतः स्त्री और पुरुष के बीच साथ रहनेका एक समझौताही तो है जो भावुकता, आवेश और यौवनके बादभी बराबर एक-दूसरेकी मानसिक और सामाजिक-अपेक्षाओंका परिपूरक रहे। आदि-कालसे ही किसी-न-किसी रूपमें समझौता लचीला रहा है। किन्तु प्रायःही यह देखा गया है कि इस प्रगाढ़ताके अभाव या टूट जानेपर जीवनमें निरर्थकताका बोध भर जाता है और तब, जैसाकि मनोविज्ञान कहता है, अन्य सब प्रवृत्तियाँ रिक्तताको भरनेका प्रयत्नही होती हैं। घरके केन्द्रसे निर्वासित होकर न स्त्री, और बाहरके सर्कल से बेदखल होकर न पुरुष सुखी हो सकता हैं। इस विद्रोहसे ध्वंसही हुआ है, सृजन नहीं। और जो कविता इस ध्वंससे सृष्ट हुई है, वह पाठकको तुष्टि दे सकती है, परन्तु सर्जकके तो रक्तके आँसूही हैं वह।

और यह समस्या प्रखर और मुखर हुई है केवल उन्हीं महिलाओंमें जो अपनी बौद्धिकताका ईर्ष्या-जन्य आधार लेकर घरसे विद्रोह करके बाहर निकल पड़ी हैं। इसी संदर्भमें अमृताजीने भारतके एक अल्पज्ञात पौराणिक-मिथको उद्धृत किया है: विद्याकी अर्थात् लेखकों और कलाकारोंकी देवी सरस्वती पहले लक्ष्मी और गंगा के साथ विष्णुकी पत्नी थी, और तीनों परस्पर झगड़ा करती थीं। मुखरा और गर्ममिजाज होनेके कारण विष्णु ने सरस्वती ब्रह्माको सौंप दी थी। पौराणिक-आख्यान तो यहभी है कि सरस्वती ब्रह्माकी पुत्री थी और जब ब्रह्मा ही उसपर आसक्त हो गये तो आत्मरक्षाके लिए उसे हरिणी बनकर भागना पड़ा। पर अमृताजीके लिए यह प्रसंग गैरमौजूं जो है! तो क्या जो महिलाएँ अपनी घर-गृहस्थीको लेकर मौज-मजेमें बैठी अपने घरके साम्राज्यका निर्बाध उपभोग कर रही हैं, वे पढ़ी-लिखी या बुद्धिमती नहीं हैं? यह कड़ी धूप और कसूरी जूती केवल इन कुछेक चुनिन्दा महिलाओंको लेकरही नहीं है। विश्वमें ऐसी महिलाओंकी कभी कमी नहीं रही, जिन्होंने अपनी बौद्धिक-प्रखरताके साथही गृह-साम्राज्यकी साम्राज्ञी का गौरवपूर्ण उपभोग किया है। अतः कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि अमृताजीकी यह प्रस्तुति नितान्त एकांगी, बहुत कुछ उनके चिन्तनके अनुकूल तराशी गयी, बल्कि उनके विद्रोही-विचारोंका औचित्य प्रस्तुत करनेका ही प्रयत्न कही जा सकती है। इसी प्रसंगमें एक और चेतावनीकी ओर ध्यान दिलाना आवश्यक लगता है, जो

जैविकसे भी बढ़कर रासायनिक समस्या हो सकती हैं, भलेही उसका परिणाम अभी न स्पष्ट हो पर जिसका दूरगामी प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा। स्त्री और पुरुष में पारस्परिक-अपेक्षासे कई प्रकारके हार्मोनोंका अन्तःस्राव होता रहता है, जो न केवल मानसिक किन्तु शारीरिक-स्तरपर भी लक्ष्य किये जा सकते हैं, और जिनसे शारीरिक बुनावट और सौन्दर्यके मानदण्डोंका निर्धारण हुआ है। स्वाभाविक संकोच और लज्जासे स्त्रीके चेहरेपर अरुणिमा छाकर उन्हें जो अपरुप सौन्दर्य दे देती है, कार्यालयोंमें सदा पुरुषोंके साथ काम करनेवाली महिलाएँ उससे सहजही वंचित देखी जा सकती हैं, और उस प्राकृतिक-सौन्दर्यको रूज, पाउडर आदिके प्रयोगसे कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। कई प्रकारके हार्मोन तो नारी की गर्भाधान-क्षमताको विकसित करनेके लिएही शरीरकी गोलाइयों और पीनताको पुष्ट करते हैं, जो नारी-सौंदर्य का मानदण्ड हैं। अपनी आधुनिकताकी अन्धी दौड़में इन प्राकृतिक-व्यापारोंसे छुट्टी पाकर नारी कहीं कालान्तरमें सौन्दर्यके मानेमें सपाट न होने लग जाये। आज जो बनाव-शृंगारके कृत्रिम साधनोंकी धूम मच रही है, कहीं वह इस दिवालियेपनको ढँकनेका प्रयत्न तो नहीं है?

इतना सब लिखनेके बाद, मैं समझता हूं 'कड़ी धूप का सफर' में वर्णित व्यक्तियों और विचारोंकी पृथक्-पृथक् विवेचना करनेका कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। कुल मिलाकर पुस्तकका तेवर है नारीका पुरुष तथा समाजके प्रति विद्रोह, जिसके तीन स्वर मुखर हुए हैं: मर्दसे प्रतिद्वन्द्विता, विवाहसे परहेज, और तलाक-दर-तलाक ! मर्दकी मुहब्बतको न अमृताजी इनकार करती हैं, न अन्य कोई महिलाही, जिनका उन्होंने साक्षात्कार किया है ! पर इस शर्तके साथ कि 'मुहब्बतवाला रास्ता ब्याहकी दहलीजतक जाये, जरूरी नहीं।' (पृ· १७७)। इस पृष्ठभूमिमें यह किंचित् आश्चर्यकर है कि एक स्वीडिश शायरा और उपन्यासकार कारिन बोये (पृ· १७) भी इस हजूममें है, जिसे सन् १९४१ में आत्महत्या करनी पड़ी थी। स्वीडनमें तो विवाहकी कोई सामाजिक-बाध्यता है ही नहीं। क्या यह सम्भव नहीं है कि कारिन की आत्महत्याका कारण कुछ औरही हो ?—और विडम्बना यह है कि वहाँ इस स्वातन्त्र्यके बावजूद आज महिलाओंमें स्वेच्छासे स-समारोह ब्याह रचानेका चाव बढ़ता जा रहा है।

लेखिकाने अपनी हहंग शैलीमें समस्याको चाहे वह एकांगी ही हो, जिस तरह उभारा है, वह प्रशंसनीय है, और विचारोंको चुनौती देती है ! लेखिका यदि समस्याका कुछ समाधानभी प्रस्तुत करती तो उत्तम होता ! समीक्षकके लिए उसपर विचार करना प्रासंगिक नहीं है। पुस्तकमें स्थान-स्थानपर रेखाचित्रों और शायराओंकी नज्मोंसे पठनीयता बढ़ी है। पुस्तककी छपाई-सफाई ठीकही है, यद्यपि यत्रतत्र मुद्रणकी अशुद्धियाँ रह गयी हैं। पृष्ठ १७६ के अन्तकी पाँच पंक्तियाँ, जिनका सम्बन्ध रेणुकाके साक्षात्कारसे है, पृष्ठ १७७ की आखिरी पंक्ति और पृष्ठ १७८ की प्रारंभिक चार पंक्तियोंमें छपी है। हिन्दी पुस्तकोंके मूल्यके बारेमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। लेखक यदि 'बिकाऊ' हो तो प्रकाशक अपने लोभको सहज रोकभी नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें हिन्दी में पाठन-रुचिको कोसना एक व्यर्थका व्यायामही है।

प्रच्छद-पटकी एक ओर सूचनाकी ओर बरबस पाठक का ध्यान जाता है कि लेखिका 'लिखती रही है पंजाबी में, जहाँ उनका अन्यतम स्थान है। पर उनकी अनेक रचनाओंके अनुवाद भारतीयही नहीं, विदेशी भाषाओंमें भी हुए और हो रहे हैं।'—तो क्या प्रस्तुत पुस्तकभी मूलतः पंजाबीमें लिखी गयी है और यदि ऐसा है तो इस पर अनुवादकी सूचना तथा अनुवादकका नाम क्यों नहीं दिया गया ? यह तो सुना गया है कि पंजाबीकी कई रचनाएँ मूल पंजाबीमें छपनेके पूर्व, अनूदित होकर हिन्दी में छप जाती हैं, और प्रसिद्ध होकर फिर पंजाबीमें भी छपतीही हैं। इसमें आपत्तिकी कोई बात नहीं, हिन्दी और पंजाबी रूप-गुणमें बराबरकी बहनें हैं, अन्तर है तो केवल लिपिका। अमृताजीकी कुछ अन्य कृतियोंके बारेमें पहलेभी ऐसा सुना गया है। प्रकाशककी दृष्टिसे इसमें व्यावसायिक-लाभ हो, किन्तु अनुवादकके साथ तो यह अन्यायही है, जिसके लिए कम-से-कम अमृताजी जैसी अन्तर्राष्ट्रीय कृतविद्य लेखिकाको तो प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। प्रकाशक तो, अनुवादक तो दूर, मूल लेखकतक को गोलकर उसके स्थानपर भूत तथा छद्म नाम देनेके लिए बदनाम है ही। हाँ, यदि पुस्तक मूल रूपमें हिन्दीमें ही लिखी गयी हो तो अमृताजीका हिन्दी-साहित्यके क्षेत्रमें स्वागत है, हिन्दी उनको पाकर धन्यही हो सकती है! तब शिकायत यही रह जाती है कि प्रकाशकको यदि उक्त सूचना देना अभीष्टही था तो वह यहभी स्पष्ट कर देता कि अमृताजीने यह पुस्तक मूलतः हिन्दीमें ही लिखी है। —

वंश वृक्ष[1]

[कन्नड़से अनूदित]

उपन्यासकार : एस. एल. भैरप्पा

अनुवादक : डॉ. वी. बी पुत्रन

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

साहित्य अकाडेमी पुरस्कार प्राप्त कन्नड़ कथाकार श्री भैरप्पाका यह उपन्यास डॉ. वी. बी. पुत्रन द्वारा हिन्दीमें अनूदित है। एक धर्मनिष्ठ, कर्मकांडी, सत्याचरणवाले ब्राह्मणको केन्द्रमें रखकर लिखा गया यह उपन्यास परम्परागत और नवीन जीवन परिस्थितियों और उनसे विकसित होनेवाले मूल्योंमें द्वन्द्वको रेखांकित करता है। श्रीनिवास श्रोत्रिय केन्द्रमें है इसके, जो संयमी, सदाचारी, दुराग्रह रूढ़ि-रीतिसे मुक्त हैं, धर्मके आंतरिक स्वरूपको विवेकसे ग्रहणकर जीवनभर उसके लिए मूल्य चुकाते रहे हैं। युवा पुत्रके मर जानेपर विधवा बहूको एक बार तो उसमें विवेक और संयम जाग्रतकर रोक लेते हैं लेकिन फिर प्रकृतिका सहज उद्वेग अतृप्त नारीत्वकी कामवासना और आधुनिकताके प्रतीक राजारावके सम्पर्कमें आनेपर वह उसके साथ श्रोत्रियजी के घरको छोड़ चली जाती है। इस आघातको वे बिना किसी उद्वेगके सह लेते हैं। लगता है जो घटित होता है उसे प्रभुकी लीला मानकर ग्रहण करनाही उनका स्वभाव बन गया है, भलेही वह कितनाही अप्रिय क्यों न हो? अपने वंशकी पवित्रता, धर्माचरणपर उन्हें सहज गर्व है। बड़ीसे बड़ी समस्याको विवेकसम्मत ढंगसे सुलझा लेते हैं, चाहे वह अपनी हो या दूसरोंकी। लेकिन एक दिन उन्हें अपना उद्गम मालूम पड़ता है कि वे नियोगसे उत्पन्न है, तब उनका सारा वंशाभिमान ढह जाता हैं। अपने पिताके दुष्कर्मोंसे परिचित होनेपर वे प्रायश्चित-स्वरूप अपने चाचाके वंशजोंकी खोज करते हैं क्योंकि अब इस सम्पदाके भोगके वे अधिकारी नहीं रह गये। लेकिन इस खोजमें असफल होनेपर जमीन जोतनेवालोंको ही वे जमीन दान कर देते हैं। केवल पौत्रकी पढ़ाईके लिए कुछ हजार रुपये रखकर और उसका विवाहकर संन्यास लेनेके लिए हरिद्वारको चल पड़ते हैं। तभी रास्तेमें अपने शिष्य डॉ. सदाशिव रावसे मिलनेके लिए जब रुकते हैं तब मालूम पड़ता है कि डॉ. रावका देहान्त हो गया। उनकी दूसरी शिष्या-पत्नी करुणारत्ने अपने देश सिंहल चली गयी, उनके छोटे भाईकी पत्नी वही कात्यायनी है जो उनके दिवंगत पुत्रकी विधवा थी। यह आकस्मिकताभी उन्हें विचलित नहीं करती। उनका पौत्र और कात्यायनी का पुत्र उनकी मृत्युके समय बुलाया लिया जाता है। लगता है लेखक घटनाचक्रको कुछ अधिकही तीव्रतासे घुमाकर उपन्यास समाप्त करनेकी हड़बड़ीमें है, क्योंकि बातचीतमें यहीं उन्हें यह मालूम पड़ता है कि अपने अधिकार वंचित चाचा किटप्पाकी सन्तान ये ही डॉ. राव और उसका छोटा भाई राज है। इधर डॉ. रावने अपनी पहली निष्ठावान् पत्नी होते हुए अपनी शोध छात्रा रत्ने से वैवाहिक सम्बन्ध कर लिया है। बीमार पड़नेपर उन्हें अपनी पहली पत्नीके प्रति अपने अन्यायकी याद आती है। प्रायश्चितस्वरूप अपने साथ उसेभी रख लेते हैं लेकिन प्राणघातक बीमारीसे वे चल बसते हैं, जिसमें अपराध-बोधभी शामिल है। कात्यायनीभी श्रोत्रिय परिवारको छोड़कर आयी है, यह अपराधबोध उसे चुभता रहता है जो उसकी प्राणघातक बीमारीका एक प्रमुख कारण है। करुणारत्नेमें भी यही हाहाकार है डॉ. रावके मरनेपर। स्वयं श्रोत्रियजीके जीवनमें भी एक ऐसी स्थिति आयी थी जब स्वयं उनकी पत्नीने लम्बे समयतक सन्तान न होनेके कारण घरकी नौकरानी लक्ष्मीसे देह सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए उन्हें प्रेरित किया था लेकिन अपने विवेकपूर्ण चिन्तनके कारण वे ऐसा नहीं कर सके।

पूरे उपन्यासमें भैरप्पाने परम्परागत सदाचरण, निष्ठा, एक पत्नीव्रत, ब्रह्मचर्य, दृढ़ नैतिकता, त्याग एवं तपस्याका जीवन व्यतीत करनेवाले श्रोत्रियजीको आदर्श के रूपमें प्रस्तुत किया है जो अनेक संकटोंसे पार पाकर जीवनकी सार्थकताका अनुभव करते हैं। बड़ेसे बड़े अप्रिय सत्य सहज रूपसे निर्विकार भावसे ग्रहण कर लेते हैं। दूसरी ओर नवीन जीवन मूल्योंको अपनानेवाले हैं डॉ. राव और कात्यायनी, जो प्राकृतिक कामवासना, लोभ, आकर्षणको जीवनका सहज एवं मूल धर्म मानते हैं। भौतिक रूपसे समृद्ध होते हैं लेकिन अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त हैं, तनाव

---

१. प्रकाशक : शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : ३४७; क्रा. ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।

झेलते हैं। संस्कारगत मूल्य ... वा ... ही रूपमें सही उन्हें कोंचते हैं और प्राणघातक बीमारीके शिकार हो जाते हैं। तथाकथित सफलता प्राप्त करकेभी सार्थकता और आत्म-सन्तोषके अभावमें उनका व्यक्तित्व खोखला हो जाता है और जीवन हाहाकारसे भर उठता है। कोई दृढ़ नैतिकता, निष्ठा और विवेकपूर्ण आधार न होनेपर जीवनके कटु प्रसंग उन्हें झकझोरही नहीं देते अपितु तोड़भी देते हैं। जबकि श्रोत्रियजी सबको पचाकर भयंकरसे भयंकर तूफानमें भी विवेकसम्मत राह निकाल कर जीवन-पथपर लगातार बढ़तेही रहते हैं और एक तृप्ति-आत्मतोष उन्हें पुरस्कारके रूपमें मिलता है। जीवन की विषम परिस्थितियोंकी भयानक भँवरमें फँस जानेपर ज्ञानका यह आलोक उन्हें मार्ग दिखाता है।

'सब हमारी इच्छा, सुविधाके अनुसार हो तो इसे दुनियां कौन कहेगा?'

कुछ और सूत्र पाठकको दिशानिर्देश करनेमें समर्थ हैं—

'एकके दुःखको दूसरेकी नजरसे आंकना असाध्य कार्य है।'

'धर्म कार्यके लिए किसीके द्वारा दी गयी भेंट, दाता अगर लोभवश, बेमनसे देता हो अथवा अपने बच्चोंको भूखा मारकर देता हो या वह कमाई अन्यायकी हो तो ऐसी मदद न ले।'

आजकी तथाकथित धर्मभावनाकी पूरी पोल यह कथन खोल देता है।

'समस्त पीढ़ीको दृष्टिमें रखकर इस अन्तःसत्व परिवर्तनका वर्णन करना इतिहास है तो कुछ व्यक्तियोंके जीवनको केन्द्रमें रखकर उसी अन्तःसत्व-परिवर्तनको व्यक्त करना साहित्य है।'

काफी सीमातक मान्य हैं ये विचार।

लगता हैं उपन्यासकारने प्राचीन जीवन-पद्धतिकी सफलता दिखानेके लिएही नवीन जीवन-पद्धतिको असफल दिखाया है। इसमें दोनों स्थितियोंका तात्त्विक विवेचन नहीं मिलता। घटना प्रधानता कुछ ज्यादाही है उपन्यास को मनचाही दिशामें मोड़नेके लिए। द्वन्द्वग्रस्त मानसिकताका अंकन नहीं मिलता। सामान्य पाठकके लिए रोचकता और प्राचीन मूल्योंके प्रति आस्था जगानेमें यह उपन्यास सफल हो सकता है। आवश्यकता इस बातकी थी कि नवीन परिस्थितियोंमें विकसित होती हुई जीवन-दृष्टिके गुण-दोषकी परीक्षा घटना और पात्रोंके माध्यम से होती। फिरभी उपन्यास रोचक और सुपाठ्य है और अपना जीवन-सन्देश देनेमें सक्षम है, यह दूसरी बात है कि यह जीवन-सन्देश आदर्शके धरातलपरही टिका रहेगा। □

कई तरहके दिन[1]

[ओड़ियासे अनूदित काव्य]

कवि : जगन्नाथप्रसाद दास

रूपान्तर : विजयलक्ष्मी कानूनगो

समीक्षा : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण'

ओड़ियाके स्थापित कवि एवं नाटककार जगन्नाथप्रसाद दासके सद्यःप्रकाशित कविता-संग्रह 'कई तरहके दिन' में संकलित उनकी तेइस लम्बी कविताओंके लिए 'नयी कविता' के विख्यात कवि श्रीकान्त वर्माने लिखा है—'ये कविताएँ एक लम्बी प्रेम कविताके टुकड़ोंकी तरह हैं। दरअसल उनके संसारको समझनेके लिए इन कविताओंको पढ़ाभी इसी तरह जाना चाहिये।'

श्री दासके इस 'प्रणय-गंधसे सुवासित' काव्य-संकलन की लगभग प्रत्येक कवितामें अनुभूति पारे-सी डोलती लगती है और उसकी तरलताके साथ-साथ भाव-बिम्ब एवं शब्दभी हलकी-हलकी सिहरन लिये चलते प्रतीत होते हैं। रंगकर्मी होनेके कारण कविने इन कविताओंको 'नाटकके फ्रेम' में जड़ दिया है, शायद इसीलिए वे सीधे हृदयके दरवाजेपर दस्तक देती हैं।

प्रणयकी अनेक स्थितियोंको कवि जिन सार्थक बिम्बों से रूपायित करता है, उनमें कविकी 'निजता' झलकती है—

'धूपकी पिकनिक खत्मकर
दोपहर जब चली गयी जंगलोंमें
पक्षियोंने पोंछ लिये उजाले
अपने उद्धत परोंसे' (पृः १२)

---

१. प्रकाशक : जयश्री प्रकाशन, ४/११५, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८१; मूल्य २५.०० रु.।

इसी बिम्बात्मक सौन्दर्यके [illegible] शब्दोंको तराशता है, वे अर्थवत्ताको लेकर, उसकी अनुभूतियोंको आकार देते हैं—

'लहर जब मिटा देंगी/ रेत और सीपियाँ
और सम्बन्धोंके छोटे-से विस्तारको
सिर्फ सुबहके लिए अर्चनाकर
हम दोनोंके हाथ रोक रक्खेंगे
समुद्रके अन्तिम सूर्यास्तको !' (पृ. ४६)

संकलनकी एक रचना 'दूसरे देहान्त' की शब्द योजना भावोंको मूर्त करानेमें बेहद सफल रही है; साथही — प्रणयानुभूतिकी सघनताभी गहरा उठी है—'मेरी तमाम अनुभूतियोंको लेकर/ अपने दो हाथोंमें तुम/ कुछ समय खेलकर उनसे/ रख देती हो अपने वक्षपर/ इसलिए मैं अब भूलूँगा/ पहले उन हाथोंको/ फिर वक्ष और फिर तुमको' (पृ. ४४)।

ओड़ियासे अनूदित इन कविताओंमें प्रेमकी सर्वथा 'निजी-सी अनुभूतियां' आकार लेती हैं, लेकिन वे सब कहीं-न-कहीं 'समष्टि बोध' से जुड़कर आम जिन्दगीसे रिश्ता जोड़नेमें सफलभी हो गयी हैं ! 'प्रेम एक ऋतु' में कवि कहता है—

'प्रेम और विरह है
सुबहका विस्मय और साँझका संशय
सब यदि इसी प्रकार/ अस्त-व्यस्तकर जाता है
केवल समय।' (पृ. ५८)

'कई तरहके दिन' काव्य संकलनका शीर्षक इसी नामकी लम्बी कवितामें छिपा है, जो चार भिन्न मन:-स्थितियोंको अनुभूतिके धागेमें पिरोकर हमारे समक्ष साकार करती है ! इस रचनाका शिल्प कई प्रश्नचिह्न 'लम्बी कविता' के वर्तमान शिल्पपर लगाता है, जिसका अर्थ यही है कि कविके रूपमें श्री दास प्रयोगधर्मी-व्यक्तित्व रखते हैं। इस रचनाकी शीर्ष पंक्तिमें जो गहरी व्यंजना और संवेदनशीलता हैं, वह निःसंदेह भोगी हुई है—

'कभी-कभी दिन बहुत चुपचाप होता है'

यहीं कवि जीवनको नाटकके माध्यमसे उजागर करता है—

'सभी आकांक्षाओंकी समाप्ति
आसमानमें पहुंचकर
तारोंको छूनेमें
नाटकके अन्तकी तरह
तालियाँ और लम्बी सांसोंमें' (पृ. ३८)

संग्रहकी एक और सार्थक-सशक्त रचना है। 'क्रमानुसार', जिसमें कवि श्री दास जिस प्रतीकात्मक भाषाके माध्यमसे हृदयकी बात कहते हैं, उसकी 'निजता' भी छाप छोड़ती है मनपर —

'समुद्रकी असमाप्त लहरोंसे
कभी एकाकार कभी अलग हम दोनों
कभी हमारी दूरी होगी बहुत-ही पास
कभी पास रहनाभी हो जायेगा बहुत दूर
सुबहकी धूपमें उभरता हुआ कभी,
और फिर कभी खो जाता अंधेरेमें पूरी तरह' (पृ. ५६)

नि.संदेह, 'कई तरहके दिन' काव्य-संकलनमें कवि जगन्नाथप्रसाद दासकी प्रणयानुभूति उदात्त रूपमें अभिव्यक्त हुई है, जो पाठकके हृदयको छूकर उसे अपने साथ ले चलनेमें सफल है। इस संकलनका मुद्रण एवं साज-सज्जा पूर्णतः निर्दोष है ! संकलनमें अनुवादकी बोझिलता कहीं नहीं, बल्कि मूल रचनाओंकी आत्मा सर्वत्र मुखर हुई है। संकलनका स्वागत होगा, यह विश्वास मुझे है। ▭ ▭

काल चक्र[1]

[बंगलासे अनूदित]

उपन्यासकार : प्रफुल्ल राय

रूपान्तरकार : वीरेन्द्रनाथ मिश्र

समीक्षक : दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

कलकत्ताके पास एक छोटा-सा कस्बा श्यामनगर। एक नवयुवक राजा गरीबीकी मार और तज्जन्य सारी पीड़ाओंको झेलता हुआ। लड़कियोंके अनैतिक व्यापार की सूत्राधारिणी रमलादी और उनके चंगुलमें फंसी एक मासूम-सी लड़की जया।

---

१. **प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि., के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद। पृष्ठ : १९९; डिमा. ७९; मूल्य : २०.०० रु.।**

ये सूत्र पर्याप्त हैं 'का[illegible] देनेके लिए। स्वाधीनताके बाद हमारे देशमें एक तरफ तो धनके वितरणकी असमानता बढ़ी है और दूसरी तरफ अमीर बननेके नये-नये शार्टकट इजाद हुए हैं। इन शार्टकटोंके स्वामियोंने मासूमोंको अपनी आय-वृद्धिका साधन बनाया है—बेहिचक। बिना उनके भविष्यकी परवाह किये। उनका सरोकार अपनी समृद्धितक सीमित है। रमलादी जब राजाको अपने चंगुलमें फंसाती है और उसे बाध्य करती है कि वह मासूम जयाको अग्रवाल के पास पहुंचाये तो उसकी यही मानसिता होती है। राजाके लिए रमलादीका आश्रय पहले एक आवश्यकता होती है, फिर विवशता। जाने क्यों वह जयाको उस नरकमें नहीं ढकेल पाता है। उसके हृदयका कोई अज्ञात सूत्र जयासे जुड़ जाता है और वह अनायासही रमलादी की राहका रोड़ा बन बैठता है। हश्र उसका वही होता है जो होना था। रमलादी उसे जेलमें बंद करवा देती है। सारी व्यवस्था इन अपराधी लोगोंके हाथका खिलौना ही तो है। पर उपन्यासका अन्त फिरभी निराशापूर्ण नहीं है। जया जेलमें राजासे मिलने आयी है। राजा उससे कहता है—'मुझे यहांसे निकाल ले जाओ, फिर एक बार इस जिन्दगीको छोड़कर नयी जिन्दगी जीनेकी कोशिश करूंगा।' (पृ. १६८)। राजाका यह हौसला उपन्यासको एक अनिर्वचनीय गरिमा प्रदान करता है।

अपनी आर्थिक विवशताओंके कारण बना उठाईगिरा राजा जयाके व्यक्तित्वके आलोकमें अपने व्यक्तित्वकी कालिमाओंसे मुक्त होने लगता है। जयाही राजाकी विधवा भाभीके सौजन्य और सद्भावको पुनर्जीवित करती है। पादरीजी भी जयाके व्यक्तित्वसे प्रभावित हो उसके लिए नौकरी जुटानेमें लग जाते हैं। एक ओर है ऐसी जया तो दूसरी ओर है वज्र कठोर, घुटी-घुटाई रमलादी। जो चाहें और जैसा चाहें, करवानेमें समर्थ! दोनोंका एकही मुहरा है बेचारा राजा। राय मोशाय ने बंगला उपन्यासोंके बहु प्रशंसित कथा-शिल्पका प्रयोग कर इस टक्करको सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

उपन्यास सोचनेको बाध्य करता है अपने देशके भविष्यके बारेमें। पर किसी निराशावादी अंतपर नहीं पहुंचता है। यही इसकी सार्थकता है वरना हिन्दीमें आ रहे ढेरों-ढेर बंगला उपन्यास रोचक कथातक आकर खत्म हो जाते हैं।

उपन्यासने राजाके रूपमें एक अविस्मरणीय चरित्र दिया है यह कहते हुए मैं अन्य चरित्रोंके महत्त्वको कम करके नहीं आँक रहा। गलीके छोकरों और उनकी हरकतोंके अंकनमें राय महोदयकी सूक्ष्म निरीक्षण क्षमता का परिचय मिलता है तो जया-भाभी साक्षात्कार प्रसंग में मानवीय चरित्रकी उनकी अचूक पकड़का प्रमाण मिलता है। कुल मिलाकर 'काल चक्र' एक सार्थक व सफल उपन्यास है। ▭▭

उपन्यास

अकारण[1]

उपन्यासकार : योगेश गुप्त

समीक्षक : डॉ. भैरूंलाल गर्ग

'अकारण' टूटते व्यक्ति-मनकी सकारण अनुभूतिपर आधारित एक ऐसा उपन्यास है जो मानसिक तनावको सामाजिक परिप्रेक्ष्यमें स्त्री-पुरुष सम्बन्धों और स्त्रीके शोषणकी कहानीके रूपमें उभारता हैं। उपन्यासमें सर्वत्र रोहित और सुनीलके संवादोंमें व्यक्ति, समाज, स्त्री-स्वातंत्र्य और अन्य सामाजिक असंगतियों-विसंगतियों की चर्चा है। सुनील एक चित्रकार है और रोहित गांव से शहर (दिल्ली) में अध्ययन करने आया उसका मित्र। सुनील एकाकी है, अतः दोनों साथ-साथ रहने लगते हैं; किन्तु दोनोंका मानसिक धरातल भिन्न है। एक चित्र-कार मनके साथ रोहितका तालमेल सहज इसलिए बैठ जाता है कि सुनील कहीं अपनेको अकेला न समझे।

उपन्यासकारने रोहित, जो कि सामन्ती प्रवृत्तिका प्रतिनिधि है, से सुनीलका सम्पर्क करवाकर कदाचित्

१. प्रकाशक : सरस्वती विहार, २१ दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १३१; क्रा. ८०; मूल्य : १८.०० रु.।

वर्ग-वैषम्य और तज्जन्य सोच और धारणागत नैतिक [illegible]
और सामाजिक मानदण्डोंकी नवीन परिवेशमें व्याख्या करनी चाही है। उपन्मास अधिकांशतः सुनीलकी मानसिक तनावकी स्थितिको ही व्यक्त करता है। किन्तु लेखकने इस मानसिकताको प्रभावित करनेवाले कारणोंकी खोजकर उपन्यासको परंपरागत मानदण्डोंसे अलगाया है। उपन्यासमें कारणोंकी संश्लिष्टता कुछ इस तरह व्याप्त है कि हम एक पंक्तिमें यह नहीं कह सकते कि लेखककी इस कृतिका प्रेरणा-स्रोत कौन-सा एक कारण है। इस सम्बन्धमें लेखकका वक्तव्य है—'मेरे लिए बताना मुश्किल है कि इस उपन्यासमें विशेष तौरसे मैंने क्या कहना चाहा है। शायद यह व्यक्तिके अपने स्वधर्मसे, मानो अपने वास्तविक रूप या परिचयसे टूटते जानेकी कहानी है, या शायद व्यक्तिको उसके अधूरेपनके कारण नकारकर हमेशाके लिए अंधेकूपमें फेंक देनेकी कहानी अलगावकी या अलगावके तनावको जीतनेकी। पर जो भी हो, यह तथ्य मेरे लिए स्वतःसिद्ध है कि आधुनिक युगके इस तनावको सबसे अधिक स्त्रीको सहन करना पड़ रहा है। उपयोगितावादिताकी सबसे अधिक शिकार वही हुई है और यह केवल उसीके साथ हुआ है कि पुरुष शासित समाज उसके स्वधर्मकी मनचाहती परिभाषा करे और पूरी जातिको उसके स्वधर्म, उसके व्यक्तित्वसे काट दे, उसके निर्णय स्वयं करे और फिर घोषित करे कि स्त्रीका स्वधर्म पुरुषका होना है (श्री जैनेन्द्रकुमार) बाकीके सब निर्णय पुरुषको लेने होते हैं। मैं उस स्त्रीका सम्मान करनेके लिए बाध्य हूं जो अपने जीवनसे संबंधित निर्णय स्वयं लें और हजारों सालसे खोये अपने व्यक्तित्वको पुनः प्राप्त करनेकी कोशिश करे।' (कारण)

लेखकके वक्तव्यानुसार अगर हम प्रस्तुत उपन्यासके कथा संयोजनपर दृष्टिपात करें तो लगता है एक नारी पात्र ऐसा हैं जो अपना निर्णय करनेमें सक्षम है और वह है उत्तरा। फिर चाहे अनीका हो या शेफाली, कटोरी हो या मूरती, सभीको पुरुषकी हवशका शिकार बनना पड़ा है। लेकिन 'उत्तरा उनमेंसे नहीं हैं जो इस त्रासदीका शिकार बने...(पृ. १२९) स्त्रीके शोषणकी कहानी गांव और शहरमें समानान्तर है—बस संदर्भ और परिवेशका अन्तर मान लीजिये। तभी तो गांवका चाचा लखमीचन्द मुकन्दे चमारसे कहता है ...'ले दो रुपये... और ये तेरे चार आने...और देख घाघरेवाली मत

[illegible]ताओं।' (पृ. ८९)

उपन्यासकारने इस सारे सोचको सुनीलके माध्यमसे अभिव्यक्ति दी है। रोहित तो एक तरहसे मूक श्रोता बनकर सब कुछ सुनता चला जाता है। प्रकारान्तरसे सुनीलके रूपमें लेखक अपनी बात कहता है—'भारतमें स्त्रीपुरुषकी गुलाम रही, पश्चिमके देशोंने भारतको असभ्य देश कहा, पर पश्चिममें विशेषतौरसे अमरीकामें पुरुषोंने कमाल किया, स्त्रियोंको अपना गुलाम न रखकर उन्हें उन्हींकी 'इंस्टिंक्ट्स' का गुलाम बननेकी प्रेरणा दी। स्त्रियां खुश, स्वतंत्रता मिल गयी, पुरुषभी खुश, उदारभी कहलाया और सुख सौगुना हजारगुना आरक्षित।' (पृ. ७०)

यद्यपि लेखकने एक पारंपरिक संवेदनाको कृतिका आधार बनाया है, किन्तु जो बात उसने कहनी चाही है, वह बिल्कुल नये ढंगसे। मानसिक तनाव यहां है अवश्य लेकिन वह समाजकी एक चिर विसंगतिका उन्मूलन चाहता है जो वैयक्तिकताकी गंधसे संपृक्त नहीं। यह तनाव स्त्री-स्वातंत्र्य और उसे अपने निर्णय स्वयं लेनेके अधिकार दिलानेकी मांग करता है। यद्यपि औपन्यासिक वृत्तान्त सैद्धान्तिक और वैचारिक मन्तव्योंसे बोझिल है और पारंपरिक शिल्पसे भिन्न किन्तु इसमें अनुभूतिकी गहराई, संवेदनाकी कसक और अभिव्यक्तिका जो तीखापन है पाठकके मन-मस्तिष्कको झकझोरनेवाला है। लेखकने पारंपरिक सोंचसे हटकर नवीन संदर्भोंमें जो परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं वे निःसन्देह चिन्तनीय हैं... सामाजिक प्राणी किसे कहते हैं ? उसे नहीं जो समाजके नीति-नियमोंके अनुसार चले, बल्कि जो सामाजिक संदर्भमें या तो खुदको बदले या अपनी जरूरतके हिसाबसे समाजको बदलनेकी कोशिश करे। खुदकी और समाजकी यथास्थितिको बनाये रखनेके लिए हर समय तालमेल और सन्तुलन बैठानेवाले लोग दरअसल समाज-विरोधी होते हैं। कुछ उनमें से समाजको अपने लिए इस्तेमाल करते हैं और कुछको समाज अपने लिए इस्तेमाल करता है। इस्तेमालकी यह नीति व्यक्ति और समाज दोनोंके स्वास्थ्यके लिए बहुत घातक सिद्ध होती है।' (पृ. ७४)

उपन्यासका शिल्प मानसिक तनावसे प्राप्त शिल्प है। (लेखकके शब्दोंमें)। भाषा सहज और अभिव्यक्तिमें सार्थकता है। सवेदनामें जितना गांभीर्य है उतनीही शिल्पमें कसावटभी। कहानीमें घटना-संयोजन और पात्रानुकूल वैचारिक सृष्टिमें सूक्ष्म निरीक्षणकी वृत्ति

देखी जा सकती है। पुरानेके चित्रकार-व्यक्तित्व निर्माणमें लेखकका कौशल द्रष्टव्य है। कहना होगा कि लेखकने प्रस्तुत उपन्यासमें जो ज्वलन्त प्रश्न खड़े किये हैं वे पाठकको सोचनेके लिए विवश कर देते हैं। विसंगति पुरानीभी है—नवीनभी, लेकिन उसे सर्वथा नये संदर्भोंमें व्याख्यायितकर उसका समाधान सुझाना लेखककी मौलिक सूझ-बूझका परिचायक है। ▭▭

राबिया[1]

उपन्यासकार : आनन्दकुमार

समीक्षक : डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

फिलम-व्यवसायसे सम्बद्ध, पटकथा और संवाद-लेखन में अनेक पुरस्कार-प्राप्त आनन्दकुमारका उपन्यास 'राबिया' काल्पनिक कथावस्तु, चरित्रों और स्थलोंपर आधारित है। राबिया इस उपन्यासकी नायिका है जिसके चरित्र-चित्रणमें लेखकने सूफी विचारधारासे सहायता लेना स्वीकार किया है। लेकिन मेरे विचारसे इस उपन्यासकी विशिष्टता राबिया या अन्य चरित्रोंके अंकनमें उतनी नहीं है जितनी इसकी भाषा और वर्णन-शैलीमें है। उर्दू-फारसीके शब्दोंका प्रयोग इतना अधिक है कि इसे हिन्दीका उपन्यास माननेमें कठिनाई होती है। प्रकाशक या लेखककी ओरसे इस तरहकी कोई सूचना भी नहीं है कि 'राबिया' उर्दू उपन्यासका हिन्दी लिप्यंतर है। उपन्यासकी प्रतिनिधि भाषा यह है—'गोया कि हुस्न नुमायांभी है, ज़मींदोज़भी है। इसरार है कि यहां तशरीफ ले आयें। इंतिज़ारकी आदत नहीं है, पर इंतिजार करूँगा।' (पृ. ७) हिन्दीने अनेक उर्दू-फारसी शब्दोंको अपनी प्रकृतिके अनुकूल ढाल लिया है लेकिन इस उपन्यासमें कई शब्द हैं जिनका प्रयोग, हिन्दी की दृष्टिसे, चिन्त्य है जैसे वर्नः (पृ. २३), जुरूर (पृ. १५), ज्याद (पृ. ३१), सरबदः (पृ. ८०), वजः (पृ. ८१) इत्यादि। 'सौजन्यता' (पृ. ३७) अशुद्ध प्रयोग है। सगाईके लिए 'वाङ् निश्चय' (पृ. ४१) और एक्सरे के लिए 'क्ष रश्मि' (पृ. ६०) प्रयोगभी मुझे नये लगे। भाषाके बारेमें लेखककी निजी मान्यताएं हो सकती हैं। वैसे भाषापर लेखककी पकड़ पर्याप्त मजबूत है। जीवन के अनुभवोंको सूक्तिबद्ध करनेमें लेखकने प्रशंसनीय कौशल प्रदर्शित किया है जैसे—'इच्छाएं तो जीनेके लिए बैसाखियां हैं।' (पृ. २४), 'आस्था न होना पाप नहीं है, आस्थामें मिलावट होना पाप है' (पृ. ३१), 'प्रलोभन प्रेरित संकल्प एक आत्म छलना है।' (पृ. ३४),'रिक्ततासे पूर्णताकी महत्ता जानी जाती है।' (पृ. ५६), 'आतुरता ही साधनाका दूसरा नाम है।' (पृ. ७५), 'विचारके अनुरूप आचार तत्त्वनिष्ठा कहलाता है।' (पृ. १०१) ये सूक्तियां 'राबिया' के चमकते मोती हैं। इनकी आभा पाठकका मन मोह लेती है। लेकिन 'पहिली', 'वापिसी', 'पहिनना' जैसे प्रयोग हिन्दीके पाठकको खटकेंगे। ताजगी फिर मिलेगी तो उपमाओंमें—'अघाये अजगरकी तरह (बाजार) सीधा-सपाट पड़ा है।' (पृ. ८), 'भीगी बादाम-गिरीसी आंखें' (पृ. २८)। निर्वसना राबियाके सौन्दर्य-चित्रणमें ताजी-टटकी उपमाएं हैं। (पृ. १३६)

आनन्दकुमारकी शैली रोचक है—रोचकताकी दृष्टिसे अप्रतिम। 'राबिया' पढ़ते हुए निरन्तर कौतूहल बना रहता है। लगता है कि लिखे हुएको नहीं पढ़ रहे बल्कि कहे हुएको सुन रहे हैं। कहानी सुनायी है हज़रत ईसा (एक पात्र) ने लेखकको, और लेखककी स्वीकारोक्ति है—'बहरहाल, मूसाकी तरह हकलाते हुए हज़रत ईसाने जो कुछ मुझे सुनाया, वही मैं आपसे कहूंगा और उसके सिवा कुछ न कहूंगा, लेकिन अपनी तरह।' (पृ. २०) लेखककी कल्पनाकी उर्वरताका परिचय घटनाओं को मोड़ देनेमें और चरित्रोंकी सृष्टिमें मिलता है। कथा-साहित्यमें कल्पनाका यही उपयोग होता है।

चरित्रोंकी बात करें। गागा जोशी, मन्नू शास्त्री, मंदाकिनी, दानी, राबिया, मंजरी, रईसा, रंजन, आबा उस्मान। औरभी हैं। सब कहां याद रहेंगे? याद रहेंगे तो तीनही—पुरुषोंमें दानी, नारियोंमें राबिया और मंजरी। बचपनमें आवारागर्दीमें खूब प्रसिद्धि पायी दानीने। हज़रत ईसाके शब्दोंमें—'दानीकी दुर्दमनीय प्रवृत्तियोंके नख नहीं तोड़े जा सके तो उसे जीनियसभी कहा जा सकता था, पर जीनियस क्या और असामाजिक अर्थात् चरित्रहीन क्या, नामकरणसे कोई अन्तर नहीं

1. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : २३२; क्रा. ८०; मूल्य : २७.०० रु.।

पड़ता, अर्थ एकही है।' (पृ. [illegible]) [illegible] सिद्ध चित्रकार आबा उस्मानसे जा मिला। उन्होंने कहा कि वह अपने और अपनोंके लिए नहीं है। अल्लाहने दानीके हाथमें जो करामात बख्शी है, उसपर किसी उस्तादका साया ले। दानीके भीतरका कलाकार जागा और वह घरबार छोड़कर कलाकी साधनामें खो गया। आबा उस्मानने दृष्टि दे दी। मॉडल बनी रईसा—एक वेश्या-पुत्री! अधूरा चित्र छोड़कर दानी फिर भागा। बहुत धक्के खाये। राबिया उसीकी बेटी थी। संयोग हुआ तो उसे मॉडल बनाया। उसके निर्वसन सौन्दर्यको कुलदेवी पाटलादेवीमें बदल दिया। निर्विकार हो गया दानी। अपनी तमाम दुर्बलताओंके बावजूद दानी है और स्मृतिमें जीवित रहता है। एक नाकाम जिन्दगी, बदनाम मौत! कलाकारकी जिन्दगी, कलाकारकी मौत!

इसी दानीकी हैं दो बेटियां मंजरी और राबिया। मंजरी विवाहिता पत्नीसे उत्पन्न, समाजसे स्वीकृति प्राप्त कन्या। राबिया वेश्याके संसर्गसे उत्पन्न नाजायज सन्तान! मंजरीका चरित्रांकन लेखकने बहुत उत्साहसे किया हैं, नायिका भलेही राबियाको बनाया हो! दृढ़ता स्वाभिमान, निष्कपटता और भावुकतासे ओत-प्रोत है मंजरी। राबियाके नवजात शिशुको अपनानेमें मंजरीने जैंसी दृढ़ता दिखलायी है, वैसी दृढ़ताकी कल्पनाभी प्रेरक है। भावी पति (जिसका उसे ज्ञान नहीं था) रंजनके कामुक व्यवहारपर उसके ऊपर थूकना, धरतीपर कब्जा करनेके मामलेमें गागाजीके अन्याय-पक्षके स्थानपर रईसाका न्याय-पक्ष लेना मंजरीके चरित्रकी दृढ़ताके प्रेरक मोड़ हैं।

और राबिया? कलाकार पिता और वेश्याकी—हिन्दू और मुसलमानकी संतान! लेखकने उसे बालपन से ही अलौकिकताके आलोकसे आवृत्त रखा है। सूफी कवियोंको पढ़कर आपा भूल गयी। न जाने कौनसे संस्कार जागे कि संगीतमें कबीर और मीरा, बुल्लेशाह और वारिसशाहकी रचनाएं दर्दनाक स्वरमें अलापने लगी। अंधी हो गयी राबिया लेकिन अन्तर्दृष्टि उस परमपर जा टिकी। सब ठीक है लेकिन अंधीके साथ रंजनने बलात्कार किया उसे मंजरी समझकर, तो लेखक ने उसे यह रूप दिया 'फिर हिजाब हट गया तो मजाजी ने हकीकीका जलवाही जलवा दिखा दिया। द्वैत नष्ट हो गया। अद्वैतकी पूर्ण सत्ता स्थापित हो गयी। बचाव का यत्न छोड़कर अंधी राबियाने वर्षाकी पहली बूंद [illegible] धरतीकी तरह सोख लिया।' (पृ. १९३) बलात्कारको इस रूपमें लेना सूफी-साधनाका कौन-सा पड़ाव है, यह एक उचित प्रश्न है। इस घटनाने राबिया के चरित्रकी स्वाभाविकतापर आघात किया है। अन्यथा राबिया एक स्मरणीय चरित्र है।

मनोरंजनभी उपन्यासका लक्ष्य होता है लेकिन कोरे मनोरजनके पीछेभी कोई-न-कोई गूढ़ उद्देश्य छिपा रहता है। 'राबिया' एक मनोरंजक कृति है। मनुष्य मनुष्य है—परिस्थितियोंसे हारता-जीतता वह जीता है। विषमताएं मनुष्यने ही पैदा की हैं। हजरत ईसा द्वारा सुनायी गयी 'राबिया' की कहानी पुतलियोंका नाच है। लेखकने इसका अंत इन शब्दोंमें किया है—'हम जीवन का रहस्यही नहीं जानते तो मौतका क्या जानेंगे? ज्ञानी-विज्ञानी जीवन और मृत्युके विषयमें तर्क करते रहें पर जनन, जीवन, जीवितोंके संसर्ग-संपर्क, मरण और मरणोत्तर सम्बन्धोंकी यह ईसा वर्णित कहानी सुनकर मेरे तर्क समाप्त हो गये हैं। पुतलियां नाचती हैं, बस नाचती हैं।' □

सलमा[१]

उपन्यासकार : गौरीशंकर राजहंस

समीक्षक : डॉ. प्रेमकुमार

प्रस्तुत उपन्यास कश्मीरके प्राकृतिक सौन्दर्यके बीच स्त्री-पुरुषके सान्निध्यजनित सहजाकर्षणको अपने ढंगसे व्यक्त करनेवाला उपन्यास है। सलमा, जिसके आधार पर कृतिका नामकरण किया गया है, आद्यन्त उपन्यासके केन्द्रमें रही है। उपन्यासका ताना-बाना आत्मकथात्मक शिल्पमें बुना गया है। 'मैं' अपनी कश्मीर-यात्रा, वहां प्रवास व प्रवासके दौरान सम्पर्कमें आये कुछ पात्रोंसे सम्बद्ध विभिन्न घटनाओं व संदर्भोंको स्वयं कहता है और 'सलमा' अपनी कहानी 'बाबूजी' को सुनाती है और 'बाबूजी' पाठकोंको। प्राकृतिक सौन्दर्यके बीच मानवीय

---

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ८३; क्रा. ८०; मूल्य : १४.०० रु.।

सौन्दर्यके प्रति सहजाकर्षित मनकी क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं लेखकने उपन्यासमें व्यक्त की हैं। फ्लैपकी टिप्पणीमें दो दावे किये गये हैं—एक तो कश्मीरकी प्राकृतिक सुषमा, और वहांके लोगोंकी नैसर्गिकताका मनोहारी चित्रण करनेका तथा दूसरा, प्रकृत प्रदत्त प्रेमकी ऊष्माको सरल भाषा व अकृत्रिम रूपमें प्रस्तुत करनेका। प्राकृतिक सौंदर्य व वहांके लोगोंकी नैसर्गिकताको लेखकने कश्मीर,श्रीनगर, डल झील, गुलमर्ग, पहलगाँवकी यात्राओंके माध्यमसे तथा सलमाके परिचितों-रिश्तेदारोंके गाँव पहुंचवाकर व्यक्त करना चाहा है। पहाड़ी जीवनमें प्राकृतिक सौन्दर्यके साथ मानवीय सरलता, सहजता, प्रेम, त्याग व बलिदान आदि भावनाओंकी उपस्थितिका स्थान-स्थानपर आभास कराया गया है।

'उपन्याससे पूर्व' में दंगे व हाउस बोटके व्यावसायिक रूपपर टिप्पणी करते समय लेखकके पास उपन्यासको सामाजिक समस्याओंसे जोड़नेके लिए पर्याप्त समय था, किन्तु उसने इसे केवल प्रेम सम्बन्धोंपर आधारित उपन्यासही रहने दिया है। सामाजिक समस्याओंसे जुड़े इन प्रसंगोंका उपयोग सम्बन्धोंकी घनिष्टता व उत्कटताके लिएही अधिक हुआ है। उपन्यासमें तीन पात्रोंकी भूमिका प्रमुख रही है—स्वयं नैरेटरकी, सलमाकी व जावेदकी। नैरेटर उच्च वर्गसे सम्बन्धित एक व्यक्ति है। अपनी कश्मीर यात्राके बीच उसे हाउस बोटमें रुकना पड़ता है। हाउस बोटकी मालकिन उसके प्रति आकृष्ट हो जाती है। प्रवासके दौरान सलमाके सेवा-भावसे प्रभावित 'बाबूजी' उसकी व्यक्तिगत-पारिवारिक समस्याओंमें सहयोग देते हैं, किन्तु यात्रासे लौट आनेपर जैसे पूर्व जन्मी कोमल सम्वेदनाएं धीरे-धीरे समाप्त होने लगती हैं। यदि जावेद या सलमा स्वयं उनके पास आ-आकर उन स्मृतियोंको हरा-भरा न करते रहते तो संभवत: सब कुछ आसानीसे विस्मृतभी किया जा सकता था। बाबूजी के मनमें उस सहज-भावुक नारी सलमाके प्रति प्रेमकी गम्भीरताका अनुमान इस बातसे लगाया जा सकता है कि बाबूजी उसके भाईको नौकरी दिला देने तथा यदा-कदा आर्थिक सहायता दे देनेको ही सलमाके प्रेमका प्रतिदान मान लेते हैं। अपने विवाहकी सूचना सलमाको देनेमें उन्हें कहीं कोई हिचक नहीं होती। सलमाकी मृत्यु उनकी 'चीख' निकलकर चुप हो जाती है। दूसरी तरफ सलमा एक सशक्त पात्र है। उसका दुखी जीवन, सहज प्रेम, स्वावलम्बी जीवन, उदार मानवीय चरित्र, सेवा-भाव, त्याग, बलिदान, तुनकमिजाजी व कर्मठता आदि पाठकके मनमें अपेक्षाकृत अधिक सहानुभूति जगाते हैं। नारी-मनका पवित्र-निष्कलुष रूप उपन्यासमें सलमाके रूपमें अभिव्यक्त हुआ है। सलमाके चरित्रमें अभावों, तनावों व संघर्षोंका एक अटूट सिलसिला है। माँ-बाप, मंगेतर एक-एक करके उससे पहलेही छिनते गये हैं। जावेदके आवारापन और उसकी आपत्तिजनक विवाहकी आकांक्षाके बावजूद वह 'ताऊ' की इकलौती सन्तान होने के कारण उससे घृणा नहीं कर पाती। बाबूजीके समक्ष फफककर रोने, जावेदके गोली लगने व अन्तमें मृत्यु होने के समयके दृश्य पर्याप्त मार्मिकता लिये हैं तथा सलमाके चरित्रके कोमलतम व उज्ज्वलतम पक्षोंको उद्घाटित करते हैं। जावेदकी उपस्थिति आद्यन्त खलनायकके रूप में रही है। अपने देशके विरुद्ध जासूसीमें उसका संलग्न रहना, बहिनसे उसकी इच्छाके विरुद्ध अपने साथ शादी करनेके लिए दुराग्रह करना, बाबूजीके मनमें अपनी बहिन के प्रति कोमल भावोंको उनकी कमजोरी मानते हुए कैश कर ब्लैकमेल करना और अन्तमें सलमाकी शादीका गलत समाचार सुन ईर्ष्यावश आक्रोशमें उसकी जान ले लेना, सब उसके चरित्रकी खलताको व्यक्त करते हैं।

'उपन्याससे पूर्व', कश्मीरमें अमरीकी दम्पतीसे सम्बद्ध अंश तथा दंगेकी आशंकासे होटलमें घटी दुर्घटना से सम्बन्धित दृश्य उपन्यासकी सहजता, अकृत्रिमता व संगतिपर प्रश्नचिह्न लगाते हैं। भाषाके स्तरपर उपन्यास सफल रहा है। आत्मकथात्मक रूपमें कहे गये इस उपन्यासको भाषाकी सहजता व इसके प्रेमाश्रित होनेमें ही इसे पठनीय रहने दिया है। सलमाको इस उपन्यासकी 'प्राप्ति' कहा जा सकता है। ▭▭

मत–अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कर सकती है, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदान भी सिद्ध हो सकती है।

प्रतिसमीक्षा

'कसप' : पुनर्मूल्यांकनकी आवश्यकता

समीक्षक : डॉ. जगदीश शर्मा

'प्रकर' के जुलाई १९८२ के अंकमें मनोहर श्याम जोशीके नये उपन्यास कसपकी समीक्षा करते हुए श्रवण-कुमार गोस्वामी इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि "आशा है, 'धीर' पाठक-पाठिकाओंके बीच इसका आदर हो सकता है। मगर, यह सम्भावनाभी है कि 'कुरू-कुरू स्वाहा' की तरह जोशीजीको यहभी सुननेको मिले --'जोशीजी, का एकू खाली पोली बोम मारता है?" इस आशका का कारण शायद यह है कि समीक्षकको इस उपन्यासमें अनावश्यक विस्तारके दर्शन हुए हैं, जैसाकि उसके इन शब्दोंसे प्रकट होता है : "भाषाके धनी जोशीजीने एक छोटी-सी प्रेम-कहानी ३०६ पृष्ठोंमें पसारकर अपनी उसी सामर्थ्यका पुनः परिचय दिया है, जो 'कुरू-कुरू स्वाहा' में दिखायी पड़ी थी।" समीक्षकने ३०६ पृष्ठोंके उपन्यासका सार प्रकरके २॥ पृष्ठोंमें देकर अनावश्यक विस्तार सम्बन्धी आरोपको प्रकारान्तरसे प्रमाणित करने का प्रयत्नभी किया है। लेकिन उसी प्रयत्नसे यहभी सिद्ध होता है कि कथा-सार कला-कृतिका स्थान नहीं ले सकता और कलाकृतिका मूल्यांकन केवल 'कथा' के आधारपर नहीं किया जा सकता।

वस्तुतः **कसप**की इस समीक्षाकी सीमा केवल उसकी अपनी सीमा न होकर हिन्दीकी लगभग पूरी कथा-समीक्षाकी सीमा है। गहरे कलात्मक अभिप्रायोंकी पकड़ कथा-साहित्य संबधी हिन्दी समीक्षामें कमही दिखलायी देती है। जो समीक्षा-दृष्टि इस मान्यतासे निर्दिष्ट हो कि कथा-साहित्य यथार्थका दस्तावेज है, उसमें सर्जनात्मक समृद्धिका उपेक्षित रह जाना अपरिहार्य है। इसीलिए कृतिमें अंकित यथार्थकी व्याख्याके आगे कथा-साहित्य सबंधी समीक्षाकी गति हिन्दीमें प्रायः दिखलायी नहीं देती। अधिकसे अधिक हुआ तो चरित्र-चित्रण और भाषा-शिल्प संबंधी फुटकल टिप्पणियोंपर पहुंचकर समीक्षा ठहर जाती है। पता नहीं यह क्यों भुला दिया जाता है कि कलाकी समझ उपन्यासकी समीक्षाके लिए भी उतनीही आवश्यक है जितनी कविता और नाटककी समझके लिए। कथ्यका सीधे अपना कोई कलात्मक मूल्य नहीं होता, लेकिन रचनाकारकी अंतर्दृष्टिको उद्घाटित करनेका उपकरण होनेके नाते वह उपेक्षणीय भी नहीं है क्योंकि रचनाकारकी सर्जनात्मक कल्पनाको उसकी अंतर्दृष्टिसे पोषण प्राप्त होता है।

श्रवणकुमार गोस्वामीने **कसप**को 'कुमाऊंके लोक-जीवन तथा वहांके मध्यमवर्गीय परिवारोंकी मानसिकता को रूपायित' करनेवाले उपन्यासके रूपमें देखा है, जो उनके विचारानुसार 'फिलमी शैलीमें लिखा गया है।' इस प्रकार इस उपन्यासपर दृष्टिपात करते समय उन्होंने अपनी आंख एक ऐसे तंग छेदमें फंसा दी है जिसने उनकी दृष्टिको समीक्ष्य कृतिके अनेक मार्मिक पक्षोंतक पहुंचनसे रोक दिया है।

सही है कि इस उपन्यासमें फिल्म-निर्माण संबंधी शब्दावलीका प्रयोग रह-रहकर अनेक स्थानोंपर हुआ है, लेकिन इतना-भर होनेसे यह फिलमी शैलीमें लिखा हुआ उपन्यास नहीं मान लिया जा सकता। मनोहर श्याम जोशीकी उपन्यास-रचनाका वैशिट्य यह है कि वे विनोदपूर्वक कथा कहते हैं और विनोदके धरातलसे उठा-कर चुपकेसे कथाको मानवीय अर्थवत्ताकी गहराईमें उतार ले जाते हैं। अपनी कथाको निर्वैयक्तिक रूपमें कहते-कहते वे एकाएक कभी अपने पाठकोंको सम्बोधित करके तो कभी अपने पात्रोंसे संवाद स्थापितकर चुटकियां लेने लगते हैं। ऐसा करके वे कथाकी प्रतीति यथार्थके आभास के स्थानपर 'रची हुई वस्तु' के रूपमें कराते हैं, यद्यपि उसके भीतर समाया रहताही है, लेकिन ऐसा करके निर्लिप्तताको तोड़कर स्थितियों और चरित्रोंपर मुस्करानेका अवसर वे पा जाते हैं। कथा-वर्णनके मध्य फिलमी गीतोंको पिरोना भी लेखककी इसी विनोदप्रियताका परिणाम है। कथाकी वर्णनात्मकतापर सिनेमाके दृश्य-शिल्पको चिपकाकरभी वे आजके इस लोकप्रिय कला-माध्यमके विषयमें जनसाधारणका उत्सुकताके अतिरेकका मजा लेते हैं।

इसी प्रकार कुमाऊंके जीवनसे सम्बन्धित होते हुएभी यह उपन्यास कुमाऊंके लोकजीवनका उपन्यास नहीं है।

यह एक प्रणयी युगलके मनोभावोंके घात-प्रतिघातके भीतर मनुष्यके अकेले रह जानेकी टीस-भरी नियतिकी कथा है। यह संयोगही है कि इस कथाके पात्र कुमाऊँके हैं, इसमें कुमाऊँको केवल परिवेशके रूपमें स्थान मिला है, वर्ण्य विषयके रूपमें नहीं।

लेखकने नायक-नायिकाके प्रणयको विनोदपूर्वक 'खिलंदड़ीपन' के स्तरसे उठाया है, लेकिन धीरे-धीरे यह मनोभाव गम्भीरतामें ढलता चला गया है। यदि खिलंदड़ीपनसे गम्भीरताकी दिशामें कथाका विकास समीक्षककी पकड़से छूट जाता है तो वह 'मारगांठ' और 'जिलेम्बू' के परे कुछभी नहीं देख सकता। उपन्यासके भाव-स्तरोंकी बुनावटसे अपरिचयही इस उपन्यासमें 'खलनायक' की आवश्यकताका आग्रह उत्पन्न करता है। नायिकाका भाई कर्नल कार्तिकेय शास्त्री जोभी करता है, अपनी बहिनके प्रति अपने दायित्वके कारण। इसलिए यह मानना सर्वथा अनुचित है कि उपन्यासकार ने उसे खलनायकका स्थानापन्न बनाया है। यदि इस उपन्यासकी अंतिम परिणति दुखान्तही माननी हो तो उसका निमित्त खलनायक न होकर नायिकाकी अपनी मनोरचना है। मैत्रेयीमें जैसी प्रखर आत्मदीप्तिके दर्शन होते हैं वैसी इससे पहले रांगेय राघवकी प्रसिद्ध कहानी 'गदल' की नायिकामें ही देखनेको मिली थी। फिरभी मैत्रेयीका व्यक्तित्व अपूर्व है अपनी जीवन्ततासे।

जहां 'गदल' की नायिका प्रणय और प्रतिशोधके द्वन्द्वको जीती है, वहां मैत्रेयी अकुण्ठ भावसे नायकको अंगीकार करती है। वह गदलके समान नायककी ओर से पहलकी जानेकी प्रतीक्षामें अपने मनोभावको दबाये नहीं रखती। स्वयं पहल करती है और बार-बार पहल करती है। प्रणयकी बाधाओंसे वह टकरातीभी है उतनी ही उत्कटता और आत्म-विश्वासके साथ। कर्नल कार्तिकेय के हाथों जब नायक विवशतापूर्वक पिटता है तब मैत्रेयी अपने बड़े भाईसे भिड़जानेमें संकोच नहीं करती। यही नहीं, बड़े भाईसे वह अपने विषयमें बोलनेका अधिकारभी छीन लेती है। जैसेही उसकी यह आत्मदीप्ति आहत होती है, वैसेही वह अपने प्रणय-सूत्रको निर्ममतापूर्वक तोड़कर अपने-आपको निर्द्वन्द्व भावसे मुक्त कर लेती है। उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्वकी इस प्रखरताको सामने न रखनेपर उसके द्वारा नायकको सम्भोगके लिए ललकारा जाना अश्लील और अनावश्यक यौन-चित्रणकी इच्छाका परिणाम प्रतीत हो सकता है।

लेकिन कसपका कलात्मक मूल्य नायिकाके प्रखर व्यक्तित्वकी रचनामें परिमित नहीं है। उसकी प्रखरता की सार्थकता उस करुणाको—बल्कि करुणाके बावजूद अटूट संकल्पको—रेखांकित करनेमें निहित है जो लम्बे अंतरालके बाद वार्धक्य प्राप्त नायक-नायिकाके आकस्मिक मिलनके अवसरपर नायिकाके मुखसे प्रकट होता है।

नायक-नायिकाके प्रणय-संबंधके अंतके बाद जो पृष्ठ गोस्वामीको अनावश्यक जान पड़े हैं, वे प्रणयके बादकी मन:स्थितिके सूक्ष्म अंकनकी दृष्टिसे बहुत मूल्यवान हैं। न केवल यह कि प्रणय टूटकर भी नहीं, टूटता, बल्कि प्रणयी युगलोंके साथ प्रेम ढलता नहीं उसकी स्थिति सनातन है—यह बात तो उपन्यासके इस अंतिम अंशमें ही आयी है। नायक-नायिका वार्धक्यकी देहलीपर पैर रख चुके हैं। लेकिन नायिकाके स्थानपर उसकी बेटी उसके अतीतको वर्तमानमें ले आती है। मैत्रेयीके प्रणयमें उसके पिता शास्त्रीजीके विफल प्रणयकी स्मृति अपनी तृप्ति पाती है। इस प्रकार प्रेमकी सनातनता पीढ़ियोंके अंतरालको भरती है। इस सनातनताके भान का एक आयाम जन्म-जन्मतक एक-दूसरेको पानेका प्रयत्न करते रहनेकी आकांक्षाभी है। ऊपरसे देखनेपर इस उपन्यासमें वह विफल होती दिखलायी देती है, लेकिन बहुत सूक्ष्म रूपमें उपन्यासकारने विफलताके बोधको अंतत: नायिकासे नायकको यह कहलाकर निरस्त कर दिया है: 'बार-बार तू मेरे अयोग्य ठहरे, बार-बार मैं आ सकूं इस सुंदर संसारमें तुझसे पीछा करवानेके लिए।' अकेले छूट जानेके त्राससे इस विश्वास द्वारा उबारनेके साथही अंतमें अकेले नायकके पीछे गुलनारको खड़ाकर लेखकने मानव-नियतिको करुणाका विषय बननेसे बचा लिया है, भलेही नायक अंतमें रोता दिखलायी दिया हो।

प्रणयकी करुण परिणतिको असत्य न मानते हुएभी करुणाके दर्शनको उपन्यासकारने बहुत बारीकीसे अस्वीकार किया है। प्रणयकी पीरसे बचनेकी एक युक्ति गुलनारका 'कुतियापंथी' दर्शनभी है, लेकिन इस दर्शन को जन्म-जन्मान्तर व्यापी विफल प्रणयकी कामनाके सामने फीका दिखलाकर उपन्यासकारने प्यारकी टीसका मूल्य उजागर किया है।

इन सूक्ष्म व्यंजनाओंको समझे बिना कसपका वास्तविक मूल्य हाथ नहीं आता। इसलिए उसका पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। ▭ ▭

कहानी संग्रह

मजहब नहीं सिखाता।[१]

सम्पादक : सत्येन्द्र शरत्

समीक्षक : देवेन्द्रकुमार शर्मा

परतन्त्र भारतमें साम्प्रदायिक दंगे अंग्रेजों द्वारा कराये जाते थे, क्योंकि उनका विभाजनकर शासन करने की नीतिमें अटूट विश्वास था। हमारे देशको स्वतंत्र हुए पैंतीस वर्ष हो गये, अब साम्प्रदायिक दंगे क्यों होते हैं? इसका एकही कारण प्रत्यक्ष दिखायी देता है, वह है आजकी दूषित राजनीति और उसके सर्वेसर्वा राजनीतिज्ञ। आज जहाँ-तहाँ होनेवाले साम्प्रदायिक दंगोंसे स्पष्ट लक्षित है कि हमारे देशकी राजनीति और तथाकथित राजनेता अंग्रेजोंकी डिवाइड एंड रूलकी नीतिसे किस सीमातक प्रभावित हैं और इस पथपर उनका कितना अनुसरणकर रहे हैं।

'मजहब नहीं सिखाता' में सत्येन्द्र शरत्ने हिंदीके श्रेष्ठतम कहानीकारोंकी तेरह रचनाएँ संकलित की हैं। इन सभी रचनाओंमें दो हिन्दू एवं मुसलमान पात्र हैं। फलत: दोनोंकी परम्पराओं और संस्कृतिका विश्लेषणभी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। संकलनकी छह कहानियों की कथा-वस्तु १९४७ के विभाजनकी अमानवीय मार-काटसे संबन्धित है, जन मानसपर अपनी खास छाप छोड़ गया है। शेष सात कहानियोंमें हिंदू-मुस्लिम परिवारोंकी पारस्परिक घनिष्टता तथा धर्म और संस्कृतिका अनायास ही आड़े आ जाना—इनसे संबन्धित घटनाओंको कथा बनाया गया है। वस्तुत: ये सभी कहानियाँ साम्प्रदायिक घृणाके विरुद्ध मानव-एकताकी स्थापनाके कल्पवृक्षकी पोषक हैं।

साम्प्रदायिकताको लेकर सम्पादकने प्रारम्भिक पृष्ठों में पाठकोंसे अपनी बातमें आजके संदर्भमें सारा दोष तथाकथित राजनीतिज्ञोंका बताया है—'आज राजनीति इतनी अधिक दूषित हो गयी है कि राजनीतिज्ञ अपने स्वार्थके समक्ष अन्य किसी बातको महत्व नहीं देता। उसका स्वार्थ सिद्ध होता हो तो वह दो धर्मोंके लोगोंके बीच तो क्या दो भाइयोंके बीचभी लड़ाईके अंकुर रोप सकता है। आजकी राजनीति वोटोंकी राजनीति है।'

संकलनकी पहली कहानी प्रेमचंदकी 'पंच परमेश्वर' है। कथ्यकी दृष्टिसे कहानी साम्प्रदायिकताकी अपेक्षा न्यायके महत्त्वको दर्शाती है। कथावस्तुकी दृष्टिसे साम्प्रदायिकताके दायरेमें नहीं आती। संभवत: कथा सम्राट् मुंशी प्रेमचंदकी कहानीसे संकलनको प्रारम्भ करनेका मोह संपादक नहीं छोड़ पाये।

साम्प्रदायिक घृणाके विरुद्ध मानवीय एकताकी स्थापनापर बल देती हैं उग्रकी 'खुदाराम'। खुदाराम स्वयंमें साम्प्रदायिक दंगोंके विरोधका प्रतीक है। वह धर्मके नाम पर पाशविक वृत्ति रखनेवालोंपर व्यंग्य करता है—'तो धर्मके नामपर खूनकी नदी बहेगी। हा···हा···हा···हा···। तुम लोग इन्सान क्यों हुए? तुम्हें तो भालू होना चाहिये था, शेर होना चाहिये था। भेड़िया होना चाहिये था। वैसी अवस्थामें तुम्हारी खूनी प्यास मजेमें शान्त होती। धर्मके नामपर लड़नेवाले इन्सान क्यों होते हैं।' (पृ. ३८-३९) और खुदाराम निश्चित रूपसे होनेवाले साम्प्रदायिक दंगेको रोकनेमें सफल होता है। वर्तमान परिस्थितियोंमें साम्प्रदायिक दंगोंको रोकनेके लिए अनेक खुदाराम चाहियें, जो हैं तो सही लेकिन उन्हें इस तरह आगे आनेसे पहलेही निहित स्वार्थों द्वारा समाप्त कर दिया जाता है।

---

१. प्रकाशक : सरस्वती विहार, २१, दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : २०१; क्रा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

'हाय राम ! ये बच्चे ! !' [illegible] अपनी अलग पहचान बनानेमें सक्षम है । इसका कथ्य बाल मनोविज्ञानपर आधारित है । वस्तुतः बाल मन साम्प्रदायिक भेदभावकी समझसे उस समयतक अनभिज्ञ रहता है जब तक कि उसमें समझका अंश विकसित न हो जाये । जैसे जैसे वह बड़ा होता है और जब वह बुजुर्गोंके साम्प्रदायिक भेदभावपर नजर डालता है तो आंखें फैलाकर सोचता है और उसकी इस सोचका परिणाम जब बुजुर्गोंके समक्ष आता है तो वे फटी आँखोंसे सिर थामकर बैठ जाते हैं—

'नीलूने जाकर दादीसे छुरी माँगी । उन्होंने विस्मय से पूछा, 'हैं छुरी !···छुरीका क्या करेगी ?···न! हाथ कट जायेगा ।'

'नहीं-नहीं ।···नहीं कटेगा । हम हिन्दू-मुसलमानकी लड़ाईका खेल खेलेंगे ।···दो न जल्दी ।' (पृ. ४६)

'मास्टर साहब', 'टेबल लैंड' और 'बदला' तीनोंही कहानियाँ विभाजनके समयकी घटनाओंको लेकर लिखी गयी हैं । तीनों कहानियोंके कथ्य अलग-अलग हैं । 'मास्टर साहब' में साम्प्रदायिकताकी आगमें शहर और गांव दोनों जल रहे हैं । हिंदू या मुसलमान जो जहाँ भारी पड़ रहा है वहीं दूसरेको तबाह कर रहा है । फिरभी मानवीय सहानुभूतिके अंश शेष हैं, चाहे वह वहीं हो जहाँसे साम्प्रदायिकताका आरम्भ हुआ । 'टेबल लैंड' का दीनानाथ पंजाबके हिन्दू शरणार्थियोंके नामपर चंदा इकठ्ठा कर रहा है लेकिन परिस्थितियां उसे मुसलमान शरणार्थीको चंदेकी रकम देनेपर मजबूर कर देती हैं—'बाबा मैं भी हिन्दू हूँ । मेरा घर-द्वार पाकिस्तानमें लुट चुका है । पाकिस्तानमें रब्बुल-आलमीनमें यकीन रखने वाले मुसलमानोंने बेकसूर हिन्दुओंपर और हिन्दुस्तानमें घट-घटवासी भगवानके अनुयायियोंने निर्दोष मुसलमानों पर जो अत्याचार तोड़े हैं, उनका कफ्फारा वे सात जन्म में अदा नहीं कर सकते । मैं यह चंदा पंजाबके दुःखी शरणार्थियोंके लिए इकठ्ठा कर रहा था, आपभी पंजाबके शरणार्थी हैं और दुःखीभी कम नहीं । रुपया ज्यादा नहीं, पर देखिये, यदि इससे आपका कुछ काम निकल सके ।' (पृ. ८३-८४) और 'बदला' में साम्प्रदायिक दंगोंसे पीड़ित एक सिख और उसके बेटेका दिल्लीसे अलीगढ़के बीच यात्रा करनेका मकसद मात्र इतना है—'औरतकी बेइज्जती औरतकी बेइज्जती है, वह हिन्दू या मुसलमानकी नहीं, वह इन्सानकी माँकी बेइज्जती है । शेखपुरेमें हमारे साथ जो हुआ सो हुआ—मगर मैं जानता हूं कि उसका मैं बदला सिर्फ ले नहीं सकता—क्योंकि उसका बदला सिर्फ हो नहीं सकता—और वह यही कि मेरे साथ जो हुआ वह और किसीके साथ न हो । इसीलिए दिल्ली और अलीगढ़के बीच इधर और उधर लोगोंको पहुंचाता हूं मैं ।' कहानीमें मजहबपरस्तीपर बहुतही तीखा व्यंग्य है ।

'अधूरी कहानी' के अहमद साहब किसी प्रकार हिंदू और मुसलमानोंके बीचकी ग़फ़लतको दूर करनेके लिए प्रयत्नशील दिखायी पड़ते हैं—'मेरे दोस्त ! इस दुनियां में मिटनेवाला कुछभी नहीं है । मोहब्बत तो हरगिज नहीं । सिर्फ हमारी ग़फ़लतसे उसपर कभी-कभी परदा पड़ जाता है ।' (पृ. १०५) । 'मोतीकी सात चलनियाँ' के निगार और सुरेन्द्र जातपातके भेदभावको भुलाकर अपने किस्मका अलग समाज बनानेकी ओर अग्रसर हैं । वे विवाह कर रहे हैं उनके सामने जातिका कहीं कोई प्रश्न नहीं हैं—'पापाजी, मुझे निगारसे शादी करनी थी, पचासोंसे नहीं । और जातिका तो मेरे सामने सवालही नहीं है । (पृ. ११४)—'मैं अपनी पसंदके एक आदमी से शादी कर रही हूं, इसमें मजहबका सवालही कहाँ उठता है । हमारे बच्चे हिन्दुस्तानी होंगे । वे अपनेही किस्मके नये कायदोंवाले समाजमें पलें—बढ़ेंगे; शादियाँ करेंगे । हिन्दू-मुसलमानपन न हमारेही कामका है और न हमारे बच्चोंके कामका, फिरभी अब्बा हमें उससे बांधना चाहते हैं ।' (पृ. ११७)

'रावण' इस संकलनकी एक सशक्त और बेजोड़ कहानी है । यह कहानी साम्प्रदायिक मतभेदोंको भुलाने वाली तथा आदिसे अन्ततक रोंगटे खड़े करनेमें सक्षम है । कहानीका अन्त इतना मार्मिक है कि पाठकके अन्तरको झकझोर दे—'बूंदे और बढ़ने लगी । हवाके झोंकोंसे रावणका मुकुट छत्र फट-फटकर ऊपरको उड़ने लगा । जुम्मनने कसकर मुकुट छत्र पकड़ लिये और आकाशकी ओर देखकर कहा—'भगवन् निर्दयी न होओ । पानी बरसेगा तो रावण कैसे बचेगा ? रावण बिगड़ गया तो मैं अपनी जान दे दूंगा । भगवान् मैं प्राण त्याग दूंगा ।' (पृ. १४६) लेकिन भगवान् हिन्दुओंकी रामलीला बनाने वाले मुसलमानके लिए निर्दयी हो चुका था । गांवकी प्रतिष्ठाके लिए रावण बनानेवाले जुम्मनके लिए निर्दयी हो चुका था । उसने जुम्मनकी पुकार-जुहार नहीं सुनी । पानी बरसता रहा और जुम्मन पागलोंकी तरह रावणके सिरपर छाता ताने आसमानमें खड़ा रहा । जिस रावण

की आंखें घूम रही थी, सिर हिल रहा था, वह अब क्षत-विक्षत खड़ा था। कागजोंके रंग बह गये थे। बाँहें लटक गयी थीं लेकिन जुम्मन था कि अपनी संज्ञा-शून्य देहसे अबभी आसमानमें छाता ताने खड़ा था—रावणको बचाने के लिए।'

'जाति और पेशा' में रांगेय राघवने पेशेके दौरान जातपांतकी भावनासे काम लेनेवाले चरित्रोंका चित्रण किया है। पहले हिन्दू और बादमें मुसलमान वकीलोंको चार पैसे देकर जब कथानायक अब्दुल घर पहुंचता है तो पत्नीके शब्द अधिक तथ्यात्मक और सच्चे प्रतीत होते हैं—'वह सब बड़े लोगोंका खेल है। वकीलको कहो, डिप्टीके यहां जा; चपरासीसे कहो, वह डिप्टीका भी बाप है। सीधे मुँह बोल नहीं कढ़ता। एक हैं। थानेदार, वाह-वाह, 'ये सब लोग ऐसेही हैं', अपना तो यही रामदास है। उसकी बहूसे मैं कह देती। घरका मामला घरमें ही सुधर जाता। पर तुम क्यों मानने लगे। दो पैसे मिले बस चले कचहरी।' (पृ. १६०-६१)

'मलबेका मालिक' मोहन राकेशकी विभाजनके समय की यादोंको कुरेदनेवाली एक मार्मिक कहानी है। जिस व्यक्तिपर सभी परिवारजनोंने विश्वास किया उसीने मकान-जायदादके लालचमें पूरे परिवारको मौतके घाट उतार दिया। एक व्यक्ति बचा, वहभी इस कारणसे कि वह विभाजनके समय पाकिस्तान चला गया था। तथ्योंसे अनभिज्ञ गनी खाँ अपनेही परिवारके हत्यारे, मुहल्लेके दादा और उसके जले हुए मकानके मलबेका मालिक समझनेवाला, रक्खेसे पूछताछ करता है—'तू बता, रक्खे, यह सब किस तरह हुआ।' (पृ. १७४)—'···रक्खे, उसे तेरा बहुत भरोसा था। कहता था कि रक्खेके रहते कोई मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मगर जब आनी आयी तो रक्खे के रोकेभी न रुक सकी।' (पृ. १७४) और सब कुछ लुट जानेके बादभी वह शख्स उसकी खुशहालीकी कामना करता है—'जी हल्का न कर रक्खेआ। जो होनी थी हो गयी। उसे कोई लौटा थोड़ेही सकता है? खुदा नेक की नेकी रखे और बदकी बदी माफ करे। मेरे लिए चिराग नहीं तो तुम लोग तो हो—···अल्लाह तुम लोगों को सेहतमंद रखे।' (पृ. १७५)

'पानी और पुल' महीपसिंहकी मानसिक भावनाओं को उकेरनेवाली एक सशक्त कहानी है। विभाजनके बाद इधर-उधर बिखरे हुए लोग जब कभी मिलते हैं या मिलनेका अवसर पाते हैं तो क्या स्थिति होती है। कहानी का सबसे सशक्त अंश सराई स्टेशनपर गाड़ीके रुकनेका है। मानवीय आत्मीयताका भावात्मक चित्रांकन आंखोंको नम कर देता है—'तुम मूलासिंहके बेटे हो।' कई लोग एकसाथ चिल्लाये, 'तुम मूलासिंहकी बीवी हो ·· खेर्लासिहकी भाभी? कैसे हैं सब लोग?'—'भरजाई, तुम अपने बच्चोंको लेकर यहां आ जाओ···'किसी एक ने कहा और कितनोंने दुहराया, 'भरजाई, तुम लोग वापस आ जाओ···।' प्लेटफार्मपर खड़ी कितनी आवाजें कह रही थीं—वापस आ जाओ, वापस आ जाओ।' (पृ. १८६)

स्वयं लेखकके शब्दोंमें कहानी 'पानी और पुल' में मानवीय भावनाओंके उस सत्यको समझनेका प्रयास किया गया है जो समूहके उन्मादके बावजूद व्यक्ति-मनमें सुरक्षित रहता है। और लेखककी यह धारणा कहानीकी प्रत्येक पंक्तिमें झलकती है।

संकलनकी अन्तिम कहानी 'कटी हुई किरणें' जातपांतकी समस्यासे घिरी हरपतियाकी कहानी है। कहानी की प्रत्येक पंक्तिमें समाजके उस वर्गके लोगोंपर व्यंग्य किया गया है जो साम्प्रदायिकताको बढ़ावा देते हैं।—'मुझ अभागे रंडुवेकी जब बायड़ियोंकी नौ-जात, नौ-पात में जगह नहीं रही, लंधौन भिगराड़ाके लोहारोंमें ठौर नहीं रही तो फिर खूनाके मलिहार मुसलमानोंमें चला गया तो कौन-सा गंगनाथ-हरनाथका फूलका डोला जमीनपर खिसक गया सरगसे? कौन-सा मसान गया मुरदा घर लौट आया?···मैं अकेला कहां-कहां माथा पटकता! फिर तुम्हीं बताओ वह तुम्हारी लोहारनियोंसे किस बातमें कम है। मलिहारिनी क्या औरत नहीं होती।' (पृ. १९२)

कुल मिलाकर संकलनकी प्रत्येक कहानीका अपना एक मकसद है, जिसे वह पूरा करती है। भाषाकी दृष्टि से सभी कहानियां उच्च कोटिकी हैं। पूरे संकलनमें कहीं शैथिल्य दृष्टिगत नहीं होता। भाषा परिमार्जित और शैली कथ्यके अनुरूप है।

अपना अपना सच[1]

लेखिका : मणिका मोहिनी

समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

पिछले दशकमें जिन महिला लेखिकाओंने कहानी-जगत्में अपनी पहचान बनायी है, उनमें मणिका मोहिनी का नाम प्रथम पंक्तिमें आता हैं। 'अपना अपना सच' लेखिकाका पांचवां कहानी-संग्रह है, जिसमें उनकी बारह कहानियां संगृहीत हैं। इन कहानियोंमें नारीके अन्तजर्गत् की विभिन्न स्थितियोंको सहज मार्मिकताके साथ रूपायित किया गया है। सम्बन्धोंके विघटनके इस युगमें जबकि जीवनकी संश्लिष्टता और व्यावहारिकताने आन्तरिक स्निग्धताको बुरी तरह सोख लिया है, नारी-मनकी पीड़ाको विभिन्न स्तरोंपर मूर्त करनेवाली ये कहानियां सहजही महत्त्वपूर्ण हो उठती हैं।

संग्रहकी अधिकतर कहानियोंमें अकेलेपनकी पीड़ा विद्यमान है। 'मत रोओ, आंटी' की नायिका पतिकी व्यस्तताजन्य उपेक्षाकी वेदनाको मौन विवशताके साथ ढो रही है। पति बिजनेसके सिलसिलेमें प्रायः शहरसे बाहर रहता है और पत्नीको अपनी तपन बाथरूमके फव्वारेके नीचे शान्त करनी पड़ती है। 'अन्तर्द्वन्द्व' की नायिका इस तपनसे राहत पानेके लिए, अपने मातृत्वकी उपेक्षाकर परपुरुषकी बांहोंका सहारा ढूंढ़ती है। किन्तु जब वह पाती है कि वह न माँका कर्त्तव्य ठीकसे निबाह रही है, न प्रेमिकाका, तो एक अजीब-सी स्तब्धता उसके तन-मनपर छा जाती है, जो अन्ततः उसे मातृत्वकी ओर लौटा लाती है।

'कहाँ है दर्द' और 'ढाई आखर प्रेमका' में भी एकाकीपनसे जूझती नारीकी मानसिकताके कुछ पहलुओं से हमारा परिचय होता है। कभी आन्तरिक शून्यता प्रतिबिम्बित होकर बाह्य व्यापारोंमें झलकने लगती है तो कभी जिन्दगी और शरीर-धर्मोंका निर्वाह इतना आवश्यक हो जाता है कि उसके लिए झूठे सहारोंकी खोज करनी पड़ती है। कभी नगण्यता-बोधकी पीड़ाको झेलकर भी अतीतकी स्मृतियोंसे मुक्त होना सरल नहीं जान पड़ता, तो कभी अतीतको दुःस्वप्नके समान झटककर केवल वर्तमानमें जीना और हर क्षणको मूल्यवान् समझ कर उसका उपयोग करना व्यवहार्य लगता है। परन्तु हैं ये सब अकेलेपनकी प्रतिक्रियाएंही।

'मत रोओ, आंटी' एक अन्य स्तरपर किशोर मनके ऊहापोहकी भी कहानी है। यौन आकांक्षाओं और जिज्ञासाओंसे आकुल किशोर-मन बाथरूमके दरवाजेकी दरारसे आंटीके अनावृत शरीरको देख लेता है, तो एक तनावमयी अनुभूति उसके रोम-रोममें व्याप जाती है, जिसके शमनसे उसे अद्भुत सुख मिलता है। वह जल्दी-जल्दी बड़ा हो जाना चाहता है, आन्टी जितना बड़ा।

'राखके नीचे' भी किशोर मनकी ही कहानी है, परन्तु उसकी संवेदना बिल्कुल भिन्न स्तरकी है। 'अभी तुम छोटे हो' और 'अब तुम बड़े हो गये हो' के बीच झूलता हुआ राहुलका प्रश्नाकुल मन यह फैसला नहीं कर पाता कि वह छोटोंमें शामिल है या बड़ोंमें; परन्तु पड़ोस के एक लड़केके 'आरफन' कह देनेसे अपने पितृहीन होने का अहसास उसे इस हदतक क्षुब्ध कर देता है कि वह उससे बदला लेनेके लिए उसे बुरी तरह काट लेता है।

'उसका होना-न होना' और 'अपना अपना सच' 'एबनार्मल' व्यक्तित्वके विश्लेषणकी कहानियां हैं, जिनकी संवेदना असामान्य यौन-व्यवहारसे सम्बन्ध रखती हैं। एक कहानीका नायक समलैंगिक सम्बन्धोंका अभ्यस्त है, तो दूसरीका 'ट्रांसवर्टिसिज्म' + (?) का शिकार। दोनों ही वैवाहिक सम्बन्धोंके लिए 'अपूर्ण' हैं। बस अन्तर केवल इतना है, कि एक 'पति' है, जिसका होना-न-होना पत्नीके लिए एक-सा है और दूसरा इस भावनाके कारण पतित्वकी कल्पनासे भी डरता है।

समीक्ष्य संग्रहकी कहानियोंने अन्तर्जगत्के कुछ अन्य बिन्दुओंको भी स्पर्श किया है। 'पतिव्रता' आधुनिक परिवेशमें उन्मुक्त सम्बन्धोंकी शिष्टताके विवश निर्वाहकी कहानी है, जो पतिको स्वयं 'दूसरी नारी' तक पहुंचाने की वेदनाको तीक्ष्णताके साथ अभिव्यक्त करती है। 'उसका दुःख' में पुरुषकी अतिभावुकताके प्रति नारीकी बौद्धिक प्रतिक्रियाको वाणी मिली है। कहानी इस सत्य

---

१. प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२-००३। पृष्ठ : १२०; क्रा. ८२; मूल्य : १६.०० रु.।

+ लेखिकाके अनुसार एक बीमारी (देखें पृ. ११८)

की ओर संकेत करती है जो नारी पुरुषसे समर्पण नहीं, शासनकी आकांक्षा रखती है। 'धुंधली तसवीरें' में नारी-मनके एक अन्य पहलूसे हमारा साक्षात्कार होता हैं। मनचाहा घर-संसार पाकर भी कभी-कभी नारी अपने अतीतको लेकर व्यथित हो उठती है, खास तौरपर उस समय जब विश्वासघातकी चोट एक स्थायी दर्द बनकर उसके रोम-रोममें समा गयी हो; यद्यपि यह व्यथा अत्यन्त क्षणिक होती है। 'भागीदार' दो बहनोंके असफल गार्हस्थ्यकी व्यथा-कथा है, जो बड़ी बहनके इस अहसासको व्यक्त करती है कि वह परिस्थितियोंसे समझौता न कर सकी, जिसका फल लोकापवादके भयसे बदतर हालतमें जीनेके लिए अभिशप्त छोटी बहनको भोगना पड़ा।

'संवाद' पुरुष और नारीकी उन्मुक्त बातचीत है, जिसमें कुछभी उल्लेखनीय नहीं है।

मणिका मोहिनीका इन कहानियोंका एकमात्र कमजोर पहलू इनकी अन्तर्निहित अश्लीलता है, जो 'मत रोओ, आंटी। और 'उसका होना-न-होना' में एकाधिक स्थानों पर नग्नताकी कोटितक पहुंच जाती है। यौन-संवेदनाओं को लेकर मानव-मनकी सही छानबीन करनेवाली ये कहानियां, निःसन्देह लेखिकाकी बहुमूल्य उपलब्धियोंमें परिगणित होतीं; यदि वे 'बोल्ड लेखन' की लोकप्रियता बटोरनेके सिक्केको भुनानेका प्रयत्न न करतीं। फ्लॅपपर दी गयी प्रकाशकीय टिप्पणीके अनुसार मणिका मोहिनी भोगे हुए सच और प्रामाणिक अनुभूतियोंकी आग्रही हैं। किन्तु क्या ऍबनार्मल यौन चरित्रों और प्रसंगोंको कहानी के चौखटेमें फिट करनाही यथार्थका आग्रह है? यह प्रश्न ये कहानियां पाठकके सामने छोड़ जाती हैं।

कहानियोंका शिल्प पक्ष सामान्य है। कई स्थानोंपर प्रेसकी भूलें, जैसे 'अन्तर्द्वन्द्व' को 'अन्तर्व्दन्द्व' लिखना, खटकती हैं। ▭▭

सहयात्रा[1]

लेखक : यशपाल वैद

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

प्रस्तुत संकलनमें चौदह कहानियां हैं जो जिन्दगीके विभिन्न श्वेत-श्याम ताने-बानेको एकाएक रेशेके साथ बारीकीसे उकेरनेमें समर्थ हैं। यशपाल वैद लगभग दो दशकोंसे अपनी कथा-यात्रामें हमें अनुभूतिजन्य जीवन-चिन्तनसे प्रभावित करते रहे हैं और उनकी कहानियां विश्वसनीय एवं स्वस्थ विश्लेषणके कारण हमें सहजही आकृष्ट कर लेती हैं। सहयात्रा, सम्बन्ध, गिले-शिकवे, बन्ती, मृत्युबोध और तृष्णा-वितृष्णा इस संकलनकी जानदार रचनाएं हैं। हम सबके भीतर जो एक सुगबुगाहट है, चालाकी और पाखंड है, स्वार्थ और दिखावा है, शोषणके विभिन्न तरीके हैं, उनको हूबहू शब्द-चित्र देना एक कठिन काम होता है। लेखकने मनके भीतरकी पर्तें कुछ इस तरह उधेड़ी हैं कि सहयात्रामें हमभी शरीक हो जाते हैं--'साले बन्दरकी औलाद, पागल समझकर मजा लेते हैं।' लेखकने जीवनके सम्बन्धोंको इन्सानी रिश्तोंके परिप्रेक्ष्यमें देखा है ओर जीवनके चलनको उसके विविध रंगोंमें रेखांकित किया है।

हमारी व्यस्त जिन्दगीकी उदासी, कभी आत्मीयताके क्षण, अन्तर्वेदनाकी धधक, मजेदार बेचैनी, खिसियानी हंसी, भद्दे मजाक, सुन्दरम्के आधारपर काल्पनिक संबंध, अड़ियल पत्नी, बॉसको टिकिट लेकर देनेकी चिंता, जीवन के अनैतिक पक्ष, लड़कीके पवित्र जीवनकी चाह—ये सारे पहलू इन कहानियोंमें बिना किसी दार्शनिक ऊहापोहके सूक्ष्मतासे उभारे गये हैं। मनुष्यको बिलकुल मनुष्यकी तरहसे देखा गया है—न आदर्शोंकी दुहाई और न यथार्थका भौंडापन।

हां, कुछ कहानियां शायद अनुभूतिकी तीव्रताके अभावमें सोद्देश्यताके निकट पहुंचकर उतनी कलात्मक नहीं हो पायी हैं जितनी उनसे अपेक्षा थी। एक धर्म-संकट, भावुकता, चुनाव-पति-पत्नी जैसी कहानियां कुछ लचर नजर आती हैं।

चिंतन और शालीन व्यंग्यका ताना-बानाभी कहीं-कहीं रचनाओंको व्यंजनाकी नयी ताकत प्रदान करता है। जहां-जहां कहानीमें लेखकको मनके भीतरी द्वन्द्व, ऊहापोह और आघातोंके बीच मनोवैज्ञानिक विश्लेषणके प्रस्तुतीकरणका मौका मिला है, वहां रचनाएं सशक्त और मार्मिक हो उठी हैं, लेकिन जहां ये अवसर नहीं मिले हैं वहां कहानियां ठोस जीवन चिंतनसे हटकर सतही तौरपर समापन पा गयी हैं।

एक ताजगी, सच्चाई और भाषामें सहजताके साथ जटिल विचारों, भावोंको व्यक्त करनेका माद्दा यशपाल वैदको एक समर्थ कहानीकारके लिए आश्वस्त करता है।

---

1. प्रकाशक : शारदा प्रकाशन, १६/एफ-३, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १२७; क्रा. ८२; मूल्य : १६.०० रु.।

काव्य संकलन

पुलपर पानी[1]

कवि : ऋतुराज

समीक्षक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित

'यहां बहुत अर्सेसे/ शोषक और कंगालोंके बीच/पानी में डूबा लकड़ीका पुल है/ पानीकी दीवारमें/ दोनोंका साझा है··· ।' (पुलपर पानी) ।

ऋतुराजकी 'पुलपर पानी' शीर्षक कविताकी इन पंक्तियोंके अभिप्रायकी गूंज उनके इसी नामके कविता-संग्रहकी कविताओंमें सुनायी पड़ती है। चूंकि संग्रहमें कहीं कोई निर्देश नहीं है, इन कविताओंका कोई तिथिक्रम निश्चित नहीं किया जा सकता; हाँ, आपात्कालका संकेत कुछ कविताओंपर अंगुली धरकर थोड़ा-बहुत समय की सीमाका ज्ञान करा देता है, पर यह बिल्कुल जरूरी नहीं है कि ये सारी कविताएं उसी एक समयकी हों। नहीं हैं तो ही अच्छा है, क्योंकि वैसा होनेसे ही ये न केवल विशेष कालातिक्रमणकी कविताएं हो जाती हैं बल्कि तात्कालिकतासे हटकर ये ऋतुराजकी स्थायी वृत्ति की गवाहभी हो जाती हैं। जिन्हें अपने समयसे हटकर कवितामें किन्हीं और माध्यमोंसे शाश्वतता खोजनेकी तलब है और जो सामाजिकताका एक अलग तंत्र गढ़कर उससे राजनीति और अर्थ-समस्याको नितांत बहिष्कृत कर देनेमें सुख मानते हैं, उनके लिए इन कविताओंके होने की कोई गरज नहीं हो सकती, पर इसके बावजूद ये हैं और बहुतोंको अपने होनेका अहसास कराती हैं। यह अवश्य है कि कविताका बहुआयामी व्यक्तित्व यहां नहीं उभरता और मुद्रा लगभग एकही बनी रहती है। हांलाँकि यह मुद्रा सर्वत्र और सदैव आक्रोशी कविओंकी बँधी-बँधाई प्रणालीवाली कुछ खास मुहावरोंवाली मुद्रा नहीं है और उछाल-शैलीका आश्रय नहीं लेती। विज्ञप्ति की इस बातसे सहमत हुआ जा सकता है कि 'कविकी प्रतिपक्षीय संवेदनासे भरपूर यह कविता-संग्रह वर्तमान समाजकी बहुस्तरीय जटिलताओंको उघाड़ता हुआ, पाठक को उस बिंदुतक ले जानेमें समर्थ है, जहाँ उसे न सिर्फ व्यवस्था, बल्कि अपने प्रतिभी गम्भीर होना होगा।' भाषा और अभिव्यक्तिके विषयमें भी कदाचित्ही दो राय हो सकती हों, अन्यथा यहभी बहुत दूरतक ठीकही है कि उसका प्रवाह ऐसा है जैसा 'बिना किसी बड़बोलेपनके, सींचनेकी तरह बहुत कुछ कहता-करता हुआ। अन-पेक्षित शोर और अनावश्यक बिम्बों-प्रतीकोंकी भँवर इनमें नहीं है : लेकिन बावजूद इस सबके पानी पुलपर है।'

ऋतुराजकी प्रतिबद्धताके लिए यह स्वाभाविकही है कि वे 'चुपचाप बरदाश्तकी हद' के परे 'आगका सफर' तय करनेके लिए ललकारते हैं 'जिसमें तेरी जलती हुई सूरतका प्रकाश/दूसरोंके अँधेरेको चीरता बढ़ता हुआ···/' दिखायी दे। वे अनुभव करते हैं कि 'इस आगकी सरपट दौड़में' 'बीसका यंत्र कोई बीजमन्त्र' कारगर उपाय नहीं है, एक सम्पूर्ण क्रांति (लेकिन अनियंत्रित क्रांति नहीं) जरूरी है : 'उसे चाहिये एक बदलाव/ जो अभिनव नहीं हो/ एक समय जो बहुत थोड़ाभी नहीं हो/ वह बेकाबू नहीं/ जनसिद्ध होना चाहिये।'

ऋतुराजके पास अनुभवोंको भावमें बदलनेका, दो नितांत विरोधी भावस्थितियोंको आमने-सामने या अगल-बगल रखकर उनकी गहराईमें उतर जाने और पाठकको उस बेचैनी, कसमसाहट, द्विविधाग्रस्तता या आतंकका बोध करा देनेका कौशल है, और इसे वे बड़े सहज अन्दाजसे निबाह ले जाते हैं। जैसे, 'व्यस्त हैं' कविताकी ये पंक्तियां बहुत कुछ कह जाती हैं—'हवासे गिरी खिर-

---

1. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ११४; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

नियोंकी चोरी करते वक्त/ स्वादकी उल्लास और पकड़े जानेकी दहशतके बीच/ जिये हैं तुम्हारे बच्चे ।'

ऋतुराज एक संदेह, एक अविश्वास, एक उबाऊ और धोखाभरी जिन्दगीके घिरावसे पीड़ित हैं। वे मोह-भंगकी स्थितिसे गुजरते हैं और लोकतन्त्र उनके लिए एक बेहूदा मजाकभर रह जाता है। क्योंकि 'लोकतन्त्र ने रोटीके साथ वही किया/ जो एक बिल्ली चूहेके साथ करती है खेल-खेलमें।' याकि 'एक तुच्छ औपनिवेशिक भदेस है/लोक-प्रशासन/ गाड़ियोंके आरक्षण और जमीन के/ काले पसीनेसे ऊपर/ हैलीकोप्टरोंकी उड़ानके सिवाय/ कुछभी तो नहीं।' इसलिए वे अनुभव करते हैं : 'जो हरियल सुख नंगे पहाड़ोंके नीचे/ पैदा हुआ है/ मैं उसका एक हिस्सा नहीं हूं / झरना रुक-रुककर आगे बढ़ता है/ वहभी मेरा नहीं है।/ मैं तो सिर्फ उसके बहुत करीब हूं/ और उसका पानी पीना चाहता हूं।' वर्तमानके प्रति अपनी अप्रसन्नताको व्यक्त करते हुए वे चूंकि निराश नहीं रहना चाहते, एक विवश और बेसहारा व्यक्तित्व लिये घूमना नहीं चाहते, इसलिए उनके सामने प्रतिपक्ष बन जानेके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। इसी प्रतिपक्ष में खड़े होकर वे कहते हैं 'लेकिन यह नहीं हो सकता कि/ मैं वर्तमानको पूरी निराशाके सूखे काठकी तरह सहूं।' और जबकि 'कोटरोंमें धँसी आंखें' देखकर उन्हें लग रहा हो 'तुम्हारी दृष्टिने बहुत दूरतक पीछा किया है मेरा/ जिस तरह चींटियां भोजनकी गंधका पीछा करती हुई/ हो जाती हैं व्याकुल।' तो वे 'गुप्त तैयारियों' में लग जाते हैं ताकि वे 'अपनी भाषाके प्रक्षेपणास्त्रों' का इस्तेमाल कर सकें।

युद्ध और खीझ और झुंझलाहट और भाषाका हथियारकी तरह इस्तेमाल आदिके बीच उभरती हुई गुर्राहट, ऐसा नहीं है कि दमदार नहीं लगती याकि प्रभावित नहीं करती लेकिन आखिर उसकी एक सीमा तो है ही, बहुत पहचानी आवाजकी तरह उसकेभी खुट्टल पड़ जाने का डर तो है ही। ऋतुराज जब कहते हैं : 'कविता स्मृतियोंकी मुट्ठीभर रोशनी है/ वे लोग जो इसे गाते हैं/ जीते हैं/ उनकी जीवनानुरक्तिके लिए/ यह तुम्हारे हृदय को असंख्य रक्तकोषोंसे/ सींचती है/', तो ठीकही कह रहे होते हैं। काश, वे अपनी मूल भूमिकाको न त्यागते हुए भी और-और भूमियोंपर भी पद-संचार कर पाते, अपने आपको विस्तार दे पाते!

लोग भूल गये हैं[1]

कवि : रघुवीर सहाय

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

अपने नवीनतम काव्य-संग्रह 'लोग भूल गये हैं' में रघुवीर सहाय कलाके बारेमें अपनी स्पष्ट धारणा व्यक्त करते हैं कि 'पीड़ाके रसभीने अवलेहमें लपेटकर' अपनी रचनाओंको परोसना उन्हें उत्सवधर्मी बना देना है। दर-असल कविता द्वारा मनुष्यका नया रचाव होता है और विकसित समझ द्वारा सम्पूर्णताकी खोजका सार्थक अनुभव। जनजीवनसे कटकर और घेरोंके बीचसे झांकनेवाला कलाकार नहीं होता--

> अनुभवसे समृद्ध होनेकी बात तुम मत करो
> वह तो सिर्फ अद्वितीय जनही हो सकते हैं
> अद्वितीय याने जो मस्तीमें रहते हैं चार पहर
> केवल कभी चौंककर
> अपने कुएंमें झांक लिया करते हैं
> वह कुआं जिसको हम लोग बुर्ज कहते हैं।(पृ. १३)

बर्बरता, हत्याएं, चीथड़े और मैल भारतीय संस्कृति के मूल्य बनते जा रहे हैं। हम तटस्थताका लबादा ओढ़े अहंग्रस्त और आत्मकेन्द्रित बने बैठे हैं। वस्तुस्थितिसे कतराकर मूलतः हम अपना छद्म, पाखण्ड और खोखला-पन जाहिर कर रहे हैं—

> हर हत्या हमसे कुछ दूर हुई दिखती है
> जबकि वह हमारे बहुत पासमें हुई है
> हत्याएं याद रह जाती हैं
> लाशोंके चेहरे नहीं याद रहते
> उनकी जिन्दा तस्वीरें कम छपी थीं
> वही बार-बार दीख पड़ता है रूपवान चेहरा जो
> लाशोंके पास अफसोसमें खड़ा था। (पृ. १०४)

समीक्षकोंने समकालीन कवितामें प्रहार, पर्दाफाश, असहमति, अस्वीकार, आक्रोश और विस्फोटके जुझारू तेवरोंको स्वीकार किया है। यह कहना अप्रासंगिक न

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १०४; डिमा. ८२; मूल्य : २२.०० रु.।

होगा कि कविकी विद्रोही चेतना एक ऐसी [illegible] मनोवृत्तिको जन्म देना चाहती है जो जनसामान्यको बुनियादी अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए यातनामय शोषित जिन्दगीसे टकरानेका साहस प्रदान कर सके। रघुवीर सहाय अच्छी तरह पहचानते हैं कि अत्याचारियोंके चेहरे खोजना मुश्किल हो रहा है क्योंकि 'जनता संगठित होकर आलोचना नहीं कर पा रही है। और बंदूक हाथसे चली गयी है।'

कविकी जनतंत्रीय समझ, जन-संघर्षकी पहचान, सामयिक चेतावनी और उत्पीड़नके रहस्योंका पर्दाफाश कुछ इस तरह कचोटक व्यंग्योंमें हुआ है कि कहींभी उसकी भाषा वैचारिकताको अपाहिज नहीं बनाती। उसकी सारी रचनाएं 'आत्महत्याके विरुद्ध' हैं तथा 'भुतही मुस्कान और रुग्ण रिश्तों' के खिलाफ हैं। हमारी आज की जिन्दगी राजनीतिके शिकंजेमें कसी हुई है। हिंसाको राज्याश्रय और क्षमादान मिल रहा है। दो स्तरोंपर जीना युगधर्म बन गया है। रघुवीर सहाय लिखते हैं—

हम मछलियां पकड़ते हैं क्योंकि उन्हें
डिब्बेमें बन्दकर बेचेंगे
डिब्बेमें बन्द मछली हमारे लोकतन्त्रका प्रतीक है।
(पृ. ३७)

परम्पराके बारेमें कविकी धारणा है कि 'मेरा सर्जनात्मक सुख तो यह जाननेमें है कि मैंने अपनेको कहांसे तोड़कर अपने लिए एक नयी बस्ती बसायी है।' हमारे पूर्वजभी अत्याचारियोंके गुमाश्ते रहे हैं। यह मुनाफाखोर सभ्यता जीवनके अर्थका संक्षिप्तीकरण कर रही है और मौतका मुआवजा सिर्फ पैसा होता है।

दुनियां ऐसे दौरसे गुजर रही है जिसमें
हर नया शासक पुरानेके पापोंको आदर्श मानता···
यह संस्कृति उसको पोसती है जो सत्यसे विरक्त है
···सावधान, अपनी हत्याका उसे एकमात्र साक्षी मत
बनने दो/एकमात्र साक्षी जो होगा वह जल्दी मार दिया
जायेगा। (पृ. ४९, ५१)

कविकी दृष्टिमें समकालीनता 'मानव-भविष्यके प्रति पक्षधरताका दूसरा नाम है।' इसलिए 'आनेवाला कल' अतीत, वर्तमान और भविष्यकी एक अटूट श्रृंखला है, जिसे जानना-पहचानना अनिवार्य है। रघुवीर सहायने द्वन्द्वात्मक इतिहासकी व्याख्या करनेवाले तथाकथित प्रगतिशीलताके छद्मको भी रेखांकित किया है जहाँ अपना कैरियर बनानेकी चिन्ता सर्वोपरि होती है—

इतिहासकी व्याख्या करता हूँ/हमदर्द सुनते हैं
[illegible] सोचते रहते हैं/ उस समय/
उन्हें मतलब नहीं कि वक्तने समाजके साथ क्या
किया है/वे जानना चाहते हैं कि वक्तने जो हालत
की है समाजकी/
उसमें वे सबसे ज्यादा क्या पा सकते हैं (पृ. ६६)

संकलनकी कई रचनाओंमें नन्हीं लड़की, असहाय लड़की, हँसती हुई लड़की, बूढ़ी औरत, अधेड़ औरत, अभिनेत्री आदिके कई चित्र मौजूद हैं जो जाहिर करते हैं कि 'हर स्त्रीके गर्भमें रहते हैं उसमें आनेवाले क्लेश।' चुपचाप बेबसी थामनेवाली, हारी-थकी, टूटती-जुड़ती औरत रघुवीर सहायकी रचनाओंमें आजकी त्रासदी और उत्पीड़नका सीधा अनावरण कर देती है। उसमें न तो रीतिकालीन कटाक्ष हैं न अतीन्द्रिय सौन्दर्य और न यौन-जन्य कुण्ठाएँ।

शिल्पके बारेमें एक शिकायत जरूर है कि कई जगह अलग-अलग टुकड़े अपनी असम्बद्धताका अहसास कराते हैं जिससे ठीक तालमेल नहीं बैठ पाता, केवल चौंकनाभर होता है। कुछ अंशोंमें मसीहाई मुद्राके सीधे उपदेश जैसे लगने लगते हैं जैसे—

सहना परायी पीड़ाओंको बार-बार / जीते रहनेका
अकेला उपाय है सहो···

बावजूद इसके, व्यापक संदर्भोंमें कविका रचना-संसार परिवेशगत सच्चाइयोंके साथ भारतीय जन-जीवन की गहरी समझसे जुड़ा हुआ है जिसकी अपनी अलग पहचान है, क्योंकि वह जीवंत अनुभवोंकी कविता है। वह हमें 'जीनेके कर्म' से जोड़ती हुई हकीकतका आइना बन जाती है। □□

आवश्यक सूचना

छपाई और कागजकी बढ़ती दरोंके कारण जनवरी १९८३ से 'प्रकर' के वार्षिक शुल्कमें निम्न संशोधन किया गया है, आशा है कृपालु पाठक और सदस्य अपना सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

वार्षिक शुल्क	**३०.०० रु.**
प्रति अंक	**३.०० रु.**
विदेशों में (समुद्री डाकसे)	**६१.०० रु.**
आजीवन सदस्यता	**३०१.०० रु.**

इस सूचनासे पूर्व प्राप्त शुल्कके अन्तर्गत पुरानी दरों के आधारपर पूर्व निर्धारित मास तक भेजे जायेंगे। नवीकरणके समय नयी दरोंसे शुल्क लिया जायेगा।

—व्यवस्थापक

भावाञ्जलि[1]

कवि : डॉ. ओंकारनाथ त्रिपाठी

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

कविकी इस द्वितीय काव्यकृतिमें ५१ गीत, कविताएं संगृहीत हैं। गीत, कविताओंकी यह संख्या कविकी उस सांस्कृतिक चेतनाकी परिचायक है, जिसका उल्लेख कविने 'अपनी बात' में किया है और जिसके अनुसार ५१ एक शुभ संख्या मानी जाती है। कविने ये ५१ भाव-प्रसून वाग्देवीके चरणोंमें स्तुतिपुरस्सर समर्पित किये हैं। 'वीणा-वादिनि, मति स्वर, लय दे'—इस आरंभिक गीतमें कविने कलाकी अधिष्ठात्री देवी माता सरस्वतीसे अपने जीवनमें सत्यं शिवं सुन्दम्की अवतारणाकी मंगल कामना की है। कविकी यह सांस्कृतिक चेतना इस कविता संग्रहमें आद्यन्त अन्त:सलिलाकी भांति प्रवाहित हुई है।

'अपनी बात' में कविने अपनी यह दृढ़ धारणा प्रकट की है कि इन गीतों, कविताओंका मूल्यांकन उस भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमिके आलोकमें ही संभव होगा, जो असत्पर सत्की भी जयका अमर संदेश देती है। कविकी ये कविताएं असत्पर सत्की विजयको तो नहीं, पर असत्के प्रति कविकी विरति, और सत्के प्रति उसकी अनुरतिको अवश्यही रेखांकित करती हैं। गीतोक्त 'सदसच्चाहमर्जुन' की भांति इन कविताओंमें सत् और असत्में व्याप्त एक स्वर औरभी है, वह है—स्मृतिमूला वियोग-रति, जो अपने परिवेशसे असन्तुष्ट और क्षुब्ध है तथा 'सत्' में ही अपनी शान्ति, धृति और आश्वस्ति पाती है। इस प्रकार ये कविताएं तीन भावभूमियोंसे उठी हैं, जिनमें पहली केन्द्रीय भावभूमि है स्मृतिमूला वियोग रति। सत् के प्रति अनुरति और असत्के प्रति विरति—ये दो भावभूमियां पार्श्ववर्तिनी हैं। वियोग रतिका केन्द्रीय प्रच्छन्न स्वर अनेक स्थलोंपर अत्यन्त मर्मस्पर्शिताके साथ स्फुटित हुआ है : कितने क्रौंच चढ़े बलि पथपर/आहत कितने हंस हुए हैं।' (पृ. ५५)। 'क्रौंच' प्रेमका और 'हंस' विवेकका प्रतीक है। व्याधने क्रौंच-वध किया था और क्रौंचीको व्याकुल देख कर महर्षि वाल्मीकिका शोक श्लोकमें प्रकट हो गया था—शोक: श्लोकत्वमागत:। इस पुराकथाको अपने संदर्भमें जोड़ते हुए कवि कहता है...'शोक बनता श्लोक अबभी। लीक कायल लोक अबभी।' (पृ. १०१) यानी हमारा रूढ़िग्रस्त समाज व्याधके समानही प्रेमके प्रतीक क्रौंचोंको निरन्तर मारता आया है और विवेक (हंस) की अवज्ञा करके उसे आहत करता रहा है। यह मर्म-वेदना कविके अनेक गीतोंमें अभिव्यक्त हुई है। 'एक छोटी जिन्दगी थी, वेदनाको लिख गई।' (पृ. ३३) 'देर की तुमने कमल, जल कुम्भियोंसे भर गया।' (पृ. ३९) 'स्वप्न, मैं तो मिट चला।' (पृ. ६६) आदि गीतोंमें ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रकारान्तरसे वियोग रतिही कहीं करुण-क्रन्दन कर रही है।

कविके अपने रूढ़िग्रस्त परिवेशकी विसंगतियों और विडम्बनाओंसे उत्कट वितृष्णा है। इससे उसे 'कर्कश वाणी के तीक्ष्ण दंश' मिले हैं। (पृ. ५९) कुछ पता नहीं कि इस परिवेशमें 'कहां न्यायका सूत्र छिपा है, निर्णयका आधार कहां है?' (पृ. ६९) और—

> "यहां भूल भटकाव गहरा बड़ा है,
> यहां वर्जनाओंका पहरा कड़ा है।
> उमंगोंकी मंजिल, श्मशानोंकी वस्ती,
> वितृष्णा यहां श्वास-प्रश्वास पाती।" (पृ. ७३)

"यहां तो कुशल प्रश्न 'श्लेषों' से खंडित/ यहां जिन्दगी शोक 'यमकों' से मंडित।" (पृ. ७४) हमारी सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार आदर्श-भ्रष्ट हो चुकी है कि "कैसे बढ़ पाये शिशु-अंकुर। अभिभावकही कंस हुए हैं।" (पृ. ५५)।

संभव है कि इन या इन जैसी पंक्तियोंमें कविकी जो विरति या वितृष्णा अभिव्यक्त हुई है, वह विशेष कारणों से न होकर सामान्य कारणोंसे हो। लेकिन जैसी तल्खी या तिक्तता उसकी इस विरतिमें प्राप्त होती है, वह सामान्य अनुभवोंकी प्रसूति नहीं हो सकती। कविने सामाजिक संदर्भमें अपनी जिन कुंठा-संत्रासकी अनुभूतियोंको उजागर किया है, उनमें इतनी तीव्रता और तिक्तता योंही नहीं आ गयी है। भोगे हुए यथार्थसे ही यह संभव हो पाता है और इसी कारण इन गीतोंमें इतनी मार्मिकता और प्रभविष्णुता आ पायी है।

---

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : १९४; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

'सत्' अर्थात् उदात्त जीवन-मूल्योंके प्रति कविका प्रेमानुराग असंदिग्ध है। वह 'श्रेयस प्रेयस वर सज्जित हों' अपना 'शिव सत्य ललित' पानेके लिए पर्युत्सुक है। (पृ. १३) वह असत् संसारसे विरल होकर भारतीय सांस्कृतिक चेतनाके अनुरूप अपना चिन्मय लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। वह सुख दु:खादिसे द्वन्द्वातीत होकर अपने आध्यात्मिक लक्ष्यकी ओर सदैव संचरणशील और अप्रतिहत गतिमान रहना चाहता है।

कुल मिलाकर कविका कथ्य जहां एक ओर यथार्थ की विसंगतियों, विडम्बनाओं और विद्रूपताओंको रेखांकित करता है वहां दूसरी ओर उदात्त भारतीय सांस्कृतिक जीवन-मूल्योंकी महत्ताको भी स्थापित करता चला है। यथार्थ और आदर्शकी ये दोनों भावभूमियां कविकी रति-विरतिजन्य मूल संवेदनाके संस्पर्शसे जीवन्त हो उठी हैं।

कथ्यकी अभिव्यंजना सशक्त एवं प्रौढ़ है। भाषामें चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, बिम्बात्मकता, लाक्षणिकता और व्यंजकताकी विशेषताएं प्राप्त होती हैं। 'जंग खाती डोर धनुकी' (पृ. ३३) में लाक्षणिकता, 'मेघ नभमें छा रहे हों/ पवन झोंके आ रहे हों/ पतझरोंकी भूमिका संग/ मैं नवल मधुमास ही हूं, (पृ. ६०) में चित्रात्मकता एवं बिम्बात्मकता, 'कहींपर विचरे कांचन मृग/ न भटकेगा यह अपलक दृग' (पृ. ४६) में व्यंजकता 'देरकी तुमने कमल, जल कुम्भियोंसे भर गया, (पृ.३६) में 'कमल' और 'कुम्भियों' के प्रतीक प्रयोग बानगीके तौरपर देखे जा सकते हैं।

इस संग्रहकी कविताएं जहां कविकी सांस्कृतिक चेतनाको उजागर करती हैं, वहां उसकी संस्कृतज्ञताकी परिचायकभी हैं। संस्कृतके एक सुभाषित—गच्छन्पिपीलिको याति शतयोजन शतान्यपि, अगच्छन्वैन्तेयोऽपि पदमेकं न गच्छति—को कविने हिन्दी कविताकी प्रकृतिके अनुकूल इतने सुन्दर ढंगसे ढाला है कि देखतेही बनता है। उक्त सूक्तिका छायानुवाद देखिये—चलनेका व्रत लेकर चींटी-चींटे सौ योजन चल जाते। बिन चले वेग-की मूर्ति गरुड़, क्या एक चरणभी हिल पाते।' (पृ. ६४)। □

वृत्त एक : बिन्दु अनेक[1]

कवि : वचनदेव कुमार

समीक्षक : डॉ. जगदीशचन्द्र 'जीत'

प्रस्तुत काव्य-संग्रहमें श्री वचनदेव कुमारकी ६१ छोटी-बड़ी कविताएं संगृहीत हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये कविताएं कविकी विभिन्न मन:स्थितियोंका परिचय कराती हैं, जिसकी झलक प्रत्येक रचनामें स्पष्टत: मिलती है। इस संग्रहको धर्म, दर्शन, समाज और व्यक्तिपरक रचनाओंका गुच्छ कहना अधिक समीचीन होगा।

साधारणीकरणका गुण प्रस्तुत संग्रहकी सबसे बड़ी उपलब्धि है। भाषा प्रसादगुण युक्त है और कविको इस पर सम्पूर्ण अधिकार है। कविने कहीं सपाटबयानीका प्रयोग किया है तो कहीं प्रतीक शैलीका, जो अच्छा लगता है। दोनों शैलियोंका सामंजस्य इस काव्य-संग्रह की प्रमुख विशेषता है। 'ओ महावीर', 'हर घरमें आ जाओ', 'कैसे चल सकता है देश', और 'कलाकार' शीर्षक रचनाएं सपाटबयानीके स्पष्ट प्रमाण हैं।

'तेरा नाम' संग्रहकी पहली रचना है जो कविकी प्रणय एवं भक्ति भावनाओंको ध्वनित करती है। कवि मात्र भक्ति-भावनाओंमें ही बहता रहा हो, ऐसी बात नहीं है। 'अश्रु अर्पण' कवितामें कविने अपने देश सम्बन्धी दु:खोंको निम्न पंक्तियोंमें व्यक्त किया है : 'जिस देशमें भरपेट भोजनके लिए/राशन नहीं/महज सर छुपाने के लिए/खुला आसमान न हो/उस देशमें/नारोंकी फसल बोयी जाती है/वादोंकी बरसात लायी जाती है।'

वास्तवमें, कविने बड़ा तीखा व्यंग्य किया है देशकी हालतपर। 'पूजा' शीर्षक रचनामें कविने आधुनिक स्वयंभू भगवानोंकी अच्छी खबर ली है : 'पर अब इस धरतीपर बहुत सारे/नये भगवान अवतरित हो चुके हैं।/वे असाधारण आदमी थे/ये असाधारण आदमीका ढोंग रच रहे रहे हैं।' (पृ. ४२)

वचनदेव कुमारको 'जीवन प्रवाह' के दिन प्रतिदिन होते जा रहे छोटे दायरेसे बहुत दु:ख होता है : 'हम सब/ घिर गये हैं स्वनिर्मित/छोटे-छोटे द्वीपोंमें/इसलिए/न वह

१. प्रकाशक : पारिजात प्रकाशन, डाक बंगला रोड, पटना-१ (बिहार)। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८०; मूल्य : २०.०० रु.।

पाते हैं जीवन-प्रवाहमें/न [illegible] को/ (पृ. ५२)

कवि देशकी दयनीय स्थितिसे अत्यन्त दुःखी है। इसकी स्पष्ट झलक 'कैसे चल सकता है देश' शीर्षक रचनामें पठनीय है: 'देश टूट रहा है/धर्मके नामपर/सम्प्रदायके नाम पर/उच्च वर्ग निम्न वर्गके नामपर/हिन्दु-मुसलमानके नाम पर/'ईसाई-सिखके नामपर/आदिवासी-गैरआदिवासीके नाम पर/क्षेत्रके नामपर/जातिके नामपर/भाषाके नामपर/खंड-खंड टूटा यह देश/कैसे चल रहा है भगवान जाने।' (पृ. ७२-७३)

निश्चय ही 'वृत्त एक: बिन्दु अनेक' भाषा, भाव और व्यंजनाकी दृष्टिसे सराहनीय है।

अंधेरोंका हिसाब

सम्पादक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

राजस्थानके शिक्षा विभागने सन् १९६७ ई. से 'शिक्षक दिवस प्रकाशन योजना' का श्रीगणेश किया था। गत पन्द्रह वर्षोंसे अनवरत जारी इस योजनाके अन्तर्गत प्रतिवर्ष शिक्षकोंकी रचनाओंके संग्रह ख्यातिप्राप्त रचनाकारों द्वारा संपादित होकर छपते आये हैं। 'अँधेरों का हिसाब' सन् १९८१ का कविता संग्रह है, जिसे सर्वेश्वरदयाल सक्सेनाने संपादित किया है। संग्रहका शीर्षक इसमें संग्रहीत 'बाँटा हुआ प्रकाश' (अखिलेश्वर) कविता से लिया गया है...'रोशनी बाँटनेसे पहले/आओ अँधेरों का/हिसाब करें।' 'अभी इतनाही' शीर्षकसे लिखे हुए 'संपादकीय' में सर्वेश्वरने लिखा है; 'कविता अंततः अँधेरोंका हिसाब है, क्योंकि उसीके सहारे उजालोंके रूप की खोज होती है। यों तो अपने समयमें अँधेरोंका हिसाब सभी कलाएँ, सभी ज्ञान-विज्ञान कमोबेश रखनेकी कोशिश करते हैं, लेकिन कविताका यह हिसाब रखनेका तरीका सबसे अलग है। क्योंकि कविता न तो 'जानना' है, न यकीन करना, न विचार करना। वह 'महसूस' करना है···अनुभव करना है।' कविताकी इस अनुभववादी व्याख्यासे सहमत हों या न हो, 'अँधेरोंका हिसाब' की बहुत-सी कविताएँ आश्वस्त करती हैं।

पिछले कई दशकसे यह धारणा बनी है, या बनायी गयी है कि अध्यापक-प्राध्यापक उच्चकोटिका सृजन-लेखन नहीं कर पाते। 'घटिया समीक्षाको तो नामही दे दिया गया...प्राध्यापकीय समीक्षा। प्रस्तुत संग्रहकी कुछ कविताएँ बहुत ताकतसे यह बात सिद्ध करती हैं कि 'अध्यापक' भी अच्छी कविताएँ लिखते हैं। उनका अनुभव-संसार सीमित हो सकता है लेकिन समकालीन यथार्थ के प्रति उनकी 'एप्रोच' सही है और रचनागत संप्रेषणमें किसी किस्मकी जटिलताका अभाव है।

'अँधेरोंका हिसाब' में संगृहीत कविताएँ आमतौर पर दो तरहकी हैं। एक ओर 'संकल्प' (मगरचंद्र दवे), 'सीढ़ीके डंडे' (जगदीशप्रसाद सैनी), 'वह भला आदमी' (भागीरथ भार्गव), 'वर्षभर बाद' (आनंद कुरैशी) आदि ढेरों कविताएँ मौजूदा राजनीतिक-सामाजिक व्यवस्था के प्रति गुस्सेकी कविताएँ हैं, दूसरी ओर 'बालकका गीत' (श्यामसुन्दर भारती), 'कह दो, क्या यह नहीं किया है' (कजोड़ीमल सैनी), 'काली पीठ' (गोपालप्रसाद मुद्गल), 'अबके बरस' (जनकराज पारीक) और 'बच्चे और बच्चे' (निशांत) आदि कविताओंमें 'मामूली आदमी' की मजबूरियों और मुश्किलोंको रेखांकित किया गया है। व्यवस्था-विरोधी गुस्सा कहीं भावुकतासे सचालित है, तो कहीं बौद्धिक समझदारीसे अनुशासित। चतुर कोठारी की कविता 'पहिचान' में गणतांत्रिक व्यवस्थाके अन्तर्विरोधोंको उभारनेके बावजूद 'मतपत्र' की शक्तिमें विश्वास व्यक्त किया गया है। 'बुलेट' की बजाय 'बैलट' में यह विश्वास कुछको पुराना बोध लगेगा, लेकिन यह वास्तविकता है कि औसतन मतदाता अभी 'मतपत्र' को भी गंभीरतासे नहीं लेता। सूखा, अकाल आदि न केवल राजस्थान अपितु पूरे देशके किसी-न-किसी हिस्सेके अनिवार्य अंग बन चुके हैं। इनका सबसे तीखा प्रभाव 'मामूली आदमी' पर पड़ता है। सबसे ज्यादह वही झेलता है। बरसात नहीं होती और शोषक शक्तियोंको अपना शिकंजा मजबूत करनेका अवसर मिलता है—

१. हाय हाय करते ऊसरको
इस बार बन्ने खुद चरेगा

---

१. प्रकाशक : शिक्षा विभाग, राजस्थानके लिए कविता प्रकाशन, बीकानेर। पृष्ठ : डिमा. ८१; मूल्य : ७.६८ रु.।

मवेशी नहीं चरायेगा।
उसकी नव-विवाहिता छिन्दो
जानती है
कि इस वरस सावन नहीं आयेगा।
(जनकराज पारीक, पृ. ७७)

२. बावड़ी सूखी पड़ी है
मांडणे धुंधला गये हैं
फिर महाजनकी बही
और बैंतके दिन आ गये हैं
(आशा शर्मा, पृ. ७६)

संग्रहकी गेय और छंदोवद्ध रचनाएं टुकड़ोंमें अच्छी हैं। 'संपादकीय' में सर्वेश्वरने लिखा है कि चयन करते समय मिलीं गजलों और गीतोंमें बासीपनही नहीं, काव्यात्मक दोषभी बहुत था (पृ. ११)। इसके बावजूद कुछ रचनाएं असरदार थीं, जिन्हें संकलित किया गया। बलवीर सिंह 'करुण', प्रेम मधुकर, अब्दुल मलिक खान, कुंदनसिंह सजल आदिके गीत और श्यामसुन्दर भारती तथा अजीज आजादकी गजलें प्रभावित करती हैं। अजीज आजादकी गजलके दो शेर उदाहरणके तौरपर देखे जा सकते हैं—

किस सलीकेसे मिटा देते हो लोगोंके निशां
जैसे बिस्तरसे कोई सलवटें मिटाता है।
(पृ. ८३)

ऐसे बच्चेको भला नींद कहां आयेगी
थपकियां देके जिसे भेड़िया सुलाता है।
(पृ. ८४)

कुछ कविताओंमें कच्चापन है, वर्तनीकी अशुद्धियां हैं। चिड़ियाका बहुवचन 'चिड़ियाएं' जैसे व्याकरण विरुद्ध प्रयोगभी हैं। ये कमजोरियां प्राय: उन कवियोंमें हैं, जो अभी बननेकी प्रक्रियामें है। यह देखना खासा दिलचस्प होगा कि हर वर्ष कितनी नयी प्रतिभाएं इन संग्रहोंमें स्थान पाती हैं और कितने नामोंकी पुनरावृत्ति होती है? यदि चार-पांच नयी प्रतिभाएं भी प्रति वर्ष सामने आती हैं, तो यह इस प्रकारके आयोजनकी उपलब्धि होगी। अच्छा हो कि अन्य प्रान्तीय सरकारेंभी इस संदर्भमें राजस्थान सरकारका अनुकरण करें और नयी अध्यापक-प्रतिभाओंको सामने आनेका अवसर दें। □

नशेकी खोजमें[1]

कवि : सोमदत्त बखोरी

समीक्षक : डॉ. लखनलाल सिंह 'आरोही'

'नशेकी खोजमें' मॉरिशसके हिन्दी कवि सोमदत्त बखोरीका यह तीसरा कविता-संग्रह है। संग्रहमें जून १९६८ से सितम्बर १९७६ के बीच लिखी पचास कविताएं हैं। इस संग्रहके पूर्व १९६७ में 'मुझे कुछ कहना है' और १९७१ में 'बीचमें बहती धारा' कविके दो कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इस कविता-संग्रहकी भूमिका में कविने पाठकोंसे आग्रह किया है कि 'वे ध्यानपूर्वक देखें कि मैंने क्या कहा है और कैसे कहा है।'···सारी काव्य-कला क्या और कैसेका सुन्दर समन्वय है।' इस प्रकार कविने अपनी रचनाकी कसौटी स्वयं निर्धारित कर दी है।

सोमदत्तकी कविताओंका संसार अत्यन्त विस्तृत है। कविने अपने रचना-संसारकी बुनावट अपने जीवनके व्यापक एवं विविधतापूर्ण अनुभवोंसे की है। कवि जिस संसारमें रहते हैं, उसे वे संवेदनसे जानते हैं---विवरण जुटाना उनका लक्ष्य नहीं रहा है और न यह कवि-कर्मही होता है। विचार और अनुभव जब अनुभूतिके तापमें गलकर रूप धारण करता है, तभी वह कविता कहलाता है और इसमें कोई संदेह नही कि सोमदत्तकी कविता अनुभूतिके तापमें द्रवित होकर तैयार हुई है।

आजका मनुष्य सभ्यताके यांत्रिक दंशको बुरी तरह भोग रहा है। 'दफ्तरका रिटायर्ड बाबू यांत्रिकता, अलगाव और व्यर्थताका दंश भोगते हुए कहता है 'मेरे लिए/जीवन दौड़ था/दौड़ता रहा/···समाजसे अलग पड़ा हूं/गत सालका कैलेंडर-सा / घरके एक कोनेमें टंगा हुआ!' कविके रचना-संसारपर परिवेशके दबावको 'खालीपनका संदेश' 'अनुभूतिका बोझ' जैसी कविताओंके परिप्रेक्ष्यमें महसूसा जा सकता है। कविने वर्त्तमान जीवनकी विसंगति 'उल्टी गंगा' में व्यक्त करते हुए तीखा व्यंग्य किया है: 'पर तरक्कीका तरीका/है बिल्कुल

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ ८०; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

'सीधा'/ बन जाना है/किसीका भतीजा।'

सोमदत्तकी सौन्दर्य-चेतनाने मध्ययुगीय प्रभावसे पूर्ण रूपसे मुक्ति प्राप्तकर ली है और 'श्रमसे ही सौन्दर्यका जन्म होता है'--इस चेतनाको 'एड़ीका पसीना' कविता में व्यक्त किया है : 'नर्त्तकीकी कोमल भाव भंगिमा/ आती नहीं आसमानसे टपककर / कोमलता पसीनेसे सींची जाती।' सोमदत्तकी कविताका एक पक्ष रूमानी भी है। 'पिनियन रायडर' में स्कूटरपर शानसे बैठी आधुनिकाको देखकर कविका रूमानी मन कचोट उठता है : 'दिल्लीकी आधुनिका/उसे देखते हुए / मन कभी न अघाता !' कविका देश-प्रेम उसके रोमांटिक मनका ही एक दूसरा आयाम है। कविको, अपने देशसे अनन्य प्रेम है : हूं मैं एक सुमन ऐसा / जो और कहीं/खिल न सकता !'

शताब्दियोंसे चन्द्रमा सौन्दर्यका अक्षयकोश था, परन्तु अन्तरिक्ष अभियानने इस मिथको निर्ममतापूर्वक तोड़ दिया। कविकी सौन्दर्य चेतना 'अपोलो--२' में आहत हो उठी है—'पाससे/चांदका मुखड़ा/चांदका टुकड़ा न रहकर/बन गया/चेचकका मारा।' 'द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलनका कवि सम्मेलन' में कविने कवियोंकी चाटुकारितापर व्यंग्य किया है : 'जोभी राग छेड़ता कोई/ था राग पुराना या राग दरबारी।' पर इस चाटुकारिता से सोमदत्तभी मुक्त नहीं है ! 'इन्दिरा' में उन्होंने भी राग दरबारीही छेड़ा है :--'प्रणाम है उनको मां भारती का जो अवतार है,/प्रणाम है उनको इस द्वीपका जो शृंगार है।'

संग्रहकी कविताएं जहां अनुभूतिसे सम्पन्न हैं, वहां शिल्पके स्तर कविने सपाटबयानीसे काम लिया है। कविता एक शिल्पभी है और कवि जब इस तथ्यको भूल जाता है, तभी वह सपाटवायनीका शिकार हो जाता है। कविने बिम्बोंकी भाषा छोड़कर वक्तव्यकी शैली अपनायी है। कविने 'क्या' के आग्रहमें 'कैसे' की उपेक्षा कर दी है जो कवि-कर्मका सही उदाहरण नहीं कहा जा सकता। ☐

नाटक : एकांकी

रंगनाथकी वापसी[1]

['राग दरबारी' का नाट्य रूपान्तर]

रूपान्तरकार : गिरीश रस्तोगी

समीक्षक : नर नारायण राय

'रंगनाथकी वापसी' श्रीलाल शुक्लके उपन्यास 'राग दरबारी' का गिरीश रस्तोगी द्वारा प्रस्तुत नाट्य रूपांतर है जिसकी प्रथम प्रस्तुति गिरीश रस्तोगीकी ही नाट्य संस्था 'रूपान्तर' द्वारा देवरियामें मुक्ताकामी रंगमंचपर १९७८ में प्रस्तुत की गयी। 'रूपान्तर' ने इस रूपान्तरके अन्यत्रभी कई प्रदर्शन किये हैं पर किसी अन्य संस्था द्वारा इसके प्रदर्शनकी सूचना उपलब्ध नहीं होती। कहानियोंके रंगमंचके समानान्तर इन दिनों उपन्यासोंके रूपान्तरकी भी एक परम्परा तैयार हो गयी है। अलबत्ता रूपान्तरोंका कारण अब यह नहीं बताया जाता कि हिन्दीमें अभिनेय नाटकोंका अभाव है। कुछ लोग अगर श्रेष्ठ कथा साहित्यका नाट्य रूपांतर करनेकी दिशा में अग्रसर हैं तो उसका स्वागत होना चाहिये, चाहे किसीभी रीतिसे, हिन्दी नाटक समृद्ध तो हो रहा है। समीक्ष्य नाट्य रूपान्तरको रूपांतरित करनेसे लेकर प्रस्तुत करनेतक का अनुभव और चिंतन गिरीश रस्तोगीकी विचारपूर्ण भूमिकामें मौजूद है। शिल्प और रचना

---

१. **प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १००; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।**

विधानमें रुचि रखनेवाले पाठकोंके लिए यह अंश उपयोगी साबित होगा।

'रंगनाथकी वापसी' देशव्यापी मूल्यहीनताके विभिन्न पार्श्वोंको प्रतिबिंबित करनेकी एक गंभीर कोशिश है। देशका निर्माण और पतन काफी हदतक देशकी शिक्षा व्यवस्थापर निर्भर है कि देशकी आगामी पीढीको किन परिस्थितियोंके लिए तैयार किया जाता है। मैकॉले साहबकी गुलाम तैयार करनेवाली शिक्षा पद्धति थोड़े बहुत हेर-फेरसे आजभी चल रही है। शिक्षाकी व्यवस्था में नीतिविषयक इतनी खामियां हैं कि नैतिक स्तरमें सुधारकी कहीं गुजाइंश नहीं दीखती। इतिहासमें एम. ए. करनेके बाद 'रिसर्च' करनेकी बात सोचता हुआ रंगनाथ एक दिन शहरसे अपने मामा श्री वैद्यनाथजीके यहां शिवपालगंज कुछ समय बितानेके ख्यालसे आता है। मामाजी के यहां रहते हुए उस छोटे-से गांवमें इतना कुछ घटित होता हुआ देखता है कि अपनी सारी शिक्षा-दीक्षा उसे बेकार-सी लगने लगती है। शिवपालगंज वस्तुतः भारतका दर्पण बन जाता है, उस भारतका जिसे हम गांवोंका देश कहते हैं।

वैद्यजी शिवपालगंजकी जानीमानी हस्ती हैं और इलाकेमें उनका दबदबा है। गांवकी तीन महत्त्वपूर्ण इकाइयों कॉलेज, कोऑपरेटिव और ग्राम-सभामें से कॉलेजकी मैनेजरी उन्हींके जिम्मे है। कोऑपरेटिवके वे अध्यक्ष हैं। ग्राम-सभाको वैद्यजी शुरूमें महत्त्व नहीं दे पाये इसलिए वह विरोधी दलके नेता रामाधीनके अधीन हो गयी। बादमें उन्होंने महसूस किया कि ग्राम-सभापर भी उनका कब्जा होना चाहिये तो अपने नौकर सनीचर (मंगलदास) को ग्राम-सभाके प्रधानके लिए खड़ा कर देते हैं, वह जीतभी जाता है। कोऑपरेटिवमें गबनके मामलेको लेकर होहल्ला होता है। एक बड़ी-सी आम सभामें एक बड़ा-सा नाटक रचकर वैद्यजी अध्यक्ष पदसे इस्तीफा देते हैं और उनका बड़ा बेटा बद्री वहीं अध्यक्ष चुना जाता है। कॉलेजमें प्रिंसिपल, खन्नासे काफी बिगड़े हुए हैं। खन्नाकी आजादखयाली व्यवस्थाको पसंद नहीं आती। काफी दिनोंसे कमीटी नहीं बैठी, नये मैनेजरका चुनाव हो, कॉलेजके घुटालोंका पर्दाफाश हो—मास्टर खन्ना, मालवीय, रामाधीन और वैद्यजीका बेटा रूप्पन मिलजुलकर इन मामलोंको राजनीतिक रूप देनेकी कोशिश करते हैं, उच्चाधिकारियोंतक दौड़ लगायी जाती है, दस गांवोंके लोगोंमें भ्रष्टाचारका प्रचार किया जाता है। वैद्यजी रुष्ट हो जाते हैं। लठैतों और बंदूकके सायेमें वे तुरंत कॉलेजकी नयी कमीटी बनाते हैं, खुद मैनेजर बनते हैं: यथास्थिति बरकरार रहती है, खन्ना पार्टीकी हार होती है। डिप्टी डाइरेक्टरके समक्ष प्रदर्शनके लिए एकत्र भीड़ उबाऊ प्रतीक्षाके बाद यह जानकर कि वे अब नहीं आने वाले, अपने घर लौट जाते हैं। मास्टर खन्ना और मालवीयसे जबरन उनके त्यागपत्रपर हस्ताक्षर कराकर कॉलेजसे निकाल दिया जाता है। वैद्यजी अपने पुत्र रूप्पनको अपने उत्तराधिकारसे वंचित करनेकी सार्वजनिक घोषणा करते हैं क्योंकि उसने अपने पिता बनाम सत्ताके खिलाफ शोषण और अत्याचारका साथ दिया, मास्टर खन्नाका साथ दिया। प्रिंसिपल इतिहासके मास्टरकी खाली जगहपर रंगनाथको लग जानेका प्रस्ताव देता है और विरोधी दलके साथ उसकी सहानुभूतिकी बातको वे लोग भूल जानेके लिए तैयार हो जाते हैं। लेकिन पूरे परिवेशसे उपज रहे घिनावनेपनसे रंगनाथ इतना ऊब चुका है कि प्रिंसिपलको फटकार बताकर अपने वापस लौटनेकी घोषणा करता है। यही है रंगनाथ की वापसी।

वैद्यजी जितनी ऊंची सैद्धान्तिक बातें करते हैं, भीतर से उतनेही खोखले हैं। सार्वजनिक संस्थाओंको वे न केवल निजी सम्पत्ति समझते बल्कि उसे एक लाभदायक व्यापारिक प्रतिष्ठानके रूपमें देखते हैं। इसलिए संस्थाएं उनकी विरासतमें चलती हैं। अपने बाद वे अपने बेटे को कोऑपरेटिवका अध्यक्ष बनाते हैं तथा कॉलेजके भावी-आगामी मैनेजरके रूपमें उसीको उत्तराधिकारी घोषित करते हैं। जनता चुपचाप देखने-भोगनेके लिए विवश है। कभी अगर विद्रोह होताभी है तो बद्री पहलवान और ठाकुर बलराम सिंहकी फौजी ताकत उन्हें दबानेके लिए पर्याप्त होती हैं। कूटनीति, दाँव-पेंच, और समझौतेकी राजनीति तो खैर है ही, नीच कुलकी बेलाके साथ वैद्यजी अंततः बद्रीकी शादी इसलिए मंजूर कर लेते हैं कि कोऑपरेटिव और कॉलेजके चुनावमें उसकी पहलवानी ताकत उनके साथ रहेगी और इस बातको यह रंग दिया जाता है कि वैद्यजीका परिवार ऊंच-नीच जाति प्रथा आदिके बंधनोंके खिलाफ प्रगतिशील मंच प्रस्तुत कर रहा हैं। थानेसे लेकर सदर मुकामतक के हुक्कामों तक उनकी पैठ है क्योंकि उन्हें प्रसन्नकर सकनेकी 'शक्ति' उनके पास है। यौन सम्बन्धोंकी अनैतिकता-नैतिकता विषयक मूल्यभी उनके अपने हैं: बाप-बेटोंमें इस विषयको लेकर

होनेवाली हुज्जत यह समझ[illegible] यही सिद्ध होता है कि जमाना आज वैद्यजीका या उन्हीं जैसोंका है, जिन्हें आज उनसे जूझना है। वे रंगनाथकी तरह मुहिमसे बैरंग वापस हो आते हैं, क्योंकि उनकी शिक्षा-दीक्षाही ऐसी नहीं हुई कि ऐसे संघर्षोंके लिए उन्हें एक सिपाहीकी तरह तैयार किया जा सके। शिक्षा और बौद्धिकता कायर पलायनवादी नपुंसकताभर बनकर रह गयी है। जनतंत्रका और प्रजातंत्रका अर्थ तथा मूल्य गयादीनने ठीक समझा है 'प्रजातंत्रका नया अर्थ है कि चूंकि चुनाव लड़नेवाले प्राय: घटिया आदमी होते हैं, इसलिए एक नये घटिया आदमी द्वारा पुराने घटिया आदमीको, जिसके घटियापनको लोगोंने पहलेसे ही समझ बूझ लिया हो, उखाड़ना न चाहिये। प्रजातंत्रकी इस नयी थ्योरीमें नया आदमी कुछ करनाभी चाहे तो क्या करेगा? कोई कुछ करने देगा?' शनीचराका ग्राम-सभा के प्रधानके चुनावमें विजयी होना इसका सबूत है और इब्सनकी इस धारणाकी यहां पुष्टि होती है कि प्रजातंत्र मूर्खोंके बहुमतका शासन है जिसमें उनकी भलाईकी बात सोचनेवाला एक सही आदमी 'जनशत्रु' करार दिया जाता है। सत्ता और राजनीतिभी आज पर्यायसे बन गये हैं। जिसके हाथमें सत्ता है, राजनीतिको वही अपनी लाठीसे हांके चलता है। वैद्यजीका क्या दोष?

इस रूपान्तरित नाटकमें अंक-दृश्य विभाजन नहीं है। पूरा नाटक खण्ड चित्रोंके रूपमें अलग-अलग दृश्य-योजनाओंमें घटित होता है। रंगनाथको यद्यपि सूत्रधार नहीं माना गया है, दर्शक और भोक्ता माना गया है पर नाटकके चरित्रसे अधिक वह सूत्रधार जैसाही लगता है। देशव्यापी मूल्यहीनताके जिस व्यापक चित्रको यहां इंगितोंमें प्रस्तुत करनेकी कोशिश की गयी है, वहां चरित्र प्रतीक बन जाते हैं, वर्ग बन जाते है। रस्तोगीजी ने अपनी भूमिकामें इसकी ओर इशाराभी किया है। रचना-विधान मुक्ताकामी शिल्पमें प्रस्तुत किया गया है जिसे वैद्यजीके दोतल्ले घरके आभास, एक चबूतरे और निकट बने पुलियाके सहारे प्रस्तुत किया जा सकता है। दृश्य परिवर्तनके लिए प्रकाशका उपयोग किया गया है। रंगोपकरणोंमें पोस्टर और कैलेण्डर मुख्य हैं। गिरीश रस्तोगीने लगभग साठ रंगकर्मियोंकी सहायतासे इस नाटकको प्रस्तुत किया है। यह संख्या किंचित चिंताजनक है, क्योंकि हर संस्थाके लिए यह आलेख उठाना आसान नहीं होगा। आलेखमें ज्यादातर संवाद मूल उपन्याससे यथावत् लिये गये हैं और घटनाओंको नये सिरेसे सजाने के लिए आवश्यक संवाद गढ़े गये हैं। 'नेपथ्य' का उपयोगभी इस नाट्यालेखकी एक विशेषता है जिसमें नाटकीयता उभरती है। नाटकका अंत उपन्यासके अंतसे भिन्न और रंगमंचीय प्रभावको ध्यानमें रखकर तैयार किया गया है। नाट्यालेखकी धुरी कॉलेज है और अन्य घटनाएं उसके इर्दगिर्द घटती हैं। ऊपरी तौरपर ग्राम-सभा, कचहरी, और कोऑपरेटिव यूनियन आदिसे सम्बद्ध प्रसंग फालतूसे दिख सकते हैं, पर उसके अभावमें राष्ट्रीय चरित्रको स्पष्टता और व्याप्ति नहीं मिल पाती। रंगमंचीय दृष्टिसे रूपान्तर सफल है, पर यह आलेख नाट्य संस्थाओंके लिए कठिन साबित हो सकता है।

नाट्य चिन्तनकी दिशामें अब काफी प्रगति हो चुकी है। लेकिन जैसाकि अपने रूपान्तरकी भूमिकामें डॉ. गिरीश रस्तोगीजीने लिखा है, रूपान्तरकी प्रक्रियाको लेकर अभीभी गंभीरतापूर्वक सोचने-विचारनेकी जरूरत है। रस्तोगीजीने जो संवाद शुरू किया है, नाट्य-चिन्तकों और रंग-दार्शनिकोंको उसे एक चुनौतीके रूपमें स्वीकार करना चाहिये तथा नाट्य-रूपान्तरोंकी आंतरिक प्रक्रिया पर सूक्ष्मतापूर्वक विचार विमर्श किया जाना चाहिये। विचार विमर्शके लायक रचनाएं सामने आ चुकी हैं। ▫

उत्तर मृच्छकटिक[1]

[एक और मिट्टीकी गाड़ी]

नाटककार : जि. जे. हरिजीत

समीक्षक : डॉ. अज्ञात

आपात्काल और 'दूसरी स्वतंत्रता' की अल्पावधि कुछ ऐसी कालसीमाएं हैं, जिन्होंने न केवल राजनीतिज्ञों को, वरन् साहित्यकारोंको भी क्षुब्ध और उद्वेलित किया। अपने क्षोभ और आक्रोशको कहीं सीधे, कहीं प्रतीकोंके माध्यमसे और कहीं ऐतिहासिक-पौराणिक आख्यानोंका उपयोग कर व्यक्त किया गया। नाटककार जि. जे.

---

१. प्रकाशक : शारदा प्रकाशन, भूलभुलैयां रोड़, महरौली, नयी दिल्ली-११०-०३०। पृष्ठ : १२८; क्रा. ८२; मूल्य : १७.०० रु.।

हरिजीतका "उत्तर मृच्छकटिक" एक ऐसाही नाटक है, जिसके मुख्य पात्र प्राचीन संस्कृत नाटक 'मृच्छकटिकम्' के हैं और जिसका परिवेशभी अतीतका ही है, किन्तु कथ्य दूसरी स्वतंत्रता और उसके बादकी परिस्थितियोंपर सटीक उतरता है।

'मृच्छकटिकम्' के हिन्दीमें कई अनुवाद "मिट्टीकी गाड़ी" के नामसे हुए हैं और यही नाम जन-भाषाके निकट होनेके कारण लोकप्रियभी रहा है। इसी दृष्टिसे लेखकने इसका उपशीर्षक दिया-"मिट्टीकी गाड़ी"-दूसरा भाग। "कदाचित् प्रकाशकने इस उपशीर्षकको बदलकर "एक और मिट्टीकी गाड़ी" कर दिया, जो पिछले दशकके "एक और सत्य हरिश्चंद्र", "एक और अभिमन्यु" और "एक और द्रोणाचार्य' नाटकोंकी नाम-परम्परामें एक नयी कड़ी बनकर जुड़ गया है। लेखकको अपनी रचनाके अपने नामकरणसे मोह होना स्वाभाविक है, परंतु कभी-कभी किसी दूसरे द्वारा किये गये नामकरण कुछ आकर्षक मुद्रामें सामने आ जाते हैं और उन्हें स्वीकारभी कर लिया जाता है। अपनी दो पुस्तकोंके दूसरों द्वारा, जो मेरे मित्र विद्वान् रहे हैं, किये गये नामकरण मैंने भी स्वीकार किये हैं।

"उत्तर-मृच्छकटिक" वहाँसे प्रारंभ होता है, जहाँ "मृच्छकटिकम्" समाप्त होता है अर्थात् एक राजसत्ताके बाद नयी राजसत्ताके अभ्युदय और उसके पतनके साथ एक तीसरी सत्ता, जो प्रथम राजसत्ताका ही "एक्सटेंशन" है, स्थापित होती और वहभी अपने अन्तर्विरोधों, अदूरदर्शिता और बुद्धिहीनताके कारण नष्ट हो जाती है। राजा पालक प्रथम सत्ता, आर्यक दूसरी सत्ता और पालकका साला शकार तीसरी सत्ताके संस्थापक हैं, किन्तु अन्याय, अत्याचार और आंतरिक संघर्षोंपर टिकी निरंकुश सत्ता कभी स्थायी नहीं बन पाती। इस नाटकमें आर्यक द्वारा प्राप्त दूसरी स्वतंत्रता इसलिए नहीं टिक पाती कि ईर्ष्या, स्वार्थ-लिप्सा और आत्म-छलनाके कारण सेनापति चंदनक, कोषपाल मैत्रेय तथा बौद्ध-विहारोंके कुलपति संवाहक, तीनों मिलकर शकारके षड्यंत्रके शिकार बनते और महाराज आर्यकका वध कर देते हैं। चंदनक अपनेको "महाराज" घोषित कर देता है, परंतु इसके पहले कि यह घोषणा प्रचारित हो, उसे शकार और उसके उद्दंड सथियों द्वारा पकड़कर देश निकाला दे दिया जाता है। चंदनक के अन्य साथियोंको भी देशसे निकाल दिया जाता है। शकार राज्य-परिवर्तनके साथ स्वयं महाराज बनने तथा आर्यकके शवको पैर मारकर उसकी "राजकीय सम्मान-के साथ अन्त्येष्टि" का आदेश देता है।

और फिर, शकारके उच्छृंखल सहयोगी न्यायाधीश को कालकोठरीमें डालते तथा कायस्थको न्यायाधीशकी जगह बैठाकर शकारके विरुद्ध चलनेवाले मुकदमेमें उससे उसके पक्षमें निर्णय घोषित करा देते हैं। यह जनता शासन द्वारा बैठाये गये आयोगोंको बलहीन और अर्थहीन बना दिये जानेकी साजिशका प्रतीकमात्र है। इसके बाद हत्या और बलात्कारकी पुनरावृत्ति आरंभ हो जाती है। चारुदत्तभी शकारके साथी और नगर-रक्षक वीरक द्वारा मारा जाता और वसन्तसेनाका अपहरणकर लिया जाता है। शकार कामोन्मत्त होकर वसन्तसेनाके साथ बलात्कार करे, इसके पूर्वही शकारका रथ पुष्पकरंडक उद्यानकी प्राचीरपर चढ़ गया और इस दुर्घटनामें वह अकाल मृत्युका ग्रास बन जाता है।

चारुदत्तका विश्वासपात्र और महाराज आर्यकका अमात्य शर्विलक वसन्तसेनाको मुक्त कराता और वीरकको हत्या या आत्महत्या करनेके लिए विवश करता है, तभी सूत्रधारके हस्तक्षेपसे यह असमंजसपूर्ण स्थिति घटित होने से बच जाती है।

पन्द्रह प्रवेशों (दृश्यों) में फैले इस नाटकके कई कार्यक्षेत्र हैं, यथा आर्यकका राजसभागार, कोषपाल मैत्रेयका घर, मंत्रणागार, पुष्पकरंडक उद्यान, न्यायमंडप, चंदनकका निवास, राजमहल, द्यूतशाला, बौद्ध विहार, चारुदत्तके प्रासादका उद्यान तथा राजप्रासादका ऊपरी प्रकोष्ठ। इतने कार्यक्षेत्रोंको किसी एक दृश्यबंध या सम्मिश्र मंचपर दिखा पाना सम्भव नहीं है, अत. प्रतीक सज्जा और आलोकप्रभाव या चित्रांकित परदों फ्लाटोंका उपयोग आवश्यक प्रतीत होता है। कथ्यकी दृष्टिसे नाटक जहाँ एक गहरी अर्थवत्ता और अन्तर्दृष्टिसे समन्वित है। वहीं शिल्पकी दृष्टिसे मंचके लिए दुस्साध्य है। पात्र-संख्याभी बहुत अधिक है। नाटकके लिए कमसे कम तीन स्त्री-पात्रोंकी आवश्यकता होगी, बशर्ते एक स्त्री-पात्र मैत्रेय-पत्नी और बहूकी दोहरी भूमिका कर ले।

प्रारंभमें सूत्रधारका आधुनिक उपयोग किया गया है, जो नाटकके चौदहवें और पन्द्रहवें प्रवेशमें कथ्यको समापनकी ओर ले जानेमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाहता है। नाटकमें पात्रोंको 'निश्चल' (फ्रीज) करके भी आधुनिक अभिनय-पद्धतिका निर्वाह किया गया है। इसीके साथ 'जनांतिक' (एक पात्रका दूसरेसे गुपचुप बात करना, जिसमें वह बात संबंधित पात्रके अलावा किसी अन्यको

न सुनायी दे) की पुरानी संवाद-पद्धतिको भी अपनाया गया है। विदूषक मैत्रेय तथा मैत्रेय और उसकी पत्नीके संवादों द्वारा हास्यकी योजनाभी की गयी है।

इस प्रकार नाटकमें आधुनिकता और प्राचीनताका सुष्ठु समागम हुआ है। कुछ स्थलोंपर प्रूफकी अशुद्धियाँ हैं, यथा अषाढ़ (आषाढ़, पृ. ९५), गलती (ग़लती, पृ. १६) आदि। कुछ अप्रचलित शब्दों यथा मुराड़ा (लुआठा, पृ. २०), दरकच। (कूचले जानेकी चोट, पृ. ४१), कार्यपुट (सनकी आदमी, पृ. ४६) आदि शब्दों का प्रयोग भाषा और परिवेशकी प्राचीनताके द्योतनके लिए किया गया प्रतीत होता है। परन्तु दूसरी ओर इसी प्रकारके प्रयासमें प्रयुक्त 'चिलगोजेकी औलाद' (पृ. ५०), 'कपड़ेसे बाहर होना' (पृ. ५५), आदि मुहावरे सही ढंगसे भाव-व्यंजना नहीं कर पाते।

प्रवेश १३ में एक बहूके साथ बलात्कारके दृश्यमें आधुनिक सेक्स-प्रधान नाटकोंकी गंध आती है, जिससे नाटककारको बचना चाहिये था।

कुल मिलाकर राजनीतिक व्यंग्य नाटकोंमें यह नाटक अपनी छाप छोड़ता है। ▭▭

चढ़त न दूजो रंग[1]

नाटककार : अमृतलाल नागर

समीक्षक : नर नारायण राय

'चढ़त न दूजो रंग' टेलिविजनके लिए लिखा गया स्क्रीन प्ले है जिसे नागरजीने फोटो-नाटककी सज्ञा दी है और रंग-नाटकसे उसे इस अर्थमें भिन्न माना है कि नाटकमें एकही सेटपर संवाद प्रस्तुत किये जाते हैं जबकि फोटो नाटक बदलते दृश्य प्रस्तुत कर सकता है, समयका अंतराल विश्वसनीय ढंगसे प्रस्तुत कर सकता है। लेकिन हमारे यहांके लोकनाट्योंमें ये विशेषताएं हैं तथापि यह तय बात है कि फोटो-नाटक और रंग-नाटककी तकनीकें पृथक् हैं।

समीक्ष्य कृति सूरदासके जीवन, चरित्र और व्यक्तित्व निरूपणके लिए लिखा गया नागरजीका फोटो-नाटक है जिसे लखनऊ दूरदर्शनके विशेष अनुरोधपर तैयार किया गया है। आलेखमें सूरदासकी बाल्यावस्थासे लेकर उनके वल्लभाचार्यसे दीक्षित होनेतक की घटनाओंको छोटे-छोटे चौदह दृश्योंमें प्रस्तुत किया गया है। दुष्ट राजाकी दुष्टतर सेना द्वारा उजाड़ दिये गये सीही ग्रामकी एक गलीमें दृश्य खुलता है और सूरदासकी झोंपड़ीपर आ टिकता है। भूखसे पीड़ित परिवार क्या सारा गांवही विवेक खो चुका है। भाइयोंके दुर्व्यवहार, माता-पिताके कष्ट और पारिवारिक कलहसे ऊबकर सूरदास घर छोड़ देते हैं? आंखोंसे अंधे सूरदास मनकी आँखोंसे राधाकृष्ण के दर्शन करते हैं, उनके निर्मल चित्तमें आराधना वास करती है। वे ही उसे मार्ग बताते हैं, उसके समक्ष आयी समस्याओंका समाधान करते हैं। इसलिए सभी सूरदास को दैवज्ञ मानते थे क्योंकि वह बहुत सारे उत्कट अज्ञात रहस्य बता देते थे। समय बीतता है। सूरदास रास्तेमें कृष्णको झूठा उलाहना देते हैं तो कीचड़में रातभर फंसे पड़े रहते हैं। सुबहमें एक युवक उनका उद्धार करता है। एक ठाकुरको उसकी खोयी गायोंका पता बता देते हैं तो वह चमत्कृत और प्रसन्न होकर सूरदासके रहन-सहनकी पूर्ण सुविधा व्यवस्था कर देते हैं। सूरदासके दिन सुखसे बीतने लगते हैं। दैवज्ञके रूपमें उनकी ख्याति फैल जाती है और वे हमेशा लोगोंसे घिरे रहने लगते हैं। भक्ति और आराधना धीरे-धीरे छूटती जाती है और दैव शक्ति भी क्षीण होती जाती है। राधाकृष्णके मानसिक दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। एक दिन सारी सुख-सुविधा छोड़कर विकल मन राधाकृष्णको फिरसे खोज पानेके लिए विदा हो जाते हैं। ऐश्वर्यमें भरम जानेकी सजा उन्हें एक तेली कई दिनोंतक कोल्हूमें जोतकर देता है। प्रायश्चित पूरा होनेपर राधा (आराधना) उसे मुक्ति दिलाती है और भटकते हुए सूरदासको वल्लभाचार्यसे मिलानेका सुयोग बनाती है। दीक्षा पाकर वे पूर्ण चैतन्य होते हैं और ईश्वर भजन-कीर्त्तनमें तल्लीन हो जाते हैं।

इस फोटो-नाटककी रचना नागरजीने बड़ी तल्लीनता से की है इसलिए भावोद्रेककी जो क्षमता इस रचनामें मौजूद है वह कमही देखनेमें आती है। बादमें लेखकने अपने उपन्यास 'खंजन नयन' में अपनी बातें विस्तारसे कही हैं। समीक्ष्य कृति यद्यपि छोटे-छोटे दृश्योंसे बनी है पर हर दृश्यका अपना प्रभाव है और उनका कुल प्रभाव भी। तनिक-सा प्रमाद होनेपर सूरदासका प्रभुसे विलग

---

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : ५५; का. ८२; मूल्य : १०.०० रु.।

हो जाना, ठाकुर द्वारा दिए ऐश्वर्यमें कुछ समयके लिए डूब जानेपर कोल्हूमें जोता जाना और आराधनासे विलगाव यह स्पष्ट करता है कि 'लघुता ते प्रभुता मिले, प्रभुता ते प्रभु दूरि'। आत्मसमर्पणके बिना भक्ति पूर्ण नहीं हो पाती और मायामें लिपटा जीव ईश्वरोन्मुख नहीं हो सकता। सूरदासपर अपनी इस छोटी-सी रचना द्वारा नाटककारने गहरी बातें कहनेकी कोशिश की है। सूरदासको इस दृष्टिसे परखनेकी पहली कोशिशभी नागरजीकी ही है। सूरदासका जीवंत और प्रेरक चरित्र प्रस्तुत किया जा सका है। रचना फोटो-नाटकके शिल्पपर खरी साबित होती है। इसके पूर्व रेडिया रूपकोंके दो-तीन संग्रह नागरजीके प्रकाशित हैं। यह शायद उनका पहला फोटो-नाटक है। एक अच्छी और सार्थक रचना प्रस्तुत करनेके लिए लेखक बधाईका पात्र है, होड़की इस जिन्दगीमें यह रचना आत्म-साक्षात्कारकी ओर किसीको भी उन्मुख करेगी। □□

अध्यात्म मार्ग

सम्बोधि[1]

मनका कायाकल्प[2]

लेखक : युवाचार्य महाप्रज्ञ (मुनि नथमल)
समीक्षक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित

जैन आचार्य तुलसीजीके शिष्य मुनि नथमलजी, जो अब युवाचार्य महाप्रज्ञके रूपमें ख्यात हैं, के द्वारा लिखित 'सम्बोधि' का यह तीसरा संस्करण है। युवाचार्य महाप्रज्ञके द्वारा लिखित हिन्दी-अंग्रेजीकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी रचनाएं उनके विपुल ज्ञान और उनकी अनुभव-समृद्धिकी परिचायिका रही हैं। मृदु-मधुर शब्दावलीमें जीवनके गहन तत्त्वोंको वे जिस मर्मग्राही रीतिसे प्रस्तुत करते हैं वह सहजही शीलके प्रवर्तन और मनुष्यके मनके मलापनोदनमें समर्थ हैं। जैन धर्मसे गृहीत उपदेशों और सिद्धान्तोंको धर्म-निरपेक्ष रूपमें प्रस्तुत करते हुए वे मनुष्य मात्रके लिए उपयोगी जीवन-दर्शनका निर्माण करते हैं। सरल भाषामें कही गयी गहन और तात्त्विक बातोंको भी कथात्मक शैली और आत्मीयतापूर्ण वचन-भंगिमाके कारण पाठकके लिए ग्राह्य बनाने और उसके अन्तर्तममें गूढ़से गूढ़ चिन्तनको भी अपनी सरल व्याख्याओं और जीवनानुभूतियोंके सहारे उतार पानेमें युवाचार्य महाप्रज्ञकी दक्षता अप्रतिम है। 'सम्बोधि' भी उनके इसी कौशल्यका एक प्रमाण है।

जैनधर्मके साथ प्रागैहासिक कालसे सम्बन्धित सम्बोधि और कुछ नहीं, वस्तुतः आत्म-मुक्तिका मार्ग है जिसकी प्राप्ति ज्ञान, दर्शन और चरित्र-बोधिके माध्यम से होती है। इन तीनोंके समवायसे ही आत्ममुक्ति संभव है। इसकी संभवनीयताका सीधा सम्बन्ध आत्मकर्तृत्वसे है। 'सम्बोधि' में उसी आत्म-कर्तृत्वको लक्षित कराया गया है। मनोनुशासनके लिए जिस योग-प्रक्रियाकी आवश्यकता हैं उसे श्रीमद्भगवद्गीताकी शैलीमें प्रस्तुत करते हुए 'सम्बोधि' की रचना की गयी है। १६ अध्यायोंमें संस्कृतमें मूल श्लोक देकर उनकी हिन्दीमें मार्मिक व्याख्या की गयी है। मंत्रासार श्रेणिकका पुत्र मुनि मेघकुमार 'सम्बोधि' में श्रीमद्भगवद्गीताके अर्जुनकी भूमिकामें प्रस्तुत है। संवादात्मक शैलीमें सरलता और मौलिकताके साथ भगवान् महावीरकी वाणीको लेखकने नये नियोजन के साथ अपनी वाणीमें उतार लिया है। साधनाकी भूमि

---

१. प्रकाशक : तुलसी अध्यात्म नीडम्, जैन विश्व भारती, लाडनूं, चुरु (राजस्थान)। पृष्ठ : ३०+४४६; डिमा. ८१; मूल्य : ६०.०० रु. (सजिल्द)।

२. प्रकाशक : उपर्युक्त। पृष्ठ : २२६; डिमा. ८२; मूल्य : १६.०० रु. (सजिल्द)।

में क्लीब बने मेघकुमारका उद्बोधन किया है भगवान् महावीरने, जैसे समर-भूमिमें भगवान् कृष्णने स्रस्तधनु अर्जुनको प्रबोध दिया था। उसी प्रबोधनके लिए युवाचार्यने १६ अध्यायोंमें ७०३ श्लोकोंमें आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, भगवती, ज्ञाताधर्म-कथा, उपासकदशा, प्रश्नव्याकरण, दशाश्रुतस्कंध आदि आगमोंसे सार ग्रहण करके इस ग्रन्थका प्रणयन किया है। १६ अध्यायोंमें क्रमशः स्थिरीकरण, सुखबोध, पुरुषार्थ-बोध, सहज-आनन्द, साधन-बोध, उद्बोधन, आज्ञावाद, बंधमोक्षवाद, मिथ्या-सम्यक्-ज्ञानवाद, संयतचर्या, पश्यत्ता, हेय-उपादेय-बोध, साध्य-साधन-संज्ञान, कर्मबोध, अकर्म-बोध तथा मनःप्रसादका विवेचन किया गया है और अन्तमें परिशिष्टमें क्रमशः 'योग : एक मीमांसा' तथा 'सम्बोधिके आगमिक आधार स्थल' शीर्षकसे विस्तृत रूपमें योग तथा आधारभूत स्थलोंका स्पष्टीकरण दिया गया है। परिशिष्टभी ग्रन्थके मूल-भागके समानही महत्त्वपूर्ण, ज्ञानवर्धक और पठनीय है। सम्पूर्णतः जीवन-सत्यकी उपलब्धिमें सहायक है, अतः उपादेय और मननीय है।

'सम्बोधि' के समानही उपादेय और महत्त्वपूर्ण पुस्तक है 'मनका कायाकल्प'। प्रस्तुत पुस्तकमें युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा प्रेक्षाध्यान शिविरमें दिये गये १८ प्रवचनों का संग्रह है, जिन्हें क्रमशः 'लोचन' और 'आत्मलोचन' शीर्षकके अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है। जयाचार्य द्वारा निर्दिष्ट पद्धतिपर इस ग्रन्थमें मनका कायाकल्प किया गया है। परम आत्माके साथ तादात्म्यका अनुभव और आराधना उसका साध्य है। सहज-सरल भाषामें कथात्मक एवं संवादात्मक प्रश्नोत्तर शैली अपनाकर युवाचार्यने आधुनिक मनुष्यके विकल मनको स्थिर और दृढ़ करनेके उपायोंका निर्देश दिया है। प्रवचनके आरंभमें 'चौबीसी' तथा 'आराधना' से मूल पाठ देकर संकेतिका दी गयी है और प्रवचनके मूल तत्त्वको प्रमुख कथनोंमें प्रस्तुत किया गया है। युवाचार्य आजकी समस्याओंसे उत्पन्न मनुष्य की व्यग्रता और विकलताको लक्षित करके चले हैं और अपने विवेचनको उनसे जोड़कर प्रवचनोंको प्रासंगिकता प्रदान करते रहे हैं। उनका विवेचन सूक्ष्म विश्लेषणपरक जिज्ञासा जागृत करनेवाला और आश्वस्तिकर है। जीवन की छोटीसे छोटी घटनाको भी वे ज्ञानोपदेश-लाभके लिए बड़े सहज ढंगसे चुन और गुन लेते हैं। साधकों और कवियोंके कथन उनकी वाणीसे प्रसंगतः स्फुरित होते रहते हैं। परिणामतः पाठक या उनके प्रवचनोंका श्रोता गूढ़ गंभीर विषयोंका भी सरलतासे आकलन करता चलता है। वस्तुतः ये प्रवचन मनुष्यको जीवनी-शक्ति प्रदान करते हैं। इनका हार्दिक स्वागत। ▭▭

व्यक्ति : व्यक्तित्व

आपका व्यक्तित्व[1]

लेखक : ऋषि गौड़

समीक्षक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा

'आपका व्यक्तित्व' पुस्तक हाथमें आतेही लगता है कि हमें मनोविज्ञान या समाजशास्त्रकी कोई गंभीर और दुरूह पुस्तक पढ़नेको मिल गयी है, लेकिन युवा ऋषि गौड़ द्वारा लिखित पुस्तक पढ़कर एक बारगी जो सुखद अनुभूति हुई, उसका कारण शायद यही है कि 'आपका व्यक्तित्व' बेहद रोचक है एवं प्रामाणिक अध्ययनके बाद लेखकने इसे लिखा है।

'व्यक्तित्व' - एक ऐसा तत्त्व है, जिसका निर्माण व्यक्ति तो करताही है, साथही कुछ कारण प्रकृति-प्रदत्त भी होते हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने किसी प्रकारका

---

१. प्रकाशक : हिन्दी साहित्य निकेतन, बिजनौर (उ. प्र.)। पृष्ठ : १२६; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।

आडम्बर न रखते हुए व्यक्तित्वकी सरल और सर्वसुलभ बातें लेकर किसीभी व्यक्तिके अन्तः एवं बाह्य व्यक्तित्व के आकलनकी कुंजी पाठकको दे दी है।

ज्योतिष, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और सबसे बढ़कर जनश्रुतिको आधार बनाकर श्री ऋषि गौड़ने 'व्यक्तित्वकी परख' करनेके जो मानक निर्धारित किये हैं, वे ऐसे हैं, जिन्हें संभवतः अधिकांश व्यक्ति जानते हैं, फिरभी लेखकके प्रस्तुतीकरण एवं भाषा-शैलीकी रोचकता के कारण उनमें सहज प्रेषणीयता एवं आकर्षण उत्पन्न हो गया है।

पुस्तकको लेखकने दो खण्डोंमें रखा है, जिनमें प्रथम खण्ड व्यक्तित्वके विविध उपकरणोंकी सूक्ष्म विवेचना प्रस्तुत करता है, तो दूसरा खण्ड प्रख्यात आचारशास्त्री स्वेट मार्टेनकी शैलीपर लिखा गया लगता है, जिसमें व्यक्तित्वके व्यावहारिक पक्षको लेखकने विवेचित किया है। पुस्तकका मूल वस्तुतः प्रथम खण्डमें ही हैं, दूसरा खण्ड तो उसका प्रतिफलन मात्र ही लगता है।

'आपका व्यक्तित्व'—शरीरके विभिन्न अंगोंकी बनावट, उनकी गति, क्रियाकलाप एवं आकार-प्रकारपर नयी बातोंकी जानकारीसे पूर्ण है। आप सभी अभिवादन करतेही हैं और दूसरोंके अभिवादनका उत्तरभी अवश्य देते हैं, बस, अभिवादन कब, कैसे और किस मुद्रामें करते हैं, साथही अभिवादनका उत्तर कैसे देते हैं, इसीसे आपका व्यक्तित्व एवं चरित्र नापा जा सकता है। प्रणाम कीजिये या फिर सलाम, हर बातमें छिपा है आपका व्यक्तित्व, जिसे परखनेका ढंग ऋषि गौड़ने बताया है! यों, हर किसीका ढंग अलग होता है, फिरभी 'व्यक्तित्व' की सूक्ष्म पकड़ इस सूत्रसे भी की जा सकती है।

'आंखें' सचमुच आदमीके मनका दर्पण होती है, लेकिन पलकोंका झपकना, पुतलियोंका घूमना, दृष्टिकी गति और आंखोंकी बनावटभी व्यक्तित्वकी परखके उपकरण है, यह रोचक तथ्य 'आपका व्यक्तित्व' से मिला है। आप जब इस पुस्तकको पढ़ेंगे, तो जरूर देखेंगे कि आपकी आंखें अनारकी कली जैसी हैं या मछली जैसी और तब आप अपने गुणोंका मिलान करके अपने 'व्यक्तित्व' की परख कर सकेंगे।

इसी क्रममें मुखभी व्यक्तित्वका इंचीटेप है। होंठ, दांत, जीभ, कपोल और मस्तक, सभी किसी-न-किसी रूपमें आपके व्यक्तित्व एवं चरित्रकी सूचना देते हैं, जिससे कोईभी पारखी आपके व्यक्तित्वको जान सकता है। इसी प्रकार 'वाणी' यानी बोलचालका ढंग, शब्दोंका उच्चारण, स्वरकी तीव्रता या हल्कापन आपके व्यक्तित्व का ज्ञान कराते है, इस बातको ऋषि गौड़ने बेहद रोचक ढंगसे कहा है, 'जो व्यक्ति तीव्र स्वरमें बोलते हैं, वे या तो बहरे होते हैं अथवा दूसरोंका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति किसीकी बातको सुनना पसन्द नहीं करते, वरन् अपनी बातको ऊंचा समझ कर उसे दूसरोंपर थोप देते हैं ऐसे व्यक्ति अल्पज्ञानी एवं आत्मप्रदर्शनकारी होते हैं।' (पृष्ठ ३७) इस कथन से क्या आप किसी नेताके व्यक्तित्वका परिचय नहीं प्राप्त करते ? वस्तुतः बोलना आदमीके सारे चरित्रको उजागर कर देता है। लेखकका कथन बेहद सटीक है 'अपने सिद्धान्तों और आदर्शोंका बखान करने वाले व्यक्तियोंमें मैंने उन्हीं गुणोंका अभाव पाया है। ऐसे व्यक्ति आत्मप्रदर्शनकारी एवं बातूनी होते हैं। वे सदैव अपनेको श्रेष्ठ समझते हैं।' (पृष्ठ ४३)।

ऋषि गौड़की इस पुस्तकका परिच्छेद 'हास्य, रुदन एवं क्रोध' सर्वाधिक महत्त्वका मुझे लगा है। संस्कृत-साहित्य शास्त्रमें हास्यके अनेक प्रकार वर्णित हैं, लेकिन इस पुस्तकमें हँसनेके ढंगका जिस रीतिसे विश्लेषण हुआ, वह मौलिक और तर्कसंगत भी है। हंसनेके साथ-साथ रोनेको भी व्यक्तित्व-विश्लेषणमें सहायक सिद्ध करते हुए लेखकने सर्वथा नयी बात कही हैं। एक स्थिति विवेचनीय हैं—'कुछ व्यक्ति हिचकियां ले-लेकर रोते हैं। ऐसे व्यक्ति बालसुलभ प्रकृतिके होते हैं। उनमें सहन-शीलता कम होती है। वे इतने सरल व भावुक होते हैं कि किसी भी दुःखको सहन नहीं कर पाते।' (पृ. ५१)

इसी प्रकार ग्रीवाकी बनावट, घुमाना और आगे-पीछे करनाभी 'आपका व्यक्तित्व' बता सकते हैं। हस्त-गति पदचाल आदिको लेकर जो निष्कर्ष लेखकने दिये, वेभी निश्चयही प्रामाणिक हैं। प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी की पदगतिसे उनकी जागरूकता, दृढ़ता और लक्ष्य प्राप्ति की धुन जैसे निष्कर्ष स्वयंसिद्ध हैं ही। (पृष्ठ ६९)

'आगन्तुक' अध्यायको मैं इस पुस्तककी विशेष खूबी मानता हूं, क्योंकि आजके कर्म-संकुल जीवनमें हमारा व्यक्तित्व आगन्तुक बनने और किसीका स्वागत करनेमें ही व्यस्त रहता है, अतः यह एक ऐसा मानक है, जो हमें प्रभावित करताही है।

आप किसीके घर या दफ्तरमें जब मिलने पहुंचते हैं, तब आपकी क्रियाएं आपके व्यक्तित्वका पता मेजबानको

कैसे दे देती हैं, इसका [illegible] सहजही हो जायेगा। आप मिलनेमें पूर्व समय निश्चित करते हैं या नहीं, दरवाजेपर दस्तक देते हैं या नहीं, कैसे चलकर दफ्तर या ड्राइंग-रूममें पहुंच जाते हैं, कैसे मिलते और बैठते हैं, कहां और कब बैठते हैं, कैसे, कितना और कब बोलते हैं—आदि स्थितियोंका सूक्ष्म विश्लेषण करके लेखकने 'व्यक्तित्व परख' के मानक स्थापित किये हैं। एक स्थितिका विश्लेषण देखिये—'जो व्यक्ति आपके सामने रखी मेजके दाईं या बाईं ओर बैठते हैं, वे आपके प्रति निष्ठा एवं सम्मानकी भावना रखते हैं। ऐसे व्यक्ति सज्जन, विनम्र और सहयोगी प्रकृतिके होते हैं।' (पृष्ठ ७६)

ठीक इसी अध्यायकी भांति 'अतिथेय' (मेजबान) शीर्षक अध्यायभी व्यावहारिक आचारशास्त्रपर आधारित है और उसके सूत्रोंसे व्यक्तित्व एवं चरित्रका आकलन कैसे संभव है, यह लेखक रोचक शैलीमें बताता है। कोई आता है, तो आप कैसे मिलते हैं, कैसे बिठाते हैं, कहां बिठाते हैं, क्या खिलाते हैं और कैसे बातचीत करते हैं—आदि मानकोंसे आपका व्यक्तित्व परखा जा सकता है।

खाने-पीने तथा पहनने-ओढ़नेके सलीकेसे भी आपके व्यक्तित्वकी झलक मिल जाती है। यहां विश्लेषणकी सूक्ष्मता देखतेही बनती है—'जो लोग खानेके बाद कुल्ला नहीं करते अथवा कुल्ला करनेके बाद अपने हाथोंको वस्त्रों या मुंहको आस्तीनसे रगड़कर साफ कर लेते हैं, वे जल्दबाज, लापरवाह और असभ्य होते हैं। ऐसे व्यक्ति किसीके महत्त्वको नहीं समझते। उनमें कामसे बचनेकी भावना अधिक होती है।' (पृष्ठ ६३) यह सूक्ष्म पर्यवेक्षण छोटीसे छोटी बातको भी नहीं छोड़ता! जरा देखिये—'कुछ व्यक्ति ऐसेभी होते हैं जो गिरी हुई चायभी पी लेते हैं। उनको मैंने मितव्ययी पाया है। वे छोटीसे छोटी वस्तुको उपयोगी समझते हैं, उसे व्यर्थ नहीं करते।' (पृष्ठ ६५)

और सिगरेटको व्यक्तित्वसे लेखक जब जोड़ता है, तो उसके सूक्ष्म विश्लेषणकी दाद देनीही पड़ती है—'सिगरेट पीनेके बाद जो व्यक्ति उसका बचा हुआ टुकड़ा बिना बुझाए ही फेंक देते हैं, वे लापरवाह और अदूरदर्शी होते हैं···आपने ऐसे व्यक्तियोंको भी देखा होगा, जो सिगरेट पीनेके बाद उसके टुकड़ेको जमीनपर फेंककर उसे पैरोंसे मसल देते हैं। ऐसे व्यक्ति तेज स्वभावके होते हैं। उनमें अहंकार, उपेक्षा व स्वार्थकी भावना अधिक [illegible] होती है। वे अपने शत्रुओंको पूरी तरह कुचलना जानते हैं। (पृष्ठ ६७)

इसी प्रकार वेशभूषा तथा रहन-सहनका भी गहरा एवं सूक्ष्म विश्लेषण लेखक इस पुस्तकमें करता है और व्यक्तित्वकी परखके अनूठे सूत्र पाठकोंको देता चलता है।

'आपका व्यक्तित्व'के दूसरे खण्डका संबंध मेरी दृष्टिमें उन आचार-विचारोंसे है, जिनका ज्ञान हमारे व्यक्तित्वको पूर्णता दे सकता है। 'दूसरोंसे कैसे व्यवहार करें'—अध्याय वस्तुतः आचारशास्त्रपर आधारित है, लेकिन प्रस्तुतीकरण तथा भाषा-शैलीकी मौलिकताके कारण वह लेखकके महत्त्वको सूचित करता है। इस अध्यायमें सफल व्यक्तित्वके सूत्र संयोजित करके लेखकने सामाजिक दायित्वका निर्वाह किया है, यह मैं मानता हूं।

लेखकका आत्मविश्वास इसके शब्दोंसे जैसे पूरा पड़ रहा है 'यदि आप उन्नति करना चाहते हैं तो महत्त्वाकांक्षी बनिये। वर्तमानसे सन्तुष्ट होकर एकही स्थानपर मत ठहरिये। आप जिस स्थितिमें हैं, उससे ऊंची स्थिति में पहुंचनेका प्रयत्न कीजिये। याद रखिये, उन्नतिकी कोई सीमा नहीं है, कर्मठ और महत्त्वाकांक्षी लोगोंके लिए सफलताके दरवाजे खुले रहते हैं। (पृष्ठ-११६)

हर दृष्टिसे एक प्रेरक और सुन्दर कृति है—'आपका व्यक्तित्व', जिसका स्वागत हर कोई करेगा। ▭

यात्रिक

लेखिका : शिवानी

समीक्षक : डॉ. कमल सिंह

श्रीमती गौरा पन्त शिवानी कथा-साहित्यमें प्रतिष्ठा प्राप्त लोकप्रिय लेखिका है। भाषा-शैलीमें आकर्षण, सरसता एवं व्यंग्यार्थके कारण हिन्दीमें वे अपनी एक अलग पहचान रखती हैं। वही पहचान 'यात्रिक' में भी बराबर बनी हुई है। 'यात्रिक' में ग्यारह यात्रा-वृत्त हैं। शिवानी अपने पुत्रकी बारात लेकर इंगलैंड गयी थीं। इस यात्रामें उनके साथ जो बीती, उन्होंने जो देखा, उन्हें जो अनुभव हुआ, उन्हींको ग्यारह वृत्तोंमें साहित्यिक रूप देकर 'यात्रिक' में संगृहीत कर दिया है।

'यात्रिक' नामसे यात्रा-वृत्तान्तोंकी पुष्टि होती है। किन्तु इनमें गद्यकी एकाधिक विधाओंके तत्त्व उपलब्ध हो जाते हैं। पढ़ते समय कहीं संस्मरणका सा आनन्द आता है, तो कहीं रेखा-चित्रोंके माध्यमसे विभिन्न बिम्ब उभर कर मानस-पटलपर छा जाते हैं। कहीं यात्रा-विवरणकी अनुभूतियां हृदयमें अनेक उत्कण्ठाएं भर देती हैं, तो कहीं रिपोर्ताजकी यथातथ्यता और मार्मिकता सहजही प्रभावित कर लेती हैं।

'यात्रिक' में कतिपय अनूठी घटनाओंकी अभिव्यक्ति हुई हैं। किंतु मात्र घटनाओंका विवरण यहां नहीं है। अपनी सम्पूर्ण यात्रामें से मार्मिक प्रसंग और मार्मिक भावों की सबल अभिव्यक्ति करनेमें लेखिका पूर्ण सफल रही है। बारीकसे बारीक भावको बड़ी सबलता एवं मर्म-स्पर्शिताके साथ व्यक्त किया है। अपने पुत्रकी बहूको लेकर लौटते समय अन्तिम यात्रा-वृत्तमें शिवानीकी शहरी अनुभूति यहां द्रष्टव्य है—"कुछही दिन पूर्व हबीब पेंटरसे खुसरोकी ये पंक्तियां सुनी थीं :

काहेको ब्याही बिदेश रे लखि बाबुल मोरे।
भइयोंको दीन्हे महल अटरिया
हमको किया परदेश रे
लखि बाबुल मोरे

किसीकी पली-पलायी पुत्रीको मैं सात समुद्र पार लिये जा रही थी, इसीसे स्वदेश लौटनेका उत्साहभी एक क्षण को म्लान हो गया था। जिसने स्वयं पुत्रीको विदा किया हो, वही इस विदाकी व्यथाको समझ सकता है।" (पृ. ६१-६२) इस प्रसंगको पढ़कर शकुन्तलाको विदा करनेवाले कण्व ऋषिकी व्यथा याद हो आती है!

भारतीय जन-मानस एक बड़ा भारी समन्वयात्मक जमघट है। एक ओर तो उसे उसकी परम्परागत विचार-धाराएं, रूढ़ियां एवं रीति रिवाज घेरे हुए हैं और दूसरी ओर विदेशी संस्कार एवं विदेशी वस्तुओंके प्रति उसकी ललकभी उसपर बुरी तरह हावी है। लेखिकाने इस दुहरी मानसिकतापर यत्र-तत्र बड़े चुभते हुए व्यंग्य किये हैं।

विदेशोंमें भारतीयोंकी दुर्दशाका क्या कारण है, उनकी उपेक्षा क्यों होती है? इसका गहरा अनुभवभी लेखिकाने अपने इन यात्रा वृत्तोंमें दिया है—"किन्तु देखा जाये तो विदेशमें अपनी इस दयनीय दुर्बल स्थितिके लिए स्वयं हम भारतीयही जिम्मेदार हैं। हमारी विनम्रता वहां हमारी दीनता एवं हीनताका द्योतक बन गयी है। विदेश के प्रति हमारा मोह, किसीभी मूल्यपर वहां स्थायी रूप से बसनेकी दुर्दान्त कामना, अर्थ-संचयकी ओछी प्रवृत्ति, सत्ताकी होड़में अपनी योग्यताको गिरवी रख सामान्यसे ही प्रलोभनपर अपनी प्रतिभाको भुनानेकी कुचेष्टा, हम भारतीयोंको विदेशियोंकी नजरमें क्रमशः नीचे गिराती जा रही है।" (पृष्ठ ३१)

१. प्रकाशक : सरस्वती विहार, जी. टी. रोड, शाहदरा दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : ८०; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

विदेशोंमें भारतीय परिवारोंकी स्थिति ... जैसी हो जाती है। लेखिकाने उन परिवारोंकी अनुशासन-हीनताका बड़ा खुला हुआ व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है—"पुत्री स्यानी हुई तो उसके युवामित्रोंका आह्वान बड़ी स्वाभाविकतासे उसे अनुशासनकी लक्ष्मण-रेखासे बाहर खींच ले जाता है। अधिकांश भारतीय माता-पिता चाहते हैं, पुत्रीका विवाह परंपरागत निष्ठाका निर्वाहकर सम्पन्न किया जाये, किन्तु वे जानते है कि इस हेममृगका जन्म असंभव है। पुत्र बिदके घोड़े-सा कभीभी दुलत्ती झाड़कर अलग हो सकता है। उसके लिए क्या उस विलासी जीवनके एक-आध आकर्षण हैं? नशेकी गोलियां हैं, समवयस्किनी छात्राएं हैं, जो अकृपण हस्तसे प्रेमदान देनेको सदैव तत्पर हैं, खानेको सुस्वादु चौकलेट हैं, आइस-क्रीम हैं, जुगाली करनेको च्युइंगम है, पीनेको बीयर है, सिगरेट है और फूंकनेको पिताका परिश्रमसे अर्जित कुबेरका अशेष कोष है।' (पृ. २६)

शिवानीकी पकड़ बड़ी गहरी है, दृष्टि बड़ी तीखी है, विवेचन बड़ा सबल है। उनकी प्रतिभा सराहनीय है। अनेक प्रसंगोंमें बार-बार उद्धरण देनेकी इच्छा होती है। किन्तु स्थानाभावकी विवशता है। पाठक पढ़कर देखें कि शिवानीकी कलममें कितना चुम्बकीय तत्त्व है।

▭▭

बीते दिन, वे लोग[1]

लेखक : लक्ष्मीनिवास बिड़ला.

समीक्षक : डॉ. कमल सिंह.

पुस्तकमें बारह संस्मरण हैं। लेखक जिन पुरुषोंके संपर्कमें आया है और जिनके संस्मरण उसके हृदय-पटल पर कुछ अमिट छाप छोड़ गये हैं, उन्हींके संस्मरण इस पुस्तकमें निहित हैं। ईमानदारी यह है कि विश्वविख्यात राष्ट्रपिता बापू, राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू और प्रधानमंत्री पं० नेहरूसे लेकर सीरूताऊ, तुलिया और मुलिया जैसे जनसाधारणके लिए अज्ञात साधारण कर्मचारियोंतक के संस्मरण लिखने और प्रस्तुत पुस्तकमें संगृहीत करनेका साहित्यिक साहस लेखकने किया है।

'देशके वे कर्णधार' नामक प्रथम संस्मरणमें आठ महापुरुषोंके छोटे-छोटे संस्मरण हैं। ये महापुरुष हैं—महामना मालवीय, लाला लाजपतराय, बापू, पं. जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, राजाजी, राजेन्द्रप्रसाद, पं. गोविन्दवल्लभ पन्त। इन महापुरुषोंकी कतिपय घटनाएं बड़ी रोमांचकारी एवं प्रेरणाप्रद हैं। सरदार पटेलके लिए लेखकने लिखा है—"एक दिन कचहरीमें बहस कर रहे थे तो उन्हें अपनी स्त्रीकी मृत्युका तार मिला। तार जेबमें रखकर बहस जारी रखी।" (पृष्ठ २०) कुछ औरभी अधिक रोमांचकारी, चौंकानेवाली एवं प्रेरणाप्रद घटनाओंका उल्लेख किया जा सकता था। हो सकता है कि लेखक उन घटनाओंसे अपनेको संबद्ध न पाता हो।

अनुभूतिकी सघनता और अभिव्यक्तिकी छटपटाहट जितनी साधारण व्यक्तियोंके संस्मरणोंमें है उतनी महापुरुषोंके संस्मरणोंमें नहीं। 'पुरानी पिलानी' नामक संस्मरणमें सीरूताऊ, हीरा चौधरी, पं० जोखाराम आदि के संस्मरण संक्षिप्त होते हुएभी प्रभावक हैं।

इस पुस्तकको पढ़कर पाठकपर एक प्रभाव यहभी पड़ सकता है कि बिड़ला परिवारमें कितनी देशभक्ति, कितनी गुणग्राहकता, कितनी दानप्रियता और कितना हिन्दी-प्रेम निहित है। पूंजीपतियोंका दृष्टिकोणभी गरीबोंके प्रति उदार हो सकता है, यह बात बिड़ला परिवारकेकतिपय कृत्योंसे सिद्ध हो जाती है—"मेरी बड़ी माँ देवी थी। उसके सामने पिलानीमें कोईभी भूखा नहीं सोता था, और यह जिम्मेदारी थी सुरजनदास और भीमजी ठाकुरकी। गांवमें घूमकर पता लगाते और बड़ी माँको खबर देते। किसी भूखेके पास रोटी और किसीके पास सीधा पहुंच जाता था।" (पृष्ठ ४४) "उस जमाने में चमारोंका रथमें बैठकर चलना मना था। बड़े बाबू जी (बाबू जुगलकिशोर जी) ने एक दिन मूलाको हमारे रथमें बैठाकर सारे गांवमें घुमाया।" (पृष्ठ ४६)

भाषामें कहींभी बनावट एवं उलझाव नहीं है। संस्मरणके लिए उपयुक्त सीधी-सरल भाषाका प्रयोग किया गया है। यही कारण है कि जनसाधारणभी पुस्तक को समझ और रुचिके साथ पढ़ सकता है। एक नयी विधाके प्रचार एवं प्रसारके लिए यह अच्छा तरीका है।"

---

१. प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, एन ७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : ७७; क्रा. ८२; मूल्य : ५.०० रु.।

बाल-किशोर साहित्य

ज्ञानी चूहा

लेखक : मन्मथनाथ गुप्त; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ ४८; क्रा. डु. ८१; मूल्य ६.०० रु.।

चैकोस्लोवाकियाकी बारह लोककथाएं

लेखक : डॉ. ग्रादोलेन स्मेकल ग्रौर हेलेना स्मेकलोवा; प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली। पृष्ठ : ४४; क्रा. डु. ८२; मूल्य ६.०० रु.।

अनजानेमें हुए आविष्कार

लेखक : शुकदेव प्रसाद; प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ ४८; क्रा. डु. ८१; मूल्य : ३.५० रु.।

प्रेमचन्द

लेखक : डॉ. रामबक्ष; प्रकाशक : राष्ट्रीय शैक्षिक एवं ग्रनुसंधान ग्रौर प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली। पृष्ठ : ३८; क्रा. डु. ८१; मूल्य : ५.८५ रु.।

पशु-पक्षियोंकी कथाएं

लेखक : श्रीचन्द जैन; प्रकाशक : राष्ट्रीय मन्दिर, मोतिया पार्क, भोपाल। पृष्ठ : ३६; जेबी डु. ८१; मूल्य : ६.५० रु०।

'ज्ञानी चूहा' में ६ कहानियां हैं, जिनमें कुछ तो बहुत अच्छी हैं और इनके अर्थके एकाधिक स्तर इन्हें बच्चों और वयस्कों दोनोंके लिए समान रूपसे दिलचस्प और उपयोगी बनाते हैं। शीर्षक कहानी संकलनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इसमें मनुष्यके ज्ञानकी विडंबनाको बड़े मार्मिक ढंगसे रेखांकित किया गया है। मूर्ख मानव अपने ज्ञानका उपयोग परमाणु आयुधोंके आविष्कारके रूपमें, अपनेही विनाशके लिए कर रहा है और ज्ञानी चूहे बिल खोद रहे हैं, जिससे कि बमोंसे सुरक्षित रह सकें। साथही वे किताबेंभी कुतर रहे हैं, जिससे कि इनमें भरा विनाशकारी तथाकथित ज्ञान समाप्त हो जाये। 'कर्ज' कहानीमें रामू नामक एक गरीब लड़का संयोग और परिश्रमसे सेठ रामलाल बन जाता है और उस संयोगके प्रति सदैव अपनेको कर्जदार मानता हुआ खूब दानपुण्य करता है। यह एक संयोगही था जब वह बेकार और निराश कलकत्ताकी सड़कोंपर घूम रहा था, तो किसीने सड़कपर से दस रुपयेका एक नोट उठाकर यह कहते हुए दे दिया था कि 'तुम्हारी जेबसे गिरा है, संभालकर रखो।'

'खुली खिड़की' एक संवेदनशील लड़के और उसके पक्षी-प्रेमको लेकर लिखी गयी एक अन्य अच्छी रचना है। 'खोटे रुपये' मानव स्वभावकी कमजोरीको लेकर लिखी गयी मनोवैज्ञानिक कहानी है। 'ठग नगरीका कायापलट' तथा 'लाल छाता' भी रोचक हैं लेकिन 'होनी' और 'परोपकारी बंदर' सामान्य स्तरकी कहानियां हैं। इन अंतिम दोनों कहानियोंमें अन्य कहानियों जैसी सहज स्वाभाविकता और स्वतःस्फूर्तिका अभाव स्पष्ट है। कुल जमा संग्रह रोचक, शिक्षाप्रद और पठनीय है।

'चेकोस्लोवाकियाकी बारह लोककथाएं' (अनु. श्यामनंदन किशोर) में चेक जीवन और लोक विश्वासों की कल्पनायुक्त और सहज अभिव्यक्ति देखनेको मिलती है। एक विशिष्ट देशकी लोककथाएं होनेके बावजूद इनमें सहजता और सार्वजनीनताके तत्त्व हैं, क्योंकि मानव भावनाएं और लोक विश्वास प्रायः सब जगह एकसे होते हैं। पहली कहानी 'अन्नदाता बर्तन' में एक गरीब और भूखी, किंतु उदारमना छोटी-सी लड़की अपनी रोटी बड़ी श्रद्धाके साथ एक बुढ़ियाको दे देती है। बदलेमें बुढ़िया उसे एक इच्छानुसार भोजन देनेवाली हांडी देती है। एक दिन लड़कीकी अनुपस्थितिमें उसकी मांने हांडी को भोजन देनेका आदेश दिया और देखतेही देखते घरके सारे बर्तन भोजनसे भर गये। घबराहटमें वह रोकनेवाले शब्द भूल गयी और सारा गांव भोजनके ढेरोंसे पट गया।

शामको जब वह लड़की लौटी तो उसने हांडीको रुकनेको आदेश दिया। 'चुकन्दर' कहानीमें एक विशालकाय आफती चुकन्दरको एक परिवारके सभी लोग मिलकर उखाड़नेका प्रयत्न करते हैं। चुकन्दर उखड़ तो जाता है, लेकिन वे एक दूसरेपर लदपद गिर पड़ते हैं। स्वस्थ हासके स्फुरणकी दृष्टिसे यह एक अच्छी कहानी है। 'जब पाठशाला जानेसे थैलियां मिलती थीं' भी इसी तरहकी एक अन्य कहानी है।

'एक बूढेके तीन सुनहली बाल' एक साहसी नवयुवककी कथा है, जो काले समुद्रके पार जाकर अपनी बुद्धिमानीसे, सर्वज्ञसे तीन सुनहले बाल ही प्राप्त नहीं करता. अपितु कई कठिन प्रश्नोंके हलभी प्राप्त कर लेता है। परिणाममें वह राजकुमारीको और सिंहासन दोनोंको प्राप्त करनेमें सफल होता है। 'लम्बा, मोटू और देखूभी इसीतरहकी एक अन्य साहसिक कहानी है। एक राजकुमार एक अभिशप्त राजकुमारीको एक जादूगरकी कैदसे मुक्त करवाकर उससे विवाह करता है। इस कहानीमें अस्पष्टताका दोष है जिससे दुर्बोधता आ गयी है। कहानियोंके लम्बे शीर्षकभी खटकनेवाले हैं। पुस्तकके प्रारंभमें कहानियोंकी सूचीभी नहीं दी गयी है। 'भाग्य और बुद्धि' कहानीमें एक संकरे पुलपर भाग्य और बुद्धिके चित्रमें दोनोंको पुरुष रूपमें दिखाया गया है, जबकि बुद्धिको स्त्री रूपमें दिखाया जाना चाहिये था। इन दोषोंके बावजूद कहानियां समग्रतः रोचक एवं मनोरंजक हैं। अनुवादमें अपेक्षित गति तथा प्रवाह है।

'अनजानेमें हुए आविष्कार' में पिनसे लगाकर, रेल, विटामिन, डाइनामाइट, तपेदिकके जीवाणु, रेलवे सिगनल आदि विभिन्न ३३ छोटे-बड़े आविष्कारोंका सरल सुपाठ्य भाषामें वर्णन किया गया है लेकिन इनमें अपेक्षित रोचकताकी कमी अखरती है। चित्रोंमें भी सुधारकी काफी गुंजाइश है। 'वल्कनाज्ड' के स्थानपर बुल्कनाइज्ड जैसी अशुद्धियांभी इसमें हैं। कहीं-कहीं अस्पष्टताभी पायी जाती है, जैसे 'बेन्जीनकी रचना' में। ऐसे विषय न लिये जाते तो ठीक रहता। एकसाथ इतने आविष्कारों के स्केची वर्णनकी अपेक्षा कुछ चुने हुए महत्त्वपूर्ण आविष्कारोंको दिलचस्प ढंगसे कहानी रूपमें उठाया जाता तो प्रभाव कुछ औरही होता।

सबसे बड़ी खटकनेवाली बात तो यह है कि इस पुस्तकका शीर्षकही भ्रामक है। इसमें वर्णित अधिकतर आविष्कार ऐसे हैं जो लगातार कठोर परिश्रमके परिणाम हैं। यह दूसरी प्रेरणा सामान्य-सी दिखनेवाली घटनाओं से मिली हो, या आविष्कार कुछ करना चाहते थे लेकिन हो कुछ और गया।

प्रेमचन्द जन्म शताब्दीपर किशोर पाठकों, विद्यार्थियों के लिए लिखी गयी पुस्तक 'प्रेमचन्द' एक सराहनीय प्रयास है। 'ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' से लगाकर 'प्रेमचन्द की विरासत' तक दस अध्याय इसमें हैं, प्रेमचन्दके व्यक्तित्व और कृतित्व संबंधी प्राय: सभी महत्त्वपूर्ण पक्षोंको समेटनेकी कोशिश की गयी है। 'जीवन चरित' के अंतर्गत दिये गये चित्रभी पुस्तकके आकर्षणको बढ़ाते हैं। 'रचना संसार' में प्रेमचन्दजीकी रचनाओंका संक्षिप्त किंतु कलात्मक परिचयभी इस पुस्तककी एक अन्य विशेषता हैं। प्रेमचन्दजीके उपन्यास और कहानियोंकी पृष्ठभूमिमें सामयिक संदर्भोंको लेकर लिखे गये अध्याय 'भारतीय किसान,' सांप्रदायिकता विरोधी संघर्ष, 'अछूतों की समस्या', नारी मुक्तिका सवाल' भी अपनी महत्ता और मूल्यवत्तामें पर्याप्त सार्थक हैं। प्रेमचन्दजीकी पत्रकारितापर भी एक अध्याय है। समग्रतः यह एक स्तुत्य प्रयत्न है और निश्चित रूपसे किशोर पाठकोंको इससे नयी और उपयोगी जानकारी प्रेमचन्दजीके बारेमें मिलेगी और साथही स्वस्थ मनोरंजनभी होगा। अन्य प्रसिद्ध साहित्यकारोंपर भी इसतरहकी किशोर-उपयोगी पुस्तकें लिखी जानी आवश्यक हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इसके लिए बधाईकी पात्र है। लेकिन ऐसे प्रकाशनोंके लिए संबंधित महापुरुषों, लेखकोंकी जन्म शताब्दियोंका ही इंतजार क्यों किया जाये ? किसीभी अच्छे प्रकाशनके लिए तो हर समय उपयुक्त है। शुभमें देरी और इंतजार किस लिए ?

'पशु पक्षियोंकी कथाएं' में रामायण, महाभारत और पुराणोंपर आधारित १५ छोटी-छोटी कहानियां हैं, लेकिन न तो कहानियोंके शीर्ष उपयुक्त बन पड़े हैं और न इनका चुनावही। पशु-पक्षियोंके नामपर खींच-तानकर कहानीके फ्रेमपर जैसे कथाको फिट किया गया है। सरसताका अभाव, छापेकी जगह-जगह अशुद्धियाँ, भारीभरकम और दुरूह शब्दोंका प्रयोग आदि रचनाको एक अत्यंत सामान्य स्तरपर ला पटकते हैं। कहानियोंका अनुच्छेदोंमें विभाजनभी सदोष है। उदाहरणार्थ 'जड़ भरत मृग बने' में केवल एक अनुच्छेद है और उसमें बीस पंक्तियां हैं, 'दयालु नल ! अब मुझे छोड़ दो' में दो अनुच्छेद हैं। शीर्षक तक में वर्तनीकी अशुद्धि बड़ी खटकनेवाली बात है। ▭▭

आगामी अंक

'मकर-संक्रान्ति'का यह अंक हिन्दी उपन्यासोंका विवेचनात्मक और पर्यवेक्षणात्मक आलेख है। इसकी सहायतासे आधुनिक उपन्यास विधाकी दिशा, गति और नवचिन्तनकी रूपरेखाका परिचय मिलता है और शिल्प तथा भाषा संबंधी प्रयोगोंकी नवीनताकी ओर ध्यान आकृष्ट होता है। उपन्यासोंकी आलोचना एवं समीक्षाकी सीमाएं भी उभरती हैं, आलोचकों-समीक्षकोंकी पृष्ठभूमि एवं मूल्यांकनकी विविधताके भी दर्शन होते हैं।

इसी अंकमें पढ़िये : 'आर्यसमाजका इतिहास' (प्रथम खण्ड) का परिचयात्मक विवेचन.

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, २५७४. रघुवरपुरा, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित और [illegible] दिल्ली ११०-००७ से प्रकाशित।